Barcode : 99999990003125
Title - Shree Tatvarthsutram Part-2
Author - Ghasilal Ji Maharaj
Language - sanskrit
Pages - 895
Publication Year - 1973
Barcode EAN.UCC-13

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराज-
विरचितया दीपिका-निर्युक्त्याख्यया व्याख्याद्वय समलङ्कृतं
हिन्दी-गुर्जर-भाषाऽनुवादसहितम्

॥ श्री तत्त्वार्थसूत्रम् ॥

(द्वितीयो भागः)

नियोजकः

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात-प्रियव्याख्यानि
पण्डितमुनि-श्रीकन्हैयालालजी-महाराजः

प्रकाशकः

राजकोटनिवासी-स्व. दोशीपाह मूलजीभ्रातोरात्मज
प्रभुलालस्य धर्मपत्नी लाभुबहेनप्रदत्त-द्रव्यसाहाय्येन
अ० भा० श्वे० स्था० जैनशास्त्रोद्धारसमितिप्रमुखः
श्रेष्ठि-श्रीशान्तिलाल-मङ्गलदासभाई-महोदयः
मु० राजकोट

प्रथमा-आवृत्तिः	वीर-संवत्	विक्रम-संवत्	ईसवीसन्
प्रति १२००	२४९९	२०२९	१९७३

मूल्यम्-रू० २५-०-०

મળવાનું ઠેકાણું :
શ્રી અ. ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી
જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ,
ઠે. ગરેડિયા કૂવા રોડ,
રાજકોટ, (સૌરાષ્ટ્ર).

Published by :
Shri Akhil Bharat S. S.
Jain Shastroddhara Samiti,
Garedia Kuva Road, RAJKOT,
(Saurashtra), W. Ry, India.

卐

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥

卐

हरिगीतच्छन्दः

करते अवज्ञा जो हमारी यत्न ना उनके लिये ।
जो जानते हैं तत्त्व कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥
जनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई तत्त्व इससे पायगा ।
है काल निरवधि विपुलपृथ्वी ध्यान में यह लायगा ॥ १ ॥

卐

મૂલ્યઃ રૂ. ૨૫=૦૦

પ્રથમ આવૃત્તિ પ્રત ૧૨૦૦
વીર સંવત્ ૨૪૯૯
વિક્રમ સંવત્ ૨૦૨૯
ઈસવીસન ૧૯૭૩

: મુદ્રક :
મણિલાલ છગનલાલ શાહ
નવપ્રભાત પ્રિન્ટીંગ પ્રેસ,
ઘીકાંટા રોડ, અમદાવાદ.

श्री तत्त्वार्थसूत्र भाग दूसरे की विषयानुक्रमणिका

अ.नं.	विषय	पृष्ठ
	छट्ठा अध्याय	
१	आस्रवतत्त्वका निरूपण सू० १	१-१४
२	पुण्यपाप के आस्रवों के कारण सू० २	१५-२०
३	संपरायक्रिया के आस्रवोंका निरूपण सू० ३	२०-२४
४	अकपायजीव के संसार परिभ्रमण रूप ईर्यापथ आस्रव के कारण होने का निरूपण सू० ४	२५-३१
५	साम्परायिक कर्मास्रव के भेदों का निरूपण सू० ५	३१-५१
६	सब जीवों के कर्मबन्ध समान होता है या विशेषाधिक सू० ६	५२-६९
७	अधिकरणका स्वरूप सू० ७	६९-७५
८	जीवाधिकरण के भेदका निरूपण सू० ८	७६-८७
९	अजीव के अधिकरणका निरूपण सू० ९	८७-९८
१०	कर्मबन्ध के आस्रव सब आयुवालेका अस्रव होता है सू० १०	९८-१००
११	देवायु के आस्रवका निरूपण सू० ११	१०१-१०३
	सातवां अध्याय	
१२	संवर के स्वरूपका निरूपण सू० १	१०४-१०६
१३	संवर के कारणरूप समिति गुप्ति आदिका निरूपण सू० २	१०७-११५
१४	समिति के भेदों का निरूपण सू० ३	११६-१२४
१५	गुप्ति के स्वरूप निरूपण सू० ४	१२४-१३२
१६	दश प्रकार के श्रमणधर्मका निरूपण सू० ५	१३२-१४८
१७	अनुप्रेक्षा के स्वरूपका निरूपण सू० ६	१४८-१७९
१८	परिषहजय का निरूपण सू० ७	१७९-१८४
१९	परीषह के भेदों का निरूपण सू० ८	१८४-२१४
२०	कौन जीवको कितने परीषह होते हैं ? सू० ९	२१४-२२१
२१	भगवान् अरिहन्त भगवन्त को बारह परीषह होनेका निरूपण सू० १०	२२१-२२५
२२	बादरसम्पराय को सब परीषहका संभव का निरूपण सू० ११	२२५-२३०
२३	ज्ञानावरण कर्म के निमित्त से होने वाले दो परिषहों का निरूपण सू० १२	२३०-२३२

२४ दर्शनमोहनीय अन्तराय कर्म के उदय से
श्रमण में दर्शन और अलाभपरीषहकी उत्पत्तिका निरूपण सू. १३ २३२-२३४
२५ चारित्रमोहनीयकर्म के निमित्त से होनेवाले
सात परिषहोंका कथन सू० १४ २३५-२३८
२६ वेदनीयकर्म के उदय से होने वाले
ग्यारहपरीषहों का कथन सू० १५ २३९-२४२
२७ एक जीव को एक ही काल मे होने वाले
परीषहों का कथन सू० १६ २४२-२४७
२८ हिंसादि से निवृत्ति आदि व्रतों का निरूपण सू० १७-२४ २४८-२५०
२९ हिंसा के स्वरूप निरूपण सू० २५ २५१-२५७
३० मृषावाद का निरूपण सू० २६ २५७-२६५
३१ स्तेय का स्वरूप निरूपण सू० २७ २६५-२७१
३२ मैथुन का निरूपण सू० २८ २७१-२७३
३३ परिग्रह का निरूपण सू० २९ २७३-२८५
३४ पांच अणुव्रत का निरूपण सू० ३०-३७ २८५-२८७
३५ मारणांतिक संलेखना का निरूपण सू० ३८ २८८-२९५
३६ सम्यग्दृष्टि के पांच अतिचार का निरूपण सू० ४०० २९६-३१३
३७ अणुव्रत एवं दिग्व्रत के पांच अतिचारका निरूपण सू० ४१-४२ ३१४-३२३
३८ तीसरे अणुव्रत के स्तेनाहृतादि पांच
अतिचारों का निरूपण सू० ४३ ३२४-३३१
३९ चोथे अणुव्रत के पांच अतिचार का निरूपण सू० ४४ ३२३-३३७
४० पांचवें अणुव्रत के पांच अतिचार का निरूपण सू० ४५ ३३८-३४५
४१ दिग्विरत्यादि सात शिक्षाव्रत के पांच पांच
अतिचारों का निरूपण सू० ४६ ३४६-३५१
४२ उपभोग परिभोग परिमाणव्रत के अतिचारका निरूपण सू० ४७ ३५२-३५५
४३ अनर्थदण्ड विरमणव्रत के अतिचार का निरूपण सू० ४८ ३५६-३६४
४४ सामयिकव्रत के पांच अतिचारों का निरूपण सू० ४९ ३६४-३७०
४५ देशावकाशिकव्रत के पांच अतिचारों का निरूपण सू० ५० ३७०-३७७
४६ पोपधोपवासव्रत के पांच अतिचारों ना निरूपण सू० ५१ ३७७-३८२
४७ बारहवें व्रत के पाँच अतिचार का निरूपण सू० ५२ ३८३-३८९

४८ मारणांतिक संलेखना के पांच अतिचारोंका निरूपण सू० ५३ ३८९–३९५

४९ पांच महाव्रतों का निरूपण सू० ५४–५५ ३९६–३९९

५० पच्चीस भावनाओं का निरूपण सू० ५६ ४००–४१२

५१ सामान्य प्रकार से सर्वव्रत की भावनाओंका निरूपण सू०५७ ४१३–४२८

५२ सब प्राणियों में मैत्रिभावना का निरूपण सू० ५८ ४२९–४३६

५३ चारित्र के भेदका निरूपण सू० ५९ ४३७–४३९

५४ तप के भेद कथन सू० ६० ४५०–४५२

५५ बाह्य तप के भेद का निरूपण सू० ६१ ४५३–४६४

५६ आभ्यन्तर तप के भेद का निरूपण सू० ६२ ४६५–४६९

५७ दश प्रकार के प्रायश्चित्त का निरूपण सू० ६३ ४६९–४८२

५८ विनयरूप आभ्यन्तर तप के भेद का निरूपण सू० ६४ ४८३–४८९

५९ वैयावृत्य के भेदों का निरूपण सू० ६५ ४९०–४९५

६० स्वाध्याय के भेद का निरूपण सू० ६६ ४९५–४९८

६१ ध्यान के स्वरूप निरूपण सू० ६७ ४९८–५०२

६२ ध्यान का चतुर्विध भेद का निरूपण सू. ६८ ५०२–५०५

६३ धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान मोक्ष के कारणरूप का निरूपण सू० ६९ ५०५–५०७

६४ आर्त्तध्यान के चार भेदों का कथन सू० ७० ५०८–५१४

६५ अविरत आदि को आर्त्तध्यान होने का प्रतिपादन सू० ७१ ५१४–५२१

६६ रौद्रध्यान के चार भेदों का निरूपण सू० ७२ ५२६–५३७

६७ धर्मध्यान के चार भेदों का निरूपण सू० ७३ ५२६-५३७

६८ शुक्लध्यान के चार भेदों का निरूपण सू० ७४ ५३८–५४५

६९ शुक्लध्यान के स्वामि आदि का कथन सू० ७५ ५४५–५५१

७० केवलीको अन्तिम दो शुक्लध्यान होने का कथन सू० ७६ ५५२–५५६

७१ चार प्रकार के शुक्लध्यान के स्थान विशेषका निरूपण सू० ७७ ५५६–५६०

७२ पहला एवं दूसरा शुक्लध्यान के संबन्ध में विशेष कथन सू. ७८ ५६०–५६२

७३ वितर्क के स्वरूप निरूपण सू० ७९ ५६२–५६७

७४ पांचवें आभ्यन्तर तप व्युत्सर्ग के द्रव्य भाव के भेद से द्वि प्रकारता का कथन सू० ८० ५६७–५७०

आठवां अध्याय

७५ निर्जरा के स्वरूप निरूपण सू० १ ५७१-५७३
७६ निर्जरा के दो भेदों का कथन सू० २ ५७३-५८१
७७ कर्मक्षयलक्षणा निर्जरा के हेतु कथन सू० ३ ५८१-५८४
७८ तप के दो प्रकारता का कथन सू० ४ ५८४
७९ अनशन तप के दो भेदों का कथन सू० ५ ५८५-५८७
८० इत्वरिकतप के अनेकविधत्वका निरूपण सू० ६ ५८७-५९१
८१ अनशन तप के यावत्कथिक के दो प्रकार का कथन सू०७ ५९१-५९५
८२ पादपोपगमन तप के द्वि प्रकारताका निरूपण सू० ८ ५९५-५९८
८३ भक्तप्रत्याख्यान के दो प्रकारता का निरूपण सू० ९ ५९८-६००
८४ अवमोदरिका के स्वरूप निरूपण सू० १० ६००-६०२
८५ द्रव्यावमोदरिका के दो भेदों का कथन सू० ११ ६०२-६०४
८६ उपकरण द्रव्यावमोदरिका के त्रिविध प्रकारताका निरूपण सू० १२ ६०४-६०७
८७ भक्तपान द्रव्यावमोदरिका के अनेक विधताका निरूपण सू०१३ ६०७-६१४
८८ भावावमोदरिकातपका निरूपण सू० १४ ६१४-६१७
८९ भिक्षाचर्या तप के अनेकविधता का निरूपण सू० १५ ६१७-६३०
९० रसपरित्यागतप का निरूपण सू० १६ ६३१-६३६
९१ कायक्लेशतप के अनेक विधत्वका निरूपण सू० १७ ६३६-६४४
९२ प्रतिसंलीनतातप के चातुर्विध्य का निरूपण सू० १८ ६४४-६४७
९३ इन्द्रिय प्रतिसंलीनतातप के पंचविधत्व का निरूपण सू० १९ ६४७-६५२
९४ कषाय प्रतिसंलीनतातप का निरूपण सू० २० ६५२-६५७
९५ योगप्रतिसंलीनतातप का निरूपण सू० २१ ६५७-६६१
९६ विविक्तशय्यासनता का निरूपण सू० २२ ६६२-६६५
९७ ज्ञानविनयतप का निरूपण सू० २३ ६६५-६६८
९८ दर्शनविनयतप का निरूपण सू० २४ ६६८-६७१
९९ शुश्रूषणाविनयतप का निरूपण सू० २५ ६७१-६७६
१०० अनत्याशातना विनयतप के ४५ पैंतालीस भेदों का कथन सू० २६ ६७७-६८२

१०१ चारित्रविनयतप का निरूपण सू० २७ ६८२–६८७
१०२ मन, वचन, कायविनयतप का निरूपण सू० २८ ६८७–६९२
१०३ लोकोपचारविनयतप का निरूपण सू० २९ ६९२–६९६
१०४ आभ्यन्तरतप के छठा भेद व्युत्सर्ग का निरूपण सू० ३० ६९७–
१०५ द्रव्यव्युत्सर्गतप का निरूपण सू० ३१ ६९८–७००
१०६ भावव्युत्सर्गतप का निरूपण सू० ३२ ७०१–७०३
१०७ कषायव्युत्सर्गतप का निरूपण सू० ३३ ७०३–७०५
१०८ संसारव्युत्सर्गतप का निरूपण सू० ३४ ७०५–७०८
१०९ कर्मव्युत्सर्गतप का निरूपण सू० ३५ ७०८–७१३
११० निर्जरा सबको समान होती है ? या विशेषाधिक ? सू० ३६ ७१३–७२६
१११ मोक्षमार्ग का निरूपण सू० ३७ ७२६–६३५
११२ सम्यग्दर्शन का निरूपण सू० ३८ ७३५–७३९
११३ सम्यग्दर्शन की द्वि प्रकारता का निरूपण सू० ३९ ७३९–७४२
११४ सम्यग्ज्ञान स्वरूप निरूपण सू० ४० ७४२–७४७
११५ सम्यग्ज्ञान के भेदों का कथन सू० ४१ ७४७–७५७
११६ मतिश्रुतज्ञान के परोक्षत्व का निरूपण सू० ४२ ७५७–७६०
११७ अवधि, मनःपर्यव, केवलज्ञान के प्रत्यक्षत्व का निरूपण सू० ४३ ७६०–७६५
११८ मतिज्ञान के द्वि प्रकारता का कथन सू० ४४ ७६५–७६९
११९ मतिज्ञान के चातुर्विध्यत्व का निरूपण सू० ४५ ७७०–७७७
१२० अवग्रह के दो भेदों का निरूपण सू० ४६ ७७८–७८५
१२१ श्रुतज्ञान के दो भेदों का कथन सू० ४७ ७८६–७९३
१२२ अवधिज्ञान का निरूपण सू० ४८ ७९३–७९९
१२३ मनःपर्यवज्ञान के द्विविधत्व का प्रतिपादन सू० ४९ ७९९–८०८
१२४ पांच प्रकार के ज्ञानों में मतिश्रुतज्ञान की विशेषता ८०८–८१३
१२५ अवधिज्ञान विषय का निरूपण ८१३–८१६
१२६ मनःपर्ययज्ञान के वैशिष्य का निरूपण ८१६–८१९
१२७ केवलज्ञान की उत्पत्ति के कारण का निरूपण ८१९–८२२
१२८ केवलज्ञान के लक्षण का निरूपण ८२२–८३१

नववाँ अध्याय

१२९. मोक्षतत्त्व का निरूपण ८३२-८४३
१३० मोक्षावस्था में भावकर्मक्षय का निरूपण ८४४-८४९
१३१ मुक्तात्मा के गति का निरूपण ८४९-८५२
१३२ अकर्मा की गति का निरूपण एवं उस विषय में दृष्टांत ८५२-८५५
१३३ सिद्ध के स्वरूप का निरूपण ८५६-८७८

॥ समाप्त ॥

આ ગ્રંથના પ્રકાશનાર્થે સહાય કરનાર સદ્ગૃહસ્થ



રાજકોટવાળા

સ્વ. શેઠશ્રી પ્રભુદાસભાઈ દોશી તથા તેમના સુપુત્રો

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री घासीलालव्रतिविरचितं
दीपिका-निर्युक्त्याख्यया व्याख्यया समलङ्कृतम्
हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादसहितम्

॥ श्री-तत्त्वार्थसूत्रम् ॥

(द्वितीयो भागः)

षष्ठोऽध्यायः

मूलम्-मण-वय-काय जोगाई आसवो ॥१॥

छाया—'मनोवचःकाययोगादिरास्रवः' ॥१॥

तत्त्वार्थदीपिका—जीवाजीवाय बंधोय-पुण्णं पावाऽऽसवो तहा ।
संवरो निज्जरा मोक्खो-संतेए तहिया नव ॥१॥

इत्युत्तराध्ययनसूत्रानुसारेण क्रमशो जीवा-जीव-बन्ध-पुण्य-पापानि पञ्च तत्त्वानि पञ्चाऽध्यायेषु प्ररूपितानि, सम्प्रति-क्रमप्राप्तं षष्ठमास्रवतत्त्वं प्ररूपयितुं षष्ठाध्यायं प्रारभते-'मणवयकाय जोगाई आसवो' इति ।

मनोवचःकाययोगादिः-मनोयोगः१ वचोयोगः२ काययोगः३ तदादिः तत्प-

छट्ठा अध्याय का प्रारंभ

'मण-वय-कायजोगा'-इत्यादि ।

मनोयोग, वचनयोग, काययोग आदिको आस्रव कहते हैं ॥१॥

तत्वार्थदीपिका-जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये नौ तत्त्व हैं।' उत्तराध्ययनसूत्र के इस कथन के अनुसार क्रम से जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य और पाप, इन पांच तत्त्वों का पांच अध्यायों में निरूपण किया गया। अब अनुक्रम से प्राप्त छठे आस्रव तत्त्वकी प्ररूपणा करने के लिए छठा अध्याय प्रारम्भ किया जाता है—

છઠ્ઠા અધ્યયનનો પ્રારંભ-

'मण-वय-कायजोगाई आसवो'

સૂત્રાર્થ—મનોયોગ, વચનયોગ, કાયયોગ આદિને આસ્રવ કહે છે ॥૧॥

તત્વાર્થદીપિકા—જીવ, અજીવ, બન્ધ, પુણ્ય, પાપ, આસ્રવ, સંવર, નિર્જરા તથા મોક્ષ આ નવ તત્વો છે. ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના આ કથન અનુસાર ક્રમથી જીવ, અજીવ, બન્ધ, પુણ્ય આ પાપ, અને પાંચ તત્ત્વોનું પાંચ અધ્યાયોમાં નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું. હવે ક્રમથી પ્રાપ્ત છઠા આસ્રવતત્વની પ્રરૂપણા કરવાના આશયથી છઠ્ઠો અધ્યાય પ્રારંભ કરવામાં આવે છે.

भूतिरास्रव उच्यते । तत्र-मनोवचःकायानां क्रियारूपं कर्मयोगः आत्मप्रदेशपरिस्पन्दरूप आख्यायते । तत्राऽभ्यन्तरवीर्यान्तराय नो इन्द्रियावरणक्षयोपशमात्मक मनोलब्धिसान्निध्ये वाह्यनिमित्तमनोवर्गणालम्बने च सति मनःपरिणामाभिमुखी भूतस्यात्मनः प्रदेशपरिस्पन्दो मनोयोगः ॥१॥

शरीरनामकर्मोदयसम्पादितवाग्वर्गणालम्बने सति वीर्यान्तरायके सति-आक्षराद्यावरणक्षयोपशमापादितवाग्लब्धिसन्निधाने वाक्परिणामाभिमुखस्यात्मनः प्रदेशपरिस्पन्दो वाग्योगः२, वीर्यान्तरायक्षयोपशमसद्भावे सति औदारिक-वैक्रिया-ऽऽहारकादि पञ्चविध शरीरवर्गणान्यतमा-ऽऽलम्बने च सति आत्म-प्रदेशपरिस्पन्दः काययोगः३, स त्रिविधो योगः-आस्रवः कथ्यते ।

मनोयोग, वचनयोग, और काययोग आदि आस्रव कहलाते हैं। तात्पर्य यह है कि मन, वचन, और कायकी क्रिया से आत्मा के प्रदेशों में परिस्पन्दन होता है, वह योग कहलाता है। जब आभ्यन्तर कारण वीर्यान्तराय कर्म तथा नो इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशमरूप मनोलब्धि का सान्निध्य होता है और बाह्य कारण मनोवर्गणा का आलम्बन होता है, तब मन रूप परिणमन की ओर अभिमुख आत्मा के प्रदेशों में जो परिस्पन्दन (हलन-चलन) होता है, वह मनोयोग कहलाता है।

शरीर नाम कर्म के उदय से प्राप्त वचन वर्गणा का आलम्बन होने पर तथा वीर्यान्तराय एवं मति-अक्षरा वरण आदि के क्षयोपशम से प्राप्त होने वाली वचन लब्धिका सन्निधान होने पर वचन रूप परिणाम के अभिमुख आत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्दन वचनयोग कहलाता है। जब अन्तरंग कारण वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम होता है और

મનોયોગ, વચનયોગ અને કાયયોગ આદિ આસ્રવ કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે મન, વચન અને કાયાની ક્રિયાથી આત્માનાં પ્રદેશોમાં જે પરિસ્પન્દન થાય છે, તે યોગ કહેવાય છે જ્યારે આભ્યન્તર કારણ વીર્યાન્તરાયકર્મ તથા નોઇન્દ્રિય બાહ્ય કર્મભેદ ક્ષયોપશમ રૂપ મનોલબ્ધિનું સાન્નિધ્ય થાય છે. અને બાહ્ય કારણ મનોવર્ગણાનું આલંબન હોય છે, ત્યારે મન રૂપ પરિણમનની તરફ અભિમુખ આત્માનાં પ્રદેશોમાં જે પરિસ્પન્દન (હલન-ચલન) થાય છે તે મનોયોગ કહેવાય છે.

શરીર નામકર્મના ઉદયથી પ્રાપ્ત વચનવર્ગણાનું આલમ્બન થવાથી તથા વીર્યાન્તરાય અને મતિ-અજ્ઞાન બાહ્ય આદિના ક્ષયોપશમથી પ્રાપ્ત થનારી વચનલબ્ધિના સાન્નિધ્ય થવાથી વચનરૂપ પરિણામના અભિમુખ આત્માના પ્રદેશોના પરિસ્પન્દનને વચનયોગ કહેવાય છે. જ્યારે અન્તરંગ કારણ વીર્યા-

आस्रवति-आगच्छति आत्मदेशसमीपस्थोऽपि पुद्गलपरमाणुपुञ्जः कर्मत्वेन परिणमति-अस्मात् क्रियाकलापाद् इत्यास्रवः तथाविधः क्रियासमूहः, तथाविध परिणामतो जीवः कर्माणि आदत्ते,। तथाविधपरिणामाभावेतु-कर्मबन्धो न भवति। एवञ्च-सरसः सलिलावाहि विवररन्ध्ररूप स्रोतोवद् आस्रवः-आत्मनः परिणामविशेषः कर्मरूपसलिलस्य प्रवेशे हेतु र्भवति। कर्माणि-आस्रवन्ति अनेनाऽऽत्मपरिणामविशेषेणाऽऽत्मना सह सम्बध्यन्ते-इत्यास्रवः, कर्मागमनद्वारभूत आत्मपरिणामविशेष इत्यर्थः। तथा च-केवलिसमुद्घाते दण्ड-कपाट प्रतर-लोक-

---

औदारिक वर्गणा वैक्रिय वर्गणा, तथा आन्तरिक वर्गणा आदि शरीर वर्गणाओं में से किसी भी एक वर्गणा का आलम्बन होने रूप बाह्य कारण होता है, तब उस के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में जो परिस्पन्दन होता है, वह काययोग कहलाता है। तीनों प्रकार का यह योग आस्रव कहा गया है।

जिन आकाश प्रदेशों में आत्मा स्थित है, उन्हीं आकाश प्रदेशों में स्थित कार्मण वर्गणा के पुद्गलपरमाणु जिस क्रियाकलाप से कर्म के रूप में परिणत हो जाते हैं, उस क्रियाकलाप को आस्रव कहते हैं, उस प्रकार के परिणाम से जीव कर्मों को ग्रहण करता हैं, यदि उस प्रकार का परिणाम न हो तो कर्म का बन्ध नहीं होता। इसी प्रकार जैसे जल को प्रवाहित करनेवाले छिद्र के द्वारा सरोवर में जलका आगमन होता है वैसे ही आत्मा के परिणाम विशेष से कर्मरूपी जलका प्रवेश होता है। जिसके द्वारा कर्म आते हैं, वह आस्रव, ऐसी आस्रव

ન્તરાય કર્મનો ક્ષયોપશમ થાય છે અને ઔદારિકવર્ગણા, વૈક્રિયવર્ગણા તથા આહારકવર્ગણા આદિ શરીર વર્ગણાઓમાંથી કોઈપણ એક વર્ગણાનું આલમ્બન થવા રૂપ બાહ્ય કારણ હોય છે, ત્યારે તે નિમિત્તથી આત્માના પ્રદેશોમાં જે પરિસ્પન્દન થાય છે, તે કાયયોગ કહેવાય છે. ત્રણે પ્રકારનો આ યોગ આસ્રવ કહેવાયો છે.

જે આકાશપ્રદેશોમાં આત્મા સ્થિત છે, તેજ આકાશપ્રદેશોમાં સ્થિત કાર્મણવર્ગના પુદ્ગલપરમાણું, જે ક્રિયાકલાપથી કર્મના રૂપમાં પરિણત થઈ જાય છે, તે ક્રિયાકલાપને આસ્રવ કહે છે. તે પ્રકારનાં પરિણામથી જીવ કર્મોને ધારણ કરે છે, જો તે પ્રકારનું પરિણામ ન થાય તો કર્મનો બન્ધ થતો નથી. આવી રીતે જેમ પાણીને પ્રવાહિત કરનારા છિદ્ર દ્વારા સરોવરમાં જળનું આગમન થાય છે, તેવી જ રીતે આત્માના પરિણામ વિશેષથી કર્મ રૂપી જળનો પ્રવેશ થાય છે. જેના દ્વારા કર્મો આવે છે, તે આસ્રવ, એવી આસ્રવ શબ્દની વ્યુત્પત્તિ છે. આશય એ છે કે આત્માનું તે પરિણામ, જે

पूरणलक्षणः खलु योगो वर्तते, स योगोऽनास्रवरूपोऽप्यस्ति। तत्र-यथाऽऽर्द्रवस्त्रं समन्तात् पवनाऽऽनीतं रजःपुञ्जं स्वस्मिन् गृह्णाति, एवम्-कषायजलेनाऽऽर्द्रीभूतो जीवः कायादि त्रिविधयोगानीतं कर्मपुद्गलं सर्व प्रदेशैरुपादत्ते-

यथा वा-तप्ताऽयःपिण्डः पयसि प्रक्षिप्तः समन्ताज्जलं गृह्णाति, एवं-क्रोध मायादि कषाय सन्तप्ताऽऽत्मा कायादि त्रिविधयोगानीतं कर्मपुद्गलं परिगृह्णाति, आदिपदेन-मिथ्यादर्शनाविरति कषाययोगादयो बन्धहेतव आस्रवा उच्यन्ते ॥१॥

शब्द की व्युत्पत्ति है। अभिप्राय यह है कि आत्मा का वह परिणाम, जो कर्मों के आगमन का द्वार है, आस्रव कहा जाता है। केवलिसमुद्घात के समय दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण रूप जो योग रहता है, वह ऐर्यापथिक के सिवाय अन्य आस्रव का कारण नहीं होता।

जैसे गिला वस्त्र वायु द्वारा उडाये हुए रज को सभी ओर से ग्रहण करता है अर्थात् वस्त्र के गीलेपन के कारण उसमें आ-आकर धूल चिपक जाती है वैसे ही क्रोधमान, माया या लोभ कषाय से आर्द्र बना आत्मा काययोग आदि तीन प्रकार के योगों द्वारा आकृष्ट कर्म पुद्गलों को ग्रहण करता है। अथवा जैसे आग से तपा हुआ लोहेका गोला यदि पानी में डाल दिया जाय तो वह सभी ओर से जल को ग्रहण करता है-आत्मसात् करता है, उसी प्रकार कषाय के ताप से सन्तप्त आत्मा काययोग आदि के द्वारा कर्म पुद्गलों को ग्रहण करता है।

सूत्र में प्रयुक्त 'आदि' शब्द से मिथ्यादर्शन, अविरति और

કર્મોના આગમનનું દ્વાર છે, આસ્રવ કહેવાય છે. કેવળી સમુદ્ઘાત વેળાએ દણ્ડ, કપાટ, પ્રતર અને લોકપૂરણ રૂપ જે યોગ હોય છે તે ઐર્યાપથિક હોવાને કારણે આસ્રવના કારણ હોતા નથી.

જેવી રીતે ભીના વસ્ત્ર, વાયુ દ્વારા ઉડાડેલી ધૂળને બધી બાજુએથી ગ્રહણ કરે છે, અર્થાત્ વસ્ત્રની ભીનાશના કારણે તેનામાં આવી આવીને રજ ચોંટી જાય છે, તેવી જ રીતે ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ કષાયથી આર્દ્ર બનેલો આત્મા કાયયોગ આદિ ત્રણ પ્રકારના યોગો દ્વારા આકૃષ્ટ કર્મપુદ્ગલોને ધારણ કરે છે, અથવા જેવી રીતે અગ્નિથી તપેલા લોખંડના ગોળાને જો પાણીમાં નાખવામાં આવે તો તે બધી બાજુએથી પાણીને ગ્રહણ કરે છે. આત્મસાત્ કરે છે, તેવી જ રીતે કષાયના તાપથી સન્તપ્ત આત્મા કાયયોગ આદિથી કર્મ પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે.

સૂત્રમાં પ્રયુકત 'આદિ શબ્દથી' મિથ્યાત્વ, રતિ, અવિરતિ અને કષાયને,

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-पूर्वं तावत्-पञ्चमाध्याये क्रमप्राप्तं पञ्चमं पापतत्त्वं प्ररूपितम्, सम्प्रति-क्रमप्राप्तमेव षष्ठमास्रवतत्त्वं प्ररूपयितुमाह-'मणवयकाय जोगाई आसवो' इति।

मनोवचःकाययोगादिः-मनोयोगो-वचोयोगः-काययोगः इत्येतेषां द्वन्द्वे मनोवचः काययोगास्ते-आदि र्यस्य स मनोवचः काययोगादिः आस्रव उच्यते। तत्र-मनोवचः कायानां क्रियारूपं कर्मयोगः उच्यते।

वीर्यान्तराय क्षयोपशमजनितेन पर्यायेणाऽऽत्मनः सम्बन्धो योग इत्यर्थः, स च-वीर्यप्राणोत्साहपराक्रमचेष्टाशक्ति सामर्थ्यादिशब्दवाच्यो बोध्यः। यद्वा-युनक्ति-एनं जीवो-वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं पर्यायमिति योगः, स च मनोयोगादिभेदात् त्रिविधः। तत्र-मनोयोग्य पुद्गलात्मप्रदेशपरिणामो मनो-

---

कषाय को जो कर्मबन्ध के कारण हैं, समझ लेना चाहिए ॥१॥

तत्वार्थनिर्युक्ति-पांचवें अध्याय में क्रम प्राप्त पाप नामक पांचवें तत्त्वकी प्ररूपणा की गई है। अब छठे तत्त्व आस्रव की प्ररूपणा की जाती है-

मनोयोग, वचनयोग और काययोग आदि को आस्रव कहते हैं। अभिप्राय यह है कि मन वचन और काय क्रिया को योग कहते हैं।

वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होनेवाले पर्याय के साथ आत्मा का जो सम्बन्ध होता है, वह योग कहलाता है। उसे वीर्य, प्राण, उत्साह, पराक्रम, चेष्टा, शक्ति या सामर्थ्य आदि भी कहा जा सकता है। अथवा वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले पर्याय से जीव का युक्त होना योग है। मनोयोग आदि के

જે કર્મબંધના કારણો છે, સમજી લેવા જોઈએ ॥૧॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પાંચમાં અધ્યાયમાં ક્રમપ્રાપ્ત પાપ નામક પાંચમા તત્વની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે. હવે છઠ્ઠાં તત્વ આસ્રવની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી રહી છે.

મનોયોગ, વચનયોગ અને કાયયોગ આદિને આસ્રવ કહે છે, અભિપ્રાય એ છે કે મન, વચન અને કાયાની ક્રિયાને યોગ કહે છે.

વીર્યાન્તરાય કર્મના ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થનારા પર્યાયની સાથે આત્માનો જે સમ્બન્ધ થાય છે તે યોગ કહેવાય છે. તેને વીર્ય, પ્રાણ, ઉત્સાહ, પરાક્રમ ચેષ્ટા, શક્તિ અથવા સામર્થ્ય આદિ પણ કહી શકાય છે, અથવા વીર્યાન્તરાય, કર્મના ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થનારા પર્યાયથી જીવનું યુક્ત થવું તે યોગ કહેવાય છે. મનોયોગ આદિના ભેદથી તે ત્રણ પ્રકારનો છે. મનોવર્ગણાના

योगः१, भाषायोग्य पुद्गलात्मप्रदेशपरिणामो वचोयोगः२, गमनादि क्रियाहेतुः शरीरात्मप्रदेशपरिणामः काययोगः३।

तत्रात्मनो निवासस्थानभूतः पुद्गलद्रव्यघटितः शरीररूपः कायः, वृद्धस्य-दुर्बलस्य वा गमनादौ, आलम्बनयष्ट्यादिवत् विषमेषु-उपग्राहको भवति तद्योगाज्जीवस्य वीर्यपरिणामः शक्तिः-सामर्थ्यं काययोगः। यथा-वह्निसंयोगात् घटस्य रक्ततापरिणामो भवति, एवं खलु-आत्मनः काय-करण संबन्धाद् वीर्य-परिणामो बोध्यः। एव-मात्मयुक्तकायाधीना वाग्वर्गणायोग्य पुद्गलस्कन्धाः

भेद से वह तीन प्रकार का है। मनोवर्गणा के पुद्गलों के निमित्त से आत्मप्रदेशों में परिस्पन्दन होना मनोयोग है। भाषा के योग्य पुद्गलों अर्थात् भाषावर्गणा के पुद्गलों के निमित्त से आत्मप्रदेशों में स्पन्दन होना वचनयोग है और गमन आदि क्रियाओं से आत्मा के प्रदेशों में जो परिस्पन्द होता है, वह काययोग है।

आत्मा के रहने का स्थान, पुद्गल द्रव्यों से बना हुआ यह शरीर काय कहलाता है, जैसे वृद्ध या दुर्बल पुरुष के चलने-फिरने में लाठी सहायक होती है, ऊबडखावड मार्ग में उससे सहायता मिलती है, उसी प्रकार आत्मा के लिए शरीर सहायक है। इस शरीर के निमित्त से जीवका जो वीर्यपरिणमन होता है, वह काययोग कहलाता है। जैसे अग्नि के संयोग से घट में रक्तता (लालिमा) परिणाम उत्पन्न होता है, उसी प्रकार काय रूप करण के निमित्त से आत्मा में वीर्य-परिणाम उत्पन्न होता है वही काययोग है। इसी प्रकार जीव वचन वर्गणा के

પુદ્ગલોના નિમિત્તથી આત્મપ્રદેશોમાં પરિસ્પન્દન થવું મનોયોગ છે ભાષાને યોગ્ય પુદ્ગલો અર્થાત્ ભાષાવર્ગણાનાં પુદ્ગલોના નિમિત્તથી આત્મપ્રદેશોમાં સ્પન્દન થવું વચનયોગ છે અને ગમન આદિ ક્રિયાઓથી આત્માના પ્રદેશોમાં જે પરિસ્પન્દન થાય છે તે કાયયોગ છે.

આત્માને રહેવાનું સ્થાન, પુદ્ગલદ્રવ્યોથી બનેલું આ શરીર કાય કહેવાય છે. જેમ વૃદ્ધ અથવા દુર્બળ પુરૂષને ચાલવા-ફરવા માટે લાકડી સહાયક બને છે. ખાડા-ટેકરાવાળા રસ્તામાં તેનાથી સહાયતા મળે છે, તેવી જ રીતે આત્મા માટે શરીર સહાયક છે. આ શરીરના નિમિત્તથી જીવનું જે વીર્ય-પરિણમન થાય છે, તે કાયયોગ કહેવાય છે. જેમ અગ્નિના સંયોગથી ઘડામાં રક્તતા (લાલિમા) પરિણામ ઉત્પન્ન થાય છે, તેવી જ રીતે કાય રૂપ કરણના નિમિત્તથી આત્મામાં વીર્ય-પરિણામ ઉત્પન્ન થાય છે તે જ કાયયોગ છે. એવી જ રીતે જીવ વચનવર્ગણાના પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરીને ત્યાગે છે તેના

विसृज्यमानाः वाक् कृतकरणता मासादयन्ति, अनेन च वाक्करणेन सम्बन्धादात्मनो वीर्योत्थानं भाषणशक्तिः-वाग्योगः। स च-सत्यादि भेदाच्चतुर्विधः; एवम्-कायवताऽऽत्मना सर्वप्रदेशै र्गृहीता मनोवर्गणा योग्य पुद्गलस्कन्धाः शुभादि चिन्तनार्थं करणभावमापद्यन्ते, तत्सम्बन्धाच्चात्मनः पराक्रमविशेषो मनोयोगः; सोऽपि-सत्यादि भेदाच्चतुर्विधः। तत्र-यद्यपि वाग्वर्गणायोग्यपुद्गलस्कन्धा-मनोवर्गणायोग्यपुद्गलस्कन्धा वा, न परमार्थतः सत्यादिव्यपदेशयोग्याः सन्ति। ज्ञानस्यैव सत्यादि भेदसद्भावात् तथापि-सत्यादिज्ञाने-आत्मनो बलाधान साधकतमत्वात् नो इन्द्रियावरणक्षयोपशमसमुद्भूतमनोविज्ञान परिणामे आत्मनो

पुद्गलों को ग्रहण करके त्यागता है। उनके निमित्त से या वचन रूप करण से आत्मवीर्य का जो उत्थान होता है, उसे वचनयोग समझना चाहिए। सत्यवचनयोग आदि के भेद से उसके चार भेद हैं। इसी भांति कायवान् आत्मा के द्वारा समस्त प्रदेशों से ग्रहण किये हुए मनो वर्गणा के योग्य पुद्गलस्कन्ध शुभाशुभ चिन्तन में करण होते हैं। उनके संबंध से आत्मा का जो पराक्रम-विशेष उत्पन्न होता है, उसे मनोयोग कहते हैं। सत्य आदि के भेद से वह भी चार प्रकार का है।

यद्यपि वचन वर्गणा के योग्य पुद्गलस्कन्ध अथवा मनो वर्गणा के योग्य पुद्गलस्कन्ध वास्तव में सत्य या असत्य शब्द से कहने के योग्य नहीं हैं, क्योंकि सत्य असत्य आदि का भेद ज्ञान में ही हो सकता है; तथापि सत्य या असत्य ज्ञान में वे आत्मा के सामर्थ्य को उत्पन्न करते हैं तथा नो इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होनेवाले मनो-

---

નિમિત્તથી અથવા વચનરૂપ કરણથી આત્મવીર્યનું જે ઉત્થાન થાય છે તેને વચનયોગ કહે છે. સત્યવચનયોગ આદિના ભેદથી તેના ચાર ભેદ છે. આ રીતે કાયવાન્ આત્માદ્વારા સમસ્ત પ્રદેશોથી ગ્રહણ કરવામાં આવેલા મનોવર્ગણાને યોગ્ય પુદ્ગલસ્કંધ શુભાશુભ ચિન્તનમાં કરણ થાય છે. તેમના સંબંધથી આત્માનું જે પરાક્રમ વિશેષ ઉત્પન્ન થાય છે તેને મનોયોગ કહે છે સત્ય આદિના ભેદથી તે પણ ચાર પ્રકારનો છે.

જો કે વચનવર્ગણાને યોગ્ય પુદ્ગલસ્કંધ અથવા મનોવર્ગણાને યોગ્ય પુદ્ગલસ્કંધ વાસ્તવમાં સત્ય અથવા અસત્ય શબ્દથી કહેવાને યોગ્ય નથી, કારણ કે સત્ય અસત્ય આદિનો ભેદ જ્ઞાનમાં જ થઇ શકે છે, તો પણ સત્ય અથવા અસત્ય જ્ઞાનની અન્દર તે આત્માના સામર્થ્યને ઉત્પન્ન કરે છે, તથા નોઇન્દ્રિય (મન) આવરણ કર્મના ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થનારા મનોવિજ્ઞાન રૂપ

बलाधानकारित्वाच्चात्म सहचरितत्वादुपचारतः—तद्वर्गणायोग्यपुद्गलस्कन्धानामपि सत्यादि व्यपदेशो बोध्यः। एवञ्च—कायिकवाचिकमानसभेदात् त्रिविधं कर्मयोगः, तत्राऽऽत्माधिष्ठिताः कायादयः समुदिताः एककाश्च क्रियाहेतवो भवन्ति, कायिकादि त्रिविधं कर्म कर्तृभू-तस्यात्मनः कार्यकस्य परिणत्याऽभिन्नं करणं भवति, वीर्यं निर्वर्तनीयेतु—परस्परानुगमनपरिणामात् द्रव्यरूपाः कायादि योगाः भावयोगं वीर्यं निर्वर्तयन्ति, यथा खलु—कर्तुरात्मनः शरीरस्यागमने निर्वर्तयेऽपि आदौ अभिन्नं कारणमेकत्वात् एवमेतेऽपि त्रयो योगा भवन्ति, तस्मादेष एव कायात्मप्रदेशपिण्डः प्रतिविशिष्ट क्रियाकारित्वावच्छिन्न स्त्रिविधो योग उच्यते। पर-

---

विज्ञान रूप परिणाम में आत्मा के सहायक बनते हैं, इस कारण से तथा आत्मा से सहचरित होने के कारण उपचार से उन पुद्गलस्कन्धों को भी सत्य या असत्य आदि शब्दों से कहा जाता है। इस प्रकार कायिक, वाचिक और मानसिक के भेद से तीन प्रकार का कर्मयोग कहलाता है। आत्मा से अधिष्ठित काय आदि सब मिलकर और अकेले-अकेले भी क्रिया के हेतु होते हैं। क्रिया चाहे कायिक हो या वाचिक अथवा मानसिक, तथापि उसका कर्त्ता तो आत्मा ही है। वह सब क्रियाओंका अभिन्न कारण है। द्रव्यरूप काययोग आदि आपस में मिलकर भावयोग रूप वीर्य को उत्पन्न करते हैं। जैसे आत्मा कर्त्ता के शरीर के आगमन और उत्पाद आदि में एक प्रथम अभिन्न कारण है, इसी प्रकार ये तीनों योग भी होते हैं। इस प्रकार शरीर और आत्मा के प्रदेशों का पिण्ड विभिन्न क्रियाओं को करने के कारण तीन प्रकार का योग कहलाता है।

પરિણામમાં આત્માના સહાયક બને છે, એ કારણથી તેમજ આત્માથી સહચરિત હોવાના કારણે ઉપચારથી તે પુદ્ગલસ્કન્ધોને પણ સત્ય અથવા અસત્ય આદિ શબ્દોથી કહેવામાં આવે છે. આવી રીતે કાયિક વાચિક અને માનસિકના ભેદથી પણ ત્રણ પ્રકારના કર્મયોગ કહેવાય છે. આત્માથી અધિષ્ઠિત કાય આદિ બધાં મળીને અને એકલા એકલા પણ ક્રિયાના હેતુ હોય છે. ક્રિયા ભલે કાયિક હોય અથવા વાચિક અથવા માનસિક તો પણ તેનો કર્તા તો એક આત્મા જ છે. તે બધી ક્રિયાઓનું અભિન્ન કારણ છે. દ્રવ્યરૂપ કાયયોગ વગેરે અંદરો અંદર મળીને ભાવયોગ રૂપ વીર્યને ઉત્પન્ન કરે છે જેમ આત્મા કર્તાના શરીરના આગમન અને ઉત્પાદ એક પહેલું અભિન્ન કારણ છે, એવી જ રીતે ત્રણે યોગ પણ હોય છે. આવી રીતે શરીર અને આત્માના પ્રદેશોના પિણ્ડ વિભિન્ન ક્રિયાઓને કરવાના કારણે ત્રણ પ્રકારનાયોગ કહેવાય છે.

मार्थतस्तु – औदारिककार्मण वैक्रियकाययोग-मिश्रकाययोगभेदेन काययोगः सप्तविधः। वाग्योगश्चतुर्विधः, सत्यादि भेदात् सत्योऽसत्यः-सत्यानृतो-ऽसत्या नृतश्चेति। तत्र-पापादेर्विरतव्यमिति सत्यवाग्योगः, पापं नास्ति किञ्चिदिति-असत्यो वाग्योगः, इमा गावश्चरन्ति-इति सत्यानृतो योगः, पुंसामपि गोपदेन ग्रहणात्। 'चैत्र-१ ग्राम आगतः' इति-असत्यानृतो वाग्योगः। एवं मनोयोगो-ऽपि सत्यादि भेदाच्चतुर्विधः, इति पञ्चदशकायादियोगाः-अवसेयाः। स च कायादियोगः प्रत्येकं द्विविधो भवति, शुभश्चा-ऽशुभश्च, तथा च-काययोगः

वस्तुतः काययोग सात प्रकार का है-(१) औदारिक काययोग (२) औदारिक मिश्रकाययोग (३) वैक्रियकाययोग (४) वैक्रियमिश्रकाययोग ५)) आहारक काययोग (६) आहारक मिश्र काययोग और (७) कार्मण काययोग। वचनयोग चार प्रकोर का है-(१) सत्यवचनयोग (२) असत्यवचनयोग (३) सत्यासत्य-उभय-वचनयोग और (४) अनुभयवचनयोग। 'पाप से विरत होना चाहिए' सत्य वचन योग है। पाप कुछ भी नहीं है यह यह असत्यवचन योग है। 'ये गायें चल रही हैं, यह सत्यासत्यवचनयोग है, क्योंकि यहां 'गो' शब्द से पुरुषों को भी ग्रहण किया गया है। 'चैत्र! गांव से आया' यह असत्या मृषा-अनुभयवचनयोग है। इसी प्रकार मनोयोग भी सत्य आदि के भेद से चार प्रकार का है। सब मिलकर योग के पन्द्रह भेद होते हैं।

काययोग आदि में से प्रत्येक के दो-दो भेद हैं-शुभ और अशुभ इस कारण काययोग भी शुभ-अशुभ के भेद से दो प्रकार का है।

વસ્તુતઃ કાયયોગ સાત પ્રકારના છે.-(૧) ઔદારિક કાયયોગ (૨) ઔદારિક મિશ્રકાયયોગ (૩) વૈક્રિય કાયયોગ (૪) વૈક્રિયમિશ્ર કાયયોગ (૫) આહારક કાયયોગ (૬) આહારક મિશ્રકાયયોગ અને (૬) કાર્મણ કાયયોગ વચનયોગ ચાર પ્રકારના છે-(૧) સત્ય વચનયોગ (૨) અસત્ય વચનયોગ (૩) સત્યાસત્ય ઉભય-વચનયોગ અને (૪) અનુભય વચનયોગ-પાપથી-વિરત થવું જોઇએ આ સત્ય વચનયોગ છે.-પાપ કશું જ નથી આ અસત્ય વચનયોગ છે. 'આ ગાયો ચાલી રહી છે' આ સત્યાસત્ય વચનયોગ છે કારણ કે અહીં 'ગો' શબ્દથી પુરૂષોને પણ ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે. 'ચૈત્ર' ગામ આવ્યો' આ અસત્યા મૃષા-અનુભય વચનયોગ છે. આવી જ રીતે મનોયોગ પણ સત્ય આદિના ભેદથી ચાર પ્રકારના છે. બધા મળીને યોગના પંદર ભેદ હોય છે.

કાયયોગ આદિમાંથી પ્રત્યેકના બે-બે ભેદ છે-શુભ અને અશુભ આથી કાયયોગ પણ શુભ-અશુભના ભેદથી બે પ્રકારને છે. વચનયોગ અને મનો-

शुभो-ऽशुभश्च । एवं-वचोयोगो-मनोयोगश्चाऽपि शुभोऽशुभश्च । तत्र-शुभं पुण्यं सातादि सकलकर्मक्षयो वा तद्धेतुत्वात् शुभः, अशुभं पुनः पापरूपं नारकादि जन्मफलं संसारानुबन्धि तद्धेतुत्वादशुभो योग उच्यते । तत्रा-ऽशुभः काययोगोहि हिंसाऽस्तेया-ऽब्रह्मचर्यादीनि, तत्र-कायिकयोगः केवलोऽसंज्ञि पृथिव्यादिषु प्रसिद्धः । मनोव्यापाररहितो जीवानां प्राणघातको यः खलु योगत्रयभाक् प्राणी भवति तस्याऽप्युपसर्जनीभूत मनोवाग्व्यापारस्य कायिकयोग एव घातकत्वेनो-द्भूतशक्तित्वाद् विवक्षितः, अन्यत्र गतचित्तस्या-ऽन्यविषयां वाचश्च भाष-माणस्य प्रमादिनः ।

वचनयोग और मनोयोग के भी यही दो-दो भेद हैं। शुभ का अर्थ है पुण्य या सातावेदनीय आदि समस्त कर्मों का क्षय। जो योग इसका कारण होता है, अतः शुभ कहलाता है। अशुभयोग पापरूप होता है। नरक आदि में जन्म होना उसका फल है। संसार की परम्परा को बढाने के कारण वह अशुभयोग कहलाता है।

हिंसा करना, चोरी करना, अब्रह्मचर्यका सेवन करना आदि अशुभ काययोग है। केवल काययोग असंज्ञी एवं वचनलब्धि से रहित पृथ्वी-काय आदि एकेन्द्रिय जीवों में ही पाया जाता है। तीनों योगों से युक्त भी जो प्राणी मानसिक व्यापार से रहित होकर जीव का घात करता है, उसका कायिक योग ही माना जाता है, क्योंकि उस समय उसके मन और वचन का व्यापार गौण होता है। उसका मन कहीं

યોગના પણ આજ પ્રકારના બે-બે ભેદ છે. શુભનો અર્થ છે પુણ્ય અથવા સાતા વેદનીય આદિ સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય. જે યોગ આનું કારણ હોય છે તેથી શુભ કહેવાય છે. અશુભયોગ પાપરૂપ હોય છે. નરક આદિમાં ઉત્પન્ન થવું એ તેનું ફળ છે. સંસારની પરમ્પરાને વધારવાના કારણ રૂપ હોવાથી તે અશુભયોગ કહેવાય છે

હિંસા કરવી, ચોરી કરવી, અબ્રહ્મચર્યનું સેવન કરવું આદિ અશુભ કાયયોગ છે. કેવળ કાયયોગ અસંજ્ઞી અને વચન લબ્ધિથી રહિત પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિય જીવોમાં જ જોવામાં આવે છે. ત્રણે યોગોથી યુકત પણ જે પ્રાણી માનસિક વ્યાપારથી રહિત થઈને જીવનો ઘાત કરે છે તેને કાયિકયોગ જ માનવામાં આવે છે. કારણ કે તે સમયે તેના મન અને વચનના વ્યાપાર ગૌણ હોય છે. તેનું મન બીજે કયાંક હોય છે અને વચન વળી કોઈ બીજી

एवं परोऽचिन्तितार्थेन वाग्योगेन हन्ति, अन्यः पुनर्मनोव्यापारेणैव काय-वाक् क्रियानिरपेक्षः सन् हिंसां विदधाति, अन्यस्तु-काय-वाङ्-मनोव्यापारवान् जीवान पीडयति, इत्येवं तेषु-यः केवलः कायव्यापारः स विवक्ष्यते। एवं-परपरिगृहीततया-ऽनिसृष्टस्य तृणादेरपि चाऽऽदानं स्तेयम्, तदपि स्तेयं प्रत्येक योगवर्ति-समुदायवर्ति चेति द्विविधम्। तत्र-केवलं कायव्यापाररूपमत्र बोध्यम्। अब्रह्मचर्यमपि-संजातवेदोदयस्य विषयसेवनम्-स्वावयवनोदनजनितं स्पर्शसुखश्वा-ऽवगन्तव्यम्। प्रकृते च केवलकायव्यापाररूपो बोध्यः, आकाक्षामोहसद्भावात्, पृथिव्यादिषु-आहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञासम्भवात्। एवम् दहनच्छेदना

अन्यत्र होता है और वचन कोइ अन्य बात कहता है, ऐसे प्रमादी पुरुष का कायिक व्यापार काययोग ही समझना चाहिए। इसी प्रकार दूसरा कोई अचिन्तित अर्थवाले वचनयोग से घात करता है, कोई काय एवं वचन की क्रिया से निरपेक्ष होकर केवल मानसिक व्यापार से ही हिंसा करता है और कोई काय, वचन तथा मन-तीनों के व्यापार से युक्त होकर जीवों को पीड़ा पहुंचाता है। इन में से केवल काययोग की ही विवक्षा की जाती हैं। इसी प्रकार दूसरे के द्वारा गृहीत एवं अदत्त तृण आदि को भी ग्रहण करना स्तेय (चोरी) है। यह स्तेय भी दो प्रकार का है-किसी भी एक योग से होनेवाला और तीनों योगों से होनेवाला। यहां केवल कायव्यापार रूप ही समझना चाहिए। वेद के उदय से विषय का सेवन करना या अपने अवयव विशेष की प्रेरणा से स्पर्शसुख का अनुभव करना अब्रह्मचर्य है। यहां कायिक व्यापार रूप अब्रह्मचर्य ही समझना चाहिए। आकांक्षामोहनीय

જ વાત કહે છે આવા પ્રમાદી પુરૂષના કાયિક વ્યાપાર કાયયોગ જ સમજવા જોઇએ એવી જ રીતે બીજા કોઈ અચિન્તીત અર્થવાળા વચનયોગથી હિંસા કરે છે, કોઈ કાય અને વચનની ક્રિયાથી નિરપેક્ષ થઈને માત્ર માનસિક વ્યાપારથી જ હિંસા કરે છે અને કોઇ કાય, વચન તથા મન-ત્રણેના વ્યાપારથી યુકત થઈને જીવોને પીડા પહોંચાડે છે. આમાંથી માત્ર કાયયોગીની જ વિવક્ષા કરવામાં આવી રહી છે. આવી જ રીતે બીજા દ્વારા ગૃહીત અને અદત્ત તૃણ આદિને પણ ગ્રહણ કરવું એ સ્તેય (ચોરી) છે. આ સ્તેય પણ બે પ્રકારનું છે-કોઇપણ એક યોગથી થનારી તેમજ ત્રણે યોગથી થનારી અત્રે ફક્ત કાય વ્યાપાર રૂપ જ સમજવું જોઇએ. વેદના ઉદયથી વિષયનું સેવન કરવું અથવા પોતાના અવયવ વિશેષની પ્રેરણાથી સ્પર્શસુખનો અનુભવ કરવો અબ્રહ્મચર્ય છે. અહીં કાયિક વ્યાપારરૂપ અબ્રહ્મચર્ય જ સમજવું

ऽऽलेखन हास्य धावन वल्गन लङ्घना-ऽवरोहणा-ऽऽस्फोटन प्रभृति कर्मविशेषाः कायिकोऽशुभयोगः१ सावद्या-ऽनृतपरुषपिशुनादीनि वाचिको-ऽशुभयोगः२ सत्यमपि-वचः सावद्यं वाचिकं कर्माऽशुभवाचिको योगः, यथा-'हन्यन्तां चौराः' 'व्यापाद्यन्तां हिंस्राः'। अनृतं पुन-रयथार्थमेव, यथा-'ऽचौरं चौरङ्कारमाक्रोशयति'। परुषं तावद-निष्ठुरं स्नेहवर्जितं वचनम्, यथा-'धिग्जाल्म१ मूर्खस्त्वं पापाचार-१' इति। पिशुनं-सत्यमपि प्रीतिराहित्यापादनान्यदस्य परोक्षस्य सतो दोषसूचकं वचः, एवम्-असत्य च्छलशतं दम्भोल्लुण्ठिका कटुक सन्दिग्ध-

का सद्भाव होने से पृथ्वीकाय आदि में आहार, भय, मैथुन एवं परिग्रह संज्ञा विद्यमान रहती है।

जलाना, छेदन-भेदन करना, आलेखन करना, हंसना, दौडना, कूदना, लांघना, चढना-उतरना, पछाडना आदि-आदि कर्म अशुभ काययोग कहलाते हैं। सावद्य भाषा बोलना, असत्यबोलना, कठोर वचन कहना, चुगली खाना आदि अशुभ वचनयोग है। वचन भले सत्य हो तथापि वह यदि सावद्य है तो अशुभ वचनयोग ही समझना चाहिए। जैसे-चौरों का हनन करों, हिंसक प्राणियों को मार डालो, इत्यादि। अनृत अयथार्थ ही होता है, जैसे जो चोर नहीं है, उसे चोर कहना। निष्ठुर या स्नेह से हीन वचनों का प्रयोग 'परुष' कहलाता है, जैसे=अरे जालिम! तू मूर्ख है, तू पापी है। पीठ पीछे किसी के विद्यमान भी दोषों को प्रकट करनेवाले वचन को पिशुन कहते हैं। इस प्रकार असत्य, छल से भरे हुए, दंभपूर्ण असभ्य, कटुक, संदिग्ध

જોઈએ આકાંક્ષા મેહનીયનો સદ્ભાવ થવાથી પૃથ્વીકાય આદિમાં આહાર, ભય, મૈથુન અને પરિગ્રહ સંજ્ઞા વિદ્યમાન રહે છે.

સળગાવવું છેદન-ભેદન કરવું, આલેખન કરવું, હસવું, દોડવું, કૂદવું, લાંઘવું, ચઢવું-ઉતરવું, પછાડવું આદિ-આદિ કર્મ અશુભ કાયયોગ કહેવાય છે. સાવદ્ય ભાષા વદવી અસત્ય ભાષણ કરવું, કઠોર વચન કહેવા, ચાડી ખાવી આદિ અશુભ વચનયોગ છે વચન ભલે સત્ય હોય પણ જો તે અસાવદ્ય હોય તો અશુભ વચનયોગ જ સમજવો જોઈએ. દા ત ચોરોને હણી નાખો હિંસક પ્રાણીઓને મારી નાખો' ઈત્યાદિ અનૃત અયથાર્થ જ હોય છે, જેમ કે જે ચોર નથી તેને ચોર કહેવો નિષ્ઠુર અથવા સ્નેહથી હીન વચનનોનો પ્રયોગ પરૂષ (કઠોર) કહેવાય છે. જેમ કે-અરે જુલ્મી તું મૂર્ખ છે, તૂં પાપી છે. પીઠ પાછળ કોઈના વિદ્યમાન પણ દોષોને પ્રકટ કરવાવાળું વચન પિશુન કહેવાય છે. આ પ્રકારે અસત્ય છળકપટથી ભરેલા, દંભપૂર્ણ, અસભ્ય, કટુક, સંદિગ્ધ

मितविकथितात्रितः प्रवचनविरोधी सर्वो वाचिको योगो ग्राह्य। अभिध्या-व्यापादेर्ष्याऽसूयादीनि मानसो योगोऽशुभः, तत्र-सर्वदा प्राणिव्रभिद्रोहानुध्यानम् अभिध्या, यथा-'अस्मिन् मृते सति सुखं वसामः-' इति। सापायः-उत्पादना-ऽऽरम्भो व्यापारो भवति, यथा-'ऽस्त्यस्य संशक्तः कोऽपि शत्रु स्तमेव कोपयामि यथा स एनं हन्यात्' इति। परगुणोत्कर्षासहिष्णुता-ईर्ष्या, गुणेषु दोषाविष्करणम्-असूया। अभिमानहर्षशोकदैन्यादयोऽपि-अशुभ मानसयोगा बोध्याः, तद्भिन्नाः शुभाः कायिक वाचिक मानसयोगा अवगन्तव्याः इति भावः ॥

अंटसंट जितने भी वचन हैं अथवा प्रवचन से विरुद्ध जो वचन हैं, उन सब को अशुभ वचनयोग समझ लेना चाहिए। अभिध्या हिंसा, ईर्ष्या, डाह आदि जितने भी अप्रशस्त मानसिक व्यापार हैं, वे अशुभ मनोयोग में परिगणित होते हैं। सदैव प्राणियों के द्रोह-अनिष्ट का चिन्तम करना अभिध्या है, जैसे यह सोचना कि-अमुक मर जाय तो हम सुख से रहें।' इसका शत्रु अमुक पुरुष है, उसे कुपित कर दें जिससे वह इसे मार डाले इस प्रकार का चिन्तन सापाय-चिन्तन कहलाता है। दूसरे के गुणों के उत्कर्ष को सहन न कर सकना ईर्ष्या है। पराये गुणों को भी दोष के रूप में प्रकट करना असूया है। अभिमान, हर्ष, शोक, दैन्य आदि भी अशुभ मनोयोग ही समझना चाहिए।

उल्लिखित अशुभ कायिक, वाचिक और मानसिक योग से विपरीत जो योग हैं, वे शुभ हैं।

અને એલફેલ જેટલાં પણ વચન છે અથવા પ્રવચનથી વિરૂદ્ધ જે વચન છે. તે સઘળાને અશુભ વચનયોગ સમજી લેવા જોઈએ. અભિધ્યા હિંસા, ઇર્ષ્યા, દ્રોહ આદિ જેટલાં પણ અપ્રશસ્ત માનસિક વ્યાપાર છે તે મનોયોગમાં પરિણુત થાય છે. સદૈવ પ્રાણિઓના દ્રોહ-અનિષ્ટનું ચિન્તન કરવું તે અભિધ્યા છે. જેમ કે એવું વિચારવું કે-અમુક મરી જાય તો અમે સુખે રહીએ આનો શત્રુ અમુક પુરૂષ છે તેને ગુસ્સામાં લાવી દઈએ જેથી તે પેલાને મારી નાખે 'આ પ્રકારનું ચિન્તન સાપાય ચિન્તન કહેવાય છે બીજાનાં ગુણોના ઉત્કર્ષને સહન ન કરી શકવા તે ઈર્ષ્યા છે. બીજાનાં ગુણોને પણ દોષના રૂપમાં પ્રગટ કરવા એ અસૂયા છે. અભિમાન, હર્ષ, શોક, ગરીબાઈ, આદિ પણ અશુભ મનોયોગ જ સમજવા જોઈએ.

ઉલ્લિખિત અશુભ કાયિક વાચિક અને માનસિક યોગથી વિપરીત જે યોગ છે તે શુભ છે.

उक्तञ्च–समवायाङ्गे५–समवाये–'पंच आसवदारा पण्णत्ता, तं जहा–मिच्छत्तं, अविरई, पमाया, कसाया, जोगा' इति। पञ्चा–ऽऽस्रवद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–मिथ्यात्वम्–अविरतिः–प्रमादाः–कषायाः–योगाः, इति। व्याख्याप्रज्ञप्तौ भगवतीसूत्रे–१६ शतके १ उद्देशके ५६४ सूत्रे चोक्तम्–'तिविहे जोए पण्णत्ते, तं जहा–मणजोए, वइजोए, कायजोए' इति। त्रिविधो योगः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–मनोयोगः–वचोयोगः–काययोगः' इति। तथाचा–ऽऽदिशब्देन मिथ्यादर्शना–ऽविरति प्रमाद–कषाय–प्रभृतयो गृह्यन्ते, एवञ्च–मनोयोग–वचोयोग–काययोग–मिथ्यादर्शना–ऽविरति–प्रमाद–कषायाः–आस्रवा इति फलितम् यथा–सरः सलिलावाहिविवरद्वारं सलिलास्रवकारणत्वादास्रव उच्यते, एवम्–योग–मिथ्यात्वा–ऽविरति–प्रमाद–कषाय प्रणालिकया–ऽऽत्मनः कर्मा–ऽऽस्रवतीति योगादय आस्रवा व्यपदिश्यन्ते ॥१॥

समवायांगसूत्र में कहा है–आस्रवद्वार पांच हैं, यथा–मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद कषाय और योग। भगवतीसूत्र के सोलहवें शतक के उद्देशक प्रथम, सूत्र ५६४ में कहा है–'योग तीन प्रकार का कहा है, मनोयोग, वचनयोग और काययोग।'

सूत्र में ग्रहण किये हुए 'आदि' शब्द से मिथ्यादर्शन, अविरति प्रमाद, कषाय, योग का ग्रहण होता है। इससे फलित यह हुआ कि मनोयोग, वचनयोग, काययोग, मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय, और योग ये सब आस्रव हैं। जैसे तालाब में पानी के आने का जो द्वार–छिद्र आदि होता है, वह आस्रव कहलाता है, उसी प्रकार योग, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय योग रूपी नाली में आत्मा में जो कर्म आते हैं, उन्हें भी आस्रव कहते हैं ॥१॥

સમવામાંગસૂત્રમાં કહ્યું છે–આસ્રવદ્વાર પાંચ છે–યથા–મિથ્યાત્વ, અવિરતિ પ્રમાદ, કષાય અને યોગ ભગવતી સૂત્રના સોળમાં શતકના ઉદ્દેશક પ્રથમ સૂત્ર ૫૬૪માં કહ્યું છે–'યોગ ત્રણ પ્રકારનાં કહેવામાં આવ્યા છે, મનોયોગ, વચનયોગ અને કાયયોગ સૂત્રમાં ગ્રહણ કરવામાં આવેલ–આદિ શબ્દથી મિથ્યાત્વ વિરતિ, અવિરતિ, પ્રમાદ, કષાય યોગનું ગ્રહણ થાય છે. આનાથી ફલિત એ થયું કે મનોયોગ, વચનયોગ કાયયોગ, મિથ્યાત્વ વિરતિ, અવિરતિ પ્રમાદ, કષાય અને યોગ આ બધાં આસ્રવ છે જેમ તળાવમાં પાણીના આવવાનું જે દ્વાર છિદ્ર વગેરે છે તે આસ્રવ કહેવાય છે, તેજ રીતે યોગ મિથ્યાત્વ, અવિરતિ પ્રમાદ, કષાયયોગ રૂપી ગરનાળાથી આત્મામાં જે કર્મ આવે છે 'તેમને પણ આસ્રવ કહેવામાં આવે છે. ॥૧॥

मूलम्-पुण्णपावाणं सुभासुभा जोगा ॥२॥

छाया—'पुण्य-पापयोः शुभाऽशुभौ योगौ' ॥२॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वं तावद् आस्रवस्वरूपं निरूपितम्, सम्प्रति-पुण्यपापयोः शुभाऽशुभौ योगौ-आस्रवौ प्ररूपयितुमाह-'पुण्णपावाणं सुभासुभा जोगा' इति। कर्म तावत् द्विविधं पुण्यं-पापञ्च, तत्र-पुण्यकर्मणः-आस्रवहेतुः शुभयोगः,-पापकर्मणश्चाऽऽस्रवहेतुरशुभयोगः। तत्र-प्राणातिपात, स्तेय, मैथुनादिरशुभकाययोगः, अनृतभाषण, परुषाऽसभ्याऽश्लीलवचनादि शुभो वाग्योगः, प्राणिवध चिन्तनेर्ष्या-ऽसूयादिरशुभो मनोयोगः, तद्-विपरीत-शुभः कायादियोगः इति ॥२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं खलु द्विविधो योगः प्रतिपादितः शुभश्चाशुभश्च, तत्र-

---

'पुण्णपावाणं' इत्यादि-

सूत्रार्थ-शुभयोग पुण्य का और अशुभयोग पापका कारण है ॥२॥

तत्वार्थदीपिका-पहले आस्रव के स्वरूप का निरूपण किया गया है, अब यह बतलाते हैं कि पुण्य और पापका आस्रव किस कारण से होता है ?

कर्म के दो भेद हैं-पुण्यकर्म और पापकर्म। इन में से पुण्यकर्म के आस्रव का कारण शुभयोग और पाप कर्म के आस्रव का कारण अशुभ कर्म है। प्राणातिपात, चोरी, मैथुन आदि अशुभ काययोग है। असत्य, कठोर, असभ्य या अश्लील वचन बोलना अशुभ वचनयोग है। हिंसा का विचार करना, ईर्ष्या करना, डाह करना, आदि अशुभ मनोयोग है। इनसे विपरीत जो योग हैं, उन्हें शुभ काययोग आदि समझना चाहिए ॥२॥

तत्वार्थनिर्युक्ति-पहले योग के दो प्रकार प्रतिपादित किए गए हैं-

---

'पुण्णपावाणं सुभासुभा जोगा'

સૂત્રાર્થ—શુભયોગ પુણ્યનું અને અશુભયોગ પાપનું કારણ છે ॥૨॥

તત્વાર્થદીપિકા—પહેલા આસ્રવ સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે એ દર્શાવીએ છીએ કે પુણ્ય અને પાપનો આસ્રવ કયા કારણથી થાય છે ?

કર્મના બે ભેદ છે-પુણ્યકર્મ અને પાપકર્મ આમાંથી પુણ્યકર્મના આસ્રવનું કારણ શુભયોગ અને પાપકર્મના આસ્રવનું કારણ અશુભ કર્મ છે પ્રાણાતિપાત, ચોરી, મૈથુન આદિ અશુભ કાયયોગ છે. અસત્ય, કઠોર, અસભ્ય, અથવા અશ્લીલ વચન બોલવા અશુભ વચનયોગ છે હિંસાનો વિચાર કરવો, ઈર્ષા કરવી, દ્રોહકરવો આદિ અશુભ મનોયોગ છે. આનાથી જે યોગ છે તેમને શુભ કાયયોગ વગેરે સમજવા જોઈએ ॥૨॥

તત્વાર્થનિર્યુક્તિ-અગાઉ-યોગના બે પ્રકાર પ્રતિપાદિત કરવામાં આવ્યા છે-

यः शुभः कायादियोगः स किं सर्वस्यैव कर्मणोऽविशेषेणाऽऽस्रवो भवति ? आहो-स्वित्-कस्यचिदेव कर्मणः आस्रवः ? एवम्-अशुभोऽपि कायादियोगः किं सर्व-स्यैव कर्मण आस्रवो भवति ? उताहो कस्यचिदेव कर्मणः ? इत्याशङ्काया निरासार्थ-माह-'पुण्णपावाणं सुभासुभा जोगा' इति। पुण्य-पापयोः पुण्य कर्म पाप कर्मणोः शुभाऽशुभौ योगौ-आस्रवौ भवतः। तत्रः-पुण्यं तावत्-द्विचत्वारिंशद्विधं कर्म चतुर्थाऽध्याये तृतीयसूत्रे प्रतिपादितम्। तस्य खलु एवंविधस्य पुण्य कर्मणः शुभः कायादियोग आस्रवो भवति। अशुभश्च कायादियोगः-पापकर्मण आस्रवो भवति, पापकर्म-तावद् द्व्यशीतिविधं पञ्चमाध्याये प्ररूपितम्। तत्र-प्राणातिपातादि निवृत्त्यादयः सत्यादयोऽपरिग्रहता धर्मध्यानादयश्च शुभो योगः पुण्यस्यैव कर्मण आस्रवो बोध्यः। न तु पापकर्मणः, प्राणातिपातादिलक्षण स्त्रि-

---

शुभ और अशुभ। इन में से शुभ काययोग आदि क्या सामान्य रूप से सभी कर्मों के कारण होते हैं अथवा किसी विशिष्ट कर्म के कारण होते हैं ? इस आशंका का निराकरण करने के लिए कहते हैं-

पुण्यकर्म के आस्रव का कारण शुभयोग है और पाप कर्म के आस्रव का कारण अशुभयोग है। पुण्य (शुभकर्म) के बयालीस भेद हैं उनका प्रतिपादन चौथे अध्याय के तृतीय सूत्र में किया जा चुका है। इस पुण्यकर्म के आस्रव का कारण शुभयोग है। इससे विपरीत पापकर्म के आस्रव का हेतु अशुभयोग है। पाप कर्म के बयासी भेदों का निरूपण पांचवें अध्याय में किया गया है। प्राणातिपात आदि से विरति, सत्य आदि! अपरिग्रहता एवं धर्मध्यान आदि शुभयोग हैं और इन में पुण्यकर्म का ही आस्रव होना है।

શુભ અને અશુભ આમાંથી શુભ કાયયોગ આદિ શું સામાન્ય રૂપથી બધા કર્મોના કારણ હોય છે, અથવા કોઈ વિશેષ કર્મના કારણ હોય છે ? આ શંકાના નિવારણ અર્થે કહીએ છીએ-

પુણ્યકર્મના આસ્રવનું કારણ શુભયોગ છે અને પાપકર્મના આસ્રવનું કારણ અશુભયોગ છે. પુણ્ય (શુભકર્મ) ના બેંતાલીસ ભેદ છે તેમનુ પ્રતિપાદન ચોથા અધ્યાયના ત્રીજા સૂત્રમાં કરી દેવામાં આવ્યું છે. આ પુણ્યકર્મના આસ્રવનો હેતુ અશુભયોગ છે. આનાથી વિપરીત પાપકર્મના આસ્રવનો હેતુ અશુભ યોગ છે. પાપકર્મના બ્યાંશી ભેદોનું નિરૂપણ પાંચમાં અધ્યાયમાં કરવામાં આવ્યુ છે પ્રાણાતિપાત આદિથી વિરતિ, સત્ય આદિ, અપરિગ્રહ તથા ધર્મધ્યાન આદિ શુભ યોગ છે અને એનાથી પુણ્યકર્મનો જ આસ્રવ થાય છે,

विधोऽपि-अशुभः कायादियोगः पापस्य द्व्यशीतिभेदभिन्नस्य कर्मण आस्रवो भवति। एवञ्च-तथाविधश्शुभो योगः पुण्यस्यैव कर्मण आस्रवो न तु-पापस्येति रीत्या-एवकारेण-पापकर्मण एव निवृत्ति रुच्यते, न तु तस्य शुभयोगस्य कर्म-निर्जराहेतुत्वनिषेधः क्रियते। तथा च-शुभो योगः पुण्यस्य-निर्जरायाश्च हेतु र्भवति, अशुभो योगश्च-पापस्यैव कर्मणो हेतु र्भवति, कदाचित् पुण्यस्य कर्मण इति भावः। तत्रा-ऽष्टविधे ज्ञानावरणीयादि मूलकर्मणि द्वाचत्वारिंशत् पुण्यप्रकृतयः-

तथाहि-सातावेदनीयम्-देव-मनुष्य-तिर्यगायूंषि, उच्चैर्गोत्रम्। नामकर्म सप्तत्रिंशद् विधम्, तथाहि-देवगतिः१ देवगत्यानुपूर्वी२-मनुष्यगतिः३-मनुष्य-

प्राणातिपात आदि तीनों प्रकार के अशुभ काययोग आदि से बयासी प्रकार के कर्म का आस्रव होता है। इस प्रकार पूर्वोक्त शुभ योग पुण्यका ही आस्रव है, पाप का नहीं यहां जो 'एव' शब्दका प्रयोग किया गया है, उससे यह समझना चाहिये कि शुभयोग पाप कर्म के आस्रव का कारण नहीं होता, मगर ऐसा नहीं समझना चाहिए कि शुभयोग कर्मनिर्जरा का कारण नहीं है। इस प्रकार शुभयोग पुण्य का भी कारण है और निर्जरा का भी। और अशुभ योग पाप का ही कारण होता है, मगर कदाचित् पुण्यकर्म का भी कारण हो जाता है।

ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों की बयालीस उत्तर प्रकृतियां पुण्यप्रकृतियां हैं। वे इस प्रकार हैं-सातावेदनीय, देवायु, मनुष्यायु, तिर्यंचायु, उच्चगोत्र तथा सैंतीस नाम कर्म की निम्नलिखित प्रकृतियां-(१) देवगति (२) देवगत्यानुपूर्वी (३) मनुष्यगति (४) मनुष्य-

પ્રાણાતિપાત આદિ ત્રણે પ્રકારના અશુભ કાયયોગ આદિથી બ્યાંશી પ્રકારનાં કર્મોનો આસ્રવ થાય છે. આવી રીતે પૂર્વોકત શુભયોગ પુણ્યનો જ આસ્રવ છે. પાપનો નહીં અહીં જે 'एव' શબ્દનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે, તેનાથી એવું સમજવાનું છે કે શુભયોગ પાપકર્મના આસ્રવનું કારણ હોતું નથી, પરન્તુ એવું ન સમજવું. જોઇએ કે શુભયોગ કર્મનિર્જરાનું કારણ નથી. આવી રીતે શુભયોગ પુણ્યનું પણ કારણ છે અને નિર્જરાનું પણ અને અશુભયોગ પાપનું જ કારણ હોય છે પરંતુ કદાચીત પુણ્યકર્મનું પણ કારણ બની જાય છે.

જ્ઞાનાવરણીય આદિ સાત પ્રકારના કર્મોની બેંતાલીશ ઉત્તર પ્રકૃતિઓ પુણ્યપ્રકૃતિઓ છે. તે આ રીતે છે.-સાતા વેદનીય, દેવાયુ મનુષ્યાયુ, તિર્યંચાયુ, ઉચ્ચગોત્ર તથા સાડત્રીસ નામકર્મની નિમ્નલિખિત પ્રકૃતિઓ-(૧) દેવગતિ

गत्यानुपूर्वी४-पञ्चेन्द्रियजाति५-औदारिकादीनि पञ्चशरीराणि१०-औदारिकादि शरीरत्रयस्याऽङ्गोपाङ्गानि१३-प्रथमं संहननम्१४-प्रथमं संस्थानम्१५-चत्वारि प्रशस्त-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शानि१९-त्रसादिदशकम्-तथाहि-त्रस-बादर पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वरा-ऽऽदेय-यशः कीर्तिनामानि२९-अगुरुलघ्वाष्टकम् तथाहि-अगुरु लघुनामो-च्छ्वासा-ऽऽतपोद्द्योत-प्रशस्तविहायोगति-पराघात-तीर्थकर-निर्माणनामचेत्यष्टौ। सर्वसङ्कलनया सप्तत्रिंशद्विधं नामकर्म भवति। ३७। सातावेदनीयादयः पञ्चैवेवं मिलित्वा द्विचत्वारिंशद्विधाः पुण्यप्रकृतयो भवन्तीति।

गत्यानुपूर्वी (५) पंचेन्द्रियजाति (६-१०) औदारिक आदि पांच शरीर (११-१३) औदारिक आदि तीन शरीरों के अंगोपांग (१४) प्रथम संहनन-वज्रर्षभनाराच संहनन (१५) प्रथम संस्थान-समचतुरस्र (१६) प्रशस्त वर्ण (१७) प्रशस्त गंध (१८) प्रशस्त रस (१९) प्रशस्तस्पर्श (२०-२९) त्रसदशक अर्थात् त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशः कीर्त्ति नाम कर्म (३०-३७) अगुरु लघु अष्टक में से सात अर्थात् अगुरुलघु नाम कर्म, उच्छ्वास नाम कर्म, आतपनाम कर्म, उद्योत नाम कर्म, प्रशस्तविहायोगति नाम कर्म, पराघात नामकर्म, तीर्थकर नाम कर्म और निर्माण नाम कर्म। इस प्रकार सब को जोडने से नाम कर्म के सैंतीस भेद होते हैं। इन में साता-वेदनीय आदि पूर्वोक्त पांच भेद सम्मिलित कर देने पर बयालीस भेद हो जाते हैं। यही बयालीस पुण्य प्रकृतियां हैं।

(२) દેવગત્યાનુપૂર્વી (૩) મનુષ્યગતિ (૪) મનુષ્યગત્યાનુપૂર્વી (૫) પચેન્દ્રિય જાતિ (૬-૧૦) ઔદારિક આદિ પાંચ શરીર (૧૧-૧૩) ઔદારિક આદિ ત્રણ શરીરોના અંગોપાંગ (૧૪) પ્રથમ સંહનન વજ્રર્ષભનારાચ સંહનન (૧૫) પ્રથમ સંસ્થાન-સમચતુરસ્ર (૧૬) પ્રશસ્ત વર્ણ (૧૭) પ્રશસ્ત ગંધ (૧૮) પ્રશસ્ત રસ (૧૯) પ્રશસ્ત સ્પર્શ (૨૦-૨૯) ત્રસ દશક અર્થાત્ ત્રસ, બાદર, પર્યાપ્ત, પ્રત્યેક શરીર, શુભ, સુભગ, સુસ્વર, આદેય અને યશઃકીર્તિનામકર્મ (૩૦-૩૭) અગુરૂ લઘુઅષ્ટકમાંથી સાત અર્થાત્ અગુરૂલઘુનામ કર્મ, ઉચ્છવાસનામ કર્મ, આતપનામ કર્મ, ઉદ્યોતનામ કર્મ, પ્રશસ્ત વિહાયોગતિનામકર્મ, પરાઘાતનામ કર્મ, તીર્થંકરનામ કર્મ અને નિર્માણનામ કર્મ આ રીતે બધાનો સરવાળો કરવાથી નામકર્મના સાડત્રીસ ભેદ થાય છે. આમાંથી સાતાવેદનીય આદિ પૂર્વોક્ત પાંચ ભેદ ઉમેરવાથી બેંતાલીસ ભેદ થઇ જાય છે આજ બેંતાલીસ પુણ્યપ્રકૃત્તિઓ છે.

द्व्यधिकाशीतिविधं पापकर्म, तत्र-पञ्चज्ञानावरणानि-५ नव दर्शनावरणीयानि-१४ असातावेदनीयम्-१५, षड्विंशतिविधं मोहनीयम्-४१ अष्टाविंशतिविधेषु मोहनीयेषु सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिद्वयस्य पापकर्मत्वं न सम्भवति, यतोऽनयोर्बन्धो नास्ति, केवलं मिथ्यात्वमेवैकं बद्धं सत् पापकर्मतया परिणमते। एवं-नरकायुष्यम् ४२-नामकर्म चतुस्त्रिंशद् विधम् तथाहि-नरकगति १-नरकानुपूर्वी २-तिर्यग्गति ३-तिर्यगानुपूर्वी ४-एकेन्द्रियजाति चतुष्टयम् ८-दशसंहनन-संस्थानानि १८-अप्रशस्तवर्णादि चतुष्टयम् २२-स्थावरनामदशविधम्, तथाहि-स्थावर १-सूक्ष्मा २-ऽपर्याप्त ३-साधारण शरीरा ४-ऽस्थिरा ५-ऽशुभ ६-

पाप कर्म बयासी प्रकार का है, यथा-(१-५) पांच ज्ञानावरण (६-१४) नौ दर्शनावरण (१५) असातावेदनीय (१६-४१) छव्वीस मोहनीयकर्म की प्रकृतियां-मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों में से सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय नामक दो प्रकृतियां पापकर्म प्रकृतियों में परिगणित नहीं हैं क्योंकि उनका बन्ध नहीं होता, केवल मिथ्यात्व प्रकृति का बन्ध होता है और वह पाप कर्म के रूप में परिणत हो जाती है (४२) नरकायु (४३-७६) चौंतीस प्रकार का नाम कर्म, यथा-(१) नरकगति (२) नरकानुपूर्वी (३) तिर्यंचगति (४) तिर्यंचानुपूर्वी (५-८) एकेन्द्रिय आदि चार जातियां अर्थात् एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति (९-१८) पांच संहनन और पांच संस्थान (१९-२२) अप्रशस्त वर्ण, गंध, रस, स्पर्शनामकर्म (२३-३२) स्थावरदशक, यथा-(१) स्थावर (२) (सूक्ष्म (३) अपर्याप्त

પાપકર્મ બ્યાંશી પ્રકારના છે,-(૧-૫) પાંચ જ્ઞાનાવરણ ૬-૧૪) નવ દર્શનાવરણ (૧૫) અશાતાવેદનીય (૧૬-૪૧) છવ્વીસ મોહનીય કર્મની પ્રકૃતિઓ મોહનીય કર્મની અઠ્ઠાવીસ પ્રકૃતિઓમાંથી સમ્યક્ત્વ મોહનીય અને મિશ્ર મોહનીય એ બે પ્રકૃતિઓ પાપકર્મ પ્રકૃતિઓમાં પરિગણિત નથી કારણ કે તેમનો બન્ધ થતો નથી, માત્ર મિથ્યાત્વપ્રકૃતિનો બન્ધ થાય છે અને તે પાપકર્મના રૂપમાં પરિણત થઈ જાય છે (૪૨) નરકાયુ (૪૩-૭૬) ચોત્રીસ પ્રકારના નામ કર્મ યથા-(૧) નરકગતિ (૨) નરગતિ આનુપૂર્વી (૩) તિર્યંચગતિ (૪) તિર્યંચા નુપૂર્વી (૫-૮) એકેન્દ્રિય આદિ ચાર જાતિઓ અર્થાત્ એકેન્દ્રિય જાતિ, બે ઇન્દ્રિય જાતિ, તેઇન્દ્રિય જાતિ, ચતુરીન્દ્રીય જાતિ (૯-૧૮) પાંચ સંહનન અને પાંચ સંસ્થાન (૧૯-૨૨) અપ્રશસ્તવર્ણ, ગંધ, રસ, સ્પર્શનામ કર્મ (૨૩-૩૨) સ્થાવદશક યથા-(૧) સ્થાવર, (૨) સૂક્ષ્મ (૩) અપર્યાપ્ત (૪) સાધારણ

दुर्भग ७-दुःस्वरा ८-ऽनादेया ९-ऽयशः कीर्तिनामानि ३२-इति, उपघातनामा ३३-ऽशुभविहायो गतिः ३४। (७६) नीचैर्गोत्रम् ७७ -पञ्चविधमन्तरायम्-८२ तदेवं पुण्यपापकर्मणोः शुभाऽशुभौ योगौ-आस्रवौ भवतः ॥

उक्तञ्चोत्तराध्ययने २८अध्ययने १४-गाथायाम्-'पुण्णपावासवो तहा-' इति। पुण्य-पापास्रवस्तथा ॥२॥

मूलम्-सकसायस्स जोगो संपरायकिरियाए ॥३॥

छाया—'सकषायस्य योगः सम्परायक्रियायाः—' ॥३॥

तत्वार्थदीपिका-पूर्वं पुण्यपापकर्मणोः शुभाऽशुभयोगौ आस्रवरूपौ प्ररूपितौ, सम्प्रति-सम्परायक्रियाया आस्रवं प्ररूपयितुमाह-'सकसायस्स जोगो संपराय

---

(४) साधारण शरीर (५) अस्थिर (६) अशुभ (७) दुर्भग (८) दुःस्वर (९) अनादेय (१०) अयशःकीर्त्ति (३३) उपघातनामकर्म (३४) अशुभ विहायोगतिनामकर्म (७७) नीचगोत्र (७७=८२) पांच अन्तराय। इस प्रकार शुभयोग और अशुभयोग पुण्य और पाप के कारण होते हैं।

उत्तराध्ययनसूत्र के २८ वें अध्ययन की चौदहवीं गाथा में कहा है-'पुण्णपावासवो तहा' अर्थात् पुण्य का और पाप का आस्रव होता है ॥२॥

सूत्रार्थ—'सकसायस्स जोगो' इत्यादि।

कषाययुक्त जीव का योग सम्परायक्रिया के आस्रव का कारण होता है ॥३॥

तत्वार्थदीपिका-पहले बतलाया गया है कि शुभ योग पुण्य के और अशुभ योग पाप के आस्रव का कारण है। अब साम्परायिक क्रिया के

---

(५) અસ્થિર (૬) અશુભ (૭) દુર્ભગ (૮) દુઃસ્વર (૯) અનાદેય (૧૦) અયશઃ કીર્તિ (૩૩) ઉપાઘાતનામ કર્મ (૩૪) અશુભવિહાયોગતિનામ કર્મ (૭૭) નીચગોત્ર (૭૮-૨) પાંચ અન્તરાય આવી રીતે શુભયોગ અને અશુભયોગ પુણ્ય અને પાપના કારણુ હોય છે.

ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રનાં ૨૮માં અધ્યયનની ચૌદમી ગાથામાં કહ્યું છે— 'पुण्णपावासवो तहा' અર્થાત પુણ્યને અને પાપને આસ્રવ થાય છે. ॥૨॥

'सकसायस्स जोगो संपरायकिरियाए'

સૂત્રાર્થ—કષાયયુક્ત જીવને યોગ સમ્પરાયક્રિયાના આસ્રવનું કારણુ હોય છે.

તત્વાર્થદીપિકા—પહેલા બતાવવામાં આવ્યું કે શુભયોગ પુણ્યના અને અશુભ યોગ પાપના આસ્રવના કારણો છે. હવે સમ્પરાંયિક ક્રિયાના આસ્રવની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ—

किरियाए-' इति। सकषायस्य-कषायेण क्रोधमानमायालोभरूपेण सहितस्या ऽऽत्मनः योगो-मनोवाक्कायरूपः आत्मपरिणतिविशेषः सम्परायक्रियायाः-संसारपर्यटनकारकक्रियायाः भवभ्रमणजनककर्मण आस्रवो भवति। तथा च-मनो वचः काययोगादिलक्षणः पूर्वोक्तस्वरूपाऽऽस्रवः सर्वसंसारिणां न समान-फलारम्भहेतुर्भवति, अपितु-सकषायस्यात्मनः कायादियोगरूप आस्रवः संसाररूप सम्परायजनककर्मणो हेतुर्भवति, अकषायस्यात्मनस्तथाविध आस्रवन्तु-ईर्यापथ कर्मणः संसारापरिभ्रमणस्य हेतुर्भवतीति बोध्यम्। तत्र-कषति-आत्मानं हिनस्ति दुर्गतिं प्रापयतीति कषायः, यद्वा-कषायो न्यग्रोधत्वक् विभीतक-हरीतक्यादिकम्,

---

आस्रव की प्ररूपणा करते हैं।

जो जीव क्रोध, मान, माया, और लोभ रूप कषाय से युक्त है उसका योग अर्थात् आत्मपरिणति रूप मन वचन काय का व्यापार सम्पराय क्रिया का अर्थात् संसार में भ्रमण कराने वाली क्रिया का आस्रव होता है। तात्पर्य यह है कि मनोयोग वचनयोग और काययोग से होने वाला पूर्वोक्त आस्रव सब संसारी जीवों को समान फलप्रद नहीं होता, वरन् कषाययुक्त जीव को आस्रव होता है वह साम्परायिक आस्रव कहलाता है, जिसके कारण उसे संसार-परिभ्रमण करना पडता है। किन्तु जो जीव कषाय से मुक्त हो जाते हैं, उन्हें ईर्यापथ आस्रव होता है। वह संसार परिभ्रमण का कारण नहीं होता।

जो आत्मा कषे-हने अर्थात् दुर्गति में ले जाय, वह कषाय कहलाता है अथवा जैसे बटकी छाल, बहेडा और हरड आदि कषाय, वस्त्र

જે જીવ ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ રૂપ કષાયથી યુકત છે તેનો યોગ અર્થાત્ આત્મપરિણતિ રૂપ મન વચન કાયનો વ્યાપાર સમ્પરાય ક્રિયાનો અર્થાત્ સંસારમાં ભ્રમણ કરવાવાળી ક્રિયાનો આસ્રવ થાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે મનોયોગ, વચનયોગ અને કાયયોગથી થનારો પૂર્વોકત આસ્રવ બધાં સંસારી જીવોને એકસરખો ફળદાયી નીવડતો નથી, નહીતર કષાયયુકત જીવને જે આસ્રવ થાય છે તે સામ્પરાયિક આસ્રવ કહેવાય છે, જેના કારણે-તેને સંસાર-પરિભ્રમણ કરવો પડે છે, પરન્તુ જે જીવ કષાયથી મુકત થઈ જાય છે, તેમને ઈર્યાપથ આસ્રવ થાય છે અને તે સંસાર પરિભ્રમણનું કારણ બનતું નથી.

જે આત્માને કષે-હણે અર્થાત્ દુર્ગતિમાં લઈ જાય તે કષાય કહેવાય છે અથવા જેમ વડની છાલ, બહેડા અને હરડ-આદિ કષાય વસ્ત્ર વગેરેમાં રાગનાકારણ હોય છે તેવી જ રીતે ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ રૂપ કષાય

यथा-वस्त्रादौ रागश्लेष हेतु स्तथा-क्रोधमानमायालोभलक्षणः कषायाः कषाय इवात्मनः कर्मश्लेषहेतुर्भवति, तेन-कषायेण सह वर्तते इति सकषायः तस्य-सकषायस्यात्मनो मिथ्यादृष्ट्यादेः कायादि योगवशादानीतस्य स्थित्यनुभागबन्धकारक साम्परायिकस्य कर्मण आस्रवो भवकारणं भवति। तत्र-सम्परायस्तावत्-सं-सम्यक्, उत्कृष्टः, अयो गतिः-पर्यटनं प्राणिनो यत्र भवति, स सम्परायः, संसार उच्यते, संसारपर्यटनकारकं कर्म साम्परायिकम्, तस्य--साम्परायिकस्य कर्मणो हेतुः खलु-सकषायस्यात्मनो मिथ्यादृष्टे कायादियोगरूप आस्रवो भवति ॥३॥

तत्वार्थनिर्युक्तिः-अथ-कायिक-वाचिक-मानसयोगादिलक्षण आस्रवः किं

आदि में राग के कारण होते हैं, उसी प्रकार क्रोध मान माया और लोभ रूप कषाय आत्मा के लिए कर्म बन्ध के कारण होते हैं। ऐसे कषाय से युक्त जीव को सकषाय कहते हैं। सकषाय मिथ्यादृष्टि आदि जीव को कायओग आदि के द्वारा जिन कर्मों का आस्रव होता है, उनमें स्थिति बन्ध और अनुभोग बन्ध भी पडता है। अतएव वह बन्ध साम्परायिक बन्ध कहलाता है। 'साम्पराय' शब्द का अर्थ इस प्रकार है-सम् अर्थात् सम्यक्, पर अर्थात् उत्कृष्ट, अय अर्थात् गति या पर्यटन, तात्पर्य यह है कि प्राणियों का जहां परिभ्रमण होता है, उस संसार को साम्पराय कहते हैं और संसार-परिभ्रमण के कारण-भूत कर्म को साम्परायिक कहते हैं। साम्परायिक कर्म के कारण कषाय-वान जीव का योग है। सारांश यह है कि सकषाय जीव के योग से जो कर्मबंध होता है, वह साम्परायिक बन्ध कहलाता है और उसमें स्थिति एवं अनुभाग भी पडते हैं ॥३॥

तत्वार्थनिर्युक्ति-कायिक, वाचिक और मानसिक योग रूप आस्रव क्या

આત્માને માટે કર્મ બન્ધના કારણ હોય છે. આવા કષાયથી યુક્ત જીવને સકષાય કહે છે. સકષાય મિથ્યાદષ્ટિ આદિ જીવને કાયયોગ આદિ દ્વારા જે કર્મોના આસ્રવ થાય છે તેમાં સ્થિતિબન્ધ અને અનુભાગબન્ધ પણ પડે છે. આથી તે બન્ધ સામ્પરાયિકબન્ધ કહેવાય છે. 'સમ્પરાય' શબ્દનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે-સમ્ અર્થાત્ સમ્યક્ પર અર્થાત્ ઉત્કૃષ્ટ, અય અર્થાત્ ગતિ અથવા પર્યટન, તાત્પર્ય એ છે કે પ્રાણિઓનું જ્યા પરિભ્રમણ થાય છે તે સંસારને સમ્પરાય કહે છે અને સંસાર પરિભ્રમણના કારણભૂત કર્મોને સામ્પરાયિક કહે છે સામ્પરાયિક કર્મનું કારણ કષાયવાન જીવનોયોગ છે. સારાંશ એ છે કે સકષાય જીવના યોગથી જે કર્મ બંધાય છે તે સામ્પરાયિક બન્ધ કહેવાય છે અને તેમાં સ્થિતિ તેમજ અનુભાગ પણ પડે છે ॥૩॥

તત્વાર્થનિર્યુક્તિ-કાયિક, વાચિક અને માનસિકયોગ રૂપ આસ્રવ શું બધાં

सर्वेषां संसारिणां समानफलारम्भहेतुर्भवति ? उताहो-अन्यस्या-ऽन्यादृशः अन्यस्या ऽन्यावा ? इत्याकाङ्क्षायां कञ्चिद्विशेष प्रतिपादयितुमाह-'सकसायस्स जोगो संपरायकिरियाए-' इति। सकषायस्य-कषायैः क्रोधमान-माया-लोभैः सह वर्तते इति सकषायः, कषः-कर्म, तस्या-ऽऽयो लाभः प्राप्तिः-कायः क्रोधमान माया लोभः कर्महेतुः भवहेतुर्वा भवति, तै कषायैः-क्रोधादिभिः सहितस्य सकषायस्या-ऽऽत्मनो मिथ्यादृष्टेः कायादियोगरूपः आस्रवः संपराय क्रियायाः-संपरैति-आत्मा-ऽस्मिन् इति सम्परायः-निरय-देव-मनुष्य-तिर्यग्गतिलक्षणश्चतुर्गतिकः संसार स्तस्य-संसारपरिभ्रमणस्य हेतुभूता-कर्मरूपा क्रिया-संपरायक्रिया तस्य हेतुर्भवति। तथा च-त्रिविधोऽपि मनो वाक् काययोगः शुभाऽशुभभेदः

सभी संसारी जीवों को समान फलदायक होता है अथवा उसके फल में विसदृशता होती हैं ? इस आशंका का निवारण करने के लिए विशेष प्रतिपादन करते हैं-

जो क्रोध, मान, माया और लोभ से युक्त होता है, वह सकषाय कहलोता है। कष अर्थात् कर्म का आय अर्थात् लाभ होना कषाय है। क्रोध, मान, माया और लोभ कर्मके अथवा संसार के कारण हैं। क्रोध आदि कषायों से युक्त जीव को काययोग आदि साम्परायिक क्रिया के कारण होते हैं। नरकगति, देवगति, मनुष्यगति और तिर्यंचगति रूप संसार सम्पराय कहलाता है, उस सम्पराय अर्थात् संसार में परिभ्रमण के कारण जो क्रिया है, वह साम्परायिक क्रिया कहलाती है। तात्पर्य यह है कि मनोयोग वचनयोन और काययोग शुभ और अशुभ के भेद से दो-दो प्रकार का है। यह योग चाहे समस्त हो या व्यस्त, जब

સંસારી જીવોને સરખાં ફળદાયક હોય છે ? અથવા તેના ફળમાં વિસદૃશતા હોય છે ? આ શંકાના નિવારણ અર્થે વિશેષ પ્રતિપાદન કરીએ છીએ—

જે ક્રોધ માન માયા અને લોભથી યુક્ત હોય છે, તે સકષાય કહેવાય છે. કષ અર્થાત્ કર્મનું આપવું અર્થાત્ લાભ થવો કષાય છે ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ કર્મના અથવા સંસારના કારણ છે. ક્રોધ આદિ કષાયોથી યુક્ત જીવના કાયયોગ આદિ સામ્પરાયિક ક્રિયાના કારણુ હોય છે. નરકગતિ, દેવગતિ, મનુષ્યગતિ અને તિર્યંચગતિ રૂપ સંસાર સમ્પરાય કહેવાય છે તે સમ્પરાય અર્થાત્ સંસારમાં પરિભ્રમણના કારણુ રૂપ જે ક્રિયા છે તે સામ્પરાયિક ક્રિયા કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે મનોયોગ, વચનયોગ, અને કાયયોગ શુભ અને અશુભના ભેદથી બે-બે પ્રકારના છે. આ યોગ ભલે સમસ્ત હોય

समस्तो व्यस्तो वा सकषायस्य कर्तुरात्मनः साम्परायिकस्य संसारपरिभ्रमणहेतुभूतस्य कर्मण आस्रवो भवति ।

उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ भगवतीसूत्रे ७-शतके १-उद्देशके १६७-सूत्रे-'जस्स णं कोहमाणमायालोभा अवोच्छिन्ना भवंति, तस्स णं संपरायकिरिया कज्जइ नो ईरियावहिया' इति । यस्य-क्रोध मान माया लोभा अव्युच्छिन्ना भवन्ति, तस्य-खलु साम्परायक्रिया क्रियते नो ईर्यापथिकी क्रिया-' इति ॥३॥

मूलम्-अकसायस्स जोगो ईरियावहिया किरियाए ॥४॥

छाया—अकषायस्य योगः-ऐर्यापथिकक्रियायाः-' ॥४॥

कषाय युक्त आत्मा का होता है तो उससे साम्परायिक आस्रव होता है और वह संसार-परिभ्रमण का कारण बनता है ।

फलितार्थ यह है कि चार प्रकार के बन्धों में से स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध कषाय के निमित्त होते हैं और प्रकृतिबन्ध तथा प्रदेश बन्ध योग के निमित्त से होते हैं । जो जीव कषाययुक्त होता है, उसके स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध अवश्य होते हैं और इस कारण यह बन्ध संसारभ्रमण का कारण होता है ।

भगवतीसूत्र के सातवें शतक के प्रथम उद्देशक के सूत्र १६७ वें में कहा है-जिस जीव के क्रोध, मान, माया और लोभ विच्छिन्न नहीं होते, उसे साम्परायिक क्रिया होती है, ईर्यापथ क्रिया नहीं होती है ॥३।

सूत्रार्थ--'अकसायस्स जोगो' इत्यादि ।

कषाय से रहित जीव का योग ऐर्यापथिक क्रियाका कारण

કે વ્યસ્ત, જ્યારે કષાયયુકત આત્માનો થાય છે, ત્યારે તેનાથી સામ્પરાયિક આસ્રવ થાય છે અને તે સંસાર પરિભ્રમણનુ કારણ બને છે.

ફલિતાર્થ એ છે કે ચાર પ્રકારના બન્ધોમાંથી સ્થિતિબન્ધ અને અનુભાગબન્ધ કષાયના નિમિત્તથી થાય છે અને પ્રકૃતિબન્ધ તથા પ્રદેશબન્ધ યોગના નિમિત્તથી થાય છે. જે જીવ કષાયયુકત હોય છે તેના સ્થિતિબન્ધ અને અનુભાગબન્ધ અવશ્ય થાય છે અને આ કારણથી જ આ બન્ધ સંસાર ભ્રમણનું કારણ બને છે.

ભગવતીસૂત્રમાં સાતમાં શતકના પ્રથમ ઉદ્દેશકના સૂત્ર ૧૬૭માં કહ્યું છે-જે જીવના ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ વિચ્છિન્ન થતાં નથી તેને સામ્પરાયિક ક્રિયા થાય છે. ઇર્યાપથક્રિયા થતી નથી. ॥૩॥

'अकसायस्स जोगो ईरियावहिया किरियाए'

સૂત્રાર્થ—કષાયથી રહિત જીવનોયોગ ઐર્યાપથિકક્રિયાનું કારણ હોય છે.

तत्त्वार्थदीपिका---पूर्वसूत्रे-क्रोधादिकषाययुक्तस्यात्मनः कायिकादियोगः संसारपरिभ्रमणरूपसाम्परायिकक्रियाया आस्रवो भवतीति प्रतिपादितम्, सम्प्रति-कषायरहितस्य कायादियोगः संसाराऽपरिभ्रमणरूपैर्यापथिकक्रियाया आस्रवो भवतीति प्रतिपादयितुमाह-'अकसायस्स जोगो ईरिया वहिया किरियाए' इति ।

अकषायस्य-न विद्यते क्रोधादिकषायो यस्य सोऽकषायस्तस्य क्रोधादिकषाय रहितस्याऽऽत्मन उपशान्तकषायादेः कायिक-वाचिक-मानसयोगः-ऐर्यापथिक क्रियायाः- ईर्यापथकर्मणः संसारपरिभ्रमणकारणस्याऽऽस्रवो भवति। ऐर्यापथिक शब्दार्थस्तु-'ईर+गतौ'-इत्यस्माद् भावे ण्यति-ईर्या-ईरणम्, योगो गतिः योग-प्रवृत्तिः काय-वाङ्-मनो व्यापारः काय-वाङ्-मनो वर्गणालम्बी-आत्मप्रदेश

होता है ॥४॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वसूत्र में प्रतिपादन किया गया है कि क्रोध आदि कषायों से युक्त आत्मा का काययोग आदि संसार भ्रमण के कारण साम्परायिक आस्रव का कारण होता है, इस सूत्र में यह बतलाया जा रहा है कि जो जीव कषाय से रहित है, उसका योग केवल ईर्यापथ-आस्रव का कारण होता है जो कि संसार परिभ्रमण का कारण नहीं होता है—

क्रोध आदि समस्त कषायों से रहित आत्मा का-उपशान्तकषाय या क्षीणकषाय आत्मा का-जो कायिक वाचिक अथवा मानसिक योग होता है, उससे केवल ईर्यापथ-आस्रव ही होता है। ईर् धातु गति अर्थ में है। उससे भाव के अर्थ में प्रत्यय करने से ईर्या शब्द बनता है, जिसका अर्थ है गति या योग की प्रवृत्ति, अथवा मन, वचन काय

તત્વાર્થદીપિકા-પૂર્વસૂત્રમાં પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું કે ક્રોધ આદિ કષાયોથી યુકત આત્માનો કાયયોગ આદિ સંસારભ્રમણના કારણથી સામ્પરાયિક આસ્રવનું કારણ બને છે, પ્રસ્તુત સૂત્રમાં એ દર્શાવાઈ રહ્યું છે કે જે જીવ કષાયથી મુકત હોય છે, તેનો યોગ માત્ર ઈર્યાપથ આસ્રવનું કારણ હોય છે કે જે સંસાર પરિભ્રમણનું કારણ બનતું નથી.

ક્રોધ આદિ સમસ્ત કષાયોથી રહિત આત્માનો-ઉપશાન્ત-કષાય અથવા ક્ષીણકષાય આત્માનો-જે કાયિક, વાચિક અથવા માનસિકયોગ થાય છે, તેનાથી ફકત ઈર્યાપથ-આસ્રવ જ થાય છે. 'ઈર્' ધાતુ ગતિ અર્થમાં છે, તેથી ભાવના અર્થમાં ઈયત્ પ્રત્યય લગાડવાથી ઈર્યા શબ્દ બને છે, જેનો અર્થ થાય છે ગતિ અથવા યોગની પ્રવૃત્તિ, અથવા મન, વચન કાયના નિમિત્તથી થનારાં

परिस्पन्दो जीवप्रदेशचलनम्, 'ईर्ये' ति व्यपदिश्यते, ईर्या एव पथो मार्गो यस्य तत्-ईर्यापथ मुच्यते, ईर्यापथमेव-ऐर्यापथकम् तद्रूपा क्रिया-ऐर्यापथिकी क्रिया ऐर्यापथिककर्म-इति। तथा चाऽकषायस्यो-पशान्त-कषायादे रात्मनः कायादियोगवशादुपात्तस्य कर्मणः कषायाभावाद्बन्धाऽभावे सति कुड्य पतित शुष्कलोष्ठवत्-अनन्तरसमये निवर्तमानस्य ऐर्यापथिकस्य कर्मण आस्रवो न बन्धकारणं भवति, किन्तु-सकषायस्य खल्वात्मनो मिथ्यादृष्ट्यादेः कायादियोगा-दानीतस्य स्थित्यनुभागबन्धकारक साम्परायिकस्य कर्मण आस्रवस्तु-भवकारणं भवतीति पूर्वमुक्तमेवेति। एवञ्चाऽकषायस्यो-पशान्त कषायादेरात्मनः कायिका-दियोगः ऐर्यापथिकस्यैव-एकसमयस्थितिकस्य कर्मण आस्रवो भवति' न तु-साम्परायिकस्य कर्मण इति भावः ॥४॥

के निमित्त से होने वाला आत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्दन। ईर्या ही जिसका पथ-मार्ग है, वह ईर्यापथ अथवा ऐर्यापथिक कहलाता है। आशय यह है कि ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थानों में जब कषाय का उदय नहीं रह जाता, तब स्थितिबन्ध नहीं होता क्योंकि स्थितिबन्ध का कारण कषाय हैं, मगर योग विद्यमान होने से प्रकृति और प्रदेश बन्ध होते हैं। उस समय योग के कारण कर्मका आस्रव तो होता है परंतु कषाय के अभाव के कारण वह ठहरता नहीं है। जैसे दिवाल पर फेंका हुआ सूखा मिट्टी का ढेला दीवार को स्पर्श करके नीचे गिर जाता है, दीवाल पर ठहरता नहीं है, उसी प्रकार निष्कषाय आत्मा में कर्मका जो आस्रव होता है, वह ठहरता नहीं है। प्रथम समय में कर्म आता है, दूसरे समय में उसका वेदन होता है और तीसरे समय

આત્માના પ્રદેશોનું પરિસ્પંદન ઈર્યા જ જેનો પથ-માર્ગ છે તે ઈર્યાપથ અથવા ઐર્યાપથિક કહેવાય છે. આશય એ છે કે અગીયારમાં બારમાં અને તેરમાં ગુણસ્થાનોમાં જ્યારે કષાયનો ઉદય હોતો નથી ત્યારે સ્થિતિબન્ધ થતો નથી, કારણ કે સ્થિતિબન્ધનું કારણ કષાય છે, પરન્તુ યોગ વિદ્યમાન હોવાથી પ્રકૃતિ અને પ્રદેશ બન્ધ થાય છે. તે સમયે યોગના કારણે કર્મનો આસ્રવ તો થાય છે, પરન્તુ કષાયના અભાવના કારણે તે રોકાતો નથી જેવી રીતે ભીંત ઉપર ફેંકવામાં આવેલો માટીનો સૂકો લોઢો દીવાલને સ્પર્શ કરીને નીચે પડી જાય છે, દીવાલ ઉપર ટકી શકતો નથી, તેવી જ રીતે નિષ્કષાય આત્મામાં કર્મનો જે આસ્રવ થાય છે તે રોકાતો નથી પ્રથમ સમયમાં કર્મનું આગમન થાય છે, બીજા સમયમાં તેનું વેદન થાય છે અને ત્રીજા સમયમાં તેની નિર્જરા

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावत्-सकषायस्याऽऽत्मनः कायादियोगः साम्परायिक कर्मणो भवभ्रमणजनकस्याऽऽस्रवो भवतीति प्ररूपितम्, सम्प्रति-अकषायस्यो-पशान्तकषायादेरात्मनः कायादियोगः संसारा-ऽपरिभ्रमणहेतुकस्य-ऐर्यापथिक कर्मण आस्रवो भवतीति प्ररूपयितुमाह-'अकषायस्य-क्रोधादिकषायरहितस्यो-पशान्तमोहकषायादेरात्मनः कायादियोगः ऐर्यापथिक क्रियायाः ईर्यापथकर्मणः -संसाराऽपरिभ्रमणहेतुकस्या-ऽऽस्रवो भवति । तत्र-ईरण मीर्या गति रागानु-सारिणी सति-प्रयोजने पुरस्ताद् युग मात्रदृष्टिः स्थावरजङ्गमाभिभूतानि परि-

में उसकी निर्जरा हो जाती है । किन्तु कषाययुक्त जीव को स्थितिबन्ध होता है और अनुभागबन्धक भी होता है. अतएव उसके संसारभ्रमण करना पडता है ।

इस प्रकार उपशान्त कषाय और क्षीणकषाय आत्मा को ऐर्यापथिक आस्रव ही होता है जो दो समय की स्थितिवाला होता है और संसार परिभ्रमण का कारण नहीं होता ॥४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-पहले कथन किया जा चुका है कि सकषाय जीव का योग साम्परायिक आस्रव का कारण होता है, अब यह प्रतिपादन किया जाता है कि उपशान्त-क्षीणकषाय आत्मा का जो काययोग आदि है, वह संसारभ्रमण के हेतु कर्मका कारण नहीं होता—

कषाय से रहित जीव का योग ऐर्यापथिकक्रिया का कारण होता है, जो संसारभ्रमण का कारण नहीं होता । प्रयोजन होने पर आगम के अनुसार चार हाथ सामने की भूमि पर दृष्टि रखते हुए और त्रस

થઈ જાય છે. પરન્તુ કષાયયુક્ત જીવને સ્થિતિબન્ધ થાય છે અને અનુભાગ બન્ધ પણ થાય છે આથી તેને સંસાર-પરિભ્રમણ કરવો પડે છે.

આવી રીતે ઉપશાન્ત કષાય અને ક્ષીણકષાય આત્માને ઐર્યાપથિક આસ્રવ જ થાય છે, જે બે સમયની સ્થિતિવાળો હોય છે તેમજ સંસાર-પરિભ્રમણનું કારણ બનતો નથી ॥૪॥

તત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલાં કહી દેવામાં આવ્યું છે કે સકષાય જીવનોયોગ સામ્પરાયિક આસ્રવનું કારણ હોય છે હવે એ પ્રતિપાદન કરવામાં આવી રહ્યું છે કે ઉપશાન્ત-ક્ષીણ કષાય આત્માના જે કાયયોગ વગેરે છે, તે સંસાર ભ્રમણના હેતુ કર્મનું કારણ હોતું નથી-

કષાયથી રહિત જીવનોયોગ ઐર્યાપથિક ક્રિયાનું કારણ હોય છે, જે સંસારભ્રમણનું કારણ હોતું નથી. પ્રયોજન થવાથી આગમ મુજબ ચાર હાથ પોતાની સામેની ભૂમિ પર દૃષ્ટિ રાખતા થકા અને ત્રસ તેમ જ સ્થાવર

वर्जयन् अप्रमत्तः शनैर्यायात् तपस्वी इत्येवंविधा गतिः पन्थाः-मार्गः प्रवेशो यस्य कर्मण स्तत्-ईर्यापथम्, ईर्यापथमेव ऐर्यापथिकी तद्रूपा क्रिया, ऐर्यापथिकी क्रियोच्यते। तत्र-कायादियोगमात्रप्रत्ययत्वात् गच्छत स्तिष्ठतो वा त्रिसमय स्थितिको बन्धो-ऽकषायस्य भवति,। अकषायस्तावत्-प्रथमं द्विविधो भवति, वीतरागः-सरागश्च,। तत्र-वीतराग स्त्रिविधः, उपशान्तमोहकषायः-क्षीणमोह-कषायः-केवली च। तत्र-क्षीणमोहकषाय-केवलिनौ कात्स्न्र्येन समूलघातोपहत कर्मकदम्बौ भवतः। सरागस्तु-संज्वलनकषाययुक्तोऽप्यविद्यमानोदयत्वादकषाय एवावगन्तव्यः तस्य-कषायावस्थो मन्दानुभावत्वात् उक्तञ्च-

एवं स्थावर जीवों की रक्षा करते हुए, धीरे-धीरे अप्रमत्त होकर मुनि का ईरण-गमन-करना ईर्यापथ कहलाता है? उसे ऐर्यापथिक की क्रिया भी कहते हैं। अभिप्राय यह है कि योग मात्र के निमित्त से गमन करते या खडे हुए कषायरहित मुनि को दो समय की स्थिति-वाला जो बन्ध होता है, वह ईर्यापथ बन्ध है।

कषायरहित के मूलतः दो भेद हैं-वीतराग और सराग। वीतराग तीन प्रकार के होते हैं-उपशान्तमोह (ग्यारहवें गुणस्थानवर्त्ती) क्षीणमोह छद्मस्थ और क्षीणमोह केवली। क्षीणमोह छद्मस्थ और केवली में मोहनीय कर्म का समूल क्षय हो जाने से कषाय की सत्ता नहीं होती, उपशान्तमोह जीव में कषाय की सत्ता रहती है किन्तु उदय नहीं होता जिसको संज्वलन कषाय विद्यमान है किन्तु उसका उदय नहीं है, उस सराग को भी अकषाय ही समझना चाहिए। कहा भी है—

જીવોની રક્ષા કરતાં થકા હળવે હળવે અપ્રમત્ત થઈને મુનિનું ઈરિણ-ગમન કરવાની ક્રિયાને ઈર્યાપથ કહેવાય છે તેને ઐર્યાપથિકની ક્રિયા પણ કહે છે, અભિપ્રાય એ છે કે યોગ માત્રના નિમિત્તથી ગમન કરતાં અથવા ઉભા રહેલાં કષાયસહિત મુનિને બે સમયની સ્થિતિવાળો જે બન્ધ થાય છે, તે ઈર્યાપથ બન્ધ છે.

કષાયરહિતના અસલમાં બે ભેદ છે-વીતરાગ અને સરાગ વીતરાગ ત્રણ પ્રકારના હોય છે-ઉપશાન્તમોહ-(અગીયારમાં ગુણસ્થાનવર્ત્તી) ક્ષીણમોહ છદ્મસ્થ અને ક્ષીણમોહ કેવળી. ક્ષીણમોહ છદ્મસ્થ અને કેવળીમાં મોહનીય કર્મનો સમૂળગો ક્ષય થઈ જવ'ના કારણે કષાયની સત્તા હોતી નથી, ઉપશાન્ત મોહ જીવમાં કષાયની સત્તા રહે છે, પરન્તુ ઉદય થતો નથી. જેમના સંજ્વલન કષાય વિદ્યમાન છે, પરન્તુ તેનો ઉદય થતો નથી, તે સરાગને પણ અકષાય જ સમજવા જોઇએ. વળી કહ્યું પણ છે-

'उच्चालियम्मि पाए, इरियासमियस्स संकमट्ठाए।
वावज्जेज्ज कुलिंगी, मरेज्ज तं जोग मासज्ज ॥१॥
'न य तस्स तन्निमित्तो बंधो सुहुमो वि देसिओ समए।
सुद्धस्स उ संपत्ती अफला वुत्ता जिनवरेहिं ॥२॥
'उच्चलिते पादे इर्यासमितस्य संक्रमार्थम्।
व्यापद्येत कुलिङ्गी म्रियते तं योगमासाद्य ॥१॥

अत्र—कुलिङ्गि शब्देन कुन्थु प्रभृति क्षुद्रजन्तुः परिगृह्यते ॥
'न च तस्य तन्निमित्तो वन्धः सूक्ष्मोपि देशितः समये।
शुद्धस्य तु सम्पत्तिः अफलोक्ता जिनवरैः इति ॥२॥

एवञ्चा—ऽकषायस्यो—पशान्तकषायादेः कायादियोग ईर्यापथस्यैव संसाराऽपरिभ्रमणकारणस्य कर्मण एकसमयावस्थानकस्या-ऽऽस्रवो भवति। तत्रा—ऽऽद्यो वन्धसमयः—वेद्यमानकर्मसमयो मध्यमः २—स एव स्थितिकालः, तृतीयः

'उच्चालियम्मि पाए' इत्यादि
ईर्यासमिति से सम्पन्न संयमी ने गमन करने के लिए पांव ऊंचा उठाया हो और उसका निमित्त पाकर कदाचित् कोई बेन्द्रिय आदि जीव मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो भी उस संयमी को उसके कारण सूक्ष्म बन्ध भी नहीं कहा गया है। जिनेन्द्र भगवान् ने शुद्ध पुरुष की क्रिया को पाप-फलप्रदायिनी नहीं कहा है।

इस प्रकार जो उपशान्तकषाय आदि कषाय रहित है, उसके काययोग के निमित्त से ईर्यापथ कर्म का ही बन्ध होता है और संसारपरिभ्रमण का कारण नहीं होता। उस कर्म की स्थिति सिर्फ एक समय की होती है, अर्थात् प्रथम समय में कर्म का बंध होता है, दूसरे समय में

'उच्चालियम्मि पाए' ઈત્યાદિ ઈર્યાસમિતિથી સમ્પન્ન સંયમીએ ગતિ કરવા માટે પગ ઉંચો કર્યો હોય અને તેનું નિમિત્ત પામીને કદાચિત્ કોઈ બેઈન્દ્રિય આદિ જીવ મૃત્યુને શરણ થઈ જાય તો પણ તે સંયમીને તેના કારણે સૂક્ષ્મ બન્ધ પણ કહેવામાં આવ્યો નથી. જિનેન્દ્ર ભગવાને શુદ્ધ પુરૂષનીક્રિયાને પાપફળ આપનારી કહેલી નથી.

આ રીતે જે ઉપશાન્ત કષાય આદિ કષાય રહિત છે તેના કાયયોગના નિમિત્તથી ઈર્યાપથ કર્મનો જ બન્ધ થાય છે તેમજ સંસારપરિભ્રમણનું કારણ બનતું નથી. તે કર્મની સ્થિતિ માત્ર એક સમયની હોય છે, અર્થાત્ પ્રથમ સમયમાં કર્મ બંધાય છે, બીજા સમયમાં તેનું વેદન થાય છે અને આ વેદન

परिशाटसमयः इति। उक्तञ्च='पढमे समए बद्धपुट्ठा, बितीए समए वेदिता तइए समए णिज्जिण्णा। सेआले अकम्मं वा वि भवति' इति। प्रथमे समये बन्धः स्पर्शनं–द्वितीये समये वेदनं तृतीये निर्जरणम्, एष्यत्कालेऽकर्म भवति इति। अत्रेदं बोध्यम्–यस्य यावान् कायादियोगः सम्भवति–तस्य तावान् एव योगः साम्परायिककर्मणः–ईर्यापथकर्मणो वा–भवतीति। तत्रै–केन्द्रियाणां तावत् असंज्ञि काययोगः, द्वि-त्रि–चतुरिन्द्रिय–पञ्चेन्द्रियाणां काय–वाग्योगौ, संज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां-मनोवाक् काययोगाः, अकषायस्य संज्वलनकषायवर्तिनउपशान्तकषायक्षीण-कषायमोहयोश्च मनोवाक्काययोगाः, केवलिनश्च–वाक्काययोगौ चेति, । उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ भगवतीसूत्रे ७–शतके १-उद्देशके २६७–सूत्रे–'जस्स णं कोहमाण

उसका वेदन होता है और यह वेदनकाल ही उसका स्थितिकाल समझना चाहिए। तीसरे समय में उस कर्म की निर्जरा हो जाती है। कहा भी है–'प्रथम समय में बन्ध हुआ, दूसरे समय में वेदन हुआ और तीसरे समय में निर्जरा हो गई, निर्जरा हो जाने के पश्चात् वह कर्म अकर्म रूप में परिणत हो जाता है।

यहां इतना समझ लेना चाहिए–जिस जीव के जितने योग होते हैं, उसके उतने योगों से ही साम्परायिक अथवा ऐर्यापथिक कर्म का आस्रव होता है। एकेन्द्रिय जीवों में सिर्फ काययोग ही पाया जाता है, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञीपंचेन्द्रिय में काययोग तथा वचन योग होते हैं, संज्ञीपंचेन्द्रिय जीवों में तीनों योग होते हैं। अकषाय या संज्वलन कषाय वालों में मनोयोग, वचनयोग और काययोग–तीनों होते हैं और केवली में काययोग और वचनयोग ही

કાળ જ તેનો સ્થિતિકાળ સમજવો જોઈએ. ત્રીજા સમયમાં તે કર્મની નિર્જરા થઇ જાય છે. કહ્યું પણ છે-પ્રથમ સમયમાં બન્ધ થવો, બીજા સમયમાં વેદન થયું, અને ત્રીજા સમયમાં નિર્જરા થઇ ગઈ, નિર્જરા થઇ ગયા બાદ તે કર્મ અકર્મ રૂપમાં પરિણત થઇ જાય છે.

અહીં એટલું સમજી લેવાની જરૂર છે-જે જીવના જેટલા યોગ હોય છે તેને તેટલા યોગોથી જ સામ્પરાયિક અથવા ઐર્યાપથિક કર્મનો આસ્રવ થાય છે. એકેન્દ્રિય જીવોમાં માત્ર કાયયોગ જ જોવામાં આવે છે બેઇન્દ્રિય, તેઇન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય તથા અસંજ્ઞી પંચેન્દ્રિયમાં કાયયોગ તથા વચનયોગ હોય છે, સંજ્ઞીપંચેન્દ્રિય જીવોમાં ત્રણે યોગ હોય છે અકષાય અથવા સંજ્વલન કષાયવાળા જીવોમાં મનોયોગ, વચનયોગ અને કાયયોગ-ત્રણે હોય છે અને કેવળીમાં કાયયોગ તથા વચનયોગ જ જોવા મળે છે. ભગવતીસૂત્રના સાતમાં

माया-लोभा वोच्छिन्ना भवंति, तस्स णं-ईरियावहिया किरिया कज्जइ नो सांपराइया किरिया कज्जइ, जस्स णं कोहमाण मायालोभा अवोच्छिन्ना भवंति तस्स णं संपरायकिरिया कज्जइ नो ईरिया वहिया' इति। यस्य खलु-क्रोध मान माया लोभाः व्युच्छिन्ना भवन्ति, तस्य खलु-ऐर्यापथिकी क्रिया क्रियते-नो साम्परायिकी क्रिया क्रियते। यस्य खलु-क्रोध मान मान माया लोभाः अव्युच्छिन्ना भवन्ति, तस्य खलु-साम्परायिकी क्रिया क्रियते-नो ऐर्यापथिकी, इति।४।

मूलम्-इंदियकसाया सुभजोगाऽव्वयकिरिया भेदओ संपराइय कम्मासवा बायालीसविहा ॥५॥

छाया—'इन्द्रिय कषाया शुभयोगा-ऽव्रतक्रियाभेदतः साम्परायिककर्मास्रवाः-द्विचत्वारिंशद्विधाः-' ॥५॥

तत्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत्-साम्परायिकस्य-ऐर्यापथिकस्य च कर्मणो द्विविध आस्रवः प्ररूपितः सम्प्रति-साम्परायिककर्मास्रवभेदान् प्ररूपयितुमाह-

---

पाये जाते हैं। भगवतीसूत्र के सातवें शतक के प्रथम उद्देशक के २६७ वें सूत्र में कहा है-जिस जीव का क्रोध, मान, माया और लोभ का विच्छेद हो जाता है, उसे ऐर्यापथिकी क्रिया होती है साम्परायिक क्रिया नहीं होती और जिस जीव के क्रोध, मान, माया और लोभ का विच्छेद नहीं होता, उसके साम्परायिक क्रिया होती है, ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं।४॥

'इंदियकसाया सुभजोगा' इत्यादि।

इन्द्रिय, कषाय, शुभयोग अव्रत और क्रिया के भेद से साम्परायिक कर्मास्रव के बयालीस भेद हैं ॥५॥

तत्वार्थदीपिका—साम्परायिक और ऐर्यापथिक के भेद से आस्रव के दो भेद कहे जा चुके हैं, अब साम्परायिक कर्मास्रव के भेदों का प्रतिपादन करने के लिए कहते हैं-

---

શતકના પ્રથમ ઉદ્દેશકના ૨૬૭માં સૂત્રમાં કહ્યું છે-જે જીવોના ક્રોધ, માન, માયા અને લોભનો વિચ્છેદ થઇ જાય છે તેની ઐર્યાપાથિક ક્રિયા જ હોય છે, સામ્પરાયિક ક્રિયા હોતી નથી અને જે જીવોના ક્રોધ મન, માયા, તથા લોભનો નાશ થતો નથી તેની સામ્પરાયિક ક્રિયા હોય છે, ઐર્યાપથિક ક્રિયા હોતા નથી. ॥૪॥

'इंदियकसाया सुभजोगा' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—ઇન્દ્રિય, કષાય, શુભયોગ, અવ્રત અને ક્રિયાના ભેદથી સામ્પરાયિક કર્માસ્રવના બેંતાળીસ ભેદ છે.

તત્વાર્થદીપિકા—સામ્પરાયિક અને ઐર્યાપથિકના ભેદથી આસ્રવના બે ભેદ કહેવામાં આવી ગયા છે, હવે સામ્પરાયિક કર્માસ્રવના ભેદોનું પ્રતિપાદન કરવા માટે કહીએ છીએ-

'इंदिय कसाया सुभयोगाइय' इत्यादि । इन्द्रिय कषाया शुभयोगाव्रतक्रिया भेदतः-इन्द्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रभेदेन पञ्चविधानि, कषायाः-क्रोध मान माया लोभभेदेन चतुर्विधाः, अशुभयोगा मनोवाकायभेदेन त्रिविधाः, अव्रतानि-हिंसा-ऽनृत-स्तेय-मैथुन-परिग्रह भेदेन पञ्चविधानि, क्रियाश्च-कायि क्यादि भेदेन पञ्चविंशतिविधाः, इत्येवं रीत्या-इन्द्रिय कषाया-ऽव्रतक्रियाणाम्-एकोनचत्वारिंशद् भेदात् साम्परायिककर्मास्रवाः-संसारपरिभ्रमणकारणभूतस्य साम्परायिककर्मणो हेतुरूपा आस्रवा एकोनचत्वारिंशद्विधाः भवन्ति । तत्रेन्द्रिय कषाया-ऽव्रतानां भेदाः प्रदर्शिताः एव-। क्रियाः पञ्चविंशतिविधाः-यथा कायिकी, कायेन निर्वृत्ता-कायिकी काय व्यापारः-१ आधिकरणिकी, अधिक्रियते -आत्मा नरकादिषु येन-तदधिकरणम्, इह खङ्गादिकं वस्तु विवक्षितम्, तत्र भवा-

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र के भेदों से पांच इन्द्रियां, क्रोध, मान, माया और लोभ के भेद से चार प्रकार के कषाय, मन, वचन और काय के भेद से तीन प्रकार के योग, हिंसा, असत्य, चौर्य अब्रह्मचर्य और परिग्रह के भेद से पांच प्रकारके अव्रत, कायिकी आदि के भेद से पच्चीस प्रकार की क्रिया, ये सब साम्परायिक कर्म के कारण होते हैं, जो भवभ्रमण के कारण होते हैं। इन में से इन्द्रियों, कषायों और अव्रतों के भेद निरूपित किये जा चुके हैं, क्रियाएं पच्चीस इस प्रकार हैं-

(१) कायिकी-काया से किया जाने वाला व्यापार ।

(२) आधिकरणिकी-जिसके कारण आत्मा नरक आदि का अधिकारी बने । अधिकरण का अर्थ है खड्ग आदि हिंसा के साधन, उन से होने वाली क्रिया ।

સ્પર્શન, રસના, ઘ્રાણ, ચક્ષુ અને શ્રોત્રના ભેદથી પાંચ ઈન્દ્રિયો, ક્રોધ, માન, માયા અને લોભના ચાર પ્રકારના કષાય, મન, વચન અને કાયના ભેદથી ત્રણ પ્રકારના યોગ, હિંસા, અસત્ય, ચૌર્ય, અબ્રહ્મચર્ય અને પરિગ્રહના ભેદથી પાંચ પ્રકારના અવ્રત, કાયિકી આદિના ભેદથી પચ્ચીસ પ્રકારની ક્રિયા, આ બધાં સામ્પરાયિક કર્મના કારણો હોય છે, જે ભવભ્રમણના પણ કારણો છે. આમાંથી ઈન્દ્રિયો, કષાયો અને અવ્રતોના ભેદનું નિરૂપણ કરી દેવામાં આવ્યું છે પચ્ચીસ ક્રિયાઓ આ પ્રકારે છે.-

(૧) કાયિકી-કાયાથી કરવામાં આવતો વ્યાપાર.

(૨) આધિકરણિકી-જેના કારણે આત્મા નરક આદિનો અધિકારી બને અધિકરણનો અર્થ છે ખડ્ગ આદિ હિંસાના સાધન, તેનાથી થનારી ક્રિયા.

ऽऽधिकरणिकी-२ प्राद्वेषिकी, प्रद्वेषेण निर्वृत्ता-प्राद्वेषिकी-३ पारितापनिकी, परितापनं-ताडनादि दुःखविशेषरूपं, तेन निर्वृत्ता-पारितापनिकी-४ प्राणातिपातिकी। यद्वा प्राणातिपातेन-प्राणातिपाताऽध्यवसायेन यः प्राणातिपातः क्रियते, सा प्राणातिपातिकी-५ प्राणातिपाताध्यवसायेन जायमाना ताडनादिरूपा क्रियाऽपि प्राण वियोजनाऽभावेऽपि प्राणातिपातक्रियैव बोध्या। तथा-ऽप्रत्याख्यानिकी, अप्रत्याख्यानम्-अविरतिः तन्निमित्ता कर्मबन्धरूपा या क्रियाऽसौ-अप्रत्याख्यानिकी-६ आरम्भिकी, आरम्भे भवा-ऽऽरम्भिकी-७ पारिग्राहिकी परिग्रहे भवा-पारिग्रहिकी-८ मायाप्रत्ययिकी, माया प्रत्ययो यस्याः क्रियायाः सा तथा-९ मायाहेतुक कर्मबन्धक्रियेत्यर्थः। तथा-मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी, मिथ्यादर्शनं-मिथ्यात्वं, प्रत्ययः-कारणं यस्याः सा-मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी-१० दार्शनिकी, दर्शनाद्यः

---

(३) प्राद्वेषिकी-द्वेष से होने वाली क्रिया।

(४) पारितापनिकी-ताडन आदि परिताप से होने वाली क्रिया।

(५) प्राणातिपातिकी-प्राणियों के प्राणों का वियोग करना अथवा प्राणातिपात के अध्यवसाय से प्राणातिपात करना। प्राणातिपात के विचार से की जाने वाली ताडन आदि रूप क्रिया प्राणों का वियोग न होने पर भी प्राणातिपातिकी क्रिया ही समझनी चाहिए।

(६) अप्रत्याख्यानिकी-अविरति के कारण होने वाली कर्म बन्ध रूप क्रिया।

(७) आरंभिका-आरंभ से होने वाली क्रिया।

(८) पारिग्रहिकी-परिग्रह से होने वाली क्रिया।

(९) मायाप्रत्ययिकी-मायाचार से होने वाला कर्मबन्ध।

(१०) मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी-मिथ्यात्व के कारण होनेवाली क्रिया।

---

(૩) પ્રાદ્વેષિકી-દ્વેષથી થનારી ક્રિયા.

(૪) પારિતાપનિકી-તાડન આદિ પરિતાપથી થનારી ક્રિયા.

(૫) પ્રાણાતિપાતકી-પ્રાણીઓના પ્રાણોનો વિયોગ કરવો અથવા પ્રાણાતિપાતના અધ્યવસાયથી પ્રાણાતિપાત કરવો. પ્રાણાતિપાતના આશયથી કરવામાં આવતી તાડન આદિ રૂપ ક્રિયા-પ્રાણોના વિયોગ ન થવા છતાં પણ પ્રાણાતિપાતની ક્રિયા જ સમજવી જોઈએ.

(૬) અપ્રત્યાખ્યાનિકી-અવિરતિના કારણે થનારી કર્મબન્ધ રૂપ ક્રિયા.

(૭) આરંભિક-આરંભથી થનારી ક્રિયા.

(૮) પારિગ્રહિકી-પરિગ્રહથી થનારી ક્રિયા.

(૯) માયાપ્રત્યયિકી-માયાચારથી થનારૂં કર્મબન્ધન.

(૧૦) મિથ્યાદર્શન પ્રત્યયિકી-મિથ્યાત્વના કારણે થનારી ક્રિયા.

कर्मबन्धरूपो व्यापारः सा दार्शनिकी-११ स्पर्शिकी, स्पृशतीति स्पर्शः सावद्य स्पर्श जनितो व्यापारः स एव-स्पर्शिकी-१२, प्रातीतिकी, बाह्यंवस्तु प्रतीत्या-ऽऽश्रित्य या क्रिया भवति सा-प्रातीतिकी-१३, सामन्तोपनिपातिकी, समन्तात्-सर्वतः, उपनिपातः-लोकानां सम्मेलनम्, तत्र-भवा सामन्तोपनिपातिकी-१४ स्वाहस्तिकी, स्वहस्तेन निर्वृत्ता-स्वाहस्तिकी-१५ नैसृष्टिकी, निसर्जनं निसृष्टं क्षेपणमित्यर्थः, तत्र भवा-नैसृष्टिकी-१६, आज्ञापनिकी, आज्ञापनम्-आदेश स्तस्येयम्-आज्ञापनिकी-१७, तज्जनितः कर्म बन्ध इत्यर्थः। तथा-विदारणस्येयं वैदारणिकी-१८ अनाभोगप्रत्ययिकी, अनाभोगो-ऽज्ञानं प्रत्ययः-कारणं यस्याः साऽनाभोगप्रत्ययिकी-१९ अनवकाङ्क्षा प्रत्ययिकी, अनवकाङ्क्षा-स्वशरीराद्यनपेक्षत्वं,

---

(११) दृष्टिजा (दार्शनिकी)-किसी वस्तु को रागपूर्वक देखने से होनेवाली क्रिया।

(१२) स्पर्शिका -सावद्य स्पर्श जनित व्यापार।

(१३) प्रातीतिकी-बाह्य वस्तु के निमित्त से जो क्रिया हो।

(१४) सामन्तोपनिपातिकी-बहुत लोगोंके सम्मिलन से होने वाली।

(१५) स्वाहस्तिकी-अपने हाथ से की जाने वाली क्रिया।

(१६) नैसृष्टिकी-किसी वस्तु को गिराने वाली क्रिया।

(१७) आज्ञापतिकी-दूसरे को आदेश देने से होने वाली क्रिया।

(१९) अनाभोग प्रत्ययिकी-उपयोग शून्यता के कारण होने वाली क्रिया।

(२०) अनवकांक्षा प्रत्ययिकी-अपने और दूसरे के शरीर के प्रति

---

(૧૧) દૃષ્ટિજા-કોઈ વસ્તુને રાગપૂર્વક જોવાથી થનારી ક્રિયા.

(૧૨) સ્પર્શિકા-સાવદ્ય સ્પર્શજનિત વ્યાપાર

(૧૩) પ્રાતીતિકી-બાહ્ય વસ્તુના નિમિત્તથી જે ક્રિયા થાય.

(૧૪) સામન્તોપનિપાતિકી-ઘણા લોકના ભેગા થવાથી થતી ક્રિયા

(૧૫) સ્વાહસ્તિકી-પોતાના હાથથી કરવામાં આવતી ક્રિયા.

(૧૬) નૈસૃષ્ટિકી-કોઇ વસ્તુને પાડી નાખવાથી થનારી ક્રિયા.

(૧૭) આજ્ઞાપતિકી-બીજાને આદેશ આપવાથી થનારી ક્રિયા.

(૧૮) વૈદારણિકી-વિદારણ કરવાથી થનારી ક્રિયા.

(૧૯) અનાભોગપ્રત્યયિકી-ઉપયોગ શૂન્યતાના કારણે થનારી ક્રિયા.

(૨૦) અનવકાંક્ષાપ્રત્યયિકી-પોતાના તથા બીજાના શરીર તરફ બેદરકારી

सैव प्रत्ययो यस्याः सा-ऽनवकाङ्क्षा प्रत्ययिकी-२० प्रेम प्रत्ययिकी, प्रेमो-रागः मायालोभरूपः स प्रत्ययः कारणं यस्याः सा-प्रेमप्रत्ययिकी-२१ द्वेष प्रत्ययिकी, द्वेषः-क्रोधमानरूपः स प्रत्ययः कारणं यस्याः सा-द्वेष प्रत्ययिकी२२ प्रायोगिकी, मनो वाक्कायप्रयोगपूर्वकं जायमाना क्रिया-प्रायोगिकी-२३, सामुदानिकी, यथा-मनोवाक्कायप्रयोगगृहीतं कर्म समुदायावस्थं सत् स्थित्यनुभाव प्रदेशरूपतया व्यवस्थाप्यते-सा-सामुदानिकी-क्रिया-२४ ऐर्यापथिकी, इरणम्-ईर्यागमनं, तद्विशिष्ट स्तत्प्रधानो वा पन्थाः ईर्यापथस्तत्र भवा-ऐर्यापथिकी-२५ व्युत्पत्तिमात्रमिदं प्रदर्शितम्। प्रवृत्तिनिमित्तं तु-यत्-उपशान्तमोहस्य, क्षीण-मोहस्य सयोगिकेवलिनश्च सातावेदनीयकर्मतयाऽजीवस्य पुग्द्लराशेर्भवनं, सा-

---

लापरवाही करने से होनेवाली क्रिया।

(२१) प्रेमप्रत्ययिकी-माया और लोभ के कारण होनेवाली क्रिया।

(२२) द्वेषप्रत्ययिकी-क्रोध या मान से होनेवाली क्रिया।

(२३) प्रायोगिकी-मन वचन काय के व्यापार पूर्वक होनेवाली क्रिया

(२४) सामुदानिकी-मन वचन और कायके द्वारा गृहीत कर्म जिस क्रिया के द्वारा समुदाय अवस्था में होते हुए स्थिति, अनुभाग, और प्रदेशरूप में परिणित किये जाएं।

(२५) ऐर्यापथिकी-चलने फिरने से लगने वाली क्रिया। यह अर्थ सिर्फ व्युत्पत्तिनिमित्त से किया गया है, इसका प्रवृत्तिनिमित्तक आशय यह है-उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोग केवली को योग के निमित्त से सातावेदनीय कर्म का जिससे बन्ध होता है, वह ऐर्यापथिकी क्रिया है। इन उपशान्तमोह आदि में प्रमाद और कषाय का उदय

રાખવાથી થવાવાળી ક્રિયા.

(૨૧) પ્રેમપ્રત્યયિકી-માયા અને લાભના કારણે થનારી ક્રિયા.

(૨૨) દ્વેષપ્રત્યયિકી-ક્રોધ, અને માનથી થનારી ક્રિયા

(૨૩) પ્રાયોગિકી-મન, વચન, કાયા દ્વારા ગૃહીત કર્મો જે ક્રિયાની દ્વારા સમુદાય અવસ્થામાં થતાં થકા સ્થિતિ, અનુભાગ અને પ્રદેશ રૂપમાં પરિણત કરવામાં આવે.

(૨૫) ઐર્યાપથિકી-હાલવા ચાલવાથી લાગવાવાળી ક્રિયા. આ અર્થમાત્ર વ્યુત્પત્તિ નિમિત્તથી કરવામાં આવ્યો છે. આનો પ્રવૃત્તિ નિમિત્તક આશય આ પ્રમાણે છે-ઉપશાન્ત મોહ, ક્ષીણમોહ અને સયોગ કેવળીના યોગના નિમિત્તથી સાતાવેદનીય કર્મનો જેનાથી બન્ધ થાય છે તે ઐર્યાપિથકી ક્રિયા છે. આ ઉપશાન્ત મોહ આદિમાં પ્રમાદ અને કષાયનો ઉદય થતો નથી,

प्रयोगो-ऽभिलापकरणं कामभोगाशंसाप्रयोगः, रुचिरविषयस्पृहयाऽऽवृतेत्यर्थः ५ इत्येते पञ्चजीविताशंसादयो मारणान्तिकसंलेखना जोषणाया अतिचारा बोध्याः। एवञ्च-पञ्चाणुव्रतेषु त्रिगुणव्रतेषु चतुःशिक्षाव्रतेषु मारणान्तिकसंलेखनाजोषणासु च सर्वं सम्मिलितत्रयोदशव्रतेषु प्रत्येकं पञ्च-पञ्चातिचारैः पञ्चषष्टिरतिचाराः पूर्वोक्तरीत्या प्ररूपिताः, ते च-सर्वेऽतिचाराः सर्वथाऽणुव्रतशीलव्रतधारिभिः परिहर्तव्याः। यद्यपि-सम्यक्त्वस्याऽप्यतिचार पञ्चकस्य सद्भावेन सप्तति संख्यकाः सर्वेऽतिचारा भवन्ति, न तु-पञ्चषष्टि संख्यका एव,-तथापि-मूलप्रासाद पीठ रचनावत् सम्यक्त्वव्रतम् अणुव्रतादीनामाधारो वर्तते, तस्मात्-तस्या-ऽऽधारत्वा-णुव्रतशीलेषु न तदतिचारग्रहणं भवति। एवञ्च-उक्तरीत्या बहूपायदर्शनात्-

काम कहलाते हैं और स्पर्शन, रसना तथा घ्राण इन्द्रियों के विषय अर्थात् गंध, रस और स्पर्श भोग कहलाते हैं। इन काम और भोग की इच्छा करना कामभोगाशंसाप्रयोग है। तात्पर्य यह है कि मनोज्ञ विषयों की कामना करना कामभोगाशंसाप्रयोग है।

इस प्रकार पांच अणुव्रतों के, तीन गुणव्रतों के चार शिक्षाव्रतों के तथा मारणान्तिकसंलेखनाजोषणा के, सब मिलकर तेरह व्रतों के पांच-पांच अतिचार होने से १३×५=६५ अतिचार हुए। इन सब का प्ररूपण किया जा चुका। इन सब का अणुव्रतधारी एवं सप्त शील-धारी श्रावक को परिहार करना चाहिए। यद्यपि सम्यक्त्व के भी पांच अतिचार हैं, इस कारण अतिचारों की संख्या पैंसठ नहीं सत्तर होती है, तथापि सम्यक्त्व, महल की नींव की तरह सब व्रतों का आधार है। अतएव व्रतों के अतिचारों के साथ उसके अतिचारों की गणना

કહેવાય છે અને સ્પર્શન, રસના (જીભ) તથા ઘ્રાણ ઇન્દ્રિયોના વિષય અર્થાત્ ગંધ, રસ અને સ્પર્શ ભોગ કહેવાય છે. આ કામ અને ભોગની ઇચ્છા કરવી કામભોગાશંસાપ્રયોગ છે. તાત્પર્ય એ છે કે મનોજ્ઞ વિષયોની કામના કરવી કામભોગાશંસાપ્રયોગ છે.

'આ રીતે પાંચ અણુવ્રતોના ત્રણ ગુણવ્રતોના, ચાર શિક્ષાવ્રતોના તથા મારણાન્તિકસંલેખના જોષણાના,' બધાં મળીને તેર વ્રતોના પાંચ-પાંચ અતિચાર હોવાથી ૧૩×૫=૬૫ અતિચાર થયા આ બધાનું પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું આ બધાનો અણુવ્રતધારી અને સપ્તશીલધારી શ્રાવકે ત્યાગ કરવો જોઈએ. જો કે સમ્યક્ત્વનાં પણ પાંચ અતિચાર છે આથી અતિચારોની સંખ્યા પાંસઠ નહીં સીત્તેર થાય છે, તો પણ સમ્યક્ત્વ, મહેલના પાયાની જેમ બધા વ્રતોનો આધાર છે. આથી વ્રતોના અતિચારોની સાથે તેના અતિચારોની

एतेषु सम्यक्त्वव्रतशीलव्यतिक्रमस्थानेषु पञ्चषष्ट्यतिचारस्थानेषु व्रतशीलैः श्रावकैः प्रमादो न कर्तव्यः, अपितु अप्रमादो न्याय्यः ॥५३॥

मूलम्—एएसिं विप्पजहणाओ वयसुद्धी ॥५४॥

छाया—एतेषां विप्रहाणाद्व्रतशुद्धिः ॥५४॥

मूलम्—पाणाइवायाइहिंतो सव्वओ वेरमणं पंच महव्वया ।५५।

छाया—प्राणातिपातादिभ्यः सर्वतो विरमणं पञ्चमहाव्रतानि ॥५५॥

तत्त्वार्थदीपिका—तदेव मुक्तान्यगारिणो द्वादशव्रतानि सातिचाराणि अतिचारवर्जनाद् व्रतशुद्धिरित्यप्युक्तम्, सम्प्रति-पूर्वं यदुक्तं-'सव्वओ महं' सर्वतोमह-

---

नहीं की गई है । इस प्रकार अनेक प्रकार की हानियां होने से सम्यक्त्व के तथा व्रतों और शीलों के पैंसठ अतिचारों के विषय में श्रावकों को प्रमाद नहीं करना चाहिए, बल्कि अप्रमाद ही न्यायसंगत है ।.५३॥

'एएसिं विप्पजहणाओ' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—इन पूर्वोक्त अतिचारों का त्याग करने से व्रत की शुद्धि होती है ॥५४॥

'पाणाइवायाइहिंतो' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—प्राणातिपात आदि से सर्वथा विरत होना पांच महाव्रत हैं ॥५५॥

तत्त्वार्थदीपिका—इस प्रकार गृहस्थ के बारह व्रतों का अतिचार कथन किया गया और यह भी बतला दिया गया कि अतिचारों का

ગણતરી કરવામાં આવી નથી. આ રીતે અનેક પ્રકારની ક્ષતિઓ હોવાથી સમ્યક્ત્વના તથા વ્રતો અને શીલોના પાંસઠ અતિચારોના વિષયમાં શ્રાવકે પ્રમાદ કરવો જોઈએ નહીં, બલ્કિ અપ્રમાદ જ ન્યાયસંગત છે. ॥૫૩॥

'एएसिं विप्पजहणाओ वयसुद्धी' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-આ પૂર્વોક્ત અતિચારોનો ત્યાગ કરવાથી વ્રતની શુદ્ધિ થાય છે. ॥૫૪॥

'पाणाइवायाइहिंतो सव्वओ वेरमणं' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-પ્રાણાતિપાદ આદિથી સર્વથા વિરત થવું પાંચ મહાવ્રત છે. ॥૫૫॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—આ રીતે ગૃહસ્થના બાર વ્રતોનું અતિચાર સહિત કથન કરવામાં આવ્યું અને એ પણ બતાવી દેવામાં આવ્યું કે અતિચારોનો

दिति, सर्वतो यत्र विरतिर्भवति-तानि महाव्रतानि कथ्यन्ते' इत्यत्र पञ्चमहाव्रतानि प्रदर्श्यन्ते-'पाणाइवायाइहिंतो' इत्यादि। प्राणातिपातादिभ्यः सर्वतो विरमणं महाव्रतानि, तानि पञ्च, प्राणातिपातः १ आदिशब्देन-मृषावादा २ ऽदत्तादाना ३ ऽब्रह्मचर्य ४ परिग्रहाणां ५ ग्रहणं भवति तेभ्यः सर्वतो विरमणं महाव्रतानि-उच्यन्ते। तानि पञ्च, तत्र-प्राणातिपातः प्राणिवधः, मृषावादोऽसत्यभाषणम्, अदत्तादानं-स्तेयम्, अब्रह्मचर्यं मैथुनम्, परिग्रहो मूर्च्छा, एतेभ्यः सर्वतः सर्वप्रकारेण त्रिकरण-त्रियोगैर्विरमणं-विरतिर्निवृत्तिरिति भावः ॥५५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः--पूर्वं द्वादशव्रतानि सातिचाराणि प्रदर्शितानि, द्वादशव्रतीच तदनन्तरं पञ्च महाव्रतीभवितु मर्हतीति तत्प्रस्तावात्-मोक्षहेतुभूतानि

त्याग करने से ही व्रत की शुद्धि होती है। अब पहले जो कहा था-'सव्वओ महं' अर्थात् हिंसा आदि का पूर्ण रूपेण जो त्याग किया जाता है उसे महाव्रत कहते हैं, सो अब महाव्रतों का कथन किया जाता है

प्राणातिपात आदि से पूर्ण रूप से निवृत्त होना महाव्रत हैं। महाव्रत पांच हैं-(१) प्राणातिपात (२) मृषावाद (३) अदत्तादान (४) अब्रह्मचर्य और (५) परिग्रहसे सर्वथा विरत होना। प्राणातिपात का अर्थ प्राणी की हिंसा, मृषावाद का अर्थ मैथुन और परिग्रह का अर्थ मूर्छा है। इनसे सर्वथा अर्थात् तीन करण और तीन योग से विरत होना महाव्रत कहलाता है ॥५५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—इस पूर्व अतिचारों सहित बारह व्रतों का निरूपण किया गया। बारहव्रतों का धारक श्रावक भी बाद में महा-

---

ત્યાગ કરવાથી જ વ્રતની શુદ્ધિ થાય છે. હવે પહેલા જે કહ્યું હતું-'સવ્વઓ મહં' અર્થાત્ હિંસા આદિને પૂર્ણ રૂપથી જે ત્યાગ કરવામાં આવે છે તેને મહાવ્રત કહે છે જેથી હવે મહાવ્રતોનું કથન કરવામાં આવે છે-

પ્રાણાતિપાત આદિથી પૂર્ણ રૂપથી નિવૃત્ત થઈ જવું મહાવ્રત છે. મહાવ્રત પાંચ છે-(૧) પ્રાણાતિપાત (૨) મૃષાવાદ (૩) અદત્તાદાન (૪) અબ્રહ્મચર્ય અને (૫) પરિગ્રહથી સર્વથા વિરત થવું. પ્રાણાતિપાતનો અર્થ પ્રાણીની હિંસા મૃષાવાદનો અર્થ અસત્ય ભાષણ, અદત્તાદાનનો અર્થ ચોરી, અબ્રહ્મચર્યનો અર્થ મૈથુન અને પરિગ્રહનો અર્થ મૂર્છા છે. આ બધાંથી સર્વથા અર્થાત્ ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી વિરત થવું મહાવ્રત કહેવાય છે.॥૫૫॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—આની અગાઉ અતિચારો સહિત બાર વ્રતોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું. બારવ્રતોનો ધારક શ્રાવક પણ પાછળથી મહાવ્રતી

पञ्च महाव्रतान्याह-'पाणाइवायाइहिंतो सव्वओ वेरमण महव्वया, ते पंच' इति। प्राणातिपातः १ आदिशब्देन-मृषावादा २ ऽदत्तादाना ३ ऽब्रह्मचर्य ४ परिग्रहाः ५ गृह्यन्ते, तेभ्यः सर्वतः-सर्वांशेन द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावेन त्रिकरणै स्त्रियोगैः सर्वथा विरति-निवृत्तिः पञ्च महाव्रतान्युच्यन्ते। तत्र-प्राणातिपातः कषायादि प्रमादपरिणाम परिणतेना-ऽऽत्मना कर्त्रा मनोवाक्कायादिरूपयोग-व्यापारात् करणकारणाऽनुमोदन रूप कायव्यापारेण द्रव्य-भावभेदेन द्विविधेन प्राणिप्राणव्यपरोपणरूपः १ मृषावादस्तावत्-असत्यभाषणम् अनृतवचनम्-अलीकाभिभाषणम् २ अदत्तादानञ्च-अदत्तस्य स्व-स्वत्वनिवृति पूर्वक मवितीर्णस्या

व्रती हो सकता है, इस संबंध से मोक्ष के कारणभूत पांच महाव्रतों का कथन किया जाता है-

प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, अब्रह्मचर्य और परिग्रह से सर्वांश से-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से, तीनों करणों और तीनों योगों से सर्वथा निवृत्त होना महाव्रत है।

कषाय आदि प्रमाद रूप परिणाम से युक्त कर्त्ता आत्मा के द्वारा, मन वचन और काय आदि योग के व्यापार से, द्रव्य एवं भाव दोनों प्रकार से करण (स्वयं करना), कारण (करवाना) और अनुमोदन रूप कायव्यापार से प्राणी के प्राणों का व्यपरोपण करना प्राणातिपात है। असत्य भाषण करना, अनृत वचन बोलना, अलीक भाषण करना मृषावाद कहलाता है। दत्त का अर्थ है स्वामी का अपने स्वत्व को हटा लेना। जो दत्त न हो वह अदत्त कहलाता है। उस अदत्त को

થઇ શકે છે આ સંબંધથી મોક્ષના કારણભૂત પાંચ મહાવ્રતોનું કથન કરવામાં આવે છે-

પ્રાણાતિપાત, મૃષાવાદ, અદત્તાદાન, અબ્રહ્મચર્ય અને પરિગ્રહથી સર્વાંશે-દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભાવથી, ત્રણે કરણો અને ત્રણે યોગોથી સર્વથા નિવૃત્ત થવું મહાવ્રત છે.

કષાય આદિ પ્રમાદરૂપ પરિણામથી યુક્ત કર્તા આત્માદ્વારા, મન વચન અને કાયા વગેરે યોગના વ્યાપારથી દ્રવ્ય અને ભાવ બંને પ્રકારના કરણ (જાતે કરવું), કારણ (કરાવવું) અને અનુમોદન રૂપ કાયવ્યાપારથી પ્રાણીનાં પ્રાણોની હિંસા કરવી પ્રાણાતિપાત છે. અસત્ય ભાષણ કરવું, અનૃત (જુઠું) વચન બોલવું, અલીક ભાષણ કરવું મૃષાવાદ કહેવાય છે. દત્તનો અર્થ થાય છે માલિકનું-પોતાનું આધિપત્ય જતું કરવું. જે દત્ત ન હોય તે અદત્ત કહેવાય છે. તે અદત્તને ગ્રહણ કરવું અદત્તાદાન કહેવાય છે. સ્રીસંયોગ

ऽऽदानमुच्यते ३ अब्रह्मचर्य-स्त्रीसंयोगः, मैथुन मितियावत् ४ परिग्रहस्तु-मूर्च्छा; सचित्ताऽचित्तमिश्रेषु शास्त्रानुमतिरहितेषु द्रव्यादिषु ममत्वरूपः ५ एतेभ्यः प्राणाऽतिपातादिभ्यः सर्वतः-सर्वात्मना त्रिकरणै स्त्रियोगैर्मनोवाक्कायै विरमणं-निवृत्तिः पञ्च महाव्रतान्यवसेयानि । प्राणिवधादितो निवृत्तिर्व्रत मुच्यते, तत्र स्थितो हिंसादिलक्षणं क्रियाकलापं नाऽनुतिष्ठति, अपितु-अहिंसादिलक्षणमेव क्रियाकलापमनुतिष्ठतीति फलति । प्राणातिपातादिभ्यो निवृत्तस्य शास्त्रविहित क्रियाऽनुष्ठानात् सदसत्प्रवृत्तिनिवृत्तिक्रियासाध्यं कर्मक्षपणं भवति, कर्मक्षपणाच्च -मोक्षाऽवाप्तिरिति भावः । अत्रेदं बोध्यम्-प्राणातिपातस्तावत्-प्राणवियोजनम्,

---

ग्रहण करना अदत्तादान है । स्त्री संयोग या मैथुन अब्रह्मचर्य कहलाता है । मूर्च्छा अर्थात् शास्त्र की अनुमति जिनके लिए नहीं है ऐसे सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्य आदि में ममत्वधारण करना परिग्रह है।

इन प्राणातिपात आदि से पूर्ण रूपेण तीन करण और तीन योग से मन वचन काय से निवृत्त होना पांच महाव्रत हैं । हिंसा आदि से निवृत्त होना व्रत कहलाता है, व्रत में स्थित पुरुष हिंसा रूप क्रिया-कलाप नहीं करता है । इससे यह फलित हुआ कि वह अहिंसा रूप क्रियाकलाप ही करता है । भावार्थ यह है कि जो प्राणातिपात आदि से विरत होता है वह शास्त्रोक्त क्रियाओं का अनुष्ठान करता है, अतएव सत्प्रवृत्ति और असद्निवृत्ति रूप क्रियाओं द्वारा होने वाला कर्मक्षय करता है और कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

यहां यह समझ लेना चाहिए-प्राणातिपात का अर्थ है-प्राणवि-

અથવા મૈથુન અબ્રહ્મચર્ય કહેવાય છે. મૂર્છા અર્થાત્ જેના માટે શાસ્ત્રની અનુમતિ નથી એવા સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર દ્રવ્ય આદિમાં મમત્વ ધારણ કરવું પરિગ્રહ છે.

આ પ્રાણાતિપાત આદિથી પૂર્ણતયા, ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી-મન વચન કાયાથી નિવૃત્ત થવું પાંચ મહાવ્રત છે. હિંસા આદિથી નિવૃત્ત થવું વ્રત કહેવાય છે. વ્રતમાં રહેલો પુરૂષ હિંસારૂપ ક્રિયાકાન્ડ કરતો નથી. આનાથી એવું સાબિત થયું કે તે અહિંસારૂપ ક્રિયાકલાપ જ કરે છે. ભાવાર્થ એ છે કે જે પ્રાણાતિપાદ આદિથી વિરત થાય છે તે શાસ્ત્રોક્ત ક્રિયાઓનું અનુષ્ઠાન કરે છે આથી સત્પ્રવૃત્તિ અને અસત્નિવૃત્તિ રૂપ ક્રિયા દ્વારા થનારાં કર્મ ક્ષય કરે છે અને કર્મોનો ક્ષય કરીને મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી લે છે.

અહીં એક બાબત સમજી લેવાની જરૂર છે-પ્રાણાતિપાતનો અર્થ છે-

प्राणाश्चेन्द्रियादयः तत्सम्बन्धात्प्राणिनो जीवाः पृथिवीकायाद्येकेन्द्रियद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियास्तान्-जीवान् विज्ञाय-श्रद्धया प्रतिपद्य भावत-स्तस्याऽकरणं ज्ञानश्रद्धानपूर्वकं चारित्रमुच्यते, तच्च-सदसत्प्रवृत्तिनिवृत्तिक्रिया-लक्षणं चारित्रं मनोवाक् कायकृतकारिताऽनुमोदितभेदेनाऽनेकविधं बोध्यम्। उक्तञ्च-स्थानाङ्गे पञ्चमस्थाने प्रथमोद्देशके-'पंच महव्वया पण्णत्ता, तं जहा-सव्वाओ पाणाइवायाओ, जाव सव्वओ परिग्गहाओ वेरमणं' इति,। पञ्च महाव्रतानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-प्राणातिपाताद्विरमणम्, यावत्-सर्वस्मात् परिग्रहाद् विरमणम्-इति, आवश्यके दशवैकालिकेऽप्युक्तम् ॥५५॥

योजन। प्राण इन्द्रिय आदि दस हैं। उन्हीं के संबंध से जीव प्राणी कहलाते हैं। पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, ये सब प्राणी हैं। इन जीवों को जानकर एवं इन पर श्रद्धा करके भाव से प्राणातिपात न करना ज्ञान-श्रद्धान-पूर्वक चारित्र कहलाता है। सत् अनुष्ठान में प्रवृत्ति और असत् अनुष्ठान से निवृत्ति उसका लक्षण है। मन, वचन, काय, कृत, कारित और अनुमोदन आदि के भेद से चारित्र अनेक प्रकार का है। स्थानांगसूत्र के पंचम स्थान के प्रथम उद्देशक में कहा है-'पांच महाव्रत कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं-समस्त प्राणातिपात से विरत होना, जाव अर्थात् समस्त मृषावाद से विरत होना, समस्त अदत्तादान से विरत होना, समस्त मथुन से विरत होना और समस्त परिग्रह से विरत होना।' आवश्यक और दशवैकालिक सूत्र में भी ऐसा ही कहा है ॥५५।

પ્રાણુવિયોજન પ્રાણુ ઇન્દ્રિય આદિ દસ છે તેમના જ સંબંધથી જીવ પ્રાણી કહેવાય છે. પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિય, દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય, આ બધાં પ્રાણી છે આ જીવોને જાણીને અને એમનામાં શ્રદ્ધા કરીને ભાવથી પ્રાણુાતિપાત ન કરવો જ્ઞાન-શ્રદ્ધાનપૂર્વક ચારિત્ર કહેવાય છે. સત્ અનુષ્ઠાનમાં પ્રવૃત્તિ અને અસત્ અનુષ્ઠાનથી નિવૃત્ત તેનું લક્ષણ છે. મન, વચન, કાયા, કૃત, કારિત અને અનુમોદન આદિના ભેદથી ચારિત્ર અનેક પ્રકારના છે સ્થાનાંગસૂત્રના પંચમ સ્થાનના પ્રથમ ઉદ્દેશકમાં કહ્યું છે-'પાંચ મહાવ્રત કહેવામાં આવ્યા છે તે આ મુજબ છે-સમસ્ત પ્રાણુાતિપાતથી વિરત થવું, સમસ્ત મૃષાવાદથી વિરત થવું, સમસ્ત અદત્તાદાનથી વિરત થવું, સમસ્તમૈથુનથી વિરત થવું અને સમસ્ત પરિગ્રહથી વિરત થવું. આવશ્યક તેમજ દશવૈકાલિક સૂત્રમાં પણ આ પ્રમાણે જ કહેવામાં આવ્યું છે. ॥૫૫॥

मूलम्—तत्थेज्जट्टं ईरियाइया पणवीसं भावणाओ ॥५६॥

छाया—'तत्स्थैर्यार्थम्—ईर्यादिकाः पञ्चविंशति भावनाः' ॥५६॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं देशतो हिंसादिविरतिलक्षण पञ्चाणुव्रतादिस्वरूपं प्ररूपितम्, सम्प्रति—तेषां व्रतानां स्थिरता सम्पादनार्थं तावद् ईर्यादिकाः पञ्चविंशतिर्भावनाः प्ररूपयितुमाह—'तत्थेज्जट्टं' इत्यादि। तत्स्थैर्यार्थम्—तेषां पूर्वोक्तानां व्रतानां स्थूल प्राणातिपातविरमणादिलक्षणानां स्थिरताकरणार्थं दृढी-करणार्थम् ईर्यादिकाः-ईर्यादिलक्षणाः पञ्चविंशतिर्भावना भवन्ति। तत्र-ईर्या-ईरणं यतनया गमनम् १ आदिपदेन—मनः प्राशस्त्य २ वचः प्राशस्त्ये ३ एषणा ४ आदाननिक्षेपरूपाः५ पञ्च प्रथममहाव्रतस्य भावनाः१ आलोच्य सम्भाषणम्१ क्रोध

'तत्थेज्जट्टं ईरियाइया' इत्यादि ॥५६॥

सूत्रार्थ—व्रतों की स्थिरता के लिए ईर्यादिक पच्चीस भावनाएं हैं।५६।

तत्त्वार्थदीपिका—पहले एक देश से हिंसादि से विरति रूप पांच अणुव्रत आदि का लक्षण कहा गया है, अब उन व्रतों में स्थिरता लाने के लिए ईर्या आदि पच्चीस भावनाओं का प्ररूपण करते हैं-पूर्वोक्त स्थूल प्राणातिपात विरमण आदि व्रतों की स्थिरता के लिए अर्थात् उन्हें दृढ करने के लिए ईर्या आदि पच्चीस भावनाएं कही गई है। वे इस प्रकार है।

(१) ईर्या अर्थात् यतनापूर्वक गमन करना (२) मन की प्रशस्तता (३) वचन की प्रशस्तता (४) एषणा (५) आदाननिक्षेप, यह पांच प्रथम व्रत की भावनाएं हैं।

(१) सोच-विचार कर भाषण करना (२) क्रोधत्याग (३) लोभ-

'तत्थेज्जट्टं ईरियाइया पणवीसं भावणाओ'

સૂત્રાર્થ—વ્રતોની સ્થિરતા માટે ઈર્યાદિક પચ્ચીસ ભાવનાઓ છે ।૫૬।

તત્ત્વાર્થદીપિકા—અગાઉ એકદેશથી હિંસાદિથી વિરતિરૂપ પાંચ અણુવ્રત આદિના લક્ષણ કહેવામાં આવ્યા છે હવે તે વ્રતોમાં સ્થિરતા લાવવાના આશયથી ઈર્યા વગેરે પચ્ચીસ ભાવનાઓનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ—

પૂર્વોકત સ્થૂલપ્રાણાતિપાત વિરમણ વગેરે વ્રતોની સ્થિરતા માટે અર્થાત્ તેમને દૃઢ કરવા માટે ઈર્યા વગેરે પચ્ચીસ ભાવનાઓ કહેવામાં આવી છે. તે આ પ્રમાણે છે-(૧) ઈર્યા અર્થાત્ યતનાપૂર્વક ગમન કરવું (૨) મનની પ્રશસ્તતા (૩) વચનની પ્રશસ્તતા (૪) એષણા (૫) આદાન નિક્ષેપ આ પાંચ પ્રથમ વ્રતની ભાવનાઓ છે.

(૧) સમજી વિચારીને બોલવું (૨) ક્રોધ ત્યાગ (૩) લોભત્યાગ (૪)

२ लोभ ३ भय ४ हास्येषु ५ अनृतविवर्जनञ्चेति पञ्च द्वितीय महाव्रतस्य भावनाः २ अष्टादशविध विशुद्धवसतेर्याचनापूर्वकं सेवनम् १ प्रतिदिनमवग्रहं याचित्वा तृणकाष्ठादिग्रहणम् २ पीठफलकाद्यर्थमपि वृक्षादीनां छेदनम् ३ साधारण पिण्डस्याऽधिकतो न सेवनम् ४ साधुवैयावृत्त्यकरणञ्चे ५ ति पञ्च तृतीयमहाव्रतस्य भावनाः ३। स्त्रीपशुपण्डकरहितवसतिसेवनम् १ स्त्रीकथावर्जनम् २ स्त्र्यङ्गोपाङ्गाऽनवलोकनम् ३ पूर्वभुक्तस्मुरतरतेरस्मरणम् ४ प्रतिदिनं भोजनपरित्यागश्चे ५ ति पञ्च चतुर्थमहाव्रतस्य भावनाः ४ प्रशस्ताऽप्रशस्तशब्द १ रूप २ रस ३ गन्ध ४

त्याग (४) भयत्याग और (५) हास्यत्याग यह द्वितीयव्रत की पांच भावनाएं हैं।

(१) अठारह प्रकार से विशुद्ध वसति का याचना पूर्वक सेवन करना (२) प्रतिदिन अवग्रह की याचना करके तृण काष्ठ आदि को ग्रहण करना (३) पाट आदि के लिए भी वृक्ष आदि का छेदन न करना (४) साधारण पिण्ड का अधिक सेवन न करना अर्थात् अनेक साधुओं का जो सम्मिलित आहार हो उसमें से अपने उचित भाग से अधिक न लेना और (५) साधुओं का वैयावृत्य करना, यह तृतीयव्रत की पांच भावनाएं हैं।

(१) स्त्री, पशु और पण्डक से रहित वसति का सेवन करना (२) स्त्रीकथा न करना (३) स्त्री के अंगोपांगों का अवलोकन नहीं करना (४) पूर्व भुक्त भोगों का स्मरण न करना और (५) प्रतिदिन गरिष्ठ भोजन का परित्याग करना, यह चौथे व्रत की पांच भावनाएं हैं।

ભયત્યાગ અને (૫) હાસ્યત્યાગ, આ બીજાવ્રતની પાંચ ભાવના છે.

(૧) અઢાર પ્રકારથી વિશુદ્ધ વસ્તીનું યાચનાપૂર્વક સેવન કરવું (૨) દરરોજ અવગ્રહની યાચના કરીને તૃણ કાષ્ઠ વગેરેને ગ્રહણ કરવા (૩) પાટ વગેરે માટે પણ વૃક્ષ વગેરેનું છેદન ન કરવું (૪) સાધારણ પિણ્ડનું અધિક સેવન ન કરવું અર્થાત્ અનેક સાધુઓ માટેનો જે ભેગો કરેલો આહાર હોય તેમાંથી પોતાના ભાગે હોય તેનાથી વધુ ન લેવું અને (૫) સાધુઓની વૈયાવચ્ચ (સેવા) કરવી આ ત્રીજા વ્રતની પાંચ ભાવનાઓ છે.

(૧) સ્ત્રી, પશુ અને નપુંસક વગરની વસતીમાં વાસ કરવો (૨) સ્ત્રીકથા ન કરવી (૩) સ્ત્રીના અંગોપાંગોનું અવલોકન ન કરવું (૪) પૂર્વ ભોગવેલા ભોગોનું સ્મરણ ન કરવું અને (૫) દરરોજ સ્વાદિષ્ટ ભોજનનો પરિત્યાગ કરવો, આ ચોથા વ્રતની પાંચ ભાવના છે.

स्पर्शेषु ५ रागद्वेषवर्जनं शब्दादिभेदात् पञ्च पञ्चमहाव्रतस्येति मिलिताः पञ्चविंशतिर्भावनाः कर्तव्याः ॥२५॥५६॥

'तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं सर्वप्राणातिपातविरमणादिलक्षणानि पञ्चमहाव्रतानि प्ररूपितानि, सम्प्रति—तेषां व्रतानां दाढर्चार्थं मेकैकस्य महाव्रतस्य पञ्च पञ्चभावनाः प्ररूपयितुमाह—'तत्थेज्जइं ईरियाइया पणवीसं भावणाओ' इति। तत्स्थैर्यार्थम्—इर्यादिकाः पञ्चविंशतिर्भावना भावनीयाः, तेषां पूर्वोक्तस्वरूपाणां सर्वत,

(१) प्रशस्तरूप (२) रस (३) गंध (४) स्पर्श और (५) शब्द में राग और अप्रशस्त रूपादि में द्वेष धारण न करना, यह पांच पंचमव्रत की भावनाएं हैं। सब मिलकर पच्चीस भावनाएं होती हैं ॥५६॥

तत्त्वार्थनिर्युक्त—पहले सम्पूर्ण प्राणातिपातविरमण आदि पांच महाव्रतों की प्ररूपणा की गई, अब उन व्रतों की दृढता के लिए—एक-एक महाव्रत की पांच-पांच भावनाएं कहते हैं।

उन व्रतों की स्थिरता के लिए ईर्या आदि पच्चीस भावनाओं का सेवन करना चाहिए अर्थात् सम्पूर्ण प्राणातिपातविरमण आदि पांच महाव्रतों का तथा स्थूलप्राणातिपात विरमण आदि पांच अणुव्रतों को दृढ करने के लिए पच्चीस भावनाएं कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) ईर्यासमिति (२) मनोगुप्ति (३) वचनगुप्ति (४) एषणा (५) आदाननिक्षेपणा (६) आलोच्य संभाषण—सोच-विचार करके बोलना (७) क्रोध का त्याग (८) लोभ का त्याग (९) भय का त्याग (१०) हास्य

(१) પ્રશસ્ત રૂપ (૨) રસ (૩) ગંધ (૪) સ્પર્શ અને (૫) શબ્દમાં રાગ તથા અપ્રશસ્ત રૂપાદિમાં દ્વેષ ધારણ ન કરવો એ પાંચ પાંચમાવ્રતની ભાવનાઓ છે. બધી મળીને પચ્ચીસ ભાવનાઓ થાય છે ॥ ૫૬ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—અગાઉ સમ્પૂર્ણ પ્રાણાતિપાત વિરમણ આદિ પાંચ મહાવ્રતોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી હવે આ વ્રતોની દ્રઢતાને માટે એક એક મહાવ્રતની પાંચે પાંચ ભાવનાઓ કહીએ છીએ

તે વ્રતોની સ્થિરતા માટે ઇર્યા આદિ પચ્ચીસ પ્રકારની ભાવનાઓનું સેવન કરવું જોઈએ અર્થાત્ સમ્પૂર્ણ પ્રાણાતિપાત વિરમણ આદિ પાંચ અણુવ્રતોને દ્દઢ કરવા માટે પચ્ચીસ ભાવનાઓ કહેવામાં આવી છે જે આ પ્રમાણે છે– (૧) ઇર્યાસમિતિ (૨) મનોગુપ્તિ (૩) વચનગુપ્તિ (૪) એષણા (૫) આદાન નિક્ષેપણા (૬) આલોચ્ય સંભાષણ– સમજી વિચારીને બોલવું (૭) ક્રોધનો ત્યાગ (૮) લોભનો ત્યાગ (૯) ભયનો ત્યાગ (૧૦) હાસ્યનો ત્યાગ (૧૧)

प्राणातिपातविरमणादि लक्षणानां पञ्च महाव्रतानां देशतः प्राणातिपातादिविरति-लक्षणाऽणुव्रतानाञ्च स्थैर्यार्थं दृढतासम्पादनार्थम् ईर्यासमितिः १ आदिपदेन-मनोगुप्तिः २ वचोगुप्तिः ३ एषणा ४ आदाननिक्षेपणा आलोच्य सम्भाषणम् ६ क्रोध प्रत्याख्यानम् ७ लोभप्रत्याख्यानम् ८ भयप्रत्याख्यानम् ९ हास्य प्रत्याख्यानम् १० अष्टादशविधविशुद्धवसतेर्याचनापूर्वकं सेवनम् ११ प्रतिदिनमवग्रहं याचित्वा तृणकाष्ठादिग्रहणम् १२ पीठ फलकाद्यर्थमपि वृक्षादीना मच्छेदनम् १३ साधारण-पिण्डस्याऽधिकतो न सेवनम् १४ साधु वैयावृत्यकरणञ्च १५ स्त्रीपशुनपुंसक संसक्तशयनाऽऽसनवर्जनम् १६ रागयुक्तस्त्रीकथा वर्जनम् १७ स्त्रीणां मनोहरेन्द्रिय-वर्जनम् १८ पूर्वरतानुस्मरणवर्जनम् १९ प्रतिदिनं भोजनपरित्यागश्च २० मनो-ज्ञाऽमनोज्ञस्पर्श २१ रस २२ गन्ध २३ वर्ण २४ शब्दानां २५ रागद्वेषवर्जनञ्चे-त्येवं पञ्चविंशतिर्भावनाः। तत्र-प्रथमाः पञ्च भावनाः ईर्यासमितेः (प्राणाति-

का त्याग (११) अठारह प्रकार से विशुद्ध वसति का याचनापूर्वक सेवन (१२) प्रतिदिन अवग्रह की याचना करके तृण काष्ठ आदि को ग्रहण करना (१३) पीठ फलक आदि के लिए भी वृक्ष आदि को न काटना (१४) साधारण पिण्ड का अपने समुचित भाग से अधिक सेवन न करना (१५) साधुओं का वैयावृत्य करना (१६) स्त्री, पशु और नपुं-सक के संसर्गवाले शय्या एवं आसन के सेवन से बचना (१७) राग-युक्त स्त्री कथा का त्याग (१८) स्त्रियों की मनोहर इन्द्रियों को न देखना (१९) पहले भोगे भोगों का स्मरण न करना (२०) प्रतिदिन सरस भोजन का त्याग करना-कभी-कभी उपवास आदि करना (२१-२५) मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द पर राग-द्वेष न करना, ये पच्चीस भावनाएं हैं।

અઢાર પ્રકારથી વિશુદ્ધ વસતીનું યાચનાપૂર્વક સેવન કરવું (૧૨) દરરોજ અવગ્રહની યાચના કરીને તૃણ કાષ્ઠ વગેરેનું ગ્રહણ કરવું (૧૩) પીઠ-પાટ વગેરે માટે પણ વૃક્ષ વગેરે ન કાપવા (૧૪) સાધારણ પિણ્ડનું પોતાના ભાગથી વધારે સેવન ન કરવું (૧૫) સાધુઓની વૈયાવચ્ચ (શુશ્રૂષા) કરવી (૧૬) સ્ત્રી પશુ અને નપુંસકના સંસર્ગવાળી પથારી અને આસનના સેવનથી દૂર રહેવું (૧૭) રાગયુક્ત સ્ત્રીકથાનો ત્યાગ (૧૮) સ્ત્રીઓની મનોહર ઈન્દ્રિયોને ન જોવી (૧૯) પૂર્વે ભોગવેલા ભોગોનું સ્મરણ ન કરવું (૨૦) દરરોજ સ્વાદુ ભોજ-નનો ત્યાગ કરવો-કયારેક કયારેક ઉપવાસ વગેરે કરવા (૨૧-૨૫) મનોજ્ઞ અને અમનોજ્ઞ સ્પર્શ રસ, ગંધ, રૂપ તથા શબ્દ પર રાગ-દ્વેષ ન કરવો. આ પચ્ચીસ ભાવનાઓ છે.

पातविरतेः) द्वितीयाः पञ्च भावनाः–असत्यविरतेः, तृतीयाः पञ्चभावनाः स्तेयविरतेः, चतुर्थ्यः पञ्च भावनाः–ब्रह्मचर्यस्य, पञ्चम्यः पञ्च भावनाः परिग्रहविरतेरवगन्तव्याः तत्र तावत्–ईरणं गमनम्–ईर्या, तस्यां समितिः–सङ्गतिः श्रुतरूपेणाऽऽत्मनः परिणतिः, तदुपयोगेन पुरस्तान् युगमात्रया दृष्ट्या स्थावरजङ्गमानि भूतानि परित्यजन् अप्रमत्तः सन् गच्छेत्–इत्यादिरूपो विधिः ईर्यासमिति रुच्यते१ मनोगुप्तिश्च–मनसो रक्षणम्, आर्तरौद्रध्यानाऽपचारः–धर्मध्याने उपयोगश्च२ वचोगुप्तिश्च–एषणासमितिरूपा ३ एषणा च–त्रिविधा, गवेषण १ ग्रहण २ ग्रास ३ भेदात्। तस्यामेषणायामसमितस्य षण्णामपि कायाना मुपधानापत्तिः स्यादतस्तत्संरक्षणार्थं सकलेन्द्रियोपयोगलक्षणा–एषणासमितिः कर्तव्या ४ आदाननिक्षेपणा

इनमें से प्रारंभ की पांच भावनाएं प्राणातिपात विरमणव्रत की, दूसरी पांच असत्यविरति की, तीसरी पांच स्तेयविरति की, चौथी पांच ब्रह्मचर्यव्रत की और पांचवीं भावनाएं परिग्रहविरति की हैं।

इन भावनाओं का अर्थ इस प्रकार है–गमन करने में यतना रखना ईर्यासमिति है अर्थात् चार हाथ आगे की भूमि देखकर स्थावर और त्रस जीवों की रक्षा करते हुए, अप्रमत्त भाव से गमन करना प्रथम भावना है। मनोगुप्ति का अर्थ है आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान से बच कर धर्मध्यान में लीन होना। वचन को गोपन करना अर्थात् मौन धारण करना वचनगुप्ति है। एषणा के तीन भेद हैं–गवेषणा, ग्रहणैषणा और ग्रासैषणा। जो एषणा समिति से रहित होता है, वह छहों कायों का विराधक होता है, अतएव जीवों की रक्षा के लिए

આમાંથી પ્રારંભની પાંચ ભાવનાઓ પ્રાણાતિપાત વિરમણ વ્રતની બીજી પાંચ અસત્યવિરતિની ત્રીજી પાંચ સ્તેયવિરતિની, ચોથી પાંચ બ્રહ્મચર્ય વ્રતની અને પાંચમી પાંચ ભાવનાઓ પરિગ્રહ વિરતિની છે.

આ ભાવનાઓનો અર્થ આ પ્રમાણે છે. ચાલવામાં જતના રાખવી ઈર્યાસમિતિ છે. અર્થાત્ ચાર હાથ આગળની જમીનનું બારીકાઇથી નિરીક્ષણ કરીને સ્થાવર તેમજ ત્રસ જીવોની રક્ષા કરતા થકા અપ્રમત્ત ભાવથી ગમન કરવું એ પ્રથમ ભાવના છે. મનોગુપ્તિનો અર્થ છે. આર્ત્તધ્યાન તથા રૌદ્ર ધ્યાનથી અળગા રહીને ધર્મધ્યાનમાં લીન થવું, વચનને ગોપવું અર્થાત્ મૌનવ્રત ધારણ કરવું વચનગુપ્તિ છે. એષણાના ત્રણ ભેદ છે–ગવેષણા, ગ્રહણૈષણા અને ગ્રાસૈષણા જેઓ એષણા સમિતિથીરહિત હોય છે તે છએ કાયોના વિરાધક હોય છે આથી જીવોની રક્ષા માટે એષણાસમિતિનું પાલન કરવું

समितिस्तु-औधिक-औपग्रहिकभेदेन द्विविधस्योपधेर्ग्रहण-स्थापनलक्षणयोरादान निक्षेपणयोरागमनानुसारेण प्रत्यवेक्षण-प्रमार्जनरूपा समिति रुच्यते५ आलोकित, पानभोजनन्तु-प्रतिगृहे पात्रमध्यपतितपिण्डस्य चक्षुराद्युपयोगेन तत्समुत्थाऽऽ-गन्तुकत्रससंरक्षणार्थं प्रत्यपेक्षणं कर्तव्यम् उपाश्रयमागत्य च पुनरपि प्रकाशयुक्त-प्रदेशे स्थित्वा पानभोजनं सुप्रत्यवेक्षितं कृत्वा प्रकाशप्रदेशाऽवस्थितेन वल्गनं कर्तव्य मिति बोध्यम् इत्येवं रीत्या-एताः पञ्चभावनाः पुनः पुनर्भावयन् वासयन् बाहुल्येन सम्पादयन् समस्ताम् प्राणातिपातलक्षणामहिंसां पातुं समर्थो भवतीति भावः। अथाऽनृतविरतिलक्षण सत्यवचनस्य दाढर्यार्थं पूर्वोक्त पञ्च भावनासु प्रथमं तावत्-अनुवीचिभाषणमुच्यते, अनुवीचिशब्दो देशीयः-आलोचनार्थकः। तथा च

एषणासमिति का पालन करना चाहिए। औधिक और औपग्रहिक के भेद से दोनों प्रकार की उपधि के धरने-उठाने में, आगम के अनुसार प्रमार्जन एवं प्रतिलेखन का ध्यान रखना आदाननिक्षेपणा समिति है।

पात्र में पडे हुए या रक्खे हुए आहार को चक्षु आदि का उपयोग लगा कर, उसमें उत्पन्न हुए अथवा बाहर से आए जीवों की रक्षा के लिए देखना चाहिए। उपाश्रय में आकर पुनः प्रकाशयुक्त प्रदेश में स्थित होकर आहार-पानी को भली-भांति देखकर प्रकाशपूर्ण स्थान में ही उसे खाना चाहिए। यह आलोकितपानभोजन भावना है। इन पांच भावनाओं से सम्पन्न श्रमण पूर्णरूपेण प्राणातिपातविरमण व्रत का पालन करने में समर्थ होता है।

मृषावादविरमणव्रत की दृढता के लिए इन पांच भावनाओं का सेवन करना चाहिए-'अनुवीचिभाषण' यहां 'अनुवीचि शब्द देशीय

જોઇએ, ઔધિક અને ઔપગ્રહિકના ભેદથી બને પ્રકારની ઉપધિને ઉપાડવા તથા મૂકવામાં આગમ અનુસાર પ્રમાર્જન તથા પડિલેહણાનું ધ્યાન રાખવું આદાનનિક્ષેપણા સમિતિ છે.

પાત્રમાં પડેલા અથવા રાખેલા આહારને ચક્ષુ વગેરેનો ઉપયોગ લગાવીને, તેમાં ઉત્પન્ન થયેલા અથવા બહારથી આવેલા જીવોની રક્ષા માટે અવલોકન કરવું જોઇએ. ઉપાશ્રયમા આવીને ફરી એકવાર પ્રકાશવાળી જગ્યાએ બેસીને આહાર-પાણીને સારી પેઠે જોઇ તપાસીને અજવાળું હોય એવી જગ્યાએ જ તેનો ઉપભોગ કરવો જોઇએ. આ છે આલોકિતપાન ભોજન ભાવના આ પાંચ ભાવનાઓથી સંપન્ન સાધુ સંપૂર્ણતયા પ્રાણાતિપાત વિરમણવ્રતનું પાલન કરવામાં સમર્થ થાય છે.

મૃષાવાદ વિરમણવ્રતની દ્રઢતા કાજે આ પાંચ ભાવનાઓનું સેવન કરવું

-समीक्ष्याऽऽलोच्य वचनप्रवर्तनम् अनुवीचिभाषणं वोध्यम्, अनालोचितवक्ता कदाचिन्मृषा मपि ब्रूयात् ततश्चाऽऽत्मनोलाघव-वैर-पीडाः खलु-ऐहिकानि-फलानि स्युः, परप्राणोपघातश्चाऽवश्यंभावी, अतः-समीक्ष्योदाहरणेनाऽऽत्मानं भावयन् न मृषाभाषण जनितपापेन सम्पृक्तो भवति १ क्रोधस्य कषायविशेषस्य मोहकर्मोदयनिष्पन्नमद्वेषपायस्याऽप्रीतिलक्षणस्य प्रत्याख्यानं-निवृत्तिरनुवृत्तिर्वा, तेन क्रोधप्रत्याख्यानेन सततमात्मानं भावयेत्, तथा भावयन्-त्रासयंश्च सत्यादि-भ्यो न व्यभिचरतीति २ एवं-लोभप्रत्याख्यानं तावत् तृष्णालक्षणस्य लोभस्य प्रत्या-ख्यानं-परित्यागः, तेनाऽप्यात्मानं भावयन् न वितथमापीभवति ३ एवं-भयशी-

है और उसका अर्थ है 'विचार करना'। आशय यह हुआ कि सोच-समझ कर बोलना 'अनुवीचिभाषण' कहलाता है। बिना विचारे बोलने वाला कदाचित् मिथ्या भाषण भी करता है। इससे आत्मा की लघुता, वैर और पीडा आदि इस लोक संबंधी फलों' की प्राप्ति होती है और दूसरे के प्राणों का घात होता है। अतएव जो सोच-विचार कर भाषण करता है वह कभी मिथ्या भाषण के पापसे लिप्त नहीं होता।

मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले द्वेष रूप एवं अप्रीति लक्षणवाले क्रोध का त्याग करना चाहिए। क्रोध प्रत्याख्यान से आत्मा की निरन्तर भावना करनी चाहिए। जो ऐसी भावना करता है वह असत्य आदि से बच जाता है। तृष्णा रूप लोभ का भी परित्याग करना चाहिए। जो लोभ प्रत्याख्यान से आत्मा को भावित करता है वह मिथ्याभाषी नहीं होता। इसी प्रकार जो भय या भीरुता का

જોઇએ-'અનુવીચિભાષણ' અહીં 'અનુવીચિ' શબ્દ દેશીય છે અને તેનો અર્થ થાય છે 'વિચાર કરવો તાત્પર્ય એ થયું કે સમઝી વીચારીને બોલવું 'અનુ-વીચિભાષણ' કહેવાય છે વગર વિચાર્યે બોલનાર કવચિત્ મિથ્યાભાષણ પણ કરતો હોય છે. આથી આત્માની લઘુતા વેર અને પીડા વગેરે આલોક સંબંધી ફળોની પ્રાપ્તિ થાય છે અને બીજાના પ્રાણોની હિંસા થાય છે. આથી જે સમઝી -વિચારીને બોલે છે તે કયારેય પણ મિથ્યાભાષણના પાપથી ખ[illegible] નથી.

મોહનીયકર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થનારા દ્વેષરૂપ તે[illegible] લક્ષણ
વાળા ક્રોધનો ત્યાગ કરવો જોઇએ ક્રોધ પ્રત્યાખ્યાનથી [illegible] રન્તર
ભાવના કરવી જોઇએ જે આવી ભાવના ભાવે છે તે અ[illegible] બચી
જાય છે. તૃષ્ણારૂપી લોભનો પણ પરિત્યાગ કરવો જો[illegible] ત્યા-
ખ્યાનથી આત્માને ભાવિત કરે છે તે મિથ્યાભાષી હો[illegible] જ

लस्य भीरुत्वस्य प्रत्याख्यानेनाऽपि-आत्मानं भावयन् नाऽनृतं कदाचिद् वदति भयशीलो जनः कदाचित् वितथमपि भाषते चौरोऽथपिशाचो वा मया रात्रौ दृष्ट इति, तस्माद्-निर्भय वासनाध्यान मात्मनि भावयेत्४ एवं-मोहोद्भवपरिहासलक्षणहास्य परिणतः आत्मपरिहासं कुर्वन् परेण सह वितथमपि भाषेत, तस्मात्-तस्य प्रत्याख्यानेनाऽऽत्मानं भावयन् सत्यव्रतपालनक्षमो भवति १० एवं-खलु-अनुवीचि-अवग्रहयाचनं तावत्-आलोच्याऽवग्रहयाचनरूपं बोध्यम् ११ अवग्रहश्च-देवेन्द्रराज-गृहपति शय्यातरसाधर्मिकभेदेन पञ्चविधः, तत्र-यो यत्र स्वामी स एव याचनीयः, अस्वामियाचने दोषाधिक्यं स्यात् । तस्मात्-'आलोच्याऽवग्रहो याच्य.' इत्येव

प्रत्याख्यन करता है, वह कभी असत्य भाषण नहीं करता डरपोक होता है वह मिथ्या भाषण भी करता है, जैसे-आज रात्रि में मुझे चोर अथवा पिशाच दिखाई दिया था इत्यादि । अतः अपने आपको निर्भय बनना चाहिए। मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न एवं परिहास लक्षण वाला हास्य जो करता है वह अपनी हंसी करता हुआ दूसरे के प्रति मिथ्या भाषण भी करता है । अतएव हास्य के प्रत्याख्यान से आत्मा को भावित करने वाला सत्य व्रत का पालन करने में समर्थ होता है ।

अस्तेयव्रत की पांच भावनाएं-सोच-विचार कर अवग्रह की याचना करना चाहिए। अवग्रह पांच प्रकार का है-(१) इन्द्र (२) राजा (३) गृहपति (४) शय्यातर और (५) साधर्मिक का अवग्रह । जहां जो स्वामी हो वहां उसी से याचना करना चाहिए । जो स्वामी नहीं है

રીતે ભય અથવા કાયરતાનુ પ્રત્યાખ્યાન કરે છે તે કદી પણ અસત્ય બોલતો નથી. જે ડરપોક હોય છે તે મિથ્યાભાષણ પણ કરતો હોય છે જેમ કે આજે રાતે મને ચોર અથવા પિશાચ દેખાયા હતા. વગેરે આથી દરેકે પોતાની જાતને નિર્ભય બનાવવી જોઈએ મોહનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન લક્ષણવાળું હાસ્ય જે કરે છે તે પોતાની મશ્કરી કરતો થકો બીજાની મિથ્યાભાષણ પણ કરે છે. આથી હાસ્યના પ્રત્યાખ્યાનથી આત્માને પ્રભા-વનાર સત્યવ્રતનું પાલન કરવા સમર્થ બને છે.

તેયવ્રતની પાંચ ભાવનાઓ—સમજી વિચારીને અવગ્રહની યાચના [illegible] અવગ્રહ [illegible]ના છે-(૧) ઈન્દ્ર (૨) રાજા (૩) ગૃહપતિ [illegible] અને ([illegible] નો અવગ્રહ જ્યાં જે માલિક હોય ત્યાં યાચના [illegible], જે માલિક નથી તેની પાસે યાચના

थिकीतितत्त्वम् २५ ऐर्यापथिकी क्रिया यद्यपि-जीव व्यापाररूपा, तथाऽप्यजीवस्य-पुद्गलराशेः प्रधान विवक्षयाऽजीवक्रियेयमभिहिता एवमेताः पञ्चविंशतिः क्रियाः साम्परायिककर्महेतवो भवन्ति उक्तञ्च स्थानाङ्गे २ स्थाने १ उद्देशके ६० सूत्रे-'पंचिंदिया पण्णत्ता, चत्तारि कसाया पण्णत्ता, पंच अविरया पण्णत्ता, पंचवीसा किरिया पण्णत्ता' इति । पञ्चेन्द्रियाणि प्रज्ञप्तानि, चत्वारः कषायाः प्रज्ञप्ताः-पञ्चाऽव्रतानि प्रज्ञप्तानि, पञ्चविंशतिः क्रियाः प्रज्ञप्ताः, इति । नवतत्त्वप्रकरणगाथाया मुक्तम्-'इंदिय१ कसाय२ अव्वय३ जोगा ९ पंच १ चउ २ पंच३ तिन्नि कसाया किरियाओ पणवीसइमाओ अणुक्कमसो इति। इन्द्रिय कषाया-व्रत-योगाः पञ्चचत्वारः-पञ्च-त्रयः कषायाः क्रियाः पञ्चविंशतिः, इमाः अनुक्रमशः, इति तथाऽऽस्रवस्य मिथ्यात्वाऽव्रत२ प्रमाद३ कषाय४ अशुभ-

जिसमें और कषाय का लेश भी न हो, जिसके कारण दो समय की स्थिति वाले कर्म का बन्ध होता है। यद्यपि यह क्रिया जीव का व्यापार ही है तथापि अजीव शरीर या वचन की प्रधानता की विवक्षा होने से अजीव क्रिया कही गई है।

इस प्रकार इन पच्चीस क्रियाओं में से चौवीस साम्परायिक आस्रव का कारण होती हैं और ऐर्यापथिकी क्रिया ईर्यापथ-आस्रवका कारण होती है, स्थानांगसूत्र के दूसरे स्थानक के प्रथम उद्देशक के ६० वें सूत्र में कहा है-'पांच इन्द्रिया, चार कषाय, पांच अव्रत और पच्चीस क्रियाएं कही गई हैं।'

नवतत्त्व प्रकरण में भी कहा है-इन्द्रिय पांच, कषाय चार, अव्रत पांच, योग तीन और क्रियाएं पच्चीस आस्रव का कारण कही गई हैं।

तथा (१) मिथ्यात्व (२) अव्रत (३) प्रमाद (४) कषाय (५) अशुभ-

જેમાં પ્રમાદ અને કષાય લેશમાત્ર ન હોય, જેના કારણે બે સમયની સ્થિતિવાળા કર્મ બંધાય છે. જો કે તે ક્રિયા જીવનો વ્યાપાર જ છે તો પણ અજીવ શરીર અથવા વચનની પ્રધાનતાથી વિવક્ષા થવાથી અજીવક્રિયા કહેવાય છે-

આવી રીતે આ પચ્ચીસ ક્રિયાઓમાંથી ચોવીસ સામ્પરાયિક આસ્રવના કારણરૂપ હોય છે અને ઐર્યાપથિકી ક્રિયા ઇર્યાપથ આસ્રવનું કારણ હોય છે. સ્થાનાંગસૂત્રના બીજા સ્થાનકના પ્રથમ ઉદ્દેશકના ૬૦માં સૂત્રમાં કહ્યું છે પાંચ ઇન્દ્રિઓ, ચાર કષાય, પાંચ અવ્રત અને પચ્ચીસ ક્રિયાઓ કહેવામાં આવી છે.

નવતત્વ પ્રકરણમાં પણ કહ્યું છે 'ઇન્દ્રિઓ પાંચ, કષાય ચાર, અવ્રત પાંચ, યોગ ત્રણ અને ક્રિયાઓ પચ્ચીસ આસ્રવના કારણ કહેવામાં આવેલ છે.

તથા (૧) મિથ્યાત્વ (૨) અવ્રત (૩) પ્રમાદ (૪) કષાય (૫) અશુભ-

योग ५ प्राणातिपात ६ मृषावादा ७ ऽदत्तादान ८ मैथुन ९ परिग्रह १० श्रोत्र चक्षु घ्राण रसन स्पर्शनरूप पञ्चेन्द्रिय १५ मनोवाक्काया ऽशुभव्यापाराणि १८ भाण्डोप-करणानामयतनया निक्षेपणं ग्रहणं च १९ सूचीकुशाग्रमात्रस्याऽप्ययतनया निक्षेपणं ग्रहणं चेति सामान्यतया विंशतिर्भेदा भवन्ति । तथा पूर्वोक्तेषु द्विचत्वारिंशदास्रव भेदेषु पञ्चदशयोगानां संमेलनेन सप्त पञ्चाशदप्यास्रवाः भवन्तीति बृहद्विवेकः ।५।

मूलम्—तिव्व मंदादि भाव विरियाहिगरणविसेसेहिंतो आसवविसेसो ॥६॥

छाया—'तीव्र-मन्दादि भाववीर्याऽधिकरण विशेषेभ्यः आस्रवविशेषः ।६।

तत्त्वार्थदीपिका—अथ—कर्मबन्ध हेतुभूताऽस्रवं प्रति कायादि योगत्रयादेः कारण-

---

योग (६) प्राणातिपात (७) मृषावाद (८) अदत्तादान (९) मैथुन (१०) परि-ग्रह (११) श्रोत्रेन्द्रिय (१२) चक्षुइन्द्रिय (१३) घ्राणेन्द्रिय (१४) रसनेन्द्रिय (१५) स्पर्शनेन्द्रिय (१६) मनोयोग (१७) वचनयोग (१८) काययोग (१९) भाण्डोपकरण का अयतना से निक्षेपण या ग्रहण करना और (२०) सूची-कुशाग्रका भी अयतना से निक्षेपण ग्रहण, यह बीस प्रकार का आस्रव कहा गया है । तथा पहले कहे गये आस्रव के बयालीस भेदों में पन्द्रह प्रकार के योगों को मिलाने से आस्रव के सत्तावन भेद भी होते हैं । यह आस्रव संबन्धी विस्तार समझना चाहिए ॥५॥

'तिव्व मंदादिभाव' इत्यादि ।

सूत्रार्थ-तीव्रभाव, मंदभाव आदि वीर्य और अधिकरण की विशेषता के कारण आस्रव में भी विशेषता हो जाती है ॥६॥

तत्त्वार्थदीपिका—काययोग आदि आस्रव के कारण सभी जीवों में

યોગ (૬) પ્રાણાતિપાત (૭) મૃષાવાદ (૮) અદત્તાદાન (૯) મૈથુન (૧૦) પરિગ્રહ (૧૧) શ્રોત્રેન્દ્રિય (૧૨) ચક્ષુઇન્દ્રિય (૧૩) ઘ્રાણેન્દ્રિય (૧૪) રસનેન્દ્રિય (૧૫) સ્પર્શનેન્દ્રિય (૧૬) મનોયોગ (૧૭) વચનયોગ (૧૮) કાયયોગ (૧૯) ભાણ્ડો-પકરણનું અયતનાથી નિક્ષેપણ અથવા ગ્રહણ કરવું અને (૨૦) સૂચીકુશાગ્રનું પણ અયતનાથી નિક્ષેપણ-ગ્રહણ, આ વીસ પ્રકારના આસ્રવ કહેવામાં આવ્યા છે. તથા અગાઉ કહેવામાં આવેલા આસ્રવના બેંતાલીસ ભેદોમાં પંદર પ્રકારના યોગોને ઉમેરવાથી આસ્રવના સત્તાવન ભેદ પણ થાય છે. આ આસ્રવ સંબંધી વિસ્તાર સમજવો જોઈએ. ।।૫।।

'તિવ્વ મંદાદિભાવ' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—તીવ્રભાવ, મંદભાવ, વીર્ય અને અધિકરણની વિશેષતાના

स्य मूर्त्तत्वकार्यत्वस्य सर्वेषां सांसारिणां साधारणतया तस्मात् कर्मबन्ध फलानुभवनमपि अविशेषः स्यादित्याशङ्कां समाधातुं कायिकादियोगत्रयस्य सर्वात्मसु सम्भवे सत्यपि अनेकभेदेभ्यो परिणामविशेषेभ्यः कर्मबन्धफलानुभवनविशेषः सम्भवतीत्याह—'तिव्वं मंदाइ भाव-वीरियाहिगरणविसेसेहिंतो भावविसेसो' इति। तीव्र मन्दादिभाववीर्याधिकरण विशेषेभ्यः तीव्र मन्दादिभावः तीव्र भावः१ मन्दभावः२, आदिपदेन ज्ञाताऽज्ञात भावग्रहणम्, तेन ज्ञातभावो ऽज्ञातभावः वीर्यविशेषोऽधिकरविशेषश्चेत्येतेषां द्वन्द्वे सति तीव्र मन्दादि भाव वीर्याऽधिकरणविशेषा स्तेभ्यः—तदपेक्षया खलु आस्रवविशेषः साम्परायिकाऽस्रवविशेषो भवति तत्र बाह्याऽभ्यन्तरकारणोदीरणवशादुद्रिक्तः—उत्कृष्ट आत्माध्यवसायविशेषः परिणामस्तीव्र इत्युच्यते, तद्विपरीतः परिणामो मन्द इत्युच्यते, अनुत्कट आत्माध्यव-

---

सामान्य हैं, ये सभी संसारी जीवों में समान रूप से पाये जाते हैं, अतएव कर्मबन्ध भी सभी में समान होना चाहिए और उसका फल भी सभी को समान प्राप्त होना चाहिए। किन्तु ऐसा होता नहीं है, इसका कारण जीव के परिणामों में रहा हुआ भेद है जो अनेक प्रकार का होता है, यह बतलाने के लिए कहा गया है।

तीव्रभाव, मन्दभाव और 'आदि' शब्द से ज्ञातभाव, अज्ञातभाव वीर्यविशेष और अधिकरण विशेष से साम्परायिक आस्रव में विशेषता (विषमता—भिन्नता) होती है बाह्य एवं आभ्यन्तर कारण मिलने पर आत्मा में जो उत्कृष्ट अध्यवसाय उत्पन्न होता है, उसे तीव्रभाव कहते हैं। मन्दभाव इससे विपरीत होता है अर्थात् जो अध्यवसाय उत्कृष्ट न हो वह मन्द कहलाता। यह शत्रु हनन करने योग्य है, मैं

કારણે અસ્રવમાં પણ વિશેષતા થઈ જાય છે

તત્ત્વાર્થદીપિકા—કાયયોગ આદિ આસ્રવના કારણો બધા જીવોમાં સામાન્ય છે, આ બધા સંસારી જીવોમાં સમાન રૂપથી જોવામાં આવે છે આથી કર્મ બન્ધ પણ દરેકમાં સરખાં હોવા જોઈએ અને એવું તેનું ફળ પણ દરેકને સરખું મળવું જોઈએ પરન્તુ આ પ્રમાણે બનતું નથી, એનું કારણ જીવના પરિણામોમાં રહેલા ભેદ છે જે અનેક પ્રકારના હોય છે, આ દર્શાવવા માટે કહેવામાં આવ્યું છે.

તીવ્રભાવ, મન્દભાવ 'આદિ' શબ્દથી જ્ઞાતભાવ, અજ્ઞાતભાવ, વીર્યવિશેષ અને અધિકરણ વિશેષથી સામ્પરાયિક આસ્રવમાં વિશેષતા (વિષમતા-ભિન્નતા) થાય છે. બાહ્ય તથા આભ્યન્તર કારણો મળવાથી, આત્મામાં જે ઉત્કૃષ્ટ અધ્યવસાય ઉત્પન્ન થાય છે તેને તીવ્રભાવ કહે છે. મન્દભાવ આનાથી વિપરીત હોય છે, અર્થાત્ જે અધ્યવસાય ઉત્કૃષ્ટ ન હોય તે મન્દ કહેવાય છે. આ શત્રુ હણવા

साम्य विशेषलक्षणः परिणाममन्द इत्यर्थः। अयं शत्रुर्हन्तव्यः, हनिष्याम्येतं पुमांस-मिति ज्ञात्वा प्रवर्तनं ज्ञात मित्युच्यते, मदात् प्रमादाद्वा, एतं पुमांसं हनिष्यामि, इत्यनवबुध्य प्रवृत्तिः अज्ञात मित्युच्यते, भावस्तु आत्मनो भवनं परिणामविशेषो बोध्यः। भावशब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धात् तीव्रभावमन्दभावज्ञातभावाऽज्ञात भाव इत्यर्थः। वीर्यञ्च जीवस्य क्षायोपशमिकः क्षायिको वा भाव इत्युच्यते, द्रव्यस्य स्वशक्तिविशेषो वा वीर्यम्, अधिकरणं पुनरधिक्रियन्तेऽर्था अस्मिन्निति व्युत्पत्त्याऽधिकरणं द्रव्यमित्युच्यते, विशेषपदस्य चोभयत्राऽभिसम्बन्धात् वीर्य-विशेषो द्रव्यस्य पुरुषादेः निजशक्तिविशेषलक्षणः खड्गाधिकरणविशेषश्चेति कथ्यते। तथा च तीव्रभाव, मन्दभावज्ञातभावाऽज्ञातभाव वीर्यविशेषाऽधिकरण विशेषेभ्यः पूर्वोक्तैकोनचत्वारिंशत्साम्परायिकाऽऽस्रवविशेषो भवति। एवञ्च

इसका हनन करूंगा' इस प्रकार जान बूझकर प्रवृत्ति करना ज्ञातभाव कहलाता है। अनजान में प्रमाद से प्रवृत्ति होना अज्ञातभाव है भावका अर्थ है आत्माका अध्यावसाय अथवा परिणाम प्रत्येक के साथ उसका सम्बन्ध है, जैसे तीव्र भाव, मन्द भाव ज्ञात भाव और अज्ञात भाव। जीव का क्षायोपशमिक या क्षायिक भाव वीर्य कहलाता है अथवा द्रव्यकी अपनी जो विशिष्ट शक्ति है उसे वीर्य कहते हैं। अधिकरण वह द्रव्य या साधन जिसके द्वारा कोई क्रिया हो जाती है और जिसे लोकभाषा में ओजार कहते हैं 'विशेष, पद का दोनों अर्थात् वीर्य और अधिकरण के साथ सम्बन्ध है इस प्रकार जीव की शक्ति की विशेषता को वीर्य विशेष और तलवार आदि की शक्ति की विशेषता को अधिकरणविशेष कहते हैं। इस प्रकार, तीव्र भाव, मन्द भाव, ज्ञात भाव, अज्ञातभाव वीर्य-विशेष और अधिकरणविशेष से साम्परायिक आस्रव में विशेषता अर्थात् तरतमता उत्पन्न हो जाती है।

योग्य छे हुं अने हणीश' आ रीते इरादापूर्वक प्रवृत्ति करवी ज्ञातभाव कहेवाय छे. अजाणतां अथवा प्रमादथी प्रवृत्ति थवी अज्ञातभाव छे. भावनो अर्थ छे आत्मानुं अध्यवसाय अथवा परिणाम प्रत्येकनी साथे तेनो संबंध छे जेम के तीव्रभाव, मन्दभाव, ज्ञातभाव अने अज्ञातभाव जीवनो क्षायो-पशमिक अथवा क्षायिकभाव वीर्य कहेवाय छे अथवा द्रव्यनी आगवी जे विशिष्ट शक्ति छे तेने वीर्य कहे छे. अधिकरण ते द्रव्य अथवा साधन के जेना वडे कोई क्रिया करवामां आवे छे अने जेने लोक भाषामां ओजार कहे छे 'विशेष' पदनो बन्ने अर्थात् वीर्य अने अधिकरणनी साथे संबंध छे, आ रीते जीवनी शक्तिना विशेषताने वीर्यविशेष अने तरवार आदिनी शक्तिनी

तीव्रभावात् मन्दभावात् ज्ञातभावात् अज्ञातभावात् वीर्यविशेषात् अधिकरण विशेषाद्वाऽऽत्मपरिणतिविशेषात् पूर्वोक्तानामेकोनचत्वारिंशत्साम्परायिकाऽऽस्रवाणां विशेषः तीव्र स्तीव्रतर स्तीव्रतमो, मन्दो मन्दतरो मन्दतमो, लघु लघुतरो लघुतमश्च परिणामविशेषो भवति, तद्विशेषाच्च कर्मबन्धविशेषो भवति, तस्माच्च फलभोगविशेषः इतिफलितम् ॥६॥

अभिप्राय यह है कि एक जीव किसी कार्यको तीव्रभाव से करता है, दूसरा जीव उसी कार्य को मन्द परिणाम से करता है इसी प्रकार कोई जीव किसी क्रिया में जान बूझकर प्रवृत्ति करता है और किसी जीव की उसी क्रिया में अनजान में प्रवृत्ति हो जाती है तो उनके आस्रव में भी भेद होता है। प्रत्येक अवस्था में आस्रव समान ही हो, ऐसा नहीं जैसे ज्ञातभाव और अज्ञातभाव के कारण आस्रव में अन्तर पड जाता है, उसी प्रकार वीर्य और अधिकरण की भिन्नता से भी आस्रव में भिन्नता हो जाती है। यही कारण है कि कोई जीव तीव्र आस्रव का भागी होता है तो कोई तीव्रतर और तीव्रतम आस्रवका इसी प्रकार किसी को मन्द आस्रव होता है तो किसी को मन्दतर या मन्दतम आस्रव होता है। जब आस्रव में अन्तर पडता है तो बन्धमें भी अंतर पडे विना नहीं रह सकता और कर्मबन्ध में अन्तर पडने से उसके अन्तर पडना अनिवार्य है। ६॥

વિશેષતાને અધિકરણ વિશેષ કહે છે. આમ તીવ્રભાવ, મન્દભાવ, જ્ઞાતભાવ, અજ્ઞાતભાવ, વીર્યવિશેષ અને અધિકરણ વિશેષથી સામ્પરાયિક આસ્રવમાં વિશેષતા અર્થાત્ તરતમતા ઉત્પન્ન થાય છે.

અભિપ્રાય એ છે કે એક જીવ કોઇ કાર્યને તીવ્રભાવથી કરે છે અને બીજો જીવ તેજ કાર્યને મન્દ પરિણામથી કરે છે, એવી જ રીતે કોઈ જીવ કોઇ ક્રિયામાં જાણી-બૂઝીને પ્રવૃત્ત થાય છે અને કોઇ જીવની તેજ ક્રિયામાં અજાણતાં જ પ્રવૃત્તિ થઇ જાય છે ત્યારે તેમના આસ્રવમાં પણ ભેદ થાય છે પ્રત્યેક અવસ્થામાં આસ્રવ સમાન જ હોય એવો નિયમ નથી જેમ કે જ્ઞાતભાવ અને અજ્ઞાતભાવના કારણે આસ્રવમાં અન્તર પડી જાય છે તેવી જ રીતે વીર્ય અને અધિકરણની ભિન્નતાથી પણ આસ્રવમાં ભિન્નતા થઈ જાય છે. આ જ કારણ છે કે કોઈ જીવ તીવ્ર આસ્રવનો ભાગી થાય છે તો કોઈ જીવ તીવ્રતર અને તીવ્રતમ આસ્રવનો, એવી જ રીતે કોઈ જીવને મન્દ આસ્રવ હોય છે. તો કોઈને મન્દતર અથવા મંદતમ આસ્રવ હોય છે. જ્યારે આસ્રવમાં અન્તર પડે છે તો બન્ધમાં પણ અન્તર પડયા વગર રહેતું નથી અને કર્મબન્ધમાં અન્તર પડવાથી તેનામાં અન્તર પડવું અનિવાર્ય છે ॥૬॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-अथ पूर्वोक्तेन्द्रियकषायाऽव्रतक्रियाहेतुकं भवभ्रमणकारक-साम्परायिककर्मबन्धं कुर्वतां जीवानां किं सर्वेषां समान एव कर्मबन्धो भवति ? उताहो इन्द्रियादिमत्त्वे सति साम्परायिककर्मबन्धभाजां परस्परं कर्मबन्ध वैषम्यप्रयुक्तो विशेषो भवति ? इत्याशङ्कां समाधातुं परिणामभेदात् कर्मबन्ध-भेदो भवतीति प्रतिपादयति-'तिव्वमंदादिभाव वीरियाहिगरणविसेसे-हिंतो आसवविसेसो' इति तीव्रमन्दादिभावेभ्यः तीव्रभाव, मन्दभाव, ज्ञातभावाऽज्ञातभावेभ्यः, वीर्याधिकरणविशेषेभ्यः वीर्यविशेषाऽधिकरणविशेषे-भ्यश्चाऽऽस्रवविशेषः साम्परायिककर्मास्रवतारतम्यं भवति, तद्विशेषाच्च कर्मबन्धविशेषो भवति, तद्विशेषाच्च फलभोगविशेषः। तत्र तीव्रः प्रकृष्टः उत्कृष्टो भावः-आत्मपरिणति विशेषः, स च तीव्रात्मपरिणामोऽध्यवसा-

---

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पूर्वोक्त इन्द्रिय कषाय, अव्रत आदि के कारण जो जीव भवभ्रमणजनक साम्परायिक कर्म बन्धकर रहे हैं, उन सबको क्या समान ही बन्ध होता है ? अथवा उक्त कारणों से होनेवाले बन्ध में कुछ अन्तर भी होता है ? इस आशङ्का का समाधान करने के लिए यह प्रतिपादन करते हैं कि परिणाम के भेद से कर्मबन्ध में भी भिन्नता हो जाती है—

तीव्रभाव, मंदभाव, ज्ञातभाव, वीर्यकी विशेषता और अधिकरण की विशेषता के कारण साम्परायिक कर्म आस्रव में भी भिन्नता हो जाती है, आस्रव में भेद होने से बन्ध में और बन्ध में विशेषता होने के कारण उसके फल में विशेषता आ जाती है।

उत्कृष्ट प्रकृष्ट या उग्र भाव तीव्रभाव कहलाता है। भाव का अर्थ है अध्यवसाय या आत्मा की विशिष्ट परिणति। वही भाव जब

તત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પૂર્વોક્ત ઇન્દ્રિય, કષાય, અવ્રત આદિના કારણે જે જીવ ભવભ્રમણ જનક સામ્પરાયિક કર્મબન્ધ કરી રહ્યાં છે, તે બધાને શું સરખો જ બન્ધ થાય છે ? અથવા ઉક્ત કારણોથી થનારા બન્ધમાં થોડું અન્તર પણ હોય છે ? આ શંકાનું સમાધાન કરવા માટે એ પ્રતિપાદન કરીએ છીએ કે પરિણામના ભેદથી કર્મબન્ધમાં પણ ભિન્નતા થઈ જાય છે—

તીવ્રભાવ, મંદભાવ, જ્ઞાતભાવ, વીર્યની વિશેષતા અને અધિકરણની વિશેષતાના કારણે સામ્પરાયિક કર્મ—આસ્રવમાં પણ ભિન્નતા થઈ જાય છે. આસ્રવમાં ભેદ થવાથી બન્ધમાં અને બન્ધમાં વિશેષતા થવાના કારણે તેના ફળમાં પણ વિશેષતા આવી જાય છે.

ઉત્કૃષ્ટ, પ્રકૃષ્ટ અથવા ઉગ્ર ભાવ તે તીવ્રભાવ કહેવાય છે. ભાવનો અર્થ છે અધ્યવસાય અથવા આત્માની વિશેષ પરિણતિ તેજભાવ જ્યારે અધિક

पविशेषः सातिशयो भवति तीव्रस्तीव्रतर स्तीव्रतमश्च, तद्विशेषाच्च कर्मबन्ध विशेषो भवति, कारणभेदश्च कार्यभेदानुविधायी भवति, कार्यभेदश्च कारणभेद मवगमयति, तस्मात् परिणामविशेष मात्रापेक्षयाऽऽत्मा कर्मबन्धको भवति । तीव्र भावविपरीतो मन्दभावो भवति, तस्माच्चाऽऽत्मपरिणतिविशेषाद् अनुत्कटात् मन्दभावात् कर्मबन्धभेदो भवति । स्वल्प एवान्तरः परिणामो यदा मन्दो भवति तदा कर्मबन्धोऽपि स्वल्पपरिणामापेक्षत्वा मन्द एवोपजायते—न तु कदाचित् स्वे स्यान्तरपरिणामलक्षण मन्दभावाद् अनुत्कटात्तीव्र भावतुल्यः कर्मबन्धः सम्भवति । स चाऽपि तीव्रो भाव आत्मपरिणतिविशेषः कदाचिदधिमात्रः कदाचिदधिमात्रमध्यः कदाचिदधिमात्र मृदुः कदाचिन्मध्याधिमात्रः कदाचिन्मध्यमः, कदाचिन्मध्यमृदुः

अधिक तीव्र होता है तो तीव्रतर कहलाता है और जब अत्यधिक तीव्र होता है तो तीव्रतम कहलाता है । भाव में जितनी तीव्रता होती है, बंध में भी उतनी ही तीव्रता होती है और उसके अनुसार उसके फल में भी उतनी ही तीव्रता आ जाती है ।

कारणों के भेद होने से कार्य में भी भेद होता है और कार्य में भेद देखकर कारणों में भेद का अनुमान किया जाता है । इस नियम के अनुसार आत्मा की परिणति के भेद से बन्ध में भेद होना स्वाभाविक है और बन्ध के भेद से आत्माकी परिणति की विषमता का अनुमान किया जा सकता है ।

तीव्रभाव से जो विपरीत हो वह मन्द भाव कहलाता है । मन्द भाव से जो कर्मबन्ध होता है वह स्वल्प होता है, उत्कट नहीं होता उसमें तीव्र भाव से होने वाले बन्ध के समान उत्कटता नहीं होती ।

તીવ્ર હોય છે તો તીવ્રતર કહેવાય છે, અને જ્યારે અતિ અધિક તીવ્ર હોય છે તો તીવ્રતમ કહેવાય છે ભાવમાં જેટલી તીવ્રતા હોય છે, તેટલી જ બન્ધમાં પણ તીવ્રતા હોય છે અને તદનુસાર તેના ફળમાં પણ તેટલી જ તીવ્રતા આવી જાય છે.

કારણોમાં ભેદ હોવાથી કાર્યમાં પણ ભેદ થાય છે અને કાર્યમાં ભેદ જોઈને કારણોમાં ભેદનું અનુમાન કરવામાં આવે છે. આ નિયમ અનુસાર આત્માની પરિણતિના ભેદથી બન્ધમાં ભેદ થવો સ્વાભાવિક છે અને બન્ધના ભેદથી આત્માની પરિણતિની વિષમતાનું અનુમાન કરી શકાય છે.

તીવ્રભાવથી જે વિપરીત હોય તે મન્દભાવ કહેવાય છે. મન્દભાવથી જે કર્મબન્ધ હોય છે તે સ્વલ્પ હોય છે, ઉત્કૃષ્ટ હોતો નથી તેમાં તીવ્રભાવથી બંધાતા બન્ધની જેમ ઉત્કટતા અથવા ઉગ્રતા હોતી નથી.

कदाचिन्मृद्वधिमात्रः, कदाचिन्मृदुमध्यः, कदाचिन्मृदुः इत्येवं विविधाऽध्यवसाया-ऽपेक्षया नानारूपो भवति । एवम् ज्ञातस्य ज्ञानादुपयुक्तस्याऽऽत्मनो भावः परिणाम विशेषो ज्ञातभावोऽभिसन्धि कृत्वा प्राणातिपातादौ प्रवृत्तिः, यथा 'ऽयं शत्रुःप्राणी हन्तव्यः' हनिष्याम्येतं पुमांसमिति ज्ञात्वा प्रवर्तनं ज्ञातम्' तद्विपरीत मज्ञातम्, अज्ञातस्य ज्ञानादनुपयुक्तस्य भावः परिणामविशेषोऽज्ञातभावः, अनभिसन्धाय प्राणातिपातादौ प्रवृत्तिः मदात्प्रमादाद्वाऽनवबुध्यप्राणातिपातादौ प्रवर्त्तनमित्यर्थः। तारम्याच्च ज्ञातभावाऽज्ञातभावाभ्यां पूर्ववदेव कर्मबन्धविशेषोऽवगन्तव्यः । यः

तीव्रभाव में भी तारतम्य के भेद से अनेक उच्च-नीच श्रेणियाँ होती हैं। कोई तीव्रभाव अधिमात्र होता है, कोई अधिमात्र मध्य होता है, कोई अधिमात्र मृदु होता है, कोई मध्य अधिमात्र होता है, कोई मध्यम, कोई मध्य मृदु, कोई मृदु अधिमात्र कोई मृदु होता है। इस प्रकार अपेक्षा भेद से नाना प्रकार के अध्यवसाय होते हैं।

इसी प्रकार उपयोग से उपयुक्त आत्मा का परिणाम ज्ञातभाव कहलाता हैं, जिसका आशय है समझ-बूझकर, संकल्प पूर्वक हिंसा आदि कार्यों में प्रवृत्त होना, जैसे इस शत्रु का हनन करना योग्य है, मैं इस पुरुष का हनन करूंगा, इस प्रकार विचार कर घात करना। अज्ञातभाव इससे विपरीत होता है। वह उपयोग शून्य आत्मा का परिणाम हैं, जैसे विना संकल्प के अकस्मात् हिंसा आदि में प्रवृत्ति हो जाना-मद या प्रमाद से अनजान में हिंसा आदि हो जाना। इस ज्ञान भाव और अज्ञानभाव से कर्मबन्ध में विशेषता हो जाती है। उदाह-

તીવ્રભાવમાં પણ તારતમ્યના ભેદથી અનેક ઉચ્ચ-નીચ શ્રેણિઓ હોય છે. કોઈ તીવ્રભાવ અધિમાત્ર હોય છે, કોઇ અધિમાત્ર મધ્ય હોય છે, કોઈ અધિમાત્ર મૃદુ હોય છે, કોઇ મધ્ય અધિમાત્ર હોય છે, કોઈ મધ્યમ, કોઈ મધ્ય મૃદુ. કોઈ મૃદુ-અધિમાત્ર કોઈ મૃદુમધ્ય અને કોઇ મૃદુ હોય છે. આ રીતે અપેક્ષા ભેદથી જુદા જુદા પ્રકારનાં અધ્યવસાય હોય છે.

એવી જ રીતે ઉપયોગથી ઉપયુકત આત્માનું પરિણામ જ્ઞાતભાવ કહેવાય છે, જેનો આશય છે-જાણી-બૂઝીને, સંકલ્પપૂર્વક હિંસા આદિ કર્મોમાં પ્રવૃત્ત થવું જેમ કે-'આ શત્રુ હણવા યોગ્ય છે, હું આ પુરૂષને હણીશ' એ રીતનો વિચાર કરી ઘાત કરવો. અજ્ઞાતભાવ આનાથી વિપરીત હોય છે. તે ઉપયોગ શૂન્ય આત્માનું પરિણામ છે જેમ વગર સંકલ્પનાં અકસ્માત, હિંસા આદિમાં પ્રવૃત્ત થઇ જવું-મદ અથવા પ્રમાદથી અજાણતા હિંસા આદિ થઇ

खलु-हरिणवेधाऽभिसन्धाय 'हन्मि' इति बाणं प्रक्षिपति यस्तु-स्थाणुं विध्यामि इत्येवमभिसन्धाय बाणमुत्सृजति विनिपातितश्च मार्गान्तरालवर्ती मृगः कपोतो वा तेन-बाणेन तत्र समानप्राणातिपातक्रिययोरप्यनयोर्घातकयो र्निमित्तविशेषात् कर्मबन्धविशेषो भवति। तत्र पूर्वस्य घातकस्याऽधिकः कर्मबन्धो भवति, परस्य च घातकस्य प्राणातिपाताद्यभिसन्धिरहितस्य कषायादि प्रमादवशवर्तिनः पूर्वोऽल्पः कर्मबन्धो भवति, यतोहि राग-द्वेषं विना बाणस्य प्रक्षेपो न सम्भवति। रागश्च प्रमादो बोध्यः, तथाहि-अज्ञानसन्देहमिथ्याज्ञानरागद्वेष स्मृत्यनवस्थान धर्मोऽनादर योग दुष्प्रणिधान भेदादष्टविधः प्रमादः उत्कटकषायलेश्याबलाधान

स्पार्थ-एक मनुष्य हिरण को मारने के विचार से बाण फेंकता है और उससे हिरण बिंध जाता है दूसरा मनुष्य किसी ठुंठ को वेधने के उद्देश्य से बाण छोडता है किन्तु बीचमें कोई मृग या कबूतर उससे बिंध जाता है। यद्यपि इन दोनों घातकों की प्राणातिपात क्रिया ऊपरी दृष्टि से समान प्रतीत होती है, किन्तु आन्तरिक अध्यवसाय में भेद होने के कारण उनके कर्मबन्ध में भेद होता है। पहले घातक को कर्म का बन्ध अधिक एवं तीव्र होता है जब कि दूसरे घातक को, जो हिंसा करने का इरादा नहीं रखता, किन्तु प्रमाद और कषाय के वशीभूत है, अल्प कर्मबन्ध होता हैं, क्योंकि राग-द्वेषके विना बाण का प्रक्षेपण नहीं हो सकता और राग-द्वेष भी एक प्रकार का प्रमाद ही है। प्रमाद के आठ भेद कहे गये हैं-(१) अज्ञान (२) सन्देह (३) मिथ्याज्ञान (४)

જવી. આ જ્ઞાતભાવ અને અજ્ઞાતભાવથી કર્મબન્ધમાં વિશેષતા થઈ જાય છે. ઉદાહરણાર્થ-એક માણુસ હરણને મારવાના ઈરાદાથી બાણ ફેંકે છે, તેનાથી હરણ વિંધાઇ જાય છે. બીજો માણુસ કોઈ થડને વિંધવાના આશયથી બાણ ફેંકે છે, પરન્તુ વચમાં કોઇ મૃગ અથવા કબૂતર તેનાથી વિંધાઈ જાય છે. જો કે આ બંને ઘાતકોની પ્રાણાતિપાત ક્રિયા ઉપર છલ્લેથી એક સરખી પ્રતીત થાય છે, પરન્તુ આન્તરિક અધ્યવસાયમાં ભેદ હોવાના કારણે તેમના કર્મબન્ધમાં ભેદ હોય છે. પહેલા ઘાતકને કર્મનો બન્ધ અધિક અને તીવ્ર હોય છે, જ્યારે બીજા ઘાતકને કે જે હિંસા કરવાનો ઈરાદો રાખતો નથી, પરન્તુ પ્રમાદ અને કષાયને વશીભૂત છે, અલ્પ કર્મબન્ધ થાય છે, કારણ કે રાગદ્વેષ વગર બાણ ફેંકી શકાતું નથી અને રાગદ્વેષ એ પણ એક પ્રકારનો પ્રમાદ જ છે. પ્રમાદના આઠ ભેદ કહેવામાં આવ્યા છે-(૧) અજ્ઞાન (૨) સન્દેહ (૩) મિથ્યાજ્ઞાન (૪) રાગ (૫) દ્વેષ (૬) સ્મૃત્યનવસ્થાન-સ્મૃતિ ન

ज्ञानोत्पन्नः पौरुषेयपरिणामसमुत्थानः कटुविपाको नरकपाताऽहितसंस्कारः तीव्राहिंसातिशयो मध्यकषायलेश्योदयबलाधानो मध्य मध्यतरादि भेदः प्रतनु कषायलेश्यापरिणामप्रमादबलाऽधिष्ठानवासनावासितत्वात् मन्दमन्दतरादि-भेदः। एवं-वीर्यान्तरायकर्मक्षयोपशमजन्या लब्धिः वीर्यम्, आत्मनः शक्ति सामर्थ्यम्, तच्च वीर्यम् वज्रर्षभनाराचसंहननापेक्षमेव त्रिपृष्ठादीनां संरब्ध सिंहपाटनादिलक्षणम् सिंहादीनाञ्च मदजलावसिक्तगण्डस्थलमुखदिग्गजादिकुम्भ-

---

राग (५) द्वेष (६) स्मृत्यनवस्थान-स्मृति न रहना (७) धर्म के प्रति आदर अर्थात् जागरूकता न होना और (८) योगों की अप्रशस्त प्रवृत्ति होना।

तीव्र कषाय, लेश्या और ज्ञान से उत्पन्न पौरुषेय परिणाम द्वारा जनित, कटुक फल देने वाला एवं नरकपात आदि का कारण हि जो हो वह तीव्र हिंसाभाव कहलाता है। मध्यम कषाय एवं लेश्या के निमित्त से होने वाला मध्यम हिंसाभाव कहलाता है और जो पतले-हल्के कषाय एवं लेश्यापरिणाम से तथा प्रमाद के याग से युक्त हो वह मन्द या मन्दतर हिंसाभाव कहलाता है।

वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होनेवाली लब्धि वीर्य कहलाती है। वीर्य आत्मा का सामर्थ्य-विशेष है। वज्रऋषभनराच-संहनन की सहायता पाकर उसके द्वारा सिंह आदि का भी विदारण

રહેવી (૭) ધર્મપ્રત્યે આદર અર્થાત્ જાગૃતિ ન હોવી અને (૮) યોગોની અપ્રશસ્ત પ્રવૃત્તિ થવી.

તીવ્ર કષાય, લેશ્યા અને જ્ઞાનથી ઉત્પન્ન, પૌરૂષેય પરિણામ દ્વારા જનિત, કડવાં ફળ આપનાર તથા નરકપાત આદિના કારણરૂપ જે હોય તે તીવ્ર હિંસા ભાવ કહેવાય છે. મધ્યમ કષાય તથા લેશ્યાના નિમિત્તથી થનાર મધ્યમ હિંસા ભાવ કહેવાય છે. અને જે પાતળા કષાય અને લેશ્યા પરિણામથી તથા પ્રમાદના યોગથી યુક્ત હોય તે મન્દ અથવા મન્દતર હિંસાભાવ કહેવાય છે.

વીર્યાન્તરાય કર્મના ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થનારી લબ્ધિ વીર્ય કહેવાય છે. વીર્ય આત્માનું સામર્થ્ય-વિશેષ છે. વજ્રઋષભ નારાચસંહનની મદદ મેળવીને તેના દ્વારા સિંહ આદિનું પણ વિદારણ કરી શકાય છે, જેમ ત્રિપૃષ્ઠે કર્યું હતું. સિંહ મદોન્મત્ત હાથિઓના કુંભસ્થળનું વિદારણ કરવામાં સમર્થ હોય છે તે પણ વીર્યના જ પ્રભાવથી આ પ્રકારના વીર્યની

विदारणाऽसि० .क्तं भवति, तथाविध स्ववीर्यस्य विशेषाद् अतिशयात्कर्मबन्ध विशेषो भवति। वीर्यविशेषोऽपि कदाचिदधिमात्रः कदाचिदधिमात्रमध्यः कदाचिदधिमात्रमृदुरित्यादि पूर्वोक्तस्वरूपो बोध्यः। मन्दप्राणस्य जीवस्य कृच्छ्रेण धृतोऽपि न तथाविधोत्कर्षविशेषो भवति यादृशो महाप्राणस्य भवति तस्माद्-वीर्यातिशयः कर्मबन्धविशेषस्यप्रतिहेतु र्भवति। एवम्-अधिक्रियते-आत्मा दुर्गतिप्रस्थानम्प्रति येन तद् अधिकरणं द्रव्यं खड्गादिकम्, तच्चाऽधिकरणरूपं द्रव्यं निर्वर्तना संयोजनादिरूपम्, तस्य-खलु अधिकरणद्रव्यस्य विशेषात् अतिशयात् कर्म-

---

किया जा सकता है, जैसे त्रिपृष्ठ ने किया था सिंह मदोन्मत्त हाथियों के कुम्भस्थल के विदारण में समर्थ होता है, वह वीर्य के ही प्रभाव से। इस प्रकार के वीर्य की विशेषता से कर्मबन्ध में विशेषता होती है। यह वीर्यविशेष भी कदाचित् अधिकमात्र होता है, कदाचित् अधिकमात्र मध्य होता है कदाचित् अधिकमात्र मृदु होता है, इत्यादि पूर्ववत् समझ लेना चाहिए। जो प्राणी मन्द प्राण होता है उस में वीर्य का वैसा उत्कर्ष नहीं होता जैसा कि महाप्राण में पाया जाता है। इस प्रकार वीर्य की तरतमता भी कर्मबन्ध में विशेषता उत्पन्न करती है।

जिसके कारण आत्मा दुर्गति का अधिकारी बनता है वह खड्ग आदि द्रव्य अधिकरण कहलाते हैं। अधिकरण के दो भेद हैं- निर्वर्त्तनाधिकरण अर्थात् हिंसा कारक साधनों का नये सिरे से निर्माण करना और संयोजनाधिकरण अर्थात् उनके अवयवों को जोडकर उन्हें आरम्भ-समारम्भ के योग्य बनाना। इस अधिकरण द्रव्य के

વિશેષતાથી કર્મબન્ધમાં વિશેષતા થાય છે. આ વીર્યવિશેષ પણ કદાચિત અધિમાત્ર હોય છે, કદાચિત્ અધિમાત્ર મધ્ય હોય છે કદાચિત અધિમાત્ર મૃદુ હોય છે ઈત્યાદિ પૂર્વવત્ સમજી લેવું જોઇએ. જે પ્રાણી મંદ પ્રાણ હોય છે તેનામાં વીર્યનો એવો ઉત્કર્ષ થતો નથી, જેમ કે-મહાપ્રાણમાં જોવામાં આવે છે. આવી રીતે વીર્યની તરતમતા પણ કર્મબન્ધમાં વિશેષતા ઉત્પન્ન કરે છે.

જેના કારણે આત્મા દુર્ગતિનો અધિકારી બને છે, તે તલવાર આદિ દ્રવ્ય અધિકરણ કહેવાય છે. અધિકરણના બે ભેદ છે-નિર્વર્ત્તનાધિકરણ અર્થાત્ હિંસાકારક સાધનોનું નવેસરથી નિર્માણ કરવું અને સંયોજનાધિકરણ અર્થાત્ તેમના ભાગોને જોડીને તેમને આરંભ-સમારંભને લાયક બનાવવા આ અધિ-

बन्धविशेषो भवति, प्रतिदिनमेव खलु निर्घृणमानसा निर्दया निर्भयाः सन्तः प्राणिवधाय मृषास्तेयादिकृतकुटिलश्रुतीः सृजन्ति। ते खल्वधिकरणद्रव्यविशेषाः क्लेशोपादानं प्रति प्रकृष्टा सन्तः कूटगलयन्त्रगात्रपाशादेश्चाधिकरणविशेषाच्च कर्मबन्धतारतम्यं भवति। एवञ्च-पूर्वोक्तानामेकचत्वारिंशत्साम्परायिककर्मास्रवाणां तीव्रभावात् मन्दभावात् ज्ञातभावात् अज्ञातभावात् वीर्यविशेषात् अधिकरणविशेषाच्च विशेषस्तारतम्यरूपो भवति। स च साम्परायिककर्मास्रवविशेषः तीव्रस्तीव्रतर स्तीव्रतमः, मन्दो मन्दतरो मन्दतमः, मध्यमो मध्यमतरो मध्यमतमो बोध्यः तथाविधाऽऽस्रवविशेषाच्च कर्मबन्धविशेषो भवति। एवञ्च क्रोधरागद्वेष-

भेद से भी कर्मबन्ध में भेद होता है।

जिन का मन घृणा से शून्य है, जो निर्दय हैं, पाप से नहीं डरते हैं, वे प्राणिवध के लिए मृषावाद एवं स्तेय (चोरी) आदि को उत्तेजना देनेवाली श्रुतियों का निर्माण करते हैं। वे अधिकरण द्रव्य क्लेश के उत्कट कारण होते हैं। ऐसे फांसी जाल आदि अधिकरणों की विशेषता से कर्मबन्ध में भी विशेषता उत्पन्न हो जाती है।

इस प्रकार पूर्वोक्त उनचालीस प्रकार के कर्मास्रवों में तीव्रता, मन्दता, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, वीर्यविशेष और अधिकरणविशेष होता है और उस विशेषता के कारण कर्म के आस्रव में भी विशेषता उत्पन्न हो जाती है। वह साम्परायिक कर्मास्रव तीव्र, तीव्रतर तीव्रतम, मन्द-मन्दतर, मन्दतम, मध्यम, मध्यतर और मध्यतम समझना चाहिये। इस प्रकार की आस्रव संबन्धी विशेषता कर्मबन्ध में भी विशेषता होती है।

કરણ દ્રવ્યના ભેદથી પણ કર્મબન્ધમાં ભેદ થાય છે.

જેમનું મન ઘૃણાથી શૂન્ય છે, જે નિર્દય છે, પાપથી ડરતાં નથી, તેઓ પ્રાણિવધ કાજે મૃષાવાદ અને સ્તેય (ચોરી) વગેરેને પ્રોત્સાહન આપનારી શ્રુતિઓનું નિર્માણ કરે છે. આ અધિકરણ દ્રવ્ય કલહના ઉત્કટ કારણો હોય છે. આવા ફાંસી જાળ આદિ અધિકરણોની વિશેષતાથી કર્મબન્ધમાં પણ વિશેષતા ઉત્પન્ન થઈ જાય છે.

આ રીતે પૂર્વોકત ઓગણચાળીસ પ્રકારનાં કર્માસ્રવોમાં તીવ્રતા મન્દતા, જ્ઞાતભાવ, અજ્ઞાતભાવ, વીર્યવિશેષ અને અધિકરણ વિશેષ થાય છે અને આ વિશેષના કારણે કર્મના આસ્રવમાં પણ વિશેષતા ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. તે સામ્પરાયિક કર્માસ્રવ તીવ્ર, તીવ્રતર તીવ્રતમ, મન્દ, મન્દતર, મન્દતમ, મધ્યમ, મધ્યમતર અને મધ્યમતમ સમજવો જોઇએ. આ પ્રકારની આસ્રવ સંબંધી વિશેષતાથી કર્મબન્ધમાં પણ વિશેષતા થાય છે.

विशिष्टप्राणिसंयोगाद् देशकालादिविविधबाह्यकारणवशाच्चेन्द्रियकषायाऽव्रत-क्रियाणां कुत्रचिदात्मनि तीव्रो भावो भवति सबलः परिणामविशेषो भवेत्तस्य तीव्रास्रवो भवति। तासामेवेन्द्रियकषायाऽव्रतक्रियाणां क्रोधाद्याभ्यन्तरकारण वशाद् देशकालाद्यनेकबाह्यकारणवशाच्च कुत्रचिद् आत्मनि मन्दो भावो भवति निर्बलः खलु तत्रात्मनः परिणामविशेषो भवति। तस्य च मन्दास्रवो जायते, इन्द्रियकषायाऽव्रत क्रिया प्रवृत्तस्य कस्यचिद् आत्मनो ज्ञातत्वं भवति, ज्ञात-भावस्य खलु महानास्रवः स्यात्। एवं खलु इन्द्रिय कषायाऽव्रतक्रियाप्रवृत्तस्य कस्यचिदात्मनोऽज्ञातत्वं भवति, तस्याऽल्पाऽऽस्रवो भवति। एवं वीर्यविशेषे च

इस प्रकार क्रोध, राग द्वेष से युक्त प्राणी के संयोग से और देश काल आदि बाह्य कारणों के वश से इन्द्रिय, कषाय, अव्रत और क्रियाओं का किसी आत्मा में तीव्रभाव होता है सबल परिणामविशेष होता है। ऐसे जीव को तीव्र आस्रव होता है। उन्हीं इन्द्रिय, कषाय, अव्रत और क्रियाओं का क्रोध आदि आन्तरिक कारणों से तथा देश काल आदि अनेक बाह्य कारणों से किसी आत्मा में मन्दभाव होता है अर्थात् आत्मा का निर्बल परिणाम होता है। ऐसे जीव को मन्द आस्रव होता है। इन्द्रिय, कषाय, अव्रत एवं क्रिया में प्रवृत्त किसी आत्मा का ज्ञातभाव होता है अर्थात् कोई जीव जान बूझकर किसी कार्य में प्रवृत्ति करता है। उसे महान् आस्रव होता है इसी प्रकार इन्द्रिय, कषाय, अव्रत तथा क्रियाओं में प्रवृत्त किसी आत्मा का अज्ञातभाव होता है अर्थात् किसी जीव के द्वारा अनजान में कोई प्रवृत्ति हो

આમ, ક્રોધ, રાગ તેમજ દ્વેષથી યુકત પ્રાણીના સંયોગથી અને દેશકાળ આદિ બાહ્ય કારણોના વશથી, ઇન્દ્રિય, કષાય, અવ્રત, અને ક્રિયાઓના કોઈ આત્મામાં તીવ્રભાવ હોય છે–'સબળ' પરિણામ વિશેષ થાય છે. આવા જીવોને તીવ્ર આસ્રવ થાય છે તેજ ઇન્દ્રિય, કષાય, અવ્રત અને ક્રિયાઓના ક્રોધ આદિ આન્તરિક કારણોથી તથા દેશ–કાળ આદિ અનેક બાહ્ય કારણોથી કોઈ કોઇ આત્મામાં મન્દભાવ થાય છે, અર્થાત્ આત્માનું નિર્બળ પરિણામ હોય છે. આવા જીવોને મન્દ આસ્રવ થાય છે. ઇન્દ્રિય, કષાય અવ્રત અને ક્રિયામાં પ્રવૃત્ત કોઇ આત્માને જ્ઞાતભાવ થાય છે અર્થાત્ કોઇ જીવ જાણી–સમજીને કોઈ કાર્યમાં પ્રવૃત્તિ કરે છે તેને મહાન આસ્રવ થાય છે, એવી જ રીતે ઇન્દ્રિય, કષાય, અવ્રત તથા ક્રિયાઓમાં પ્રવૃત્ત કોઈ આત્માને અજ્ઞાતભાવ થાય છે અર્થાત્ કોઈ જીવ દ્વારા અજાણતા જ કોઈ પ્રવૃત્તિ થઇ જાય છે,

वज्रर्षभनाराचसंहननमण्डितपुरुषेन्द्रियादेर्व्यापारे महानास्रवः स्यात् अन्य संहननसंयुक्तपुरुषस्य पापकरणेऽल्पाऽऽस्रवो भवति अल्पादपि अल्पतर आस्रवो वीर्यविशेषाद् भवति, एवमधिकरणविशेषे सति आस्रवविशेषो भवति। यथा कस्यचिन्मोदकस्याऽनुभागो रसोऽतिमधुरः स्वल्पमधुरो वा भवति। कस्यचिद् वस्तुनः स्वादोऽति कटुकोवा, कस्यचित्पुनर्नातिमधुरो नाऽप्यतिकटुको भवति, अल्पादे गुणीकरणादीना च स एव मन्दमन्दतरमन्दतमत्वादि व्यपदेशं च लभते; एवं कर्मणामपि शुभऽशुभाऽऽत्मकानां तीव्र तीव्रतर तीव्रतम, मन्द मन्दतर मन्दतमत्वादिभेदभिन्नो बन्धो भवति। तत्र शुभकर्मणा मनुभागो रसो द्राक्षेक्षुक्षीरमाक्षि-

---

जाती है, उसे अल्प आस्रव होता है। इसी प्रकार वज्र-ऋषभनाच संहनन वाले पुरुष की इन्द्रिय आदि की जो प्रवृत्ति होती है, उससे महान् आस्रव होता है। अन्य संहननवाले पुरुष को पाप करने में अल्प आस्रव होता है। किसी अल्पतर वीर्यवाले को अल्पतर आस्रव होता है।

इसी प्रकार अधिकरण की विशेषता से भी आस्रव में विशेषता होती है।

जैसे किसी लड्डू का रस अतिमधुर होता है और किसी का स्वल्प मधुर होता है, किसी वस्तु का स्वाद अत्यन्त कटुक होता है, किसी का न अति मधुर और न अति कटु होता है, और उस अल्पता आदि में मन्दता, मन्दतरता, मन्दतमता आदि की अनेक श्रेणियां होती हैं, इसी प्रकार शुभ और अशुभ कर्मों का भी तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम मन्द, मन्दतर और मन्दतम आदि अनेक भेदों वाला बन्ध होता है। इन में

તેને અલ્પ આસ્રવ થાય છે. આવી જ રીતે વજ્ર-ઋષભનારાચસંહનનવાળા પુરૂષની ઇન્દ્રિય આદિની જે પ્રવૃત્તિ થાય છે તેથી મહાન આસ્રવ થાય છે. અન્ય સંહનનવાળા પુરૂષને પાપ કરવામાં અલ્પ આસવ થાય છે. કોઇ અલ્પતર વીર્યવાળાને અલ્પતર આસ્રવ થાય છે.

આ રીતે અધિકરણની વિશેષતાથી પણ આસ્રવમાં વિશેષતા થાય છે.

જેમ કોઈ લાડવાનો રસ અતિ મધુર હોય છે અને કોઈને સ્વલ્પ મધુર હોય છે, કોઇ વસ્તુનો સ્વાદ અત્યન્ત કડવો હોય છે કોઈનો ન અતિ મધુર અથવા ન અતિ કડવો હોય અને તે અલ્પતા આદિમાં મન્દતા, મન્દતરતા, મન્દતમતા આદિ અનેક શ્રેણિઓ હોય છે, એવી જ રીતે શુભ અને અશુભ કર્મોનો પણ તીવ્ર, તીવ્રતર, તીવ્રતમ, મન્દ, મન્દતર, અને મન્દતમ આદિ અનેકભેદોવાળો બન્ધ થાય છે. આમાંથી શુભકર્મોનો રસ-(અનુભાગ) દ્રાક્ષ, શેરડી, દૂધ અથવા મધ જેવો મીઠો હોય છે જેના અનુભવથી

वद् अतिमधुरो भवति यदनुभवेन जीवः सान्द्राऽऽनन्दसन्दोह तुन्दिलान्तः करणो जायते । अशुभकर्मणां रसस्तु निम्बकिराततिक्तादिवद् अतितरां तिक्तो भवति, यदनुभवेन जीवोऽवर्णनीयां व्याकुलतां भजते । तत्र तीव्र तीव्रतरत्वादि बोधनार्थं च दृष्टान्तो यथा इक्षुनिम्बयोरन्यतरस्य चतुः शेटकपरिमितो रसः स्वाभाविकरसो वर्तते, तत्र वह्नितापद्वारोत्कालित उत्काथितो यथा शेटक चतुष्टयस्थाने शेटक त्रितयमात्रोऽवशिष्यते तदाऽसौ 'तीव्र' इत्युच्यते, पुनरुत्कालनेन शेटक द्वितयमात्रोऽवशिष्यते तदा 'तीव्रतर' इत्यभिधीयते, पुनरुत्कालनेन शेटकमात्रेऽवशिष्टे 'तीव्रतम' इति कथ्यते एवम् इक्षु निम्बयोरेव शेटकैकमात्रो रसः स्वाभाविकरसो वर्तते तत्र शेटकैकजलमेलनेन 'मन्दरसः' इति व्यपदिश्यते,

---

है शुभ कर्मों का रस (अनुभाग) द्राक्षा, इक्षु, दूध या मधु के समान मधुर होता है जिसके अनुभव से जीव को अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होती है। अशुभ कर्मों का रस नीम या चिरायते आदि के समान कडुवा होता है, जिसके अनुभव से जीव अवर्णनीय व्याकुलता का भागी होता है। कर्मफल के तीव्रता और तीव्रतरता आदि को समझाने के लिए यह उदाहरण दिया जाता है-ईख या नीम का चार सेर रस स्वभाविक रस है। इस रस को आग पर तपाया जाय और उबाला जाय जिससे कि वह चार सेर के स्थान पर तीन सेर रह जाय तो वह रस 'तीव्ररस' कहलाएगा। अगर उसे फिर उबाला जाय और वह दो सेर रह जाय तो तीव्रतर' कहा जाएगा उसे फिर उबाला जाय और वह यदि एक सेर ही शेष रह जाय तो 'तीव्रतम' कहा जायगा।

इसी प्रकार ईख या नीम का एक-एक सेर रस स्वाभाविक रस है। उसमें एक-एक सेर पानी मिला देने पर मन्द रस कहा जायगा।

જીવને અત્યન્ત આનન્દની પ્રાપ્તિ થાય છે. અશુભ કર્મોનો રસ લીમડા અથવા કરીયાતા આદિની માફક કડવો હોય છે જેના અનુભવથી જીવ અવર્ણનીય વ્યાકુળતાનો ભાગી થાય છે કર્મફળની તીવ્રતા અને તીવ્રતરતા વગેરેને સમજાવવા માટે આ ઉદાહરણ આપવામાં આવે છે-શેરડી અથવા લીમડાનો ચાર શેર રસ સ્વાભાવિક રસ છે. આ રસને અગ્નિ ઉપર ગરમ કરવામાં આવે અને ઉકાળવામાં આવે કે જેથી તે ચાર, શેરની જગ્યાએ ત્રણ શેર જ રહી જાય તો તે રસ 'તીવ્રરસ' કહેવાશે અગર આ રસને ફરીવાર ઉકાળવામાં આવે અને તે જો એક શેર જ બાકી રહી જાય તો 'તીવ્રતમ' કહેવાશે.

આવી જ રીતે શેરડી અથવા લીમડાનો એક એક શેર રસ સ્વાભાવિક રસ છે તેમાં એક શેર પાણી ભેળવવામાં આવે તો તે મન્દરસ કહેવાશે.

द्विशेटकजलसंयोजनेन पुनः 'मन्दतरो रस' इति व्यपदेशो भवति शेटकत्रय-परिमितजलमेलनेन तु 'मन्दतमो रस' इति व्यवहारो भवति, । एवं कर्मणां शुभाऽशुभानां खल्वात्मपरिणतिविशेषात् तीव्र तीव्रतरत्वादितारतम्यं भवतीति भावः।
'उक्तञ्च सूत्रकृताङ्गे २ श्रुतस्कन्धे ५ अध्ययने ६-७ गाथायाम्—

जे केइ खुद्दका पाणा अदुवा संति महालया ।
सरिसं तेहिं वेरंति असरिसंति व णो वए॥१।
'एएहिं दोहिं ठाणेहिं ववहारो ण विज्जइ ।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं अणायारंतु जाणए ॥२॥ इति ।
ये केऽपि क्षुद्रकाः प्राणा अथवा सन्ति महालयाः ।
सदृशं तै वैरमिति असदृशमिति वा नो वदेत्॥१॥
'एताभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारो न विद्यते ।
एताभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्याम् ।
अनाचारन्तु जानीयात् ॥२॥ इति ।

अयमाशयः—ये केचन क्षुद्रकाः अल्पकाः सत्त्वाः प्राणिनः एकेन्द्रियद्वीन्द्रियादयः पञ्चेन्द्रिया वा सन्ति, अथवा महालयाः महाकायाः सन्ति, हस्तिप्रभृतयः प्राणिनः तेषाञ्च क्षुद्रकाणा मल्पकायानां कुन्थ्वादीनां महानालयः शरीररूपः

उस में दो सेर जल मिला दिया जाय तो मन्दतर रस कहलाएगा। अगर तीन सेर जल मिला दिया जाय तो वह रस मन्दतम हो जाएगा इसी प्रकार शुभ और अशुभ कर्मों के रस में आत्मा के परिणामों के भेद से तीव्रता, तीव्रतरता आदि होती है। सूत्रकृतांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध के पांचवें अध्ययन की गाथा ६-७ में कहा है—

कोई-कोई एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि क्षुद्र प्राणी होते हैं और कोई-कोई हाथी आदि महाकाय प्राणी होते हैं। उन क्षुद्र अर्थात् अल्पकाय कुंथु आदि प्राणियों का घात करने पर और हाथी आदि महाकाय

તેમાં બશેરપાણી ઉમેરવામાં આવે તો તે મન્દતર રસ કહેવાશે અને જો ત્રણ શેરપાણી ઉમેરવામાં આવે તો તે રસ મન્દતમ થઈ જાશે બરાબર આવી જ રીતે શુભ અને અશુભ કર્મોના રસમાં આત્માના પરિણામોના ભેદથી તીવ્રતા, તીવ્રતરતા આદિ થાય છે. સૂત્રકૃતાંગ સૂત્રના દ્વિતીય શ્રુતસ્કંધના પાંચમા અધ્યયનની ગાથા ૬-૭ માં કહ્યું છે—

કોઈ-કોઈ એકેન્દ્રિય, દ્વિન્દ્રીય આદિ ક્ષુદ્ર પ્રાણી હોય છે અને કોઈ-કોઈ હાથી આદિ વિશાળકાય પ્રાણી હોય છે તે ક્ષુદ્ર અર્થાત્ અલ્પકાય કુંથવા આદિ પ્રાણી હિંસા કરવાથી અને હાથી આદિ મહાકાય પ્રાણીઓનો ઘાત

आशयो येषां ते महालयाः हस्तिप्रभृतयः तेषाञ्च हनने सदृशं वैरमिति, वैरं कर्म-
विरोधलक्षणं वा वैरं तत्सदृशं समानं भवतीति सर्वजन्तूनामल्पप्रदेशत्वाद् इत्येव-
मेकान्तेन नो वदेत् । एवं तेषां खलु अल्पकायमहाकायानां व्यापादनेऽसदृशं विस-
दृशं वैरं कर्मबन्धो विरोधो वा भवति, इन्द्रियकायविज्ञानानां विसदृशत्वात्, सत्यपि
प्रदेशाल्पत्वे विसदृशं वैरमित्येवमपि नो वदेत् । यदि हि वध्यापेक्ष एव कर्मबन्धः
स्यात् तदा तत्तदल्पकायत्वमहाकायत्व साम्य वैषम्यात्कर्मबन्धस्यापि सादृश्य-
मसादृश्यं वा वक्तुं शक्येत । किन्तु नहि केवलं तद्वशादेव कर्मबन्धो भवति, अपितु
व्यापादकस्यात्मनोऽध्यवसायविशेषवशादपि कर्मबन्धः । तथा च तीव्राध्यवसायिनो
व्यापादकस्याऽऽत्मनोऽल्पकायसत्त्वव्यापादनेऽपि महद्वैरं महाकर्मबन्धो भवति,
अकामस्य पुनरनध्यवसायिन आत्मनो महाकायसत्त्वव्यापादनेऽपि स्वल्पं वैरम्

प्राणियों का घात करने पर समान ही वैर अर्थात् कर्मबन्ध या विरोध
होता है, क्योंकि सभी आत्मा समान रूप से असंख्यात प्रदेशी हैं-
किसी भी जीव के प्रदेशों में न्यूनाधिकता नहीं है, ऐसा नहीं कहना
चाहिए। इसके विपरीत अल्पकाय और महाकाय जीवों का घात करने
पर विसदृश ही कर्मबन्ध होता है, क्योंकि उनके इन्द्रियादि प्राणों में
न्यूनाधिकता होती है, सब प्राणियों के प्राण समान संख्यक नहीं होते
और सब की चेतना एक-सी व्यक्त नहीं होती ऐसा भी नहीं कहना
चाहिए। तात्पर्य यह है कि अल्पकाय और महाकाय जीवों की हिंसा
से समान ही कर्मबन्ध होता है या असमान ही कर्मबन्ध होता है, यह
दोनों एकान्त समीचीन नहीं हैं। कर्मबन्ध का तारतम्य एकान्ततः वध्य
जीवों की अपेक्षा से नहीं होता, किन्तु घातक जीव के अध्यवसायकी
तीव्रता और मन्दता की भी उस में अपेक्षा रहती है। कोई जीव भले ही

કરવાથી સરખાં જ વેર અર્થાત્ કર્મબન્ધ અથવા વિરોધ થાય છે, કારણ કે
બધાં જ આત્માથી સમાન રૂપથી અસંખ્યાત પ્રદેશી છે-કોઇ પણ જીવના
પ્રદેશોમાં ન્યૂનાધિકતા નથી, એવું કહેવું ન જોઇએ. આનાથી વિપરીત અલ્પકાય
અને મહાકાય જીવોની હિંસા કરવાથી-વિસદૃશ જ કર્મબન્ધ થાય છે કારણ
કે તેમના ઇન્દ્રિયાદિ પ્રાણોમાં ન્યૂનાધિકતા હોય છે, બધાં પ્રાણિઓના પ્રાણ
સમાન સંખ્યક હોતાં નથી અને બધાની ચેતના એકસરખી વ્યકત થતી
નથી એમ પણ ન કહેવું જોઇએ. તાત્પર્ય એ છે કે અલ્પકાય અને મહાકાય
જીવોની હિંસાથી સરખી રીતે જ કર્મ બંધાય છે. આ બંને એકાન્ત સમી-
ચીન નથી કર્મબન્ધનું તારતમ્ય એકાન્તતઃ વધ્ય જીવોની અપેક્ષાથી હોતું
નથી, પરંતુ ઘાતક જીવના અધ્યવસાયની તીવ્રતા અને મન્દતાની પણ તેમાં

अल्पकर्मबन्धो भवतीति भावः। अत एवाऽऽभ्या मनन्तरोक्ताभ्यां स्थानाभ्या मल्पकायत्व महाकायत्वाभ्या मनयोर्न्ं स्थानयोरल्पकायमहाकायव्यापादनापादित-कर्मबन्धस्य सदृशत्वविसदृशत्वयोर्व्यवहरणं व्यवहारो निर्युक्तिकत्वान्न युज्यते। तथाहि न वध्यस्य सदृशत्वविसदृशत्वश्चैकमेव कर्मबन्धस्य कारणम्, अपितु घातकस्य तीव्रभावो मन्दभावो ज्ञातभावोऽज्ञातभावो महावीर्यत्व मल्पवीर्यत्वमधिकरणत्वञ्च कर्मबन्ध सदृशत्वाऽसदृशत्वयोः प्रयोजकमिति तदेवं वध्यघातकयो विशेषात्कर्मबन्ध तारतम्यं भवतीत्येवं व्यवस्थिते केवलं वध्यमेवापेक्ष्य कर्मबन्ध

अल्पकाय और अल्पप्राण हो किन्तु घातक जीव यदि अत्यन्त तीव्र कषाय परिणाम से उसका हनन करता है तो महान् कर्मबन्ध होता है। इसके विपरीत भले ही कोई जीव महाकाय हो, अगर घातक अनिच्छापूर्वक या मन्दकषायपूर्वक उसका घात करता है तो उसे अल्प कर्म बन्ध होता है। अतएव पूर्वोक्त दोनों एकान्तमय वचन समीचीन नहीं हैं, अर्थात् अल्पकाय और महाकाय जीवों की हिंसा से कर्मबंध समान ही होता है अथवा असमान ही होता है, यह कथन युक्तिसंगत नहीं है।

अभिप्राय यह है कि मात्र वध्य जीव की सदृशता और विसदृशता ही कर्मबन्ध का कारण नहीं है किन्तु घातक जीव का तीव्रभाव, मन्दभाव ज्ञातभाव और अज्ञातभाव, महावीर्यत्व एवं अल्पवीर्यत्व तथा अधिकरणों की असमानता भी कर्मबन्ध के तारतम्य का कारण है। इस स्पष्टीकरण से यह निर्विवाद है कि कर्मबन्ध में जो न्यूनाधिकता होती है, वह वध्य और घातक दोनों की विशेषता पर निर्भर करती है, ऐसी स्थिति में केवल वध्य जीव की अपेक्षा से ही कर्मबन्ध में

અપેક્ષા રહે છે કોઇ જીવ ભલે અલ્પકાય અને અલ્પપ્રાણ હોય પરન્તુ ઘાતક જીવ જો અત્યન્ત તીવ્ર કષાય પરિણામથી તેનો ઘાત કરે છે ત્યારે તેને મહાન્ કર્મબન્ધ થાય છે. આનાથી વિપરીત ભલે કોઈ જીવ મહાકાય હોય અગર ઘાતક અનિચ્છાપૂર્વક અથવા મન્દકષાયપૂર્વક તેનો ઘાત કરે છે ત્યારે તેને અલ્પ કર્મબન્ધ થાય છે. આથી પૂર્વોક્ત બંને એકાન્તમય વચન સમીચીન નથી, અર્થાત્ અલ્પકાય અને મહાકાય જીવોની હિંસાથી કર્મબન્ધ સરખાં જ થાય છે અથવા અસમાન જ હોય છે આ વિધાન યુકિત સંગત નથી.

અભિપ્રાય એ છે કે એક માત્ર વધ્ય જીવની સદૃશતા અને વિસદૃશતા જ કર્મબન્ધમાં કારણુ નથી પરન્તુ ઘાતક જીવના તીવ્રભાવ મન્દભાવ જ્ઞાતભાવ, અને અજ્ઞાતભાવ મહાવીર્યત્વ અને અલ્પવીર્યત્વ તથા અધિકરણોની અસમાનતા પણુ કર્મબન્ધના તારતમ્યતા કારણો છે. આ સ્વષ્ટીકરણુથી એ નિર્વિવાદ છે કે

सदृशत्वाऽसदृशत्व व्यवहारो न युक्त इति। एव मनयोरेव स्थानयोः प्रवृत्तस्याऽनाचारं विजानीयात्। तथाहि-यद् जीवसाम्यात्कर्मबन्धसदृशत्व मुच्यते, तन्न युक्तम् किन्तु तीव्रादिभाव सव्यपेक्षस्यैव वधस्य कर्मबन्धोऽभ्युपेतुं युक्तः। यथाहि, आगमसव्यपेक्षस्य सम्यक् क्रियां कुर्वतोऽपि यद्यपि आतुरविपत्तिर्भवति। तथा च तत्र न वैद्यस्य वैरानुषङ्गो भवति, भावदोषाऽभावात् अन्यस्य पुनः सर्पबुद्धया रज्जुमपि घ्नतो कर्मबन्धो भवति भावदोषसद्भावात् भावदोषरहितस्य तु न

समानता या असमानता मानना और कहना उचित नहीं है। जो इन दोनों एकान्त स्थानों में प्रवृत्ति करता है अर्थात् कर्मबन्ध को एकान्ततः समान या असमान ही कहता है, वह अनाचार में प्रवृत्ति करता है।

सब जीवों को एकान्तरूप से समान मानकर उनकी हिंसा से समान ही कर्मबन्ध मानना योग्य नहीं है किन्तु तीव्रभाव मन्दभाव आदि की विशेषता से भी कर्मबन्ध में विशेषता मानना चाहिए।

कोई चिकित्सक आयुर्वेद शास्त्र के अनुकूल समीचीन शल्यक्रिया या अन्य चिकित्सा कर रहा हो फिर भी रोगी की मृत्यु हो जाय तो वैद्य उसके निमित्त से हिंसा का भागी नहीं होता, क्योंकि उसकी भावना में दोष नहीं है दूसरा कोई पुरुष सर्प समझ कर रज्जु पर प्रहार करता है और उसके दो खंड कर देता है तो सर्प का घात न होने

કર્મબન્ધમાં જે ન્યૂનાધિકતા હોય છે તે વધ્ય અને ઘાતક બંનેની વિશેષતા પર નિર્ભર રહે છે, તેવી સ્થિતિમાં કેવળ વધ્યજીવની અપેક્ષાથી જ કર્મબન્ધમાં સમાનતા અથવા અસમાનતા માનવી અગર કહેવી એ યોગ્ય નથી જે આ બંને એકાન્ત સ્થાનોમાં પ્રવૃત્તિ કરે છે. અર્થાત્ કર્મબન્ધને એકાન્તતઃ સમાન અથવા અસમાન જ કહે છે તે અનાચારમાં પ્રવૃત્તિ કરે છે.

બધા જીવોને એકાન્ત રૂપથી સરખા ગણીને તેમની હિંસાથી સરખાં જ કર્મબન્ધ માનવા યોગ્ય નથી કિન્તુ તીવ્રભાવ મન્દભાવ આદિની વિશેષતાથી પણ કર્મબન્ધમાં વિશેષતા સ્વીકારવી જોઈએ.

કોઈ ચિકિત્સક આયુર્વેદશાસ્ત્રને અનુકૂળ સમીચીન શસ્ત્રક્રિયા અથવા અન્ય ચિકિત્સા કરી રહ્યો હોય, તો પણ રોગીનું મરણ થઈ જાય તો વૈદ્ય તેના નિમિત્તથી હિંસાનો ભાગી બનતો નથી કારણ કે તેની ભાવનામાં દોષ નથી બીજો કોઈ પુરૂષ સાપ માનીને દોરડાં ઉપર પ્રહાર કરે છે અને તેના બે ટૂકડા કરી નાખે છે. આ પ્રસંગમાં સાપની હિંસા ન થવા છતાં પણ તે હિંસાના પાપનો ભાગી થાય છે. કારણ કે તેના ભાવોમાં દોષ વિદ્યમાન છે. ભાવ–

कर्मबन्धः इति । उक्तञ्चाऽऽगमे-'उच्चालियंमि पाए' इत्यादि तण्डुलमत्स्याख्यानकन्तु सुप्रतीतमेव, तदेवंविध वध्य-घातकभावाऽपेक्षया सदृशमिति, अन्यथा-पुनरनाचारः स्यादिति भावः ॥६॥

मूलम्-जीवाजीवा आसवाहिगरणं ॥७॥

छाया—'जीवाऽजीवा आस्रवाधिकरणम्-' ७॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वसूत्रे-आस्रवविशेष हेतुत्वेनाऽधिकरणमुक्तम्, सम्प्रति-भेदप्रतिपादनपूर्वकमधिकरणस्वरूपज्ञानार्थमाह 'जीवाजीवा आसवाहि-

पर भी वह हिंसा के पाप का भागी होता है, क्योंकि उसके भावों में दोष विद्यमान हैं। भाव दोष से जो सर्वथा रहित है, उसे कर्मबन्ध नहीं होता। आगम में कहा है कोई मुनि ईर्या समिति से गमन कर रहा हो और उसने पैर ऊपर उठाया हो, इसी बीच अकस्मात् कोई बेइन्द्रिय आदि प्राणी वहां आ जाय और पैर के नीचे दब जाय तो भी उस मुनि को तन्निमित्तक हिंसा का दोष नहीं लगता। इसके विपरीत तंडुल मत्स्य का दृष्टान्त भी प्रसिद्ध है। अतएव वध्यजीव और घातक जीव दोनों की अपेक्षा से कर्म बन्ध की न्यूनाधिकता मानना चाहिए। एकान्त मानने पर अनाचार होता है। ६।

सूत्रार्थ-'जीवाऽजीवा आस्रवा' इत्यादि।

जीव और अजीव आस्रव के अधिकरण हैं ॥७॥

तत्त्वार्थदीपीका—पूर्वसूत्र में प्रतिपादन किया गया है कि अधिकरण आस्रव की विशेषता का कारण है। अब उसके भेदों का

દોષથી જે સર્વથા રહિત છે તેને કર્મબન્ધ થતો નથી આગમમાં કહ્યું છે-કોઇ મુનિ ઈર્યાસમિતિથી જઇ રહ્યા હોય અને તેમણે પગ ઉપર લીધો હોય એ અરસામાં અકસ્માત કોઇ બેઈન્દ્રિય આદિ પ્રાણી ત્યાં આવી ચઢે અને તેમના પગ તળે કચડાઈ જાય તો પણ તે મુનિરાજને તે નિમિત્તે હિંસાનો દોષ લાગતો નથી. આનાથી વિપરીત તંદુલ મત્સ્યનું દૃષ્ટાંત પણ પ્રસિદ્ધ છે. આથી વધ્યજીવ અને ઘાતકજીવ-બંનેની અપેક્ષાથી કર્મબન્ધની ન્યૂનાધિકતા સમજવી-માનવી જોઇએ. એકાન્ત માનવાથી અનાચાર થાય છે ॥૬॥

'जीवाऽजीवा आसवाहिगरणं' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—જીવ અને અજીવ આસ્રવના અધિકરણ છે. ॥૭॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં એ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું કે અધિકરણ એ આસ્રવની વિશેષતાનું કારણ છે. હવે તેના ભેદોનું નિરૂપણ કરીને

करणं' इति। जीवा अजीवाश्च पूर्वोक्तस्वरूपा आस्रवाधिकरणं भवन्ति, तत्राऽधि क्रियन्तेऽस्मिन्नर्था इत्यधिकरणं द्रव्य मुच्यते। तच्च-द्रव्यं षड्विधम्, धर्माऽस्ति-कायाऽधर्माऽस्तिकायाऽऽकाशास्तिकाय-कालः पुद्गलास्तिकाय-जीवास्तिकायभेदात्। एवञ्च-यद् द्रव्यमाश्रित्याऽऽस्रव उत्पद्यते, तद् द्रव्यमधिकरण मित्युच्यते, यद्यपि-सर्वोऽपि शुभाऽशुभकायादियोगलक्षण आस्रव आत्मनो जीवस्यैव सञ्जायते तथापि यमास्रवं मुख्यभूतो जीव उत्पादयति तस्याऽऽस्रवस्याऽधिकरणमाश्रयो जीवद्रव्यं भवति। यः पुनरास्रवोऽजीव द्रव्यमाश्रित्य जीवस्योत्पद्यते, तस्याऽऽस्रवस्याऽधिकरणमाश्रयोऽजीव द्रव्य मुच्यते। अत एवाऽत्राऽऽस्रवस्याऽधिकरणं जीवा

निरूपण करके स्वरूप का कथन करते हैं—

जीव और अजीव, जिनका स्वरूप पहले कहा जा चुका है, आस्रव के अधिकरण होते हैं। जिस में अर्थ अधिकृत किये जाएं उस द्रव्य को अधिकरण कहते हैं। द्रव्य के छह भेद हैं-(१) धर्मास्तिकाय (२) अधर्मास्तिकाय (३) आकाशास्तिकाय (४) पुद्गलास्तिकाय (५) जीवास्तिकाय और (६) काल। इस प्रकार जिस द्रव्य के आश्रय से आस्रव उत्पन्न होता है उसे अधिकरण कहते हैं। यद्यपि समस्त शुभाशुभ काययोग आदि रूप आस्रव जीव को ही होते हैं, तथापि जिस आस्रव को जीव प्रधान होकर उत्पन्न करता है, उस आस्रव का अधिकरण जीव द्रव्य होता है और जो आस्रव अजीव द्रव्य के आश्रय से जीव को उत्पन्न होता है, उस आस्रव का अधिकरण अजीव द्रव्य कहा जाता है। इसी कारण यहां जीव और अजीव दोनों को आस्रव का अधिकरण कहा है। किसी न किसी पर्याय

સ્વરૂપનું કથન કરીએ છીએ-

જીવ અને અજીવ, જેમનું સ્વરૂપ પહેલા કહેવાઇ ગયું છે, આસ્રવના અધિકરણ હોય છે જેમાં અર્થ અધિકૃત કરી શકાય તે દ્રવ્યને અધિકરણ કહે છે. દ્રવ્યના છ ભેદ છે-(૧) ધર્માસ્તિકાય (૨) અધર્માસ્તિકાય (૩) આકાશાસ્તિકાય (૪) કાળ (૫) જીવાસ્તિકાય અને (૬) પુદ્ગલાસ્તિકાય આ રીતે જે દ્રવ્યના આશ્રયથી આસ્રવ ઉત્પન્ન થાય છે તેને અધિકરણ કહે છે. જો કે સમસ્ત શુભાશુભ કાયયોગ આદિ રૂપ આસ્રવ જીવને જ થાય છે તો પણ જે આસ્રવને જીવ પ્રધાન થઇને ઉત્પન્ન કરે છે તે આસ્રવનું અધિકરણ જીવદ્રવ્ય હોય છે અને જે આસ્રવ અજીવદ્રવ્યના આશ્રયથી જીવને ઉત્પન્ન થાય છે, તે આસ્રવનું અધિકરણ અજીવદ્રવ્ય કહેવાય છે. આ કારણથી જ અહીં જીવ તથા અજીવ એ બંનેને આસ્રવના અધિકરણ કહેવામાં આવ્યા

अजीवा इत्युक्तम्। तत्र येन केनचित् पर्यायेण विशिष्टं द्रव्य मास्रवस्याऽधिकरणं भवति न तु सामान्यमिति सूचयितुं पर्यायाणा मास्रवाधिकरणत्व ज्ञापनार्थं सूत्रे 'जीवा अजीवा-इति बहुवचनं कृतमिति भावः। ॥७॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वसूत्रे साम्परायिक कर्मास्रवविशेष हेतुत्वेन तीव्र मन्दादयो भावाः—वीर्याधिकरणविशेषाश्च प्रतिपादिताः, तत्र—तीव्रमन्दादयो भावाः प्रकर्षाप्रकर्षादिलक्षणा लोकप्रसिद्धत्वात्सु प्रतीताः, वीर्यञ्च—जीवस्य वीर्यान्तराय-कर्मणः क्षयोपशमप्रयोजनः क्षयप्रयोजनो वा भावः क्षायोपशमिकः क्षायिकश्च पूर्व-मुक्तप्रायएवेति, अथ किन्तावदधिकरणस्वरूपं-२ कतिविधञ्च तत् खल्वधिकरणं

से युक्त होकर ही द्रव्य आस्रव का अधिकरण होता है, सामान्य द्रव्य नहीं। (क्योंकि पर्याय विहीन सामान्य द्रव्य का अस्तित्व ही संभव नहीं है) इस तथ्य को सूचित करने के लिए, पर्याय आस्रव के अधि-करण हैं, यह प्रकट करने के लिए सूत्र में 'जीवाजीवा' इस प्रकार बहुवचन का प्रयोग किया गया है ॥७॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पूर्वसूत्र में बतलाया गया है कि तीव्रभाव, मन्दभाव आदि, तथा वीर्य विशेष और अधिकरण विशेष साम्प-रायिक आस्रव में विशेषता उत्पन्न करने के हेतु हैं। इन में से तीव्र-भाव, मन्दभाव आदि प्रकर्ष एवं अपकर्ष रूप होते हैं और लोक में प्रसिद्ध होने के कारण सुप्रतीत हैं। वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होनेवाला क्षायोपशमिक वीर्य और क्षय से उत्पन्न होनेवाला क्षायिक वीर्य प्रायः पहले ही कहा जा चुका है। किन्तु अधिकरण क्या है उसके कितने भेद हैं ? इस प्रकार की जिज्ञासा होने पर कहते हैं—

છે. કોઈ ન કોઈ પર્યાયથી યુકત થઈને જ દ્રવ્ય આસ્રવનું અધિકરણ થાય છે સામાન્ય દ્રવ્ય નહીં. (કારણ કે પર્યાયવિહીન સામાન્ય દ્રવ્યનું અસ્તિત્વ જ શકય નથી). આ તથ્યને સૂચિત કરવાના આશયેપર્યાય આસ્રવના અધિ-કરણ છે, એ પ્રકટ કરવા માટે સૂત્રમાં 'જીવાજીવા' એ મુજબ બહુવચનનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે ॥૭॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પૂર્વસૂત્રમાં બતાવવામાં આવ્યું કે તીવ્રભાવ, મન્દભાવ આદિ તથા વીર્યવિશેષ તથા અધિકરણ વિશેષ સામ્પરાયિક આસ્રવમાં વિશેષતા ઉત્પન્ન કરવાના કારણરૂપ હોય છે. આમાંથી તીવ્રભાવ, મન્દભાવ આદિ પ્રકર્ષ અને અપકર્ષરૂપ હોય છે તેમજ લોકમાં પ્રસિદ્ધ હોવાના કારણે સુપ્રતીત છે વીર્યાન્તરાયકર્મના ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થનારા ક્ષાયોપશમિક વીર્ય અને ક્ષયથી ઉત્પન્ન થનારું ક્ષાયિક વીર્ય પ્રાયઃ પહેલા જ કહેવાઈ ગયા છે પરંતુ

मित्याकांक्षायामाह-'जीवा अजीवा आस्रवाधिकरणं' इति। जीवा अजीवाश्चास्रवाधिकरणं भवति, तत्राऽधिक्रियन्तेऽस्मिन्नर्था इत्यधिकरणं द्रव्य मित्युच्यते, तच्च द्रव्यं षड्विधम् धर्मास्तिकायाऽधर्मास्तिकायाऽऽकाशास्तिकाय-पुद्गलास्तिकाय-जीवास्तिकाय कालभेदात्। तत्र यद् द्रव्य माश्रित्यास्रव उत्पद्यते, तद् द्रव्यमधिकरण मुच्यते, यद्यपि-सर्वोऽपि शुभाशुभलक्षण आस्रव आत्मनो जीवस्यैव संजायते-तथापि-य आस्रवो मुख्यभूतेन जीवेनोत्पद्यते, तस्यास्रवस्याऽधिकरण माश्रयो जीव द्रव्यं भवति। यः पुनरास्रवोऽजीव द्रव्य माश्रित्य जीवस्योत्पद्यते, तस्यास्रवस्याधिकरण माश्रयोऽजीव द्रव्य मुच्यते, तथाच-ते खलु जीवा अजीवा वा तीव्रमन्दादिभावेन परिणममानस्यात्मनो विषयमुपेताः सन्तः पूर्वोक्तानां द्विचत्वारिंशत्साम्परायिककर्मास्रवविशेषाणां हेतवो भवन्तीति जीवानां

जीव और अजीव आस्रव के अधिकरण हैं। जिस में अर्थ अधिकृत किये जाएं वह द्रव्य अधिकरण कहलाता है द्रव्य के छह भेद हैं-(१) धर्मास्तिकाय (२) अधर्मास्तिकाय (३) आकाशास्तिकाय (४) पुद्गलास्तिकाय (५) जीवास्तिकाय और (६) काल। इनमें से जिस द्रव्य को आश्रित करके आस्रव की उत्पत्ति होती है, वह द्रव्य अधिकरण कहलाता है। यद्यपि सभी प्रकार का आस्रव, चाहे वह शुभ हो या अशुभ, जीव को ही उत्पन्न होता है, किन्तु जो आस्रव जीव की मुख्यता से उत्पन्न होता है, उसका अधिकरण जीव कहलाता है और जो आस्रव अजीव द्रव्य की मुख्यता से उत्पन्न होता है उसका अधिकरण अजीव द्रव्य कहलाता है। तीव्र या मन्द आदि भावों के रूप में परिणत होनेवाले आत्मा के विषय बनने वाले वे जीव या अजीव पूर्वोक्त बयालीस प्रकार के साम्परायिक आस्रव के

અધિકરણ શું છે અને તેના કેટલાં ભેદ છે? આ પ્રકારની જિજ્ઞાસા થવાથી કહીએ છીએ—

જીવ અને અજીવ આસ્રવના અધિકરણ છે. જેમાં અર્થ અધિકૃત કરવામાં આવે તે દ્રવ્ય અધિકરણ કહેવાય છે. દ્રવ્યના છ ભેદ છે-(૧) ધર્માસ્તિકાય (૨) અધર્માસ્તિકાય (૩) આકાશાસ્તિકાય (૪) કાળ (૫) જીવાસ્તિકાય અને (૬) પુદ્ગલ સ્તિકાય આમાંથી જે દ્રવ્યને આશ્રિત કરીને આસ્રવની ઉત્પત્તિ થાય છે, તે દ્રવ્ય અધિકરણ કહેવાય છે. જો કે બધાં પ્રકારના આસ્રવ પછી ભલે તે શુભ હોય અથવા અશુભ જીવને જ ઉત્પન્ન થાય છે, પરન્તુ જે અસ્રવ જીવની મુખ્યતાથી ઉત્પન્ન થાય છે તેનું અધિકરણ જીવદ્રવ્ય કહેવાય-છે, તીવ્ર અગર મન્દ આદિ ભાવોના રૂપમાં પરિણત થનારા આત્માના

दुर्गतिगमननिमित्तत्वादधिकरणशब्दवाच्या अवगन्तव्याः। आत्मपरिणतिरूप-स्याऽऽस्रवस्य प्रयोगलक्षणस्य बाह्यश्चेतनोऽचेतनो वा पदार्थः उत्पत्तौ निमित्तं भव-तीति हिंसादिपरिणामो जीवाधिकरणमजीवाधिकरणञ्च भवति, तत्र जीवपर्या-याणामजीवपर्यायाणां चास्रवाधिकरणत्वं ज्ञापयितुं येन केनचित्पर्यायेण विशिष्ट द्रव्य मास्रवाधिकरणं भवति-नतु-सामान्यं द्रव्य मित्यतः सूत्रे 'जीवाजीवा' इत्येवं बहुवचनमुक्तम्। तत्राऽधिकरणं द्विविधम्, द्रव्याधिकरणं-भावाधिकरणञ्च। तत्र जीवविषयम् अजीवविषयञ्चतद् द्वयं द्रव्याधिकरणं-भावाधिकरणञ्च बोध्यम् तत्र-द्रव्यमेवाधिकरणं द्रव्याधिकरणम्, एवं-भाव एवाधिकरणं भावाधिकरण

कारण होते हैं। अतएव जीवों के दुर्गतिगमन के निमित्त होने के कारण 'अधिकरण' शब्द द्वारा कहे जाते हैं। आत्मा की परिणति रूप एवं प्रयोग लक्षण वाले आस्रव की उत्पत्ति में बाहरी चेतन अथवा अचेतन पदार्थ निमित्त बनते हैं। इस कारण हिंसा आदि परिणाम जीवाधिकरण और अजीवाधिकरण होता है। जीवद्रव्य या अजीव द्रव्य किसी न किसी पर्याय से युक्त होकर ही आस्रव के अधिकरण बनते हैं, पर्याय से रहित द्रव्य सामान्य अधिकरण नहीं बन सकता, यह सूचित करने के लिए सूत्र में 'जीवाजीवा' इस प्रकार बहुवचन का प्रयोग किया गया है।

प्रत्येक अधिकरण के दो-दो भेद हैं-द्रव्याधिकरण और भावाधि-करण। द्रव्यरूप अधिकरण द्रव्याधिकरण कहलाता है औ भावरूप

વિષય બનનારા તે જીવ અથવા અજીવ પૂર્વોક્ત બેંતાળીસ પ્રકારના સામ્પરાયિક આસ્રવના કારણો હોય છે આથી જીવોના દુર્ગતિગમનના નિમિત્ત હોવાથી તેને 'અધિકરણ' શબ્દ દ્વારા કહેવામાં આવે છે. આત્માંની પરિણતિરૂપ અને પ્રયોગ લક્ષણવાળા આસ્રવની ઉત્પત્તિમાં બાહ્ય ચેતન અથવા અચેતન અથવા પદાર્થ નિમિત્ત બને છે. આથી હિંસા વગેરે પરિણામ જીવાધિકરણ અને અજીવાધિકરણ હોય છે જીવદ્રવ્ય અથવા અજીવદ્રવ્ય કોઈ ન કોઈ પર્યાયથી યુક્ત થઈને જ આસ્રવના અધિકરણ બને છે, પર્યાયથી રહિત દ્રવ્ય સામાન્ય અધિકરણ બની શકતું નથી એવું સૂચિત કરવા માટે સૂત્રમાં 'જીવા જીવા' એ રીતે બહુવચનનો પ્રયોગ કરાયો છે.

પ્રત્યેક અધિકરણના બે-બે ભેદ છે-દ્રવ્યાધિકરણ અને ભાવાધિ-કરણ દ્રવ્યરૂપ અધિકરણ દ્રવ્યાધિકરણ કહેવાય છે. અને ભાવરૂપ અધિકરણને ભાવાધિકરણ કહે છે. છેદન-ભેદન વિગેરેનું કારણ શાસ્ત્ર દ્રવ્યરૂપ આસ્રવાધિકરણ છે. તેના દશ ભેદ છે. જે કુરસી, વાંસળો અથવા

मुच्यते। तत्र द्रव्यरूपमास्रवाधिकरणं छेदन-भेदनादिसाधनभूतं शस्त्रं दश-विधम्, छिद्यते येन परशुवासी व्ययघनादिना तत्-छेदनम्, एवं-भिद्यते येन मुद्गरादिना तद्-भेदनम्, एवं-त्रोटन, विशसनो-द्बन्धन, यन्त्राभिघातादिकं बोध्यम्। द्रव्यशस्त्रं दशविधमेव, परश्वध-दहन-विष लवन स्नेह क्षाराऽम्लानि अनुपयुक्तस्य च मनोवाक्कायास्त्रयः, एतेन खलु द्रव्याधिकरणेन जीवाजीवौ विषयीकृत्य साम्परायिकं कर्म बध्यते। तदाहि-पाणिपादशिरोऽधरादीनां परश्व-धादिना छेदः, सचेतनाना अग्निना दहनम्, विषेण हननम्, लवणेन पृथिवीकाया-द्युपघातः, स्नेहेन घृत तैलादिना चोपघातस्तेषाम्, क्षारेण सकल त्वङ्मांस मज्जा-

अधिकरण को आस्रवाधिकरण कहते हैं। छेदन-भेदन आदि का कारण शस्त्र द्रव्यरूप आस्रवाधिकरण है। उसके दश भेद हैं। फरसा, वसूला या घन आदि के द्वारा किसी चीज को छेदा जाय उसे छेदन कहते हैं। और मुद्गर आदि के द्वारा भेदन किया जाय उसे भेदन कहते हैं। इसी प्रकार त्रोटन-जिसके द्वारा तोडा जाय, विशसन-जिससे नष्ट किया जाय, उद्बन्धन-जिसे फांसी लगाई जाय या बांधा जाय तथा यंत्राभिघात-यंत्र के द्वारा आघात करना आदि भी समझ लेना चाहिए।

द्रव्यशस्त्र के दश भेद हैं-परशु, दहन (आग) विष, लवण स्नेह (घी-तेल आदि चिकने पदार्थ) क्षार अम्ल, (खटाई) और उपयोगशून्य जीव के मन, वचन तथा काय। इस द्रव्याधिकरण से जीव और अजीव को विषय करके साम्परायिक कर्म का बन्ध होता है। जैसे हाथ, पैर, सिर, अधर (होठ) आदि को परशु आदि से काटना-छेदन करना, सचेतनों को आग से जलाना, विष से हनन करना, लवण

હથોડા વગેરેની મદદથી કોઇ ચીજને છેદવામાં આવે તેને છેદન કહે છે અને મુદ્ગર આદિ દ્વારા ભેદન કરવામાં આવે તેને ભેદન કહે છે. આવી જ રીતે ત્રોટન-જેના વડે તોડવામાં આવે, વિશસન-જેના વડે નાશ કરાય ઉદ્બન્ધન જેનાથી ફાંસી લગાવવામાં આવે અથવા બાંધવામાં આવે તથા યંત્રાભિઘાત યંત્ર વડે આપઘાત કરવો વગેરે પણ સમજી લેવા જોઈએ.

દ્રવ્યશસ્ત્રનાં દશ ભેદ છે-પરશુ, દહન (આગ), વિષ, લવણ, સ્નેહ (ઘી-તેલ વગેરે ચિકણા પદાર્થો), ક્ષાર, અમ્લ (ખટાશ) અને ઉપયોગ શૂન્ય જીવના મન વચન તથા કાય. આ દ્રવ્યાધિકરણથી જીવ અને અજીવને વિષય બનાવીને સામ્પરાયિક કર્મ બંધાય છે. જેમ કે-હાથ, પગ, માથું, હોઠ આદિને ફરસી વગેરેથી કાપવા-છેદવા સચેતનોને અગ્નિ વડે સળગાવવા, ઝેર આપીને અન્ત આણવો, લવણથી પૃથ્વીકાય આદિનો ઉપઘાત કરવો, ઘી-

दिकर्तनम्, अम्लेन चाऽऽरनालादिना पृथिवीकायिकाद्युपघातः, अनुपयुक्तस्य च कायवाङ्मनांसि यां चेष्टा मभिनिर्वर्तयन्ति तथाभूतया चेष्टया साम्परायिक कर्म बध्यते। भावरूपमास्रवाधिकरणं पुनरष्टोत्तरशतविधं वर्तते, भावस्वावदात्मन स्तीव्रादिपरिणामः, तच्चाष्टोत्तरशतं भावाधिकरण मग्रिमसूत्रे वक्ष्यते। तथाच साम्परायिककर्मास्रव विशेषाधिकरणं जीवा अजीवाश्चेति बोध्यम्। उक्तञ्च-व्याख्याप्रज्ञप्तौ भगवतीसूत्रे १६ शतके १ उद्देशके 'जीवे अधिकरणं' इति जीवोऽधिकरणम्, इति। स्थानाङ्गे २ स्थाने १ उद्देशके ६० सूत्रे चोक्तम् 'एवं अजीवमवि' एवम् अजीवोऽपि, इति ॥७॥

से पृथ्वीकाय आदि का उपघात करना, घी-तेल आदि चिकनाई से किसी जीव का घात करना, क्षार से सारी चमडी मांस मज्जा आदि को काटना, कांजी आदि की खटाई से पृथ्वीकाय आदि का उपघात करना, और उपयोग रहित प्राणी की मन, वचन और काय की विविध प्रकार की प्रवृत्तियां होना, इन सब कारणों से साम्पराायिक कर्म का बन्ध होता है।

भावाधिकरण के एक सौ आठ भेद हैं। आत्मा का जो तीव्र या मन्द परिणाम होता है वह भावाधिकरण है। उसके एक सौ आठ भेदों का कथन अगले सूत्र में किया जाएगा।

इस प्रकार जीव और अजीव साम्परायिक कर्म के आस्रव के अधिकरण होते हैं। भगवतीसूत्र के सोलहवें शतक के प्रथम उद्देशक में कहा है-'जीव अधिकरण है।' स्थानांगसूत्र के द्वितीय स्थान के प्रथम उद्देशक के ६० वें सूत्र में भी कहा है-'इसी प्रकार अजीव भी ॥७॥

તેલ આદિ ચિકાશથી કોઈ જીવની હિંસા કરી નાખવી ક્ષારથી આખી ચામડી, માંસ, મજ્જા આદિને કાપવા, કાંજી આદિની ખટાશથી પૃથ્વીકાય આદિનો ઉપઘાત કરવો અને ઉપયોગ રહિત પ્રાણીની મન વચન અને કાયની વિવિધ પ્રકારની પ્રવૃત્તિઓ કરવી, આ બધાં કારણોથી સામ્પરાયિક કર્મબંધાય છે

ભાવાધિકરણના એકસોઆઠ ભેદ છે. આત્માને જે તીવ્ર અથવા મન્દ પરિણામ થાય છે તે ભાવાધિકરણ છે. તેના એકસોઆઠ ભેદોનું કથન હવે પછીના સૂત્રમાં કરવામાં આવશે.

આવી રીતે જીવ અને અજીવ સામ્પરાયિક કર્મના આસ્રવના અધિકરણ હોય છે. ભગવતીસૂત્રના સોળમાં શતકના પ્રથમ ઉદ્દેશકમાં કહેવામાં આવ્યું છે-'જીવ અધિકરણ છે.' સ્થાનાંગ સૂત્રના દ્વિતીય સ્થાનના પ્રથમ ઉદ્દેશકના ૬૦માં સૂત્રમાં પણ કહ્યું છે-'આવી જ રીતે અજીવ પણ' ॥૭॥

मूलम्-पढमं संरंभाइ विसेसेहिं तेरसविहं ॥८॥

छाया—'प्रथमं संरम्भादि विशेषै स्त्रयोदशविधम्—' ॥८॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत्साम्परायिककर्मास्रवहेतुतया जीवाधिकरणम् अजीवाधिकरणञ्च प्रतिपादितम्, तत्र जीवाधिकरणभेदप्रतिपादनार्थमाह—'पढमं संरंभाइ विसेसेहिं तेरसविहं' इति प्रथमं तावत्–साम्परायिककर्मास्रव हेतुभूतं जीवाधिकरणं संरम्भादिविशेषैः–संरम्भ, समारम्भाऽऽरम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रयोदशविधं भवति। तत्र–संरम्भ, समारम्भा, ऽऽरम्भास्त्रयः योगास्त्रयः कृतकारितानुमतास्त्रय क्रोध मान माया लोभाख्याश्चत्वारः कषाया श्चेति सर्वमेलनेन त्रयोदशविधैः संरम्भादिभिः जीवाधिकरणं त्रयोदशविधं भवति।

सूत्रार्थ—'पढमं संरंभाइ' इत्यादि

पहला जीवाधिकरण संरम्भ आदि के भेद से तेरह प्रकार का है।

तत्त्वार्थदीपिका–पहले प्रतिपादन किया गया है कि साम्परायिक कर्म के आस्रव के कारण होने से अधिकरण के दो भेद हैं–जीवाधिकरण और अजीवाधिकरण। अब जीवाधिकरण के भेदों का निरूपण करते हैं—

साम्परायिक कर्म के आस्रव का कारण जीवाधिकरण संरंभ, समारंभ, आरंभ, योग, कृत, कारित, अनुमत तथा कषाय के भेद से तेरह प्रकार का है। संरंभ, समारंभ और आरंभ–ये तीन, तीन योग एवं कृत, कारित और अनुमत–ये तीन, क्रोध मान माया लोभ ये चार कषाय मिलकर तेरह होते हैं। यही जीवाधिकरण के तेरह भेद हैं। हिंसा

'પઢમં સંરમાઇવિસેસેહિં' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ–પહેલું જીવાધિકરણ, સંરમ્ભક આદિના ભેદથી તેર પ્રકારનું છે.

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલાં પ્રતિપાદન કરવામાં આવી ગયું કે સામ્પરાયિક કર્મના આસ્રવના કારણ હોવાથી અધિકરણના બે ભેદ છે–જીવાધિકરણ અને અજીવાધિકરણ હવે જીવાધિકરણના ભેદોનું નિરૂપણ કરીએ છીએ–

સામ્પરાયિક કર્મના આસ્રવના કારણ જીવાધિકરણ સંરમ્ભ, સમારંભ, આરંભ, યોગ, કૃત, કારિત, અનુમાન તથા કષયના ભેદથી તેરપ્રકારના છે. સંરંભ, સમારંભ અને આરંભએ ત્રણ, કૃત, કારિત અને અનુમત એ ત્રણ તથા ત્રણ યોગ, અને ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ એ ચાર કષાય, મળીને તેર થાય છે. આજ જીવાધિકરણના તેર ભેદ છે હિંસા આદિમાં પ્રયત્નની શરૂઆત

तत्र प्राणातिपातादिषु प्रयत्नावेशः संरम्भः, साधन समभ्यासकरणं समारम्भः आरम्भस्तु प्रक्रमः प्राणातिपातनिष्पत्ति रुच्यते । उक्तञ्च भगवतीसूत्रे ३ शतके १ उद्देशके १५३ सूत्रे वृत्तौ ।

संकप्पो संरंभो परितावकरो भवे समारंभो ।
आरंभो उद्दवओ सव्वनयाणं विसुद्धाणं ॥१॥ इति,

'सङ्कल्पः संरम्भः परितापकरो भवेत्समारम्भः ।
आरम्भउपद्रवः सर्वनयानां विशुद्धानाम् ॥१॥ इति ।

योगाश्च-मनोयोग वाचोयोग काययोगाश्च त्रयः, स्वातन्त्र्य प्रतिपत्त्यर्थं कृत ग्रहणं बोध्यम् । कारिताभिधानञ्च परप्रयोगापेक्षम्, अनुमतशब्दश्च प्रयोजकस्य

आदि में प्रयत्न की शुरुआत करना संरंभ कहलाता है, उसके लिए साधन जुटाना समारंभ कहलाता है और हिंसा करना आरंभ कहलाता है । भगवतीसूत्र के तीसरे शतक के तीसरे उद्देशक में कहा है-हिंसा आदि करने का संकल्प होना संरंभ है, परिताप उत्पन्न करने वाला समारंभ है । और उपद्रव (घात) हो जाना आरंभ है । यह सभी विशुद्ध नयों का अभिप्राय है ॥१॥

योग तीन प्रकार के होते हैं=मनोयोग, वचनयोग और काययोग क्रिया में स्वतंत्रता सूचित करने के लिए 'कृत' शब्द का ग्रहण किया है अर्थात् स्वयं कोई क्रिया करना 'कृत' है । दूसरे से क्रिया करवाना 'कारित' है । 'अनुमत' शब्द प्रयोजक के मानस परिणाम का सूचक है, अर्थात् दूसरा कोई हिंसा आदि क्रिया करता है, तो उसका अनुमोदन करना अनुमत कहलाता है । क्रोध, मान, माया और लोभ, ये चार कषाय हैं । इन सब के भेद से जीवाधिकरण के तेरह भेद होते हैं ।

કરવી સંરંભ કહેવાય છે, તેના માટે સાધન લગાડવું સમારંભ કહેવાય છે. અને હિંસા કરવી આરંભ કહેવાય છે. ભગવતી સૂત્રના ત્રીજા શતકના ત્રીજા ઉદ્દેશકમાં કહેવામાં આવ્યું છે-હિંસા આદિ કરવાનો સંકલ્પ થવો સંરંભ છે, પરિતાપ ઉત્પન્ન કરનાર સમારંભ છે અને ઉપદ્રવ (ઘાત) થઈ જાય આરંભ છે આ બધાં વિશુદ્ધ નયોનો અભિપ્રાય છે ।।૧।।

યોગ ત્રણ પ્રકારના હોય છે-મનોયોગ, વચનયોગ અને કાયયોગ, ક્રિયામાં સ્વતંત્રતા સૂચિત કરવા માટે 'કૃત' શબ્દને ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે અર્થાત્ સ્વયં કોઈ 'ક્રિયા કરવી 'કૃત' છે. બીજા પાસે ક્રિયા કરાવવી 'કારિત' છે 'અનુમત' શબ્દ પ્રયોજકના માનસ પરિણામનું સૂચક છે અર્થાત્ બીજો કોઈ હિંસા આદિ ક્રિયા કરતો હોય તો તેનું અનુમોદન કરવું 'અનુમત' કહેવાય છે ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ કષાય છે. આ બધાંના ભેદથી જીવાધિકરણના તેર ભેદ થાય છે.

मानसपरिणामप्रदर्शनार्थः, कषायाश्च क्रोध मान माया लोभाः तेषां विशेषै र्जीवाधिकरणं त्रयोदशविधं भवति। तत्र क्रोधकृतमनोयोगसंरम्भः, मानकृत मनोयोग संरम्भः, मायाकृत मनोयोगसंरम्भः, लोभकृतमनोयोग संरम्भश्च। एवं क्रोध कारितमनोयोग संरम्भः मानकारित मनोयोग संरम्भः मायाकारित मनोयोगसंरम्भः लोभकारितमनोयोगसंरम्भः, क्रोधानुमतमनोयोगसंरम्भः, मानानुमतमनोयोगसंरम्भः, मायानुमतमनोयोगसंरम्भः, लोभानुमतमनोयोग संरम्भश्चेत्येवं द्वादशविधो मनोयोगसंरम्भः। एवम्–वग्योग संरम्भः, काययोगसंरम्भश्चाऽपि प्रत्येकं द्वादश द्वादश–भेदेन षट्त्रिंशद्भेदाः संरम्भा भवन्ति। एवं–समारम्भाः आरम्भाश्चाऽपि प्रत्येकं षट्त्रिंशद्भेदा भवन्ति सर्वे च सम्मिलिता जीवाधिकरणास्रवविशेषा अष्टोत्तरशतसंख्यकाः भवन्ति। एवमनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानसंज्वलनकषायभेदकृताऽवान्तरभेदा बहवो भवन्ति ॥८॥

क्रोधकृत मनोयोगसंरंभ, मानकृतमनोयोगसंरंभ मायाकृतमनोयोग संरंभ, लोभकृतमनोयोगसंरंभ, इसी प्रकार क्रोधकारितमनोयोगसंरंभ, मानकारितमनोयोगसंरंभ, मायाकारितमनोयोगसंरंभ, लोभकारितमनोयोगसंरंभ क्रोधानुमतमनोयोगसंरंभ मानानुमतमनोयोगसंरंभ, मायानुमतमनोयोगसंरंभ, लोभानुमतमनोयोगसंरंभ, इस प्रकार बारह प्रकार का संरंभ है। इसी प्रकार वचनयोगसंरंभ और काययोगसंरंभ के भी बारह–बारह भेद होने से संरभ के छत्तीस भेद हो जाते है जैसे संरंभ के छत्तीस भेद बताये गये हैं उसी प्रकार समारंभ और आरम्भ के भी छत्तीस–छत्तीस भेद जानने चाहिए। तीनों के छत्तीस–छत्तीस भेद मिलकर एक सौ आठ (१०८) जीवाधिकरण के भेद होते हैं।

अगर इन भेदों में अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानावरण

ક્રોધકૃતમનોયોગસંરંભ, માનકૃતમનોયોગસંરંભ, માયાકૃતમનોયોગસંરંભ, લોભકૃતમનોયોગસંરંભ, એવી જ રીતે ક્રોધકારિતમનોયોગસંરંભ, માનકારિતમનોયોગસંરંભ, માયાકારિતમનોયોગસંરંભ, લોભકારિતમનોયોગસંરંભ, ક્રોધાનુમત મનોયોગસંરંભ માનાનુમત મનોયોગસંરંભ માયાનુમતમનોયોગસંરંભ, લોભાનુમતમનોયોગસંરંભ, આ રીતે બાર પ્રકારના સંરંભ છે આજ પ્રમાણે વચનયોગસંરંભ અને કાયયોગસંરંભના પણ બાર–બાર ભેદ હોવાથી સંરંભના છત્રીશ ભેદ થઈ જાય છે. જેવી રીતે સંરંભના છત્રીશ ભેદ દર્શાવવામાં આવ્યા છે તેવી રીતે સમારંભ તથા આરંભના પણ છત્રીશ–છત્રીશ ભેદ જાણવા જોઈએ. ત્રણેના છત્રીસ–છત્રીસ ભેદો મળીને એકસો–આઠ (૧૦૮) જીવાધિકરણના ભેદ થાય છે.

અગર આ ભેદોમાં અનન્તાનુબંધી, અપ્રત્યાખ્યાન, પ્રત્યાખ્યાનાવરણ

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वसूत्रे साम्परायिककर्मबन्धहेतुभूतास्रवविशेषजनकतया तीव्रभाव मन्दभावादयो वीर्यविशेषाधिकरणविशेषाश्च प्रतिपादिताः अधिकरणशब्देन जीवरूपाधिकरणम् अजीवरूपाधिकरणञ्च गृह्यते, तत्र-प्रथमं तावद् जीवाऽधिकरणभेदं प्रतिपादयितुमाह-'पढमं संरंभाइविसेसेहिं तेरसविहं' इति। प्रथमन्तावद् जीवाधिकरणं संरम्भादिविशेषैः संरम्भ, समारम्भाऽऽरम्भमनोयोगादियोग कृत-कारित-नुमत क्रोधमानमायालोभरूपकषायविशेषै स्त्रयोदशविधं भवति। तत्र प्रथमं तावत् संक्षेपतो जीवरूप माद्याधिकरणं त्रिविधं भवति संरम्भसमारम्भाऽऽरम्भ भेदात्। तत्र प्राणातिपातादि सङ्कल्पा-

संज्वलन के भेद से क्रोध आदि के भेदों की गणना की जाय तो बहुत से अवान्तर भेद होते हैं ।।८।।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-पूर्वसूत्र में साम्परायिक कर्मबन्ध के कारणभूत आस्रव में विशेषता उत्पन्न करने वाले तीव्रभाव, मन्दभाव वीर्यविशेष और अधिकरण का प्रतिपादन किया गया। यहां अधिकरण शब्द से जीवाधिकरण और अजीवाधिकरण का ग्रहण होता है। इन में से यहां जीवाधिकरण के भेदों का प्रतिपादन करने के लिए कहते हैं-

प्रथम अर्थात् जीवाधिकरण संरंभ आदि के भेद से तेरह प्रकार का है, यथा-संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ, मनोयोग, वचनयोग, काययोग, कृत (स्वयं करना) कारित (दूसरे से करवाना) और अनुमत (दूसरे के किये का अनुमोदन करना) क्रोध मान, माया और लोभ।

संक्षेप से जीवाधिकरण के तीन भेद हैं संरम्भ, समारम्भ और

સંજ્વલન આદિના ભેદથી ક્રોધ આદિના ભેદોની ગણતરી કરવામાં આવે તો ઘણાબધાં અવાન્તર ભેદો થાય છે ।।૮।।

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પૂર્વસૂત્રમાં સામ્પરાયિક કર્મબંધના કારણભુત આસ્રવમાં વિશેષતા ઉત્પન્ન કરવાવાળા તીવ્રભાવ, મન્દભાવ, વીર્યવિશેષ તથા અધિકરણનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું અત્રે અધિકરણ શબ્દથી જીવાધિકરણ અને અજીવાધિકરણ સમજવાના છે. આમાંથી અહીં જીવાધિકરણના ભેદોનું પ્રતિપાદન કરવા માટે કહીએ છીએ—

પ્રથમ અર્થાત્ જીવાધિકરણ, સંરંભ આદિના ભેદથી તેર પ્રકારના છે, જેમ કે-સંરંભ, સમારંભ, આરંભ, મનોયોગ, વચનયોગ, કાયયોગ, કૃત (જાતે કરવું) કારિત (બીજાપાસે કરાવવું) તથા અનુમત (બીજા દ્વારા કરાતાને અનુમોદન આપવું), ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ.

સંક્ષેપથી જીવાધિકરણના ત્રણ ભેદ છે-સંરંભ સમારંભ, અને આરંભ

वेशः संरम्भः, प्राणातिपातादि साधनसन्निपातजनितपरितापनादिलक्षणः समारम्भः, प्राणातिपातादि क्रिया निर्वृत्ति रारम्भश्चोच्यते, एतत् त्रिविधमपि जीवाधिकरणं प्रत्येकं मनोवाक्काययोगविशेषात् त्रिविधं भवति। मनोयोगसंरम्भाधिकरणम् १ वाग्योगसंरम्भाधि करणम् २ एवं काययोग संरम्भाधिकरणम् ३ एवं-मनोयोगसमारम्भाधिकरणम् १ वचनयोगसमारम्भाधिकरणम् २, काययोगसमारम्भाधिकरणम् ३ एवं-मनोयोगारम्भाधिकरणम् १ वाग्योगारम्भाधिकरणम् २ काययोगारम्भाधिकरणञ्चेति रीत्या नवविधं भवति, एतन्नवविधमपि जीवरूपं साम्परायिक कर्मास्रवाधिकरणं पुनः कृत-कारिताऽनुमतविशेषात् प्रत्येकं त्रैविध्य मापन्नं सत् सप्तविंशतिविधं भवति। तथाहि-कृतमनः संरम्भाधिकरणम् कारितमनःसंरम्भाधिकरणम्, अनुमतमनःसंरम्भाधिकरणम्, कृतवाक्संरम्भा-

---

आरम्भ। हिंसा आदि करने का संकल्प उत्पन्न होना संरम्भ कहलाता है, हिंसा आदि के साधनों को जुटाना समारम्भ है और प्राणातिपात क्रिया करना आरम्भ है।

यह तीनों प्रकार का जीवाधिकरण मनयोग, वचनयोग और काययोग के भेद से तीन-तीन प्रकार का है-मनोयोगसंरम्भाधिकरण वचनयोगसंरम्भाधिकरण और काययोग संरम्भाधिकरण। इसी प्रकार मनोयोगसमारम्भाधिकरण वचनयोगसमारम्भाधिकरण और काययोगसमारंभाधिकरण, मनोयोग आरंभाधिकरण, वचनयोगआरंभाधिकरण और काययोगआरंभाधिकरण इस प्रकार सब मिलकर नौ भेद होते हैं। यह नौ प्रकार का अधिकरण कृत कारित और अनुमत के भेद से तीन-तीन प्रकार का होने से सत्ताईस प्रकार का हो जाता हैं। जैसे-कृतमनःसंरंभाधिकरण, कारितमनः संरंभाधिकरण, अनुमतमनः

હિંસા આદિ કરવાનો સંકલ્પ ઉત્પન્ન થવો સંરંભ કહેવાય છે. હિંસા આદિના સાધનોનો ઉપયોગ કરવો સમારંભ છે અને પ્રાણાતિપાત ક્રિયા કરવી આરંભ છે.

આ ત્રણે પ્રકારના જીવાધિકરણ મનોયોગ વચનયોગ તથા કાયયોગના ભેદથી ત્રણ-ત્રણ પ્રકારના હોય છે-મનોયોગસંરંભાધિકરણ, વચનયોગ સંરંભાધિકરણ અને કાયયોગસંરંભાધિકરણ, આવી જ રીતે મનોયોગ સમારંભાધિકરણ, વચનયોગસમારંભાધિકરણ અને કાયયોગસમારંભાધિકરણ મનોયોગઆરંભાધિકરણ, વચનયોગ-આરંભાધિકરણ કાયયોગ-આરંભાધિકરણ. આ રીતે બધાં મળીને નવ ભેદ થાય છે. આ નવ પ્રકારના અધિકરણ કૃત, કારિત અને અનુમતાના ભેદથી ત્રણ-ત્રણ પ્રકારના હોય છે આથી સત્તાવીશ પ્રકારના થઈ જાય છે જેમ કે-કૃતમનઃ સંરંભાધિકરણ, કારિતમનઃ સંરંભાધિકરણ અનુમતમનઃસંરંભાધિકરણ, કૃતવચનસંરંભાધિકરણ, કારિતવચન

धिकरणम्, कारितवाक्संरम्भाधिकरणम्, अनुमतवाक्संरम्भाधिकरणम् कृतकाय संरम्भाधिकरणम्, कारितकायसंरम्भाधिकरणम्. अनुमतकायसंरम्भाधिकरणम् इत्येवं संरम्भजीवाधिकरणं नवविधम्, एवं–समारम्भेऽपि नवविधम्, आरम्भे च नवविधमसेयम्। तत्र–कृतवचनं स्वतन्त्र कर्तृप्रतिपादनार्थ मुक्तम्, कारिताभिधानञ्च प्रयोज्यपरतन्त्रता प्रदर्शनार्थं मुक्तम्, अनुमतवचनन्तु–प्रयोजकस्य मानसपरिणामप्रदर्शनार्थमवसेयम्। एवञ्च–मनसा, वचसा, कायेन च प्राणातिपाताद्यर्थं संरम्भं करोति–संरम्भं कारयति–संरम्भ मनुमोदते च, एवं–समारम्भं करोति–कारयति–कुर्वन्तमनुमोदते च, एवम्- आरम्भं करोति- कारयति–कुर्वन्त-

---

संरम्भाधिकरण, कृतवचनसंरंभाधिकरण, कारितवचनसंरंभाधिकरण, अनुमतवचनसंरंभाधिकरण, कृतकायसंरंभाधिकरण, कारितकायसंरंभाधिकरण अनुमतकायसंरंभाधिकरण। इस प्रकार संरंभजीवाधिकरण नौ प्रकार का है, आरंभाधिकरण भी नौ प्रकार का है।

यहां कृत शब्द स्वतन्त्र कर्त्ता का प्रतिपादन करने के लिए है, कारित शब्द प्रयोज्य की परतंत्रता प्रकट करने के लिए है और अनुमत शब्द प्रयोजकके मानसिक परिणामको प्रदर्शित करने के लिए है।

इस प्रकार मन से, वचन से और काय से प्राणातिपात आदि के संरंभ करता है और संरंभ करवाता है और संरंभ का अनुमोदन करता है। इसी प्रकार समारंभ करता है, समारंभ करवाता है और समारंभ का अनुमोदन करता है। इसी प्रकार आरंभ करता है,

---

સંરંભાધિકરણ, અનુમતવચનસંરંભાધિકરણ, કૃતકાયસંરંભાધિકરણ કારિતકાયસંરંભાધિકરણ, અનુમતકાયસંરંભાધિકરણ આવી રીતે સંરંભ જીવાધિકરણ નવ પ્રકારના છે. સમારંભાધિકરણ પણ નવ પ્રકારના છે અને આરંભાધિકરણ પણ નવ પ્રકારના છે.

અહીં કૃત શબ્દ સ્વતંત્ર કર્ત્તાનું પ્રતિપાદન કરવા માટે કહેલ છે, કારિત શબ્દ પ્રયોજનની પરતંત્રતા પ્રગટ કરવા માટે છે અને અનુમત્ત શબ્દ પ્રયોજકના માનસિક પરિણામને પ્રદર્શિત કરવા માટે છે.

આવી રીતે મનથી, વચનથી અને કાયથી પ્રાણાતિપાત આદિ માટે સંરંભ કરે છે, સંરંભ કરાવે છે અને સંરંભને રૂડું જાણે છે. આવી જ રીતે સમારંભ કરે છે, સમારંભ કરાવે છે અને સમારંભનું અનુમોદન કરે છે, આરંભ કરે છે, આરંભ કરાવે છે અને આરંભની અનુમોદના કરે છે,

मनुमोदते चेत्येवं सप्तविंशति विधं जीवाधिकरणं भवति। तच्चापि-सप्तविंशति विधजीवाधिकरणं क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषायचतुष्टयभेदात् प्रत्येकं चतुर्विधं भवतीति सर्वसम्मेलनेनाऽष्टोत्तरशतं जीवरूपं साम्परायिककर्मास्रवाधिकरणं भवति। तद्यथा-क्रोधकृतमनःसंरम्भः मानकृतमनः संरम्भः मायाकृतमनःसंरम्भः लोभकृतमनःसंरम्भः ४ एवं-क्रोधकारितमनःसंरम्भः मानकारितमनः संरम्भः मायाकारित मनःसंरम्भः लोभकारितमनः संरम्भः-८ क्रोधानुमोदित मनः संरम्भः मानानुमोदितमनः संरम्भः मायानुमोदित मनः संरम्भः लोभानुमोदितमनः संरम्भश्च १२ एवं क्रोधकृतवाक् संरम्भः मानकृत वाक्संरम्भः मायाकृतवाक्संरम्भः लोभकृतवाक्संरम्भः १६ क्रोधकारितवाक्-

आरंभ करवाता है और आरंभ की अनुमोदन करता है। यह सत्ताईस प्रकार का जीवाधिकरण हुआ इन सत्ताईस प्रकार के जीवाधिकरण में से प्रत्येक के क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चार कषायों के भेद से चार-चार भेद होते हैं। इन समस्त भेदों को सम्मिलित करने पर जीवाधिकरण के एक सौ आठ भेद होते हैं।

एक सौ आठ भेदों का ब्यौरा इस प्रकार है=क्रोधकृतमनःसंरंभ, मानकृतमनःसंरंभ, मायाकृतमनःसंरंभ लोभकृतमनःसंरंभ, (४) इसी प्रकार क्रोधकारितमनःसंरंभ, मानकारितमनःसंरंभ, मायाकारितमनः संरंभ, लोभकारितमनःसंरंभ (८) क्रोधानुमोदितमनःसंरंभ मानानुमोदितमनःसंरंभ मायानुमोदितमनःसंरंभ और लोभानुमोदितमनःसंरंभ (१२) इसी प्रकार क्रोधकृतवचनसंरंभ, मानकृतवचनसंरंभ, मायाकृतवचनसंरंभ, लोभकृतवचनसंरंभ (१६) क्रोधकारित-

આ સત્તાવીશ પ્રકારનું જીવાધિકરણ થયું. આ સત્તાવીશ પ્રકારના જીવાધિકરણમાંથી પ્રત્યેકના ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ રૂપ ચાર કષાયોના ભેદથી ચાર-ચાર ભેદ થાય છે. આ સઘળા ભેદોનો સરવાળો કરીએ તો જીવાધિકરણના એકસોઆઠ ભેદ થાય છે.

એકસોઆઠ ભેદોનું વિવરણ આ પ્રકારે છે-ક્રોધકૃતમનઃસંરંભ માનકૃતમનઃસંરંભ, માયકૃતમનઃસંરંભ, લોભકૃતમનઃસંરંભ (૪) આવી જ રીતે ક્રોધ કારિતમનઃસંરંભ, માનકારિતમનઃસંરંભ, માયાકારિતમનઃસંરંભ, લોભકારિત મનઃસંરંભ (૮) ક્રોધાનુમોદિતમનઃસંરંભ, માનાનુમોદિતમનઃસંરંભ, માયાનુમોદિત મનઃસંરંભ, અને લોભાનુમોદિતમનઃસંરંભ (૧૨) એવી જ રીતે ક્રોધકૃતવચનસંરંભ, માનકૃતવચનસંરંભ માયાકૃતવચનસંરંભ, અને લોભકૃતવચનસંરંભ (૧૬) ક્રોધાકારિતવચનસંરંભ, માનકારિતવચનસંરંભ, માયાકારિતવચનસંરંભ

संरम्भः मानकारित वाक्संरम्भः मायाकारितवाक्संरम्भः लोभकारितवाक्संरम्भः २० क्रोधानुमत वाक्संरम्भः मानानुमतवाक्संरम्भः मायानुमतवाक्संरम्भः लोभानुमतवाक्संरम्भः २४ एवं-क्रोधकृतकायसंरम्भः मानकृतकायसंरम्भः मायाकृतकायसारम्भः लोभकृतकायसंरम्भः २८ क्रोधकारितकायसंरम्भः मानकारितकायसंरम्भः मायाकारितकायसंरम्भः लोभकारितकायसंरम्भः ३२ क्रोधनुमतकायसंरम्भः मानानुमोदितकायसंरम्भः मायानुमोदितकायसंरम्भः लोभानुमोदितकायसंरम्भः ३६ इत्येवं षट्त्रिंशद्विधं जीवाधिकरणं भवति। एवं समारम्भाऽऽरम्भयोरपि प्रत्येकं षट्त्रिंशत् षट्त्रिंशद्भेदैरष्टोत्तरशतं जीवरूपं साम्परायिककर्मास्रवविशेषाधिकरणं बोध्यम्। तत्र षट्त्रिंशत्प्रकारकं संरम्भाधिकरणं षट्त्रिंशत्प्रकारकं समारम्भाधिकरणं षट्त्रिंशत्प्रकारकमारम्भाधिकरणञ्चाऽन्सेयम्।

वचनसंरंभ मानकारितवचनसंरंभ मायाकारितवचनसंरं, लोभकारित वचसंरंभ (२०) क्रोधानुमतवचनसंरंभ, मानानुमतवचनसंरंभ, माया-नुमतवचनसंरंभ, लोभानुमतवचनसंरंभ (२४) क्रोधकृतकायसंरंभ, मानकृतकायसंरंभ मायाकृतकायसंरंभ, लोभकृतकायसंरंभ, (२८) क्रोधकारितकायसंरंभ, मानकारितकायसंरंभ, मायाकारितकायसंरंभ, लोभकारितकायसंरंभ (३२) क्रोधानुमतकायसंरंभ, मानानुमतकाय-संरंभ, मायानुमोदितकाय संरंभ, लोभानुमोदितकायसंरंभ (३६) इस प्रकार जीवाधिकरण के संरंभ की अपेक्षा से छत्तीस भेद हैं। समारंभ और आरंभ के भी इसी प्रकार छत्तीस-छत्तीस भेदों की गणना करने पर ३६+३६+३६=१०८ भेद जीवाधिकरण के होते हैं। यहां छत्तीस प्रकार का संरंभाधिकरण, छत्तीस प्रकार का समारंभाधिकरण

અને લોભકારિતવચનસંરંભ (૨૦) ક્રોધાનુમતવચનસંરંભ માનાનુમતવચન-સંરંભ, માયાનુમતવચનસંરંભ, લોભાનુમતવચનસંરંભ (૨૪) ક્રોધકૃતકાયસંરંભ માનકૃતકાયસંરંભ માયાકૃતકાયસંરંભ અને લોભકૃતકાયસંરંભ (૨૮) ક્રોધ-કારિતકાયસંરંભ, માનકારિતકાયસંરંભ, માયાકારિતકાયસંરંભ અને લોભકારિત-કાયસંરંભ (૩૨) ક્રોધાનુમતકાયસંરંભ, માનાનુમતકાયસંરંભ, માયાનુમતકાય-સંરંભ, લોભાનુમતકાયસંરંભ (૩૬) આ રીતે જીવાધિકરણનાસંરંભની અપેક્ષાથી છત્રીસ ભેદ છે. સમારંભ તથા આરંભના પણ આ જ પ્રકારે છત્રીશ-છત્રીશ ભેદોની ગણતરી કરવાથી ૩૬+૩૬+૩૬=૧૦૮ ભેદ જીવાધિકરણના હોય છે. અહીં છત્રીશ પ્રકારના સંરંભાધિકરણ, છત્રીશપ્રકારના સમારંભાધિકરણ અને છત્રીશ પ્રકારના આરંભાધિકરણ છે. આમાંથી મનોયોગના સંરંભના બાર ભેદ

तत्राऽपि—मनोयोगेन संरम्भेण द्वादश, वाग्योगेन संरम्भेण द्वादश, काययोगेन संरम्भेण द्वादश, कृतकारिताऽनुमतभेदेन, क्रोधमानमायालोभरूप कषायचतुष्टयभेदेन च लभ्यन्ते, इति द्वादशत्रिकं षट्त्रिंशद्विधं भवति। एवं समारम्भेणापि मनोयोगेन द्वादश, वाग्योगेन द्वादश, काययोगेन द्वादश, कृतकारितानुमतभेदेन, क्रोधमान मायालोभरूपकषायचतुष्टयभेदेन च लभ्यन्ते, इत्यत्रापि द्वादशत्रिकं षट्त्रिंशद्विधं भवति। एवम्—आरम्भेणापि मनोयोगेन द्वादश, वाग्योगेन द्वादश काययोगेन च द्वादश कृतकारितानुमतभेदेन क्रोधमानमायालोभरूप कषायचतुष्टयभेदेन च लभ्यन्ते। इत्येतद् द्वादशत्रिकमपि षट्त्रिंशद्विधं भवतीति सर्वमष्टोत्तरशतं

और छत्तीस प्रकार का आरंभाधिकरण है। इन में भी मनोयोग से संरंभ के बारह भेद हैं, वचनयोग से संरंभ के बारह भेद हैं, काययोग से संरंभ के बारह भेद हैं। ये बारह भेद कृत, कारित और अनुमत के भेद से तथा क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषाय के भेद से बनते हैं। बारह तिया मिलकर छत्तीस होते हैं। इसी प्रकार समारंभ के मनोयोग से बारह, वचनयोग से बारह, काययोग से बारह भेद हैं जो कृत कारित और अनुमत के भेद से तथा क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चार कषायों के भेद से बनते हैं। यहां भी बारह त्रिक (तिया) मिलकर छत्तीस हो जाते हैं। इसी प्रकार आरंभ के भी मनोयोग से बारह, वचनयोग से बारह काययोग से बारह भेद हैं जो कृत, कारित और अनुमोदना के भेद से तथा क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चार कषायों से भेद से होते हैं। ये बारह त्रिक मिलकर भी छत्तीस हो जाते हैं। सब मिलकर जीवरूप साम्परायिक कर्मास्रवा

છે, વચનયોગના સંરંભના પણ ૧૨ બાર ભેદ છે. તથા કાયયોગના સંરંભના બાર ભેદ છે. આ બાર ભેદ કૃતકારિત અને અનુમતના ભેદથી તથા બાર ભેદ ક્રોધ માન માયા અને લોભ રૂપ કષાયના ભેદથી થાય છે. બાર ગુણ્યા ત્રણ બરાબર છત્રીશ થાય છે. એવી જ રીતે સમારંભના મનોયોગથી બાર, વચનયોગથી બાર, કાયયોગથી બાર ભેદ છે જે કૃતકારિત અને અનુમતના ભેદથી તથા ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ રૂપ ચાર કષાયોના ભેદથી થાય છે અહીં પણ બાર ત્રિક (૧૨×૩) મળીને છત્રીશ થઈ જાય છે. એવી જ રીતે આરંભના પણ મનોયોગથી બાર વચનયોગથી બાર, કાયયોગથી બાર ભેદ છે જે કૃત કારિત અને અનુમતના ભેદથી તથા ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ રૂપ ચાર કષાયોના ભેદથી થાય છે. આ બાર ત્રિક મળીને પણ છત્રીશ થઈ જાય છે. બધાં મળીને જીવ રૂપ સામ્પરાયિક કર્માસ્ત્રાધિકરણના એકસોઆઠ ભેદ સમજવા જોઈએ.

जीवरूपं साम्परायिककर्मास्रवाधिकरणमवगन्तव्यम्। अनन्तानुबन्ध-प्रत्याख्यान प्रत्याख्यानसंज्वलनकषायभेदकृताऽवान्तरभेदं बहुविधं खलु साम्परायिक कर्मास्रवाणां जीवाधिकरणं भवतीति बोध्यम्। तथा च क्रोधादिकषाया ऽज्ञानवशीकारात् स्वयं करणपरिणतौ सत्यां कारिताऽनुमतिपरिणामद्वारा च प्राणातिपातादि सङ्कल्पपरितापना व्यापत्तयः साम्परायिकरूपसंसारपरिभ्रमण-कारक कर्मबन्धहेतवो भवन्ति तथाचोक्तम् :—

सङ्कल्पः संरम्भः परितापना भवेत्समारम्भः।
प्राणिवधस्त्वारम्भ स्त्रिविधो योगस्ततो ज्ञेयः ॥१॥ इति,

कषायादियोगाश्च व्यस्ताः समस्ताश्च कर्मबन्धहेतवो द्रष्टव्याः। तत्र—

धिकरण के एक सौ आठ भेद समझने चाहिए।

इन एक सौ आठ भेदों में क्रोध मान, माया और लोभ की सामान्य रूप से एक एक भेद की विवक्षा की गई है। इसके बदले यदि अनन्तानुबंधी क्रोध, अप्रत्याख्यानी क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध और संज्वलन क्रोध, इसी प्रकार मान आदि के अवान्तर भेदों की विवक्षा की जाय तो जीवाधिकरण के अन्य भी बहुत से भेद हो सकते हैं। यह सभी कषाय साम्परायिक कर्मबन्ध के कारण हैं और संरंभ, समारम्भ तथा आरम्भ आदि सभी कोटियां उन में घटित होती हैं। कहा भी है—

जीव के विराधन का संकल्प करना संरंभ है, जीव को परिताप पहुंचाना समारंभ है और विराधना करना आरंभ है। ये तीनों, तीनों योगों से होते हैं—

આ એકસોઆઠ ભેદોમાં ક્રોધ, માન, માયા અને લોભના સામાન્ય રૂપથી એક-એક ભેદની વિવક્ષા કરવામાં આવી છે. આના બદલે જો અનન્તાનુબન્ધીક્રોધ, અપ્રત્યાખ્યાનીક્રોધ પ્રત્યાખ્યાનાવરણક્રોધ અને સંજ્વલનક્રોધ એવી જ રીતે માન વગેરેના અવાન્તર ભેદોની વિવક્ષા કરવામાં આવે તો જીવાધિકરણના બીજાં પણ ઘણાં ભેદ થઈ શકે છે. આ બધાં કષાય સામ્પરાયિક કર્મબન્ધના કારણ છે અને સંરંભ-સમારંભ તથા આરંભ આદિ બધી કોટિઓ તેમાં ઘટિત થાય છે. વળી કહ્યું પણ છે—

જીવની વિરાધનાનો સંકલ્પ કરવો સંરંભ છે, જીવને પરિતાપ પહોંચાડવો સમારંભ છે અને વિરાધના કરવી એ આરંભ છે. આ ત્રણે-ત્રણ યોગોથી થાય છે ॥૧॥

समस्ताः पुनः प्रधानोपसर्जनभावेन बन्धहेतवो भवन्तीति भावनीयम् । उक्तञ्च-उत्तराध्ययने २४ अध्ययने २१ गाथायाम्-

कृतकारिताऽनुमत कोष्ठकम्

कषाय-कषाय कषाय	कृतकारिता-ऽनुमत	मनो-वाक्काय	समष्टया १०८ अष्टोत्तरशतम्
	४ ४ ४	१२ १२ १२	
		३६ ३६ ३६	

'संरंभ-समारंभे, आरंभे य तहेव य' इति । संरम्भः समारम्भ आरम्भश्च तथैव चेति । दशवैकालिके ४ अध्याये चोक्तम्-'तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि । न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि' इति ॥ त्रिविधं त्रिविधेन मनसा-वचसा-कायेन न करोमि, न कारयामि, कुर्वन्तमपि-अन्यं न समनुजानामि, इति ॥ व्याख्याप्रज्ञप्तौ भगवतीसूत्रे ७ शतके १ उद्देशके १८ सूत्रे चोक्तम्-'जस्स णं कोहमाणमायालोभा अवोच्छिन्ना भवंति, तस्स णं संपराइया किरिया कज्जइ नो ईरियावहिया' इति ।

ये कषाय योग आदि पृथक्-पृथक् भी कर्मबन्ध के कारण होते हैं और मिलकर भी । जब मिले हुए कारण होते हैं तो प्रधान एवं गौण रूप से कारण होते हैं । उत्तराध्ययन के २४ वें अध्ययन की २१ वीं गाथा में कहा है-संरंभ, समारंभ और आरंभ ।

दशवैकालिकसूत्र के चौथे अध्ययन में कहा है-तीन करण और तीन योग से अर्थात् मन से, वचन से और काय से न स्वयं करूंगा, न दूसरे से करवाऊंगा और न करते हुए का अनुमोदन करूंगा ।

भगवती सूत्र शतक ७ उद्देशक १ सूत्र १८ में कहा है-जिस जीव

આ કષાય યોગ આદિ પૃથક્-પૃથક્ પણ કર્મબન્ધના કારણ હોઈ શકે છે અને સંયુક્ત રીતે પણ જ્યારે સંયુક્ત કારણ હોય છે તો પ્રધાન તથા ગૌણ રૂપથી કારણ હોય છે. ઉત્તરાધ્યયનના ૨૪માં અધ્યયનની ૨૧મી ગાથામાં કહ્યું છે-સંરંભ, સમારંભ અને આરંભ'.

દશવૈકાલિકસૂત્રના ચોથા અધ્યયનમાં કહ્યું છે-ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી અર્થાત્ મનથી, વચનથી તથા કાયાથી હું જાતે કરીશ નહીં બીજા પાંસે કરાવીશ નહીં તેમજ અન્ય કોઈ કરતું હશે તેને અનુમોદન આપીશ નહીં.

ભગવતીસૂત્રના શતક ૭ ઉદ્દેશક-૧ સૂત્ર ૧૮માં કહ્યું છે જે જીવના

यस्य खलु क्रोध-मान-माया-लोभा अव्युच्छिन्ना भवन्ति, तस्य खलु-साम्परायिकी क्रियाक्रियते ऐर्यापथिकी, इति ॥८॥

मूलम्-अंतिमं णिव्वत्तणणिक्खेवसंजोयनिसग्गेहिं चउविहं ॥९॥

छाया—अन्तिमं निर्वर्तन-निक्षेप-संयोग-निसर्गैश्चतुर्विधम् ॥९॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वं तावत् साम्परायिककर्मास्रवाणां हेतुभूतेषु तीव्रभाव मन्दभावादि वीर्याधिकरणविशेषेषु जीवाजीवभेदेन द्विविधाधिकरणे प्रथमं जीवरूपमधिकरणं सविशदं प्ररूपितम्, सम्प्रति-द्वितीय जीवरूपमधिकरणं प्ररूपयितुमाह-'अंतिमं णिव्वत्तणणिक्खेवसंजोयनिसग्गेहिं चउव्विहं' इति । अन्तिमं द्वितीयमजीवरूपं साम्परायिक कर्मास्रवाधिकरणं निर्वर्तन-निक्षेप-संयोग-निसर्गैश्चतुर्विधं भवति । तत्र-निर्वर्त्यते निष्पाद्यते यत्, तत् निर्वर्तनं-

---

के क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय का विच्छेद नहीं होता उसको साम्परायिक क्रिया होती है ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं होती ॥८॥

'अंतिमं णिव्वत्तणणि' इत्यादि ।

सूत्रार्थ-अन्तिम अर्थात् अजीवाधिकरण चार प्रकार का है-निर्वर्त्तन, निक्षेप, संयोग और निसर्ग । ९॥

तत्त्वार्थदीपिका-पहले साम्परायिक कर्मों के आस्रव में विशेषता उत्पन्न करने वाले तीव्रभाव, मन्दभाव आदि एवं वीर्य और अधिकरण का निरूपण किया गया था । उन में से अधिकरण के दो भेद कह कर जीवाधिकरण की प्ररूपणा की । अब दूसरे अजीवाधिकरण की प्ररूपणा करने के लिए कहते हैं—

दूसरा साम्परायिक कर्मास्रवाधिकरण अर्थात् अजीवाधिकरण चार प्रकार का है-निर्वर्त्तन निक्षेप, संयोग और निसर्ग ।

ક્રોધ, માન, માયા તથા લોભ કષાયને વિચ્છેદ થતો નથી, તેને સામ્પરાયિક ક્રિયા થાય છે, ઐર્યાપથિકી ક્રિયા થતી નથી. ॥૮॥

'અંતિમ ણિવ્વત્તણણિક્ખેવ' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—અન્તિમ અર્થાત્ અજીવાધિકરણ ચાર પ્રકારનું છે-નિર્વર્ત્તન નિક્ષેપ, સંયોગ અને નિસર્ગ. ॥૯॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલાં સામ્પરાયિક કર્માના આસવમાં વિશેષતા ઉત્પન્ન કરવાવાળા તીવ્રભાવ, મન્દભાવ આદિ તથા વીર્ય અને અધિકરણનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે. હવે બીજા અજીવાધિકરણની પ્રરૂપણા કરવા માટે કહીએ છીએ-

બીજું સામ્પરાયિક કર્માસ્રવાધિકરણ અર્થાત્ અજીવાધિકરણ ચાર પ્રકારનું છે-નિર્વર્ત્તન નિક્ષેપ, સંયોગ અને નિસર્ગ.

निष्पादनम्, निक्षिप्यते-स्थाप्यते इति निक्षेपः-स्थापनम्, संयुज्यते-मिश्री-क्रियते इति संयोगः-मिश्रणम्, मिश्रणम्, निसृज्यते-प्रवर्त्यते इति निसर्गः-प्रवर्तनम्। तत्र-निर्वर्तनाधिकरणं द्विविधम्, मूलगुणनिर्वर्तनाधिकरणम्-उत्तर-गुणनिर्वर्तनाधिकरणञ्चेति। निक्षेपाधिकरणं चतुर्विधम्, दुष्प्रत्युपेक्षितनिक्षेपा-धिकरणम् १ दुष्प्रमार्जितनिक्षेपाधिकरणम् २ सहसा निक्षेपाधिकरणम् ३ अना-भोगनिक्षेपाधिकरणम् ४ चेति। संयोगाधिकरणं द्विविधम्, भक्तपानसंयोगाधि-करणम्-उपकरणसंयोगाधिकरणञ्चेति। निसर्गाधिकरणं पुनस्त्रिविधम्, मनो-निसर्गाधिकरणम् १ वाङ्निसर्गाधिकरणम् २ कायनिसर्गाधिकरम् ३ चेति सर्वं सम्मेलनेनाऽजीवरूपं साम्परायिककर्मास्रवाधिकरमेकादशविधं भवति। तत्राऽपि-

---

जो उत्पन्न किया जाय उसे निर्वर्त्तन कहते हैं। जिसे निक्षिप्त किया जाय-स्थापित किया जाय उसे निक्षेप कहते हैं। जो संयुक्त किया जाय अर्थात् मिश्रित किया जाय उसे संयोग कहते हैं। जो प्रवृत्त किया जाय उसे प्रवर्त्तन या निसर्ग कहते हैं।

निर्वर्त्तन अधिकरण के दो भेद हैं-मूलगुण निर्वर्त्तनाधिकरण और उत्तरगुणनिर्वर्त्तनाधिकरण। निक्षेपाधिकरण चार प्रकार का है-(१) दुष्प्रत्युपेक्षितनिक्षेपाधिकरण (२) दुष्प्रमार्जितनिक्षेपाधिकरण (३) सहसानिक्षेपाधिकरण और (४) अनाभोगनिक्षेपाधिकरण। संयोगाधि-करण के दो भेद हैं-भक्तपानसंयोगाधिकरण और उपकरण संयोगा-धिकरण। निसर्गाधिकरण के तीन भेद है-(१) मनोनिसर्गाधिकरण (२) वचननिसर्गाधिकरण और (३) कायनिसर्गाधिकरण।

જે ઉત્પન્ન કરી શકાય તેને નિર્વર્ત્તન કહે છે. જેને નિક્ષિપ્ત કરી શકાય-સ્થાપિત કરી શકાય તેને નિક્ષેપ કહે છે જે સંયુક્ત કરી શકાય અર્થાત્ ભેળવી શકાય તેને સંયોગ કહે છે જે પ્રવૃત્ત કરી શકાય તેને પ્રવર્ત્તન અથવા નિસર્ગ કહે છે.

નિર્વર્ત્તન અધિકરણના બે ભેદ-મૂળગુણનિર્વર્ત્તનાધિકરણ અને ઉત્તર-ગુણનિર્વર્ત્તનાધિકરણ. નિક્ષેપાધિકરણ ચાર પ્રકારના છે. (૧) દુષ્પ્રત્યુપેક્ષિત નિક્ષેપાધિકરણ (૨) દુષ્પ્રમાર્જિતનિક્ષેપાધિકરણ (૩) સહસાનિક્ષેપાધિકરણ અને (૪) અનાભોગનિક્ષેપાધિકરણ સંયોગાધિકરણના બે ભેદ છે-ભક્તપાન સંયોગાધિકરણ અને ઉપકરણસંયોગાધિકરણ. નિસર્ગાધિકરણના ત્રણ ભેદ છે-(૧) મનોનિસર્ગાધિકરણ (૨) વચનનિસર્ગાધિકરણ અને (૩) કાયનિસર્ગાધિકરણ;

मूलगुणनिर्वर्तना औदारिकादीनिपञ्च शरीराणि मनोवाक्काय प्राणापानाश्चेति । उत्तरगुणनिर्वर्तनञ्चा-ऽनेकविधं भवति, काष्ठपाषाण-पुस्त-चित्रकर्मादिनिष्पादन जीवकृतिनिष्पादन लेखनादि भेदात् इति ॥९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावत् साम्परायिककर्मास्रवहेतुतया प्रतिपादितेषु तीव्रभावादि वीर्याधिकरणविशेषेषु जीवाजीवभेदेन द्विविधाधिकरणे प्रथमं जीवरूपाधिकरणं प्ररूपितम्, सम्प्रति-द्वितीयम् अजीवरूपं साम्परायिककर्मास्रवाधिकरणं प्ररूपयितुमाह-'अंतिमं निव्वत्तण णिक्खेव संजोय निसग्गेहिं चउव्विहं' इति । अन्तिमं-द्वितीयम् अजीवरूपं साम्परायिककर्मास्रवहेतुभूतम धिकरणं निर्वर्तन-निक्षेप-संयोग-निसर्गैश्चतुर्विधं भवति । तत्र-निर्वर्तननिक्षेप-

इन सब भेदों को सम्मिलित करने पर अजीवाधिकरण ग्यारह प्रकार का होता है। इन में से औदारिक आदि पांच शरीर, मन, वचन, काय तथा प्राणापान, ये मूलगुणनिर्वर्त्तन हैं। उत्तरगुणनिर्वर्त्तन के अनेक भेद हैं-काष्ठ, पाषाण पुस्त, चित्र आदि बनाना, जीव की आकृति बनाना, लेखन आदि-आदि ॥९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-पहले बतलाया गया था कि तीव्रभाव, मन्दभाव आदि तथा वीर्य और अधिकरण सम्परायिक आस्रव में विशेषता उत्पन्न करते हैं। इनमें से अधिकरण के दो भेदों का प्रतिपादन करके जीवाधिकरण का प्ररूपण किया गया, अब दूसरे अजीवाधिकरण का निरूपण करने के लिए कहते हैं-

दूसरा साम्परायिक आस्रवका अधिकरण अर्थात् अजीवाधिकरण निर्वर्त्तन, निक्षेप, संयोग और निसर्ग के भेद से चार प्रकार का है।

આ બધાં ભેદોને સરવાળો કરવાથી અજીવાધિકરણ અગીયાર પ્રકારના થાય છે. આમાંથી ઔદારિક આદિ પાંચ શરીર, મન, વચન કાય તથા પ્રાણાપાન એ મૂળગુણનિર્વર્ત્તન છે. ઉત્તરગુણનિર્વર્ત્તનના અનેક ભેદ છે. કાષ્ઠ, પાષાણ, પુસ્ત, ચિત્ર આદિ બનાવવું, જીવની આકૃતિ બનાવવી, લેખન વગેરે ॥૯॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુકિત-પહેલા બતાવવામાં આવ્યું હતું કે તીવ્રભાવ, મન્દભાવ આદિ તથા વીર્ય અને અધિકરણ સામ્પરાયિક આસવમાં વિશેષતા ઉત્પન્ન કરે છે. આમાંથી અધિકરણના બે ભેદોનું પ્રતિપાદન કરીને જીવાધિકરણનું નિરૂપણ કરવા માટે કહીએ છીએ-

બીજું સામ્પરાયિક આસ્રવનું અધિકરણ અર્થાત્ અજીવાધિકરણ નિર્વર્ત્તન, નિક્ષેપ સંયોગ અને નિસર્ગનાભેદથી ચાર પ્રકારના છે. આશય કહે-

संयोग-निसर्गान् कुर्वन् राग-द्वेष युक्त आत्मा साम्परायिक कर्मबन्धको भवति। तत्र-निर्वर्त्यते निष्पाद्यते इति निर्वर्त्तनम्, प्राणातिपाताद्यर्थं निर्वर्त्यमान खड्गादिकमजीवद्रव्यं निर्वर्त्तनमिति व्यपदिश्यते। तच्च-निर्वर्त्तनं द्विविधम्, मूलोत्तरगुणभेदात् १ निक्षिप्यते-स्थाप्यतेऽस्मिन्निति निक्षेपः स्थापनीयः कश्चिदजीव एव स च निक्षेपश्चतुर्विधः, वक्ष्यमाण-दुष्प्रत्युपेक्षादिभेदतः २ संयुज्यते-मिश्रीक्रियतेऽसाविति संयोगः-मिश्रणम्, स द्विविधः-आहारोपकरणभेदात् ३ निसृज्यते-प्रवर्त्यते इति निसर्गः प्रवर्तनं त्यागः उज्झनम्, स च निसर्गस्त्रिविधः-कायिकवाचिकमानसिकभेदात्। तत्र-जीवरूपं साम्परायिककर्मास्रवस्याऽन्तरङ्गमधिकरणम्, अजीवरूपाधिकरणन्तु-तथाविधास्रवस्य बहिरङ्गं कारणं वर्तते, अतएवाऽनन्तरङ्गत्वात् जीवाधिकरणं प्रथममुक्तम्, अजीवाधिकरणं पुनः पश्चात्

तात्पर्य यह है कि राग-द्वेष से युक्त जीव निर्वर्त्तन, निक्षेप, संयोग और निसर्ग करता हुआ साम्परायिक कर्मका बन्ध करता है।

जिसका निष्पादन किया जाय वह निर्वर्त्तन है जैसे प्राणातिपात करने के लिए बनाये जाने वाले खड्ग आदि को अजीवद्रव्यनिर्वर्त्तन कहते हैं। निर्वर्तन के दो भेद हैं मूलगुणनिर्वर्त्तन और उत्तरगुणनिर्वर्त्तन। जो निक्षिप्त किया जाय, स्थापित किया जाय या करवाया जाय उसे निक्षेप कहते हैं उसके चार भेद आगे कहे जाएंगे। जो संयुक्त किया जाय-मिश्रित किया जाय, वह संयोगाधिकरण है। इसके दो भेद हैं-आहारसंयोग और उपकरणसंयोग। निसर्ग का अर्थ है प्रवर्त्तन, त्याग या निकाल देना। कायिक, वाचिक और मानसिक भेदसे निसर्ग तीन प्रकारका है।

साम्परायिक आस्रव का अन्तरंग कारण जीवाधिकरण है और

વાનો એ છે કે રાગદ્વેષથી યુક્ત જીવ નિર્વર્ત્તન નિક્ષેપ સંયોગ અને નિસર્ગ કરતો થકો સામ્પરાયિક કર્મનું બન્ધન કરે છે.

જેનુ નિષ્પાદન કરી શકાય તે નિર્વર્ત્તન છે જેમ કે પ્રાણાતિપાત કરવા માટે તૈયાર કરવામાં આવતી તલવાર વગેરેને અજીવદ્રવ્યનિર્વર્ત્તન કહે છે. નિર્વર્ત્તના બે ભેદ છે-મૂળગુણનિર્વર્ત્તન અને ઉત્તરગુણનિર્વર્ત્તન જેને નિક્ષિપ્ત કરી શકાય, સ્થાપિત કરી શકાય અથવા કરાવી શકાય તેને નિક્ષેપ કહે છે. તેના ચાર ભેદ આગળ ઉપર કહેવામાં આવશે. જે સંયુક્ત કરી શકાય-મિશ્રિત કરી શકાય તે સંયોગાધિકરણ છે. એના બે ભેદ-છે આહાર સંયોગ અને ઉપકરણસંયોગ નિસર્ગનો અર્થ છે પ્રવર્ત્તન, ત્યાગ અથવા કાઢીમુકવું. કાયિક, વાચિક અને માનસિક ભેદથી નિસર્ગ ત્રણ પ્રકારના છે.

સામ્પરાયિક આસવનું અંતરંગ કારણ જીવાધિકારણ છે અને બાહ્ય

अन्यथा-निर्वर्तननिक्षेपादीनामपि आत्मपरिणतिसद्भावात् संरम्भादिवत् तेषामपि जीवाधिकरणेऽन्तर्भाव एव स्यात् इतिभावः। तथाच-तथाविधकर्मबन्धास्रवस्य जीवपरिणामोऽन्तरङ्गो बोध्यः, कर्मबन्धस्य तदधीनत्वात् जीवाधिकरणस्य-साम्परायिककर्मबन्धं प्रतिप्रधानत्वादन्तरङ्गत्वात् प्रथममुपादानम्। अजीवाधिकरणस्यतु-तथाविधकर्मबन्धं प्रतिनिमित्तत्वादप्रधानत्वं बहिरङ्गत्वं बोध्यम्, अतएव-पश्चात् तदुपादानं कृतम्। अथवा-प्रायोगिकावैस्रसावा निर्वर्तनादयोऽवगन्तव्याः,

---

बाह्य कारण अजीवाधिकरण है। इसी से पहले अन्तरङ्ग कारण जीवाधिकरण का कथन किया गया है और बाद में बाह्य कारण अजीवाधिकरण का अन्यथा निर्वर्त्तन एवं निक्षेप आदि भी आत्मा की तथा विध परिणति के बिना नहीं होते, अतः संरंभ आदि के समान उन का भी जीवाधिकरण में समावेश किया जाता। इस प्रकार साम्परायिक कर्म का आस्रव और बन्ध जीव का अन्तरङ्ग परिणाम है, ऐसा समझना चाहिए, क्योंकि कर्मबन्ध उस परिणाम के अधीन है। इस प्रकार साम्परायिक कर्म के बन्ध में जीवाधिकरण प्रधान या अन्तरङ्ग होने से पहले ग्रहण किया गया है। अजीवाधिकरण साम्परायिक कर्मबंध में निमित्त मात्र होता है, अतएव वह अप्रधान या बहिरङ्ग कारण है। इसी से उसको बाद में ग्रहण किया गया है।

अथवा निर्वर्त्तना आदि प्रायोगिक (पुरुष के प्रयत्न से उत्पन्न) और वैस्रसिक (स्वाभाविक) जानने चाहिये। पहला जीवाधिकरण

કારણ અજીવાધિકરણ છે આથી જ પહેલા અંતરંગ કારણ જીવાધિકરણનું. કથન કરવામાં આવ્યું છે અને પછીથી બાહ્યકારણ અજીવાધિકરણનુ અન્યથા નિર્વર્ત્તન અને નિક્ષેપ આદિ પણ આત્માની તથાવિધ પરિણતિ રહિત હોતાં નથી આથી સંરંભ આદિની માફક તેમનો પણ જીવાધિકરણમાં સમાવેશ કરવામાં આવત. આમ સામ્પરાયિક કર્મના આસ્રવ અને બન્ધ જીવના અંતરંગ પરિણામ છે એવું સમજવાનું છે કારણ કે કર્મબન્ધ તે પરિણામને આધીન છે આ રીતે સામ્પરાયિક કર્મના બન્ધમાં જીવાધિકરણ પ્રધાન અથવા અંતરંગ હોવાથી પ્રથમ લેવામાં આવ્યું છે. અજીવાધિકરણ સામ્પરાયિક કર્મ બન્ધમાં નિમિત્ત માત્ર હોય છે આથી તે ગૌણ અથવા બહિરંગ કારણ છે, આથી જ તેને પછી લેવામાં આવેલ છે.

અથવા નિર્વર્ત્તના આદિ પ્રાયોગિક (પુરૂષના પ્રયત્નથી ઉત્પન્ન) તથા વૈસ્રસિક (સ્વાભાવિક) જાણવા જોઈએ. પહેલું જીવાધિકરણ જીવવિષયક હોવાથી

प्रथमं खलु जीवविषयत्वात्–तथाविधास्रवस्य भावाधिकरणं मुख्यतया कर्मबन्धहेतुर्भवति। अजीवविषयत्वाद् द्वितीयं द्रव्याधिकरणं निमित्तमात्रत्वादमुख्यतया कर्मबन्धहेतुर्भवतीति पश्चात्तदुपादानमितिभावः। तत्र–निर्वर्तनरूपाऽजीवाधिकरणं द्विविधम्, मूलगुणनिर्वर्तनाधिकरणम् १ उत्तरगुणनिर्वर्तनाधिकरणञ्च २। तत्र–मूलगुणनिर्वर्तनाधिकरणम् औदारिकादि पञ्चशरीराणि वाङ्मनःप्राणापानाश्च। उत्तरगुणनिर्वर्तनाधिकरण काष्ठपाषाणादिषु चित्रकर्मादीनि, तत्र–मूलं चाऽसौ गुणश्चेति मूलगुणः, मूलमाद्यं प्रतिष्ठा संस्थाभिधानो गुणो मूलगुणः, स एव निर्वर्तनाधिकरणं मूलगुणनिर्वर्तनाधिकरणम्। स खलु मूलगुणो निर्वृतः सन् कर्मबन्धस्याऽधिकरणं भवति,। एवम्–अङ्गोपाङ्ग संस्थानमृद्वादि तीक्ष्णत्वादिरुत्तरगुणः, सोऽपि–निर्वृतः सन् कर्मबन्धाधिकरणं भवति, उत्तरगुण एव

जीवविषयक होने से भावाधिकरण एवं कर्मबन्ध का प्रधान हेतु है। दूसरा अजीव विषयक होने से द्रव्याधिकरण है, वह निमित्त मात्र होने से कर्मबन्ध का अप्रधान (गौण) कारण है। इस कारण उसे बाद में ग्रहण किया गया है।

निर्वर्त्तनरूप अजीवाधिकरण दो प्रकार का है–मूलगुणनिर्वर्त्तनाधिकरण और उत्तरगुणनिर्वर्त्तनाधिकरण। औदारिक आदि पाँचों शरीर और प्राणापान वचन तथा मन ये मूलगुणनिर्वर्त्तन हैं। काष्ठ एवं पाषाण आदि पर चित्र अंकित करना आदि उत्तरगुणनिर्वर्त्तन है। मूलभूत अर्थात् आद्य, प्रतिष्ठा या संस्था रूप गुण मूलगुण कहलाता है। वही मूलगुणनिर्वर्त्तनाधिकरण कहलाता है। वह मूलगुण उत्पन्न होकर कर्मबंध का कारण अधिकरण होता है। अंगोपांग संस्थान, मृदुता, तीक्ष्णता आदि उत्तरगुण हैं। वह भी उत्पन्न होकर कर्मबन्ध के अधिकरण होते

ભાવાધિકરણ અને કર્મબંધનું પ્રધાન કારણ છે, બીજું અજીવ વિષયક હોવાથી દ્રવ્યાધિકરણ છે તે નિમિત્ત માત્ર હોવાથી કર્મબન્ધનું અપ્રધાન (ગૌણ) કારણ છે. આથી તેને પાછળ લેવામાં આવેલ છે.

નિર્વર્ત્તનરૂપ અજીવાધિકરણ બે પ્રકારનું છે–મૂળગુણનિર્વર્ત્તનાધિકરણ અને ઉત્તરગુણનિર્વર્ત્તનાધિકરણ. ઔદારિક આદિ પાંચે શરીર અને પ્રાણાપાન વચન તથા મન એ મૂળગુણનિર્વર્ત્તન છે. કાષ્ઠ તથા પાષાણ આદિ પર ચિત્ર દોરવું આદિ ઉત્તરગુણનિર્વર્ત્તન છે મૂળભૂત અર્થાત્ આદ્ય, પ્રતિષ્ઠા અથવા સંસ્થા રૂપ ગુણ મૂળગુણ કહેવાય છે. તેજ મૂળગુણનિર્વર્ત્તનાધિકરણ કહેવાય છે, તે મૂળગુણ ઉત્પન્ન થઈને કર્મબંધ અધિકરણ થાય છે. અંગોપાંગ, સંસ્થાન, મૃદુતા, તીક્ષ્ણતા આદિ ઉત્તર ગુણ છે તે પણ ઉત્પન્ન

निर्वर्तनाधिकरणम्-उत्तरगुणनिर्वर्तनाधिकरणम्, तत्रौदारिकशरीरवर्गणाप्रायोग्य द्रव्यैर्निर्मापितमौदारिकशरीरसंस्थानं प्रथमसमयादारभ्याऽऽत्मनो मूलगुण-निर्वर्तनाधिकरणं भवति, कर्मबन्धनिमित्तत्वात्। औदारिकशरीरस्याऽङ्गोपाङ्ग-मार्जनकर्णवेधाऽवयवसंस्थानादिकम् आत्मन उत्तरगुणनिर्वर्तनाधिकरणं भवति, तस्यापि-कर्मबन्धनिमित्तत्वात्। वैक्रियस्यापि शरीरस्य स्ववर्गणाप्रायोग्यद्रव्यै र्निर्मापितं संस्थानं प्रथमसमयादारभ्य मूलगुणनिर्वर्तनाधिकरणं भवति, वैक्रिय-स्य-शरीरस्या-ऽङ्गोपाङ्ग-केशदन्तनखादिकमुत्तरगुणनिर्वर्तनाधिकरणं भवति। आहारकशरीरस्यापि स्ववर्गणाप्रायोग्य पुद्गलद्रव्यरचितं संस्थानं मूलगुणनिर्वर्तना-धिकरणम्, तस्याङ्गोपाङ्गादिकं पुनरुत्तरगुणनिर्वर्तनाधिकरणम् भवति। एवं-

---

हैं। उत्तरगुण रूप निर्वर्त्तनाधिकरण को उत्तरगुणनिर्वर्त्तनाधिकरण कहा गया है। औदारिक शरीर वर्गणा के द्रव्यों से बना हुआ औदा-रिक शरीरसंस्थान प्रथम समय से लेकर आत्मा का मूलगुणनिर्वर्त्तना-धिकरण है, क्योंकि वह कर्मबन्ध का कारण है। औदारिकशरीर के अंगोपांग-मार्जन कर्णवेध अवयवों का संस्थान आदि आत्मा का उत्तर-गुणनिर्वर्त्तनाधिकरण है, क्योंकि वह भी कर्मबन्ध का कारण है। इसी प्रकार वैक्रिय शरीर का वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों से बना हुआ संस्थान प्रथमसमय से लेकर मूलगुणनिर्वर्त्तनाधिकरण है और वैक्रिय शरीर के अंगोपांग, केश, दांत, नख, आदि उत्तरगुणनिर्वर्त्तनाधिकरण हैं। आहारकशरीर के योग्य वर्गणा के पुद्गलों से बना हुआ संस्थान मूलगुणनिर्वर्त्तनाधिकरण है और उसके अंगोपांग आदि उत्तरगुण-

---

થઈને કર્મબન્ધના અધિકરણ થાય છે ઉત્તરગુણ રૂપ નિર્વત્તનાધિકરણને ઉત્તર ગુણનિર્વત્તનાધિકરણ કહેવામાં આવેલ છે. ઔદારિક શરીર વર્ગણાના દ્રવ્યોથી બનેલું ઔદારિક શરીર સંસ્થાન પ્રથમ સમયથી લઇને આત્માનું મૂળગુણ-નિર્વત્તનાધિકારણ છે કારણ કે તે કર્મબન્ધનું કારણ છે. ઔદારિક શરીરના અંગોપાંગ-માર્જન, કર્ણવેધ અવયવોનું સંસ્થાન આદિ-આત્માના ઉત્તરગુણ-નિર્વત્તનાધિકરણ છે કારણ કે તે કર્મબન્ધના કારણ છે એવી જ રીતે વૈક્રિયશરીરનું વૈક્રિયવર્ગણાના પુદ્ગલોથી બનેલું સંસ્થાન પ્રથમ સમયથી લઈને મૂળગુણનિર્વત્તનાધિકરણ છે અને વૈક્રિય શરીરના આગોપાંગ, વાળ, દાંત નખ વગેરે ઉત્તરગુણનિર્વત્તનાધિકરણ છે. આહારક શરીરને યોગ્ય વર્ગણાના-પુદ્ગલોથી બનેલું સંસ્થાન મૂળગુણનિર્વત્તનાધિકરણ છે અને તેના અંગોપાંગ આદિ ઉત્તર ગુણનિર્વત્તનાધિકરણ છે. એવી જ રીતે કર્મોના સમૂહ રૂપ

कर्मसंघातलक्षणस्य कार्मणशरीरस्याऽपि स्वयोग्यद्रव्यरचितसंस्थानं मूलगुणनिर्वर्तनाधिकरणम्, तस्योत्तरगुणनिर्वर्तनाधिकरणन्तु नास्त्येव, तैजसस्यापि शरीरस्योष्णलक्षणस्य भुक्तपीतान्नशक्तिशालिनो लब्धिप्रत्ययस्य च परानुग्रह-निग्रहकारकस्य स्ववर्गणा रचितसंस्थानं मूलगुणनिर्वर्तनाधिकरणम्, तस्याऽप्युत्तरगुणनिर्वर्तनाधिकरणं नाऽस्त्येव। एवं-वाङ्मनःप्राणापानाश्च मूलगुणनिर्वर्तनाधिकरणम्, तत्र-वाङ्मनोवर्गणाप्रायोग्य द्रव्यरचितौ वाङ्मनःसंस्थानविशेषौ मूलगुणनिर्वर्तनाधिकरणम्। एवं प्राणापानवर्गणाप्रायोग्यरचितौ उच्छ्वास-निःश्वासाकारौ मूलगुणनिर्वर्तनाधिकरणं भवतः, एतेषामपि-चतुर्णां खलु उत्तरगुणनिर्वर्तना नैव सम्भवति, काष्ठ-पाषाण-पुस्त-चित्रकर्मादीनि चोत्तरगुणनिर्वर्तनाधिकरणम्

निर्वर्त्तनाधिकरण हैं इसी प्रकार कर्मों के समूह रूप कार्मण शरीर के योग्य द्रव्यों के द्वारा रचित संस्थान मूलगुणनिर्वर्त्तनाधिकरण है। इसका उत्तरगुणनिर्वर्त्तनाधिकरण नहीं होता। उष्णता लक्षण वाले एवं खाये-पीये आहार को पचाने की शक्ति वाले तैजस शरीर का तथा निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ लब्धि जनित तैजस शरीर का अपने योग्य पुद्गलों के द्वारा निर्मित आकार मूलगुणनिर्वर्तना है। इस शरीर की भी उत्तरगुणनिर्वर्त्तना नहीं होती। इसी प्रकार मन, वचन और प्राणापान मूलगुणनिर्वर्त्तनाधिकरण हैं। वचन और मन के योग्य द्रव्यों द्वारा रचित वचन एवं मन के संस्थान मूलगुणनिर्वर्तनाधिकरण है। इसी प्रकार प्राणापानवर्गणा के द्वारा रचित उच्छ्वास और निश्वास के संस्थान मूलगुणनिर्वर्त्तनाधिकरण हैं। इन चारों की भी उत्तरगुण-

કાર્મણ શરીરને યોગ્ય દ્રવ્યો દ્વારા રચિત સંસ્થાન મૂળગુણનિર્વર્ત્તનાધિકરણ છે. આનું ઉત્તરગુણનિર્વર્ત્તનાધિકરણ હોતું નથી. ઉષ્ણતા લક્ષણવાળા અને ખાધેલ-પીધેલા આહારને પચાવવાની શકિતવાળા તૈજસ શરીરનું તથા નિગ્રહ અને અનુગ્રહ કરવા માટે સમર્થ લબ્ધિજનિત તૈજસ શરીરનું પોતાને અનુરૂપ પુદ્ગલો દ્વારા નિર્મિત્ત આકાર મૂળગુણનિર્વર્ત્તના છે આ શરીરની પણ ઉત્તરગુણનિર્વર્ત્તના હોતી નથી એવી જ રીતે વચન, મન અને પ્રાણાપાન મૂળગુણનિર્વર્ત્તનધિકરણ છે. વચન અને મનના યોગ્ય. દ્રવ્યોદ્વારા રચિત વચન અને મનના સંસ્થાન મૂળગુણનિર્વર્ત્તધિનાકરણ છે. એવી જ રીતે પ્રાણાપાનવર્ગણા દ્વારા રચિતઉચ્છ્વાસ અને નિશ્વાસના સંસ્થાન મૂળગુણનિર્વર્ત્તનાધિકરણ છે આ ચારેની પણ ઉત્તરગુણ નિર્વર્ત્તના હોતી નથી કાક, પુસ્ત, ચિત્રકામ આદિ ઉત્તરગુણનિર્વર્ત્તનાધિકરણ છે. લાકડી અથવા પાષાણની પુતળી

भवति । तत्र-काष्ठकर्म, पाषाणकर्म च काष्ठपुत्रिका कुट्टिमपुरुषादीनां कृतिरूपं भवति, अतएवोत्तरगुणनिर्वर्तनाधिकरणं समुच्यते, एवं-प्रसिद्धपुरुषाद्याकृतेः प्रतिबिम्बनिर्वर्तनादेव पुस्त-चित्रकर्मणी अपि वक्तव्ये । तत्र-पुस्तकर्म सूत्रचीवरकादिग्रथितकृत्रिमपुत्रकादिकं बोध्यम् , चित्रकर्मप्रसिद्धम् , आदिपदेन लेख्य पत्रच्छेद्य जलकर्म भूकर्मपरिग्रहः । शस्त्रमपि कृपाणादिक मनेकाकारमवसेयम् । वधस्थानत्वं मूलगुणनिर्वर्तनाऽधिकरणम् तीक्ष्णतोज्ज्वलादिकमुत्तरगुणनिर्वर्तनाऽधिकरणं बोध्यम् निक्षेपणाधिकरणं चतुर्विधम्, दुष्प्रत्युपेक्षितनिक्षेपणाधिकरणम्-दुष्प्रमार्जितनिक्षेपाधिकरणम्-सहसानिक्षेपाधिकरणम्-अनाभोगनिक्षेपाधिकरणञ्चेति । तत्र-दुष्प्रत्युपेक्षिते चक्षुषाऽनिरीक्षिते भूदेशे निक्षेपणीयस्य मात्रादेःस्थापनं दुष्प्रत्यु-

---

निर्वर्तना नहीं हो सकती । काष्ठ पुस्त, चित्रकर्म आदि उत्तरगुणनिर्वर्त्तनाधिकरण हैं । लकडी या पाषाण की पुतली कुट्टिम पुरुष आदि की कृति है, अतएव उसे उत्तरगुणनिर्वर्त्तनाधिकरण कहते हैं । इसी प्रकार प्रसिद्ध पुरुष आदि की आकृति को बनाने से पुस्तकर्म और चित्रकर्म बनते हैं । सूत और वस्त्र आदि को गूंथ कर गुडिया आदि बनाना पुस्तकर्म कहलाता है । चित्रकर्म प्रसिद्ध ही है । आदि शब्द से लेख्य पत्रच्छेद्य, जल कर्म और भूमिकर्म का ग्रहण करना चाहिए। कृपाण आदि शस्त्र अनेक आकार के होते हैं । वधस्थानत्व मूलगुणनिर्वर्त्तनाधिकरण है और तीक्ष्णता तथा उज्ज्वलता आदि उत्तरगुणनिर्वर्त्तनाधिकरण है ।

निक्षेपणाधिकरण के चार भेद हैं-दुष्प्रत्युपेक्षितनिक्षेपणाधिकरण दुष्प्रमार्जितनिक्षेपणाधिकरण, सहसानिक्षेपणाधिकरण और अनाभोगनिक्षेपणाधिकरण (१) ठीक तरह आंखों से देखे बिना भूमि पर मल-

---

કુટ્ટિમ પુરૂષ આદિની કૃતિ છે આથી તેને ઉત્તરગુણનિર્વર્ત્તનાધિકરણ કહે છે. એવી જ રીતે પ્રસિદ્ધ પુરૂષ આદિની આકૃતિનું સર્જન કરવાથી પુસ્તકર્મ અને ચિત્રકર્મ બને છે સૂતર અને વસ્ત્ર આદિને ગુંથીને ઢીંગલી આદિ બનાવવી પુસ્તકર્મ કહેવાય છે. ચિત્રકર્મ પ્રસિદ્ધ જ છે 'આદિ' શબ્દથી લખાણ પત્રચ્છેદ, જળકર્મ અને ભૂમિકર્મને ગ્રહણ કરવાના છે. કિરપાણ આદિ શસ્ત્ર અનેક પ્રકારના-આકારના હોય છે. વધસ્થાનત્વ મૂળગુણનિર્વર્ત્તનાધિકરણ છે અને તીક્ષ્ણતા તથા ઉજ્જવળતા આદિ ઉત્તરગુણનિર્વર્ત્તનાધિકરણ છે.

નિક્ષેપાધિકરણના ચાર ભેદ છે-દુષ્પ્રત્યુપેક્ષિત નિક્ષેપણાધિકરણ, દુષ્પ્રમાર્જિત નિક્ષેપણાધિકરણ, સહસાનિક્ષેપણાધિકરણ અને અનાભોગનિક્ષેપણાધિકરણ. (૧) સારી પેઠે આંખોથી જોયા વગર જમીન ઉપર મળ-મૂત્ર આદિને ઢોળવા

देक्षितनिक्षेपाधिकरणम् १, एवं प्रत्युपेक्षितेऽपि भूप्रदेशे दुष्प्रमार्जिते रजोहरणादिनाऽप्रमार्जिते वा निक्षेप्यस्य पात्रादेः स्थापनं दुष्प्रमार्जितनिक्षेपाधिकरणम् २ सहसा, शक्त्यभावात्-चेतयतोऽपि-अप्रत्युपेक्षित दुष्प्रमार्जितभूप्रदेशे निक्षेप्यस्य स्थापनं सहसा निक्षेपाधिकरणम् ३, अनाभोगोऽत्यन्तविस्मृतिः तेन-तथाविधस्य विस्मृतस्य निक्षेप्यस्याऽधिकरणम्, अनाभोगनिक्षेपाधिकरणम् यत्र न खलु स स्मरति यत् प्रत्युपेक्षिते-सुप्रमार्जिते च देशे निक्षेपणीयम् ४ इति। संयोगाधिकरणं द्विविधम्, भक्तपानसंयोजनाधिकरणम् उपकरणसंयोजनाधिकरणञ्चेति। तत्र-भक्तं तावत् त्रिविधम्, अशन-खाद्य-स्वाद्य भेदात्, तस्य पात्रे-मुखे वा व्यञ्जन-गुड-फल-शाकादिभिः सह संयोजनम्,। एवं-द्राक्षा दाडिम पानक-

---

वस्तु आदि का निक्षेपण करना दुष्प्रत्युपेक्षितनिक्षेपाधिकरण है। (२) भूमि को देख लेने पर भी रजोहरण आदि से पूंजे विना पात्र आदि रखना दुष्प्रमार्जितनिक्षेपाधिकरण कहलाता है। सहसा (एकदम) शक्ति के अभाव से विना प्रतिलेखन किये और विना पूंजे भूमि पर किसी वस्तु को रखना सहसा निक्षेपाधिकरण है। (४) बिलकुल भूल जाने को अनाभोग कहते हैं। किसी भूली हुई वस्तु को रख देना अनाभोगनिक्षेपाधिकरण है या बिना उपयोग के अन्यमनस्क होकर किसी वस्तु को कहीं रखना अनाभोगनिक्षेपाधिकरण है।

संयोगाधिकरण के दो भेद हैं-भक्तपानसंयोजनाधिकरण और उपकरणसंयोजनाधिकरण। इन में भक्त (आहार) तीन प्रकार का है-अशन, खाद्य और स्वाद्य। उसका पात्र में या मुख में व्यंजन, गुड, फल या शाक आदि के साथ संयोग करना अर्थात् अधिक

અથવા ફેંકવા દુષ્પ્રત્યુપેક્ષિતાધિકરણ છે. (૨) ભૂમિને જોઈ લીધા છતાં પણ રજોહરણ આદિથી પૂંજ્યા વગર પાત્ર વગેરે મુકવાં દુષ્પ્રમાર્જિત નિક્ષેપાધિકરણ કહેવાય છે. (૩) સહસા શક્તિના અભાવથી પડિલેહન કર્યા વગર તેમ જ વગર પૂંજે જમીન ઉપર કોઈ વસ્તુને રાખવી સહસાનિક્ષેપાધિકરણ છે (૪) તદ્દન ભુલીજવું તેને અનાભોગ કહે છે. કોઈ વિસરાઇ ગયેલી વસ્તુને રાખી લેવી અનાભોગનિક્ષેપાધિકરણ છે અથવા વગર ઉપયોગની અન્યમનસ્ક થઈને કોઈ વસ્તુને કયાંય રાખવી અનાભોગનિક્ષેપાધિકરણ છે.

સંયોગાધિકરણના બે ભેદ છે-ભત્તપાન સંયોજનાધિકરણ અને ઉપકરણ સંયોજનાધિકરણ આમાં ભત્ત (આહાર) ત્રણ પ્રકારનાં છે-અશન, ખાદ્ય અને સ્વાદ્ય. તેના પાત્રમાં અથવા મોઢામાં વ્યંજન, ગોળ, ફળ અથવા શાક આદિની સાથે સંયોગ કરીને અર્થાત્ સ્વાદિષ્ટ બનાવવા માટે એક ખાદ્ય પદાર્થને બીજા

स्य प्रासुकजलारनालादिकस्य च खण्ड-शर्करा-मरीचादिभिः सह पात्रे-मुखे वा संयोजनं भक्तपानसंयोजनाधिकरणम्। उपकरणस्य-उपधेर्वस्त्रादिकस्याऽन्यैर्वस्त्रादिकैः सह संयोजनम् उपकरणसंयोजनाधिकरणम्। निसर्जनाधिकरणं पुनस्त्रिविधम्, कायनिसर्गाधिकरणम्-वाङ्निसर्गाधिकरणम्--मनोनिसर्गाधिकरणञ्चेति। तत्र-कायस्य औदारिकादि शरीरस्य विधिना स्वच्छन्देन शस्त्रच्छेदनाऽग्निजल प्रवेशोद्बन्धनादिना निसर्जनम्-उज्झन-कायनिसर्गाधिकरणम्। वाचोनिसर्जनं शास्त्रोपदेशं विना प्रेरणं वाङ्निसर्गाधिकरणम्। मनसश्च-निसर्जनं शास्त्रोपदेशाद्

स्वादिष्ट बनाने के लिए एक खाद्य पदार्थ को दूसरे खाद्य पदार्थ के साथ मिलाना भक्तसंयोजनाधिकरण है। इसी प्रकार द्राक्षा, दाडिम आदि के रस को या प्रासुक जल एवं कांजी आदि के पानी को खांड, शक्कर, कालीमिर्च आदि के साथ पात्र में या मुख में मिलाना पानसंयोजनाधिकरण है। तात्पर्य यह है कि भोज्य अथवा पेय पदार्थों को सुस्वादु बनाने के विचार से आपस में मिलाना भक्तपान संयोजनाधिकरण है। उपकरण-उपधि-वस्त्र आदि को अन्य वस्त्र आदि से मिलाना उपकरण संयोजनाधिकरण है।

निसर्गाधिकरण तीन प्रकार का है-कायनिसर्गाधिकरण वचननिसर्गाधिकरण और मनोनिसर्गाधिकरण औदारिकादि शरीरका स्वच्छन्द विधि से शस्त्र द्वारा छेदन करके आग में प्रवेश करके जल में प्रवेश करके या फांसी लगाकर त्याग करना कायनिसर्गाधिकरण है। शास्त्रोपदेश के बिना प्रेरणा करना वचननिसर्गाधिकरण है और

ખાદ્ય પદાર્થની સાથે ભેળવવો ભત્તસંયોજનાધિકરણ છે એવી જ રીતે દ્રાક્ષ, દાડમ આદિના રસને અથવા પ્રાસુક જળ અને કાંજી આદિના પાણીને ખાંડ. સાકર, મરીયા વગેરેની સાથે પાત્રમાં અથવા મુખમાં ભેળવવું પાન સંયોજનાધિકરણ છે. તાત્પર્ય એ છે કે ભોજન અથવા પેય પદાર્થોને સુસ્વાદુ બનાવવાના વિચારથી આપસમાં ભેગા કરવા ભત્તપાન સંયોજનાધિકરણ છે. ઉપકરણ-ઉપધિ-વસ્ત્ર આદિને અન્ય વસ્ત્ર આદિથી ભેગા કરવા ઉપકરણ સંયોજનાધિકરણ છે

નિસર્ગાધિકરણ ત્રણ પ્રકારનાં છે-કાયનિસર્ગાધિકરણ, વચનનિસર્ગાધિકરણ અને મનોનિસર્ગાધિકરણ ઔદારિક આદિ શરીરનું સ્વચ્છન્દ વિધિથી શાસ્ત્ર દ્વારા છેદન કરીને, અગ્નિમાં પ્રવેશ કરીને, જળમાં પ્રવેશ કરીને અથવા ફાંસી ઉપર ચઢીને ત્યાગ કરવો કાયનિસર્ગાધિકરણ છે. શાસ્ત્રોપદેશ વગર પ્રેરણા કરવી વચન નિસર્ગાધિકરણ છે અને શાસ્ત્રોપદેશ વગેરે કરવો મનોનિસર્ગાધિકરણ છે.

ऋते प्रेरणं मनोनिसर्गाधिकरणम् उच्यते। अत्र बहिर्व्यापारापेक्षया शरीरादीनाम् अजीवनिसर्गाधिकरणत्वमुक्तम्, जीवाधिकरणे चात्मनः परिस्पन्दोऽन्तःपरिणामरूपो बोध्यः। मूलगुणनिर्वर्तनाधिकरणेऽवस्थान मात्रमेतेषामवसेयमितिविशेषोऽवगन्तव्यः। उक्तञ्च स्थानाङ्गे २ स्थाने ६० सूत्रे-'णिव्वत्तणाधिकरणिया-चेव, संजोयणाधिकरणिया चेव' इति। निर्वर्तनाधिकरणिकी चैव-संयोजनाधिकरणिकी चैव, इति। उत्तराध्ययने २५ अध्ययने १४ गाथायाञ्चोक्तम्-'आइए निक्खिवेज्जा' इति, आदिके निक्षिपेत्-इति। इतश्चादौ उत्तराध्ययने २४ अध्ययने २१-२३ गाथासु चोक्तम्-'पवत्तमाणं-' इति, प्रवर्तमानमिति॥९॥

मूलम्-महारंभ परिग्गह-मायप्पारंभ परिग्गहसहावमद्दवत्तं नारय-तिरिय-मणुस्साणं॥१०॥

छाया—महारम्भ परिग्रह माया-ऽल्पारम्भपरिग्रह स्वभावमार्दवत्वं नारक-तिर्यग्मनुष्याणाम् ॥१०॥

शास्त्रोपदेश के बिना प्रेरणा करना मनोनिसर्गाधिकरण है।

यहां शरीर आदि बाह्य व्यापार की अपेक्षा से अजीवाधिकरण कहा गया है। और आत्मा का परिस्पन्द जो आन्तरिक परिणाम है, जीवाधिकरण में परिगणित है। मूलगुणनिर्वत्तनाधिकरण में इनकी अवस्थिति मात्र ही अभिप्रेत है। स्थानांगसूत्र के द्वितीय स्थान के ६० वें सूत्र में कहा है-'निर्वर्त्तनाधिकरणिकी और संयोजनाधिकरणिकी।' उत्तराध्ययन के २५ वें अध्ययन की गाथा १४ में कहा है-'आइए निक्खिवेज्जा' तथा उत्तराध्ययनसूत्र के २४ वें अध्ययन में गाथा २१-२३ में कहा है-'पवत्तमाणं' अर्थात् प्रवर्त्तमान ॥९॥

सूत्रार्थ-'महारम्भपरिग्गह' इत्यादि।

महारंभ, महापरिग्रह, माया अल्पारम्भ-परिग्रह और स्वभाव की

અહીં શરીર આદિના બાહ્ય વ્યાપરની અપેક્ષાથી અજીવાધિકરણ કહેવામાં આવ્યું છે અને આત્માના પરિસ્પંદ જે આન્તરિક પરિણામ છે, જીવાધિકરણમાં પરિણત છે. મૂળગુણનિર્વર્ત્તનાધિકરણમાં એમની અવસ્થિતિ માત્ર જ અભિપ્રેત છે. સ્થાનાંગસૂત્રના દ્વિતીય સ્થાનના ૬૦માં સૂત્રમાં કહ્યું છે-નિર્વર્ત્તનાધિકરણીકી અને સંયોજનાધિકરણિકી 'ઉત્તરાધ્યયનના ૨૫માં અધ્યયનની ગાથા ૧૪ માં કહ્યું છે-'आइए' निक्खिवेज्जा' તથા ઉત્તરાધ્યાનસૂત્રના ૨૪ માં અધ્યયનમાં ગાથા ૨૧-૨૩માં કહ્યું છે-'पवत्तमाणं' અર્થાત્ પ્રવર્ત્તમાન ॥૯॥

'महारम्भ परिग्गह' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—મહારંભ, મહાપરિગ્રહ માયા, અલ્પારંભ-પરિગ્રહ અને

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत् साम्परायिककर्मास्रवहेतुत्वेन जीवाधिकरणमजीवाधिकरणञ्च प्ररूपितम्, सम्प्रति—कर्मबन्धास्रवस्तावत्—सर्वायुषामास्रवं प्रतिपादयितुमाह—'महारंभ' इत्यादि। महारम्भो नैरयिकायुष—स्तिर्यगायुषो। मनुष्यायुषश्च बन्धहेतुभूत आस्रवो भवतीति, तत्र-भोगभूमिजातानां शीलव्रतविहीनत्वमपि सौधर्मेशानपर्यन्तदेवायुषो बन्धकं भवतीति, एवं—केचिदल्पारम्भपरिग्रहा अपि—अन्यदुपचारसहिता नारकादिगतिं प्राप्नुवन्ति ॥१०॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावत् साम्परायिककर्मास्रवहेतुत्वेन जीवाधिकरणम्—अजीवाधिकरणञ्च समपञ्चं प्ररूपितम्, सम्प्रति कर्मबन्धास्रवस्तावत्

मृदुता नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायु के कारण हैं ॥१०॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले कहा जा चुका है कि साम्परायिक आस्रव का कारण जीवाधिकरण और अजीवाधिकरण है, अब विभिन्न आयुष्यों के आस्रव के कारणों का प्रतिपादन करते हैं—

महारम्भ नरकायुका, तिर्यंचायु का और मनुष्यायुका आस्रव अर्थात् बन्ध का कारण है। भोगभूमि में उत्पन्न मनुष्यों और तिर्यंचों की अपेक्षा शील-व्रतविहीनता भी सौधर्म और ऐशान देवलोक तक देवायु का कारण होती है। अर्थात् भोगभूमि के जीव शील या व्रतका पालन न करके भी देवायु का बन्ध करते हैं, मगर प्रारम्भ के दो देवलोकों में ही उत्पन्न होते हैं। कोई-कोई अल्पारम्भी और अल्पपरिग्रही होते हुए भी अन्य कारणों से नरकगति आदि को प्राप्त करते हैं ॥१०॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—साम्परायिक कर्म के आस्रव के कारण जीवाधि-

---

સ્વભાવની મૃદુતા, નરકાયુ, તિર્યંચાયુ અને મનુષ્યાયુના કારણ છે ॥૧૦॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા કહેવામાં આવી ગયું કે સામ્પરાયિક આસ્રવનું કારણ જીવાધિકરણ અને અજીવાધિકરણ છે, હવે વિભિન્ન આયુષ્યોના આસ્રવોના કારણોનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ—

મહારંભ નરકાયુનો, તિર્યંચાયુનો અને મનુષ્યાયુના આસ્રવ અર્થાત્ બન્ધનું કારણ છે. ભોગભૂમિમાં ઉત્પન્ન મનુષ્યો અને તિર્યંચોની અપેક્ષા શીલ-વ્રત વિહીનતા પણ સૌધર્મ અને ઈશાન દેવલોક સુધી દેવાયુનું કારણ છે અર્થાત્ ભોગભૂમિના જીવ શીલ અથવા વ્રતનું પાલન નહીં કરીને પણ દેવાયુનો બન્ધ કરે છે પરંતુ આરંભના બે દેવલોકમાં જ ઉત્પન્ન થાય છે. કોઈ-કોઈ અલ્પારંભી અને અલ્પપરિગ્રહી હોવા છતાં પણ અન્ય કારણોથી નરકગતિ આદિને પ્રાપ્ત કરે છે. ॥૧૦॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—સામ્પરાયિક આસ્રવના કારણ જીવાધિકરણ અને

सर्वायुषामास्त्रवं प्रतिपादयितुमाह–'महारम्भ परिग्गहमायप्पारंभपरिग्गह सहावमद्दवत्तं नारयतिरियमणुस्साणं' इति। महारम्भ परिग्रहमाया-ऽल्पारम्भपरिग्रहस्वभावमार्दवत्वं नारकतिर्यङ्मनुष्याणाम्, तत्र–महारम्भो-यन्त्रादिरूपः, महापरिग्रहः–बहुक्षेत्रवास्तुधनधान्यहिरण्यादिरूपो नारकायुषो बन्धहेतुभूत आस्त्रवो भवति, तथा–माया कपटरूपा, तिर्यग्योनिकाऽऽयुषो बन्ध हेतुभूत आस्त्रवो भवति, एवम्–अल्पारम्भा–ऽल्पपरिग्रहः स्वभावमार्दवञ्च मनुष्यायुषो बन्धहेतुभूत आस्त्रवो भवतीति संक्षेपः ॥१०॥

मूलम्–सरागसंजम, संजमासंजमाईणि देवस्स ॥११॥

छाया—सरागसंयम संयमासंयमादीनि देवस्य ॥११॥

करण और अजीवाधिकरण का विस्तार पूर्वक प्ररूपण किया जा चुका है। अब सभी आयुष्यों के आस्त्रव का प्रतिपादन करने के लिए कहते हैं—

महारम्भ–परिग्रह, माया, अल्पारम्भ–परिग्रह और स्वभाव की मृदुता नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायु के आस्त्रव का कारण है। बड़े–बड़े यन्त्र, कारखाने आदि चलाना महारम्भ कहलाता है। क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य हिरण्य आदि की बहुतायत होना महापरिग्रह है। ये दोनों नरकायु के आस्त्रव अर्थात् बन्ध के कारण हैं। माया अर्थात् कपट तिर्यंचायु के बन्ध का कारण है। अल्पारम्भ अल्पपरिग्रह और स्वभाव की मृदुता मनुष्यायु के बन्ध का कारण है ॥१०॥

सूत्रार्थ–'सराग संजम संजमाइ' इत्यादि।

सरागसंयम तथा संयमासंयम आदि देवायु के आस्त्रव के हेतु हैं।

અજીવાધિકરણનું વિસ્તારપૂર્વક પ્રરૂપણ કરવામાં આવી ગયું છે. હવે બધાં આયુષ્યોના આસ્ત્રવનું પ્રતિપાદન કરવા માટે કહે છે–

મહારંભ–પરિગ્રહ માયા, અલ્પારંભ–પરિગ્રહ અને સ્વભાવની મૃદુતા, નરકાયું, તિર્યંચાયુ અને મનુષ્યાયુના આસ્ત્રવના કારણ છે. મોટા મોટા યંત્રો, કારખાના વગેરે ચલાવવા મહારંભ કહેવાય છે. ક્ષેત્ર વાસ્તુ ધન, ધાન્ય હિરણ્ય આદિની વિપુલતા હોવી મહાપરિગ્રહ છે. આ બંને નરકાયુ આસ્ત્રવ અર્થાત્ બન્ધના કારણ છે. માયા અર્થાત્ કપટ તિર્યંચાયુના બન્ધના કારણ છે. અલ્પારંભ, અલ્પપરિગ્રહ અને સ્વભાવની મૃદુતા મનુષ્યાયુના બન્ધના કારણ છે ॥૧૦॥

'સરાગ સંજમસંજમાસંજમાઇ' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—સરાગસંયમ તથા સંયમાસંયમ આદિ દેવાયુના આસ્ત્રવના હેતુ છે. ॥૧૧॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे नारकायुषां कर्मबन्धहेतुभूता महारम्भमहापरिग्रहादय आस्रवाः प्रतिपादिताः सम्प्रति देवायुष आस्रवान् प्रतिपादयितुमाह–'सरागसंजम संजमासंजमाईणि देवस्स' इति। सरागः संज्वलन कषायस्तेन सहितः सराग स्तस्य संयमः, सम्यग्ज्ञानपूर्विका विरतिः संयमासंयमो देशविरतिरूपः आदिपदात्–अकामनिर्जराबालतपसोर्ग्रहणम् एतानि पूर्वोक्तानि देवस्य–देवसम्बन्ध्यायुष आस्रवा भवन्ति इति भावः।११॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः–पूर्वसूत्रे नारकाद्यायुषां कर्मबन्धहेतुभूता महारम्भ–परिग्रहादय आस्रवाः प्रतिपादिताः, साम्प्रतं–देवायुषः आस्रवान् प्रतिपादयितुमाह–

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्र में नरकायु आदि के बन्ध के कारण महारम्भ महापरिग्रह आदि वर्णित किये गये हैं। अब देवायु के आस्रवों का प्रतिपादन करते हैं—

सरागसंयम तथा संयमासंयम (देशसंयम) आदि देवायु के आस्रव अर्थात् बन्ध के कारण हैं। यहां राग का अर्थ है संज्वलन कषाय, उससे युक्त संयम सरागसंयम कहलाता है। सम्यग्ज्ञान पूर्वक पाप से निवृत्त होना संयम है। देशविरति को संयमासंयम कहते हैं। 'आदि' शब्द से अकामनिर्जरा और बालतपका ग्रहण करना चाहिए ये सब देवायु के आस्रव हैं अर्थात् बन्ध के कारण हैं।११॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पूर्वसूत्र में नरक आदि आयुष्यों के बन्ध के कारणों–आस्रवों का प्रतिपादन किया गया अर्थात् यह बताया गया है कि महारम्भ आदि नरकायु आदि के कारण हैं, अब देवायु के आस्रवों का प्रतिपादन करते हैं--

---

તત્ત્વાર્થદીપિકા–પૂર્વસૂત્રમાં નરકાયુ આદિના બન્ધના કારણ મહારંભ મહાપરિગ્રહ આદિનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે હવે દેવાયુના આસ્રવોનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ–

સરાગસંયમ તથા સંયમાસંયમ (દેશસંયમ) આદિ દેવાયુના આસ્રવ અર્થાત્ બન્ધના કારણ છે અહીં રાગનો અર્થ છે સંજ્વલન–કષાય, તેનાંથી યુક્ત સંયમ સરાગસંયમ કહેવાય છે સમ્યગ્જ્ઞાનપૂર્વક પાપથી નિવૃત્ત થવું સંયમ છે. દેશવિરતિને સંયમાસંયમ કહે છે–આદિશબ્દથી અકામનિર્જરા અને બાલ-તપ લેવા જોઈએ આ બધાં દેવાયુના આસ્રવ છે અર્થાત્ બન્ધના કારણ છે ।।૧૧।।

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ–પૂર્વસૂત્રમાં નરક આદિ આયુષ્યોના કારણો–આસ્રવોનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું અર્થાત્ એ બતાવાયું કે મહારંભ આદિ નરકાયુ આદિના કારણ છે, હવે દેવાયુના આસ્રવોનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ–

'सरागसंजम संजमासंजमाईणि देवस्स' इति। सरागसंयम-संयमासंयमादीनि देवस्य तत्र-रागः संज्वलनकषायः तेन सहितः-तत्सहवर्ती वा सरागः तस्य संयमः, संयमनं-संयमः, सम्यग्ज्ञानपूर्विका विरतिः हिंसाऽनृतादिभ्यः पञ्चभ्यो निवृत्तिरिति यावत्, संयमासंयमो देशविरतिरूपः-अणुव्रत मित्यर्थः। आदिशब्दात्-अकामनिर्जरा-बालतपसोर्ग्रहणम्, तत्रा ऽकामनिर्जरानाम-कामः इच्छा, निर्जराकर्मपुद्गलानामात्मप्रदेशतः परिशटनम्-पृथग्भवनम्, कामेन इच्छया तदर्थोपयोगपूर्वकं स्वेच्छया या निर्जरा-सा कामनिर्जरा, न कामनिर्जरा-ऽकाम-निर्जरा, इयञ्च पराधीनतया-ऽस्याऽप्यनुरोधेन वाऽकुशलस्थानान्निवृत्त्याऽऽहारादि-

सरागसंयम और संयमासंयम आदि देवायु के बंध के कारण है। यहां राग का अर्थ संज्वलन कषाय है। उससे युक्त या उसके साथ जो संयम हो वह सरागसंयम है। संयम का आशय है सम्यग्ज्ञानपूर्वक विरति-निवृत्ति अर्थात् हिंसा असत्य आदि पापों का त्याग। संयमासंयम देशविरति या अणुव्रतरूप है। सूत्र में प्रयुक्त 'आदि' शब्द से अकामनिर्जरा और बालतप का ग्रहण होता है।

काम अर्थात् इच्छा, निर्जरा अर्थात् कर्मपुद्गलों का आत्मप्रदेशों से खिरना-पृथक् होना। इच्छापूर्वक, उपयोग के साथ जो निर्जरा की जाती है, वह कामनिर्जरा कहलाती हैं। जो कामनिर्जरा न हो वह अकामनिर्जरा। यह अकामनिर्जरा पराधीनतापूर्वक अथवा किसी के आग्रह से अशुभ स्थान से निवृत्त होने या आहार आदि का निरोध होने से होती है।

સરાગસંયમ અને સંયમાસંયમ આદિ દેવાયુના બન્ધના કારણ છે અત્રે રાગનો અર્થ સંજવલન કષાય છે તેનાથી યુકત અથવા તેની સાથે જે સંયમ થાય તે સરાગસંયમ સંયમનો આશય છે-સમ્યગ્જ્ઞાનપૂર્વક વિરતિ-નિવૃત્તિ, અર્થાત્ હિંસા અસત્ય આદિ પાપેનો ત્યાગ સંયમાસંયમ દેશ વિરતિ અથવા અણુવ્રત રૂપ છે સૂત્રમાં પ્રયુકત આદિ શબ્દથી અકામનિર્જરા અને બાલતપ સમજવાં

કામ અર્થાત્ ઇચ્છા નિર્જરા અર્થાત્ કર્મપુદ્ગલોનું આત્મ પ્રદેશોથી ખરી પડવું-જુદા પડવું ઇચ્છાપૂર્વક, ઉપયેગની સાથે જે નિર્જરા કરવામાં આવે છે તે કામનિર્જરા કહેવાય છે. જે કામનિર્જરા ન હોય તે અકામ-નિર્જરા આ અકામનિર્જરા પરાધીનતાપૂર્વક અથવા કોઇના આગ્રહથી અશુભ સ્થાનથી નિવૃત્ત થવાથી અથવા આહાર આદિનો નિરોધ કરવાથી થાય છે.

निरोधेन च भवति। बालस्य-मूढस्याऽतत्त्वे तत्त्वाऽभिनिवेशप्रवृत्तस्य तपः भृगुपात-जलप्रवेशाऽग्निप्रवेशादि बालतपः सरागस्य, एतानि पूर्वोदितानि देवस्य देवसम्ब-न्ध्यायुषो देवायुर्निबन्धस्याऽऽस्रवा भवन्ति, एतै देवायुर्बन्धो भवतीति भावः॥ सू ११।

॥ इति श्री विश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक–पञ्चदशभाषा-
कलितललितकलापालापकप्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक,
वादिमानमर्दक–श्रीशाहूछत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त–
'जैनाचार्य' पदभूषित — कोल्हापुरराजगुरु–
बालब्रह्मचारि — जैनाचार्य — जैनधर्मदिवाकर
–पूज्यश्री घासिलालव्रतिविरचितस्या श्री
दीपिका – निर्युक्तिव्याख्योपेतस्य
"तत्त्वार्थसूत्रस्य" षष्ठोऽध्यायः
समाप्तः। ६॥

बाल अर्थात् मूढ जीव का तप बालतप कहलाता है। तात्पर्य यह है कि कुतत्त्व को तत्त्व समझने वाला कोई अज्ञानी पुरुष ऊपर से गिरता है, जलसमाधि या अग्निसमाधि लेता है, उसका यह कृत्य बालतप कहलाता है। ये सब देवायु के आस्रव हैं अर्थात् बन्धके कारण है ॥११॥

जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालजीमहाराजकृत
"तत्त्वार्थसूत्र" की दीपिका–निर्युक्ति व्याख्या का
छट्ठा अध्याय समाप्त ॥६॥

બાલ અર્થાત્ મૂઢ જીવનું તપ બાલતપ કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે કુતત્ત્વને તત્ત્વ સમજનાર કોઇ અજ્ઞાની પુરૂષ ઉપરથી નીચે પછડાય છે, જળસમાધિ અથવા અગ્નિસ્નાન કરે છે તેનું આવું કૃત્ય બાલતપ કહેવાય છે આ બધાં દેવાયુના આસ્રવ છે અર્થાત્ બન્ધના કારણ છે ॥૧૧॥

જૈનાચાર્ય જૈનધર્મદિવાકર શ્રી પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજકૃત
'તત્ત્વાર્થસૂત્ર' ની દીપિકા–નિર્યુકિત વ્યાખ્યાનો છઠો અધ્યાય સમાપ્ત ॥૬॥

卐

अथ सप्तमोऽध्यायः

मूलम्—आसवनिरोहो संवरो ॥१॥

छाया—'आस्रवनिरोधः संवरः' ॥१॥

तत्त्वार्थदीपिका—षष्ठाऽध्याये तावत्—

'जीवाऽजीवा य बंधो य पुण्णं पावासवो तहा।
संवरो णिज्जरा मोक्खो संतेए तहिया नव' ?

इत्युत्तराध्ययनसूत्रोक्त जीवादि नवतत्त्वेषु क्रमप्राप्तस्य षष्ठस्य आस्रवतत्त्वस्य प्ररूपणं कृतम्, सम्प्रति—क्रमप्राप्तं सप्तमंसंवरतत्त्वं प्ररूपयितुं सप्तमाध्यायं प्रारभमाणाः प्रथमं संवर तत्त्वस्य लक्षणमाह—'आसवनिरोहो संवरो' इति। आश्रवनिरोधः—आश्रवस्य मिथ्यात्वाद्यभिनव कर्मादान हेतुभूतस्य निरोधः संवरणं संवर उच्यते। स च संवरो द्विविधः, द्रव्यसंवरो—भावसंवरश्च, द्रव्यसंवरस्तथाविधद्रव्येण मसृणमृत्तिकादिना सलिलोपरि तरन्नौकादेः सतत प्रविशज्जीराणां निरोधनं द्रव्यसंवरः,

---

सातवाँ अध्याय (संवर तत्त्व का विवेचन)

सूत्रार्थ—'आसव निरोहो संवरो' इत्यादि।

आस्रव का निरोध होना संवर है ॥१॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्व सूत्र में क्रम प्राप्त छठे आस्रव तत्त्व का छठे अध्याय में निरूपण किया गया। अब सातवें तत्त्व संवर का विवेचन करने के लिये सातवें अध्याय को प्रारम्भ करते हुए सर्व प्रथम संवर का लक्षण कहते हैं—मिथ्यातत्त्वादि नवीन कर्मों के आगमन के कारण भूत आस्रव का निरोध हो जाना संवर कहलाता है।

संवर दो प्रकार का है—द्रव्यसंवर और भावसंवर। किसी चिकनी मिट्टी आदि द्रव्य के द्वारा जल पर तैरती हुई नौका आदि में निरन्तर

સાતમો અધ્યાય [સંવર તત્ત્વનું વિવેચન]

'आसवनिरोहो संवरो' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—આસ્રવનો નિરોધ થવો સંવર છે ॥૧॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં ક્રમપ્રાપ્ત છઠાં અધ્યાયમાં આસ્રવ તત્ત્વનું વિવેચન કરવામાં આવ્યું હવે સાતમું તત્ત્વ સંવરનું વિવેચન કરવા માટે સાતમાં અધ્યાયની શરૂઆત કરવાની સાથે સર્વ પ્રથમ સંવરનું લક્ષણ કહીએ છીએ-મિથ્યાત્વાદિ નવીન કર્મોના આગમનના કારણભૂત આસ્રવનું અટકી જવું સંવર કહેવાય છે

સંવર બે પ્રકારનાં છે-દ્રવ્યસંવર અને ભાવસંવર કોઈ ચિકણી માટી આદિ દ્રવ્ય દ્વારા, પાણીની સપાટી ઉપર તરતી નૌકા આદિમાં

भावतः-सम्यक्त्वसमिति गुप्ति प्रभृतिभिरात्मरूपनौकायां प्रविशत्कर्मसलिलानां निरोधनं भावसंवरः स च सम्यक्त्वादि भेदैर्विंशतिविधः, समितिगुप्त्यादिभेदैः सप्तपञ्चाशद्विधः इति संकलनया सप्तसप्ततिविधो भावसंवरो भवतीति, स च शङ्कितादिभेदैः सप्तसप्तति इति। तथा चोक्तम्-'आस्रवो भवहेतुः स्यात्संवरो मोक्षकारणम्। इतीयमार्हती दृष्टि रन्यदस्याः प्रपञ्चनम्' इति ॥सू० १॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं जीवादि षट् तत्त्वानि निरूपितानि, सम्प्रति सप्तमं संवर तत्त्वं प्ररूपयितुमाह-'आस्रवनिरोहो संवरो' इति आस्रवनिरोधः-आस्रवन्ति ज्ञानावरणादिकमष्टविधं कर्म यैस्ते-आस्रवाः, कर्मणां प्रवेशमार्गाः तेषां संवरणं स्थगनं संवर उच्यते स द्विविधः-देशतः सर्वतश्च, तत्र देशतः संवरः सम्यग्दृष्टि-

---

प्रवेश करने वाले जल को रोकना द्रव्य संवर है। और सम्यक्त्व समिति गुप्ति आदि द्वारा आत्मा रूपी नौका में प्रविष्ट होते हुए कर्म रूपी जलका निरोध करना भावसंवर है यह भावसंवर सम्यक्त्व आदि के भेदों से सत्तावन प्रकार का होता है इस प्रकार सब मिला-कर भावसंवर के सतहत्तर (७७) भेद होते हैं ॥१॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पूर्व सूत्र में छठे अध्याय तक अनुक्रम से जीव आदि छह तत्त्वों की प्ररूपणा की गई। अब आस्रव निरोध रूप संवर तत्त्व की प्ररूपणा करने के लिए कहते हैं जिनके द्वारा ज्ञाना-वरण आदि आठ प्रकार के कर्मों का आस्रवण-आगमन होता है, जो कर्मों के प्रवेश के मार्ग हैं इनका निरोध हो जाना अर्थात् इनकी प्रवृत्ति रुक जाना संवर है। तात्पर्य यह है कि आत्मा के परिणाम से कर्मों के उपादान (ग्रहण-आगमन) का अभाव होता है उस आत्म

નિરન્તર પ્રવેશ કરવાવાળા જળને રોકવું દ્રવ્ય સંવર છે અને સમ્યક્ત્વ સમિતિ ગુપ્તિ આદિ દ્વારા આત્મારૂપી નૌકામાં પ્રવિષ્ટ થતાં કર્મરૂપી જળનો નિરોધ કરવો ભાવસંવર છે. આ ભાવસંવર સમ્યક્ત્વ આદિ ભેદોથી વીસ પ્રકારના હોય છે તથા સમિતિ ગુપ્તિ આદિના ભેદોથી સત્તાવન પ્રકારના હોય છે આ રીતે બધાં મળીને ભાવસંવરના સીત્યોતેર ભેદ થાય છે

તત્વાર્થનિર્યુક્તિ-પૂર્વસૂત્રમાં છઠા અધ્યાય સુધી અનુક્રમથી જીવ આદિ છ તત્વોનું વિવેચન કરવામાં આવ્યું. હવે આસ્રવ-નિરોધરૂપ સંવર તત્વની પ્રરૂ-પણા કરવા માટે કહીએ છીએ-જેમના દ્વારા જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ પ્રકારના કર્મોનું આસ્રવણ-આગમન થાય છે, જે કર્મોનો પ્રવેશ માર્ગ છે. એનો નિરોધ થઈ જવો અર્થાત્ એમની પ્રવૃત્તિ બંધ થઈ જવી એ સંવર છે તાત્પર્ય એ છે કે આત્માના જે પરિણામથી કર્મોના ઉપાદાન (ગ્રહણ-આગમન) નો

नामणुव्रतिनां च भवति। सर्वतः संवरस्तु महाव्रतिनां भवतीति। पुनश्च संवरो द्विविधः द्रव्यसंवरः भावसंवरश्च। तत्र द्रव्यसंवरः नौकादौ प्रविशज्जलनिरोधार्थं तच्छिद्रस्य मसृणमृत्तिकादिना संवरणम्, भावसंवरश्च-आत्मनि प्रविशत्कर्मणां सम्यक्त्वादिभिः संवरणं निरोधनं भावसंवर उच्यते। स च-सम्यक्त्वादिभेदै-र्विंशतिविधः समिति गुप्त्यादिभेदैः सप्तपञ्चाशद्विध इति संमील्य भावसंवरः सप्तसप्ततिविधो भवति, तथाहि-सम्यक्त्वम् १ व्रतप्रत्याख्यानम् २, अप्रमाद ३, अकषाय ४, योगनिरोधः ५, प्राणातिपातादि पञ्चविरमणम् श्रोत्रेन्द्रियादि पञ्चे-

परिणाम को संवर कहते हैं। पूर्वोक्त संवर दो प्रकार का है देशसंवर और सर्वसंवर, देशसंवर सम्यग्दृष्टि जीव को तथा अणुव्रतधारी श्रावकको होता है सर्वसंवर पांच महाव्रतधारी मुनिराजको होता है। फिर भी संवर दो प्रकारका होता है-द्रव्यसंवर और भावसंवर। द्रव्य संवर वह होता है जो नौका आदि में आते हुए पानी को रोकने के लिए उसके छिद्र को चिकनी मिट्टी आदि द्वारा रोका जाता है। और आत्मा में प्रवेश करते हुए कर्मों को सम्यक्त्व आदि से रोकना भाव संवर है। वह भाव संवर सम्यक्त्वादि भेदों से बीस प्रकारका, आठ समिति गुप्ति आदि के भेद से सत्तावन प्रकार का है, इस प्रकार सब मिलाकर भाव संवर के सतहत्तर भेद हो जाते हैं। वे भेद इस प्रकार हैं-सम्यक्त्व १, व्रत प्रत्याख्यान २, प्रमादका अभाव ३ कषायोंका अभाव ४ योग निरोध ५, प्राणातिपात आदि पांचो से विरमण होना

અભાવ થાય છે તે આત્મપરિણમનને સંવર કહે છે. પૂર્વોક્ત સંવર બે પ્રકારના છે-દેશસંવર અને સર્વસંવર, દેશસંવર સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવને તથા અણુવ્રતધારી શ્રાવકને હોય છે. સર્વસંવર પંચમહાવ્રતધારી મુનિરાજને હોય છે તો પણ સંવર બે પ્રકારના હોય છે-

દ્રવ્યસંવર અને ભાવસંવર દ્રવ્ય સંવર તે હોય છે જે નૌકા આદિમાં આવતા પાણીને રોકવાને માટે તેના છિદ્રને ચિકણી માટી આદિ દ્વારા રોકવામાં આવે છે અને આત્મામાં પ્રવેશ કરતાં કર્મોને સમ્યક્ત્વ આદિથી રોકવા તે ભાવ સંવર છે. આ ભાવસંવર સમ્યક્ત્વાદિ ભેદોથી વીસ પ્રકારનો, આઠ સમિતિ ગુપ્તિ આદિના ભેદથી સત્તાવન પ્રકારનો, એવી રીતે બધાં મળીને ભાવ સંવરના સિત્યોતેર ભેદ થઇ જાય છે. આ ભેદ આ પ્રમાણે છે-(૧) વ્રત પ્રત્યાખ્યાન (૨) પ્રમાદનો અભાવ (૩) કષાયોનો અભાવ (૪) યોગનિરોધ (૫) પ્રાણાતિપાત આદિ પાંચે વ્રતોથી વિરમવું (૧૦) શ્રોત્ર આદિ પાંચ

न्द्रियनिग्रहणम् १५, मनोवाक्कायानां वशित्वम् १८, भण्डोपकरणादीनां यतनयाऽऽदानं निक्षेपणं च १९ सूचीकुशाग्रमात्र वस्तुनामपि यतनया ग्रहणं स्थापनं२०, चेति विंशति २० । पञ्चसमिति ५ त्रिगुप्ति ८ क्षुधादिद्वाविंशति परिषह सहन ३०, दशविध श्रमणधर्म ४० द्वादशभावना ५२ सामायिकादि पञ्चचारित्र ५७ सप्तपञ्चाशत् एवं सर्वसंकलनया भावसंवर, सप्तसप्ततिविधो भवतीति ॥सू० १॥

मूलम्—तस्स हेउणो समिइ–गुत्ति–धम्मानुपेहा परीसहजया ।२।

छाया—तस्य हेतवः समिति-गुप्ति-धर्माऽनुप्रेक्षा-परीषहजयाः ॥२॥

तत्त्वार्थदीपिकाः-पूर्वसूत्रे शुभाऽशुभकर्मागमन मार्गलक्षणाऽऽस्रवनिरोध

---

१० श्रोत्र आदि पांच इन्द्रियों का निग्रह करना १५, मनवचन और काया को वश में रखना १८ भाण्डोपकरण आदिको यतना से उठाना और यतना से ही रखना १९, सूई तथा कुश-दर्भ के अग्रभागमात्र भी किसी वस्तु को यतना से रखना और यतना से ही उठाना २०, ये बीस तथा पांच समिति ५ तीन गुप्ति ८ क्षुधा आदि बाईस परीषहों को सहना ३० दश प्रकार का श्रमण धर्म ४० बारह भावना ५२, और सामायिक आदि ५ पांच चारित्र ५७, इस प्रकार सत्तावन ५७, ऐसे सब मिलाकर भाव संवर के सतहत्तर ७७ भेद होते है ॥१॥

सूत्रार्थ—'तस्स हेउणो समिइ' इत्यादि ।

समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा और परीषहजय, संवर के कारण हैं

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्र में शुभाशुभ कर्मों के आगमन के मार्ग

ઇન્દ્રિયોનો નિગ્રહ કરવો (૧૫) મન, વચન અને કાયાને વશમાં રાખવા (૧૮) ભાણ્ડોપકરણ આદિને યતનાપૂર્વક ઉપાડવા અને જતનાપૂર્વક જ રાખવા (૧૯) સોય તથા કુશ-દર્ભના અગ્રભાગ જેટલી કોઈ પણ વસ્તુને યતના પૂર્વક રાખવી અને યતનાથી જ ઉપાડવી (૨૦) આ વીસ, તથા પાંચ સમિતિ (૫) ત્રણ ગુપ્તિ (૮) ક્ષુધા આદિ બાવીસ પરીષહોને સહન કરવા (૩૦) દશ પ્રકારનો શ્રમણધર્મ (૪૦) બાર પ્રકારની ભાવના (૫૨) અને સામાયિક વગેરે પાંચ ચારિત્ર (૫૭) આવી રીતે સત્તાવન, આ બધાં મળીને ભાવ સંવરના સિત્યોત્તેર (૭૭) ભેદ થાય છે. ॥૧॥

'तस्स हेउणो समिइ' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—સમિતિ, ગુપ્તિ, ધર્મ, અનુપ્રેક્ષા અને પરિષહજય સંવરના કારણ છે ॥૨॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં શુભાશુભ આગમનના માર્ગ ૩૫

रूपसंवरस्य प्रतिपादितत्वेन, सम्प्रति-तद्धेतुभूतानि समिति-गुप्त्यादि तपः पर्यन्तानि प्रतिपादयितुमाह-'तस्स हेउणो' इत्यादि। तद्धेतवः-तस्य पूर्वोक्ता-स्रवनिरोधलक्षणस्य संवरस्य हेतवः-उपायाः खलु-समिति, गुप्ति, धर्माऽनुप्रेक्षा परीषह जय-चारित्राणि तपश्चेते भवन्ति। तत्र-सम्यगयनं प्राणिपीडा परिहारार्थं वर्तनं-प्रवृत्तिः समितिः ईर्या-भाषै-षणाऽऽदाननिक्षेपणा-परिष्ठापना रूपापञ्चविधा, संसारकारणादात्मनो गोपनं-रक्षणं गुप्तिः मनोवाक्काय-रूपा, भवार्णवादुद्धृत्य देवेन्द्रनरेन्द्रसूर्यचन्द्रादिवन्दिते पदे-स्थाने-आत्मानं धारयति-स्थापयतीति धर्मः, शरीरादीनां स्वभावानुचिन्तनरूपाऽनुप्रेक्षा, क्षुत्पिपासादि वेदनोत्पत्तौ सत्यां पूर्वोपार्जितकर्मनिर्जरणार्थं परितः-समन्तात् सहनं

रूप आस्रव के निरोध स्वरूप वाले संवर का प्रतिपादन किया गया, अब संवर के कारण समिति गुप्ति आदि का प्रतिपादन करते हैं--

समिति, गुप्ति, धर्म अनुप्रेक्षा, परीषहजय, चारित्र और तप संवर के कारण हैं सम्यक् प्रकार से अर्थात् प्राणियों को पीड़ा न उपजे, इस प्रकार से प्रवृत्ति करना समिति के पांच प्रकार हैं-(१) ईर्या (२) भाषा (३) एषणा (४) आदाननिक्षेपण और (५) परिष्ठापना। आत्मा को संसार के कारणों से गोपना-बचाना गुप्ति है। इसके तीन भेद हैं मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति। जो संसार समुद्र से पार करके देवेन्द्रों नरेन्द्रों एवं चन्द्र-सूर्यों द्वारा वन्दनीय पद पर आत्मा को धारण करे वह धर्म है। बार-बार शरीर आदि के स्वभाव का चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। क्षुधा तृषा आदि वेदना उत्पन्न होने पर पूर्वकृत

આસ્રવના નિરોધ સ્વરૂપવાળા સંવરનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું, હવે સંવરના કારણ સમિતિ ગુપ્તિ આદિનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ-

સમિતિ, ગુપ્તિ, ધર્મ, અનુપ્રેક્ષા, પરિષહજ્ય, ચારિત્ર અને તપ સંવરના કારણ છે. સમ્યક્ પ્રકારથી અર્થાત્ પ્રાણિઓને પીડા ન ઉપજે એ પ્રકારે પ્રવૃત્તિ કરવી સમિતિ છે. સમિતિના પાંચ પ્રકાર છે-(૧) ઈર્યા (૨) ભાષા (૩) એષણા (૪) આદાનનિક્ષેપણ અને (૫) પરિષ્ઠાપના આત્માને સંસારના કારણોથી ગોપવો-બચાવવો ગુપ્તિ છે એના ત્રણ ભેદ છે-મનોગુપ્તિ, વચન ગુપ્તિ અને કાયગુપ્તિ જે સંસાર-સમુદ્રની પાર જઈને દેવન્દ્રો, નરેન્દ્રો તથા ચન્દ્ર-સૂર્ય દ્વારા વન્દનીય પદ પર આત્માને ધારણ કરે તે ધર્મ છે-વારંવાર શરીર આદિના સ્વભાવનું ચિન્તન કરવું અનુપ્રેક્ષા છે ક્ષુધા, તૃષા આદિની વેદના ઉત્પન્ન થવાથી પૂર્વકૃત કર્મોની નિર્જરા માટે તેમને સમભાવથી સહન

परीषह स्तस्य जयः परीषहजय उच्यते, चरणं चारित्रम्, चर्यतेऽनेनेति वा चारित्रम्, तपश्च-तपश्चर्या इत्येते-आस्रव निरोध लक्षणस्य संवरस्य हेतवः सन्ति ॥२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावद् आस्रवनिरोधलक्षणस्य संवरस्योक्तत्वेन, सम्प्रति तदुपायान् समितिगुप्त्यादीन् प्रतिपादयितुमाह-'तस्स हेउणो' इत्यादि। तद्धेतवः-तस्य पूर्वोक्तास्रवनिरोधलक्षणस्य संवरस्य कर्मास्रवच्छिद्रसंवरणस्य हेतवः-उपायः समिति-गुप्ति-धर्माऽनुप्रेक्षा परीषहजय-चारित्राणि, तपश्च भवन्ति। तत्र-समितिः सम्यगयनं सर्वज्ञप्रणीतज्ञानानुसारिण्यश्चेष्टा, ईर्या भाषादिरूपाः पञ्चविधाः, सम्यक् क्रिया रूपगति हेतुत्वात्संवरमादधते। गुप्यते-भवकारणात् कायादियोगलक्षणव्यापारात्संरक्ष्यते-आत्माऽनया, इति गुप्तिः, मनोवाकायभेदेन

कर्मों की निर्जरा के लिए उन्हें समभाव से सहना परीषहजय है। सत् आचरण को या जिसके द्वारा सत् आचरण किया जाय उसे चारित्र कहते हैं तपश्चर्या को तप कहते हैं। ये सब आस्रवनिरोध रूप संवर के कारण हैं ॥२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-पूर्वसूत्र में संवर के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है अतएव अब इसके कारणों का प्ररूपण करते हैं--

समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, चारित्र और तप ये संवर के हेतु या उपाय हैं। इन में सर्वज्ञों द्वारा प्रणीत ज्ञान के अनुसार गमन भाषण आदि प्रवृत्ति करना समिति है। समिति के पांच भेद हैं। ये समितियां सम्यक् यतना रूप प्रवृत्ति होने के कारण संवर को उत्पन्न करती हैं।

जिसके कारण आत्मा का संसार के हेतुभूत काययोग आदि

કરવા પરિષહજય છે. સત્ આચરણને અથવા જેના દ્વારા સત આચરણ કરવામાં આવે તેને ચારિત્ર કહે છે. તપશ્ચર્યાને તપ કહે છે. આ બધાં આસ્રવ નિરોધરૂપ સંવરના કારણ છે ॥૨॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પૂર્વસૂત્રમાં સંવરના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું આથી હવે તેના કારણોનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ-

સમિતિ, ગુપ્તિ, ધર્મ, અનુપ્રેક્ષા, પરીષહજય ચારિત્ર અને તપ એ સંવરના હેતુ અથવા ઉપાય છે. આમાંથી સર્વજ્ઞ દ્વારા પ્રણીત જ્ઞાન અનુસાર ગમન ભાષણ આદિ પ્રવૃત્તિ કરવી સમિતિ છે. સમિતિના પાંચ ભેદ છે. આ સમિતિઓ સમ્યક્ યતનારૂપ પ્રવૃત્તિ હોવાના કારણે સંવરને ઉત્પન્ન કરે છે જેના કારણે આત્માનો સંસારના હેતુભૂત કાયયોગ આદિ વ્યાપારથી

त्रिविधाः कर्मास्रवं संवृण्वतः पुरुषस्य गुप्त्यादयः कारणानि भवन्ति। नरकादिगति प्रपातधारणात् क्षमादिदशलक्षणो धर्म उच्यते। अनुप्रेक्षणम्-अनुचिन्तनम् अनुप्रेक्षाऽनया संवरः सुसाध्यो भवति। एवं-परितः समन्तत आपतिताः क्षुत्पिपासादयः सह्यन्ते इति परीषहाः देवतिर्यक् मनुष्यादिकृता स्तेषां जयः सम्यक् सहनरूपः परीषहजयः। चर्यते-इति चारित्रम्, चरणंवा चारित्रम्, अष्टविध ज्ञानावरणादिकर्म चयरिक्तीकरणात् चारित्रम्, सामायिकादि पञ्चविधम्। तप्यते इति तपः, तपति वा कर्तारमिति तपः, द्वादशविधमनशनादिकम् इत्येते सप्त-

व्यापार से गोपन-रक्षण हो, वह गुप्ति है। उसके तीन भेद हैं-मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति,। कर्म के आस्रव को रोकनेवाले पुरुष के लिए गुप्ति आदि कारण हैं। नरक आदि दुर्गति में गिरते हुए जीव को जो धारण करे-बचावे, वह धर्म है। उसके क्षमा आदि दस भेद हैं। वार-वार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। इससे भी संवर की साधना में सरलता होती है। इसी प्रकार भूख प्यास आदि को समभाव से सहन करना परीषह है। यह परीषह कभी स्वयं उत्पन्न होते हैं और कभी-कभी देव मनुष्य-अथवा तिर्यंच द्वारा उत्पन्न किये जाते है। उनका जय अर्थात् सम्यक् प्रकार से सहन करना परीषहजय है। आचरण करना या जिसका आचरण किया जाय वह चारित्र कहलाता है। ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों के चय (समूह) को रिक्त करने के कारण उसे चारित्र कहते हैं। वह सामायिक आदि के भेद से पांच प्रकार का है। जो तपा जाय सो तप

ગોપન-રક્ષણ થાય તે ગુપ્તિ છે તેના ત્રણ ભેદ છે-મનોગુપ્તિ, વચનગુપ્તિ, કાયગુપ્તિ કર્મને આસ્રવને રોકનારાવાળા પુરૂષ માટે ગુપ્તિ આદિ કારણ છે. નરક વગેરે દુર્ગતિમાં પડતાં થકા જીવને જે ધારણ કરે-બચાવે તે ધર્મ છે તેના ક્ષમા વગેરે દશ ભેદો છે. સતત ચિન્તન કરવું તે અનુપ્રેક્ષા છે. એમાં પણ સંવરની સાધનામાં સરળતા થાય છે એવી જ રીતે ભૂખ તરસ વગેરેને સમભાવથી સહન કરવા તે પરીષહ છે. આ પરીષહ કોઈવાર જાતે ઉત્પન્ન થાય છે, જ્યારે કદી, કદી, દેવ મનુષ્ય અથવા તિર્યંચ દ્વારા ઉત્પન્ન કરવામાં આવે છે. તેમનો જય અર્થાત્ સમ્યક્પ્રકારથી સહન કરવું એ પરીષહજય છે. આચરણ કરવું અથવા જેનું આચરણ કરવામાં આવે એ ચારિત્ર કહેવાય છે. જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ પ્રકારનાં કર્મોના ચય (સમૂહ) ને ખાલી કરવાના કારણ-તેને ચારિત્ર કહે છે. તે સામાયિક આદિના ભેદથી પાંચ પ્રકારનું છે.

आस्रवनिरोधलक्षणस्य संवरस्य हेतवो भवन्ति। तत्र-इर्यादयः पञ्चसमितयः, त्रिविधयोग निरोधकरूपा गुप्तयस्तिस्रो मनोगुप्त्यादयः, क्षमा-मार्दवादयो दशविधो यतिधर्मः, अनित्यादि द्वादश भावनारूपाऽनुप्रेक्षा, क्षुत्पिपासादि द्वाविंशति परीषहाणां द्वादशविधो जयः, सामायिकसंयमादिपञ्चविधं चारित्रम्, अनशनादि-बाह्य-प्रायश्चित्तादि षडाभ्यन्तरभेदेन द्वादशविधं तपोऽवगन्तव्यम्, सर्वचैते समितिप्रभृति तपः पर्यन्ताः संवरोपाया यथाक्रमं स्वरूप-भेदो-पभेदैरग्रेऽभिधास्यन्ते।

अथ समित्यादय स्तावत्कथं संवरस्याऽऽस्रव निरोधलक्षणस्य कारणरूपाः सम्भवन्ति ? इति चेत्-अत्रोच्यते-रागद्वेषपरिणतिविशेषरूपाऽऽर्त्तरौद्रध्या-

---

या जो कर्त्ता को तपावे सो तप वह अनशन आदि के भेद से बारह प्रकार का है। ये सातों आस्रव निरोध रूप संवर के कारण हैं।

ईर्या आदि पांच समितियां हैं, तीन योगों का निरोध रूप तीन गुप्तियां हैं, क्षमा मार्दव आदि दस प्रकार के धर्म हैं, अनित्य आदि बारह भावनाएं-अनुप्रेक्षाएं हैं क्षुधा पिपासा आदि बाईस परीषहों का विजय है, सामायिक आदि पांच प्रकार का चारित्र है छह अनशन आदि बाह्य और छह प्रायश्चित्त आदि आभ्यन्तर यों बारह प्रकार का तप हैं। समिति से प्रारंभ करके तपश्चरण पर्यन्त सभी संवर के उपायों का अनुक्रम से स्वरूप भेद और उपभेद बतलाते हुए आगे कथन करेंगे।

शंका-ये समिति आदि आस्रवनिरोध रूप संवर के कारण किस प्रकार होते हैं ?

જે તપાવી શકાય તે તપ અથવા જે કર્ત્તાને તપાવે તે તપ તે અનશન આદિના ભેદથી બાર પ્રકારનું છે. આ સાતે આસ્રવ નિરોધ રૂપ સંવરના કારણ છે.

ઈર્યા આદિ પાંચ સમિતિઓ છે, ત્રણ યોગોના નિરોધ રૂપ ત્રણ ગુપ્તિઓ છે, ક્ષમામાર્દવ આદિ દશ પ્રકારના ધર્મ છે, અનિત્ય આદિ બાર ભાવનાઓ અનુપ્રેક્ષાઓ છે, ક્ષુધા, પિપાસા આદિ બાવીસ પરીષહોનો વિજય છે, સામાયિક સંયમ આદિ પાંચ પ્રકારના ચારિત્ર છે, છ અનશન આદિ બાહ્ય અને છ પ્રાયશ્ચિત્ત આદિ આભ્યંતર, એમ બાર પ્રકારના તપ છે. સમિતિથી પ્રારંભ કરીને તપશ્ચરણ પર્યન્ત બધા સંવરના ઉપાયોનો અનુક્રમથી સ્વરૂપ, ભેદ અને ઉપભેદ દર્શાવતું થકું કથન પછીથી કરીશું.

શંકા—આ સમિતિ આદિ આસ્રવનિરોધ રૂપ સંવરના કારણ કેવા પ્રકારના હોય છે?

वसायात् मनोनिवर्त्य—ऐहिकामुष्मिक विषयाभिलाषरहितस्य पुरुषस्य मनोगुप्तत्वा देव न रागद्वेषादिमूलकं कर्म जनिष्यते। एवं वाग्व्यापारविरतस्य यथा विहित वाग्भाषिणः खलु वाचाऽपि गुप्तत्वादेव वाचिकमपि—अप्रियवचनादिहेतुकं कर्म असंवृतस्याऽसत्यप्रलापिन इव नोत्पत्स्यते। एवं—कायोत्सर्गभाजः परित्यक्त प्राणातिपातादिदोषविषयकं क्रियाकलापस्य सामायिकक्रियाकलापाऽनुष्ठायिनः पुरुषस्य कायगुप्तत्वादेव धावन—वल्गना प्रत्युपेक्षिता प्रमार्जिताऽवनिप्रदेश परिभ्रमणद्रव्यान्तरग्रहणनिक्षेपणादिहेतुकं कायिकमपि कर्म नाश्लिष्टं भवति, इत्येवं सम्यक् मनोयोगादित्रयनिरोधलक्षणास्तिस्रो गुप्तयः संवरस्य करणानि

समाधान—जिस पुरुष ने राग-द्वेष की परिणति रूप आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान से अपने मन को हटा लिया है और जो इह-परलोक संबंधी विषयों की अभिलाषा से रहित है, व मनोगुप्त होने के कारण राग-द्वेष मूलक कर्म का बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार जो वचन संबन्धी व्यवहार से निवृत्त हो गया है या शास्त्रविहित वचनों का ही प्रयोग करता है और इस प्रकार वचन से गुप्त है, वह अप्रिय असत्य वचन के कारण बंधने वाले कर्म का बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार जो कायोत्सर्ग की स्थिति में है, जिसने प्राणातिपात आदि विषयक क्रियाओं का त्याग कर दिया है, जो सामायिक क्रिया के अनुष्ठान में तत्पर है, वह कायगुप्त होने के कारण दौडने भागने, विना देखी और विना पूंजी जमीन में चलने, दूसरी वस्तुओं के धरने उठाने आदि कायिक व्यापारों से बंधनेवाले कर्मों से भी युक्त नहीं

સમાધાન—જે પુરૂષે રાગ-દ્વેષની પરિણતિ રૂપ આર્ત્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાનથી પોતાના મનને હટાવી લીધું છે અને જે આ લોક પરલોક સંબંધી વિષયોની અભિલાષાથી રહિત છે તે મનોગુપ્ત હોવાના કારણે રાગ-દ્વેષ મૂળક કર્મનો બન્ધ કરતાં નથી એવી જ રીતે જે વચન સંબંધી વ્યવહારથી નિવૃત્ત થઇ ગયા છે અથવા શાસ્ત્ર-વિહિત વચનોનો જ પ્રયોગ કરે છે અને એવી રીતે વચનથી ગુપ્ત છે, તે અપ્રિય અસત્ય વચનના કારણે બંધાનારા કર્મનો બંધ કરતાં નથી. એવી જ રીતે જે કાયોત્સર્ગની સ્થિતિમાં છે, જેણે પ્રાણાતિપાત આદિ વિષયક ક્રિયાઓનો ત્યાગ કરી દીધો છે, જે સામાયિક ક્રિયાના અનુષ્ઠાનમાં તત્પર છે તે કાયગુપ્ત હોવાના કારણે દોડવાના. ભાગવાના, વગર જોએ અને વગર પૂંજેલી જમીનમાં ચાલવાના, પારકી વસ્તુઓને રાખવા-ઉપાડવા આદિ કાયિક વ્યાપારોથી બંધાનારા કર્મોથી પણ

भवन्ति । एवम्-ईर्या-भाषै षणाऽऽदान-परिष्ठापनलक्षणाः पञ्च समितयः कायव्यापारानुविधायिन्यः, एताः पञ्च समितयोऽपि गुप्ति सहचरितत्वात् ताभिरपि संवरो भवत्येव इति ताः अपि पञ्च समितयः संवरकारणानि भवन्ति । एवं-क्षमा, मार्दवा, ऽऽर्जव, शौचानां यतिधर्माणां खलु-अनन्ताऽनुबन्ध्यादिभेद-सहित क्रोध-मान-माया-लोभ कषायाणां निग्रहकरणेन संवरोत्पादकत्वं भवति सत्य-त्यागाऽकिञ्चनत्व-ब्रह्मचर्याणाञ्च यतिधर्माणां चारित्रवर्द्धकतया संवर-कारणत्वं बोध्यम् । संयमस्य च सप्तदशविधस्य कस्यचित् प्रथमव्रतान्तःपातित्वेन कस्यचित्पुनरुत्तरगुणान्तर्भूतत्वेन संवरकारणत्वं भवति । अनित्याऽशरणादि-

होता । इस प्रकार सम्यक् प्रकार से योग का निरोध रूप जो तीन गुप्तियां हैं, वे संवर का कारण होती हैं।

इसी प्रकार ईर्यासमिति, एषणासमिति, आदानसमिति और परिष्ठापनसमिति, जो कायिक व्यापार से सम्बन्ध रखती हैं, तीन गुप्तियों से सहचरित होने के कारण संवर का कारण होती हैं ।

इसी प्रकार क्षमा, मार्दव, आर्जव और मुक्ति-निर्लोभता (शौच) ये चार धर्म क्रमशः क्रोध, मान, माया और लोभ कषायों का निग्रह करनेवाले हैं, अतएव संवर के जनक हैं तथा सत्य, त्याग, अकिंच नत्व और ब्रह्मचर्य धर्म चारित्र के वर्द्धक हैं अतएव वे भी संवर के कारण होते हैं, संयम धर्म के सत्तरह भेद हैं । उन में से कोई प्रथम व्रत के अन्तर्गत है और कोई उत्तर गुणों में अन्तर्भूत है । अतएव वह भी संवर का कारण होता है । अनित्यत्व, अशरणत्व

યુક્ત હોતા નથી આવી રીતે સમ્યક્પ્રકારથી યોગના નિરોધરૂપ જે ત્રણ ગુપ્તિઓ છે તે સંવરના કારણરૂપ હોય છે

એવી જ રીતે ઈર્યાસમિતિ, ભાષાસમિતિ, એષણાસમિતિ આદાન નિક્ષેપસમિતિ અને પરિષ્ઠાપનસમિતિ, જે કાયિક વ્યાપારથી સંબંધ રાખે છે, ત્રણ ગુપ્તિઓથી સહચરિત હોવાના કારણે સંવરના કારણ હોય છે.

આવી જ રીતે ક્ષમા, માર્દવ, આર્જવ અને મુક્તિ શૌચ-નિર્લોભતા આ ચાર ધર્મ ક્રમશઃ ક્રોધ માન, માયા અને લોભ કષાયોના નિગ્રહ કરનારા છે આથી સંવરના પિતા છે તથા સત્ય ત્યાગ, અકિંચનત્વ અને બ્રહ્મચર્ય ધર્મ ચારિત્રના વર્ધક છે આથી તેઓ પણ સંવરના કારણ છે. સંયમધર્મના સત્તર ભેદ છે. તેઓમાંથી કોઈ ભેદ પ્રથમ વ્રતની અન્તર્ગત છે અને કોઈ ઉત્તર ગુણોમાં અન્તર્ભૂત છે, આથી તે પણ સંવરનું કારણ ગણ્યું. અનિત્યત્વ, અશરણત્વ આદિ અનુપ્રેક્ષાઓ પણ સંવરના કારણ છે અને

भावनारूपानुप्रेक्षाया अपि संवरहेतुत्वम्-उत्तरगुणानुविधायित्वञ्च भवति। एवं-क्षुत्पिपासादि द्वाविंशति परीषहाणां विजयोऽपि संवरकारणं भवति। एवं-द्वादश विधं तपोऽपि-उत्तरगुणान्तःपातितया संवरमाविष्करोति। एवं-प्राणातिपात-मृषावादाऽदत्तादान-मैथुन-परिग्रह-रात्रिभोजनानि संक्लेप विशेषाहित कालुष्यस्य पुरुषस्य कर्मास्रवकारणानि भवन्ति तेभ्यो विरमणेन कर्मास्रवनिरोधो भवति, तस्मात्-पञ्चाणुव्रताना मपि संवरकरणत्वं वर्तते, आधाकर्मादि परिभोगहेतुकं कर्मास्रवणं भवति। तत्परित्यागे तु-न सम्भवति कर्मास्रवणम्, तस्मात् समित्यादि तपःपर्यन्तं सर्वमेव शङ्कादि दोषजालरहितसम्यग्दर्शनपीठ प्रतिबन्धं वर्तते, अत स्तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणे सम्यक्त्वे सति न खलु मिथ्या-

---

आदि अनुप्रेक्षाए भी संवर का कारण हैं और उत्तरगुण रूप हैं। क्षुधा पिपासा आदि बाईस परीषहों को जितना भी संवर का कारण है। बारह प्रकार का तप भी उत्तर गुणों में सम्मिलित होने से संवर को प्रकट करता है। इसी प्रकार प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह और रात्रि भोजन चित्त को कलुषता वाले पुरुष को कर्म के आस्रव के कारण होते हैं और इन पापों से विरक्त होने से आस्रव का निरोध होता है इस कारण पांचों व्रत भी संवर के कारण हैं। आधा कर्म आदि दोषों वाले आहार आदि का सेवन करने से कर्म का आस्रव होता है। उसका त्याग कर दिया जाय तो आस्रव नहीं होता अर्थात् संवर हो जाता है। इस प्रकार समिति गुप्ति आदि पूर्वोक्त सभी संवर के कारण तभी होते हैं जब कि सम्यग्दर्शन विद्यमान हो और सम्यग्दर्शन होने पर मिथ्या-

---

ઉત્તરગુણરૂપ છે. ક્ષુધા પિપાસા વગેરે બાવીશ પરીષહોને જીતવા એ પણ સંવરના કારણ છે. બાર પ્રકારના તપ પણ ઉત્તરગુણોમાં સમ્મિલિત હોવાથી સંવરને પ્રકટ કરે છે. એવી જ રીતે પ્રાણાતિપાત, મૃષાવાદ, અદત્તાદાન, મૈથુન, પરિગ્રહ અને રાત્રિભોજન ચિત્તની કલુષતાવાળા પુરૂષને કર્મના આસ્રવના કારણ હોય છે અને આ પાપોથી વિરત થવાથી આસ્રવનો નિરોધ થાય છે. આથી પાંચે વ્રત પણ સંવરના કારણ છે. આધ કર્મ આદિ દોષો વાળા આહાર આદિનું સેવન કરવાથી કર્મનો આસ્રવ થાય છે. તેનો ત્યાગ કરી દેવામાં આવે તો આસ્રવ થતો નથી અર્થાત્ સંવર થઈ જાય છે. આવી રીતે સમિતિ ગુપ્તિ આદિ પૂર્વોક્ત બધાં સંવરના કારણ છે આ બધાં સંવરનાં કારણ ત્યારે જ હોય છે જ્યારે સમ્યક્દર્શન વિદ્યમાન હોય અને સમ્યક્દર્શન

दर्शनहेतुकः कर्मास्रवो भवतीति समित्यादयः संवरस्याऽभ्युपायाः अभ्युपगन्तव्याः। एवमेवाऽनशनप्रायश्चित्तध्यानादितपोयुक्तः खलु नूनमेवाऽऽस्रवद्वारं संवृणोतीति भावः। तथाचै-तानि समिति-गुप्ति-धर्माऽनुप्रेक्षा-परीषहजय चारित्र-तपांसि कर्मास्रवनिरोधलक्षणसंवरकारणानि भवन्ति। उक्तञ्च-स्थानाङ्गे प्रथमवृत्तिस्थाने-'समई गुत्ती धम्मो' अणुपेहपरीसहा चरित्तं च। सत्तावन्नं भेया' पणतिग भेयाइं संवरणे-॥१॥ इति, समिति-१ गुप्ति-२ धर्मो ३ ऽनुप्रेक्षा-४ परीषहा-५ श्चारित्र-६ ञ्च। सप्तपञ्चाशद्भेदाः पञ्चत्रिंशद्भेदाः संवरणे ॥१॥ इति। 'उत्तराध्ययने त्रिंशदध्ययने षष्ठगाथाया ञ्चोक्तम्-'एवं तु संजयस्सावि पावकम्मनिरासवे। भवकोडीसंचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ ॥२॥ इति एवञ्च संयतस्यापि पापकर्मनिरास्रवः। भवकोटी सञ्चितं कर्म तपसा निर्जरिष्यति'-इति ॥२॥

दर्शन हेतुक कर्म का आस्रव रुक जाने से भी संवर होता है।

तात्पर्य यह है कि अनशन प्रायश्चित्त ध्यान आदि तपों से जो युक्त होता है, वह निश्चय ही आस्रवद्वारों का निरोध करता है। इस कारण ये समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, चारित्र और तप, कर्मों के आस्रव के निरोध रूप संवर को उत्पन्न करते हैं। स्थानांगसूत्र के प्रथम वृत्तिस्थान में कहा है-समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा और चारित्र ये संवर के सत्तावन भेद होते हैं॥१॥

उत्तराध्ययन के तीसवें अध्ययन की छठी गाथा में भी कहा है-'इस प्रकार संयमवान पुरुष पाप कर्मों के आस्रव से रहित हो जाता हैं और तपश्चरण के द्वारा कोटि-कोटि भवों में उपार्जित कर्मों की निर्जरा हो जाती है ॥२॥

હોવાથી મિથ્યાદર્શન હેતુક કર્મનો આસ્રવ રોકાઈ જવાથી પણ સંવર થાય છે.

કહેવાનું એ છે કે અનશન પ્રાયશ્ચિત્ત ધ્યાન આદિ તપથી જે યુક્ત હોય છે તે નિશ્ચયપણે જ આસ્રવદ્વારોનો નિરોધ કરે છે. આ કારણથી આ સમિતિ, ગુપ્તિ, ધર્મ, અનુપ્રેક્ષા, પરીષહજય, ચારિત્ર અને તપ કર્મોના આસ્રવના અટકાવ રૂપ સંવરને ઉત્પન્ન કરે છે સ્થાનાંગસૂત્રના પ્રથમ વૃત્તિ સ્થાનમાં કહેવામાં આવ્યું છે-સમિતિગુપ્તિ, ધર્મ, અનુપ્રેક્ષા અને ચારિત્ર આ સંવરના સત્તાવન ભેદ થાય છે ।।૧।। ઉત્તરાધ્યાયનના ત્રીસમા અધ્યયનની છઠી ગાથામાં પણ કહ્યું છે-આ પ્રકારે સંયમવાન પુરૂષ પાપકર્મોના આસ્રવથી રહિત થઈ જાય છે અને તપશ્ચર્યા દ્વારા કોટિ-કોટિ ભવોમાં ઉપાર્જિત કર્મોની નિર્જરા થઇ જાય છે ।।૨।।

मूलम्—समिइओ पंच, ईरिया—भासा—एसणा—आयाणनिक्खेवणा परिट्ठावणिया भेयओ ॥३॥

छाया—'समितयः पञ्च, ईर्या-भाषैषणाऽऽदाननिक्षेपणापरिष्ठापनिका भेदतः ३।

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वसूत्रे तावद्-आस्रवनिरोधलक्षणसंवरस्य हेतुरूपाणि समिति-गुप्ति-धर्माऽनुप्रेक्षा-परीषहजय-चारित्रतपांसि प्रोक्तानि, सम्प्रति-तत्र प्रथमोपात्तायाः समितेः स्वरूपं प्ररूपयितुमाह 'समिईओ पंच, ईरिया भासा एसणा आयाणनिक्खेवणा-परिट्ठावणिया भेयओ' इति, समितयः-प्राणिपीडापरिहारार्थं सम्यगयनरूपाः पञ्च भवन्ति, ईर्या-१ भाषा-२ एषणा-३ आदाननिक्षेपणा-४ परिष्ठापनिका-५ चेत्येताः पञ्च समितयो ज्ञाततत्त्वस्य श्रमणस्य प्राणिपीडापरिहाराऽभ्युपाया अवगन्तव्याः पुरतो जीवरक्षार्थं युग्यमात्रभूभागं निरीक्ष्य गमनम्-ईर्या समितिः-१ सावद्यपरिहार-

---

'समिईओ पंच ईरिया' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और परिष्ठापनिका के भेद से समितियां पांच हैं ॥३॥

तत्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्र में समिति, गुप्ति, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, चारित्र और तप को आस्रवनिरोध रूप संवर का कारण कहा है। अब इन में सब प्रथम गिनाई समिति के स्वरूप का प्रतिपादन करने के लिए कहते हैं—

समितियां पांच हैं-(१) ईर्यासमिति (२) भाषासमिति (३) एषणा समिति (४) आदाननिक्षेपणासमिति और (५) परिष्ठापनिकासमिति ये समितियां तत्त्व के ज्ञाता श्रमण के लिए प्राणियों की पीडा को

'समिइओ पच ईरिया' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—ઈર્યા, ભાષા એષણા નિક્ષેપણ અને પરિષ્ઠાપનિકાના ભેદથી સમિતિઓ પાંચ છે ॥૩॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં સમિતિ ગુપ્તિ, ધર્મ, અનુપ્રેક્ષા, પરીષહજય ચારિત્ર અને તપને આસ્રવનિરોધરૂપ 'સંવરના' કારણ કહ્યાં છે. હવે એ પૈકી પ્રથમ ગણાવેલી સમિતિના સ્વરૂપનુ પ્રતિપાદન કરવા માટે કહીએ છીએ-

સમિતિઓ પાંચ છે-(૧) ઈર્યાસમિતિ (૨) ભાષાસમિતિ (૩) એષણાસમિતિ (૪) આદાન નિક્ષેપણાસમિતિ અને (૫) પરિષ્ઠાપનિકાસમિતિ આ સમિતિઓ તત્વના જ્ઞાતાશ્રમણ માટે પ્રાણિઓની પીડાને બચાવવા માટેના

पूर्वकं निरवद्यभाषाभाषणम्-भाषासमितिः २ गवेषणा पूर्वक द्वाचत्वारिंशद्दोषान् वर्जयित्वाऽऽहारादिग्रहणम् एषणासमितिः ३ वस्त्र पात्राद्युपकरणानां सुप्रतिलेखित-सुप्रमार्जितादि क्रमेणाऽऽदाननिक्षेपणम्-आदाननिक्षेपणा समितिः-४ उच्चार-प्रस्रवणादीनां स्थण्डिलदोषपरिहारपूर्वकं परिष्ठापनम्-परिष्ठापनिका समितिः-५ अयं भावः-गच्छतः श्रमणस्य चतुर्हस्तमात्रमार्गनिरीक्षणपूर्वकं सावहितदृष्टे शान्तचित्तस्य सम्यक्तया विज्ञातजीवस्थानस्वरूपस्य-ईर्यासमितिरवगन्तव्या-१ हितं=परिमितम्=असन्दिग्धं सत्यम्-असूयावर्जितम्-प्रियं सन्देहवर्जितं - क्रोधादिकषायानुत्पादकम्- मृदु-धर्माविरोधि - देशकालाद्युचितं-

बचाने का उपाय हैं। (१) जीवों की रक्षा के लिए सामने चार हाथ भूमि देखकर चलना ईर्यासमिति है। (२) सावद्य वचनों का त्याग करके निरवद्य भाषा बोलना भाषा समिति है। (३) बयालीस दोष टालकर गवेषणा पूर्वक आहार आदि को ग्रहण करना एषणासमिति है। (४) वस्त्र पात्र आदि उपकरणों को भली भांति देखकर और पूंज कर ग्रहण करना और रखना आदाननिक्षेपणासमिति है। मल-मूत्र आदि को निर्जीव भूमि पर देख-भाल कर त्यागना परिष्ठापनिका समिति है।

तात्पर्य यह है-(१) साधु जब गमन करे तो चार हाथ रास्ता देखकर, उपयोग पूर्ण दृष्टि वाला, एवं शान्तचित्त होकर जीवस्थानों के स्वरूप को सम्यक् प्रकार से जानकर चले, यह ईर्यासमिति है।

(२) हितजनक, परिमित, असंदिग्ध, सत्य, ईर्षारहित, प्रिय, सन्देहरहित, क्रोध आदि कषायों को न उत्पन्न करने वाले, कोमल

ઉપાય છે (૧) જીવોની રક્ષા માટે નજર સામેની ચાર હાથ જમીનનું પડિલેહન કરીને ચાલવું ઈર્યાસમિતિ છે. (૨) સાવદ્ય વચનનો ત્યાગ કરીને નિરવદ્ય ભાષા બોલવી ભાષાસમિતિ છે. ૩ બેતાલીશ દોષ ટાળીને ગવેષણાપૂર્વક આહાર આદિને ગ્રહણ કરવા એષણાસમિતિ છે (૪) વસ્ત્ર પાત્ર આદિ ઉપકરણોને સારી પેઠે જોઈને અને પૂંજ્યા બાદ લેવા તથા મુકવા આદાન નિક્ષેપણા સમિતિ છે મળ-મૂત્ર આદિને નિર્જીવ ભૂમિ ઉપર બારીકાઈથી જોઈ તપાસી ત્યાગ કરવો (નાખવા) પરિષ્ઠાપનિકાસમિતિ છે.

તાત્પર્ય એ છે કે-(૧) સાધુ જ્યારે ગમન કરે ત્યારે ચાર હાથ રસ્તો, જોઈને, ઉપયોગપૂર્ણ દૃષ્ટિવાળા તથા શાન્તચિત્ત થઈને જીવ સ્થાનોના સ્વરૂપને સમ્યક્પ્રકારથી જાણીને ચાલે, એ ઈર્યાસમિતિ છે (૨) હિતજનક, પરિમિત, અસંદિગ્ધ, સત્ય, ઈર્ષારહિત, પ્રિય, સંદેહ રહિત ક્રોધ આદિ

हास्यादिरहितं वचोऽभिधानम्-भाषासमिति रुच्यते-२ उद्गमोत्पादनादि दोष-रहितम्-परार्थनिष्पादितं समुचितकाले आहारग्रहणम्-एषणासमिति रुच्यते-३ धर्मोपकरणग्रहणे सम्यग् विलोक्य रजोहरणादिना प्रतिलिख्य ग्रहणस्थापनम् आदाननिक्षेपणासमितिः-४ प्राणिना मविरोधेनाऽङ्गमलत्यागः शरीरस्य स्थापनञ्च परिष्ठापनिकासमिति रुच्यते-५ इत्येताः पञ्च समितयः प्राणिपीडा परिहारस्याऽभ्युपाया अवगन्तव्याः ॥३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः--पूर्वं तावत्-संवरकारणभूतानि समित्यादीनि प्रोक्तानि, तत्सेवनादेव संवरसिद्धिः प्रतिपादिता, सम्प्रति-कर्मास्रवनिरोध

धर्म से अविरुद्ध, देश-काल के अनुकूल तथा हास्यादि से रहित वचन बोलना भाषा समिति है। (३) उद्गम और उत्पादन सम्बन्धी दोषों से रहित, दूसरों के निमित्त बनाये हुए आहार को उचित काल आने पर ग्रहण करना एषणा समिति है। (४) धर्मोपकरणों को ग्रहण करते समय सम्यक् प्रकार से अवलोकन करके और रजोहरण आदि से पूंज कर ग्रहण करना और इसी विधि से रखना आदाननिक्षेपणा समिति है। (५) किसी भी प्राणी को किसी प्रकार की पीडा उत्पन्न न हो, इस प्रकार शरीर के मल का उत्सर्ग करना परिष्ठापनिकासमिति कहलाती है। यह पांच समितियां प्राणियों को पीडा से बचाने के लिए उपाय हैं ॥३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—इससे पूर्व समिति आदि संवर के कारण कहे गए हैं और यह भी बतलाया गया है कि उनके सेवन से ही संवर की

કષાયોને ઉત્પન્ન ન કરનાર, કોમળ, ધર્મથી અવિરુદ્ધ દેશકાળને અનુકૂળ તથા હાસ્યાદિથી રહિત વચન બોલવા ભાષાસમિતિ છે (૩) ઉદ્ગમ અને ઉત્પાદના સંબંધી દોષોથી રહિત બીજાને બતાવેલા આહારને યોગ્ય સમય થવાથી ગ્રહણ કરવો એષણા સમિતિ છે, ધર્મ ઉપકરણોને ગ્રહણ કરતી વખતે સમ્યક્ પ્રકારથી અવલોકન કરીને અને રજોહરણ આદિથી પૂંજીને લેવા અને આવી જ વિધિથી પાછા મુકવા આદાન નિક્ષેપણ સમિતિ છે. (૫) કોઈ પણ પ્રાણીને કોઈ રીતે પીડા ન ઉદ્ભવે એ રીતે શરીરના મળનો ત્યાગ કરવો પરિષ્ઠાપનિકાસમિતિ કહેવાય છે આ પાંચ સમિતિઓ પ્રાણિઓને પીડાથી બચાવવાના ઉપાય છે ॥૩॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—આની અગાઉ સમિતિ આદિ સંવરના કારણો કહેવામાં આવ્યા અને એ પણ સાબિત કરવામાં આવ્યું કે તેમના સેવનથી જ

लक्षणसंवरसिद्ध्यर्थं पूर्वं तद्गतसमितिस्वरूपं प्ररूपयितुमाह-'समिईओ पंच, ईरिया-भासा-एसणा-आयाणनिक्खेवणा परिट्ठावणिया भेयओ' इति। समितयः-सम्यगयनरूपाः पञ्च भवन्ति। ईर्या-भाषैषणाऽऽदाननिक्षेपण-परिष्ठापनिका भेदतः। तथा च-ईर्यासमितिः, भाषासमितिः, एषणासमितिः, आदाननिक्षेपणासमितिः, पारिष्ठापनिका समितिश्चेत्येवं पञ्च समितयः-अवगन्तव्याः। तत्र-आगमानुसारेण ईरण मीर्या गतिपरिणामः सम्यगागमानुसारिणी गतिः ईर्यासमितिरुच्यते-१ एवम्-एषणासमितिः खलु-सम्यग् आगमानुसारेणाऽऽहारादे रन्वेषणं-गवेषणरूपा बोध्या-२ एवम्-सम्यग् आगमानुसारेणाऽऽदानं-ग्रहणं, निक्षेपः-स्थापनम्, तयोः समितिः प्रवचनोक्तेन विधिना ऽनुगताऽऽदाननिक्षेपणा समितिः-४ एवम्-आहारोपधिशय्योच्चारादेरागमानुसारेण परिष्ठापनम् परिष्ठापनिका समिति रुच्यते-५ 'उक्तञ्च'-

---

सिद्धि होती है। अब कर्मों के आस्रव के निरोध रूप संवर की सिद्धि के लिए उन में से सर्वप्रथम समितियों के स्वरूप की प्ररूपणा करते हैं

समितियां पांच हैं-(१) ईर्यासमिति (२) भाषासमिति (३) एषणा समिति (४) आदाननिक्षेपणासमिति और (५) परिष्ठापनिकासमिति। इन में से (१) शास्त्रप्रतिपादित विधि से गमन करना ईर्यासमिति है (२) प्रयोजन होने पर शास्त्रानुकूल वचनों का प्रयोग करना भाषासमिति है। (३) आगम के अनुसार आहार आदि की गवेषणा करना एषणा समिति है (४) आगम के अनुकूल विधि से किसी वस्तु को रखना और उठाना आदाननिक्षेपणा समिति है। (५) अचित्तभूमि देख-भाल कर मल-मूत्र आदि का त्याग करना परिष्ठापनिका समिति है कहा भी है-

---

સંવરની સિદ્ધિ થાય છે. હવે કર્મોના આસ્રવના નિરોધ રૂપ સંવરની સિદ્ધિ માટે તેમાંથી સર્વપ્રથમ સમિતિઓના સ્વરૂપની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ.

સમિતિઓ પાંચ છે-(૧) ઇર્યાસમિતિ (૨) ભાષાસમિતિ (૩) એષણા સમિતિ (૪) આદાનનિક્ષેપણાસમિતિ અને (૫) પરિષ્ઠાપનિકાસમિતિ આમાંથી (૧) શાસ્ત્રપ્રતિપાદિત વિધિથી ગમન કરવું ઇર્યાસમિતિ છે. (૨) પ્રયોજન થવાથી શાસ્ત્રાનુકૂળ વચનોનો પ્રયોગ કરવો ભાષાસમિતિ છે (૩) આગમ અનુસાર આહાર વગેરેની ગવેષણા કરવી એષણાસમિતિ છે (૪) આગમને અનુકૂળ વિધિથી કોઈ વસ્તુને મુકવી-ઉપાડવી આદાન નિક્ષેપણ સમિતિ છે. (૫) અચેતભૂમિ જોઇ-તપાસીને મળ-મૂત્ર વગેરેને પરઠવવા પરિષ્ઠાપનિકા-સમિતિ છે. કહ્યું પણ છે-

'तद्गुण परिशुद्धयर्थं-शिक्षोर्गुप्तीर्जगादति सोर्हन्।
'चेष्टितुकामस्य पुनः-समितीः प्राजिज्ञपत् पञ्च ॥१॥ इति
दशवैकालिके पञ्चमाध्ययने प्रथमोद्देशके तृतीय-चतुर्थसूत्रे चोक्तम्--
'पुरओ जुगमायाए पेहमाणो महिंचरे।
वज्जितो बीयहरियाइं पाणेय दगमट्टियं ॥१॥
ओवायं विसमं खाणुं विज्जलं परिवज्जए।
संकमेण न गच्छिज्जा विज्जमाणे परक्कमे ॥२॥ इति

'चारित्रगुण की विशुद्धि के लिए अर्हन्त भगवान्‌ने साधु के लिए तीन गुप्तियों का प्रतिपादन किया है, किन्तु जब किसी प्रकार की प्रवृत्ति करनी हो तब उसके लिए पांच समितियों का कथन किया है।१।

दशवैकालिकसूत्र पंचम अध्ययन के प्रथम उद्देशक की गाथा तीसरी और चौथी में कहा है--

'सामने चार हाथ-युगपरिमित-भूमि का निरीक्षण करता हुआ और बीज तथा हरितकाय की रक्षा करता हुआ तथा द्वीन्द्रिय आदि प्राणियों को, सचित्त जल एवं मृत्तिका को बचाता हुआ चले।१॥

'गडहा उबडखाबड, ठूंठ और कीचड से बचे। दूसरा मार्ग हो तो संक्रम-मार्ग से गमन न करे अर्थात् ऐसे मार्ग से न जावे जिसे पार करने के लिए पत्थर, इंट, या लक्कड आदि रक्खा हो और उस पर पांव रखकर गमन करना पडे ॥२॥

ચારિત્રગુણની વિશુદ્ધિ કાજે અર્હન્ત ભગવાને સાધુ માટે ત્રણ ગુપ્તિઓનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. પરંતુ જ્યારે કોઈ પ્રકારની પ્રવૃત્તિ કરવી હોય ત્યારે તેના માટે પાંચ સમિતિઓ કહેવામાં આવી છે ॥૧॥

દશવૈકાલિક સૂત્રના પાંચમા અધ્યયનના પ્રથમ ઉદ્દેશકની ગાથા ત્રીજી અને ચોથીમાં કહ્યું છે —

'સામે ચાર હાથ-યુગપરિમિત-ભૂમિનું નિરીક્ષણ કરતો થકો, અને બીજ તથા લીલોતરીની રક્ષા કરતો થકો તથા દ્વીન્દ્રિય આદિ પ્રાણિઓની, સચેત પાણી તથા સચેત માટીનું રક્ષણ કરતો કરતો ચાલે' ॥૧॥

'ખાડો, ખાડા ટેકરા, અને કાદવથી બચે. બીજો માર્ગ હોય તો સાંકડા માર્ગથી ગમન ન કરે અર્થાત એવા માર્ગથી ન જાય કે જેને પાર કરવા માટે પથ્થર, ઇંટ અથવા લાકડા વગેરે રાખવામાં આવ્યા હોય અને તેના ઉપર પગ મુકીને ચાલવું પડે ॥૨॥

'पुरतो युगमात्रया प्रेक्षमाणो महीश्चरेत्-।
वर्जयन् बीजहरितानि प्राणिन श्चोदक-मृत्तिकाम्-॥१॥
अवपातं विषमं स्थाणुं विजलं (सकर्दमं-) परिवर्जयेत्।
'संक्रमेण-(अस्थिरेण) न गच्छेद् विद्यमाने पराक्रमे-(स्थिरे-) ॥२॥

इति। पुनरपि दशवैकालिके सप्तमाध्ययने द्वितीयोद्देशके द्वितीयसूत्रे चोक्तम्-

'जा च सच्चा अवत्तव्वा-सच्चा मोसाय जा मुसा।
जा य बुद्धेहिं नाइण्णा-न तं भासिज्ज पण्णवं-॥१॥
या च सत्याऽवक्तव्या सत्या मृषा च या मृषा।
या च बुद्धैरनाचीर्णा न तां भाषेत प्रज्ञावान् ॥१॥ इति,
'ईर्यासमितिस्वरूपं खल्वन्यत्रापि प्रोक्तम्-
'उपयोगोद्द्योतालम्बनमार्गविशुद्धिभिर्यते श्चरतः।
सूत्रोदितेन विधिना भवतीर्या समितिरनवद्या। १॥
इति, त्यक्ताऽनृतादिदोषं सत्यमसत्यानृतं च निरवद्यम्।
सूत्रानुयायिवदतो भाषासमिति र्भवति साधोः ॥२॥ इति,

दशवैकालिकसूत्र में ही सातवें अध्ययन के दूसरे उद्देशक के दूसरे सूत्र में कहा है—

बुद्धिमान् साधु ऐसी भाषा का प्रयोग न करे जो सत्य होने पर भी बोलने योग्य न हो, जो सत्यामृषा (मिश्र) हो, जो मिथ्या हो और ज्ञानी जनों ने जिसका प्रयोग न किया हो ॥१॥

अन्यत्र भी ईर्यासमिति का स्वरूप कहा गया है—जो मुनि प्रकाश युक्त मार्ग में, उपयोगपूर्वक, शास्त्रोक्त विधि से चलता है उसके ईर्यासमिति होती है ॥१॥

भाषासमिति के विषय में कहा है—अनृत आदि दोषों से बच

દશવૈકાલિક સૂત્રમાં સાતમાં અધ્યયનના બીજા ઉદ્દેશકના બીજા સૂત્રમાં કહ્યું છે—

'બુદ્ધિમાન સાધુ એવી ભાષાનો પ્રયોગ ન કરે જે સત્ય હોવા છતાં પણ બોલવા યોગ્ય ન હોય જે સત્યાસત્ય (મિશ્ર) હોય જે મિથ્યા હોય તેમ-જ જ્ઞાનીપુરૂષોએ જેનો પ્રયોગ ન કર્યો હોય ।.૧॥

અન્યત્ર પણ ઈર્યાસમિતિનું સ્વરૂપ કહેવામાં આવ્યું છે—જે મુનિ પ્રકાશ યુક્ત રસ્તામાં, ઉપયોગપૂર્વક, શાસ્ત્રોકત વિધિથી ગમન કરે છે તેની ઈર્યા સમિતિ હોય છે ।।૧॥

ભાષા સમિતિના વિષયમાં કહ્યું છે—'અનૃત આદિ દોષોથી બચીને

एवञ्चाऽऽवश्यकार्थमेव संयमाय सप्तदशविधाय सर्वतो युगमात्रनिरीक्षाऽऽयुक्तस्य शनैः शनैः स्थापितपदागति रीर्यासमितिः। हितमिताऽसन्दिग्धाऽनवद्याऽर्थनियतभाषणं भाषासमितिः। अन्न-पान-रजोहरणो-पधि-वस्त्र-पात्रादीनां धर्मसाधनानां शरयायाञ्चो-द्गमोत्पादनैषणा दोषवर्जन मेषणासमितिरिति। उक्तञ्च-

'उत्पादनो-द्गमैषण-धूमाऽङ्गार-प्रमाण-कारणतः।
संयोजनाच्च पिण्डं शोधयता मेषणासमिति-॥१॥ इति।

रजोहरणपात्रचीवरादीनां-पीठफलकादीनाञ्चाऽऽवश्यकार्थम् उदयकाले विलोक्य, प्रमृज्य च ग्रहण-स्थापनरूपाऽऽदाननिक्षेपणासमिति रुच्यते उक्तञ्च-

---

कर निरवद्य एवं आगमानुकूल सत्य तथा असत्यामृषा (व्यवहार) भाषा बोलने वाले साधु की भाषासमिति होती है ॥२॥

इस प्रकार आवश्यक कार्य के लिए, सत्तरह प्रकार के संयम के लिए सामने चार हाथ प्रमाण भूमि का निरीक्षण करते हुए उपयोग पूर्वक धीरे-धीरे गमन करना ईर्यासमिति है। हित, मित, असंदिग्ध अनवद्य और नियत अर्थवाली भाषा का प्रयोग करना भाषासमिति है। अन्न, पानी, रजोहरण आदि उपधि, वस्त्र, पात्र आदि धर्मोपकरणों में उद्गम, उत्पादन एवं एषणा के दोषों से बचना एषणासमिति है। कहा भी है-'जो मुनि उत्पादना, उद्गम, एषणा, धूम, अंगार, प्रमाण कारण, संयोजना आदि दोषों से विशुद्ध पिण्ड ग्रहण करता है, वह एषणा समिति से सम्पन्न होता है।१॥

रजोहरण, पात्र, वस्त्र, पीढ़ा, पाटा आदि को अवश्यक प्रयोजन के लिए उदयकाल में अवलोकन करके एवं प्रमार्जन करके ग्रहण करना

નિરવદ્ય તથા આગમ-અનુકૂળ સત્ય તથા અસત્ય મૃષા (વ્યવહાર) ભાષા બોલનારા સાધુની ભાષા સમિતિ છે ॥૨॥

આવી રીતે આવશ્યક કર્મને માટે, સત્તર પ્રકારના સંયમ માટે સામેની ચાર હાથ પ્રમાણ ભૂમિનું નિરીક્ષણ કરતા થકા, ઉપયોગ પૂર્વક ધીમે-ધીમે ગમન કરવું ઇર્યાસમિતિ છે, હિત, મિત, અસંદિગ્ધ, અનવદ્ય અને નિયત અર્થવાળી ભાષાનો પ્રયોગ કરવો ભાષાસમિતિ છે. અન્નપાણી રજોહરણ આદિ ઉપધિ, વસ્ત્ર, પાત્ર આદિ ધર્મોપકરણોમાં તથા ઉપાશ્રયમાં ઉદ્ગમ ઉત્પાદના તથા એષણાના દોષોથી બચવું એષણાસમિતિ છે કહ્યું પણ છે-'જે મુનિ ઉત્પાદના, ઉદ્ગમ, એષણાધૂમ, અંગાર પ્રમાણ કારણ સંયોજના આદિ દોષોથી 'વિશુદ્ધ પિણ્ડ' ગ્રહણ કરે છે તે એષણાસમિતિની સમ્પન્ન હોય છે.

રજોહરણ, પાત્ર, વસ્ત્ર પીઠ પાટ વગેરેને આવશ્યક પ્રયોજન માટે ઉદયકાળમાં અવલોકન કરીને અને પ્રમાર્જન કરીને લે તથા મુકે આદાન

'न्यासाधिकरण दोषान्-परिहृत्य दयापरस्य निक्षिपतः।
'न्यासे समिति स्यादाने च-यथैवादददानस्य-॥१॥ इति,

एवं-स्थण्डिले त्रसस्थावरप्राणिरहिते विलोक्य प्रमृज्य च मूत्रपुरीषादीनां परिष्ठापनं-परिष्ठापनिकासमिति रुच्यते। तथा चोक्तम्—

'न्यासादानसमित्या व्युत्सर्गे चापि वर्णिता समितिः
सूत्रोक्तेन च विधिना व्युत्सृजतोऽर्थं प्रतिष्ठाप्यम् ॥१॥
'एवं साधो र्नित्यं-यतमानस्याऽप्रमत्तयोगस्य।
मिथ्यात्वा विरति-प्रत्ययं निरुद्धं भवति कर्म-॥२॥ इति।

या रखना आदाननिक्षेपणा समिति है। कहा भी है-जो साधु धरने-उठाने सम्बन्धी दोषों का परिहार करके, दयापरायण होकर अपने उपकरणों को धरता या उठाता है, वह आदाननिक्षेपण समिति से सम्पन्न कहलाता है ॥१॥

इसी प्रकार त्रस और स्थावर जीवों से रहित भूमि का प्रतिलेखन और प्रमार्जन करके मलमूत्र आदि का त्याग करना परिष्ठापनिका समिति है। कहा भी है—

रखने उठाने में तथा मल-मूत्र आदि का त्याग करने में भी समिति-यतनापूर्वक प्रवृत्ति का उपदेश किया गया है। परिष्ठापनीय पदार्थ को जो शास्त्रोक्त विधि से परठता है, वह इस समिति से युक्त कहलाता है ॥१॥

इस प्रकार यतना पूर्वक प्रवृत्ति करने वाले और प्रमादयोग से रहित साधु के मिथ्यात्व और अविरति के निमित्त से आने वाले कर्मों का निरोध हो जाता है ॥२॥

નિક્ષેપણસમિતિ છે. કહ્યું પણ છે-'જે સાધુ મુકવા ઉપાડવા સંબંધી દોષોનો ત્યાગ કરીને, દયાપરાયણ થઈને પોતાના ઉપકરણો મુકે અથવા ઉપાડે, તે આદાન નિક્ષેપણસમિતિથી સમ્પન્ન કહેવાય છે ॥૧॥

એવી જ રીતે ત્રસ અને સ્થાવર જીવો વિહોણી જમીનનું પડિલેહન તેમજ પ્રમાર્જન કરીને વડીનીતિ-લઘુનીતિ વગેરેનો ત્યાગ કરવો (પરઠવવા) પરિષ્ઠાપનિકાસમિતિ છે. કહ્યું પણ છે-

લેવા-મુકવામાં મળ-મૂત્ર વગેરેનો ત્યાગ કરવામાં પણ સમિતિ-યતના પૂર્વક પ્રવૃત્તિ-નો ઉપદેશ આપવામાં આવ્યા છે. પરિષ્ઠાપનીય પદાર્થને જે શાસ્ત્રોકત વિધિથી પરઠે છે તે આ સમિતિથી સમ્પન્ન કહેવાય છે. ॥૧॥

આ મુજબ જતનાપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરનારા અને પ્રમાદયોગ રહિત સાધુના મિથ્યાત્વ અને અવિરતિના નિમિત્તથી આવનારા કર્મોનો નિરોધ થઈ જાય છે,

उक्तञ्च समवायाङ्गे ५-समवाये-'पंच समिईओ पण्णत्ताओ' तं जहा ईरिया समिई, भासासमिई, एसणासमिई, आयाणभंडामत्तनिक्खेवणासमिई, उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्लपरिट्ठावणिया समिई' इति पञ्च समितयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-ईर्यासमितिः, भाषासमितिः, एषणासमितिः, आदानभाण्डाऽमत्र निक्षेपणासमितिः, उच्चारप्रस्रवणश्लेष्मसिंघाणजल्लपरिष्ठापनिकासमितिः इति ।३॥

मूलम्—असुहजोगनिग्गहेणं अत्तस्स गोवणं गुत्ती ॥४॥

छाया--अशुभयोगनिग्रहेणाऽऽत्मनो गोपनं गुप्तिः-' ।४।

तत्त्वार्थदीपिका--पूर्वसूत्रे-कर्मास्रवनिरोधलक्षणस्य संवरस्य कारणभूतेषु पञ्चऽप्रथमः समितिरूपः उपायः प्ररूपितः, सम्प्रति-तस्यैव द्वितीय कारणभूताया गुप्तेः स्वरूपं प्ररूपयितुमाह-'असुभजोगनिग्गहेणं अत्तस्स गोवणं गुत्ती'

समवायांगसूत्र के पांचवें समवाय में कहा है-समितियां पांच कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं-ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति आदानभाण्डामत्र निक्षेपणासमिति, उच्चारप्रस्रवण श्लेष्मसिंघाण जल्लपरिष्ठापनिका समिति । ३॥

'असुहजोगनिग्गहेणं' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—अशुभ योग का निरोध करके आत्मा का गोपन करना गुप्ति कहलाता है ॥४।

तत्त्वार्थदीपिका-- पूर्व सूत्र में कर्मों के आस्रव निरोध लक्षण वाले संवर के पांच कारणों में से प्रथम कारण समिति का प्ररूपण किया गया अब दूसरे कारण गुप्ति के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं—

अशुभ योग का अर्थात् मन वचन और काय के अप्रशस्त

સમવાયાંગસૂત્રના પાંચમાં સમવાયમાં કહ્યું છે-સમિતિઓ પાંચ કહેવામાં આવી છે તે આ મુજબ આદાન ભાણ્ડામત્ર નિક્ષેપણાસમિતિ ઉચ્ચાર પ્રસ્રવણ શ્લેષ્મશિંઘાણજલ્લપરિષ્ઠાપના સમિતિ ॥૩॥

'असुहजोगनिग्गहेण' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—અશુભ યોગનો નિરોધ કરીને આત્માનું ગોપન કરવું (રક્ષણ) ગુપ્તિ કહેવાય છે.

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં કર્મોના આસ્રવના નિરોધ લક્ષણવાળા સંવરના પાંચ કારણોથી પ્રથમ કારણ સમિતિની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી હવે બીજા કારણ ગુપ્તિના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ-

અશુભયોગનો અર્થાત્ મન વચન અને કાયના અપ્રશસ્ત વ્યાપારના

इति, अशुभयोगस्य कायिक१-वाचिक-२ मानसिक ३ कर्मलक्षणस्य योगनिग्रहो निरोधो-निवृत्तिः अशुभयोगनिग्रहः विषयसुखभोगाऽभिलापार्थं प्रवृत्तिनिषेधः, तेनाऽऽत्मनो गोपनं संरक्षणं गुप्तिः, अशुभ मानसिकादि योगनिग्रहे सति-आर्त्त-रौद्रध्यानलक्षणसंक्लेशस्य प्रादुर्भावो न भवतीति भावः, तस्मिश्च-तथाविध संक्लेश प्रादुर्भावाभावे सति कर्मास्रवद्वारसंवरणं भवति, तेनाऽऽत्मनो गोपनं संरक्षणं गुप्ति रित्युच्यते। सा च गुप्ति स्त्रिधा मनोगुप्तिः-वचनगुप्तिः कायगुप्ति श्चेति तत्र-विषयसुखाभिलापार्थप्रवृत्तिनिषेधाय सम्यगिति विशेषणं बोध्यम्। एवञ्च-वचोगुप्ति श्चतुर्विधा सत्या-१ मृषा-२ सत्यामृषा ३ असत्यामृषा-४ चेति, तत्र सत्पदार्थ कथनरूपवचोयोग विषया सत्या=वचोगुप्तिः १ तद् विपरीत-

व्यापार के निरोध से आत्मा को गोपन रक्षण करना गुप्ति कहलाता है। तात्पर्य यह है कि मन आदि के व्यापार का निग्रह करने से आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान रूप संक्लेश के उत्पन्न होने से कर्मों के आस्रव का द्वार रुक जाता है, इस कारण अशुभ योग से आत्मा का गोपन करना गुप्ति है और वह संवर का कारण है।

गुप्ति तीन प्रकार की है-मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति। विषय सुख की अभिलाषा से मनोयोग आदि के व्यापार को रोकना गुप्ति समझी जाय, अतएव यहां 'सम्यक्' विशेषण और समझ लेना चाहिए।

वचनगुप्ति चार प्रकार की है-(१) सत्या (२) मृषा (३) सत्यामृषा और (४) असत्यामृषा। सत्पदार्थ का कथन रूप वचनों का निग्रह करना सत्यवचन गुप्ति है। उससे विपरीत वचनयोग विषयक मृषा

નિરોધથી આત્માનું ગોપન (રક્ષણ) કરવું ગુપ્તિ કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે મન વગેરેના વ્યાપારનો નિગ્રહ કરવાથી આર્ત્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાન રૂપ સંક્લેશ ઉત્પન્ન થતો નથી. સંક્લેશના ઉત્પન્ન નહીં થવાથી કર્મોના આસ્રવનું આગમન રોકાઈ જાય છે. આથી અશુભયોગથી આત્માનું ગોપન કરવું-રક્ષણ કરવું-ગુપ્તિ છે અને તે સંવરનું કારણ છે.

ગુપ્તિ ત્રણ પ્રકારની છે-મનોગુપ્તિ, વચનગુપ્તિ અને કાયગુપ્તિ વિષય સુખની અભિલાષાથી મનોયોગ આદિના વ્યાપારને રોકવાને ગુપ્તિ સમજવી જોઈએ આથી અહીં-સમ્યક્ વિશેષણ સમજવું જોઈએ.

વચનગુપ્તિ ચાર પ્રકારની છે-(૧) સત્યા (૨) મૃષા (૩) સત્યામૃષા અને (૪) અસત્યામૃષા સત્યપદાર્થના કથનરૂપ વચનોનો નિગ્રહ કરવો સત્યવચન ગુપ્તિ છે એનાથી વિપરીત વચનયોગ વિષયક મૃષા વચનગુપ્તિ છે. સત્યાસત્ય

वचोयोग विषया मृषा २ उभयात्मक वचोयोगविषया सत्यामृषा ३, उभयस्वभाव-रहित वचोव्यापाररूपा वचोयोगविषयाऽसत्यामृषा वचोगुप्तिः ४ एवं-मनोगुप्तिरपि, सत्या-मृषा सत्यामृषा असत्यामृषा चिन्तनरूपभेदेन चतुर्विधा। कायगुप्तिरपि सत्यादिभेदेन चतुर्विधा कायव्यापाररूप काययोगविषया-सत्या, मृषा, सत्यामृषा, ऽसत्या मृषा भावेन कायव्यापारः कायगुप्तिः इयमनेकधा-स्थान निषदन त्वग्वर्तनो ल्लंघनप्रलंघनेन्द्रिययोजनसंरम्भसमारम्भप्रवृत्तिनिवृत्तिभेदात्। एतान् भेदानाश्रित्याऽऽत्मनः सम्यक्तया संरक्षण रूपा त्रिविधा गुप्ति रुच्यते। तथा चोक्तम्—

वचन गुप्ति है। सत्यासत्य वचनों का निरोध सत्यामृषा वचनगुप्ति है और जिन्हें सत्य भी न कह सकें और असत्य भी न कह सकें ऐसे व्यावहारिक वचनयोग का निरोध होना असत्यामृषा वचनगुप्ति है।

मनोगुप्ति के भी चार भेद हैं-सत्या, मृषा, सत्यामृषा और असत्यामृषा। वचनगुप्ति में वचन के प्रयोग का निषेध होता है और मनोगुप्ति में सत्य आदि के चिन्तन का।

कायगुप्ति भी पूर्वोक्त प्रकार से=सत्य आदि के भेद से चार प्रकार की है अथवा इसके अनेक भेद हैं, खडा होना, बैठना, लेटना, लांघना, कूदना, इन्द्रियप्रयोजन, संरम्भ समारम्भ सम्बन्धी प्रवृत्तिको रोकना, यह सब कायगुप्ति है।

इन सब भेदों की अपेक्षा से आत्माका सम्यक् प्रकार से संरक्षण करना तीन प्रकार की गुप्ति है। कहा भी है-'समस्त कल्पनाओं के

વચનોનો નિરોધ સત્યામૃષા વચનગુપ્તિ છે અને જેને સત્ય પણ ન કહી શકાય અને અસત્ય પણ ન કહી શકાય એવા વ્યવહારિક વચનયોગનો નિરોધ થવો અસત્યામૃષા વચન ગુપ્તિ છે.

મનોગુપ્તિના પણ ચાર ભેદ છે-સત્યા, મૃષા, સત્યામૃષા અને અસત્યા મૃષા વચનગુપ્તિમાં વચનના પ્રયોગનો નિષેધ હોય છે અને મનોગુપ્તિમાં સત્ય આદિના ચિન્તનનો.

કાયગુપ્તિ પણ પૂર્વોકત પ્રકારથી-સત્ય આદિના ભેદથી ચાર પ્રકારની છે અથવા એના અનેક ભેદ છે. ઉભા થવું બેસવું સુવું, ભૂખ્યા રહેવું, કૂદવું ઈન્દ્રિયયોજન, સંરંભ, સમારંભ સંબંધી પ્રવૃત્તિઓને રોકવી આ બધું 'કાયગુપ્તિ' છે.

આ તમામ ભેદોની અપેક્ષાથી આત્માનું સમ્યક્ પ્રકારથી સંરક્ષણ કરવું

'विमुक्तकल्पनाजालं समत्वे सुप्रतिष्ठितम् ।
आत्मारामं मनस्तज्ज्ञै र्मनो गुप्ति रुदाहृता ॥१॥
उपसर्गप्रसङ्गेपि कायोत्सर्गजुषो मुनेः ।
स्थिरीभावः शरीरस्य कायगुप्ति र्निगद्यते ॥२॥
शयनाऽऽसननिक्षेपाऽऽदानसंक्रमणेषु च ।
स्थानेषु चेष्टानियमः कायगुप्तिस्तु सा परा ॥३॥

अकुशल मनो वाक्-कायव्यापारान् निरुध्य कुशलानां मनोवाक् काय व्यापाराणा मुदीरणं मनोवाक्कायगुप्तिरित्यर्थः ॥४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावद् आस्रवनिरोधलक्षणसंवरस्य समित्यादिषु पञ्चसु हेतुषु प्रथमः समितिरूपो हेतुः प्रतिपादितः, सम्प्रति संवरस्य द्वितीयो-

समूह से रहित, समभाव में प्रतिष्ठित और आत्मा में रमण करने वाले मन को मनोगुप्ति कहा है ॥१॥

'उपसर्ग उपस्थित होने पर भी मुनि कायोत्सर्ग से युक्त होकर अपने शरीर को स्थिर रखता है, यह उसकी कायगुप्ति है ॥२॥

'शयन' आसन, रखने, उठाने चलने-फिरने या स्थिर रहने में शारीरिक चेष्टाओं का नियमन करना कायगुप्ति है ॥३॥

आशय यह है कि अकुशल (अशुभ) मन, वचन और काय के व्यापारों को रोक कर मन वचन काय के कुशल व्यापार करना गुप्ति कहलाता हैं ॥४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--संवर के समिति आदि जो पांच कारण बतलाए गए हैं, उन में से समिति के स्वरूप का प्रतिपादन किया जा चुका,

ત્રણ પ્રકારની ગુપ્તિ છે. કહ્યું પણ છે-'સમસ્ત કલ્પનાઓના સમૂહથી રહિત સમભાવમાં પ્રતિષ્ઠિત અને આત્મામાં રમણ કરવાવાળા મનને મનોગુપ્તિ કહેલ છે ॥૧॥

ઉપસર્ગ આવી પડયા છતાં પણ મુનિ કાયોત્સર્ગથી યુકત થઈને પોતાના શરીરને સ્થિર રાખે છે, આ તેની કાયગુપ્તિ છે. ॥૨॥

શયન, આસન, લેવા-મુકવામાં, ચાલવા ફરવા અથવા અડગ રહેવા માટે શારીરિક ચેષ્ટાઓનું નિયમન કરવું કાયગુપ્તિ છે ॥૩॥

કહેવાનું એ છે કે અકુશળ (અશુભ) મન, વચન અને કાયાના વ્યાપારોને, રોકીને મનવચન કાયાનો કુશળ વ્યાપાર કરવો ગુપ્તિ કહેવાય છે. ॥૪॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—સંવરના સમિતિ આદિ જે પાંચ કારણ બતાવવામાં આવ્યા છે, તેમાંથી સમિતિના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવી

पायभूतां गुप्तिं प्ररूपयितुमाह-'असुहजोगनिग्गहेणं अप्पस्स गोवणं गुत्ती' इति। अशुभयोगनिग्रहोऽशुभ कायादियोगनिरोधः, तेनाऽऽत्मनो गोपनं-संरक्षणं गुप्तिः, भवार्णवाद् आत्मसंरक्षणरूपोच्यते। मनोव्यापारो वाग्व्यापारः-कायव्यापारश्च योगा स्तेषां खल्वशुभानां मनो वाक्काययोगानां निग्रहो निर्व्यापारता गुप्तिरित्युच्यते, न तु प्रत्यग्रापराधस्यापि स्तेनस्येव गाढबन्धनबद्धस्याऽत्यन्तपीडितचित्तप्रदेशस्य पराधीनात्मनोऽनिच्छतो योगनिग्रह इष्यते। एवञ्च-सावद्य सङ्कल्पादिभेदभिन्नं मनोयोगम् १ सत्यामृषादि भेदभिन्नं वाग्योगम्-२ औदारिक-वैक्रियाऽऽहारक-तैजसकार्मणभेदभिन्नं काययोगं-३ च प्रशम-संवेग-निर्वेदाऽऽस्तिक्याऽनुकम्पाऽभिव्यक्तिलक्षणसम्यग्दर्शन पूर्वकं

अब दूसरे कारण गुप्ति का प्रतिपादन करते हैं—

अशुभ काययोग आदि से आत्मा की रक्षा करना गुप्ति है। मन, वचन और काय का व्यापार योग कहलाता है। इन मन, वचन और काय के अशुभ व्यापार को रोक देना गुप्ति है। तीव्र अपराध करनेवाले, गाढे बन्धनों से बद्ध, अत्यन्त पीडित चित्तवाले, पराधीन चोर के योगों का भी निग्रह किया जाता है, किन्तु उसे गुप्ति नहीं समझना चाहिए। कर्मों की निर्जरा के उद्देश्य से स्वेच्छा पूर्वक योगों का जो निग्रह किया जाता है, वही सम्यक् गुप्ति कहलाती है। इस प्रकार सावद्य संकल्प आदि के भेदों वाले मनोयोग को, सत्यामृषा आदि भेदों वाले वचनयोग को, औदारिक काययोग, वैक्रियकाययोग आहारककाययोग, कार्मणकाययोग आदि भेदों वाले काययोग को प्रशम, संवेग, निर्वेद, आस्तिक्य और अनुकम्पा की अभिव्यक्ति लक्षण

હવે બીજા કારણ ગુપ્તિનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ-

અશુભ કાયયોગ આદિથી આત્માની રક્ષા કરવી ગુપ્તિ છે. મન, વચન અને કાયાનો વ્યાપાર યોગ કહેવાય છે. આ મન, વચન અને કાયાના અશુભ વ્યાપારોને રોકવા ગુપ્તિ છે ભયંકર અપરાધ કરનારાઓ, ગાઢા બન્ધનોથી બંધાયેલા અત્યન્તપીડિત ચિત્તવાળો, પરાધીન ચોરના યોગોનો પણ નિગ્રહ કરી શકાય છે પરન્તુ તેને ગુપ્તિ સમજવાની ભૂલ કરવી ન જોઈએ. કર્મોની નિર્જરાના ઉદ્દેશથી સ્વેચ્છાપૂર્વક યોગોનો જે નિગ્રહ કરવામાં આવે છે તેજ સમ્યક્ગુપ્તિ કહેવાય છે. આ રીતે સાવદ્ય સંકલ્પ વગેરેના ભેદોવાળા મનોયોગને, સત્યા, મૃષા આદિ ભેદોવાળા વચનયોગને ઔદારિકકાયયોગ, વૈક્રિય કાયયોગ, આહારક કાયયોગ, કાર્મણકાયયોગ આદિ ભેદોવાળા કાયયોગને પ્રશમ, સંવેગ,

यथावदवगम्य भाषतः खलु' एवमेते योगाः कर्मबन्धाय परिणता सन्ति, अतः कर्मनिर्जरायै तेषां योगानां कर्मबन्धाय परिणतानां त्रिविधानां मूलभेदानामुत्तर-भेदानाञ्च योगानां निग्रहः स्ववशे व्यवस्थापनं स्वाच्छन्द्यप्रतिषेधेन मोक्षमार्गानुकूल परिणति गुप्तिः, अत्यन्त भयजनकसंसार कर्मबन्धन रूप घातक शत्रुतः-आत्मनः संरक्षण मितिभावः। सा च गुप्तिस्त्रिधा भवति मनोगुप्तिः-वाग्गुप्तिः-कायगुप्तिश्च, तत्र मनोगुप्तिस्तावत् मनोगुप्तिः, उन्मार्गे विचारणाद् आत्मनः संरक्षणम् संरक्षितं खलु मनो नात्मानमपहन्ति। एवं- वचोगुप्तिः कायगुप्तिरपि तथा च-मनोगुप्तिः सावद्यस्य सङ्कल्पस्य गर्हिताऽऽर्त- रौद्रध्यान

वाले सम्यग्दर्शन पूर्वक समीचीन रूप से जान कर और यह समझ करके कि इन योगों का परिणमन कर्मबंध का कारण है, अतएव कर्मों की निर्जरा के लिए मूल एवं उत्तर भेदों वाले इन योगों का निग्रह करना ही श्रेयस्कर है, इनकी प्रवृत्ति कर्मबन्ध का कारण है, इनको स्वाधीन करना, इनकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति न होने देना और उन्हें मोक्षमार्ग की ओर प्रवर्त्ताना गुप्ति है। तात्पर्य यह है कि अत्यन्त भय उत्पन्न करने वाले, संसार एवं कर्मबन्धन रूप घातक शत्रु से आत्मा का संरक्षण करना गुप्ति कहलाता है।

गुप्ति तीन प्रकार की है-मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति। मनका गोपन करना अर्थात् उसे उन्मार्ग में जाने से रोककर आत्मा की रक्षा करना मनोगुप्ति है। गोपन किया हुआ मन आत्मा का हनन नहीं करता। वचनगुप्ति और कायगुप्ति भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

નિર્વેદ, આસ્તિકાય અને અનુકમ્પાની અભિવ્યક્તિ લક્ષણવાળા સમ્યક્દર્શન પૂર્વક સમીચીન રૂપથી જાણીને અને એવું સમજીને કે આ યોગોનું પરિણમન કર્મબન્ધનું કારણ છે, આથી કર્મોની નિર્જરા કરવા માટે મૂળ તથા ઉત્તર ભેદોવાળા આ યોગનો નિગ્રહ કરવો એ જ શ્રેયસ્કર છે, એની પ્રવૃત્તિ કર્મબન્ધનું કારણ છે, એમને સ્વાધીન કરવા એમની સ્વચ્છંદ પ્રવૃત્તિ ન થવા દેવી અને એમને મોક્ષમાર્ગની દિશા તરફ વાળવા એ ગુપ્તિ છે. તાત્પર્ય એ છે કે અત્યન્ત ભય ઉત્પન્ન કરવાવાળા સંસાર તેમજ કર્મબન્ધ રૂપ ઘાતક શત્રુથી આત્માનું રક્ષણ કરવું ગુપ્તિ કહેવાય છે.

ગુપ્તિ ત્રણ પ્રકારની છે-મનોગુપ્તિ, વચનગુપ્તિ, અને કાયગુપ્તિ. મનનું ગોપન કરવું અર્થાત્ તેને ઉન્માર્ગ તરફ જતું રોકીને આત્માની રક્ષા કરવી મનોગુપ્તિ છે. ગોપવામાં આવેલું મન આત્માનો ઘાત કરતું નથી. વચનગુપ્તિ અને કાયગુપ્તિ પણ આ રીતે જ સમજવાના છે

रूपस्य, पापयुक्तकर्मपरिचिन्तनस्य वा निरोधः करणे प्रवृत्तिवर्जनं, सरागसंयमादिलक्षणकुशलसंकल्पाऽनुष्ठानं वा मनोगुप्तिः, येन वा संकल्पेन धर्मोऽनुबध्यते याऽसौ चाऽध्यवसायः कर्मोच्छेदाय भवति। तथाविध कुशलसंकल्पो वा मनोगुप्तिर्भवति। यद्वा—सरागसंयमादौ कुशलेऽपि न प्रवृत्तिः नापि—अकुशले संसार हेतौ प्रवृत्तिर्वा मनोगुप्तिः, योगनिरोधावस्थायां कुशलाकुशलसंकल्पनिरोधात् तदवस्थायां ध्यानसम्भवेन सकलकर्मक्षयार्थ एव हि—आत्मनः परिणामो भवतीतिभावः। एवं—वाग्गुप्ति खलु याचना पृच्छा प्रश्न व्याक्रियादिषु वाङ्नियमन-

---

सावद्य अर्थात् पापमय संकल्प का अर्थात् निन्दित आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान का अथवा पापयुक्त कर्म के चिन्तन का निरोध कर देना ऐसा करने में होनेवाली प्रवृत्ति को त्याग देना अथवा सराग संयम आदि रूप शुभ सङ्कल्प का अनुष्ठान करना मनोगुप्ति है। जिस सङ्कल्प से धर्म का अनुबन्ध होता है और जो अध्यवसाय कर्मों के उच्छेद का कारण होता है, वैसा शुभ सङ्कल्प करना मनोगुप्ति है। अथवा न तो सराग संयम आदि शुभ अनुष्ठान में प्रवृत्ति करना और न संसार के कारणभूत अशुभ कर्म में प्रवृत्ति करना मनोगुप्ति है क्योंकि जब योग का निरोध हो जाता है उस अवस्था में न शुभ सङ्कल्प रहता है और न अशुभ सङ्कल्प ही शेष रहता है। उस अवस्था में आत्मा का जो परिणाम होता है, वह सकल कर्मों के क्षय के लिए ही होता है।

याचना, पूछना और उत्तर देना आदि वाचनिक क्रियाओं में

સાવદ્ય અર્થાત્ પાપમય સંકલ્પનું અર્થાત્ નિન્દિત આર્ત્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાનનું અથવા પાપયુક્ત કર્મના ચિન્તનનો નિરોધ કરવો, આમ કરવા માટે થતી પ્રવૃત્તિઓનો ત્યાગ કરવો અથવા સરાગ સંયમ આદિ રૂપ શુભ સંકલ્પનું અનુષ્ઠાન કરવું મનોગુપ્તિ છે. જે સંકલ્પથી ધર્મનો અનુબંધ થાય છે અને જે અધ્યવસાય કર્મોના ઉચ્છેદનું કારણ હોય છે, એવો શુભ સંકલ્પ કરવો મનોગુપ્તિ છે. અથવા ન તો સરાગ સંયમ આદિ શુભ અનુષ્ઠાનમાં પ્રવૃત્તિ કરવી અથવા ન સંસારના કારણભૂત અશુભ કર્મમાં પ્રવૃત્તિ કરવી મનોગુપ્તિ છે. કારણ કે જ્યારે યોગનો નિરોધ થઇ જાય છે તે અવસ્થામાં નથી શુભ સંકલ્પ રહેતો અથવા ન તો અશુભ સંકલ્પ પણ બાકી રહે છે. એ અવસ્થામાં આત્માનું જે પરિણામ થાય છે, તે સકળ કર્મોના ક્ષય માટે જ થાય છે.

માગવું, પૂછવું અને જવાબ દેવો—વગેરે વાચનિક ક્રિયાઓમાં વચનનું

रूपा, मौनंवा-वाग्गुप्ति रुच्यते । तत्र-याचनं तावत् भोजनो-पधि-शय्यादीना मन्यतो गृहस्थादेः प्रार्थनम्, तस्मिन् विषये वाङ्नियमने सति सदोरकमुख वस्त्रिकाबद्धमुखभागस्य प्रवचनविहित वाक्यशुद्धिमनुसृत्य भाषणं कुर्वाणस्य वाग्गुप्तिर्भवति, एवं-मार्ग गमनादिविषयं प्रच्छनं कुर्वतः आगमविध्यनुसारिणो वाङ्नियमनेन वाग्गुप्तिः, एवं-'धर्ममुपदिशे' ति केनचित्-श्रावकेण पृष्टः सन् सम्यगुपयुक्तः आगमोक्तरीत्या व्याचक्षीत, अन्यद्वा सा सावद्यमनवद्यंवा पृष्टः सन् लोकागमाविरोधेन समाधाय व्याकुर्वीत, तथाविधः प्रच्छनादिविषयो वाग् नियमो वाग्गुप्ति रुच्यते । एवं-मौनेनाऽभाषण रूपे वचोगुप्ति र्भवति तथा चोक्तम्—

'अनृतादिनिवृत्तिर्वा मौनं वा भवति वाग्गुप्तिः' इति । मूलभेदत स्त्रिविधेष्वशुभेषु योगेषु निगृहीतव्येषु काययोगनिग्रहरूपा कायगुप्तिः खलु-

वचन का नियमन करना या सर्वथा मौन धारण कर लेना वचन-गुप्ति है । इनमें से याचना का अर्थ है-गृहस्थ आदि किसी दूसरे से भोजन, उपधि एवं उपाश्रय आदि की प्रार्थना-मांग-करना । उस विषय में वचन का नियमन होने पर मुख पर डोरा सहित मुखवस्त्रिका बांधने वाले एवं शास्त्रोक्त वचनशुद्धि का अनुसरण करके भाषण करने वाले साधु की वचनगुप्ति होती है । इसी प्रकार आगम की विधि का अनुसरण करने वाले एवं मार्गगमन संबंधी पृच्छा करने वाले पुरुष की वचन के नियमन से वचन गुप्ति होती है । मौन धारण करने से भी वचनगुप्ति होती है । कहा भी है-'असत्य आदि वचन का त्याग करना अथवा मौन धारण करना वचनगुप्ति है ।'

मूल भेदों की अपेक्षा तीनों प्रकार के अशुभ योग निग्रह करने

નિયમન કરવું અથવા સર્વથા મૌનવ્રત ધારણ કરી લેવું વચનગુપ્તિ છે. આમાંથી માગવાનો અર્થ છે-ગૃહસ્થ આદિ કોઇ બીજા પાસે ભોજન ઉપધિ તથા ઉપાશ્રય આદિની યાચના માંગણી કરવી કરવી તે વિષયમાં વચનનું નિયમન હોવાથી મુખ પર દોરા સહિત મુખવસ્રિકા બાંધવાવાળા અને શાસ્રોક્ત વચનશુદ્ધિનું અનુસરણ કરીને ભાષણ કરનારા સાધુની વચનગુપ્તિ હોય છે. આવી જ રીતે આગમની વિધિનુ અનુસરણ કરવાવાળા તથા માર્ગગમન સંબંધી પૃચ્છા કરનાવાળા પુરૂષની વચનના નિયમનથી વચન-ગુપ્તિ હોય છે. મૌન ધારણ કરવાથી પણ વચનગુપ્તિ થાય છે. કહ્યું પણ છે-'અસત્ય આદિ વચનનો ત્યાગ કરવો અથવા મૌન ધારણ કરવું વચનગુપ્તિ છે.

મૂળ ભેદોની અપેક્ષા ત્રણે પ્રકારના અશુભયોગ નિગ્રહ કરવાને યોગ્ય

शयनाऽऽसनादाननिक्षेप-स्थानसंचरणेषु विषयेषु कायकृत चेष्टारूपकायिक व्यापारस्य नियमनम्-'एवं कर्तव्यम् एवं न कर्तव्यम्' इत्येवं व्यवस्थारूपो बोध्यः । तथा चोक्तम्—

कायक्रिया निवृत्तिः कायोत्सर्गे शरीरगुप्तिः स्यात् ।
दोषेभ्यो वा हिंसा-दिभ्यो विरतिस्तयोर्गुप्तिः ॥ इति । उक्तञ्चो-त्तराध्ययने २४-अध्ययने षड्विंशति गाथायाम्-'गुत्ती नियत्तणे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो' इति, गुप्तिः नियन्त्रणे-उक्ता, अशुभस्थेषु सर्वशः इति ।४।

सूलम्—दसविहे समणधम्मे, खंति-मुत्ति-अज्जवं-मद्दव-लाघव-सच्च-संजम-तव-चियाय-बंभचेरवासभेया ॥५॥

छाया-'दशविधः श्रमणधर्मः, क्षान्ति-मुक्त्या-र्जव-मार्दव-लाघव-सत्य-संयम-तप-स्त्याग-ब्रह्मचर्यवासभेदात्-' ।५।

के योग्य हैं, उनमें से काययोग का निग्रह करना कायगुप्ति है अर्थात् शयन, आसन, ग्रहण, निक्षेपण, खडा होना, चलना-फिरना, इत्यादि शारीरिक चेष्टा रूप कायिक व्यापार का नियमन करना एवं 'ऐसा करना चाहिए और ऐसा न करना चाहिए, इस प्रकार की व्यवस्था कायगुप्ति है । कहा भी है-

'कयोत्सर्ग में शारीरिक क्रिया की निवृत्ति को अथवा हिंसा आदि दोषों से विरति को कायगुप्ति कहते हैं ।'

उत्तराध्ययनसूत्र के चौवीसवें अध्ययन की २६ वीं गाथा में कहा है-'अशुभ विषयों में पूर्ण रूपेण व्यापार को रोक देना गुप्ति हैं ॥४॥

'दसविहे समणधम्मे' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—यतिधर्म दस प्रकार का है-(१) क्षमा (२) मुक्ति (३)

છે તેમાંથી કાયયોગને નિગ્રહ કરવો કાયગુપ્તિ છે અર્થાત્ શયન, આસન, ગ્રહણ, નિક્ષેપણ, ઉભાથવું હલન-ચલન ઈત્યાદિ શારીરિક ચેષ્ટારૂપ કાયિક વ્યાપારનું નિયમન કરવુ અને 'આમ કરવું જોઈએ અને આમ ન કરવું જોઈએ' એ પ્રકારની વ્યવસ્થા કાયગુપ્તિ છે. કહ્યું પણ છે-

કાયોત્સર્ગમાં શારીરિક ક્રિયાની નિવૃત્તિને અથવા હિંસા આદિ દોષોથી વિરતિને કાયગુપ્તિ કહે છે.

ઉત્તરાધ્યાયન સૂત્રના ચોવીસમાં અધ્યયનની ૨૬મી ગાથામાં કહ્યું છે-'અશુભ વિષયોમાં પૂર્ણ રૂપથી વ્યાપારને રોકવો ગુપ્તિ છે. ॥૪॥

'દસવિહે સમણધમ્મે' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—યતિધર્મ દશ પ્રકારના છે-(ક્ષમા) (૨) મુકિત (૩) આર્જવ

तत्त्वार्थदीपिका-दशविधः खलु मूलोत्तरगुणयोगात् प्रकृष्टः श्रमणधर्मोऽनगारधर्मो वर्तते, क्षान्ति-मुक्त्या-र्जव-मार्दव-लाघव-सत्य-संयम-तप स्त्याग ब्रह्मचर्यवासभेदात्। तत्र-शरीरस्थिति निर्वाहायाऽऽहारादि याचनार्थं परगृहमुपगच्छतः श्रमणस्य दुष्टजनाऽऽक्रोश-प्रहसनाऽपमान-ताडनादि सत्त्वेऽपि तत्तत्सहनम्, कालुष्योत्पादाभावः क्षान्तिः व्यपदिश्यते १ ममत्वबुद्धिराहित्य-मुक्तिः, उपात्तेष्वपि शरीरादिषु संस्काराऽऽसक्तिनिरासाय 'ममेदम्' इत्येवं ममत्वबुद्धि निवृत्ति रूपा-ऽवियावत् २ मृदुस्वभावः कायादियोगस्याऽकुटिलता

आर्जव (४) मार्दव (५) लाघव (६) सत्य (७) संयम (८) तप (९) त्याग और (१०) ब्रह्मचर्य ॥५॥

तत्त्वार्थदीपिका—मूल-उत्तर गुणों के योग से श्रमणधर्म दस प्रकार का है-(१) क्षान्ति (२) मुक्ति (३) आर्जव (४) मार्दव (५) लाघव (६) सत्य (७) संयम (८) तप (९) त्याग और (१०) ब्रह्मचर्य। इनका स्वरूप निम्न प्रकार है-

(१) क्षमा-शरीरयात्रा का निर्वाह करने के लिए आहार आदि की याचना करने के लिए पराये घर जाने वाले साधु को दुष्ट जनों का आक्रोश (डाट-डपट), प्रहसन (उपहास), अपमान, ताडन आदि होने पर भी उसे सहन कर लेना और चित्त में कलुषता उत्पन्न न होने देना क्षमा धर्म है।

(२) मुक्ति-ममत्वभाव न हो मुक्ति है। अर्थात् प्राप्त अथवा गृहीत शरीर आदि के प्रति आसक्ति को दूर करने के लिए 'ममेदम्

---

(૪) માર્દવ (૫) લઘવ (૬) સત્ય (૭) સંયમ (૮) તપ (૯) ત્યાગ અને (૧૦) બ્રહ્મચર્ય. ॥૫॥

તત્વાર્થદીપિકા--મુળ-ઉત્તર ગુણોના યોગથી શ્રમણુધર્મ દશ પ્રકારનો છે-(૧) ક્ષાન્તિ (૨) મુક્તિ (૩) આર્જવ (૪) માર્દવ (૫) લાઘવ (૬) સત્ય (૭) સંયમ (૮) તપ (૯) ત્યાગ અને (૧૦) બ્રહ્મચર્ય એમનું સ્વરૂપ નીચે મુજબ છે (૧) ક્ષમા શરીર યાત્રાના નિર્વાહ માટે ભોજન વગેરેની યાચના કરવા માટે પારકા ઘરે જનારા સાધુને દુષ્ટ જનોનો આક્રોશ (ધાક-ધમકી) પ્રહસન, (મશ્કરી) અપમાન તાડન આદિ થવા છતાં પણ તેને સહન કરી લેવું અને ચિત્તમાં કલુષતા ઉત્પન્ન ન થવા દેવી ક્ષમાધર્મ છે.

(૨) મુક્તિ-મમત્વભાવ ન હોવો મુક્તિ છે. અર્થાત્ પ્રાપ્ત અથવા ગૃહીત શરીર આદિ તરફની આસક્તિને દૂર કરવાને માટે-મમેદમ્-આ મારૂં

सरलत्वमार्जवम् ३ जातिकुलादिमदाऽहङ्कारादभिमानाऽभावो मार्दवम् ४ अत्यन्तलोभान्निवृत्तिर्लाघवम् ५ सन्तः प्राणिनः, पदार्था वा-मुनयो वा, तेभ्यो हितं सत्यम्, उत्तमजनेषु सत्सु समीचीनं यद्वचनं तत्सत्यम् उच्यते, प्रव्रजितेषु श्रमणेषु तद्भक्तेषु च धर्मोपबृंहणार्थं साधु सत्यं ज्ञानचारित्रादिकं बह्वपि कर्तव्य मित्येवमनुज्ञावचनं सत्य मुच्यते ६ ईर्यासमित्यादिषु वर्तमानस्य प्राणातिपात पञ्चेन्द्रिय नो इन्द्रिय विषयपरित्यागः संयमः । सावद्ययोगात् सम्यगुपरमणं वा संयमः ।

-यह मेरा है' इस प्रकार ममताभाव को त्याग देना मुक्ति है।

(३) आर्जव-स्वभाव की सरलता अर्थात् काययोग आदि की कुटिलता का अभाव आर्जव धर्म है।

(४) मार्दव-जातिमद, कुलमद, बलमद, अहंकार एवं अभिमान का त्याग करना मार्दव है।

(५) लाघव-लोभ का सर्वथा त्याग।

(६) सत्य-सत् अर्थात् प्राणियों, पदार्थों या मुनियों के लिए जो हितकर हो वह सत्य। उत्तम जनों में समीचीन वचन सत्य कहलाता है, श्रमणों में और उनके भक्तों में धर्म की वृद्धि के लिए 'ज्ञान चारित्र आदि खूब करना चाहिए' इस प्रकार का अनुज्ञावचन सत्य है।

(७) संयम-ईर्यासमिति आदि में प्रवर्त्तमान साधु का पांचों इन्द्रियों के और मन के विषय का त्याग कर देना संयम है। अथवा सावद्ययोग से सम्यक् प्रकार से विरत होना संयम है। अथवा जिसके

છે' એ પ્રકારે મમતભાવનો ત્યાગ કરવો મુક્તિ છે

(૩) આર્જવ-સ્વભાવની સરળતા અર્થાત્ કાયયોગ આદિની કુટિલતાનો અભાવ આર્જવધર્મ છે.

(૪) માર્દવ-જાતિમદ, કુળમદ, બળમદ, અહંકાર તથા અભિમાનનો ત્યાગ કરવો માર્દવ છે.

(૫) લાઘવ-લોભનો સર્વથા ત્યાગ.

(૬) સત્ય-સત્ અર્થાત્ પ્રાણિઓ, પદાર્થો અથવા મુનિરાજો માટે જે હિતકર હોય તે સત્ય, ઉત્તમ જનોમાં સમીચીન વચન સત્ય કહેવાય છે, શ્રમણોમાં અને તેમના ભક્તોમાં ધર્મની વૃદ્ધિ માટે 'તીવ્ર ચારિત્ર આદિ ખૂબ કરવા જોઈએ' આ પ્રકારનું અનુજ્ઞાવચન સત્ય છે.

(૭) સંયમ-ઈર્યાસમિતિ આદિમાં પ્રવર્ત્તમાન સાધુનું પાંચે ઇન્દ્રિયોના તથા મનના વિષયનો ત્યાગ કરી દેવો સંયમ છે. અથવા સાવદ્ય યોગથી સમ્યક્ પ્રકારથી વિરત થવું સંયમ છે. અથવા જેના દ્વારા આત્મા પાપ-

यद्वा-संयम्यते निवर्त्यते नियमतः पापसमारम्भा दात्माऽनेनेति संयमः। स च पृथिवीकाय, संयमादि भेदेन सप्तदशविधः। सविस्तर मेतस्य व्याख्यानं दशवैकालिकसूत्रे प्रथमाध्ययनस्य प्रथमसूत्रे मत्कृतायाम् 'आचारमणिमंजूष ऽऽख्यायां व्याख्यायां दिलोकनीयम् ७ तपति-दहति, तापयतिवाऽष्टविधं कर्मेति तपः ८ त्यजनं त्यागः संविग्नैकसाम्भोगिकानां भक्तादिदानं त्यागः, स च द्विविधः द्रव्यत्यागो भावत्यागश्च। तत्राऽऽहारोपधिशय्यानाम् अप्रायोग्याणां परित्यागः प्रायोग्यानां यतिजनेभ्यो दानं द्रव्यत्यागः १ क्रोधादीनां त्यागः ज्ञानादीनां यतिजने वितरणम् भावत्यागः २। ९ X अनुभूत वनितास्मरणकथाश्रवणस्त्रीसंसक्त-

---

द्वारा आत्मा पापसमारंभ से संयत-निवृत्त किया जाय वह संयम है। पृथ्वीकायसंयम आदि के भेद से संयम सत्तरह प्रकार का है। इसका विस्तारपूर्ण विवेचन दशवैकालिकसूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा की मेरे द्वारा रचित 'आचारमणिमंजूषा' नामक टीका में देख लेना चाहिए।

(८) तप—जिसके द्वारा आठ प्रकार का कर्म भस्म हो जाय वह तप है।

(९) त्याग-संवेग से सम्पन्न संजोगी श्रमणों को आहार आदि देना त्याग कहलाता है। त्याग के दो भेद हैं-द्रव्यत्याग और भावत्याग। अयोग्य आहार, उपधि एवं उपाश्रय का त्याग करना और योग्य आहार आदि साधुजनों को देना द्रव्यत्याग है और क्रोध आदि का वर्जन करना तथा साधुओं को ज्ञानादि देना भावत्याग है।

સમારંભથી સંયત-નિવૃત્ત કરી શકાય તે સંયમ છે પૃથ્વીકાય સંયમ આદિના ભેદથી સંયમ સત્તર પ્રકારનો છે. આનું વિગતવાર વિવેચન દશવૈકાલિકસૂત્રના પ્રથમ અધ્યયનની પ્રથમ ગાથાની મારા વડે રચાયેલી 'આચારમણિમંજૂષા' નામની ટીકામાં જોઈ લેવા ભલામણ છે.

(૮) તપ—જેના વડે આઠ પ્રકારના કર્મો ભસ્મ થઈ જાય તે તપ છે.

(૯) ત્યાગ—સંવેગથી સમ્પન્ન સંજોગી શ્રમણોને આહાર આદિ આપવો ત્યાગ કહેવાય છે. ત્યાગના બે ભેદ છે, દ્રવ્યત્યાગ અને ભાવત્યાગ અયોગ્ય આહાર, ઉપધિ તથા ઉપાશ્રયનો ત્યાગ કરવો અને યોગ્ય આહાર આદિ સાધુજનોને આપવા તે દ્રવ્યત્યાગ છે અને ક્રોધ આદિનો ત્યાગ કરવો તથા સાધુઓને જ્ઞાનાદિ આપવું ભાવત્યાગ છે.

शयनाऽऽसनादिवर्जनं, मैथुनवर्जनञ्च ब्रह्मचर्यं तत्र वासो वसनं ब्रह्मचर्यवासः १०-तान्येतानि खलु धर्म व्यपदेश्यानि भाव्यमानानि कर्मास्रवनिरोधलक्षण-संवरकारणानि भवन्ति ॥५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावत्-पञ्चसमितित्रिगुप्तीनां संवरहेतुत्वं प्रतिपादितम्, सम्प्रति दशविधस्य श्रमणधर्मस्य संवरहेतुत्वं प्रतिपादयितुमाह-'दस विहे समण.धम्मे खंति मुत्ति अज्जव मद्दव लाघव सच्चसंयम तव चियाय बंभचेरवासमेया' इति। दशविधः श्रमणधर्मः श्रमणस्य संवरापादन-सामर्थ्यहेतुभूतधर्मविशेषो मूलोत्तरगुणप्रकर्षयुक्तः खलु यतिधर्मो वर्तते एते दश क्षान्त्यादयः संवरं धारयन्ती त्यतो धर्मशब्देन व्यपदिश्यते। अत्र=

(१०) पूर्वभुक्त वनिता के स्मरण, कथा श्रवण एवं स्त्री के संसर्ग वाले शयन आसन आदि का त्याग करना और मैथुन का त्याग करना ब्रह्मचर्य या ब्रह्मचर्यवास कहलाता है।

इन दस प्रकार के धर्मों का परिपालन करने से कर्मास्रव का निरोध रूप संवर उत्पन्न होता है ॥५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—इससे पहले समिति और गुप्ति को संवर का करण बतलायागया था, यहां दस प्रकार के श्रमणधर्म को उसका कारण कहते हैं-

श्रमण का संवर को उत्पन्न करने में समर्थ तथा मूलगुणों एवं उत्तर गुणों के प्रकर्ष से युक्त धर्म दस प्रकार का है। ये क्षान्ति आदि दस संवर को धारण करने के कारण धर्म कहलाता हैं। क्षान्ति आदि को 'श्रमणधर्म' शब्द से कहा गया है, अतः उनमें मूल और उत्तर

(१०) पूर्वे भोगवेली स्त्रीनुं स्मरण. कथा श्रवण तथा स्त्रीना संसर्ग वाळी पथारी आसन आदिनो त्याग करवो अने मैथुननो त्याग करवो-ब्रह्मचर्य अथवा ब्रह्मचर्यवास कहेवाय छे.

आ दश प्रकारना धर्मोनुं परिपालन करवाथी कर्मास्रवनो निरोध रूप संवर उत्पन्न थाय छे ॥५॥

तत्त्वार्थनिर्युकित-आनाथी पहेला समिति अने गुप्तिने संवरना कारण तरीके बताववामां आव्या छे. अहीं हवे दश प्रकारना श्रमणधर्मने संवरना कारण तरीके कहेवामां आवे छे.

श्रमणनो, संवरने उत्पन्न करवामां समर्थ तथा मूळगुणो अने उत्तरगुणोना प्रकर्षथी युक्त, धर्म दश प्रकारनो छे. आ क्षान्ति वगेरे दस संवरने धारण करवाना, कारणो धर्म कहेवाय छे. क्षान्ति आदिने श्रमण-

क्षान्त्यादीनां श्रमणधर्मत्वकथनेन तेषु मूलोत्तगुणविशिष्टत्वलाभात् अगारिषु तद्व्यावृत्ति रुच्यते, मूलोत्तरगुणयुक्ताः खलु क्षान्त्यादयो गृहस्थेषु नोपलभ्यन्ते यथा सर्वावस्थासु अनगाराः श्रमणाः क्षममाणाः सकलमदस्थाननिग्रहकारिणः सुवर्णादिधनरहिताः सन्तः सर्वथैव ब्रह्मचर्यं धारयन्ति न तथाऽगारिणः प्रकृष्ट क्षान्त्यादिशालिनो भवन्ति तत्र शक्तिशालिनः खल्वात्मनः क्षमणं सहनपरिणामः क्षान्तिः क्षमा। अशक्तस्य प्रतीकाराऽननुष्ठानं तितिक्षारूपाः क्षमा सहनशीलता क्रोधोदयनिरोधः उदित क्रोधस्य वा विवेकबलेन विफलताऽऽपादानम्, तत्रान्यैः प्रयुक्तस्य क्रोधहेतुभूतस्य दोषादेः सद्भावाऽसद्भावपरिचिन्तनात् क्षमा कर्तव्या।

गुणों की विशिष्टता का लाभ होने से गृहस्थों में उनका अभाव कहा गया है। अर्थात् मूलगुणों और उत्तर गुणों से युक्त क्षमा आदि दस धर्म गृहस्थों में नहीं पाये जाते। जैसे अनगार श्रमण क्षमाप्राण होते हैं, मद के समस्त स्थानों का निग्रह करते हैं, स्वर्ण आदि धन से रहित होते हैं और पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वैसे गृहस्थ उत्कृष्ट क्षमा आदि के धारक नहीं होते।

(१) क्षान्ति—प्रतीकार की शक्ति से युक्त होने पर भी क्षमा कर देना अर्थात् आत्मा में सहन करने का परिणाम होना क्षान्ति है। अशक्त का प्रतीकार न करना तितिक्षा रूप क्षमा, सहनशीलता, क्रोध के उदय का निरोध या उत्पन्न हुए क्रोध को विवेक के बल से निष्फल कर देना क्षान्ति है। जब कोई अपने में किसी दोष का आरोप करे

धर्म' शब्दथी कहेवामां आव्यो छे आथी तेमां मूळ अने उत्तरगुणोनी विशिष्टतानो लाभ होवाथी गृहस्थोमां तेमनी गेरहाजरी गणवामां आवी छे. अर्थात् मूळगुणो अने उत्तरगुणोथी युक्त क्षमा आदि दश धर्म गृहस्थोमां जोवामां आवतां नथी. जेवी रीते अनगार श्रमण क्षमाप्राण होय छे, मदना तमाम स्थानोनो निग्रह करे छे, सुवर्ण आदि धनथी रहित होय छे अने पूर्ण रूपथी ब्रह्मचर्यनुं पालन करे छे, तेवी रीते गृहस्थ उत्कृष्ट क्षमा आदिना धारक होता नथी.

(१) क्षान्तिः—प्रतिकारनी शक्तिथी युक्त होवा छतां पण माफी आपवी अर्थात् आत्मामां सहन करवानुं परिणाम होवुं क्षान्ति छे. अशक्तनो प्रतिकार न करवो तितिक्षारूप क्षमा, सहनशीलता क्रोधना उदयनो निरोध अथवा उत्पन्न थयेला क्रोधने विवेकना बळथी निष्फळ करी देवो क्षान्ति छे. ज्यारे कोई पोतानामां कोई दोषनुं आरोपण करे अने तेथी क्रोध उत्पन्न

तत्र-दोषादि सद्भावचिन्तनं यथा-'सन्त्येव एते मयि दोषाः न किम प्यासौ मृषा वदती'-त्येवं क्षन्तव्यम् । एवं-दोषादीनामसद्भावचिन्तनं यथा नैव खलु मयि वर्तते-एते दोषाः' यानज्ञानादिनाऽसौ वदतीति क्षन्तव्यम् । एवम्-क्रोध दोष परिचिन्तनादपि क्षन्तव्यम् तथाहि-क्रुद्धस्य जनस्य विद्वेषाऽऽसादनस्मृतिभ्रंश व्रतलोपादयो दोषा भवन्ति, क्रोधकषायपरिणतो जीवो विद्वेषी सन् कर्म बध्नाति-अन्यं वा निहन्ति, तेन-प्राणातिपातविरतिव्रतलोपो भवेत्

और उससे क्रोध उत्पन्न होने की संभावना हो तो अपने में उस दोष का सद्भाव है अथवा नहीं, ऐसा विचार कर क्षमा करना चाहिए। यदि वास्तव में दोष का सद्भाव हो तो सोचना चाहिए-'ये दोष मेरे अन्दर हैं ही, यह कुछ भी मिथ्या नहीं कह रहा है।' यदि दोष न हो तो विचार करना चाहिए-'अज्ञान के कारण यह जिन दोषों का होना कहता है, वे मुझमें नहीं हैं' ऐसा विचार करके उसे क्षमा कर देना चाहिए।

क्रोध से उत्पन्न होने वाले दोषों को विचार करके भी क्षमाभाव धारण करना चाहिए, जैसे-जो मनुष्य क्रोध के वशीभूत हो जाता है, उसके चित्त में विद्वेष का भाव उत्पन्न होता है, वह हिंसा पर उतारू हो जाता है, उसकी स्मृति नष्ट हो जाती है और उसके व्रतों का विलोप हो जाता है। क्रोध कषाय के अधीन हुआ जीव द्वेष से युक्त होकर कर्म का बन्ध करता है या दूसरे की हत्या कर डालता है जिससे उसके प्राणातिपातविरमण व्रत का नाश हो जाता है। वह

થવાની શકયતા ઉભી થાય તો પોતાનામાં તે દોષનો સદ્ભાવ છે કે નહીં એવું વિચારીને ક્ષમા પ્રદાન કરવી જોઇએ. જો હકીકતમાં પોતાના દોષનો સદ્ભાવ હોય તો વિચારવું જોઇએ-'આ દોષ મારામાં તો છે જ, આ કશું જ ખોટું કહેતો નથી' જો દોષ ન હોય તો આ પ્રમાણે વિચારવું જોઇએ-'અજ્ઞાનના કારણે આ જે દોષો હોવાનું કહે છે, તે મારામાં નથી' એ મુજબ વિચાર કરીને તેને માફી બક્ષવી જોઈએ.

ક્રોધથી ઉત્પન્ન થનારા દોષોનો વિચાર કરીને પણ ક્ષમાભાવ ધારણ કરવો જોઈએ, જેમકે-જે મનુષ્ય ક્રોધને વશીભૂત થઇ જાય છે, તેના ચિત્તમાં વિદ્વેષનો ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે, તે હિંસા પર સવાર થઈ જાય છે, તેની સ્મૃતિ નાશ પામે છે તેમજ તેના વ્રતોનો વિક્ષેપ થઇ જાય છે. ક્રોધ કષાયને તાબે થયેલો જીવ દ્વેષથી યુક્ત થઇને કર્મો બાંધે છે, અથવા બીજાની હત્યા કરી નાખે છે કે જેથી તેના પ્રાણાતિપાત વિરમણ વ્રતનો નાશ થઈ જાય છે.

गुरूनपि माता-पित्रादीन् आसादयेत अधिक्षिपेत क्रुद्धः खलु भ्रष्टस्मृतिको भूत्वा मृषापि वदत् विस्मृत प्रव्रज्या प्रतिपत्तिः परेणाऽदत्तमपि गृह्णीयात् एवमप्रद्वेष-रागात्-मैथुनमपि आसेवेत, एवं-प्रद्वेषरागयुक्तः सहायक बुद्ध्याऽविरतेषु गृहस्थेषु तद्योगोपकरणेषु च मूर्छामपि विदध्यात् तेन परिग्रहदोषोऽप्यापद्येत, एवं क्रुद्धः सन् उत्तरगुणभङ्गमपि कुर्यात् । उक्तञ्च—क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि' इति एवं-मूढस्वभावपरिचिन्तनाच्च क्षन्तव्यम् तथाहि परोक्षाऽपरोक्षाऽऽक्रोश ताडन हनन धर्मभ्रंशाना मुत्तरोत्तररक्षार्थं क्षमा कर्तव्या, परोक्षमाक्रोशति सति मूढे क्षमाकरणेन प्रत्यक्षाक्रोशनं रक्षितं भवति । एव मुत्तरोत्तरत्रापि बोध्यम् । एवं

अपने माता-पिता आदि गुरुजनों पर भी आक्षेप करने से नहीं चूकता। स्मृति शून्य होकर मिथ्या भाषण भी करता है। वह भूल जाता है कि मैंने दीक्षा अंगीकार की है और अदत्त को भी ग्रहण कर लेता है। राग-द्वेष के वशीभूत हो मैथुन का भी सेवन करता है। इसी प्रकार राग-द्वेष से युक्त होकर गृहस्थों को अपना सहायक समझ कर उन पर या उनके उपकरणों पर मूर्छा भी धारण करता है, इस कारण परिग्रह के पाप का भी भागी होता है। इसी प्रकार क्रोधी पुरुष उत्तर गुणों को भी भंग करता है। कहा भी है-'क्रुध हुआ जीव गुरुजनों का भी घात कर डालता है।'

इसी प्रकार मूढ-स्वभाव का विचार करके क्षमा धारण करना चाहिए और-परोक्ष, अपरोक्ष, आक्रोश, ताडन, हनन और धर्मभ्रंश की उत्तरोत्तर रक्षा का विचार करके क्षमा करना चाहिए। जैसे कोई मूढ पुरुष यदि परोक्ष में आक्रोश करता है तो सोचना चाहिए कि वह

તે પોતાના મા-બાપ વગેરે વડીલ લોકો પર પણ આક્ષેપ કરવાની હદ સુધી જાય છે. સ્મૃતિશૂન્ય થઈને મિથ્યાભાષણ પણ કરે છે. પોતે દીક્ષા અંગીકાર કરી છે એ વાત પણ ભૂલી જઈને નહીં આપેલી વસ્તુનો પણ સ્વીકાર કરી લે છે. રાગ-દ્વેષને વશીભૂત થઈને મૈથુન પણ સેવતો હોય છે. એવી જ રીતે રાગ-દ્વેષથી યુક્ત થઈને ગૃહસ્થોને પોતાના મદદગાર સમજીને તેમનામાં અથવા તેમના ઉપકરણો પરત્વે મોહ પણ ધારણ કરે છે. આ કારણે પરિ-ગ્રહના પાપનો પણ ભાગીદાર બને છે. વળી આવી જ રીતે ક્રોધી પુરૂષ ઉત્તરગુણોનો પણ ભંગ કરે છે. કહ્યું પણ છે-ક્રોધી થયેલો જીવ વડીલજનોની પણ હત્યા કરી નાખે છે.

એવી જ રીતે મૂઢ-સ્વભાવનો વિચાર કરીને ક્ષમા ધારણ કરવી જોઈએ અને પરોક્ષ અપરોક્ષ, આક્રોશ, તાડન, હત્યા અને ધર્મભ્રંશની ઉત્તરોત્તર રક્ષાનો વિચાર કરીને ક્ષમા આપવી જોઈએ જેમ કોઈ મૂઢ-પુરૂષ કદાચ

भाग्येन मां परोक्षमाक्रोशति न प्रत्यक्षम्' इत्येवं लाभमत्वा क्षन्तव्यम्' एवम् प्रत्यक्षमाक्रोशत्यपि न मां ताडयति इति क्षन्तव्यमेव, इत्यादिरीत्या क्षमितव्यम् एवम् ताडनं कुर्वत्यपि बाले मूढे क्षन्तव्यम्, एवं स्वभावाः खलु मूढा भवन्तीति मत्वा क्षमा कर्तव्याः भाग्येन मूढोऽयं ताडयत्येव न प्राणैर्वियोजयतीति भावः। एवं प्राणैर्वियोजयत्यपि मूढे क्षन्तव्यम्, भाग्येन खलु मूढोऽयं प्राणैरेव वियोजयति न मां धर्माद् भ्रंशयति इति मत्वा क्षन्तव्यम्। एवं—जन्मान्तरोपार्जि-

---

प्रत्यक्ष में आक्रोश नहीं करता, यह मेरा लाभ ही है, ऐसा सोच कर क्षमा करना चाहिए। आगे भी इसी प्रकार समझना चाहिए। अगर कोई प्रत्यक्ष में आक्रोश करे तो सोचना चाहिए—'यह आक्रोश करके ही रह जाता है, मेरा ताडन नहीं कर रहा हैं और इस लाभ का विचार कर के क्षमा करना चाहिए। अगर ताडना करने वाले पर भी क्षमाभाव धारण करना उचित है। उस समय सोचना चाहिए कि मूढ जनों का स्वभाव ही ऐसा होता है। यह मूढ भाग्य से ताडना करके ही रह जाता है, प्राणों से रहित तो नहीं करता, यही गनीमत है, ऐसा विचार कर उस मूढ को क्षमा कर देना चाहिए। कदाचित् कोई अज्ञानी प्राण लेने पर उतारू हो जाय तो विचार करना चाहिए—'सद्भाग्य से यह मूढ प्राणी मुझे प्राणों से ही रहित कर रहा है, धर्म से भ्रष्ट नहीं कर रहा, और ऐसा विचार करके क्षमा भाव धारण करना चाहिए।

અજાણતા આક્રોશ કરે તો વિચારવું જોઈએ કે તે પ્રત્યક્ષમાં આક્રોશ કરતો નથી. એ જ મારા ફાયદામાં છે એવું સમજીને ક્ષમા આપવી જોઈએ. આગળ પણ આ મુજબ જ સમજવાનું છે. અગર જો કોઈ પ્રત્યક્ષમાં આક્રોશ કરે તો વિચારવું જોઈએ—'આ ક્રોધ કરીને જ રહી જાય છે, મને મારતો નથી' અને આ લાભનો વિચાર કરીને ક્ષમા આપવી જોઈએ. અગર મારનારને પણ ક્ષમા આપવી જોઈએ તે ઉચિત ગણાય. તે સમયે એમ વિચારવું કે મૂઢ માણસોનો સ્વભાવ જ એવો હોય છે. આ મૂઢ મારા સારા નસીબે માર મારીને જ સંતોષ માને છે પણ મને જીવથી તો મારતો નથી એટલું જ સારૂં છે. એવો વિચાર કરીને તે મૂઢને ક્ષમા આપી દેવી જોઈએ કદાચિત્ કોઈ અજ્ઞાની પ્રાણ હણવા સુધીની હદે આવી જાય તો વિચાર કરવો જોઈએ—'સદ્‌ભાગ્યે આ મૂઢ પ્રાણી મને પ્રાણોથી જ રહિત કરી રહ્યો છે, ધર્મથી ભ્રષ્ટ કરતો નથી' અને આવી ભાવના ભાવીને ક્ષમાભાવ ધારણ કરવો જોઈએ.

तस्य कर्मणः खल्वयं विपाको मम वर्तते यदयं प्रत्यक्षं परोक्षं वाऽऽक्रोशति मां ताडयतिवा, मम पूर्वभवकृतकर्मोदयस्य निमित्तमात्रमयं वर्तते यतो द्रव्यक्षेत्र काल भावानुसारेणैव कर्मणा मुदयो भवतीति मत्वा स्वकृतकर्मफलाभ्यागमोऽयं मम वर्तते निमित्तमात्रं पर इति क्षन्तव्यम्, क्षमारूपो धर्मः संवरहेतुतयाऽवगन्तव्यः १ ममत्वबुद्धिराहित्यं मुक्तिः सा च उपात्तेष्वपि शरीरादिषु संस्काराऽऽसक्ति निरासाय 'ममेदम्' इत्येवं ममत्वबुद्धिनिवृत्तिरूपा २ एवम् ऋजोर्भावः कर्म वाऽऽर्जवम् सारल्यम् भावविशुद्धिः कायवाङ्मानसभावानां कुटिलता राहित्यम् शठताविरहितत्वं च, भावदोष माया छलकपटादि विवर्जनम् आर्जवम् ।

इसी प्रकार मुनि को सोचना चाहिए कि–'यह पूर्वजन्म में उपार्जित मेरे कर्मों का ही फल है कि यह प्रत्यक्ष में या परोक्ष में मेरे ताडना कर रहा है अथवा मुझ पर आक्रोश करता है। यह बेचारा मेरे कर्मों का निमित्त मात्र बन रहा है, क्यों कि कर्म द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार ही फल देता हैं। इस प्रकार यह तो वास्तव में मेरे कर्म का ही फल है, दूसरा तो इसमें निमित्त मात्र है, ऐसा विचार करके क्षमा करना चाहिए। क्षमाधर्म संवर का कारण होता है।

(२) मुक्ति—ममत्वबुद्धि से रहित होना मुक्ति धर्म है। प्राप्त या गृहीत शरीर आदि पर-पदार्थों में संस्कार एवं आसक्ति का निवारण करने के लिए 'यह मेरा है' इस प्रकार की ममत्व बुद्धि का न होना मुक्ति का लक्षण है।

આવી જ રીતે મુનિએ વિચારવું જોઈએ કે–'આ પૂર્વજન્મ ઉપાર્જિત મારા જ કર્મોનું ફળ છે કે આ પ્રત્યક્ષમાં અથવા પરોક્ષમાં મને તાડન કરે છે અથવા મારા ઉપર ક્રોધ કરે છે. આ બાપડો મારા કર્મોનું નિમિત્ત માત્ર બની રહ્યો છે, કારણ કે કર્મ દ્રવ્ય ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવ અનુસાર જ ફળ પ્રદાન કરે છે. આમ આ બધું હકીકતમાં તો મારા કર્મોનો જ વિપાક છે, બીજો તો આમાં નિમિત્ત માત્ર છે. એવું વિચારીને ક્ષમા કરવી જોઈએ આ ક્ષમાધર્મ સંવરનું કારણ હોય છે.

(૨) મુક્તિઃ—મમત્વ બુદ્ધિથી રહિત થવું મુક્તિ ધર્મ છે. પ્રાપ્ત અથવા ગૃહીત શરીર આદિ પર-પદાર્થોમાં સંસ્કાર તથા આસક્તિનું નિવારણ કરવા માટે 'આ મારું છે' એ પ્રકારની મમત્વબુદ્ધિનું ન હોવું મુક્તિનું લક્ષણ છે.

(૩) આર્જવ—ઋજુતા, સરળતા ભાવવિશુદ્ધિ, કાયા વચન અને મનની કુટિલતા ન હોવી શઠતા–લુચ્ચાઈનો અભાવ અથવા ભાવ દોષરૂપ

भावदोषयुक्तो जनो निकृतियुक्तः सन् इह मुत्राऽशुभफलजनकमकुशलं कर्मोप चिनोति, अकुशलकर्मोपचितश्चोपदिश्यमानं श्रेयोऽपि मोक्षसाधनं सम्यग्दर्शनादिकं न श्रद्दधाति तस्मात्-आर्जवधर्मः कर्मास्रवनिरोधलक्षणसंवरहेतु र्भवति ३ एवम्-मृदोः कोमलस्य भावः-कर्म वा मार्दवम्, विनम्रभावः गर्वराहित्यञ्च जाति कुलसम्पदादिमदनिग्रहः मानविघातश्च भवति मर्दन, अभ्युत्थानाऽऽसनदानाञ्जलिग्रह यथायोग्यविनयकरणरूपविनम्रभावेन चित्तपरिणामविशेषोत्सेकरूप गर्वराहित्येन च जाति-कुलादिमदनाशो भवति जातिकुलरूपैश्वर्यविज्ञानश्रुत

(३) आर्जव—ऋजुता, सरलता, भावविशुद्धि, काय वचन और मन की कुटिलता न होना, शठता-धूर्तता का अभाव या भावदोष रूप माया, छल, कपट आदि का वर्जन आर्जवधर्म है। भावदोष से युक्त जन मायाचार से युक्त हो कर इस लोक और पर लोक में अशुभ फल उत्पन्न करने वाले अकुशल कर्मों का उपचय करता है। अकुशल कर्मों का उपचय करने वाला श्रेयस्कर एवं मोक्ष के साधन सम्यग्दर्शन आदि पर भी श्रद्धा नहीं करता। यह आर्जव कर्मास्रव के निरोध रूप संवर का कारण होता है।

(४) मार्दव—मृदु अर्थात् कोमल का भाव या कर्म मार्दव है। विनम्रता, गर्व से रहित होना, जाति कुल सम्पत्ति आदि के मद का निग्रह करना यह सब मार्दव है। मद करने से मान का विघात होता है। गुरुजनों के आने पर उठ कर खडा हो जाना, उन्हें आसन प्रदान करना, हाथ जोडना, यथायोग्य विनय करना तथा चित्त में अहंकार न उत्पन्न होने देना, इन सब से जातिमद एवं कुलमद आदि का

માયા, છળ, કપટ આદિનો ત્યાગ આર્જવધર્મ છે. ભાવદોષથી યુક્ત મનુષ્ય માયાચારથી યુક્ત થઈને આ લોક અને પરલોકમાં અશુભ ફળ ઉત્પન્ન કરવાવાળા અકુશળ કર્મોનો ઉપચય કરે છે. અકુશળ કર્મોનો ઉપચય કરનાર શ્રેયસ્કર તથા મોક્ષના સાધન સમ્યક્દર્શન આદિ પરત્વે પણ શ્રદ્ધા રાખતો નથી. આ આર્જવ ધર્મ કર્માસ્રવના નિરોધ રૂપ સંવરનું કારણ હોય છે.

(૪) માર્દવઃ—મૃદુ અર્થાત્ કોમળનો ભાવ અથવા કર્મ માર્દવ છે. વિનમ્રતા ગર્વથી રહિત થવું, જાતિ, કુળ સમ્પત્તિ વગેરેના મદનો નિગ્રહ કરવો. આ બધું માર્દવ કહેવાય છે, મદ કરવાથી માનનો નાશ થાય છે. વડીલજનોના આગમન પ્રસંગે ઊભા થઈ જવું, તેમને આસન આપવું, હાથ જોડવા, યથાયોગ્ય વિનય કરવો તથા ચિત્તમાં અહંકાર ઉત્પન્ન ન થવા દેવો આ બધાંથી જાતિમદ અને કુલમદ આદિનો વિનાશ થાય છે. જે પુરૂષજાતિના

लाभवीर्यरूप मदान्ध-ऐश्वर्यमदान्ध-विज्ञानमदान्ध-श्रुतमदान्ध-लाभमदान्ध वीर्यमदान्धाः खलु पुरुषाः बहुकर्मास्रवान् उत्पादयन्ति, तस्मात्-तथाविध मार्दवधर्मसेवनेन जातिकुलादि मदमानविनाशनद्वारा कर्मास्रवनिरोधलक्षण संवर उत्पद्यते, मार्दवाभावे किल-जाति कुलरूपैश्वर्यादिभिरष्टभिर्मदस्थानै र्मत्तो भूत्वा परनिन्दा-स्वप्रशंसाभिरुचिः तीव्राहङ्कारोपहतबुद्धिः खलु पुरुषोऽशुभ-फलदायकमकुशलं कर्म संचिनोति, श्रेयः खलु-मुक्तिसाधनभूतं सम्यग् दर्शनादिक मुपदिश्यमानमपि न श्रद्दधते, तस्मात्-एतेषां खलु जात्यादि मद मानस्थानानां समूलघातोपघाताय मार्दवरूपो धर्मः संवरहेतुरवगन्तव्यः-४ एवम्-अलोभलक्षणं लाघवम् लघुभावोऽपि संवरहेतु र्भवति, अन्यथा-लोभ-

विनाश होता है। जो पुरुष जाति के, कुल के, रूप के ऐश्वर्य के, ज्ञान के, श्रुत के लाभ के अथवा वीर्य के मद से अंधे होते, वे बहुत कर्मों का बन्ध करते हैं। अतएव मार्दवधर्म के सेवन से जातिमद कुलमद आदि का विनाश होकर संवर की उत्पत्ति होती है।

मार्दव के अभाव में जातिमद, कुलमद, रूपमद, ऐश्वर्यमद आदि आठ मदस्थानों से उन्मत्त होकर पुरुष परनिन्दा और आत्म-प्रशंसा की रुचिवाला, तीव्र अहंकार से उपहत बुद्धि वाला होकर अशुभ फल देने वाले अकुशल कर्मों का संचय करता है। श्रेयस्कर और मोक्ष के साधन सम्यग्दर्शन आदि का उपदेश सुनकर भी उन पर श्रद्धा नहीं करता। अतएव जातिमद आदि का समूल विनाश करने के लिए मार्दव धर्म का आसेवन करना चाहिए।

(५) लाघव—लोभ का त्याग या लघुता को लाघव धर्म कहते

કુળના, રૂપના, મીલ્કતના, જ્ઞાનના, શ્રુતના લાભના અથવા વીર્યના મદથી આંધળા થઈ જાય છે, તે ઘણાં બધાં કર્મો બાંધતા હોય છે આથી માર્દવધર્મના સેવનથી જાતિમદ, કુળમદ આદિનો વિનાશ થઈને સંવરની ઉત્પત્તિ થાય છે.

માર્દવના અભાવમાં જાતિમદ, કુળમદ રૂપમદ, ઐશ્વર્યમદ આદિ આઠ મદસ્થાનોથી ઉત્પન્ન થઈને, પુરૂષ પારકી નિન્દા અને આત્મપ્રશંસાની રૂચિ-વાળો, તીવ્ર અહંકારથી ઉપહત બુદ્ધિવાળો થઈને અશુભ ફળ આપનાર અકુશળ કર્મોનો સંચય કરે છે. શ્રેયસ્કર અને મોક્ષના સાધન સમ્યગ્દર્શન આદિનો ઉપદેશ સાંભળીને પણ તેમનામાં શ્રદ્ધા રાખતો નથી આથી જાતિ મદ આદિનો સમૂળ વિનાશ કરવા માટે માર્દવધર્મનું આસેવન કરવું જોઈએ,

(૫) લાઘવ—લોભનો ત્યાગ અથવા લઘુતાને લાઘવધર્મ કહે છે. આ

दोषात् क्रोधमानमाया प्राणातिपात मृषावादस्तेय मैथुन परिग्रहरूप गौरवोप चयोपचितः खल्वात्मा भावलाघवरहितत्वात् गुरुर्भवति, भावगौरवयुक्त आत्मा इहामुत्राऽशुभफलदायकमकुशलमवद्यं कर्मोपचिनोति, अशुभकर्मोपचितश्च निःश्रेयस साधनमपि सम्यग्दर्शनादिकमुपदिश्यमानमपि नो श्रद्दधाति, तस्मात् ममता परित्यागनिस्सङ्गत्वरूपभावलाघवं-द्रव्यलाघवञ्च संवर हेतुर्भवति-५ सति-प्रशस्तेऽर्थे भवं सत्यम्, दिगादित्वात् यत् प्रत्ययः, यथावस्थितार्थप्रतीति-जनकं वचः सत्यम्, सद्भ्यो जीवेभ्यो वा हितं सत्यम्, तत् खलु-वचो-

है। यह भी संवर का कारण है। लाघवधर्म के अभाव में लोभ रूप दोष के कारण क्रोध, मान, माया, प्राणातिपात, मृषावाद, चोरी, मैथुन एवं परिग्रहण रूप गौरव (भारीपन) से युक्त हुआ आत्मा भाव-लाघव से रहित होने के कारण गुरु बन जाता है। भावगौरव से युक्त आत्मा इस लोक में और परलोक में अशुभ फल देने वाले, अकुशल पाप कर्मों का संचय करता है और जिसने अकुशल कर्मों का संचय किया है वह जीव मोक्ष के साधन सम्यग्दर्शन आदि का उपदेश सुन-कर भी उन पर श्रद्धा नहीं करता। अतएव ममतापरित्याग रूप भावलाघव और निःसंगता रूप द्रव्यलाघव संवर का कारण है।

(६) सत्य—जो सत् या प्रशस्त अर्थ में हो वह सत्य है। दिक् आदि में पाठ होने से 'यत्' प्रत्यय होकर 'सत् से 'सत्य' शब्द निष्पन्न हुआ है। तात्पर्य यह है कि यथार्थ पदार्थ की प्रतीति उत्पन्न करने वाला वचन सत्य कहलाता है। वह सत्य वचन परुष (कठोर)

પણ સંવરનું કારણ છે. લાઘવધર્મના અભાવમાં લોભ રૂપ દોષના કારણ ક્રોધ, માન, માયા, પ્રાણાતિપાત, મૃષાવાદ, ચોરી, મૈથુન અને પરિગ્રહ રૂપ ગૌરવ (ભારેપણું)થી યુક્ત થયેલો આત્મા, ભાવ-લાઘવથી રહિત હોવાના કારણે ગુરૂ બની જાય છે. ભાવગૌરવથી યુક્ત આત્મા આ લોકમાં તેમજ પરલોકમાં અશુભ ફળ આપનારા, અકુશળ પાપકર્મોનો સંચય કરે છે, અને જેણે અકુશળ પાપકર્મોનો સંચય કર્યો છે તે જીવ મોક્ષના સાધન સમ્યક્દર્શન આદિનો ઉપદેશ સાંભળીને પણ તેમનામાં શ્રદ્ધા રાખતો નથી. આથી મમતા પરિત્યાગ રૂપ ભાવલાઘવ અને નિઃસંગતા રૂપ દ્રવ્યલાઘવ સંવરના કારણ છે.

(૬) સત્ય—જે સત્ અથવા પ્રશસ્ત અર્થમાં હોય તે સત્ય છે દિક્ આદિમાં પાઠ હોવાથી 'યત્' પ્રત્યય થઈને 'સત્'થી સત્ય શબ્દ નિષ્પન્ન થયેલ છે. તાત્પર્ય એ છે કે યથાર્થ પદાર્થની પ્રતીતિ ઉત્પન્ન કરનારૂં વચન સત્ય કહેવાય છે, આ સત્ય વચન પરૂષ (કઠોર) ન હોવું જોઈએ, નિષ્ઠુર

अपरुषम् अनिष्ठुरम्-परपीडावर्जकम्-अपिशुनम्-प्रतीतिकारकम्-चापल्यरहितम् अनाविलम्-कषाय कालुष्यवर्जितम्-विच्छेदरहितम्-निरन्तरोच्चरितम् अविरलम् असम्भ्रान्तम् त्वरादोषरहितम् स्पष्टम् मधुरम् श्रुतिसुखावहम् अभिजातम् सविनयम् असन्दिग्धम् औदार्ययुक्तम् औद्धत्यवर्जितम् अग्राम्यम् विद्वज्जन मनोऽनुरञ्जनसमर्थम् आत्मश्लाघावर्जितम् प्रस्तुतार्थाभिधायि माया लोभ क्रोध मान कषायचतुष्टयरहितं सेव्यम्। एवं गणधरप्रत्येकबुद्धस्थविरविरचित सूत्रमार्गानुसारप्रवृत्तार्थम् अर्थनीयम् अर्थिपुरुषभावग्रहणसमर्थं स्वपरार्थानुग्रहकारकं निरुपधि निश्छलम् देशकालानुपसारि-अनवद्यम् जैनशासनप्रशस्तं यमयुक्तम् मितं याचन-

नहीं होना चाहिए, निष्ठुर नहीं होना चाहिए, पर को पीड़ा पहुचाने वाला न होना चाहिए, चुगली रूप अथवा अप्रतीतिकारक नहीं होना चाहिए। वह चपलता से रहित हो, कषाय की कलुषता से रहित हो, अटक-अटक कर न बोला जाय-लगातार उच्चरित हो, अविरल हो, अभ्रान्त हो, जल्दबाजी से रहित हो, स्पष्ट मधुर और श्रुति सुखद हो, अभिजात हो विनययुक्त हो, असंदिग्ध, उदारतायुक्त, उद्धतता से रहित, गंवारू न हो-विद्वान् जनों का अनुरंजन करने में समर्थ हो, आत्मप्रशंसा से रहित हो, प्रस्तुत अर्थ का प्रतिपादन करनेवाला हो, क्रोध मान माया और लोभ कषाय से रहित हो, सेवनीय हो, तथा गणधरों प्रत्येक बुद्धों और स्थविरों द्वारा रचित सूत्रमार्ग के अनुकूल अर्थ वाला हो, उपधि एवं छल से रहित हो, देश-काल के अनुकूल हो, निरवद्य हो, जैन शासन द्वारा प्रशस्त हो, यम-नियम से युक्त

ન હોવું જોઈએ, બીજાને પીડા પહોંચાડે એવું ન હોવું જોઈએ, ચાડી રૂપ અથવા અપ્રતીતિકારક ન હોવું જોઈએ, તે ચપળતાથી રહિત હોય, કષાયની કલુષતાથી રહિત હોય, અટકી-અટકીને ન બોલવામાં આવે-સતત-એકધારૂં ઉચ્ચારણ હોય, અવિરલ હોય, અભ્રાન્ત હોય, છેતરપીંડીથી રહિત હોય, સ્પષ્ટ મધુર અને સાંભળવું ગમે એવું હોય, અભિજાત હોય, વિનયયુક્ત હોય, અસંદિગ્ધ, ઉદારતાયુક્ત, ઉદ્ધતતાથી રહિત, ગામડિયું ન હોય-વિદ્વાનજનોનું અનુરંજન કરવા માટે સમર્થ હોય આત્મપ્રશંસાથી રહિત હોય પ્રસ્તુત અર્થનું પ્રતિપાદન કરનારૂં હોય, ક્રોધ માન માયા અને લોભ કષાય યુક્ત હોય સેવન કરવા યોગ્ય તથા ગણધરો પ્રત્યેક બુદ્ધો તથા સ્થવિરો દ્વારા રચિત સૂત્રમાર્ગ અનુકૂળ અર્થવાળું હોય અર્થનીય (વાંછનીય) હોય સ્વ-પરનો અનુગ્રહ કરનારૂં હોય, ઉપધિ તથા છળ-કપટ વગરનું હોય, દેશ-કાળને અનુકૂળ હોય, નિરવદ્ય હોય, જૈનશાસન દ્વારા પ્રશસ્ત હોય, યમ-

प्रच्छन्नं प्रश्नोत्तररूपं सत्यं धर्मः संवरस्य हेतुर्भवति ६ एवं कायादियोगनिग्रह-लक्षणः संयमः सप्तदशविधो धर्मः कर्मास्रवनिरोधलक्षणसंवरहेतुर्भवति ७ तपश्च संयतस्याऽऽत्मनो विशोधनार्थं बाह्याभ्यन्तरतपनरूपं बोध्यम्, शरीरेन्द्रिय तापनात् कर्मनिर्दहनाच्च तपो व्यपदिश्यते, तच्च तपो द्वादशविधम्, तत्र षट्कं बाह्य मनशनादिकम् आतापनादिश्च कायक्लेशरूपम्, आभ्यन्तरञ्च प्रायश्चि-त्तादिकं षट्कम्, । चतुर्थषष्ठाऽष्टमभक्तादिरूपं वा, अथवा तपो यवमध्यादि भेदेनाऽनेकविधम्, द्वादशभिक्षुप्रतिमारूपं वा तपः संवरस्य हेतुर्भवतीति ८

हो, मित हो, ऐसा प्रश्नोत्तर रूप वचन सत्य कहलाता है। यह सत्य भी संवर का कारण है।

(७) संयम—काययोग आदि का निग्रह लक्षण वाला संयमधर्म है। संयम सतरह प्रकार का है और वह आस्रव का निरोध करके संवर का कारण होता है।

(८) तप संयमी आत्मा की विशुद्धि के लिए बाह्य और आभ्यन्तर जो तपन है, उसे तप कहते हैं। शरीर को और इन्द्रियों को तप्त कर देने तथा कर्मों को दग्ध करने के कारण उसे तप कहते हैं। तप के बारह भेद हैं, जिनमें छह अनशन आदि तथा कायक्लेश रूप आता-पना आदि हैं। प्रायश्चित्त आदि छह आभ्यन्तर तप हैं। उपवास, बेला, तेला आदि के भेद से अथवा यवमध्य आदि के भेद से अथवा द्वादश भिक्षुप्रतिमारूप से तप के अनेक भेद-प्रभेद हैं। उनका वर्णन अन्यत्र देख लेना चाहिए। यह तप भी अस्रवनिरोधरूप संवर का कारण है।

નિયમથી યુક્ત હોય, ટુંકું હોય-એવું પ્રશ્નોત્તર રૂપ વચન સત્ય કહેવાય છે. આ પણ સત્ય સંવરનું કારણ છે.

(૭) સંયમ-કાયયોગ આદિના નિગ્રહ લક્ષણવાળો સંયમ ધર્મ છે. સંયમ સત્તર પ્રકારનો છે અને તે આસ્રવનો નિરોધ કરીને સંવરનું કારણ બને છે.

(૮) તપ—સંયમી આત્માની વિશુદ્ધિ માટે બાહ્ય તથા આભ્યંતર જે તપશ્ચર્યા છે તેને તપ કહે છે. શરીર તથા ઇન્દ્રિયોને તપ્ત કરનાર તથા કર્મોને ભસ્મ કરવાના કારણને તપ કહે છે. તપના બાર ભેદ છે જેમાં છ અનશન આદિ તથા કાયક્લેશ રૂપ આતાપના આદિ છે. પ્રાયશ્ચિત્ત આદિ છ આભ્યંતર તપ છે. ઉપવાસ, છઠ, અટ્ઠમ, આદિના ભેદથી અથવા યવમધ્ય આદિના ભેદથી અથવા બાર ભિક્ષુપ્રતિમા રૂપથી તપના અનેક ભેદ-પ્રભેદ છે. એમનું વર્ણન અન્યત્ર જોઈ લેવું. આ તપ પણ આસ્રવનિરોધ રૂપ સંવરનું કારણ છે.

त्यागस्तावत् बाह्यानां रजोहरणपात्राद्युपधिशरीराऽन्नपानादीनाम् आभ्यन्तराणाञ्च दुष्टवाङ्मनो वाक् कायव्यापार क्रोधादीनां मूर्च्छालक्षणभावदोषपरित्याग-रूपः संवरस्य हेतुर्भवति। 'संयमसाधनत्वाद् रजोहरणादिकं धारयति न तु रागा-दियुक्तः शोभाद्यर्थम्, तथा च बाह्याभ्यन्तरोपकरणादि विषयकपरिग्रहरूपं भाव-दोषस्य सर्वथा त्यागोहि आस्रवद्वारं संवृणोति। एवं शरीरधर्मोपकरणादिषु भावदोषरूपगार्ध्यपरित्यागेन ममत्वराहित्यं त्यागो बोध्यः तथचोक्तरीत्या भावदोषत्यागं कृत्वा बाह्योपकरणं रजोहरणपात्रादिक मुपभुञ्जानोऽपि त्याग्येव भवति, तथाविधत्यागोऽपि कर्मास्रवनिरोधलक्षणसंवरस्य हेतुर्भवति ९ एवम् सर्वथा

(९) त्याग—रजोहरण, पात्र उपधि, शरीर, अन्न-पानी आदि बाह्य पदार्थों का तथा मन वचन काय के दूषित व्यापार एवं क्रोध आदि आन्तरिक दोषों का परिहार करना त्याग है। यह त्याग संवर का कारण होता है। त्यागी पुरुष संयम के साधन होने के कारण रजोहरण आदि को धारण करता है, रागादि से युक्त होकर शोभा के लिए नहीं। इस प्रकार बाह्य और आभ्यन्तर उपकरण आदि विषयक परिग्रह रूप भावदोष का सर्वथा त्याग अस्रवद्वार को रोक देता है। इस प्रकार शरीर तथा धर्मोपकरण आदि में भाव दोष रूप आसक्ति का परित्याग करके ममत्व से रहित होना त्याग समझना चाहिए। उक्त प्रकार से भावदोष का त्याग करके रजोहरण पात्र आदि बाह्य उपकरणों का उपभोग करता हुआ भी त्यागी ही कहलाता है। यह त्याग भी कर्मों के आस्रव-निरोध रूप संवर का कारण होता है।

(૯) ત્યાગ—રજોહરણ, પાત્ર, ઉપધિ, શરીર, અન્ન-પાણી, આદિ બાહ્ય પદાર્થોના તથા મન વચન કાયાના દૂષિત વ્યાપાર અને ક્રોધ વગેરે આંતરિક દોષોનો પરિહાર કરવો ત્યાગ છે. આ ત્યાગ સંવરનું કારણ બને છે. ત્યાગી પુરૂષ, સંયમના કારણ હોવાને લીધે, રજોહરણ વગેરે ધારણ કરે છે, રાગાદિથી યુક્ત થઈને માત્ર શોભા ખાતર નહીં આ પ્રકારે બાહ્ય અને આભ્યંતર ઉપકરણ આદિ વિષયક પરિગ્રહ રૂપ ભાવદોષનો સર્વથા ત્યાગ આસ્રવ દ્વારને બંધ કરી દે છે. આ રીતે શરીર તથા ધર્મોપકરણ આદિમાં ભાવદોષ રૂપ આસક્તિનો પરિત્યાગ કરીને મમત્વથી રહિત થઈ જવું ત્યાગ સમજવો ઘટે. ઉક્ત પ્રકારથી ભાવદોષનો ત્યાગ કરીને રજોહરણ પાત્ર આદિ બાહ્ય ઉપકરણોનો ઉપભોગ કરતો થકો પણ તે ત્યાગી જ ગણાય છે. આ ત્યાગ પણ કર્માસ્રવ-નિરોધ રૂપ સંવરનું કારણ હોય છે.

मैथुनपरिवर्जनरूपब्रह्मचर्यं परिपालनमपि तथाविधसंवरस्य हेतुर्भवति १० तथा चैते क्षान्त्यादयो दश श्रमणधर्माः कर्मास्रवनिरोधलक्षणसंवरहेतवो भवन्तीति बोध्यम् । उक्तञ्च-समवायाङ्गे १० समवाये 'दसविहे समण धम्मे' तं जहा-खंती १ मुत्ती २ अज्जवे ३ मद्दवे ४ लाघवे ५ सच्चे ६ संजमे ७ तवे ८ चियाए ९ बंभचेरवासे १० इति, दशविधः श्रमणधर्मः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-क्षान्तिः मुक्तिः आर्जवम् मार्दवम् लाघवम्-सत्यम्-संयमः-तपः-त्यागः-ब्रह्मचर्यवासः ।५।

मूलम्-अणुप्पेहा अणिच्चाइ बारस भावणारूवा ॥६॥

छाया—'अनुप्रेक्षाऽनित्यादि द्वादश भावनारूपा-॥६॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वं तावत्-कर्मास्रवनिरोधलक्षणसंवरस्य सप्तमतत्त्वस्य हेतुभूतेषु समिति-गुप्तिधर्माऽनुप्रेक्षा-परीषहजय-चारित्रेषु सप्तसु क्रमशः समिति-

---

(१०) ब्रह्मचर्य—सर्वथा मैथुन-त्याग रूप ब्रह्मचर्य का पालन भी संवर का कारण है)

इस प्रकार क्षान्ति आदि दश श्रमणधर्म संवर के कारण होते हैं। समवायांगसूत्र के दसवें समवाय में कहा है-

'श्रमणधर्म दस प्रकार का कहा गया है, यथा-(१) क्षान्ति (२) मुक्ति (३) आर्जव (४) मार्दव (५) लाघव (६) सत्य (७) संयम (८) तप (९) त्याग और (१०) ब्रह्मचर्यवास ।.५॥

'अणुप्पेहाअणिच्चाइ' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—अनित्य आदि बारह प्रकार की भावनाएं अनुप्रेक्षा कहलाती हैं ॥६॥

तत्त्वार्थदीपिका—इससे पूर्व कर्म के आस्रव के निरोध स्वरूपवाले सातवें तत्त्व संवर के जो कारण समिति, गुप्ति धर्म, अनुप्रेक्षा, परी-

---

(૧૦) બ્રહ્મચર્ય—સર્વથા મૈથુન-ત્યાગરૂપ બ્રહ્મચર્યનું પાલન પણ સંવરનું કારણ છે.

આ રીતે ક્ષાન્તિ આદિ દશ શ્રમણ ધર્મ સંવરના કારણો હોય છે. સમવાયાંગસૂત્રના દશમાં સમવાયમાં કહ્યું છે-શ્રમણધર્મ દસ પ્રકારનો કહેવામાં આવ્યો છે જેમકે-(૧) ક્ષાન્તિ (૨) મુક્તિ (૩) આર્જવ (૪) માર્દવ (૫) લાઘવ (૬) સત્ય (૭) સંયમ (૮) તપ (૯) ત્યાગ અને (૧૦) બ્રહ્મચર્યવાસ ॥૫॥

'अणुप्पेहा अणिच्चाइ बारस भावणारूवा' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-અનિત્ય આદિ બાર પ્રકારની ભાવનાઓ અનુપ્રેક્ષા કહેવાય છે. ।૬।

તત્ત્વાર્થદીપિકા—આની પહેલા કર્મના આસ્રવના નિરોધ સ્વરૂપવાળા સાતમાં તત્વ સંવરના જે કારણો સમિતિ, ગુપ્તિ ધર્મ અનુપ્રેક્ષા

गुप्तिधर्मा इत्येते त्रयो भेदा लक्षणतः प्ररूपिताः सम्प्रति क्रमप्राप्ता मनुप्रेक्षां संवरहेतुभूतां प्ररूपयितुमाह-'अणुप्पेहा अणिच्चाइ बारसभावणा रूपा' इति अनुप्रेक्षाऽनित्यादि द्वादशभावनारूपा, अनित्यस्य १ आदिना अशरणस्य २ संसारस्य ३ एकत्वस्य ४ अन्यत्वस्य ५ अशुचित्वस्य ६ आस्रवस्य ७ संवरस्य ८ निर्जरायाः ९ लोकस्य १० बोधिदुर्लभस्य ११ धर्मसाधकार्हत्वस्य १२ इत्येवं द्वादशानां भावनाऽनुचिन्तनम्, तद्रूपा अनुप्रेक्षा व्यपदिश्यते। एवञ्चाऽनित्यताऽनुप्रेक्षा अशरणानुप्रेक्षा संसारानुप्रेक्षा एकत्वानुप्रेक्षाऽन्यत्वानुप्रेक्षाऽशुचित्वानुप्रेक्षाऽऽस्त्रवानुप्रेक्षा संवरानुप्रेक्षा निर्जरानुप्रेक्षा लोकानुप्रेक्षा बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा धर्मसाधकार्हत्वानुप्रेक्षाः इत्येवं द्वादशविधानुप्रेक्षा संवरस्य हेतवो भवन्ति।

षहजय और चारित्र कहे गये थे, उनमें से समिति, गुप्ति और धर्म का निरूपण किया गया, अब अनुक्रम से प्राप्त अनुप्रेक्षा का प्ररूपण किया जाता है-

अनित्य आदि बारह भावनाएं अनुप्रेक्षा हैं। सूत्र में प्रयुक्त 'आदि' शब्द से अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्मसाधकार्हत्व का ग्रहण होता है। इन बारह भावनाओं का पुनः पुनः चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। इस प्रकार (१) अनित्यत्वानुप्रेक्षा (२) अशरणत्वानुप्रेक्षा (३) संसारानुप्रेक्षा (४) एकत्वानुप्रेक्षा (५) अन्यत्वानुप्रेक्षा (६) अशुचित्वानुप्रेक्षा (७) आस्रवानुप्रेक्षा (८) संवरानुप्रेक्षा (९) निर्जरानुप्रेक्षा (१०) लोकानुप्रेक्षा (११) बोधिदुर्लभत्वानुप्रेक्षा और (१२) धर्मसाधकार्हत्वानुप्रेक्षा, ये बारह अनुप्रेक्षाएं संवर का कारण हैं। इन अनुप्रेक्षाओं का

પરીષહજય અને ચારિત્ર કહેવામાં આવ્યા હતા તેમાંથી સમિતિ, ગુપ્તિ અને ધર્મનું નિરૂપણ કરવામાં આવી ગયું, હવે ક્રમ પ્રાપ્ત અનુપ્રેક્ષાનું વિવેચન કરવામાં આવી રહ્યું છે.

અનિત્ય આદિ બાર ભાવનાઓ અનુપ્રેક્ષા છે. સૂત્રમાં પ્રયુક્ત 'આદિ' શબ્દથી અશરણ, સંસાર એકત્વ અન્યત્વ, અશુચિત્વ, આસ્રવ, સંવર, નિર્જરા લોક, બોધિદુર્લભ અને ધર્મસાધકત્વનું ગ્રહણ થાય છે. આ બારેનું વારંવાર ચિન્તન કરવું અનુપ્રેક્ષા છે. આવી રીતે (૧) અનિત્યત્વાનુપ્રેક્ષા (૨) અશરણત્વાનુપ્રેક્ષા (૩) સંસારાનુપ્રેક્ષા (૪) એકત્વાનુપ્રેક્ષા (૫) અન્યત્વાનુપ્રેક્ષા (૬) અશુચિત્વાનુપ્રેક્ષા (૭) આસ્રવાનુપ્રેક્ષા (૮) સંવરાનુપ્રેક્ષા (૯) નિર્જરાનુપ્રેક્ષા (૧૦) લોકાનુપ્રેક્ષા (૧૧) બોધિદુર્લભત્વાનુપ્રેક્ષા અને (૧૨) ધર્મસાધકાર્હત્વાનુપ્રેક્ષા આ બાર અનુપ્રેક્ષાઓ સંવરના કારણો છે. આ અનુપ્રેક્ષાઓનું

तत्राऽऽत्मनो ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावाद् अन्यन्न किञ्चित् समुदितं वस्तु ध्रुवमस्ति, इमानि खलु शरीरेन्द्रियविषयशब्दरूपगन्धरसस्पर्शवनिताद्युपभोगपरिभोग-द्रव्याणि समुदायरूपाणि जल बुद्बुदवदनवस्थितस्वभावा निवर्तन्ते, मोहविभ्र-माद्वाऽज्ञो जनो नित्यत्वं मन्यते इत्येवं खल्वनुचिन्तनम् अनित्यानुप्रेक्षा बोध्या एवं खलु चिन्तयतः शरीरादिषु ममत्वलक्षणाऽभिष्वङ्गाभावात् भुक्तोज्झित गन्ध माल्यादिष्विव वियोगकालेऽपि विवेकभ्रंशलक्षणो विनिपातो नोत्पद्यते १ एवं मरणकाले मित्रबान्धवपुत्रकलत्रादयोऽपि परित्रातुं न समर्थाः 'धर्म एव केवलमेकशरणं नाऽन्यत्, इत्येवं भावना अशरणानुप्रेक्षा, एवं खलु भावयतो

स्वरूप निम्नलिखित है-

(१) अनित्यत्वानुप्रेक्षा- ज्ञानदर्शनरूप उपयोग स्वभाववाले आत्मा के अतिरिक्त कोई भी अन्य समुदित वस्तु स्थायी नहीं है। यह शरीर एवं इन्द्रियों के विषय शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श, वनिता आदि जो भी उपभोग-परिभोग के साधन हैं, सभी जल के बुल बुले के समान विनाशशील हैं। अपनी मूढता एवं विभ्रम के कारण ही अज्ञानी जन इन्हें नित्य मान ते हैं, ऐसा चिन्तन करना अनित्यत्वानु-प्रेक्षा है। इस प्रकार के चिन्तन से शरीर आदि संबंधी ममता और आसक्ति का अभाव हो जाता है और जैसे भोग कर फेंकी हुई माला आदि के वियोग से दुःख नहीं होता, उसी प्रकार शरीर आदि के वियोग के समय भी दुःख नहीं होता।

(२) अशरणत्वानुप्रेक्षा—मनुष्य के मस्तक पर जब मृत्यु मंडराती है तब मित्र, बान्धव, पुत्र, कलत्र आदि कोई भी त्राण करने में समर्थ

સ્વરૂપ નીચે જણાવ્યા મુજબનું છે.—

(૧) અનિત્યત્વાનુપ્રેક્ષા—જ્ઞાન-દર્શન રૂપ ઉપયોગ સ્વભાવવાળા આત્મા સિવાય કોઈપણ અન્ય સમૂદિત વસ્તુ કાયમી નથી. આ શરીર અને ઇન્દ્રિ-યોના વિષય શબ્દ રૂપ, ગંધ, રસ, સ્પર્શ, સ્ત્રી વગેરે જેટલા પણ ઉપભોગ-પરિભોગના સાધનો છે, એ બધાં જ પાણીના પરપોટાની જેમ ક્ષણભંગુર છે. પોતાની મૂઢતા તથા વિભ્રમના કારણે જ અજ્ઞાની પુરૂષ આને નિત્ય માને છે, આવી જાતનું ચિન્તન કરવું તે અનિત્યત્વાનુપ્રેક્ષા છે. આ પ્રકારના ચિન્તનથી શરીર આદિ સંબંધી મમતા અને આસક્તિનો અભાવ થઈ જાય છે અને જેમ એકવાર વાપરીને ફેંકી દીધેલી માળા વગેરેના વિયોગથી જેમ દુઃખ થતું નથી તેવી જ રીતે શરીર આદિના વિયોગના સમયે પણ દુઃખ થતું નથી.

(૨) અશરણત્વાનુપ્રેક્ષા—મનુષ્યના માથા ઉપર જ્યારે મૃત્યુ ડોકિયું

नित्यमहमशरणोऽस्मीति भृशमुद्विग्नस्य संसारिकभावेषु निर्ममत्व मुपजायते 'अर्हत्प्रणीतमेव मार्गं प्रतिपद्यते २ एवं पूर्वोपार्जितकर्मविपाकवशादात्मनो भवान्तरावाप्तिः संसार उच्यते तस्मिन् संसारे जीवो नट इव रङ्गभूमौ मातृपितृभ्रातृदासस्वामित्व नानाविधभूमिकामासाद्य जन्ममरणयन्त्रणा मनु भवन् भवाद्भवान्तरं परिभ्रमति, किमधिकेन स्वयमप्यात्मनः पुत्रो भवति इत्येवं संसार स्वभावानुचिन्तनं संसारानुप्रेक्षाः । उक्तञ्चोत्तराध्ययने ऊनविंशत्यध्ययने

नहीं होते। उस अवसर पर एक मात्र धर्म ही शरणभूत होता है, अन्य कोई भी नहीं, इस प्रकार का चिन्तन करना अशरणत्वानुप्रेक्षा है। जो इस प्रकार का चिन्तन करता रहता है वह 'मैं शरणहीन हूं' ऐसा सोच कर अत्यन्त विरक्त हो जाता है और सांसारिक पदार्थों के विषय में उसका ममत्व नहीं रहता। वह अर्हन्त भगवान् द्वारा प्रतिपादित मार्ग का ही अवलम्बन लेता है।

(३) संसारानुप्रेक्षा--पूर्वोपार्जित कर्मविपाक के अनुसार भवान्तर की प्राप्ति को संसार कहते हैं। संसारी जीव इस संसार में, रंगभूमि में नट के समान माता, पिता, भ्राता, दास, स्वामी आदि की विविध प्रकार की भूमिकाएं (पार्ट) प्राप्त करता हुआ जन्म-मरण की यंत्रणाएं भुगत रहा हैं। एक भव का त्याग करके दूसरे भव में जाता है। अधिक क्या कहा जाय, वह आप ही अपना पुत्र बन जाता है। इस प्रकार संसार के स्वभाव का विचार करना संसारानुप्रेक्षा है। उत्तराध्ययनसूत्र के उन्नीसवें अध्ययन की बारहवीं गाथा में कहा है।

કરે છે ત્યારે મિત્ર, ભાઈ, પુત્ર, પત્ની વગેરે કોઈ પણ તેને બચાવવા સમર્થ થતાં નથી. આ અવસરે એકમાત્ર ધર્મ જ તેના રક્ષણાર્થે આવીને ઉભો રહે છે, બીજું કોઈ જ નહીં, આ જાતની ભાવના કેળવવી અશરણત્વાનુપ્રેક્ષા છે જે આ પ્રકારનું ચિન્તન કરતો રહે છે તે 'હું શરણ વગરનો છું' એમ વિચારીને અત્યન્ત વિરક્ત થઈ જાય છે અને સાંસારિક પુદ્ગલોના વિષયમાં તેનું મમત્વ રહેતું નથી. તે અર્હન્ત ભગવાન્ દ્વારા પ્રતિપાદિત માર્ગનો જ આશરો લે છે.

(૩) સંસારાનુપ્રેક્ષા—પૂર્વોપાર્જિત કર્મ વિપાક અનુસાર ભવાન્તરની પ્રાપ્તિને સંસાર કહે છે. સંસારી જીવ આ સંસારમાં રંગભૂમિના નટની માફક માતા, પિતા, ભ્રાતા, દાસ, સ્વામી આદિની જુદી જુદી ભૂમિકાઓ (પાર્ટ) પ્રાપ્ત કરતો થકો જન્મ-મરણથી વિટંબણાઓ ભોગવી રહ્યો છે. એક ભવનો ત્યાગ કરીને બીજા ભવમાં જાય છે. વધારે શું કહેવું ? તે પોતે જ પોતાનો પુત્ર બની જાય છે. આ રીતે સંસારના સ્વભાવનો વિચાર કરવો સંસારાનુપ્રેક્ષા છે. ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રના ઓગણીસમાં અધ્યયનની બારમી ગાથામાં કહ્યું છે—

द्वादशगाथासु 'इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं, असुइसंभवं। असासया वासमिणं, दुक्खकेसाणभायणं' (छाया) इदं शरीर मनित्यम्, अशुचि, अशुचि-सम्भवम्, अशाश्वतावासमिदं दुःखक्लेशानां भाजनम्, इति अन्यत्राप्युक्तम्

धी संसारो जम्मिय, जुवाणओ परमरूवगव्वियओ।
मरिऊण जायइ किमी, तत्थेव कडेवरे नियए ॥१॥

धिक् संसारो यस्मिश्च युवकः परमरूपगर्वितः।
मृत्वा जायते कृमिः तत्रैव कलेवरे निजके ॥१॥ इति,

एवं भावयतः संसारभयाद् उद्विग्नस्य वैराग्यमुत्पद्यते, संसाराद् विरक्तश्च तद्दुःखप्रहाणाय प्रयतते ३ एवं जन्मजरामरणपरम्परानुवृत्तिजन्यमहापीडानुभवम् एकाक्यहमेव कर्तुं शक्नोमि, न तदर्थं कश्चिदन्यो मे स्वो वा परो वा सहायो

'यह शरीर अनित्य है, अशुचि है और अशुचि पदार्थों से-रज-वीर्य आदि से, इसकी उत्पत्ति हुई है। यह अस्थायी आवास है-थोडे दिन इसमें टिक कर चल देना है? यह दुःखों और क्लेशों का भाजन है अर्थात् विविध प्रकार के कष्ट इस शरीर की बदौलत ही इस जीव को भोगने पडते हैं।

अन्यत्र भी कहा है-'इस संसार को धिक्कार है जिसमें अपने रूप सौन्दर्य से गर्विष्ट बना हुआ पुरुष युवावस्था में ही मरण को प्राप्त होकर उसी अपने कलेवर में कीडे के रूप में पैदा हो जाता है। ऐसी भावना करनेवाला पुरुष संसार के भय से उद्विग्न हो जाता है और संसार से विरक्त होकर संसारिक दुःखों का अन्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है।

(४) एकत्व—जन्म, जरा और मरण के प्रवाह में उत्पन्न होने

આ શરીર અનિત્ય છે, અપવિત્ર છે અને મલીન પદાર્થોથી રજ—વીર્ય વગેરેથી, એનું સર્જન થયું છે. આ કામચલાઉ આવાસ છે—થોડા દિવસો સુધી એમાં રહીને નિકળી જવાનું છે. આ શરીર દુઃખો તથા કલેશોનું પાત્ર છે અર્થાત્ વિવિધ પ્રકારનાં કષ્ટ આ શરીરને લીધે જ બીચારા જીવને ભોગવવા પડે છે.

અન્યત્ર પણ કહ્યું છે—ધિક્કાર છે આ સંસારને કે જેમાં પોતાના રૂપ સૌન્દર્યથી ગર્વિષ્ઠ બનેલો પુરૂષ યુવાવસ્થામાં જ મરણને પ્રાપ્ત થઇને તે જ પોતાના કલેવરમાં કીડા સ્વરૂપે ઉત્પન્ન થઈ જાય છે આ જાતની ભાવના કરનારો પુરૂષ સંસારની માયાજાળથી ઉદ્વિગ્ન થઇ જાય છે, અને સંસારથી વિરક્ત થઈને સાંસારિક દુઃખોનો અંત કરવા માટે પ્રયત્નશીલ બને છે.

(૪) એકત્વ—જન્મ જરા અને મરણના પ્રવાહમાં ઉત્પન્ન થનારી ઘોર

वर्तते, एकाकी एवाहं जातः एक एव म्रिये च, न कश्चित्स्वजनः परजनो-वाऽऽधिव्याधिजरामरणादीनि दुःखान्यपहर्तुं मम समर्थः, सुहृद्बान्धवादयो-ऽपि श्मशानभूमिपर्यन्तमेव गच्छन्ति केवलं धर्म एव मे सहायोऽनपायो वर्तते, एवं चिन्तनमेकत्वानुप्रेक्षा। उक्तञ्च–

'एगोहं नत्थि मे कोइ नाहमन्नस्स कस्स वि।
एवं अदीण मणसा अप्पाण मणुसासए ॥१॥

(छाया)-एकोऽहं नास्ति मे कोऽपि-नाह मन्यस्य कस्यचित्।
एवम्-अदीनमनसा-आत्मान मनुशासयेत् ॥१॥ पुनरप्युक्तम्

'द्रव्याणि भूमौ, पशवश्च गोष्ठ्यां भार्या गृहद्वारि जनो श्मशाने।
देह श्चितायां परलोकवासे-धर्माऽनुगो गच्छति जीव एकः ॥१॥ इति

वाली घोर पीडा का अनुभव मुझे अकेले को ही करना पडता है। उसमें कोई भी अपना-पराया सहायक नहीं होता। मैं अकेला ही जन्मा हूं, अकेला ही मरूंगा, कोई स्वजन अथवा परिजन मेरे आधि, व्याधि, जरा मरण आदि दुःखों को दूर करने में समर्थ नहीं है। मित्र और बन्धु-बान्धव भी अधिक से अधिक श्मशान भूमि तक ही साथ जाते हैं। एक मात्र धर्म ही सच्चा सहायक-साथी है। ऐसा चिन्तन करना एकत्वानुप्रेक्षा है। कहा भी हैं–

'मैं एकाकी हूं। मेरा कोई नहीं है और न मैं किसी का हूं इस प्रकार दैन्य हीन मन से अपनी आत्मा पर अनुशासन करे।'

और भी कहा है-'जब जीव मृत्यु के चंगुल में पड़ता है तब धन-दौलत धरती में दबी रह जाती हैं, पशु वाडे में बंद रह जाते है,

---

પીડાનો અનુભવ મારે એકલાને જ કરવો પડે છે. તેમાં કોઈ પણ પોતાના કે પારકા સહાયક બનતાં નથી હું એકલો જ જન્મ્યો છું, એકલો જ મરણ પામીશ કોઈ સ્વજન અથવા પરજન મારા આધિ, વ્યાધિ જરા (ઘડપણ) મરણ વગેરે દુઃખોને દૂર કરવા માટે સમર્થ નથી. મિત્ર તથા ભાઈ-સ્નેહીઓ પણ બહુ-બહુ તો શ્મશાનભૂમિ સુધી જ સાથે આવે છે. એક માત્ર ધર્મ જ સાચો સહાયક-મિત્ર છે. આ જાતનું ચિન્તન કરવું એકત્વાનુપ્રેક્ષા છે-કહ્યું પણ છે-હું એકાકી છું. મારૂં કોઈ નથી અને હું કોઈનો નથી. આ રીતે દૈન્યહીન મનથી પોતાના આત્મા પર અનુશાસન કરવું. આગળ પણ કહ્યું છે-જ્યારે જીવ મૃત્યુની પકડમાં આવે છે ત્યારે ધન-દોલત જમીનમાં દાટેલાં જ રહી જાય છે, પશુ વાડામાં બાંધેલા જ રહી જાય છે. પત્ની ઘરના દ્વાર સુધી અને સ્વજન શ્મશાન સુધી સહારો આપે છે. શરીર ચિતા સુધી સાથ

एवं खलु भावयतः स्वजनकुटुम्बपरिवारादिषु प्रीत्यनुबन्धो ममत्वञ्च नोत्पद्यते, परजनेषु द्वेषानुबन्धश्च न जायते, ततोहि-निःसङ्गता मभ्युपगच्छन् मोक्षायैव चेष्टते-४ एवं-शरीरेन्द्रियादिभ्य आत्मनोऽन्यत्वचिन्तनम् अन्यत्वानुप्रेक्षा-उच्यते, पौद्गलिकशरीरादहं चेतनोऽन्य एव शरीरमनित्यम्, अहं तु नित्यः, अज्ञं शरीरम्, अहन्तु ज्ञोऽस्मि, शरीरं सादिनिधनम्, अहं पुनरनादिरनिधनः बहूनि मे शरीराणि व्यतीतानि संसारकान्तारं परिभ्रमतः। एव मिन्द्रियादि-

पत्नी घर के द्वार तक और स्वजन श्मशान तक साथ देते हैं। देह चिता तक साथ देती है। परलोक की ओर प्रयाण करते समय इनमें से कोई साथी नहीं बनता। एक मात्र धर्म ही उस समय साथ जाता है।'

इस प्रकार विचार करने से स्वजनों तथा कुटुम्ब-परिवार आदि के प्रति प्रीति नहीं उत्पन्न होती-ममता हट जाती है और पर-जनों पर द्वेष नहीं होता। इस कारण ऐसा विचार करने वाला निःसंगता को अंगीकार करके मोक्ष के लिए प्रयत्न करता है।

(५) अन्यत्वानुप्रेक्षा—शरीर और इन्द्रियों आदि से आत्मा की भिन्नता का चिन्तन करना अन्यत्वानुप्रेक्षा है। शरीर अचेतन है, मैं चेतन हूं। शरीर अनित्य है मैं नित्य हूं, शरीर अज्ञानमय है, मैं ज्ञानमय हूं, शरीर की आदि है-अन्त है, मैं अनादि अनिधन हूं। इस संसार -अटवी में भ्रमण करते करते मैंने बहुतेरे शरीर धारण करके त्यागे हैं। इसी प्रकार इन पुद्गलमय और अनित्य इन्द्रियों से भी-मैं भिन्न

આપે છે. પરલોકની યાત્રા તરફ પ્રયાણ કરતા સમયે આમાંનું કોઈ સાથી બનતું નથી. એક માત્ર ધર્મ જ સાથે જાય છે.

આવી રીતે વિચાર કરવાથી સ્વજનો તથા કુટુંબ-પરિવાર આદિ તરફ પ્રીતિ ઉત્પન્ન થતી નથી-મમતા ચાલી જાય છે અને અન્ય માણસો તરફ દ્વેષભાવ થતો નથી. આ જાતનો વિચાર કરનારો નિઃસંગતાને ધારણ કરીને મોક્ષ પ્રાપ્તિ માટે જ પ્રયત્ન કરે છે.

(૫) અન્યત્વાનુપ્રેક્ષા-શરીર અને ઈન્દ્રિયો આદિથી આત્માની ભિન્નતાનું ચિન્તન કરવું અન્યત્વાનુપ્રેક્ષા છે, શરીર અચેતન છે, હું ચેતન છું, શરીર અનિત્ય છે, હું નિત્ય છું, શરીર અજ્ઞાનમય છે, હું જ્ઞાનવંતો છું, શરીરની આદિ છે-અન્ત છે, હું અનાદિ અનન્ત છું, આ સંસાર-અટવીમાં ભમણુ કરતા કરતા મેં ઘણી જાતના શરીરો ધારણ કર્યા છે અને ત્યાગ પણ કર્યા છે એ જ રીતે આ પુદ્ગલમય અને અનિત્ય ઈન્દ્રિયોથી પણ હું નોખો છું.

भ्योऽपि पौद्गलिकेभ्योऽनित्यादिभ्यः खल्वहं भिन्न एवास्मि, यदा च-स्वशरीरादिभ्योऽपि मेऽन्यत्वं वर्तते-तदा किमुत वक्तव्यम् बाह्यपरिग्रहेभ्यः-३ इत्येवं भावयतः खलु मनः समादधतः शरीरादिषु स्पृहा नोपजायते, ततश्चात्मज्ञानभावनापूर्वकनिर्वेदमकर्षे सति आत्यन्तिकमोक्षसुखप्राप्तिस्तस्य भवति ५ एवं-शरीरमिदमत्यन्ताशुचिस्थानं वर्तते। शुक्रशोणितसमुद्भूतत्वात्-मूत्रपुरीषादियुक्तत्वाच्च स्नानानुलेपनादि सिरप्यस्याप्यशुचित्वं नापहर्तुं शक्यते सम्यग्दर्शनादिकं पुनर्भाव्यमानं जीवस्यात्यन्तिकीं शुद्धिमाविर्भावयति, इत्येवं तत्त्वतो विचारणम्-अशुचित्वानुप्रेक्षा, एवं संस्मरणं कुर्वतः शरीरादिष्वसङ्गता-

---

हूँ। जब अपने शरीर आदि से भी मेरी भिन्नता है तो बाह्य वस्तुओं का तो कहना ही क्या है! शरीर ही मेरा नहीं तो अन्य पदार्थ मेरे कैसे हो सकते हैं! ऐसी भावना करने वाले और मन का समाधान करने वाले पुरुष को शरीर आदि में स्पृहा नहीं रहती। ऐसी स्थिति में आत्मज्ञान की भावना उत्पन्न होकर वैराग्य की वृद्धि होती है और तब जीव मोक्ष के आत्यन्तिक सुख को प्राप्त करता है।

(६) अशुचित्वानुप्रेक्षा—यह शरीर अत्यन्त ही अशुचि का स्थान है। रज और वीर्य से उत्पन्न होने के कारण तथा मल-मूत्र आदि गंदी वस्तुओं से युक्त होने के कारण, कितना ही स्नान और विलेपन क्यों न किया जाय मगर इसकी गंदगी दूर नहीं हो सकती। सम्यग्दर्शन आदि की भावना की जाय तो जीव की आत्यन्तिक शुद्धि उत्पन्न होती है। इस प्रकार चिन्तन करना अशुचित्वभावना

જ્યારે મારા શરીર આદિથી પણ મારી ભિન્નતા છે તો પછી બાહ્ય વસ્તુઓનું તો કહેવું જ શું? જો શરીર મારૂં પોતાનું નથી તો અન્ય પદાર્થો મારા કેવી રીતે હોઈ શકે? એવી ભાવના ભાવનાર અને મનનું સમાધાન કરનારા પુરૂષને શરીર આદિમાં સ્પૃહા રહેતી નથી. આવી સ્થિતિમાં આત્મજ્ઞાનની ભાવના ઉત્પન્ન થવાથી વૈરાગ્યની વૃદ્ધિ થાય છે ત્યારે જીવ મોક્ષના આત્યન્તિક સુખને પ્રાપ્ત કરે છે.

(૬) અશુચિત્વાનુપ્રેક્ષા–આ શરીર પુષ્કળ ગંદકીનું સ્થાન છે. રજ તથા વીર્યથી ઉત્પન્ન થવાથી તથા મળ–મૂત્ર વગેરે ગંદી વસ્તુઓથી યુક્ત હોવાના લીધે, કેટલીએ વાર સ્નાન તથા વિલેપન કરીએ તો પણ આ શરીરની ગંદકી દૂર થતી નથી–થઈ શકતી નથી–સમ્યકૂદર્શન વગેરેની ભાવના કરવામાં આવે તો જીવની આત્યન્તિક શુદ્ધિ ઉત્પન્ન થાય છે. આવું ચિન્તન કરવું અશુ-

ऽऽविर्भवति, विरक्तश्च-भवार्णवोत्तरणाय समाहितचित्तो भवति ६ इन्द्रियकषाय क्रोधमानमायालोभप्राणातिपातादयः कर्मास्रवकारणरूपाः सन्ति, स्पर्शनादीनि-इन्द्रियाणि पतङ्गमातङ्गकुरङ्गभृङ्गमीनादीन् प्राणिनो बन्धव्यसनार्णवे पातयन्ति, कषायादयोऽपि वधबन्धपरिक्लेशादीन् उत्पादयन्ति नरकादिगतिषु च नानाविधदुःखप्रज्वलितासु परिभ्रमयन्ति, इत्येवमास्रवदोषानुचिन्तन मास्रवानुप्रेक्षा-उच्यते, एवं भावादयः क्षमादिषु श्रेयस्त्वभावो न प्रच्युतो भवति, सर्वएते-भास्रवदोषाः कूर्मवत् संवृतात्मनो न सम्भवन्ति-७ एवं-संवरगुणा

है। जो ऐसा चिन्तन करता है, वह शरीर आदि के प्रति ममत्वहीन बन जाता है और विरक्त होकर संसार-सागर से पार होने के लिए उद्यत हो जाता है।

(७) आस्रवानुप्रेक्षा—इन्द्रियाँ, क्रोध मान माया लोभ रूप कषाय और प्राणातिपात आदि कर्म के आस्रव के कारण हैं। ये स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ पतंग, मातंग (हाथी) कुरंग (हिरण), भृंग (भ्रमर) और मीन आदि प्राणियों को बन्धन के दुःख सागर में पटकती हैं। कषाय आदि भी वध, बन्धन आदि के क्लेशों को उत्पन्न करते हैं और नाना प्रकार के दुःखों से प्रज्वलित नरक आदि गतियों में परिभ्रमण कराते हैं। इस प्रकार आस्रव के दोषों का विचार करना आस्रवानुप्रेक्षा है। जो इस प्रकार विचार करता है उसके चित्त में से क्षमा आदि प्रति श्रेयस्करता का भाव च्युत नहीं होता। जो अपने आपको कूर्म के समान संवृत (संवर युक्त) कर लेता है, उसमें

ચિત્વભાવના છે. જે આ જાતનું ચિન્તવન કરે છે તે શરીર વગેરે પ્રતિ મમત્વહીન બની જાય છે અને વિરક્ત થઈને સંસાર-સાગર તરી જવા માટે તત્પર થઈ જાય છે.

(૭) આસ્રવાનુપ્રેક્ષા-ઈન્દ્રિયો, ક્રોધ માન માયા લોભ રૂપ કષાય અને પ્રાણાતિપાત આદિ, કર્મના આસ્રવના કારણ છે. આ સ્પર્શન વગેરે ઇન્દ્રિયો પતંગ (પતંગીયું) માતંગ (હાથી) કુરંગ (હરણ), ભૃંગ (ભમરો) અને મીન (માછલી) વગેરે પ્રાણીઓને બન્ધનના દુઃખસાગરમાં ફેંકે છે. કષાય આદિ પણ વધ, બન્ધન આદિના કલેશોને ઉત્પન્ન કરે છે અને જુદા જુદા પ્રકારના દુઃખોથી પ્રજ્વલિત નરક આદિ ગતિઓમાં પરિભ્રમણ કરે છે. આ રીતે આસ્રવના દોષોનો વિચાર કરવો આસ્રવાનુપ્રેક્ષા છે. જે આ રીતે વિચાર કરે છે તેના મનમાંથી ક્ષમા આદિ પ્રત્યે શ્રેયસ્કરતાની ભાવનામાં ખોટ આવતો નથી. જે પોતે-પોતાને કાચબાની માફક સંવૃત (સંવરયુક્ત) કરી

गुणानुचिन्तनं-संसरानुप्रेक्षा, यथा-समुद्रे नावो विवरपिधानाभावे क्रमशो विवरतः प्रविष्टजलाभिप्लवे सति नावारूढानामवश्यं विनाशो भवेत् विवरपिधानेतु-निरुपद्रवमिष्टदेशान्तरप्राप्तिः एवं कर्मागमास्रवद्वारसंवरणे सति श्रेयः-प्रतिबन्धो न भवति। उक्तञ्चो-त्तराध्ययने-'जा उ अस्साविणी नावा न सा पारस्स गामिणी जो य निस्सविणीनावा सा उ पारस्स गामिणी ॥७१॥ (अध्ययने-२३) या तु-आसाविणी नौका न सा पारस्य गामिणी। या च निःस्राविणी नौका सा तु पारस्य गामिनी ॥१॥ इति, एवं भावयतः संवरे कर्मास्रव-

पूर्वोक्त आस्रवदोष का संभव नहीं होते।

(८) संवरोनुप्रेक्षा--संवर के गुणों का चिन्तन करना संवरानुप्रेक्षा है। समुद्र में कोई छिद्रोंवाली नौका हो और उसके छिद्रों को अगर बंद न कर दिया जाय तो छिद्रों द्वारा उसमें जल का प्रवेश होता है और उस पर सवार लोग अवश्य ही विनाश को प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत यदि छिद्र बंद कर दिये जाए तो विना किसी उपद्रव के इष्ट मंजिल तक पहुंचा जा सकता है। इसी प्रकार कर्मों के आगमनद्वार-आस्रव को यदि रोक दिया जाय तो श्रेयस् की प्राप्ति में किसी प्रकार की रुकावट नहीं होती। उत्तराध्ययन में कहा है-

'जो नौका छिद्रों वाली होती है वह पारगामिनी नहीं होती। किन्तु जो नौका छिद्ररहित होती है वह पार पर्यन्त पहुंचने वाली होती है। (अध्ययन २३)

जो इस प्रकार की भावना करता है वह सदैव संवर में परायण

લે છે, તેનામાં પૂર્વોક્ત આસ્રવ દોષની શકયતા રહેતી નથી.

(૮) સંવરાનુપ્રેક્ષા—સંવર ગુણોનું ચિન્તન કરવું સંવરાનુપ્રેક્ષા છે. સમુદ્રમાં કોઈ છિદ્રોવાળી નૌકા હોય અને તેના છિદ્રોને જો પુરી ન દેવામાં આવે તો છિદ્રો દ્વારા તેમાં જળનો પ્રવેશ થાય છે અને તેમાં બેઠેલાં પ્રવાસીઓ અવશ્ય વિનાશને પ્રાપ્ત થાય છે. આથી ઉલ્ટું, જો છિદ્ર પુરી નાખવામાં આવે તો કોઈ પ્રકારના ઉપદ્રવ વગર નિશ્ચિત સ્થાન સુધી પહોંચી શકાય છે. એવી જ રીતે કર્મોના આગમનદ્વાર-આસવને જો રોકી દેવામાં આવે તો શ્રેયસની પ્રાપ્તિમાં કોઇ પ્રકારનો અવરોધ આવતો નથી. ઉત્તરાધ્યયનમાં કહ્યું છે-જે નૌકા છિદ્રોવાળી હોય છે તે પારગામિની હોતી નથી પરંતુ જે નૌકા છિદ્રરહિત હોય છે, તે કાંઠા સુધી પહોંચવાવાળી હોય છે. (અધ્યયન ૨૩) જે આ પ્રકારની ભાવના ભાવે છે તે હમેશાં સંવરમાં રત

निरोधलक्षणे सततोद्युक्तता भवति निःश्रेयसपदप्राप्तिश्चेति ८ एवं–निर्जरायाः गुणदोषभावनं निर्जरानुप्रेक्षा निर्जरा च कर्मफल–विपाकजन्या द्विविधा अबुद्धि पूर्वा, कुशलमूलाच, तत्र–नरकादिगतिषु कर्मफलविपाकजन्याऽबुद्धि पूर्वा अकुशलकर्मानुबन्धा, परीषहजये कृते तु–कुशलमूला–शुभानुबन्धा, निरनुबन्धा चेत्येवं चिन्तयतः कर्मनिर्जरायै प्रवृत्ति र्भवति–९ समन्तादनन्तस्याऽलोकाकाशस्य बहुमध्यदेशभागवर्तिनो लोकस्य स्वभावानुचिन्तनं लोकानुप्रेक्षा, एवं भावयत स्तत्त्वज्ञानविशुद्धि र्भवति १० संसारेऽस्मिन् मनुष्यभवो दुर्लभः, तत्रापि समाधि दुर्लभः सति तस्मिन् बोधिलाभः फलवान् भवति इत्येवं चिन्तनं बोधिलाभा-

रहता है। और निश्रेयस् को प्राप्त करता है।

(९) निर्जरानुप्रेक्षा––निर्जरा के गुणों का विचार करना निर्जरानुप्रेक्षा कहलाता है। कर्मफलविपाक निर्जरा दो प्रकार की है–अबुद्धिपूर्वा और कुशलमूला। नरक आदि गतियों में कर्म के फल को भोग लेने के पश्चात् उसकी जो निर्जरा होती है, वह अबुद्धिपूर्वा निर्जरा कहलाती है। वह अकुशल कर्मों के अनुबंध का कारण है। परीषहों पर विजय प्राप्त करने पर जो निर्जरा होती है वह कुशलमूला शुभानुबन्धा या निरनुबन्धा कहलाती है। जो इस प्रकार विचार करता है उसकी कर्मनिर्जरा में प्रवृत्ति होती है।

(१०) लोकानुप्रेक्षा––सभी ओर अनन्त अलोकाकाश के मध्य में अवस्थित लोक के स्वभाव का चिन्तन करने से ज्ञान की विशुद्धि होती है।

રહે છે અને નક્કી શ્રેયસને પ્રાપ્ત કરે છે.

(૯) નિર્જરાનુપ્રેક્ષા––નિર્જરાના ગુણોનો વિચાર કરવો નિર્જરાનુપ્રેક્ષા કહેવાય છે. કર્મફળ વિપાક નિર્જરા બે પ્રકારની છે–અબુદ્ધિપૂર્વા અને કૂશળમૂલા. નરક આદિ ગતિઓમાં કર્મના ફળોને ભોગવી લીધા બાદ તેની જે નિર્જરા થાય છે તે અબુદ્ધિપૂર્વા નિર્જરા કહેવાય છે. તે અકુશળ કર્મોના અનુબંધનું કારણ છે પરીષહો પર વિજય પ્રાપ્ત કરવાથી જે નિર્જરા થાય છે તે કુશલમૂલા, શુભાનુબન્ધ અથવા નિરનુબન્ધ કહેવાય છે. જે આ રીતે વિચાર કરે છે તેની કર્મનિર્જરામાં પ્રવૃત્તિ થાય છે.

(૧૦) લોકાનુપ્રેક્ષા––ચારે તરફ અનન્ત અલોકાકાશની મધ્યે અવસ્થિત લોકના સ્વભાવનું ચિન્તન કરવું લોકાનુપ્રેક્ષા છે. લોકનું ચિન્તન કરવાથી જ્ઞાનની વિશુદ્ધિ થાય છે.

नुप्रेक्षा, तथा चिन्तयतो बोधिं प्राप्य प्रमादो न कदाचिदपि भवति ११ एवं-धर्मोपदेष्टाऽर्हन्, तदुपदिष्टो धर्मोऽहिंसादिलक्षणो विनयमूलः क्षमाबलो ब्रह्मचर्य-गुप्त उपशमप्रधानो निष्परिग्रहिताऽलम्बनो वर्तते, तल्लाभान्मोक्षप्राप्तिर्भवतीति चिन्तनं धर्म साधकानुप्रेक्षा, एवं-चिन्तयतः खलु धर्मानुरागा त्सततं तदाराधने यत्नपरो भवतीति भावः तथा चा-ऽनया खलु द्वादशविधयाऽनुप्रेक्षया कर्मास्रव-निरोधरूपसंवरो भवतीति बोध्यम् १२॥

इन्द्रियकषाय क्रोध-मान-माया-लोभप्राणातिपातादयः कर्मास्रवकारण-रूपाः सन्ति स्पर्शनादीनि-इन्द्रियाणि पतङ्गमातङ्गकुरङ्गभृङ्गमीनादीन् प्राणिनो बन्ध-व्यसनार्णवे पातयन्ति। कषायादयोऽपि-वधबन्धपरिक्लेशादीन् उत्पादयन्ति नरकादि गतिषु च नानाविधदुःखप्रज्वलितासु परिभ्रमयन्ति, इत्येवमास्रव-दोषानुचिन्तनमास्रवानुप्रेक्षा उच्यते-एवं भावादेतः क्षमादिषु श्रेयस्त्वभावो न प्रच्युतो भवति, सर्वं एते आस्रवदोषाः कूर्मवत् संवृतात्मनो न सम्भवन्ति ७ एवं-संवरगुणानुचिन्तनं संवरानुप्रेक्षा, यथा-समुद्रे नावो विवरपिधानाभावे क्रमशो विवरतः प्रविष्टजलाभिप्लवे सति नावारूढानामवश्यं विनाशो भवेत् विवरपिधाने तु-निरुपद्रवाभिष्टदेशान्तरप्राप्तिः, एवं-कर्मागमास्रवद्वारसंवरणे सति श्रेयः प्रतिबन्धो न भवति। उक्तञ्चोत्तराध्ययने त्रयोविंशत्यध्ययने एकसप्ततिगाथायाम्—

'जा उ अस्साविणी नावा-न सा पारस्स गामिणी।
जा य निस्साविणीनावा-सा उ पारस्स गामिणी ॥१॥
या तु आस्राविणी नौका-न सा पारस्य गामिणी।
या च निःस्राविणी नौका-सा तु पारस्य गामिनी ॥१॥

---

(११) बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा—इस संसार में प्रथम तो मनुष्यभव की प्राप्ति दुर्लभ है। कदाचित् पुण्ययोग से वह प्राप्त हो जाय तो समाधि प्राप्त करना कठिन है। उसके होने पर बोधिलाभ सफल होता है। ऐसा विचार करना बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा है। जो ऐसा चिन्तन करता है वह बोधि को प्राप्त करके कदापि प्रमाद नहीं करता।

---

(૧૧) બોધિદુર્લભાનુપ્રેક્ષા—આ સંસારમાં પ્રથમ તો મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ દુર્લભ છે. કદાચિત્ પુણ્યયોગથી તે પ્રાપ્ત થઈ જાય તો સમાધિ પ્રાપ્ત કરવી કઠણ છે. તેના અસ્તિત્વથી જ બોધિલાભ સફળ થાય છે એવો વિચાર કરવો બોધિદુર્લભાનુપ્રેક્ષા છે. જે આવું ચિન્તન કરે છે તે બોધિને પ્રાપ્ત કરીને ક્યારેય પણ પ્રમાદ સેવતો નથી.

इत्येवं भावयतः संवरे कर्मास्रवनिरोधलक्षणे सततोद्युक्तता भवति निःश्रेयसपदप्राप्तिश्चेति ८ एवं-निर्जरायाः गुणदोषभावनं-निर्जरानुप्रेक्षा, निर्जरा च कर्मफलविपाकजन्या द्विविधा अबुद्धिपूर्वा-कुशलमूलाच। तत्र-नारकादि गतिषु कर्मफलविपाकजन्याऽबुद्धि पूर्वा १ अकुशलकर्मानुबन्धा परीषहजये कृते तु कुशलमूला शुभानुबन्धा निरनुबन्धाचेत्येवं चिन्तयतः कर्म निर्जरायै प्रवृत्ति र्भवति ९ समन्तादनन्तस्याऽलोकाकाशस्य बहुमध्यदेश भागवर्त्तिनो लोकस्य स्वभावानुचिन्तनं लोकानुप्रेक्षा, एवं भावयत स्तत्त्व ज्ञानविशुद्धि-र्भवति १० संसारेऽस्मिन् मनुष्यभवो दुर्लभः तत्रापि-समाधिर्दुरवापः, सति तस्मिन् बोधि लाभः फलवान् भवतीत्येवं चिन्तनं बोधिलाभानुप्रेक्षा तथा चिन्तयतो बोधिं प्राप्य प्रमादो न कदाचिदपि भवति ११ एवं-धर्मोपदेष्टाऽर्हन् तदुपदिष्टो धर्मो हिंसादिलक्षणो विनयमूलः क्षमाबलो ब्रह्मचर्यगुप्तः उपशम-प्रधानो निष्परिग्रहिताऽऽलम्बनो वर्तते तल्लाभान्मोक्ष प्राप्तिर्भवतीति चिन्तनं धर्म साधकार्हत्त्वानुप्रेक्षा, एवं चिन्तयतः खलु धर्मानुरागात् सततं तदाराधने यत्न-परो भवतीति भावः, तथा चाऽनया खलु द्वादश विधयाऽनुप्रेक्षया कर्मास्रवनिरोध रूपसंवरो भवतीति बोध्यम् ॥६॥

(१२) धर्मसाधकार्हत्त्वानुप्रेक्षा—धर्म के मूल उपदेशक अर्हन्त भगवान हैं। उनके द्वारा उपदिष्ट अहिंसामय धर्म विनयमूलक है, क्षमा उसका बल है, वह ब्रह्मचर्य से गुप्त है, उपशम की प्रधानतावाला है और निष्परिग्रहिता उसका आधार है। ऐसे धर्म के लाभ से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार विचार करना धर्मसाधकानुप्रेक्षा है। जो इस भावना का चिन्तन करता है, उसमें धर्म के प्रति अनुराग जागृत होता है और वह धर्म की आराधना करने में निरन्तर तत्पर रहता है।

इस प्रकार इन द्वादशविध अनुप्रेक्षाओं से आस्रवनिरोध रूप संवर की प्राप्ति होती है ॥६॥

(૧૨) ધર્મસાધકાર્હત્વાનુપ્રેક્ષા—ધર્મના મૂળ ઉપદેશક અર્હન્ત ભગવાન છે. તેમના દ્વારા ઉપદિષ્ટ અહિંસામય ધર્મ વિનયમૂળક છે, ક્ષમા તેનું બળ છે, તે બ્રહ્મચર્યથી ગુપ્ત છે. ઉપશમની પ્રધાનતાવાળો છે અને નિષ્પરિગ્રહિતા તેનો આધાર છે. આવા ધર્મના લાભથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. આ પ્રમાણે વિચાર કરવો ધર્મસાધકાર્હત્વાનુપ્રેક્ષા છે. જે આ ભાવનાનું ચિન્તન કરે છે. તેને ધર્મની તરફ અનુરાગ જાગૃત થાય છે તેમજ તે, ધર્મની આરાધના કરવામાં લગાતાર તત્પર રહે છે.

આવી રીતે આ બાર અનુપ્રેક્ષાઓથી આસ્રવનિરોધ રૂપ સંવરની પ્રાપ્તિ થાય છે. ॥૬॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावद् गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षा परीषहजय चारित्राणि संवरहेतुतया प्रतिपादितानि, तत्र क्रमशः समिति-गुप्तिधर्माः सभेदाः प्रतिपादिताः सम्प्रति क्रमप्राप्ता मनुप्रेक्षां प्ररूपयितुमाह–'अणुप्पेहा अणिच्चाइ बारस भावणा रूवा इति, अनित्यादि द्वादश भावनानां भावनाऽनुचिन्तनम् तत्राऽनित्यस्याऽनुचिन्तनम्, आदिनाऽशरणस्यानुचिन्तनम्, संसारस्याऽनुचिन्तनम्, एकत्वस्यानुचिन्तनम्, अन्यत्वस्यानुचिन्तनम्, अशुचित्वस्यानुचिन्तनम्, आस्रवस्यानुचिन्तनम्, संवरस्यानुचिन्तनम्, निर्जराया अनुचिन्तनम्, लोकस्यानुचिन्तनम् बोधिदुर्लभस्यानुचिन्तनम्, धर्म साधकार्हत्वस्यानुचिन्तनम्, इत्येवं द्वादश भावनाः इति द्वादशानुप्रेक्षा उच्यन्ते। तत्रानुप्रेक्षणमनुप्रेक्षा उत्प्रेक्ष्यन्तेऽनुचिन्त्यन्ते इति वाऽनुप्रेक्षाः अनित्यत्वानुचिन्तनरूपा

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पहले प्रतिपादन किया गया था कि गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषह जय और चारित्र संवर के साधन हैं। इनमें से समिति, गुप्ति और धर्म का भेद प्रदर्शन पूर्वक प्रतिपादन किया गया, अब क्रम से प्राप्त अनुप्रेक्षा का प्ररूपण करते है–अनित्यत्व आदि बारह भावनाएं अनुप्रेक्षारूप हैं। अर्थात् अनित्यता का अनुचिन्तन करना, अशरणता का अनुचिन्तन करना, संसार का अनुचिन्तन करना, एकत्व का अनुचिन्तन करना, अन्यत्व का अनुचिन्तन करना, अशुचिता का अनुचिन्तन करना, आस्रव का अनुचिन्तन करना, संवर का अनुचिन्तन करना, निर्जरा का अनुचिन्तन करना, लोक का अनुचिन्तन करना, बोधि की दुर्लभता का अनुचिन्तन करना और धर्मसाधकार्हत्व का अनुचिन्तन करना, यह बारह भावनाएं द्वादशानुप्रेक्षाएं कहलाती हैं।

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—અગાઉ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું હતું કે ગુપ્તિ સમિતિ, ધર્મ, અનુપ્રેક્ષા, પરીષહજય અને ચારિત્ર સંવરના સાધન છે. આમાંથી સમિતિ, ગુપ્તિ અને ધર્મના ભેદ પ્રદર્શનપૂર્વક પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યા હવે ક્રમથી પ્રાપ્ત અનુપ્રેક્ષાનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ અનિત્યત્વ આદિ બાર ભાવનાઓ અનુપ્રેક્ષા રૂપ છે અર્થાત્ અનિત્યતાનું અનુચિન્તન કરવું, અશરણતાનું અનુચિન્તન કરવું, સંસારનું અનુચિન્તન કરવું, એકત્વનું અનુચિન્તન કરવું, અન્યત્વનું અનુચિન્તન કરવું. અશુચિતાનું અનુચિન્તન કરવું, આસ્રવનું અનુચિન્તન કરવું, સંવરનું અનુચિન્તન કરવું, નિર્જરાનું અનુચિન્તન કરવું, લોકનું અનુચિન્તન કરવું, બોધિની દુર્લભતાનું અનુચિન્તન કરવું, અને ધર્મસાધકાર્હત્વનું અનુચિન્તન કરવું, આ બાર ભાવનાઓ દ્વાદશાનુપ્રેક્ષાઓ કહેવાય છે,

भावनाऽनित्यानुप्रेक्षा, यथा-बाह्यानि शय्यासनवस्त्रौ-घिकौ-पग्रहिकोपधि रजोहरणपात्रदण्डादि द्रव्याणि। आभ्यन्तरं-शरीरद्रव्यम् जीवैर्व्याप्तत्वात् तैः सर्वैः सह संयोगाश्चाऽनित्याः सन्ति इत्येव मनुचिन्तयेत्। तत्र प्रतिदिनं गृह्यमाण मुपभुज्यमानञ्च वस्त्रपात्रादिकम् औघिकोपधिरुच्यते, वर्षादिकारणे कालविशेषे समुपस्थिते सति अनियतकालार्थं पीठफलकादीनां संयमाय ग्रहणम् औपग्रहिकोपधिरुच्यते। उप-आत्मनः समीपे कारणे सति संयमयात्रा निर्वाहार्थं वस्तुनो ग्रहणम् उपग्रहः स प्रयोजनमस्ये त्यौपग्राहिकः, तृणकाष्ठपीठफल-

---

अनुप्रेक्षण करना या जिसका अनुप्रेक्षण किया जाय, वह अनुप्रेक्षा कहलाती है। इनका स्वरूप इस प्रकार है-

(१) अनित्यत्वानुप्रेक्षा--अनित्यता का चिन्तन करना अनित्यत्वानुप्रेक्षा है। शय्या, आसन, वस्त्र, औघिक या औपग्रहिक उपधि, रजोहरण, पात्र, दंड आदि बाह्य द्रव्य कहलाते हैं। शरीर आभ्यन्तर द्रव्य कहलाता है, क्यों कि वह जीवों से व्याप्त होता है। इन सब के साथ जो भी संयोग हैं, वे सब अनित्य हैं, ऐसा विचार करना चाहिए।

जो वस्त्र पात्र आदि प्रतिदिन ग्रहण किये जाते और काम में लाये जाते हैं, उन्हें औघिक उपधि कहते हैं। वर्षा आदि कारण उपस्थित होने पर, विशेष अवसर पर अनियत काल के लिए संयम के वास्ते जो पीढा या पाट आदि ग्रहण किये जाते हैं, उनको औपग्रहिक उपधि कहते हैं। उप अर्थात् आत्मा के समीप, कारण होने पर संयमयात्रा के निर्वाह के लिए वस्तु का ग्रहण करना 'उपग्रह'

અનુપ્રેક્ષણુ કરવું અને જેની અનુપ્રેક્ષણા કરી શકાય તે અનુપ્રેક્ષા કહેવાય છે. એમનું સ્વરૂપ આ પ્રકારે છે-

(૧) અનિત્યત્વાનુપ્રેક્ષા-અનિત્યતાનું ચિન્તન કરવું અનિત્યત્વાનુપ્રેક્ષા છે. શય્યા, આસન, વસ્ત્ર, ઔઘિક અથવા ઔપગ્રહિક ઉપધિ, રજોહરણુ, પાત્ર, દંડ આદિ બાહ્ય દ્રવ્ય કહેવાય છે. શરીર આભ્યન્તર દ્રવ્ય કહેવાય છે કારણુ કે તે જીવથી વ્યાપ્ત હોય છે આ બધાની સાથે જે સંયોગ છે તે તમામ અનિત્ય છે, એવો વિચાર કરવો જોઇએ.

જે વસ્ત્ર, પાત્ર આદિ દરરોજ ગ્રહણુ કરવામાં આવે છે અને ઉપયોગમાં લેવાય છે તેમને ઔઘિક ઉપધિ કહેવામાં આવે છે. વરસાદ વગેરે કારણો આવી પડવાને લીધે, વિશેષ અવસરે અનિશ્ચિત સમય માટે સંયમ કાજે જે પીઠ અથવા પાટ વગેરે ગ્રહણુ કરવામાં આવે છે, તેમને ઔપગ્રાહિક ઉપધિ કહે છે, 'ઉપ' અર્થાત્ આત્માની નજીક કારણુ આવી પડવાથી, સંયમ-

कादि । तत्र शरीरं तावत् जन्मत आरभ्य पूर्वं स्वरूपं प्रतिक्षणं परित्यजद् उत्तरा वस्थां प्रतिपद्यते, प्रतिपलञ्चाऽन्यथाऽन्यथा भवद् जराजर्जरितसर्वावयवं पुद्गलचय-विरचनामात्रं पर्यवसाने त्यक्तसन्निवेशविशेषं विशीर्यते इति परिणामानित्यतया-ऽनित्यमेव शरीरमिति एवं चिन्तयत स्तत्र स्नेहबन्धरूपाभिष्वङ्गो न भवति, ततश्च-स्नेहाभ्यञ्जनोद्वर्तनमर्दनस्नानविभूषादिषु निःस्पृहस्य धर्मध्यानादिषु रुचिरुत्पद्यते । तथाचागमेऽप्युक्तम्-'जं पि य इमं सरीरं इट्ठं, कंतं पियं, मणुण्णं, मणामं, धिज्जं, वेसासियं, सम्मयं, अणुमयं, भंडकरंडग-समाणं, रयणकरंडगभूयं, मा णं, सीयं, मा णं, उण्हं, मा णं, खुहा, मा णं पिवासा, मा णं वाला, मा णं चोरा, मा णं दंसा, मा णं मसगा, मा णं वाइय पित्तिय-संभिय-संनिवाइय विविहा रोगायंका, परीसहो-वसग्गा फासा फुसंतु, एयं पि य मे न ताणाए वा सरणाए वा भवइ-'

कहलाता है । उपग्रह जिसका प्रयोजन हो वह औपग्रहिक है जैसे घास, काष्ठ का पीढा, पाट आदि ।

शरीर जन्म से लेकर क्षण-क्षण में अपने पूर्व स्वरूप का त्याग करता रहता है और नवीन-नवीन अवस्थाओं को धारण करता रहता है । वह प्रतिपल अन्य-अन्य रूप धारण करता हुआ जरा से जर्जरित हो जाता है और अन्त में पुद्गलों की यह शरीर रूप आकृति भी नष्ट हो जाती है । इस प्रकार निरन्तर परिणमन करने के कारण शरीर अनित्य है । जो इस प्रकार का चिन्तन करता है, उसे शरीर के प्रति आसक्ति नहीं रहती और वह तैल, उबटन, मर्दन, स्नान और विभूषा आदि करने में निस्पृह हो जाता है । धर्मध्यान आदि में उसकी रुचि उत्पन्न हो जाती है । आगम में भी कहा है ।

યાત્રાના નિર્વાહને માટે વસ્તુનું ગ્રહણ કરવું 'ઉપગ્રહ' કહેવાય છે, ઉપગ્રહ જેનું પ્રયોજન હોય તે ઔપગ્રહિક છે. દા. ત. ઘાસ લાકડાનું પીઠ, પાટ વગેરે.

શરીર, જન્મથી લઇને ક્ષણ-ક્ષણમાં, પોતાના પૂર્વસ્વરૂપનો ત્યાગ કરતું રહે છે અને નવી-નવી અવસ્થાઓને ધારણ કરતું રહે છે. તે પ્રત્યેક પળે જુદા જુદા રૂપ ધારણ કરતું થકું ઘડપણથી જર્જરિત થઇ જાય છે અને છેવટે પુદ્ગલોની આ શરીર રૂપ આકૃતિ પણ નષ્ટ થઈ જાય છે. આ રીતે નિરન્તર પરિણમન કરવાના કારણે શરીર અનિત્ય છે. જે આ રીતનું ચિન્તન કરે છે, તેને શરીરની પ્રતિ આસક્તિ રહેતી નથી અને તે તેલમાલિશ, ઉવટન, મર્દન, સ્નાન અને વિભૂષા વગેરે કરવામાં નિસ્પૃહ થઇ જાય છે. ધર્મધ્યાન આદિમાં તેની રૂચિ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, આગમમાં પણ કહ્યું છે-

छाया— यदपि च मे इदं शरीरम्-इष्टं कान्तं प्रियं मनोज्ञं मनआमं धैर्यं वैश्वासिकं सम्मतं बहुमतं भाण्डकरण्डकसमानं रत्नकरण्डभूतं मा इदम् उष्णं, मा इदं शीतं, मा इदं क्षुधा, मा इदं पिपासा, मा इदं व्यालाः, मा इदं चौराः मा इदं दंशाः मा इदं मशकाः मा इदं वातिक-पैत्तिक श्लैष्मिक-सान्निपातिका विविधा रोगा- तङ्का परीषहोपसर्गाः स्पर्शाः स्पृशन्तु । एवं रीत्या रक्षितं एतदपि च मे न त्राणाय वा न शरणाय भवति, इति । एवं-शय्या तावत् प्रतिश्रयः संस्तारफलकपट्टकादिः प्रतिदिनं रजोधूलिभि र्विपरिणतं सत् सर्वथा स्वसन्निवेशं रचनाकारं परित्यज्य

'और यह जो शरीर इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम (अत्यन्त मनोज्ञ) धैर्यरूप, विश्वासपात्र, सम्मत, अनुमत, उत्तम भाण्ड-सामान के करंडक के समान एवं रत्नों के करंडिये के समान है और जिसके विषय में यह सावधानी रक्खी जाती है कि कहीं इसे ठंड न लग जाय, गर्मी न लग जाय, भूख या प्यास की पीडा न हो, कहीं सर्प न डंस ले, चोर न चुरा ले जाएं, डांस और मच्छर न सताएं, वात पित्त कफ या सन्निपात संबंधी रोग उत्पन्न न हो जाएं, परीषह और उपसर्ग से कष्ट न पहुंचे, उसे कोई अनिष्ट संयोग न हो, ऐसा यह शरीर भी मेरे लिए त्राण कारण या शरणदाता नहीं है ।

इसी प्रकार शय्या अर्थात् उपाश्रय (स्थानक), बिस्तर, पीढा, पट्ट आदि, घास आदि के बने हुए आसन तथा चोल पट्ट आदि वस्त्र प्रति- दिन रज एवं धूल से पलटते रहते हैं और अन्त में इतने जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं कि उनका पहले का आकार भी नष्ट हो जाता है ।

આ જે શરીર ઈષ્ટ, કાન્ત, પ્રિય, મનોજ્ઞ, મનામ (અત્યન્ત મનોજ્ઞ), ધૈર્યરૂપ, વિશ્વાસપાત્ર, સમ્મત, અનુમત, ઉત્તમ, ભાન્ડ જેવું, સામાનના કરંડિયા જેવું, અને રત્નોના કરંડિયા જેવું છે અને જેના માટે એવી તકેદારી રાખવામાં આવે છે કે ક્યાંય આને ઠંડી ન લાગી જાય, ગર્મી ન લાગી જાય, ભૂખ તથા તરસની પીડા ન થાય, ક્યાંય સર્પ ન ડંસે, ચોર ચોરી ન જાય, ડાંસ અને મચ્છર સતાવે નહીં, વાત, કફ, અથવા સનેપાત સંબંધી રોગ ઉત્પન્ન ન થાય પરીષહ અને ઉપસર્ગથી કષ્ટ ન પહોંચે તેને કોઈ અનિષ્ટ સંજોગ ન આવી પડે; આવું આ મારૂં શરીર મને પાર ઉતારનારૂં અથવા શરણદાતા નથી.

આજ પ્રમાણે શય્યા અર્થાત્ ઉપાશ્રય (સ્થાનક) પથારી પીઠ-પાટ આદિ. ઘાસ વગેરેના બનેલા આસન તથા ચોલપટ્ટ આદિ વસ્ત્ર દરરોજ રજોટી અને ધૂળથી ખરડાતાં હોય છે અને છેવટે એટલા જીર્ણ-શીર્ણ થઈ

जीर्णतां प्रतिपद्यते 'संयोगा विप्रयोगान्ताः इतिन्यायात् यावन्तो मम संयोगाः बाह्याभ्यन्तरशय्या शरीरादिभिर्द्रव्यैः संबद्धाः सम्बन्धा वर्तन्ते सर्व एव तेऽकाण्डे क्षणभङ्गुराः सन्ति, 'अवश्यमेव चाऽऽदिमता संयोगेन विप्रयोगान्तेन भवितव्यम्' एतेषां खलु शरीरशय्यादि बाह्याभ्यन्तरद्रव्याणां विनश्वरस्वस्वभावः खलु वर्तते' इत्येव मनुचिन्तनेन तेष्वासक्तिलक्षणाभिष्वङ्गो न भवति, तैः खलु बाह्याभ्यन्तरशरीरादिद्रव्यैः संयोगवियोगे सति शारीरं-मानसं वा दुःखं नोत्पद्यते इत्यतोऽनित्यानुप्रेक्षा परमावश्यकी भवति १ अशरणानुचिन्तनरूपा-ऽशरणानुप्रेक्षा, यथा-जनशून्ये निराश्रये घनविपिने बलवता बुभुक्षितेन मांसा-

---

'संयोगों का अन्तिम परिणाम वियोग है' इस उक्ति के अनुसार बाह्य या आभ्यन्तर शय्या एवं शरीर आदि के साथ मेरे जो भी संबंध हैं, वे सब अकालविनश्वर या क्षणभंगुर हैं, क्यों कि जिस संयोग की आदि है उसका अन्त अवश्यंभावी है। क्या यह शरीर और क्या शय्या आदि बाह्य द्रव्य, सभी विनाशशील हैं।

इस प्रकार का चिन्तन करने से शरीर आदि में आसक्ति नहीं होती और शरीर आदि बाह्याभ्यन्तर द्रव्यों के साथ संयोग अथवा वियोग होने पर शारीरिक या मानसिक दुःख उत्पन्न नहीं होता। इस कारण यह अनित्य भावना अत्यन्त आवश्यक है।

(२) अशरणानुप्रेक्षा-अशरणता का चिन्तन करना अशरणानुप्रेक्षा है। जैसे सुनसान आश्रयविहीन सघन वन में बलवान् भूखे और

જાય છે કે તેમનો પ્રથમનો આકાર (આકૃતિ) પણ નષ્ટ થઈ જાય છે સંયોગોનું અન્તિમ પરિણામ વિયોગ છે.' આ ઉક્તિ અનુસાર બાહ્ય અથવા આભ્યન્તર શય્યા અને શરીર વગેરેની સાથેના મારા જે પણ સંબંધ છે તે બધાં અકાલવિનશ્વર અથવા ક્ષણભંગુર છે કારણ કે જે સંયોગની આદિ છે તેનો અન્ત અવશ્યંભાવી છે. શું આ શરીર અથવા પથારી આદિ બાહ્યદ્રવ્ય, છેવટે તો બધાં જ નાશવન્ત છે.

આ પ્રકારનું ચિન્તન કરવાથી શરીર આદિમાં આસક્તિ રહેતી નથી અને શરીર વગેરે બાહ્યાભ્યન્તર દ્રવ્યોની સાથે સંયોગ અથવા વિયોગ થવાથી શારીરિક અથવા માનસિક દુઃખ ઉત્પન્ન થતાં નથી આથી આ અનિત્યભાવના અત્યન્ત આવશ્યક છે.

(૨) અશરણાનુપ્રેક્ષાઃ-અશરણતાનું ચિન્તન કરવું અશરણાનુપ્રેક્ષા છે. જેમ સુનસાન આશ્રય વગરના ગાઢ જંગલમાં બળવાન ભૂખ્યા અને માંસ-

शिना व्याघ्रेणाक्रान्तस्याऽभिभूतस्य मृगशावकस्य किञ्चिदपि शरणं न भवति, एवं–जन्मजरामरणाऽऽधिव्याधि विप्रयोगाऽप्रियसंयोगाऽनिष्ट प्राप्तीष्टानवाप्ति दारिद्र्य दौर्भाग्य दौर्मनस्यादि जन्येन दुःखेनाऽभिभूतस्य प्राणिनः संसारेऽस्मिन् न किमपि शरणं विद्यते 'धर्मंविना' इत्येवमनुचिन्तयतो जीवस्य 'नित्यमहमशरणोऽस्मि' इति सर्वथोद्विग्नस्य सांसारिकेषु मनुज–देवसम्बन्धिसुखेषु हिरण्यरत्नसुवर्णादिषु हस्त्यश्वहर्म्यादिषु च नाभिष्वङ्गो भवति अपितु–तीर्थकृदुक्तागमविहित ज्ञानदर्शनचरणादिषु नित्यं प्रवर्तते यतो हि जन्मजरामरणभयविविधव्याधि परिक्लेशपरिष्वक्तस्य जीवस्य ज्ञानदर्शनचरणमेव परमशरणम् 'इत्य-

मांसभक्षी व्याघ्र के द्वारा आक्रमण करने पर हिरण के बच्चे के लिए कोई भी शरण नहीं होता, इसी प्रकार जन्म, मरण, आधि, व्याधि, इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, अनिष्ट प्राप्ति, इष्ट की अप्राप्ति, दरिद्रता, दुर्भाग्य एवं दुर्मनस्कता आदि से उत्पन्न होने वाले दुःखों से सताये हुए प्राणी के लिए इस संसार में धर्म के अतिरिक्त अन्य कोई भी शरण नहीं है।

इस प्रकार चिन्तन करने वाले जीव को ऐसा भान हो जाता है कि मैं सदैव शरण विहीन हूं ऐसा भान होने पर वह विरक्त हो जाता है और मनुष्य तथा देव संबंधी संसारिक सुखों के प्रति तथा उन सुखों के साधन स्वर्ण आदि और हाथी घोडा महलमकान आदि के प्रति निरीह बन जाता है। इतना ही नहीं, वह तीर्थंकर भगवान् द्वारा प्रतिपादित ज्ञान दर्शन चारित्र आदि में सदा प्रवृत्ति करता है, क्योंकि

ભક્ષી કોઈ વાઘ દ્વારા આક્રમણ થાય ત્યારે હરણના બચ્ચા માટે કોઈ પણ શરણ રહેતું નથી, એવી જ રીતે જન્મ, જરા, મરણ આધિ વ્યાધિ, ઇષ્ટવિયોગ, અનિષ્ટસંયોગ, અનિષ્ટપ્રાપ્તિ ઇષ્ટની અપ્રાપ્તિ દરિદ્રતા દુર્ભાગ્ય અને દુર્મનસ્કતા આદિથી ઉત્પન્ન થનારા દુઃખોથી સતાવવામાં આવેલ પ્રાણીને માટે આ સંસારમાં ધર્મ શિવાય બીજું કોઈ જ શરણ નથી.

આ રીતનું ચિન્તન કરનારા જીવને એ જાતનું ભાન થઈ જાય છે કે હું અશરણ છું અને આવી પ્રતીતિ થઈ જવાથી તે વિરકત થઈ જાય છે અને મનુષ્ય તથા દેવ સંબંધી સંસારિક સુખો તરફ તથા તે સુખોના સાધન સુવર્ણ આદિ અને હાથી, ઘોડા, મહલ મકાન પ્રત્યે નિસ્પૃહ બની જાય છે એટલું જ નહીં તે તીર્થંકર ભગવાન દ્વારા પ્રતિપાદિત જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર આદિમાં હમેશાં પ્રવૃત્ત રહે છે, કારણ કે જન્મ જરા, મરણ, ભય. વિવિધ

शरणानुप्रेक्षा' २ अथ संसारानुचिन्तनरूपा-संसारानुप्रेक्षा, यथा-ऽसारे खलु संसारे घोरकान्तारेषु नरक-तिर्यग्-मनुष्य-देवभवग्रहणेषु चक्रवत् परिभ्रमन्तः सर्व एव प्राणिनः पितृ-मातृ-भ्रातृ-स्वसृ-पति-पत्नी-पुत्रादि भावेन यदा-सम्बन्ध मनुभवन्ति, अन्वभूवन्, अनुभविष्यन्ति च तदा-स्वजनशब्देन व्यपदिश्यन्ते। यदा तु-तथाभावेन सम्बन्धं नाऽनुभवन्ति, नान्वभूवन्, नानुभविष्यन्ति वा, तदा-परजनशब्देन व्यपदिश्यन्ते। किन्तु-न नियमतः स्वजनपरजनयोः कापि व्यवस्था दृश्यते, तथाहि-पितापि भूत्वा भवान्तरे भ्राता-पुत्रः-पौत्रः-प्रपौत्रश्च भवतीत्यादि, एवं रीत्या-खलु चतुरशीतिलक्षपरिमितयोनिषु राग-द्वेष-

---

जन्म, जरा, मरण, भय, विविध प्रकार की व्याधियों एवं क्लेशों से ग्रस्त जीव के लिए ज्ञान, दर्शन और चारित्र ही उत्तम शरण हैं। यह अशरणानुप्रेक्षा है।

(३) संसारानुप्रेक्षा-संसार के स्वरूप का विचार करना संसारानुप्रेक्षा है। जैसे-इस निस्सार संसार में, घोर कान्तार के समान नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगतियों में चक्र के समान भ्रमण करते हुए सभी प्राणी पिता, माता, भ्राता, भागिनी, पति, पत्नी, पुत्र आदि के रूप में जब सम्बन्धी बनते हैं तब वे स्वजन कहलाने लगते हैं, और जब किंचित् काल के पश्चात् वह संम्बन्ध नष्ट हो जाता है तो वही स्वजन पर-जन बन जाते हैं। इस प्रकार नियत रूप से न कोई स्वजन है, न परिजन है, यह सब अज्ञानजनित कल्पना का खेल है। किसी को स्वजन और किसी को परजन समझना ज्ञानियों की दृष्टि में मूढ जनों की विवेक हीन चेष्टा है। जो आज पिता है वही दूसरे किसी भव में

પ્રકારની વ્યાધિઓ તથા કલેશોથી પીડીત જીવના માટે જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્ર એ જ ઉત્તમ શરણ છે. આ અશરણાનુપ્રેક્ષા છે.

(૩) સંસારાનુપ્રેક્ષા-સંસારના સ્વરૂપનો વિચાર કરવો સંસારાનુપ્રેક્ષા છે. જેમકે-આ અસાર સંસારમાં, ઘોર કાન્તારની માફક નરક, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવગતિઓમાં ચક્રની માફક ભ્રમણ કરતા બધાં પ્રાણી, પિતા, માતા ભ્રાતા, ભગિની, પતિ, પત્ની, પુત્ર આદિના રૂપમાં જ્યારે સમ્બન્ધી બને છે ત્યારે તેઓ સ્વજન કહેવાય છે અને જ્યારે થોડા સમય પછી તે સમ્બન્ધ નષ્ટ થઈ જાય ત્યારે તે જ સ્વજન પર-જન બની જાય છે. આ રીતે નિયત રૂપથી નથી કોઈ સ્વજન કે નથી પરિજન આ બધું અજ્ઞાનજનિત કલ્પનાનો ખેલ છે. કોઈને સ્વજન અને કોઈને પરજન સમજવા એ જ્ઞાનિઓની દૃષ્ટિએ મૂઢ માણસોની વિવેકશૂન્ય ચેષ્ટા છે. જે આજે પિતા છે તે બીજા કોઈ

मोहाभिभूताः प्राणिनः स्पर्शरसादि विषयभोगतृष्णा व्यापृताः परस्परभक्षण-हननताडनबन्धभर्त्सनाऽऽक्रोशादिजन्य दुःसह नितान्त तीव्रदुःखानि प्राप्नुवन्ति इत्यहो अत्यन्त कष्टमयः खलु संसारो वर्तते इत्येवमनुचिन्तयतो जन्म-मरणभयोद्विग्नस्य विवेकिनो वैराग्यमुपजायते विरक्तश्च-सांसारिकदुःखजिहासया संसारपरित्यागाय-चेष्टते-प्रवर्तते चेति। संसारानुप्रेक्षाऽवसेया ३ एवम्-एकत्वानुचिन्तनरूपा-एकत्वानुप्रेक्षा, यथा-एकाकी एवाहं जातः, एकक एव मरिष्यामि च ननु-ससहायो जातः मरिष्यामिवा, एवं-मम नानाविधाऽऽधि-

---

भ्राता, पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र बन जाता है।

चौरासी लाख योनियों वाले इस संसार में राग द्वेष और मोह से ग्रस्त प्राणी स्पर्श रस आदि विषयों के भोग की तृष्णा में फंस कर परस्पर एक दूसरे का भक्षण करते हैं तथा हनन, ताडन, बन्धन, भर्त्सन और आक्रोश आदि से उत्पन्न अत्यन्त तीव्र दुःखों को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार यह संसार अतीव कष्टमय है।

ऐसा चिन्तन करने वाले, जन्म जरा मरण के भय से उद्विग्न, विवेकी पुरुष को वैराग्य उत्पन्न होता है और विरक्त हो कर वह सांसारिक दुःखों से बचने के लिए संसार के परित्याग का प्रयत्न करता है और उसके लिए चेष्टा भी करता है। यह संसारानुप्रेक्षा है।

(४) एकत्वानुप्रेक्षा—एकत्व का पुनः-पुनः चिन्तन करना एकत्वभावना है। यथा-मैं अकेला ही जनमा था और अकेला ही मरूंगा।

ભવમાં ભ્રાતા, પુત્ર, પૌત્ર અથવા પ્રપૌત્ર બની જાય છે

ચોરાશી લાખ જીવયોનિઓવાળા આ સંસારમાં રાગદ્વેષ અને મોહથી પીડાતાં પ્રાણિ સ્પર્શ, રસ, આદિ વિષયોના ભોગની તૃષ્ણામાં ફસાઇને પરસ્પર એકબીજાનું ભક્ષણ કરે છે; તથા હનન, તાડન, બન્ધન, ભર્ત્સન અને આક્રોશ આદિથી ઉત્પન્ન અત્યન્ત તીવ્ર દુઃખોને પ્રાપ્ત થાય છે. આમ આ સંસાર ઘણો જ દુઃખદાયક છે.

આવું ચિન્તન કરવાવાળા જન્મ-જરા મૃત્યુના ભયથી ઉદ્વિગ્ન વિવેકી પુરૂષને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થાય છે અને તે વિરકત થઈ સાંસારિક દુઃખોથી બચવા માટે સંસારનો પરિત્યાગ કરવાનો પ્રયત્ન કરે છે અને તે માટેની ચેષ્ટા પણ કરે છે. આ જ સંસારાનુપ્રેક્ષા છે.

(૪) એકત્વાનુપ્રેક્ષા-એકત્વનું વારંવાર ચિન્તવન કરવું એકત્વભાવના છે જેમ કે-હું એકલો જ જન્મ્યો હતો અને એકલો મરીશ. જ્યારે હું

व्याधि जन्मजरामरणादि जन्यदुःखानि कदाचिदपि कश्चिद् नापहरति-अंशहारको वा दुःखानां न कश्चिद्भवति, न वा-मदीयदुःखानुभवे कश्चित् सहायो भवति, अन्ततः सहजन्मानः सहमरणाश्च निगोदजीवा अपि 'एकक एवाहं जाये-म्रियेच' इत्येवं नियमं नोल्लङ्घयन्ति एकक एवाहं स्वकृत कर्मफलमनुभवामि' इत्येवं भावयतः स्वजनेषु स्नेहानुरागबन्धो न भवति न वा-परजनेषु द्वेषानुबन्धो भवति ततश्च-निस्सङ्गतां प्रतिगतो मोक्षायैव यतते इत्येकत्वानुप्रेक्षा ४ अथा-ऽन्यत्वानु-चिन्तनरूपा-ऽन्यत्वानुप्रेक्षा-यथा औदारिकादि शरीरात्-पौद्गलिकाद्-ऐन्द्रिय-

जब मैं विविध प्रकार की आधि, व्याधि एवं जन्म-जरामरण के दुःखों से पीडित होता हूं तो अकेले ही उन्हें भोगन पडता है। न तो कोई उन दुःखों को ले सकता है और न उनमें हिस्सा बंटा सकता है। मेरी दुःखानुभूति में कोई सहायक नहीं होता। औरों की तो कथा ही क्या, साथ-साथ जन्मने वाले और साथ-साथ मरने वाले निगोद के जीव भी अकेले-अकेले ही अपने जन्म-मरण के दुःख का अनुभव करते हैं। इस नियम का उल्लंघन वे भी नहीं कर सकते।

जब मनुष्य यह सोचता है कि-मैं अकेला ही अपने किये कर्म का फल भोगा करता हूं, तो स्वजन कहलानेवालों के प्रति उसके चित्त में अनुराग-बन्ध नहीं रह जाता और पर कहलानेवाले जीवों के प्रति द्वेषानुबन्ध नहीं होता। ऐसी अवस्था में निःसंगता की स्थिति में पहुंचा हुआ जीव मोक्ष के लिए ही प्रयत्न करता है। यह एकत्वानुप्रेक्षा है।

વિવિધ પ્રકારના આધિ, વ્યાધિ અને જન્મ-જરા મૃત્યુના દુઃખોથી રીબાઉં છું ત્યારે મારે એકલાને જ તે ભોગવવા પડે છે. ન તો તે દુઃખોને કોઈ લઈ શકે છે અથવા તેનો અમુક ભાગ પણ કોઈને વહેંચી શકાતો નથી. મારી દુઃખની અનુભૂતિમાં કોઈ સહાયક થતું નથી. બીજાઓની તો વાત જ કયાં કરવાની રહી ? સાથે-સાથે મરનાર નિગોદનાં જીવો પણ એકલા-એકલા જ પોતાના જન્મ-મરણના દુઃખોનો અનુભવ કરે છે. આ નિયમનું ઉલ્લંઘન તેઓ પણ કરી શકતાં નથી.

જ્યારે મનુષ્ય એ વિચારે છે કે-હું એકલો જ મારા કરેલા કર્મોના ફળ ભોગવું છું ત્યારે સ્વજન કહેવડાવનારા પ્રતિ તેના ચિત્તમાં અનુરાગ-બન્ધ રહી જતો નથી અને પર કહેવાતાં જીવો તરફ દ્વેષાનુબન્ધ થતો નથી. આવા સંજોગોમાં નિઃસંગતાની સ્થિતિમાં પહોંચેલો જીવ મોક્ષના માટે જ પ્રયત્ન કરે છે. આ એકત્વાનુપ્રેક્ષા છે.

कात्त्वा-ऽनित्यात्त्वा-ऽहं खलु चेतनो नित्योऽपौद्गलिको-ऽतीन्द्रियश्चाऽन्योऽस्मि 'शरीरं खलु-चक्षुरादीन्द्रियग्राह्यं भवति' अहन्त्वात्मा जीवो न चक्षुरादीन्द्रियग्राह्योऽस्मि शरीरस्येन्द्रियग्राह्यत्वात्-आत्मनः इन्द्रियग्राह्यत्वाऽभावात्, एवं खलु शरीरमनित्यम्-अहन्तु-नित्यः, शरीरमज्ञम्-अहं पुनर्ज्ञोऽस्मि, शरीरं विनश्वरं-सादिनिधनम्, अहन्तु-अनाद्यनिधनो-जन्ममरणरहितोऽस्मि, शरीरस्योत्पादविनाशित्वात्, आत्मनश्चोत्पादविनाशरहितत्वात्, बहूनि मे संसारे परिभ्रमतः शरीराणि व्यतीतानि, नहि प्राक्तनजन्मशरीराणि-अधुनातनजन्मशरीराणि सम्भवन्ति-असम्भवात् । अहन्तु-स एवाऽस्मि येन प्राक्तनजन्मशरीराणि पूर्व-

(५) अन्यत्वानुप्रेक्षा--अन्यत्व अर्थात् भिन्नता का विचार करना अन्यत्वानुप्रेक्षा है । यथा- औदारिक आदि पांचों शरीर पुद्गल के पिंड हैं, जड हैं और अनित्य हैं, मैं चैतन्यस्वरूप, नित्य, अपौद्गलिक और अतीन्द्रिय हूं । यह औदारिक शरीर चक्षुरिन्द्रिय आदि से ग्राह्य है किन्तु मैं-आत्मा-जीव, इन्द्रियों से अगोचर हूं । शरीर इन्द्रियगोचर है, आत्मा इन्द्रियअगोचर है । फिर यह शरीर अनित्य है, मैं नित्य हूं । शरीर अज्ञ है, मैं ज्ञ हूं । शरीर सादिनिधन है-उसकी आदि और अन्त हैं, मैं अनादि निधन हूं, जन्म-मरण से अतीत हूं, शरीर उत्पाद-विनाशशील है, मैं उत्पाद और विनाश से रहित हूं । इस संसार में अनादि काल से भ्रमण करते हुए मैंने अनन्त-अनन्त शरीर ग्रहण किये और त्यागे हैं । पूर्वजन्म के शरीर इस जन्म के शरीर नहीं बनते-ऐसा होना संभव नहीं कि पूर्वजन्म का

(५) અન્યત્વાનુપ્રેક્ષા-અન્યત્વ અથવા ભિન્નતાને વિચાર કરવો અન્યત્વાનુપ્રેક્ષા છે જેમ કે-ઔદારિક વગેરે પાંચે શરીર પુદ્ગલના પિણ્ડ છે; જડ છે અને અનિત્ય છે, હું ચૈતન્યસ્વરૂપ, નિત્ય અપૌદ્ગલિક અને અતીન્દ્રિય છું. આ ઔદારિક શરીર ચક્ષુરિન્દ્રિય આદિથી ગ્રાહ્ય છે પરન્તુ હું-આત્મા-જીવ, ઇન્દ્રિયોથી અગોચર છે. વળી આ શરીર અનિત્ય છે, હું નિત્ય છું. શરીર અજ્ઞ છે. હું જ્ઞ છું. શરીર સાદિનિધન છે-તેના આદિ અને અન્તવાળું છે, હું અનાદિનિધન છું, જન્મ-મરણથી અતીત છું, શરીર ઉત્પાદ-વિનાશશીલ છે, હું ઉત્પાદ અને વિનાશથી રહિત છું. આ સંસારમાં અનાદિકાળથી ભ્રમણ કરતા મેં અનન્ત-અનન્ત શરીર ધારણ કર્યાં અને ત્યાગ્યા છે. પૂર્વજન્મનું શરીર આ જન્મનું શરીર બનતું નથી. એવું બનવું સંભવિત પણ નથી કે પૂર્વજન્મનું શરીર આ જન્મમાં કામ આવી શકે પરન્તુ હું તો

मुपभुक्तानि सन्ति, तस्मात्-शरीरेभ्यः खलु-औदारिकादिभ्यः पौद्गलिकेभ्यो-भिन्नोऽस्म्यहम्, इत्येवं विभावयतः शरीरममत्वराहित्यं भवति विच्छिन्न शरीरममत्वश्च निःश्रेयसायैव यततेऽनिशम् इति अन्यत्वानुप्रेक्षा ५ अथा-ऽशुचित्वानुचिन्तनरूपाऽशुचित्वानुप्रेक्षा, यथा-शरीरमिदमत्यन्तमशुचिर्वर्तते-अत्यन्ताशुचिमलमूत्राशययुक्तत्वात्, शरीरस्य मूलकारणीभूताऽत्यन्ताशुचि शुक्रशोणितरहितत्वात्, मातृकुक्षौ-उत्पद्यमानो जीव स्तैजस-कार्मणशरीरी सन् प्रथमं शुक्रशोणितं खलु-औदारिकशरीरतया परिणमयति, ततश्च-कलल-बुदबुद-पेशी-धन-

---

शरीर इस जन्म में काम आ सके। किन्तु मैं तो वही का वही हूं जिसने पूर्व जन्मों में उन शरीरों का उपभोग किया है। अतएव में पौद्गलिक औदारिक आदि शरीरों से भिन्न हूं। जो ऐसा विचार करता है वह शरीर की ममता से रहित हो जाता है और शारीरिक ममता से रहित होकर मुक्ति के लिए ही निरन्तर प्रयत्नशील बनता है। यह अन्यत्वानुप्रेक्षा है।

(६) अशुचित्वभावना-अशुचिता (अपवित्रता) चिन्तन करना अशुचित्वानुप्रेक्षा है। यथा-यह शरीर अत्यन्त अशुचि है, क्योंकि अत्यन्त अशुचि मल मूत्र आदि की थैली है और शुक्र शोणित जैसे अत्यन्त अशुचि पदार्थ इसके मूल कारण हैं। जब यह जीव माता की कुक्षि में जन्म लेता है तो तैजस और कार्मण शरीर के साथ उत्पन्न होता है। उस समय यह सर्वप्रथम शुक्र और शोणित को ही औदारिकशरीर का निर्माण करने के लिए ग्रहण करता है। उनको कलल,

---

त्यांने त्यां ज छुं जेणे पूर्वजन्मोमां ते शरीरोनो उपभोग कर्यो छे. जे आवो विचार करे छे ते शरीरनी ममताथी पर थइ जाय छे अने शारीरिक ममताथी रहित थईने मुक्तिने माटे ज निरन्तर प्रयत्नशील रहे छे. आ अन्यत्वानुप्रेक्षा छे.

(६) अशुचित्वभावना-अशुचिता (अपवित्रता)नुं चिंतन करवुं अशुचित्वानुप्रेक्षा छे. जेम के-आ शरीर अत्यन्त अपवित्र छे कारण के अत्यन्त अशुचि मळ-मूत्र आदिनी कोथळी छे अने शुक्र-शोणित जेवां अत्यन्त अशुचि पदार्थ एना मूळ कारण छे. ज्यारे आ जीव मातानी कुखे जन्म ले छे त्यारे तैजस अने कार्मण शरीर साथे उत्पन्न थाय छे. ते समये आ सर्वप्रथम शुक्र अने शोणितने ज औदारिक शरीरनुं निर्माण करवा माटे धारण करे छे. तेमने कलल, बुद्बुद् पेशी, घनहाथ, पग वगेरे अंगोपांग शोणित,

हस्तपादाद्यङ्गोपाङ्ग शोणितमांसास्थिमज्जाकेशश्मश्रुनखशिराधमनीरोमादिना परि· णमयति मातृभक्षिताहाररसश्च रसहारिण्या परस्परप्रतिबद्धनालिकया (नाड्या) ऽभ्यवहरति, इत्येवं रीत्या मूलकारणो-त्तरकारणयोरशुचित्वात्-अशुभपरिणामः पाकानुबन्धाच्चाऽत्यन्तमशुचि खलु शरीरं भवति। तद्यथा-भुक्तः-आहारोहि श्लेष्माशयमासाद्य श्लेष्मणा स्निग्धीकृतः सन्नत्यन्ताऽशुचिर्भवति, ततश्च-पित्ता· शयं प्राप्य पच्यमानो मलत्वमापन्नोऽशुचिरेव भवति, ततो वाताशयं प्राप्य वातेन विभज्यमानः खलरसरूपेण परिणतो भवति, तत्र खलांशाद् मूत्रपुरीषदूषिका सिंघाणस्वेदलालादयो मलाः प्रादुर्भवन्ति। ते चा-ऽशुचिभूतैव, रसांशाच्च-

---

बुद्बुद, पेशी, घन, हाथ, पैर आदि अंगोपांग, शोणित, मांस, अस्थि, मज्जा, केश, श्मश्रु, नख, शिरा, धमनी, रोम आदि के रूप में परिणत करता है। माता द्वारा खाए हुए आहार के रस को दोनों के साथ जुडी हुई रसहारिणी नाडी के द्वारा आहार करता है। इस प्रकार शरीर का मूल कारण और उत्तर कारण दोनों ही अशुचि हैं। अशुचि रूप में ही उनका परिणमन होता है, अतएव यह शरीर अशुचि है। इस शरीर के अंदर गया हुआ उत्तम से उत्तम आहार भी कफाशय में पहुंच कर और श्लेष्म से चिकना होकर अत्यन्त गंदा बन जाता है। तत्पश्चात् पित्ताशय में पहुंच कर वहां पचता है और मल रूप में परिणत होकर अशुचि बन जाता है। उसके बाद वाताशय में प्राप्त होकर वायु से विभक्त होकर खल भाग और रस· भाग के रूप में परिणत होता है। उस खल भाग से मूत्र, मल, दूषिका रेंट, पसीना एवं लींट आदि मलों का प्रादुर्भाव होता है। ये

માંસ, અસ્થિ, મજ્જા, કેશ, નખ, શિરા, ધમણી વગેરેના રૂપમાં પરિણત કરે છે. માતા દ્વારા ખાધેલા આહારના રસને બંનેની સાથે જોડાયેલી રસ· હારિણી નાડી દ્વારા આહાર કરે છે. આ રીતે શરીરનું મૂળ કારણ તેમજ ઉત્તર કારણ બંને જ અશુચિ છે અશુચિ રૂપમાં જ તેનું પરિણમન થાય છે. આથી આ શરીર અશુચિ છે આ શરીરની અંદર ગયેલો ઉત્તમમાં ઉત્તમ આહાર પણ કફાશયમાં પહોંચીને અને ગળફાથી ચિકણો થઈને અત્યન્ત ગંદો થઇ જાય છે ત્યારબાદ પિત્તાશયમાં જઇને ત્યાં પરિપકવ થાય છે અને મળ રૂપે પરિણત થઈને અશુચિ બની જાય છે. ત્યાર પછી વાતાશયમાં પ્રાપ્ત થઇને વાયુથી વિભક્ત થઈને ખલભાગ અને રસભાગના રૂપમાં પરિણત થાય છે. તે ખલભાગથી મૂત્ર, મળ, દૂષિકા, લીંટ, પરસેવો તથા લાળ વગેરે મળોનો પ્રાદુર્ભાવ થાય છે આ તમામ અશુચિ જ છે. રસભાગથી

शोणितमांसमज्जामेदोऽस्थिशुक्राणि संजायन्ते सर्वश्चैतत्-कफादिशुक्रान्तमशुचिभूतमेव वर्तते, एवमशुचि मलमूत्रकफपित्तादीनामाश्रयत्वादपि शरीरमशुचिवर्तते, इत्येवं भावयतः शरीरे निर्वेदो जायते, निर्विण्णश्च-शारीरिकजन्मप्रहाणाय प्रवर्तते इत्यशुचित्वानुप्रेक्षा ६ अथास्रवानुचिन्तनरूपा-आस्रवानुप्रेक्षा, यथा-इन्द्रियकषायादीन् आस्रवान् अशुभपापरूपाकुशलकर्मागमद्वारपुण्यरूपदशविधधर्मनिर्गमद्वारभूतान् बहुविधदोषयुक्तान् अत्यन्ततीव्रवेगशालियो जीवस्याऽवधकारकान् अनुचिन्तयेत्। तत्र स्पर्शनेन्द्रियवशीकृता बहवो जीवाः परस्त्रीलम्पटाः सन्तः

सब अशुचि ही हैं। रस भोग से रुधिर, मांस, मज्जा, मेद, अस्थि और शुक्र (वीर्य) की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार कफ से लगाकर शुक्र पर्यन्त सब अशुचि ही हैं। इन अशुचि मल सूत्र कफ पित्त आदि का आधार होने से भी शरीर अशुचि है।

इस प्रकार विचार करने से शरीर के प्रति विरक्ति भाव की उत्पत्ति होती है और शरीर के प्रति विरक्ति होने पर मनुष्य शरीर की उत्पत्ति को ही रोक देने में प्रवृत्त होता है अर्थात् सदा के लिए अशरीर (मुक्त) बनने का प्रयत्न करता है। यह अशुचित्व अनुप्रेक्षा है।

(७) आस्रवानुप्रेक्षा-आस्रव का चिन्तन करना आस्रवानुप्रेक्षा है।

यथा-ये इन्द्रिय और कषाय आदि आस्रव पाप रूप अकुशल कर्मों के आगमन के द्वार हैं। ये अनेक प्रकार के दोषों से युक्त हैं, इस प्रकार का विचार करना चाहिए। स्पर्शनेन्द्रिय के वशी-

---

લોહી, માંસ, મજ્જા, મેદ, અસ્થિ અને શુક્ર (વીર્ય)ની ઉત્પત્તિ થાય છે. આમ કફથી માંડીને શુક્ર સુધી બધું અશુચિ જ છે. આ અશુચિ મળ, મૂત્ર, કફ, પિત્ત આદિનો આધાર હોવાથી પણ શરીર અશુચિ છે.

આ રીતે વિચારવાથી શરીર પ્રતિ વિરક્તિની ઉત્પત્તિ થાય છે અને શરીર પરત્વે વિરક્તિભાવ જાગવાથી મનુષ્ય શરીરની ઉત્પત્તિને જ અટકાવી દેવામાં પ્રવૃત્ત થાય છે અર્થાત્ સદા માટે અશરીર (મુક્ત) બનવાનો પ્રયત્ન કરે છે. આ અશુચિત્વ અનુપ્રેક્ષા છે.

(૭) આસ્રવાનુપ્રેક્ષા-આસ્રવનું ચિન્તન કરવું આસ્રવાનુપ્રેક્ષા છે. યથા-આ ઇન્દ્રિય અને કષાય આદિ આસ્રવ પાપ રૂપ અકુશળ કર્મોના આગમનના દ્વાર છે. તેઓ અનેક પ્રકારના દોષોથી યુક્ત છે અને અત્યન્ત તીવ્ર વેગશાલી જીવને પાપ ઉત્પન્ન કરનારા છે, એ જાતનો વિચાર કરવો

स्वजीवनमपि विनाशयन्ति, एवं-मदोन्मत्ता दिग्गजा अपि स्पर्शनेन्द्रियवशीभूताः एवं निगृहीता भवन्ति, एवं-रसनेन्द्रियवशीभूताः प्राणिनोवडिशाऽऽगत मांसलोभग्रस्तमत्स्यादिवत् म्रियन्ते, घ्राणेन्द्रियवशीभूताः प्राणिनः पङ्कजकिञ्जल्कलोलुपभ्रमरादिवत् बद्धा भवन्ति प्राणैर्वियुक्ताश्च भवन्ति, चक्षुरिन्द्रियवशीभूता जीवाः स्त्रीरूपादि दर्शनाभिलाषिणो दीपालोकन लोलुपपतङ्गादिवत् विनाशं प्राप्नुवन्ति श्रोत्रेन्द्रियप्रसक्ताः खलु जीवा मृगवत् संगीतकादि शब्दश्रवणलोलुपाः सन्तो बध्यन्ते-म्रियन्ते च, एवं-कषायादीनां क्रोधमानमायालोभानां भावनेन,

भूत हुए बहुतेरे जीव परस्त्रीलम्पट होकर अपने जीवन को भी विनष्ट कर देते हैं। मदोन्मत्त हाथी भी स्पर्शनेन्द्रिय के अधीन होकर कैद में पडते हैं। जो लोग रसनेन्द्रिय के वशीभूत हो जाते हैं वे वडिशा-मछली पकडने के साधनविशेष-में लगे हुए मांस के लोभ में पडे हुए मत्स्य आदि के समान मृत्यु को प्राप्त होते हैं। घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत हुए प्राणी कमल के किंजल्क के लोभी भ्रमर आदि के समान बन्धन को प्राप्त होते हैं और प्राणों से हाथ धो बैठते हैं। चक्षु-इन्द्रिय के वश में पडे हुए प्राणी स्त्री के रूप के दर्शन के अभिलाषी होकर, दीपक को देखने के लोलुप पतंग आदि के समान विनाश को प्राप्त होते हैं। श्रोत्रेन्द्रिय के विषय में आसक्त जीव संगीत आदि के मधुर शब्दों के श्रवण में लोलुप होकर मृग की भांति बन्धन और वध को प्राप्त होते हैं।

इसी प्रकार क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषायों द्वारा होने

જોઈએ. સ્પર્શનેન્દ્રિયને તાબે થયેલા ઘણા બધાં જીવ પરસ્ત્રીલમ્પટ થઈને પોતાના જીવનનો પણ નાશ કરી દે છે. મદોન્મત્ત હાથી પણ સ્પર્શનેન્દ્રિયને આધીન થઈને કેદમાં પડે છે. જે લોકો રસનેન્દ્રિયને વશીભૂત થઈ જાય છે તેઓ વડિશા-માછલી પકડવાના સાધનવિશેષ-માં લગાડેલા માંસના લોભમાં પડેલાં મત્સ્ય વગેરેની જેમ મરણને શરણ થાય છે. ઘ્રાણેન્દ્રિયને વશીભૂત થયેલા પ્રાણિ કમળના કિંજલ્કના લોભી ભમરા આદિની માફક બન્ધનને પ્રાપ્ત થાય છે અને પોતાના પ્રાણો ગુમાવી બેસે છે. ચક્ષુ ઇન્દ્રિયના વશમાં પડેલાં પ્રાણી સ્ત્રીના રૂપના દર્શનના અભિલાષી થઈને, દીવાને જોવા માટે લાલચુ પતંગીયા વગેરેની માફક, વિનાશને નોતરે છે. શ્રોત્રેન્દ્રિયના વિષયમાં આસકત જીવ સંગીત આદિના મધુર શબ્દોના શ્રવણમાં લોલુપ થઈને હરણની જેમ બન્ધન અને વધને પ્રાપ્ત થાય છે.

આવી જ રીતે ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ રૂપ કષાયો દ્વારા થનારાં

इत्येवं भावयतः कर्मास्रवनिरोधाय प्रवृत्ति र्भवति इत्यास्रवानुप्रेक्षा ७ संवरानु-चिन्तनरूपा-संवरानुप्रेक्षा, यथा-कर्मास्रवद्वाराणां पिधानम्-आस्रवदोषपरिवर्जनं च संवरं गुणत उपकारकतया समिति-गुप्तिधर्मानुप्रेक्षा परीषहादिपरिपालनद्वारा-ऽनुचिन्तयेत् सर्वे खलु पूर्वोक्तास्रवदोषाः संवृतात्मनो न भवन्ति, एवं-भावयतः खलु संवरायैव भावना जागर्ति इति संवरानुप्रेक्षा ८ अथ निर्जरानुचिन्तनरूपा-निर्जरानुप्रेक्षा, यथा-कर्मपुद्गलानामुदयावलिका प्रवेशेनाऽनुभूतरसानामुत्तरकाले परीषहसनरूपा कर्मनिर्जराकृतकर्मफलविपाको भवति, स च विपाको द्विविधः अबुद्धिपूर्वः-कुशलमूलश्च । तत्र-नरकादिषु कृतकर्मफलभोगरूपो विपाकोदयोऽ-

---

वाले अपायों का चिन्तन करना चाहिए । ऐसा चिन्तन करने से कर्मों के आस्रव का निरोध करने में प्रवृत्ति होती है । यह आस्रवभावना का स्वरूप है ।

(८) संवरानुप्रेक्षा—संवर का विचार करना संवरानुप्रेक्षा है । जैसे -कर्म के आस्रवद्वारों को ढंकना-आस्रवदोषों से बचना संवर है। समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषह जय और चारित्र का पालन करने से संवर होता है । जो संवृतात्मा होते हैं, उनमें आस्रवदोष नहीं होते । ऐसी भावना करने से संवर के लिए ही प्रयत्न होता है। यह संवर भावना है ।

(९) निर्जरानुप्रेक्षा--निर्जरा का चिन्तन करना निर्जरानुप्रेक्षा है। यथा—कर्मपुद्गल जब उदयावलिका में प्रवेश करते हैं और उनके रस का अनुभव जीव कर लेता है तो उसके पश्चात् वे झड जाते हैं। कर्म विपाक दो प्रकार का है-अबुद्धिपूर्व और कुशलमूल । नरक

અપાયોનું ચિન્તન કરવું જોઈએ. આ પ્રકારનું ચિન્તન કરવાથી કર્મોના આસ્રવનો નિરોધ કરવામાં પ્રવૃત્તિ થાય છે. આ આસ્રવ ભાવનાનું સ્વરૂપ છે.

(૮) સંવરાનુપ્રેક્ષા-સંવરનો વિચાર કરવો સંવરાનુપ્રેક્ષા છે. જેમ કે-કર્મના અસ્રવ દ્વારોને ઢાંકવા-આસ્રવ દોષોથી બચવું સંવર છે. સમિતિ, ગુપ્તિ, ધર્મ, અનુપ્રેક્ષા પરીષહજય અને ચારિત્રનું પાલન કરવાથી સંવર થાય છે. જેઓ સંવૃતાત્મા હોય છે, તેમનામાં આસ્રવ દોષ હોતાં નથી, એવી ભાવના કરવાથી સંવર માટે જ પ્રયત્ન થાય છે. આ સંવર ભાવના છે.

(૯) નિર્જરાનુપ્રેક્ષા-નિર્જરાનું ચિન્તન કરવું નિર્જરાનુપ્રેક્ષા છે. યથા-કર્મપુદ્ગલ જ્યારે ઉદયાવલિકામાં પ્રવેશ કરે છે અને તેમના રસનો અનુભવ જીવ કરી લે છે, ત્યાર બાદ તે ચોંટી જાય છે કર્મવિપાક બે પ્રકારના છે. અબુદ્ધિપૂર્વ અકુશળમૂલ નરક-આદિ ગતિઓમાં કરેલાં કર્મો ભોગવવાં

बुद्धिपूर्वकः १ अकुशलानुबन्धश्च वर्तते २ इत्येवमवद्यं भावयतः परिचिन्तयेत् ३ कुशलमूलो विपाकश्च तपसा द्वादशविधेन परीषहजयेन वा कृतो वर्तते शुभानुबन्धो-निरनुबन्धो वा सकलकर्मक्षयलक्षणः साक्षात् मोक्षायैव हेतुर्भवतीति गुणभावेन परिचिन्तयेत्, तथा भावयतः खलु कर्मनिर्जरायै-एव मतिः प्रवर्तते इति निर्जरानुप्रेक्षा-९ अथ लोकानुचिन्तनरूपा-लोकानुप्रेक्षा, यथा-पञ्चास्तिकायात्मको धर्माऽधर्माऽऽकाश-पुद्गल-जीवरूपो विविधपरिणामयुक्तः उत्पत्ति-

---

आदि गतियों में कृत कर्म के फल का जो भोग होता है, वह अबुद्धिपूर्व विपाकोदय है, यह अकुशलानुबन्ध है, ऐसा अवद्यरूप से चिन्तन करना चाहिए। कुशल मूल विपाक बारह प्रकार की तपश्चर्या करने से और परीषहों को जीतने से होता है। वह शुभानुबन्ध वाला या अनुबन्ध से रहित होता है, सकल कर्मों का क्षय उसका लक्षण है। वह मोक्ष का कारण है, इस प्रकार गुण रूप से उसका चिन्तन करना चाहिए। ऐसा चिन्तन करने से कर्मों की निर्जरा के लिए ही मति उत्पन्न होती है। यह निर्जराभावना है।

(१०) लोकानुप्रेक्षा-लोक के रूप का विचार करना लोकानुप्रेक्षा है, यथा-यह लोक पंचास्तिकायमय है अर्थात् धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय रूप है। यह लोक विविध प्रकार के परिणामों से युक्त है, उत्पाद, विनाश और ध्रौव्यरूप है, विचित्र स्वभाव वाला है। इस प्रकार लोक का

પડે છે તે અબુદ્ધિપૂર્વ વિપાકોદય છે, તે અકુશલાનુબન્ધ છે એવું અવદ્ય રૂપથી ચિન્તન કરવું જોઈએ કુશલમૂલ વિપાક બાર પ્રકારની તપશ્ચર્યા કરવાથી તથા પરીષહો ઉપર વિજય મેળવવાથી થાય છે. તે શુભાનુબન્ધવાળો અથવા અનુબન્ધથી રહિત હોય છે. સકળ કર્મોનો ક્ષય તેનું લક્ષણ છે તે મોક્ષનું કારણ છે, આ રીતે ગુણ રૂપથી તેનું ચિન્તન કરવું જોઈએ. આવું ચિન્તન કરવાથી કર્મોની નિર્જરા માટે જ મતિ ઉત્પન્ન થાય છે. આ નિર્જરાભાવના છે.

(૧૦) લોકાનુપ્રેક્ષા-લોકના સ્વરૂપનો વિચાર કરવો લોકાનુપ્રેક્ષા છે યથા-આ લોક પંચઅસ્તિકાયમય છે અર્થાત્ ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય, પુદ્ગલાસ્તિકાય અને જીવાસ્તિકાય રૂપ છે. આ લોક વિવિધ પ્રકારના પરિણામોથી યુક્ત છે, ઉત્પાદ, વિનાશ અને ધ્રૌવ્ય રૂપ છે, વિચિત્ર

स्थिति-विनाशयुक्तो विचित्रस्वभावो वर्तते इत्येवं लोकं परिचिन्तयतः तत्त्वज्ञानात्मविशुद्धि र्भवतीति लोकानुप्रेक्षा-१० अथ बोधिदुर्लभत्वस्यानुचिन्तन रूपा-बोधिदुर्लभत्वानुप्रेक्षा, यथा-अनादौ खलु संसारे नरक-तिर्यङ्मनुष्यदेव भवग्रहणेषु पौनः पुन्येन चक्रवत् परिभ्रमतो जीवस्य नानाप्रकारक शारीरिक-मानस-दुःखरूपाप्तस्य तत्त्वार्थऽश्रद्धानाऽविरति-प्रमाद कषाय प्रभृति दोषो-पहतबुद्धेः ज्ञानावरणादि घातिककर्मचतुष्टयाऽभिभूतस्य सम्यग् दर्शनादि विशुद्धो बोधिदुर्लभो भवतीति चिन्तयतो बोधि प्राप्त्या प्रमादो न भवति बोधि दुर्लभत्वानुप्रेक्षा बोध्या-११ अथ-धर्मदेशकार्हत्त्वानुचिन्तनरूपाऽनुप्रेक्षा, यथा

चिन्तन करने वाले जीव का तत्वज्ञान और आत्मा विशुद्ध होता है, यह लोकानुप्रेक्षा है।

(११) बोधिदुर्लभत्वानुप्रेक्षा--बोधि अर्थात् सम्यक्त्व की दुर्लभता का विचार करना बोधिदुर्लभत्वानुप्रेक्षा है। जैसे-इस अनादि संसार में नरक, तिर्यंच मनुष्य और देव गतियों में बार-बार चक्र की भांति घूमने वाले, नाना प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुःखों से युक्त, तत्त्वार्थ के अश्रद्धान अविरति प्रमाद एवं कषाय आदि दोषों के कारण उपहत बुद्धि वाले तथा ज्ञानावरणीय आदि चार घातिया कर्मों से पीडित जीव को सम्यग्दर्शन से शुद्ध बोधि की प्राप्ति होना बहुत कठिन है। जो ऐसा विचार करता है वह बोधि प्राप्ति करके उसमें प्रमाद नहीं करता। यह बोधिदुर्लभत्वानुप्रेक्षा है।

(१२) धर्मदेशकार्हत्त्वानुप्रेक्षा--धर्मदेशकार्हत्त्व का चिन्तन करना,

સ્વભાવવાળો છે. આમ લોકનું ચિન્તન કરનાર જીવનું તત્ત્વજ્ઞાન અને આત્મા વિશુદ્ધ હોય છે, આ લોકાનુપ્રેક્ષા છે.

(૧૧) બોધિદુર્લભત્વાનુપ્રેક્ષા-બોધિ અર્થાત્ સમ્યક્ત્વની દુર્લભતાનો વિચાર કરવો બોધિદુર્લભત્વાનુપ્રેક્ષા છે જેમ કે-આ અનાદિ સંસારમાં નરક, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવ ગતિઓમાં વારંવાર ચક્રની જેમ ફરનારો, જુદા જુદા પ્રકારના શારીરિક અને માનસિક દુઃખોથી યુક્ત તત્ત્વાર્થના અશ્રદ્ધાન, અવિરતિ પ્રમાદ અને કષાય આદિ દોષોના કારણે ઉપહત બુદ્ધિવાળા તથા જ્ઞાનાવરણીય આદિ ચાર ઘાતી કર્મોથી પીડિત જીવને સમ્યક્દર્શનથી શુદ્ધ બોધિની પ્રાપ્તિ થવી અતિ મુશ્કેલ છે. જે આવો વિચાર કરે છે. તે બોધિ પ્રાપ્ત કરીને તેમાં પ્રમાદ કરતો નથી આ બોધિદુર્લભત્વાનુપ્રેક્ષા છે.

(૧૨) ધર્મદેશકાર્હત્વાનુપ્રેક્ષા-ધર્મદેશકાર્હત્વનું ચિન્તન કરવું જેમ કે-

धर्मदेशकोऽर्हन् इति तत् प्रतिपादितः खलु स्वाध्यायचरणतपश्चर्या सामायिकादि लक्षणो धर्मः सम्यग्दर्शनद्वारः समस्त मूलोत्तरगुण पञ्च महाव्रत साधनः आचारादि दृष्टिवादपर्यन्तद्वादशाङ्गोपदिष्टस्वरूपः चरणकरणलक्षणः समिति-गुप्ति परिपालनविशुद्धस्वरूपावस्थानो नरकादि गति चतुष्टय रूप संसारनिस्तारको निःश्रेयसप्रापको वर्तते इत्येवं-धर्मदेशकार्हत्वानुचिन्तनेन चरणकरणधर्मानुष्ठानेन सम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शन-सम्यक् चारित्र-सम्यक्तपो लक्षणरत्न चतुष्टयमुक्तिमार्गाच्यवनेन च व्यवस्थानं भवतीति धर्मदेशकार्हत्वानुप्रेक्षा-१२ उक्तञ्च-सूत्रकृताङ्गे २ श्रुतस्कन्धे १-अध्ययने १३ सूत्रे-'अन्ने खलु

अथा-अर्हन्त भगवान् धर्म के आद्य उपदेशक हैं। उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म स्वाध्याय चारित्र तपश्चर्या एवं सामायिक आदि लक्षणों वाला है, सम्यग्दर्शन उस में प्रवेश करने का द्वार है, समस्त मूलगुण, उत्तरगुण एवं पांच महाव्रत उसके साधन हैं, आचारांग से लगाकर दृष्टिवाद पर्यन्त बारह अंगों में उसका उपदेश दिया गया है, वह चरण-करण लक्षण वाला है, समिति एवं गुप्ति के परिपालन से विशुद्ध स्वरूप-अवस्थान वाला है, नरक आदि चार गति रूप संसार से तारने वाला है और मोक्ष का लाभ कराने वाला है। इस प्रकार धर्मदेशकार्हत्व का चिन्तन करने से चरण-करण धर्म का अनुष्ठान होता है, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप रूप रत्नचतुष्टय से, जो मोक्ष के मार्ग हैं, च्यवन नहीं होता। यह धर्मदेशकार्हत्वानुप्रेक्षा है।

सूत्रकृतांगसूत्र में, द्वितीय श्रुतस्कंध के प्रथम अध्ययन के १३ वें

અર્હન્ત ભગવન્ ધર્મના આદ્ય ઉપદેશક છે. તેમના દ્વારા ઉપદિષ્ટ ધર્મ-સ્વાધ્યાય, ચારિત્ર, તપશ્ચર્યા અને સામાયિક આદિ લક્ષણોવાળો છે, સમ્યક્‌દર્શન તેમાં પ્રવેશવા માટેનું દ્વાર છે સમસ્ત મૂળગુણ, ઉત્તરગુણ અને પાંચ મહાવ્રત-તેના સાધન છે, આચારાંગથી લઈને દષ્ટિવાદ પર્યન્ત બાર અંગોમાં તેનો ઉપદેશ આપવામાં આવ્યો છે, તે ચરણ-કરણ લક્ષણવાળો છે, સમિતિ તથા ગુપ્તિના પરિપાલનથી વિશુદ્ધ સ્વરૂપ-અવસ્થાનવાળો છે. નરક આદિ ચાર ગતિ રૂપ સંસારથી તારનાર છે અને મોક્ષનો લાભ કરાવનાર છે. આ રીતે ધર્મદેશકાર્હત્વનું ચિન્તન કરવાથી ચરણ-કરણ ધર્મનું અનુષ્ઠાન થાય છે, સમ્યક્‌જ્ઞાન, સમ્યક્‌દર્શન, સમ્યક્‌ચારિત્ર અને સમ્યક્ તપ રૂપ રત્ન ચતુષ્ટયથી, જે મોક્ષના માર્ગ છે, તેનાથી ચ્યવન થતો નથી. આ ધર્મદેશકાર્હત્વાનુપ્રેક્ષા છે.

સૂત્રકૃતાંગસૂત્રમાં દ્વિતીયશ્રુતસ્કંધના પ્રથમ અધ્યયનના ૧૩ માં સૂત્રમાં

णाति संजोगा-अन्नो अहमंसि' इति, अन्ये खलु ज्ञातिसंयोगाः-अन्योऽह-मस्मीति; सूत्रकृताङ्गे प्रथमश्रुतस्कन्धे द्वितीयाध्ययने प्रथमगाथायाञ्चोक्तम्-'बोहिदुल्लहाणुप्पेहा-११

'संबुज्झह किं न बुज्झह संबोही खलु पेच्च दुल्लहा ।
णो हूवणमंति राइओ-नो सुलभं पुणरावि जीवियं ॥१॥ इति,
'संबुध्यस्व किं न बुध्यस्व-संबोधिः खलु प्रेत्य दुर्लभा ।
नो हु उपनमन्ति रात्रयः-नो सुलभं पुनरपि जीवितम् ॥१॥ इति ॥६॥

मूलम्—संवर मग्गाच्चवण णिज्जरट्ठं परिसोढव्वा परीसहा ॥७॥

छाया—संवर मार्गाऽच्यवन-निर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥७

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावद् आस्रवनिरोधलक्षणसंवरहेतुतया समिति-गुप्ति-धर्माऽनुप्रेक्षा-परीषहजय=चारित्राणि प्रतिपादितानि, तेषु च-समिति-

---

सूत्र में कहा है-'ज्ञाति संबंधी संयोग भिन्न है और मैं भिन्न हूं' । सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कंध के द्वितीय अध्ययन की प्रथम गाथा में कहा है-'बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा । समझो-बूझो, अरे समझते क्यों नहीं हो ! परभव में बोधि दुर्लभ है । व्यतीत हुआ समय वापिस नहीं लौटता और पुनः मानवजीवन मिलना सुलभ नहीं है, अतएव समझो-बोध करो ॥६॥

'संवरमग्गच्चवण' इत्यादि ।

संवर के मार्ग से च्युत न होने के लिए और निर्जरा के लिए परीषहों को सहन करना चाहिए ॥७॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले कहा गया था कि समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा परीषह जय और चारित्र, ये आस्रवनिरोध लक्षण वाले संवर

કહ્યું છે—જ્ઞાતિ સંબંધી સંયોગ ભિન્ન છે અને હું ભિન્ન છું. સૂત્રકૃતાંગના પ્રથમ શ્રુતસ્કંધના દ્વિતીય અધ્યયનની પ્રથમ ગાથામાં કહ્યું છે-બોધિદુર્લભાનુ-પ્રેક્ષા સમજો-બૂઝો, અરે, કેમ સમજતા નથી ? પરભવમાં બોધિ દુર્લભ છે. વીતી ગયેલો સમય ક્યારે પણ પાછો આવતો નથી અને ફરીવાર મનુષ્યદેહ મળવો સહેલો નથી આથી સમજો-બોધ કરો. ॥૬॥

'संवरमग्गच्चवणणिज्जरट्ठं' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—સંવરના માર્ગથી ચ્યુત ન હોવા માટે તથા નિર્જરાને માટે પરિષહોને સહન કરવા જોઈએ. ॥૭॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા કહેવામાં આવ્યું કે સમિતિ, ગુપ્તિ, ધર્મ, અનુપ્રેક્ષા, પરીષહજય અને ચારિત્ર-આ આસ્રવનિરોધ લક્ષણવાળા સંવરના

क्षुप्तिधर्मानुप्रेक्षाः स्वरूपतो-विभागतो-लक्षणतश्च यथाक्रमं प्ररूपिताः, सम्प्रति-क्रमप्राप्तस्य परीषहजयस्य प्ररूपणं कर्तुमाह-'संवरमग्ग-' इत्यादि संवरमार्गाच्यवन निर्जरार्थम्-संवरमार्गाच्यवनार्थ-निर्जरार्थश्च वक्ष्यमाणाः क्षुत्पिपासाद्यो द्वाविंशतिः परीषहाः क्षुधादिवेदनोत्पत्तौ सत्यां पूर्वोपार्जितकर्मनिर्जरणार्थं परितः-समन्तात् सहनरूपाः क्षुत्पिपासादयः परीषहाः परिषोढव्या भवन्ति क्षुत्पिपासादीनां सहनं कर्तव्यम्। तत्र कर्मास्रवनिरोधलक्षणस्य जिनोपदिष्टात्-मार्गात् सम्यग्दर्शनादे मोक्ष मार्गात् अच्यवनार्थम्-अपरिभ्रंशार्थम्, ततोऽपनयनार्थं तस्य निश्चलतार्थमितिभावः, कृतकर्मणो निर्जराश्च आत्मनः पृथग्भावेन परिशट-

के कारण हैं। इनमें से समिति, गुप्ति, धर्म और अनुप्रेक्षा का स्वरूप, भेद और लक्षण अनुक्रम से कह चुके हैं। अब क्रमप्राप्त परीषह जय की प्ररूपणा करते हैं-

संवर-मार्ग से च्युत न होने के लिए और निर्जरा के लिए आगे कहे जाने वाली क्षुधा पिपासा आदि बाईस परीषह सहना चाहिए। क्षुधा आदि की वेदना उत्पन्न होने पर पूर्वोपार्जित कर्मों की निर्जरा करने के लिए 'परित्त' अर्थात् सब प्रकार से जिन्हें सहन किया जाय, उन क्षुधा पिपासा आदि को परीषह कहते हैं।

तात्पर्य यह है कि कर्मों के आस्रव के निरोध रूप संवर के जिनोपदिष्ट मार्ग से-अर्थात् सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्ग से, च्युत न होने के लिए या उसमें निश्चलता उत्पन्न करने के लिए तथा कृत कर्म की निर्जरा के लिए अर्थात् उन्हें आत्मा से पृथक् करने के लिए

કારણ છે. આમાંથી સમિતિ, ગુપ્તિ, ધર્મ અને અનુપ્રેક્ષાનું સ્વરૂપ ભેદ અને લક્ષણ અનુક્રમથી કહેવામાં આવ્યા છે હવે ક્રમપ્રાપ્ત પરીષહજયની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ—

સંવર-માર્ગથી ચ્યુત ન થવાય તે માટે અને નિર્જરા માટે હવે પછી કહેવામાં આવનારા ક્ષુધા-પિપાસા આદિ બાવીશ પરીષહ સહન કરવા જોઈએ. ક્ષુધા આદિની વેદના થવા પર પૂર્વોપાર્જિત કર્મોની નિર્જરા કરવા માટે 'પરિતઃ' અર્થાત્ બધી રીતે જેને સહન કરી શકાય, તે ક્ષુધા પિપાસા આદિને પરીષહ કહે છે.

તાત્પર્ય એ છે કે કર્મોના આસ્રવના નિરોધ રૂપ સંવરના જિનોપદિષ્ટ માર્ગથી-અર્થાત્ સમ્યક્દર્શનાદિ મોક્ષ માર્ગથી ચ્યુત ન થવા માટે અથવા તેમાં નિશ્ચલતા ઉત્પન્ન કરવા માટે તથા કરેલાં કર્મોની નિર્જરા માટે અર્થાત્

नार्थश्चेति यावत् क्षुत्पिपासादीनां परीषहाणां सहनं कर्तव्यमितिभावः जिनोपदिष्टकर्मागमनिरोधमार्गात्-सम्यग्दर्शनरूपादच्यवमानाः सन्त स्तन्मार्गपरिक्रमणपरिचयेन कर्मागमनास्रवद्वारं संवृण्वाः-औपक्रमिकं कर्मफलमनुभवन्तः क्रमेण निर्जीर्णकर्मणः खलु मोक्षमासादयन्तीति भावः ॥७॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वसूत्रे-संवरहेतुभूतां क्रमप्राप्ता मनुप्रेक्षां द्वादशविधां सुविशदं प्ररूपयन् सम्प्रति-क्रमागतं परीषहजयं प्ररूपयितुमाह-'संवरमग्गचवणनिज्जरट्ठं परिसोढव्वा परीसहा' इति, संवरमार्गाच्यवननिर्जरार्थम् संवरस्य पूर्वोक्तस्वरूपस्य कर्मागमनिरोधलक्षणस्य मार्गात् तीर्थकृत्प्रदर्शित-

क्षुधा पिपासा आदि परीषहों को सहन करना चाहिए। अभिप्राय यह है कि जिन भगवान् द्वारा उपदिष्ट कर्मों के आगमन के निरोध के मार्ग से अर्थात् सम्यग्दर्शन आदि से जो च्युत नहीं होते हैं और उसी मार्ग पर चलते हैं, वे आस्रव द्वार का निरोध करते हुए-औपक्रमिक कर्मफल का अनुभव करते हुए, अनुक्रम से कर्मों की निर्जरा करते हुए मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ॥७॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-पूर्व सूत्र में संवर के कारण बारह प्रकार की अनुप्रेक्षाओं का विशद रूप से वर्णन किया गया। अब क्रम प्राप्त परीषहजय की प्ररूपणा करते हैं-

पूर्वोक्त स्वरूप वाले अर्थात् कर्मों के आगमन के निरोध लक्षण वाले संवर के मार्ग से या सम्यग्दर्शन आदि मोक्षमार्ग से च्युत न होने के लिए तथा पूर्वार्जित कर्मों की निर्जरा के लिए अर्थात् उन्हें

તેમને આત્માથી પૃથક્ કરવા માટે ક્ષુધા પિપાસા આદિ પરીષહોને સહન કરવા જોઇએ. કહેવાનું એ છે કે જિનેશ્વર ભગવાન દ્વારા ઉપદિષ્ટ કર્મના આગમનના નિરોધના માર્ગથી અર્થાત્ સમ્યક્દર્શન આદિથી જે ચ્યુત થતા નથી અને જે તે જ માર્ગ પર ચાલે છે, તેઓ આસ્રવદ્વારનો નિરોધ કરતા થકાં, અનુક્રમથી કર્મોની નિર્જરા કરતાં થકાં મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી લે છે. ॥૭॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પૂર્વ સૂત્રમાં સંવરના કારણ રૂપ બાર પ્રકારની અનુપ્રેક્ષાઓનું વિશદ રૂપથી વર્ણન કરવામાં આવ્યું. હવે ક્રમપ્રાપ્ત પરીષહજયની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ—

પૂર્વોક્ત સ્વરૂપવાળા અર્થાત્ કર્મોના આગમનના નિરોધ લક્ષણવાળા સંવરના માર્ગથી અથવા સમ્યક્દર્શન આદિ મોક્ષમાર્ગથી ન ડગવા માટે પૂર્વાર્જિત કર્મોની નિર્જરા માટે અર્થાત્ તેમને આત્મપ્રદેશોથી જુદાં કરવા

सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्गात्-अच्यवनम्-अपरिभ्रंशनम् अपरिपतनम्, तदर्थम्-निर्जरार्थं कृतकर्मणो निर्जरणार्थञ्चाऽऽत्मप्रदेशेभ्यः पृथग्भावेन परिशटनार्थञ्चेति भावः अथ शब्दस्योभयत्र सम्बन्धात् परिषोढव्याः परितः-समन्तात् सोढव्याः वक्ष्यमाण द्वाविंशति क्षुत्पिपासादयः परीषहाः व्यपदिश्यन्ते, क्षुत्तृडादिवेदनोत्पत्तौ सत्यां कृतकर्मनिर्जरणार्थं क्षुत्पिपासादयः परितः सह्यन्ते इति भावः। एवञ्च-क्षुत्पिपासादि परीषहाधिसहने मोक्षमार्गाच्यवनं-कृतकर्मनिर्जरणञ्च प्रयोजनं वर्तते, अतएव परीषहजयः परमावश्यकः, कदाचित्-क्लिष्टचित्तः खलु क्लीबतया क्षुत्पिपासादिसहनासमर्थः सन् मोक्षमार्गात् सम्यग्दर्शनादितः प्रच्युतोऽपि स्यात् अतस्तेन तत्सहने श्रद्धारूप आदरस्तु कर्तव्य एव, तस्य क्षुत्पिपासादिकं सम्यगधिसहमानस्य गिरेरिव निश्चलचित्तस्य निराकुल ध्यानैकतानस्य कृतकर्मनिर्जरणं भवति। तथा च-तत्त्वार्थश्रद्धानादिलक्षण सम्यग्दर्श-

---

आत्मप्रदेशों से पृथक् करने के लिए क्षुधा पिपासा आदि आगे कहे जाने वाले बाईस परीषह सहन करना चाहिए। इस प्रकार क्षुधा और पिपासा आदि परीषहों को सहन करने का प्रयोजन है मोक्षमार्ग से च्यवन न होना और पूर्व बद्ध कर्मों की निर्जरा होना। इस कारण परीषहों को जीतना परमावश्यक है। कदाचित कोई संक्लेशयुक्त चित्तवाला दुर्बल होने के कारण भूख-प्यास आदि को सहन करने में असमर्थ होकर सम्यग्दर्शन आदि मोक्षमार्ग से च्युत भी हो जाय, तो भी उसे उनके सहन करने में श्रद्धारूप आदर तो करना ही चाहिए। जो क्षुधा पिपासा आदि को सम्यक् प्रकार से सहन करता है, जिसका चित्त पर्वत के जैसा अडिग होता है और जो निराकुल ध्यान में मग्न होता है, उसके पूर्वोपार्जित कर्मों की निर्जरा होती है।

માટે ક્ષુધા પિપાસા આદિ આગળ ઉપર કહેવામાં આવનારા બાવીશ પરીષહો સહન કરવા જોઈએ. આ રીતે ક્ષુધા અને પિપાસા આદિ પરીષહોને સહન કરવાનું પ્રયોજન છે મોક્ષમાર્ગથી ચ્યવન ન થવું અને પૂર્વે બાંધેલા કર્મોની નિર્જરા થવી. આ કારણે પરીષહોને જીતવા પરમાવશ્યક છે. કદાચિત કોઈ સંકલેશ યુક્ત ચિત્તવાળો, દુર્બળ હોવાના કારણે ભૂખ-તરસ આદિને સહન કરવા માટે અસમર્થ થઈને સમ્યક્દર્શન આદિ મોક્ષમાર્ગથી લપસી પણ પડે તો પણ તેણે આ સહન કરવામાં શ્રદ્ધારૂપ આદર તો કરવો જ જોઈએ, જે ક્ષુધા પિપાસા આદિને સમ્યક્ પ્રકારથી સહન કરે છે, જેનું ચિત્ત પર્વતની જેમ અડગ હોય છે અને જે નિરાકૂલ ધ્યાનમાં મગ્ન હોય છે તેના પૂર્વોપાર્જિત કર્મોની નિર્જરા થાય છે. આ રીતે તત્ત્વશ્રદ્ધાન આદિ લક્ષણવાળા

नादिमोक्षमार्गात्-प्रच्यवनं मा भूत्' इति भावनया क्षुत्पिपासादयः परितः सह्यन्ते इति परीषहाः, एवं-ज्ञानावरणीयकर्मक्षपणार्थञ्च सोढव्याः परीषहाः सिद्धिप्राप्तिहेतुभूतसंवरविघ्नकारकाः क्षुत्पिपासादयः परिषोढव्याः परीषहा इति व्युत्पत्तिः, परितः-समन्तात्, आपतन्तः क्षुत्पिपासादयो द्रव्य-क्षेत्र-काल भावापेक्षया सोढव्याः ये भवन्ति ते परीषहा इति व्यपदिश्यन्ते क्षुत्पिपासादय इति भावः कर्मणि घ प्रत्ययः बाहुलकात् पूर्वपदस्य दीर्घः। उक्तञ्चोत्तराध्ययने २ अध्ययने प्रथमसूत्रे 'इह खलु बावीसं परीसहा-जे भिक्खु सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विनिहन्नेज्जा'

छाया-इह खलु द्वाविंशतिः परीषहा-यान् भिक्षुः श्रुत्वा-ज्ञात्वा-जित्वा

इस प्रकार तत्वार्थश्रद्धान आदि लक्षण वाले सम्यग्दर्शन आदि मोक्ष मार्ग से च्यवन न हो जाय, इस प्रकार की भावना से जो क्षुधा पिपासा आदि सहन किये जाते हैं, उन्हें परीषह कहते हैं। इसी प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मों का क्षय करने के लिए परीषहों को सहन करना चाहिए। मोक्ष की प्राप्ति के कारणभूत संवर में विघ्न उपस्थित करनेवाले क्षुधा पिपासा आदि जो सहन करने योग्य हैं, वे परीषह हैं, ऐसी परीषह शब्द की व्युत्पत्ति है। 'परितः' अर्थात् सब प्रकार से सब तरफ से, आये हुए क्षुधा पिपासा आदि को द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की अपेक्षा से जो सहन करने योग्य हों वे परीषह कहलाते हैं। यहां कर्म में 'घ' प्रत्यय हुआ है, और बाहुलक से पूर्वपद दीर्घ हो गया है।

उत्तराध्ययन के द्वितीय अध्ययन के प्रथम सूत्र में कहा गया है- 'इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में बाईस परीषह कहे गए हैं, जिन्हें श्रवण कर,

---

સમ્યક્દર્શન આદિ મોક્ષમાર્ગથી ચ્યવન ન થઇ જાય, એવી ભાવનાથી જે ક્ષુધા પિપાસા આદિ સહન કરવામાં આવે છે તેમને પરીષહ કહેવામાં આવે છે. આજ રીતે જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મોનો ક્ષય કરવા માટે પરીષહોને સહન કરવા જોઈએ. મોક્ષની પ્રાપ્તિ કારણભૂત સંવરમાં વિઘ્ન ઉપસ્થિત કરવાવાળા ક્ષુધા પિપાસા વગેરે જે સહન કરવા યોગ્ય છે, તે પરીષહ છે, એ પ્રમાણે પરીષહ શબ્દની વ્યુત્પત્તિ છે. 'પરિતઃ' અર્થાત્ બધી રીતે બધી બાજુથી આવેલા ક્ષુધા પિપાસા આદિને દ્રવ્ય ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવની અપેક્ષાથી જે સહન કરવા યોગ્ય છે તે પરીષહ કહેવાય છે. અહીં કર્મોમાં-ઘ પ્રત્યય થયો છે અને બહુલતાથી પૂર્વપદ દીર્ઘ થઇ ગયું છે.

ઉત્તરાધ્યયનના દ્વિતીય અધ્યયનના પ્રથમ સૂત્રમાં કહ્યું છે-આ નિર્ગ્રન્થ પ્રવચનમાં બાવીશ પરીષહ કહેવામાં આવ્યા છે, જેને સાંભળીને, જાણીને, જીતીને

(त्वा) अभिभूय भिक्षाचर्यायां परिव्रजन् (तैः) स्पृष्टः नो विनिहन्यात् (तैराहतो न भवेद्) इति। स्थानाङ्गे ५-स्थाने १-उद्देशके ४०९ सूत्रे चोक्तम्-'पंचहिं ठाणेहिं उदिन्ने परीसहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा-ममं च णं सम्मं सहमाणस्स जाव अहियासेमाणस्स किं मन्ने कज्जइ ? एगंतसो मे निज्जरा कज्जइ'

छाया—पञ्चभिः स्थानैः उदीर्णान् परीषहोपसर्गान् सहेत-मम च सम्यक् सहमानस्य यावत्-अध्यवस्यतः किं मन्ये क्रियते-? एकान्तशो मे निर्जरा क्रियते इति ॥७॥

मूलम्—ते बावीसविहा, छुहा पिवासाइ भेयओ ॥८॥

छाया—ते द्वाविंशतिविधाः क्षुधा-पिपासादि भेदतः-॥८॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे-संवरस्य हेतुभूतपरीषहस्वरूपं प्ररूपितम्,

---

सहन कर, जीत कर, एवं अभिभूत करके भिक्षाचर्या के लिए अटन करता हुआ भिक्षु, उनसे स्पृष्ट होकर आघात को प्राप्त नहीं होता।

स्थानांगसूत्र के पांचवें स्थान के प्रथम उद्देशक के ४०९ वें सूत्र में भी कहा है-

पांच कारणों से उदय में आए परीषहों उपसर्गों को सम्यक् प्रकार सहन करना चाहिए—मैं अगर सम्यक् प्रकार से सहन करूंगा यावत् अध्यासन करूंगा तो मुझे किस फल की प्राप्ति होगी ? मुझे एकान्ततः निर्जरा की प्राप्ति होगी ॥७॥

'ते बावीसविहा छुहा पिपासाइ' इत्यादि।

सूत्रार्थ—क्षुधा पिपासा आदि के भेद से परीषह बाईस है ॥८॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्र में संवर के कारणभूत परीषह के स्वरूप

અને અભિભૂત કરીને ભિક્ષાચર્યા માટે અટન કરતો થકો ભિક્ષુ, તેમનાથી સ્પૃષ્ટ થઈને આઘાતને પ્રાપ્ત થતો નથી.

સ્થાનાંગસૂત્રના પાંચમા સ્થાનના પ્રથમ ઉદ્દેશકના ૪૦૯માં સૂત્રમાં પણ કહ્યું છે-

પાંચ કારણોથી ઉદયમાં આવેલા પરીષહો અને ઉપસર્ગોને સમ્યક્ પ્રકારથી સહન કરવા જોઈએ-હું જો સમ્યક્ પ્રકારથી સહન કરીશ, અધ્યવસાન કરીશ તો મને કયા ફળની પ્રાપ્તિ થશે ? મને એકાન્તતઃ નિર્જરાની પ્રાપ્તિ થશે. ॥૭॥

'તે બાવીસવિહા, છુહા પિપાસા' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-ક્ષુધા પિપાસા આદિના ભેદથી પરીષહ બાવીસ છે. ॥૮॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-પૂર્વ સૂત્રમાં સંવરના કારણભૂત પરીષહના સ્વરૂપનું પ્રતિ-

सम्प्रति-तस्य भेदान् प्ररूपयितुमाह-'ते बावीसविहा' इत्यादि, पूर्वसूत्रोक्ताः परीषहाः द्वाविंशतिविधाः सन्ति तद्यथा-क्षुधापरीषहः १ पिपासापरीषहः-२ आदिना-शीतपरीषहः-३ उष्णपरीषहः-४ दंशमशकपरीषहः-५ अचेलपरीषहः ६ अरतिपरीषहः-७ स्त्रीपरीषहः-८ चर्यापरीषहः-९ निषद्यापरीषहः-१० शय्यापरीषहः-११ आक्रोशपरीषहः-१२ वधपरीषहः-१३ याचनापरीषहः-१४ अलाभपरीषहः १५ रोगपरीषहः-१६ तृणस्पर्शपरीषहः-१७ जल्लमल्लपरीषहः-१८ सत्कारपुरस्कारपरीषहः-१९ प्रज्ञापरीषहः-२० अज्ञानपरीषहः-२१ दर्शनपरीषहः-२२ इत्येवं भेदात्-द्वाविंशतिविधाः परीषहा भवन्ति। तथा च-क्षुत्पिपासादीनां द्वाविंशतिपरीषहाणां सहनं मोक्षार्थिभिरवश्यं कर्तव्यम्, तत्र-निरवद्या

का प्रतिपादन किया गया, अब परीषह के भेदों की प्ररूपणा करने के लिए कहते हैं-

पूर्वसूत्र में कथित परीषह बाईस प्रकार के हैं। वे प्रकार ये हैं- (१) क्षुधा परीषह (२) पिपासा परीषह (३) शीतपरीषह (४) उष्ण परीषह (५) दंशमशकपरीषह (६) अचेलपरीषह (७) अरतिपरीषह (८) स्त्रीपरीषह (९) चर्यापरीषह (१०) निषद्यापरीषह (११) शय्यापरीषह (१२) आक्रोशपरीषह (१३) वधपरीषह (१४) याचनापरीषह (१५) अलाभपरीषह (१६) रोगपरीषह (१७) तृणस्पर्शपरीषह (१८) जल्लमलपरीषह (१९) सत्कार पुरस्कारपरीषह (२०) प्रज्ञापरीषह (२१) अज्ञानपरीषह और (२२) दर्शनपरीषह। मोक्षाभिलाषी पुरुषों को क्षुधा पिपासा आदि बाईस परीषहों को अवश्य ही सहन करना चाहिए। इन परीषहों का स्वरूप इस प्रकार है-

(१) क्षुधापरीषह--जो साधु निर्दोष आहार की गवेषणा करने

પાદન કરવામાં આવ્યું હવે પરીષહનાં ભેદોની પ્રરૂપણા કરવા માટે કહીએ છીએ.

પૂર્વ સૂત્રમાં કથિત પરીષહ બાવીશ પ્રકારના છે. આ પ્રમાણે છે-(૧) ક્ષુધાપરીષહ (૨) પિપાસાપરીષહ (૩) શીતપરીષહ (૪) ઉષ્ણપરીષહ (૫) દંશમશકપરીષહ (૬) અચેલપરીષહ (૭) અરતિપરીષહ (૮) સ્ત્રીપરીષહ (૯) નિષદ્યાપરીષહ (૧૦) ચર્યાપરીષહ (૧૧) શય્યાપરીષહ (૧૨) આક્રોશપરીષહ (૧૪) યાચનાપરીષહ (૧૫) અલાભપરીષહ (૧૬) રોગપરીષહ (૧૭) તૃણસ્પર્શ-પરીષહ (૧૮) જલ્લમલપરીષહ (૧૯) સત્કારપુરસ્કારપરીષહ (૨૦) પ્રજ્ઞાપરીષહ (૨૧) અજ્ઞાનપરીષહ (૨૨) દર્શનપરીષહ. મોક્ષાભિલાષી પુરૂષોએ ક્ષુધા પિપાસા આદિ બાવીશ પરીષહોને અવશ્ય જ સહન કરવા જોઇએ. આ પરીષહોનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે-

(૧) ક્ષુધાપરીષહ-જે સાધુ નિર્દોષ આહારની ગવેષણા કરનાર છે,

हारगवेषिणः श्रमणस्य प्राशुकाहाराऽलाभे, किञ्चिन्मात्रलाभेवाऽनिवृत्तवेदन-स्याऽकालेऽदेशे च भिक्षार्थं प्रति निराकाङ्क्षस्य स्वाध्याय-ध्यानाद्यावश्यक-परिहाणिं किञ्चिदप्यसहमानस्य स्वाध्याय-ध्यानैकतानस्याऽनेकवारं स्वकृत-परकृताऽशनावमोदर्यस्याऽरसविरसाहारिणः सन्तप्तपतितकतिपयजलबिन्दुक-सहसैव परिशुष्कपानस्योदीर्णक्षुद्वेदनस्यापि भिक्षालाभापेक्षया तदलाभ-मेवाऽधिकगुणकं मन्यानस्य क्षुत्पीडाम्प्रति चिन्ताराहित्यं क्षुत्परीषहजयो व्यपदिश्यते-१ जलस्नानपरिहारिणः पक्षिवद्-अनियतासनावासस्याऽतिल-

वाला है। प्रासुक आहार का लाभ न होने पर या थोडा-सा लाभ होने पर जिसकी भूख की वेदना नहीं मिटी है, जो अकाल और अदेश में भिक्षा करने के लिए इच्छुक नहीं है, जो स्वाध्याय ध्यान आदि आवश्यक क्रियाओं की तनिक भी हानि को सहन नहीं करता, स्वाध्याय और ध्यान में लीन रहता है, जिसने अनेक वार अनशन और ऊनोदरी तपस्या की है, जो अरस और विरस आहार करने वाला है, गर्म वस्तु पर गिरे हुए थोडे-से जल के बूंदों के समान सहसा ही जिस का पान (पानी) सूख गया है, जो भूख से पीडित हो रहा है और जो भिक्षा के लाभ की अपेक्षा अलाभ को अधिक गुण-कारक समझता है, उसका क्षुधा की पीडा की ओर से निश्चिन्त होना क्षुधापरीषह जय कहलाता है।

(२) पिपासा परीषह--जो जल-स्नान का त्यागी है, पक्षी के जैसे अनियत आसन और निवास वाला है अर्थात् जिस के ठहरने

પ્રાસુક આહારનો લાભ ન થવાથી અથવા થોડો લાભ થવાથી જેની ભૂખની વેદના મટી નથી જે અકાળ અને અદેશમાં ભિક્ષા કરવા માટે ઇચ્છુક નથી, જે સ્વાધ્યાય ધ્યાન આદિ આવશ્યક ક્રિયાઓની થોડી પણ હાનિને સહન કરતો નથી, સ્વાધ્યાય અને ધ્યાનમાં લીન રહે છે, જેમણે અનેકવાર અનશન અને ઉણોદરી તપસ્યા કરી છે. જે અરસ અને વિરસ આહાર કરનાર છે, ગરમ વસ્તુ પર પડેલા પાણીના ટીપાની જેમ એકાએક જ જેનું પાણી સુકાઈ ગયું છે, જે ભૂખથી પીડાતો હોય અને જે ભિક્ષાના લાભની અપેક્ષા અલા-ભને વધુ ગુણકારક સમજે છે, તેનું ક્ષુધાથી નિશ્ચિંત થવું ક્ષુધાપરીષજય કહેવાય છે.

(૨) પિપાસાપરીષહ-જે જળ-સ્નાનનો ત્યાગી છે, પક્ષીની માફક અનિયત આસન અને નિવાસવાળો છે અર્થાત્ જેને રોકાવાનું કોઈ નિશ્ચિત

वणाऽस्निग्ध-रूक्ष-विरुद्धाहारग्रीष्मातपपित्तज्वराऽनशनादिभिरुदीर्णां शरीरेन्द्रिय-परितापिनीं वेदनां प्रति प्रतीकारं कर्तुं मध्यवसायरहितस्य पिपासावह्नि-ज्वालां धैर्यकुम्भपूर्णशीलाचारसुरभिसमाधिमुसलाधारपयसा प्रशमयतः पिपा-सासहनं पिपासापरीषहजयः-२ शीतपरीषहजयः पुनः प्रच्छादनवस्त्ररहितस्य विहगादिवत्-अनिश्चिताश्रयस्य तरुमूलशिलातलादिषु तुषारपातशीतलपवन समीरणे सति तत्प्रतीकारं कर्तुं निरीहस्य पूर्वानुभूतशीतप्रतीकारहेतुभूत वस्तु स्मरणमकुर्वतो ज्ञानभावनालये धैर्योऽणवस्त्राच्छन्नस्य सुखं वसतः शीतवेदना

का कोई नियत ठिकाना नहीं है, अत्यन्त नमकीन, रूखे एवं विरुद्ध आहार, ग्रीष्मकाल की धूप, पित्तज्वर या अनशन आदि कारणों से उत्पन्न हुई तथा शरीर और इन्द्रियों में व्यापी हुई वेदना का प्रतीकार करने के संकल्प से जो रहित है, और जो पिपासा रूपी अग्नि की ज्वाला को, धैर्य रूपी घट में भरे हुए, शीलाचार के सौरभ से युक्त एवं समाधि रूपी मूसल-धार जल से शान्त करता है, ऐसे मुनि का प्यास को सहन करना पिपासा परीषह जय कहलाता है।

(३) शीतपरीषह--जो मुनि प्रच्छादन पट अर्थात् ओढने के वस्त्र से रहित है, पक्षी के समान जिसका कोई निश्चित स्थान नहीं है, जो वृक्ष के नीचे या शिलातल के ऊपर तुषारपात अर्थात् बर्फ गिरने से अथवा शीतल पवन चलने से लगने वाली ठंड का प्रतीकार करने का इच्छुक नहीं है, पूर्व अवस्था में अनुभूत शीतनिवारण के कारण-

સ્થાન નથી, અત્યન્ત નમકીન, રૂક્ષ તેમજ વિરૂદ્ધ આહાર, ઉનાળાનો તડકો, પિત્તજ્વર અથવા અનશન આદિ કારણોથી ઉત્પન્ન થયેલી તથા શરીર અને ઇન્દ્રિયોમાં વ્યાપેલી વેદનાનો પ્રતિકાર કરવાના સંકલ્પથી જે રહિત છે અને પિપાસા રૂપી અગ્નિની જ્વાલાને ધૈર્ય રૂપી ઘડામાં ભરેલા, શીલાચારના સૌરભથી યુક્ત અને સમાધિરૂપ મૂશળધાર જળથી શાન્ત કરે છે, આવા મુનિનું તરસને સહન કરવું પિપાસાપરીષહજય કહેવાય છે.

(૩) શીતપરીષહઃ-જે મુનિ પ્રચ્છાદનપટ અર્થાત્ ઓઢવાના વસ્ત્રથી રહિત છે, પક્ષીની માફક જેનું કોઈ નિશ્ચિત ઠેકાણુ નથી, જે વૃક્ષની નીચે અથવા શીલાતળની ઉપર તુષારપાત અર્થાત્ હીમ પડવાથી અથવા શીતળ પવન વાવાથી લાગનારી ટાઢનો પ્રતિકાર કરવાનો ઇચ્છુક નથી, પૂર્વ અવસ્થામાં, અનુભૂત શીતનિવારણની કારણભૂત વસ્તુઓને જે યાદ પણ કરતો

सहनरूपो बोध्यः—३ उष्णपरीषहजयश्च—समीरसंचारशून्ये निर्जले ग्रीष्मातप परिशुष्कपतितपत्ररहितनिश्छायवृक्षाटवीमध्ये यथाकामचारोपातगतस्याऽऽहारा- भ्यन्तर साधनाभावप्रयुक्तोत्पन्नदाहस्य दावाग्निज्वालाजालकज्जालजटिलपरुष- वातातपजनित कण्ठशोषस्याऽनुभूत तत्प्रतीकारहेतु चिन्तन मविदधतः प्राणिपीडा- परिहारपरायणस्य चारित्ररूपोष्णसहनरूपः—४ दंशमशकपरीषहजयस्तु दंशमश-

भूत वस्तुओं का जो स्मरण भी नहीं करता, जो ज्ञान-भावना रूपी महल में, धैर्य रूपी गर्म वस्त्रों से युक्त होकर सुख-पूर्वक रहता है, ऐसे मुनि का शीत वेदन को सहन करना शीतपरीषह जय कहलाता है।

(४) उष्णपरीषह--वायु के संचार से शून्य, जलहीन, ग्रीष्मकाल की धूप से सूखे हुए और नीचे गिरे हुए पत्तों से रहित, छायाविहीन वृक्षों वाली अटवी के मध्य में, स्वेच्छा पूर्वक विचरण करते हुए, आहार रूप भीतरी कारणों के अभाव से जिसे दाह उत्पन्न हुआ है, दावानल की ज्वालाओं के समूह से व्याप्त निष्ठुर पवन के आतप से जिसका कंठ सूख गया है, पूर्व अवस्था में गर्मी के प्रतीकार के जिन साधनों का अनुभव किया था, उनका चिन्तन भी जो नहीं करता और जो प्राणियों को होने वाली पीडा का परिहार करने में तत्पर है, ऐसा मुनि गर्मी का जो कष्ट सहन करता है, उसे उष्णपरीषह जय कहते हैं।

(५) दंशमशकपरीषह-दंशमशक मत्कूण, माखी चींटी कीडे वृश्चिक (वींच्छु) आदि के द्वारा कृत पीडाको विना प्रतिकार सहलेना मन-

નથી, જે જ્ઞાન-ભાવના રૂપી મહેલમાં, ધૈર્યરૂપી ગરમ વસ્ત્રોથી યુક્ત થઈને સુખશાતામાં રહે છે, એવા મુનિરાજની શીતવેદનાને સહન કરવાને શીત-પરીષહજય કહેવાય છે.

(૪) ઉષ્ણુપરીષહ:-વાયુના સંચારથી શૂન્ય, પાણી વગરના, ગ્રીષ્મકાળના તડકાથી સૂકાઈ ગયેલા અને નીચે પડેલા પાંદડાઓથી રહિત, છાંયડા વગરના વૃક્ષોવાળા જંગલની મધ્યમાં સ્વેચ્છાપૂર્વક વિચરતા થકા આહાર રૂપ આભ્યંતર કારણોના અભાવથી જેને દાહ ઉત્પન્ન થયો છે, દાવાનળની જવાલાઓના સમૂહથી વ્યાપ્ત નિષ્ઠુર પવનના આતપથી જેનું ગળું સુકાઈ ગયું છે, પૂર્વ અવસ્થામાં ગરમીના પ્રતિકારના જે સાધનોનો અનુભવ કર્યો હતો તેનું લેશમાત્ર ચિન્તન કરતો નથી અને જે પ્રાણીઓને થનારી પીડાનો પરિહાર કરવામાં તત્પર છે, એવા મુનિ ગરમીનું જે કષ્ટ સહન કરે છે તેને ઉષ્ણુપરીષહજય કહે છે.

(૫) દંશમશકપરીષહ-ડાંસ, મચ્છર, માંકડ, માખ, કીડી, વીંછી વિગેરે દ્વારા કરવામાં આવેલ પીડાને કંઈ પણ પ્રતિકાર કર્યા વિના સહન કરવી. અને

कमक्षिकामत्कुणकीटपिपीलिकावृश्चिकादि कृतां प्रतीकाररहितां पीडां सहमानस्य मनोवाक्कायकृतां तद्बाधामकुर्वाणस्य मोक्षप्राप्तिमात्रकृतसङ्कल्पप्रावरणस्य दंशमशकादिवेदनासहनरूपोऽवसेयः–५ अचेलपरीषहजयस्तु–मनोविकारविरहितत्वात् स्त्रीरूपाणि–अत्यन्ताशुचि कुणपरूपेण भावयतोऽखण्डब्रह्मचर्यव्रतं धारयतोऽल्पवस्त्रधारणव्रतरूपोऽनवद्योऽवसेयः–६ अरतिपरीषहजयस्तावत्–इन्द्रियाभीष्टविषयप्राप्तिम्प्रति–अनुत्कण्ठितस्य संयतस्य गीतनृत्यादि विरहितेषु एकान्तध्यानसमाधिगृहेषु स्वाध्यायध्यानभावनारतिं सेवमानस्य दृष्टश्रुताऽनुभूत

वचन एवं कायद्वारा उन की बाधा न पहुंचावे, एवं मोक्ष मार्ग की प्राप्ति में निश्चित बुद्धिवाले होकर दंशमशकादि द्वारा कृत वेदनाको सहलेना दंशमशकपरीषह जय कहलाता है।

(६) अचेलपरीषह––जो साधु मानसिक विकार से रहित है, जो स्त्री के रूप को अत्यन्त अपावन मांस के लोथडे के समान समझता है और जो अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत का धारक है, ऐसे मुनि का अल्प वस्त्रों को धारण करना अचेलपरीषह जय कहा जाता है।

(७) अरतिपरीषह—जिस साधु के चित्त में इन्द्रियों के अभीष्ट विषयों की प्राप्ति के लिए उत्कंठा नहीं है, जो गीत नृत्य आदि से रहित एकान्त ध्यान–समाधिगृहों में स्वाध्याय, ध्यान और भावना का अभ्यास करता है, जो पहले देखी हुई, सुनी हुई या अनुभव की हुई काम–कथा का स्मरण और श्रवण नहीं करता, जिसके हृदय में काम के बाण प्रवेश नहीं करते और जिसके हृदय में सदैव दया का उदय

મન, વચન અને કાયાથી તેમને બાધા ન પહોંચાડવી તથા મોક્ષમાર્ગની પ્રાપ્તિમાં નિશ્ચલ મતિવાળા બનીને દશમશકાદીએ કરેલ પીડાને સહન કરવી તે દંશમશકાય પરીષહજય કહેવાય છે.

(૬) અચેલપરીષહઃ-જે સાધુ માનસિક વિકારથી રહિત છે, જે સ્ત્રીના રૂપને અત્યન્ત અપવિત્ર માંસના લોચા જેવું સમજે છે અને જે અખંડ બ્રહ્મચર્યવ્રતનો ધારક છે, એવા મુનિનું અલ્પવસ્ત્રોનું ધારણ કરવું અચેલ-પરીષહજય કહેવાય છે.

(૭) અરતિપરીષહઃ-જે સાધુના ચિત્તમાં ઈન્દ્રિયોના અનિષ્ટ વિષયોની પ્રાપ્તિ માટે ઉત્કંઠા નથી જે ગીત, નૃત્ય આદિથી રહિત એકાન્ત ધ્યાન–સમાધિગૃહોમાં સ્વાધ્યાય, ધ્યાન અને ભાવનાનો અભ્યાસ કરે છે, જે પહેલા જોએલી, સાંભળેલી અથવા અનુભવેલી કામ-કથાનું શ્રવણ અને સ્મરણ કરતો નથી, જેના હૃદયમાં કામના બાણ પ્રવેશ કરતા નથી, જેના હૃદયમાં સર્વદા

सहनरूपो बोध्यः-३ उष्णपरीषहजयश्च-समीरसंचारशून्ये निर्जले ग्रीष्मातप परिशुष्कपतितपत्ररहितनिश्छायवृक्षाटवीमध्ये यथाकामचारोपातगतस्याऽऽहारा-ऽभ्यन्तर साधनाभावमयुक्तोत्पन्नदाहस्य दावाग्निज्वालाजालजज्वालजटिलपरुष-वातातपजनित कण्ठशोषस्याऽनुभूत तत्प्रतीकारहेतुचिन्तन मविदधतः प्राणिपीडा-परिहारपरायणस्य चारित्ररूपोष्णसहनरूपः-४ दंशमशकपरीषहजयस्तु दंशमश-

भूत वस्तुओं का जो स्मरण भी नहीं करता, जो ज्ञान-भावना रूपी महल में, धैर्य रूपी गर्म वस्त्रों से युक्त होकर सुख-पूर्वक रहता है, ऐसे मुनि का शीत वेदन को सहन करना शीतपरीषह जय कहलाता है।

(४) उष्णपरीषह--वायु के संचार से शून्य, जलहीन, ग्रीष्मकाल की धूप से सूखे हुए और नीचे गिरे हुए पत्तों से रहित, छायाविहीन वृक्षों वाली अटवी के मध्य में, स्वेच्छा पूर्वक विचरण करते हुए, आहार रूप भीतरी कारणों के अभाव से जिसे दाह उत्पन्न हुआ है, दावानल की ज्वालाओं के समूह से व्याप्त निष्ठुर पवन के आतप से जिसका कंठ सूख गया है, पूर्व अवस्था में गर्मी के प्रतीकार के जिन साधनों का अनुभव किया था, उनका चिन्तन भी जो नहीं करता और जो प्राणियों को होने वाली पीडा का परिहार करने में तत्पर है, ऐसा मुनि गर्मी का जो कष्ट सहन करता है, उसे उष्णपरीषह जय कहते हैं।

(५) दंशमशकपरीषह-दंशमशक मत्कुण, माखी चींटी कीडे वृश्चिक (बींच्छु) आदि के द्वारा कृत पीडाको विना प्रतिकार सहलेना मन-

નથી, જે જ્ઞાન-ભાવના રૂપી મહેલમાં, ધૈર્યરૂપી ગરમ વસ્ત્રોથી યુક્ત થઈને સુખશાતામાં રહે છે, એવા મુનિરાજની શીતવેદનાને સહન કરવાને શીત-પરીષહજય કહેવાય છે.

(૪) ઉષ્ણપરીષહઃ-વાયુના સંચારથી શૂન્ય, પાણી વગરના, ગ્રીષ્મકાળના તડકાથી સૂકાઈ ગયેલા અને નીચે પડેલા પાંદડાઓથી રહિત, છાંયડા વગરના વૃક્ષોવાળા જંગલની મધ્યમાં સ્વેચ્છાપૂર્વક વિચરતા થકા આહાર રૂપ આભ્યંતર કારણોના અભાવથી જેને દાહ ઉત્પન્ન થયો છે, દાવાનળની જ્વાલાઓના સમૂહથી વ્યાપ્ત નિષ્ઠુર પવનના આતપથી જેનું ગળું સુકાઈ ગયું છે, પૂર્વ અવસ્થામાં ગરમીના પ્રતિકારના જે સાધનોનો અનુભવ કર્યો હતો તેનું લેશમાત્ર ચિન્તન કરતો નથી અને જે પ્રાણીઓને થનારી પીડાનો પરિહાર કરવામાં તત્પર છે, એવા મુનિ ગરમીનું જે કષ્ટ સહન કરે છે તેને ઉષ્ણપરીષહજય કહે છે.

(૫) દંશમશકપરીષહ-ડાંસ, મચ્છર, માંકડ, માખ, કીડી, વીંછી વિગેરે દ્વારા કરવામાં આવેલ પીડાને કંઇ પણ પ્રતિકાર કર્યા વિના સહન કરવી. અને

कमक्षिकामत्कुणकीटपिपीलिकावृश्चिकादि कृतां प्रतीकाररहितां पीडां सहमानस्य मनोवाक्कायकृतां तद्बाधामकुर्वाणस्य मोक्षप्राप्तिमात्रकृतसङ्कल्पप्रावरणस्य दंशमशकादिवेदनासहनरूपोऽवसेयः-५ अचेलपरीषहजयस्तु-मनोविकारविरहितत्वात् स्त्रीरूपाणि-अत्यन्ताशुचि कुणपरूपेण भावयतोऽखण्डब्रह्मचर्यव्रतं धारयतोऽल्पवस्त्रधारणव्रतरूपोऽनग्नत्वोऽवसेयः-६ अरतिपरीषहजयस्तावत्-इन्द्रियाभीष्टविषयप्राप्तिम्प्रति-अनुत्कण्ठितस्य संयतस्य गीतनृत्यादि विरहितेषु एकान्तध्यानसमाधिगृहेषु स्वाध्यायध्यानभावनारतिं सेवमानस्य दृष्टश्रुताऽनुभूत

वचन एवं कायद्वारा उन की बाधा न पहुंचावे, एवं मोक्ष मार्ग की प्राप्ति में निश्चित बुद्धिवाले होकर दंशमशकादि द्वारा कृत वेदनाको सहलेना दंशमशकपरीषह जय कहलाता है।

(६) अचेलपरीषह--जो साधु मानसिक विकार से रहित है, जो स्त्री के रूप को अत्यन्त अपावन मांस के लोथडे के समान समझता है और जो अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत का धारक है, ऐसे मुनि का अल्प वस्त्रों को धारण करना अचेलपरीषह जय कहा जाता है।

(७) अरतिपरीषह—जिस साधु के चित्त में इन्द्रियों के अभीष्ट विषयों की प्राप्ति के लिए उत्कंठा नहीं है, जो गीत नृत्य आदि से रहित एकान्त ध्यान-समाधिगृहों में स्वाध्याय, ध्यान और भावना का अभ्यास करता है, जो पहले देखी हुई, सुनी हुई या अनुभव की हुई काम-कथा का स्मरण और श्रवण नहीं करता, जिसके हृदय में काम के बाण प्रवेश नहीं करते और जिसके हृदय में सदैव दया का उदय

મન, વચન અને કાયાથી તેમને બાધા ન પહોંચાડતી તથા મોક્ષમાર્ગની પ્રાપ્તિમાં નિશ્ચલ મતિવાળા બનીને દંશમશકાદીએ કરેલ પીડાને સહન કરવી તે દંશમશકાય પરીષહજય કહેવાય છે.

(૬) અચેલપરીષહઃ-જે સાધુ માનસિક વિકારથી રહિત છે, જે સ્રીના રૂપને અત્યન્ત અપવિત્ર માંસના લોચા જેવું સમજે છે અને જે અખંડ બ્રહ્મચર્યવ્રતનો ધારક છે, એવા મુનિનું અલ્પવસ્રોનું ધારણ કરવું અચેલ-પરીષહજય કહેવાય છે.

(૭) અરતિપરીષહઃ-જે સાધુના ચિત્તમાં ઈન્દ્રિયોના અનિષ્ટ વિષયોની પ્રાપ્તિ માટે ઉત્કંઠા નથી જે ગીત, નૃત્ય આદિથી રહિત એકાન્ત ધ્યાન-સમાધિગૃહોમાં સ્વાધ્યાય, ધ્યાન અને ભાવનાનો અભ્યાસ કરે છે, જે પહેલા જોએલી, સાંભળેલી અથવા અનુભવેલી કામ-કથાનું શ્રવણ અને સ્મરણ કરતો નથી, જેના હૃદયમાં કામના બાણ પ્રવેશ કરતા નથી, જેના હૃદયમાં સર્વદા

कामरतिकथा स्मरण श्रवणमदनवाणप्रवेशविवररहितहृदयस्य सदोदितदय-स्याऽरति सहनरूपो बोध्यः-७ स्त्रीपरीषहजयस्तु-एकान्तारामभवनादिषु नवयौवनमद विभ्रमविलास मदिरासवसेवनोन्मत्तकलनासु बाधमानासु सत्स्वपि कूर्मवत् संवृतेन्द्रिय मानसविकारस्य ललितस्मितमधुरालापविलास-कटाक्षवीक्षण प्रहसन मदमन्दगमन कामशरव्यापारविफलीकरण समर्थस्य कामिनी-बाधासहनरूपो बोध्यः-८ चर्यापरीषहजयस्तावत्-अधिगतबन्धमोक्षतत्त्वस्या-ऽत्यन्ततीक्ष्णकण्टक शर्करादि व्यधनक्षतजातपादव्यथस्याऽपि पूर्वानुभूतयोग्य-

रहता है, उस साधु का अरति को सहन कर लेना अरतिपरीषह जय है।

(८) स्त्रीपरीषह—एकान्त उद्यान या भवन आदि स्थान में नव यौवन के कारण चंचल मनवाली, नाना प्रकार के श्रृंगारिक हावभाव प्रदर्शित करने वाली एवं मदिरा के सेवन से उन्मत्त बनी हुई कोई स्त्री साधु को संयम से विचलित करना चाहे तो साधु कछुवे के जैसा अपने अंगों अर्थात् इन्द्रियों और मन के विकार को रोके, और उसकी ललित मुस्कराहट को, मधुर आलाप को, विलासपूर्ण कटाक्षयुक्त अवलोकन को, हास्य को, मद युक्त मन्द गति को एवं काम के वाणों के व्यापार को विफल करदे। ऐसा करने में समर्थ मुनि कामिनी जनित बाधा को जो सहन कर लेता है, उसका वह स्त्रीपरीषह जय कहलाता है।

(९) चर्यापरीषह—जिसने बन्ध और मोक्ष तत्त्व को भलीभांति जान लिया है, जिसके पांवों में अत्यन्त तीखे कांटे या कंकर आदि चुमने

દયાનો ઉદય થાય છે, તે સાધુનું અરતિને સહન કરી લેવું–અરતિપરીષહજય કહેવાય છે.

(૮) સ્ત્રીપરીષહ:–એકાન્ત ઉદ્યાન અથવા ભવન આદિ સ્થાનોમાં નવ-યૌવનને લીધે નખરાવાળી, વિવિધ પ્રકારના શૃંગારિક હાવ ભાવ પ્રદર્શિત કરનારી અને મદિરાના સેવનથી ઉન્મત્ત બનેલી, કોઈ સ્ત્રી, સાધુને સંયમથી વિચલિત કરવા ઇચ્છે ત્યારે સાધુ કાચબાની માફક પોતાના અંગો અર્થાત્ ઇન્દ્રિયો તથા મનના વિકારને રોકે અને તેની લલિત મુસ્કરાહટ (હાસ્ય)ને, મધુર આલાપને, વિલાસપૂર્ણ કટાક્ષયુક્ત અવલોકનને, હાસ્યને, મદભરેલી મન્દ ચાલને અને કામબાણોના વ્યાપારોને નિષ્ફળ બનાવી દે. આમ કરવામાં સમર્થ મુનિ કામિની જનિત મુશ્કેલીને જે સહન કરી લે છે, તેનો આ સ્ત્રીપરીષહજય કહેવાય છે.

(૯) ચર્યાપરીષહ–જેણે બન્ધ અને મોક્ષતત્ત્વને સારી પેઠે જાણી લીધા છે, જેના પગમાં અત્યન્ત તીક્ષ્ણ કાંટા અથવા કાંકરા વગેરે વાગવાથી વ્યથા

यानवाहनाद्यारोहणगमनस्मरणमकुर्वतो यथाकालमावश्यकादि परिहाणि मविषहतश्चर्या सहनरूपोऽवगन्तव्यः-९ निषद्यापरीषहजयस्तावत्-प्रकाशितप्रदेशे कृतनित्यक्रियस्य मनुष्यतिर्यग्देवादिकृतेष्टानिष्टोपसर्गसहनान्मोक्षमार्गाऽच्युतस्य वीरासनाद्यविचलितशरीरस्य तत्कृतबाधासहनरूपो बोध्यः-१० शय्यापरीषहजयस्तावद्-अध्वश्रमस्वाध्यायध्यानपरिश्रान्तस्य निम्नोन्नततीक्ष्णशर्करादि सङ्कुलातिशीतोष्णभूमितलेषु निद्रालभमानस्य कृतव्यन्तरादि विविधोपसर्गादपि अविचलितशरीरस्याऽनियतकालिकतत्कृतबाधासहनरूपो बोध्यः-११ आक्रोश

से व्यथा उत्पन्न हो रही है और जो पूर्व भुक्त योग्य यान, वाहन पर सवार होकर गमन करने का स्मरण भी नहीं करता है, जो नियत समय पर किये जाने वाले आवश्यक आदि क्रियाकलापों की हानि को सहन नहीं करता, ऐसा मुनि चर्यापरीषह पर विजय प्राप्त करता है।

(१०) निषद्यापरीषह--प्रकाशयुक्त प्रदेश में नित्य क्रिया करने वाले, मनुष्य देव या तिर्यंच के द्वारा उत्पन्न किये हुए इष्ट या अनिष्ट उपसर्गों को सहन करने से जो मोक्षमार्ग से च्युत नहीं होता, जिसका शरीर वीरासन आदि से विचलित नहीं होता, उस मुनि का निषद्याकृत बाधा को सहन कर लेना निषद्यापरीषह जय कहलाता है।

(११) शय्यापरीषह-राह चलने के श्रम से और स्वाध्याय तथा ध्यान करने से थके हुए, नीचे, ऊंचे, तीखे कंकर आदि से युक्त अत्यन्त शीत या उष्ण भूमितल पर जिसे नींद नहीं आ रही है एवं

ઉત્પન્ન થઈ રહી છે અને જે પૂર્વે ભોગવેલા યોગ્ય યાન, વાહન પર સવાર થઈને ગમન કરવાનું સ્મરણ પણ કરતો નથી, જે નક્કી કરેલા સમયે કરવામાં આવતી આવશ્યક આદિ ક્રિયાકલાપોની શીથીલતાને સહન કરતો નથી, એવા મુનિ ચર્યાપરીષહ પર વિજય પ્રાપ્ત કરે છે.

(૧૦) નિષદ્યાપરીષહ-પ્રકાશયુક્ત પ્રદેશમાં નિત્યક્રિયા કરવાવાળા, મનુષ્ય દેવ અથવા તિર્યંચ દ્વારા ઉત્પન્ન કરવામાં આવેલા ઇષ્ટ અથવા અનિષ્ટ ઉપસર્ગોને સહન કરવા છતાં જે મોક્ષમાર્ગથી ખસતો નથી, જેનું શરીર વીરાસન આદિથી વિચલિત થતું નથી, તે મુનિની નિષદ્યાકૃત મુશ્કેલીઓને સહન કરી લેવી નિષદ્યાપરીષહજય કહેવાય છે.

(૧૧) શય્યાપરીષહ-રસ્તે ચાલવાના શ્રમથી અને સ્વાધ્યાય તથા ધ્યાન કરવાથી થાકી ગયેલા નીચી ઉંચી તીક્ષ્ણ કાંકરા આદિથી યુક્ત અત્યન્ત ટાઢી અથવા ગરમ ભૂમિ અગર સપાટી પર જેને ઉંઘ આવતી નથી તેમજ વ્યન્તર

परीषहजय स्तावद्-मिथ्यादर्शनोदू दृप्तामर्षकठोरावज्ञा निन्दाऽसभ्यवचनानि क्रोधाग्निज्वालाजटिलानि अरुन्तुदानि शृण्वतोऽपि विवेकिन स्तदुपेक्षां कुर्वतः पापकर्मविपाकमभिचिन्ततः श्रमणस्य तपश्चरणभावनापरायणस्य क्रोधमान माया लोभादि कषायविषलेशमात्रस्यापि प्रवेशरहितं स्वहृदयं विदधतः- आक्रोशसहनरूपो बोध्यः-१२ वधपरीषहजयस्तावद्-अतितीक्ष्णधारखड्ग- मुसल-मुद्गरादि प्रहरणाघाततांडनपीडनादिभिर्हन्यमानशरीरस्य घातकेषु

व्यन्तर आदि देवों द्वारा विविध प्रकार से उपसर्ग उत्पन्न करने पर भी जिसका शरीर विचलित नहीं होता, ऐसा मुनि अनियत काल तक उस बाधा को जो सहन करता है, वह शय्यापरीषह जय कहलाता है।

(१२) आक्रोशपरीषह—मिथ्यादर्शन के उदय से भडके हुए क्रोध के कारण कठोर, अवज्ञापूर्ण, निन्दामय असभ्य वचनों को, क्रोध रूपी अग्नि की ज्वाला से व्याप्त वचन डाँट फटकार के वचनों को श्रवण करके भी जो विवेकशील होने के कारण उनकी उपेक्षा करता है, जो अपने पापकर्म के विपाक का चिन्तन करता है, जो तपश्चरण की भावना में परायण है, जो क्रोध मान माया लोभ आदि कषायों के विष के लेश मात्र को भी हृदय में प्रवेश नहीं होने देता, ऐसे मुनि का आक्रोश-वचनों को सह लेना आक्रोशपरीषह जय कहलाता है।

(१३) वधपरीषह—अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाली तलवार मूसल या मुद्गर आदि शस्त्रों के आघात, ताडन, पीडन आदि के द्वारा जिसका

આદિ દેવો દ્વારા વિવિધ પ્રકારના ઉપસર્ગ ઉત્પન્ન કરવામાં આવ્યા છતાં પણ જેનું શરીર વિચલિત થતું નથી, એવા મુનિરાજ અનિયત કાળ સુધી તે વિપત્તિને જે સહન કરે છે, તે શય્યાપરીષહજય કહેવાય છે.

(૧૨) આક્રોશપરીષહ–મિથ્યાદર્શનના ઉદયથી અગ્નિ જેવા ક્રોધના કારણે કઠોર, અવજ્ઞાપૂર્ણ, નિન્દામય અસભ્ય વચનોને, ક્રોધ રૂપી અગ્નિની જવાલાઓથી વ્યાપ્ત ધાકધમકીના વચનોને સાંભળવા છતાં પણ જે વિવેકશીલ હોવાથી તેમની ઉપેક્ષા કરે છે, જે પોતાના પાપકર્મના ફળનું ચિન્તન કરે છે, જે તપશ્ચર્યાની ભાવનામાં પ્રવૃત્ત છે, જે ક્રોધ, માન માયા લોભ આદિ કષાયોના વિષને લેશમાત્ર પણ હૃદયમાં પ્રવેશવા દેતા નથી, એવા મુનિરાજના આક્રોશ–વચનોને સહન કરી લેવાની વૃત્તિને આક્રોશપરીષહજય કહેવાય છે.

(૧૩) વધપરીષહ–અત્યન્ત તીક્ષ્ણ–ધારવાળી તલવાર, મુશળ અથવા મુદ્‌ગર વગેરે શસ્ત્રોના આઘાત, તાડન, પીડન આદિના વડે જેનું શરીરની સાથે

किञ्चिदपि मनोविकारम कुर्वतः 'पुराकृत दुष्कर्मफलमिदं वर्तते' नत्वेतेषां वराकाणां कश्चिद्दोषः, जलबुदबुदवत् क्षणभङ्गुरं सम्यग् ज्ञानदर्शनचारित्राणि मम न केनचिदुपहन्तुं शक्यन्ते इति भावयतोवाऽसीताक्षण चन्दनानुलेपनसमदर्शिनो वधपीडासहनरूपो बोध्यः-१३ याचना परीषहजयस्तावद्-बाह्याभ्यन्तर तपोऽनुष्ठानपरायणस्य त्वगस्थिशिराधमनीजालमात्रशरीरयन्त्रस्य प्राणविरहे सत्यपि आहारवसति प्रभृतीनि दीनाभिधानमुखवैवर्ण्याऽऽदिरयाचमानस्य

शरीर आहत हो रहा है, जो घातक पुरुष के प्रति किंचित् भी मनोविकार उत्पन्न नहीं होने देता, और जो ऐसा सोचता है कि-यह सब मेरे पूर्वकृत दुष्कर्मों का फल है, इन बेचारों का दोष नहीं है, शरीर जल के बुलबुले के समान क्षणविनश्वर है और मेरे सम्यग् ज्ञान, दर्शन और चारित्र का कोई घात नहीं कर सकता' तथा जो बसूले के द्वारा चमडी के छीले जाने को और चन्दन के लेपन को समान समझता है, उस मुनि का वध जनित पीडा को सहन कर लेना वधपरीषह जय कहलाता है।

(१४) याचनापरीषह जो बाह्य और आभ्यन्तर तपस्या के अनुपान में तत्पर है, तीव्र तपश्चरण के कारण जिस के शरीर का समस्त रुधिर और मांस शुष्क हो गया है, केवल त्वचा, हड्डी, शिरा, धमनी मात्र ही शेष रह गए हैं, प्राणों के चले जाने पर भी जो आहार, उपाश्रय आदि की दीनतापूर्ण शब्दों द्वारा या चेहरे पर दीनता धारण करके याचना

પીડાઈ રહ્યું છે જે ઘાતક પુરૂષની પ્રત્યે કિંચિત્ પણ મનોવિકાર ઉત્પન્ન થવા દેતા નથી અને જે એવું વિચારે છે કે-આ બધું મારા પૂર્વકૃત દુષ્કર્મોનું ફળ છે, આ બિચારાઓનો કોઈ દોષ નથી, શરીર પાણીના પરપોટાની માફક ક્ષણભંગુર છે અને મારા સમ્યક્દર્શન, સમ્યક્જ્ઞાન, અને ચારિત્રનું કોઈ જ હનન કરી શકતું નથી તથા જે વાંસલા વડે ચામડીને છોલવાને અને ચંદન-લેપન બંનેને સરખાં ગણે છે, તે મુનિરાજની વધજનિત પીડાને સહન કરવાની ક્ષમતાને વધપરીષહજય કહે છે

(૧૪) યાચનાપરીષહ-જે બાહ્ય અને આભ્યંતર તપસ્યાના અનુષ્ઠાનમાં તત્પર છે, તીવ્ર તપશ્ચર્યાના કારણે જેના શરીરનું સમસ્ત લોહી અને માંસ સુકાઈ ગયા છે, માત્ર ચામડી, હાડકાં, શિરા, ધમણી માત્ર બાકી રહી ગયા છે, પ્રાણોના ચાલ્યા જવા છતાં પણ જે આહાર ઉપાશ્રય માટે લાચારી-પૂર્વકના શબ્દો દ્વારા અથવા ચેહરા ઉપર દીનતા પ્રકટ કરીને યાચના કરતા

भिक्षाकालेऽपि उपस्थितेऽन्यस्मिन् भिक्षुके स्वस्य प्रदित्यक्त्वशरीरस्य ततोऽपसरणलक्षणो याचनासहनरूपोऽवगन्तव्यः—१४ अलाभपरीषहजय स्तावद्-वायुवत्-असङ्गाद्-अनेकदेशसंचरणशीलस्य वाचंयमस्य बहुस्थलेषु भिक्षाऽनवाप्त्याऽपि असंक्लिष्टचित्तस्य दातृविशेषपरीक्षानिरुत्सुकस्य लाभादपि अलाभं परमं तपो मन्यमानस्य सन्तुष्टस्य—अलाभसहनरूपो बोध्यः—१५ रोगपरीषहजयस्तु—शरीरे सर्वाशुचिनिधानत्वा दादरसंस्कारास्था रहितस्याऽन्तप्रान्ततुच्छाऽरस-विरसाद्याहारमभ्युपगच्छतो युगपदेकव्याधिप्रकोपे सत्यपि

नहीं करता और भिक्षा के समय अगर दूसरा कोई भिक्षुक उपस्थित दिखाई दे तो वहां से हट जाता या अदृश्य हो जाता है, ऐसे मुनि का याचना को सहन कर लेना याचना परीषह जय कहलाता है।

(१५) अलाभपरीषह—वायु के समान निस्संग होने के कारण जो अनेक देश-देशान्तरों में विचरण करता है, मौन व्रती है, बहुत से स्थानों में जाने पर भी भिक्षा का लाभ न होने पर भी जिसके चित्त में संक्लेश उत्पन्न नहीं होता, जो दाताविशेष की परीक्षा करने में उत्सुक नहीं है, जो अलाभ को लाभ से भी अच्छा समझता है और जो सन्तोषशील होता है, ऐसा साधु अलाभपरीषह जय करता है।

(१६) रोगपरीषह—सब प्रकार की अशुचि का भंडार होने के कारण शरीर के प्रति जो आदर,० संस्कार या आस्था से रहित है, जो अन्त, प्रान्त, तुच्छ, अरस और विरस आहार का स्वीकार करता है, एक,

---

નથી અને ભિક્ષાવેળાએ જો બીજો કોઈ ભિક્ષુક હાજર દેખાય તો તે સ્થળેથી ચાલ્યો જાય છે, એવી મુનિરાજની યાચનાને સહન કરી લેવાની વૃત્તિ યાચનાપરીષહજય કહેવાય છે.

(૧૫) અલાભપરીષહ—વાયુની માફક નિઃસંગ હોવાના કારણે જે અનેક દેશ-દેશાન્તરોમાં વિચરણ કરે છે, મૌનવૃત્તિમાં વિચરે છે, ઘણા સ્થાનોમાં જવા છતાંપણ-ભિક્ષાનો લાભ ન થવા છતાંપણ જેના ચિત્તમાં ઉદ્વેગ ઉત્પન્ન થતો નથી જે દાતાવિશેષની પ્રતીક્ષા કરવામાં પણ ઉત્સુક નથી જે અલાભને લાભ કરતાં પણ સારૂં સમજે છે અને જે સંતોષશીલ હોય છે, એવા સાધુ અલાભપરીષહજય કરે છે.

(૧૬) રોગપરીષહ—બધાં પ્રકારની અશુચિનો ભંડાર હોવાના કારણે શરીર પ્રત્યે જે આદર, સંસ્કાર અથવા આસ્થાથી રહિત છે, જે અન્ત, પ્રાન્ત, તુચ્છ, અરસ અને વિરસ આહારનો સ્વીકાર કરે છે, એકી સાથે એક

तदधीनतां परित्यजतः तपो विशेषर्द्धियोगे सत्यपि शरीरनिःस्पृहत्वात् तत्प्रतीकारम कुर्वतो रोगसहनरूपो बोध्यः-१६ तृणस्पर्शपरीषहस्तावत्-शुष्क तृणकठोरतरशर्करामस्तखण्डकण्टक शूलादि व्यघनकृतक्षतशरीराघातवेदना प्राप्तौ सत्यामपि तत्र प्राणिहितचित्तस्य चर्या शय्यानिषद्यासु प्राणि बाधापरिहारे सततं दत्तचित्तस्य तृणादिस्पर्शसहनरूपो बोध्यः-१७ जल्ल मलपरीषहजयस्तावद्-अप्काय प्राणिपीडापरिहाराय मरणपर्यन्तं स्नानवर्जन-व्रतधारिणः श्रमणस्य तीव्र रविकिरणप्रतापजनितप्रस्वेदार्द्रपवनानीत धूलि-

साथ एक के साथ एक (अनेक) व्याधियों का प्रकोप होने पर भी जो उनके अधीन नहीं होता, विशिष्ट ऋद्धि प्राप्त होने पर भी जो शरीर के प्रति निस्पृह होने के कारण जो व्याधि का प्रतीकार नहीं करता, ऐसे मुनि का समभाव पूर्वक रोगों को सहलेना रोगपरीषह जय कहलाता है।

(१७) तृणस्पर्शपरीषह--सूखे घास, अत्यन्त कठोर कंकर, पाषाण खण्ड, कंटक-शूल आदि चुभने से उत्पन्न होने वाले शरीरघात की वेदना उत्पन्न होने पर भी उसका विचार न करने वाले, एवं चर्या, शय्या और निषद्या में प्राणियों की बाधा का परिहार करने में सदैव दत्तचित्त साधु का तृणस्पर्शपरीषह का सहन कहलाता है।

(१८) जल्लमलपरीषह--जल्ल मल अर्थात् पसीने से जमा हुआ मैल को दूर करने के लिये परिहार करने के लिए अजीवन स्नान-त्यागव्रत को धारण करने वाले, सूर्य की तीव्र किरणों के प्रताप से उत्पन्न हुए पसीने से शरीर गीला हो जाने के कारण पवन से उडाई

એક (અનેક) વ્યાધિઓનો હુમલો થવા છતાં પણ જે તેમને તાબે થતો નથી, વિશિષ્ટ ઋદ્ધિ પ્રાપ્ત થવા છતાં પણ જે શરીરની પ્રત્યે નિસ્પૃહ હોવાના કારણે જે વ્યાધિઓની પ્રતીકાર કરતા નથી, એવા મુનિરાજનું સમભાવપૂર્વક રોગોને સહન કરી લેવું-રોગપરીષહજય કહેવાય છે.

(૧૭) તૃણસ્પર્શપરીષહ-સુકું ઘાસ. અત્યન્ત કઠોર કાંકરા પથ્થરના ટુકડા, કાંટા-શૂલ વગેરે વાગવાથી ઉત્પન્ન થનારી શારીરાઘાતની વેદના ઉત્પન્ન થવા છતાં પણ તેનો વિચાર નહીં કરનારા અને ચર્યા, શય્યા અને નિષદ્યામાં પ્રાણિઓની મુશ્કેલીઓને દૂર કરવામાં હમેશાં દત્તચિત્ત સાધુનું તૃણસ્પર્શ પરીષહનું સહન કરવું એમ કહેવાય છે.

(૧૮) જલ્લમલપરીષહ-જલ્લમલ અર્થાત્ પરસેવાથી જામેલા મેલને દૂર કરવા માટે આજીવન સ્નાનત્યાગવ્રતને ધારણ કરનાર, સૂર્યના પ્રચંડ કિરણોના પ્રતાપથી ઉત્પન્ન થયેલા પરસેવાથી શરીર ભીનું થઇ જવાના કારણે

निषण्णस्य दद्रु-कच्छू-खर्जू दीर्णकण्डूत्यां समुत्पन्नायामपि कण्डूयन-विमर्दन-संघट्टनाऽव्याकुलीकृतचित्तस्य स्वशरीरवृत्तिमलोपचयः परशरीरवृत्ति नैर्मल्ययोः सङ्कल्परहितमानसस्य सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूप विमलजलप्रक्षालनेन कर्म-मलपङ्कचयापसारणाय सततोद्यतबुद्धेः-खलु मलसहनरूपोऽवगन्तव्यः-१८ सत्कारपुरस्कारपरीषहजयस्तावत्-प्रशंसात्मकसत्कारे क्रियारम्भादिषु सर्वा-पेक्षयाऽग्रतः करणरूपे, आमन्त्रणेवा-पुरस्कारेचाऽनादरो मम विधीयते। चिर-कालसेवितब्रह्मचर्यस्य महातपस्विनो मम प्रणाम-भक्ति सम्भ्रमा-सन प्रदा-नादीनि न कोपि विदधाति, मिथ्यादृष्टयः खलु-अतीव भक्तिमन्तो न किञ्चि

हुई रेत-धूल से जिसका शरीर व्याप्त हो गया है, दाद, खाज और कच्छू पैदा हो जाने के कारण खुजली उत्पन्न होने पर भी खुजलाने, मर्दन करने या रगड़ने के लिए जिसका चित्त व्याकुल नहीं है, अपने शरीर पर जमे हुए मैल और परकीय शरीर की निर्मलता का संकल्प भी जिसके मानस में उत्पन्न नहीं होता, जो सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी निर्मल सलिल से प्रक्षालन करके कर्म-मल रूपी कीचड़ के समूह को हटाने में ही सदा उद्यत रहता है, वह साधु जल्लमल-परीषह का विजेता कहलाता है।

(१९) सत्कार पुरस्कारपरीषह—'ये लोग मेरा प्रशंसात्मक सत्कार नहीं करते। काम-काज में मुझे सब से आगे नहीं करते। आमंत्रण एवं पुरस्कार नहीं करते। मैं चिरकाल से ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा हूं, घोर तपस्वी हूं, फिर भी कोई मुझे प्रणाम नही, करता। मेरी

પવનથી ઉડેલી રેતીના-રજકણોથી જેનું શરીર વ્યાપ્ત થઇ ગયું છે, દાદર, ખસ અને કચ્છુ ઉત્પન્ન થવાના કારણે ખજવાળ ઉત્પન્ન થવા છતાં પણ ખજ-વાળવા, મર્દન કરવા અથવા સરૂળવા માટે જેનું ચિત્ત વ્યાકુળ નથી, પોતાના શરીર પર જામેલા મેલ અને પારકાના શરીરની નિર્મળતાનો સંકલ્પ પણ જેના માનસમાં ઉત્પન્ન થતો નથી, જે સમ્યક્જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્રરૂપી નિર્મળ પાણીથી પ્રક્ષાલન કરીને કર્મ-મળ રૂપી કાદવના સમૂહને હડસેલવામાં જ સદા તત્પર રહે છે, તે સાધુ જલ્લમલપરીષહના વિજેતા કહેવાય છે.

(૧૯) સત્કારપુરસ્કારપરીષહ-આ લોકો મારો પ્રશંસાત્મક સત્કાર કરતાં નથી। કામ-કાજમાં મને બધાથી આગળ કરતાં નથી। આમંત્રણ અને પુરસ્કાર જેવું પણ કંઇ ગોઠવતાં નથી। હું ચિરકાળથી બ્રહ્મચર્યનું પાલન કરી રહ્યો છું, ઉગ્ર તપસ્વી છું તો પણ કોઈ મને પ્રણામ કરતું નથી। મારી ભક્તિ

ऽज्ञानन्तमपि सर्वज्ञसम्भावनया संमान्य स्वसमयप्रभावनां कुर्वन्ति, कथमन्यथा तथाविधानामस्मादृशामपि सेवां नाचरन्ति, इत्येवं दुष्प्रणिधानवर्जितचित्तस्य सत्कारपुरस्कार सहनरूपो बोध्यः- १९ प्रज्ञापरीषहजयस्तावत्-मम चतुर्दश पूर्वधरस्य तथाऽऽचाराङ्गाद्यङ्गोपाङ्गविशारदस्याऽग्रे खल्वन्ये रविप्रभाभिभूत खद्योतोद्द्योतवत्' प्रतिभाविहीनाः प्रतिभासन्ते, इत्येवं विज्ञानमदस्य तथा-स्वस्य मति-बुद्धयल्पत्वे सति परं कश्चिद् बुद्धिमन्तं दृष्ट्वा मानसखिन्नतायाश्च वर्जनरूपोऽवगन्तव्यः- २० अज्ञानपरीषहजयस्तु-'अज्ञोऽयं खलु पशु सदृशो

भक्ति नहीं करता। सत्कार और आसन-प्रदान नहीं करता। ये भक्ति करने वाले लोग मिथ्यादृष्टि हैं। जिससे जो कुछ भी नहीं जानता, उसे सर्वज्ञ मानकर अपने शासन की प्रभावना करते हैं। ये मिथ्यादृष्टि-मूढ न होते तो मेरे जैसों की सेवा क्यों न करते?' इस प्रकार का अप्रशस्त विचार जिसके चित्त में प्रवेश भी नहीं करता वह सत्कार पुरस्कार परीषह का विजेता कहलाता है।

(२०) प्रज्ञापरीषह--'मैं चौदह पूर्वों का धारक हूं, आचार आदि अंगों और उपांगों का ज्ञाता हूं, मेरे सामने दूसरे लोग उसी प्रकार प्रतिभाविहीन हैं जैसे सूर्य की प्रभाके सामने जुगनू निष्प्रभ होता है, इस प्रकार अपनी प्रज्ञा के अभिमान को त्यागना और अपने आपको अल्पबुद्धि समझ कर तथा दूसरे को बुद्धि शाली देख कर मन में खिन्नता न लाना प्रज्ञापरीषह जय कहलाता है।

(२१) अज्ञानपरीषह-'यह अनजान है, जानवर के समान है, कुछ

કરતું નથી। સત્કાર અને આસન પ્રદાન કરતા નથી, આ ભક્તિ કરનારાઓ મિથ્યાદૃષ્ટિ છે જે કશું પણ જાણતો નથી તેને સર્વજ્ઞ માનીને પોતાના શાસનની પ્રભાવના કરે છે.। આ મિથ્યાદૃષ્ટિ-મૂઢ ન હોત તો મારા જેવા-ઓની સેવા કેમ ન કરત? આ પ્રકારનો અપ્રશસ્ત વિચાર જેના મનમાં પ્રવેશ પણ કરતો નથી, તે સાધુ સત્કારપુરસ્કારપરીષહનો વિજયી કહેવાય છે.

(૨૦) પ્રજ્ઞાપરીષહ-હું ચૌદ પૂર્વોનો ધારક છું, આચાર આદિ અંગો અને ઉપાંગોનો જ્ઞાતા છું, મારી આગળ બીજા લોકો એવી રીતે પ્રતિભા-વિહોણા છે જેમ સૂર્યની પ્રભા આગળ આગીયો નિસ્તેજ થઈ જાય છે, આ રીતે પોતાની પ્રજ્ઞાના અભિમાનનો ત્યાગ કરવો અને પોતાને અલ્પબુદ્ધિ સમજીને તથા બીજાને બુદ્ધિશાળી જોઈને મનમાં ખિન્નતા ન લાવવી પ્રજ્ઞાપરીષહજય કહેવાય છે.

(૨૧) અજ્ઞાનપરીષહ-'આ અજ્ઞાની છે, જનાવર જેવો છે, કશું જ

न किञ्चिदपि जानाति' इत्येवं स्वम्प्रति प्रोच्यमानमधिक्षेपवचनं सहमानस्य सदा प्रमादरहितचेतसः परमदुश्चरतपोऽनुष्ठानं विदधतो मे नाद्यापि विज्ञानातिशयः समुत्पद्यते' इत्येवमभिसन्धानमकुर्वतः खलु–अज्ञानसहनरूपोऽत्रसेयः–२१ दर्शनपरीषहजयः–दर्शनस्य सम्यक्त्वस्य परिरक्षणे यः परीषहः क्लेशो जायते तस्य जयः, यथा–विदितसकलपदार्थतत्त्वस्य परमनिर्वेदभावनाविशुद्धचेतसः खलु चिरकालमव्रजितस्यापि मम नाद्यापि ज्ञानातिशयः समुत्पद्यते' महोपवासाद्यनुष्ठानवतां प्रातिहार्यविशेषाः प्रादुर्भूताः इतितु प्रलापमात्रं वचः निष्फलं खलु व्रतपरिपालनम् विफलेयं प्रव्रज्या, अतो दर्शनमिदं मम परंमारायैव,

---

भी नहीं समझता' इस प्रकार के अपने लिए कहे जाने वाले आक्षेप वचनों को जो सहन कर लेना है, जिसका चित्त सदैव प्रमाद से रहित होता है जो अत्यन्त दुश्चर तप करता है, 'अब तक भी मुझे ज्ञान का अतिशय प्राप्त नहीं हो रहा हैं' इस प्रकार का विचार जो नहीं करता, ऐसे पुरुष का अपने अज्ञान को समभाव से सहन करलेना अज्ञान-परीषह जय कहलाता है।

(२२) दर्शनपरीषह--सम्यग्दर्शन की रक्षा करने में जो कष्ट उत्पन्न होता है, उसे समतापूर्वक सहलेना दर्शनपरीषह जय कहलाता है। जैसे–'मैंने समस्त पदार्थों के मर्म को समझ लिया है, मेरा चित्त उत्कृष्ट वैराग्यभावना से विशुद्ध है, और में दीर्घकाल से दीक्षा का पालन कर रहा हूं, फिर भी मुझे ज्ञानातिशय (विशिष्ट ज्ञान) का लाभ नहीं हो रहा है! लोग कहते हैं और पोथियों में लिखा है कि महान्

સમજતો નથી' એવી જાતના પોતાના માટે કહેવામાં આવેલા આક્ષેપવચનોને જે સહન કરી લે છે, જેનું ચિત્ત સદા પ્રમાદથી રહિત હોય છે, જે અત્યન્ત દુષ્કર તપશ્ચર્યા કરે છે, હજુ સુધી પણ મને જ્ઞાનની વિપુલતા પ્રાપ્ત થતી નથી, એ જાતનો વિચાર જે કરતો નથી, એવા પુરૂષનું અજ્ઞાનને સમભાવથી સહન કરી લેવું અજ્ઞાનપરીષહજય કહેવાય છે.

(૨૨) દર્શનપરીષહ–સમ્યગ્દર્શનની રક્ષા કરવામાં જે કષ્ટ ઉત્પન્ન થાય છે તેને સમતાપૂર્વક સહન કરી લેવા દર્શનપરીષહજય કહેવાય છે જેમ કે–મેં બધાં પદાર્થોના મર્મને સમજી લીધો છે, મારૂં ચિત્ત ઉત્કૃષ્ટ વૈરાગ્ય-ભાવનાથી વિશુદ્ધ છે અને હું દીર્ઘકાળથી દીક્ષાનું પાલન કરી રહ્યો છું, તો પણ મને જ્ઞાનાતિશય (વિશિષ્ટજ્ઞાન)નો લાભ થતો નથી! લોકવાયકા છે અને શાસ્ત્રોમાં લખેલું છે કે મહાન્ ઉપવાસ આદિ અનુષ્ઠાન કરનારાઓને

किन्तु-नात्मनस्त्राणाय भवती त्येवं सन्देहस्य जयरूपो बोध्यः यद्वा-साधो दर्शन सन्देह समये दर्शनाच्च्यावयितुं कोऽपि देव स्तद्वस्तु प्रदर्श्य प्रलोभयति तत्प्रलोभ ऽनादरणे वर्तमानः शारीरिकश्च परीषहो भवति तस्य जयरूपो बोध्यः ॥२२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः--पूर्वं तावत् कर्मास्रवनिरोधलक्षणसंवरहेतुतया प्रतिपादितानां समितिगुप्तिधर्माऽनुप्रेक्षापरीषहचारित्राणां मध्ये क्रम प्राप्त परीषहस्वरूपं निरूपितम्, सम्प्रति-तेषां भेदान् प्ररूपयितुमाह-'ते बावीसविहा परीसहा छुहा-पिवासाइ भेदओ' इति, द्वाविंशति विधाः परीषहा अवगन्तव्याः क्षुत्पिपासादिभेदतः क्षुत्परीषहः-१ पिपासापरीषहः-२ आदिना-शीतपरीषहः-३

उपवास आदि अनुष्ठान करने वालों को विशिष्ट प्रकार के प्रातिहार्य प्राप्त हो जाते हैं, मगर यह कहना प्रलापमात्र है। व्रतों का पालन करना निष्फल है। यह दीक्षा भी निरर्थक है। अतः यह दर्शन मेरे लिए भारस्वरूप है। इससे आत्मा का त्राण नहीं होता, इस प्रकार के संदेह पर विजय प्राप्त करना दर्शनपरीषहजय है। अथवा साधु के दर्शन संबंधी सन्देह के समय कोई देव किसी वस्तु को दिखलाकर लुभावे तो उस लोभ का अनादर करने में जो मानसिक और शारीरिक परीषह उत्पन्न होता है, उसे जीतना दर्शनपरीषह जय कहा जाता है ॥८॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पहले प्रतिपादन किया गया था कि समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र आस्रवनिरोध रूप संवर के कारण हैं। इनमें से क्रमप्राप्त परीषह के स्वरूप का निरूपण किया गया है, अब उनके भेदों की प्ररूपणा करते हैं-

વિશિષ્ટ પ્રકારના પ્રાતિહાર્ય પ્રાપ્ત થઈ જાય છે, પણ આવું કહેવું પ્રલાપ માત્ર છે. વ્રતોનું પાલન કરવું નિષ્ફળ છે! આ દીક્ષા પણ નિરર્થક છે! આથી આ દર્શન મારા માટે ભારસ્વરૂપ છે. આનાથી આત્માનું રક્ષણ થઈ શકે નહીં' આ પ્રકારની શંકા પર વિજય પ્રાપ્ત કરવો દર્શનપરીષહજય છે અથવા સાધુના દર્શન સંબંધી સન્દેહના સમયે કોઈ દેવ કોઈ વસ્તુને બતાવીને લોભાવે તો તે લોભનો અનાદર કરવા માટે જે માનસિક અને શારીરિક પરીષહ ઉત્પન્ન થાય છે તેને જીતવું, દર્શનપરીષહજય કહેવાય છે. ॥૮॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલાં પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું હતું કે સમિતિ, ગુપ્તિ, ધર્મ, અનુપ્રેક્ષા, પરીષહજય અને ચારિત્ર આસ્રવનિરોધ રૂપ સંવરના કારણો છે. આ પૈકી ક્રમ પ્રાપ્ત પરીષહના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે તેના ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ—

उष्णपरीषहः-४ दंशमशकपरीषहः-५ अचेलपरीषहः-६ अरतिपरीषहः-७ स्त्रीपरीषहः-८ चर्यापरीषहः-९ निषद्यापरीषहः-१० शय्यापरीषह-११ आक्रोश परीषहः-१२ वधपरीषहः-१३ याचनापरीषहः-१४ अलाभपरीषहः-१५ रोगपरीषहः-१६ तृणस्पर्शपरीषहः-१७ जल्लमलपरीषहः-१८ सत्कारपुरस्कार परीषहः-१९ प्रज्ञापरीषहः-२० अज्ञानपरीषहः-२१ दर्शनपरीषहः-२२ इत्येवं द्वाविंशतिविधा परीषहा भवन्ति। तत्राऽतिशायि समुदीर्णक्षुद्वेदनासहनं कुर्वतो जाठराऽन्त्रविदाहिनीं क्षुधा मागमोक्तविधिना सहमानस्या-ऽनेषणीयस्याऽऽहारादिकं परिहरतः खलु श्रमणस्य क्षुधापरीषहजयो भवति। अनेषणीयाहारादिग्रहणेतु-क्षुधापरीषहजयो न सम्भवति, तस्मात्-एषणीयाहारादि

क्षुधा पिपासा आदि के भेद से परीषह बाईस हैं। वे इस प्रकार हैं-(१) क्षुधापरीषह (२) पिपासापरीषह (३) शीतपरीषह (४) उष्ण-परीषह (५) दंशमशकपरीषह (६) अचेलपरीषह (७) अरतिपरीषह (८) स्त्रीपरीषह (९) चर्यापरीषह (१०) निषद्यापरीषह (११) शय्यापरीषह (१२) आक्रोशपरीषह (१३) वधपरीषह (१४) याचनापरीषह (१५) अलाभपरीषह (१६) रोगपरीषह (१७) तृणस्पर्शपरीषह (१८) जल्ल-मलपरीषह (१९) सत्कार पुरस्कारपरीषह (२०) प्रज्ञापरीषह (२१) अज्ञानपरीषह और (२२) दर्शनपरीषह।

(१) जो श्रमण तीव्र भूख की वेदना को सहन करता है, उदर की आंतों को जलाने वाली क्षुधा को आगमोक्त विधि के अनुसार सहता है और अनेषणीय आहार आदि का परिहार करता है, वह क्षुधापरीषह का विजेता कहलाता है। अनेषणीय आहार आदि को

ક્ષુધા-પિપાસા આદિના ભેદથી પરીષહ બાવીસ છે. તે આ પ્રકારે છે-(૧) ક્ષુધાપરીષહ (૨) પિપાસાપરીષહ (૩) શીતપરીષહ (૪) ઉષ્ણુપરીષહ (૫) દંશમશકપરીષહ (૬) અચેલપરીષહ (૭) અરતિપરિષહ (૮) સ્રીપરીષહ (૯) ચર્યાપરીષહ (૧૦) નિષદ્યાપરીષહ (૧૧) શય્યાપરીષહ (૧૨) આક્રોશપરી-ષહ (૧૩) વધપરીષહ (૧૪) યાચનાપરીષહ (૧૫) અલાભપરીષહ (૧૬) રોગ-પરીષહ (૧૭) તૃણુસ્પર્શપરીષહ (૧૮) જલ્લમલપરીષહ (૧૯) સત્કાર પુરસ્કાર પરીષહ (૨૦) પ્રજ્ઞાપરીષહ (૨૧) અજ્ઞાનપરીષહ અને (૨૨) દર્શનપરીષહ.

(૧) જે શ્રમણુ તીવ્ર ભૂખની વેદનાને સહન કરે છે, પેટના આંતરડાને બળગાવે એવી ક્ષુધાને આગમોકત વિધિ અનુસાર સહન કરે છે અને અનેષ-ણીય આહાર આદિનો ત્યાગ કરે છે, તે ક્ષુધાપરીષહનો વિજેતા કહેવાય છે.

सद्भावे खलु प्राणिदया भावनया समस्त मनेषणीयं परिहरन् शरीरनिर्वाहं कुर्यात्-१ एवं-पिपासापरीषहजयोऽपि, उक्तरीत्यैवाऽवगन्तव्यः-२ शीतपरीषहजयस्तावत्-अत्यधिकेऽपि शीते पतति सति तथा विधशीतत्राणाय ना-ऽकल्प्यानि वस्त्राणि गृह्णाति, अपितु-जीर्णवसनमेव दधानः शीतपरित्राणव्यापारवर्जित एव तिष्ठति, आगमोक्तविधिना-एषणीयस्यैव प्रच्छादनावरणवस्त्रादेर्गवेषणं कुर्यात् परिभुञ्जीत वा, नापि शीतार्तः सन् स्वयं वह्निं प्रज्वालयेत-अन्य प्रज्वालितस्य वा वह्नेः सेवनं कुर्यात् इत्येवं प्रनुतिष्ठन् शीतपरीषहं जयति इति शीतबाधा-सहनरूपः शीतपरीषहजयोऽवगन्तव्यः-३ एवमेव-उष्णतापसन्तप्तापि श्रमणः

ग्रहण करने पर क्षुधापरीषह का जय संभव नहीं है। अतएव सब प्रकार के अनेषणीय आहार का त्याग करते हुए शरीर का निर्वाह करना चाहिए।

(२) पिपासापरीषहजय भी पूर्वोक्त प्रकार से ही समझ लेना चाहिए।

(३) बहुत तीव्र सर्दी पड़ने पर भी उसके निवारण के लिए अकल्पनीय वस्त्रों को ग्रहण न करना, किन्तु जीर्ण वस्त्रों को ही धारण करते हुए शीत से बचने के लिए कोई प्रयत्न न करना, आगम-प्रतिपादित विधि के अनुसार ही पहनने-ओढ़ने के वस्त्र आदि की गवेषणा करना और उसका परिभोग करना, शीत से पीडित होकर स्वयं अग्नि न जलाना, दूसरे द्वारा जलाई हुई अग्नि का सेवन न करना, यह सब शीतलपरीषह को जीतना कहलाता है। इस प्रकार शीत की बाधा को सहन करना शीतपरीषहजय है।

અનેષણીય આહાર વગેરેને ગ્રહણ કરવાથી ક્ષુધાપરીષહનો વિજય શકય નથી આથી બધા પ્રકારના અનેષણીય આહારનો ત્યાગ કરતા થકા શરીરનું નિર્વાહ કરવું જોઈએ.

(૨) પિપાસાપરીષહજય પણ પૂર્વોક્ત પ્રકારથી જ સમજવો ઘટે.

(૩) ઘણી સખત ઠંડી પડવા છતાં પણ તેના નિવારણના માટે અકલ્પનીય વસ્ત્રોને ગ્રહણ ન કરવા પરન્તુ જીર્ણવસ્ત્રોને જ ધારણ કરીને ઠંડીથી બચવા માટે કોઈ પ્રયત્ન ન કરવો, આગમપ્રતિપાદિત વિધિ અનુસાર જ પહેરવા-ઓઢવાના વસ્ત્ર આદિની ગવેષણા કરવી અને તેનો પરિભોગ કરવો, ઠંડીથી પીડિત થઈને જાતે અગ્નિ ન પેટાવનો, અન્ય દ્વારા પેટાવવામાં આવેલી અગ્નિની આતાપના ન લેવી, આ બધું શીતપરીષહને જીત્યા એમ કહેવાય આ પ્રકારે ઠંડીથી પડતી મુશ્કેલીને સહન કરવી શીતપરીષહજય છે.

स्नान-व्यजन पवनादिकं न सेवयते नापि केनचिदभिधारितच्छायादिकं वा निषेवते। अपितु-समापतितमुष्णं सम्यक्तया परिषहते, न हि खलु उष्णता निवारणाय छत्रादिकं गृह्णाति इत्येव मुष्णता सहनेन-उष्णपरीषहजयो भवति=४ एवं-दंशमशकमत्कुण वृश्चिकादिभिः दंश्यमानोपि स्वाधिष्ठित स्थानान्न विचलेत् ततोऽपगच्छेद् वा, नापि हस्तादिना-धूमादिना वा तदपनयनं कुर्यात्, नो वा-व्यजनादिना तन्निवारणं विदध्यात् इत्येवं रीत्या करणेन दंशमशकपरीषहजयो भवति-५ एव मागमोक्तविधिना शरीरनिर्वाहार्थमल्पवस्त्रादिग्रहणेना-ऽचेल-

(२) गर्मी के ताप से सन्तप्त होकर भी श्रमण स्नान नहीं करता, पंखा नहीं चलाता और न किसी के द्वारा अभि धारित छाया आदि का सेवन करता है. अपितु पडती हुई गर्मी को सम्यक् प्रकार से सहन करता है। गर्मी का निवारण करने के लिए छत्र आदि ग्रहण नहीं करता। इस प्रकार उष्णता को सहन करने से उष्ण-परीषह जय होता है।

(५) इसी प्रकार डांस, मच्छर, खटमल और विच्छू आदि के डंसने पर भी, जिस स्थान पर आसीन हो वहां से चलायमान न हो, अन्य स्थान पर न जावे, हाथ आदि से या धुंआ आदि करके उनको न हटावे, न पंखा आदि के द्वारा उन्हें हटावे। ऐसा करने से दंशम-शकपरीषह जय होता है।

(६) आगमोक्तविधि के अनुसार शरीर के निर्वाह के लिए अल्प वस्त्र आदि ग्रहण करने से अचेलपरीषह जय होता है। दिगम्बरों के

(४) ગર્મીના તાપથી અકળાઈને પણ શ્રમણ સ્નાન કરતો નથી, પંખો હલાવતો નથી અથવા કોઈ દ્વારા છાંયડો કરાવરવી તેનું સેવન કરતો નથી, પરન્તુ પડતી ગર્મીને સમ્યક્ પ્રકારથી સહન કરે છે. ગરમીનું નિવારણ કરવા માટે છત્રી વગેરે ધારણ કરતો નથી. આ રીતે તો ઉષ્ણતાને સહન-કરવાથીઉષ્ણપરીષહજય થાય છે.

(૫) આવી જ રીતે ડાંસ, મચ્છર માંકણ અને વીંછી વગેરેના કરડવા છતાં પણ, જે સ્થાને બેઠો હેય ત્યાંથી ચલાયમાન ન થાય, બીજા સ્થાને ન જાય હાથ વગેરેથી અથવા ધુમાડો વગેરે કરીને તેમને ભગાડે નહીં, અથવા પંખા વગેરે દ્વારા તેમને ભગાડે નહીં. આ પ્રમાણે કરવાથી દંશમશક-પરીષહજય થાય છે

(૬) આગમોક્ત વિધિ અનુસાર શરીરના નિર્વાહ માટે અલ્પવસ્ત્ર આદિ ગ્રહણ કરવાથી અચેલપરીષહજય થાય છે. દિગમ્બરોના કથન અનુસાર

परीषहजयो भवति, ननु-दिगम्बरोक्तरीत्या सर्वथा प्रावरणादि रहितत्वमचेलत्वम्, आगमे खलु-द्विविधः कल्पः प्रज्ञप्तः, जिनकल्पः-स्थविरकल्पश्च-। तत्र-स्थविरकल्पे परिनिष्पन्नः क्रमेण धर्म श्रवणानन्तरं प्रव्रज्यां प्रतिपद्यते, ततो द्वादश वर्षाणि सूत्रग्रहणम्, ततो द्वादश वर्षाणि-अर्थग्रहणं करोति, ततश्च-द्वादश वर्षाणि-अनियतरूपेण वसन् देशदर्शनं करोति, देशदर्शनञ्च कुर्वन्नेव शिष्यान् निष्पादयति, शिष्यनिष्पत्त्यनन्तरञ्चाऽभ्युद्यतविहारं प्रतिपद्यते। जिनकल्पस्तु-त्रिविधः प्रकल्पितः शुद्धपरिहार-यथालन्दभेदात्, तत्र-जिनप्रतिपत्तियोग्यश्च जिनकल्पं प्रतिपत्तुमिच्छन् प्रथमं तावत्-तपः सत्त्वादिभावनाभिरात्मानं भावयति,

कथनानुसार वस्त्रों से सर्वथा रहित होना अचेलत्व नहीं है। आगम में दो प्रकार के कल्प बतलाये गये हैं-जिनकल्प और स्थविरकल्प। स्थविर कल्प में परिनिष्पन्न पुरुष क्रम से धर्मश्रवण करने के पश्चात् मुनिदीक्षा अंगीकार करता है। तत्पश्चात् बारह वर्षों तक सूत्रों का अध्ययन करता है, फिर बारह वर्षों तक सूत्रों का अर्थ सीखता है, तदनन्तर बारह वर्ष तक अनियत रूप से निवास करता हुआ अनेक देशों का दर्शन करता है अर्थात् देश देशान्तर में परिभ्रमण करता है, देशाटन करता हुआ शिष्य बनाता है और शिष्य बनाने के बाद अभ्युद्यत विहार करता है। जिनकल्प तीन प्रकार का है-प्रकल्पित, शुद्धपरिहार और यथालन्द। जो जिनकल्प को ग्रहण करने के योग्य है और जिनकल्प को अंगीकार करना चाहता है वह पहले-पहल तप-सत्त्व आदि की भावना से अपनी आत्मा को भावित करता है और आत्मा, को भावित कर चुकने के पश्चात् दो प्रकार के

વસ્ત્રોથી સર્વથા હુત થવું અચેલત્વ નથી. આગમમાં બે પ્રકારના કલ્પ કહેવામાં આવ્યા છે-જિનકલ્પ અને સ્થવિરકલ્પ સ્થવિરકલ્પમાં પરિનિષ્પન્ન પુરૂષ ક્રમથી ધ વણુ કર્યા બાદ મુનિ દીક્ષા અંગિકાર કરે છે, ત્યાર બાદ બાર વર્ષો સુધી સૂત્રોનું અધ્યયન કરે છે, પછી બાર વર્ષ સુધી સૂત્રોના અર્થ શીખે છે, ત્યારબાદ બાર વર્ષ સુધી અનિયત રૂપથી નિવાસ કરતો થકો અનેક દેશોનું દર્શન કરે છે અર્થાત્ દેશદેશાન્તરમાં પરિભ્રમણ કરે છે, દેશાટન કરતો કરતો શિષ્ય બનાવે છે અને શિષ્ય બનાવ્યા બાદ અભ્યુદ્યત વિહાર કરે છે. જિનકલ્પ ત્રણ પ્રકારના છે-પ્રકલ્પિત, શુદ્ધ પરિહાર અને યથાલન્દ । જે જિનકલ્પને ધારણ કરવા માટે યોગ્ય છે અને જિનકલ્પને અંગિકાર કરવા ઇચ્છે છે તે પહેલામાં પહેલું તપ-સત્ત્વ આદિની ભાવનાથી પોતાના આત્માને ભાવિત કરે છે અને આત્માને ભાવિત કરી દીધા પછી બે

भावितात्मा च–द्विविधेऽपि परिकर्मणि प्रवृत्तो भवति, तत्र यदि–पाणिपात्र लब्धि भवति तदा तदनुरूपमेव परिकर्माऽऽतिष्ठते। पाणिपात्रलब्ध्यभावेतु–प्रतिग्रह धारित्वपरिकर्माऽनुतिष्ठते। कल्पग्रहणात्–त्रिविधः चतुर्विधः पञ्चविधो वा-उपधिर्भवति, प्रतिग्रहधारकस्य तु–अवश्यमेव नवविधः खलूपधिरागमे प्रतिपादित कल्पग्रहणात्–दशविधः–एकादशविधः–द्वादशविधो वा बोध्यः इत्येवं विधं खलु-अचेलत्वं प्रकृतेऽवगन्तव्यम्–६ एवं–सूत्रोपदेशेन विहरत स्तिष्ठतो वा श्रमणस्य कदाचिदरतिः समुत्पद्यते तत्रोत्पन्नाऽरतेरपि श्रमणस्य सम्यग्धर्मारामरतत्वेनैव भवितव्यम् तथा कृतवेताऽरतिपरीषहजयः सम्भवति ७ एवं–कामिनीनां मुखाघङ्ग

परिकर्म में प्रवृत्त होता है। अगर वह पाणिपात्र लब्धि वाला हो तो उसके अनुरूप ही परिकर्म करता है। अगर पाणिपात्र लब्धि न हो तो प्रतिग्रहधारित्व अर्थात् पात्र धारीपन का परिकर्म करता है। कल्प ग्रहण से उसकी उपधि तीन प्रकार की, चार प्रकार की या पांच प्रकार की होती है। जो पात्रधारी होता है उसकी अवश्य ही नौ प्रकार की उपधि आगम में कही गई है। कल्प ग्रहण से दश प्रकार की, ग्यारह प्रकार की और बारह प्रकार की उपधि समझनी चाहिए। इस प्रकरण में इतनी उपधि रखने वाले को 'अचेलक' समझना चाहिए।

(७) शास्त्र के उपदेश के अनुसार विहार करते हुए या रहते हुए श्रमण के मन में कदाचित् अरति उत्पन्न हो जाती है, तो अरति उत्पन्न हो जाने पर भी साधु को सम्यक् प्रकार से धर्म रूपी आराम (उद्यान) में ही रत रहना चाहिए। ऐसा होने पर ही अरतिपरीषह जय हो सकता है।

પ્રકારના પરિકર્મમાં પ્રવૃત્ત થાય છે. જો તે પાણિપાત્ર લબ્ધિવાળો હોય તો તે મુજબ જ પરિકર્મ કરે છે. પાણિપાત્ર લબ્ધિ ન હોય તો પ્રતિગ્રહ ધારિત્વ અથવા પાત્રધારીપણાનું પરિકર્મ કરે છે. કલ્પગ્રહથી તેની ઉપધિ ત્રણ પ્રકારની ચાર પ્રકારની અથવા પાંચ પ્રકારની ઉપધિ હોય છે. જે પાત્રધારી હોય છે તેની ચોક્કસપણે જ નવ પ્રકારની ઉપધિ આગમમાં કહેવામાં આવી છે. કલ્પ-ગ્રહણથી દશ પ્રકારની, અગીયાર પ્રકારની અને બાર પ્રકારની ઉપધિ સમજવી જોઈએ. આ પ્રકરણમાં આટલી રાખનારને 'અચેલક' સમજવો જોઈએ.

(૭) શાસ્ત્રના ઉપદેશ અનુસાર વિહાર કરતી વખતે અથવા રહેતી વખતે શ્રમણના મનમાં કદાચિત્ અરતિ ઉત્પન્ન થઈ જવા છતા પણ સાધુએ સમ્યક્ પ્રકારથી ધર્મ રૂપી આરામ (ઉદ્યાન)માં જ રત (લીન) રહેવું જોઈએ. આમ થાય તો જ અરતિપરીષહજય સંભવી શકે છે.

प्रत्यङ्गसंस्थानमधुरालाप कलितललितस्मितविभ्रमविलासादि हावभावचेष्टां न कदाचिदपि चिन्तयेत् नापि मोक्षमार्गस्याऽर्गलासु तासु कामधिया नयनोपनिपातं कुर्यात् तथा करणे सति स्त्रीपरीषहजयो भवति- ८ एवं-निरलसो भूत्वा नगरग्रामकुलादिषु ममत्व राहित्येनाऽनियतरूपेण कृतवसतिः श्रमणः प्रतिमासं विचरणरूपां चर्यां मातिष्ठेत् तथाकृते सति चर्यापरीषहजयः सम्भवति-९ एवं-निषद्या तावत्-निषीदन्त्यस्यामिति व्युत्पत्त्या-संज्ञायां समज निषत निषद्-इति सूत्रेणाऽधिकरणे क्यबन्तेन निपातितेन निषद्या शब्देन पीठफलकादि स्थानमुच्यते, तत्र खलु-स्त्री पशुपण्डकविवर्जिते स्थाने इष्टानिष्टोपसर्ग-

(८) कामिनियों के मुख आदि अंगोपांगों की बनावट का, मधुर आलापसहित मुस्कराहट का, विभ्रम-विलास, हाव-भाव से युक्त चेष्टाओं का कदापि चिन्तन न करे। उन्हें मोक्ष मार्ग में बाधक समझ कर कामबुद्धि से उनकी ओर दृष्टि निपात भी न करे। ऐसा करने पर स्त्रीपरीषह जय होता है।

(९) आलस्यरहित होकर नगर ग्राम गृह आदि में ममत्व से रहित होकर अनियत रूप से निवास करने वाला श्रमण प्रतिमास विहार-चर्या करे। ऐसा करने से चर्यापरीषह जय होता है।

(१०) पीठ फलक आदि बैठने के स्थान को निषद्या कहते हैं। जिसमें निषीदन किया जाय वह निषद्या। 'संज्ञायां समज नपत-निषद' -इस सूत्र से अधिकरण अर्थ में क्यबन्तनिपात हो कर निषद्या शब्द बनता है। निषद्या में अर्थात् स्त्री पशु और पंडक (हीजडे)

(૮) સ્ત્રીઓના મુખ આદિ અંગોપાંગોની બનાવટને, મધુર આલાપ સહિત મુસ્કરાહટને, વિભ્રમ-વિલાસ, હાવ ભાવપૂર્ણ ચેષ્ટાઓનો કદાપી વિચાર ન કરે. આ સઘળાને મોક્ષમાર્ગ માટે અવરોધરૂપ સમજીને કામબુદ્ધિથી તેમની તરફ દૃષ્ટિપાત પણ ન કરે, આમ કરવાથી સ્ત્રીપરીષહજય થાય છે.

(૯) આળસ ખંખેરી નાખીને નગર, ગામ ઘર આદિમાં મમત્વથી રહિત થઈને અનિયત રૂપથી નિવાસ કરનાર શ્રમણ પ્રતિમાસ વિહાર-ચર્યા કરે આમ કરવાથી ચર્યાપરીષહજય થાય છે.

(૧૦) પીઠ ફલક વગેરે બેસવાના સાધનને નિષદ્યા કહે છે. જેમાં નિષીદન કરવામાં આવે તે નિષદ્યા संज्ञायां समजनिपत-निषद्-આ સૂત્રથી અધિકરણ અર્થમાં નિપાત થઈને નિષદ્યા શબ્દ બને છે. નિષદ્યામાં અર્થાત્ સ્ત્રી, પશુ તથા પંડક (વ્યંઢળ) વગરના સ્થાનમાં અનુકૂળ અને પ્રતિકૂળ

जयं कुर्वन् अनुद्विग्नः सन् तिष्ठन् निषद्यापरीषहजयं कर्तुं शक्नोति-१० एवं-शय्या तावत्-संस्तारः, पीठ-फलकादिर्वा, कठोर-कोमलादिभेदेन उच्चावचो निम्नोन्नतः-प्रतिश्रयो वा, धूलिपुञ्जधूसरितो बहुप्रकारको वा-उच्यते, तत्र-तिष्ठन् न कदाचिद् उद्विग्नो भवेत्, इत्येवं रीत्याऽनुद्वेगे सति शय्यापरीषहजयः सम्भवति-११ आक्रोश रता दु-अप्रियवचनम्-अनिष्टवचनं वा, उच्यते तत्खलु-अप्रियवचनं सत्यं वर्तते तदा-तत्र क्रोधकरणं नोचितम्, अयं खल्वप्रियं ब्रुवन्-मां शिक्षयति नातः परमहमेवं करिष्यामि' इत्येवं प्रतिजानीत', यदितु-तद्वचनं सत्यमेव वर्तते तर्हि तत्र वचने वक्तरि वा सुतरां क्रोधो न कर्तव्यः यद्ययं सत्यमेव-

---

से रहित स्थान में अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्गों को जीतने में जो घबराता नहीं है, वह निषद्यापरीषह जय करने में समर्थ होता है।

(११) शय्या अर्थात् बिस्तर अथवा पीठ-फलक आदि या कोमल तथा कठोर होने से अच्छा-बुरा, ऊंचा-नीचा उपाश्रय (स्थानक) जिसमें धूल के पटल के पटल जमे हों ऐसी शय्या में ठहरा हुआ मुनि कदापि उद्विग्न न हो इस प्रकार उद्वेग न होने पर शय्यापरीषह-विजय होता है।

(१२) आक्रोश का अर्थ है अप्रियवचन, अनिष्ट वचन, डाट-फटकार से भरे हुए वचन। वह अप्रिय वचन अगर सत्य हों तो उन्हें सुनकर क्रोध करना उचित नहीं, उलटा ऐसा सोचना चाहिए कि अप्रिय वचन कह कर यह मुझे शिक्षा दे रहा है, 'इसके बाद मैं ऐसा नहीं करूंगा।' और यदि उसका वचन असत्य हो तो भी उस वचन पर या वक्ता पर क्रोध करना ही नहीं चाहिए। सोचना चाहिए कि अगर

ઉપસર્ગોને જીતવા માટે જે ગભરાતો નથી, તેજ નિષદ્યાપરીષહજય પ્રાપ્ત કરવા માટે સમર્થ થાય છે.

(૧૧) શય્યા અર્થાત્ પથારી અથવા પીઠ-ફલક આદિ અથવા કુમળા તથા ખરબચડાં હોવાથી સારા-નરસા, ઉંચા-નીચા સ્થાનક (ઉપાશ્રય) જેમાં ધૂળના થરના થર બાઝેલાં હોય એવી પથારીમાં સૂતેલાં મુનિએ કદાપિ ઉદ્વિગ્ન થાવું નહી. આ પ્રકારે ઉદ્વેગ ન થવાથી શય્યાપરીષહવિજય થાય છે.

(૧૨) આક્રોશનો અર્થ છે અપ્રિયવચન, અનિષ્ટવચન, ધાક-ધમકીથી ભરેલાં વચન તે અપ્રિય વચન જો સત્ય હોય તો તેને સાંભળીને ક્રોધ કરવો વાજબી નથી બલ્કે એવું વિચારવું જોઈએ કે અપ્રિય વચન કહીને આ મને ઉપદેશ આપી રહ્યો છે. 'આ પછી હું આવું કરીશ નહીં.' અને જો તેનું વચન અસત્ય હોય તો પણ તે વચન ઉપર અથવા વકતા ઉપર ક્રોધ કરવો જ

वक्ति तत्र कोऽस्य दोषः इत्येवं रीत्याऽऽक्रोशपरीषहजयः सम्भवति-१२ एवं-वध स्तावत्-ताडनम्, हस्त-पाद-लगुड-कशादिभिराघातरूपम् तदपि-शरीरस्य विशरारुतां मत्वा सम्यक्तया सोढव्यम् पुद्गलसंघातरूपं खलु शरीरमिदम्, आत्मनो भिन्नमेव वर्तते। आत्मा पुन र्नित्योऽस्ति न कदाचिद् विध्वस्तो भवति तस्मात्-स्वकृतकर्मणः फलमिद मुपनतं समास्ति, इत्येवं रीत्या ताडनादिकं सहमानस्य श्रमणस्य वधपरीषहजयो भवति-१३ एवं-याचनं तावद् वस्त्रपात्रा-ऽन्न-पान-प्रतिश्रयादेः प्रार्थनम्, श्रमणस्य परतो लब्धव्यमेव सर्वं भवति, किन्तु श्रमणानां सङ्कोचतया याचनां प्रतिनाऽऽदरो भवति श्रमणैः खलु प्रागल्भ्यवद्भि रवश्यमेव याचनं कर्तव्यम्, इत्येवं याचनापरीषहजयो विधातव्यः-१४ अलाभस्तु-

---

यह असत्य भाषण करता है तो मुझे क्रोध करने की क्या आवश्यकता है! ऐसा विचार करने से आक्रोशपरीषह जय होता है।

(१३) ताड़न करना अर्थात् हाथ, पैर, लाठी या चाबुक आदि से आघात करना। शरीर को नाशशील समझ कर उसे समभाव से सहन करना चाहिए। यह शरीर पुद्गलों का पिण्ड है और आत्मा से भिन्न ही है। आत्मा नित्य है, उसका कभी विध्वंस नहीं होता। अतएव यह मेरे किये कर्म का ही फल प्राप्त हुआ है। ऐसा सोच कर ताडन आदि सहन करने वाला साधु वधपरीषह का विजेता होता है।

(१४) वस्त्र, पात्र, अन्न, पान, उपाश्रय आदि की प्रार्थना को याचना कहते हैं। श्रमण को सभी कुछ दूसरों से ही प्राप्त करना पडता है। संकोचशील होने के कारण श्रमण याचना में आदरशील-

---

પણ જોઈએ. વિચારવું જોઈએ કે જો આ અસત્ય ભાષણ કરે છે તો મારે ક્રોધ કરવાની શી જરૂર છે? આવો વિચાર કરવાથી આક્રોશપરીષહજય થાય છે.

(૧૩) માર મારવો અર્થાત્ હાથ, પગ, લાકડી અથવા ચાબુક વગેરેથી આઘાત કરવો. શરીરને નાશવંત સમજીને તેને સમભાવથી સહન કરવું જ જોઈએ આ શરીર પુદ્ગલોનું પિંડ છે. અને આત્માથી ભિન્ન જ છે. આત્મા નિત્ય છે, તેનો કદી નાશ થતો નથી. આથી આ મારા કરેલા કર્મોનું જ ફળ પ્રાપ્ત થયું છે. એવું વિચારીને તાડન વગેરે સહન કરનાર સાધુ વધપરીષહનો વિજેતા બને છે.

(૧૪) વસ્ત્ર પાત્ર, અન્ન, પાન, ઉપાશ્રય આદિની પ્રાર્થનાને યાચના કહે છે. શ્રમણે બધું જ બીજાઓ પાસેથી જ મેળવવું પડે છે. સંકોચશીલ હોવાના કારણે શ્રમણ, યાચનામાં આદરવાન્ હોતા નથી પ્રગલ્ભ (નિઃસંકોચ) શ્રમણોએ અવશ્ય જ યાચના કરવી જોઈએ. આ રીતે કરવાથી યાચના-પરીષહજય થાય છે.

याचने कृतेऽपि विद्यमानस्याऽविद्यमानस्य वा वस्तुनोऽदानम्, तत्र-यस्य खलु तद्धनं वर्तते स तदधिकारित्वाद् दातुमदातुं वा समर्थोऽस्ति अतएव-कदाचिद्ददाति कदाचिच्च नापि ददाति । तत्रा-ऽदाने न कोपपरितोषः कर्तव्यः । उत्तराध्ययने द्वितीयाध्ययने—

परेसु घासमेसेज्जा, भोयणे परिनिट्ठिए ।
लद्धे पिंडे अलद्धे वा, नाणु तप्पेज्ज पंडिए ॥३०॥
परेषु ग्रासमेषयेद् भोजने परिनिष्ठिते ।
लब्धे पिण्डे-ऽलब्धे वा, नाऽनुतप्येत पण्डितः ॥

इति छाया, पुनरप्युक्तं दशवैकालिकसूत्रे-पञ्चमाऽध्ययनस्य द्वितीयोद्देशके-

बहुं परघरे अत्थि विविहं खाइमं साइमं ।
न तत्थ पंडिओ कुप्पे, इच्छा दिज्ज परो नवा-॥२९।

वान् नहीं होते । प्रगल्भ (निः संकोच) श्रमणों को अवश्य ही याचना करना चाहिए । इस प्रकार याचनापरीषह जय होता है ।

(१५) याचना करने पर भी, किसी वस्तु का मौजूद रहने या मौजूद न होने से प्राप्त न होना अलाभ कहलाता है । जिसकी वह वस्तु है वह उसका अधिकारी (स्वामी) है, देने या न देने के लिए स्वतंत्र है । वह कदाचित् देता है, कदाचित् नहीं भी देता । अगर न दे तो असन्तोष नहीं मानना चाहिए । उत्तराध्ययन में कहा भी है-साधु का कर्त्तव्य है कि गृहस्थों ने अपने लिए जो भोजन बनाया हो उसी में से अपने लिये गवेषणा करे, मगर विवेकशील साधु भोजन के लाभ -अलाभ के कारण सन्ताप न करे, अर्थात् चाहे प्राप्ति हो या न हो समभाव धारण करे । दशवैकालिक सूत्र में भी कहा है-गृहस्थ के घर में नाना प्रकार का खाद्य स्वाद्य आदि आहार मौजूद है और वह प्रचुर

---

(૧૫) યાચના કરવા છતાં પણ કોઇ વસ્તુ હાજર હોય અથવા હાજર ન હોવાથી મળી ન શકે તે અલાભ કહેવાય છે જેની વસ્તુ છે તે તેનો અધિકારી (સ્વામી) છે, આપવી અગર ન આપવી તે માટે તે સ્વતંત્ર છે. તે કદાચિત આપે અથવા ન પણ આપે જો ન આપે તો અસંતોષ ન માનવો જોઈએ ઉત્તરાધ્યયનમાં કહ્યું પણ છે-સાધુનું કર્તવ્ય છે કે ગૃહસ્થોએ પોતાના માટે જે ભોજન તૈયાર કર્યું હોય તેમાંથી પોતાના માટે ગવેષણા કરે, પરન્તુ વિવેકશીલ સાધુ ભોજનના લાભ-અલાભના કારણે સન્તાપ કરે નહીં અર્થાત્ મળે અથવા ન મળે સમભાવ ધારણ કરે દશવૈકાલિકસૂત્રમાં પણ કહ્યું છે-ગૃહસ્થના ઘરમાં જુદા જુદા પ્રકારની ખાદ્ય સ્વાદીષ્ટ ભોજન વગેરે

बहु परगृहेऽस्त विविधं खाद्य स्वाद्यम् ।
न तत्र पण्डितः कुप्येत्, इच्छा दद्यात् परो न वा ॥ इति ।

छाया–तदलाभेऽप्यविकृतचेतसैव श्रमणेन भवितव्यम् इत्यलाभपरीषहजयः सम्भवति–१५ एवम् ज्वराऽतिसार-कास-श्वासादि रोगस्य सत्यपि प्रादुर्भावे गच्छनिर्गताः जिनकल्पिकादयः श्रमणा स्तच्चिकित्सायां न प्रवर्तन्ते गच्छवासिनस्तु–अल्प बहुत्वालोचनया तथाविध रोग वेदनां सम्यक्तया सहन्ते आगमोक्त-विधिना वा तत्प्रतिक्रियां समाचरन्ति, इत्येवं रोगपरीषहजयः सम्भवति १६ एवम्-गच्छवासिनां गच्छनिर्गतानाञ्च श्रमणानां कृतेऽशुषिरतृणस्य दर्भादेः परिभोगो

मात्रा में है, किन्तु देना या न देना उसकी इच्छा पर निर्भर है। अगर न दे तो विवेकी साधु को क्रोध नहीं करना चाहिए। (पंचम अध्ययन, द्वितीय उद्देशक, गाथा २९) इस प्रकार आहार आदि का लाभ न होने पर भी साधु के चित्त में विकार उत्पन्न नहीं होना चाहिए। यह आलाभपरीषह विजय है।

(१६) ज्वर, अतिसार, खांसी, श्वास आदि रोग उत्पन्न होने पर भी गच्छ से बाहर निकले हुए जिनकल्पी आदि साधु उसकी चिकित्सा कराने में प्रवृत्त नहीं होते। गच्छवासी साधु अल्पत्व बहुत्व की आलोचना करके रोग की वेदना को सम्यक् प्रकार से सहन करते हैं या आगमोक्त विधि के अनुसार उसकी चिकित्सा करवाते हैं। इस प्रकार रोग उत्पन्न होने पर समभाव धारण करने से रोगपरीषह जय होता है।

(१७) गच्छवासी और गच्छनिर्गत साधुओं के लिए बिना छिद्र

હાજર છે અને તે સારા એવા જથ્થામાં છે. પરન્તુ આપવું ન આપવું એ સ્વામીની ઇચ્છા પર આધારીત છે. જો ન આપે તો વિવેકી સાધુએ ક્રોધ કરવો ન કલ્પે. (પંચમ અધ્યયન, દ્વિતીય ઉદ્દેશક ગાથા ૨૯) આ રીતે આહાર વગેરેનો લાભ ન થવાથી સાધુના ચિત્તમાં વિકાર ઉદ્ભવવો ન જોઈએ. આ અલાભપરીષહવિજય છે.

(૧૬) તાવ, અતિસાર, ઉધરસ, શ્વાસ આદિ રોગો ઉત્પન્ન થવા છતાં પણ ગચ્છથી બહાર નિકળેલા જિનકલ્પી આદિ સાધુ તેની સારવાર કરાવવા માટે પ્રવૃત્ત થતાં નથી. ગચ્છવાસી સાધુ અલ્પ–બહુત્વની આલોચના કરીને રોગની વેદનાને સમ્યક્ પ્રકારથી સહન કરે છે અથવા આગમોકત વિધિ અનુસાર તેની સારવાર કરાવે છે આવી રીતે રોગ ઉત્પન્ન થવા પર સમભાવ ધારણ કરવાથી રોગપરીષહજય થાય છે.

(૧૭) ગચ્છવાસી અને ગચ્છનિર્ગત સાધુઓ માટે છિદ્રવગરના ઘાસ

आगमेऽनुज्ञातो वर्तते, तत्र-येषां शयन मनुज्ञातम् ते खलु रात्रौ तान्दर्भान् भूमावास्तीर्य संस्तारकोत्तरपट्टकौच दर्भोपरि कृत्वा शेरते, स्तेनापहृतोपकरणः स्वल्पसंस्तारकपट्टको वा ऽत्यन्तजीर्णत्वात् तं कठोरदर्भादि तृणस्पर्शं यः श्रमणः सम्यक्तयाऽधिसहते तस्य तृणस्पर्श परीषहजयो भवति-१७ एवम् रजोधूलिकण परागरूपमलः प्रस्वेदजलसम्पर्कजन्यघनीभूतः शरीरे स्थैर्य मापन्नो ग्रीष्मोष्म-सम्पातजनित घर्मजलार्द्रतां गतोऽत्यन्तोद्वेगं जनयति, किन्तु-न तदपनोदाय कदाचिदपि स्नानाभिलाषं विदधाति-इत्येवं मलपरीषहजयो भवति-१८ परतो-

के घास डाभ आदि के उपयोग की आगम में अनुमति दी गई है। जिन साधुओं को शयन की अनुज्ञा दी गई है, वे रात्रि में उस घास-डाभ को भूमि पर बिछा कर और उसके ऊपर संस्तारक या उत्तर-पट्टक करके सोते हैं। अगर किसी साधु के उपकरण चोर चुरा ले जाय या किसी के पास बिछाने का वस्त्र स्वल्प हो तो अत्यन्त जीर्ण होने के कारण उस कठोर दर्भ आदि के स्पर्श को जो साधु सम्यक् प्रकार से सहता है, वह तृणस्पर्शपरीषह का विजेता कहलाता है।

(१८) रेत और धूल के कण पसीना आने के कारण शरीर के साथ चिपट गए हों और शरीर में स्थिर हो गए हों। वह मल ग्रीष्म-ऋतु की गर्मी पडने के कारण उत्पन्न होने वाले पसीने से गीला हो गया हो जाता है और चित्त में उद्वेग उत्पन्न करता है मगर उस उद्वेग को दूर करने के लिए साधु स्नान की कदापि अभिलाषा नहीं करता। इस प्रकार मलपरीषह जीता जाता है।

દર્ભ આદિના ઉપયોગની આગમમાં અનુમતિ આપવામાં આવી છે. જે સાધુઓને શયનની રજા આપવામાં આવી છે તેઓ રાત્રે તે ઘાસ-દાભને જમીન ઉપર પાથરીને તેની ઉપર સંસ્તારક અથવા ઉત્તરપટ્ટક કરીને સુવે છે. જો કોઇ સાધુના ઉપકરણ ચોર ચોરી જાય અથવા કોઈની પાસે પાથરવાના વસ્ત્ર અલ્પ હોય તો અત્યન્ત જીર્ણ હોવાને લીધે તે કઠોર દર્ભ આદિના સ્પર્શને જે સાધુ સમ્યક્ પ્રકારથી સહન કરે છે, તે તૃણસ્પર્શપરીષહનો વિજેતા કહેવાય છે.

(૧૮) રેતી ધૂળના કણો પરસેવાના કારણે શરીર સાથે ચોંટી ગયા હોય અને શરીર ઉપર જામી ગયા હોય આ થર ગ્રીષ્મઋતુની ગર્મી પડવાના કારણે ઉત્પન્ન થતા પરસેવાથી ભીનું થઇ ગયું હોય અથવા થાય અને મનમાં ઉદ્વેગ ઉત્પન્ન કરે છે પરન્તુ તે ઉદ્વેગને દૂર કરવા માટે સાધુ સ્નાનની કદાપિ અભિલાષા રાખતો નથી. આવી રીતે મલપરીષહ જીતી શકાય છે.

भक्तपानवस्त्रपात्रादिना सहकारः खलु सत्कारः, पुरस्कारस्तु-सद्भूतगुणोत्कीर्त्तनम् वन्दनाऽभ्युत्थानाऽऽसन प्रदानादि सद्भाव श्चेच्यते, तत्रा-सत्कृतपुरस्कृतो वा न द्वेषं करोति, नापि-परं दूषयति नाऽऽत्मानं मनोविकारेण इत्येवं रीत्या सत्कारपरीषहजयो भवति-१९ अतिशयबुद्धिरूपप्रज्ञायां प्राप्तायामपि गर्वाभावादरणमेव प्रज्ञापरीषहजयो भवति-२० तथाविध प्रज्ञा-विपर्ययेणाऽज्ञानपरीषहो भवति तत्राहं न किञ्चिज्जानामि सर्वथा मूर्खोऽस्म्यह मित्येवं परितापं कुर्वतो ऽज्ञानपरीषहो भवति किन्तु-तदकरणात् कर्मफलविपाकोऽयं वर्तते, इत्येवं परिचिन्तयतो ऽज्ञानपरीषहजयो भवति २१ चतुर्दशपूर्वाणि द्वादशाङ्गानि ज्ञानमुच्यते, पूर्व-

(१९) आहार, पानी, वस्त्र, पात्र आदि का दिया जाना सत्कार कहलाता है और सद्भूत गुणों का कीर्तन, वन्दन, उत्थान, आसन-प्रदान आदि सद्भाव पुरस्कार कहलाता है। यह सत्कार अथवा पुरस्कार न पाकर द्वेष न करे, दूसरे को दोष न दे और न मन में विकार लाकर आत्मा को दूषित बनावे। ऐसा करने से सत्कार-पुरस्कार परीषह जीता जाता है।

(२०) अतिशय बुद्धि वैभव रूप प्रज्ञा के प्राप्त होने पर भी गर्व न करना प्रज्ञा परीषहजय है।

(२१) पूर्वोक्त प्रज्ञा की विपरीतता से अज्ञान परीषह होता है। 'मैं कुछ भी नहीं जानता, मैं सर्वथा मूर्ख हूं इस प्रकार परिताप करने वाले को अज्ञान का परीषह होता है किन्तु ऐसा परिताप न करके 'यह मेरे पूर्वकृत कर्म का विपाक हैं इस प्रकार सोचने वाला अज्ञान-परीषहजय करता है।

(૧૯) આહાર, પાણી, વસ્ત્ર, પાત્ર આદિનું પ્રદાન સત્કાર કહેવાય છે અને સદ્ભૂત ગુણોનું કીર્ત્તન, વન્દન, ઉત્થાન, પ્રદાન આદિ સદ્ભાવ પુરસ્કાર કહેવાય છે. આ સત્કાર અથવા પુરસ્કાર ન મળે તો દ્વેષ ન કરે, બીજાને દોષ ન દે તેમજ મનમાં વિકાર લાવીને આત્માને દૂષિત ન બનાવે આ પ્રમાણે કરવાથી સત્કાર-પુરસ્કારપરીષહ જીતી શકાય છે.

(૨૦) અતિશય બુદ્ધિવૈભવ રૂપ પ્રજ્ઞા પ્રાપ્ત થવા છતા પણ અભિમાન ન કરવું પ્રજ્ઞાપરીષહજય છે.

(૨૧) પૂર્વોક્ત પ્રજ્ઞાની વિપરીતતાથી અજ્ઞાનપરીષહ થાય છે. 'હું કશું જ જાણતો નથી, હું સર્વથા મૂર્ખ છું' આ રીતે પરિતાપ કરનારને અજ્ઞાનનો પરીષહ થાય છે પરન્તુ આવો પરિતાપ નહીં કરતા આ મારા પૂર્વકૃત કર્મોનું ફળ છે એમ વિચારનાર સાધુ અજ્ઞાનપરીષહજય પ્રાપ્ત કરે છે.

ज्ञानविरोधिनाऽपि–अज्ञानेनाऽऽगमराहित्येन परीषहो भवति, ज्ञानावरणक्षयोपशमोदयविलसितमेतत्–इति स्वकृतकर्मफलपरिभोगाद्विध्वंसमेति तपोऽनुष्ठानेन चेत्येवं विचारयताऽज्ञानपरीषहजयो भवति–२१ दर्शनपरीषहस्तु–सर्वाऽवद्यस्थानेभ्यो विरतः प्रकृष्ट तपोऽनुष्ठ न कर्ता निःसङ्गश्चाहमस्मि, किन्तु तथाभूतत्वेऽपि धर्माऽधर्माऽऽत्म–देव–नारकादि भावान् न प्रेक्षे, । तस्मात्–समस्तमेतन्मृषा, अतो दर्शनमिदं आत्मनः केवलं भाररूपमेव नतु–तत् त्राणाय भवतीति दर्शनभ्रंशरूपः परीषहो बोध्यः । तत्रैवमालोचयेत्–धर्माऽधर्मौ पुण्यपापात्मको आत्माचाऽरूपी ततो नैते दृष्टिगोचरा भवितु मर्हन्ति देवाश्चा–ऽत्यन्तरतिसुखासक्तत्वात्–दुष्षमाऽनुभावाच्च नागच्छन्ति नारकाः पुनस्तीव्रवेदनार्ताः पूर्वकृत

चौदह पूर्वों सहित द्वादशांग को ज्ञान कहते हैं । इस प्रकार ज्ञान के विरोधी अज्ञान से–आगम की रहितता से परीषह होता है । यह तो ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम और उदय का फल है, अपने किये कर्म का फल तप से भोगने से उसका विनाश होता है, इस प्रकार विचार करने से अज्ञान परीषहजय होता है ।

(२२) 'मैं समस्त पापस्थानों से निवृत्त हो चुका हूं', तपस्या का अनुष्ठान करता हूं और निःसंग हूं, फिर भी धर्म, अधर्म, आत्मा, देव, नारक आदि भावों का साक्षात्कार नहीं कर सकता, अतएव यह सब मिथ्या हैं । यह दर्शन आत्मा के लिए भाररूप है, यह त्राण कारक नहीं है' ऐसा सोचना दर्शनभ्रंश परीषह है । सोचना यों चाहिए–धर्म और अधर्म द्रव्य अरूपी है, आत्मा भी अरूपी है, इस कारण ये चक्षु-गोचर नहीं हो सकते । देव अत्यन्त रति–सुख में आसक्त रहने के

ચૌદ પૂર્વો સહિત બાર અંગોને જ્ઞાન કહે છે આ રીતે જ્ઞાનના વિરોધી અજ્ઞાનથી–આગમની રહિતતાથી પરીષહ થાય છે આ તો જ્ઞાના-વરણુ કર્મના ક્ષયોપશમ તથા ઉદયનું ફળ છે, પોતાના કરેલા કર્મના ફળ તપથી ભોગવવાથી તેનો વિનાશ થાય છે એમ વિચારવાથી અજ્ઞાનપરીષહજય થાય છે.

(૨૨) 'હું સમસ્ત પાપસ્થાનોથી નિવૃત્ત થઈ ચૂકયો છું' તો પણ ધર્મ, અધર્મ, આત્મા દેવ નારક આદિ ભવોનો સાક્ષાત્કાર કરી શકતો નથી આથી આ બધું મિથ્યા છે । આ દર્શન આત્માને માટે ભારરૂપ છે, આ ત્રાણુકારક નથી' એમ વિચારવું દર્શનભ્રંશપરીષહ છે. ખરી રીતે તો આ પ્રમાણે વિચારવું જોઈએ–ધર્મ અને અધર્મ દ્રવ્ય અરૂપી છે, આત્મા પણ અરૂપી છે એ કારણે તેઓ દૃષ્ટિગોચર થઇ શકતાં નથી. દેવ અત્યન્ત

कर्मोदया निगडबन्धनवशीकृतत्वात् परतन्त्राः सन्तो नेत्र गच्छन्तीति पर्या लोचनतो दर्शन परीषहजयो भवति। अथवा-तत्रैव मालोचयेत् पुण्य-पापात्मकौ खलु धर्माऽधर्मौ यदि कर्मरूपौ-पुद्गलात्मकौ वर्तेते तदा-तयोः कार्य दर्शना-दनुमातव्यत्वं वर्तते, यदि पुनः क्षमा क्रोधादिकौ धर्माऽधर्मौस्तः तदा-स्वानु-भवत्वात् आत्मपरिणति स्वरूपत्वात् प्रत्यक्षविरोधः, देवश्चाऽत्यन्तरतिसुखासक्त त्वात्-दुष्षमानुभावाच्च न दृष्टिगोचरा भवन्ति नारकाः पुन स्तीव्र वेदनार्ताः पूर्वकृतकर्मोदयनिगडबन्धनवशीकृतत्वात् परतन्त्राः सन्तो नेत्रा गमिष्यन्तीति

कारण तथा दुष्षम काल के प्रभाव के कारण यहां आते नहीं हैं। नारक जीव तीव्र वेदना से पीडित रहते हैं, पूर्वकृत कर्म रूपी बेडी के बन्धन में पडे होने के कारण पराधीन हैं, इस कारण वे यहां आ नहीं सकते' इस प्रकार का विचार करने से दर्शनपरीषहजय होता है।

अथवा ऐसा विचार करना चाहिए-पुण्य और पाप रूप धर्म और अधर्म जब कर्म रूप हैं-पुद्गलात्मक हैं, तो उनके कार्य का दर्शन होता है, अतएव उनका अनुमान किया जा सकता है। अगर धर्म और अधर्म का अभिप्राय क्षमा और क्रोध आदि माना जाय तो स्वानुभव होने से, आत्म परिणति रूप होने से प्रत्यक्षविरोध है। देव रति-सुख में अत्यन्त लीन रहने से तथा दुष्षमकाल के प्रभाव से दृष्टिगोचर नहीं होते, नारक जीव तीव्र वेदना से पीडित रहते हैं, वे पूर्वकृत कर्म रूपी बेडी के बन्धन में पडे रहने के कारण परतन्त्र हैं, इस कारण वे यहां आ

રતિ-સુખમાં આસકત રહેવાના કારણે તથા દુષ્ષમકાળના પ્રભાવથી અહીં આવતા નથી. નારકીના જીવો તીવ્ર વેદનાથી પીડિત રહે છે, પૂર્વકૃત કર્મરૂપી જંજિરના બન્ધનમાં જકડાયેલા હોવાને લીધે પરાધીન છે, આ કારણથી અહીં આવી શકતા નથી આ પ્રકારનો વિચાર કરવાથી દર્શનપરીષહજય થાય છે.

અથવા આ પ્રમાણે વિચારવું જોઈએ-પુણ્ય અને પાપ રૂપ ધર્મ અને અધર્મ જ્યારે કર્મરૂપ છે-પુદ્ગલાત્મક છે-ત્યારે તેમના કાર્યનું દર્શન થાય છે આથી તેમનું અનુમાન કરી શકાય છે. જો ધર્મ અને અધર્મનો અર્થ ક્ષમા અને ક્રોધ વગેરે માનવામાં આવે તો સ્વાનુભવ હોવાથી, આત્મપરિણતિ રૂપ હોવાથી પ્રત્યક્ષ વિરોધ છે! દેવ રતિ-સુખમાં અત્યન્ત લીન રહેવાથી તથા દુષ્ષમકાળના પ્રભાવથી દષ્ટિગોચર થતાં નથી, નારકજીવો તીવ્ર વેદનાથી પીડિત હોય છે, તેઓ પૂર્વકૃત કર્મ રૂપી બેડીના બન્ધનમાં પડ્યા હોવાથી

समालोचयतः खलु दर्शनपरीषहजयो भवति। इति, तथा चैतान् द्वाविंशति विधान् परीषहान् सहमानस्याऽसंक्लिष्टचित्तस्य रागादि परिणामास्रवनिरोधात् संवरो भवतीतिभावः ॥८॥

मूलम्–तत्थ चउद्दस परिसहा सुहुमसंपराय छउमत्थ वीतरागाणं ॥९॥

छाया–तत्र चतुर्दशपरीषहाः सूक्ष्मसम्पराय–छद्मस्थवीतरागयोः–॥९

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे–क्षुत्पिपासादयो द्वाविंशतिः परीषहाः प्ररूपिताः, सम्प्रति–तेषु केषां जीवानां कियन्तः परीषहाः सम्भवन्तीति प्ररूपयितुमाह–'तत्थ चउद्दस परीसहा–' इत्यादि, तत्र–पूर्वोक्तस्वरूपेषु द्वाविंशति विधेषु क्षुत्पिपा-

---

नहीं सकते, ऐसा विचार करनेवाला दर्शनपरीषह विजय करता है।

इस प्रकार जो बाईस परीषहों को सहन करता है, जिसके चित्त में संक्लेश नहीं होता, वह रागादि परिणाम रूप आस्रव का निरोध करके संवर प्राप्त करता है ॥८॥

'तत्थ चउद्दसपरीसहा' इत्यादि।

सूत्रार्थ—पूर्वोक्त बाईस परीषहों में से सूक्ष्मसम्पराय और छद्मस्थवीतराग को चौदह परीषह होते हैं ॥९॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्व सूत्र में क्षुधा पिपासा आदि बाईस परीषहों की प्ररूपणा की गई, अब यह प्ररूपणा करते हैं कि उनमें से किन जीवों को कितने परीषह होते हैं–

जिनका स्वरूप पहले कहा जा चुका है, उन क्षुधा पिपासा आदि

પરતંત્ર છે, આ કારણે તેઓ અત્રે આવી શકતાં નથી, આ પ્રમાણે વિચાર કરનાર દર્શનપરીષહ વિજય પ્રાપ્ત કરે છે.

આવી રીતે જે બાવીસ પરીષહોને સહન કરે છે, જેના ચિત્તમાં સંકલેશ થતો નથી, તે રાગાદિપરિણામ રૂપ આસ્રવનો નિરોધ કરીને સંવર પ્રાપ્ત કરે છે. ॥૮॥

'તત્થ ચઉદ્દસપરીસહા' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—પૂર્વોક્ત બાવીસ પરીષહોમાંથી સૂક્ષ્મસામ્પરાય અને છદ્મસ્થ વીતરાગને ચૌદ પરીષહ હોય છે. ॥૯॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા–પૂર્વસૂત્રમાં ક્ષુધા પિપાસા વગેરે બાવીસ પરીષહોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી હવે એ પ્રરૂપણા કરીએ છીએ કે તેમાંથી કયા જીવોને કેટલાં પરીષહ હોય છે—

જેમનું સ્વરૂપ અગાઉ કહેવામાં આવી ગયું છે તે ક્ષુધા પિપાસા આદિ

सादि परीषहेषु चतुर्दशप्रकाराः परीषहाः सूक्ष्मसम्परायछद्मस्थवीतरागयोः सम्भवन्ति। सूक्ष्मसम्परायो लोभाख्यः कषायो यस्याऽसौ सूक्ष्मसम्परायः, सूक्ष्मलोभपरमाणुमद्भावात् न-वीतरागत्वं प्राप्तो दशमगुणस्थानवर्ती शमकः-क्षपकोवा संयतो मूलोत्तरगुणसम्पन्नः सूक्ष्मसम्परायः, छद्मनि-ज्ञानावरणीयादि घाति कर्मचतुष्टये तिष्ठतिती छद्मस्थः सचासौ वीतरागश्चेति छद्मस्थवीतरागः, अन्तर्मुहूर्तेन समुत्पद्यमानकेवलज्ञानः क्षीणकषायः-क्रमेण-एकादशे-द्वादशे गुणस्थाने वर्तमानः श्रमणः छद्मस्थवीतरागो व्यपदिश्यते। तथा च-सूक्ष्मसम्परायस्य शमकस्य-क्षपकस्य वा द्विविधस्यैकादश-द्वादशगुणस्थानवर्तिनः छद्मस्थ

बाईस परीषहों में से चौदह परीषह सूक्ष्मसाम्पराय और छद्मस्थवीतराग में पाये जाते हैं। जिस जीव में सम्पराय अर्थात् लोभ कषाय का सूक्ष्म अंश ही शेष रह जाता है, वह दशम गुणस्थानवर्त्ती उपशमक अथवा क्षपक मुनि सूक्ष्म सम्पराय कहलाता है। जो छद्म में अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि चार घातिक कर्मों में स्थित हो, वह छद्मस्थ कहलाता है। छद्मस्थ होते हुए भी जो वीतराग हो चुका हो अर्थात् चार घातिक कर्मों में से मोहनीय कर्म का जिसने पूर्णरूप से उपशम अथवा क्षय कर दिया हो, वह छद्मस्थवीतराग कहलाता है। तात्पर्य यह है कि ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान वाले मुनि को छद्मस्थ-वीतराग कहते हैं। ग्यारहवें गुणस्थान में उपशमश्रेणी करने वाला ही जाता है। मोहनीय कर्म का पूर्ण उपशम हो जाने से, लेश मात्र भी उदय न रहने से, वह उपशान्त मोह वीतराग कहलाता है। क्षपक

બાવીસ પરીષહોમાંથી ચૌદ પરીષહ સૂક્ષ્મસમ્પરાય અને છદ્મસ્થ વીતરાગમાં જોવા મળે છે. જે જીવમાં સમ્પરાય અર્થાત્ લોભકષાયનો સૂક્ષ્મ અંશ જ બાકી રહી જાય છે, તે દશમાગુણસ્થાનવર્ત્તી ઉપશમક અથવા ક્ષપક મુનિ સૂક્ષ્મસમ્પરાય કહેવાય છે. જે છદ્મમાં અર્થાત્ જ્ઞાનાવરણીય આદિ ચાર ઘાતી કર્મોમાં સ્થિત છે તે છદ્મસ્થ કહેવાય છે છદ્મસ્થ હોવા છતાં પણ જે વીતરાગ થઇ ચૂકયો હોય અર્થાત્ ચાર ઘાતી કર્મોમાંથી મોહનીય કર્મનો જેણે પૂર્ણ રૂપથી ઉપશમ અથવા ક્ષય કર્યો હોય, તે છદ્મસ્થ વીતરાગ કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે અગીયારમાં અને બારમાં ગુણસ્થાનવાળા મુનિને છદ્મસ્થ વીતરાગ કહે છે. અગીયારમાં ગુણસ્થાનમાં ઉપશમ શ્રેણી કરનાર જ જાય છે. મોહનીય કર્મનો પૂર્ણ ઉપશમ થઇ જવાથી, લેશમાત્ર પણ ઉદય ન રહેવાથી, તે ઉપશાન્ત મોહ વીતરાગ કહેવાય છે. ક્ષપકશ્રેણી

वीतरागस्य च क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकचर्या प्रज्ञाऽज्ञाना-ऽलाभ शय्या वध रोग तृणस्पर्श मलरूपा श्चतुर्दशपरीषहाः सम्भवन्ति। अथ-छद्मस्थ वीतरागस्य मोहनीयाभावेना-ऽचेलरति स्त्री निषद्याऽऽक्रोशयाचनासत्कारपुरस्कार दर्शन रूपाष्ट परीषहाभावात् उपर्युक्त चतुर्दश परीषहनियमवचनस्य सद्भावेऽपि सूक्ष्मसाम्परायिकस्य मोहनीयसद्भावा दचेलादि परीषहाणामपि सम्भवेन चतुर्दशे तिनियमो नोपपद्यते इतिचेत्-? अत्रोच्यते-सूक्ष्मसाम्पराये केवललोभसंज्वलन

श्रेणी वाला जीव दसवें गुणस्थान से सीधा बारह वें गुणस्थान में पहुंचता है, उस समय मोह का सर्वथा क्षय हो जाने से वह क्षीण-कषाय वीतराग होता है। मगर इन दोनों गुणस्थानों में ज्ञानावरण आदि तीन घातिक कर्म विद्यमान रहते हैं, अतएव केवल ज्ञानदर्शन की प्राप्ति नहीं होती, इस कारण वह छद्मस्थ कहलाता है।

तात्पर्य यह है कि जो महामुनि दसवें, ग्यारहवें और बारहवे गुणस्थान में विद्यमान होते हैं, उनको चौदह परीषह हो सकते हैं। वे चौदह परीषह ये हैं-(१) क्षुधा (२) पिपासा (३) शीत (४) उष्ण (५) दंशमशक (६) चर्या (७) प्रज्ञा (८) अज्ञान (९) अलाभ (१०) शय्या (११) वध (१२) रोग (१३) तृणस्पर्श (१४) मल।

शंका—छद्मस्थवीतराग में मोहनीय कर्म का अभाव होने से अचेल, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना, सत्कार पुरस्कार और दर्शन परीषह ये आठ परीषह नहीं होते, इस कारण चौदह परीषहों

જીવ દશમાં ગુણસ્થાનથી સીધો બારમા ગુણસ્થાનમાં પહોંચે છે, તે સમયે મોહનો સર્વથા ક્ષય થઈ જવાથી તે ક્ષીણકષાય વીતરાગ હોય છે, પરંતુ આ બંને ગુણસ્થાનોમાં જ્ઞાનાવરણ આદિ ત્રણ ઘનઘાતિ કર્મ વિદ્યમાન રહે છે આથી કેવળદર્શનની પ્રાપ્તિ થતી નથી, એ કારણે તે છદ્મસ્થ કહેવાય છે.

તાત્પર્ય એ છે કે જે મહામુનિ દસમાં, અગીયારમાં અને બારમાં ગુણસ્થાનમાં વિદ્યમાન હોય છે, તેમને ચૌદ પરીષહ હોઇ શકે છે. આ ચૌદ પરીષહ આ પ્રમાણે છે—(૧) ક્ષુધા (૨) પિપાસા (૩) ટાઢ (૪) તડકો (૫) દંશમશક (૬) ચર્યા (૭) પ્રજ્ઞા (૮) અજ્ઞાન (૯) અલાભ (૧૦) શય્યા (૧૧) વધ (૧૨) રોગ (૧૩) તૃણસ્પર્શ (૧૪) મલ

શંકા-છદ્મસ્થ વીતરાગમાં મોહનીય કર્મનો અભાવ હોવાથી અચેલ, અરતિ સ્ત્રી, નિષદ્યા, આક્રોશ, યાચના, સત્કાર પુરસ્કાર અને દર્શનપરીષહ એ આઠ પરીષહ હોતા નથી એ કારણે ચૌદ પરીષહો હોવાનો નિયમ બરાબર

कषायोदयस्याऽतिसूक्ष्मस्य सन्मात्रत्वात्-तस्यापि वीतराग छद्मस्थ तुल्यत्वात् उपर्युक्त चतुर्दश परीषह स्तत्रापि सन्तीति 'चतुर्दश' इति नियमस्तत्राप्युपपद्यते। अथैवमपि-मोहोदयसहायाभावात्-मन्दोदयत्वाच्च क्षुत्पिपासादि वेदनाभावात् तत्सहनकृतपरीषह व्यपदेशो न युज्यते इति चेन्मैवम्-३ सर्वार्थसिद्ध देवस्याऽधः

के होने का नियम ठीक है, किन्तु सूक्ष्म सम्पराय में मोहनीय कर्म का सद्भाव रहता है, अतः उसमें अचेल आदि परीषह का भी संभव है। ऐसी स्थिति में वहां चौदह होने का नियम किस प्रकार बन सकता है ?

समाधान—सूक्ष्मसम्पराय में केवल संज्वलनलोभ कषाय का ही सद्भाव रहता है और वह भी अत्यन्त सूक्ष्म होता है, इस कारण वह भी वीतरागछद्मस्थ के ही समान है। अभिप्राय यह है कि पूर्वोक्त अचेल आदि आठ परीषह मोहनीय कर्म के उदय से होते हैं, यह सत्य है और यह भी सत्य है कि दसवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म का उदय रहता है, मगर स्मरण रखना चाहिए कि वहां उदित रहने वाला मोह अत्यन्त सूक्ष्म होता है और सूक्ष्म होने के कारण इतना असमर्थ हो जाता है कि परीषहों को उत्पन्न करने में वह समर्थ नहीं रह जाता। इस कारण वहां चौदह परीषहों का जो विधान किया गया है, वह उचित ही है।

છે, પરન્તુ સૂક્ષ્મસમ્પરાયમાં મોહનીય કર્મનો સદ્ભાવ હોય છે, આથી તેમાં અચેલ આદિ પરીષહ પણ સંભવીત છે. આવી સ્થિતિમાં ત્યાં ચૌદ પરીષહ હોવાનો નિયમ કઈ રીતે હોઈ શકે?

સમાધાન-સૂક્ષ્મસમ્પરાયમાં કેવળ સંજ્વલન લોભ કષાયનો જ સદ્ભાવ રહે છે અને તે પણ અત્યન્ત સૂક્ષ્મ હોય છે, આથી તે પણ વીતરાગ છદ્મસ્થની સમાન જ છે. સારાંશ એ છે કે પૂર્વોક્ત અચેલ આદિ આઠ પરીષહ મોહનીય કર્મના ઉદયથી થાય છે. આ સત્ય છે અને એ પણ એટલું જ સત્ય છે કે દશમાં ગુણસ્થાનમાં મોહનીય કર્મનો ઉદય રહે છે, પરન્તુ યાદ રાખવું ઘટે કે ત્યાં ઉદિત રહેતો મોહ અત્યન્ત સૂક્ષ્મ હોય છે અને સૂક્ષ્મ હોવાના કારણે એટલો અસમર્થ થઈ જાય છે કે પરીષહોને ઉત્પન્ન કરવામાં તેની શક્તિ રહેતી નથી આથી ત્યાં ચૌદ પરીષહોનું જે વિધાન કરવામાં આવ્યું છે તે યથાર્થ જ છે.

શંકા-આ સ્વીકારી લઈએ તો પણ મોહ કર્મના ઉદયની સહાયતા ન મળવાથી અને મન્દ ઉદય હોવાના કારણે ક્ષુધા-પિપાસા આદિની વેદના ન

सप्तमपृथिवीगमनसामर्थ्यव्यपदेशवत् छद्मस्थ वीतरागादीनामपि क्षुत्पिपासादि सहनशक्तिमात्रस्य प्रदर्शितत्वादिति दिक् ॥९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः--पूर्वं तावत्-संवरहेतुतया प्रतिपादितानां परीषहाणां क्षुत्पिपासादीनां स्वरूपं-भेदाश्च प्ररूपिताः, सम्प्रति-कः खलु परीषहः ? कस्य केषु च गुणस्थानेषु सम्भवतीति क्रमशः प्ररूपयितुमाह-'तत्थ चउद्दस परीसहा सुहुमसंपराय छउमत्थ वीतरागाणं-' इति, तत्र-पूर्वोक्त स्वरूपेषु क्षुत्पिपासादिषु द्वाविंशति प्रकारेषु परीषहेषु मध्ये चतुर्दशपरीषहाः क्षुत्पिपासा शीतोष्ण दंशमशक चर्याप्रज्ञाऽप्रज्ञालाभशय्यावधरोगतृणस्पर्शमलरूपाः सूक्ष्मसाम्पराय-

शंका—यह मान लिया जाय तो भी मोह कर्म के उदय की सहायता न मिलने के कारण और मन्द उदय होने के कारण क्षुधा पिपासा आदि की वेदना न होने से क्षुधा पिपासा आदि से होने वाले परीषह कैसे कहेजा सकते हैं ?

समाधान— ऐसा न कहो, जैसे सर्वार्थसिद्ध विमान के देव में सप्तम पृथ्वी तक गमन करने का सामर्थ्य कहा जाता है, उसी प्रकार छद्मस्थवीतराग आदि में क्षुधा-पिपासा आदि के उत्पन्न होने की शक्ति मात्र प्रदर्शित की गई है ॥९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले परीषहजय को संवर का हेतु बतलाया गया था, अतएव क्षुधा पिपासा आदि परीषहों के स्वरूप और उनके भेदों का निरूपण किया गया। अब अनुक्रम से यह प्रतिपादन करते हैं कि कौनसा परीषह, किन गुणस्थानों में किस जीव को होता है ?

पूर्वोक्त क्षुधा पिपासा आदि बाईस परीषहों में से चौदह परीषह अर्थात् (१) क्षुधा (२) पिपासा (३) शीत (४) उष्ण (५) दंशमशक

હોવાથી ક્ષુધા પિપાસા આદિથી થનારા પરીષહ કઇ રીતે કહી શકાય ?

સમાધાન–આમ કહેવું ઠીક નથી, જેમ સર્વાર્થ સિદ્ધ વિમાનના દેવમાં સાતમી પૃથ્વી સુધી ગમન કરવાનું સામર્થ્ય કહેવામાં આવે છે, તે જ રીતે ક્ષુધા-પિપાસા આદિના ઉત્પન્ન થવાની શક્તિ માત્ર પ્રદર્શિત કરવામાં આવી છે. ॥૯॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ–આ પહેલા પરીષહજયને સંવરનું કારણ બતાવવામાં આવ્યું હતું આથી ક્ષુધા પિપાસા આદિ પરીષહોના સ્વરૂપ તથા તેના ભેદોનું પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે અનુક્રમથી એ પ્રતિપાદન કરીએ છીએ કે કયા પરીષહ, કયા ગુણસ્થાનમાં, કયા જીવને થાય છે ?

પૂર્વોક્ત ક્ષુધા પિપાસા આદિ બાવીસ પરીષહોમાંથી ચૌદ પરીષહ અર્થાત્ (૧) ક્ષુધા (૨) પિપાસા (૩) ટાઢ (૪) તડકો (૫) દંશમશક (૬) ચર્યા (૭) પ્રજ્ઞા (૮) અજ્ઞાન (૯) અલાભ (૧૦) શય્યા (૧૧) વધ (૧૨) રોગ

छद्मस्थ वीतरागयोः सम्भवन्ति। तत्र-क्षुत्पिपासादीनां चतुर्दशानामपि परीषहाणां हेतुभूतस्य लोभाख्य कषायरूपसम्परायस्य बादराणि खण्डानि नवमे गुणस्थाने परिशाटितानि भवन्ति। किन्तु-दशमे गुणस्थाने तद्धेतुभूत-सूक्ष्मलोभकषायपरमाणवो वेद्यन्ते तस्मात्-सूक्ष्मसम्परायसंयते, छद्मस्थवीतरागासंयते चोपयुक्ताश्चतुर्दशपरीषहा भवन्ति। तत्र-सूक्ष्मसम्परायो लोभ-कषायो यस्य स सूक्ष्मसम्परायः, ज्ञानावरणीयादि घातिकर्मचतुष्टयरूपम्, तस्मिन् स्थितश्छद्मस्थः वीतो-व्यपगतो रागो दर्शन-मोह, चारित्र-मोहरूप

(६) चर्या (७) प्रज्ञा (८) अज्ञान (९) अलाभ (१०) शय्या (११) वध (१२) रोग (१३) तृणस्पर्श और मल परीषह सूक्ष्मसाम्पराय और छद्मस्थवीतराग में होते हैं। क्षुधा पिपासा आदि चौदह परीषहों का कारण मोहनीय कर्म है। मोहनीय कर्म का अनुक्रम से क्षय या उपशम करता हुआ जीव जब नौवे अनिवृत्तिकरण नामक गुणस्थान में पहुंचता है तो वहां शेष रहे हुए संज्वलन कषाय के लोभ रूप मोहनीय कर्म के बादर खंडों का क्षय या उपशम कर देता है। दशम गुणस्थान में सूक्ष्म लोभ कषाय मात्र का ही वेदन होता है। ऐसी स्थिति में मोहनीय कर्म के द्वारा उत्पन्न होने वाले आठ परीषह वहीं संभव नहीं होते, अतएव सूक्ष्मसाम्पराय नामक दसवें गुणस्थान में पूर्वोक्त चौदह परीषह ही होते हैं।

जिस जीव में या जीव की जिस अवस्था में सूक्ष्म ही सम्पराय अर्थात् कषाय शेष रह जाता है, उसे सूक्ष्मसम्पराय कहते हैं। ज्ञाना-

(૧૩) તૃણસ્પર્શ અને (૧૪) મલપરીષહ સૂક્ષ્મસામ્પરાય અને છદ્મસ્થ વીતરાગમાં હોય છે. ક્ષુધા-પિપાસા આદિ ચૌદ પરીષહોનું કારણ મોહનીય કર્મ છે. મોહનીય કર્મનો અનુક્રમથી ક્ષય અથવા ઉપશમ કરતો થકો જીવ જ્યારે નવમાં અનિવૃત્તિકરણ નામના ગુણસ્થાનમાં પહોંચે છે તો ત્યાં બાકી રહેલા સંજવલન કષાયના લોભ રૂપ મોહનીય કર્મના બાદર ખણ્ડોનો ક્ષય અથવા ઉપશમ કરી નાખે છે. દશમા ગુણસ્થાનમાં સૂક્ષ્મ લોભકષાય માત્રનું જ વેદન થાય છે. આવી સ્થિતિમાં મોહનીય કર્મ દ્વારા ઉત્પન્ન થનારા આઠ પરીષહ ત્યાં સંભવી શકતા નથી આથી સૂક્ષ્મસામ્પરાય નામના દશમાં ગુણસ્થાનમાં અને છદ્મસ્થ વીતરાગ નામના અગીયારમાં ગુણસ્થાનમાં પૂર્વોક્ત ચૌદ પરીષહ જ હોય છે.

જે જીવમાં અથવા જીવની જે અવસ્થામાં સૂક્ષ્મ જ સમ્પરાય અર્થાત્ કષાય શેષ રહી જાય છે. તેને સૂક્ષ્મસમ્પરાય કહે છે તે જ્ઞાનાવરણ આદિ

सकलमोहोपशमात् तथाविध समस्तमोहक्षयाच्च यस्य स वीतरागः क्रमश एकादशगुणस्थानवर्ती द्वादशस्थानवर्ती च संयतः श्रमणः परिग्राह्यः, छद्मस्थश्चाऽसौ वीतरागश्चेति छद्मस्थवीतरागः तयोः खलु-सूक्ष्मसम्पराय च्छद्मस्थवीतरागयोः श्रमणयो रुपयुक्ताः क्षुत्पिपासादय श्चतुर्दश परीषहाः सम्भवन्ति नत्व चेलारति स्त्रीनिषद्याऽऽक्रोश याचनासत्कारपुरस्कारदर्शनरूपा अष्टौ परीषहाः, छद्मस्थवीतरागस्य मोहनीयाभावात्-सूक्ष्मसाम्परायमोहोदय सद्भावेऽपि केवलं लोभसंज्वलनकषायोदयस्याऽति सूक्ष्मस्यैव सत्त्वेन तस्यापि छद्मस्थवीतराग तुल्यत्वात्। परमार्थतस्तु-तदुभयोरेव क्षुत्पिपासादि चतुर्दश परीषहसहनशक्ति

वरण आदि कर्म 'छद्म' कहलाते हैं, उनमें जो स्थित हो वह 'छद्मस्थ' कहा जाता है। जिसका राग अर्थात् दर्शनमोह और चारित्रमोह रूप मोह-उपशान्त या क्षीण हो चुका हो-बीत गया हो, वह वीतराग कहलाता है। ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में स्थित श्रमण छद्मस्थ वीतराग कहलाता है, क्योंकि ज्ञानावरणीय आदि तीन घाति कर्म उसके विद्यमान होते हैं, अतः वह छद्मस्थ है और मोहनीय कर्म का उदय न होने से वीतराग कहलाता है। इन सूक्ष्मसम्पराय और छद्मस्थ वीतराग मुनियों में क्षुधा पिपासा आदि चौदह परीषह का संभव होते हैं। इनमें अचेल, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना, सत्कार पुरस्कार और दर्शन, ये आठ परीषह नहीं होते, क्योंकि छद्मस्थ वीतराग जीव मोहनीय कर्म के उदय से रहित होता है और सूक्ष्मसम्पराय में यद्यपि मोह का उदय रहता है किन्तु केवल सूक्ष्म संज्वलन

કર્મ 'છદ્મ' કહેવાય છે, તેમાં જે સ્થિત છે તે છદ્મસ્થ કહેવાય છે. જેના રાગ અર્થાત્ દર્શનમોહ અને ચારિત્રમોહ રૂપ મોહ ઉપશાન્ત અથવા ક્ષીણ થઈ ગયા હોય-વીતી ગયા હોય તે વીતરાગ કહેવાય છે. અગીયારમાં અને બારમાં ગુણસ્થાનમાં સ્થિત શ્રમણ છદ્મસ્થ વીતરાગ કહેવાય છે કારણ કે જ્ઞાનાવરણીય આદિ ત્રણ ઘાતિ કર્મ તેના વિદ્યમાન હોય છે આથી તે છદ્મસ્થ છે અને મોહનીય કર્મનો ઉદય ન થવાથી વીતરાગ કહેવાય છે. આ સૂક્ષ્મસમ્પરાય અને છદ્મસ્થ વીતરાગ મુનિયોમાં ક્ષુધા પિપાસા આદિ ચૌદ પરીષહ હોઈ શકે છે. આમાં અચેલ, અરતિ, સ્ત્રી, નિષદ્યા આક્રોશ, યાચના, સત્કાર પુરસ્કાર અને દર્શન એ આઠ પરીષહ હોતાં નથી કારણ કે છદ્મસ્થ વીતરાગ જીવ મોહનીય કર્મના ઉદયથી રહિત થાય છે અને સૂક્ષ્મસમ્પરાયમાં જો કે મોહનો ઉદય રહે છે આથી તે પરીષહોને ઉત્પન્ન કરવામાં સમર્થ થતું નથી આથી સૂક્ષ્મસમ્પરાય જીવ પણ છદ્મસ્થ વીતરાગ જેવો જ ગણાય.

मात्रस्यैव प्रदर्शने तात्पर्यं वर्तते, न तु तथाविधपरीषहसहने सर्वार्थसिद्धदेवस्याधः सप्तमपृथिवीगमनसामर्थ्यवर्णनवत्, इतिभावः। उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ भगवती सूत्रे ८-शतके ८-उद्देशके ३४३ सूत्रे-'एक्कविह बंधगस्स णं भंते ! वीयराग छउमत्थस्स कतिपरीसहा पण्णत्ता ? गोयमा ! चोद्दस परीसहा पण्णत्ता-' इति एकविधबन्धकस्य खलु भदन्त ! वीतराग छद्मस्थस्य कतिपरीषहाः प्रज्ञप्ताः ? गौतम ! चतुर्दश परीषहाः प्रज्ञप्ताः इति ॥९॥

मूलम्-अरिहंते एगारस परीसहा ॥१०॥

छाया—'अर्हति-एकादश परीषहाः—॥१०

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे सूक्ष्मसम्परायस्य शमकस्य-क्षपकस्य वा संयत

लोभ का ही उदय रहता है, अतएव वह परीषहों को उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होता। इस कारण सूक्ष्मसम्पराय जीव भी छद्मस्थवीतराग के ही समान है।

तथ्य तो यह है की सूक्ष्मसम्पराय और छद्मस्थवीतराग मुनि में जो चौदह परीषहों का सद्भाव कहा गया है, वह योग्यता मात्र की अपेक्षा से ही समझना चाहिए, जैसे सर्वार्थसिद्ध विमान के देव में नीचे सातवीं पृथ्वी तक गमन करने की योग्यता का वर्णन किया जाता है। व्याख्या प्रज्ञप्तिसूत्र के आठवें शतक के आठवें उद्देशक में कहा है-'एक प्रकार की कर्म-प्रकृति का अर्थात् सिर्फ वेदनीय कर्म का बन्ध करने वाले में, भगवन्! कितने परीषह होते हैं ?

उत्तर-हे गौतम! चौदह परीषह कहे गए हैं ॥९॥

'अरिहते एगारसपरीसहा।'

सूत्रार्थ—अर्हन्त में ग्यारह परीषह होते हैं ॥१०॥

સત્ય તો એ છે કે સૂક્ષ્મસમ્પરાય અને છદ્મસ્થ વીતરાગ મુનિમાં જે ચૌદ પરીષહોનો સદ્‌ભાવ કહેવામાં આવ્યો છે. તે યોગ્યતા માત્રની અપેક્ષાએ જ સમજવુ જોઈએ, જેવી રીતે સર્વાર્થ સિદ્ધ વિમાનના દેવમાં નીચે સાતમી પૃથ્વી સુધી ગમન કરવાની યોગ્યતાનું વર્ણન કરવામાં આવે છે. વ્યાખ્યાપ્રજ્ઞપ્તિસૂત્રના આઠમાં શતકના આઠમાં ઉદ્દેશકમાં કહ્યું છે-એક પ્રકારની કર્મપ્રકૃતિનું અર્થાત માત્ર વેદનીય કર્મનું બન્ધ કરનારામાં, ભગવન્ કેટલા પરીષહ હોય છે ? ઉત્તર-હે ગૌતમ ! ચૌદ પરીષહ કહેવામાં આવ્યા છે ॥૯॥

'अरिहते एगारसपरीसहा' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—અર્હન્તમાં અગીયાર પરીષહ હોય છે. ॥૧૦॥

छद्मस्थवीरागस्य च संयतस्य क्षुत्पिपासादय श्चतुर्दशपरीषहाः सम्भवन्तीति प्ररूपितम्, सम्प्रति-भगवतोऽर्हतो जिनस्य एकादश परीषहा भवन्तीति प्ररूपयितुमाह-'अरिहंते एगारस परीसहा-इति, अर्हति भगवति जिनेश्वरे वीतरागे निरस्तघातिकर्मचतुष्टये केवलज्ञानिनि वेदनीयकर्मसद्भावात् तदाश्रयाः क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्श मलरूपा एकादश परीषहाः सम्भवन्ति । तथा च-भवस्थकेवलिनः केवलं वेदनीयकर्म सद्भावात्-शेषकर्मकारणाभावाच्च वेदनीयकर्म मूलका एवोपयुक्ताः क्षुत्पिपासादयो एकादश परीषहा भवन्ति त्रयोदश-चतुर्दशगुण स्थानयोरेव जिनत्व सम्भवात् ॥१०।

तत्त्वार्थदीपिका—उपशमश्रेणी वाले और क्षपकश्रेणीवाले सूक्ष्मसम्पराय संयत में तथा छद्मस्थवीतराग संयत में चौदह परीषह हो सकते हैं, यह पहले कहा जा चुका है, अब अर्हन् अर्थात् जिन भगवान् में ग्यारह परीषह होते हैं, यह प्ररूपणा करते हैं-

समस्त घाति कर्मों का क्षय कर देने वाले, केवलज्ञानी अर्हन्त भगवान् जिनेश्वर में वेदनीय कर्म का सद्भाव होने से तज्जनित ग्यारह परीषह होते हैं, जो इस प्रकार हैं-(१) क्षुधा (२) पिपासा (३) शीत (४) उष्ण (५) दंशमशक (६) चर्या (७) शय्या (८) वध (९) रोग (१०) तृणस्पर्श और (११) मल।

इस प्रकार भवस्थ केवली में वेदनीय कर्म का सद्भाव होने से और परीषहजनक शेष कर्म विद्यमान न होने से, वेदनीय कर्मजनित

તત્ત્વાર્થદીપિકા—ઉપશમશ્રેણીવાળા અને ક્ષપકશ્રેણીવાળા સૂક્ષ્મસમ્પરાય સંયતમાં તથા છદ્મસ્થ વીતરાગ સંયતમાં ચૌદ પરીષહ હોઇ શકે છે એ પહેલા કહેવાઇ ગયું છે હવે અર્હન્ અર્થાત્ જિન ભગવાનમાં અગીયાર પરીષહ હોય છે, એની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ—

સમસ્ત ઘાતિ કર્મોનો ક્ષય કરવાવાળા, કેવળજ્ઞાની અર્હન્ત ભગવાન્ જિનેશ્વરમાં વેદનીય કર્માનો સદ્ભાવ હોવથી તજ્જનિત અગીયાર પરીષહ હોય છે જે આ મુજબ છે-(૧) ક્ષુધા (૨) પિપાસા (૩) શીત (૪) ઉષ્ણ (૫) દંશમશક (૬) ચર્યા (૭) શય્યા (૮) વધ (૯) રોગ (૧૦) તૃણસ્પર્શ અને (૧૧) મલ.

આ રીતે ભવસ્થ કેવળીમાં વેદનીય કર્મનો સદ્ભાવ હોવાથી અને પરીષહજનક શેષ કર્મ વિદ્યમાન ન હોવાથી, વેદનીય કર્મ જનિત અગીયાર પરીષહ જ હોઇ શકે છે. તેરમાં અને ચૌદમાં ગુણસ્થાનવર્ત્તી સર્વજ્ઞ સર્વદર્શી અને અનન્ત-ચતુષ્ટયથી સમ્પન્ન અર્હન્ત જ હકીકતમાં જિન છે. ।૧૦।।

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावत् संवरहेतुतया प्रतिपादितेषु क्षुत्पिपासादि द्वाविंशति विधेषु परीषहेषु सूक्ष्म साम्परायस्य शमक-क्षपका-ऽन्यतर संयतस्य, छद्मस्थवीतरागसंयतस्य च क्षुत्पिपासादय श्चतुर्दश परीषहा-सम्मति प्ररूपिता-भगवतोऽर्हतो जिनेन्द्रस्य एकादशपरीषहाः सम्भवन्तीति प्ररूपयितुमाह-'अरिहंते एगारस परीसहा' इति, अर्हति-भगवति-तीर्थकृति-भवस्थकेवलिनि वेदनीय कर्मसद्भावात् तन्निमित्ताः क्षुत्पिपासा शीतोष्णदंशमशकचर्याशय्या वध रोग तृणस्पर्श मलरूपा एकादशविधाः परीषहाः सम्भवन्ति। पूर्वोक्तेषु चतुर्दशविधेषु प्रज्ञाऽज्ञानऽलाभरूपान् त्रीन् परीषहान् विहाय क्षुत्पिपासादय एकादश परीषहा भवन्तीतिभावः। ज्ञानावरण-दर्शनावरण-मोहनीयान्तरायेष्वात्यन्तिकं

ग्यारह परीषह ही हो सकते हैं। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्त्ती सर्वज्ञ सर्वदर्शी एवं अनन्त चतुष्टय से सम्पन्न अर्हन्त ही वस्तुतः जिन हैं ॥१०॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले क्षुधा-पिपासा आदि बाईस परीषहों के जय को संवर का कारण प्रतिपादन किया गाया था। अतः उपशमक एवं क्षपक सूक्ष्मसम्पराय संयत के तथा छद्मस्थ वीतराग संयत के क्षुधा पिपासा आदि चौदह परीषहों का सद्भाव बतलाया गया। अब यह प्ररूपण करते हैं कि अर्हन्त भगवान् जिन में ग्यारह परीषहों की सत्ता होती है-

भवस्थकेवली भगवान् अर्हन्त में वेदनीय कर्म का सद्भाव होने से उसके निमित्त से उत्पन्न होने वाले ग्यारह परीषह हो सकते हैं। पहले जो चौदह परीषहों के नामों का उल्लेख किया गया है, उनमें से प्रज्ञा, अज्ञान और अलाभ, इन तीन परीषहों को छोडकर क्षुधा पिपासा आदि ग्यारह परीषह होते हैं।

તત્વાર્થનિર્યુક્તિ— પહેલા ક્ષુધા-પિપાસા આદિ બાવીસ પરીષહોના વિજયને સંવરના કારણ તરીકે પ્રતિપાદિત કરવામાં આવેલું છે આથી ઉપશમક અને ક્ષપક સૂક્ષ્મસમ્પરાય સંયતના તથા છદ્મસ્થ વીતરાગ સંયતના ક્ષુધા પિપાસા આદિ ચૌદ પરીષહોનો સદ્ભાવ બતાવવામાં આવ્યો હવે એ પ્રરૂપણા કરીએ છીએ કે અર્હન્ત ભગવાન જિનેશ્વરમાં અગીયાર પરીષહોની સત્તા હોય છે—

ભવસ્થ કેવળી ભગવાન્ અર્હન્તમાં વેદનીય કર્મનો સદ્ભાવ હોવાથી, તેના નિમિત્તથી ઉત્પન્ન થનારા અગીયાર પરીષહ હોઇ શકે છે. પહેલા જે ચૌદ પરીષહોના નામોનો ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો છે, તેમાંથી પ્રજ્ઞા, અજ્ઞાન અને અલાભ, આ ત્રણ પરીષહોને છોડીને, ક્ષુધા પિપાસા આદિ અગીયાર પરીષહ હોય છે.

क्षयमुपगतेषु घातिककर्मसु समुत्पन्न सकलज्ञेयपदार्थावभासि केवलज्ञानातिशयो जिनः खलु केवलीतिव्यपदिश्यते तथा च त्रयोदश चतुर्दश गुणस्थानयोः खलु जिनत्वमुपपद्यते। उक्तञ्च, व्याख्याप्रज्ञप्तौ भगवतीसूत्रे ८-शतके ८-उद्देशके ३४३ सूत्रे-'एगविहबंधगस्स णं भंते! सजोगि भवत्थकेवलिस्स कति परीसहा पण्णत्ता? गोयमा! एक्कारस परीसहा पण्णत्ता, नव पुणवेदेइ, सेसं जहा छव्विहबंधगस्स, अबंधगस्स णं भंते! अजोगि भवत्थ केवलिस्स कति परीसहा पण्णत्ता? गोयमा! एक्कारस परीसहा पण्णत्ता, नव पुण वेदेइ, जं समयं सीयपरीसहं वेदेइ नो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, रेवादो नो तं समयं सीयपरीसहं वेदेइ, जं समयं चरियापरीसहं वेदेइ नो तं समयं सेज्जा परिसहं वेदेइ जं समयं सेज्जा परिसहं वेदेइ नो तं समयं चरियापरीसहं वेदेइ-' इति एकविध बन्धकस्य खलु भदन्त-! सयोगि भवस्थकेवलिनः कति परीषहाः प्रज्ञप्ताः, गौतम! एकादशपरीषहाः प्रज्ञप्ताः नव पुनर्वेदयति शेषं यथा षड्विधबन्धकस्य, अबन्धकस्य खलु भदन्त-! अयोगि भवस्थकेवलिनः कति परीषहाः प्रज्ञप्ताः-? गौतम! एका-

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय, इन चार घातिया कर्मों का क्षय हो जाने पर जिसे समस्त पदार्थों को जानने वाले केवलज्ञान का अतिशय प्राप्त हो जाता है, वह जिन केवली कहलाता है। तेरहवे और चौदहवें गुणस्थानवर्ती ही केवली जिन कहलाते हैं। भगवतीसूत्र शतक ८, उद्देशक ८ में कहा है-

'भगवन्! सयोगी भवस्थकेवली को कितने परीषह कहे हैं?'

'गौतम! ग्यारह परीषह कहे हैं, उनमें से नौ का वेदन होता है, शेष कथन उसी प्रकार समझना चाहिए जैसे छह प्रकार का कर्म बांधने वाले को विषय में कहा है।'

જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ, મોહનીય અને અન્તરાય, એ ચાર ઘાતિ કર્મોનો ક્ષય થઈ જવાથી, જેને સમસ્ત પદાર્થોને જાણનાર એવા કેવળજ્ઞાનનો અતિશય પ્રાપ્ત થઈ જાય છે. તે જિન-કેવળી કહેવાય છે. તેરમાં અને ચૌદમાં ગુણસ્થાનવર્ત્તી જ કેવળી જિન કહેવાય છે. ભગવતીસૂત્ર શતક ૮, ઉદ્દેશક ૮મા કહ્યું છે-

'ભગવન્! સયોગી ભવસ્થ કેવળીના કેટલા પરીષહ કહ્યાં છે?'

'ગૌતમ! અગીયાર પરીષહ કહેવામાં આવ્યા છે એમાંથી નવનું વેદન થાય છે, શેષ કથન તે જ રીતે સમજવાનું છે, જે છ પ્રકારનાં કર્મ બંધનારાઓના વિષયમાં કહેવામાં આવ્યું છે'

दश परीषहाः मज्ञप्ताः, नव पुनर्वेदयति यं समयं शीतपरीषहं वेदयति नो त समयम् उष्णपरीषहं वेदयति, यं समयं उष्णपरीषहं वेदयति नो तं समयं शीतपरीषहं वेदयति, यं समयं चर्या परीषहं वेदयति नो तं समयं शय्या परीषहं वेदयति, यं समयं शय्या परीषह वेदयति, नो तं समयं चर्यापरीषहं वेदयति इति ॥१०॥

मूलम्—सव्वे परीसहा बादरसंपराए ॥११॥

छाया—'सर्वे परीषहाः बादर सम्पराये ॥११॥

'भगवन् ! कर्म बंध से रहित अयोगी भवस्थकेवली को कितने परीषह कहें गए हैं ?'

'गौतम ! ग्यारह परीषह कहे गए हैं, उनमें से एक साथ नौ का वेदन करता है, क्यों कि जिस समय शीत की वेदना होती है उस समय उष्णवेदना नहीं होती जिस समय उष्णवेदना होती है उस समय शीतवेदना नहीं हो सकती। इसी प्रकार जिस समय चर्या परीषह का वेदन करता है उस समय शय्यापरीषह का वेदन नहीं करता और जिस समय शय्या परीषह का वेदन करता है उस समय चर्या परीषह का नहीं करता।

इस प्रकार ग्यारह परीषहों में से, एक ही समय में एक साथ नौ परीषहों का ही वेदन हो सकता है ॥१०॥

'सव्वे परीसहाबादर' इत्यादि।

सूत्रार्थ—बादर साम्पराय को सभी परीषद होते हैं ॥११।

'ભગવન્ ! કર્મબન્ધનથી રહિત અયોગી ભવસ્થ કેવળીને-કેટલા પરીષહ કહેવામાં આવ્યા છે ?

'ગૌતમ ! અગીયાર પરીષહ કહેવામાં આવ્યા છે, તેમાંથી એકી સાથે નવનું વેદન થાય છે. કારણ કે જ્યારે ઠંડીની વેદના થાય છે ત્યારે ઉષ્ણ-વેદના થતી નથી, જ્યારે ઉષ્ણવેદના થાય છે ત્યારે શીતવેદના થઈ શકતી નથી. એવી જ રીતે જ્યારે ચર્યા પરીષહની વેદના અનુભવે છે તે સમયે શય્યા પરીષહનું વેદન થતું નથી અને જ્યારે શય્યા પરીષહનું વેદન કરે છે ત્યારે ચર્યાપરીષહ હોતો નથી.

આ રીતે અગીયાર પરીષહોમાંથી, એક જ સમયમાં એકી સાથે નવ પરીષહોનું જ વેદન થઇ શકે છે ॥૧૦॥

'सव्वे परीसहा बादरसंपराए ।

સૂત્રાર્થ—બાદર સામ્પરાયને બધાં પરીષહ હોય છે. ॥૧૧॥

तत्त्वार्थदीपिका=पूर्वसूत्रे-तीर्थङ्करे भवस्थकेवलज्ञानिनि ज्ञानावरणदर्शनावरण-मोहनीया-ऽन्तरायरूपघातिकर्मचतुष्टयस्य निरस्ततया केवलं वेदनीयकर्मसद्भावात् तन्निमित्तका क्षुत्पिपासादयः एकादश परीषहाः प्ररूपिताः, एवं-सूक्ष्मसाम्परायादिषु व्यस्तरूपेण क्षुत्पिपासादयः परीषहाः यथायथं क्वचिच्चतुर्दशक्वचिदेकादश, इत्येवं रीत्या प्ररूपिताश्च सम्प्रति-समस्तरूपेण तान् द्वाविंशति विधान् परीषहान् एकत्रैव वर्तमानान् प्ररूपयितुमाह-'सव्वे परीसहा संपराये-' इति। बादरसम्पराये-बादरः-स्थूलः, सम्परायः-कषायः क्रोध मान माया लोभादिरूपो यस्मिन् गुणस्थाने तद्-बादर सम्परायम्, तद्योगात्-श्रमणोऽपि बादरसम्पराय शब्देन व्यपदिश्यते, तस्मिन् खलु बादरसम्पराये स्थूल क्रोधादिकषायसहिते संयते मुनौ सर्वे-समस्तः क्षुत्पिपसादयो द्वाविंशति संख्यकाः परीषहा भवन्ति।

तत्त्वार्थदीपिका—भवस्थ केवल ज्ञानी अर्हन्त भगवान् में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय, इन चार घातिक कर्मों का अभाव हो जाने के कारण सिर्फ वेदनीय कर्म के निमित्त से उत्पन्न होने वाले क्षुधा पिपासा आदि ग्यारह परीषह ही होते हैं। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्पराय आदि पृथक्-पृथक् रूप से क्षुधा पिपासा आदि परीषह यथायोग्य कहीं चौदह और कहीं ग्यारह होते हैं, यह पूर्वत्रसूत्रों में प्रतिपादन किया जा चुका है, अब बादर कषायवाले श्रमणों में सभी परीषह हो सकते हैं, यह प्रतिपादन करते हैं-

जिसमें बादर कषाय विद्यमान हो उसे बादरसम्पराय कहते हैं। इस प्रकार जिन श्रमणों में स्थूल क्रोध आदि कषाय विद्यमान हैं, ऐसे संयतों को क्षुधा पिपासा आदि सभी अर्थात् बाईस ही परीषह हो सकते हैं। यहां 'बादरसम्पराय' शब्द से केवल नौवें गुणस्थान का

તત્ત્વાર્થદીપિકા—ભવસ્થ કેવળજ્ઞાની અર્હન્ત ભગવાન્‌માં જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ મોહનીય અને અન્તરાય, એ ચાર ઘાતિક કર્મોનો અભાવ થઈ જવાના કારણે માત્ર વેદનીય કર્મના નિમિત્તથી ઉત્પન્ન થનારા ક્ષુધા-પિપાસા આદિ અગીયાર પરીષહ જ હોય છે એવી જ રીતે સૂક્ષ્મસામ્પરાય આદિમાં પૃથક્-પૃથક્ રૂપથી ક્ષુધા પિપાસા આદિ પરીષહ યથાયોગ્ય કોઈ ઠેકાણે ચૌદ તો કોઈ ઠેકાણે-અગીયાર હોય છે એવી પ્રરૂપણા પૂર્વસૂત્રમાં થઈ ગઈ છે. હવે બાદર કષાયવાળા શ્રમણોમાં બધાં પરીષહો હોઈ શકે છે એવું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ—

જેમાં બાદર કષાય વિદ્યમાન છે, તેને બાદર સમ્પરાય કહે છે આ રીતે જે શ્રમણોમાં સ્થૂળ ક્રોધ આદિ કષાય વિદ્યમાન છે એવા સંયતોને ક્ષુધા પિપાસા આદિ બધાં જ અર્થાત્ બાવીસે બાવીસ પરીષહ હોઈ શકે છે. અહીં 'બાદરસમ્પરાય' શબ્દથી કેવળ નવમાં ગુણસ્થાનને જ ગ્રહણ કરવું જોઈએ

तत्र-बादरसम्परायग्रहणेन न केवलं नवममेव गुणस्थानं ग्रहीतव्यम्, अपितु-अर्थनिर्देशसामर्थ्यात् प्रमत्तसंयताऽप्रमत्तसंयतापूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणगुणस्थान-चतुष्टयं संग्राह्यम्। तथा च-प्रमत्तसंयतादिषु अजीर्ण क्रोधादि कषाय दोषत्वात् क्षुत्पिपासादयः सर्वे परीषहाः सम्भवन्ति। एवञ्च-सामायिक च्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धि संयमेषु खलु चारित्रलक्षणेषु प्रत्येकं सर्वेषामपि क्षुत् पिपासादीनां सम्भवोऽवगन्तव्यः ॥११॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावत्-यथायथं सूक्ष्मसाम्परायेषु व्यस्ताः क्षुत्पिपासादयः परीषहाः प्रतिपादिताः सम्प्रति-बादरसम्परायेषु स्थूल क्रोधादि कषाययुक्तेषु प्रमत्तसंयतादिषु एकत्रैव समस्तरूपेण द्वाविंशतिविधान् तान् परीषहान् प्ररूपयितुमाह-'सव्वे परीसहा बादरसंपराए' इति। बादरसम्पराये बादरः-स्थूलः सम्परायः क्रोधमानमायादि कषायोदयो यस्य तस्मिन्-बादर

ही ग्रहण नहीं करना चाहिए किन्तु अर्थ निर्देश के अनुसार प्रमत्त-संयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्व करण और अनिवृत्तिकरण नामक चार गुणस्थान वाले संयतों का ग्रहण करना चाहिए। इन चारों गुणस्थानों में बादर संज्वलन कषाय का सद्भाव रहता है। अतएव उनको क्षुधा पिपासा आदि सभी परीषह हो सकते हैं। इस प्रकार सामायिक, छेदोपस्थापन और परिहार विशुद्धि चारित्र वालों में सभी परीषहों का सद्भाव समझना चाहिए ॥११॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले सूक्ष्मसम्पराय आदि में क्षुधा पिपासा आदि असमस्त परीषहों का प्रतिपादन किया गया, अब बादर सम्पराय अर्थात् स्थूल क्रोध आदि कषायों से युक्त प्रमत्तसंयत आदि में सभी-बाईसों-परीषहों का विधान करते हैं-

નહીં પરન્તુ અર્થનિર્દેશ અનુસાર પ્રમત્તસંયત, અપ્રમત્તસંયત, અપૂર્વકરણ-અને અનિવૃત્તિકરણ નામના ચાર ગુણસ્થાનવાળા સંયતોનું ગ્રહણ કરવું જોઈએ. આ ચારે ગુણસ્થાનોમાં બાદર સંજ્વલન-કષાયનો સદ્ભાવ રહે છે આથી તેમને ક્ષુધા પિપાસા આદિ બધાં જ પરીષહ થઇ શકે છે. આથી સામાયિક છેદોપસ્થાપન અને પરિહાર વિશુદ્ધિ ચારિત્રવાળાઓમાં બધાં પરીષહોનો સદ્ભાવ સમજવો. ॥૧૧॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા સૂક્ષ્મસમ્પરાય આદિમાં ક્ષુધા પિપાસા આદિ અસમસ્ત પરીષહોનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું, હવે બાદર સમ્પરાય અર્થાત્ સ્થૂળ ક્રોધ આદિ કષાયોથી યુક્ત પ્રમત્તસંયત આદિમાં બધાં બાવીસ પરીષહોનું વિધાન કરીએ છીએ—

सम्पराये न केवल नवमगुणस्थानके, अपितु प्रमत्तसंयता-ऽप्रमत्तसंयता-ऽपूर्वकरणा-ऽनिवृत्तिकरणगुणस्थानचतुष्टयवर्तिनि स्थूलक्रोधादिकषाययुक्ते मुनौ-अक्षीणकषायदोषत्वात् सर्वे क्षुत्पिपासा शीतोष्णदंशमशकाऽचेलाऽरति स्त्रीचर्या निषद्या शय्या-ऽऽक्रोश वध याचनाऽलाभ रोग-तृण स्पर्शमलसत्कार पुरस्कारप्रज्ञा-ऽज्ञानदर्शनरूपा द्वाविंशतिपरीषहाः सम्भवन्ति। तत्र-बादर सम्परायः खलु स्थूलक्रोधादिकषायसहितः कश्चित् संयतो मोहनीयकर्म प्रकृती रुपशमयतीति उपशमको भवति, पुनश्च कश्चित् तथाविध मोहप्रकृतीः क्षपयतीति क्षपको भवति. तेषु खलु बादरसम्परायेषु प्रमत्तसंयतादिषु सर्वेषामेव परीषह-

जिसमें बादर सम्पराय अर्थात् स्थूल कषाय विद्यमान है, उसको सभी परीषह होते हैं। यहां 'बादर सम्पराय' शब्द से नौ वां गुणस्थान ही अभीष्ट नहीं है किन्तु प्रमत्तसंयत, अपूर्व-करण और अनिवृत्ति-करण नामक चार गुणस्थानवाले मुनि ग्रहण किये गये हैं, क्यों कि उन सभी में बादर संज्वलन कषाय विद्यमान रहता है। इन मुनियों के बादर कषाय का क्षय या उपशम न होने से सभी-क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, अचेल, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और दर्शन, परीषह हो सकते हैं। बादर कषाय वाला कोई संयत मोहनीय कर्म की प्रकृतियों का उपशम करता है। वह उपशमक कहलाता है। कोई संयत उन मोहनीय प्रकृतियों का क्षय करता है। उसे क्षपक कहते हैं। इन प्रमत्तसंयत आदि बादर कषाय वालों में

જેમાં બાદર સમ્પરાય અર્થાત્ સ્થૂળ કષાય વિદ્યમાન છે, તેને બધાં જ પરીષહ હોય છે. અહીં 'બાદરસમ્પરાય' શબ્દથી નવમું ગુણસ્થાન જ અભિપ્રેત નથી, પરન્તુ પ્રમત્તસંયત, અપ્રમત્તસંયત, અપૂર્વકરણ અને અનિ-વૃત્તિકરણ નામના ચાર ગુણસ્થાનવાળા મુનિ ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે, કારણ કે તે બધામાં બાદર સંજ્વલન કષાય વિદ્યમાન રહે છે. આ મુનિઓના બાદર કષાયના ક્ષય અથવા ઉપશમ ન હોવાથી બધા-ક્ષુધા, પિપાસા, શીત, ઉષ્ણ, દંશમશક, અચેલ, અરતિ, સ્ત્રી, ચર્યા, નિષદ્યા, શય્યા, આક્રોશ, વધ, યાચના, અલાભ, રોગ, તૃણસ્પર્શ, મલ, સત્કાર-પુરસ્કાર, પ્રજ્ઞા, અજ્ઞાન અને દર્શન પરીષહ હોઈ શકે છે. બાદર કષાયવાળો કોઈ સંયત મોહનીય કર્મની પ્રકૃતિઓનો ઉપશમ કરે છે તે ઉપશમક કહેવાય છે. કોઇ સંયત તે મોહનીય પ્રકૃતિ-ઓનો ક્ષય કરે છે તેને ક્ષપક કહે છે આ પ્રમત્ત સંયત વગેરે બાદર કષાય-

कारणानां ज्ञानावरणाद्यन्तरायपर्यन्तकर्मणाम्-उदय सम्भवात् तेषु प्रत्येकं सर्वेषां द्वाविंशति क्षुत्पिपासादि परीषहाणां सद्भावसंभावना बोध्याः ।

उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ भगवतीसूत्रे ८-शतके ८-उद्देशके ३४३-सूत्रे 'सत्तविहबंधगस्स भंते ! कति परीसहा पण्णत्ता-'गोयमा-! बावीसं परीसहा पण्णत्ता' ! बीसं पुण वेदेइ, जं समयं सीय-परीसहं वेदेइ-णो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, जं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ-णो तं समयं सीयपरीसहं वेदेइ, जं समयं चरिया परीसहं वेदेइ-णो तं समयं निसीहिया परीसहं वेदेइ, जं समयं निसीहिया परीसहं वेदेइ-नो तं समयं चरिया परीसहं वेदेइ, अट्ठविध बंधगस्स णं भंते ! कति परीसहा पण्णत्ता-'गोयमा-'बावीसं परीसहा पण्णत्ता' सप्तविध बन्धकस्य खलु भदन्त-! कति परीषहाः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! द्वाविंशतिः परीषहाः प्रज्ञप्ताः विंशतिं पुनर्वेदयति, यं समयम् शीतपरीषहं वेदयति-नो तं समयम् उष्णपरीषहं वेदयति, यं समयम् उष्णपरीषहं वेदयति-नो तं समयं शीतपरीषहं वेदयति यं समयं चर्यापरीषहं वेदयति-नो तं समयं

ज्ञानावरण से लेकर अंतरायकर्म तक सभी परीषहों के कारण विद्यमान होते हैं, अतएव उनमें से प्रत्येक के बाईसों परीषह हो सकते हैं ।

भगवतीसूत्र के शतक ८, उद्देशक ८, में कहा है-'भगवन् ! सात कर्मप्रकृतियों का बन्ध करने वाले को कितने परीषह कहे गए हैं ?'

'गौतम ! बाईस परीषह कहे गए हैं । उनमें से एक साथ बीस का वेदन हो सकता है, क्योंकि जिस समय शीतपरीषह वेदा जाता है, उस समय उष्णपरीषह नहीं वेदा जा सकता और जिस समय उष्णपरीषह वेदा जाता है उस समय शीतपरीषह नहीं वेदा जा सकता । इसी प्रकार जिस समय चर्या परीषह का वेदन होता है उस

વાળાઓમાં, જ્ઞાનાવરણથી લઈને અન્તરાય કર્મ સુધી બધા પરીષહોના કારણ હાજર હોય છે આથી તેમનામાંથી પ્રત્યેકના બાવીસ પરીષહો હોઈ શકે છે.

ભગવતીસૂત્રના શતક ૮, ઉદ્દેશક ૮, માં કહ્યું છે-ભગવન્ ! સાત કર્મપ્રકૃતિઓ બાંધનારાના કેટલા પરીષહ કહેવામાં આવ્યા છે ? ઉત્તર-"ગૌતમ ! બાવીસ પરીષહ કહેવામાં આવ્યા છે-તેમાંથી એકી સાથે વીસનું વેદન થઈ શકે છે, કારણ કે જે સમયે શીતપરીષહ અનુભવાય છે તે સમયે ઉષ્ણપરીષહ અનુભવી શકાતો નથી અને જ્યારે ઉષ્ણપરીષહ અનુભવાય છે ત્યારે શીતપરીષહ અનુભવી શકાતો નથી. આવી જ રીતે જ્યારે ચર્યાપરીષહ

निषद्यापरीषहं वेदयति, यं समयं निषद्या परीषहं वेदयति–नो तं समयं चर्या परीषहं वेदयति, गौतम ! द्वाविंशति परीषहाः प्रज्ञप्ताः ? ।११।

मूलम्–नाणावरणिज्जोदए पण्णा अण्णाण परीसहा ॥१२॥

छाया–ज्ञानावरणीयोदये प्रज्ञा-ऽज्ञानपरीषहौ–' ॥१२

तत्त्वार्थदीपिका–पूर्वं तावत्–बादरसम्पराये स्थूलक्रोधादिकषाययुक्ते प्रमत्तसंयतादौ खलु क्षुत्पिपासादयो द्वाविंशतिः परीषहा भवन्तीति प्रतिपादितम् सम्प्रति–ज्ञानावरणयुक्ते संयते प्रज्ञापरीषहा–ऽज्ञानपरीषहो भवत इति प्रतिपाद-

---

समय निषद्या परीषह का वेदन नहीं हो सकता और जिस समय निषद्यापरीषह का वेदन होता है उस समय चर्यापरीषह का वेदन नहीं हो सकता।

'भगवन्! आठों कर्मप्रकृतियों का बन्ध करने वाले को कितने परीषह कहे गए हैं ?' 'गौतम ! बाईस परीषह कहे गए हैं' ॥११॥

'नाणावरणिज्जोदए पण्णा' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—ज्ञानावरणीय कर्म के होने पर प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होते हैं ॥१२॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले बतलाया जा चुका है कि बादर कषायवाले प्रमत्तसंयत आदि में क्षुधा पिपासा आदि बाईसों परीषह होते हैं। अब कौन सा परीषह किस कर्म के निमित्त से होता है, यह प्रति-

---

હોય ત્યારે નિષદ્યાપરીષહ હોઇ શકે નહીં એવી જ રીતે નિષદ્યાપરીષહ અનુભવાય ત્યારે ચર્યાપરીષહની ગેરહાજરી હોય છે.

'ભગવન્ ! આઠે કર્મપ્રકૃતિઓ બાંધનારને કેટલા પરીષહ કહેવામાં આવ્યા છે ?' ગૌતમ ! બાવીસ પરીષહ કહેવામાં આવ્યા છે ॥૧૧॥

'ણાણાવરણિજ્જોદએ' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—જ્ઞાનાવરણ કર્મ હોય ત્યારે પ્રજ્ઞા અને અજ્ઞાનપરીષહ હોય છે ॥૧૨॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—આની અગાઉ કહેવાઇ ગયું છે કે બાદર કષાયવાળા પ્રમત્તસંયત આદિમાં ક્ષુધા પિપાસા વગેરે બાવીસે-બાવીસ પરીષહ હોય છે. હવે કયા પરીષહ કયા કર્મના નિમિત્તથી થાય છે, એ પ્રતિપાદન કરીતા થકા સર્વપ્રથમ જ્ઞાનાવરણ કર્મના નિમિત્તથી થનારા પરીષહોનું વર્ણન કરીએ છીએ-

यितुमाह-'णाणावरणिज्जोदए पण्णा-अण्णाण परीसहा-' इति, ज्ञानावरणीयोदये ज्ञानावरणीये कर्मणि सति मुनेः प्रज्ञाऽज्ञानपरीषहौ भवतः ॥१२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं खलु-स्थूल क्रोधादिकषाययुक्ते बादरसम्पराये प्रमत्तसंयतादौ क्षुत्पिपासादयो द्वाविंशतिः परीषहा भवन्तीति प्रतिपादितम्, सम्प्रति-ज्ञानावरणविशिष्टे मुनौ प्रज्ञा-ऽज्ञानपरीषहौ भवत इति प्रतिपादयितुमाह-'नाणावरणिज्जोदए पण्णा-अण्णाण परीसहा-' इति, ज्ञानावरणोदये-ज्ञानस्या-ऽऽवरणं ज्ञानावरणम् तस्योदये ज्ञानावरणीये कर्मणि सति प्रज्ञाऽज्ञानपरीषहौ, प्रज्ञापरीषहो-ऽज्ञान परीषहश्च सम्भवतः एवञ्च-ज्ञानावरणीय कर्मोदये सति प्रज्ञाऽज्ञानपरीषहौ भवतः। तथा चोक्तम्-व्याख्याप्रज्ञप्तौ श्री-

---

पादन करते हुए सर्व प्रथम ज्ञानावरण कर्म के निमित्त से होने वाले परीषहों का वर्णन करते हैं-

ज्ञानावरणीय कर्म के निमित्त से प्रज्ञा और अज्ञान परीषह उत्पन्न होते हैं अर्थात् ज्ञानावरण कर्म की सत्ता होने पर मुनि को उक्त दो परीषह होते हैं ॥१२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले यह प्रतिपादन किया गया है कि बादर सम्पराय अर्थात् स्थूल कषायवाले प्रमत्तसंयत आदि में क्षुधा पिपासा आदि बाईस परीषह होते हैं, अब किस कर्म के निमित्त से कौन-कौन से परीषह होते हैं, यह बतलाते हैं और अनुक्रम में सर्व प्रथम ज्ञानावरण कर्म जनित परीषहों का उल्लेख करते हैं-

ज्ञानावरणीय कर्म के निमित्त से प्रज्ञा और अज्ञान परीषह उत्पन्न होते हैं। ज्ञान के आवरण को ज्ञानावरण कहते हैं, उस की विद्यमानता में अर्थात् ज्ञानावरण के होने पर प्रज्ञा और अज्ञान परी-

---

જ્ઞાનાવરણીય કર્મના નિમિત્તથી પ્રજ્ઞા અને અજ્ઞાનપરીષહ ઉત્પન્ન થાય છે, અર્થાત્ જ્ઞાનાવરણ કર્મનો પ્રભાવ હોવાથી મુનિને ઉક્ત બે પરીષહ હોય છે. ॥૧૨॥

તત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા એ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું કે બાદર સમ્પરાય અર્થાત્ સ્થૂળ કષાયવાળા પ્રમત્તસંયત વગેરેમાં ક્ષુધા પિપાસા વગેરે બાવીસ પરીષહ હોય છે, હવે કયા કર્મના નિમિત્તથી કયા-કયા પરીષહ થાય છે એ બતાવીએ છીએ અને અનુક્રમમાં સર્વપ્રથમ જ્ઞાનાવરણ કર્મ જનિત પરીષહોનો ઉલ્લેખ કરીએ છીએ-

જ્ઞાનાવરણીય કર્મના નિમિત્તથી પ્રજ્ઞા અને અજ્ઞાન પરીષહ ઉત્પન્ન થાય છે. જ્ઞાનના આવરણને જ્ઞાનાવરણ કહે છે, તેની વિદ્યમાનતામાં અર્થાત્

भगवतीसूत्रे ८-शतके ८-उद्देशके-'नाणावरणिज्जे णं भंते ? कम्मे कइ-परिसहा समोयरंति-? गोयमा-! दो परीसहा समोयरंति, तं जहा-पन्नापरीसहे नाणपरीसहे य'-इति. ज्ञानावरणीये खलु भदन्त-! कर्मणि कति परीषहाः समुदीर्यन्ते-? गौतम-! द्वौ परीषहौ समुदीर्येते, तद्यथा-प्रज्ञापरीषहो-ज्ञानपरीषहश्चेति । अयमेनाऽज्ञानपरीषहत्वेन सर्वत्र व्यवह्रियते ॥१२॥

मूलम्-दंसणमोहणिज्जालाभंतराएसु दंसणालाभा परीसहा ॥१३॥

छाया-दर्शन मोहनीयलाभान्तराययो दर्शनालाभौ परीषहौ ॥१३॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वसूत्रे ज्ञानावरणयुक्ते मुनौ प्रज्ञाऽज्ञानपरीषहौ प्ररूपितौ सम्प्रति-दर्शनमोहनीयान्तरायवति संयते श्रमणे-दर्शनालाभपरीषहौ प्ररूपयितु-माह-'दंसणमोहणिज्ज लाभंतराएसु दंसणालाभपरीसहा-'इति, दर्शन मोहनीय लाभान्तराययोः-दर्शनमोहनीय कर्मणि. लाभान्तरायकर्मणि च यथा

षह होते हैं। श्रीभगवतीसूत्र के आठवें शतक के उद्देशक आठवें में कहा है-

प्रश्न—भगवन् ! ज्ञानावरण कर्म के होने पर कितने परीषह होते हैं ?

उत्तर—गौतम ! दो परीषह होते हैं-प्रज्ञापरीषह और ज्ञानपरीषह । यह ज्ञानपरीषह ही अन्यत्र अज्ञानपरीषह कहलाता है ॥१२॥

'दंसण मोहणिज्जं' इत्यादि ।

दर्शन मोहनीय और लाभान्तराय कर्म के निमित्त से दर्शन परीषह और अलाभ परीषह उत्पन्न होते हैं ॥१३॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्व सूत्र में ज्ञानावरण के उदय से संयमी मुनि में प्रज्ञा और अज्ञान नामक दो परीषहों का प्ररूपण किया गया, अब दर्शनमोह और अन्तराय कर्म के उदय से श्रमण में दर्शन और

જ્ઞાનાવરણ હોવાથી પ્રજ્ઞા અને અજ્ઞાનપરીષહ થાય છે. ભગવતીસૂત્રના આઠમાં શતકના આઠમાં ઉદ્દેશકમાં કહેવામાં આવ્યું છે-

પ્રશ્ન—ભગવન્ ! જ્ઞાનાવરણ કર્મ હોય ત્યારે કેટલા પરીષહ હોય છે ?

ઉત્તર—બે પરીષહ હોય છે પ્રજ્ઞાપરીષહ અને જ્ઞાનપરીષહ આ જ્ઞાન-પરીષહ જ અન્યત્ર અજ્ઞાનપરીષહ કહેવાય છે. ॥૧૨॥

'દંસણ મોહણિજ્જા' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—દર્શનમોહનીય અને લાભાન્તરાય કર્મના નિમિત્તથી દર્શન પરીષહ અને અલાભપરીષહ ઉત્પન્ન થાય છે. ॥૧૩॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં જ્ઞાનાવરણના ઉદયથી સંયમી મુનિમાં પ્રજ્ઞા અને અજ્ઞાન નામના બે પરીષહોનું પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે દર્શનમોહ અને અન્તરાય કર્મના ઉદયથી શ્રમણમાં દર્શન તેમજ અલાભ

संख्यं दर्शनालाभपरीषहौ दर्शनपरीषहः-अलाभपरीषहश्च भवतः। तत्र-दर्शन मोहनीयकर्मवति संयते मुनौ दर्शनपरीषहः सोढव्यो भवति। एवञ्च-दर्शन मोहनीय कर्मप्रकृतेः-लाभान्तराय कर्मप्रकृतेश्च, क्रमशो दर्शनपरीषहः अलाभपरीषहश्च कार्योऽवगन्तव्यः। एतावता-दर्शनमोहनीय कर्मणा दर्शनपरीषहः, लाभान्तराय कर्मणाचालाभपरीषहो जन्यते इति फलितम् ॥१३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पूर्वं तावद्-ज्ञानावरणीयकर्मणा प्रज्ञाऽज्ञानपरीषह द्वयं जन्यते, इति प्रतिपादितम्, सम्प्रति दर्शनमोहनीय कर्मणा लाभान्तरायकर्मणा

अलाभ परीषहों के होने की प्ररूपणा करते हैं—

दर्शनमोहनीय और लाभान्तराय कर्म के निमित्त से दर्शन और अलाभ परीषह होते हैं अर्थात् दर्शनमोहनीय कर्म और अन्तराय कर्म के होने पर यथाक्रम दर्शन और अलाभ परीषह होते हैं। तात्पर्य यह है कि दर्शनमोहनीय कर्म वाले संयत को दर्शनपरीषह और लाभान्तरायकर्मवाले श्रमण को अलाभपरीषह होता है। इस प्रकार दर्शनपरीषह दर्शनमोहनीय का कार्य है और अलाभपरीषह लाभान्तराय का कार्य है। फलितार्थ यह है कि दर्शनमोह कर्म से दर्शनपरीषह और लाभान्तराय कर्म से अलाभ परीषह की उत्पत्ति होती है ॥१३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पहले प्रतिपादन किया गया है कि ज्ञानावरण कर्म के निमित्त से प्रज्ञा और अज्ञान परीषहों की उत्पत्ति होती है, अब दर्शनमोहनीय कर्म से और लाभान्तराय कर्म से क्रमशः दर्शनपरीषह और अलाभपरीषह उत्पन्न होते हैं, यह प्रतिपादन करते हैं—

પરીષહો હોવાનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ—

દર્શનમોહનીય અને લાભાન્તરાય કર્મના નિમિત્તથી દર્શન અને અલાભ-પરીષહ થાય છે અર્થાત્ દર્શનમોહનીય કર્મ અને અન્તરાય કર્મની હાજરી હોવાથી યથાક્રમ દર્શન અને અલાભ પરીષહ હોય છે તાત્પર્ય એ છે કે દર્શનમોહનીય કર્મવાળા સંયતને દર્શન પરીષહ અને લાભાન્તરાય કર્મવાળા શ્રમણને અલાભ પરીષહ હોય છે. આ રીતે દર્શનપરીષહ દર્શન મોહનીયનું કાર્ય છે અને અલાભપરીષહ લાભાન્તરાયનું કાર્ય છે. સારાંશ એ છે કે દર્શનમોહ કર્મથી દર્શનપરીષહ અને લાભાન્તરાય કર્મથી અલાભપરીષહની ઉત્પત્તિ થાય છે. ॥૧૩॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—અગાઉ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું કે જ્ઞાનાવરણ કર્મના નિમિત્તથી પ્રજ્ઞા અને અજ્ઞાનપરીષહોની ઉત્પત્તિ થાય છે, હવે દર્શનમોહનીય કર્મથી અને લાભાન્તરાય કર્મથી ક્રમશઃ દર્શનપરીષહ અને અલાભપરીષહ ઉત્પન્ન થાય છે—એ પ્રતિપાદન કરીએ છીએ—

च क्रमशो–दर्शनपरीषहोऽलाभपरीषहश्च जन्यते इति प्रतिपादयितुमाह–'दंसण मोहणिज्ज लाभंतराएसु दंसणालाभा परीसहा' इति दर्शनमोहनीय–लान्तराययो दर्शनमोहनीय कर्मणि लाभान्तरायकर्मणि च यथाक्रमं–दर्शनपरीपहोऽलाभपरीपहश्च संजायते। तथा च–दर्शनमोहनीयकर्मोदये सति दर्शन परीपहो भवति, लाभान्तरायकर्मोदये चाऽलाभपरीपहो भवतीति भावः। उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ श्रीभगवती सूत्रे ८–शतके ८–उद्देशके–'दंसण मोहणिज्जेणं भंते! कम्मे कइ परीसहा समोयरंति–? गोयमा–! एगे दंसणपरीसहे समोयरइ, अंतराएणं भंते! कम्मे कइ परीसहा समोयरंति–? गोयमा–! एगे अलाभपरीसहे समोयरइ' इति। दर्शनमोहनीय खलु भदन्त! कर्मणिकति परीषहाः समुदीर्यन्ते? गौतम–! एको दर्शनपरीषहः समुदीर्यते, अन्तराये खलु भदन्त! कति परीषहाः समुदीर्यन्ते? गौतम! एकोऽलाभपरीषहः समुदीर्यते, इति। एवञ्च–दर्शनमोहनीय कर्मवति संयते मुनौ दर्शनपरीषहः सोढव्यो भवति, लान्तरायकर्मवति च संयतेऽलाभपरीषहः सोढव्यः॥१३॥

दर्शनमोहनीय कर्म और लाभान्तराय कर्म के होने पर अनुक्रम से दर्शनपरीषह और अलाभपरीषह होते हैं, इस प्रकार दर्शनमोहनीय कर्म का उदय होने पर दर्शनपरीषह होता है और लाभान्तराय कर्म का उदय होने पर अलाभपरीषह होता है। श्री भगवतीसूत्र के आठवें शतक के आठवें उद्देशक में कहा है–

प्रश्न—दर्शनमोहनीय कर्म के होने पर भगवन्! कितने परीषह होते हैं?

उत्तर–गौतम! एक दर्शनपरीषह उत्पन्न होता है।

प्रश्न–भगवन्! अन्तराय कर्म के होने पर कितने परीषह होते हैं?

उत्तर–गौतम! एक अलाभपरीषह उत्पन्न होता है।

દર્શનમોહનીય કર્મ અને લાભાન્તરાય કર્મ હોય, ત્યારે અનુક્રમથી દર્શનપરીષહ અને અલાભપરીષહ થાય છે, આવી રીતે દર્શનમોહનીય કર્મનો ઉદય થવાથી અલાભપરીષહ થાય છે. શ્રી ભગવતીસૂત્રના આઠમાં શતકના આઠમાં ઉદ્દેશકમાં કહ્યું છે–

પ્રશ્ન—દર્શનમોહનીય કર્મ હોવાથી, ભગવન્! કેટલા પરીષહ હોય છે?

ઉત્તર—ગૌતમ! એક દર્શનપરીષહ ઉત્પન્ન થાય છે.

પ્રશ્ન—ભગવન્! અન્તરાય કર્મ હોય ત્યારે કેટલા પરીષહ હોય છે?

ઉત્તર—ગૌતમ! એક અલાભપરીષહ ઉત્પન્ન થાય છે.

मूलम्—चरित्तमोहणिज्जे सत्त परीसहा, अचेल अरइआइ भेयओ ॥१४॥

छाया—चारित्रमोहनीये सप्तपरीषहा, अचेला रत्यादि भेदतः ॥१४॥

तत्त्वार्थदीपिका—'दर्शनमोहनीयकर्मणि लाभान्तरायकर्मणि च क्रमशो दर्शनपरीषहः, अलाभपरीषहश्च प्ररूपितः सम्पति–चारित्रमोहनीय कर्मणि अचेलारत्यादीन्' सप्तपरीषहान् प्ररूपयितुमाह–'चरित्तमोहणिज्जे सत्त परीसहा अचेल–अरइयाइ भेयओ' इति चारित्रमोहनीये कर्मणि=चारित्रमोहनीय कर्मोदये सप्त संख्यकाः परीषहा भवन्ति, तद्यथा–अचेलअरत्यादि भेदतः अचेलः अरतिः–२ आदिना–स्त्री– ३ निषद्या–४ आक्रोशः–५ याचना ६ सत्कार पुरस्कार

इस प्रकार दर्शनमोह कर्म से युक्त मुनि को दर्शनपरीषह और लाभान्तराय कर्म वाले मुनि को अलाभ परीषह सहना पडता है ।१३।

'चरित्तमोहणिज्जे' इत्यादि

सूत्रार्थ—चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से अचेल, अरति आदि सात परीषह उत्पन्न होता है ॥१४॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्व सूत्र में प्रतिपादन किया गया है कि दर्शन-मोहनीय और लाभान्तराय कर्म के निमित्त से दर्शन परीषह और अलाभपरीषह उत्पन्न होते हैं, अब चारित्रमोहनीय कर्म के निमित्त से होनेवाले अचेल, अरति आदि सात परीषहों की प्ररूपणा करते हैं–

चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से अचेल अरति आदि सात परीषह होते हैं, जो इस प्रकार हैं–(१) अचेल (२) अरति (३) स्त्री

આ રીતે દર્શનમોહ કર્મથી યુકત મુનિને દર્શનપરીષહ અને લાભાન્તરાય કર્મવાળા મુનિને અલાભપરીષહ સહન કરવો પડે છે. ॥૧૩॥

'चरित्तमोहणिज्जे सत्तपरीसहा' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—ચારિત્ર મોહનીય કર્મના ઉદયથી અચેલ, અરતિ આદિ સાત પરીષહ ઉત્પન્ન થાય છે. ॥૧૪॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું કે દર્શન મોહનીય અને લાભાન્તરાય કર્મના નિમિત્તથી દર્શનપરીષહ અને અલાભપરીષહ ઉત્પન્ન થાય છે, હવે ચારિત્ર મોહનીય કર્મના નિમિત્તથી થનારા અચેલ, અરતિ આદિ સાત પરીષહોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ–

ચારિત્ર મોહનીય કર્મના ઉદયથી અચેલ, અરતિ આદિ સાત પરીષહ થાય છે જે આ પ્રમાણે છે-(૧) અચેલ (૨) અરતિ (૩) સ્ત્રી (૪) નિષદ્યા

श्च ७ त्येवं सप्तपरीषहा अवगन्तव्या तथा च-चरित्रमोहनीयकर्मोदयेन अचेलपरीषहः अरतिपरिषहः स्त्रीपरीषहः, निषद्यापरीषहः आक्रोशपरीषहः याचनापरिषहः सत्कारपुरस्कारपरीषहश्च संजायते अथ पुंवेदोदयादिहेतुकत्वात् अचेलाऽरतिस्त्र्याक्रोश याचना सत्कार पुरस्काराणां मोहोदय हेतुकत्वेऽपि निषद्यायाः कथं मोहोदय हेतुकत्वमितिचेत्-? अत्रोच्यते-चारित्रमोहोदये सति प्राणिपीडा परिणामस्य संजायमानतया प्राणिपीडा परिहारार्थत्वेन निषद्यायाः अपि मोहनीय निमित्तकत्वं सम्भवति । तथा च-निषीदन्ति-उपविशन्ति यस्यां सा निषद्या-उपवेशनादिभूमि रिति रीत्या चारित्रमोहनीय कर्मोदये सति भयोदयात्तत्स्थाना सेवित्वरूपो निषद्यापरीषहो भवति ॥१४॥

(४) निषद्या (५) आक्रोश (६) याचना (७) सत्कार पुरस्कार । इस प्रकार चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से अचेलपरीषह, अरतिपरीषह, स्त्री परीषह, निषद्यापरीषह, आक्रोशपरीषह, याचनापरीषह, और सत्कार पुरस्कारपरीषह उत्पन्न होते हैं ।

शंका-अचेल, अरति, स्त्री, आक्रोश, याचना और सत्कार पुरस्कार पुरुषवेद आदि के उदय से होते हैं, इस कारण उन्हें मोहोदय हेतुक कहा जा सकता है, मगर निषद्यापरीषह को मोहोदय हेतुक कैसे कह सकते हैं ?

समाधान-चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से प्राणियों को पीडा पहुंचाने का परिणाम उत्पन्न होता है और निषद्या प्राणिपीड़ा का परिहार करने के लिए है, अतएव उसे मोहनिमित्तक कह सकते हैं । जिसमें निषीदन-उपवेशन अर्थात् ठहरना-बैठना आदि क्रिया जाय वह निषद्या कहलाती है । चारित्रमोहनीय कर्म का उदय होने पर भय के

(૫) આક્રોશ (૬) યાચના (૭) સત્કાર પુરસ્કાર આ રીતે ચારિત્ર મોહનીય કર્મના ઉદયથી અચેલપરીષહ, અરતિપરીષહ, સ્ત્રીપરીષહ નિષદ્યાપરીષહ, આક્રોશપરીષહ, યાચનાપરીષહ અને સત્કાર પુરસ્કાર પરીષહ ઉત્પન્ન થાય છે.

શંકા-અચેલ, અરતિ, સ્ત્રી, આક્રોશ, યાચના અને સત્કાર પુરસ્કાર પુરૂષવેદ આદિના ઉદયથી થાય છે આથી તેમને મોહોદય હેતુક કહી શકાય છે, પરન્તુ નિષદ્યાપરીષહને મોહોદયહેતુક કેવી રીતે કહી શકાય ?

સમાધાન-ચારિત્ર મોહનીય કર્મના ઉદયથી પ્રાણિઓને દુઃખ પહોંચાડવાનું પરિણામ ઉત્પન્ન થાય છે અને નિષદ્યા પ્રાણિપીડાનો પરિહાર કરવા માટે છે, આથી તેને મોહ નિમિત્તક કહી શકીએ છીએ. જેમાં નિષીદન-ઉપવેશન અર્થાત્ રોકાવું બેસવું વગેરે કરવામાં આવે તે નિષદ્યા કહેવાય

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावद्-दर्शनमोहनीय लाभान्तराये कर्मणि च उदिते सति क्रमशः दर्शनपरीषहः, अलाभपरीषहश्च भवतीति प्रतिपादितम्, सम्प्रति-चारित्रमोहनीयकर्मोदये सति सप्तपरीषहा भवन्तीति तान परीषहान प्रतिपादयितुमाह-'चरित्तमोहणिज्जे सत्त परीसहा अचेलारइयाइ भेयओ-'इति, चारित्रमोहनीये चारित्रमोहनीयकर्मोदये सति सप्तपरीषहा भवन्ति। तद्यथा अचेलारत्यादिभेदतः-अचेलो-१ ऽरति-२ आदिना-स्त्री-३ निषद्या-४ ऽऽक्रोशो-५ याचना-६ सत्कारपुरस्कारश्चे-७ त्येते सप्तपरीषहा भवन्ति। तत्र-दर्शनमोहनीयभिन्नं चारित्रमोहनीयं कर्म, चारित्रं तावद् मूलोत्तरगुणसम्पन्नत्वम् तस्य मोहनात्-पराङ्मुखत्वात् चारित्रमोहनीयमुच्यते, तथाविध चारित्रमोहनीयोदये सति-अरत्यादयः सप्तपरीषहा भवन्ति। तत्र जुगु-

---

उदय से उस स्थान का सेवन किया जाता है, अतएव निषद्यापरीषह मोहहेतुक है ॥१४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले बतलाया गया है कि दर्शनमोहनीय और लाभान्तराय कर्म का उदय होने पर क्रम से दर्शनपरीषह और अलाभपरीषह होते हैं, अब चारित्र मोहनीय कर्म से सात परीषह होते हैं, अतएव उनका प्रतिपादन करने के लिए कहते हैं-

चारित्रमोहनीय कर्म का उदय होने पर सात परीषह होते हैं। वे इस प्रकार हैं-(१) अचेल (२) अरति (३) स्त्री (४) निषद्या (५) आक्रोश (६) याचना और (७) सत्कार पुरस्कार। चारित्रमोहनीयकर्म दर्शनमोहनीय से भिन्न है। मूलगुणों और उत्तरगुणों से सम्पन्नता होना चारित्र कहलाता है, उसका निरोध करने वाला कर्म चारित्रमोहनीय

છે. ચારિત્ર મોહનીય કર્મના-ઉદયની ભયના ઉદયથી તે સ્થાનનું સેવન કરવામાં આવે છે આથી નિષદ્યાપરીષહ મોહહેતુક છે ॥૧૪॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા બતાવવામાં આવ્યું છે કે દર્શનમોહનીય અને લાભાન્તરાય કર્મનો ઉદય થવાથી ક્રમથી દર્શનપરીષહ અને અલાભપરીષહો થાય છે હવે ચારિત્ર મોહનીય કર્મના ઉદયથી સાત પરીષહ થાય છે, આથી તેમનું પ્રતિપાદન કરવા માટે કહીએ છીએ-

ચારિત્ર મોહનીય કર્મનો ઉદય થવાથી સાત પરીષહ થાય છે તે આ પ્રમાણે છેઃ-(૧) અચેલ (૨) અરતિ (૩) સ્ત્રી (૪) નિષદ્યા (૫) આક્રોશ (૬) યાચના (૭) સત્કારપુરસ્કાર ચારિત્રમોહનીય કર્મ દર્શનમોહનીયથી ભિન્ન છે મૂળગુણો અને ઉત્તરગુણોથી સમ્પન્નતા હોવી ચારિત્ર કહેવાય છે, તેનો નિરોધ કરનાર કર્મ ચારિત્રમોહનીય છે. આ ચારિત્રમોહનીય કર્મનો ઉદય થવાથી

मोदयादचेलपरीषहः, अरत्युदयादरतिपरीषहः उच्यते, स्त्रीवेदोदयात्-स्त्रीपरीषहः भयोदयात्स्थानाऽसेवित्वलक्षणो निषद्यापरीषहः क्रोधोदयाद्-आक्रोशपरीषहः, मानोदयाद्-याञ्चापरीषहः लोभोदयात्-सत्कारपुरस्कारपरीषहः सम्भवति। तथाचोक्तं व्याख्याप्रज्ञप्तौ भगवतीसूत्रे ८-शतके ८-उद्देशके-'चरित्तमोहणिज्जेणं भंते! कम्मे कइ परिसहा समोयरंति? गोयमा! सत्तपरीसहा समोयरंति तं जहा-अरती अचेल इत्थी निसीहिया जायणा य अक्कोसे सक्कारपुरक्कारे चरित्तमोहंमि सत्तेते' ॥१॥ इति, चारित्रमोहनीये खलु भदन्त! कर्मणि कति परीषहाः समवतरन्ति? गौतम! सप्तपरीषहाः समवतरन्ति, तद्यथा-'अरति, रचेलः स्त्री, निषद्या, याचना, च-आक्रोशः सत्कार पुरस्कार श्चारित्रमोहे सप्तैते। १॥ इति ॥१४॥

है। इस चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से अरति आदि सात परीषह होते हैं। जुगुप्सा मोह कर्म के उदय से अचेल परीषह होता है, अरति कर्म के उदय से अरतिपरीषह होता है, पुरुषवेद के उदय से स्त्रीपरीषह होता है, भय के उदय से स्थान का सेवन रूप निषद्यापरीषह होता है, क्रोध के उदय से आक्रोशपरीषह होता है, मान के उदय से याचनापरीषह होता है और लोभ के उदय से सत्कार पुरस्कार परीषह उत्पन्न होता है।

भगवतीसूत्र के शतक ८ के उद्देशक ८ में कहा है-'भगवन्! चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से कितने परीषह होते हैं?

उत्तर-हे गौतम! सात परीषह उत्पन्न होते हैं, वे यह हैं-(१) अरति, अचेल, स्त्री, निषद्या, याचना और आक्रोश। चारित्रमोहनीय कर्म के होने पर ये सात परीषह होते हैं ॥१४॥

અરતિ વગેરે સાત પરીષહ થાય છે. જુગુપ્સા મોહ કર્મના ઉદયથી અચેલ પરીષહ થાય છે, અરતિકર્મના ઉદયથી અરતિપરીષહ થાય છે, પુરૂષવેદના ઉદયથી સ્ત્રીપરીષહ થાય છે, ક્રોધના ઉદયથી આક્રોશપરીષહ થાય છે, માનના ઉદયથી યાચનાપરીષહ થાય છે અને લોભના ઉદયથી સત્કારપુરસ્કારપરીષહ ઉત્પન્ન થાય છે.

ભગવતીસૂત્રના શતક ૮ના ઉદ્દેશક ૮માં કહ્યું છે-'ભગવન્! ચારિત્ર-મોહનીય કર્મના ઉદયથી કેટલા પરીષહ હોય છે?

ઉત્તર-'ગૌતમ! સાત પરીષહ ઉત્પન્ન થાય છે, તે આ રીતે-(૧) અરતિ (૨) અચેલ, (૩) સ્ત્રી (૪) નિષદ્યા (૫) યાચના (૬) આક્રોશ અને (૭) સત્કાર પુરસ્કાર ચારિત્ર મોહનીય કર્મનો ઉદય થવાથી આ સાત પરીષહ થાય છે. ॥૧૪॥

मूलम्—वेयणिज्जे सेसा एक्कारस परीसहा ॥१५॥

छाया-'वेदनीये शेषा एकादश परीषहाः-' ॥१५॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं सूत्रे-चारित्रमोहनीय कर्मोदयेनाऽचेल ऽरतिस्त्री-निषद्यादि सप्तपरीषहा भवन्तीति प्ररूपितम्, सम्प्रति-वेदनीयकर्मोदयेन शेषा-एकादश परीषहा भवन्तीति प्ररूपयितुमाह-'वेयणिज्जे सेसा एक्कारस परीसहा' इति। वेदनीये वेदनीयकर्मोदये सति शेषा एकादश परीषहा भवन्ति, आनुपूर्व्या क्षुत्पिपासा शीतोष्णदंशमशक परीषहाः चर्याशय्यावधरोगास्तृणस्पर्शौ मल इत्येवं षट्, संकलनया-एकादशपरीषहा भवन्ति। तथा च वेदनीयकर्मोदयेन क्षुत्पि-पासा-शीतोष्णदंशमशकचर्या-शय्या वध-रोगतृण--स्पर्श--मलपरीषहाः सम्भवन्तीति भावः ॥१५।

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावद्-ज्ञानावरणीय दर्शनमोहनीयचारित्रमोह-नीयकर्मोदयेन क्रमशः-प्रज्ञाऽज्ञानद्वयम्, दर्शनालाभद्वयम्, अचेलारत्यादयः

'वेयणिज्जे सेसा एक्कारस' इत्यादि।

सूत्रार्थ—शेष ग्यारह परीषह वेदनीयकर्म के उदय से होते हैं ॥१५॥

तत्त्वार्थदीपिका--पूर्वसूत्र में प्रतिपादन किया गया है कि चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से अचेल, अरति, स्त्री, निषद्या आदि सात परीषह होते हैं अब वेदनीय कर्म के उदय से होने वाले ग्यारह परी-षहों का प्रतिपादन करते हैं-

शेष ग्यारह परीषह वेदनीय कर्म का उदय होने पर उत्पन्न होते हैं। वे इस प्रकार हैं-(१) क्षुधा (२) पिपासा (३) शीत (४) उष्ण (५) दंशमशक (६) चर्या (७) शय्या (८) वध (९) रोग (१०) तृणस्पर्श और मल परीषह ॥१५॥

'वेयणिज्जे सेसा एक्कारसपरीसहा'

सूत्रार्थ–शेष અગીયાર વેદનીય કર્મના ઉદયથી થાય છે. ॥૧૫॥

તત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે કે ચારિત્ર મોહનીય કર્મના ઉદયથી અચેલ, અરતિ, સ્ત્રી, નિષદ્યા આદિ સાત પરીષહ થાય છે, હવે વેદનીય કર્મના ઉદયથી થનારા અગીયાર પરીષહોનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ-

શેષ અગીયાર પરીષહ વેદનીય કર્મનો ઉદય થવાથી ઉત્પન્ન થાય છે. તે આ પ્રમાણે છે-(૧) ક્ષુધા (૨) પિપસા (૩) શીત (૪) ઉષ્ણ (૫) (૫) દંશમશક (૬) ચર્યા (૭) શય્યા (૮) વધ (૧૦) તૃણસ્પર્શ અને ૧૧) મલપરીષહ. ॥૧૫॥

सप्तचेत्येकादश परीषहाः प्ररूपिताः सम्प्रति–वेदनीयकर्मोदयेन प्रज्ञाऽज्ञाना-द्येकादशपरीषहा अवशिष्टाः तानेकादश क्षुत्पिपासादीन् परीषहान् प्ररूपयितु-माह–'वेयणिज्जे सेसा एक्कारसपरीसहा–' इति, वेदनीये–वेदनीयकर्मोदये सति शेषा एकादश परीषहाः भवन्ति, तद्यथा–आनुपूर्व्या–क्षुत्पिपासा–शीतोष्ण दंशमशकाख्याः पञ्चपरीषहाः,, चर्या–शय्या–वध–रोग=तृणस्पर्शमलाख्याः षट्, इत्येवं रीत्या–एकादशपरीषहा भवन्ति। एवञ्च–पूर्वोक्तेभ्यः प्रज्ञाऽज्ञानदर्शना-ऽलाभाऽचेलाऽरति स्त्रीनिषद्याऽऽक्रोश–याचना–सत्कार पुरस्कारेभ्य एकादश परीषहेभ्योऽवशिष्टाः क्षुत्पिपासा–शीतोष्ण–दंशमशक–चर्या–शय्या–वध रोग–

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले ज्ञानावरणीय, दर्शनमोहनीय, चारित्र-मोहनीय और अन्तराय कर्म के निमित्त से होने वाले प्रज्ञा, अज्ञान, दर्शन, अलाभ, अचेल, अरति आदि ग्यारह परीषह कहे गए हैं, अब वेदनीय कर्म के उदय से होने वाले अवशिष्ट क्षुधा पिपासा आदि परीषहों की प्ररूपणा करते हैं–

वेदनीय कर्म का उदय होने पर शेष ग्यारह परीषह होते हैं। वे अनुक्रम से इस प्रकार हैं–क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, ये पांच तथा चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल, ये छह, इस प्रकार ग्यारह परीषह होते है। इस प्रकार पूर्वोक्त प्रज्ञा, अज्ञान, दर्शन, अलाभ, अचेल, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार पुरस्कार, इन ग्यारह परीषहों से शेष बचे हुए क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનમોહનીય, ચારિત્રમોહનીય અને અન્તરાય કર્મના નિમિત્તથી થનારા પ્રજ્ઞા, અજ્ઞાન, દર્શન અલાભ, અચેલ, અરતિ આદિ અગીયાર પરીષહોનું વિવેચન કરવામાં આવ્યું છે હવે વેદનીય કર્મના ઉદયથી થનારા અવશિષ્ટ ક્ષુધા પિપાસા આદિ પરીષહોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ–

વેદનીય કર્મનો ઉદય થવાથી બાકીના અગીયાર પરીષહ થાય છે તે આ પ્રમાણે છે–અનુક્રમથી ક્ષુધા, પિપાસા, શીત, ઉષ્ણ, દંશમશક એ પાંચ, તથા ચર્યા, શય્યા, વધ, રોગ, તૃણસ્પર્શ અને મલ એ છ.–આ પ્રમાણે અગીયાર પરીષહ થાય છે આ રીતે પૂર્વોક્ત પ્રજ્ઞા, અજ્ઞાન, દર્શન અલાભ, અચેલ, અરતિ, સ્ત્રી, નિષદ્ય, આક્રોશ, યાચના અને સત્કારપુરસ્કાર આ અગીયાર પરીષહોમાંથી બાકી રહી ગયેલા–ક્ષુધા, પિપાસા, શીત, ઉષ્ણ,

तृणस्पर्शमलरूपा एकादशपरीषहाः वेदनीयकर्मोदयेन सम्भवन्ति। एत एव क्षुत्पिपासादय एकादश परीषहा भगवति-तीर्थकृति-केवलिन्यपि सम्भवन्ति तस्य खलु जिनस्य घातिकर्मचतुष्टयविनाशे केवलं वेदनीयकर्मोदयस्यैव सम्भवात् इति पूर्वं निरूपितम्। तथा च-वेदनीयकर्मोदये सति क्षुत्पिपासादय एकादश परीषहा भवन्ति। उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ भगवतीसूत्रे ८-शतके ८ उद्देशके-'वेयणिज्जे णं भंते! कम्मे कइ परीसहा समोयरंति? गोयमा! एक्कारस परीसहा समोयरंति तं जहा 'पंचेव आणुपुव्वी, चरिया सेज्जा वहेय रोगेय। तणफास जल्ल मेवय, एक्कारस वेदणिज्जंमि' ॥१॥ इति वेदनीये खलु भदन्त! कर्मणि कति परीषहाः समवतरन्ति? गौतम! एकादश परीषहाः समवतरन्ति, तद्यथा-पञ्चैवाऽऽनुपूर्व्या, चर्या-शय्या-वधश्च रोगश्च। तृणस्पर्शो

और मल, ये ग्यारह परीषह वेदनीय कर्म के उदय से होते हैं। यही ग्यारह परीषह तीर्थंकर भगवान केवली में भी होते हैं, क्यों कि केवली भगवान् में चार घातिक कर्मों की सत्ता नहीं रहती, सिर्फ चार अघातिक कर्म ही रहते हैं। उनमें वेदनीय कर्म के उदय से उक्त ग्यारह परीषह होते हैं, यह पहले कहा जा चुका है। इस प्रकार वेदनीय कर्म का उदय होने पर ग्यारह परीषह होते हैं। भगवतीसूत्र के शतक ८, उद्देशक ८ में कहा है-

प्रश्न--भगवन्! वेदनीय कर्म के उदय से कितने परीषह होते हैं?

उत्तर--हे गौतम! ग्यारह परीषह उत्पन्न होते हैं, वे इस प्रकार हैं-पांच अनुक्रम से प्रारंभ के तथा चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श, और मल परीषह, ये छह मिलकर ग्यारह परीषह वेदनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होते हैं।

દંશમશક, ચર્યા, શય્યા, વધ, રોગ, તૃણસ્પર્શ અને મલ આ અગીયાર પરીષહ વેદનીય કર્મના ઉદયથી થાય છે. આ જ અગીયાર પરીષહ તીર્થંકર ભગવાન્ કેવળીમાં પણ હોય છે, કારણ કે કેવળી ભગવાનમાં ચાર ઘાતિ કર્મોનો પ્રભાવ રહેતો નથી, ફકત ચાર અઘાતિ કર્મ જ રહે છે. તેમાંથી વેદનીય કર્મના ઉદયથી ઉકત અગીયાર પરીષહ થાય છે એ તો અગાઉ કહેવામાં આવ્યું છે. આ રીતે વેદનીય કર્મનો ઉદય થવાથી અગીયાર પરીષહ હોય છે. ભગવતીસૂત્રમાં શતક ૮ ઉદ્દેશક ૮માં કહ્યું છે-

પ્રશ્ન-ભગવન્! વેદનીય કર્મના ઉદયથી કેટલા પરીષહ થાય છે?

ઉત્તર-ગૌતમ! અગીયાર પરીષહ ઉત્પન્ન થાય છે. તે આ રીતે પાંચ અનુક્રમથી શરૂઆતના તથા ચર્યા, શય્યા, વધ, રોગ, તૃણસ્પર્શ અને મલ પરીષહ એ બધાં મળીને અગીયાર પરીષહ વેદનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થાય છે.

मल एव च, एकादश वेदनीये-' इति ॥१॥ एवञ्च-ज्ञानावरणीयदर्शनमोहनीय चारित्रमोहनीयरूप घातिकर्मचतुष्टयोदये प्रज्ञाऽज्ञानादय एकादशपरीषहा, भवन्ति, वेदनीयकर्मोदयेतु क्षुत्पिपासादय एकादश परीषहा अवगन्तव्याः ॥१५॥

मूलम्—एक्कम्मि जीव जुगवं एगादि जाव एगूणवीसा परीसहा ।१६।

छाया—'एकस्मिन् जीवे युगपत् एकादियावदेकोनविंशतिः परीषहाः ।१६।

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावद्-व्यस्तसमस्तरूपेण क्षुत्पिपासादयो द्वाविंशतिः परीषहा यथायोग्यं क्वचिच्चतुर्दश क्वचिदेकादश, क्वचिद् द्वौ, क्वचित्सप्त, क्वचित्तु-द्वाविंशतिरपि, परीषहा भवन्तीति प्ररूपितम्, सम्प्रत्येकात्मनि युगपत्

इस प्रकार ज्ञानावरणीय, दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय और अन्तराय रूप चार घाति कर्मों के उदय से प्रज्ञा, अज्ञान आदि ग्यारह परीषह होते हैं और वेदनीय कर्म के उदय से क्षुधा पिपासा आदि ग्यारह परीषह होते हैं ॥१५॥

'इक्कम्मि जीव जुगवं एगादि' इत्यादि ।

सूत्रार्थ--एक जीव में एक साथ, एक से लेकर उन्नीस परीषह तक हो सकते हैं ॥१६॥

तत्त्वार्थदीपिका--पहले प्रतिपादन किया गया है कि व्यस्त और समस्त रूप से क्षुधा पिपासा आदि बाईस परीषह यथायोग्य कहीं चौदह, कहीं ग्यारह, कहीं दो, कहीं सात और कहीं बाईसों होते हैं, अब यह प्रतिपादन करते हैं कि एक जीव में, एक ही काल में, एक से लेकर उन्नीस परीषह तक हो सकते हैं-

---

આ રીતે જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનમોહનીય, ચારિત્રમોહનીય અને અન્તરાય રૂપ ચાર ઘન ઘાતી કર્મોના ઉદયથી પ્રજ્ઞા, અજ્ઞાન, આદિ અગીયાર પરીષહ થાય છે અને વેદનીય કર્મના ઉદયથી ક્ષુધા પિપાસા આદિ અગીયાર પરીષહ થાય છે. ॥૧૫॥

'इक्कम्मि जीव जुगवं एगादि' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—એક જીવમાં, એકી સાથે, એકથી લઈ ને ઓગણીસ પરીષહ સુધી હોઈ શકે છે. ॥૧૬॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું કે વ્યસ્ત અને સમસ્ત રૂપથી ક્ષુધા પિપાસા વગેરે બાવીસ પરીષહ યથાયોગ્ય કોઈ સ્થળે ચૌદ કોઈ જગાએ અગીયાર કયાંક સાત અને કોઈ સ્થળે બાવીસે-બાવીસ હોય છે, હવે એ પ્રતિપાદન કરીએ છીએ કે એક જીવમાં એક જ સમયે, એકથી માંડીને ઓગણીશ પરીષહ હોઇ શકે છે-

खलु एकत आरभ्य एकोनविंशतिपर्यन्तं परीषहाः सम्भवन्तीति प्ररूपयितुमाह— 'एकम्मि जीवे जुगवं' इत्यादि। एकस्मिन् जीवे युगपत्—एकदा एकादियावदे-कोनविंशतिः कदाचित्—क्षुत्पिपासादिषु कश्चिदेकः, कदाचिद् द्वौ, कदाचित्त्रयः, इत्येवं रीत्या—कदाचित् क्वचिद् एकोनविंशतिः परीषहाः सम्भवन्ति किन्तु—शीतोष्णपरीषहयोः परस्परविरुद्धत्वात् एकदैकात्मनि कश्चिदेक एव परीषहो भवेत्, एवं शय्या, निषद्या, चर्याणां मध्येऽपि एक एव परीषहः एकदैकात्मनि-स्यात् तासामपि तिसृणां परस्परं विरुद्धत्वात्। तथाचैतेषु पञ्चसु द्वयोरेव कयो-श्चिदेकात्मनि एकदा सम्भवेन तदन्येषां सप्तदशानां च क्षुत्पिपासादीनां मेळनेन

एक जीव में एक साथ एक से लेकर अधिक से अधिक उन्नीस परीषह तक हो सकते हैं। कदाचित् क्षुधा पिपासा आदि में से कोई एक ही होता है, कभी दो उत्पन्न हो जाते हैं, कभी तीन, इस प्रकार कभी अधिक से अधिक उन्नीस तक हो सकते हैं। एक साथ बाईसों परीषह किसी में नहीं हो सकते, क्यों कि परस्पर विरोधी परीषहों का एक साथ होना संभव नहीं है। जैसे-शीत और उष्ण परीषह परस्पर विरुद्ध हैं—जब शीतवेदना होती है तब उष्णवेदना नहीं हो सकती और जब उष्णवेदना होती है तो शीतवेदना नहीं हो सकती। इन दोनों में से कोई एक ही परीषह होता है।

इसी प्रकार शय्या, निषद्या और चर्या, इन तीन में से एक ही परीषह हो सकता है, क्यों कि ये भी परस्पर विरोधी हैं। इस प्रकार इन पांच परीषहों में से एक आत्मा में एक साथ कोई दो परीषह ही होते हैं। इन दोनों में शेष सतरह परीषह मिला देने से अधिक से

એક જીવમાં એકી સાથે એકથી લઇને વધુમાં વધુ ઓગણીસ પરીષહ સુધી હોઈ શકે છે. કદાચિત્ ક્ષુધા પિપાસા આદિમાંથી કોઈ એક જ હોય છે, કયારેક બે ઉત્પન્ન થાય છે તો કયારેક ત્રણ, આવી રીતે કયારેક વધુમાં વધુ ઓગણીસ સુધી હોઈ શકે છે. એકી સાથે બાવીસે-બાવીસ પરીષહ કોઈમાં પણ હોઇ શકતાં નથી કેમકે વિરોધી પરીષહોનું એકી સાથે રહેવું શકય નથી-જ્યારે શીતવેદના થાય છે. ત્યારે ઉષ્ણવેદના થઈ શકે નહીં આ બંનેમાંથી કોઈ એક જ પરીષહ હોય છે.

આવી જ રીતે શય્યા નિષધા અને ચર્યા આ ત્રણમાંથી એક જ પરીષહ હોઇ શકે છે કારણ કે આ પણ પરસ્પર વિરોધી છે. આ રીતે આ પાંચ પરીષહોમાંથી એક આત્મામાં એકી સાથે કોઇ બે પરીષહ જ હોય છે. આ બંનેમાં શેષ સત્તર પરીષહો ઉમેરી દેવાથી વધુમાં વધુ ઓગણીશ પરીષહ

एकादित एकोनविंशति पर्यन्तम् एकात्मनि एकदा परीषहाः सम्भवन्तीति एकोन विंशतिः क्षुत्पिपासादीनां परीषहाणां विकल्पा अवगन्तव्याः । शीतोष्णपरीषहयोरेकस्य शय्या निषद्या चर्या परीषहाणाञ्च मध्ये द्वयो र्व्यपगमेन मिलित्वा त्रयाणां परीषहाणामेकदा एकात्मनि व्यपगमात् । अथैवम् प्रज्ञाऽज्ञान परीषहयोरपि परस्परविरुद्धत्वा त्तयोरेकस्यैव परीषहस्य एकात्मनि एकदा सम्भवः इति चेत् ? अत्रोच्यते श्रुतज्ञानाऽपेक्षया प्रज्ञापरीषहस्य, अवधिज्ञानाऽपेक्षयाऽज्ञानपरीषहस्य चैकदैकात्मनि सम्भवेन तयोः परस्परविरुद्धत्वाभावात् विरोधो नास्तीतिभावः ।१६।

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः--पूर्वं तावत्-क्षुत्पिपासादीनां द्वाविंशति परीषहाणां मध्ये सूक्ष्मसम्पराय छद्मस्थ वीतरागयो श्चतुर्दशपरीषहाः, भगवति जिने-एकादशपरीषहाः इत्यादि, एवं रीत्या व्यस्तसमस्तरूपेण यथायथं प्रतिपादितम्,

---

अधिक उन्नीस परीषह एक साथ एक आत्मा में होते हैं-अर्थात् किसी को एक, किसी को दो, किसी को तीन, इस प्रकार उनीस परीषह तक होना संभव है ।

शंका--प्रज्ञा और अज्ञान परीषह भी परस्पर विरोधी हैं, अतएव इन दोनों में से भी एक साथ एक आत्मा में एक ही होना चाहिए ।

समाधान--प्रज्ञापरीषह श्रुतज्ञान की अपेक्षा और अज्ञान परीषह अवधिज्ञान की अपेक्षा से समझना चाहिए । ये दोनों परीषह एक आत्मा में एक साथ हो सकते हैं, अतः परस्पर विरोध नहीं हैं ।।१६।।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-क्षुधा पिपासा आदि बाईस परीषह में से सूक्ष्मसाम्पराय और छद्मस्थवीतराग में चौदह परीषह होते हैं, केवली अर्हन्त भगवान् में ग्यारह परीषह पाये जा सकते हैं, इत्यादि व्यस्त और समस्त रूप में प्रतिपादन किया गया है, अब यह प्रतिपादन करते

એક સાથે એક આત્મામાં હોય છે-અર્થાત્ કોઈને એક, કોઈને બે, કોઈને ત્રણ, એ રીતે ઓગણીશ પરીષહ સુધી હોવું સંભવિત છે.

શંકા-પ્રજ્ઞા અને અજ્ઞાન પરીષહ પણ પરસ્પર વિરોધી છે, આથી આ બંનેમાંથી એકી સાથે એક આત્મામાં એક જ હોવું જોઈએ ?

સમાધાન-પ્રજ્ઞાપરીષહ શ્રુતજ્ઞાનની અપેક્ષા અને અજ્ઞાનપરીષહ અવધિજ્ઞાનની અપેક્ષાથી સમજવાના છે. આ બંને પરીષહ એક આત્મામાં એક સમયે હોઈ શકે છે આથી પરસ્પર વિરોધી નથી. ।।૧૬।।

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—ક્ષુધા પિપાસા આદિ બાવીસ પરીષહોમાંથી સૂક્ષ્મ-સમ્પરાય અને છદ્મસ્થ વીતરાગમાં ચૌદ પરીષહ હોય છે. કેવળી અર્હન્ત ભગવાનમાં અગીયાર પરીષહ જોવામાં આવે છે ઈત્યાદિ વ્યસ્ત અને સમસ્ત રૂપમાં પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે હવે એ પ્રતિપાદન કરીએ છીએ કે

सम्प्रति-एकात्मन्येकदैकत आरभ्य एकोनविंशति पर्यन्तं परीषहाः सम्भवन्तीति प्रतिपादयितुमाह-'एकस्मि जीवे जुगवं एगादि जाव एगूणवीसा परीसहा' इति। एकस्मिन् कस्मिंश्चिज्जीवे युगपत् एकदा एकादि यावत् एकोनविंशतिः, तत्र -कदाचित्कस्यचिदेकात्मनि एकदा क्षुत्पिपासादिषु कश्चिदेकः परीषहः, कदाचिदेकदा क्वचिदेकात्मनि द्वौ परीषहौ, कदाचित्कस्यचिदेकात्मनि त्रयः परीषहा, इत्येवं रीत्या यावत् कदाचित्कस्यचिदेकदैकात्मन्येकोनविंशतिः परीषहाः सम्भवन्तीति भावः किन्तु एकदैकात्मनि शीतोष्णपरीषहौ समकं न सम्भवतः, तयो परस्पर मत्यन्तविरुद्धत्वात् एवं चर्या शय्या निषद्यासु द्वौ परीषहौ, अवशिष्टाः सप्तदश

हैं कि एक आत्मा में, एक ही काल में एक से लेकर अधिक से अधिक उन्नीस परीषह तक पाये जा सकते हैं-

एक जीव में एक साथ एक से लेकर उन्नीस परीषह तक हो सकते हैं। अर्थात् किसी आत्मा में किसी समय क्षुधा आदि बाईस परीषहों में से कोई एक ही परीषह होता है, कदाचित् दो परीषह होते हैं, कदाचित् तीन एक साथ हो जाते हैं, इसी प्रकार कभी कहीं किसी आत्मा में अधिक से अधिक उन्नीस परीषह तक होना संभव है।

एक ही काल में एक ही जीव में शीत और उष्ण दोनों परीषह साथ-साथ नहीं होते, क्योंकि ये दोनों परस्पर में अत्यन्त विरोधी हैं। इसी प्रकार चर्या, शय्या और निषद्या परीषहों में से भी कोई एक परीषह का ही संभव है, तीनों का संभव नहीं, हैं क्यों कि ये भी परस्पर विरोधी हैं। इस प्रकार शीत और उष्ण में से कोई एक तथा चर्या,

એક આત્મામાં, એક જ સમયમાં, એકથી લઈને વધારેમાં વધારે ૧૯ ઓગણીસ પરીષહ સુધી જોવામાં આવે છે. એક જીવમાં એક સાથે એકથી લઈએ ઓગણીશ પરીષહ સુધી હોઈ શકે છે અર્થાત્ કોઈ આત્મામાં કોઈ સમયે ક્ષુધા આદિ બાવીશ પરીષહોમાંથી કોઈ એક જ પરીષહ હોય છે, કદાચિત્ બે પરીષહ હોય છે, કદાચિત્ ત્રણ એક સાથે થઈ જાય છે, આવી રીતે કયારેક કોઈ આત્મામાં અધિકથી અધિક ઓગણીશ પરીષહ સુધી હોઈ શકે છે.

એક જ કાળમાં, એક જ જીવમાં શીત અને ઉષ્ણ બંને પરીષહ સાથે-સાથે હોતાં નથી, કારણ કે એ બંને પરસ્પરમાં અત્યન્ત વિરોધી છે. આવી જ રીતે ચર્યા, શય્યા અને નિષદ્યા પરીષહોમાંથી કોઈ એક પરીષહ જ હોઈ શકે છે, ત્રણે નહીં, કારણ કે એ પણ પરસ્પર વિરોધી છે. આ રીતે શીત અને ઉષ્ણમાંથી કોઈ એક તથા ચર્યા નિષદ્યા અને શય્યા પરીષહમાંથી કોઈ

परीषहाश्च क्षुत्पिपासादय एकदा एकात्मनि सम्भवन्तीति एकत आरभ्यैकोनविंशति पर्यन्तं विकल्पाः सम्भवन्ति। तत्र-कस्यचिदात्मन एकदा कश्चिदेकः परीषहः, कस्यचिदात्मन एकदा द्वौ परीषहौ, कस्यचिदात्मन एकदा त्रयः परीषहाः, कस्यचिदात्मनः एकचत्वारः, इत्येवं तावत्-यावदेकोनविंशतिः परीषहाः कस्यचिदात्मन एकदाऽविरोधात् संजायन्ते। शीतोष्णपरीषहयोः शय्या निषद्या चर्या परीषहाणाञ्च परस्परविरुद्धत्वात् नैकदैकात्मनो विंशतिः एकविंशतिः द्वाविंशतिर्वापरीषहाः सम्भवन्ति। तत्र शीतोष्णयोरसहाऽवस्थानलक्षणो विरोधः परस्परपरिहारेणैव तयोः स्थितिः सम्भवति, एवम् शय्या निषद्या चर्याणामेकस्य परी·

निषद्या और शय्या परीषह में से कोई एक परीषह होता है। शेष जो सत्तरह परीषह हैं वे सभी एक जीव में एक साथ हो सकते हैं। इस प्रकार कुल उन्नीस परीषह एक साथ एक जीव में होना संभव है।

किसी आत्मा में किसी समय एक ही परीषह पाया जाता है, किसी में एक साथ दो हो सकते हैं, किसी में तीन और किसी में चार का संभव है। इस प्रकार उन्नीस परीषह तक एक साथ एक आत्मा में हो सकते हैं। बीस, इक्कीस या बाईसों परीषह किसी आत्मा में एक साथ नहीं हो सकते। इसका करण पहले ही बतलाया जा चुका है कि शीत और उष्ण में से एक तथा शय्या निषद्या और चर्या में से कोई एक ही परीषह होता है। इस प्रकार बाईस में से तीन परीषह कम हो जाते हैं। शीत और उष्ण में सहानवस्थान का (एक साथ न रह सकना) विरोध है। वे एक दूसरे का परिहार करके ही रह सकते हैं।

એક જીવમાં એક સાથે થઇ શકે છે બાકીના જે સત્તર પરીષહો છે તે બધા જ એક જીવમાં એકી સાથે હોઈ શકે છે. આ રીતે કુલ ઓગણીસ પરીષહ એકી સાથે, એક જીવમાં સંભવી શકે છે.

કોઇ આત્મામાં કોઇ સમયે એક જ પરીષહ જોવામાં આવે છે, કોઇમાં એકી સાથે બે હોઇ શકે છે, કોઈમાં ત્રણ અને કોઈમાં ચાર સંભવી શકે છે. આ રીતે ઓગણીસ પરીષહ સુધી એકી સાથે એક આત્મામાં હોઈ શકે છે. વીસ, એકવીસ અગર બાવીસે-બાવીસ પરીષહ કોઇ આત્મામાં એકી સાથે હોઇ શકતાં નથી, એનું કારણ પહેલાં જ બતાવી દેવામાં આવ્યું છે કે શીત અને ઉષ્ણમાંથી એક તથા શય્યા, નિષદ્યા અને ચર્યામાંથી કોઇ એક જ પરીષહ હોય છે. આ રીતે બાવીસમાંથી ત્રણ પરીષહ ઓછાં થઇ જાય છે. શીત ઉષ્ણમાં સહાનવસ્થાન (એકી સાથે ન રહી શકવું) વિરોધ છે. તેઓ એકબીજાનો પરિહાર કરીને જ રહી શકે છે.

पहस्य सम्भवे द्वयोरभावः शय्यापरीषहे सति निषद्या चर्यापरीषहयोरसद्भावः, निषद्यापरीषहे सति शय्या चर्या परीषहयोरभावः, चर्यापरीषहे सति तु शय्या निषद्यापरीषहयोरसद्भाव एव तिष्ठति, अतएव त्रयाणां वर्जनं कृतम्। अथैवं प्रज्ञाऽज्ञानपरीषहयोरपि सहाऽनवस्थानलक्षणविरोधात् तयोरेकस्यैव परीषहस्य एकात्मनि एकदा सम्भव इति चेत् ? उच्यते श्रुतज्ञानाऽपेक्षया प्रज्ञापरीषहस्य, ऽवधिज्ञानाऽपेक्षया चाऽज्ञानपरीषहस्य एकदैकात्मनि सम्भवेन विरोधो नाऽस्ति। तथा च क्षुत्पिपासादीनां द्वाविंशतिपरीषहाणां मध्ये एकादयो यावद् आ एकोनविंशतिः परीषहा युगपदेकात्मनि भजनीयाः, नतु कदाचिद् एकात्मनि विंशतिः एकविंशतिः द्वाविंशतिर्वा, उक्तयुक्तेः ॥१६॥

इसी प्रकार शय्या, निषद्या और चर्या में से किसी एक का सद्भाव होने पर दो का अभाव होता है। अगर शय्यापरीषह होगा तो निषद्या और चर्या परीषह नहीं होंगे, निषद्या परीषह के होने पर शय्या और चर्या परीषह नहीं हो सकते और चर्या परीषह के होने पर शय्या और निषद्या परीषह नहीं हो सकते।

शंका-प्रज्ञा और अज्ञान परीषह में भी सहाऽनवस्थान का विरोध है, अतएव इन दोनों में से भी एक आत्मा में एक साथ एक ही परीषह होना चाहिए।

समाधान--प्रज्ञापरीषह श्रुतज्ञान की अपेक्षा से है और अज्ञान परीषह अवधिज्ञान की अपेक्षा से। अतएव इन दोनों में पारस्परिक विरोध नहीं है और जब विरोध नहीं है तो दोनों एक साथ हो सकते हैं।

इस प्रकार बाईस परीषहों में से एक से लेकर उन्नीस परीषह

આ રીતે શય્યા, નિષદ્યા અને ચર્યામાંથી કોઈ એકનો સદ્ભાવ હોવાથી બંનેનો અભાવ થઈ જાય છે. અગર શય્યા પરીષહ હશે તો નિષદ્યા અને ચર્યા પરીષહ હોઇ શકે નહીં અને જ્યારે ચર્યાપરીષહ હોય ત્યારે શય્યા અને નિષદ્યા પરીષહ હોઇ શકતા નથી.

શંકા—પ્રજ્ઞા અને અજ્ઞાન પરીષહમાં સહાનવસ્થાન નો વિરોધ છે આથી બંનેમાંથી પણ એક આત્મામાં એકી સાથે એક જ પરીષહ હોવો જોઇએ.

સમાધાન—પ્રજ્ઞાપરીષહ શ્રુતજ્ઞાનની અપેક્ષાથી છે અને અજ્ઞાનપરીષહ અવધિજ્ઞાનની અપેક્ષાથી આથી આ બંનેમાં પારસ્પરિક વિરોધ નથી અને જો વિરોધ નથી તો બંને એકી સાથે હોઈ શકે છે.

આ રીતે બાવીસ પરીષહોમાંથી એકથી લઇને ઓગણીસ પરીષહ સુધી

पूर्वं महारम्भ महापरिग्रहादयो नारक तिर्यङ्मनुष्यायुषा मास्रवः प्रतिपादितः तत्र-स्वभावमार्दवत्वेन मनुष्यायुष आस्रवो भवतीति तदास्रवनिवारणार्थं व्रतादि परिपालनीयम् यद्वा एते द्वाविंशतिः परीषहा व्रतेष्वेव भवन्तीत्यतोऽत्र व्रताधिकारमाह व्रतञ्च सम्यक्त्व मन्तरेण न सम्भवतीति पूर्वं सम्यक्त्वस्वरूपमाह—

मूलम्—जिण वयणसद्दहणं ॥१७॥

छाया—जिनवचनश्रद्धानं-सम्यक्त्वम् । १७

मूलम्—हिंसाईहिंतो विरईवयं ॥१८॥

तक एक आत्मा में एक साथ भजनीय हैं। एक ही आत्मा में एक ही काल में बीस, इक्कीस अथवा बाईस परीषह संभव नहीं हैं। इस विषय में युक्ति पहले कही जा चुकी है ॥१६॥

पहले महारंभ महापरिग्रह आदि नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायु के कारणों का प्रतिपादन किया गया था, वहां यह निरूपण किया गया था कि स्वभाव की मृदुता से मनुष्यायु का आस्रव होता है। इन आयुओं के आस्रव को रोकने के लिये व्रतों का पालन करना चाहिये। अथवा व्रतों के सद्भाव में ही यह परीषह होते हैं। अतएव व्रतों का अधिकार कहते हैं। किन्तु सम्यक्त्व के व्रत नहीं हो सकते इस कारण सर्वप्रथम सम्यक्त्व का स्वरूप बतलाते हैं—

'जिणवयण सद्दहणं सम्मत्तं' ॥१७॥

सूत्रार्थ—जिन वचनों का श्रद्धान् (श्रद्धाकरना) सम्यक्त्व है ॥१७॥

એક આત્મામાં એકી સાથે હોઈ શકે છે એક જ આત્મામાં, એક જ કાળમાં વીસ, એકવીસ અથવા બાવીસ પરીષહ હોઈ શકતાં નથી આ વિષયમમાં યુક્તિ અગાઉ કહેવામાં આવી ગઇ છે. ॥૧૬॥

આ પહેલાં મહારંભ, મહાપરિગ્રહ આદિ નરકાયુ, તિર્યંચાયુ અને મનુષ્યાયુના કારણોનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું હતું, ત્યાં એ પણ નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હતું કે સ્વભાવની મૃદુતાથી મનુષ્યાયુનો આસ્રવ થાય છે. આ આયુઓના આસ્રવને રોકવા માટે વ્રતોનું અનુષ્ઠાન કરવું જોઈએ અથવા વ્રતોના સદ્ભાવમાં જ આ પરીષહ હોય છે આથી વ્રતોનો અધિકાર કહીએ છીએ પરન્તુ સમ્યક્ત્વ વગર વ્રત થઈ શકે નહીં આથી સર્વપ્રથમ સમ્યક્ત્વનું સ્વરૂપ બતાવીએ છીએ—

मूलम्—जिणवयणसद्दहणं सम्मत्तं ॥१७॥

સૂત્રાર્થ—જિનવચનોમાં શ્રદ્ધા રાખવી સમ્યક્ત્વ છે. ॥૧૭॥

छाया—हिंसादिभ्यो विरति व्रतम् ।१८

मूलम्—तं सव्वओ देसओ महं-अणूय ॥१९॥

छाया—तत् सर्वतो देशतो, महद्-णु च । १९

मूलम्—सव्वओ अणगारस्स, ते पंच देसओ अगारिस्स ते बारस ॥२०॥

छाया—सर्वतोऽनगारस्य, तानि पञ्च, देशतोऽगारिणः तानि द्वादश । २०

मूलम्- ताइं बारस, अणुव्वय-गुणव्वय—सिक्खावय भेया ।२१।

छाया—तानि द्वादश 'व्रतानि' अणुव्रत गुणव्रत-शिक्षाव्रत भेदात् ।२१

'हिंसाई हिंतो विरई वयं' ॥१८॥

सूत्रार्थ—हिंसा आदि पापों से निवृत्त होना व्रत कहलाता है ॥१८।

'तं सव्वओ देसओ महं-अणूय' ॥१९॥

सूत्रार्थ—विरति दो प्रकार की है—सर्व विरति और देशविरति। सर्वविरति को महाव्रत कहते हैं, देशविरति को अणुव्रत कहते हैं ॥१९॥

'सव्वओ अणगारस्स, ते पंच, देसओ आगारिस्स, ते बारस'

सूत्रार्थ—सर्वविरति अनगार-साधु के होती है। वह पांच हैं। देशविरति रूप व्रत गृहस्थ श्रावक के होते हैं। वे बारह हैं ॥२०॥

'ताइं बारस अणुव्वय, गुणव्वय-सिक्खावय भेया' ॥२१॥

सूत्रार्थ—अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत के भेद से श्रावक के व्रत बारह प्रकार का है ॥२१॥

મૂલમ્-હિંસાઈહિંતો વિરઈ વય ૧૮

સૂત્રાર્થ-હિંસા આદિ પાપોથી નિવૃત્ત થવુ વ્રત કહેવાય છે ॥૧૮॥

મૂલમ્-તં સવ્વઓ દેસઓ મહં-અણૂય ૧૯

સૂત્રાર્થ-વિરતિ બે પ્રકારની છે-સર્વવિરતિ અને દેશવિરતિ સર્વવિરતિને મહાવ્રત કહે છે, દેશવિરતિને અણુવ્રત કહે છે. ॥૧૯॥

મૂલમ્-સવ્વઓ અણગારસ્સ, તે પંચ, દેસઓ આગારિસ્સ, તે બારસ ॥૨૦॥

સૂત્રાર્થ-સર્વવિરતિ અણગાર સાધુને હોય છે તે પાંચ છે. દેશવિરતિ રૂપ વ્રત ગૃહસ્થ શ્રાવકને હોય છે. તે બાર હોય છે. ॥૨૦॥

મૂલમ્-તાઇં બારસ, અણુવ્વવય, ગુણવ્વ-સિક્ખાવયભેયા ॥૨૧॥

સૂત્રાર્થ-અણુવ્રત, ગુણવ્રત અને શિક્ષાવ્રતના ભેદથી શ્રાવકના વ્રત બાર પ્રકારના છે. ॥૨૧॥

मूलम्–तत्थ अणुव्वयाइं पंच, थूल–हिंसा–मुसावाय–तेणिक्क–मेहुण–परिग्गहविरमणभेया ॥२२॥

छाया—तत्राणुव्रतानि पञ्च, स्थूलहिंसा मृषावाद-स्तैन्य मैथुन-परिग्रहविरमणभेदात् ॥२२॥

मूलम्–गुणव्वयाइं तिन्नि, दिसिव्वय–उवभोगपरिभोग–परिमाण अणट्ठदंडविरमणभेया ॥२३॥

छाया–गुणव्रतानि त्रीणि, दिग्व्रतो–पभोगपरिभोगपरिमाणानर्थदण्डविरमण-भेदात् ॥२३॥

मूलम्–सिक्खावयाइं चत्तारि, सामाइय–देसावगासिय-पोसहोववास–अतिहिसंविभागभेया ॥२४॥

'तत्थ अणुव्वयाइं पंच थूल हिंसा मुसावाय–तेणिक्क मेहुण–परिग्गहविरमणभेया' ॥२२॥

सूत्रार्थ—अणुव्रत पांच हैं–(१) स्थूल हिंसाविरमण (२) स्थूल मृषावादविरमण (३) स्थूल स्तेयविरमण (४) स्थूल मैथुन विरमण और स्थूल परिग्रह विरमण ॥२२॥

'गुणव्वयाइं तिन्नि, दिसिव्वय उवभोगपरिभोगपरिमाणअणट्ठदंडविरमणभेया ॥२३॥

सूत्रार्थ—गुणव्रत तीन हैं–दिशाव्रत, उपभोग परिभोग परिमाण और अनर्थदण्ड विरमण ॥२३॥

'सिक्खावयाइं चत्तारि, सामाइय–देसावगासिय–पोसहोववास अतिहिसंविभागभेया ॥२४॥

मूलम्–तत्थ अणुव्वयाइं पंच थूल–हिंसा–मुसावाय–तेणिक्क–मेहुण–परिग्गहविरमणभेया ॥२२॥

સૂત્રાર્થ–અણુવ્રત પાંચ છે–(૧) સ્થૂળહિંસા વિરમણ (૨) સ્થૂળમૃષાવાદ વિરમણ (૩) સ્થૂળસ્તેય વિરમણ (૪) સ્થૂળમૈથુન વિરમણ અને (૫) સ્થૂળ-પરિગ્રહ વિરમણ. ॥૨૨॥

मूलम्–गुणव्वयाइं तिन्नि, दिसिव्वय–उवभोग परिभोग परिमाण अणट्ठदंड विरमणभेया २३

સૂત્રાર્થ–ગુણવ્રત ત્રણ છે–દિશાવ્રત, ઉવભોગ પરિભોગ પરિમાણ અને અનર્થદન્ડ વિરમણ. ॥૨૩॥

मूलम्–सिक्खावयाइं चत्तारी, सामाइय–देसावगासिय–पोसहोववासअति-हिसंविभागभेया २४

छाया-शिक्षाव्रतानि चत्वारि, सामायिक-देशावकाशिक-पौषधोपवासा-तिथिसंविभागभेदात् ।२४

मूलम्-पमत्तजोगा पाणाइवायो हिंसा ॥२५॥

छाया—प्रमत्तयोगात्-प्राणातिपातो हिंसा २५

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत्-महारम्भ महापरिग्रहादयो नारक-तिर्यङ्-मनुष्यायुषा मास्रवो भवतीति प्रतिपादितम्, तत्र-महारम्भ महापरिग्रहादौ हिंसाऽवश्यं भाविनीति हिंसास्वरूपमाह-'पमत्तजोग।' इत्यादि। प्रमत्तयोगात्प्राणातिपातोहिंसा, तत्र प्रमत्तयोगात् प्रमाद्यति, इति प्रमत्तः प्रमादपरिणत आत्मा, प्रमादश्च—कषायनिमित्तक आत्मपरिणामः। कषायत्वं वा प्रमादः कषायाणां प्रमादहेतुत्वात्

सूत्रार्थ--शिक्षाव्रतचार हैं-सामायिक, देशावकाशिक पौषधोपवास और अतिथिसंविभाग ॥२४॥

'पमत्तजोगा पाणाइवाया हिंसा' ॥२५॥

सूत्रार्थ--प्रमाद युक्त योग से प्राणों का अतिपात करना हिंसा है ॥२५॥

तत्त्वार्थदीपिका--पहले प्रतिपादन किया गया था कि महारंभ और महापरिग्रह आदि नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायु के आस्रव हैं। महारंभ और महापरिग्रह आदि में हिंसा अवश्य होती है, अतएव हिंसा का स्वरूप कहते हैं-

प्रमत्त योग से प्राणों का अतिपात करना हिंसा है। प्रमाद से युक्त आत्मा प्रमत्त कहलाता है। कषाय के निमित्त से होने वाला आत्मा का परिणामविशेष प्रमाद कहा जाता है। अथवा कषाय ही

સૂત્રાર્થ-શિક્ષાવ્રત ચાર છે-સામાયિક, દેશાવકાશિક, પૌષધોપવાસ અને અતિથિસંવિભાગ. ॥૨૪॥

मूलम्-पमत्तजोगा पाणाइवाया हिंसा ॥२५॥

સૂત્રાર્થ-પ્રમાદયુક્ત યોગથી પ્રાણોનો અતિપાત કરવો હિંસા છે. ॥૨૫॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું હતું કે મહારંભ અને મહાપરિગ્રહ આદિ નરકાયુ તિર્યંચાયુ અને મનુષ્યાયુના આસ્રવ છે. મહારંભ અને મહાપરિગ્રહ આદિમાં હિંસા અવશ્ય હોય છે આથી અમે હિંસાનું સ્વરૂપ કહીએ છીએ-

પ્રમત્ત યોગથી પ્રાણોનો અતિપાત કરવો હિંસા છે. પ્રમાદથી યુક્ત આત્મા પ્રમત્ત કહેવાય છે. કષાયના નિમિત્તથી થનારા આત્માના પરિણામ વિશેષને પ્રમાદ કહેવામાં આવે છે, અથવા કષાય જ પ્રમાદ છે કારણ કે તે

तद्वान् प्रमत्तः कथ्यते । यद्वा—इन्द्रियाणां प्रचारमवधार्याऽपरामृश्या ऽविचार्य प्रवर्तमान आत्मा प्रमत्तः । यद्वा प्रवृद्ध कषायोदय प्रतिष्ठः प्राणातिपातस्य हेतुषु स्थितोऽपि योऽहिंसायां शाठ्येन कपटेन, दम्भेन यत्नं विधत्ते न तु परमार्थेन स प्रमत्त उच्यते । अथवा निम्नोक्त पञ्च प्रमादोपेतत्वात्प्रमत्तः, पञ्च प्रमादा यथा—

मज्जं विसयकसाया—निद्दाविकहाय पंचमी भणिया ।
एए पंच पमाया जीवं पाडेंति संसारे ॥१॥
मद्यं विषयकषायाः निद्राविकथा च पञ्चमी भणिता ।
एते पञ्च प्रमादाः जीवं पातयन्ति संसारे ॥१॥

इति प्रमत्तस्याऽऽत्मनो योगः मनोवाक्कायक्रियारूपः प्रमत्तयोगात् इन्द्रियादीनां दशप्राणानां यथासम्भवमतिपातो व्यपरोपणं वियोजनं हिंसा ॥२५॥

प्रमाद है; क्योंकि वह प्रमाद का कारण है । जो प्रमाद वाला हो वह या बिना विवेक के—अनसमझे, अनसोचे प्रवृत्ति करने वाला आत्मा प्रमत्त है । अथवा जिसके तीव्र कषाय का उदय हो और जो हिंसा के कारणों में स्थित होकर भी धूर्त्तता, कपट या दंभ से यतना करता हो, पारमार्थिक रूप से नहीं, उसे प्रमत्त कहते हैं । अथवा जो पाँच प्रकार के प्रमादों से युक्त हो वह प्रमत्त कहलाता है । पाँच प्रमाद इस प्रकार हैं—

मद्य, इन्द्रियों के विषय, क्रोधादि कषाय, निद्रा और विकथा, ये पाँच प्रमाद जीव को संसार में अर्थात् जन्म-मरण के चक्र में गिराने वाले हैं ।

प्रमत्त आत्मा का योग अर्थात् मन वचन काय का व्यापार प्रमत्त योग कहलाता है । प्रमत्त योग से इन्द्रिय दस प्राणों का यथा-संभव वियोग करना हिंसा है ॥२५॥

પ્રમાદનું કારણ છે. જે પ્રમાદી હોય તે અથવા વિવેક વગર, વગર સમજ્યે—વગર વિચાર્યે પ્રવૃત્તિ કરનાર આત્મા પ્રમત્ત છે અથવા જેને તીવ્ર કષાયનો ઉદય થાય તેમજ જે હિંસાના કારણોમાં સ્થિત થઈને પણ ધૂર્ત્તતા કપટ અથવા દંભથી યતના કરતો હોય, પારમાર્થિક રૂપથી નહીં; તેને પ્રમત્ત કહે છે અથવા જે પાંચ પ્રકારના પ્રમાદોથી યુક્ત હોય તે પ્રમત્ત કહેવાય છે. પાંચ પ્રમાદ આ પ્રમાણે છે—

મદ્ય ઇન્દ્રિયોના વિષય, ક્રોધાદિ કષાય, નિદ્રા અને વિકથા, આ પાંચ પ્રમાદ જીવને સંસારમાં અર્થાત્ જન્મ-મરણના ચક્રાવામાં પાડનારા કહ્યાં છે.

પ્રમત્ત આત્માનો યોગ અર્થાત્ મન વચન કાયાનો વ્યાપાર પ્રમત્તયોગ કહેવાય છે. પ્રમત્તયોગથી ઇન્દ્રિય આદિ દશ પ્રાણોનો યથાસંભવ વિયોગ કરવો હિંસા છે. ॥૨૫॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वसूत्रे महारम्भमहापरिग्रहादयो नारक-तिर्यङ्मनुष्यायुषामास्रवो भवतीति प्रतिपादितम्, महारम्भ महापरिग्रहादौ हिंसाऽवश्यम्भाविनीति हिंसास्वरूपमाह—'पमत्त जोगा पाणाइवायो हिंसा' इति। प्रमत्तयोगात् मद्य-विषयादिभिः पञ्चभिः प्रमादैः प्रमाद्यतीति प्रमत्तः आत्मा, तत्र प्रमादाः पञ्च, यथा—

'मज्जं विसयकसाया निद्दाविकहाय पंचमी भणिया।
एए पंच पमाया जीवं पाडेंति संसारे ॥१॥
'मद्यं विषयकषाया निद्रा विकथा च पञ्चमी भणिता।
एते पञ्च प्रमादा जीवं पातयन्ति संसारे ॥१॥ इति,

तत्र मद्यं शीध्वादिकं प्रसिद्धं तच्च-प्रमादहेतुत्वान्मद्यं प्रमादः १ विषयाः पञ्च स्पर्शनादि पञ्चेन्द्रियजन्यत्वात् ५ कषाया क्रोधादयश्चत्वारः ४ निद्रा, निद्रा निद्रादि-

---

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पूर्व सूत्र में बतलाया गया था कि महारंभ, महापरिग्रह आदि शब्द से पञ्चेन्द्रिय वध, मद्यमांस का सेवन करना नारक, तिर्यंच और मनुष्यगति आदि के कारण हैं, महारंभ और महापरिग्रह आदि में हिंसा का होना अनिवार्य है, इस कारण यहां हिंसा का स्वरूप कहते हैं—

प्रमत्तयोग से प्राणों का अतिपात करना हिंसा है। प्रमत्तयोग अर्थात् मद्य विषय आदि पांच प्रमादों से युक्त आत्मा के व्यापार से प्राणों का जो वियोग होता है, उसे हिंसा कहते हैं। प्रमाद पांच हैं, यथा 'मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा, ये पांच प्रमाद जीव को संसार में परिभ्रमण कराते हैं ॥१॥

सीधु आदि मदिरा को मद्य कहते हैं। वह लोक में प्रसिद्ध है। मद्य

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પૂર્વસૂત્રમાં બતાવવામાં આવ્યું હતું કે મહારંભ, મહાપરિગ્રહ આદિ શબ્દથી પંચેન્દ્રિયવધ, દારૂ માંસનું સેવન કરવું—નારક, તિર્યંચ અને મનુષ્યગતિ આદિનાં કારણ છે. મહારંભ અને મહાપરિગ્રહ આદિમાં હિંસાનું હોવું અનિવાર્ય છે, આથી અહીં હિંસાનું સ્વરૂપ કહીએ છીએ—

પ્રમત્ત યોગથી પ્રાણોનો વિયોગ કરવો હિંસા છે. પ્રમત્તયોગ અર્થાત્ દારૂ વિષય આદિ પાંચ પ્રમાદોથી યુક્ત આત્માના વ્યાપારથી પ્રાણોનો જે વિયોગ થાય છે તેને હિંસા કહે છે. પ્રમાદ પાંચ છે જેવાં કે—

'મદ્ય વિષય, કષાય, નિદ્રા અને વિકથા, આ પાંચ પ્રમાદ જીવને સંસારમાં પરિભ્રમણ કરાવનાર છે. ॥૧॥

સીધુ આદિ દારૂને મદ્ય કહે છે જે લોકમાં પ્રસિદ્ધ કહેલ છે. સ્પર્શન,

भेदात्पञ्चविधा ५ विकथा स्त्री, भक्त, देश, राजभेदाच्चतुर्विधा४ इत्येवमेकोनविंशतिभेदभिन्नाः प्रमादाः पञ्च, तद्वारकौ रागद्वेषा तत्परिणत आत्मा प्रमत्त उच्यते, प्रमत्तस्य योगो व्यापारश्चेष्टा, प्रमत्तस्यात्मनः कषायादिचेष्टा, तस्मात् प्रमत्तयोगात् प्रमत्तव्यापारेण प्राणातिपातः प्राणव्यपरोपणं हिंसा प्रमत्तयोगमासाद्य प्राणातिपातं कुर्वन्नात्मा हिंसां निष्पादयति । प्राणाः पञ्चेन्द्रियाणि मनोवाक्कायाः प्राणाऽपान मायुश्चेति दशविधाः द्रव्यपरिणामलक्षणः पृथिव्यादि-

को प्रमाद का कारण होने से प्रमाद कहा है। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रियों के विषय स्पर्श आदि पांच हैं। क्रोध आदि कषाय चार हैं। निद्रा पांच प्रकार की है–निद्रा, निद्रा–निद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानर्धि। स्त्री कथा भक्तकथा,। (भोजनकथा) देशकथा और राजकथा के भेद से विकथा के चार भेद हैं। इस प्रकार प्रमाद के उन्नीस भेद हैं। इनके कारण आत्मा में राग–द्वेष की उत्पत्ति होती है।

जो आत्मा प्रमाद युक्त होता है वह प्रमत्त कहलाता है। प्रमत्त के योग अर्थात् व्यापार या चेष्टा को प्रमत्तयोग कहते हैं। प्रमत्त आत्मा की चेष्टा से प्राणों का वियोग होना हिंसा है। प्रमत्तयोग को प्राप्त होकर प्राणातिपात करता हुआ आत्मा हिंसा को उत्पन्न करता है।

प्राण दस हैं–पांच इन्द्रियां, मन, वचन, काय प्राणापान और आयु, ये द्रव्य प्राण कहलाते हैं और पृथ्वीकाय आदि में यथा योग्य रूप से पाये जाते हैं, अर्थात् एकेन्द्रियों में चार, द्वीन्द्रिय में छह,

રસના ઘ્રાણ, ચક્ષુ અને શ્રોત્ર ઇન્દ્રિયોના વિષય સ્પર્શ આદિ પાંચ છે. ક્રોધ આદિ કષાય ચાર છે. નિદ્રા પાંચ પ્રકારની છે–નિદ્રા, નિદ્રાનિદ્રા, પ્રચલા, પ્રચલાપ્રચલા અને સ્ત્યાનર્ધિ સ્ત્રીકથા, ભત્તકથા (ભોજન સંબંધી કથા) દેશકથા અને રાજકથાના ભેદથી વિકથાના ચાર ભેદ છે. આ રીતે પ્રમાદના ઓગણીસ ભેદ છે. આના કારણે આત્મામાં રાગદ્વેષની ઉત્પત્તિ થાય છે.

જે આત્મા પ્રમાદયુક્ત હોય છે તે પ્રમત્ત કહેવાય છે. પ્રમત્તના યોગ અર્થાત્ વ્યાપાર અથવા ચેષ્ટાને પ્રમત્તયોગ કહે છે. પ્રમત્ત આત્માની ચેષ્ટાથી પ્રાણોનો વિયોગ થવો હિંસા છે. પ્રમત્તયોગને પ્રાપ્ત થઈ ને પ્રાણાતિપાત કરતો થકો આત્મા હિંસાને ઉત્પન્ન કરે છે.

પ્રાણ દશ છે–પાંચ ઇન્દ્રિયો, મન, વચન, કાયા, પ્રાણાપાન અને આયુ આ દ્રવ્યપ્રાણ કહેવાય છે અને પૃથ્વિકાય આદિમાં યથાયોગ રૂપથી જોવામાં

कायेषु यथायोग्य मत्रस्थिता स्तेषा मतिपातो व्यपरोपणम् अपनयन मात्मनो वियोजनं पृथक्करणं हिंसा । उक्तञ्च—

'पञ्चेन्द्रियाणि ५ त्रिविधं बलञ्च ३ उच्छ्वास निश्वास १ मथान्यदायुः।
प्राणादशैते भगवद्भिरुक्ता स्तेषां वियोगीकरणन्तु हिंसा ॥१॥

अथवा–ययाऽऽत्मपरिणतिक्रियया प्राणव्यपरोपणं भवति, सा क्रिया कर्तृ समवेता हिंसा उच्यते, तत्र–प्रमत्त एव हिंसको भवति नाऽप्रमत्तः । स खलु–प्रमत्त आप्त पुरुषोक्तागमनिरपेक्षो दूरीकृताऽऽर्षसूत्रोपदेशः स्वच्छन्दतया प्रभावित कायादिवृत्तिः अज्ञानपूर्णः प्राणिप्राणाऽपहरणमवश्यङ्करोति । सा खलु हिंसा

त्रीन्द्रिय में सात, चतुरिन्द्रिय में आठ, असंज्ञी पंचेन्द्रिय में नौ और संज्ञी पचेन्द्रिय में दस प्राण होते हैं । कहा भी है–

'पांच इन्द्रियां तीन बल (मनोबल, वचनबल, कायबल), उच्छ्वास निश्वास और आयु, ये दस प्राण भगवान् ने कहे हैं । इनमें से किसी का भी वियोग करना हिंसा है' ॥१॥

अथवा आत्मा के जिस परिणाम (अध्यवसाय) से प्राणों का व्यपरोपण होता है, उसे हिंसा कहते हैं । यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि प्रमत्त जीव ही हिंसक होता है, जो प्रमाद से रहित है वह हिंसक नहीं होता । प्रमादी पुरुष आप्त जनों द्वारा प्रणीत आगम की परवाह नहीं करता, ऋषि प्रणीत आगम से प्रतिकूल व्यवहार करता है, काय आदि का स्वच्छन्द रूप से व्यापार करता है एवं अज्ञान से परिपूर्ण होता है । वह अवश्य ही प्राणियों के प्राणों का प्रणाश करता है।

આવે છે, અર્થાત્ એકેન્દ્રિયોમાં ચાર, દ્વીન્દ્રિયોમાં છ, તેઇન્દ્રિયમાં સાત ચતુરિન્દ્રિયમાં આઠ, અસંજ્ઞી પંચેન્દ્રિયમાં નવ અને સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિયમાં દશ પ્રાણ હોય છે કહ્યું પણ છે–

પાંચ ઇન્દ્રિયો, ત્રણ બળ (મનોબલ, વચન બળ કાયબલ) ઉચ્છ્વાસ નિશ્વાસ અને આયુ આ દશ પ્રાણ, ભગવાને કહ્યા છે. આમાંથી કોઇનો પણ વિયોગ કરવો હિંસા છે. ॥૧॥

અથવા આત્માના જે પરિણામ (અધ્યવસાય)થી પ્રાણોનો નાશ થાય છે તેને હિંસા કહે છે. એ વાત ધ્યાનમાં રાખવા યોગ્ય છે તે પ્રમત્ત જીવ જ હિંસક હોય છે, જે પ્રમાદથી રહિત છે તે હિંસક હોતો નથી. પ્રમાદી પુરૂષ આપ્તજનો દ્વારા પ્રણીત આગમની પરવા કરતો નથી, ઋષિપ્રણીત આગમથી પ્રતિકૂળ વ્યવહાર કરે છે, કાયા આદિનો સ્વચ્છન્દ રૂપથી વ્યાપાર કરે છે અને અજ્ઞાનથી પરિપૂર્ણ હોય છે, તે ખચિત પ્રાણીઓના પ્રાણોના વિનાશ કરે છે.

द्विविधा, द्रव्यभावभेदात् । तत्र द्रव्यतः प्राणिनां प्राणव्यपरोपणं भावत आत्मनो मलिन परिणामः । तत्र प्राणातिपातविरतस्य सोपयोगं विहरतो मुनेर्यी पादन्यासेन प्राणिरक्षा प्रवृत्तस्यापि कथञ्चित् प्राणिप्राणव्यपरोपणरूपा हिंसा भवेत् सा भावहिंसा, तथाहि क्रोधादि कषायादि प्रमादाधीनस्य व्याधस्याऽऽकृष्टचापस्य द्रव्यहिंसा, न तु भावतः इति । यत्पुनः भावतः प्राणातिपातो भवति सा भावहिंसा, तथाहि-क्रोधादि कषायादि प्रमादाधीनस्य व्याधस्याकृष्टचापस्य बाणविषयवर्तिनं हरिण मुद्दिश्य प्रक्षिप्तबाणस्य बाणपतनकालात्प्रागेव तद्देशा दपसृते हरिणेऽशुद्धचित्तत्वादेव प्राणातिपाताऽकरणेऽपि द्रव्यतोऽपि नष्टेपि

हिंसा दो प्रकार की है-द्रव्यहिंसा और भावहिंसा । प्राणी के प्राणों का वियोग करना द्रव्यहिंसा है और आत्मा का मलिन परिणाम होना भावहिंसा है । जो मुनि प्राणातिपात से निवृत्त हो चुका है, यतना पूर्वक विचरण कर रहा है और जीवों की रक्षा में सावधानी वर्त्त रहा है, उसके पांव रखने से यदि किसी जीव का घात हो जाय तो वह केवल द्रव्यहिंसा है, भावहिंसा नहीं । अध्यवसायपूर्वक जो प्राणातिपात किया जाता है, वह भावहिंसा है । कोई व्याध क्रोध आदि कषाय के अधीन हो रहा है, उसने हिरण को मारने के लिए बाण खींचा और उसे छोडा, मगर इस बीच हिरण एक स्थान से दूसरे स्थान पर चला गया और उसे बाण नहीं लग पाया । इस प्रकार प्राणातिपात तो नहीं हुआ-द्रव्यप्राणों का व्यपरोपण नहीं हुआ, और इस कारण द्रव्यहिंसा नहीं हुई, फिर भी व्याध का चित्त अशुद्ध

હિંસા બે પ્રકારની છે-દ્રવ્યહિંસા અને ભાવહિંસા પ્રાણિના પ્રાણોનો વિયોગ કરવો દ્રવ્યહિંસા છે અને આત્માનું મલીન પરિણામ હોવું ભાવહિંસા છે જે મુનિ પ્રાણાતિપાતથી નિવૃત્ત થઈ ગયા છે, યતનાપૂર્વક, વિચરણ કરી રહ્યા હોય અને જીવોની રક્ષામાં સાવધાનીવાળા રહે છે, તેમના પગ મુકવાથી જો કોઇ જીવનો ઘાત થઈ જાય તો તે કેવળ દ્રવ્યહિંસા છે, ભાવહિંસા નહીં. અધ્યવસાયપૂર્વક જે પ્રાણાતિપાત કરવામાં આવે છે તે ભાવહિંસા છે. કોઈ શિકારી ક્રોધ આદિ કષાયને તાબે થઈ રહ્યો હોય, તેણે હરણને મારવા માટે શરસંધાન કર્યું હોય અને બાણ છોડયું હોય પરન્તુ આ દરમ્યાન હરણ એક જગાએથી અન્ય સ્થળે દોડી ગયું અને પેલું બાણ તેને વાગ્યું નહોય તો પણ આ રીતે પ્રાણાતિપાત ન થયો દ્રવ્યપ્રાણોનું વ્યપરોપણ થયું નહીં અને આથી દ્રવ્યહિંસા થઈ નહીં તેમ છતાં શિકારીનું ચિત્ત અશુદ્ધ અર્થાત્ હિંસામય હોવાથી તેને હિંસાનું પાપ તો

प्राणिनि लगत्येव हिंसा बाणविक्षेपकस्य, हिंसास्वरूपेणाऽऽत्मपरिणतिसत्त्वात् स्वकृत सुकृति दृढा युष्कर्मशेषात् मृगस्य तत्स्थानात्पलायने, स्वप्रयासे विफलोऽपि हन्तुश्चित्तं घातकमेव भवति, मनसः क्लिष्टत्वात्। एवं तस्याऽविशुद्धभावस्य जिघांसोरुक्तान्त प्राणिप्राणसमुदायस्थले भावतो हिंसा, यद्येतादृश परिस्थितौ मृगो म्रियते तदा तत्रोभाभ्यां द्वाभ्यामपि द्रव्यभावाभ्यां समुदिताभ्यां भवेत्। ततस्तस्य प्रमत्तयोगात् प्राणातिपातरूपा हिंसा भवतीतिभावः ॥२५॥

मूलम्—असच्चाभिहाणं मुसावाओ ॥२६॥

छाया—'असत्याऽभिधान मृषावादः ॥२६।

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत् प्रमत्तयोगात्प्राणातिपातलक्षणं हिंसा स्वरूपं प्राणातिपातादिविनिवृत्ति लक्षणव्रतविरोधितया प्रतिपादितम्, सम्प्रति–तद्विरो-

---

अर्थात् हिंसामय होने से उसे हिंसा का पाप लगता ही है। व्याध की आत्मा की परिणति हिंसारूप है, अतएव आयु का प्रगाढ बन्ध होने से हिरण उस जगह से भग गया और व्याध का प्रयास सफल नहीं हुआ, फिर भी उसका चित्त तो हिंसक ही है। कदाचित् व्याध के द्वारा छोडा हुआ वाण लक्ष्य पर लग जाय और मृग का वध हो जाय तो ऐसी परिस्थिति में द्रव्य और भाव– दोनों प्रकार की हिंसा होती है। इस प्रकार प्रमत्तयोग से उस व्याध को प्राणातिपात रूप हिंसा होती है ॥२५॥

'असच्चाभिहाणं मुसावाओ।'

सूत्रार्थ—असत्य कहना मृषावाद है ॥२६॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले प्रमत्तयोग से प्राणों का अतिपात करना हिंसा है, इस प्रकार हिंसा के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है, जो

લાગે જ છે. શિકારીના આત્માની પરિણતિ હિંસરૂપ છે, આથી આયુષ્યનું પ્રગાઢ બન્ધન હોવાથી હરણ તે સ્થળેથી નાસી ગયું અને શિકારીનો પ્રયત્ન સફળ થયો નહીં તો પણ તેનું ચિત્ત તો હિંસક જ છે. કદાચિત્ શિકારી દ્વારા છોડાયેલુ તીર લક્ષ્ય પર વાગી જાય અને હરણનો વધ થઈ જાય–આવી પરિસ્થિતિમાં દ્રવ્ય અને ભાવ–બંને પ્રકારની હિંસા થાય છે. આ રીતે પ્રમત્ત યોગથી તે શિકારીની પ્રાણાતિપાત રૂપ હિંસા હોય છે. ॥૨૫॥

'असच्चाभिहाणं मुसावायो।

સૂત્રાર્થ–અસત્ય કહેવું મૃષાવાદ છે ॥૨૬॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—આ પહેલા પ્રમત્ત યોગથી પ્રાણોનો અતિપાત કરવો હિંસા છે, આ રીતે હિંસાના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું, જે

धितया क्रमप्राप्तस्य द्वितीयस्य मृषावादस्याऽनृतस्य स्वरूपं निरूपयितुमाह-'असच्चाभिहाणं मुसावाओ' इति । असत्याऽभिधानम्-सच्छब्दस्य प्रशंसारूपोऽर्थः न सद्-असद् अप्रशस्तम्, असद्युक्तम् असत्यम् अनृतम्, ऋतं सत्यम्, न ऋतम् अनृतम् प्राशस्त्यरहितं प्रमत्तयोगाद् यदभिधानं वचनं स मृषावाद उच्यते । तथा च-प्रमत्तोऽप्रशस्तस्य विद्यमानार्थस्याऽविद्यमानस्य वा प्राणिपीडाकारकस्य वचनस्य यदभिधानं-कथनं तदनृतरूपो मृषावादः, प्रमत्तयोगाद्यदुच्यते तद नृतं भवति । एवञ्च-यद् हिंसात्मकं वचनं तदनृतमिति बोध्यम् यद्-वचनं कर्णकर्कशं कर्णशूलप्रायं हृदयनिष्ठुरं मनः पीडाकरं विप्रलापप्रायं विरुद्धप्रलापकल्पं विरुद्धवचनं प्राणिवध बन्धनादि जनकं वैरकारकं कलहादिकरम् उत्त्रास-

प्राणातिपात विरमण व्रत का विरोधी है, अब दूसरे व्रतविरोधी मृषावाद रूप असत्य का स्वरूप कहते हैं-

असत्य भाषण करना मृषावाद कहलाता है । 'सत्' शब्द का प्रशंसा रूप अर्थ है । जो 'सत्' न हो वह 'असत्' अर्थात् अप्रशस्त । 'असत्' से जो युक्त हो उसे असत्य कहते हैं अर्थात् अनृत । ऋत का अर्थ है सत्य, जो ऋत न हो सो अनृत अर्थात् प्रशस्तता से रहित । प्रमत्तयोग से असत्य कहना मृषावाद है । इस प्रकार अप्रशस्त वचन का तथा विद्यमानार्थक या अविद्यमानार्थक पीडाकारी वचन का कथन करना मृषावाद है । तात्पर्य यह है कि जो वचन हिंसात्मक है वह असत्य है । जो वचन कानों को कठोर लगता है, कानों में कांटे की तरह चुभता है, हृदय को निष्ठुर प्रतीत होता है, मन में पीडा उपजाता है जो विलाप जैसा है-विरुद्ध प्रलाप जैसा है, विरुद्ध है, प्राणी

પ્રાણાતિપાત વિરમણવ્રતનું વિરોધી છે હવે બીજા વ્રતવિરોધી મૃષાવાદ રૂપ અસત્યનું સ્વરૂપ કહીએ છીએ-

અસત્ય ભાષણ કરવું મૃષાવાદ કહેવાય છે. 'સત્' શબ્દનો પ્રશંસા રૂપ અર્થ છે. જે 'સત્' ન હોય તે 'અસત્' અર્થાત્ અપ્રશસ્ત 'અસત્'થી જે યુક્ત હોય તેને અસત્ય કહે છે અર્થાત્ અનૃત ઋતનો અર્થ છે સત્ય, ઋત ન હોય તે અનૃત અર્થાત્ પ્રશસ્તતાથી રહિત પ્રમત્ત યોગથી અસત્ય કહેવું મૃષાવાદ છે. આ રીતે અપ્રશસ્ત વચનનું કથન કરવું મૃષાવાદ છે. તાત્પર્ય એ છે કે જે વચન હિંસાત્મક છે તે અસત્ય છે. જે વચન કાનોને કર્કશ લાગે છે, મનમાં કાંટાની જેમ ખુંચે છે, હૃદયને નિષ્ઠુર ભાસે છે, મનમાં દુઃખ ઉપજાવે છે, જે વિલાપ જેવું છે-વિરૂદ્ધ પ્રલાપ જેવું છે, વિરૂદ્ધ છે, પ્રાણીના વધ અથવા બન્ધનનો પિતા છે, વૈરવૃત્તિવાળું છે, કલહ

करम् आचार्योपाध्याय गुर्वाद्यवज्ञाकरं भवति, तत्सर्वमनृत मुच्यते। अनृतस्य विवक्षाऽपि अनृतवचनोपायचिन्तनमपि प्रमत्तयोगादनृतं बोध्यम् ॥२६॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वसूत्रे-हिंसादि विरतिलक्षणव्रतघटकतयोपात्तानां हिंसाऽनृतस्तेयमैथुनपरिग्रहाणां मध्ये प्रथमं हिंसायाः स्वरूपं निरूपितम्, सम्प्रति-क्रमप्राप्तस्य द्वितीयस्य मृषावादस्य स्वरूपं निरूपयितुमाह-'असच्चाभिहाणं मुसावाओ' इति। असत्याऽभिधानम्-प्रमत्तयोगात् असदभिधानम्, सच्छब्दः प्रशंसावाची सतः प्रशस्तस्य भावः सत्यम् न सत्यम्-असत्यम्, अप्रशस्तम् अभिधानं-वचनं मृषावाद उच्यते, अभिधानशब्दो भावसाधनः-करणसाधनो वा बोध्यः। तथा च प्रमत्तः कायवाङ्मनोयोगैर्यदसदभिधानं प्रयुङ्क्ते, तदनृत-

---

के वध या बन्धन का जनक है, वैर कारक है, कलह आदि को उत्पन्न करता है, त्रासोत्पादक है, आचार्य उपाध्याय अथवा गुरु आदि की अवज्ञा करने वाला होता है, वह सब अनृत कहलाता है। अनृत भाषण की इच्छा करना और अनृत बोलने का उपाय सोचना भी प्रमत्तयोग के कारण अनृत ही है, ऐसा समझना चाहिए ॥२६॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--हिंसा विरति आदि व्रतों के विरोधी हिंसा, असत्य, स्तेय, मैथुन और परिग्रह में से हिंसा का स्वरूप पहले कहा जा चुका है। अब क्रम प्राप्त दूसरे मृषावाद का स्वरूप कहते हैं-

प्रमाद के योग से असत्य भाषण करना मृषावाद है। सत् शब्द प्रशंसावाचक है। सत अर्थात् प्रशस्त का भाव सत्य कहलाता है। जो सत्य न हो वह असत्य या अप्रशस्त, ऐसा वचन मृषावाद है।

'अभिधान' शब्द भावसाधन अथवा करणसाधन समझना

વગેરેને ઉત્પન્ન કરે છે, ત્રાસોત્પાદક છે, આચાર્ય ઉપાધ્યાય અથવા ગુરૂ વગેરેની અવજ્ઞા કરનાર હોય છે. આ બધું અનૃત કહેવાય છે. અનૃત ભાષણની ઇચ્છા કરવી તેમજ અનૃત બોલવાનો ઉપાય શોધવો એ પણ પ્રમત્ત યોગના કારણે અનૃત જ છે, એમ સમજવુ જોઈએ ॥૨૬॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—હિંસાવિરતિ આદિ વ્રતોના વિરોધી હિંસા, અસત્ય, સ્તેય, મૈથુન પરિગ્રહમાંથી હિંસાનું સ્વરૂપ પહેલા કહેવાઇ ગયું છે હવે ક્રમપ્રાપ્ત બીજા મૃષાવાદનું સ્વરૂપ કહીએ છીએ-

પ્રમાદના યોગથી અસત્ય ભાષણ કરવું મૃષાવાદ છે. સત્ શબ્દ પ્રશંસાવાચક છે. સત્ અર્થાત્ પ્રશસ્તનો ભાવ સત્ય કહેવાય છે જે સત્ય નથી તે અસત્ય અથવા અપ્રશસ્ત, આવું વચન મૃષાવાદી છે.

'અભિધાન' શબ્દ ભાવસાધન અથવા કરણસાધન સમજવો જોઈએ.

मुच्यते, तदेवाऽनृतं मृषावाद उच्यते, मृषावदनं-मृषावादः, अभिधानं वचनं वाग्योग विषयः, अभिनिविष्टचेतसः प्रमत्तस्यात्मनः कर्तुरभिप्रेतप्रतिपादने साधकतमत्वात्, कायेन कर-चरणनयनोष्ठाद्यवयवक्रियाभिरलीकाभिः परं प्रतारयति वाचाऽप्यसद् ब्रवीति मनसाऽपि परिचिन्तयति यद् एवं खलु परो वञ्चनीयः इति। तथा चाऽऽप्तपुरुष प्रणीतागमे निन्दितं निषिद्धं वा यदभिधानं तत्-असदभिधानं खलु-मृषावाद इति फलितम्। तच्चाऽसत्याभिधानं द्विविधम्, भूतनिह्नवः अभूतोद्भावनश्च। तत्र भूतस्य विद्यमानस्य वस्तुनो निह्नवोऽपलापो भूतनिह्नवः, यथा—'नास्ति आत्मा' 'नास्ति परलोकः' इत्यादि। अत्र विद्यमानस्यैवात्मनः शुभाऽशुभकर्मणां फल-

---

चाहिए अभिप्राय यह है कि प्रमादयुक्त पुरुष काययोग वचनयोग और मनोयोग से जो असत् वचनों का प्रयोग करता है, वह अनृत कहलाता है। अनृत को मृषावाद भी कहते हैं। जिस के चित्त में आवेश उत्पन्न हुआ है ऐसा प्रमादी पुरुष अपने इष्ट अभिप्राय को व्यक्त करने के लिए अगर हाथों पैरों नेत्रों एवं होठों आदि अवयवों की मिथ्या चेष्टाओं द्वारा दूसरे को ठगता है, वचन से असत्य भाषण करता है, मन से भी ऐसा ही सोचता है कि दूसरे को कैसे ठगा जाय, यह सब असत्य है। फलित यह हुआ कि निन्दित या निषिद्ध वचन असदभिधान या मृषावाद कहलाता है।

मृषावाद दो प्रकार का है—भूतनिह्नव और अभूतोद्भावन। जो वस्तु विद्यमान है उसका अपलाप करना भूतनिह्नव है, जैसे—आत्मा नहीं है, परलोक नहीं है, इत्यादि कहना। कोई-कोई शुभ और अशुभ

સારાશ એ છે કે પ્રમાદયુક્ત પુરૂષ કાયયોગ વચનયોગ અને મનોયોગથી જે અસત્ વચનોથી પ્રયોગ કરે છે તે અનૃત કહેવાય છે. અનૃતને મૃષાવાદ પણ કહે છે. જેના ચિત્તમા આવેશ ઉત્પન્ન થયો હોય એવો પ્રમાદી પુરૂષ પોતાને ગમતા અભિપ્રાયને વ્યક્ત કરવા માટે અથવા હાથ, પગ, આંખો અને હોઠ આદિ અવયવોની મિથ્યા ચેષ્ટાઓ દ્વારા બીજાને છેતરે છે, વચનથી અસત્ય ભાષણ કરે છે, મનથી પણ એવું જ વિચારે છે કે બીજાને કેવી રીતે છેતરી શકાય, આ બધું અસત્ય છે. ફલિત એ થયું કે નિન્દિત અથવા નિષિદ્ધ વચન અસદભિધાન અથવા મૃષાવાદ કહેવાય છે.

મૃષાવાદ બે પ્રકારના છે—ભૂતનિહ્નવ અને અભૂતોદ્ભાવન જે વસ્તુ વિદ્યમાન છે તેને અપલાપ કરવો ભૂતનિહ્નવ છે, જેમ કે— આત્મા નથી, પરલોક નથી વગેરે કહેવું. કોઈ કોઈ શુભ અને અશુભ કર્મોના ફળ ભોગ-

भोक्तुः अनुभवितुः स्मरणकर्तुश्च नास्तित्वं केचनाऽज्ञानमोहमुग्धाः जनाः कल्पयन्ति। एवं जीवानां स्व-स्वकृत कर्मानुसारेण सुखदुःखनियामकतया पुण्य पापरूपधर्माऽधर्मयोरपि आप्तागमप्रमाणसिद्धमस्तित्वं केचन नास्तिका मोहाद्वाऽनुमन्यन्ते। एवम् अभूतस्य सदसद्भावप्रतिषेधस्योद्भावन मभूतोद्भावनं बोध्यम् अभूतस्याऽविद्यमानस्य वा असद्वस्तु स्वरूपस्योद्भावनम् अभूतोद्भावन मुच्यते। तथाहि–यथाऽवस्थिताऽऽत्मसद्भावनम् असंख्येय प्रदेशपरिमाणम् पुद्गल चयोपचयतारतम्य प्रयुक्तशरीर विशेशाश्रयवशात् सङ्कोचविकासशालिनं रूप-रसगन्धस्पर्शरहितम् अनेकविधक्रियायुक्तं तिरस्कृत्याऽभूतमेवात्म तत्त्व

कर्मों का फल भोगने वाले और स्मरण करने वाले आत्मा का, जो वास्तव में विद्यमान है, निषेध करते हैं। ऐसे लोग अज्ञान और मोह के कारण मूढ हैं। जीवों को अपने–अपने किये कर्म के अनुसार जो सुख या दुःख प्राप्त होता है, उसके नियामक धर्म–अधर्म हैं जिन्हें पुण्य और पाप कहते हैं। ये दोनों तत्त्व आप्त प्रणीत आगम से सिद्ध हैं। फिर भी कोई–कोई नास्तिक अज्ञान के कारण उनका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। यह भूत निह्नव असत्य है।

इसी प्रकार जो वस्तु नहीं है, उसका सद्भाव कहना अभूतोद्भावन असत्य समझना चाहिए। अभूत अर्थात् अविद्यमान वस्तु को भूत या विद्यमान कहना अभूतोद्भावन है। जैसे कोई–कोई अज्ञानी असंख्यातप्रदेशी, पुद्गलों के चय–उपचय की तरतमता के अनुसार निर्मित शरीर में रहने के कारण संकोच विकासशील, रूप–रस–गंध

વનારા અને સ્મરણ કરનારા આત્મા નો જે હકીકતમાં વિદ્યમાન છે, નિષેધ કરે છે. આવા લોકો અજ્ઞાન અને મોહના કારણે મૂઢ છે. જીવોને પોતપોતાના કરેલા કર્મ અનુસાર જે સુખ અથવા દુઃખ પ્રાપ્ત થાય છે તેના નિયામક ધર્મ–અધર્મ છે જેમને પુણ્ય અને પાપ કહે છે આ બંને તત્ત્વ આપ્તપ્રણીત આગમથી પ્રામાણિત છે તેમ છતાં કોઈ–કોઈ નાસ્તિક અજ્ઞાનના કારણે તેમનું અસ્તિત્વ સ્વીકારતા નથી. આ ભૂતનિહ્નવ અસત્ય છે.

આવી જ રીતે જે વસ્તુ છે જ નહીં તેનો સદ્ભાવ કહેવો એ અભૂતોદ્ભાવન અસત્ય સમજવું જોઈએ. અભૂત અર્થાત્ અવિદ્યમાન વસ્તુને ભૂત અથવા વિદ્યમાન કહેવું અભૂતોદ્ભાવન છે જેવી રીતે કોઈ–કોઈ અજ્ઞાની અસંખ્યાતપ્રદેશી, પુદ્ગલોના ચય–ઉપચયની તરતમતા અનુસાર નિર્મિત શરીરમાં રહેવાના કારણે સંકોચ વિકાસશીલ રૂપ–રસ–ગંધ–સ્પર્શ રહિત

समुद्भासयन्ति केचन ज्ञानिनः यथा श्यामाकतण्डुल प्रमाणमात्रोऽयमात्मा वर्तते अंगुष्ठ पर्वमात्रोऽयमात्मा, सूर्यसदृशवर्णः, निष्क्रिय इत्यादि । निष्क्रियत्वञ्चा-ऽऽत्मनः सर्वगतत्वेन विभुत्वात् गमनाऽगमनवीक्षणभोजनादि क्रियायाः काय-वाङ्मनः करणजनिताया अभावसम्भवात्तथ्यम्, तदप्यसद् दर्शनम् आत्मनो विभुत्वे प्रमाणाभावेन सर्वगतत्वाऽसम्भवात् सर्वगतस्यात्मनः सर्वत्र सर्वोपलब्धिप्रसङ्गश्च अथ यत्रैवोपभोगोपलब्ध्यधिष्ठानं शरीरं विद्यते तत्रैवोपलब्धिः स्यान्नाऽन्यत्र

स्पर्श से रहित और अनेक प्रकार की क्रियाओं से युक्त आत्मा को स्वीकार न करके अभूत आत्मतत्व का कथन करते हैं। जैसे-कोई कहते हैं कि आत्मा श्यामाक (सामा) के चावल के बराबर है, कोई कहते हैं अंगूठे के पर्व के बराबर है, सूर्य के समान वर्णवाला है, क्रिया-हीन है। क्रियाहीन होने का कारण आत्मा की विभुता अर्थात् व्याप-कता है। व्यापक होने के कारण आत्मा में गमन, आगमन, अवलोकन, भोजन आदि क्रियाओं का-जो मन वचन और काय से उत्पन्न होती हैं, अभाव है। ऐसा कहना सत्य नहीं है, क्यों कि आत्मा के व्यापक होने में कोई प्रमाण नहीं है, अतएव उसका व्यापक होना असंभव है। अगर आत्मा सर्वव्यापक होती तो उसकी सर्वत्र उपलब्धि होनी चाहिए। अगर कहा जाय कि सुख दुःख के उपभोग का आयतन शरीर जहां विद्यमान होता है, वहीं आत्मा की उपलब्धि होती है, जहां शरीर नहीं होता वहां आत्मा की भी उपलब्धि नहीं होती इसका

અને અનેક પ્રકારની ક્રિયાઓથી યુક્ત આત્માનો સ્વીકાર નહીં કરીને અભૂત આત્મતત્ત્વનું કથન કરે છે. જેમ કે-કોઈ કહે છે કે આત્મા શ્યામાક (સામા)ના ચોખા જેવો છે, કોઈ કહે છે-અંગૂઠાના ટોચ બરાબર છે, સૂર્યના જેવા વર્ણવાળો છે, ક્રિયાહીન છે. ક્રિયાહીન હોવાનું કારણ આત્માની વિભુતા અર્થાત્ વ્યાપકતા છે. વ્યાપક હોવાને લીધે, આત્મામાં ગમન, આગમન, અવલોકન, ભોજન આદિ ક્રિયાઓનો જે મન વચન અને કાયાથી ઉત્પન્ન થાય છે-અભાવ છે એ પ્રમાણે કહેવું સત્ય નથી કારણ કે આત્માના વ્યાપક હોવા માટેનું કોઈ પ્રમાણ નથી માટે તેનું વ્યાપક હોવું શકય નથી. જો આત્મા સર્વવ્યાપી હોત તો બધે જ તેની ઉપલબ્ધિ પણ હોવી જોઈએ અગર એમ કહી શકાય કે સુખદુઃખના ઉપભોગનું આયતન શરીર જ્યાં વિદ્યમાન હોય છે ત્યાં જ આત્માની ઉપલબ્ધિ હોય છે. જ્યાં શરીર ન હોય ત્યાં આત્મા પણ ન હોઈ શકે. આનુ સમાધાન એ છે કે અન્યત્ર પણ

तदभावात्। इति चेन्! अत्रोच्यते अन्यत्राऽपि बहूनां शरीराणां सम्भवात्। अथ स्वधर्माऽधर्मरूपाऽदृष्टोत्पादितशरीरावच्छेदेनैवोपभोगोपलब्धिः स्यात् न तथाविधाऽन्यशरीरावच्छेदेनेति चे! न्मैवम्, आत्मनो निष्क्रियत्वेन तथाविध कल्पनाऽसम्भवात्। निष्क्रियस्यात्मनस्तादेव धर्माऽधर्मौ निजौ वर्तेते इति वक्तुम शक्यत्वात्, निष्क्रियस्य संसारमुक्तिस्याग प्राप्त्युपायाऽनुष्ठाना सम्भवात् निष्क्रियत्व मात्मनो न कथमपि युक्तं सम्भवति एव मात्मनः क्षणविनश्वरत्व विज्ञान-मात्रतोद्भावनं रूपादि पञ्चस्कन्धमात्रतोद्भावन मनिर्वचनीयत्वोद्भावनञ्च सर्वमनृतम्, एव मर्थान्तरंच गावोऽश्वं ब्रवीति 'अश्वश्च गां ब्रवीति' अचौरञ्च

समाधान यह है कि अन्यत्र भी बहुत-से शरीर संभव हैं। कदाचित् कहो कि अपने ही धर्म-अधर्म रूप अदृष्ट से उत्पन्न हुए शरीर के अन्दर ही सुख-दुःख का उपभोग होता है, दूसरे के शरीर में दूसरी आत्मा उपभोग नहीं करती, किन्तु ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्यों कि निष्क्रिय होने के कारण आत्मा में उपभोग क्रिया घटित नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त आत्मा जब व्यापक है तो अमुक धर्म-अधर्म निजी हैं, अमुक नहीं, इस प्रकार का व्यवहार हो ही नहीं सकता। क्रियाशून्य आत्मा मुक्ति की प्राप्ति आदि के लिए अनुष्ठान भी नहीं कर सकती। इस प्रकार आत्मा को निष्क्रिय मानना किसी भी प्रकार संगत नहीं है।

इसी प्रकार आत्मा को क्षण विनश्वर मानना, विज्ञान मात्र कहना अथवा रूप आदि पांच स्कंध रूप कहना या एकान्ततः अनिर्वचनीय मानना, यह सब असत्य है। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं के विषय में

ઘણા શરીર હોઈ શકે કદાચિત્ કહી શકાય કે પોતાના જ ધર્મ-અધર્મ રૂપ અદૃષ્ટથી ઉત્પન્ન થયેલા શરીરની અન્દર જ સુખદુઃખનો ઉપભોગ થાય છે બીજાના શરીરમાં બીજો આત્મા ઉપભોગ કરતો નથી પરન્તુ આમ કહેવું પણ યોગ્ય નથી કારણ કે નિષ્ક્રીય હોવાના કારણે આત્મામાં ઉપભોગ ક્રિયા ઘટિત થઈ શકતી નથી. આ સિવાય આત્મા જો વ્યાપક છે તો અમુક ધર્મ-અધર્મ પોતાના છે, અમુક નહીં, એ જાતનો વ્યવહાર થઇ શકતો જ નથી. ક્રિયાશૂન્ય આત્મા મુક્તિની પ્રાપ્તિ આદિ માટે અનુષ્ઠાન પણ કરી શકતો નથી. આવી રીતે આત્માને નિષ્ક્રીય માનવો કોઈ પણ રીતે સુસંગત નથી.

આવી જ રીતે આત્માને ક્ષણભંગુર માનવો, વિજ્ઞાન માત્ર કહેવો, અથવા રૂપ આદિ પાંચ સ્કંધ રૂપ કહેવો અથવા એકાન્તતઃ અનિર્વચનીય માનવો, આ બધું અસત્ય છે. આ જ રીતે અન્યત્ર વસ્તુઓના વિષયમાં

चौरं ब्रवीति, एवं हिंसायुक्तं पारुष्य पैशुन्य शाठ्य दम्भच्छलकपटादियुक्तश्च वचनं सत्यमपि गर्हितमेव, सावद्यत्वात्, उक्तं दशवैकालिके ७ अध्ययने २ उद्देशके—

'जा य सच्चा अवत्तव्वा–सच्चा मोसा य जा मुसा।
'जा य बुद्धेहिं णाइण्णा–ण तं भासिज्ज पण्णवं ॥१॥ इति।
'याच सत्या अवक्तव्या सत्या मृषा च या मृषा ।
या च बुद्धैरनाचीर्णा नैनां भाषेत प्रज्ञावान् ॥१॥ इति

अन्यदप्युक्तम्—'यद्रागरोगसद्वाक्यं तत्त्वादन्यत्र वर्तते ।
सावद्यं वापि यत्सत्यं तत्सर्वमनृतं विदुः ॥१॥

एवमन्यत्राऽप्युक्तम् अनृतमसद्वचनं स्याच्चतुर्विधमसच्च जिनवरैर्दृष्टम्।
सद्भूत प्रतिषेधोऽसद्भूतोद्भावनं च तथा ॥१॥ इति

असत्य समझ लेना चाहिए, जैसे–गाय को अश्व कहना, अश्व को गाय कहना, अचौर को चोर कहना आदि। इसी प्रकार जो वचन हिंसा से युक्त है, कठोर है, पैशुन्य, शठता, दंभ, छल कपट आदि से युक्त है, वह सत्य होने पर भी गर्हित है, क्यों कि वह सावद्य है। दशवैकालिक सूत्र के सात वें अध्ययन में कहा हैं–'विवेकवान् श्रमण ऐसी भाषा का प्रयोग न करे जो सत्य होने पर भी बोलने के योग्य न हो, जो सत्यमृषा (सच्ची–झूठीमिश्र भाषा) हो, मृषा हो या ज्ञानी जनों ने जिसका आचरण न किया हो ॥१॥

अन्यत्र भी भी कहा है–'जो वचन रागरूपी रोग से युक्त हो, जो तत्व से दूर अर्थात् वास्तविकता से रहित हो अथवा सावद्य हो उस सब को ज्ञानी पुरुष असत्य कहते हैं ॥१॥

અસત્ય સમજી લેવું જોઈએ જેમ કે ગાયને ઘોડો કહેવો, ઘોડાને ગાય કહેવી, ચોર ન હોય તેને ચોર કહેવો વગેરે આવી જ રીતે જે વચન હિંસાથી યુક્ત છે, કઠોર છે, પૈશુન્ય, શઠતા, દંભ છળ–કપટથી ભરેલું છે તે વચન સત્ય હોવા છતાં પણ વર્જ્ય છે કારણ કે તે સાવદ્ય છે. દશવૈકાલિક સૂત્રના સાતમાં અધ્યયનમાં કહ્યું છે–

વિવેકવાન શ્રમણ એવી ભાષાનો પ્રયોગ ન કરે જે સત્ય હોય તો પણ બોલવા માટે યોગ્ય ન હોય, જે સત્યામૃષા (સાચી–જુઠી મિશ્રભાષા) હોય, મૃષા હોય અથવા જ્ઞાનીપુરૂષોએ જેનું આચરણ ન કર્યું હોય. ॥૧॥

અન્યત્ર પણ કહ્યું છે–'જે વચન રાગરૂપી રોગથી યુક્ત હોય, જે તત્ત્વથી દૂર અર્થાત્ વાસ્તવિકતા વગરનું હોય અથવા સાવદ્ય હોય તે બધાંને જ્ઞાની અસત્ય કહે છે.' ॥૧॥

यथा 'नास्ति घटः' इति, 'शशशृङ्गमस्ति' इति, गर्हितवचनम् असत् सतोऽपि वाऽन्यथावाचनं यथा-गर्हितमुपघातादि, अन्यच्च-चौरस्त्वं इति वचनं चेति, सर्वमनृतवचनम्, तस्मात् प्रमत्तयोगादसदभिधानं मृषावाद इति व्यवस्थितम्। तच्चाऽसदभिधानरूपमनृतं संक्षेपेण चतुः स्थानसंग्रहीतं सर्वं द्रव्यविषयमवसेयम्, द्रव्याणि च लोकालोकावच्छिन्नानि बोध्यानि, कालः खलु-रात्रिन्दिवलक्षणः, भावतो राग-द्वेष-मोहपरिणत आत्मा भवति ॥१३। २६

मूलम्—अदिण्णादाणं तेणिक्कं ॥२७॥

छाया—'अदत्तादानं स्तेयम् २७।

दूसरे स्थल में भी कहा है—'असत् वचन अनृत कहलाता है। जिनेन्द्र भगवान् ने असत् वचन चार प्रकार के कहे हैं, जिन में से सद्भूत का प्रतिषेध और असद्भूत का उद्भावन भी है ॥१॥ जैसे घट नहीं है खरगोश का सींग है आदि। गर्हित वचन असत् होता है अथवा सत् को भी अन्यथा कहना गर्हित है। इस प्रकार के सब वचन अनृत हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रमत्तयोग से असत् भाषण करना मृषावाद कहलाता है। असत्यभाषण संक्षेप से चार प्रकार का है और सभी द्रव्य उसके विषय होते हैं। द्रव्य लोकालोकावच्छिन्न हैं, काल रात्रि-दिवस रूप है, राग, द्वेष और मोहरूप में परिणत आत्मा समझना चाहिए ॥२६॥

'अदिण्णादाणं तेणिक्कं'।

सूत्रार्थ—अदत्तादान स्तेय कहलाता है ॥२७।

બીજે પણ આવું જ કહ્યું છે.–અસત્ વચન અનૃત કહેવાય છે જિનેન્દ્ર ભગવાને અસત્ વચન ચાર પ્રકારના કહેલા છે, જેમાંથી સદ્ભૂતનો પ્રતિષેધ અને અસત્ભૂતનું ઉદ્ભાવન પણ છે.' ॥૧॥ દા ત. ઘડો નથી. સસલાનું શીંગડું છે. વગેરે ગર્હિત વચન અસત્ કહેવાય છે અથવા સત્ને પણ અન્યથા કહેવું વર્જ્ય છે આ પ્રકારના બધાં વચન અનૃત છે. આ ઉપરથી એ સાબિત થયું કે પ્રમત્તયોગથી અસત્ ભાષણ કરવું મૃષાવાદ કહેવાય છે. અસત્ય ભાષણ સંક્ષેપથી ચાર પ્રકારના છે અને બધા જ દ્રવ્ય એના વિષય હોય છે દ્રવ્ય લોકાલોકાવચ્છિન્ન છે. કાલરાત્રિ–દિવસ રૂપ છે, ભાવથી રાગદ્વેષ અને મોહ રૂપમાં પરિણુત આત્મા સમજવો જોઈએ. ॥૨૬॥

'अदिण्णादाणं तेणिक्क'

સૂત્રાર્થ–અદત્ત દાન સ્તેય કહેવાય છે. ॥૨૭॥

तत्त्वार्थदीपिका–पूर्वं तावत् प्राणातिपाताऽनृतस्तेयमैथुनपरिग्रहेषु पञ्चसु अव्रतेषु प्राणातिपाताऽनृतस्वरूपं सविशदं निरूपितम् सम्प्रति क्रमप्राप्तं स्तेयं प्रतिपादयितुमाह–'अदिण्णादाणं तेणिक्कं' इति। अदत्तादानम् अदत्तस्य वस्तु स्वामिनाऽसमर्पितस्य वस्तुनः आदानं प्रमत्तयोगाद् ग्रहणं स्तेयं–चौर्य मुच्यते। तथाच–यल्लोकैः स्वीकृतं सर्वलोकप्रवृत्तिगोचरं यद्वस्तु स्वामिनाऽदत्तं तस्य वस्तुनो ग्रहणं प्रमत्तयोगाद् जिघृक्षावा, ग्रहणोपाय परिचिन्तनं वा स्तेय मुच्यते तेन–कर्म नो कर्म ग्रहणस्याऽन्येनाऽदत्तस्याऽपि स्तेयत्वं न भवति तद्ग्रहणे आत्मपरिणामादन्यस्य दायकस्याऽभावात् त्रिभुवनभृत तद्योग्याणुवर्गणानामस्वामिकत्वात् तत्र–स्तेयव्यवहारो न भवति. तथा च–दानादाने यत्र सम्भवत स्तत्रैव

तत्त्वार्थदीपिका—हिंसा, असत्य, स्तेय, मैथुन और परिग्रह, इन पांच अव्रतों में से प्राणातिपात और अनृत का विशद स्वरूप बतलाया जा चुका है। अब क्रमप्राप्त स्तेय का स्वरूप कहते हैं–

प्रमाद के योग से स्वामी के द्वारा अप्रदत्त वस्तु को ग्रहण करना स्तेय कहलाता है। इसी को अदत्तादान या चौर्य कहते हैं। जो लोगों द्वारा स्वीकृत हो, सब की प्रवृत्ति का गोचर हो किन्तु जिसे उसके स्वामीने प्रदान न किया हो, उस वस्तु को प्रमादयोग से ग्रहण करना, ग्रहण करने की इच्छा करना अथवा ग्रहण करने के उपाय का चिन्तन करना स्तेय कहलाता है। अतएव दूसरे के द्वारा अदत्त होने पर भी कर्मों और नो कर्मों का ग्रहण करना स्तेय नहीं कहलाता, क्यों कि आत्मा के परिणाम के सिवाय उनका कोई दाता नहीं है। तीन लोक में भरी हुई अणुओंकी वर्गणाओं का कोई स्वामी नहीं है, अतः उनके

તત્ત્વાર્થદીપિકા–હિંસા, અસત્ય, સ્તેય, મૈથુન અને પરિગ્રહ આ પાંચ અવ્રતોમાંથી પ્રાણાતિપાત અને અવ્રતનું વિશદ સ્વરૂપ બતાવવામાં આવ્યું છે હવે ક્રમપ્રાપ્ત સ્તેયનું સ્વરૂપ કહીએ છીએ–

પ્રમાદના યોગથી સ્વામી દ્વારા નહીં આપવામાં આવેલી વસ્તુને ગ્રહણ કરવી સ્તેય કહેવાય છે. આને જ અદત્તાદાન અથવા ચૌર્ય કહે છે. જે લોકો દ્વારા સ્વીકૃત હોય, બધાની પ્રવૃતિનું ગોચર હોય પરન્તુ જેને તેના માલિકે આપેલું ન હોય, તે વસ્તુનો પ્રમાદયોગથી સ્વીકાર કરવો, સ્વીકારવાની ઇચ્છા કરવી અથવા સ્વીકારવાનો ઉપાય વિચારવો સ્તેય કહેવાય છે આથી બીજા વડે અદત્ત હોવા છતાં પણ કર્મો અને અકર્મોનું ગ્રહણ કરવું સ્તેય કહેવાતું નથી કારણ કે આત્માના પરિણામ સિવાય તેમનો કોઈ દાતા નથી. ત્રણ લોકમાં ભરેલા અણુઓની વર્ગણાઓનો કોઈ માલિક નથી આથી

स्तेयव्यवहारो भवति, अदत्तपदोपादानसामर्थ्यात् अथैवमपि-श्रमणस्य भिक्षोर्ग्राम नगरादिषु गोचरीग्रहणार्थं भ्रमणकाले रथ्याद्वारादि प्रवेशाद्दत्तादान प्रसक्तिरिति चेत् ! अत्रोच्यते-सामान्येनोद्घाटितत्वात् तत्र प्रवेशोऽप्यदत्तादानप्रसङ्गो न भवति तथाहि-अयं भिक्षुः पिहितद्वारादिषु न प्रविशति, अनुद्घाटितत्वात् । यद्वा-प्रमत्त योगादित्यस्याऽत्रापि सम्बन्धात् प्रमत्तयोगा ददत्ताऽऽदानस्यैव स्तेयत्वं भवति केवलं रथ्याद्वारादिषु प्रविशतो भिक्षोः प्रमत्तयोगाभावेनाऽदत्तादानप्रसङ्गो न

ग्रहण में चोरी का व्यवहार नहीं होता। जहां देने और लेने का व्यवहार संभव हो वहीं स्तेय का व्यवहार होता है, क्यों कि सूत्र में 'अदत्त' पद का प्रयोग किया गया है।

शंका--अनगार भिक्षु भिक्षा के लिए ग्राम, नगर आदि में भ्रमण करता है तब वह मार्ग में तथा द्वार आदि में प्रवेश करता है। उसे भी अदत्तादान का दोष होना चाहिए।

समाधान--मार्ग और द्वार सभी के लिए खुले रहते हैं, अतः उनका उपयोग करने में अदत्तादान का प्रसंग नहीं होता। हां, साधु बन्द द्वार को खोल कर उसके भीतर प्रवेश नही करता, क्यों कि वह उघाडा नहीं होता अथवा 'प्रमत्त योगात्' अर्थात् 'प्रमाद युक्त पुरुष के योग से' इस पद का यहां भी अध्याहार होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रमत्तयोग से अदत्त का आदान ही स्तेय है, केवल गली या द्वार में प्रवेश करने वाला भिक्षु प्रमत्तयोग वाला नहीं होता, अत

તેમને ગ્રહણ કરવામાં ચોરીનો વ્યવહાર થતો નથી. જ્યાં આપ-લેનો વ્યવહાર સંભવ હોય ત્યાં જ સ્તેયનો વ્યવહાર થાય છે કારણ કે સૂત્રમાં 'અદત્ત' પદનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે.

શંકા-અણુગાર ભિક્ષા અર્થે ગામ, નગર આદિમાં ભ્રમણ કરે છે ત્યારે તે રસ્તામાં તથા દ્વાર આદિમાં પ્રવેશ કરે છે તેને પણ અદત્તદાનનો દોષ લાગવો જોઈએ.

સમાધાન-રસ્તો તથા દ્વાર બધાંને માટે ખુલ્લા હોય છે, આથી તેમનો ઉપયોગ કરવામાં અદત્તાદાનનો પ્રસંગ ઉપસ્થિત થતો નથી. એટલું ખરૂં કે સાધુ બંધ દ્વારને ઉઘાડીને તેની અંદર પ્રવેશ કરતા નથી, કારણ કે તે ઉઘાડું હોતું નથી. અથવા 'પ્રમત્તયોગાત્' અર્થાત્ પ્રમાદ યુક્ત પુરૂષના યોગથી 'આ પદનો અહીં પણ અધ્યાહાર હોય છે. આનું તાત્પર્ય એ થયું કે પ્રમત્તયોગથી અદત્તનું આદાન એ જ સ્તેય છે, માત્ર ગલી અથવા દ્વારમાં પ્રવેશ કરનારો ભિક્ષુ પ્રમત્તયોગવાળો હોતો નથી, આથી તેને અદત્તા-

सम्भवति, तथा च-यत्राऽऽत्मनः संक्लेश परिणामेनाऽदत्तग्रहणार्थं प्रवृत्ति स्तत्रैव बाह्यवस्तुनो ग्रहणेऽग्रहणे वा स्तेयं भवतीति भावः । अदत्तञ्च-पञ्चविधं भवति, देवादत्तम्१ गुर्वदत्तम्२ राजादत्तम्३ गाथापत्यदत्तम्४ साधर्म्यदत्तम्५ ॥२६॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वसूत्रे-हिंसादि लक्षण पञ्चाव्रतेषु हिंसास्वरूप निरूपणानन्तरं मृषावादस्वरूपनिरूपणं कृतम्, सम्प्रतिहि क्रमप्राप्तं स्तेयस्वरूपं निरूपयितुमाह-'अदिण्णादाणं तेणिक्कं' इति । अदत्तादानम्-अदत्तस्य स्वामिनाऽवितीर्णस्य वस्तुन आदानं-प्रमत्तयोगाद्ग्रहणं स्तेय मुच्यते । तथा च-दीयतेस्मयत् तद्दत्तम्, कर्मणि क्तः, कर्म च चेतनाऽचेतनं वस्तु कर्तुरीप्सिततमं भवति,

एव उसे अदत्तादान का प्रसंग भी नहीं होता । आशय यह है कि जहां आत्मा की संक्लेश भाव से अदत्त को ग्रहण करने में प्रवृत्ति होती है, वहीं बाह्य वस्तु का ग्रहण हो या न हो, फिर भी स्तेय कहलाता है । अदत्त पांच प्रकार का है-(१) देवादत्त (२) गुरुअदत्त (३) राजादत्त (४) गाथापति-अदत्त और (५) साधर्मिक अदत्त ॥२७॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--हिंसा आदि पांच अव्रतों में से पहले हिंसा के स्वरूप का निरूपण किया गया, तदनन्तर मृषावाद के स्वरूप का कथन भी किया गया, अब क्रमप्राप्त स्तेय के स्वरूप का निरूपण करने के लिए कहते हैं-

स्वामी के द्वारा अप्रदत्त वस्तु का प्रमत्तयोग से ग्रहण करना अदत्तादान या स्तेय कहलाता है । जो दिया गया हो वह 'दत्त' कहलाता है । यहां कर्म के अर्थ में 'क्त' प्रत्यय हुआ है । कर्त्ता को जो

દાનનો પ્રસંગ પણ આવતો નથી. કહેવાનો ભાવાર્થ એ છે કે જ્યાં આગળ આત્માની સંકલેશભાવથી માલિકે નહીં આપેલી વસ્તુ સ્વીકારવામાં પ્રવૃત્તિ હોય છે તે જ બાહ્ય વસ્તુનું ગ્રહણ થાય કે ન થાય તો પણ સ્તેય કહેવાય છે. અદત્ત પાંચ પ્રકારના છે-(૧) દેવાદત્ત (૨) ગુરૂઅદત્ત (૩) રાજાદત્ત (૪) ગાથાપતિ-અદત્ત અને (૫) સાધાર્મિક અદત્ત ॥૨૭॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—હિંસા આદિ પાંચ અવ્રતોમાંથી પહેલા હિંસાના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, ત્યારબાદ મૃષાવાદના સ્વરૂપનું કથન પણ કરવામાં આવ્યું. હવે ક્રમપ્રાપ્ત સ્તેયના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવા માટે કહીએ છીએ-

માલિક દ્વારા અપ્રદત્ત વસ્તુનું પ્રમત્ત યોગથી ગ્રહણ કરવું અદત્તાદાન, અથવા સ્તેય કહેવાય છે જે આપવામાં આવ્યું હોય તે 'દત્ત' કહેવાય છે. અહીં કર્મના અર્થમાં 'ક્ત' પ્રત્યય થયો છે, કર્તાને જે કરવા માટે પ્રિય હોય

ममेद मित्येवं परिगृहीतं वस्तु पञ्चभि र्देवादिभि र्यस्मै-कस्मैचित् यदीयते तद्दत्त-मित्युच्यते । यत्पुनर्वस्तु देवेन्द्रादिभिः परिगृहीतमेव नतु-दत्तम्, तस्याऽऽदानं ग्रहणं स्वेच्छया धारणं हठेन-बलात्कारेण वा, समक्षमेव-चौर्येण वा, तत्-स्तेयम् । यद्यपि-देवेन्द्रादिभिः परिगृहीतमभिदीयमानमपि किञ्चित्-शय्याहारपानपात्रवस्त्रो-पधिषु-अनेषणीयादिकं तीर्थकृता नाऽनुज्ञात मागमे, तदपि-स्तेयमेवाऽवसेयम् । एवञ्चाऽनेषणीयादेः परिगृहीतस्यापि परैर्दानेपि तद्ग्रहणेऽदत्तादानविरहेऽपि स्तेयं भवत्येव, शास्त्रेणाऽनेषणीयादेः प्रतिषिद्धत्वेन शास्त्रप्रतिषेधस्य बलवत्त्वात् तत्प्र-

करने के लिए इष्ट हो वह कर्म कहलाता है । 'यह मेरी है' इस रूप में ग्रहण की हुई वस्तु देव आदि पांच में से किसी के द्वारा जिस किसी को दी जाती है वह दत्त कहलाती है । किन्तु जो वस्तु देवेन्द्र आदि के द्वारा परिगृहीत है मगर दत्त नहीं है, उसको ग्रहण करना, स्वेच्छा से धारण करना, हठ से या बलात्कार से उसके सामने या चोरी से ले लेना स्तेय है । देवेन्द्र आदि के द्वारा परिगृहीत और दी जाने वाली भी कोई शय्या, आहार, पानी, पात्र वस्त्र आदि उपधि अनेषणीय हो और तीर्थंकर भगवान् ने आगम में उसकी अनुमति न दी हो तो उसे ग्रहण करना भी स्तेय है । इस प्रकार दूसरे के द्वारा परिगृहीत भी अनेषणीय वस्तु अगर वह देता हो तो अदत्तादान न होने पर भी उसे ग्रहण करना स्तेय ही समझना चाहिए । क्यों कि शास्त्र में अनेषणीय आदि को ग्रहण करने का निषेध किया गया है,

તે કર્મ કહેવાય છે. 'આ મારી છે' આ સ્વરૂપે ગ્રહણ કરવામાં આવેલી વસ્તુ દેવ આદિ પાંચમાંથી કોઇ વડે જે કોઇને આપવામાં આવે છે તે દત્ત કહેવાય છે. પરન્તુ જે વસ્તુ દેવેન્દ્ર આદિ દ્વારા પરિગૃહીત છે પણ દત્ત નથી, તેનો હવાલો લેવો, સ્વેચ્છાથી ધારણ કરવું, દુરાગ્રહ અથવા બળાત્કારથી તેની સામે અથવા ચોરીથી લઇ લેવુ એ સ્તેય છે. દેવેન્દ્ર આદિ દ્વારા પરિગૃહીત અને આપવામાં આવતી હોય તેવી શય્યા ભોજન, પાણી, પાત્ર, વસ્ત્ર આદિ ઉપધિ અનેષણીય છે અને તીર્થંકર ભગવાને આગમમાં તેની આજ્ઞા ન આપી હોય તો તેને ગ્રહણ કરવું એ પણ સ્તેય છે. આ રીતે બીજાના દ્વારા પરિગૃહીત પણ અનેષણીય વસ્તુ જો તે આપતો હોય તો-અદત્તાદાન ન હોવા છતાં પણ તેને ગ્રહણ કરવું સ્તેય જ ગણાય કારણ કે શાસ્ત્રમાં અનેષણીય આદિનું ગ્રહણ કરવાનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે. શાસ્ત્રનો તે પ્રતિષેધ બળવાન છે, આથી જે શાસ્ત્રનિષિદ્ધ છે તેનું ગ્રહણ

तिषिद्धस्य ग्रहणे स्तेयं भवत्येवेति भावः। शास्त्रमपि ज्ञानात्मकम्—आत्मनः परिणामविशेष एव, सोऽपि—शास्त्ररूपः ज्ञानपरिणामविशेषः परिणामिनि-आत्मनि अभेदेनोपचर्यमाणः परशब्देन ग्रहीतुं शक्यो भवति तेन च शास्त्ररूपेण परेणात्मना-ऽदत्तत्वात् तद्ग्रहणेऽदत्तादानं भवत्येवेति भावः। एवमन्यक्षपणे महतघाति कर्मणो भगवत उपदेशात् सञ्जात भावश्रुतपरिणामा गणधरप्रत्येकबुद्धस्थविरा अपि अनेषणीयादिकं प्रतिषेधयन्ति, तच्चाऽदत्तादानं चतुर्विधम्, द्रव्यक्षेत्रकाल—भावभेदात्। तत्र—यदा तृणादेरपि द्रव्यस्य परैः परिगृहीतस्याऽपरिगृहीतस्य वाऽदत्तादानं स्तेयं भवति,तदा किमुनाम वक्तव्यं सुवर्ण—रत्नमरकतपद्मराग मण्यादेः आदानन्तु-गृह्य-

---

शास्त्र का यह प्रतिषेध बलवान् है, अतएव शास्त्रनिषिद्ध के ग्रहण में स्तेय होता है। शास्त्र भी ज्ञानात्मक है आत्माका परिणामविशेष ही है। शास्त्ररूप ज्ञानपरिणाम का परिणामी आत्मा से अभेद का उपचार किया जाता है, अतएव 'पर' शब्द से उसका ग्रहण किया जाना शक्य है। आशय यह हुआ कि शास्त्ररूप पर—आत्मा के द्वारा अदत्त को ग्रहण करना अदत्तादान ही है। घातिया कर्मों का क्षय कर देने वाले भगवान् के उपदेश से भावश्रुत रूप परिणाम जिनमें उत्पन्न हुआ है, ऐसे गणधर तथा प्रत्येक बुद्ध स्थविर भी अनेषणीय आदि का निषेध करते हैं॥

अदत्तादान द्रव्य, क्षेत्र कालऔर भाव के भेद से चार प्रकारका है। जब तृण आदि जैसे द्रव्यों का भी जिन्हें दूसरों ने ग्रहण कर रखा हो या न कर रखा हो बिना दिये ग्रहण करना स्तेय है, तो स्वर्णरत्न, मरकत और पद्मराग मणि आदि का तो कहना ही क्या है, ग्रह्यमाण

કરવું સ્તેય છે. શાસ્ત્ર પણ જ્ઞાનાત્મક છે. આત્માનું પરિણામ વિશેષ જ છે. તે શાસ્ત્ર રૂપ જ્ઞાનપરિણામનું પરિણામી આત્માથી અભેદનો ઉપચાર કરવામાં આવે છે આથી 'પર' શબ્દથી તેનું ગ્રહણ કરવું શક્ય છે આશય—સારાંશ એ થયો કે શાસ્ત્ર રૂપ પર-આત્મા દ્વારા અદત્તને ગ્રહણ કરવું અદત્તાદાન જ છે. ઘનઘાતિ કર્મોનો ક્ષય કરી નાખનારા ભગવાનના ઉપદેશથી ભાવશ્રુત રૂપ પરિણામ જેનામાં ઉત્પન્ન થયું છે, એવા ગણધર તથા પ્રત્યેક બુદ્ધ સ્થવિર પણ અનેષણીય આદિનો નિષેધ ફરમાવે છે.

અદત્તાદાન દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ તથા ભાવના ભેદથી ચાર પ્રકારના છે. જ્યારે તણખલા જેવા દ્રવ્યોનો પણ કે જેનો બીજાઓએ ગ્રહણ કરી રાખ્યા હોય અથવા ગ્રહણ કરી રાખ્યા ન હોય, વગર આપે ગ્રહણ કરવા—સ્તેય છે તો પછી સુવર્ણરત્નમણિ અને પદ્મરાગ મણિ વગેરેની તો વાત જ શું કરવી!

माण,धार्यमाण द्रव्य विषयत्वात् द्रव्यैकदेशविषयमवसेयम्,नतु समस्तद्रव्यविषयम् । ग्रहणधारणे पुनः साक्षात् पुद्गल द्रव्यस्य शरीराणाञ्च, जीवानान्तु-पुद्गल द्रव्य-द्वारेणैव ग्रहणधारणे अवगन्तव्ये, नतु-साक्षादितिभावः उक्तञ्च प्रश्नव्याकरणे ३ आस्रवे-'अदत्तं तेणिक्को' इति, अदत्तं स्तेनकम् । उक्तञ्चाऽन्यत्राऽपि—

परैरनतिसृष्टं यत् यच्च शास्त्रे विगर्हितम् ।
तत्सर्वं न ग्रहीतव्यं दन्तविस्फाटनाद्यपि १॥१४॥ इति ॥२७॥

मूलम्—अबंभचेरं—मेहुणं ॥२८॥

छाया—-अब्रह्मचर्यं-मैथुनम्-' ॥१५ ॥२८

तत्त्वार्थदीपिका—-पूर्वसूत्रे-हिंसादिलक्षणेष्वव्रतेषु यथाक्रमं हिंसामृषावाद

और धार्यमाण द्रव्यों का ही आदान होता है, अतएव उसे द्रव्य के एकदेशविषयक ही समझना चाहिए, समस्त द्रव्यविषयक नहीं समझना चाहिए । भाव यह है कि ग्रहण और धारण साक्षात् रूप से पुद्गलद्रव्य और शरीरों का होता है, जीवों का जो ग्रहण होता है वह पुद्गलद्रव्य के द्वारा ही होता है, साक्षात् रूप से नहीं । प्रश्नव्याकरण-सूत्र के तीसरे आस्रवद्वार में कहा है-अदत्त का अर्थ स्तेय है ।

अन्यत्र भी कहा है-जो वस्तु दूसरों द्वारा प्रदान न की गई हो और जो शास्त्र में विगर्हित (निषिद्ध) हो, उसे ग्रहण नहीं करना चाहिए, चाहे वह दांत खुजलाने का तिनका ही क्यों न हो ॥२७॥

'अबंभचेरं मेहुणं' ॥२८॥

सूत्रार्थ—ब्रह्मचर्य का पालन न करना मैथुन है ॥२८॥

ગ્રહ્યમાણ અને ધાર્યમાણ દ્રવ્યો જ આપી શકાય છે આથી તેને દ્રવ્યના એક દેશવિષયક જ સમજવા જોઈએ સમસ્ત દ્રવ્ય વિષયક સમજવા જોઈએ નહીં. ભાવાર્થ એ છે કે ગ્રહણ અને ધારણ સક્ષત્ રૂપથી પુદ્ગલ દ્રવ્ય અને શરીરોનું હોય છે, જીવોનું જે ગ્રહણ થાય છે તે પુદ્ગલ દ્રવ્ય દ્વારા જ થાય છે, સાક્ષાત્ રૂપથી નહીં. પ્રશ્ન વ્યાકરણ સૂત્રના ત્રીજા આસ્રવદ્વારમાં કહ્યું છે-'અદત્તનો અર્થ સ્તેય થાય છે.'

અન્યત્ર પણ કહ્યું છે-'જે વસ્તુ બીજા દ્વારા આપવામાં આવેલી ન હોય તેમજ શાસ્ત્રમાં જેનો નિષેધ કર્યો હોય, તેનું ગ્રહણ કરવું જોઈએ નહીં, પછી ભલેને તે દાંત ખોતવાની સળી જ કેમ ન હોય.' ॥૨૭॥

'અબંભચેરં મેહુણં' ॥૨૮॥

સૂત્રાર્થ—બ્રહ્મચર્યનું પાલન ન કરવું મૈથુન છે. ॥૨૮॥

निरूपणानन्तरं स्तेयस्वरूपं प्ररूपितम्, सम्प्रति–क्रमप्राप्तं चतुर्थं मैथुनरूपमव्रतं प्ररूपयितुमाह–'अबंभचेरं मेहुणं' इति। अब्रह्मचर्यम्–ब्रह्मचर्यभङ्गः अहिंसादयो धर्मा यस्मिन् परिपाल्यमाने सति बृंहन्ति–वृद्धिं प्राप्नुवन्ति तद्ब्रह्म, तद्ब्रह्म चर्यते सेव्यते येन तद्ब्रह्मचर्यम्, न ब्रह्मचर्यम् यस्मिन् तद्–अब्रह्मचर्यं मैथुनं व्यपदिश्यते ॥१५॥ ॥२८॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः--पूर्वं तावत्–प्राणातिपातादिलक्षणेषु पञ्चाव्रतेषु क्रमशः प्राणातिपात–मृषावाद स्तेय स्वरूपाणि निरूपितानि, सम्प्रति क्रमप्राप्तं मैथुनस्वरूप प्ररूपयितुमाह–'अबंभचेरं मेहुणं' इति। अब्रह्मचर्यम् ब्रह्मचर्याऽभावः, अविद्यमानं ब्रह्मचर्यं यत्र तदब्रह्मचर्यम्। तत्राऽसंख्येयलोकाकाश प्रदेश

तत्त्वार्थदीपिका--हिंसा आदि में से पूर्वसूत्रों में अनुक्रम से हिंसा और मृषावाद के निरूपण के पश्चात् स्तेय के स्वरूप का निरूपण किया गया, अब चौथे मैथुन अव्रत की प्ररूपणा करते हैं–

जिसका पालन करने पर अहिंसा आदि धर्म वृद्धि को प्राप्त होते हैं, वह ब्रह्म कहलाता है। जिसके द्वारा ब्रह्म का आचरण किया जाय वह ब्रह्मचर्य। जिस में ब्रह्मचर्य न हो वह अब्रह्मचर्य अर्थात् मैथुन कहा जाता है ॥२८॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पहले प्राणातिपात आदि अव्रतों में से क्रम से हिंसा, मृषावाद और स्तेय के स्वरूप का निरूपण किया गया, अब क्रम प्राप्त मैथुन के स्वरूप का प्ररूपण करते हैं—

ब्रह्मचर्य के अभाव को अब्रह्मचर्य कहते हैं। आत्मा लोकाकाश के असंख्यात प्रदेशों के बराबर होने से बृहत्–बडा है, अतएव उसे

તત્ત્વાર્થદીપિકા—હિંસા આદિ અવ્રતોમાંથી પૂર્વસૂત્રોમાં અનુક્રમથી હિંસા, અને મૃષાવાદના નિરૂપણ પછી સ્તેયના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું. હવે ચોથા મૈથુન અવ્રતની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ–

જેનું પાલન કરવાથી અહિંસા આદિ ધર્મ વૃદ્ધિને પ્રાપ્ત થાય છે તે બ્રહ્મ કહેવાય છે જેના વડે બ્રહ્મનું આચરણ કરવામાં આવે તે બ્રહ્મચર્ય જેમાં બ્રહ્મચર્ય ન હોય તે અબ્રહ્મચર્ય અર્થાત્ મૈથુન કહેવાય છે ॥૨૮॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા પ્રાણાતિપાત આદિ પંચ અવ્રતોમાંથી ક્રમથી હિંસા, મૃષાવાદ અને સ્તેયના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે ક્રમપ્રાપ્ત મૈથુનના સ્વરૂપનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ–

બ્રહ્મચર્યના અભાવને અબ્રહ્મચર્ય કહે છે. આત્મા લોકાકાશના અસંખ્યાત પ્રદેશોની બરાબર હોવાથી બૃહત્-વિશાળ છે, આથી તેને બ્રહ્મ કહે

परिमाण बृहत्वादात्मा ब्रह्म, स एव चरणं चर्यं ब्रह्म न आत्मनः सेवनम्, आत्मनि मरणपर्यन्तं न स्त्र्यादि विषयम्, बहिर्मुखचित्तवृत्तित्वं ब्रह्मचर्य मुच्यते। तस्मात्-कृतकारितानुमतिसहितैः कायवाङ्मनोयोगैः सर्वथा कामिनी विषयैः परिहारो ब्रह्मचर्यम्. संवृतेन्द्रियद्वारत्वात्-आत्मन्येव वृत्तित्वात्-प्रतिष्ठितत्वाच्च, तद्विपरीतमब्रह्मचर्यम्। तच्च विवेकिनो विवेकबलादुपशान्तरागादि रजोमलाः सर्वथा खलु परित्यजन्तीति भावः। उक्तञ्च प्रश्नव्याकरणे ४ आस्रवद्वारे 'अबंभं मेहुणं' इति, अब्रह्म मैथुनमिति ॥१५॥ ॥२८॥

मूलम्—मुच्छापरिग्गहो ॥२९॥

छाया—'मूर्च्छा परिग्रहः ॥२९॥

ब्रह्म कहते हैं, उसका चरण अर्थात् सेवन करना ब्रह्मचर्य है। मृत्युपर्यन्त स्त्री आदि का सेवन न करना, चित्त की बहिर्मुख वृत्ति न होना ब्रह्मचर्य है। अतएव कृत, कारित और अनुमोदन, इन तीनों करणों सहित मन वचन काययोग से कामिनीविषय का त्याग करना ब्रह्मचर्य कहलाता है। उससे इन्द्रिय द्वार का संवरण आत्मा में ही वृत्ति होती है और प्रतिष्ठित होता है। जो ब्रह्मचर्य से विपरीत हो वह अब्रह्मचर्य। जो पुरुष विवेकशाली हैं और विवेक के बल से जिनके राग आदि विकार उपशान्त हो चुके हैं, वे अब्रह्मचर्य का सर्वथा ही त्याग कर देते हैं। प्रश्नव्याकरणसूत्र के चौथे आस्रव द्वार में कहा है—अब्रह्मचर्य मैथुन कहलाता है ॥२८॥

'मुच्छा परिग्गहो' ॥२९॥

सूत्रार्थ—मूर्छाभाव परिग्रह है ॥२९॥

છે, તેનું ચરણ અર્થાત્ સેવન કરવું બ્રહ્મચર્ય છે. મૃત્યુ સુધી સ્ત્રી આદિનું સેવન ન કરવું, ચિત્તની બહિર્મુખ વૃત્તિ ન હોવી બ્રહ્મચર્ય છે, આથી કૃત, કારિત અને અનુમોદન એ ત્રણ કારણો સહિત મન, વચન અને કાયાના યોગથી—કામિની વિષયનો ત્યાગ કરવો બ્રહ્મચર્ય કહેવાય છે. એનાથી ઇન્દ્રિય-દ્વારનું સંવર થાય છે, આત્મામાં જ વૃત્તિ થાય છે, તેમજ પ્રતિષ્ઠિત થાય છે. જે બ્રહ્મચર્યથી વિપરીત છે તે અબ્રહ્મચર્ય જે પુરૂષ વિવેકશાળી છે અને વિવેકના બળથી જેના રાગ વગેરે વિકાર શાન્ત થઈ ગયા છે, તે અબ્રહ્મ-ચર્યનો સર્વથા જ ત્યાગ કરી દે છે પ્રશ્નવ્યાકરણ સૂત્રના ચોથા આસ્રવ-દ્વારમાં કહ્યું છે—અબ્રહ્મચર્ય મૈથુન કહેવાય છે. ॥૨૮॥

'મુચ્છા પરિગ્ગહો' ॥૨૯॥

સૂત્રાર્થ—મૂર્છાભાવ પરિગ્રહ છે. ॥૨૯॥

तत्त्वार्थदीपिका–पूर्वसूत्रे हिंसादिलक्षणपञ्चविधाव्रतेषु यथाक्रमं हिंसाऽव्रत-स्तेयमैथुनस्वरूपं निरूपितम्, सम्प्रति पञ्चमं परिग्रहस्वरूपमव्रतं प्ररूपयितुमाह-'मुच्छा परिग्गहो' इति ममेदमिति ममतालक्षणा रागादि मनोऽभिलापरूपा बाह्यानां गोमहिषगजाऽश्वमणिरत्नादीनां चेतनाऽचेतनानां रागादीनाम् उपधी-नाञ्च संरक्षणाऽर्जनसंस्कारादिलक्षणा ममत्वरूपाऽऽसक्तिः अभिष्वङ्गः परिग्रह उच्यते। तथा च शास्त्रमर्यादोक्त धर्मोपकरणाऽतिरिक्त वस्तुनि ममत्वमपि मूर्च्छा रूपः परिग्रहः। उक्तञ्च

बाह्य ग्रन्थ विहीना–दरिद्रमनुजाः स्वपापतः सन्ति।
पुनरभ्यन्तर सङ्ग त्यागी लोकेषु दुर्लभो जीवः ॥१॥ इति

तत्त्वार्थदीपिका--हिंसा आदि पांच अव्रतों में से पहले अनुक्रम से हिंसा, असत्य, स्तेय और मैथुन के स्वरूप का निरूपण किया गया, अब पांचवें अव्रत परिग्रह के स्वरूप का प्ररूपण करते हैं–

मूर्छा परिग्रह है, अर्थात् 'यह मेरा है' इस प्रकार ममता जिसका लक्षण है, जो मन की अभिलाषा रूप है, गाय, भैंस, बकरी, अश्व मणि और रत्न आदि चेतन एवं अचेतन पदार्थों का, रागादि का तथा उपधियों का संरक्षण, अर्जन और संस्कार आदि जिसका लक्षण है, ऐसी ममता रूप आसक्ति या गृद्धि को परिग्रह कहते हैं, इस प्रकार शास्त्रोक्त धर्मोपकरणों के सिवाय दूसरी वस्तुओं का संग्रह करना मूर्च्छा है। शास्त्रोक्त वस्तुओं में भी यदि ममत्व हो तो वह भी मूर्छा परिग्रह है। कहा भी है–

अपने पूर्वोपार्जित पापकर्म के उदय से बाह्य परिग्रह से विहीन

તત્ત્વાર્થદીપિકા—હિંસા આદિ પાંચ અવ્રતોમાંથી પહેલા અનુક્રમથી હિંસા, અસત્ય, સ્તેય અને મૈથુનના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે પાંચમાં અવ્રત પરિગ્રહના સ્વરૂપનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ-

મૂર્છા પરિગ્રહ છે અર્થાત્ 'આ મારૂં છે' એ રીતે મમતા જેનું લક્ષણ છે, જે મનની અભિલાષા રૂપ છે, ગાય, ભેંસ, બકરી, ઘોડો, મણિ અને રત્ન આદિ ચેતન અને અચેતન પદાર્થોના, રાગાદિના તથા ઉપધિઓનું સંરક્ષણ, અર્જન અને સંસ્કાર વગેરે જેના લક્ષણ છે. એવી મમતારૂપ આસક્તિ અથવા લોભને પરિગ્રહ કહે છે. આ રીતે શાસ્ત્રોક્ત ધર્મોપકરણો સિવાય બીજી વસ્તુઓનો સંગ્રહ કરવો મૂર્છા છે-શાસ્ત્રોક્ત વસ્તુઓમાં પણ જો મમત્વ હોય તો તે પણ મૂર્છારૂપ પરિગ્રહ છે. કહ્યું પણ છે-

'પોતાના પૂર્વોપાર્જિત પાપકર્મના ઉદયથી બાહ્ય પરિગ્રહથી વિહીન

तथा च मोहसामान्यार्थक मूर्च्छधातोः प्रकृतेऽभिष्वङ्गात्मक ममत्वरूप विशेषार्थो गृह्यते, परिग्रहप्रकरणवशात् । अथैवन्तर्हि बाह्यस्य परिग्रहत्वं न स्यात् आध्यात्मिकस्यैव परिग्रहस्योक्तरीत्या संग्रहणादिति चेत्, ? सत्यम् प्रधानत्वादभ्यन्तरस्यैव परिग्रहस्य संजिघृक्षितत्वात् बाह्ये परिग्रहेऽसत्यपि ममेद मित्येवं सङ्कल्पवान् सपरिग्रहो भवतीति भावः, अथैवं तर्हि बाह्यः परिग्रहो न भवत्येवेति चेत्, ? नैवम्, मूर्च्छालक्षण ममत्वहेतुतया बाह्यस्याऽपि परिग्रहत्वस्य सद्भावात् अथ यदि ममेदमिति सङ्कल्पः परिग्रह स्तदा ज्ञानाद्यपि परिग्रहः स्यात्, तदपि-

---

दरिद्र जनलोक में बहुतेरे हैं मगर आभ्यन्तर परिग्रह अर्थात् ममत्व का त्यागी जीव दुर्लभ हैं ॥१॥

मोह के समानार्थक 'मूर्च्छ' धातु से इस प्रकरण में अभिष्वंगरूप ममत्व अर्थ लिया जाता है, क्योंकि परिग्रह का प्रकरण है । आशंका हो सकती है कि ऐसा अर्थ करने से तो बाह्य वस्तु परिग्रह ही नहीं कहलाएगी, उक्त प्रकार से आभ्यन्तर परिग्रह का ही ग्रहण हो सकता है । इसका समाधान यह है कि आभ्यन्तर परिग्रह ही प्रधान है और उसी को यहां मुख्य रूप से ग्रहण किया गया है । बाह्य वस्तु के न होने पर भी किसी में ममता भाव विद्यमान है तो वह परिग्रही ही है ।

शंका-तो क्या बाह्य परिग्रह नहीं है ?

समाधान-ऐसा मत कहो । ममता का कारण होने से बाह्य वस्तु भी परिग्रह ही है ।

દરિદ્ર માણસો આ લોકમાં ઘણી સંખ્યામાં છે, પરન્તુ, આભ્યન્તર પરિગ્રહ અર્થાત્ મમત્વના ત્યાગી જીવ દુર્લભ છે. ॥૧॥

મોહના સમાનાર્થક 'મૂર્ચ્છ' ધાતુથી આ પ્રકરણમાં અભિષ્વંગ રૂપ મમત્વ અર્થ લેવામાં આવ્યો છે કારણ કે પરિગ્રહનું પ્રકરણ છે. આશંકા થઈ શકે કે આવો અર્થ કરવાથી તો બાહ્ય વસ્તુ પરિગ્રહ જ કહેવાશે નહીં, ઉપર જણાવેલા પ્રકારથી આભ્યન્તર પરિગ્રહનું જ ગ્રહણ થઈ શકે છે. આનું સમાધાન એ છે કે આભ્યન્તર પરિગ્રહ જ મુખ્ય છે અને તેને જ અહીં મુખ્ય રૂપથી ગ્રહણ કરવામાં આવે છે. બાહ્ય વસ્તુનું ન હોવા છતાં પણ જો કોઈનામાં મમતાભાવ વિદ્યમાન છે તો તે પરિગ્રહી જ છે.

શંકા—તો શું બાહ્ય પરિગ્રહ એ પરિગ્રહ નથી ?

સમાધાન—આમ કહેવું ઠીક નથી. મમતાનું કારણ હોવાથી બાહ્ય વસ્તુ પણ પરિગ્રહ જ છે.

रागादि परिणामवत् ममेदमिति सङ्कल्प्यते इति चेत् ? उच्यते, अत्रापि प्रमत्त योगात्' इत्यनुवृत्या दोषाभावात्। तथा च ज्ञानदर्शन चारित्रवतोऽप्रमत्तस्य मोहाभावान्मूर्च्छा नास्तीति निष्परिग्रहत्वं सिद्धम्। अपि च तेषां ज्ञानदर्शन चारित्राणा महेयत्वादात्म स्वभावत्वादपरिग्रहत्वं बोध्यम्। रागादयस्तु कर्मोदय परतन्त्रतयाऽऽत्मस्वभावत्वाभावाद् हेया भवंति, तस्मात् रागादिषु सङ्कल्पः परिग्रहः उच्यते, ममत्वलक्षणपरिग्रहमूलकाः खलु सर्वे दोषा भवन्ति। तथाहि ममेद-

शंका–अगर 'यह मेरा है' इस प्रकार के संकल्प को परिग्रह कहा जाय तो ज्ञान आदि भी परिग्रह कहलाएंगे क्यों कि रागादि परिणाम के समान उन में भी 'यह मेरा है' ऐसा संकल्प किया जाता है।

समाधान–यहां भी 'प्रमत्तयोगात्' (प्रमत्तयोग से) इस पद की अनुवृत्ति है, अतएव दोष नहीं आता।

इस प्रकार ज्ञान, दर्शन और चारित्र से सम्पन्न अप्रमादी मुनि में मोह का अभाव होने से मूर्छा नहीं होती, अतएव उसकी निष्परिग्रहता सिद्ध है। इसके अतिरिक्त ज्ञान, दर्शन और चारित्र हेय नहीं हैं, वे आत्मा के स्वभाव है, इस कारण परिग्रह नहीं है। इसके विपरीत रागादि कर्म के उदय के अधीन हैं, वे आत्मा के स्वभाव नहीं हैं, अत एव हेय हैं। इस कारण रागादि में जो संकल्प है वह परिग्रह कहलाता है।

समस्त दोषों का मूल ममत्व रूप परिग्रह ही है। 'यह मेरा है' इस प्रकार संकल्प जब उत्पन्न होता है तब उन वस्तुओं का संरक्षण,

શંકા—જો 'આ મારૂં છે' એ જાતના સંકલ્પને પરિગ્રહ કહેવામાં આવે તો જ્ઞાન આદિ પણ પરિગ્રહ કહેવાશે કારણ કે રાગાદિ પરિણામની જેમ તમનામાં પણ 'આ મારૂં છે' એવો સંકલ્પ કરવામાં આવે છે.

સમાધાન—અહીં પણ 'प्रमत्तयोगात्' (પ્રમત્તયોગથી) આ પદની અનુવૃત્તિ છે આથી દોષ આવતો નથી.

આ રીતે જ્ઞાન, દર્શન તેમજ ચારિત્રથી સમ્પન્ન અપ્રમાદી મુનિમાં મોહનો અભાવ હોવાથી મૂર્છા હોતી નથી આથી તેની નિષ્પરિગ્રહતા સિદ્ધ છે. આ સિવાય જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્રહેય નથી તેઓ આત્માના સ્વભાવ છે આથી પરિગ્રહ નથી આનાથી ઉલ્ટું, રાગાદિ કર્મના ઉદયને અધીન છે, તેઓ આત્માના સ્વભાવ નથી આથી હેય છે. આથી રાગાદિમાં જે સંકલ્પ છે તે પરિગ્રહ કહેવાય છે.

સમસ્ત દોષોનું મૂળ મમત્વરૂપ પરિગ્રહ જ છે. 'આ મારૂં છે' એ જાતનો સંકલ્પ જ્યારે ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે તે વસ્તુઓનું સંરક્ષણ, ઉપા-

मिति सङ्कल्पे सति संरक्षणाऽर्जनसंस्कारादयो जायन्ते तत्रवाऽवश्यमेव हिंसा भवेद्भवति भविष्यति च, तदर्थं मृषा वदति स्तेयं समाचरति, मैथुने कर्मणि च प्रयतते तदुद्भवाः खलु नरकादिषु दुःखपरम्परा भवतीति भावः ॥२९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावत् अव्रतेषु हिंसादिलक्षणेषु यथाक्रमं हिंसा मृषावादस्वरूपं प्ररूपितम्, सम्प्रति पञ्चमं परिग्रहरूपमव्रतं प्ररूपयितुमाह-'मुच्छापरिग्गहो' इति मूर्च्छाप्रमत्तयोगात् मूर्छते आत्माऽनयेति मूर्च्छा, लोभपरिणतिरूपा ममत्वबुद्धिः अभिष्वङ्गलक्षणा असक्तिः परिग्रहः तया खलु लोभपरिणतिरूपया मूर्च्छयाऽऽत्मा मोहमुपनीयते विवेकात्प्रच्याव्यते विवेकात्प्रच्युतश्चात्मा प्रतिविशिष्टलोभकषायोपरागा अनुचितप्रवृत्तिप्रवणस्सन् कर्तव्यमकर्तव्यं वा किमपि न चेत

उपार्जन या संस्कार आदि किया जाता है और ऐसा करने में अवश्य ही हिंसा होती है और होगी भी। उनके लिए मनुष्य मृषा भाषण करता है, चोरी करता है और मैथुनक्रिया में प्रवृत्त करता है और फिर इन पापों के फलस्वरूप नरक आदि में दुःखो की परम्परा उत्पन्न होती है ॥२९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--हिंसा आदि अव्रतों में से क्रमानुसार हिंसा, मृषावाद, स्तेय, और मैथुनके स्वरूपकी प्ररूपणा पहले की जा चुकी हैं। अब पांचवें अव्रत परिग्रह की प्ररूपणा करते हैं-

मूर्छा परिग्रह है। प्रमाद के योग से जिसके कारण आत्मा मूर्छित हो जाय वह मूर्छा। उसे लोभ की परिणति, ममत्व बुद्धि, अभिष्वंग, आसक्ति आदि कहते हैं। इस लोभपरिणति रूप मूर्छा से आत्मा मूढ बन जाता है, विवेक से भ्रष्ट हो जाता है। विवेक से भ्रष्ट आत्मा विशिष्ट

र्जन अथवा संस्कार आदि करवामा आवे छे अने एम करवाथी अवश्य ज हिंसा थाय छे अने थशे पण आ माटे माणुस मृषा भाषण करे छे, चोरी करे छे अने मैथुन क्रियामां प्रवृत्ति करे छे अने पछी ए पापोना फळ स्वरूप नरक आदिमां दुःखोनी हारमाळा उत्पन्न थाय छे. ॥२९॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુકિત—હિંસા આદિ અવ્રતોમાંથી ક્રમાનુસાર હિંસા, મૃષાવાદ, સ્તેય, અને મૈથુનના સ્વરૂપની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી ગઈ હવે પાંચમાં અવ્રત પરિગ્રહની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

મૂર્છા પરિગ્રહ છે. પ્રમાદના યોગથી જેના કારણે આત્મા મૂર્છિત થઈ જાય તે મૂર્છા તેને લોભની પરિણતિ, મમત્વબુદ્ધિ, અભિષ્વંગ, આસકિત વગેરે કહે છે. આ લોભ પરિણતિ રૂપ મૂર્છાથી આત્મા મૂઢ બની જાય છે, વિવેકથી ભ્રષ્ટ થઇ જાય છે વિવેકભ્રષ્ટ આત્મા વિશિષ્ટ લોભને વશીભૂત

यते, मूढधीश्च तृष्णावशीकृत चित्तवृत्तिरनालोचित गुणदोषोऽन्ध बधिरादिरिव चेष्टते करोति। यद्वा-मूर्छा मोह समुच्छ्राययो रित्यनुशासनात् समुच्छ्रायरूपा-मूर्छा, तथा च समुच्छ्रीयतेऽनुक्षण मुपचीयते हिंसादि दोषै र्लोभोपरागबलानुरञ्जितोऽयमात्मेति समुच्छ्रायः-सकलदोषाग्रणीर्लोभः, लुब्धश्च-लोभाऽभिभूतो जनो हिंसाऽनृतस्तेयादिषु निश्शङ्कं प्रवर्तते। लोभवशीभूतः सन् पुत्रः पितरमपि, हन्ति, सोदरं सोदरो भ्रातापितास्च तनयं पतिम्, पत्नी पतिर्हिन स्त्येव मेयसीमपि किं ब्रुवे ॥१॥

लोभ के वशीभूत होकर अनुचित प्रवृत्ति करने लगता है और कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विचार से रहित हो जाता है। उसकी बुद्धि मूढ बन जाती है, चित्तवृत्ति तृष्णा के वशीभूत हो जाती है। वह गुण अवगुण का विचार नहीं करता और अंधे एवं बहरे के समान चेष्टा करता है।

अथवा-'मूर्च्छा मोहसमुच्छ्राययोः' इस व्याकरण के विधान के अनुसार मूर्च्छा का अर्थ समुच्छ्राय है, जिसका आशय यह है कि लोभ के वशीभूत हुआ आत्मा जिसके कारण हिंसा आदि दोषों का समूह बन जाता है, वह मूर्छा है। लोभ सब दोषों में प्रधान है। लोभी मनुष्य हिंसा, झूठ, चोरी आदि सभी पापों में निःशंक होकर प्रवृत्ति करता है। लोभ के अधीन होकर पुत्र पिता का भी घात कर डालता है, भाई भाई का खून कर देता है, पिता पुत्र के प्राण हरण कर लेता है, पत्नी पति के प्राणों के ग्राहक बन जाती है और पति पत्नी की जान ले लेता है अधिक क्या कहा जाय ?

થઈને અનુચિત પ્રવૃત્તિ કરવા માંડે છે અને કર્તવ્ય-અકર્તવ્યના વિચારથી શૂન્ય થઈ જાય છે. તેની બુદ્ધિ બહેર બની જાય છે, ચિત્તવૃત્તિ તૃષ્ણાને તાબે થઈ જાય છે. તે ગુણ-અવગુણનો વિચાર કરતો નથી અને આંધળા તથા બહેરાના જેવી ચેષ્ટા કરે છે

અથવા-'મૂર્ચ્છા મોહસમુચ્છ્રયયોઃ' વ્યાકરણના આ વિધાન અનુસાર મૂર્છાનો અર્થ સમુચ્છ્રાય છે જેનો આશય એ છે કે લોભને વશીભૂત થયેલો આત્મા જેના કારણે-હિંસા વગેરે દોષોનો સમૂહ બની જાય છે, તે મૂર્છા છે. બધાં દોષોમાં લોભ મુખ્ય છે. લોભી માણસ હિંસા, અસત્ય, ચોરી વગેરે સઘળાં પાપોમાં નિઃશંક થઇને પ્રવૃત્તિ કરે છે લોભને તાબે થઈને દિકરો બાપનો પણ વધ કરી નાખે છે, સગો ભાઈ, ભાઈનું ખુન કરી નાખે છે, પિતા પુત્રના પ્રાણ હરે છે, પત્ની પતિના પ્રાણો હરી લે છે અને પતિ પત્નીનો જીવ લઈ લે છે, વિશેષ શું કહી શકાય ?

एवम्--जननी-स्वसृ प्रभृतयोऽपि लोभाभिभूतत्वाद् महान्त मनर्थ मावहन्ति-कुर्वन्ति, लोभाऽभिभूतत्वादेव-कुटसाक्षित्वदायीन उत्कोचं गृहीत्वा बह्वनृतभाषणं कुरुते, लोभबलप्रकर्षादेव-मार्गे लुण्टकः पथिकान् लुण्टति, स्तेनश्च-राजप्राकार-कुड्यादिकमपि खनित्वा लोभादेव सर्वमप्यपहरति, सर्वथा खलु न कश्चन तथाविधो भावो बहिरन्तः स्थितो वा निकटस्थो दूरस्थो वा प्रियदर्शनो वर्तते यमयं लुब्धो भावतः परित्यजेत्, लोभभुजङ्गश्च मानवानां प्रचुरतरानिष्ट सम्पादनेन बहूनि-दुश्चरितानि उपनयति, किं बहूना 'पतङ्ग-मातङ्ग-कुरङ्ग-भृङ्ग मीनादितिर्यञ्च एतेऽपि लोभाभिभूतत्वादेव एकैक चक्षुः स्पर्शन-श्रोत्र घ्राण-रसनेन्द्रिय करण-

इसी प्रकार माता, भगिनी आदि भी लोभ से अभिभूत होकर घोर अनर्थ कर डालती हैं। लोभग्रस्त होकर लोग झूठी साक्षी देते हैं, घूंस लेकर मिथ्या भाषण करते हैं। लोभ के आधिक्य से ही लुटेरे मार्ग में पथिकों को लूट लेते हैं चोर राजप्रासाद, प्राकार, दिवार आदि खोद कर सर्वस्व हरण करते हैं। ऐसा कोई बाहर या भीतर स्थित, निकटवर्त्ती दूर वर्त्ती या प्रियदर्शन भाव नहीं है, जिसे लोभी मनुष्य स्वेच्छापूर्वक छोड दे !

लोभ भुजंग के समान है। इसकी बदौलत मनुष्यों को अत्यन्त अनिष्ट की प्राप्ति होती है। यह अनेक प्रकार के दुराचारों में फंसाता है अधिक तो क्या कहा जाय, पतंग, मातंग (हाथी), कुरंग (हिरण) भृंग (भ्रमर) और मीन तिर्यंच हैं, किन्तु ये भी लोभ से ग्रस्त होकर एक एक चक्षु, स्पर्शन, श्रोत्र, घ्राण और रसना इन्द्रिय की प्रबलता के

એવી જ રીતે માતા, બ્હેન વગેરે પણ લોભને વશ થઈને ઘોર અનર્થ કરી બેસે છે. લોભગ્રસ્ત થઈને લોકો ખોટી સાક્ષી આપે છે. લોભને લઈને મિથ્યા ભાષણ કરે છે લોભની વિશેષતના કારણે જ લુંટારા માર્ગમાં પથિકોને લૂંટી લે છે ચોર લોકો રાજાનો મહેલ, પ્રાકાર, દિવાલ વગેરે ખોદીને બધું જ લૂંટી જાય છે. સંસારમાં એવો કોઈ ભાવ, બહાર કે અંદર રહેલો, કે નજીક હોય, દૂર હોય અથવા પ્રિયદર્શન, ભાવ નથી કે જેને લોભી માણસ સ્વેચ્છાપૂર્વક છોડી દે !

લોભ સર્પ જેવો છે. આનાથી મનુષ્યોને અત્યન્ત અનિષ્ટની પ્રાપ્તિ થાય છે. તે અનેક પ્રકારના દુરાચારોમાં ફસાય છે. વધુ તો શું કહી શકાય ? પતંગીયું, હાથી, હરણ, ભમરો અને માછલી તિર્યંચ આ બધાં પણ લોભથી ગ્રસ્ત થઈને એક એક ચક્ષુ, સ્પર્શન, શબ્દ, ગંધ અને રસની

प्राबल्येन रूप स्पर्श-शब्द-गन्ध-रसलोभ तृष्णया बध्यन्ते म्रियन्ते च, पञ्चेन्द्रियैः पञ्चविषयोपभोगिनां मानवानान्तु लोभाभिभूतानां बन्धनादौ कथैवका ?। तथा चोक्तम्-

'पतङ्ग-मातङ्ग-कुरङ्ग-भृङ्ग-मीनाहताः पञ्चभिरेव पञ्च।

एकः प्रमादी स कथं न हन्यते-यः सेव्यते पञ्चभिरेव पञ्च ।१। इति

एवञ्च-विषयगार्ध्येन विवेकिनोऽपि सन्मार्गात्परिस्खलन्ति, इत्यहो विचित्रता लोभस्य इति लोभलक्षणमूर्च्छापरिग्रहो व्यपदिश्यते। सा खलु-लोभरूपा-मूर्च्छा-ऽऽभ्यन्तरविषयालम्बना बहिर्विषयालम्बना च भवति। तत्राभ्यन्तरो विषय श्चतुर्दशविधो वर्तते राग द्वेष-क्रोध-मान-माया-लोभ मिथ्यादर्शनहास्यरत्यरति-

---

कारण रूप, स्पर्श, शब्द, गंध और रस की तृष्णा से पीडित होकर बन्धन को प्राप्त होते हैं और मारे जाते हैं। जब एक-एक इन्द्रिय के वशीभूत होने वालों की यह दशा होती हैं तो पांचों इन्द्रियों के भोग भोगने वाले लोभग्रस्त मनुष्यों का क्या कहना हैं। कहा भी है-

पतंग, मातंग, कुरङ्ग, भृङ्ग और मीन ये पांचों प्रकार के जीव एक-एक इन्द्रिय के विषय के कारण मारे जाते हैं, तो जो प्रमादी पुरुष पांचों इन्द्रियों के अधीन हो जाता है, उसका हनन कैसे नहीं होगा।१।

इस प्रकार विषयों में गृद्ध होकर विवेकवान् जन भी सन्मार्ग से च्युत हो जाते हैं, यह लोभ की विचित्रता है। यह लोभ रूप मूर्च्छा ही परिग्रह कहलाती है। मूर्च्छा दो प्रकार की होती है-आभ्यन्तर विषयों में तथा बाह्य विषयों में आभ्यन्तर विषय चौदह प्रकार का है-राग-द्वेष-क्रोध-मान-माया-लोभ-मिथ्यादर्शन, हास्य, रति, अरति,

---

तृष्णाथी दुःखी थईने બन्धनने प्राप्त थाय छे अने मार्या जाय छे, जो એક-એક ઇન્દ્રિયને વશ થનારાની આવી દશા થાય છે તો પાંચે ઇન્દ્રિયોનો ભોગ ભોગવનારા લોભગ્રસ્ત મનુષ્યોનું શું કહેવું ? કહ્યું પણ છે-

પતંગ (પતંગીયું) માતંગ (હાથી) કુરંગ (હરણ) ભૃંગ (ભમરો) અને મીન (માછલી) આ પાંચે પ્રકારના જીવ એક-એક ઇન્દ્રિયના વિષયના કારણે માર્યા જાય છે તો જે પ્રમાદી પુરૂષ પાંચે ઇન્દ્રિયોને વશ થઈ જાય છે તેનો નાશ કેમ નહીં થાય ? ॥૧॥

આ રીતે વિષયોમાં લલચાઈને વિવેકી પુરૂષો પણ સન્માર્ગથી ભ્રષ્ટ થઈ જાય છે એ લોભની વિચિત્રતા છે. 'આ લોભરૂપ મૂર્ચ્છા જ પરિગ્રહ કહેવાય છે. મૂર્ચ્છા બે પ્રકારની હોય છે-આભ્યન્તર વિષયોમાં તથા બાહ્ય વિષયોમાં આભ્યન્તર વિષય ચૌદ પ્રકારના છે.-રાગ-દ્વેષ-ક્રોધ, માન-માયા-લોભ-મિથ્યા દર્શન-હાસ્ય-રતિ-અરતિ-ભય-શોક જુગુપ્સા અને વેદ આવી

भयशोक जुगुप्सावेदभेदात् । तत्राभ्यन्तर परिग्रहश्चतुर्दशविधः फलितः, बाह्य-विषयश्च वास्तु-क्षेत्रधनधान्यशय्याऽऽसनयानकुप्यद्वित्रिचतुष्पाद भाण्डभेदादनेकविधो भवति, चेतः परिणामरूपाया मूर्च्छाया एतावान् खलु विषयो वर्तते, एते खलु रागद्वेषादयोऽऽभ्यन्तरविषयाः परिग्रहनिमित्तत्वात् मूर्च्छात्वेन व्यपदिश्यन्ते । वास्तु क्षेत्रादयश्च बाह्यविषया 'ममेवे' त्येवमज्ञानाद् ममत्वविषयी कृताः सन्तः कालुष्यवता चेतसाऽऽत्मनो नानाविध जन्मग्रन्थिपरम्परा दृढीकरणायाऽनालोचितपूर्वापरभावेन परिग्रहत्वेन व्यवह्रियन्ते, परिगृह्यते लोभानुरक्तचित्तवृत्त्या-ऽभ्युपगम्यते-स्वीक्रियते इति परिग्रहः, लोभ-कषायरूपात्मपरिणामविशेषः, सा चोक्तरूपा मूर्च्छा परिग्रह सद्भाव परिणामादात्मनः प्राणातिपातवत् प्रमत्तयो-

---

भय, शोक, जुगुप्सा और वेद । इस प्रकार आभ्यन्तर परिग्रह भी चौदह प्रकार का फलित होता है । बाह्यविषय अनेक प्रकार का है जैसे वास्तु (मकान दुकान) आदि, क्षेत्र (खेत), धन, धान्य, शय्या, आसन, यान, कुप्य, द्विपद, त्रिपद, चतुष्पद भाण्ड आदि । ये सब चित्त के परिणमन रूप मूर्छा के विषय हैं । ऊपर राग द्वेष आदि जो आभ्यन्तर विषय कहे गए हैं, वे परिग्रह के कारण होने से मूर्छा कहलाते है । वास्तु क्षेत्र आदि जो बाह्य विषय हैं, अज्ञान के कारण उनमें ममत्वभाव धारण किया जाता है, अतएव वे कलुषित चित्त आत्मा की जन्म-मरण परम्परा को सुदृढ करते हैं । इस कारण उन्हे भी परिग्रह कहा गया है ।

लोभयुक्त चित्तवृत्ति से जिसका परिग्रह किया जाय-स्वीकार किया जाय वह परिग्रह । वास्तव में वह आत्मा का लोभ कषायरूप परिणाम है । जैसे हिंसा प्रमत्तयोग के सद्भाव के कारण आत्मा में

રીતે આભ્યન્તર પરિગ્રહ પણ ચૌદ પ્રકારનો સાબિત થાય છે. બાહ્ય વિષય અનેક પ્રકારના છે-જેમ કે, વાસ્તુ (મકાન, દુકાન આદિ.) ક્ષેત્ર (ખેતર), ધન, ધાન્ય, શય્યા, આસન, યાન, કુપ્ય બેપગા ત્રણપગા, ચારપગા, વાસણ વગેરે આ બધા ચિત્તના પરિણમન રૂપ મૂર્છાના વિષય છે. ઉપર રાગ દ્વેષ આદિ જે આભ્યન્તર વિષય કહેવામાં આવ્યા છે તે પરિગ્રહના કારણો હોવાથી મૂર્છા કહેવાય છે. વાસ્તુ ક્ષેત્ર આદિ જે બાહ્ય વિષય છે અજ્ઞાનના કારણે તેમનામાં મમત્વભાવ ધારણ કરવામા આવે છે આથી તેઓ કલુષિત ચિત્ત આત્માની જન્મ-મરણની પરંપરાને સુદૃઢ કરે છે. આથી તેમને પરિગ્રહ કહેલાં છે.

લોભયુક્ત ચિત્તવૃત્તિથી જેનું પરિગ્રહણ કરવામાં આવે સ્વીકાર કરવામાં આવે તે પરિગ્રહ હકીકતમાં તે આત્માનું લોભ કષાય રૂપ પરિણામ છે. જેવી રીતે હિંસા પ્રમત્તયોગના સદ્ભાવના કારણે આત્મામા રાગ-દ્વેષ મોહ

णानुवृत्ति सामर्थ्यात् अन्ततो राग-द्वेष-मोहमूला भवति। परिग्रह परिणामविरहितस्य पुनरप्रमत्तकायवाङ्मनोव्यापारस्य संयमोपकारकेषु वस्त्राद्युपधिशय्याहार शरीरादिषु-आगमानुज्ञातेषु मूर्च्छा न सम्भवति तथा चोक्तं दशवैकालिके ६ अध्ययने १८ सूत्रे—

'जं पि वत्थं वा पायं वा-कंबलं पायपुंछणं।
तं पि संजमलज्जट्ठा धारंति परिहरंति य ॥१॥
'यदपि वस्त्रं वा पात्रं वा-कम्बलं पादप्रोञ्छनम्।
तदपि संयमलज्जार्थं-धारयन्ति परिहरन्ति च ॥१॥ इति,

तथा च-योग्योपकरणकलापं विना-उद्देश्य सिद्धिर्न भवतीति निर्ग्रन्थानामपि संयमोपकारितया वस्त्रपात्राद्युपकरण शय्यादेः आगमानुज्ञातस्य ग्रहणे परिग्रहदोषो

राग-द्वेष मोह उत्पन्न करती है, उसी प्रकार मूर्छा भी राग-द्वेष-मोह का कारण बनती है। किन्तु जो पुरुष परिग्रह की भावना से सर्वथा रहित हो चुका है, और जिसके मन वचन काय का व्यापार प्रमाद से रहित है, उसे संयम के उपकारक वस्त्र आदि उपधि, शय्या, आहार, शरीर आदि में जिनकी अनुमति आगम में दीगई है, मूर्छा नहीं होती दशवैकालिक सूत्र के छठे अध्ययन अठारहवीं गाथा में कहा है—

साधुजन जो भी वस्त्र पात्र, कंबल और पादप्रोंछन धारण करते या काम में लेते-परिहार करते हैं, सब संयम एवं लज्जा के लिए ही समझना चाहिए ॥१॥

योग्य उपकरणों के अभाव में उद्देश्य सिद्ध नहीं होता, अतएव निर्ग्रन्थ भी यदि शास्त्र विहित संयम के उपकारक वस्त्र पात्र आदि

ઉત્પન્ન કરે છે તેવી જ રીતે મૂર્છા પણ રાગ-દ્વેષ મોહના કારણે ઉત્પન્ન થાય છે પરન્તુ જે પુરૂષ પરિગ્રહની ભાવનાથી સદા રહિત થઇ ચૂકયો છે તેમજ જેના મન વચન કાયાનો વ્યાપાર પ્રમાદ વગરનો છે તેને સંયમના ઉપકારક વસ્ત્ર આદિ ઉપધિ, શય્યા, આહાર, શરીર આદિમાં જેની અનુમતિ આગમમાં આપવામાં આવી છે, મૂર્છા થતી નથી. દશવૈકાલિકસૂત્રના છઠા અધ્યયનની અઢારમી ગાથામાં કહ્યું છે-

સાધુજન જે પણ વસ્ત્ર, પાત્ર, કામળો અને પગલૂંછણીયા ધારણ કરે છે, અથવા કામમાં લે છે, તે બધાં સંયમ તથા લજ્જાના હેતુસર જ સમજવા જોઈએ. ॥૧॥

યોગ્ય ઉપકરણોની અનુપસ્થિતિમાં ઉદ્દેશ્ય સિદ્ધ થતો નથી, આથી નિર્ગ્રન્થ પણ જો શાસ્ત્રવિહિત, સંયમના ઉપકારક વસ્ત્ર પાત્ર આદિ ઉપકરણ

न भवति। एवञ्च–येऽपि केचनाऽविवेकिन आगमानुज्ञातमपि वस्त्रपात्राद्युपकरणे मोक्षसाधनमहिंसादिव्रतपरिपालनसमर्थञ्च न परिगृह्णन्ति किन्तु तेऽपि आहारशरीरशिष्यादींश्च तु गृह्णन्त्येव। एतान् ते किं मन्यन्ते किं एते न परिग्रहाः सन्ति? तेषां मान्यताऽनुसारेण तु तेऽपि परिग्रहा एव सन्ति। अथाऽल्पबहुत्वकृतो विशेषः परिग्रहे सम्भवतीति चेत् अत्रोच्यते, तथा सति–दरिद्रस्याऽल्पं धनं, महर्द्धिकस्य च श्रेष्ठिनः पुष्कलं द्रविणं भवतीति नैतावताऽपरिग्रह एव दरिद्रः। महर्द्धिकश्च सपरिग्रहो व्यपदिश्यते, तस्मात्-मूर्च्छा लक्षण एव परिग्रहः सर्वैरकामेनाऽपि प्रतिपत्तव्यः। स च मूर्च्छालक्षणः परिग्रहः खलु चेतनेषु-एकद्वित्रि-

---

उपकरण तथा शय्या आदि का ग्रहण करते हैं तो परिग्रह का दोष नहीं होता। वस्त्र पात्र आदि उपकरण मोक्ष के साधन हैं, अहिंसा आदि व्रतों का पालन करने में समर्थ हैं, आगम में उनकी आज्ञा दी गई है, फिर भी जो विवेकहीन जन उनको ग्रहण नहीं करते किन्तु वे भी आहार शरीर और शिष्य आदि को ग्रहण तो करते ही है। उन्हें वे क्या मानते हैं? क्या ये परिग्रहण नहीं है? उनकी मान्यता के अनुसार ये भी परिग्रह ही हैं।

शंका–क्या परिग्रह में अल्प–बहुत्वकृत विशेषता का संभव है?

समाधान–ऐसा माना जाय तो दरिद्र के पास अल्प धन होता है और महान् सम्पत्तिशाली सेठ के पास बहुत धन होता है, इतने मात्र से दरिद्र को अपरिग्रही और महान् सम्पत्तिशाली को परिग्रही नहीं कह सकते। अतएव इच्छा न होने पर भी सब को यही स्वीकार करना

તથા શય્યા આદિ ગ્રહણ કરે તો તેમાં પરિગ્રહનો દોષ લાગતો નથી. વસ્ત્ર પાત્ર આદિ ઉપકરણ મોક્ષનાં સાધન છે, અહિંસા આદિ વ્રતોનું પાલન કરવામાં સમર્થ છે, આગમમાં તેમની આજ્ઞા ફરમાવવામાં આવેલી છે તો પણ વિવેકહીન માણસો તેમનું ગ્રહણ કરતાં નથી પરન્તુ તેઓ પણ આહાર, શરીર અને શિષ્ય વગેરેનું ગ્રહણ તો કરે જ છે તેમને તેઓ શું માને છે? શું એ પરિગ્રહણ નથી? તેમની માન્યતા અનુસાર તેઓ પણ પરિગ્રહી છે.

શંકા–શું પરિગ્રહમાં અલ્પ–બહુત્વકૃત વિશેષતા સંભવીત છે?

સમાધાન–એવું માની લઈએ તો દરિદ્રની પાસે થોડું ધન હોય છે અને મહાન સમ્પત્તિશાળી શેઠની પાસે અઢળક દ્રવ્ય હોય છે, આથી દરિદ્રને અપરિગ્રહી અને મહાન્ સમ્પત્તિશાળીને પરિગ્રહી કહી શકાય નહીં. આથી ઇચ્છા ન હોવા છતાં પણ બધાંએ એવું જ સ્વીકારવું જોઈએ કે

चतुः पञ्चेन्द्रियेषु, अचेतनेषु च वास्तुहिरण्यादिषु रागादिषु चाऽऽत्मपरिणामेषु बाह्याभ्यन्तरेषु द्रव्येषूपजायते, तच्च द्रव्यं क्वचित् केवलं पुद्गलद्रव्यमेव भवति। क्वचित् आत्मप्रदेशसंयुक्तं भवति । स च-परिग्रहो द्रव्य ग्रहणाच्चतुर्विधो भवति, द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् । तत्र-द्रव्यतो वास्तु क्षेत्रादि विषयः क्षेत्रतस्तु-ग्राम नगराद्यवच्छिन्न द्रव्यविषयः कालतः पुना रात्रिंदिवव्यवच्छिन्न द्रव्यविषयः, भावतस्तु प्रतिविशिष्ट वस्तूपलम्भने-उत्कृष्टे सति उत्कृष्टा मूर्च्छा संजायेत, तथाविधवस्तूपलम्भने मध्यमे सति मध्यमा, । जघन्येतु-जघन्या मूर्च्छा भवतीति भावः, सा खलु मूर्च्छा-इच्छा-प्रार्थना-कामोऽभिलाषः कांक्षा-गार्ध्य-लोभः, इत्यादि-पर्यायान्तरैरभिधीयते । तत्रेच्छा-यथा-

चाहिए कि मूर्छा ही परिग्रह है । वह मूर्छा रूप परिग्रह चेतन एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पदार्थों में अचेतन वास्तु तथा हिरण्य आदि में राग आदि आत्मिक परिणामों तथा बाह्य और आभ्यन्तर द्रव्यों में उत्पन्न होता है। वह द्रव्य कहीं केवल पुद्गल द्रव्य ही होता है और कहीं आत्म प्रदेशों से युक्त होता है। द्रव्य के ग्रहण से वह परिग्रह चार प्रकार का है-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से। द्रव्य से वास्तु-क्षेत्र आदि विषयक होता है, क्षेत्र से ग्राम-नगर आदि से अवच्छिन्न द्रव्य विषयक होता है, काल से रात्रि-दिवस आदि से व्यवच्छिन्न द्रव्यविषयक होता है और भाव से विशिष्ट वस्तु की उपलब्धि में होता हैं । अगर उत्कृष्ट उपलंभन हो तो उत्कृष्ट मूर्छा होती हैं, तथाविध वस्तु का उपलंभन यदि मध्यम हो मध्यम मूर्छा होती है और जघन्य में जघन्य मूर्छा होती है । इस मूर्छा के अनेक पर्यायवाचक नाम हैं, जैसे-इच्छा, प्रार्थना, काम, अभिलाषा, कांक्षा,

મૂર્છા જ પરિગ્રહ છે. તે મૂર્છારૂપ પરિગ્રહ ચેતન એકેન્દ્રિય, બેઇન્દ્રિય, તેઈન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય પદાર્થોમાં, અચેતન વાસ્તુ તથા હીરા-ઝવેરાતમાં, રાગ વગેરે આત્મિક પરિણામો તથા બાહ્ય અને આભ્યન્તર દ્રવ્યોમાં ઉત્પન્ન થાય છે આ દ્રવ્ય કોઈ જગાએ માત્ર પુદ્ગલ દ્રવ્ય જ હોય છે જ્યારે ક્યાંક આત્મપ્રદેશોથી યુક્ત હોય છે. દ્રવ્યના ગ્રહણથી તે પરિગ્રહ ચાર પ્રકારનો છે-દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવના ભેદથી દ્રવ્યથી વાસ્તુ-ક્ષેત્ર આદિ વિષયક થાય છે, ક્ષેત્રથી ગામ નગર વગેરેથી અવચ્છિન્ન દ્રવ્ય વિષયક થાય છે, કાલથી રાત્રિ-દિવસ આદિથી વ્યવચ્છિન્ન દ્રવ્ય વિષયક થાય છે અને વિશિષ્ટ વસ્તુની ઉપલબ્ધિમાં થાય છે. જો ઉત્કૃષ્ટ ઉપલંભન હોય તો ઉત્કૃષ્ટ મૂર્છા થાય છે, તથાવિધ વસ્તુનું ઉપલંભન જો મધ્યમ હોય તો મધ્યમ મૂર્છા થાય છે અને જઘન્યમાં જઘન્ય મૂર્છા થાય છે. આ

'निःस्वोवष्टि शतं, शती दशशतं लक्षं सहस्राधिपो
लक्षेशः क्षितिपालतां, क्षितिपतिश्चक्रेशतां वाञ्छति ।
चक्रेशः सुरराजतां, सुरपतिर्ब्रह्मास्पदं वाञ्छति
ब्रह्माविष्णुपदं, हरिः शिवपदं, तृष्णाऽवधिं को गतः ।१।

इति, उक्तंच दशवैकालिके ६-अध्ययने २१ गाथायां मूर्च्छा 'परिग्गहो वुत्तो' इति ॥२९॥

मूलम्–एएहिंतो देसओ वेरमणं पंच अणुव्वया ॥३०॥

छाया–'एतेभ्यो देशतो विरमणं पञ्चाऽणुव्रतानि ॥३०॥

गार्ध्य लोभ आदि । इनमें से इच्छा का स्वरूप यह है–'निर्धन पुरुष सौ की कामना करता है, जिसके पास सौ हैं उसे दस सौ-हजार की इच्छा होती है, हजार पति लाख की अभिलाषा करता है, लक्षाधिपति राजा बनना चाहता है, राजा चक्रवर्त्ती होने का मनोरथ रखता है, चक्रवर्त्ती इन्द्र पद पाने की कामना करता है, इन्द्र ब्रह्मलोक प्राप्त करने की आकांक्षा करता है, ब्रह्मा विष्णु का पद पाना चाहता है, विष्णु शिव-महादेव बनना चाहता हैं। इस तृष्णा का कहीं अन्त नहीं ॥१॥

दशवैकालिकसूत्र के छठे अध्ययन की २१ वीं गाथा में कहा है–
'मूर्छा को परिग्रह कहा' है ॥२९॥

'एएहिंतो देसओ' इत्यादि ।

इन हिंसा आदि अव्रतों से एकदेश से निवृत्त होना पांच अणु व्रत है ॥३०॥

મૂર્છાના અનેક પર્યાયવાચક નામ છે જેમ કે–ઇચ્છા, પ્રાર્થના, કામ, અભિલાષા, કાંક્ષા, ગાર્ધ્ય, લોભ વગેરે આમાંથી ઇચ્છાનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે–'નિર્ધન પુરૂષ સો રૂપીઆની કામના કરે છે, જેની પાસે સો છે તેને હજાર–હજારપતિ લાખની અભિલાષા કરે છે, લક્ષાધિપતિ રાજા બનવા ચાહે છે, રાજા ચક્રવર્તી બનવાના મનોરથ સેવે છે, ચક્રવર્તી ઇન્દ્રપદ પામવાની કામના રાખે છે, ઇન્દ્ર બ્રહ્મલોક પ્રાપ્ત કરવાની આકાંક્ષા સેવે છે, બ્રહ્મા વિષ્ણુનું પદ મળે એવું ઇચ્છે છે તો વિષ્ણુ શિવ-મહાદેવ બનવાનો મનસુબો સેવે છે. આ તૃષ્ણાનો કોઇ છેડો જ નથી.' ॥૧॥

દશવૈકાલિકસૂત્રના છઠ્ઠાં અધ્યયનની ૨૧મી ગાથામાં કહ્યું છે–'મૂર્છાને પરિગ્રહ કહેલ છે' ॥૨૯॥

'एएहिंतो देसओ' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ–આ હિંસા આદિ અવ્રતોથી એકદેશથી નિવૃત્ત થવું પાંચ અણુવ્રત છે. ॥૩૦॥

मूलम्—दिसिं मज्जायकरणं दिसिवयं ॥३१॥

छाया—'दिङ्मर्यादाकरणं दिग्व्रतम् ॥३१॥

मूलम्—उवभोगपरिभोगपरिमाणकरणं उवभोगपरिभोग-परिमाणवयं ॥३२॥

छाया—उपभोगपरिभोगपरिमाणकरणम्—उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रतम् ।३२।

मूलम्—णीहेउय पाणिपीडा करणओ वेरमणं अणट्ठदंड-वेरमणं ॥३३॥

छाया—निर्हेतुक प्राणिपीडाकरणतो विरमणम्—अनर्थदण्डविरमणम् ॥३३॥

मूलम्—सव्वजीवेसु समभावो सामाइयं ॥३४॥

छाया—सर्वजीवेषु समभावः सामायिकम् ॥३४।

'दिसिमज्जायकरणं दिसिवयं' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—दिशाओं की मर्यादा करना दिग्व्रत है ॥३१॥

'उवभोग परिभोग' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—उपभोग और परिभोग की वस्तुओं का परिमाण करना उपभोग परिभोगपरिमाणव्रत कहलाता है ॥३२॥

'णीहेउय पाणि पीडा' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—निरर्थक प्राणी—पीडा उत्पन्न करने से विरत हो जाना अनर्थदण्डविरमणव्रत कहलाता है ॥३३॥

'सव्वजीवेसु सम भावो सामाइयं' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—सब जीवों पर समभाव रखना सामायिकव्रत है ॥३४॥

'दिसिमज्जायकरणं दिसिवय' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—દિશાઓની મર્યાદા કરવી દિગ્વ્રત છે. ॥૩૧॥

'उवभोगपरिभोग' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—ઉપભોગ અને પરિભોગની વસ્તુઓનું પરિમાણુ કરવું ઉપભોગ પરિભોગ પરિમાણુવ્રત કહેવાય છે. ॥૩૨॥

'णीहेउय पाणिपीडा' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—નિરર્થક પ્રાણી—પીડા ઉત્પન્ન કરવામાં વિરત થઈ જવું અનર્થ-દન્ડવિરમણુ વ્રત કહેવાય છે. ॥૩૩॥

'सव्वजीवेसु समभावो सामाइयं' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—બધાં જીવો ઉપર સમભાવ રાખવો સામાયિક વ્રત છે. ॥૩૪॥

मूलम्-दिसिवयसंकोओ देसावगासियं ॥३५॥

छाया-दिग्व्रतसंकोचो देशावकाशिकम् ॥३५।

मूलम्-धम्मपुट्ठीए वसणं पोसहोववासो ॥३६॥

छाया-धर्मपुष्ट्यै वसनं पौषधोपवासः ॥३६॥

मूलम्-समणाणं एसणिज्जाहार समप्पणं अतिहिसंविभागो ।३७।

छाया-श्रमणेभ्य एषणीयाहारसमर्पणम्-अतिथिसंविभागः ॥३७॥

मूलम्-मारणंतिय संलेहणा जोसिओय ॥३८॥

'दिसिवय संकोओ देसावगासियं' इत्यादि ।

सूत्रार्थ-दिशाव्रत को (परिमित समय के लिए) संकुचित करना देशावकाशिकव्रत कहलाता है ॥३५॥

'धम्मपुट्ठीए वसणं पोसहोववासो' इत्यादि।

सूत्रार्थ-धर्म की पुष्टि के लिए वास करना पौषधोपवास है ॥३६॥

'समणाणं एसणिज्जा' इत्यादि।

सूत्रार्थ-साधुओं को एषणीय आहार का दान करना अतिथि संविभागव्रत है ॥३७॥

'मारणंतिय संलेहणा जोसिओय' इत्यादि ।

सूत्रार्थ-व्रती पुरुष मारणान्तिक संलेखना का भी सेवी होता है।३८।

'दिसिवयसंकोओ देसावगासियं' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ દિશાવ્રતને (મર્યાદિત સમય માટે) સંકુચિત કરવું દેશાવકાશિક-વ્રત કહેવાય છે. ॥૩૫॥

'धम्मपुट्ठीए वसणं पोसहोववासो' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-ધર્મની પુષ્ટિને માટે વાસ કરવો પૌષધોપવાસ છે. ॥૩૬॥

'समणाणं एसणिज्जा' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-સાધુઓને એષણીય આહારનું દાન આપવું અતિથિસંવિભાગ-વ્રત છે. ॥૩૭॥

'मारणंतिय संलेहणा जोसिओय' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-વ્રતી પુરૂષ મારણાન્તિક સંલેહણાનું પણ સેવન કરે છે. ॥૩૮॥

छाया—मरणान्तिक संलेखनाजोषितश्च ॥३८॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रेऽगारीश्रावको द्वादशव्रत विशिष्टव्रतीभवतीत्युक्तम्, सम्प्रति—स खलु व्रती श्रावको मारणान्तिक संलेखनाया आराधकश्चाऽपि भवतीति प्रतिपादयितुमाह—'मारणांतिय संलेहणाजोसिओय' इति स तावद्व्रती—अगारी पञ्चाणुव्रतविशिष्टत्वात्, त्रिगुणव्रत—चतुःशिक्षाव्रतरूपं सप्तव्रतविशिष्टत्वाच्च मारणान्तिकसंलेखनाजोषितः भवच्छेदकर—काय कषाय कृशीकरणरूप संलेखनाऽऽराधकश्च भवति। तत्र—स्वात्मपरिणामोपात्ताना मायुरिन्द्रियबलानां संक्षयो मरणम् तदेवान्तो मारणान्तः स प्रयोजनमस्या इति मारणान्तिकी, सा चासौ

तत्त्वार्थदीपिका—गृहस्थ श्रावक बारह व्रतों से सम्पन्न होने के कारण देश व्रती कहलाता है, यह बात पूर्वसूत्र में कही जा चुकी है। अब यह प्रतिपादन करते हैं कि वह व्रती श्रावक मारणांतिक संलेखना का भी आराधक होता है—

देशव्रती श्रावक पांच अणुव्रतों , तीन गुणव्रतों और चार शिक्षाव्रतों से सम्पन्न होने के कारण मारणान्तिक संलेखना का भी आराधक होता है अर्थात् भव का अन्त करने वाली, काय तथा कषाय को कृश करने रूप संलेखना का सेवन करता है।

अपनी आत्मा के परिणाम के अनुसार उपार्जित आयु, इन्द्रियों एवं बलों का क्षय होना मरण कहलाता है। मरण रूप अन्त को मरणान्त कहते हैं। मरणान्त जिसका प्रयोजन हो उसे मारणान्तिकी कहते हैं, ऐसी संलेखना मारणान्तिक संलेखना है। सम् अर्थात् सम्यक् प्रकार से लेखना अर्थात्

તત્ત્વાર્થદીપિકા—ગૃહસ્થ શ્રાવક બારવ્રતોથી સમ્પન્ન હોવાના કારણે દેશવ્રતી કહેવાય છે એ હકીકત પૂર્વસૂત્રમાં કહેવામાં આવી છે; હવે એ પ્રતિપાદન કરીએ છીએ કે તે વ્રતી શ્રાવક મારણાન્તિક સંલેહણાનો પણ આરાધક હોય છે—

દેશવ્રતી શ્રાવક પાંચ અણુવ્રતો, ત્રણ ગુણવ્રતો અને ચાર શિક્ષાવ્રતોથી સમ્પન્ન હોવાના કારણે મારણાન્તિક સંલેહણાનો પણ આરાધક હોય છે. અર્થાત્ ભવનો અન્ત કરનાર, કાયા તથા કષાયને કૃશ કરવા રૂપ સંલેહણાનું સેવન કરે છે.

પોતાના આત્માના પરિણામ અનુસાર ઉપાર્જિત આયુ, ઇન્દ્રિયો અને બળોનો ક્ષય થવો મરણ કહેવાય છે. મરણ રૂપ અન્તને મરણાન્ત કહે છે. મરણાન્ત જેનું પ્રયોજન છે તેને મારણાન્તિકી કહે છે, આવી સંલેહણા

संलेखना चेति मारणान्तिक संलेखना सं-सम्यक् लेखना-कृशीकरणं संलेखना। तत्र-कायस्योपवासादिना कृशीकरणं बाह्य संलेखना १ क्रोधादिकषायाणाञ्च तपः संयमादिन तनूकरण मन्तरसंलेखना २ तथा च कायस्य कषायाणाञ्च सम्यक् लेखना कृशीकरणं-तनूकरणं संलेखना तस्याः खलु-मारणान्तिकसंलेखनाया- जोषितः प्रीत्यासेविता च पुमान् व्रती-अगारी। चकारात् मारणान्तिसंलेखना- जोषिता चाऽपि भवतीति बोध्यम्। अत्राऽन्तग्रहणेन तद्भवमरणं परिगृह्यते, अथैवं तर्हि-मारणान्तिक संलेखनासेवितुः अगारिणः आत्मवधदोषापत्तिः स्यात् स्वाऽभिसन्धिपूर्वकमेव तस्य स्वाऽऽयुरिन्द्रियबलसंक्षयाय कायादि संशोषणादौ

कृश करना संलेखना है। उपवास आदि के द्वारा काया कृश करना बाह्य संलेखना है और तप एवं संयम के द्वारा क्रोध आदि कषायों को कृश करना आन्तरिक संलेखना है। इस प्रकार काय और कषायों को सम्यक् प्रकार से लेखन करना अर्थात् कृश करना संलेखना है। व्रती श्रावक इस मारणान्तिक संलेखना का भी प्रीति पूर्वक सेवन करता है। सूत्र में प्रयुक्त 'च' शब्द से ऐसा समझना चाहिए कि वह मारणान्तिक संलेखना का भी आराधक होता है यहां 'अन्त' शब्द के ग्रहण से तद्भवमरण ग्रहण किया जाता है।

शंका-मारणान्तिक संलेखना का सेवन करने वाला गृहस्थ आत्महत्या के दोष का भागी होना चाहिए, क्यों कि वह स्वेच्छा पूर्वक ही अपनी आयु, इन्द्रिय और बल का विनाश करने के लिए काय आदि का शोषण करने में प्रवृत्त होता है।

મારણાન્તિક સંલેહણા છે. સમ્ અર્થાત્ સમ્યક્ પ્રકારથી લેહન કરવું અથવા કૃશ કરવું સંલેહણા છે. ઉપવાસ વગેરે દ્વારા કાયાને કૃશ કરવી બાહ્ય સંલેહણા છે અને તપ તથા સંયમ દ્વારા ક્રોધ આદિ કષાયોને પાતળા પાડવા આન્તરિક સંલેહણા છે. આ રીતે કાયા તથા કષાયોનો સમ્યક્ પ્રકારે લેહન કરવું અથવા કૃશ કરવું સંલેહણા છે. વ્રતી શ્રાવક આ મારણાન્તિક સંલેહણાનું પણ પ્રેમપૂર્વક સેવન કરે છે સૂત્રમાં પ્રયુક્ત 'ચ' શબ્દથી એમ સમજવાનું છે કે તે મારણાન્તિક સંલેહણાના પણ આરાધક હોય છે. અહીં 'અન્ત' શબ્દના ગ્રહણથી તદ્ભવમરણ ગ્રહણ કરવામાં આવે છે.

શંકા-મારણાન્તિક સંલેહણાનું સેવન કરનાર ગૃહસ્થ આત્મહત્યાના દોષનો ભાગી હોવો જોઈએ, કારણ કે તે સ્વેચ્છાપૂર્વક જ પોતાના આયુષ્ય, ઇન્દ્રિય તેમજ બળનો વિનાશ કરવા માટે કાયા વગેરેનું શોષણ કરવામાં પ્રવૃત્ત થાય છે.

प्रवृत्तत्वात्-इति चेन्न-! अगारिणो व्रतिनोऽप्रमत्तत्वेन कायादि कृशादिकरणे प्रवृत्तत्वेऽपि आत्मघातकत्वदोषाऽभावात्, प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणस्यैव हिंसा-पदार्थत्वात् अस्य खलु व्रतिनोऽगारिणो रागद्वेषमोहाभिनिवेशाऽभावेन प्रमाद-योगाऽभावात्। यस्तु पुरुषो रागद्वेषमोहादिभिराविष्टः सन् विषशस्त्रगलपाशाऽग्निप्रवेश कूप तडागादि निमज्ज भृगुपात रसना खण्डनादि प्रयोगेणाऽऽत्मानं हिनस्ति स आत्मघाती भवति, तस्मात् संलेखनां प्रतिपन्नस्य व्रतिनो राग-द्वेषाद्यभावेनाऽऽत्मघातप.प न भवति। उक्तञ्च—

'रागादीण अणुप्पाये अहिंसगत्तिभासियं समये।
तेसिं चेदुप्पत्ती हिंसेत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठा ॥१॥ इति,
रागादीनामनुत्पादे अहिंसकइतिभाषितं समये।
तेषाञ्चेदुत्पत्ति-हिंसेति जिनैर्निर्दिष्टा ॥१॥ इति,

समाधान-ऐसा नहीं है। व्रती गृहस्थ अप्रमत्त होने के कारण काय आदि को कृश करने में प्रवृत्त होने पर भी आत्मघात के पाप का भागी नहीं होता। हिंसापद का अर्थ प्रमत्त योग से प्राणों का व्यपरोपण करना है, किन्तु व्रतवान् श्रावक राग द्वेष और मोह के अभिनिवेश से रहित होता है, अतएव उस में प्रमाद का योग नहीं होता। जो पुरुष राग, द्वेष और मोह से आविष्ट होकर विष, शस्त्र, फाँसी, अग्नि प्रवेश कूपपात, तडाग निमज्जन, भृगुपात, रसना खण्डन आदि का प्रयोग करके आत्मघात करता है, वही घातक होता है। इस प्रकार संलेखना को अंगीकार करने वाले व्रती पुरुष को, राग-द्वेष आदि का अभाव नहीं होने के कारण आत्मघात का पाप नहीं लगता। कहा भी है-

'जिसके रागादि की उत्पत्ति नहीं होती, वह आगम में अहिंसक

સમાધાન-આ પ્રમાણે નથી. વ્રતી ગ્રહસ્થ અપ્રમત્ત હોવાના કારણે કાયા વગેરેને કૃશ કરવામા પ્રવૃત્ત હોવા છતાં પણ આત્મઘાતના પાપનો ભાગીદાર થતો નથી. હિંસાપદનો અર્થ પ્રમત્તયોગથી પ્રાણોનો નાશ કરવો એમ થાય છે, પરન્તુ વ્રતધારી શ્રાવક રાગ દ્વેષ અને મોહના અભિનિવેશથી રહિત હોય છે, આથી તેનામાં પ્રમાદનો યોગ થતો નથી. જે પુરૂષ રાગ, દ્વેષ અને મોહથી આવિષ્ટ થઈને ઝેર, શસ્ત્ર, ફાંસો, અગ્નિસ્નાન, કૂવામાં પડવું. તળાવમાં ડૂબી જઈને જીભ કચરીને-એવા પ્રયોગો કરીને આત્મહત્યા કરે છે તે જ આત્મઘાતક કહેવાય છે. આવી રીતે સંલેહણુંને અંગિકાર કરનારા વ્રતી પુરૂષને રાગ-દ્વેષ આદિનો અભાવ નહીં હોવાના કારણે આત્મઘાતનું પાપ લાગતું નથી. કહ્યું પણ છે-

'જેને રાગાદિની ઉત્પત્તિ થતી નથી તેને આગમમાં અહિંસક-કહેવામાં

अपितु-अग्निदाहादिना बहुमूल्य रत्नादिविनिष्टनाशे समुपस्थिते तदुपशमाय कृतयत्नोऽपि-असफलश्चेद् अन्ततोरत्नादिकं संरक्षितुं पुरुषो यतते । एवं-युगपत् कायविनाशे समुपस्थिते व्रती श्रावको व्रत-शीलादिगुणानां संरक्षणार्थं यतमानो नाऽऽत्मघातकः सम्भवतीतिभावः ॥३८॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावद्-द्वादशव्रतधरोऽगारी श्रावकः शीलसम्पदा विशिष्टो भवतीत्युक्तम्, सम्प्रति-तथाविधः खलु श्रावको भवच्छेदकरकायकषाय संलेखनाऽऽराधको भवतीति प्रतिपादयितुमाह—''मारणंतिय संलेहणाजोसि-

---

कहा गया है। रागादि की उत्पत्ति ही हिंसा है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है।'

घर में आग लगने पर जब सर्व स्व के विनाश का अवसर उपस्थित होता है तब मनुष्य उस आग बुझाने का प्रयत्न करता है। किन्तु जब उसे बुझाने में सफल नहीं होता तो अन्ततः रत्न आदि मूल्यवान् पदार्थों की ही रक्षा करने का प्रयत्न करता है, इसी प्रकार एक साथ काय का विनाश उपस्थित होने पर व्रती श्रावक व्रत शील आदि गुणों की रक्षा करता हुआ आत्मघातक नहीं कहा जा सकता ॥३८

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले कहा गया है कि द्वादश व्रतधारी गृहस्थ श्रावक शील सम्पदा से सम्पन्न होता है, अब यह प्रतिपादन करते हैं कि पूर्वोक्त श्रावक भवका अन्त करने वाली काय-कषाय संलेखना का भी आराधक होता है।

આવ્યો છે. રાગાદિની ઉત્પત્તિ જ હિંસા છે એમ જિનેન્દ્ર ભગવાને ભાખેલું છે.'

ઘરમાં આગ લાગવાથી જ્યારે સર્વસ્વના વિનાશનો અવસર ઉપસ્થિત થાય છે, ત્યારે તે ઘરનો માલિક તે આગને ઓલવવાનો પ્રયત્ન કરે છે, પરન્તુ જ્યારે તેને હોલવવામાં તે સફળ થતો નથી, ત્યારે રત્ન આદિ મૂલ્યવાન્ પદાર્થોની જ રક્ષા કરવાનો પ્રયત્ન કરે છે, એવી જ રીતે એકી સાથે કાયાનો વિનાશ ઉપસ્થિત થવાથી વ્રતી શ્રાવક વ્રત શીલ આદિ ગુણોનું રક્ષણ કરતો થકો આત્મઘાતક કહી શકાતો નથી. ॥૩૮॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા કહેવામાં આવ્યું કે બાર વ્રતધારી ગૃહસ્થ શ્રાવક શીલ સંપત્તિથી સમ્પન્ન હોય છે હવે એ પ્રતિપાદન કરીએ છીએ કે પૂર્વોક્ત શ્રાવક ભવનો અન્ત કરનારી કાયા-કષાય સંલેહણાનો પણ આરાધક હોય છે—

श्च'- इति, स तावत्-पूर्वोक्त द्वादशव्रतविशिष्टोऽगारी मारणान्तिक संलेखना-जोषिता मवच्छेदकरकायकषायकृशीकरणरूपसंलेखनायाः प्रीत्यासेविताऽऽराधकश्चाऽपि भवति। चकारेण-द्वादशव्रतसम्पन्नश्चाऽपि मारणान्तिक संलेखना जोषिता भवतीति बोध्यम्। अत्र मरणं तावत्-सर्वायुषः क्षयरूपं बोध्यम्, नतु प्रतिक्षणमावीचिकमरणं ग्राह्यम्, मरणमेव मरणान्तः-मरणकालः, प्रत्यासन्नं तन्मरणमित्यर्थः अन्तपदेन-तद्भवमरणस्य ग्रहणात् तथा च-तद्भवमरणरूपो मरणान्तः प्रयोजनमस्या इति मारणान्तिकी सा चाऽसौ संलेखना चेति मारणान्तिक

यह पूर्वोक्त बारह व्रतों का धारक गृहस्थ मारणान्तिक संलेखना का भी प्रीति पूर्वक सेवन करने वाला होता है। 'च' शब्द के प्रयोग से ऐसा समझना चाहिए कि द्वादश व्रतों से सम्पन्न होने पर भी श्रावक मारणान्तिक संलेखना का आराधक होता है।

यहां मरण का अर्थ है-सम्पूर्ण आयु का क्षय होना। यहां क्षण-क्षण में होनेवाले अवीचिमरण को ग्रहण नहीं करना चाहिए। 'अन्त पद से तद्भवमरण समझना चाहिए। मरण को ही मरणान्त कहते हैं अर्थात् मरणकाल या मृत्यु का निकट आना। इस प्रकार तद्भवरूप मरणान्त जिसका प्रयोजन हो उसे मारणान्तिक कहते हैं। ऐसी संलेखना मारणान्तिक संलेखना है। जिसके द्वारा काय और कषाय आदि का संलेखन किया जाय-कृश किया जाय उसे संलेखना कहते हैं। तात्पर्य यह है कि काय और कषाय को कृश करनेवाला तपश्चरण

આ પૂર્વોક્ત બાર વ્રતધારી ગૃહસ્થ મારણાન્તિક સંલેહણાનું પણ પ્રીતિપૂર્વક સેવન કરનારો હોય છે. 'ચ' શબ્દના પ્રયોગથી એવું સમજવું જોઈએ કે બારવ્રતોથી સમ્પન્ન હોવા છતાં પણ શ્રાવક મારણાન્તિક સંલેહણાનો આરાધક હોય છે.

અહીં મરણનો અર્થ છે-સમ્પૂર્ણ આયુનો ક્ષય થવો અહીં ક્ષણે-ક્ષણે થનારા આવીચિમરણને ગ્રહણ કરવું જોઇએ નહીં. 'અન્ત' પદથી તદ્ભવમરણ સમજવું ઘટે. મરણને જ મરણાન્ત કહે છે, અર્થાત્ મૃત્યુકાળ અથવા મોતનું પાસે આવવું. આવી રીતે તદ્ભવ રૂપ મરણાન્તિક સંલેખના છે. જેના વડે કાયા તથા કષાય વગેરેનું સંલેહન કરાય-કૃશ કરાય તેને સલેહણા કહે છે. તાત્પર્ય એ છે કે કાયા તથા કાષાયને પાતળા પાડનાત તપશ્ચર્યા સંલેહણા કહેવાય છે. આમાં પણ કાયાને કૃશ કરનારી તપશ્ચર્યા બાહ્ય

संलेखना, संलेख्यते-कृशीक्रियते कायकषायादिक मनया-इति संलेखना काय कृशायतनूकरणतपो विशेषरूपा। तत्र-कायकृशकरणतपो विशेषेभ्योऽभ्यन्तर संलेखना-२ तथाचोक्तम्—

चत्तारि विचित्ताइं-विगई निज्जू हिआइं चत्तारि।
एगंतरमायामं-अविगिट्ठ विगिट्ठ कोडिक ॥१॥

इति चत्वारि (वर्षाणि) विचित्राणि (तपांसि) विकृतिनिर्यूढानि चत्वारि। एकान्तरमाचाम्लम् (द्वे) अविकृष्टम् (एकम्) विकृष्टम् एकम् कोटया-(एकम्) इति। संलेखनाकालश्च उत्कृष्टेन द्वादश वर्षाणि, तदनु पुनः स्वशक्त्यपेक्षया मासार्धं मासपरिमाणतया, आगमोक्त्या द्वादशवर्ष व्यवस्थयैव संलेखना कालोऽवगन्तव्यः सा चेयं संलेखनाऽवश्यमेव समाधि मरणपर्यन्तं श्रमण-श्रावकाभ्यां कर्तव्या। तथा च-दुष्षमारूपकालदोषात्-वज्रर्षभनाराचादि संहनन दौर्बल्यदोषात् दिव्य-

---

संलेखना कहलता है। इस में भी काय को कृश करने वाला तपश्चरण बाह्य संलेखना है क्रोध आदि कषायों को कृश करने वाला तप आभ्यन्तर संखना है। कहा भी है-

चार वर्ष तक विचित्र तप करे, चार वर्ष तक विगयों का त्याग कर के तप करे, दो वर्ष तक एकान्तर आयंबिल करे, एक वर्ष अविकृष्ट और एक वर्ष तक विकृष्ट तप करे। इस प्रकार संलेखना का उत्कृष्ट काल बारह वर्ष का कहा गया है। तत्पश्चात् अपनी शक्ति के अनुसार मास या अर्धमास परिमाण वाली, आगमोक्त बारह वर्ष की व्यवस्था से ही संलेखना काल समझना चाहिए।

साधु और श्रावक को यह संलेखना मरणपर्यन्त अवश्य ही करना चाहिए। इस दुष्षम काल के दोष से, संहनन की दुर्बलता के दोष से

સંલેહણા છે જ્યારે ક્રોધ વગેરે કષાયોને કૃશ કરનારનું તપ આભ્યન્તર સંલેહણા છે. કહ્યું પણ છે—

ચાર વર્ષ સુધી વિચિત્ર તપ કરે. ચાર વર્ષ સુધી વિગાયનો ત્યાગ કરીને તપ કરે, બે વર્ષ સુધી એકાંતર આયંબિલ કરે, એક વર્ષ અવિકૃષ્ટ અને એક વર્ષ સુધી વિકૃષ્ટ તપ કરે આ રીતે સંલેહણાનો ઉત્કૃષ્ટ કાળ બાર વર્ષનો કહેવામાં આવ્યો છે ત્યાર પછી પોતાની શક્તિ મુજબ માસ અથવા અડધા માસ પરિમાણવાળી આગમોક્ત બાર વર્ષની વ્યવસ્થાથી જ સંલેહણાનો કાળ સમજવાનો છે.

સાધુ તથા શ્રાવકે આ સંલેહણા મરણપર્યન્ત અવશ્ય જ કરવી જોઈએ. આ દુષ્ષમકાળના દોષથી, સંહનનની દુર્બળતાના દોષથી તથા દેવતા મનુષ્યો

मानुष तिर्यक्कृताऽऽत्म समुत्थोपसर्गदोषात् तथा दशविधधर्म विषयक श्रमणाऽऽवश्यक कर्तव्य प्रत्युपेक्षणादिकस्य परिहाणिम्–अगारिणश्च–श्रमणवैयावृत्त्यपौषधोपवासप्रतिपत्त्यादिकस्य परिहाणिञ्च विज्ञायाऽगारीव्रती मरणं वा प्रत्यासन्नमनुबुध्य कुक्कुटाण्डकप्रमाणद्वात्रिंशत्कवलाहार हदनाकरणरूपाऽवमौदर्यं चतुर्थ षष्ठाऽष्टमभक्ताऽर्धमास क्षपणादिभि रात्मानं संलिख्य–कृशीकृत्य विरुक्ष्य रुधिरमेदोमांसाद्यपचयं विधाय क्रोधादिकषायांश्च निरस्य सर्वसावद्ययोगविरतिलक्षणं पञ्च महाव्रतञ्च प्रतिपद्य महाव्रतसम्पन्नो भूत्वा चतुर्विधमशनपान–खाद्य–स्वाद्यरूपमाहारं मनसा–वचसा–कायेन त्रिविधेन योगेन प्रत्याख्याय यथा समाधि यावज्जीवं भावानुप्रेक्षातत्परः प्रतिज्ञात महाव्रतादि स्मृतिसमाधिबहुलः सन्

तथा देवों मनुष्यों एवं तिर्यंचों द्वारा जनित और अपने आपसे उत्पन्न होने वाले उपसर्गों के दोष से तथा दसप्रकार के धर्मविषयक श्रमण के आवश्यक कर्तव्य एवं प्रत्युपेक्षण आदि की हानि को देखकर और श्रमणों की वैयावृत्य एवं पौषधोपवास आदि गृहस्थ के कर्तव्यों की हानि देखकर व्रती गृहस्थ मृत्यु को सन्निकट आया जानकर मुर्गी के अंडे के बराबर बत्तीस कवल के आहार में कमी करने रूप अवमौदर्य, उपवास, वेला, तेला, अर्धमासखमण आदि से शरीर को कृश करके रुधिर–मांस आदि का अपचय करके, क्रोध आदि कषायों को दूर करके, सर्वसावद्यविरति रूप पांच महाव्रतों को अंगीकार करके, महाव्रतों से सम्पन्न होकर, अशन पान, खादिम और स्वादिम आहार को मन वचन काय रूप तीनों योगों से त्याग करके, समाधि के अनुसार जीवनपर्यन्त भावानुप्रेक्षा में तत्पर रहकर, अंगीकार किये हुए

તથા તિર્યંચો દ્વારા જનિત તથા પોતનાથી જ ઉત્પન્ન થનારા ઉપસર્ગોના દોષથી તથા દશ પ્રકારના ધર્મવિષયક શ્રમણના આવશ્યક કર્તવ્ય અને પ્રત્યુપેક્ષણ વગેરેના હ્રાસને જોઈને અને શ્રમણોની વૈયાવચ્ચ અને પૌષધોપવાસ વગેરે ગૃહસ્થના કર્તવ્યોની ખોટ જોઈને, વ્રતી ગૃહસ્થ મૃત્યુને ઢુકડું આવેલું જાણીને, મરઘીના ઇંડા બરાબર બત્રીસ કોળીયાના આહારમાં કયારેક કરવા યોગ્ય અવમૌદર્ય. ઉપવાસ, છઠ, અટ્ઠમ, અર્ધમાસ ખમણ આદિથી શરીરને કૃશ કરીને, લોહી–માંસ આદિનો અપચય કરીને ક્રોધ આદિ કષાયોને દેશવટો આપીને, સર્વસાવદ્યવિરતિ રૂપ પાંચ મહાવ્રતોને અંગીકાર કરીને, મહાવ્રતોથી સમ્પન્ન થઇને અનશન, અશનપાન, ખાદ્ય તથા સ્વાદિષ્ટ આહારનો મન, વચન કાયા રૂપ ત્રણે યોગથી ત્યાગ કરીને, સમાધિ અનુસાર જીવનપર્યન્ત ભાવાનુપ્રેક્ષામાં તત્પર રહીને, અંગિકાર કરેલા મહાવ્રત આદિની

आर्तरौद्रध्यानरहितो मारणान्तिसंलेखनासेविता परमपुरुषार्थरूपस्य मोक्षस्या-ऽऽराधको भवति। अथैवं तर्हि-मारणान्तिकसंलेखना कर्ता स्वाभिसन्धि पूर्व-काऽऽयुरादि विनाशकतयाऽऽत्मघात दोषयुक्तः स्यात् इति चेन्न अस्य संलेखकस्या ऽप्रमत्तत्वेनाऽऽत्मघातदोषाभावात्, प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणस्य हिंसात्वात् अस्य प्रमादयोगाऽभावो वर्तते, रागद्वेषमोहाभिनिवेशरहितत्वात्, व्रतादि गुणानां संरक्षणार्थमेव तथा कर्तुं प्रवृत्तत्वात्। उक्तञ्चौपपातिके-५७ सूत्रे 'अप-च्छिमा मरणंतिया संलेहना जूसणा राहणा' इति अपश्चिमा मारणान्तिकी संलेखना जोषणाऽऽराधना इति। ३८॥

महाव्रत आदि की स्मृति समाधि की बहुलता वाला होकर, आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान से युक्त-रहित होकर जो मारणान्तिक संलेखना का सेवन करता है, वह परम पुरुषार्थ मोक्ष का आराधक होता है।

शंका-अगर ऐसा है तो मारणान्तिक संलेखना करने वाला अपनी इच्छा से ही अपनी आयु आदि का विनाश करता है, इस कारण आत्मघात के पाप के भागी होना चाहिए।

समाधान-संलेखन कर्त्ता प्रमादहीन होने के कारण आत्मघात के पाप का भागी नहीं होता। राग द्वेष और मोह के अभिनिवेश से रहित होने के कारण उस में प्रमाद के योग का अभाव है। वह तो व्रतादि गुणों की रक्षा करने के लिए ही वैसा करता है। औपपातिक सूत्र के ५७ वें सूत्र में कहा है-'अपश्चिम मारणान्तिक संलेखनाजोसण आराहणा ॥३८॥

સ્મૃતિ રૂપ સમાધિની બહુલતાવાળો થઈને આર્ત્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાનથી મુક્ત થઈને જેઓ મારણાન્તિક સંલેહણાનું સેવન કરે છે, તે પરમ પુરૂષાર્થ મોક્ષનો આરાધક હોય છે.

શંકા-જો આ પ્રમાણે જ હોય તો મારણાન્તિક સંલેહણા કરનાર પોતાની રાજીખુશીથી જ પોતાના આયુષ્ય વગેરેનો વિનાશ કરે છે આથી આત્મહત્યાના પાપનો ભાગીદાર ગણાવો જોઈએ.

સમાધાન-સંલેહણા કરનાર પ્રમાદહીન હોવાના કારણે આત્મઘાતના પાપનો ભાગી થતો નથી રાગદ્વેષ તથા મોહના અભિનિવેશથી મુક્ત હોવાના કારણે તેનામાં પ્રમાદના યોગનો અભાવ છે તે તો વ્રતાદિ ગુણોના રક્ષણ કાજે જ આ પ્રમાણેનું અનુષ્ઠાન કરે છે ઔપપાતિકસૂત્રના ૫૭માં સૂત્રમાં કહ્યું-'अपच्छिममारणान्तिक संलेखनाजोसणा-आराहणा' ॥૩૮॥

मूलम्—बारसवई-अगारी ॥३९॥

छाया—द्वादशव्रती अगारी ॥३९॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वोक्त सम्यक्त्वसहितद्वादशव्रतयुक्ताऽगारी श्रावको भवति नाऽन्यः ॥३९॥

मूलम्—संमत्तस्स संकाइया पंच अइयारा ॥४०॥

छाया—सम्यक्त्वस्य शङ्कादिकाः पञ्चातिचाराः ॥४०॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावद् द्वादश व्रतधार्यगारी श्रावको भवति, श्रावकत्वस्य व्रतविशिष्टत्वात्, तत्र-यो व्रती सोऽवश्यमेव सम्यग्दर्शनविशिष्टो भवति शङ्कादि दोषदूषितमनसो मूलोत्तरगुणाधारतत्त्वश्रद्धानस्य नियमत एव व्रतित्वं न सम्भवति, व्रतित्वस्य सम्यग्दर्शनमूलत्वात्, व्रती खलु-नियमं सम्यक्त्ववान्

'बारसवई आगारी' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—गृहस्थ बारह व्रतों का धारक होता है। तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त सम्यक्त्व सहित बारह व्रतों से जो युक्त होता है वही गृहस्थ श्रावक कहलाता है, ॥३९॥

'संमत्तस्स संकाइया' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—सम्यक्त्व के शंका आदि अतिचार हैं ॥४०॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले बताया गया है कि बारह व्रतों का धारक गृहस्थ श्रावक कहलाता है, क्यों कि श्रावकत्व व्रतसम्पन्नता से ही होता है और जो व्रती होता है वह सम्यग्दर्शन से सम्पन्न अवश्य होता है। मूल और उत्तरगुणों के आधारभूत तत्त्व श्रद्धान के अभाव में जिसका मन शंका आदि दोषों से दूषित है,

સૂત્રાર્થ–ગૃહસ્થ બારવ્રતોનો ધારક હોય છે. તાત્પર્ય એ છે કે પૂર્વોક્ત સમ્યક્ત્વસહિત બાર વ્રતોથી જે યુક્ત હોય છે તે જ ગૃહસ્થ 'શ્રાવક' કહેવાય છે. ॥૩૯॥

'सम्मत्तस्स संकाइया पंचअइयारा' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ–સમ્યક્ત્વના શંકા વગેરે પાંચ અતિચાર છે. ॥૪૦॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા બતાવવામાં આવ્યું કે બાર વ્રતોનો ધારક ગૃહસ્થ શ્રાવક કહેવાય છે કારણ કે શ્રાવકત્વ વ્રતસમ્પન્નતાથી જ થાય છે અને જે વ્રતી હોય છે તે અવશ્ય સમ્યક્દર્શનથી સમ્પન્ન હોય છે મૂળ તથા ઉત્તરગુણોના આધારભૂત તત્ત્વશ્રદ્ધાનના અભાવમાં જેનું મન શંકા વગેરે દોષોથી દૂષિત છે, તે ચોક્કસપણે વ્રતધારી થઈ શકતો નથી, વ્રતપણું

भवति सम्यक्त्वे शुद्धेव व्रतशुद्धिर्भवति, सम्यक्त्वे निरतिचारे सत्येव व्रतीभव-तीति सम्यक्त्वस्याऽतिचारान् प्रतिपादयितुमाह-'सम्मत्तस्स संकाइया पंच अइयारा' इति, सम्यक्त्वस्य-सम्यग्दर्शनस्य शङ्कादिकाः-शङ्का, ऽऽदिपदेन-कांक्षा विचिकित्सापरपाषण्डप्रशंसापरपाषण्डसंस्तवश्चेत्येते पञ्चाऽतिचाराः मोह-नीयकर्मणो वैचित्र्या दात्मनः परिणतिविशेषा मालिन्यतारूपा दोषा भवन्ति। तथा च-निःशङ्कितत्वादिभिः सम्यग्दर्शनविशुद्धिर्भवति, शङ्काकांक्षा विचिकि त्सादिभिश्च सम्यग्दर्शनस्याऽविशुद्धिः। तत्र-शङ्का अर्हदुपदिष्टेषु तत्त्वेषु सर्वतो देशतो वात्सल्यतया संशयकरणम्, सम्यक्त्वेहि कांचिदपि शङ्का न कृत्वा निःशंकतया तद्रक्षणीयम्। काङ्क्षा-सर्वतो देशतश्च मिथ्यादर्शनस्याऽभिलाषः।

है, वह निश्चय ही व्रती नहीं हो सकता व्रतीपन सम्यग्दर्शन मूलक है। व्रती निश्चितरूप से सम्यक्त्ववान् ही होता है। सम्यक्त्व के शुद्ध होने पर ही व्रतों की शुद्धि होती है। निरतिचार सम्यक्त्व के होने पर ही व्रती होता है, अतएव सम्यक्त्व के अतिचारों का प्रतिपादन करते हैं-

सम्यक्त्व के शंका आदि पांच अतिचार हैं 'आदि' पद से कांक्षा विचिकित्सा, परपाषण्ड प्रशंसा और परपाषण्ड संस्तव अतिचारों का ग्रहण होता है। मोहनीय कर्म की विचित्रता से आत्मपरिणति विशेष मलीनता रूप दोष होते हैं, अतः निःशंकितत्व आदि से सम्यग्दर्शन की विशुद्धि होती है और शंका, कांक्षा, विचिकित्सा आदि सम्यग्द-र्शन की अशुद्धि होती है।

अर्हन्त भगवान् द्वारा उपदिष्ट तत्त्वों में सर्वदेश से या एकदेश से संशय करना शंका है। सम्यक्त्व में कुछ भी शंका न करके, निः-

---

સમ્યક્દર્શન મૂળક છે વ્રતી નિશ્ચિતપણે શ્રદ્ધાવાન્ જ હોય છે. સમ્યક્ત્વ શુદ્ધિ હોય તો જ વ્રતોની શુદ્ધિ થાય છે નિરતિચાર સમ્યક્ત્વ હોય ત્યારે જ વ્રતી થઇ શકાય છે આથી સમ્યક્ત્વના અતિચારોનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ-

સમ્યક્ત્વના શંકા વગેરે પાંચ અતિચાર છે. 'આદિ' પદથી કાંક્ષા, વિચિ-કિત્સા, પરપાષંડ પ્રશંસા અને પરપાષંડ સંસ્તવ અતિચારોનુ ગ્રહણ થાય છે. મોહનીય કર્મની વિચિત્રતાથી આત્મપરિણતિ વિશેષ મલીનતા રૂપ દોષ ઉત્પન્ન થાય છે આથી નિઃશંકિતત્વ આદિથી સમ્યક્દર્શનની વિશુદ્ધિ થાય છે અને શંકા કાંક્ષા વિચિકિત્સા વગેરેથી સમ્યક્દર્શનની અશુદ્ધિ થાય છે

અર્હન્ત ભગવાન્ દ્વારા ઉપદિષ્ટ તત્ત્વોમાં સર્વદેશથી અથવા એક દેશથી સંશય કરવો એ શંકા કહેવાય છે. સમ્યક્ત્વમાં કોઇ પણ પ્રકારની

विचिकित्सातु अस्य महतस्तपोदानादिप्रयासस्य फलं भविष्यति- न वा? इत्यादिरूप संशयकरणम् । परपाषण्डप्रशंसातु सर्वज्ञाऽनुपदिष्टस्य धर्मस्य गुणोद्भावनरूपा । परपाषण्डसंस्तवः–सर्वज्ञाऽनुपदिष्टस्य धर्मस्य–मिथ्यादृष्टेर्वा परिचयः । पुनस्तयो र्भूताभूतगुणोद्भावनवचनरूपो वा । वस्तुतस्तु–सम्यग्दृष्टेरष्टौ–अतिचाराः सन्ति तत्र–त्रयाणामतिचाराणां परपाषण्डप्रशंसा–संस्तवयोरेवान्तर्गतित्वात् पञ्चैवाऽतीचाराः सम्यग्दृष्टेरित्युक्तम् । तत्र ते खलु त्रयोऽन्येऽतिचाराः दोषाऽनुपगूहनाऽस्थिरीकरणाऽवात्सल्यरूपाऽवसेयाः । तेषां खलु–प्रशंसासंस्तवयोरन्तर्भावः, यथा

शंक होकर सम्यक्त्व की रक्षा करनी चाहिए। एकदेश से मिथ्यादर्शन की अभिलाषा करना कांक्षा दोष है। इस महान् तपश्चरण एवं दान आदि का कुछ फल होगा कि नहीं, इस प्रकार धर्मक्रिया के फल में संशय करना विचिकित्सा है। जो धर्म सर्वज्ञ के द्वारा उपदिष्ट नहीं है, उस में गुणों को प्रकट करना परपाषण्ड प्रशंसा है। सर्वज्ञ द्वारा अनुपदिष्ट धर्म का या मिथ्यादृष्टि का परिचय करना परपाषण्ड संस्तव है या उनके सद्भूत एवं असद्भूत गुणों को प्रकट करने वाला वचन परपाषण्ड संस्तव है।

वास्तव में तो सम्यग्दर्शन के अतिचार आठ हैं, किन्तु तीन अतिचारों का परपाषंड प्रशंसा और परपाषण्ड संस्तव में ही समावेश हो जाता है, इस कारण सम्यक्त्व के पांच अतिचार कहे गए हैं। इन में अन्तर्गत होने वाले तीन अतिचार ये हैं–दोषानुपगूहन, अस्थिरीकरण

શંકા નહીં કરતા, નિઃશંક થઈને સમ્યક્ત્વની રક્ષા કરવી જોઈએ. એકદેશથી અથવા સર્વદેશથી મિથ્યાદર્શનની અભિલાષા કરવી કાંક્ષા દોષ છે. આ મહાન્ તપશ્ચર્યા તથા દાન વગેરેનું કોઈ ફળ મળશે કે નહીં, એ રીતે ધર્મકરણીના ફળનો સંશય કરવો વિચિકિત્સા છે, જે ધર્મ સર્વજ્ઞ દ્વારા ઉપદિષ્ટ નથી તેમાં ગુણોનું આરોપણ કરવું પરપાષંડ પ્રશંસા છે. સર્વજ્ઞ દ્વારા અનુપદિષ્ટ ધર્મનો અથવા મિથ્યાદષ્ટિનો પરિચય કરવો પરપાષંડ-સંસ્તવ છે અથવા તેમના સદ્‌ભૂત અને અસદ્‌ભૂત ગુણોને પ્રકટ કરનારૂં વચન પરપાષંડસંસ્તવ છે.

વાસ્તવમાં તો સમ્યક્‌દર્શનમાં અતિચાર આઠ છે, પરન્તુ ત્રણ અતિચારોનો પરપાષંડ, પ્રશંસા અને પરપાષંડ સંસ્તવમાં જ સમાવેશ થઈ જાય છે, આથી સમ્યક્‌ત્વના પાંચ અતિચાર કહેવામાં આવ્યા છે. આમાં સમાયેલા ત્રણ અતિચાર આ પ્રમાણે છે–દોષાનુપગૂહના, અસ્થિરીકરણ અને અવાત્સલ્ય

यः पुरुषो मिथ्यादृष्टीनां मनसा प्रशंसां करोति स तावन्मूढमतिः सम्यग्ज्ञान दर्शनचारित्रतपोरूप रत्नचतुष्टयभूषितानां प्रमादाज्ञानकारणोद्‌भवं दोषं नो पगूहति, तेषां सम्यग्दर्शनादौ स्थिरीकरणञ्च न विदधाति वात्सल्यं पुनर्दूरे आस्ताम् स शासनप्रभावनामपि कथं कुर्यात् ? तस्मात्–परपाषण्डप्रशंसासंस्तवयो र्मध्येऽनुपगूहनादयो दोषाः अन्तर्भूता भवन्ति । व्रतानां चाग्रे पञ्च–पञ्चातिचारा वक्ष्यन्ते तदनुरोधेनापि प्रशंसा–संस्तवयोरितर त्रीनतिचारान् अन्तर्भाव्य पञ्चैवातिचाराः प्रतिपादिताः ॥४०॥

तत्वार्थनिर्युक्तिः--पूर्वं खलु–द्वादशव्रतधारीऽगारी व्रती भवती त्युक्तम्, तत्र मिथ्यादर्शनस्य शल्यतया सम्यग्दृष्टिरेव व्रती–अगारी भवति । तत्र कस्य-

---

अवात्सल्य इनका प्रशंसा और संस्तव में समावेश हो जाता है। जो पुरुष मन से मिथ्यादृष्टिओं की प्रशंसा करता है, वह मूढमति सम्यग्ज्ञान–दर्शन–चारित्र एवं तप रूप रत्नचतुष्टय से विभूषित पुरुषों के प्रमाद तथा अज्ञान से उत्पन्न होने वाले दोष का उपगूहन नहीं करता उसे ढंकना नहीं है, सम्यग्दर्शन आदि में उनका स्थिरिकरण नहीं करता, वात्सल्य तो दूर रहा वह शासन की प्रभावना भी कैसे करेगा इस प्रकार परपाषंड प्रशंसा और परपाषण्ड संस्तव में अनुपगूहन आदि दोष अंतर्गत हो जाते हैं। आगे व्रतों के पाँच पाँच अतिचार कहे जाएंगे, इस अनुरोध से भी प्रशंसा और संस्तव में ही तीन अतिचारों को अंतर्गत करके सम्यक्त्व के पांच अतिचार ही कहे हैं ॥४०॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पहले कहा गया था कि बारह व्रतों का धारक

આમનો પ્રશંસા અને સંસ્તવમાં સમાવેશ થઇ જાય છે. જે પુરૂષ મનથી મિથ્યાદષ્ટિઓની પ્રશંસા કરે છે તે મૂઢમતિ સમ્યક્‌જ્ઞાન–દર્શન–ચારિત્ર તથા તપ રૂપ રત્નચતુષ્ટયથી વિભૂષિત પુરૂષોના પ્રમાદ તથા અજ્ઞાનથી ઉત્પન્ન થનારા દોષોનું ઉપગૂહન કરતો નથી–તેના ઉપર ઢાંક–પીછોડો કરતો નથી, સમ્યક્‌દર્શન વગેરેમાં તેમનું સ્થિરીકરણ કરતો નથી, વાત્સલ્ય તો એક બાજુએ રહ્યું, તે શાસનની પ્રભાવના પણ કેવી રીતે કરશે ? આવી રીતે–પરપાષંડપ્રશંસા અને પરપાષંડ સંસ્તવમાં અનુપગૂહન વગેરે દોષો અન્તર્ગત થઈ જાય છે. આગળ ઉપર વ્રતોનાં પાંચ–પાંચ અતિચાર કહેવામાં આવશે, એવા અનુરોધથી પણ પ્રશંસા અને સંસ્તવમાં જ ત્રણ અતિચારોનો સમાવેશ કરીને સમ્યક્‌ત્વના પાંચ અતિચાર જ કહેવામાં આવ્યા છે ॥૪૦॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા કહેવામાં આવ્યું હતું કે બાર વ્રતોનો ધારક

चिन्मोहनीयावस्थाविशेषात् सम्यग्दृष्टेः पञ्चातिचारान् प्रतिपादयितुमाह–'संमत्तस्स संकाइया पंच अइयारा' इति । सम्यक्त्वस्य सम्यग्दर्शनस्य शंकादयः शंका आदिपदेन कांक्षा विचिकित्सा परपाषण्डप्रशंसा–परपाषण्डसंस्तवश्चेत्येते पञ्चातिचारा भवन्तीति, तत्र ऽतिचारो व्यतीक्रमः, मोहनीयकर्मणो वैचित्र्यात् आत्मनः परिणतिविशेषरूपो बोध्यः । तथा च शंका कांक्षा विचिकित्सापरपाषण्डप्रशंसा–परपाषण्डसंस्तवः इत्येते पञ्च सम्यग् दृष्टेरतिचारा भवन्ति । तत्र शंका तावद् आगमगम्येषु तीर्थकृते प्रोक्तेषु जीवादिषु–अर्थेष्वत्यन्त सूक्ष्मेषु मतीन्द्रिये च परमाण्वादिषु अधिगतजीवाजीवादि तत्त्वस्य भगवतः

गृहस्थ ही श्रावक-व्रती होता है। मिथ्यदर्शन शल्य है, इस कारण सम्यग्दृष्टि ही व्रती गृहस्थ होता है। किसी को मोहनीय कर्म की विशिष्ट अवस्था से सम्यक्त्व में पांच अतिचार होते हैं, उनकी प्ररूपणा करते हैं–

सम्यक्त्व के शंका आदि पांच अतिचार होते हैं। 'आदि' शब्द से कांक्षा, विचिकित्सा, परपाषण्ड प्रशंसा और परपाषण्डसंस्तव नामक अतिचारों को ग्रहण करना चाहिए।

अतिचार का अर्थ है उल्लंघन–मर्यादा भंग। मोहनीय कर्म की विचित्रता से उत्पन्न होने वाली आत्मा की परिणति अतिचार कहलाती है। इस प्रकार सम्यग्दर्शन के पांच अतिचार हैं–शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, परपाषण्ड प्रशंसा और परपाषण्ड संस्तव। आगम में प्रतिपादित, तीर्थंकर भगवान् के द्वारा कथित जीवादि तत्त्वों में, अत्यन्त सूक्ष्म, अतीन्द्रिय परमाणु आदि पदार्थों में, जीव–अजीव आदि तत्त्वों

ગૃહસ્થ જ શ્રાવકવ્રતી હોય છે. મિથ્યાદર્શન શલ્ય છે આ કારણે સમ્યગ્દૃષ્ટિ જ વ્રતી ગ્રહસ્થ હોય છે. કોઈને મોહનીય કર્મની વિશિષ્ટ અવસ્થાથી સમ્યક્ત્વમાં પાચ અતિચાર હોય છે તેમની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ–

સમ્યક્ત્વના શંકા વગેરે પાંચ અતિચાર હોય છે. 'આદિ' શબ્દથી કાંક્ષા, વિચિકિત્સા, પરપાખંડપ્રશંસા અને પરપાખંડસંસ્તવ નામના અતિચારોને ગ્રહણ કરવા જોઈએ.

અતિચારનો અર્થ છે--ઉલ્લંઘન–મર્યાદાભંગ મોહનીય કર્મની વિચિત્રતાથી ઉત્પન્ન થનાર આત્માની પરિણતિ અતિચાર કહેવાય છે. આ રીતે સમ્યક્દર્શનના પાંચ અતિચાર છે–શંકા, કાંક્ષા, વિચિકિત્સા, પરપાખંડપ્રશંસા અને પરપાખંડસંસ્તવ, આગમમાં પ્રતિપાદિત, તીર્થંકર ભગવાન દ્વારા કથિત જીવાદિ તત્ત્વોમાં, જીવ–અજીવ આદિ તત્ત્વોના જ્ઞાતા, ભાવપૂર્વક ભગવાનના

शासनं भावतः प्रतिपन्नस्याऽपि-अर्हत्प्रणीततत्त्वश्रद्धस्य सम्यग्दृष्टेः एवं स्याद्-संख्येयप्रदेश आत्मा, अथ निष्प्रदेशो निरवयवत्वान्नैवं स्यात्' इत्यादिरूपः संशय उच्यते। तथाचोक्तमावश्यके 'संसयकरणं संका' संशयकरणं शंकेति। कांक्षा-परदर्शनवाञ्छा २ विचिकित्सा-फलं प्रतिसन्देहः ३ मिथ्यादर्शनं त्रिविधं भवति अभिगृहीता १ ऽनभिगृहीत २ संशय ३ भेदात्। उक्तञ्च---

'पयमक्खरं च एक्कंपि-जो नरोएति सुत्तनिद्दिट्ठं।
सेसं रोयंतोवि-हु मिच्छदिट्ठी मुणेयव्वो। १॥
'पदमक्षरं चैकमपि-यो न रोचते सूत्रनिर्दिष्टम्।
शेषं रोचमानोऽपि-खलु मिथ्यादृष्टि र्ज्ञातव्यः ॥१॥ इति

के ज्ञाता, भाव पूर्वक भगवान् के शासन को अंगीकार करने वाले, अर्हन्त-कथित तत्त्व के श्रद्धायुक्त सम्यग्दृष्टि को भी ऐसा संशय उत्पन्न हो जाता है कि-'आत्मा असंख्यातप्रदेशी है अथवा निरवयव होने से अप्रदेशी है।' यह शंका अतिचार है। आवश्यक में कहा है-'संशय करना शंका है।' परकीय दर्शन की इच्छा करना कांक्षा अतिचार है। धर्मक्रिया के फल में सन्देह करना विचिकित्सा अतिचार है।

मिथ्यादर्शन तीन प्रकार का है-अभिगृहीत, अनभिगृहीत और संशय मिथ्यादर्शन। कहा भी है-

जो जीव सूत्रोक्त एक पद या अक्षर पर भी अरुचि करता है, वह भले ही शेष सब पर रुचि रखता हो, फिर भी उसे मिथ्यादृष्टि ही समझना चाहिए ॥१॥

इसी प्रकार-सूत्र में कहे हुए एक अक्षर पर भी अरुचि करने

શાસનને અંગીકાર કરનારો, અર્હન્ત કથિત તત્ત્વમાં શ્રદ્ધાળુ સમ્યક્દૃષ્ટિને પણ એવો સંશય ઉત્પન્ન થઈ જાય છે કે-'આત્મા, અસંખ્યાતપ્રદેશી છે અથવા નિરવયવ હોવાથી અપ્રદેશી છે!' આ શંકા અતિચાર છે. આવશ્યકમાં કહ્યું છે-'સંશય કરવો શંકા છે' પરકીય દર્શનની ઇચ્છા કરવી કાંક્ષા અતિચાર છે. ધર્મ ક્રિયાના ફળમાં સંદેહ રાખવો વિચિકિત્સા અતિચાર છે.

મિથ્યાદર્શન ત્રણ પ્રકારનું છે-અભિગૃહીત, અનભિગૃહીત અને સંશય મિથ્યાદર્શન કહ્યું પણ છે-

જે જીવ સૂત્રોક્ત એક પદ અથવા અક્ષર પ્રત્યે પણ અરૂચિ કરે છે, તે ભલે બાકીના બધાં ઉપર રૂચિ રાખતો હોય, તો પણ તેને મિથ્યાદષ્ટિ જ ગણવો જોઈએ ॥૧॥

એવી જ રીતે-સૂત્રમાં કહેલાં એક અક્ષર પર પણ અરૂચિ રાખવાથી

'एवम्'-सूत्रोक्तस्यैकस्या-ऽरोचनादक्षरस्य भवति नरः ।
मिथ्यादृष्टिः सूत्रंहि-न प्रमाणं जिनाज्ञाच ॥१॥
एकस्मिन्नप्यर्थे-सन्दिग्धे प्रत्ययोऽर्हति हि नष्टः ।
मिथ्यैव दर्शन तत्-सचादिहेतु र्भवगतीनाम् ॥२॥ इति,

तस्मान्मुमुक्षुणा जनेन शङ्कारहितेन जिनवचनं सर्वथा सत्यमेव प्रतिपत्तव्यम्, सर्वज्ञवीतरागाभिहितत्वात्। उक्तञ्च-'तमेव सच्चं नीसंकं, जं जिणेहिं पवेइयं' तदेव सत्यं निश्शङ्कं यज्जिनैः प्रवेदितम्, इति छाया। ज्ञानदौर्बल्येन्द्रियापाटवादि दोषात्खलु साकल्येन छद्मस्थस्य सकलपदार्थस्वरूपाऽवधारणाया असम्भवात्। कांक्षापदार्थस्तु-ऐहलौकिक-पारलौकिकविषयेषु शब्दादिष्वाशंसा-

से मनुष्य मिथ्यादृष्टि हो जाता है। सूत्र और जिनाज्ञा प्रमाण नहीं है, ऐसा वह समझता है ॥१॥

एक भी पदार्थ में सन्देह हो तो अर्हन्त भगवान् के प्रति विश्वास का विनाश हो जाता है, अतएव सन्देह करने वाला पुरुष मिथ्यादृष्टि है। वह भव भ्रमतियों का आदि हेतु है ।२॥

अतएव मुमुक्षु जन को शंका से रहित होकर जिनवचन सर्वथा सत्य ही है, ऐसा समझना चाहिए, क्यों कि वह सर्वज्ञ और वीतराग के द्वारा कथित है। कहा है-'वही सत्य और असंदिग्ध है जो जिनेन्द्रों ने कहा है।' छद्मस्थ जीव का ज्ञान दुर्बल होता है, उसकी इन्द्रियां कुशल नहीं होतीं, इन दोषों के कारण वह समस्त पदार्थों के स्वरूप का निश्चय नहीं कर सकता।

इस लोक और परलोक संबंधो शब्द आदि विषयों की इच्छा

મનુષ્ય મિથ્યાદષ્ટિ થઈ જાય છે સૂત્ર તેમજ જિનાજ્ઞા પ્રમાણ નથી એવું તે સમજે છે. ॥૧॥

એક પણ પદાર્થમાં સંદેહ હોય તો અર્હન્ત ભગવાન તરફ વિશ્વાસનો વિનાશ થઈ જાય છે, આથી શંકાશીલ પુરૂષ મિથ્યાદષ્ટિ છે. તે ભવગતિઓનો મૂળ હેતુ છે ॥૨॥

આથી મુમુક્ષુ પુરૂષે શંકારહિત થઈને જિનવચન સર્વથા સત્ય જ છે એવું સમજવું જોઈએ કારણ કે તે સર્વજ્ઞ અને વીતરાગ દ્વારા કહેવાયું છે. કહ્યું પણ છે-'તે જ સત્ય અને અસંદિગ્ધ છે જે જિનેન્દ્રોએ કહ્યું છે. છદ્મસ્થ જીવનું જ્ઞાન નબળું હોય છે, તેની ઇન્દ્રિયો સતેજ હોતી નથી આ દોષોને લીધે તે બધાં પદાર્થોના સ્વરૂપનો નિશ્ચય કરી શકતો નથી.

આ લોક તેમજ પરલોક સંબંધી શબ્દ આદિ વિષયોની ઈચ્છા કરવી

रूपः प्रीतिपर्यायोऽभिलापः यथा-'सुगतोहि भिक्षुणां-स्नानाऽन्नपानाऽऽच्छादन-शयनीयादि सुखाऽनुभवद्वारा क्लेशरहित धर्ममुपदिष्टवान् एवं मन्येऽपि-सांसारिकविषयभोगसुखार्थमेव धर्मोपदेशं कृतवन्तः, एवम्-स्वर्गराज्यसुख प्राप्त्यर्थं दिव्य-रूपरसगन्धशब्दस्पर्शादि विषयकोपदेशं दत्तवन्तः। एवम्-ऐहलौकिक-पारलौकिक शब्दादीनां प्राप्त्यभिलाषरूपा कांक्षा सम्यग्दृष्टेरतिचारो भवति। वस्तुतस्तु-अन्य शासनदर्शनतत्त्वाभिलाषः काङ्क्षा, तादृशा कांक्षावान् खल्वविचारितगुणदोषः सांसारिकसुखमभिलषति ऐहलौकिकं पारलौकिकं वा विनश्वरमवसानकटुकं दुःख संमिश्रितं सर्वं चैतद् उद्घृतकषायकलुषितत्वात्

करना कांक्षा पद का अर्थ है। जैसे-बुद्ध ने भिक्षुओं को स्नान, अन्न, पान, आच्छादन एवं शय्या आदि का सुख भोगते हुए क्लेश रहित धर्म का उपदेश दिया है। दूसरों ने भी सांसारिक विषय भोगों संबंधी सुख के लिए ही धर्म का उपदेश दिया है तथा स्वर्ग एवं राज्य-सुख की प्राप्ति के लिए दिव्य रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श आदि विषयक उपदेश दिया है! क्यों न बुद्धशासन को अंगीकार कर लिया जाय! इस प्रकार इह-परलोक संबंधी शब्द आदि विषयों की प्राप्ति की अभिलाषा करना कांक्षा अतिचार है।

वास्तव में तो अन्य शासन, दर्शन एवं तत्त्व की इच्छा करना कांक्षा है। जो ऐसी आकांक्षा करता है वह गुण-दोषों का विचार किये बिना ही सांसारिक सुख की अभिलाषा करता है। किन्तु ऐह लौकिक और पारलौकिक सुख विनाशशील है, उनका अन्त कटुक

કાંક્ષા પદનો અર્થ થાય છે જેમ કે-બુદ્ધે ભિક્ષુઓને સ્નાન, અનાજ, પાણી, આચ્છાદન તથા શય્યા વગેરેનું સુખ ભોગવતા થકા કલેશરહિત ધર્મનો ઉપદેશ આપ્યો છે. બીજાઓએ પણ સાંસારિક વિષયભોગો સંબંધી સુખ કાજે જ ધર્મનો ઉપદેશ આપ્યો છે તથા સ્વર્ગ અને રાજ્ય સુખની પ્રાપ્તિ અર્થે દિવ્યરૂપ, રસ, ગંધ, શબ્દ અને સ્પર્શ આદિ વિષયક ઉપદેશ આપ્યો છે ચાલો ત્યારે બુદ્ધશાસનનો જ સ્વીકાર કરી લઈએ! આ રીતે આ લોક અથવા પરલોક સંબંધી શબ્દ આદિ વિષયોની પ્રાપ્તિની અભિલાષા કરવી કાંક્ષા અતિચાર છે.

વાસ્તવમાં તો અન્ય શાસન, દર્શન તથા તત્ત્વની ઈચ્છા કરવી કાંક્ષા છે, જે આવી આકાંક્ષા કરે છે તે ગુણ-દોષોનો વિચાર કર્યા વગર જ સાંસારિક સુખની અભિલષા કરે છે. પરન્તુ આ લોક સંબંધી અથવા પારલૌકિક સુખ નાશવંત છે, તેનો અન્ત કરૂણ છે, તે દુઃખોથી મિશ્રિત હોય છે, આથી

संसारानुबन्धित्वाच्च भगवतोऽर्हता प्रतिषिद्धम् प्रतिषिद्धानुष्ठानं च भावतः सम्यक्त्वं दूषयति सिद्धान्तोल्लंघनात् । उक्तञ्च–'कंखा अण्णण्ण दंसणग्गाहो' कांक्षाऽन्याऽन्यदर्शनग्राहः, इति । आर्हतसिद्धान्तस्तु–दशवैकालिके नवम ऽध्ययने चतुर्थोद्देशके 'णो इहलोयाए' इत्यादिना कथितः नेहलोकार्थम्, अपितु–केवलं कर्मनिर्जरणार्थैव धर्माद्युपदेशादौ प्रवृत्तिः । तस्मात् खलु–ऐकान्तिकाऽऽत्यन्तिकाऽव्याबाधसुखहेतुः, एतावान् प्रयासः इत्यन्यदर्शनादौ निराकाङ्क्षेण श्रमणेन

है, वह दुःखों से मिश्रित होता है, इस कारण कषायों से कलुषित होने के कारण तथा भवपरम्परा का वर्धक होने के कारण अर्हन्त भगवान् ने उसका निषेध किया है । निषिद्ध अनुष्ठान यदि भावपूर्वक किया जाय तो वह सिद्धान्त के उल्लंघन के कारण सम्यक्त्व को दूषित करता है । कहा भी है–'अन्य–अन्य दर्शन को ग्रहण करना कांक्षा है ।' अर्हन्त भगवान के सिद्धान्त का तो दशवैकालिकसूत्र के नौवें अध्ययन के चौथे उद्देशक में प्रतिपादन किया गया है–'नो इहलोयट्ठयाए' इत्यादि वाक्यों में कहा है, जिसका तात्पर्य यह है कि स्वाध्यायतपश्चरण आदि कोई भी धर्मानुष्ठान इस लोक संबंधी लाभ के लिए न करे, पारलौकिक लाभ (स्वर्ग प्राप्ति आदि) के लिए न करे और यश–कीर्ति आदि के लिए भी न करे, केवल कर्मक्षय के ही उद्देश्य से करे । कर्मनिर्जरा के अतिरिक्त अन्य किसी भी लाभ के लिए धर्माचरण नहीं करना चाहिए, तभी एकान्तिक, आत्यन्तिक

કષાયોથી કલુષિત હોવાના કારણે તથા ભવપરમ્પરાને–વધારનાર હોવાથી અર્હન્ત ભગવાને તેની મનાઈ ફરમાવેલ છે નિષિદ્ધ અનુષ્ઠાન જો ભાવપૂર્વક કરવામાં આવે તો તે–સિદ્ધાંતના ઉલ્લંઘનના કારણે સમ્યક્ત્વને દૂષિત કરે છે, કહ્યુ પણ છે–'અન્ય–અન્ય દર્શનોનું ગ્રહણ કરવું કાંક્ષા છે' અર્હન્ત ભગવાનના સિદ્ધાંતનો તો દશવૈકાલિકસૂત્રના નવમાં અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશકમાં પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે–'नो इहलोयट्ठाए' વગેરે વાકયોમાં કહ્યું છે, જેનો સારાંશ એ છે કે સ્વાધ્યાય, તપશ્ચર્યા વગેરે કોઈ પણ ધર્માનુષ્ઠાન આ લોક સંબંધી લાભ ખાતર કરવા ન જોઈએ, પારલૌકિક લાભ (સ્વર્ગ પ્રાપ્તિ આદિ) માટે ન કરવા તેમજ યશ–કીર્ત્તિ વગેરે મેળવવા માટે પણ ન કરવા, માત્ર કર્મોને ખપાવવાના હેતુથી કરવા જોઈએ. કર્મનિર્જરા સિવાય અન્ય કોઈ પણ લાભની આશાથી ધર્માચરણ કરવું જોઈએ નહીં', જો આમ થાય તો જ ઐકાન્તિક, આત્યન્તિક અને અવ્યાબાધ સુખની પ્રાપ્તિ

भवितव्यमिति भावः। विचिकित्सा तावद्-मतिविभ्रमरूपाऽवसेया, तथाहि-युक्तागमोपपन्नेऽप्यर्थे मतिर्भ्राम्यति यथा-इहतः खल्वस्य तपः क्लेशस्य सिकताकण कवलवन्निःस्वादस्य-लोचादेश्चाऽऽयत्यां का फल सम्पद्भवित्री ? अथ च-क्लेश मात्रमेवेदं निर्जराफलविकलम् २ इति। उभयथा खलु लोके क्रिया दृश्यन्ते, फलवत्यो निष्फलाश्च कृषकाणां कर्षणादिक्रिया कदाचित्फलवती कदाचिन्निष्फला चेति। तस्मात्-'इदमप्यस्ति इदमप्यस्ति' इति क्रियासामान्ययो-र्यथा-दृष्टत्वान्मतिविभ्रमो जायते, अथ शङ्कारूपैव विचिकित्सा न ततोऽतिरिक्तेति

तभी एकान्तिक आत्यन्तिक और अव्याबाध सुख की प्राप्ति होती है ऐसा विचार कर साधु या श्रावक को अन्यदर्शन की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए।

विचिकित्सा एक प्रकार का मतिविभ्रम है। कभी-कभी युक्ति-आगम संगत अर्थ में भी बुद्धि भ्रान्त हो जाती है, जैसे-बालू के कवल के समान निःस्वाद इस तपश्चरण का तथा लोच आदि का न जाने भविष्य में कुछ फल प्राप्त होगा या नहीं ? यह कहीं कोरा कष्ट ही तो नहीं है, जिससे निर्जरा-फल की प्राप्ति न हो! संसार में दोनों प्रकार की क्रियाएं देखी जाती हैं-कोई सफल होती है, कोई निष्फल। किसान खेती करता है तो कभी वह सफल होता है, कभी निष्फल होता है। इस प्रकार सामान्य रूप से दोनों प्रकार की क्रियाएं देखी जाती हैं, अतः बुद्धि में भ्रमणा उत्पन्न हो जाती है।

यहां ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए कि विचिकित्सा भी एक

થાય છે. આવું વિચારીને સાધુ અથવા શ્રાવકે અન્ય દર્શનની આકાંક્ષા કરવી જોઈએ નહીં.

વિચિકિત્સા એક પ્રકારનો મતિવિભ્રમ છે. કોઈ-કોઈ યુક્તિ આગમ-સંગત અર્થમાં પણ બુદ્ધિ ભ્રાન્ત થઈ જાય છે. જેમ કે-રેતીના કોળીયા જેવું સ્વાદ વગરનું આ તપશ્ચર્યાનું તથા લોચ આદિનું ન જાણે ભવિષ્યમાં કોઇ ફળ પ્રાપ્ત થશે કે કેમ! આ માત્ર નિષ્ફળ કષ્ટ તો નથી જેનાથી નિર્જરા-ફળની પ્રાપ્તિ ન થાય સંસારમાં બંને પ્રકારની ક્રિયાઓ જોવામાં આવે છે-કોઈ સફળ થાય છે, કોઈ નિષ્ફળ ખેડૂત ખેતી કરે છે તો કદી તે સફળ થાય છે, ક્યારે નિષ્ફળ પણ નીવડે છે. આ રીતે સામાન્ય રૂપથી બંને પ્રકારની ક્રિયાઓ જોવામાં આવે છે આથી બુદ્ધિમાં ભ્રમણા ઉત્પન્ન થઇ જાય છે.

नाशङ्कनीयम् ? शङ्कायाः सकलाऽसकलपदार्थभाक्तेन द्रव्यगुणविषयत्वात् विचिकित्सायाश्च फलसन्देहविषयत्वात्. इत्थं परस्पर मुभयोर्भिन्नत्वमिति। तथाहि-विचिकित्सायां सत्यां मति मिथ्यात्वपुद्गलानुविद्धा सती भ्रमति सर्व प्रवचनेऽनवतिष्ठमानाऽनस्थिता भवति। तथा-सर्वे खल्वेते शङ्का कांक्षा विचिकित्सादयो मिथ्यादर्शनभेदाः केनचिद्विशेषेण जायमानाः सम्यक्त्वस्याऽतिचारतां प्रतिपद्यन्ते। परपाषण्डप्रशंसा-संस्तवौ तावद् अर्हच्छासनव्यतिरिक्तयाऽभिगृहीताऽनभिगृहीतभेदेन द्विविधया मिथ्यादृष्ट्या युक्तानां क्रियावादिनाम्-अक्रियावादिनाम्, अज्ञानिकवादिनाम्-वैनयिकवादिनां च स्तुतिरूप प्रशंसन-

---

प्रकार की शंका ही है, शंका से अलग नहीं है, । क्यों कि शंका और विचिकित्सा के विषय अलग-अलग होते हैं । शंका सम्पूर्ण या किसी एक पदार्थ में होती है, अतएव उसका विषय द्रव्य-गुण है, विचिकित्सा फल में सन्देह करने से होती है । इस कारण दोनों में भेद है । विचिकित्सा होने पर मिथ्यात्व के पुद्गलों से अनुविद्ध मति भ्रमण करती है-सर्व प्रवचन में स्थिर न होकर अस्थिर हो जाती है ।

इस प्रकार ये शंका, कांक्षा, विचिकित्सा आदि मिथ्यादर्शन के ही रूप हैं फिर भी इन में कुछ-कुछ पार्थक्य है । इसी से ये सब सम्यक्त्व के अतिचार कहे गए हैं ।

परपाषण्ड प्रशंसा और परपाषण्ड संस्तव अर्हन्त भगवान् के शासन से भिन्न, अभिगृहीत और अनभिगृहीत के भेद से दो प्रकार की मिथ्यादृष्टि से युक्त क्रियावादियों, अक्रियावादियों, अज्ञानवादियों

અત્રે એવી આશંકા ન કરવી જોઈએ કે વિચિકિત્સા પણ એક પ્રકારની શંકા જ છે, શંકાથી જુદું નથી. કારણ કે શંકા અને વિચિકિત્સાના વિષય જુદા જુદા હોય છે. શંકા સમ્પૂર્ણ અથવા કોઈ એક પદાર્થમાં થાય છે આથી તેનો વિષય દ્રવ્ય-ગુણ છે, વિચિકિત્સા ફળમાં સન્દેહ કરવાથી થાય છે આ કારણે બંનેમાં ભેદ છે. વિચિકિત્સા થવાથી મિથ્યાત્વના પુદ્ગલોથી અનુવિદ્ધ મતિ ભ્રમણ કરે છે-સર્વપ્રવચનમાં સ્થિર ન હોઈને અસ્થિર થઈ જાય છે.

આ રીતે આ શંકા, કાંક્ષા, વિચિકિત્સા આદિ મિથ્યાદર્શનના જ રૂપ છે તો પણ આમાંથી કોઈ-કોઈ પાર્થકય છે. આથી જ આ બધાં સમ્યક્ત્વના અતિચાર કહેવાયા છે.

પરપાષંડપ્રશંસા અને પરપાષંડસંસ્તવ. અર્હન્ત ભગવાનના શાસનથી ભિન્ન, અભિગૃહીત અને અનભિગૃહીતના ભેદથી બે પ્રકારના મિથ્યાદષ્ટિથી યુક્ત ક્રિયાવાદિઓ, અક્રિયાવાદિઓ, અજ્ઞાનવાદિઓ અને વિનયવાદિઓની

परिचयात्मको बोध्यौ, तावपि सम्यग्दृष्टेरतिचारौ भवतः तत्र-भावतोऽन्यात्मगुण-प्रकर्षोद्भावनरूपा प्रशंसा सोपधिकनिरुपधिकं च गुणवचनं संस्तवः। अभिगृहीतमिथ्यादृष्टिस्तावत् अभिमुखं गृहीताऽभिगृहीतादृष्टिः, यथा-'इदमेव तत्त्वम्' इति सौगतादिवचनम्, अनेकापि-अभिमुख्येन गृहीतादृष्टिः सर्वप्रवचनष्वेव स समीचीनदृष्टिः अनभिगृहीत मिथ्यादृष्टि रूच्यते, मिथ्यादर्शनं खलु नानाप्रकारकं सञ्जायते, मोहनीयकर्मवैचित्र्यात् नयाना-मानन्त्यात्। तत्र-केचित् क्रियावादिनः सन्ति, क्रिया कर्त्रधीना कर्तारं विना नोपपद्यते, इत्यात्माऽधिष्ठितशरीरसमवायि क्रियावादिन आत्माऽस्तित्वादि प्रतिपद्यारस्तेऽशीत्यधिक-

---

और विनयवादियों की प्रशंसा रूप और परिचय रूप हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टियों की प्रशंसा करना परपाखण्ड प्रशंसा और उनके साथ परिचय करना परपाखण्ड संस्तव है। ये दोनों भी सम्यग्दर्शन के अतिचार हैं। भावपूर्वक दूसरे के अथवा अपने गुणों का प्रकर्ष प्रकट करना प्रशंसा कहलाता हैं और सोपधिक या निरूपधिक गुणवचन को संस्तव कहते है। अभिमुख गृहीत दृष्टि अभिगृहीता दृष्टि है, जैसे यही तत्त्व है।' इस प्रकार सौगत आदि के वचन सभी प्रवचनों को समीचीन समझना अभिगृहीत मिथ्यादृष्टि कहलाती है।

मोहनीय कर्म की विचित्रता के कारण तथा नयों अनन्त होने के कारण मिथ्यादर्शन अनेक प्रकार का होता है। कोई कोई क्रियावादी होते हैं। क्रिया कर्त्ता के अधीन है, कर्त्ता के बिना वह हो नहीं सकती। इस प्रकार आत्मा से अधिष्ठित शरीर में समवाय संबंध से क्रिया रहती

પ્રશંસા રૂપ અને પરિચય રૂપ છે, અર્થાત્ મિથ્યાદષ્ટિઓની પ્રશંસા કરવી પરપાષંડપ્રશંસા છે અને તેમની સાથે પરિચય કરવો પરપાષંડસંસ્તવ છે. આ બંને પણ સમ્યક્દર્શનના અતિચાર છે. ભાવપૂર્વક બીજાના અથવા પોતાના ગુણોનો પ્રકર્ષ પ્રકટ કરવાને-પ્રશંસા કહે છે અને સોપધિક અથવા નિરૂપધિક ગુણવચનને સંસ્તવ કહે છે. અભિમુખગૃહીત દષ્ટિ અભિગૃહીતા દષ્ટિ છે જેમ કે-'આ જ તત્ત્વ છે' એ જાતના સૌગત આદિના વચન બધા પ્રવચનોને સમીચીન સમજવું અનભિગૃહીત મિથ્યાદષ્ટિ કહેવાય છે.

મોહનીયકર્મની વિચિત્રતાના કારણે તથા નયો અનન્ત હોવાથી મિથ્યાદર્શન અનેક પ્રકારના હોય છે. કોઈ-કોઈ ક્રિયાવાદી હોય છે ક્રિયા કર્ત્તાને અધીન છે, કર્તા વગર તે થઈ શકતી નથી. આ રીતે આત્માથી અધિષ્ટિત શરીરમાં

शतसंख्यका बोध्याः। तद्यथा—जीवाऽजीवबन्धपुण्य पापाऽऽस्रव—संवर निर्जरा-मोक्षरूप नवपदार्थानां मध्ये एकैकं प्रति 'अस्ति जीवः स्वतो नित्यः कालतः' इत्यादिरीत्या लब्धानां विंशति विकल्पानां नवभिर्गुणनेऽशीत्यधिकशतसंख्या लभ्यन्त इति भावः। एवं—चतुरशीतिर्विकल्पाः प्रत्येकं नास्तिकानामित्यादि-रीत्याऽभिगृहीतमिथ्यादृष्टीनां सर्वं संख्यया त्रिषष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानि—अवगन्तव्यानि। तत्रात्मक्रियास्तित्ववादिनोऽशीत्यधिकशतसंख्यकाः, आत्म-नास्तित्वाक्रियावादिनश्चतुरशीति संख्यकाः, अज्ञानिकवादिनः सप्तषष्टिसंख्यकाः, वैनयिकवादिनो द्वात्रिंशत्संख्यकाः सन्ति। तत्राऽऽत्मनास्तित्ववादिमते विकल्पा स्तावद् 'नास्ति जीवः स्वतः कालतः' एवम्—'नास्ति जीवः परतः कालतः'

है, ऐसा स्वीकार करनेवाले और आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करने वाले वादी क्रिया वादी कहलाते हैं। उनके एक सौ अस्सी (१८०) भेद हैं। ये भेद इस प्रकार निष्पन्न होते हैं—(१) जीव (२) अजीव (३) बन्ध (४) पुण्य (५) पाप (६) आस्रव (७) संवर (८) निर्जरा (९) मोक्ष, इन नौ पदार्थों में से प्रत्येक के साथ 'जीव है, स्वतः नित्य काल से' इत्यादि रूप से बनने वाले बीस भेदों का नौ पदार्थों के साथ गुणाकार करने से एक सौ अस्सी संख्या हो जाती है। अक्रिया-वादी नास्तिकों के अस्सी (८०) भेद हैं। इत्यादि चारों के मिलाकर अभिगृहीत मिथ्यादृष्टियों के कुल तीन सौ त्रेसठ (३६३) भेद होते हैं। इन में आत्मा का अस्तित्व नहीं स्वीकार करने वाले अक्रियावादी अस्सी हैं, अज्ञानवादियों के सडसठ (६७) भेद हैं और वैनयिकों के बत्तीस भेद हैं। अक्रियावादियों के भेद

સમવાય સંબંધથી ક્રિયા રહે છે. એવું સ્વીકારનાર અને આત્માના અસ્તિત્વનો સ્વીકાર કરનારા ક્રિયાવાદી કહેવાય છે. તેમના એકસો એંશી (૧૮૦) ભેદ છે. આ ભેદ આ રીતે નિષ્પન્ન થાય છે—(૧) જીવ (૨) અજીવ (૩) બન્ધ (૪) પુણ્ય (૫) પાપ (૬) આસ્રવ (૭) સંવર (૮) નિર્જરા (૯) મોક્ષ આ નવ પદાર્થોમાંથી પ્રત્યેકની સાથે જીવ છે, સ્વતઃ નિત્યકાળથી ઇત્યાદિ રૂપથી બનનારા વીસ ભેદોના નવ પદાર્થની સાથે ગુણાકાર કરવાથી એકસો એંશીની સંખ્યા થઈ જાય છે. અક્રિયાવાદિ નાસ્તિકોના એંશી ભેદ છે. ઈત્યાદિ ચારે મળીને અભિગૃહીત મિથ્યાદષ્ટિઓના કુલ ત્રણસો ત્રેસઠ (૩૬૩) ભેદ હોય છે. આમાં આત્માનું અસ્તિત્વ નહીં સ્વીકારનારા અક્રિયાવાદી એંશી (૮૦) છે, અજ્ઞાનવાદિઓના સડસઠ (૬૭) ભેદ છે અને વૈનયિકોના બત્રીસ ભેદ છે.

इत्येवंरूपभेदेन द्वादश विकल्पा जीवं प्रति भवन्ति। एवम्-अजीवादिष्वपि षट्सु प्रत्येकं द्वादश-द्वादश विकल्पा भवन्ति। तेषां मते-पुण्यपापयोरसद्भावेन सप्तानामेव जीवानामेकैकं प्रति द्वादश द्वादश भेदेन चतुरशीति भेदा भवन्ति। आत्माऽस्तित्ववादिनां मते तु-पुण्यपापसहितानां नवतत्त्वानां सद्भावेनैकैकं प्रति निम्नरीत्या विंशति विकल्पसत्वेनाऽशीत्यधिकशतभेदा भवन्ति। तथाहि-'जीवोऽस्ति स्वतो नित्यः कालतः'। कालवादिनः खलु 'विद्यतेऽय मात्मा स्वेन रूपेण नित्यश्चेति'। एवम्-ईश्वरवादिनोऽपि द्वितीयो विकल्पः। आत्मवादिन स्तृतीयो विकल्पस्तु-'पुरुष एवेदं सर्वम्' इत्यादि। नियतिरूपाऽदृष्टवादिनश्चतुर्थो विकल्पः

इस प्रकार होते हैं-'जीव नहीं है स्वतः काल से और 'जीव नहीं है, परतः काल से इस प्रकार जीव को लेकर बारह भेद होते हैं। इसी प्रकार अजीव आदि छह पदार्थों के भी बारह-बारह भेद समझ लेना चाहिए उनके मत में पुण्य और पाप का सद्भाव नहीं है, अतएव सात पदार्थों के ही बारह-बारह भेद होने से चौरासी भेद हो जाते हैं। किन्तु जो आत्मा का अस्तित्व मानते हैं उनके मत में पुण्य और पाप की भी सत्ता होने से नौ पदार्थ हैं और प्रत्येक को लेकर बीस-बीस भेद होते हैं, अतः उनके एक सौ अस्सी भेद हैं, जैसे-जीव है स्वतः नित्य काल से। कालवादियों का कथन है कि-आत्मा स्वरूप से नित्य है काल से। इसी भांति ईश्वरवादियो का दूसरा विकल्प समझ लेना चाहिए। तीसरा विकल्प आत्मवादियों का है। उनका कथन है कि 'यह सब जो जगत् में दृष्टिगोचर होता है, पुरुषस्वरूप ही है।

અક્રિયાવાદિઓના ભેદ આ રીતે થાય છે-'જીવ નથી સ્વતઃ કાળથી' અને 'જીવ નથી પરતઃ કાળથી' આ રીતે જીવને લઇને બાર ભેદ થાય છે. આ રીતે અજીવ આદિ છ પદાર્થોના પણ બાર-બાર ભેદ સમજી લેવા જોઇએ. તેમના મતે પુણ્ય અને પાપનો સદ્ભાવ નથી; આથી સાત પદાર્થોના જ બાર-બાર ભેદ હોવાથી ચોર્યાસી (૮૪) ભેદ થઇ જાય છે. પરન્તુ જેઓ આત્માનું અસ્તિત્વ સ્વીકારે છે. તેમના મતે પુણ્ય અને પાપની પણ સત્તા હોવાથી નવ પદાર્થ છે અને પ્રત્યેકને લઇને વીસ-વીસ ભેદ થાય છે આથી, તેમના એકસો એ શી ભેદ છે જેમ કે-'જીવ સ્વતઃ નિત્યકાળથી' કાલવાદિઓનું કહેવું છે કે આત્મા સ્વરૂપથી નિત્ય છે કાળથી નહીં. એવી જ રીતે ઇશ્વરવાદિઓનો બીજો વિકલ્પ સમજી લેવો જોઇએ. ત્રીજો વિકલ્પ આત્મવાદિઓનો છે. તેમનું કથન છે કે 'આ બધું', જે જગતમાં દૃષ્ટિગોચર થાય છે, પુરૂષ-

स्वभाववादिनः पञ्चमविकल्पः स्वतएव, इत्येवं स्वत इत्यनेन पञ्चविकल्पाः। परत इत्यनेनाऽपि पञ्चविकल्पा भवन्ति, नित्यत्वसहितेन दशविकल्पाः, अनित्यत्व-सहितेन च दशविकल्पा भवन्ति, इत्येवं विंशति विकल्पा जीवतत्त्वेन सह भवन्ति। एवं-शेषैरजीवादिभिरष्टतत्त्वैरपि प्रत्येकं विंशति विंशति भेदेनाऽशीत्यधिक शत संख्यका विकल्पा भवन्ति। अज्ञानिकानां पुनरचिन्त्य कृतकर्मबन्धवैफल्यवादिनां मते-जीवादीनि नवतत्त्वानि संस्थाप्य-सत्त्व-१ मसत्त्वं२ सदसत्त्व ३ मवाच्यत्वं४ सद्वाच्यत्वम् ५ असद्वाच्यत्वं ६ सदसद्वाच्यत्वम् ७ इत्येवमेकैकस्य जीवादेः सप्त-सप्त विकल्पा भवन्ति, एते नव सप्तका त्रिषष्ठिः। उत्पत्तेश्चाऽऽद्याश्चत्वारो

नियति को मानने वालों का चौथा विकल्प है। पांचवें स्वभाववादि है। इस प्रकार 'स्वतः' शब्द से पांच विकल्प होते हैं। 'परतः' शब्द से भी यही पाँच भेद होते हैं। इन दसों को 'नित्य' और 'अनित्य' के साथ योजना करने पर जीव तत्व को लेकर बीस भेद निष्पन्न होते हैं। इसी प्रकार शेष अजीव आदि आठ पदार्थों को लेकर बीस-बीस भेद होने से सब मिलाकर एक सौ अस्सी भेद हो जाते हैं।

बिना सोचे समझे कृत कर्मबन्ध को निष्फल मानने वाले अज्ञान-वादियों के मत में, जीव आदि नौ तत्वों को अनुक्रम से स्थापित किया जाता है और प्रत्येक के नीचे (१) सत्व, (२) असत्व (३) सद्-सत्व (४) अवाच्यत्व (५) सद्वाच्यत्व (६) असद्वाच्यत्व और (७) सदसद्वाच्यत्व, ये सात भंग स्थापित किये जाते हैं। इस प्रकार एक एक तत्व को लेकर सात-सात विकल्प होने से ९×७=६३ विकल्प सिद्ध

સ્વરૂપ જ છે. નિયતિને માનનારાઓનો ચોથો વિકલ્પ છે. પાચમા સ્વભાવ-વાદિ છે. આ રીતે 'સ્વતઃ' શબ્દથી પાંચ વિકલ્પ થાય છે. 'પરતઃ' શબ્દથી પણ આ જ પાંચ ભેદ થાય છે. આ દશેની 'નિત્ય' અને 'અનિત્ય'ની સાથે યોજના કરવાથી જીવ તત્ત્વને લઈને વીસ ભેદ નિષ્પન્ન થાય છે. એવી જ રીતે શેષ અજીવ આદિ આઠ પદાર્થોને લઈને વીસ-વીસ ભેદ હોવાથી બધાં મળીને એકસો એંશી ભેદ થઇ જાય છે.

વગર વિચાર્યે અને સમજીને કરેલા કર્મબન્ધને નિષ્ફળ માનનારા અજ્ઞાનવાદિઓના મતે, જીવ આદિ નવ તત્ત્વોને અનુક્રમથી સ્થાપિત કરવામાં આવે છે અને પ્રત્યેકની નીચે (૧) સત્ત્વ) (૨) અસત્ત્વ (૩) સદસત્ત્વ (૪) અવાચ્યત્વ (૫) સદ્વાચ્યત્વ (૬) અસદવાચ્યત્વ (૭) સદસદવાચ્યત્વ એ સાત ભંગ સ્થાપિત કરવામાં આવે છે આ રીતે એક-એક તત્ત્વને લઇને સાત-સાત વિકલ્પ હોવાથી ૯×૭=૬૩ વિકલ્પ સિદ્ધ થાય છે. આ ત્રેસઠ વિકલ્પોમાં

विकल्पा भवन्ति, तद्यथा सत्त्वम् १ असत्त्वम् २ सदसत्त्वम् ३ अवाच्यत्वं चेति, इति रीत्या सप्तषष्टिर्विकल्पा भवन्ति। तद्यथा-'जीवः सन्निति को जानाति ? एवम्-जीवोऽसन्नित्यपि को जानाति' इत्यादि। एवम्-सतः १ असतः-२ सदसतो३ ऽवाच्यस्य४ वा किम् उत्पत्तिर्भवतीति को जानाति, इत्यादि वैनयिकानां मते द्वात्रिंशद्विकल्पाः, यथा-'कायेन-वचसा-मनसा-दानेन चेत्येभि श्चतुर्भिः प्रकारैः सुर-१ नृपति २ मुनि-३ ज्ञानि ४ स्थविरा ५ ऽधम ६. मातृ ७ पितृषु ८ अष्टसु विनय वैयावृत्यप्रधानाः सन्तो वैनयिकाः तेषां सपर्यां कुर्वन्ति, इत्येव मष्टानां चतुर्भिर्गुणितत्वे द्वात्रिंशद्भेदा भवन्ति अनभिगृहीताः पुनः सांसारिक वैषयिकभोगसुखपराणां पुरुषाणां निःश्रेयससुखं व्यर्थम्, प्रकृष्टैश्वर्य सम्पत्ति-

---

होते हैं। इन त्रेसठ विकल्पों में उत्पत्ति के चार विकल्प सत्त्व, असत्त्व, सदसत्त्व और अवाच्यत्व-और जोड देने से सडसठ भेद हो जाते हैं। जैसे-जीव सत् है, यह कौन जानता है ? जीव असत् है, यह कौन जाने ? इत्यादि। इसी प्रकार कौन जानता है कि सत् की उत्पत्ति होती है, असत् की उत्पत्ति होती है, सदसत् की उत्पत्ति होती है अथवा अवाच्य की उत्पत्ति होती है ?

वैनयिकों के बत्तीस भेद हैं। उनकी मान्यता है कि काय से, वचन से, मन से और दान से, इस प्रकार चार प्रकार से (१) सुर (२) नृपति (३) मुनि (४) ज्ञानि (५) स्थविर-वृद्ध (६) अधम (७) माता और (८) पिता, इन आठ का विनय-वैयावृत्य करना चाहिए। वे लोग इनकी पूजा करते हैं। इस प्रकार आठ का चार के साथ गुणाकार करने पर (३२) बत्तीस भेद होते हैं।

ઉત્પત્તિના ચાર વિકલ્પ સત્ત્વ, અસત્ત્વ, સદસત્વ અને અવાચ્યત્વને ઉમેરી દેવાથી સડસઠ ભેદ થઇ જાય છે જેમ કે-જીવ સત્ છે એ કોણ જાણે છે, જીવ અસત્ છે કોણ જાણે છે ! વગેરે એવી જ રીતે કોણ જાણે છે કે સત્‌ની ઉત્પત્તિ થાય છે, અસત્‌ની ઉત્પત્તિ થાય છે, સદસત્‌ની ઉત્પત્તિ થાય છે અથવા અવાચ્યની ઉત્પત્તિ થાય છે ?

વૈનયિકોના બત્રીસ ભેદ છે. તેમની માન્યતા એવી છે કે કાયાથી, વચનથી, મનથી અને દાનથી એ રીતે ચાર પ્રકારથી (૧) સુર (૨) નૃપતિ (૩) મુનિ (૪) જ્ઞાનિ (૫) સ્થવિર-વૃદ્ધ (૬) અધમ (૭) માતા અને (૮) પિતા આ આઠેની વિનયવૈયાવૃત્ય કરવા જોઈએ. તે લોકો એમની પૂજા કરે છે. આ રીતે આઠનો ચાર સાથે ગુણાકાર કરવાથી (૩૨) બત્રીસ ભેદ થાય છે.

परिपूर्णोऽभिजनादिषु-आरोग्यतायुक्तं जन्मसम्पन्नमित्येवं पर्याप्तम्, इति भावनया सर्वं देवतासु-सर्वपाखण्डिषु च तुल्यत्व-मुदासीनत्वं च भावयति इत्येवं रूपो बोध्यः। एतेषाश्चाऽऽत्माऽस्तित्वक्रियावादिनाऽस्तित्वाऽक्रियावादिना माज्ञानिकानाञ्च प्रशंसा, यथा=पुण्यशालिनः खल्वेते सत्यसन्धानाः सन्मार्गदर्शन निपुणाः सन्ति, यथा-'एतेषां जन्मसफलम्' इत्यादि। संस्तवश्च-तैः सहैकत्रवासात् परस्पराऽऽलाप संलापादिजातः परिचयः, एकत्र संवासे तेषां प्रक्रियाश्रवणात् क्रियादिदर्शनाच्चाऽमंहार्यमतेरपि जनस्य दृष्टिविचारभेदो भवति।

अनभिगृहीत मिथ्यादृष्टि ऐसी भावना करते हैं कि-संसार सम्बन्धी विषय भोग के सुख में तत्पर पुरुषों के लिए मोक्ष का सुख व्यर्थ है। उत्तम ऐश्वर्य एवं सम्पत्ति से परिपूर्ण अभिजनों में आरोग्यता से युक्त जन्म मिल जाना ही पर्याप्त है। इस प्रकार की भावना के कारण वे सभी देवताओं और सभी व्रतधारियों में समान भाव एवं उदासीनता रखते हैं।

इस प्रकार आत्मा का अस्तित्व मानने वाले क्रियावादियों की, आत्मा का अस्तित्व नहीं मानने वाले अक्रियावादियों की तथा अज्ञान वादियों की प्रशंसा करना परपाषण्ड प्रशंसा है, जैसे-'ये पुण्यशाली हैं, ये सत्यप्रतिज्ञ हैं, ये सन्मार्ग दिखलाने में निपुण हैं, इनका जन्म सार्थक हैं, इत्यादि।

उनके साथ-साथ एक स्थान पर निवास करने से तथा परस्पर में वार्त्तालाप करने से होने वाला परिचय संस्तव कहलाता है। एक साथ

અનભિગૃહીત મિથ્યાદૃષ્ટિ એવી ભાવના ભાવે છે કે-સંસાર સમ્બન્ધી વિષયભોગના સુખમાં રચ્યાપચ્યા રહેનાર પુરૂષો માટે મોક્ષનું સુખ વ્યર્થ છે. ઉત્તમ ઐશ્વર્ય અને સમ્પત્તિથી પરિપૂર્ણ અભિજનોમાં આરોગ્યતાથી યુક્ત જન્મ પ્રાપ્ત થાય એટલું જ પુરતું છે. આ પ્રકારની ભાવનાના કારણો તે સઘળાં દેવતાઓ અને બધાં વ્રતધારીઓમાં સમાન ભાવ અને ઉદાસીનતા રાખે છે.

આવી રીતે આત્માનું અસ્તિત્વ માનનારા ક્રિયાવાદિઓની આત્માનું અસ્તિત્વ નહીં માનનારા અક્રિયાદિઓની તથા અજ્ઞાનવાદિઓની પ્રશંસા કરવી પરપાષંડપ્રશંસા છે, જેમ કે-'આ પુણ્યશાળી છે, આ સત્યપ્રતિજ્ઞ છે આ સન્માર્ગ બતાવવામાં પ્રવીણ છે, એમનો જન્મ સાર્થક છે' વગેરે.

તેમની સાથે-સાથે એક સ્થાને નિવાસ કરવાથી તથા પરસ્પરમાં વાર્તાલાપ કરવાથી થનારો પરિચય સંસ્તવ કહેવાય છે. એક સાથે નિવાસ કરવાથી

संहार्यमतेस्तु कथैवका ? तस्मात् तीर्थकृद्भिर्भगवद्भिः पार्श्वस्थादि यथाछन्दिकैरपि सह सहवासो निषिद्धः, तैः सहैकरात्रमप्येकत्र वासेन सम्यग्दृष्टेः परित्यागो भवति, अतएव-कुतीर्थिकानां प्रशंसा-संस्तवौ सम्यग्दृष्टेर्मालिन्यहेतुत्वात्-भ्रंशहेतुत्वाद्वाऽतिचारौ बोध्यौ। उक्तञ्चोपासकदशाङ्गे-१ अध्ययने-'सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा' तं जहा-संका-कंखा-वितिगिच्छा, परपासंडपसंसा, परपासंडसंथवो' इति। सम्यक्त्वस्य पञ्चातिचाराः प्रधाना ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, तद्यथा-शङ्का-१ काङ्क्षा-२ विचिकित्सा-३ परपाषण्डप्रशंसा४ परपाषण्डसंस्तवः५ इति ॥४०॥

निवास करने से, उनकी प्रक्रिया को सुनने से और क्रिया को देखने से अविचल बुद्धि वाले जन की दृष्टि और विचार में भेद उत्पन्न हो जाता है। जिनकी बुद्धि अस्थिर है उनका तो कहना ही क्या है? इसी कारण भगवान् तीर्थंकर ने पार्श्वस्थों (शिथिलाचारियों) और स्वच्छन्दाचारियों के साथ सहवास का निषेध किया है। ऐसों के साथ एक रात्रि भी निवास करने से सम्यग्दृष्टि का परित्याग हो जाता है। अतएव कुतीर्थिकों की प्रशंसा करना और उनके साथ परिचय करना सम्यग्दर्शन की मलीनता का कारण है-भ्रष्टता का कारण है, इसी से इन दोनों को अतिचार कहा है। उपासकदशांग सूत्र में प्रथम अध्ययन में कहा है-'सम्यक्त्व के पांच प्रधान अतिचार जानने चाहिए किन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे यों हैं शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, परपाषण्ड प्रशंसा और परपाषण्ड संस्तव ॥४०॥

તથા પરસ્પરમાં વાર્તાલાપ કરવાથી થનારો પરિચય સંસ્તવ કહેવાય છે. એક સાથે નિવાસ કરવાથી, તેમની પ્રક્રિયાઓને સાંભળવાથી અને ક્રિયાઓને જોવાથી અવિચલ બુદ્ધિવાળા પુરૂષની દૃષ્ટિ તેમજ વિચારમાં ભેદ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. જેમની બુદ્ધિ અસ્થિર છે તેમનું તો કહેવું જ શું ? આ કારણે જ ભગવાન્ તીર્થંકરે પાર્શ્વસ્થો (શિથિલાચારિઓ) તેમજ સ્વચ્છન્દાચારિઓની સાથેના સહવાસનો નિષેધ કર્યો છે. એવાની સાથે એક રાત્રિ પણ સહવાસ કરવાથી સમ્યક્દૃષ્ટિ ચાલી જાય છે આથી કુતીર્થિકોની પ્રશંસા કરવી અને તેમની સાથે પરિચય કરવો સમ્યગ્દર્શનની મલીનતાનું કારણ છે-ભ્રષ્ટતાનું કારણ છે આ માટે જ એ બંનેને અતિચાર કહેવામાં આવ્યા છે ઉપાસકદશાંગસૂત્રના પ્રથમ અધ્યયનમાં કહ્યું છે-'સમ્યક્ત્વના પાંચ મુખ્ય અતિચાર જાણવા જોઈએ. તે આ મુજબ છે-શંકા, કાંક્ષા, વિચિકિત્સા, પરપાષડપશંસા અને પરપાષંડસંસ્તવ. ॥૪૦॥

मूलम्—पढमस्स अणुव्वयस्स बंध–वह–छविच्छेयाइया पंच अइयारा ॥४१॥

छाया–प्रथमस्याऽणुव्रतस्य बन्ध वध- छविच्छेदादिकाः पञ्चातिचाराः ॥४१॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत् सम्यक्त्वस्य शङ्का–काङ्क्षा–विचिकित्सा–परपाषण्डप्रशंसा संस्तव रूप पञ्चातिचारस्वरूपं निरूपितम्, सम्प्रति–अतिचारप्रस्तावात् पञ्चाणुव्रतानां दिग्व्रतानां चाऽतिचारान् क्रमशः पञ्च–पञ्च प्ररूपयितुमाह–'पढमस्स०' इत्यादि । प्रथमस्या–हिंसालक्षणस्याऽणुव्रतस्य देशतः स्थूल प्राणातिपातविरमणरूपस्य बन्ध–वध छविच्छेदादिकाः तत्र–बन्धः स्वाभिमतदेशगतिनिरोधरूपः गाढबन्धनं वा१ वधः–कशादण्डवेत्रादिभिः प्राणिनामभिघात

'पढमस्स अणुव्वयस्स' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—प्रथम अणुव्रत के बंध, वध, छविच्छेद आदि पांच अतिचार हैं ॥४१॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्व में सम्यक्त्व के शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, परपाषण्डप्रशंसा और परपाषण्डसंस्तव, इन पांच अतिचारों का स्वरूप निरूपण किया गया अतिचार का प्रकरण होने से पांच अणुव्रतों तथा दिग्व्रत आदि सात शिक्षाव्रतों के पांच-पांच अतिचारों का क्रमशः प्ररूपण करते हैं–

अहिंसा जिसका लक्षण है और स्थूल प्राणातिपात विरमण जिसका स्वरूप है, ऐसे प्रथम व्रत के पांच अतिचार हैं–बन्ध, वध, छविच्छेद आदि। इष्ट देश में गमन का निरोध या गाढा बन्धन बन्ध कहलाता है । कोडा, दंड, बेत आदि से प्राणियों को आघात करना

'પઢમસ્સ અણુવ્વયસ્સ બંધ–વહચ્છવિછેયાઇયા પંચ અઇયારા' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—પ્રથમ અણુવ્રતના બંધ, વધ, છવિચ્છેદ આદિ પાંચ અતિચાર છે. ॥૪૧॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં સમ્યક્ત્વના શંકા, કાંક્ષા, વિચિકિત્સા, પરપાષંડપ્રશંસા અને પરપાષંડસંસ્તવ એ પાંચ અતિચારોના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે અતિચારનું પ્રકરણ હોવાથી પાંચ અણુવ્રતો તથા દિગ્વ્રત આદિ ૭ (સાત) શિક્ષાવ્રતોનાં પાંચ–પાંચ અતિચારોનું ક્રમશઃ પ્રરૂપણ કરીએ છીએ–

અહિંસા જેનું લક્ષણ છે અને સ્થૂળપ્રાણાતિપાત વિરમણ જેનું સ્વરૂપ છે એવા પ્રથમ વ્રતના પંચ અતિચાર છે–બન્ધ, વધ, છવિચ્છેદ આદિ ઇષ્ટ દેશમાં ગમનનો નિરોધ અથવા ગાઢ બન્ધન 'બન્ધ' કહેવાય છે ચાબૂક, લાકડી, સોટી વગેરેથી પ્રાણિઓને આઘાત કરવો વધ છે–પ્રાણોનો નાશ નહીં;

रूपः, नतु-प्राणव्यपरोपणम्, तस्मात् पूर्वमेवाऽणुव्रतिनो निवृत्तत्वात् २। छविच्छेदः-नासिकाग्र-कर्णाग्रादिरूपावयवानां छेदनेन शरीरसौन्दर्यविशेषापनयनरूपः-३ आदिपदेनाऽतिभारः ४ भक्त पानव्यवच्छेदः-५ अनयोर्ग्रहणम्, तत्रातिभारः न्यायोचितवाहनवहनयोग्यभारातिरिक्त भारारोपणरूपः (४) भक्त पानव्यवच्छेदश्च-गोमहिषादि पशुप्रभृति प्राणिनां क्षुत्पिपासा जन्यबाधा सम्पादनरूपः (५) इत्येते पञ्चातिचारा अहिंसा लक्षण प्रथमाणुव्रतस्य भ्रंशहेतवो भवन्ति ।.४१॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वसूत्रे खलु-शङ्का कांक्षा विचिकित्सा परपाषण्डप्रशंसा संस्तवरूपाः पञ्च सम्यक्त्वस्याऽतिचाराः प्रदर्शिताः, सम्प्रति तावत् अतिचार

वध है-प्राणों का नाश करना नहीं, क्यों कि अणुव्रती उससे पहले ही निवृत्त हो जाता है। (प्राणातिपात से व्रत का सर्वथा भंग हो जाता है और सर्वथा भंग हो जाना अतिचार नही किन्तु अनाचार है।) नाक या कान का अग्रभाग या अन्य किसी अवयव का छेदन करके शरीर की सुन्दरता नष्ट करना छविच्छेद है। 'आदि' शब्द से अति-भारारोपण और भक्तपानव्यवच्छेद ग्रहण करना चाहिए। जो जितना भार वहन करने में समर्थ है, उस पर उससे अधिक भार लाद देना अतिभारारोपण कहलाता है। गाय, भैंस आदि प्राणियों को यथोचित अन्न-पानी न दे कर उन्हें भूख-प्यास का कष्ट पहुंचाना भक्त-पानव्यवच्छेद कहलाता है। यह अहिंसा लक्षण प्रथम अणुव्रत के पांच अतिचार हैं। इनके सेवन से अहिंसाणुव्रत आंशिक रूप से खंडित हो जाता है॥४१॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पूर्वसूत्र में सम्यक्त्व के शंका, कांक्षा, विचि-

---

કારણ કે અણુવ્રતી આની પહેલા જ નિવૃત્ત થઇ જાય છે (પ્રાણાતિપાતથી વ્રતનો સર્વથા ભંગ થઇ જાય છે અને સર્વથા ભંગ થઈ જવો અતિચાર નહીં પણ અનાચાર છે) નાક અથવા કાનનો અગ્રભાગ અથવા અન્ય કોઈ અવયવનું છેદન કરીને શરીરના સૌન્દર્યને નષ્ટ કરવું છવિચ્છેદ છે. 'આદિ' શબ્દથી અતિભારારોપણ અને ભક્તપાનવ્યવચ્છેદ ગ્રહણ કરવા જોઈએ. જે જેટલો ભાર વહન કરવા માટે સમર્થ છે તેમની ઉપર તેથી અધિક ભાર લાદી દેવો અતિભારારોપણ કહેવાય છે. ગાય, ભેંસ આદિ પ્રાણિઓને યોગ્ય પ્રમાણમાં અનાજ પાણી નહીં આપીને તેમને ભૂખ-તરસનું કષ્ટ પહોંચાડવું ભક્તપાનવ્યવચ્છેદ કહેવાય છે 'આ અહિંસા લક્ષણ પ્રથમ અણુવ્રતનાં પાંચ અતિચાર છે. એમના સેવનથી અહિંસાણુવ્રત આંશિકરૂપથી ખંડિત થઈ જાય છે. ॥૪૧॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પૂર્વસૂત્રમાં સમ્યક્ત્વના શંકા, કાંક્ષા, વિચિકિત્સા,

प्रस्तावात् स्थूल प्राणातिपातादि विरमणलक्षणपञ्चाणुव्रतेषु-दिग्व्रतादिलक्षणसप्त-शिक्षाव्रतेषु च पञ्च-पञ्चातिचारान् क्रमशः प्ररूपयितुं प्रथमं देशतो हिंसालक्षणस्य प्रथमस्याऽणुव्रतस्य पञ्चातिचारान् प्ररूपयति-'पढमस्स अणुव्वयस्स बंध वह छविच्छेयाइया पंच अइयारा' इति। प्रथमस्य स्थूल प्राणातिपातविरमण लक्षणस्याऽणुव्रतस्य बन्ध वध छविच्छेदादिकाः तत्र-बन्धः रज्जुप्रभृतिभिर्बन्धनम्, वधः-कशायष्टिप्रभृतिभिरभिघात स्ताडनम्, छविच्छेदः-छवेः शरीरकान्ति सौदर्यनाशार्थं नासिका कर्णादीनां शरीरावयवानां छेदनम्, आदिनाऽतिभारारोपणं भक्तपानव्यवच्छेदश्च परिगृह्यते, इत्येते पञ्च स्थूलप्राणातिपातविरमणलक्षणस्य प्रथमाणुव्रतस्याऽतिचारा अंशहेतवो भवन्तीति बोध्यम्। उक्तञ्चोपासकदशाङ्ग प्रथमाऽध्ययने-'थूलस्स पाणाइवायवेरमणस्स समणोवासएणं पंच अइ-

किरसा, परपाषण्डप्रशंसा और परपाषण्डसंस्तव अतिचार प्रतिपादन किये गये हैं। अतिचार का प्रकरण होने से अब स्थूल प्राणातिपात आदि के तथा दिग्व्रत आदि के पांच-पांच अतिचारों की प्ररूपणा करते हैं। सर्व प्रथम एकदेश अहिंसारूप प्रथम अणुव्रत के पांच अतिचार कहते हैं-

प्रथम अणुव्रत के बंध, वध, छविच्छेद आदि पांच अतिचार हैं। उनमें से रस्सी आदि से बांधना बन्ध कहलाता है। चाबुक, लकडी आदि से पीटना वध कहलाता है और शरीर की सुन्दरता को नष्ट करने के लिए नाक कान आदि शरीर के अवयवों का छेदन करना छविच्छेद कहलाता है। 'आदि' शब्द से अतिभारारोपण और भक्त-पानव्यवच्छेद का ग्रहण होता है। ये पांच स्थूल प्राणातिपात विरमण नामक प्रथम अणुव्रत के अतिचार हैं और उसके एक देश भंग के कारण होते हैं।

પરપાષંડપ્રશંસા અને પરપાષંડ સંસ્તવ અતિચાર પ્રતિપાદિત કરવામાં આવ્યા. અતિચારનું આ પ્રકરણ હોવાથી હવે સ્થૂળપ્રાણાતિપાત વગેરેના તથા દિગ્-વ્રત આદિના પચ-પાંચ અતિચારોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ. સર્વપ્રથમ એક દેશ અહિંસારૂપ પ્રથમ અણુવ્રતના પાંચ અતિચાર કહીએ છીએ-

પ્રથમ અણુવ્રતના બધ, વધ, છવિચ્છેદ આદિ પાંચ અતિચાર છે. તેમાંથી દોરડા વગેરેથી બધવું બન્ધ કહેવાય છે ચાબૂક, લાકડી વગેરેથી મારવું વધ કહેવાય છે અને શરીરની સુન્દરતાનો નાશ કરવા માટે નાક કાન આદિ શરીરના અવયવોનું છેદન કરવું છવિચ્છેદ કહેવાય છે. 'આદિ' શબ્દથી અતિભારારોપણ અને ભક્તપાનવ્યવચ્છેદનું ગ્રહણ થાય છે. આ પાંચ સ્થૂળ-પ્રાણાતિપાત વિરમણ નામના પ્રથમ અણુવ્રતના અતિચાર છે અને તેના એક દેશભંગના કારણ હોય છે.

यारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा-बंधे -वहेच्छविच्छेए अइभारे भत्तपाणवोच्छेए' इति स्थूलस्य प्राणातिपातविरमणस्य श्रमणोपासकेन पञ्चातिचाराः प्रधानाः ज्ञातव्याः, तद्यथा—बन्धोवध श्छविच्छेदः अतिभारः, भक्तपानव्युच्छेदः इति। ॥४१॥

मूलम्—बीयस्स अणुव्वयस्स सहसब्भक्खाणाइया पंच अइयारा ।४२।

छाया—द्वितीयस्याऽणुव्रतस्य सहसाभ्याख्यानादिकाः पञ्चातिचाराः ॥४२॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे—स्थूलप्राणातिपातविरतिलक्षण प्रथमाणुव्रतस्य बन्ध वधच्छविच्छेदातिभारभक्तपानव्युच्छेदरूपाः पञ्चातिचाराः प्ररूपिताः,

---

उपासकदशांग के प्रथम अध्ययन में कहा है—श्रमणोपासक को स्थूल प्राणातिपात विरमणव्रत के पांच प्रधान अतिचार जानने चाहिए, किन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे अतिचार ये हैं-बन्ध, वध, छविच्छेद, अतिभार और भक्तपान विच्छेद। किसी के ऊपर उसकी शक्ति से अधिक भार लाद देना अतिभार या अति भारारोपण नामक अतिचार है और अपने अधीन जीव को समय पर भोजन-पानी न देना भक्तपानविच्छेद अतिचार है ॥४१॥

'बीयस्स अणुव्वयस्स' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—दूसरे अणुव्रत के सहसाभ्याख्यान आदि पांच अतिचार है ।४२।

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्र में स्थूल प्राणातिपातविरतिरूप प्रथम अणुव्रत के बन्ध, वध, छविच्छेद, अतिभार और भक्तपान विच्छेद, ये पांच अतिचार प्रतिपादन किये गए, अब दूसरे अणुव्रत के सहसा-

---

ઉપાસકદશાંગના પ્રથમ અધ્યયનમાં કહ્યું છે-શ્રમણોપાસકે સ્થૂળપ્રાણાતિપાત વિરમણના પાંચ મુખ્ય અતિચાર જાણવા જોઈએ પરન્તુ તેનું આચરણ કરવું જોઈએ નહીં. આ અતિચાર આ પ્રમાણે છે-બન્ધ, વધ, છવિચ્છેદ, અતિભાર અને ભક્તપાનવિચ્છેદ કોઈની ઉપર તેની શક્તિથી વધારે બોજો લાદવો અતિભાર અથવા અતિભારારોપણ નામક અતિચાર છે અને પોતના તાબા હેઠળના જીવને વખત થયે ભોજન-પાણી ન આપવા ભક્તપાનવિચ્છેદ અતિચાર છે. ॥૪૧॥

'બીયસ્સ અણુવ્વયસ્સ સહસબ્ભક્ખાણાઇયા પંચ અઇયારા' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—બીજા અણુવ્રતના સહસાભ્યાખ્યાન આદિ પાંચ અતિચાર છે ।।૪૨।।

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં સ્થૂળપ્રાણાતિપાત વિરતિ રૂપ અણુવ્રતના બન્ધ, વધ, છવિચ્છેદ, અતિભાર અને ભક્તપાનવિચ્છેદ, એ પાંચ અતિચારોનું

सम्प्रति–द्वितीयस्याऽणुव्रतस्य सहसाभ्याख्यानादि पञ्चातिचारान् प्रतिपादयितु माह–'बीयस्स अणुव्वयस्स सहसब्भक्खाणाइया पंच अइयारा' इति। द्वितीयस्या-ऽणुव्रतस्य सहसाभ्याख्यानादिकाः पञ्चातिचाराः–स्थूलमृषावादविरतिलक्षणस्य द्वितीयाणुव्रतस्य सहसाभ्याख्यानादिकाः पञ्चातिचारा भवन्ति, आदिशब्देन-रहस्याभ्यान-स्वदारमन्त्रभेद-मृषोपदेश-कूटलेखकरणानां ग्रहणं भवति। तत्र-सहसाभ्याख्यानम्-झटित्यावेशवशाद्विचारमकृत्वा–कस्यचिदुपरि मिथ्यादोषारोपणम्, यथा–'त्वं चौरः– इयं डाकिनी' इत्यादिरूपकम्–१ रहस्याभ्याख्यानम्-रहसि–एकान्ते भवं रहस्यं तस्मिन्नभ्याख्यानं–मिथ्याभियोगो रहस्याभ्याख्यानम् –२ स्वदारमन्त्रभेदः–स्वस्य दाराः पत्नीस्वदारास्तेषां मन्त्रो विस्रम्भभाषणं तस्य भेदः परस्मै कथनम्३ मृषोपदेशः–मृषा–मिथ्यात्वस्य य उपदेशः ऐहिकामुष्मिका-

---

भ्याख्यान आदि पांच अतिचारों की प्ररूपणा करते हैं-स्थूलमृषावाद विरमण नामक दूसरे अणुव्रत के सहसाभ्याख्यान आदि पांच अतिचार होते हैं। 'आदि' शब्द से रहस्याभ्याख्यान, स्वदारमंत्रभेद, मृषोपदेश और कूटलेखकरण नामक अतिचारों को ग्रहण करना चाहिए।

आवेश के वशीभूत होकर विचार किये विना ही झटपट किसी के ऊपर मिथ्यादोषारोपण कर देना सहसाभ्याख्यान कहलाता है, जैसे- तू चोर है, यह डाकिनी है, इत्यादि। रहस् अर्थात एकान्त में जो हो वह रहस्य कहलाता है। उसमें मिथ्या अभियोग करना रहस्याभ्याख्यान है। अपनी पत्नी ने विश्वास करके जो कहा हो उसे दूसरे पर प्रकट कर देना स्वदारमंत्र भेद है। मिथ्या उपदेश

પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે બીજા અણુવ્રતના સહસાભ્યાખ્યાન આદિ પાંચ અતિચારોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ–

સ્થૂળમૃષાવાદ વિરમણ નામક બીજા અણુવ્રતના સહસાભ્યાખ્યાન આદિ પાંચ અતિચાર હોય છે 'આદિ' શબ્દથી રહસ્યભ્યાખ્યાન, સ્વદારમંત્રભેદ, મૃષોપદેશ અને કૂટલેખકરણ નામના અતિચારોનું ગ્રહણ કરવું જોઈએ.

આવેશને વશીભૂત થઈને વગર વિચાર કર્યે જ એકદમ કોઈની ઉપર મિથ્યાદોષારોપણ કરી નાખવું સહસાભ્યાખ્યાન કહેવાય છે જેમ કે–તું ચોર છે, આ ડાકણ છે વગેરે રહસ્ અર્થાત્ એકાન્તમાં જે થાય તે રહસ્ય કહેવાય છે તેમાં મિથ્યા અભિયોગ કરવો રહસ્યાભ્યાખ્યાન છે. પોતાની પત્નીએ વિશ્વાસ રાખીને જે કહ્યું હોય તે અન્ય પાસે જાહેર કરી દેવું સ્વદાર-મંત્રભેદ કહેવાય છે મિથ્યાઉપદેશ આપવો મૃષોપદેશ છે અર્થાત્ આ લોક

भ्युदयनिःश्रेयसविषये सन्दिहानजनपृष्टेन तत्त्वार्थमजानताऽपि हिंसादिसम्पृक्तम्, विपरीतोपदेशदानं-मृषोपदेशः ४ कूटलेखकरणम् कूटम्-असद्भूतं वस्तु तस्य लेखः तद्रूपा क्रिया कूटलेखक्रिया-परवञ्चनार्थ मन्यदीयमुद्राङ्कित लिपेरनुकृत्यलेखनम् ५ न्यासापहारलेखनं च। इत्येते सहसाऽभ्याख्यानादिकाः पञ्च स्थूल मृषावाद-विरमणलक्षण द्वितीयाणुव्रतस्याऽतिचारा ज्ञातव्या न समाचरितव्याः ॥४२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्व तावद्-देशतोऽहिंसालक्षणप्रथमाणुव्रतस्य बन्धवधादयः पञ्चातिचाराः प्ररूपिताः, सम्प्रति-क्रमप्राप्तस्य स्थूलमृषावादविरमण लक्षण द्वितीयाणुव्रतस्य सहसाऽभ्याख्यानादीन् पञ्चातिचारान् प्ररूपयितुमाह-

देना मृषोपदेश है अर्थात् इस लोक संबंधी अभ्युदय या परलोक संबंधी मोक्ष आदि के विषय में सन्देहशील किसी पुरुष के पूछने पर, तत्त्वार्थ को जानते हुए भी हिंसायुक्त विपरीत उपदेश देना मृषोपदेश है। असद्भूत तथ्य का लेखन करना अर्थात् दूसरों को धोखा देने के लिए अन्य मोहर आदि से युक्त लीपिका अनुकरण करना या झूठे दस्तावेज बहीखाते आदि लिखना कूट लेखकरण कहलाता है। किसी की धरोहर का अपहरण कर लेना न्यासापहार है। यह सहसाभ्याख्यान आदि स्थूल मृषावाद विरमणव्रत के पांच अतिचार जानने चाहिए पर इनका आचरण नहीं करना चाहिए ॥४२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—एकदेश हिंसात्याग रूप प्रथम अणुव्रत के पांच अतिचारों का प्ररूपण पहले किया गया है। अब क्रम प्राप्त स्थूल मृषावाद विरमण नामक दूसरे अणुव्रत के सहसाभ्याख्यान आदि

સંબંધી અભ્યુદય અથવા પરલોક સંબંધી મોક્ષ વગેરેના વિષયમાં શંકાશીલ કોઇ પુરૂષના પૂછવાથી, તત્ત્વાર્થને ન જાણતા હોવા છતાં પણ હિંસાયુક્ત વિપરીત ઉપદેશ આપવો એ મૃષોપદેશ છે. અસદ્ભૂત સત્યનું લેખન કરવું અર્થાત્ બીજાને છેતરવા માટે બીજાની મોહર વગેરેથી યુક્ત લીપિનું અનુકરણ કરવું અથવા ખોટા દસ્તાવેજ ખાતાવહી વગેરે લખવા કૂટલેખકરણ કહેવાય છે કોઇની થાપણ ઓળવવી ન્યાસાપહાર છે. સહસાભ્યાખ્યાન આદિ સ્થૂળ મૃષાવાદ વિરમણ વ્રતના આ પાંચ અતિચાર જાણવા યોગ્ય છે પરન્તુ આચરવા યોગ્ય નથી. ॥૪૨॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—એકદેશ હિંસાત્યાગ રૂપ પ્રથમ અણુવ્રતના પાંચ અતિચારોનું પ્રરૂપણ પહેલા કરવામાં આવ્યું છે. હવે ક્રમપ્રાપ્ત સ્થૂળમૃષાવાદ વિરમણ નામના બીજા અણુવ્રતના સહસાભ્યાખ્યાન આદિ પાંચ અતિચારોની

'बीयस्स अणुव्वयस्स सहसाब्भक्खाणाइया पंच अइयारा' इति। द्वितीयस्य मृषावादविरतिलक्षणस्याऽणुव्रतस्य सहसाभ्याख्यानादिकाः-मृषोपदेशोऽसदुपदेशः परेणान्यस्य छलनम्, स्वयं वाऽन्यस्य छलनम्, अतिसन्धानम्. ततो विरति लक्षणाणुव्रतस्य सहसाभ्याख्यानम्, विचारमकुर्वाणः सहसावेशवशात्कस्य चिदुपरे मिथ्यादोषारोपणम् १ आदिना-रहस्याभ्याख्यानम्, रहस्येकान्ते भवं रहस्यम्-तस्याभ्याख्यानम् अभितः प्रकाशनम्, रहस्येवाऽभ्याख्यानम्, असदध्यारोपणम्१ स्वदारमन्त्रभेदः स्वस्य दाराः पत्नी तेषां मन्त्रो विश्रम्भालापः तस्य भेदः परस्मै कथनम् २ मृषोपदेशश्च-नानाविधः सम्भवति, यथा-प्रमत्तस्य परपीडाजननवचनम्, वाह्यन्तां खरोष्ट्राः, हन्यन्तां दस्युचौराः इत्यादि, अयथार्थोपदेशवचनम्-यथा-सन्देहापन्नेन केनचिद्-जीवादितत्त्वस्वरूपं पृष्टः सन्

पांच अतिचारों की प्ररूपणा करते हैं—

दूसरे अणुव्रत के सहसाभ्याख्यान आदि पांच अतिचार हैं। मृषोपदेश अर्थात् असत्य उपदेश, पर के द्वारा दूसरे को छलना या स्वयं दूसरों को छलना। मृषोपदेश से विरत होना जिसका लक्षण है, ऐसे द्वितीय अणुव्रत के सहसाभ्याख्यान आदि पांच अतिचार हैं।

विचार किये बिना ही, आवेश के अधीन होकर एकदम किसी पर मिथ्यादोषारोपण कर देना सहसाभ्याख्यान कहलाता है। किसी के रहस्य को अर्थात् गुप्त बात को प्रकाशित कर देना रहस्याभ्याख्यान है। अपनी पत्नी की विश्वास पूर्वक कही हुई गुप्त बात को दूसरों को जाहिर कर देना स्वदारमन्त्र भेद है। मृषोपदेश अनेक प्रकार का हो सकता है, जैसे-किसी ने संदेह के वशीभूत होकर

પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

બીજા અણુવ્રતના સહસાભ્યાખ્યાન આદિ પાંચ અતિચાર છે. મૃષોપદેશ અર્થાત્ અસત્ય ઉપદેશ બીજા દ્વારા કોઇને છેતરવો અથવા જાતે જ બીજાને છેતરવો મૃષોપદેશથી વિરત થવું જેનું લક્ષણ છે એવા બીજા અણુવ્રતના સહસાભ્યાખ્યાન આદિ પાંચ અતિચાર છે.

વિચાર કર્યા વગર જ, આવેશને તાબે થઈને એકદમ કોઈ ઉપર મિથ્યાદોષારોપણ કરી નાખવું સહસાભ્યાખ્યાન કહેવાય છે કોઇના રહસ્યને અર્થાત્ છાની વાતને જાહેર કરી દેવું રહસ્યાભ્યાખ્યાન છે પોતાની પત્નીની વિશ્વાસપૂર્વક કહેવામાં આવેલી ગુપ્ત વાતને બીજા આગળ જાહેર કરી દેવી સ્વદારમંત્રભેદ કહેવાય છે મૃષોપદેશ અનેક પ્રકારના હોઇ શકે છે જેમ કે-કોઈએ સંદેહને વશીભૂત થઇને કોઈ જીવાદિના વિષયમાં પ્રશ્ન કર્યો, પરન્તુ

कश्चिन्नयथार्थतया प्रतिपादयति, अपितु-अयथार्थतयैवेति तद्वचनमपि मृषोपदेशः १ एवं-विवादरूपकलहे सति तत्राऽन्यत्रवाऽन्यतरस्य छलनोपदेशवचनं मृषोपदेशः १ एवं-द्यूतादि विषयकच्छलनवचनान्यपि मृषोपदेशग्रहणेन ग्रहीतव्यम् ४ कूटलेखकरणम्-कूटलेखक्रिया कूटस्याऽसद्भूतस्य लेखकरणम् अन्य मुद्राक्षराकारस्वरूपलेखकरणम् न्यासापहारलेखनं च, तत्र-न्यासापहारः न्यस्यते-स्थाप्यते पुनर्ग्रहणायेति न्यासः स्थापितरूप्यकथनादिः तस्य पुनरादानाय स्थापितस्य रूप्यकादेरपलापकं वचनं न्यासापहारः येन वचनेन करणभूतेन न्यासोऽपह्रियतेऽपलप्यते तद्वचनं न्यासापहार इत्यर्थः अधिकतया स्थापितद्रव्यस्य न्यूनतया

किसी से जीवादि के विषय में प्रश्न किया, मगर वह यथार्थ उत्तर नहीं होता, वरन् अयथार्थ उत्तर देता है तो उसका वचन मृषोपदेश है। इसी प्रकार विवाद रूप कलह होने पर वहीं या अन्यत्र, किसी एक को छलने का उपदेश मृषोपदेश है। इसी प्रकर जुआ आदि संबंधी छलना के वचन मृषोपदेश में अन्तर्गत होते हैं।

झूठा लेख लिखना कूटलेखक्रिया है। दूसरे को मुद्रा अथवा हस्ताक्षर स्वरूप लेख लिख लेना, झूठा दस्तावेज या वहीखाता लिखना आदि सब कूटलेखक्रिया में अन्तर्गत है।

वापिस लेने के लिए जो धरोहर रक्खी जाती है, उसे न्यास कहते हैं। धरोहर के रूप में रक्खे हुए धन या रूपया आदि का अपलाप करना-उससे मुकर जाना न्यासापहार है। तात्पर्य यह है कि जिस वचन के द्वारा न्यास-धरोहर-का अपहरण किया जाता है वह वचन

તેનો યથાર્થ ઉત્તર આપતો નથી પરન્તુ અયથાર્થ ઉત્તર આપે છે તો તેનું વચન મૃષોપદેશ છે. એવી જ રીતે વિવાદરૂપ કલહ હોવાથી ત્યાં જ અથવા અન્યત્ર કોઈ એકને છેતરવાનો ઉપદેશ આપવો એ પણ મૃષોપદેશ છે. આવી રીતે જુગાર આદિ સંબંધી કપટ યુક્ત વચન પણ મૃષોપદેશમા સમ વિષ્ટ થાય છે

ખોટો લેખ લખવો કૂટલેખક્રિયા છે. બીજાની મુદ્રા અથવા હસ્તાક્ષર સ્વરૂપ લેખ લખી લેવો, ખોટો દસ્તાવેજ અથવા ખાતાવહી લખવા વગેરે બધાનો કૂટલેખન ક્રિયામા સમાવેશ થઈ જાય છે

પાછી લેવા માટે જે થાપણ રાખવામાં આવે છે, તેને ન્યાસ કહે છે. થાપણરૂપે રાખવા આવેલા ધન અથવા રોકડ આદિ છીનવીલેવા-તે આપવામાં ઈન્કાર કરવો ન્યાસાપહાર છે તાત્પર્ય એ છે કે જે વચન દ્વારા ન્યાસ-થાપણ-નું અપહરણ કરવામાં આવે છે તે વચન ન્યાસાપહાર કહેવાય છે. વધારે રાખેલી થાપણને ઓછા સ્વરૂપે પરત કરવા સંબંધીનું વચન ન્યાસાપહાર

प्रत्यर्पणवचनं न्यासापहारः ५ तथाचै-ते सहसाभ्याख्यानादयः स्थूल मृषावाद-विरमणलक्षणस्य गुव्रतस्याऽतिचारा आत्मनः परिणति विशेषा भवन्ति । एतेऽति-चारा ज्ञातव्या एव किन्तु व्रतभङ्गहेतुकत्वेन न समाचरणीया 'पंच अइयारा जाणे-यव्वा-न समायरेयव्वा' इति भगवदाज्ञा सद्भावात् । इत्थ मत्र संग्रहगाथाः-

अत्र च पञ्चातिचाराः उच्यन्ते लक्ष्य लक्षणोपेताः ।
सहसाभ्याख्यानं तथा, अभ्याख्यानं रहस्यस्य ॥१॥
'निजदारमन्त्रभेदो मृषोपदेशश्च कूटलेखश्च ।
एतेषां पञ्चानां क्रमशो रूपं भण्यतेऽग्रे ॥२॥
'अविचारं यो मिथ्या दोषारोपः परत्र त्वं चौरः ।
त्वं नीच इत्येवं सहसाभ्याख्यान मागमे उक्तम् ॥३॥

न्यासापहार कहलाता है । अधिक रक्खी हुई धरोहर को अल्प रूप में वापिस लौटाने का वचन न्यासापहार है । इस प्रकार से सहसाभ्या-ख्यान आदि स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के अतिचार हैं जो आत्मा का विशिष्ट परिणतिरूप हैं ।

ये पांच अतिचार सिर्फ जानने योग्य हैं किन्तु व्रतभंग के कारण होने से आचरणीय नहीं हैं, क्यों कि भगवान् की ऐसी आज्ञा है कि-'पांच अतिचार जानने चाहिए, इनका आचरण नहीं करना चाहिए।

यहां यह संग्रह गाथा है । यहां लक्ष्य और लक्षण से युक्त पांच अतिचार कहे जाते हैं—

'सहसाभ्याख्यान, रहस्याभ्याख्यान, स्वदारमन्त्र भेद, मृषोपदेश और कूटलेख, ये पांच अतिचारों के नाम हैं । इन पांचों का स्वरूप आगे कहा जाता है—

છે આવી રીતે સહસાભ્યાખ્યાન આદિ સ્થૂળમૃષાવાદ વિરમણ વ્રતનાઅતિચાર છે. જે આત્માની વિશિષ્ટ પરિણુતિ રૂપ છે.

આ પાંચ અતિચાર માત્ર જાણુવા યોગ્ય છે પરન્તુ વ્રતભંગના કારણુ હોવાથી આચરણીય નથી. કારણુ કે ભગવાનની એવી આજ્ઞા છે કે-'પાંચ અતિચાર જાણુવા જોઈએ, તેમનું આચરણુ કરવું જોઈએ નહીં'.'

અહીં આ સંગ્રહગાથા છે. અત્રે લક્ષ્ય અને લક્ષણુથી યુક્ત પાંચ અતિચાર કહેવામાં આવે છે-

'સહસાભ્યાખ્યાન, રહસ્યાભ્યાખ્યાન, સ્વદારમંત્રભેદ, મૃષોપદેશ અને કૂટલેખ, આ પાંચ અતિચારોના નામ છે.' આ પાંચેનું સ્વરૂપ હવે પછી કહેવામાં આવે છે-

'एकान्ते मित्रै गुह्यं', यत्किमपि मन्त्रयत्सु
मिथ्यादोषारोपोऽभ्याख्यानं रहस्यमाख्यातम् ॥४।
'निजस्त्रीमित्रादीनां संभेदो गुह्यमन्त्रप्रभृतेः
निजदारमन्त्रभेदो ज्ञातव्योऽथ मृषोपदेशः सः ॥५॥
यदभ्युदये निःश्रेयसे च सन्देहग्रस्तचित्तेन।
पृष्टो मिथ्योपदिशति तत्त्वार्थस्यापरिज्ञानात् ॥६॥
हस्तादि कौशलेनाऽनुकरणं यत्पराक्षरादीनाम्।
परवञ्चनबुद्ध्या विज्ञेया कूटलेखक्रिया सा ॥७॥ इति

---

(१) विचार किये बिना ही दूसरे पर मिथ्या दोषारोपण करना सहसाभ्याख्यान अतिचार है, जैसे-तू चोर है, तू नीच है इत्यादि।

(२) एकान्त में मित्रों ने कुछ गुप्त मन्त्रणा की है, ऐसा मिथ्यादोषारोप करना रहस्याभ्याख्यान कहलाता है।

(३) अपनी स्त्री या मित्र आदि की गुप्त बात को प्रकाशित कर देना स्वदारमन्त्र भेद है।

(४) अभ्युदय या निश्रेयस् के विषय में सन्देहवान् किसी पुरुष के द्वारा प्रश्न करने पर, वास्तविक बात को नहीं जानते हुए मिथ्या उत्तर देना मिथ्योपदेश कहलाता है।

(५) दूसरे को ठगने के अभिप्राय से, हाथ, की सफाई से दूसरे के हस्ताक्षरों की नकल करना कूटलेखक्रिया है ॥१-७॥

---

(૧) વિચાર કર્યા વગર જ બીજા પર મિથ્યાદોષારોપણ કરવું સહસાભ્યાખ્યાન અતિચાર આગમમાં કહેલ છે, જેમ કે-તૂં ચોર છું, તૂં નીચ છું વગેરે.

(૨) એકાન્તમાં મિત્રોએ કોઈ ગુપ્ત મંત્રણા કરી છે, એવું મિથ્યાદોષારોપણ કરવું રહસ્યાભ્યાખ્યાન કહેવાય છે.

(૩) પોતાની સ્ત્રી અથવા મિત્ર વગેરેની છાની વાતને જાહેર કરવી સ્વદારમંત્રભેદ છે.

(૪) અભ્યુદય અથવા નિશ્રેયસના વિષયમાં શંકાશીલ કોઈ પુરૂષ દ્વારા પ્રશ્ન પૂછવાથી, વાસ્તવિક સત્યને ન જાણતા છતાં મિથ્યા ઉત્તર આપવો મિથ્યોપદેશ કહેવાય છે.

(૫) બીજાને છેતરવાના આશયથી, હાથચાલાકીથી, બીજાના હસ્તાક્ષરોની નકલ કરવી કૂટલેખક્રિયા છે. ॥૧-૭॥

उक्तञ्चोपासकदशाङ्गे १ अध्याये-'थूल मुसावायवेरमणस्स पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा सहसब्भक्खाणे-रहसाभक्खाणे-सदारमंतभेए-मोसोवएसेए-कूडलेहकरणे' इति। स्थूलमृषावाद विरमणस्य पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा सहसाभ्याख्यानम्-स्वदारमन्त्रभेदः मृषोपदेशः-कूटलेखकरणं च-' इति ॥४२॥

मूलम्-तइयस्स तेडाहडाइया पंच अइयारा ॥४३॥

छाया--तृतीयस्य स्तेनाहृतादिकाः पञ्चातिचाराः ॥४३॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वसूत्रे-क्रमप्राप्तस्य स्थूल मृषावादविरमणस्य द्वितीयाणुव्रतस्य सहसाभ्याख्यानादिकाः पञ्चातिचाराः प्ररूपिताः, सम्प्रति स्तेनाहृतादिकान् पञ्चातिचारान् प्ररूपयितुमाह-'तइयस्स तेडाहडाइया पंच अइयारा' इति। तृतीयस्य स्थूलादत्तादानविरतिलक्षणस्याणुव्रतस्य स्तेनाहृतादिकाः आदिना-तस्क

उपासकदशांग के प्रथम अध्ययन में कहा है-स्थूलमृषावादविरमणव्रत के पांच अतिचार जानना चाहिए किन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे अतिचार यों हैं-सहसाभ्याख्यान, रहस्याभ्याख्यान, स्वदारमन्त्रभेद, मृषोपदेश और कूटलेखकरण ॥४२॥

'तइयस्स तेणाहडाइया' इत्यादि।

सूत्रार्थ—स्तेनाहृत आदि तीसरे अणुव्रत के अतिचार हैं ॥४३॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्र में क्रमप्राप्त स्थूलमृषावाद विरमण नामक दूसरे अणुव्रत के सहसाभ्याख्यान आदि अतिचार बतलाये गये, अब क्रमप्राप्त स्थूल स्तेय विरमण नामक तीसरे अणुव्रत के स्तेनाहृत आदि पांच अतिचारों की प्ररूपणा करते हैं—

ઉપાસકદશાંગના પ્રથમ અધ્યયનમાં કહ્યું છે-સ્થૂળમૃષાવાદ વિરમણ વ્રતના પાંચ અતિચાર જાણવા યોગ્ય જરૂર છે પરન્તુ આચરવા યોગ્ય નથી આ અતિચાર આ પ્રમાણે છે-સહસાભ્યાખ્યાન, રહસ્યાભ્યાખ્યાન, સ્વદારમંત્રભેદ, મૃષોપદેશ અને કૂટલેખકરણ ॥૪૨॥

'तइयस्स तेडोहडाइया पंच अइयारा' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-સ્તેનાહૃત વગેરે ત્રીજા અણુવ્રતના અતિચાર છે. ॥૪૩॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં ક્રમપ્રાપ્ત સ્થૂળમૃષાવાદ વિરમણ વ્રત નામના બીજા અણુવ્રતના સહસાભ્યાખ્યાન આદિ પાંચ અતિચાર બતાવવામાં આવ્યા હવે ક્રમપ્રાપ્ત સ્થૂળસ્તેય વિરમણ નામના ત્રીજા અણુવ્રતના સ્તેનાહૃત આદિ પાંચ અતિચારોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

प्रयोग-२ विरुद्धराज्यातिक्रम ३ कूटतुलाकूटमान ४ तत्प्रतिरूपकव्यवहारश्चे ५ त्येते पञ्चातिचारा आत्मनो मालिन्योत्पादकाः परिणतिविशेषा भवन्ति । तत्र-स्तेनाहृतं-स्तेन श्चौरा चौर्यवृत्या समानीतहिरण्यादेः चोरितस्य वस्तुनो लोभ पारवश्यादल्पमूल्यव्ययेन ग्रहणम् १ तस्करप्रयोगः तस्कराणां-चौराणा प्रयोगः 'हरत यूयं परधनादिकम्' इत्यादिवाक्यैः प्रेरणं चौर्यार्थं चौरायोत्साह प्रदानम् २ विरुद्धराज्यातिक्रमश्च उचितन्यायात्प्रकारान्तरेण दानं-ग्रहण मति क्रमः, राज अज्ञादि स्वीकरणम्-अविरुद्धं कर्म राज्य मुच्यते, विरुद्धश्च तद्राज्य-

तीसरे स्थूल अदत्तादान विरमण नामक अणुव्रत के पांच अतिचार हैं-(१) स्तेनाहृत (२) तस्कर प्रयोग (३ विरुद्ध राज्यातिक्रम (४) कूटतुलाकूटमान और (५) तत्प्रतिरूपक व्यवहार । ये पांच अतिचार आत्मा में मलिनता उत्पन्न करने वालेआत्मा के परिणाम विशेष हैं । इनका स्वरूप इस प्रकार है—

(१) स्तेन का अर्थ चोर है। चोरों द्वारा चोरी करके लाये हुए सोने-चांदी आदि द्रव्य को लोभ के वश होकर अल्प मूल्य में खरीद लेना स्तेनाहृत अतिचार है ।

(२) तस्करों अर्थात् चोरों को प्रेरणा देना, जैसे-'तुम पराये धन का हरण करो' इत्यादि कहकर उन्हें उत्साहित करना चोरी के लिए प्रेरित करना स्तेनप्रयोग है ।

(३) उचित या न्यायसंगत तरीके से विपरीत किसी अन्य प्रकार से ग्रहण करना अतिक्रम कहलाता है । राजा की आज्ञा आदि को

ત્રીજા સ્થૂળ અદત્તાદાન વિરમણ નામના અણુવ્રતના પાંચ અતિચાર છે-(૧) સ્તેનાહૃત (૨) તસ્કરપ્રયોગ (૩) વિરૂદ્ધરાજ્યાતિક્રમ (૪) કૂટતુલાકૂટમાન અને (૫) તત્પ્રતિરૂપક વ્યવહાર આ પાંચ અતિચાર આત્મામાં મલીનતા ઉત્પન્ન કરનારા આત્માના પરિણામ વિશેષ છે. એમનું સ્વરૂપ નીચે મુજબ છે-

(૧) સ્તેનનો અર્થ ચોર છે. ચોરો દ્વારા ચોરી કરીને લવાયેલા સોના ચાંદી વગેરે દ્રવ્યને લોભને વશ થઈને ઓછી કિંમતે ખરીદી લેવું સ્તેનાહૃત અતિચાર છે.

(૨) તસ્કરો અર્થાત્ ચોરોને પ્રેરણા આપવી, જેમ કે-'તમે પારકા ધનનું હરણ કરો વગેરે કહીને તેમને ઉત્સાહિત કરવા, ચોરી માટે પ્રેરિત કરવા સ્તેનપ્રયોગ છે.

(૩) યોગ્ય અથવા ન્યાયસંગતથી વિપરીત કોઈ અન્ય પ્રકારથી ગ્રહણ કરવું અતિક્રમ કહેવાય છે. રાજાની આજ્ઞા વગેરેનો સ્વીકાર કરવો, તેનાથી

श्चेति विरुद्धराज्यं तस्मिन् राज्येऽतिक्रमो विरुद्धराज्यातिक्रमः मित्रराष्ट्रापमाना-नुव्यवसायी परराष्ट्रोपकारक व्यवहारो यथातथा बोध्यः ३ कूटतुला-कूटमान-करणम्-सेटकादि-प्रस्थादिकं काष्ठादिरचितपात्रविशेषो मानं तुलादिक मुन्मानञ्च एतेन न्यूनेने-तरेभ्यो धान्य-सुवर्णादिकं दातव्यम्, एतेनाऽधिकेन चात्मनः स्वार्थं ग्राह्य मित्येवं प्रकृति कूटप्रयोगरूपमवसेयम् ४ तत्प्रतिरूपक व्यवहारश्च-प्रति रूपकैः कृत्रिमैर्हिरण्यसदृशै स्ताम्र रूप्यरचितैर्द्रम्मैर्वञ्चना पूर्वकः क्रयविक्रयरूपो व्यवहारोऽवगन्तव्यः। तथा च ताम्रेण घटिताः रूप्येण-सुवर्णेन च घटिताः, ताम्र रूप्याभ्याञ्च घटिता द्रम्मा हिरण्य सदृशा भवन्ति. तादृशा द्रम्माः केनचित्पुरुषेण

स्वीकार करना, उससे विरुद्ध कार्य न करना अविरुद्ध राज्य में अति-क्रम करना विरुद्ध राज्यातिक्रम कहलाता है। तात्पर्य यह है कि मित्र राज्य का अपमान करनेवाला एवं परराष्ट्र के लिए उपकारक व्यवहार विरुद्ध राज्यातिक्रम है।

(४) धान्य आदि नापने का लकडीआदि का बना हुआ नाप मान कहलाता है। तराजू आदि को उन्मान कहते हैं छोटे मान-उन्मान से दूसरों को धान्य या सुवर्ण आदि देना और बडे से अपने लिए लेना, इस प्रकार का व्यवहार कूटतुलाकूटमान कहलाता है।

(५) असली वस्तु में नकली चीज मिलाकर उसे असली के रूप में बेचना तत्प्रतिरूपक व्यवहार कहलाता है। जैसे-बनावटी, चांदी जैसे, ताम्र एवं रूप्य से निर्मित सिक्कों से ठगाई करने के लिए क्रय-विक्रय

વિરૂદ્ધ કાર્ય ન કરવું. વિરૂદ્ધ રાજ્યમાં અતિક્રમ કરવુ વિરૂદ્ધ રાજ્યાતિક્રમ કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે મિત્ર રાજ્યનું અપમાન કરનાર અને પર રાષ્ટ્રના માટે ઉપકારક વ્યવહાર, વિરૂદ્ધ રાજ્યાતિક્રમ છે.

(૪) અનાજ વગેરે જોખવાનું લાકડા વગેરેથી બનેલુ માપ-માન કહે-વાય છે. ત્રાજવા આદિને ઉન્માન કહે છે. નાના-ઉન્માનથી બીજાને અનાજ અથવા સુવર્ણ વગેરે આપવું અને મોટા વડે પોતાના માટે લેવું, આ જાતનો વ્યવહાર કૂટતુલાકૂટમાન કહેવાય છે.

(૫) અસલી વસ્તુમાં બનાવટી ચીજ ભેળવી દઈ ને તેને મૂળ વસ્તુના રૂપમાં વેચવી તત્પ્રતિરૂપકવ્યવહાર કહેવાય છે. જેમ કે બનાવટી ચાંદી જેવા તાંબા અને રૂપાથી બનાવવામાં આવેલા સિક્કાઓથી ઠગાઈ કરવા માટે ક્રય-વિક્રય વ્યવહાર કરવો. તાંબાથી બનાવેલા, ચાંદી-સોનાથી બનાવેલા અને તાંબા તથા રૂપાથી બનાવેલા સિક્કા હિરણ્ય જેવા હોય છે. આવા સિક્કા

लोकवंचनार्थं रचिताः भवन्ति, त एव द्रम्माः प्रतिरूपका व्यपदिश्यन्ते, तै खलु प्रतिरूपकैः क्रयविक्रयव्यवहारः प्रतिरूपकव्यवहार उच्यते, (ते तस्करप्रयोगादयः पंच तावत् स्थूल स्तेय विरतिलक्षणतृतीयाणुव्रतस्याऽतिचारा भवन्ति। तस्मात् स्थूलादत्तादानविरतिलक्षणं तृतीयाणुव्रतं तस्कर प्रयोग दि पञ्चाऽतिचार वर्जनपूर्वकं परिपालनीयम् ॥४३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावद् द्वितीयाणुव्रतस्य स्थूलमृषावादविरति लक्षणस्य मृषोपदेशादयः पञ्चातिचाराः प्ररूपिताः, सम्प्रति क्रमप्राप्तस्य स्थूल स्तेयविरतिलक्षण तृतीयाणुव्रतस्य स्तेनाहृतादिकान् पञ्चातिचारान् प्ररूपयितु-

---

व्यवहार करना। तांबे से बने हुए, चांदी से बने हुए एवं तांबे तथा रूप्यसे बने हुए द्रम्म हिरण्य जैसे होते हैं। ऐसे द्रम्म (सिक्के) कोई-कोई पुरुष लोगों को ठगने के लिए बनाते हैं। उन्हीं द्रम्मों को प्रतिरूपक कहते हैं। उन प्रतिरूपकों से क्रय-विक्रय व्यवहार करना प्रतिरूपक कहलाता है।

तस्करप्रयोग आदि ये पांचों स्थूल स्तेय विरमण नामक तीसरे अणुव्रत के अतिचार हैं। अतएव स्थूल अदत्तादान विरति नामक तीसरे अणुव्रत का, तस्करप्रयोग आदि पांच अतिचारों से बचते हुए पालन करना चाहिए ॥४३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले स्थूलमृषावाद विरति नामक दूसरे अणुव्रत के मृषोपदेश आदि पांच अतिचारों का प्ररूपण किया गया, अब क्रमप्राप्त स्थूलस्तेय विरमण नामक तीसरे अणुव्रत के स्तेनाहृत आदि पांच अतिचारों की प्ररूपणा करने के लिए सूत्रकार कहते हैं—

કોઈ-કોઈ પુરૂષ, લોકોને છેતરવા માટે બનાવે છે. તે જ સિક્કાઓને પ્રતિરૂપક (નકલી) કહે છે. તે પ્રતિરૂપકોથી ક્રય-વિક્રય વ્યવહાર કરવો પ્રતિરૂપ-વ્યવહાર કહેવાય છે.

તસ્કરપ્રયોગ આદિ એ પાંચે સ્થૂળસ્તેય વિરમણ નામના ત્રીજા અણુવ્રતના અતિચાર છે. આથી સ્થૂળઅદત્તાદાન વિરતિ નામના ત્રીજા અણુવ્રતના, તસ્કરપ્રયોગ આદિ પાંચ અતિચારોથી બચીને તેમનું પાલન કરવું જોઈએ. ॥૪૩॥

તત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા સ્થૂળમૃષાવાદ વિરતિ નામના બીજા અણુવ્રતના મૃષોપદેશ આદિ પાંચ અતિચારોનું પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું. હવે ક્રમપ્રાપ્ત સ્થૂળસ્તેય વિરમણ નામક ત્રીજા અણુવ્રતના સ્તેનહૃત આદિ પાંચ અતિચારોની પ્રરૂપણા કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—

माह–तइयस्स तेणाहडाइया पंच अइयारा' इति । तृतीयस्य स्थूलादत्तादान विरतिलक्षणाणुव्रतस्य स्तेनाहृतादिकाः आदिना–तस्करप्रयोगविरुद्धराज्यातिक्रम कूटतुला कूटमानप्रतिरूपकव्यवहारश्चेत्येते पञ्चातिचाराः आत्मनो मलीमसताऽऽपादकाः परिणतिविशेषा भवन्ति । तत्र–स्तेनाहृतादयस्तु–स्तेनैस्तस्करैराहृतस्याऽऽनीतस्य सुवर्णवस्त्रादेरादानम्–मूल्यं विनैव, स्वल्पातिस्वल्पमूल्येन वा ग्रहणम् तच्चाऽनेकप्रत्यवायसयुक्तं भवति, तस्मात्–तत्परिहर्तव्यम्-१ तस्करप्रयोगस्तावत् द्रव्यादिकं मुष्णन्तं तस्करं प्रयुङ्क्ते 'त्वं द्रव्यादिकं मुषाण' इत्येवमपहरणक्रियायां प्रेरण–मभ्यनुज्ञानं वा प्रयोगः तस्करप्रयोग उच्यते । यद्वा–परद्रव्यापहरणोपकर-

स्तेनाहृत आदि पाँच अतिचार तीसरे अणुव्रत के हैं। आदि शब्द से तस्करप्रयोग, विरुद्धराज्यातिक्रम, कूटतुला कूटमान और तत्प्रतिरूपक व्यवहार का ग्रहण होता है। इस प्रकार ये पांच अतिचार आत्मा में मलीनता उत्पन्न करने वाले परिणामविशेष हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार है।--

(१) स्तेनों अर्थात् चोरों द्वारा चुराकर लाये हुए स्वर्ण-वस्त्र आदि पदार्थों को मूल्य चुकाये बिना ही अथवा कम से कम मूल्य देकर ले लेना स्तेनाहृतादान अतिचार है। ऐसा करने में अनेक खतरे होते हैं, अतएव इसका परिहार ही करना चाहिए।

(२) चोरी करते हुए चोर को प्रेरणा करना तस्कर प्रयोग हैं, जैसे-तू द्रव्य आदि चुरा ले, इस प्रकार चोरी के लिए प्रेरणा देना या चोरी की आज्ञा देना तस्कर प्रयोग है। अथवा परकीय द्रव्य के

સ્તેન હૃત આદિ પાંચ અતિચાર ત્રીજા અણુવ્રતના છે 'આદિ' શબ્દથી તસ્કરપ્રયોગ, વિરૂદ્ધ રાજ્યાતિક્રમ, કૂટતુલાકૂટમાન અને તત્પ્રતિરૂપક વ્યવહારનું ગ્રહણ થાય છે. આ રીતે આ પાંચ અતિચાર આત્મામાં મલીનતા ઉત્પન્ન કરનાર પરિણામ વિશેષ છે. એમનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે–

(૧) સ્તેનો અર્થાત્ ચોરો દ્વારા ચોરીને લાવેલા સુવર્ણ-વસ્ત્ર આદિ પદાર્થોને કીમત ચૂકવ્યા વગર જ અથવા ઓછામાં ઓછી કીમતમાં લઈ લેવા સ્તેન હૃતાદાન અતિચાર છે આ પ્રમાણે કરવામાં અનેક જોખમો હોય છે આથી તેમનો ત્યાગ કરવામાં જ શ્રેય છે.

(૨) ચોરી કરતા ચોરને પ્રેરણા કરવી તસ્કરપ્રયોગ છે જેમ કે તું દ્રવ્ય આદિ ચોરી લે, આ રીતે ચોરી કરવા માટે પ્રેરણા આપવી અથવા ચોરીની આજ્ઞા આપવી તસ્કરપ્રયોગ છે અથવા પરકીય દ્રવ્યના અપહરણના ઉપકરણ–

णानां कर्तरिकादीनां प्रयोगस्तस्करप्रयोगो बोध्यः। एवंविधमुपकरणं नाणुव्रतिना सम्पादनीयं, नवा-विक्रेतव्यम् २ विरुद्धराज्यातिक्रमश्च-परस्परं विरुद्धयोः राज्ञोः राज्याऽतिक्रमणम्-उल्लङ्घनम् एकतरराज्यवासिनो लोभाद् द्वेषाद्वाऽन्यस्य राज्ये वस्तूनि व्यवहरन्ति अन्यराज्यनिवासिनो वा इतिर राज्यं विनाज्ञां गच्छन्ति इत्येवं विरुद्धराज्यातिक्रमो बोध्यः परस्परं विरुद्धराज्य कृत व्यवस्थोल्लङ्घनात्मकं सर्वमपिदानाऽऽदानादिकं स्तेय मुक्तम् तस्मात्-खलु विरुद्धराज्यातिक्रमो न कर्तव्यः ३ कूट तुला कूटमानकरणम् शेटकादि प्रस्थादिकं काष्ठादिरचितपात्रविशेषो वा मानं तुलादिरुन्मानञ्च न्यूनेनैतेनेतरेभ्यो धान्यसुवर्णादिकं

अपहरण के उपकरण कतरनी आदि के प्रयोग को तस्कर प्रयोग कहते हैं। अणुव्रती को ऐसे उपकरण न बनाना चाहिए और न वेचना चाहिए

(३) परस्पर विरोधी दो राजाओं का राज्यातिक्रम-उल्लंघन करना विरुद्ध राज्यातिक्रम हैं। किसी एक राज्य के निवासी लोभ या द्वेष के कारण दूसरे राज्य में वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते हैं, या अन्य राज्य के निवासी दूसरे राज्य में बिना आज्ञा के चले जाते हैं। इस प्रकार विरुद्ध राज्यातिक्रम समझना चाहिए। तात्पर्य यह कि परस्पर विरोधी राज्यों द्वारा की गई व्यवस्था का उल्लंघन करके दान-आदान आदि करना स्तेय (चोरी) है अतः ऐसा नहीं करना चाहिए।

(४) सेर मन आदि तथा लकडी आदि के बने हुए नाप मान कहलाते हैं और तराजू आदि उन्माद कहलाते हैं। छोटे मान उन्मान से दूसरे को धान्य या स्वर्ण आदि देना और बडे से अपने

કાતરવું વગેરેના પ્રયોગને તસ્કરપ્રયોગ કહે છે અણુવ્રતીએ આવા ઉપકરણ ન તો બનાવવા જોઈએ અથવા ન વેચવા જોઈએ.

(૩) પરસ્પર વિરોધી બે રાજાઓનું રાજ્યાતિક્રમ ઉલ્લંઘન કરવું વિરૂદ્ધ રાજ્યાતિક્રમ છે. કોઈ એક રાજ્યના નિવાસી લોભ અથવા ઇર્ષ્યાના કારણે બીજાના રાજ્યમાં વસ્તુઓનો ક્રય-વિક્રય કરે છે અથવા અન્ય રાજ્યના નિવાસી બીજાના રાજ્યમાં વગર રજાએ ચાલ્યા જાય છે. આ રીતે વિરૂદ્ધ રાજ્યાતિક્રમ સમજવું જોઈએ. તાત્પર્ય એ છે કે પરસ્પર વિરોધી રાજ્યો દ્વારા કરવામાં આવેલી વ્યવસ્થાનો અનાદર કરીને દાન-આદાન વગેરે કરવા સ્તેય (ચોરી) છે આથી આ પ્રમાણે ન કરવું જોઈએ.

(૪) સેર, મણ આદિ તથા લાકડા વગેરેના બનાવેલા માપ, માન કહેવાય છે અને ત્રાજવા વગેરે ઉન્માન કહેવાય છે. નાના માન-ઉન્માનથી

दातव्यम्, एतेनाऽधिकेन चात्मनः स्वार्थग्राह्यमित्येवं प्रकृति कूटप्रयोगरूपमंसे यम्–४ कूटतुलाकूटमानाख्यां वञ्चनादियुक्तः क्रयो–विक्रयश्च न कर्त्तव्यः। प्रतिरूपक व्यवहारः पुनः–सुवर्णरूप्यादीनां द्रव्याणां प्रतिरूपकक्रियात्मको बोध्यः। तद्यथा–सुवर्णस्य प्रतिरूपक्रिया तावत् यादृशं सुवर्णं भवति, तादृशमेवाऽन्य द्रव्य-प्रयोगविशेषाद् वर्णगुरुत्वादिगुणयुक्तं निष्पादयति, एवम्–रूप्यादिकमपि यादृशं भवति–तादृशमेव रङ्गादि द्रव्यं निष्पादयति, एव मन्यदपि–प्रतिरूपकमवगन्तव्यम् यथाऽन्यैरपहृतानां गवादीनां व्याजीकरणानि सशृङ्गाणां गवादीनां शृङ्गाणि–अग्नि पक्वानि=अधोमुखानि प्रगुणानि तिर्यक्वलितानि वा यथेच्छं कर्तुं शक्यन्ते. येना-

लिए लेना, यह कूटतुलाकूटमान कहलाता है। ठगाई की बुद्धि से झूठा तोलना या नापना उचित नहीं है।

(५) सोने–चांदी आदि में उसी के सदृश किसी दूसरी धातु का सम्मिश्रण करके सोने–चांदी के रूप में बेचना अथवा किसी भी वस्तु में मिलावट करके बेचना तत्प्रतिरूपक व्यवहार कहलाता है। सुवर्ण का जैसा वर्ण आदि होता है उसी प्रकार का अन्य द्रव्यों के प्रयोग विशेष से वर्ण, वजन आदि से युक्त द्रव्य तैयार करना सुवर्ण की प्रतिरूपक क्रिया है। इसी प्रकार चांदी बनावटी तैयार कर लेना भी तत्प्रतिरूपकक्रिया कहलाती है। ईसी तरह अन्य वस्तुओं के विषय में समझ लेना चाहिए, यथा–सींग सहित गाय आदि के सींग अग्नि-पक्व, अधोमुख, सीधे या तिर्छे इच्छानुसार किये जा सकते हैं, जिस

બીજાને અનાજ અથવા સુવર્ણ વગેરે આપવા અને પોતાના માટે મોટાનો ઉપયોગ કરવો, આ કૂટતુલાકૂટમાન કહેવાય છે. છેતરવાના આશયથી ખોટું જોખવું અથવા માપવું યોગ્ય નથી.

(૫) સોના–ચાંદી વગેરેમાં તેના જ જેવી અન્ય કોઈ ધાતુનું સમ્મિશ્રણ કરીને સોના–ચાંદીના રૂપમાં વેચાણ કરવું અથવા કોઇ પણ વસ્તુમાં મિશ્રણ કરીને વેચવું તત્પ્રતિરૂપક વ્યવહાર કહેવાય છે. સુવર્ણ જેવો વર્ણ વગેરે હોય છે. તે જ પ્રકારના અન્ય દ્રવ્યોને પ્રયોગ વિશેષથી વર્ણ, વજન આદિથી યુક્ત દ્રવ્ય તૈયાર કરવા સુવર્ણની પ્રતિરૂપક ક્રિયા છે. એવી જ રીતે ચાંદી બનાવટી તૈયાર કરી લેવી એ પણ તત્પ્રતિરૂપકક્રિયા કહેવાય છે. આ પ્રમાણે જ અન્ય વસ્તુઓના વિષયમાં સમજી લેવું જોઇએ–જેમ કે શીંગડા સહિત ગાય આદિના શીંગડાં, અગ્નિપકવ, અધોમુખ, સીધા અથવા વાંકા, ધાર્યા મુજબના કરી શકાય છે કે જેથી તે ગાય વગેરે કંઇ જુદાં જ ભાસે! શીંગડા વગેરે આ પ્રમાણે કરી દેવાથી સરળતાથી તે ગાય ઓળખી શકાતી

ऽन्यत्वमिवगवादयः प्रतिपद्येरन् शृङ्गादीनां तथाकरणे सति न सुखेनाऽवधार्यन्ते, ऽन्यहस्ते वा विक्रीयन्ते इति व्याजः छद्मात्-छद्मरूपायां छद्मरूपत्वापादनरूपं व्याजीकरणं, तद्ऽप्यणुव्रतिना न कर्तव्यम् । तथाचै-ते स्तेनाहृतादयः पञ्चम-स्थूल स्तेयविरमणलक्षणाऽणुव्रतस्याऽतिचारा भवन्ति, तस्मादणुव्रतीना स्तेनाहृता-दयः पञ्चातिचाराः परित्यक्तव्याः । तेषामतीचाराणां परित्यागपूर्वकं स्थूल स्तेय-विरमणरूपं तृतीयाणुव्रतं सम्यक्तया परिपालनीयम् । उक्तञ्चोपासकदशाङ्गे प्रथमे-ऽध्ययने-'थूलगअदिण्णादाणवेरमणस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा-तेनाहडे, तक्करप्पओगे, विरुद्ध रज्जाइक्कम्मे, कूड-तुल्लकूडमाणे तप्पडिरूवगववहारे' इति स्थूलादत्तादानविरमणस्य पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्या, तद्यथा-स्तेनाहृतम्, तस्करप्रयोगः, विरुद्धराज्याति-क्रमः, कूटतुलाकूटमानम्, तत्प्रतिरूपकव्यवहारश्चेति ॥४३॥

से कि वह गाय आदि भिन्न ही मालूम पडने लगे । सींग आदि ऐसे कर देने पर सरलता से वह पहचानी नहीं जा सकती और दूसरे को बेची जा सकती हैं । छद्मरूपता उत्पन्न करदेना व्याजीकरण कहलाता है अणुव्रती को ऐसा नहीं करना चाहिए ।

इस प्रकार स्तेनाहृत आदि पांच स्थूलस्तेय विरमण अणुव्रत के अतिचार हैं । अणुव्रती को इन पांचों अतिचारों का परित्याग कर देना चाहिए । इन अतिचारों का परित्याग करके स्थूलस्तेय विरमण रूप तीसरे अणुव्रत का समीचीनरूप से पालन करना चाहिए । उपासक-दशांग के प्रथम अध्ययन में कहा है-'स्थूल अदत्तादानविरमण व्रत के पांच अतिचार जानने चाहिए, मगर उनका आचरण नहीं करना चाहिए । वे अतिचार ये हैं-स्तेनाहृत, तस्कर प्रयोग, विरुद्धराज्यातिक्रम कूटतुलाकूटमान, तत्प्रतिरूपकव्यवहार ।४३॥

નથી અને બીજાને વેચી શકાય છે. છદ્મરૂપતા ઉત્પન્ન કરવી વ્યાજીકરણ કહેવાય છે. અણુવ્રતધારીએ આ પ્રમાણે કરવું જોઈએ નહીં.

આવી રીતે સ્તેનાહૃત આદિ પાંચ સ્થૂળસ્તેય વિરમણ અણુવ્રતના અતિ-ચાર છે. અણુવ્રતીએ આ પાંચે અતિચારોને વર્જ્ય ગણવા જોઇએ. આ અતિચારોનો પરિત્યાગ કરીને સ્થૂળસ્તેય વિરમણ રૂપ ત્રીજા અણુવ્રતનું સમીચીન રૂપથી પાલન કરવું જોઈએ. ઉપાસક દશાંગના પ્રથમ અધ્યયનમાં કહ્યું છે-'સ્થૂળ અદત્તાદાન વિરમણ વ્રતના પાંચ અતિચાર જાણવા જોગ છે પરન્તુ આચરવા યોગ્ય નથી. આ અતિચારો આ પ્રમાણે છે-સ્તેનાહૃત, તસ્કરપ્રયોગ વિરૂદ્ધ રાજ્યાતિક્રમ કૂટતુલાકૂટમાન, તત્પ્રતિ રૂપક વ્યવહાર. ॥૪૩॥

मूलम्—चउत्थस्स इत्तरिया परिग्गहियागमणाइया पंच अइयारा ॥४४॥

छाया—'चतुर्थस्येत्वरिका परिगृहीतागमनादिकाः पञ्चातिचाराः ॥४४॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत् क्रमप्राप्तस्य तृतीयाणुव्रतस्य स्थूलस्तेय विरतिलक्षणस्य तस्करप्रयोगादयः पञ्चातिचाराः प्ररूपिताः सम्प्रति क्रमप्राप्तस्यैव चतुर्थस्य स्थूल मैथुनविरमणलक्षणस्याऽणुव्रतस्य इत्वरिका परिगृहीतागमनादिकान् पञ्चातिचारान् प्ररूपयितुमाह—'चउत्थस्स इत्तरियापरिग्गहियागमणाइया पंच अइयारा' इति, चतुर्थस्याणुव्रतस्य स्थूल मैथुनविरमणलक्षणस्य इत्वरिकापरिगृहीतागमनादिकाः पञ्चातिचारा आत्मनो मलीनता सम्पादकाः परिणतिविशेषा अवगन्तव्याः तद्यथा—इत्वरिकापरिगृहीतागमनम् १ अपरि-

'चउत्थस्स इत्तरिया परिग्गहिया' ॥४४॥

सूत्रार्थ—इत्वरिका परिगृहीतागमन आदि चतुर्थ अणुव्रत के पांच अतिचार हैं ॥४४।

तत्त्वार्थदीपिका—पहले क्रमप्राप्त तीसरे अणुव्रत स्थूलस्तेय विरमण व्रत के तस्कर प्रयोग आदि पांच अतिचार प्ररूपण किये गये हैं, अब क्रम प्राप्त चोरी स्थूल मैथुन विरमणव्रत के इत्वरिका परिगृहीतागमन आदि पांच अतिचारों का कथन करते हैं—

स्थूलमैथुनविरमण रूप चौथे अणुव्रत के इत्वरिकापरिगृहीतागमन आदि पांच अतिचार जानना चाहिए ये आत्मा में मलीनता उत्पन्न करने वाले परिणामविशेष हैं। वे पांच अतिचार इस प्रकार हैं—(१) इत्वरिका परिगृहीतागमन (२) अपरिगृहीतागमन (३) अनंगक्रीडा

'चउत्थस्स इत्तरिया परिग्गहिया' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—ઈત્વરિકાપરિગૃહીતાગમન આદિ ચતુર્થ અણુવ્રતનાં પાંચ અતિચાર છે. ॥૪૪॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા ક્રમપ્રાપ્ત ત્રીજા અણુવ્રત સ્થૂળસ્તેય વિરમણ વ્રતના તસ્કરપ્રયોગ આદિ પાંચ અતિચાર પ્રરૂપિત કરવામાં આવ્યા હવે ક્રમપ્રાપ્ત ચોથા સ્થૂળ મૈથુન વિરમણ વ્રતના ઈત્વરિકાપરિગૃહીતાગમન આદિ પાંચ અતિચારોનું કથન કરીએ છીએ—

સ્થૂળમૈથુન વિરમણ રૂપ ચોથા અણુવ્રતના ઇત્વરિકા પરિગૃહીતાગમન વિગેરે પાંચ અતિચાર જાણવા જોઈએ. આ અતિચારો આત્મામાં મલીનતા ઉત્પન્ન કરવાવાળા પરિણામ વિશેષ છે. આ પાંચ અતિચાર આ મુજબ છે—(૧) ઈત્વરિકાપરિગૃહીતાગમન (૨) અપરિગૃહીતાગમન (૩) અનંગક્રીડા (૪) પર-

गृहीतागमनम् २ अनङ्गक्रीडा ३ परविवाहकरणम् ४ कामभोगतीव्राभिलाषः ५ इति, तत्र-इत्वरिका इत्वरकालिकी-अल्पवयस्का सावद्यपि परिहीता विवाहेन परिग्रहे नीता तथापि-दारकर्मणि सर्वथाऽसमर्था तस्यां गमनम् इत्वरिकागमनम् १ अपरिगृहीता गमनञ्च-वाचादत्ताऽपि परिग्रहे नीता न, अविवाहितेत्यर्थः तस्यां गमनं वाङ्मात्रेणैव दत्तायां गमनमिति यावत् २ अनङ्गक्रीडा-अङ्गं भोगाङ्गम्, ततोऽन्यत्र क्रीडाऽनङ्गक्रीडोच्यते ३ विवाहः-परिणयनम् परस्य स्वापत्यभिन्नस्य विवाहः तस्य करणं विधानं परविवाहकरणम् ४ कामभोगतीव्राभिलाषश्च-कामभोगेषु

(४) परविवाह करण और (५) कामभोगतीव्राभिलाष। इन पांचों अतिचारों का स्वरूप निम्नलिखित है-

(१) इत्वरिका अर्थात् अल्पवयस्का या छोटी उम्र की। यद्यपि वह परिगृहीता हो चुकी है अर्थात् विवाहित होने से किसी की पत्नी बन चुकी है, तथापि दारकर्म में सर्वथा असमर्थ है। उसके साथ गमन करना इत्वरिकापरिगृहीतागमन है।

(२) जिसका वाग्दान हो चुका है मगर जो विवाहित नहीं है, वह अपरिगृहीता कहलाती है। उसके साथ गमन करना अपगृहीतागमन कहलाता है।

(३) संभोग के अंगों के अतिरिक्त अन्य अंगों से क्रीड़ा करना अनंगक्रीडा अतिचार है।

(४) अपनी सन्तान के अतिरिक्त दूसरे का विवाह करना परविवाहकरण कहलाता है।

વિવાહકરણ અને (૫) કામભોગતીવ્રાભિલાષ આ પાંચે અતિચારોનું સ્વરૂપ નિમ્નલિખિત છે.

(૧) ઇત્વરિકા અર્થાત્ અલ્પવયસ્કા અથવા નાની (કાચી) વયની જો કે તેનું વેવીશાળ થઈ ગયું છે અથવા વિવાહિત થવાથી કોઈની પત્ની થઈ ચૂકી છે તો પણ દારકર્મ માટે સર્વથા અસમર્થ છે. તેની સાથે ગમન કરવું ઈત્વરિકાપરિગૃહીતાગમન છે.

(૨) જે વાગ્દત્તા છે પરન્તુ જે વિવાહિત નથી તે અપરિગૃહીતા કહેવાય છે. તેની સાથે ગમન કરવું અપરિગૃહીતાગમન કહેવાય છે.

(૩) સંભોગના અંગો સિવાયના અન્ય અંગોથી ક્રીડા કરવી અનંગક્રીડા કહેવાય છે.

(૪) પોતાના સન્તાન સિવાયના બીજાઓનો વિવાહ કરાવવો પરવિવાહકરણ કહેવાય છે.

शब्दादिविषयेषु तीव्रोऽत्युत्कटोऽभिलाष इच्छा, अयं हि स्वदारेष्वपि निरन्तर भोगेच्छारूपः कामोत्तेजक वाजीकरणादि प्रयोगेषु पामायाः खर्जनमिव भृशं कामभोगशक्तिसंपादनेन कामभोगेच्छावर्द्धन मित्यर्थः, अयमात्मनो मनोमालिन्य कारकत्वादतिचारः। तथाचैते परविवाहकरणादयः पञ्च स्वदारसन्तोषरूपस्य स्थूलमैथुनविरतिलक्षणस्य चतुर्थाऽणुव्रतस्याऽतिचारा भवन्ति, तस्मात्-चतुर्थाऽणुव्रतिना परविवाहकरणादि पञ्चातिचारवर्जनपूर्वकं स्वदारसन्तोषव्रतं सम्यक्तया परिपालनीयम्। अन्यथा-एतेषां परविवाहकरणादीनां पञ्चातिचाराणां करणे सति चतुर्थाऽणुव्रतस्य भङ्गः प्रसज्येत। उक्तञ्च भगवताऽतिचार-

(५) कामभोग की उत्कट अभिलाषा होना कामभोगतीव्राभिलाष अतिचार है। अपनी पत्नी के साथ अत्यधिक काम सेवन की इच्छा रखने से भी यह अतिचार होता है। कामोत्तेजक वाजीकरण आदि प्रयोग करके, खाज को खुजलाने के जैसे खूब कामभोग की शक्ति सम्पादित करके कामभोग की इच्छा को बढाना भी कामभोगतीव्राभिलाष है। आत्मा और मन में मलीनता उत्पन्न करने के कारण यह अतिचार है।

इस प्रकार ये परविवाहकरण आदि स्वदार सन्तोषरूप स्थूलमैथुनविरति लक्षण वाले चौथे अणुव्रत के अतिचार हैं। इस कारण चतुर्थ अणुव्रत के धारी को परविवाहकरण आदि पांचों अतिचारों का वर्जन करके स्वदारसन्तोषव्रतका सम्यक् प्रकार से पालन करना चाहिए। अन्यथा परविवाहकरण आदि पांच अतिचारों का सेवन करने

(૫) કામભોગની ઉત્કૃષ્ટ અભિલાષા થવી કામભોગતીવ્રાભિલાષ અતિચાર છે. પોતાની પત્ની સાથે વધારે કામસેવનની ઇચ્છા રાખવાથી પણ આ અતિચાર લાગે છે. કામોત્તેજક વાજીકરણ આદિ પ્રયોગ કરીને, ખરજવાને ખજવાળવાની જેમ, કામભોગની ઘણી શક્તિ સંપાદન કરીને કામભોગની ઈચ્છાને વધારવી એ પણ કામભોગતીવ્રાભિલાષ છે. આત્મા તેમજ મનમાં મલીનતા ઉત્પન્ન કરવાના કારણે—આ અતિચાર છે.

આ રીતે આ પરવિવાહકરણ આદિ સ્વદારસંતોષ રૂપ સ્થૂળ મૈથુન વિરતિ લક્ષણવાળા ચોથા અણુવ્રતના અતિચાર છે. આ કારણે ચોથા અણુવ્રતના ધારકે પરવિવાહકરણ આદિ પાંચે અતિચારોનો પરિહાર કરીને સ્વદારસંતોષ વ્રતનું સમ્યક્પ્રકારથી પાલન કરવું જોઈએ. અન્યથા પરવિવાહકરણ આદિ પાંચ અતિચારોનું સેવન કરવાથી ચોથું અણુવ્રત ખંડિત (દૂષિત) થઈ જાય છે.

विषये 'पंच अइयारा जाणेयव्वा-न समायरेयव्वा' इति एते पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः किन्तु-न समाचरितव्याः इति ॥४४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वसूत्रे क्रमप्राप्तस्याणुव्रतस्य स्थूल स्तेय विरमणस्य तस्करप्रयोगादयः पञ्चातिचाराः प्ररूपिताः सम्प्रति-क्रमप्राप्तस्य स्थूल मैथुनविरमणस्य स्वदारसन्तोषात्मकस्य चतुर्थाऽणुव्रतस्य इत्वरिकापरिगृहीतागमनादिकान् पञ्चातिचारान् प्ररूपयितुमाह-'चउत्थस्स इत्तरिया परिग्गहिया गमणाइया पंच अइयारा' चतुर्थस्य स्वदारसन्तोषरूपस्य स्थूल मैथुनविरमणस्य ऽणुव्रतस्य इत्वरिकापरिगृहीतागमनम्१ आदिना-अपरिगृहीतागमनम्२ अनङ्गक्रीडा३ परविवाहकरणम्४ कामभोगतीव्राभिलाषश्च५ इत्येते पञ्चातिचारा आत्मनो मलीनता-

पर चौथा अणुव्रत भंग (दूषित) हो जाता हैं। भगवान् ने ये अतिचार के विषय में कहा है-'अतिचार जानने योग्य हैं मगर आचरण करने योग्य नहीं हैं ॥४४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-पूर्वसूत्र में क्रमप्राप्त तीसरे अणुव्रत स्थूलस्तेयविरमण व्रत के तस्कर प्रयोग आदि पांच अतिचारों का प्ररूपण किया गया, अब क्रमप्राप्त स्थूलमैथुनविरमण जो स्वदारसन्तोषात्मक है, उस चौथे अणुव्रत के इत्वरिका परिगृहीतागमन आदि पांच अतिचारों की प्ररूपणा करते हैं—

चौथे स्वदारसन्तोषरूप स्थूलमैथुनविरमण के इत्वरिका परिगृहीता गमन आदि पांच अतिचार जानना चाहिए।

१ इत्वरिकापरिगृहीतागमन अपरिग्रहीतागमन ३ अनंगक्रीडा ४ परविवाहकरण और ५ कामभोगतीव्राभिलाष ये पांच अतिचार आत्मा

ભગવાને અતિચારના વિષયમાં કહ્યું છે-'અતિચાર જાણવા યોગ્ય જરૂર છે પણ આચરણમાં મૂકવા યોગ્ય નથી' ॥૪૪॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પૂર્વસૂત્રમાં ક્રમપ્રાપ્ત ત્રીજા અણુવ્રત સ્થૂળસ્તેય વિરમણ વ્રતના તસ્કરપ્રયોગ આદિ પાંચ અતિચારોનું પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે ક્રમપ્રાપ્ત, સ્થૂળમૈથુન વિરમણ, જે સ્વદારસંતોષાત્મક છે, તે ચોથા અણુવ્રતના ઇત્વરિકાપરિગૃહીતાગમન આદિ પાંચ અતિચારોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

ચોથા સ્વદારસંતોષ રૂપ સ્થૂળમૈથુન વિરમણ વ્રતના ઇત્વરિકા પરિગૃહીતાગમન આદિ પાંચ અતિચાર જાણવા યોગ્ય છે-(૧) ઇત્વરિકાપરિગૃહીતાગમન (૨) અપરિગૃહીતાગમન (૩) અનંગક્રીડા (૪) પરવિવાહકરણ અને (૫) કામભોગતીવ્રાભિલાષ આ પાંચ અતિચાર આત્માને મલીન કરનારાં દુષ્પરિણામ

कारका दुष्परिणतिविशेषा भवन्ति । तथाचे-त्वरिकापरिगृहीता गमनादयः पञ्चस्थूल-मैथुनविरमणस्य स्वदारसन्तोषात्मकस्याऽतिचारा भवन्ति तत्रेत्वरिका परिगृहीता-गमनञ्च-इत्वरिका इत्वरकालिकी-अल्पवयस्का सा परिगृहीता विवाहे न परिग्रहे नीता, एतादृश्यां गमनम् १ अपरिगृहीता गमनम् अपरिगृहीता वाचादत्ता किन्तु-परिग्रहे नीता न, अविवाहितेत्यर्थः तस्यां गमनं वाग्दत्तायां गमनमिति निष्कर्षः-२ अनङ्गक्रीडा तावत्-अङ्गं भोगाङ्गम् ततोऽन्यत्र क्रीडाऽनङ्गक्रीडा-३ उच्यते तथा विवाहः परिणयनम् परस्य-स्वापत्यभिन्नस्य विवाहस्तस्य करणं परविवाह करणम् ४ कामभोगतीव्राभिलाषश्च-कामभोगेषु शब्दादिविषयेषु तीव्राऽत्युत्कटः,

---

को मलीन करने वाले दुष्परिणाम हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार है-(१) इत्वरिका अर्थात् अल्पवयस्क या छोटी उम्र की स्त्री। वह परि-ग्रहीता अर्थात् विवाहित हो चुकी हो फिर भी उसके साथ गमन करना इत्वरिकापरिग्रहीतागमन कहलाता है।

(२) जिसका वाग्दान हो चुका हो वह अपरिग्रहीता कहलाती है, अर्थात् जिसके साथ सगाई हो चुकी हो किन्तु विवाह न हुआ हो ऐसी स्त्री के साथ गमन करना अपरिगहीतागमन है।

(३) कामभोग के अंगों के सिवाय अन्य अंगों से क्रीडा करना अनंगक्रीडा अतिचार है।

(४) अपनी सन्तान के सिवाय दूसरे का विवाह से संबंध जोडना परविवाहकरण कहलाता है।

(५) शब्द आदि कामभोगों की तीव्र अभिलाषा रखना कामभोग तीवाभिलाष अतिचार है अपनी पत्नी के साथ निरन्तर भोग की

છે: એમનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-

(૧) ઇત્વરિકા અર્થાત્ અલ્પવયસ્ક અથવા કાચી વયવાળી સ્ત્રી તે પરિગૃહીતા અર્થાત્ વિવાહિત થઈ ચૂકી હોય તો પણ તેની સાથે ગમન કરવું ઇત્વરિકાપરિગૃહીતા કહેવાય છે. (૨) જેનું વાગ્દાન થઈ ગયું હોય તે અપરિગૃહીતા કહેવાય છે, અર્થાત્ જેની સાથે સગપણ થઇ ગયું છે પરન્તુ લગ્ન ન થયું હોય એવી સ્ત્રીની સાથે ગમન કરવું અપરિગૃહીતાગમન છે. (૩) કામભોગના અંગો સિવાયના અન્ય અંગોથી ક્રીડા કરવી અનંગક્રીડા અતિચાર છે.

(૪) પોતાના સન્તાન સિવાય બીજાનો વિવાહ સંબંધ જોડવો પરવિવાહકરણ કહેવાય છે.

(૫) શબ્દ આદિ કામભોગોની તીવ્ર અભિલાષા રાખવી કામભોગતીવ્રા-ભિલાષ અતિચાર છે. પોતાની પત્ની સાથે નિરન્તર ભોગ ભોગવવાની ઇચ્છા

अभिलापः ५ अयं हि स्वदारेष्वपि निरन्तरभोगेच्छारूपः, कामोत्तेजक वाजीकरणादि प्रयोगेण पामायाः खर्जनमिव भृशं कामभोगशक्ति संपादनेन कामभोगेच्छावर्द्धन मित्यर्थः। भवदात्मनो मालिन्यकारकत्वादतिचारः। तस्मात्-स्थूल मैथुन विरतिलक्षणाऽणुव्रतशालिना श्रावकेण इत्वरिकापरिगृहीतागमनादि पञ्चातिचार-वर्जनपूर्वकं स्वदारसन्तोषात्मकमणुव्रतं सम्यक्तया परिपालनीयमिति भावः। उक्तञ्चोपासकदशाङ्गे प्रथमाऽध्ययने-'सदारसंतोसिए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा-इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे, अणंगक्रीडा, परविवाहकरणे, कामभोएसु तिव्वाभिलासो' इति स्वदारसन्तोषे पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, तद्यथा-इत्वरिका परिगृहीतागमनम् १ अपरिगृहीतागमनम् २ अनङ्गक्रीडा ३ परविवाहकरणम्-४ कामभोगेषु तीव्राभिलापः-५ इति ॥४४॥

कामना करने से भी अतिचार लगता है। कामोत्तेजक वाजीकरण आदि का प्रयोग करके खाज खुजलाने के समान अतिशय कामभोग शक्ति सम्पादन करना इसी अतिचार के अंतर्गत हैं। आत्मा में मलीनता उत्पन्न करने के कारण यह अतिचार कहलाता है।

स्थूलमैथुनविरमण अणुव्रती श्रावक को इत्वरिकापरिग्रहीतागमन आदि पांचों अतिचारों का वर्जन करते हुए स्वदार सन्तोष नामक अणुव्रत का सम्यक् प्रकार से पालन करना चाहिए। उपासकदशांग के प्रथम अध्ययन में कहा हैं स्वदारसंतोषव्रत के पांच अतिचार ये हैं-इत्वरिकापरिग्रहीता गमन अपरिग्रहीतगमन, अनंगक्रीडा, परविवाहकरण और कामभोगतीव्राभिलाष ॥४४।

રાખવાથી પણ આ અતિચાર લાગે છે. કામોત્તેજક વાજીકરણ આદિનો પ્રયોગ કરીને ખરજવું ખજવાળવાની માફક અતિશય કામભોગની શક્તિ સમ્પાદિત કરવી એ પણ આ અતિચારનો ભાગ ગણાય છે. આત્મામાં મલીનતા ઉત્પન્ન કરવાના કારણે આ અતિચાર કહેવાય છે.

સ્થૂળમૈથુન વિરમણ-અણુવ્રતી શ્રાવકે ઈત્વરિકા પરિગૃહીતાગમન આદિ પાંચે અતિચારોનો ત્યાગ કરીને સ્વદારસંતોષ નામક અણુવ્રતનું સમ્યક્ પ્રકારથી પાલન કરવું જોઈએ ઉપાસકદશાંગના પ્રથમ અધ્યયનમાં કહ્યું છે-'સ્વદારસંતોષ વ્રતના પાંચ અતિચાર જાણવા જોઈએ પરન્તુ તેમનું આચરણ કરવું જોઈએ નહીં'. આ પાંચ અતિચારો આ પ્રમાણે છે-ઈત્વરિકા-પરિગૃહીતાગમન અપરિગૃહીતાગમન, અનંગક્રીડા પરવિવાહકરણ અને કામભોગતીવ્રાભિલાષ- ।।૪૪।।

मूलम्—पंचमस्स खित्तवत्थुप्पमाणाइक्कमाइया पंच अइयारा ।४५।

छाया—'पंचमस्य क्षेत्र वास्तु प्रमाणातिक्रमादिकाः पञ्चातिचाराः ॥४५॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे क्रमप्राप्तस्य चतुर्थाणुव्रतस्य स्थूलमैथुननिवृत्तिरूपस्य स्वदारसन्तोषात्मकस्य इत्वरिकापरिगृहीतागमनादिकाः पञ्चातिचारा प्ररूपिताः, सम्प्रति—क्रमागतस्य पञ्चमाणुव्रतस्य स्थूल परिग्रहविरमणलक्षणस्य क्षेत्र वास्तु प्रमाणातिक्रमादीन् पञ्चातिचारान् प्ररूपयितुमाह—'पंचमस्स' इत्यादि पञ्चमस्य स्थूल परिग्रहविरतिलक्षणाऽणुव्रतस्य क्षेत्र वास्तु प्रमाणातिक्रमादिकाः, क्षेत्र वास्तु प्रमाणातिक्रमः १ आदिना—हिरण्य सुवर्णप्रमाणातिक्रमः २ धनधान्य प्रमाणातिक्रमः ३ द्विपदचतुष्पदप्रमाणातिक्रमः ४ कुप्य प्रमाणातिक्रमश्च ५ इत्येते

'पंचमस्स खित्त' ॥४५॥

सूत्रार्थ—पांचवें परिग्रह परिमाणव्रत के क्षेत्र वास्तु प्रमाणातिक्रम आदि पांच अतिचार हैं ॥४५॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्व सूत्र में क्रम प्राप्त चौथे अणुव्रत स्थूल मैथुन निवृत्ति रूप तथा स्वदार सन्तोषात्मक के इत्वारिका परिगृहीतागमन आदि पांच अतिचारों का प्ररूपण किया गया, अब क्रमागत स्थूलपरिग्रह विरमण रूप पांचवें अणुव्रत के क्षेत्र वास्तु प्रमाणातिक्रम आदि पांच अतिचारों का प्रतिपादन करते हैं—

पांचवें स्थूलपरिग्रह विरति नामक अणुव्रत के पांच अतिचार हैं, यथा—(१) क्षेत्र वास्तु प्रमाणातिक्रम (२) हिरण्य सुवर्ण प्रमाणातिक्रम (३) धन धान्य प्रमाणातिक्रम (४) द्विपदचतुष्पदप्रमाणातिक्रम और (५)

'પંચમસ્સ ખિત્તવત્થુપ્પમાણાઇક્કમાઇયા' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—પાંચમા પરિગ્રહપરિમાણવ્રતના ક્ષેત્રવાસ્તુ પ્રમાણાતિક્રમ આદિ પાંચ અતિચાર છે. ॥૪૫॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં ક્રમપ્રાપ્ત ચોથા અણુવ્રત સ્થૂળમૈથુન નિવૃત્તિ રૂપ તથા સ્વદારસંતોષાત્મક ઇત્વરિકાપરિગૃહીતાગમન આદિ પાંચ અતિચારોનું પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે ક્રમપ્રાપ્ત સ્થૂળપરિગ્રહવિરમણ રૂપ પાંચમાં અણુવ્રતના ક્ષેત્રવાસ્તુપ્રમાણાતિક્રમ આદિ પાંચ અતિચારોનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ—

પાંચમાં સ્થૂળપરિગ્રહવિરતિ નામક અણુવ્રતનાં પાંચ અતિચાર છે જેવા કે—(૧) ક્ષેત્રવાસ્તુપ્રમાણાતિક્રમ (૨) હિરણ્યસુવર્ણ પ્રમાણાતિક્રમ (૩) ધનધાન્યપ્રમાણાતિક્રમ (૪) દ્વિપદચતુષ્પદપ્રમાણાતિક્રમ અને (૫) કુપ્યપ્રમાણા-

पञ्चातिचारा आत्मनो मालिन्यकारका दुष्परिणतिविशेषा भवन्ति। तत्र-क्षेत्रं सस्योत्पत्ति भूमिः १ वास्तु-आवासगृहम् १ हिरण्यरूप्यादि व्यवहारहेतु-भूतरजतादि धातुविशेषः, सुवर्णं-काञ्चनम् २ धनं गोमहिषहस्त्यश्वादि, धान्यं शालिव्रीह्यादि-३ द्विपदो दासीदासादिकम् चतुष्पदो गोमहिष्यादिकः ४ कुप्यम्-ताम्रलोहकांस्यसीसकादि ५ क्षेत्रञ्च वास्तु चेति क्षेत्रवास्तु, धनञ्च धान्यञ्चेति धनधान्यम्, हिरण्यञ्च सुवर्णञ्चेति हिरण्यसुवर्णम्, द्विपदश्च चतुष्पदश्चेति द्विपद-चतुष्पदम्, एतेषाञ्च-क्षेत्रवास्तु धनधान्यहिरण्यसुवर्णद्विपदचतुष्पद कुप्यानाम्

कुप्यप्रमाणातिक्रम। ये अतिचार आत्मा में मलीनता उत्पन्न करने वाले दुष्परिणाम हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार है-(१) क्षेत्र अर्थात् खेत जहां धान्य की उपज होती है, वास्तु अर्थात् निवास करने का मकान अभिप्राय यह है कि खुली भूमि क्षेत्र कहलाती है और आच्छादित भूमि को वास्तु कहते हैं।

(२) चांदी आदि धातुएं, जिनसे लेने-देने का व्यवहार होता है, हिरण्य कहलाती हैं और स्वर्ण का अर्थ कंचन है, जिसे सोना कहते हैं।

(३) गाय, भैंस, हाथी, अश्व आदि धन कहलाता हैं और शालि व्रीहि अर्थात् चावल आदि को धान्य कहते हैं।

(४) दासी दास आदि को द्विपद तथा गाय भैंस आदि को चतुष्पद कहते हैं।

(५) तांबा, लोहा, कांसा, शीशा आदि कुप्य कहलाता है। इन क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, स्वर्ण, धन, धान्य द्विपद, चतुष्पद और कुप्य के प्रमाण का अत्यन्त लोभ के वशीभूत होकर उल्लंघन करना पांचवें

તિક્રમ આ અતિચાર આત્મામાં મલીનતા ઉત્પન્ન કરવાવાળા દુષ્પરિણામ છે. એમનું સ્વરૂપ આ પ્રકારે છે-(૧) ક્ષેત્ર અર્થાત્ ખેતર જ્યાં ધાન્યની ઉપજ થાય છે, વસ્તુ અર્થાત્ નિવાસ કરવાનું મકાન આશય એ છે કે ઉઘાડી જમીન ખેતર કહેવાય છે અને બાંધેલી જમીનને વસ્તુ કહે છે.

(૨) ચાંદી વગેરે ધાતુઓ, જેનાથી લેવડ-દેવડનો વ્યવહાર થાય છે, હિરણ્ય કહેવાય છે અને સુવર્ણનો અર્થ કંચન છે, જેને સોનું કહે છે.

(૩) ગાય, ભેંસ, હાથી, ઘોડા વગેરે ધન કહેવાય છે અને ડાંગર વ્રીહિ અર્થાત્ ચોખા વગેરેને ધાન્ય કહે છે.

(૪) દાસી, દાસ વગેરેને દ્વિપદ તથા ગાય ભેંસ આદિને-ચતુષ્પદ કહે છે.

(૫) ત્રાંબુ, લોઢું, કાંસુ વગેરે કુપ્ય કહેવાય છે. આ ક્ષેત્ર, વાસ્તુ, હિરણ્ય, સુવર્ણ, ધન, ધાન્ય, દ્વિપદ, ચતુષ્પદ અને કુપ્યના પ્રમાણના

अतिलोभवशात् प्रमाणस्याऽतिक्रमः प्रमाणादधिकग्रहणम् एतावानेव मम परिग्रहो वर्तते नाऽतोऽधिकः' इत्येवं परिच्छिन्नात् क्षेत्रवास्तु धनधान्यादि-विषयात्प्रमाणातिरेकेण ग्रहणम् पञ्चमाणुव्रतधारिणा प्रत्याख्यायते, तस्मात्-क्षेत्रवास्तु प्रमाणातिक्रमादयः पञ्च स्थूल परिग्रहपरिमाणव्रतस्याऽतिचारा अव-गन्तव्याः । अतः स्थूल परिग्रहविरमणरूप पञ्चमाणुव्रती श्रावकः प्रमाणातिरिक्त क्षेत्रवास्तु धनधान्यहिरण्यसुवर्णादीनां प्रत्याख्यानपूर्वकं पञ्चमाणुव्रतं सम्यक्तया परिपालयेत् । तत्र धान्यञ्च-व्रीह्यादि अष्टादशविधं बोध्यम् । उदुक्तम् 'गोधूम-शालि यवसर्षप माष मुद्गाः श्यामाक कङ्गुतिल कोद्रव राजमाषाः कीनाश

व्रत के अतिचार हैं। 'मैं इतना ही परिग्रह रक्खूंगा, इससे अधिक नहीं' इस प्रकार मर्यादित क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य आदि संबंधी प्रमाण से अधिक का ग्रहण करना पांचवें अणुव्रतधारी श्रावक के द्वारा त्याग किया जाता है। अतएव उस नियत प्रमाण से अधिक क्षेत्र-वास्तु आदि का ग्रहण करना अतिचार है। इस स्थूलपरिग्रहविरमण नामक पांचवें अणुव्रत का धारक श्रावक प्रमाण से अतिरिक्त क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य हिरण्य और स्वर्ण का परित्याग करता हुआ पांचवें अणु-व्रत का सम्यक् प्रकार से पालन करे।

इसमें व्रीहि आदि धान्य अठारह प्रकार का होता है। कहा भी है- १ गोधूम (गेहूं), २ शालि (चावल), ३ यव (जौ), ४ सर्षप (सरसों) ५ माष (उडद), ६ मुद्ग (मूंग), ७ श्यामाक (सांवा), ८ कंगु, ९ तिल, १० कोद्रव (कोदों), ११ राजमाष, १२ कीनाश, १३ नाल, १४ मठ,

અત્યન્ત લોભને વશીભૂત થઈને ઉલ્લંઘન કરવું પાંચમા વ્રતના અતિચાર છે 'હું આટલો જ પરિગ્રહ રાખીશ, આથી વિશેષ નહીં,' આવી રીતે મર્યાદિત ક્ષેત્ર, વાસ્તુ, ધન, ધાન્ય આદિ સંબંધી પ્રમાણથી વધારે ગ્રહણ કરવું પાંચમાં અણુવ્રતધારી શ્રાવક દ્વારા ત્યાગ કરવામાં આવે છે આથી તે નિયત પ્રમાણથી અધિક ક્ષેત્ર-વાસ્તુ આદિનું ગ્રહણ કરવું અતિચાર છે આ કારણે સ્થૂળપરિગ્રહ વિરમણ નામક પાંચમા અણુવ્રતના ધારક શ્રાવકે પ્રમાણથી વધારે ક્ષેત્ર, વાસ્તુ ધન, ધાન્ય, હિરણ્ય અને સુવર્ણનો પરિત્યાગ કરતો થકો પાંચમા અણુવ્રતનું સમ્યક્ પ્રકારે પાલન કરે.

આમાં વ્રીહિ આદિ ધાન્ય અઢાર પ્રકારના હોય છે કહ્યું પણ છે- (૧) ગોધૂમ (ઘઉં), (૨) શાલિ (ચોખા) (૩) યવ (જવ) (૪) સર્ષવ (સરસવ) (૫) માષ (અડદ) (૬) મુદ્ગ (મગ) (૭) શ્યામાક (સામો (૮) કંગુ (૯) તિલ (તલ) (૧૦) કોદ્રવ (કોદરા) (૧૧) રાજમાષ (૧૨) કીનાશ, (૧૩) નાલ

नाल मठ वैणव आढकीच सिम्बा कुलत्थ चणकादिषु बीजधान्यम्' १॥ इति, तत्र कीनाशो लाङ्गलास्त्रिपुटः, नालं-मकुष्ठा, मठवैणवं-छारि, आढकी-तुवरी, इति। तुवर्यश्चणका माष मुद्गगोधूमशालयः। यवाश्च मिश्रिताः सप्त धान्य माहुर्मनीषिणः ॥१ तिलशालियवाश्च-त्रिधान्य मुच्यते ।४५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावत्-चतुर्थस्य स्थूल मैथुन विरतिलक्षणाऽणुव्रतस्य इत्वरिका परिगृहीता गमनादयः पञ्चातिचाराः प्ररूपिताः सम्प्रति क्रमप्राप्तस्य पंचमस्य स्थूलपरिग्रह विरमणलक्षणाणुव्रतस्य इच्छापरिमाणव्रतरूपस्य प्रमाणातिरेकेण क्षेत्रवास्तु धनधान्यादीनां परिग्रहरूपपंचातिचारान् प्ररूपयितुमाह-'पंचमस्स खित्तवत्थुप्पमाणाइक्कमाइया पंच अइयारा' इति पञ्चमस्य इच्छा परिमाणव्रतरूपस्य स्थूलपरिग्रहविरमणलक्षणस्याऽणुव्रतस्य क्षेत्रवास्तु प्रमाणातिक्रमादिकाः क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रमः १ आदिना हिरण्य-सुवर्ण प्रमाणाति-

---

(१५) वैणव, १६ आढकी, १७ सिम्बा, १८ कुलथ और १९ चना आदि ये अठारह धान्य हैं ॥१॥ इनमें से कीनाश का अर्थ है लांगल त्रिपुट, नाल मकुष्ठ को कहते है, मठ वैणव छारि को कहते हैं और आढकी का अर्थ तुवरी है। 'तुवर, चना, उडद, मूंग, गेहूं, चावल और जौ, इन को बुद्धिमान् लोग सप्त धान्य कहते हैं। तिल, शालि और यव को त्रिधान्य कहते हैं ॥४५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—इससे पहले स्थूल मैथुनविरति नामक चौथे अणुव्रत के इत्वरिका परिगृहीतागमन आदि पांच अतिचार कहे गए हैं। अब क्रमप्राप्त स्थूलपरिग्रह विरमण नामक पांचवें अणुव्रत के, जिसे इच्छापरिमाण भी कहते हैं, पांच अतिचारों का प्ररूपण करते हैं-

---

(१४) मठ (१५) वैणुव (१६) आढकी (१७) सिम्बा (१८) कळथी (चणा) वगेरे ओ अढार धान्य छे. ॥१॥ आमांथी कीनाशनो अर्थ थाय छे लांगल त्रिपुट, नाल मकुष्ठने कहे छे, मठ वैणुव छारिने कहे छे अने आढकीनो अर्थ तुवेर छे. 'तुवर, चणा, अडद, मग, घउं, चोखा अने जव आने बुद्धिमान लोको सप्तधान्य कहे छे. तल, शालि अने जवने त्रिधान्य कहे छे. ॥४५।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—आनी पहेला चोथा स्थूळमैथुन विरति नामक चोथा अणुव्रतना ईत्वरिकापरिगृहीतागमन आदि पांच अतिचार कहेवामां आव्या छे हवे क्रमप्राप्त स्थूळपरिग्रह परिमाणुनामक पांचमां अणुव्रतना जेने ईच्छा परिमाण पण कहे छे. पांच अतिचारोनुं प्ररूपणु करीओ छीओ-

क्रमः २ धनधान्यप्रमाणातिक्रमः ३ दासीदास द्विपद चतुष्पद प्रमाणातिक्रमः ४ कुप्यप्रमाणातिक्रमश्च ५ इत्येते पंचातिचारा आत्मनो मनोमालिन्यकारका दुष्परिणतिविशेषा भवन्ति, तत्र-क्षेत्रवास्त्वादीनां कुप्यान्तानाम्-एतावान् मम परिग्रहो वर्तते न ततोऽधिकः' इत्येवं प्रत्याख्यानं पूर्वं कृत्वा यानि प्रमाणानि परिगृहीतानि तेषामतिक्रमः समुल्लंघनं कृतपूर्वप्रत्याख्यानप्रमाणाधिक्येन परिग्रहणं प्रमाणातिक्रमो व्यपदिश्यते । तत्र क्षेत्रं तावत् सस्योत्पत्ति भूमिः, तच्च क्षेत्रं द्विविधम्, सेतुक्षेत्र-केतुक्षेत्रञ्च । वास्तु-आवासगृहम्, तत् त्रिविधम् खातो

पांचवें इच्छापरिमाण या स्थूलपरिग्रह विरमण व्रत के पांच अतिचार हैं-(१) क्षेत्र वास्तु प्रमाणातिक्रम (२) हिरण्य सुवर्ण प्रमाणातिक्रम (३) धन धान्यप्रमाणातिक्रम (४) दासीदासद्विपद चतुष्पद प्रमाणातिक्रम और कुप्य प्रमाणातिक्रम । ये पांच अतिचार आत्मा में मलीनता उत्पन्न करने वाले दुष्परिणति रूप हैं ।

क्षेत्र-वास्तु से लेकर कुप्य पर्यन्त का 'इतना ही परिग्रह मुझे कल्पता है, इससे अधिक नहीं' इस प्रकार पहले प्रत्याख्यान करके जो भी प्रमाण रक्खा है, उसका उल्लंघन करना अर्थात् पहले स्वीकृत प्रमाण से अधिक उन वस्तुओं को ग्रहण करना प्रमाणातिक्रम कहलाता है । इनमें से क्षेत्र का अर्थ है-धान्य की उत्पत्ति की भूमि अर्थात् खेत । खेत दो प्रकार के होते हैं-सेतु क्षेत्र और केतु क्षेत्र । निवास करने की आच्छादित भूमि वास्तु कहलाती है । उसके तीन भेद हैं-

---

પાંચમા ઇચ્છાપરિમાણ અથવા સ્થૂળપરિગ્રહ વિરમણ વ્રતના પાંચ અતિચાર છે-(૧) ક્ષેત્રવાસ્તુપ્રમાણાતિક્રમ (૨) હિરણ્યસુવર્ણપ્રમણાતિક્રમ (૩) ધનધાન્યપ્રમાણાતિક્રમ (૪) દાસીદાસદ્વિપદ ચતુષ્પદપ્રમાણાતિક્રમ અને (૫) કુપ્યપ્રમાણાતિક્રમ આ પાંચ અતિચાર આત્મામાં મલીનતા ઉત્પન્ન કરનારા દુષ્પરિણતિ રૂપ છે.

ક્ષેત્ર-વાસ્તુથી લઇને કુપ્ય પર્યન્તનો 'આટલો જ પરિગ્રહ મને કલ્પે છે, એથી વિશેષ નહીં' એ રીતે પહેલા પચ્ચકખાણ કરીને જે પણ પ્રમાણ રાખ્યું છે, તેનું ઉલ્લંઘન કરવું અર્થાત્ પહેલા સ્વીકારેલા પ્રમાણથી તે વસ્તુઓ વધુ પ્રમાણમાં ગ્રહણ કરવી પ્રમાણાતિક્રમ કહેવાય છે. આમાંથી ક્ષેત્રનો અર્થ છે-ધાન્યની ઉત્પત્તિની ભૂમિ અર્થાત્ ખેતર, ખેતર બે પ્રકારના હોય છે સેતુક્ષેત્ર અને કેતુક્ષેત્ર નિવાસ કરવા માટેની ઢાંકેલી જમીન વાસ્તુ કહેવાય છે. તેના ત્રણ ભેદ છે-ખાત, ઉચ્છ્રિત તેમજ ઉભયરૂપ જમીન ઉપર

च्छ्रित- तदुभयभेदात्, तत्र- खातं भूमिगृहादि, उच्छ्रितं प्रासाद-हर्म्यादि, खातोच्छ्रितं तु-भूमिगृहस्योपरिरचितप्रासादादि सन्निवेशः तेषां क्षेत्रवास्तूनां प्रमाणं तावत् प्रत्याख्यानकाले प्रतिज्ञातम् इयत्परिमितानि क्षेत्रानि वास्तूनि च मया परिगृह्यन्ते तदतिरिक्तस्य च प्रत्याख्यानं क्रियते आजीवनं आसंवत्सरंवा-आचतुर्मासि वा, इत्येवं रीत्या सङ्कल्पितक्षेत्रवास्तुप्रमाणातिरेकेण कालावध्यभ्यन्तरे-एव क्षेत्रवास्तु ग्रहणं स्थूल परिग्रहविरमणलक्षणाऽणुव्रतस्य इच्छापरिमाणव्रत-रूपस्याऽतिचारो भवति। एवं-धनं गो महिष हस्त्यश्वाऽजाऽऽविकखरोष्ट्र प्रभृति चतुष्पदवर्गः, धान्यं-गोधूम शालियवव्रीहि मुद्ग मापतिलकोद्रव प्रभृति, सर्वमेत दुभयं श्रावकेण पंचमाऽणुव्रतधारिणा परिमितमेव ग्रहीतव्यम्। प्रमाणातिरेकेणं

खात, उच्छ्रित और उभयरूप। तलघर आदि को खात-वास्तु कहते हैं, महल-मकान आदि उच्छ्रित कहलाते हैं और तलघर के ऊपर बने हुए महल-मकान आदि उभयरूप कहलाते हैं। प्रत्याख्यान करते समय क्षेत्र-वास्तु का परिमाण किया कि-'इतनेही क्षेत्र और वास्तु मैं रक्खूंगा, इससे अधिक का प्रत्याख्यान करता हूं जीवनपर्यन्त, एक वर्ष तक अथवा चार मास तक' इस प्रकार प्रतिज्ञात क्षेत्र और वास्तु के प्रमाण से अधिक उसी अवधि में ग्रहण कर लेना स्थूलपरिग्रह विरमण या इच्छापरिमाणरूप व्रत का अतिचार है।

धन का अभिप्राय है गाय, भैंस, हाथी घोडा बकरी, भेड, गधा, ऊंट आदि चौपाये और धान्य का अर्थ है गेहूं, शालि, जौ, व्रीहि, मूंग, उडद, तिल, कोदों आदि। पंचम अणुव्रत के धारक श्रावक को ये दोनों परिमित ही रखना चाहिए। प्रमाण से अधिक धन-

---

આધારિત આદિને ખાત-વાસ્તુ કહે છે, મહેલ મકાન વગેરે ઉચ્છ્રિત કહેવાય છે અને તલઘરની ઉપર બનાવેલા મહેલ-મકાન આદિ ઉભયરૂપ કહેવાય છે. પચ્ચખાણ કરવાના સમયે ક્ષેત્ર-વાસ્તુનું પરિમાણ કર્યું કે-'આટલા ખેતર અને મકાન હું રાખીશ, આનાથી વધારે ન રાખવાના હું પચ્ચખાણ ધારણ કરૂં છું-જીવું ત્યાં સુધી, એક વર્ષ સુધી અથવા ચાર માસ સુધી આ રીતે પચ્ચખાણ કરેલાં ક્ષેત્ર અને વાસ્તુના પ્રમાણથી અધિક, તેજ મર્યાદામાં ગ્રહણ કરવા, સ્થૂળપરિગ્રહ વિરમણ અથવા ઇચ્છાપરિમાણ રૂપ વ્રતના અતિચાર છે.

ધનનો આશય છે, ગાય, ભેંસ, હાથી, ઘોડા, ઘેટાં, બકરાં, ઉંટ, ગધેડા વગેરે ચોપગા અને ધાન્યનો અર્થ છે ઘઉં, ડાંગર, જવ, ચોખા, મગ, અડદ, તલ, કોદરા વગેરે પાંચમા અણુવ્રતના ધારક શ્રાવકે આ બં

धनधान्यग्रहणं स्थूलपरिग्रहविरतिरूपाणुव्रतस्याऽतिचारो भवति। एवं–हिरण्यं रजतादि धातुविशेषः तद्घटित मनेकप्रकारकं पात्रादिकम्, सुवर्णं काञ्चनम्, उपलक्षणत्वात्–इन्द्रनीलमणिमरकतपद्मरागमणिरत्नादिकमपि बोध्यम्, एतेषां खलु हिरण्यसुवर्णादीनां प्रतिज्ञातप्रमाणातिरेकेण ग्रहणेऽपि पञ्चमाणुव्रतेऽतिचारो भवति। एवं–दासीदास प्रभृति द्विपदानां गोमहिष्यादि चतुष्पदानाञ्च पूर्वकृताभिग्रहप्रमाणातिरेकेण ग्रहणेऽपि पञ्चमाणुव्रतेऽतिचारो भवति, एवं–कुप्यानां कांस्यताम्रलोहसीसकत्रपु मृद्भाण्डादीनां पूर्वाभिगृहीत प्रमाणातिरेकेण ग्रहणेऽपि पञ्चमाणुव्रते स्थूलपरिग्रहविरतिलक्षणेऽतिचारो भवति तस्मात्–

धान्य का ग्रहण स्थूलपरिग्रहविरति अणुव्रत का अतिचार है।

हिरण्य रजत आदि धातुओं को कहते हैं। उनसे बने हुए तरह–तरह के पात्र आदि भी हिरण्य ही कहलाते हैं। स्वर्ण का मतलब कांचन है। उपलक्षण से इन्द्रनीलमणि, मरकत मणि, पद्मराग मणि एवं रत्न आदि भी समझ लेना चाहिए। इन हिरण्य, सुवर्ण आदि का जो प्रमाण अंगीकार किया है, उससे अधिक उनका ग्रहण करने से पांचवें अणुव्रत का अतिचार हो जाता है।

इसी प्रकार दासी दास आदि द्विपदों और गाय भैंस आदि चतुष्पदों के पूर्वकृत परिमाण से अधिक उनको ग्रहण करना भी पांचवें अणुव्रत का अतिचार है।

इसी प्रकर कांसा, तांबा, लोहा, शीशा, रांगा, मिट्टी आदि के पात्रों का जो परिमाण किया हो, उससे अधिक ग्रहण करने पर पांचवें व्रत

મર્યાદિત જ રાખવા જોઈએ. પ્રમાણથી અધિક ધન–ધાન્યનું ગ્રહણ સ્થૂળ-પરિગ્રહવિરતિ અણુવ્રતના અતિચાર છે.

હિરણ્ય, રજત આદિ ધાતુઓને કહેવામાં આવે છે. તેનાથી બનેલા જાતજાતના પાત્ર વગેરે પણ હિરણ્ય જ કહેવાય છે. સુવર્ણનો અર્થ કાંચન છે. ઉપલક્ષણથી ઇન્દ્રનીલમણિ, મરકતમણિ, પદ્મરાગમણિ તથા રત્ન વગેરે પણ સમજી લેવા જોઇએ આ હિરણ્ય, સુવર્ણ વગેરેનું જે પ્રમાણ અંગીકાર કરેલ છે, તેથી વધારે તેમનું ગ્રહણ કરવાથી પાંચમા અણુવ્રતના અતિચાર થઇ જાય છે.

આવી જ રીતે દાસી દાસ આદિ દ્વિપદ તથા ગાય ભેંસ આદિ ચોપગાનું પૂર્વકૃત પરિમાણથી અધિક તેમનું ગ્રહણ કરવું એ પણ પાંચમાં અણુવ્રતના અતિચાર છે

એ જ પ્રમાણે કાંસુ, તાંબુ, લોઢું, સીસુ, રંગા, માટી આદીના પાત્રોનું જે પરિમાણ કર્યું હોય, તેનાથી વધુ ગ્રહણ કરવાથી પાચમાં વ્રતના અતિચાર

पञ्चमाणुव्रतधारिणा क्षेत्रवास्तु प्रमाणातिक्रमादयः पञ्चातिचाराः परिहर्तव्याः। अन्यथा-एतेषां क्षेत्रवास्त्वादीनां प्रमाणाधिक्येन ग्रहणे इच्छापरिमाणव्रतस्य परिपालनं न स्यात्। उक्तञ्चो-पासकदशाङ्गे प्रथमाध्ययने-इच्छापरिमाणव्वयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा-धण धन्नप्पमाणाइक्कमे खेत्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे, हिरण्णसुवण्णपरिणामाइक्कमे, दुप्पयचउप्पयपरिमाणाइक्कमे कुवियपमाणाइक्कमे' इति, इच्छापरिमाणव्रतस्य श्रमणोपासकेन पञ्चाऽतिचारा ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः तद्यथा-धनधान्यप्रमाणातिक्रमः, क्षेत्र वास्तु प्रमाणातिक्रमः हिरण्य सुवर्ण परिमाणाऽतिक्रमः, द्विपदचतुष्पदपरिमाणातिक्रमः, कुप्यप्रमाणातिक्रमः इति ॥४५॥

दिसिव्वयस्स उड्ढदिसि परिमाणाइक्कमाइया पंच अइयारा ॥४६॥

छाया--दिग्व्रतस्य ऊर्ध्वदिक् प्रमाणातिक्रमादिकाः पञ्चातिचाराः-॥४६॥

का अतिचार होता है। इस कारण पंचम अणुव्रत के धारक को क्षेत्र वास्तुप्रमाणातिक्रम आदि पांचों अतिचारों का परित्याग करना चाहिए। अन्यथा क्षेत्र-वास्तु आदि को प्रमाण से अधिक ग्रहण करने पर इच्छापरिमाणव्रत का परिपालन नहीं होता। उपासकदशांग के प्रथम अध्ययन में कहा है-श्रमणोपासक को इच्छापरिमाण व्रत के पांच अतिचार जानना चाहिए, किन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे पांच अतिचार इस प्रकार हैं-(१) धन-धान्य प्रमाणातिक्रम (२) क्षेत्र-वास्तु प्रमाणातिक्रम (३) हिरण्य-स्वर्ण प्रमाणातिक्रम (४) द्विपद-चतुष्पद प्रमाणातिक्रम और कुप्यप्रमाणातिक्रम ॥४५॥

'दिसिव्वयस्स उड्ढदिसि' इत्यादि

લાગે છે. આથી પાંચમા અણુવ્રતના ધારકે ક્ષેત્રવાસ્તુપ્રમાણાતિક્રમ આદિ પાંચે અતિચારોનો પરિત્યાગ કરવો જોઈએ અન્યથા ક્ષેત્ર-વાસ્તુ વગેરેને પ્રમાણથી અધિક ગ્રહણ કરવાથી ઈચ્છાપરિમાણવ્રતનું પાલન થશે નહીં. ઉપાસકદશાંગના પ્રથમ અધ્યયનમાં કહેવામાં આવ્યું છે-શ્રમણોપાસકે ઇચ્છાપરિમાણવ્રતના પાંચ અતિચાર જાણવા જોઈએ પરન્તુ તેમનું આચરણ કરવું જોઈએ નહીં. આ પાંચ અતિચાર આ પ્રમાણે છે-(૧) ધન-ધાન્ય પ્રમાણાતિક્રમ (૨) ક્ષેત્ર-વાસ્તુપ્રમાણાતિક્રમ (૩) હિરણ્ય-સ્વર્ણપ્રમાણાતિક્રમ (૪) દ્વિપદ-ચતુષ્પદ-પ્રમાણાતિક્રમ અને કુપ્યપ્રમાણાતિક્રમ. ॥૪૫॥

'દિસિવ્વયસ્સ ઉડ્ઢદિસિ' ઈત્યાદિ

तत्त्वार्थदीपिका–पूर्वं तावत्–स्थूलप्राणातिपातादि विरमणलक्षण पञ्चाणुव्रतानां प्रत्येकं क्रमशः पञ्च–पञ्चातिचाराः प्रतिपादिताः सम्प्रति–दिग्विरत्यादि सप्तशिक्षाव्रतानाँ प्रत्येकं क्रमशः पञ्चपञ्चातिचारान् प्रतिपादयितुं प्रथमं दिग्विरतिलक्षणशिक्षाव्रतस्य पञ्चातिचारान् प्ररूपयति–'दिसिव्वयस्स उड्ढदिसि परिमाणाइक्कमाइया पंच अइयारा–'इति, दिग्व्रतस्य पूर्वोक्तस्य दिग्विरतिलक्षणगुणव्रतरूपशिक्षाव्रतस्य ऊर्ध्वदिक्प्रमाणातिक्रमादिकाः ऊर्ध्वदिक्प्रमाणातिक्रमः–१ आदिना–अधोदिक्प्रमाणातिक्रमः–२ तिर्यग्दिक्प्रमाणातिक्रमः–३ क्षेत्रवृद्धिः–४ स्मृत्यन्तर्धानञ्च ५ इत्येते पञ्चातिचारा आत्मनो मालिन्य कारका दुष्परिणतिविशेषा भवन्ति। तत्र–पूर्वादिदिक्षु गमनादौ–अभिग्रहा·

सूत्रार्थ—दिशाव्रत के ऊर्ध्वदिशा प्रमाणातिक्रम आदि पांच अतिचार जानना चाहिए ॥४६॥

तत्त्वार्थदीपिका—इससे पहले स्थूलप्राणातिपात विरमण आदि पांच अणुव्रतों के क्रम से पांच–पांच अतिचारों का प्रतिपादन किया गया है, अब दिग्व्रत आदि सात शिक्षा व्रतों में से प्रत्येक के पांच–अतिचारों का निरूपण करने के लिए सर्व प्रथम पहले दिग्व्रत नामक शिक्षाव्रत के पांच अतिचारों का कथन करते हैं–

दिग्विरति नामक गुणव्रतरूप शिक्षाव्रत के पांच अतिचार हैं–(१) ऊर्ध्वदिशा–प्रमाणातिक्रम (२) अधोदिशाप्रमाणातिक्रम (३) तिर्यग्दिशाप्रमाणातिक्रम (४) क्षेत्रवृद्धि और (५) स्मृति–अन्तर्धान। ये पांच अतिचार आत्मा को मलीन बनाने वाले दुष्परिणाम हैं।

સૂત્રાર્થ–દિશાવ્રતના ઉર્ધ્વદિશાપ્રમાણાતિક્રમ આદિ પાંચ અતિચાર જાણવા જોઈએ. ॥૪૬॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—આનાથી પહેલા સ્થૂળપ્રાણાતિપાતવિરમણ આદિ પાંચ અણુવ્રતોના ક્રમથી પાંચ–પાંચ અતિચારોનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે, હવે દિગ્વ્રત આદિ સાત ગુણવ્રત તથા શિક્ષાવ્રતોમાંથી પ્રત્યેકના પાંચ–પાંચ અતિચારોનું નિરૂપણ કરવા માટે સર્વપ્રથમ પહેલા દિગ્વ્રત નામક ગુણવ્રતના પાંચ અતિચારો કહીએ છીએ–

દિગ્વિરતિ નામક ગુણવ્રતરૂપ શિક્ષાવ્રતના પાંચ અતિચાર છે–(૧) ઉર્ધ્વદિશા–પ્રમાણાતિક્રમ (૨) અધોદિશાપ્રમાણાતિક્રમ (૩) તિર્યગ્દિશાપ્રમાણાતિક્રમ (૪) ક્ષેત્રવૃદ્ધિ અને (૫) સ્મૃતિ–અન્તર્ધાન આ પાંચ અતિચાર આત્માને મલીન બનાવનારા દુષ્પરિણામ છે.

दिना परिमितस्य दिगवधेरतिलङ्घनं दिगतिक्रम उच्यते, स च त्रिविधः-ऊर्ध्वदिगतिक्रमाऽधोदिगतिक्रम तिर्यग्दिगतिक्रम भेदात्, तत्र-पर्वतादावारोहणात्-ऊर्ध्वदिगतिक्रमो भवति-१ कूपावतरणादेरधोदिगतिक्रमः-२ कन्दरादिप्रवेशादे स्तिर्यग्दिगतिक्रमः-३ एवम्-अभिग्रहादिना परिगृहीतस्य दिगवधे र्लोभादिकरणवशादाधिक्याभिसन्धिः। क्षेत्रवृद्धिः-यथा-मान्यखेटावस्थितेन केनचिदगारिणाऽभिग्रहेण परिमाणं कृतम् यद्-अमुक नगरीलङ्घनं नाहङ्करिष्यामीति, पश्चादन्यस्यां नगर्यां खल्वन्येन भाण्डादिना महान् लाभो भविष्यतीति बुद्धया

इनमें से पूर्व आदि दिशाओं में गमन आदि करने का जो परिणाम किया है, उस परिणाम का अर्थात् मर्यादा का उल्लंघन करना दिगतिक्रम कहलाता है। दिगतिक्रम तीन प्रकार का है-ऊर्ध्वदिगतिक्रम, अधोदिगतिक्रम और तिर्यग्दिगतिक्रम। पर्वत आदि के ऊपर मर्यादा से बाहर चढने पर ऊर्ध्वदिशा के प्रणाम का उल्लंघन होता है। कूप आदि में नीचे उतरने से अधोदिशा के प्रमाण का उल्लंघन होता है। कन्दरा आदि में प्रवेश करने से तिर्छी दिशा के प्रमाण का उल्लंघन होता है। इसी प्रकार अभिग्रह आदि करके दिशा की जो मर्यादा की हो उसको लोभ आदि किसी कारण से बढा लेना क्षेत्रवृद्धि है। जैसे-मान्यखेट-नगर में स्थित किसी श्रावक ने अभिग्रह करके परिमाण कर लिया कि मैं अमुक नगरी का उल्लंघन नहीं करूंगा। बाद में उसे मालूम हुआ कि उस नगरी को उल्लंघन करके आगे जाने पर व्यापार में बहुत

આમાંથી પૂર્વ આદિ દિશાઓમાં ગમન વગેરે કરવાની જે મર્યાદા બાંધી છે, તે મર્યાદા અર્થાત્ પરિમાણનું ઉલ્લંઘન કરવું દિગતિક્રમ કહેવાય છે. દિગતિક્રમ ત્રણ પ્રકારનું છે. ઉર્ધ્વદિગતિક્રમ અધોદિગતિક્રમ અને તિર્યગ્દિગતિક્રમ પર્વત આદિની ઉપર મર્યાદાથી બહાર ચઢવાથી ઉર્ધ્વદિશાના પ્રમાણનું ઉલ્લંઘન થાય છે. કૂવા વગેરેમાં નીચે ઉતરવાથી અધોદિશાના પ્રમાણનું ઉલ્લંઘન થાય છે. ગૂફા આદિમાં પ્રવેશ કરવાથી તિર્છીદિશાના પ્રમાણનું ઉલ્લંઘન થાય છે આવી જ રીતે અભિગ્રહ આદિ કરીને દિશાની જે મર્યાદા બાંધી હોય તેને લોભ વગેરે કોઈ કારણોસર વધારી દેવી ક્ષેત્ર-વૃદ્ધિ છે જેમ કે-માન્યખેટ નગરમાં સ્થિત કોઈ શ્રાવકે અભિગ્રહ કરીને પરિમાણ કરી લીધું કે હું અમુક નગરીનું ઉલ્લંઘન કરીશ નહીં. પાછળથી તેને ખબર પડી કે તે નગરીનું ઉલ્લંઘન કરીને આગળ જવાથી વેપારમાં ઘણો લાભ થશે એવું જાણીને ત્યાં જવાની ઇચ્છા કરવી અને કોઈ અન્ય

तत्र गमनाकाङ्क्षा, गमनञ्च-क्षेत्रवृद्धिरितिभावः, स खलु-एषाऽतिक्रमः प्रमादान्मोहादासङ्गाद्वा भवतीति बोध्यम् । एवम्-अभिगृहीतदिगवधेरननुस्मरणं स्मृत्यन्तराधानमुच्यते इत्येते पञ्च दिग्विरतिव्रतस्याऽतिचारा अवगन्तव्याः । एतांश्च पञ्चातिचारान् वर्जयित्वा दिग्विरतिलक्षणशिक्षाव्रतधारिणाऽगारिणा सम्यक्तया परिपालनीयमिति भावः ॥४६॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वोक्तरीत्या प्राणातिपातादिविरतिरूपपञ्चाणुव्रतानां प्रत्येकं पञ्च पञ्चातिचारान् क्रमशः प्रतिपाद्य सम्प्रति-दिग्विरत्यादि पूर्वोक्त सप्तशिक्षाव्रतानां प्रत्येकं पञ्चपञ्चातीचारान् क्रमशः प्रतिपादयितुं प्रथमं दिग्विरतिरूपगुणव्रतलक्षणशिक्षाव्रतस्य पञ्चातिचारान् प्ररूपयति-'दिसिव्व-

---

लाभ होगा । ऐसा जान कर वहाँ जाने की इच्छा करना एवं । किसी दूसरी दिशा के परिमाण में कमी करके) उस ओर के क्षेत्र को बढा कर जाना क्षेत्रवृद्धि है । यह अतिक्रम प्रमाद से, मोह से या असंग से होता है, ऐसा समझना चाहिए । इसी प्रकार ग्रहण की हुई दिशा -मर्यादा को भूल जाना स्मृत्यन्तर्धान कहलाता है । यह पांच दिशाव्रत के अतिचार हैं । इन पांचों अतिचारों से बच कर दिग्व्रतधारी श्रावक को सम्यक् प्रकार से दिग्व्रत का पालन करना चाहिए ॥४६॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पूर्वोक्त प्रकार से प्राणातिपातविरति आदि पांच अणुव्रतों में से प्रत्येक के पांच-पांच अतिचारों का क्रम से प्रतिपादन किया, अब दिशाव्रत आदि सात शिक्षाव्रतों के पांच-पांच अतिचारों का अनुक्रम से प्रतिपादन करने के लिए सर्वप्रथम दिशाव्रत रूप शिक्षाव्रत के पांच अतिचारों की प्ररूपणा करते हैं—

દિશાની મર્યાદામાં ઘટાડો કરીને તે બાજુના ક્ષેત્રની મર્યાદામાં વધારો કરી તે તરફ જવું ક્ષેત્રવૃદ્ધિ છે. આ અતિક્રમ પ્રમાદથી, મોહથી અથવા અસંગથી થાય છે એવું સમજવું જોઈએ, એવી જ રીતે ગ્રહણ કરેલી દિશા મર્યાદાને ભૂલી જવું સ્મૃત્યન્તર્ધાન કહેવાય છે. આ પાંચ દિશાવ્રતના અતિચાર છે. આ પાંચે અતિચારોથી બચીને દિગ્વ્રતધારી શ્રાવકે સમ્યક્ પ્રકારથી દિગ્વ્રતનું પાલન કરવું જોઈએ. ॥૪૬॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પૂર્વોક્ત પ્રકારથી પ્રાણાતિપાત વિરતિ આદિ પાંચ અણુવ્રતોમાંથી પ્રત્યેકના પાંચ-પાંચ અતિચારોનું ક્રમથી પ્રતિપાદન કર્યું, હવે દિશાવ્રત આદિ સાત શિક્ષાવ્રતોના પાંચ-પાંચ અતિચારોનું અનુક્રમથી પ્રતિપાદન કરવા માટે સર્વપ્રથમ દિશાવ્રત રૂપ શિક્ષાવ્રતના પાંચ અતિચારોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

यस्स' इत्यादि। दिग्व्रतस्य दिग्विरतिरूपस्य प्रथमस्य गुणव्रतस्य द्वादशव्रतेषु च षष्ठस्य व्रतस्य-ऊर्ध्वदिक्प्रमाणातिक्रमः-आदिना-अधोदिक् प्रमाणातिक्रमः-२ तिर्यग्दिक् प्रमाणतिक्रमः-३ क्षेत्रवृद्धिः-४ स्मृत्यन्तर्धानंचे-५ त्येते पञ्चाऽतिचारा आत्मनो मालिन्यताऽऽपादका दुष्परिणतिविशेषा भवन्ति। तत्र-दिक्षु-गमनाय पूर्वमभिग्रहादिना परिगृहीतस्य (नियमितस्य) दिक्परिमाणस्याऽतिक्रमः उल्लङ्घनम्, स च-दिक्प्रमाणातिक्रम स्त्रिविधो भवति ऊर्ध्वदिक् परिमाणातिक्रमः अधोदिक् प्रमाणतिक्रमः-२ तिर्यग्दिक् प्रमाणातिक्रमश्चे-३ ति। तत्रोर्ध्वं पूर्वाभिगृहीतदिक्प्रमाणातिरिक्ततया पर्वत-वृक्षशिखरारोहणादिकम् ऊर्ध्वदिक् प्रमाणातिक्रमः, एवमध स्तावत्-पूर्वाभिगृहीताऽधोदिक् प्रमाणातिरिक्ततया कूप-

बारह व्रतों में छठे, गुणव्रतों में पहले दिग्विरतिस्वरूप दिशाव्रत के ऊर्ध्वदिक्प्रमाणातिक्रम आदि पांच अतिचार हैं। वे इस प्रकार हैं-(१) ऊर्ध्वदिक्प्रमाणातिक्रम (२) अधोदिक्प्रमाणातिक्रम (३) तिर्यक्दिक्‌प्रमाणातिक्रम (४) क्षेत्रवृद्धि और (५) स्मृत्यन्तर्धान। ये पांचों अतिचार आत्मा में मलीनता उत्पन्न करते हैं और एक प्रकार के दुष्परिणाम हैं।

दिशाओं में गमन करने के लिए पहले जो अभिग्रह धारण किया हो अर्थात् जो मर्यादा निश्चित की हो, उसका उल्लंघन करना दिशा-प्रमाणातिक्रम कहलाता है। दिशा प्रमाणातिक्रम तीन प्रकार का है-ऊर्ध्वदिशाप्रमाणातिक्रम, अधोदिशा प्रमाणातिक्रम और तिर्यग्दिशा-प्रमाणातिक्रम। ऊर्ध्वदिशा में, पर्वत, वृक्ष आदि के ऊपर चढने के किये हुए प्रमाण का उल्लंघन करना ऊर्ध्वदिक्प्रमाणातिक्रम कहलाता

બાર વ્રતોમાં છઠાં, ગુણવ્રતમાં પહેલા, દિગ્વિરતિ સ્વરૂપ દિશાવ્રતના ઉર્ધ્વદિક્પ્રમાણાતિક્રમ આદિ પાંચ અતિચાર છે. તે આ પ્રમાણે છે-(૧) ઉર્ધ્વદિક્પ્રમાણાતિક્રમ (૨) અધોદિક્પ્રમાણાતિક્રમ (૩) તિર્યક્દિક્પ્રમાણાતિક્રમ (૪) ક્ષેત્રવૃદ્ધિ અને (૫) સ્મૃત્યન્તર્ધાન આ પાંચે અતિચાર આત્મામાં મલીનતા ઉત્પન્ન કરે છે અને એક પ્રકારના દુષ્પરિણામ છે.

દિશાઓમાં ગમન કરવા માટે પહેલા જે અભિગ્રહ ધારણ કરેલ હોય અર્થાત્ જે મર્યાદા નક્કી કરી હોય, તેનું ઉલ્લંઘન કરવું દિશાપ્રમાણાતિક્રમ કહેવાય છે. દિશાપ્રમાણાતિક્રમ ત્રણ પ્રકારના છે-ઉર્ધ્વદિશાપ્રમાણાતિક્રમ, અધોદિશા પ્રમાણાતિક્રમ અને તિર્યગ્દિશા પ્રમાણાતિક્રમ ઉર્ધ્વદિશામાં પર્વત, વૃક્ષ આદિ ઉપર ચઢવા માટે કરેલી મર્યાદાનું ઉલ્લંઘન કરવું ઉર્ધ્વ-દિક્પ્રમાણાતિક્રમ કહેવાય છે. પૂર્વકૃત અધોદિશાના પ્રમાણથી આગળ કૂવા,

भूमिगृहाद्यवतरणादिकम्-अधोदिक् प्रमाणातिक्रमः। एवं-तिर्यगपि पूर्वाभिगृहीतयोजन प्रमाणातिरिक्ततया योजनाधिक्यगमनं-तिर्यक्-दिक् प्रमाणातिक्रमः। क्षेत्रवृद्धि स्तावत्-एकस्यां दिशि-अभिग्रहादिना योजनशतपरिमाणं क्षेत्रं परिगृहीतम् अपरस्यां दशयोजनक्षेत्रपरिमाणमभिगृहीतम्, अथ कदाचित्तस्यां दिशि प्रयोजने समुपस्थिते सति योजनशतमध्यादन्यानि दशयोजनानि-अपनीय तत्रैवाभे स्वबुद्ध्याऽन्यानि दशयोजनानि प्रक्षिपति-अन्यस्यां स वर्धयति-इत्येवं क्षेत्रवृद्धि रवगन्तव्या-४ स्मृत्यन्तर्धानञ्च-स्मृतेर्भ्रंशरूपम् अन्तर्धानमवसेयम् गृहीताया दिङ्मर्यादया विस्मरण मित्यर्थः ५ इत्येव मूर्ध्वदिक् प्रमाणातिक्रमादयः पञ्चदिग्विरतिलक्षणस्य प्रथमदिग्व्रतस्याऽतिचारा अवगन्तव्याः। तस्मादगारिणा-ऊर्ध्वदिक्

है। पूर्वकृत अधोदिशा के प्रमाण से आगे कूप, भूगृह आदि में उतरना अधोदिक्प्रमाणातिक्रम कहलाता है। इसी प्रकार तिर्छी दिशा में जाने की जो मर्यादा पहले नियत की हो, उसका उल्लंघन करके आगे जाना तिर्यक्दिक्प्रमाणातिक्रम है।

एक दिशा में सौ योजन तक जाने की मर्यादा की हो और दूसरी किसी दिशा में दस योजन तक जाने की मर्यादा की हो, कदाचित् उस दूसरी दिशा में दश योजन से आगे जाने का प्रयोजन आ पडे तो पूर्वोक्त सौ योजन में से दशयोजन कम करके उस दिशा में बढा लेना अर्थात् दूसरी दिशा में दस के बदले बीस योजन तक जाना क्षेत्रवृद्धि अतिचार है।

किये हुए परिमाण को स्मरण न रखना-भूल जाना स्मृत्यन्तर्धान है।

इस प्रकार दिग्विरतिरूप प्रथम दिग्व्रत के पांच अतिचार जानने

વાવ આદિમા ઉતરવું અધોદિક્પ્રમાણાતિક્રમ કહેવાય છે. એવી જ રીતે તિર્છી દિશામાં જવાની જે મર્યાદા પહેલા નક્કી કરી હોય તેનું ઉલ્લંઘન કરીને આગળ વધવું તિર્યક્દિક્પ્રમાણાતિક્રમ છે.

એક દિશામાં સો યોજન સુધી જવાની મર્યાદા કરી હોય અને બીજી કોઈ દિશામાં દશ યોજન સુધી જવાની મર્યાદા કરી હોય-કદાચિત્ તે બીજી દિશામાં દશ યોજનની આગળ જવાનું પ્રયોજન આવી પડે તો પૂર્વોક્ત સો યોજનમાંથી દશ યોજન ઓછી કરી તે દિશામાં વધારો કરવો અર્થાત્ બીજી દિશામાં દશને બદલે વીસ યોજન સુધી જવું ક્ષેત્રવૃદ્ધિ અતિચાર છે.

બાંધેલી મર્યાદાનું સ્મરણ ન રહેવું. ભૂલી જવું સ્મૃત્યન્તર્ધાન છે.

આ રીતે દિગ્વિરતિરૂપ પ્રથમ દિગ્વ્રતના પાંચ અતિચાર જાણવા

प्रमाणातिक्रमादीन् पञ्चातिचारान् वर्जयित्वा दिग्विरतिलक्षणं प्रथमं गुणव्रतं सम्यक्तयाऽनुपालनीयम्-उक्तञ्चोपासकदशाङ्गे प्रथमेऽध्ययने-'दिसिव्वयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा-उड्ढदिसिपरिमाणाइक्कमे, अहोदिसि परिमाणाइक्कमे, तिरियदिसि परिमाणाइक्कमे, खेत्तवुड्ढिसुइ अंतरद्धा'। दिग्व्रतस्य पञ्चातिचारा ज्ञातव्या, न समाचरितव्याः तद्यथा-ऊर्ध्वदिक्परिमाणातिक्रमः-अधोदिक् परिमाणातिक्रमः-तिर्यग्दिक् प्रमाणातिक्रमः-क्षेत्रवृद्धिः-स्मृत्यन्तर्धानम्-इति ॥४६॥

मूलम्-उवभोगपरिभोगपरिमाणस्स सचित्ताहाराइया पंच अइयारा ॥४७॥

छाया-उपभोगपरिभोगपरिमाणस्य सचित्ताहारादिकाः पञ्चातिचाराः ।४७।

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे दिग्व्रतस्य-ऊर्ध्वदिक् प्रमाणातिक्रमादिकाः

चाहिए। गृहस्थ श्रावक को ऊर्ध्वदिक्प्रमाणातिक्रम आदि पांचों अतिचारों से बच कर दिशाविरतिरूप प्रथम गुणव्रत का सम्यक् प्रकार से पालन करना चाहिए। उपासकदशांग के प्रथम अध्ययन में कहा है-दिशाव्रत के पांच अतिचार जानने योग्य हैं, आचरण करने योग्य नहीं हैं। वे इस प्रकार हैं-ऊर्ध्वदिक्प्रमाणातिक्रम अधोदिक्प्रमाणातिक्रम, तिर्यक्दिक्प्रमाणातिक्रम, क्षेत्र वृद्धि और स्मृत्यन्तधीन ॥४६॥

'उवभोगपरिभोग' इत्यादि

उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत के सचित्ताहार आदि पांच अतिचार हैं ॥४७॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्व सूत्र में दिग्व्रत के ऊर्ध्वदिक् प्रमाणातिक्रम

જોઈએ. ગૃહસ્થ શ્રાવકે ઉર્ધ્વદિક્પ્રમાણાતિક્રમ આદિ પાંચે અતિચારેથી બચીને દિશાવિરતિ રૂપ પ્રથમ ગુણવ્રતનું સમ્યક્પ્રકારથી પાલન કરવું જોઈએ. ઉપાસકદશાંગના પ્રથમ અધ્યયનમાં કહ્યું છે-દિશાવ્રતના પાંચ અતિચાર જાણવા ચોગ્ય છે, આચરણ કરવા ચોગ્ય નથી તે આ પ્રમાણે છે-ઉર્ધ્વદિક્પ્રમાણાતિક્રમ, અધોદિક્પ્રમાણાતિક્રમ, તિર્યક્દિક્ પ્રમાણાતિક્રમ ક્ષેત્રવૃદ્ધિ અને સ્મૃત્યન્તર્ધાન. ॥૪૬॥

'उवभोगपरिभोगपरिमाणस्स' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-ઉપભોગપરિભોગ પરિમાણ વ્રતના સચિત્તાહાર આદિ પાંચ અતિચાર છે. ॥૪૭॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં દિગ્વ્રતના ઉર્ધ્વદિક્પ્રમાણાતિક્રમ આદિ

पञ्चातिचाराः प्ररूपिताः सम्प्रति-यथाक्रमप्राप्तस्य द्वादशव्रतापेक्षया सप्तमस्य गुणव्रतापेक्षया द्वितीयस्योपभोगपरिभोगपरिमाणव्रतस्य सचित्ताहारादिकान् पञ्चातिचारान् प्ररूपयितुमाह-'उवभोगपरिभोगपरिमाणस्स सचित्ताहाराइया पंच अइयारा' इति, उपभोगपरिभोगस्य, तत्र-उपभोगः-वस्तुनः सकृद् व्यवहारः-अशनपानस्रक्चन्दनादिभोगरूपः। परिभोगो-वस्तुनः पुनः पुनर्व्यवहारः वस्त्राभूषणादिभोगः तयोः-परिमाणकरणम् उपभोगपरिभोगपरिमाणम् उपभोगपरिभोगो द्विविधः, भोजनतः-कर्मतश्च,-भोजनतः उपभोग परिभोगस्याऽशनपानखादिमस्वादिमवस्त्रालङ्कारादिकस्य परिमाणकरणरूपस्य सप्तमव्रतस्य सचित्ताहारादिकाः-सचित्ताहारः-१ आदिना-सचित्त प्रतिबद्धाहारः २ अपक्वौषधिभक्षणम्-३ दुष्पक्वौषधिभक्षणम्-४ तुच्छौषधिभक्षणम्-५ इत्येते

आदि पांच अतिचार बतलाए गए हैं, अब क्रमप्राप्त, बारह व्रतों की अपेक्षा दूसरे उपभोगपरिमाणव्रत के सचित्ताहार आदि पांच अतिचारों का कथन करते हैं-

उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत के पांच अतिचार हैं। जो वस्तु एक वार भोगी जाय वह उपभोग कहलाती है, जैसे अशन, पान, माला, चन्दन आदि और जो वस्तु बार-बार भोगी जाय उसे परिभोग कहते हैं, जैसे-वस्त्र, आभूषण आदि। इन दोनों का परिमाण करना उपभोगपरिभोगपरिमाण कहलाता है। उपभोगपरिभोग दो प्रकार का है-भोजन से और कर्म से। इनमें से भोजन से जो उपभोग परिभोग है और अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, अलंकार आदि का परिमाण करना जिसका लक्षण है, उस सातवें व्रत के पांच अतिचार हैं-(१) सचित्ताहार (२) सचित्तप्रतिबद्धाहार (३) अपक्वौषधि भक्षण

પાંચ અતિચાર બતાવવામાં આવ્યા છે હવે ક્રમપ્રાપ્ત, બાર વ્રતોની અપેક્ષા સાતમાં અને ગુણવ્રતોની અપેક્ષા બીજા ઉપભોગપરિભોગપરિમાણ વ્રતના સચિત્તાહાર આદિ પાંચ અતિચારોનું કથન કરીએ છીએ-

ઉપભોગપરિભોગ પરિમાણ વ્રતના પાંચ અતિચાર છે જે વસ્તુ એકવાર ભોગવી શકાય તે ઉપભોગ કહેવાય છે જેમ કે અનાજ, પાણી, માળા, ચન્દન વગેરે જે વસ્તુ વારંવાર ભોગવી શકાય તેને પરિભોગ કહે છે. જેમ કે-વસ્ત્ર-આભૂષણ આદિ આ બંનેની મર્યાદા બાંધવી ઉપભોગપરિભોગ પરિમાણ કહેવાય છે. ઉપભોગપરિભોગ બે પ્રકારના છે-ભોજનથી અને કર્મથી-આમાંથી ભોજનથી જે ઉપભોગ પરિભોગ છે અને અશન, પાન, ખાદિમ, સ્વાદિમ, વસ્ત્ર, અલંકાર વગેરેનું પરિમાણ કરવું જેનું લક્ષણ છે તે સાતમાં વ્રતના પાંચ અતિચાર છે-(૧) સચિત્તાહાર (૨) સચિત્તપ્રતિબદ્ધાહાર (૩) અપક્વ

पञ्चातिचारा आत्मनो मालिन्यताऽऽपादका दुष्परिणतिविशेषाः भवन्ति तत्र-सहचित्तेन वर्तते इति सचित्तम् चेतनाद्रव्यम् तस्याऽऽहारः सचित्ताहारः उपभोगपरिमाणव्रतस्य प्रथमोऽतिचारोऽवसेयः। सचित्तेन प्रतिबद्धः-उपश्लिष्टः स्पृष्टोवा य आहारः स सचित्तप्रतिद्धाहारः उपभोगपरिमाणव्रतस्य द्वितीयोऽतिचारो बोध्यः-२ एवम्-अपक्वौषधिभक्षणम्, पाकृतां न प्राप्तो य ओषधिः शालिव्रीह्याद्यन्नजातम् तस्य भक्षणम् अयं तृतीयोऽतिचारः-३ दुष्पक्वौषधिभक्षणम्-दुर्-दुःखेनाऽतिकृष्टेन यः पच्यते स दुष्पक्वः, चिराऽग्नितापपरिपाक साधितः औषधिः माषचणकाऽन्नजातम् अलाबूचवलफली प्रभृतिश्च यत्पाके-पक्वाऽपक्व

(४) दुष्पक्वौषधिभक्षण (५) तुच्छौषधिभक्षण। ये पांच अतिचार आत्मा में मलीनता उत्पन्न करनेवाले दुष्परिणाम हैं। इनका अर्थ इस प्रकार है—

(१) जो चित्त सहित हो वह सचित्त कहलाता है अर्थात् चेतनावान् द्रव्य। उसका आहार करना सचित्ताहार नामक उपभोगपरिभोग परिमाणव्रत का प्रथम अतिचार है।

(२) सचित्त से मिला हुआ या छुआ हुआ आहार सचित्त प्रतिबद्ध आहार कहलाता हैं। यह उपभोगपरिभोगपरिमाण व्रत का दूसरा अतिचार है।

(३) जो शालि व्रीहि आदि अन्न पका न हो, वह अपक्व कहलाता है, उसका भक्षण करना अपक्वौषधिभक्षण नामक तीसरा अतिचार है।

(४) जो बहुत कठिनाई से पके वह दुष्पक्व अर्थात् बहुत देर तक अग्नि जलाने पर पकने वाली वस्तु। जैसे उडद, चना आदि अन्न,

વૌષધિભક્ષણ (૪) દુષ્પકૂવૌષધિભક્ષણ (૫) તુચ્છૌષધિભક્ષણ આ પાંચ અતિચાર આત્મામાં મલીનતા ઉત્પન્ન કરનારા દુષ્પરિણામ છે. એમનો અર્થ આ પ્રમાણે છે—

(૧) જે ચિત્ત સહિત હોય તે સચિત્ત કહેવાય છે અથવા ચેતનાવાન્ દ્રવ્ય તેનો આહાર કરવો સચિત્તાહાર નામક ઉપભોગપરિભોગ પરિમાણ વ્રતનો પ્રથમ અતિચાર છે.

(૨) સચિત્તથી મળેલું અથવા અડકેલો આહાર સચિત્તપ્રતિબદ્ધ આહાર કહેવાય છે. આ ઉપભોગ પરિભોગ પરિમાણ વ્રતનો બીજો અતિચાર છે.

(૩) જે ડાંગર-ચોખા વગેરે અનાજ પાકયું ન હોય, તે અપકવ કહેવાય છે તેનું ભક્ષણ કરવું અપક્વૌષધિભક્ષણ નામક ત્રીજો અતિચાર છે.

(૪) જે ઘણી મુશ્કેલીથી પાકે (રંધાય) તે દુષ્પક્વ અર્થાત્ ઘણા સમય સુધી અગ્નિ બાળવાથી રંધાતી વસ્તુ જેમ કે-અડદ, ચણા વગેરે અનાજ,

विषयिणीशङ्का जायते तादृशस्य दुष्पक्वौषधेर्भक्षणं दुष्पक्वौषधिभक्षणम्, अस्याऽऽरम्भ बाहुल्यान्मिश्रत्वसन्देहाच्चाऽतिचारत्वम् अयं चतुर्थोऽतिचारः ४। तुच्छौषधिभक्षणम्, तुच्छो विराधनाबहुलोऽल्पतृप्तिकारक औषधिविशेषः मुसिम्बी-सीताफलादिस्तस्य भक्षणं तुच्छौषधिभक्षणम् अस्य यथावत्परिपक्वस्यापि भोजनजातस्याऽल्पत्वात्-त्याज्यभागस्य बहुलत्वादतिचारत्वम्। अयं पञ्चमोऽतिचारः ५ कर्मत उपभोगपरिभोगः-पञ्चदश कर्मादानरूपः। पञ्चदश कर्मादानानि-यथा अङ्गारकर्म १ वनकर्म २ शाकटिककर्म ३ भाटी कर्म ४

चौली तथा चंवला आदि की फली, जिसके पकने पर यह शंका उत्पन्न होती है कि यह पकी है अथवा नहीं ? ऐसी दुष्पक्व औषधि का भक्षण करना दुष्पक्वौषधिभक्षण नामक अतिचार है। इसमें आरंभ की अधिकता होती है और मिश्र होने का सन्देह बना रहता है, इस कारण इसे अतिचार गिना गया है। यह चौथा अतिचार है।

(५) जो तुच्छ हो अर्थात् जिसमें विराधना बहुत हो और जिससे तृप्ति अल्प होती हो ऐसी मौसंबी सीताफल आदि को तुच्छौषधि कहते हैं। उसका भक्षण करना तुच्छौषधिभक्षण है। तुच्छौषधि को ठीक प्रकार पका भी लिया जाय तो भी उसमें खाद्य अंश कम होता है और फेंकने योग्य भाग अधिक होता है, अतएव इसे अतिचार कहा है। कर्म से उपभोगपरिभोग पन्द्रह कर्मादान हैं। उनके नाम ये हैं-(१) अंगार कर्म (२) वनकर्म (३) शाकटिककर्म (४) भाटीकर्म (५) स्फोटी-

ગુવાર અથવા ચોળા વગેરેની સીંગ જેના રંધાવાથી એવી શંકા ઉત્પન્ન થાય છે કે આ પાકી હશે કે કેમ ? આવી દુષ્પક્વ ઔષધિનું ભક્ષણ કરવું દુષ્પક્વૌષધિ ભક્ષણ નામક અતિચાર છે. આમા આરંભની અધિકતા હોય છે અને મિશ્ર હોવાની શંકા થતી રહે છે આથી એની અતિચારમાં ગણત્રી કરવામાં આવી છે આ ચોથો અતિચાર છે.

(૫) જે તુચ્છ હોય અર્થાત્ જેમાં વિરાધના ઘણી હોય અને જેનાથી તૃપ્તિ અલ્પ થતી હોય એવા મોસંબી, સીતાફળ આદિને તુચ્છૌષધિ કહે છે. તેનું ભક્ષણ કરવું તે તુચ્છૌષધિ ભક્ષણ છે. તુચ્છૌષધિને સારી પેઠે રાંધી પણ લેવાય તો પણ તેમાં ખાદ્ય અંશ ઓછો હોય છે અને ફેંકી દેવા લાયક ભાગ વધુ હોય છે આથી એને અતિચાર કહેલ છે.

કર્મથી ઉપભોગ પરિભોગ પંદર કર્માદાન છે. તેમના નામ આ પ્રમાણે છે-(૧) અંગારકર્મ (૨) વનકર્મ (૩) શાકટિકર્મ (૪) ભાડીકર્મ

स्फोटीकर्म-५ दन्तवाणिज्यम् ६ लाक्षावाणिज्यम् ७ रसवाणिज्यम् ८ विषवाणिज्यम् ९ केशवाणिज्यम् १० यन्त्रपीडनकर्म ११ निर्लाञ्छनकर्म १२ दवाग्निदापनम् १३ सरोह्रदतडागशोषणम् १४ असतीजनपोषणं १५ चेति, एतानि पञ्चदश कर्मादानपदवाच्यानि, तथाहि-कर्माणि कठोराणि आदीयन्ते गृह्यन्ते, यद्वा-कठोराणां कर्मणा मादानं-ग्रहणं यैर्भवति तानिति व्युत्पत्तेः, एतानि पञ्चदशकर्मादानानि श्रमणोपासका न स्वयं कुर्वन्ति नाऽन्येन कारयन्ति, कुर्वन्तं वाऽन्येनाऽनुमोदन्ते। एते पञ्चदशकर्मतः-उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रतस्याऽतिचारा अवसेयाः एषामग्न्यारम्भवनच्छेदादिना षट्कायोपमर्दनादिसद्भावादनर्थबहुलत्वादतिचारत्वम्। एषां सविस्तरं व्याख्या-उपासकदशाङ्गसूत्रे मत्कृताया मगारधर्मसंजीविनीव्याख्याया मानन्दस्य व्रतस्वीकारप्रकरणे एकपञ्चाशत्तम सूत्रे-विलोकनीयेति ॥४७॥

कर्म (६) दन्तवाणिज्य (७) लाक्षा वाणिज्य (८) रस वाणिज्य (९) विषवाणिज्य (१०) केश वाणिज्य (११) यंत्रपीडनकर्म (१२) निर्लांछनकर्म (१३) दवाग्निदापन (१४) सरोह्रदतडागशोषण और (१५) असतीजनपोषण। यह पन्द्रह कर्मादान कहलाते हैं। जिनसे कठिन कर्मों का आदान-ग्रहण-होता है उन्हें कर्मादान कहते हैं। श्रमणोपासक इन पन्द्रह कर्मादानों को न स्वयं करते हैं, न दूसरे से करवाते हैं और न करने वाले की अनुमोदना करते हैं। कर्मतः उपभोगपरिभोग परिमाण व्रत के ये पन्द्रह अतिचार हैं। इनमें अग्नि का आरंभ बहुत होता है, जंगल कटवाये जाते हैं और षट्काय का विनाश होता है और अनर्थों की बहुलता होती है, इस कारण ये अतिचार कहे गए हैं। इनकी विस्तार युक्त व्याख्या उपासकदशांग सूत्र में मेरी बनाई हुई 'अगार

(५) સ્ફોટીકર્મ (૬) દન્તવાણિજ્ય (૭) લાક્ષાવાણિજ્ય (૮) રસવાણિજ્ય (૯) વિષવાણિજ્ય (૧૦) કેશવાણિજ્ય (૧૧) યંત્રપીડનકર્મ (૧૨) નિર્લાછનકર્મ (૧૩) દવાગ્નિદાપન (૧૪) સરોહ્રદતડાગશોષણ અને (૧૫) અસતીજનપોષણ આ પંદર કર્માદાન કહેવાય છે જેનાથી ભારે કર્મોનું આદાન-ગ્રહણ થાય છે તેમને કર્માદાન કહેવાય છે. શ્રમણોપાસક આ પંદર કર્માદાનોને સ્વયં ગ્રહણ કરતાં નથી, બીજા પાસે તે કરાવતાં નથી અને કરનારાઓને અનુમોદન આપતા નથી કર્મતઃ ઉપભોગ પરિભોગપરિમાણ વ્રતના આ પંદર અતિચાર છે. આમાં અગ્નિનો આરંભ ઘણો થાય છે, જંગલ કપાવાય છે અને છકાયના જીવોની હિંસા થાય છે અને અનર્થોની પરંપરા ઉત્પન્ન થાય છે આથી એમને અતિચાર કહેવામાં આવ્યા છે. એની વિસ્તારયુક્ત વ્યાખ્યા ઉપાસકદશાંગ-

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—एतत्सूत्रस्य तत्त्वार्थनिर्युक्तिवक्तव्यता-एतत्सूत्रस्य तत्त्वार्थदीपिका टीकायामेव गतार्थाऽतस्तत एव विवेचनीया ॥४७॥

मूलम्—अणट्ठादंड वेरमणव्वयस्स कंदप्पकुक्कुइयाइया पंच अइयारा ॥४८॥

छाया—अनर्थदण्डविरमणव्रतस्य कन्दर्प कौकुच्यादिकाः पञ्चातिचाराः ॥४८॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे-उपभोगपरिभोगविरमणलक्षणस्य सप्तमव्रतस्य सचित्ताऽऽहारादिकाः पञ्चातिचाराः प्रतिपादिताः, सम्प्रति-क्रमप्राप्तस्याऽनर्थदण्डविरमणलक्षणस्याऽऽष्टमव्रतस्य पञ्चातिचारान् प्रतिपादयितुमाह 'अणट्ठ-

---

धर्म संजीविनी' नामक टीका में, आनन्द श्रावक के व्रत ग्रहण प्रकरण में इक्यावनवें सूत्र में देख लेना चाहिए ॥४७॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--निर्धारित क्रम के अनुसार इस सूत्र की तत्त्वार्थनिर्युक्ति कहना चाहिए, मगर वह तत्त्वार्थदीपिका टीका में ही अन्तर्गत हो जाती है, अतः उसी से समझ लेना चाहिए ॥४७॥

'अणट्ठादंड वेरमण' इत्यादि

सूत्रार्थ--कन्दर्प कौकुच्य आदि अनर्थदण्डविरमणव्रत के पांच अतिचार हैं ॥४८॥

तत्त्वार्थदीपिका--पूर्वसूत्र में उपभोगपरिभोगविरमण नामक सातवें व्रत के सचित्ताहार आदि पांच अतिचारों का प्रतिपादन किये गये हैं, अब क्रम प्राप्त अनर्थदण्डविरमण नामक आठवें व्रत के पांच अतिचारों का प्रतिपादन करते हैं-

---

સૂત્રમાં, મારા વડે રચિત 'અગારધર્મસંજીવિની' નામની ટીકામાં, આનંદ શ્રાવકના વ્રતગ્રહણ પ્રકરણમાં, એકાવનમાં સૂત્રમાં જોઈ જવા ભલામણ છે. ॥૪૭॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—નિર્ધારિતક્રમ અનુસાર આ સૂત્રની તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ કહેવી જોઈએ, પરન્તુ તે તત્ત્વાર્થદીપિકા ટીકામાં જ સમાવિષ્ટ થઈ જાય છે આથી તેમાં જ સમજી લેવી જોઈએ ॥૪૭॥

'अणत्थदण्ड वेरमणव्वयस्स' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-કન્દર્પકૌકુચ્ય આદિ અનર્થદણ્ડ વિરમણવ્રતના પાંચ અતિચાર છે. ॥૪૮॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-પૂર્વસૂત્રમાં ઉપભોગ પરિભોગ વિરમણ નામક સાતમાં વ્રતના સચિત્તાહાર આદિ પાંચ અતિચાર પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યા છે; હવે ક્રમપ્રાપ્ત અનર્થદણ્ડ વિરમણ નામના આઠમાં વ્રતના પાંચ અતિચારોનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ-

दंडवेरमणव्वयस्स कंदप्प कुक्कुइयाइया पंच अइयारा'-इति, अनर्थदण्ड-विरमणव्रतस्याऽष्टमव्रतस्य तृतीयगुणव्रतरूपस्य कन्दर्पकौकुच्यादिकाः-कन्दर्पः १ कौकुच्यम् २ आदिना-मौखर्यम् ३ संयुक्ताधिकरणम् ४ उपभोगाऽतिरिक्तम् ५ इत्येते पञ्चातिचारा आत्मनो मालिन्याऽऽपादका दुष्परिणतिविशेषा भवन्ति। तत्र-रागोद्दीपकात्कामोद्दीपकः महाहास्ययुक्तोऽसभ्याऽश्लीलवाक्प्रयोगः कन्दर्प इति व्यवह्रियते १ एतदेव वाग् व्यापारं-हसनञ्च मोहनीयकर्मोदयसमावेशाद् दुष्कायकर्मप्रयुक्तं वाग्व्यापारोपसर्जनकायव्यापारप्रधानं कौकुच्य मुच्यते, कुकुचस्य कुत्सितसंकोचनादि क्रियायुक्तस्य भावः कौकुच्यम्, भाण्डचेष्टितवत्-मुख-नासा-भ्रू-नेत्रादीनां वैरूप्यकरणेन हास्योत्पादनमित्यवसेयः २ धाष्टर्य-

अनर्थदण्डविरमणव्रत के पांच अतिचार हैं-(१) कन्दर्प (२) कौकुच्य (३) मौखर्य (४) संयुक्ताधिकरण और (५) उपभोगातिरिक्त। इन अतिचारों का स्वरूप इस प्रकार है-

(१) रागभाव के उद्रेक से कामोद्दीपक, हास्ययुक्त, असभ्य, एवं अश्लील वचनों का प्रयोग करना कन्दर्प कहलाता है।

(२) यही वचनव्यापार और हंसी-मजाक मोहनीयकर्म के उदय के आवेश से जब कायिक कुचेष्टाओं से युक्त होता है, जिसमें वचन का व्यापार गौण और काय का व्यापार प्रधान होता है तब कौकुच्य कहलाता है। कुकुच अर्थात् कुत्सित संकोचन आदि क्रिया से युक्त पुरुष का भाव कौकुच्य कहलाता है। भाण्डों की सी चेष्टाओं के समान मुख, नाक, भौंह, नेत्र आदि को विरूप बना कर दूसरों को हंसाना कौकुच्य का आशय है।

અનર્થદણ્ડ વિરમણ વ્રતના પાંચ અતિચાર છે-(૧) કન્દર્પ (૨) કૌકુચ્ય (૩) મૌખર્ય (૪) સંયુક્તાધિકરણ અને (૫) ઉપભોગાતિરિક્ત આ અતિચારોનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે-

(૧) રાગભાવના ઉદ્રેકથી કામોદ્દીપક, હાસ્યયુક્ત, અસભ્ય અને અશ્લીલ વચનોનો પ્રયોગ કરવો કન્દર્પ કહેવાય છે.

આ જ વચનવ્યાપાર અને ઠઠ્ઠા-મશ્કરી મોહનીય કર્મના ઉદયના આવેશથી જ્યારે શારીરિક કુચેષ્ટાઓથી યુક્ત હોય છે. જેમાં વચનનો વ્યાપાર ગૌણ અને કાયાનો વ્યાપાર મુખ્ય હોય છે ત્યારે કૌકુચ્ય અર્થાત્ કુત્સિત સંકોચન આદિ ક્રિયાથી યુક્ત પુરૂષનો ભાવ કૌકુચ્ય કહેવાય છે. વિદૂષક જેવી ચેષ્ટાઓની માફક મુખ, નાક, ભ્રમર, નેત્ર આદિને કુરૂપ બનાવીને બીજાઓને હસાવવા કૌકુચ્યનો આશય છે.

बहुलम्—अनर्गलं यत्किञ्चित्—अनर्थकम् बहुमलपनं मौखर्य मुच्यते ३ संयुक्ताधिकरणम्—अधिक्रियते सम्बध्यते दुर्गतिष्वात्माऽनेनेत्यधिकरणम्, उदूखल-मुसल-घरट्ट-वासी-कुठारादि शस्त्रम्, संयुक्तश्च तदधिकरणं-संयुक्ताधिकरणम् उदूखलादिकं नैककं किञ्चिदपि कार्यं कर्तुं क्षमम्, अपितु-मुसलादिना परस्पर-संयोगेनैव, एवम्-वास्यादिकमपि दण्डादि संयोगेनैव छेदनादिकार्यं सम्पादयितुं समर्थं भवति नतु-एककमिति-उदूखलादीनां मुसलादिना संयोजनं, संयुक्ताधिकरण मितिभावः। संयुक्ताधिकरणस्य हिंसा हेतुत्वादतिचारत्वमवगन्तव्यम् ४। उपभोगपरिभोगयोग्या दधिकस्याऽर्थस्य ग्रहणम् उपभोग-

(३) धृष्टता से परिपूर्ण, अनर्गल, निरर्थक अंटसंट बडबडाना मौखर्य कहलाता है।

(४) जिसके कारण आत्मा दुर्गतिका अधिकारी बनाया जाय वह अधिकरण कहलाता है अर्थात् ऊखल, मूसल, चक्की, वसूला, कुल्हाडा आदि शस्त्र। इनको जोड कर कार्य करने योग्य बनाना संयुक्ताधिकरण है। ऊखल आदि अकेला-अकेला कोई कार्य नहीं कर सकता, किन्तु मूसल के संयोग से ही करता है इसी प्रकार वसूला आदि भी हत्थे का संयोग होने पर ही अपना कार्य करने में समर्थ होता है, बिना हत्थे के नहीं। इस कारण ऊखल आदि को मूसल आदि से संयुक्त करना संयुक्ताधिकरण समझना चाहिए। संयुक्ताधिकरण हिंसा का हेतु होने से अतिचार है।

(५) उपभोग और परिभोग के योग्य से अधिक वस्तु को ग्रहण

(૩) ધૃષ્ટતાથી પરિપૂર્ણ, અનર્ગલ, નિરર્થક, એલફેલ બબડવું મૌખર્ય કહેવાય છે.

(૪) જેના કારણે આત્માને દુર્ગતિનો અધિકારી બનાવવામાં આવે તે અધિકરણ કહેવાય છે અર્થાત્ ઉખલ, મૂશળ, ઘંટી, વાંસલો, કુહાડો વગેરે શસ્ત્રો એમને ભેગા કરીને કાર્ય કરવા યોગ્ય બનાવવું સંયુક્તાધિકરણ છે. સાંબેલું વગેરે સ્વતંત્રપણે કોઇ કાર્ય કરી શકતું નથી પરન્તુ મૂશળના સંયોગથી જ કરી શકે છે એવી જ રીતે વાંસલો વગેરે પણ હાથાનો સંયોગ હોવાથી જ પોતાનું કાર્ય કરવામાં સમર્થ થાય છે, હાથા વગર નહીં. આ કારણે સાંબેલા આદિને મૂશળ આદિથી સંયુક્ત કરવા સંયુક્તાધિકરણ સમજવા જોઈએ. સંયુક્તાધિકરણ હિંસાનો હેતુ હોવાથી અતિચાર છે.

(૫) ઉપભોગ અને પરિભોગના યોગ્યથી અધિક વસ્તુને ગ્રહણ કરવું

परिभोगाऽतिरिक्त मवसेयम्, तत्र-उपभोगः सकृद्भोगयोग्यमन्नपान स्रक् चन्दनादिकम्, परिभोगं-पुनः पुन र्भोगयोग्यं भवनाऽऽसनादिकं तयोरतिरिक्तम्-आधिक्यम् उपभोगपरिभोगातिरिक्तम्। तथा चैते पञ्च कन्दर्पादयोऽनर्थदण्डविरतिलक्षणतृतीयगुणव्रतस्याऽतिचारा भवन्ति, तस्माद्-व्रतधारिणा कन्दर्पादि परिवर्जनपूर्वकमनर्थदण्डविरतिव्रत मनुपालनीयम् ॥४८॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावत्-क्रमप्राप्तस्य द्वितीयाणुव्रतस्य- उपभोगपरिभोगपरिमाणलक्षणस्य सचित्ताहारादयः पञ्चातिचाराः प्ररूपिताः सम्प्रति= क्रमागतस्याऽनर्थदण्डविरतिलक्षण तृतीयगुणव्रतस्य पञ्चातिचारान् कन्दर्पादीन् प्ररूपयितुमाह-'अणट्ठदंडवेरमणव्वयस्स कन्दप्पकुक्कुइयाइया पंच अइयारा-'इति, पूर्वोक्तस्वरूपस्याऽनर्थ दण्डविरमणव्रतस्य कन्दर्पकौकुच्यादिकाः

करना उपभोगपरिभोगातिरिक्त अतिचार है। एक बार भोगने की वस्तु उपभोग कहलाती है और बार-बार भोगने योग्य वस्तु को परिभोग कहते हैं। इनकी अधिकता उपभोगपरिभोगातिरिक्त अतिचार है।

ये पांचो कन्दर्प आदि अनर्थदण्डविरमणव्रत के अतिचार हैं। अतएव व्रतधारी को कन्दर्प आदि से बच कर अनर्थदंडविरमणव्रत का पालन करना चाहिए ॥४८॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पहले क्रमप्राप्त द्वितीय गुणव्रत-उपभोगपरिभोग परिमाण के सचित्ताहार आदि पांच अतिचारों का प्ररूपण किया गया, अब क्रमागत अनर्थदण्डविरमणव्रत नामक तीसरे गुणव्रत के पांच अतिचारों का कथन करते हैं-

---

ઉપભોગ પરિભોગાતિરિકત અતિચાર છે. એકવાર ભોગવવાની વસ્તુ ઉપભોગ કહેવાય છે અને વારંવાર ભોગવવા યોગ્ય વસ્તુને પરિભોગ કહે છે. એમની વિપૂલતા ઉપભોગપરિભોગાતિરિકત અતિચાર છે.

આ પાંચે કન્દર્પ આદિ અનર્થદણ્ડ વિરમણ વ્રતના અતિચાર છે આથી વ્રતધારીએ કન્દર્પ આદિથી બચીને અનર્થદંડ વિરમણવ્રતનું પાલન કરવું જોઈએ. ॥૪૮॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુકિત—પહેલા ક્રમપ્રાપ્ત દ્વિતીય ગુણવ્રત-ઉપભોગપરિભોગ પરિમાણના સચિત્તાહાર, આદિ પાચ અતિચારોનું પ્રરૂપણ કરવામા આવ્યું, હવે ક્રમાગત અનર્થદણ્ડ વિરમણ વ્રત નામક ત્રીજા ગુણવ્રતના પાંચ અતિચારોનું કથન કરીએ છીએ-

અનર્થદંડ વિરમણ વ્રતના પાંચ અતિચાર છે-(૧) કન્દર્પ (૨) કૌકુચ્ય

—कन्दर्पः १ कौकुच्यम् २ आदिना—मौखर्यम् ३ संयुक्ताधिकरणम् ४ उपभोगपरिभोगातिरिक्तम् ५ इत्येते पञ्चातिचारा आत्मनो मालिन्याऽऽपादका दुष्परिणतिविशेषा भवन्ति। तत्र कन्दर्पः—कामस्तद्धेतुभूतोऽश्लील वाक्प्रयोगोऽपि कन्दर्पपदेनो—पचर्यते, तथा च—महासमिश्रोऽसभ्याऽशिष्टवाक्प्रयोगः कन्दर्पः१ भ्रू—नेत्रोष्ठ—वदनादिविकारपूर्वकः परिहासादिजनको भाण्डचारणस्येव कायिको व्यापारः। कौकुच्यम्—कुत्सितनासिका—नयनोष्ठादि संकोचनादि युक्तस्य कुक्कुचस्य भावः कौकुच्यमिति व्युत्पत्तेः, तच्च—कौकुच्य मनेकविधम्भवति भाण्डचारणादिविडम्बन क्रियासदृशक्रियारूपत्वात्। यद्वा—कुत्सितः कुचः-भ्रू-नेत्र—नासिकादिसंकोचनादि क्रियायुक्तः कुकुचस्तस्य भावः कौकुच्य मित्येद-

---

अनर्थदंडविरमणव्रत के पांच अतिचार हैं—(१) कन्दर्प (२) कौकुच्य (३) मौखर्य (४) संयुक्ताधिकरण और (५) उपभोगपरिभोगातिरिक्त। ये पांचों अतिचार आत्मा में मलीनता उत्पन्न करने वाले दुष्परिणाम-रूप हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार है—

(१) कन्दर्प अर्थात् काम। जो वचन कन्दर्प का कारण होता है वह भी कन्दर्प कहलाता है। तात्पर्य यह है कि हंसी—मजाक से युक्त असभ्य और अशिष्ट वचन प्रयोग करना कन्दर्प नामक अतिचार है।

(२) भौंह, नेत्र होठ और मुख आदि को विकृत करके, दूसरों को हंसाने के लिए भांड के समान जो शारीरिक चेष्टा की जाती है, उसे कौकुच्य कहते हैं। कौकुच्य कई प्रकार से किया जा सकता है, क्यों कि वह भांडों एवं चारणों की विडम्बना—क्रिया के समान होता है। अथवा कुत्सित कुच अर्थात् भौंह, नेत्र, नासिका आदि के संकोचन की क्रिया से युक्त, उसका भाव कौकुच्य कहलाता है।

---

(૩) મૌખર્ય (૪) સંયુક્તાધિકરણ અને (૫) ઉપભોગપરિભોગાતિરિક્ત આ પાંચે અતિચાર આત્મામાં મલીનતા ઉત્પન્ન કરનારા દુષ્પરિણામરૂપ છે. એમનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે—

(૧) કન્દર્પ અર્થાત્ કામ જે વચન કન્દર્પનું કારણ હોય છે તે પણ કન્દર્પ કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે ઠઠ્ઠા—મશ્કરીથી યુક્ત અસભ્ય અને અશિષ્ટ વચનપ્રયોગ કરવા કન્દર્પ અતિચાર છે. (૨) ભ્રમર, નેત્ર, હોઠ, અને મુખ વગેરેને વિકૃત કરીને, બીજાને હસાવવા કાજે વિદૂષકની માફક જે જે શારીરિક ચેષ્ટા કરવામાં આવે છે તેને કૌકુચ્ય કહે છે. કૌકુચ્ય ઘણી રીતે કરી શકાય છે કારણ કે તે ભાટ અને ચારણોની વિડમ્બના—ક્રિયાની જેવું હોય છે અન્યથા કુત્સિત કુચ અર્થાત્ ભ્રમર, નેત્ર, નાસિકા, આદિના સંકોચનની ક્રિયાથી યુક્ત, તેનો ભાવ કૌકુચ્ય કહેવાય છે. (૩) મુખરનો

धेयम् २ मौखर्यं तावद् मुखरस्य भावो मौखर्यम्-चापलयम्-धाष्टर्य बहुलम सभ्याऽनर्गलाऽसम्बद्ध बहुप्रलापित्वरूप मवगन्तव्यम् ३ संयुक्ताधिकरणं तावत्-प्रयोजनमनालोच्याऽधिकरणस्य संयोजनम्, मुसल-दात्र-शिला पुत्रक शस्त्र गोधूम यन्त्रशिलादीनाम् उदूखलदण्डादिना संयोजनमवसेयम् ४ एवम्-उपभोगपरिभोगाऽतिरिक्तत्वं वक्ष्यमाणस्वरूपं बोध्यम्, तत्रो-पभोगोऽशन-पान-स्रक्चन्दन-कुङ्कुम-कस्तूरिकाविलेपन प्रभृतिरूपः-परिभोगश्च-वस्त्राऽऽभरणादि-लक्षणः तस्माद्-अतिरिक्तम् उपभोगपरिभोगयोग्यवस्तूनां नियमितपरिमाणा दाधिक्येन ग्रहणम् ५। तथा च-कन्दर्पः १ कौकुच्यम् २ मौखर्यम् ३ संयुक्ताधि-

---

(३) मुखर का भाव मौखर्य कहलाता है। चपलता, धृष्टता से युक्त असभ्य, अनर्गल और असम्बद्ध प्रलाप आदि इसके रूप हैं।

(४) प्रयोजन का विचार किये विना ही अधिकरण का संयोजन करना अर्थात् मूसल, दांतला, लोढा, शस्त्र, चक्की, शिला, ऊखल, डंडा (हत्था) आदि के द्वारा संयोजन करना इन्हें परस्पर यथा योग्य संयुक्त करके काम करने योग्य बनाना।

(५) जो वस्तु एक बार काम में लाई जाय वह उपभोग कहलाती है, जैसे-अशन, पान, माला, चन्दन, कुंकुम, कस्तूरी आदि। जो पदार्थ पुनः-पुनः काम में लाये जाते हैं, उन वस्त्र, आभूषण आदि को परिभोग कहते हैं। इन उपभोग-परिभोग के योग्य वस्तुओं को निरर्थक इकट्ठा कर रखना उपभोगपरिभोगातिरिक्तत्व अतिचार है।

इस प्रकार (१) कन्दर्प (२) कौकुच्य (३) मौखर्य (४) संयुक्ताधि-

ભાવ મૌખર્ય કહેવાય છે. ચપલતા, ધૃષ્ટતાથી યુક્ત અસભ્ય, અનર્ગલ અને અસમ્બદ્ધ પ્રલાપ આદિ એના રૂપ છે. (૪) પ્રયોજનનો વિચાર કર્યા વગર જ અધિકરણનું સંયોજન કરવું અર્થાત્ મૂસળ, દાતરડું, લોઢું, શસ્ત્ર, ઘંટી, શિલા, ઉખલ, ડાડો (હાથો) આદિ દ્વારા સંયોજન કરવું-આમને પરસ્પર યથા-યોગ્ય સંયુક્ત કરીને કામ કરવા યોગ્ય બનાવવું (૫) જે વસ્તુ એકવાર કામમાં લગાડવામાં આવે તે ઉપભોગ કહેવાય છે જેમ કે-અશન, પાન, માળા, ચન્દન કુંકુમ, કસ્તુરી વગેરે જે પદાર્થ ફરી-ફરી કામમાં લગાડાય તે વસ્ત્ર, આભૂ-ષણ આદિને પરિભોગ કહે છે. આ ઉપભોગ પરિભોગને યોગ્ય વસ્તુઓને અર્થ વગર વધારે ભેગા કરી રાખવું ઉપભોગપરિભોગાતિરિક્ત અતિચાર છે.

આવી રીતે (૧) કન્દર્પ (૨) કૌકુચ્ય (૩) મૌખર્ય (૪) સંયુક્તાધિકરણ

करणम् ४ उपभोगपरिभोगातिरिक्तं ५ चेत्येते पञ्चानर्थदण्डविरतिव्रतलक्षण तृतीयगुणव्रतस्याऽतिचारा भवन्ति। तत्र कामानुषङ्गिरागयुक्ताऽसभ्याऽश्लीलवाक्-प्रयोगः कन्दर्पः १ अस्पष्टवर्णश्रवणरूपहास्यं च कौकुच्यम् एतदुभयमेव मोहनीय कर्मोदयाद् दुष्टकायव्यापारप्रधानं वाग्व्यापारोपसर्जनम् २ पूर्वापरसम्बन्धरहिता नर्गलबहुलापित्वं मौखर्यम् स्वार्थसाधनं विनैव यत्किञ्चिदसम्बद्ध बहु प्रजल्पन-रूपम् ३। संयुक्ताऽधिकरणन्तु—अधिक्रियते सम्बध्यते नरकादिदुर्गतिषु आत्माऽनेने त्यधिकरणम् उदूखल मुसलघरट्टवासी कुठारादिशस्त्रम्, संयुक्तञ्च तदधिकरणं संयुक्ताधिकरणम्, उदूखलादिकं नैकर्क किमपि कार्यं कर्तुं समर्थं भवति—अपितु—

करण और (५) उपभोगपरिभोगातिरिक्त, ये पांच अनर्थदंडविरति नामक तीसरे गुणव्रत के अतिचार हैं।

काम वासना से प्रेरित, रागयुक्त, असभ्य और अश्लील वचनों का प्रयोग करना कन्दर्प नामक अतिचार है। अस्पष्ट वर्ण जिसमें सुने जाएं हास्य कौकुच्य कहलाता है। यह दोनों मोहनीय कर्म के उदय से होते हैं। इनमें काय के दुष्ट व्यापार की प्रधानता होती है और वचनप्रयोग गौण होता है। पूर्वापर संबंध से रहित अनर्गल बकवास मौखर्य कहलाता है। तात्पर्य यह है कि कोई प्रयोजन न होने पर भी अंटसंट प्रलाप करना—बहुत बोलना मौखर्य है। जिनके कारण आत्मा नरक आदि दुर्गति का अधिकारी बनता है उसे अधिकरण कहते हैं। ऊखल, मूसल, चक्की, वसूला, कुल्हाडा, आदि शस्त्र अधिकरण हैं। ऊखल आदि अकेला कुछ भी कार्य करने में समर्थ नहीं होता, बल्कि

અને (૫) ઉપભોગપરિભોગાતિરિક્ત, આ પાંચ અનર્થદંડ વિરતિ નામક ત્રીજા ગુણવ્રતનાં અતિચાર છે.

કામવાસનાથી પ્રેરિત, રાગયુકત, અસભ્ય અને અશ્લીલ વચનોનો પ્રયોગ કરવો કન્દર્પ નામક અતિચાર છે. અસ્પષ્ટ વર્ણ જેમાં સંભળાય એવા હાસ્ય કૌકુચ્ય કહેવાય છે. આ બંને મોહનીય કર્મના ઉદયથી થાય છે. તેમાં કામના દુષ્ટ વ્યાપારની પ્રધાનતા હોય છે અને વચનપ્રયોગ ગૌણ હોય છે. પૂર્વાપર સંબંધથી રહિત અનર્ગલ બકવાટ મૌખર્ય કહેવાય છે તાત્પર્ય એ છે કે કોઇ પ્રયોજન ન હોવા છતાં પણ ગડબડગોટાળા ભર્યો પ્રલાપ કરવો—વધારે પડતું બોલવું મૌખર્ય છે. જેના કારણે આત્મા નરક આદિ દુર્ગતિનો અધિકારી બને છે તેને અધિકરણ કહે છે ઉખલ, મૂશલ, ઘંટિ, વાંસલો, કુહાડો વિગેરે શસ્ત્ર અધિકરણ છે. ઉખલ વગેરે એકલું કોઇ પણ કાર્ય કરવા માટે સમર્થ હોતું નથી પરન્તુ મૂશળ આદિની સાથે યથોચિત સંયોગ

मुसलादिना मिथः संयोगेनैव एवं-वास्यादिकमपि वंशदण्डादिसंयोगेनैव छेदनादि कार्यं सम्पादयति-नतु-एककम्, अतएव-उलूखलादीनां मुसलादिना संयोजनं संयुक्ताधिकरणमुच्यते ४ उपभोगपरिभोगातिरिक्तत्वञ्च-अशनपानादिकम्, अलङ्कारवस्त्रादिकञ्च यावदुपयुज्यते स्वात्मन स्तावत एव ग्रहणमुपभोगपरिभोगपरिमाणं भवति तदपेक्षयाऽधिकस्य ग्रहणम् उपभोगपरिभोगातिरिक्तत्वमवसेयम्। तस्मात्-अनर्थदण्डविरतिव्रतधारिणाऽगारिणा कन्दर्पादि पञ्चातिचारवर्जनपूर्वकं सम्यक्तया तृतीयगुणव्रतरूपमनर्थदण्डविरतिव्रतमनुपालनीयम्। उक्तञ्चोपासकदशाङ्गे प्रथमाध्ययने-'अणट्ठादंड वेरमणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा तं जहा-कंदप्पे कुक्कुइए-मोहरिए-

---

मूसल आदि के साथ यथोचित संयोग होने पर ही वह अपना कार्य कर सकता है। इसी प्रकार वसूला आदि भी दंड (हत्थे) के संयोग से ही छेदन आदि क्रिया कर सकता है, अकेला नहीं। अतएव ऊखल आदि का मूसल आदि के साथ संयोग करना संयुक्ताधिकरण कहलाता है। अशन पान आदि उपभोग और अलंकार वस्त्र आदि परिभोग कहलाते हैं। जितने उपभोगपरिभोग के योग्य पदार्थों की अपने लिए आवश्यकता हो, उससे अधिक का ग्रहण करना उपभोगपरिभोगातिरिक्तत्व अतिचार समझना चाहिए।

अनर्थदण्डविरति नामक व्रत के धारक श्रावक को कन्दर्प आदि पांचों अतिचारों से बचते हुए सम्यक् प्रकार से तीसरे गुणव्रतरूप अनर्थदण्डविरतिव्रत का पालन करना चाहिए। उपासकदशांग के प्रथम अध्ययन में कहा है-'श्रमणोपासक को अनर्थदंडविरमणव्रत के पांच

થવાથી જ તે પોતાનું કાર્ય કરી શકે છે. એવી જ રીતે વાંસલો વગેરે પણ દંડ (હાથો)ના સંયોગથી જ છેદન આદિ ક્રિયા કરી શકે છે, એકલું નહીં. આથી ઉખલ વગેરેનો મૂશળ આદિની સાથે સંયોગ કરવો સંયુકતાધિકરણ કહેવાય છે. અનાજ, પાણી આદિ ઉપભોગ અને અલંકાર વસ્ત્ર આદિ પરિભોગ કહેવાય છે. જેટલા ઉપભોગ પરિભોગને યોગ્ય પદાર્થોની પોતાને માટે જરૂરીયાત હોય, તેથી અધિકનું ગ્રહણ કરવું ઉપભોગ પરિભોગાતિરિક્ત અતિચાર સમજવા જોઈએ.

અનર્થદણ્ડ વિરતિ નામક વ્રતના ધારક શ્રાવકે કન્દર્પ આદિ પાંચે અતિચારોથી બચતા થકા સમ્યક્પ્રકારે ત્રીજા ગુણવ્રતરૂપ અનર્થદણ્ડ વિરતિ વ્રતનું પાલન કરવું જોઈએ ઉપાસકદશાંગ સૂત્રનાં પ્રથમ અધ્યયનમાં કહ્યું છે-શ્રમણોપાસકે અનર્થદણ્ડ વિરમણ વ્રતના પાંચ અતિચાર જાણવા જોઈએ -પરન્તુ

संजुत्ताहिगरणे, उवभोगपरिभोगाइरित्ते' इति, अनर्थदण्डविरमणस्य श्रमणोपासकेन पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा-कन्दर्पः-कौकुच्यम्-मौखर्यम्-संयुक्ताधिकरणम्-उपभोगपरिभोगाऽतिरिक्तत्वम्, इति ॥४८॥

मूलम्-सामाइयस्स मणदुप्पणिहाणाइया पंचअइयारा ॥४९॥

छाया—सामायिकस्य मनोदुष्प्रणिधानादिकाः पञ्चातिचाराः ॥४९॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे यथाक्रमागतस्याऽनर्थदण्डविरतिलक्षण तृतीयगुणव्रतस्य कन्दर्पादयः पञ्चातिचाराः प्ररूपिताः, सम्प्रति-सामायिक व्रतस्य प्रथमशिक्षाव्रतस्य द्वादशव्रतेषु नवमस्य मनोदुष्प्रणिधानादिकान् पञ्चातिचारान् प्रतिपादयितुमाह-'सामाइयस्स मणदुप्पणिहाणाइया पंच अइयारा' इति, सामायिकस्य पूर्वोक्त सामायिकव्रतरूपप्रथमशिक्षाव्रतस्य मनोदुष्प्रणिधानादिकाः -मनोदुष्प्रणिधानम् १ आदिना-वचोदुष्प्रणिधानम् २ कायदुष्प्रणिधानम् ३

अतिचार जानना चाहिए परन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे अतिचार इस प्रकार हैं-कन्दर्प, कौकुच्य, मौखर्य, संयुक्ताधिकरण और उपभोगपरिभोगातिरिक्तत्व ॥४८॥

'सामाइयस्स मणदुप्प' इत्यादि

सूत्रार्थ-सामायिकव्रत के मनःदुष्प्रणिधान आदि पांच अतिचार हैं॥४०॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वसूत्र में क्रमागत अनर्थदण्डविरमणव्रत के कन्दर्प आदि पांच अतिचारों का प्रतिपादन किया गया, अब प्रथम शिक्षाव्रत एवं बारह व्रतों में से नव में सामायिकव्रत के मनो दुष्प्रणिधान आदि पांच अतिचारों की प्ररूपणा करते हैं-

पूर्व कथित पहले शिक्षाव्रत सामायिक के पांच अतिचार हैं-(१) मनो दुष्प्रणिधान (२) वचनदुष्प्रणिधान (३) कायदुष्प्रणिधान (४)

તેમનું આચરણ કરવુ જોઈએ નહીં' આ અતિચાર આ પ્રકારે છે-કન્દર્પ, કૌકુચ્ય, મૌખર્ય, સંયુક્તાધિકરણ અને ઉપભોગ પરિભોગાતિરિક્તત્વ. ॥૪૮॥

'सामाइयस्स मणदुप्पणिहाणाइया' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-સામાયિક વ્રતનાં મનઃદુષ્પ્રણિધાન આદિ પાંચ અતિચાર છે.॥૪૯॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વ સૂત્રમાં ક્રમાગત અનર્થદણ્ડ વિરમણ વ્રતના કન્દર્પ આદિ પાંચ અતિચારોનું અતિપાદન કરવામાં આવ્યું, હવે પ્રથમ શિક્ષાવ્રત અને બાર વ્રતો પૈકીના નવમાં સામાયિક વ્રતના મનોદુષ્પ્રણિધાન આદિ પાંચ અતિચારોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

પૂર્વકથિક પહેલા શિક્ષાવ્રત સામાયિકના પાંચ અતિચાર છે-(૧) મનોદુષ્પ્રણિધાન (૨) વચનદુષ્પ્રણિધાન (૩) કાયદુષ્પ્રણિધાન (૪) સામાયિકનું

सामायिकस्य स्मृत्यकरणम् ४ सामायिकस्याऽनवस्थितस्य करणम् ५ इत्येते पञ्चाऽतिचारा आत्मनो मालिन्याऽऽपादका दुष्परिणतिविशेषा भवन्ति। तत्र-त्रिविधस्तावद् योगः पूर्वं मानसिक-वाचिक-कायिक भेदात् प्रतिपादितः, तस्य दुष्प्रणिधानम्, दुष्टं प्रणिधानं सामायिकलक्षणध्यानविशेषावसरे मनोवाक्कायानां क्रोधमानमायालोभसहिता दुष्टप्रवृत्तयः-मनोदुष्प्रणिधानम्१ वचोदुष्प्रणिधानम्२ कायदुष्प्रणिधानं ३ चो-च्यते। तत्र-मनोदुष्प्रणिधानम्-सामायिकाऽनुष्ठानसमये गृहसम्बन्धि सुकृतदुष्कृतपरिचिन्तनमित्यर्थः १ एवं-वचोदुष्प्रणिधानम्-वचसो दुष्प्रणिधानम्, सामायिकसमये निष्ठुरसावद्यभाषासमुदीरणम् २ एवम्-कायस्य शरीरस्य दुष्प्रणिधानं दुष्टं-सावद्यं प्रणिधानं=प्रवर्तनं कायदुष्प्रणिधानम्, अप्रमार्जिताऽनिरीक्षितभूमौ हस्तपादादि प्रसारणम् इत्यर्थः ३ एवं-

सामायिक का स्मरण न रहना और (५) अनवस्थित रूप से सामायिक करना। ये पांच अतिचार आत्मा में मलीनता उत्पन्न करने वाले दुष्परिणाम हैं।

पहले मनोयोग, वचनयोग और काययोग के भेद से तीन प्रकार का योग कहा गया है, उसका दुष्ट प्रणिधान करना अर्थात् सामायिक रूप ध्यान के अवसर पर मन वचन काय को क्रोध मान माया लोभ सहित प्रवर्त्ताना मनोदुष्प्रणिधान, वचनदुष्प्रणिधान और काय दुष्प्रणिधान कहलाता है। सामायिक करते समय घर संबंधी अच्छे-बुरे कामों का विचार करना मनो दुष्प्रणिधान है। सामायिक के समय निष्ठुर एवं सावद्य भाषा का प्रयोग करना वचन दुष्प्रणिधान है। इसी प्रकार शरीर से दुष्ट अर्थात् सावद्य व्यापार करना कायदुष्प्रणिधान है, जैसे अप्रमार्जित और अप्रतिलेखित भूमि पर हाथ-पैर आदि फैलाना।

સ્મરણ ન રહેવું અને (૫) અનવસ્થિત રૂપથી સામાયિક કરવી. આ પાંચ અતિચાર આત્માસાં મલીનતા ઉત્પન્ન કરનારાં દુષ્પરિણામ છે.

પહેલા મનોયોગ, વચનયોગ અને કાયયોગના ભેદથી ત્રણ પ્રકારના યોગ કહેવામાં આવ્યા છે, તેનું દુષ્ટ પ્રણિધાન કરવું અર્થાત્ સામાયિક રૂપ ધ્યાનના અવસર પર મન વચન કાયાને ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ સહિત પ્રવર્તાવવા મનોદુષ્પ્રણિધાન વચનદુષ્પ્રણિધાન અને કાયદુષ્પ્રણિધાન છે. સામાયિક લીધી હોય ત્યારે નિષ્ઠુર તેમજ સાવદ્યભાષાનો પ્રયોગ કરવો વચનદુષ્પ્રણિધાન છે. એવી જ રીતે શરીરથી દુષ્ટ અર્થાત્ સાવદ્ય વ્યાપાર કરવો કાયદુષ્પ્રણિધાન છે જેમ કે-અપ્રમાર્જિત અને અપ્રતિલેખિત ભૂમિ પર હાથ-

सामायिकस्य स्मृत्यकरणम्, सामायिकसम्बन्धिनी या स्मृतिः-स्मरणं, तस्या अकरणम् 'अमुकसमये मया सामायिकं कृतं-कर्तव्यं-करिष्यामि वा' इत्येवं निश्चित सामायिकसमयस्य विस्मरणमित्यर्थः ४ एवं-सामायिकस्याऽनवस्थितस्य-करणम्, सामायिकस्य कदाचिदाचरणं-कदाचिदनाचरणं-कदाचित्तु समयमपरि-समाप्यैवोत्थानमित्यर्थ· ५ तत्र-शरीरावयवानाम् अनिभृतस्वरूपा कायस्या-ऽन्यथा प्रवृत्तिलक्षणा दुष्प्रवृत्तिः १ संस्कारहितार्थागमवर्णपदप्रयोगरूपा वचोऽन्य-थाप्रवृत्तिलक्षणा दुष्टप्रवृत्तिः २ उदासीनत्वरूपाच मनोऽन्यथा प्रवृत्तिलक्षणा दुष्ट

चौथा अतिचार है सामायिक की स्मृति न रहना अर्थात् 'अमुक समय में मैंने सामायिक की या अमुक समय पर मुझे सामायिक करना है या करूंगा' इस प्रकार सामायिक के समय को भूल जाना। पांच वां अतिचार है-सामायिक अनवस्थितरूप से करना अर्थात् कभी सामा-यिक करना, कभी न करना, कभी समायिक का समय पूर्ण होने से पहले ही उठ जाना। इस प्रकार सामायिक के पांच अतिचार फलित होते हैं-

(१) शरीर के अवयवों की अर्थात् काय की अन्यथा प्रवृत्तिरूप दुष्ट प्रवृत्ति करना।

(२) संस्कारहीन, आगम, वर्ण, पद का प्रयोग रूप वचन की दुष्ट प्रवृत्ति करना।

(३) मन की उदासीनतारूप अन्यथा प्रवृत्ति करना। यह तीन

પગ વગેરે પ્રસારવા ચોથો અતિચાર છે સામાયિકની સ્મૃતિ ન રહેવી અર્થાત્ અમુક સમયની અંદર મેં સામાયિક કરી અથવા અમુક સમયે મારે સામાયિક કરવી છે અથવા કરીશ આ રીતે સામાયિકના સમયને વિસરી જવો. પાંચમો અતિચાર છે-સામાયિક અનવસ્થિત રૂપથી કરવી અર્થાત્ કયારેક સામાયિક કરવી, કયારેક ન કરવી, કયારેક સામાયિકનો સમય પૂરો થતાં અગાઉ જ સામાયિકવાળી લેવી આ રીતે સામાયિકના પાંચ અતિચાર ફલિત થાય છે-

(૧) શરીરના અવયવોની અર્થાત્ કાયાની અન્યથા પ્રવૃત્તિરૂપ દુષ્ટ પ્રવૃત્તિ કરવી.

(૨) સંસ્કારહીન, આગમ, વર્ણ પદના પ્રયોગ રૂપ વચનની દુષ્ટ પ્રવૃત્તિ કરવી.

(૩) મનની ઉદાસીનતા રૂપ અન્યથા પ્રવૃત્તિ કરવી. આ ત્રણ પ્રકારનાં

प्रवृत्तिः ३ इत्येवं त्रिविधं योगदुष्टप्रणिधानम् । सामायिक स्मृत्यकरणम्, अनेका-ग्रत्वं स्मृत्यनुपस्थानम् न ज्ञायते 'किं मया पठितं-किंवा न पठितम्' इत्येव-मेकाग्रतारहितत्वं स्मृत्यकरणमवगन्तव्यम् ४ सामायिकस्याऽनवस्थितस्य करणम्, अव्यवस्थितं सामायिकस्य करणम् ५ । तथा च-मनोयोगदुष्प्रणिधानादयः पञ्च-ध्यानविशेषरूप सामायिकस्याऽतिचाराः ॥४९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावद् यथाक्रमं तृतीयगुणव्रतस्याऽनर्थदण्डविरति-लक्षणस्य कन्दर्पादयः पञ्चातिचाराः प्रतिपादिताः, सम्प्रति-क्रमागतस्य द्वादश-व्रतेषु नवमलक्षणस्य प्रथमशिक्षाव्रतस्य सामायिकव्रतस्य मनोयोगदुष्प्रणिधानादीन् पञ्चातिचारान् प्ररूपयितुमाह-'सामाइयस्स मणदुप्पणिहाणाइया पंच अइ-यारा' इति, सामायिकस्य प्रथमशिक्षाव्रतविशेषरूपसामायिकव्रतस्य मनोयोग-

---

प्रकार का योगदुष्प्रणिधान है ।

(४) सामायिक का स्मरण न करना, एकाग्रता न रहना, यह भी मालुम न रहता कि मैंने क्या पढा है और क्या नहीं पढा है । इस प्रकार मन का एकाग्र न रहना स्मृत्यकरण समझना चाहिए ।

(५) सामायिक अनवस्थित करना अर्थात् व्यवस्थितरूप से न करना ।

इस प्रकार मनोदुष्प्रणिधान आदि ध्यानविशेषरूप समायिकव्रत के पांच अतिचार हैं ॥४९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले क्रम के अनुसार अनर्थदण्डविरति नामक तीसरे गुणव्रत के कन्दर्प आदि पांच अतिचार प्रतिपादन किये गये हैं । अब क्रमप्राप्त बारह व्रतों में से नौवें और शिक्षाव्रतों में पहले सामा-यिकव्रत के मनो दुष्प्रणिधान आदि पांच अतिचारों की प्ररूपणा करते हैं—सामायिकव्रत के योग दुष्प्रणिधान आदि पांच अतिचार हैं

યોગદુષ્પ્રણિધાન છે.

(૪) સામાયિકનું સ્મરણ ન કરવું, એકાગ્રતા ન રહેવી, એ પણ ખબર ન પડે કે મેં શું વાંચ્યું છે અને શું નથી વાંચ્યું ? આ રીતે મનની એકાગ્ર-તાનો અભાવ સ્મૃત્યકરણ સમજવું ઘટે.

(૫) સામાયિક અનવસ્થિત કરવી અર્થાત્ વ્યવસ્થિત રૂપે ન કરવી.

આ રીતે મનોદુષ્પ્રણિધાન આદિ ધ્યાનવિશેષ રૂપ સામાયિક વ્રતના પાંચ અતિચાર છે. ॥૪૯॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા ક્રમના અનુસાર અનર્થદણ્ડવિરતિ નામક ત્રીજા ગુણવ્રતના કન્દર્પ આદિ પાંચ અતિચાર પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યા હવે ક્રમપ્રાપ્ત બાર વ્રતો પૈકી નવમાં અને શિક્ષાવ્રતોમાંના પહેલા સામાયિક વ્રતના મનોદુષ્પ્રણિધાન આદિ પાંચ અતિચારોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ—

दुष्प्रणिधानादयः-मनोयोगदुष्प्रणिधानम् १ वचोयोगदुष्प्रणिधानम् २ काययोग दुष्प्रणिधानम् ३ सामायिकस्य स्मृत्यकरणम् ४ सामायिकस्याऽनवस्थितस्य करणम् ५ चेत्येते पञ्चातिचारा आत्मनो मालिन्यतापादका दुष्परिणतिविशेषा भवन्ति। प्रणिधानप्रयोगः, दुष्टं प्रणिधानं दुष्प्रणिधानम्, तत्त्रिविधं मनोदुष्प्रणिधान-वचोदुष्प्रणिधान-कायदुष्प्रणिधानभेदात्। तत्र-क्रोधमानमायालोभ द्रोहेर्ष्यादिना चित्तसम्भ्रमः-गृहसम्बन्धि सुकृतदुष्कृतचिन्तनं च मनोदुष्प्रणिधानम् १ निष्ठुरसावद्यभाषोदीरणं वचोदुष्प्रणिधानम् २ हस्तपादादि शरीरावय

---

(१) मनोयोगदुष्प्रणिधान (२) वचनयोग दुष्प्रणिधान (३) काययोग दुष्प्रणिधान (४) सामायिक की स्मृति न रखना और (५) अनवस्थित रूप से सामायिक करना। ये पांचों अतिचार आत्मा में मलीनता उत्पन्न करने वाले दुष्परिणाम हैं।

प्रणिधान का अर्थ है-प्रयोग-व्यापार। दुष्ट प्रणिधान दुष्प्रणिधान कहलाता है। वह तीन प्रकार का है-मनोदुष्प्रणिधान, वचन दुष्प्रणिधान और कायदुष्प्रणिधान। इनका स्वरूप इस प्रकार है-

(१) क्रोध, मान, माया, लोभ, द्रोह, ईर्ष्या आदि के कारण चित्त में संभ्रम होना और घर संबंधी सुकृत एवं दुष्कृत का विचार करना मनोदुष्प्रणिधान है।

(२) निष्ठुर और पापयुक्त भाषा का प्रयोग करना वचन दुष्प्रणिधान है।

સામાયિક વ્રતના યોગદુષ્પ્રણિધાન આદિ પાંચ અતિચાર છે-(૧) મનોયોગદુષ્પ્રણિધાન (૨) વચનયોગદુષ્પ્રણિધાન (૩) કાયયોગદુષ્પ્રણિધાન (૪) સામાયિકની સ્મૃતિ ન રાખવી અને (૫) અનવસ્થિતપણે સામાયિક કરવી. આ પાંચે અતિચાર આત્મામાં મલીનતા ઉત્પન્ન કરનારા દુષ્પરિણામ છે.

પ્રણિધાનનો અર્થ છે-પ્રયોગ-વ્યાપાર દુષ્ટ પ્રણિધાન દુષ્પ્રણિધાન કહેવાય છે તે ત્રણ પ્રકારના છે-મનોદુષ્પ્રણિધાન, વચનદુષ્પ્રણિધાન અને કાયદુષ્પ્રણિધાન એમનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે-

(૧) ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, દ્રોહ, ઇર્ષ્યા વગેરેના કારણે ચિત્તમાં ભ્રમણા થવી અને ઘર સંબંધી સુકૃત તથા તથા દુષ્કૃતનો વિચાર કરવો મનોદુષ્પ્રણિધાન છે.

(૨) નિષ્ઠુર અને પાપયુક્ત ભાષાનો પ્રયોગ કરવો વચનદુષ્પ્રણિધાન છે.

वानाममप्रमार्जिताऽप्रतिलेखितभूम्यावस्थापनं काययोगदुष्प्रणिधानम् ३ कदाचित्करणं कदाचिदकरणं–समयमसमाप्यैवोत्थानं वा, तद्विस्मरणं च सामायिकस्य स्मृत्य-करणम् अनेकाग्रता–सामायिक विषयकस्मरणाऽभावः सामायिकं मया विधेयं न वा विधेयम्, कृतं न वा–कृतम् इत्येवमवधारणं स्मृतिभ्रंश इति भावः, मोक्ष-साधनाऽनुष्ठानस्य स्मरणमूलकत्वात् ४ प्रतिनियतसमये सामायिकस्याऽकरणं सामायिकस्याऽनवस्थितस्य करणम् ५ इत्येते पञ्चप्रथमशिक्षाव्रतरूपसामायिक-व्रतस्याऽतिचारा अवगन्तव्याः। तस्मात्–व्रतधारिणाऽगारिणा मनोदुष्प्रणिधानादि पञ्चाऽतिचारवर्जनपूर्वकं सामायिकव्रतमनुपालनीयम्। उक्तञ्चोपासकदशाङ्गे प्रथमे

(३) बिना पूंजी और बिना देखी भूमि पर हाथ-पैर आदि शरीर के अवयवों के स्थापित करना कायदुष्प्रणिधान है।

(४) सामायिक कभी करना, कभी न करना, समय पूर्ण होने से पहले ही ऊठ बैठना, सामायिक करना भूल जाना, इत्यादि सामायिक का स्मृत्यकरण कहलाता है। चित्त का एकाग्र न रहना, सामायिक संबंधी स्मरण न रहना, मुझे सामायिक करनी है या नहीं करनी है, की है अथवा नहीं की है, यह सब स्मरण न रखना स्मृत्यकरण कहलाता है। मोक्ष का साधनभूत अनुष्ठान स्मृतिमूलक ही होता है।

(५) नियत समय पर सामायिक न करना अनवस्थित सामायिक करना कहलाता है।

ये प्रथम शिक्षाव्रत सामायिक के पांच अतिचार हैं। अतएव व्रत-धारी श्रावक को मनोदुष्प्रणिधान आदि पांच अतिचारों का परित्याग

(૩) વગર પૂંજેલી અને વગર જોએલી જમીન પર હાથ–પગ આદિ શરીરના અવયવોને સ્થાપિત કરવા કાયદુષ્પ્રણિધાન છે.

(૪) સામાયિક કયારેક કરવી, કયારેક ન કરવી સમય પૂરો થતા અગાઉ જ સામાયિક પાળી લેવી, સામાયિક જ ભૂલી જવી ઈત્યાદિ સામાયિકનું સ્મૃત્યકરણ કહેવાય છે. ચિત્તની એકાગ્રતા ન રહેવી, સામાયિક સંબંધી સ્મરણ ન રહેવું, મારે સામાયિક કરવી છે કે નથી કરવી, મેં સામાયિક કરી કે નહીં, આ બધું સ્મરણ ન રાખવું સ્મૃત્યકરણ કહેવાય છે. મોક્ષના સાધનભૂત અનુષ્ઠાન સ્મૃતિસારક જ હોય છે.

(૫) નિયત સમયે સામાયિક ન કરવી અનવસ્થિત સામાયિક કરી એમ કહેવાય છે.

આ પ્રથમ શિક્ષાવ્રત સામાયિકના પાંચ અતિચાર છે આથી વ્રતધારી શ્રાવકે મનોદુષ્પ્રણિધાન આદિ પંચ અતિચારોના પરિત્યાગ કરતા થકા

ऽध्ययने–'सामाइयस्स पंच अइयारा समणोवासएणं जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा–मणदुप्पणिहाणे, वए दुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स संति अकरणयाए, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया' इति। सामायिकस्य–पञ्चाऽतिचाराः श्रमणोपासकेन ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, तद्यथा–मनोदुष्प्रणिधानम् १ वचोदुष्प्रणिधानम् २ कायदुष्प्रणिधानम् ३ सामयिकस्य स्त्याकरणता, सामायिकस्याऽनवस्थितकरणता इति ॥४९॥

मूलम्–देसावगासियस्स आणवणपयोगाइया पंचअइयारा।५०।

छाया—देशावकाशिकस्याऽऽज्ञापनप्रयोगादिकाः पञ्चातिचाराः ॥५०॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे सामायिकस्य प्रथमशिक्षाव्रतस्य मनोदुष्प्रणिधानादयः पञ्चातिचाराः प्ररूपिताः सम्प्रति–क्रमप्राप्तस्य द्वितीयस्य शिक्षाव्रतस्य

करते हुए सामायिक व्रत का पालन करना चाहिए। उपासकदशांग सूत्र के प्रथम अध्ययन में कहा है–श्रमणोपासक को सामायिक के पांच अतिचार जानना चाहिए किन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे पांच अतिचार इस प्रकार हैं-(१) मनोदुष्प्रणिधान (२) वचनदुष्प्रणिधान (३) कायदुष्प्रणिधान (४) सामायिक की स्मृति न करना और (५) अनवस्थित रूप से सामायिक करना ॥४९॥

'देसावगासियस्स' इत्यादि।

सूत्रार्थ—देशावकाशिकव्रत के आनयनप्रयोग आदि पांच अतिचार हैं ॥५०॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्व सूत्र में सामायिक नामक प्रथमशिक्षाव्रत के मनोदुष्प्रणिधान आदि पांच अतिचार कहे गए हैं। अब क्रमप्राप्त

સામાયિકવ્રતનું પાલન કરવું જોઈએ. ઉપાસકદશાંગસૂત્રના પ્રથમ અધ્યયનમાં કહ્યું છે–શ્રમણોપાસકે સામાયિકના પાંચ અતિચાર જાણવા જોઈએ પરન્તુ તેમનું આચરણ કરવું જોઈએ નહીં. આ પાંચ અતિચાર આ મુજબ છે-(૧) મનોદુષ્પ્રણિધાન (૨) વચનદુષ્પ્રણિધાન (૩) કાયદુષ્પ્રણિધાન (૪) સામાયિકની સ્મૃતિ ન રાખવી અને (૫) અનવસ્થિતપણે સામાયિક કરવી ॥૪૯॥

'દેસાવગાસિયસ્સ' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ–દેશાવકાશિક વ્રતના આનયન પ્રયોગ આદિ પાંચ અતિચાર છે.॥૫૦॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં સામાયિક નામક પ્રથમ શિક્ષાવ્રતના મનોદુષ્પ્રણિધાન આદિ પાંચ અતિચાર કહેવામાં આવ્યા છે. હવે ક્રમપ્રાપ્ત દ્વિતીય શિક્ષાવ્રતના, બાર વ્રતોમાના દશમા દેશાવકાશિક વ્રતના આનયનપ્રયોગ

द्वादशव्रतेषु दशमस्य देशावकाशिकव्रतस्याऽऽनायनप्रयोगादिकान् पञ्चातिचारान् प्ररूपयितुमाह-'देसावगासियस्स आणवणप्पयोगाइया पंच अइयारा' इति। देशावकाशिकव्रतस्य पूर्वोक्तदेशविरतिलक्षण द्वितीयशिक्षाव्रतस्याऽऽनायनप्रयोगादिकाः-आनयनप्रयोगः १ आदिना प्रेषणप्रयोगः २ शब्दानुपातः ३ रूपानुपातः ४ बहिः पुद्गलक्षेपश्च ५ इत्येते पञ्चातिचारा आत्मनो मालिन्याऽऽपादका दुष्परिणतिविशेषा भवन्ति। तत्र-पूर्वमात्मनाऽभिगृहीते देशे स्थितस्य प्रयोजनवशात्-अभीष्टं यत् किञ्चिद् 'आनय' इत्येव मानयनम्, तस्य प्रयोगः, आत्मसंकल्पिते देशे स्थितोऽपि प्रतिषिद्धाऽनभिगृहीतदेशस्थितानि वस्तूनि कार्यवशात् तद्वस्त्वधिकारिणं निवेद्य निजदेशमध्ये-आनाय्य क्रयविक्रयादिकरणम्-

---

द्वितीय शिक्षाव्रत, के बारह व्रतों में दसवें देशावकाशिकव्रत के आनयनप्रयोग आदि पांच अतिचारों की प्ररूपणा करते हैं-

देशावकाशिकव्रत के, जो शिक्षाव्रतों में दूसरा है, आनयनप्रयोग आदि पांच अतिचार हैं। वे ये हैं-(१) आनयनप्रयोग (२) प्रेषणप्रयोग (३) शब्दानुपात (४) रूपानुपात और (५) बहिः पुद्गलक्षेप। ये पांच अतिचार आत्मा में मलीनता उत्पन्न करने वाले दुष्परिणामरूप हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार है-

(१) पहले जिस देश की मर्यादा की है उसमें स्थित मनुष्य व्रती पुरुष को कोई प्रयोजन उपस्थित हो जाय तब वह बारह प्रदेश से किसी वस्तु को 'ले आओ' इस प्रकार कह कर मंगवाता है तो आनयनप्रयोग अतिचार होता है। तात्पर्य यह है कि अपने मर्यादित क्षेत्र में स्थित रहते हुए मर्यादा के बाहर के निषिद्ध क्षेत्र में स्थित वस्तुओं को

આદિ પાંચ અતિચારોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

દેશાવકાશિક વ્રતના, જે શિક્ષાવ્રતોમાં બીજું છે, આનયનપ્રયોગ આદિ પાંચ અતિચાર છે. તે આ પ્રમાણે છે-(૧) આનયનપ્રયોગ (૨) પ્રેષણપ્રયોગ (૩) શબ્દાનુપાત (૪) રૂપાનુપાત અને (૫) બહિઃપુદ્ગલક્ષેપ આ પાંચ અતિચાર આત્મામાં મલીનતા ઉત્પન્ન કરનારા દુષ્પરિણામ રૂપ છે એમનું સ્વરૂપ આ પ્રકારે છે-(૧) પહેલા જે દેશની મર્યાદા કરેલી છે તેમાં રહેલા કોઈ વ્રતી પુરૂષને કોઈ પ્રયોજન ઉપસ્થિત થઈ જાય ત્યારે તે બહારના પ્રદેશથી કોઈ વસ્તુને 'લઈ આવો' એ પ્રમાણે કહીને મંગાવે છે ત્યારે આનયન પ્રયોગ અતિચાર લાગે છે. તાત્પર્ય એ છે કે પોતાના મર્યાદિત ક્ષેત્રમાં સ્થિત રહીને મર્યાદા બહારના નિષિદ્ધ ક્ષેત્રમાં રહેલી વસ્તુઓને

आनायनप्रयोग इतिभावः १ एवम्-प्रतिषिद्धाऽनभिगृहीतदेशेऽभिप्रेतव्यापार साधनार्थे भृतस्य प्रेषणं तस्य-'एवं विधेहि' इति प्रयोगः प्रेषणप्रयोग उच्यते २ शब्दमनुपततीति शब्दानुपातः शब्दोच्चारणं तादृक्करोति येनोच्चरितशब्दः परस्य श्रोत्रविवरं प्राप्नोति इति स शब्दाऽनुपात उच्यते, छिक्कोत्कासितादिकशब्देन, लोकप्रसिद्ध 'टेलिफोन' 'टेलिग्राफ' इत्यादियन्त्रेण च प्रतिवेशिकादिं प्रतिबोध्य कार्यसम्पादनचेष्टितम् ३ रूपानुपातस्तावत्-शब्दमनुच्चारयन्नेव प्रयोजनवशात् स्वशरीरं हस्तादिरूपं परेषां दर्शयति, तद्दर्शनाच्च मर्यादितक्षेत्राद्बहिः स्थिता दृष्टाः पुरुषा स्तत्समीपमागच्छन्ति, इतिरूपानुपातः ४ एवं-बहिः पुद्गलप्रक्षेपः-

कार्यवशात् उसके अधिकारी को निवेदन करके अपने मर्यादित क्षेत्र में लाना क्रय-विक्रय आदि मंगवाना आनयन प्रयोग कहलाता है।

(२) व्रत में जितने देश की मर्यादा की हो उससे बाहर के प्रदेश में किसी कार्य की सिद्धि के लिए भृत्य को भेजना और कहना कि-'तुम जाकर ऐसा करो यह प्रेषणप्रयोग कहलाता है।

(३) इस प्रकार शब्द का उच्चारण करना कि जिससे वह दूसरे को सुनाई पडे, वह शब्दानुपात कहलाता है। छींक कर या खांस कर अथवा लोक में प्रसिद्ध टेलीफोन या टेलीग्राफ आदि यंत्रों द्वारा पडौसी आदि को समझाकर कार्यसम्पादन करने के लिए चेष्टा करना शब्दानुपात अतिचार है।

(४) शब्द का उच्चारण किये विना ही, प्रयोजनवशात् अपना हाथ आदि दिखलाना जिससे कि मर्यादित क्षेत्र से बाहर के लोग

સંજોગવશાત્ તેના અધિકારીને નિવેદન કરીને પોતાના મર્યાદિત ક્ષેત્રમાં લાવવા, મગાવવા આનયનપ્રયોગ કહેવાય છે.

(૨) વ્રતમાં જેટલા દેશની મર્યાદા કરી હોય તેનાથી બહારના પ્રદેશમાં કોઇ કાર્યની સિદ્ધિ માટે નોકરને મોકલવો અને તેને કહેવું-'તું જા અને આ પ્રમાણે કર આ પ્રેષણપ્રયોગ કહેવાય છે.'

(૩) એવી રીતે શબ્દનું ઉચ્ચારણ કરવું કે જેથી બીજાને સંભળાય તે શબ્દાનુપાત કહેવાય છે. છીંક ખાઇને અથવા ઉધરસ ખાઇને અથવા લોકમાં પ્રસિદ્ધ ટેલીફોન અથવા ટેલીગ્રાફ આદિ-યંત્રો દ્વારા પાડોશી વગેરેને સમજાવીને કાર્ય સમ્પાદન કરવા માટેની ચેષ્ટા કરવી શબ્દાનુપાત અતિચાર છે.

(૪) શબ્દનું ઉચ્ચારણ કર્યા વગર જ, પ્રયોજનવશાત્ પોતાનો હાથ વગેરે બતાવવો કે જેથી મર્યાદિત ક્ષેત્રથી બહારના લોકો તેની નજીકમાં

पुद्गलानां परमाणुद्वयणुकादि स्कन्ध सूक्ष्मस्थूलभेदानां मध्ये बादराकारपरिणत लोष्टेष्टकाकाष्टप्रभृतीनां मर्यादितक्षेत्राद्बहिः प्रक्षेपः, प्रयोजनवशात् कार्यार्थी पुरुषो विशिष्टदेशाभिग्रहे सति परस्मिन् देशे गमनाऽसम्भवात् परेषां प्रतिबोधनाय लोष्टादि पुद्गलान् प्रक्षिपति लोष्टादिनिपातानन्तरं च परे जनास्तत्समीपमागच्छन्तीति पुद्गल क्षेपशब्दार्थोऽवगन्तव्यः ५ एते पञ्चाऽऽनायन प्रयोगादयो देशावकाशिकलक्षण द्वितीयशिक्षाव्रतस्याऽतिचारा अवगन्तव्याः ॥५०॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वसूत्रे सामायिकस्य प्रथमशिक्षाव्रतस्य मनोदुष्प्रणिधानादयः पञ्चातिचाराः प्ररूपिताः, सम्प्रति-क्रमप्राप्तस्य द्वितीयस्य शिक्षाव्रतस्य द्वादशव्रतेषु दशमस्य देशावकाशिक व्रतस्याऽऽनायन प्रयोगादिकान् पञ्चातिचारान्

उसके समीप आजाएं, यह रूपानुपात अतिचार है।

(५) मिट्टी का ढेला, ईंट, लकडी का टुकडा आदि पुद्गलों को मर्यादित क्षेत्र से बाहर फेंकना बहिः पुद्गलप्रक्षेप कहलाता है। किसी ने अमुक देश पर्यन्त ही जाने की मर्यादा की हो, मगर बाहर का काम आ पडे तब वह स्वयं बाहर जाने में व्रत का भंग समझकर दूसरे को समझाने-चेताने के लिए पत्थर आदि फेंकने से लोग उसके पास आ जाते हैं, यह पुद्गलप्रक्षेप अतिचार है।

ये आनयन प्रयोग आदि पांच द्वितीय शिक्षाव्रत देशावकाशिक व्रत के अतिचार हैं ॥५०॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पूर्व सूत्र में प्रथम शिक्षाव्रत सामायिक के मनोदुष्प्रणिधान आदि पांच अतिचारों का प्ररूपण किया गया है, अब

આવી જાય, આ રૂપાનુપાત અતિચાર છે.

(૫) માટીનું ઢેફું, ઇંટ, લાકડાનો કકડો આદિ પુદ્ગલોને મર્યાદિત ક્ષેત્રથી બહાર ફેંકવા બહિઃપુદ્ગલપ્રક્ષેપ કહેવાય છે. કોઈએ અમુક દેશ સુધી જ જવાની મર્યાદા કરી હોય પરન્તુ તેની બહારનું કામ આવી પડે ત્યારે તે જાતે બહાર જવામાં વ્રતનો ભંગ થશે એમ સમજીને બીજાને સમજાવવા-સાવચેત કરવા માટે પથ્થર આદિ ફેંકે છે અને પથ્થર વગેરે ફેંકવાથી લોકો તેની પાસે આવી જાય છે. આ પુદ્ગલપ્રક્ષેપ અતિચાર છે.

આ આનયનપ્રયોગ આદિ પાંચ બીજા શિક્ષાવ્રત, દેશાવકાશિક વ્રતના અતિચાર છે. ॥૫૦॥

તત્વાર્થનિર્યુક્તિ-પૂર્વસૂત્રમાં પ્રથમ શિક્ષાવ્રત સામાયિકના મનોદુષ્પ્રણિધાન આદિ પાંચ અતિચારોનું પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે. હવે ક્રમપ્રાપ્ત

प्ररूपयितुमाह-'देसावगासियस्स आणवणपयोगाइया पंच अइयारा' इति, देशावकाशिकव्रतस्याऽऽनायनप्रयोगादिकाः-आनायनप्रयोगः १ आदिना-प्रेषणप्रयोगः २ शब्दानुपातः ३ रूपानुपातः ४ पुद्गलक्षेपश्च ५ इत्येते पञ्चातिचारा आत्मनः कालुष्याऽऽपादका दुष्परिणतिविशेषा भवन्ति। तत्र-दिग्विरतिव्रतगृहीताऽभिग्रहस्य करणमेव देशावकाशिकव्रतम्। यत्खलु-अभिगृहीतदेशाद्बहिः स्थितस्य द्रव्यादेरानयनाय-'त्वमिदमानय' इत्येवं सन्देशप्रदानादिना परआनाय्यते-द्रव्याद्यानेतुं प्रेर्यते स-आनायनप्रयोगो व्यपदिश्यते, हठात्-विनियोज्यप्रेषणं प्रेषणप्रयोगोऽभिधीयते, यत्राभिगृहीत देशातिक्रमभयाद्-अभि-

क्रमप्राप्त द्वितीय शिक्षाव्रत, जो बारह व्रतों में दसवां है और जिसका नाम देशावकाशिक है, उसके आनयनप्रयोग आदि पांच अतिचारों की प्ररूपणा करते हैं-

देशावकाशिकव्रत के पांच अतिचार हैं-(१) आनयनप्रयोग (२) प्रेषणप्रयोग (३) शब्दानुपात (४) रूपानुपात और (५) पुद्गल क्षेप। ये पांच अतिचार आत्मा में मलीनता उत्पन्न करते हैं और एक प्रकार के दुष्परिणमन हैं।

दिशाव्रत में बांधी हुई मर्यादा को सीमित समय के लिए संक्षिप्त करना ही देशावकाशिकव्रत है। देशावकाशिकव्रत में देश की जो मर्यादा निश्चित की हो, उससे बाहर की वस्तु मंगवाने के लिए 'तुम यह ले आओ' इस प्रकार सन्देश आदि देकर दूसरे को वस्तु लाने की प्रेरणा करना आनयनप्रयोग कहलाता है। किसी को जबर्दस्ती भेजना

દ્વિતીય શિક્ષાવ્રત, જે બાર વ્રતોમાં દશમું છે અને જેનું નામ દેશાવકાશિક છે તેના આનયનપ્રયોગ આદિ પાંચ અતિચારોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

દેશાવકાશિક વ્રતના પાંચ અતિચાર છે-(૧) આનયનપ્રયોગ (૨) પ્રેષણપ્રયોગ (૩) શબ્દાનુપાત (૪) રૂપાનુપાત અને (૫) પુદ્ગલપ્રક્ષેપ આ પાંચ અતિચાર આત્મામાં મલીનતા ઉત્પન્ન કરનારા હોવાથી એક પ્રકારના દુષ્પરિણમન છે.

દિશાવ્રતમાં બાંધેલી મર્યાદાને સીમિત સમય માટે પણ ઓછી કરવી એ જ દેશાવકાશિક વ્રત છે. દેશાવકાશિક વ્રતમાં દેશની જે મર્યાદા નક્કી કરવામાં આવી હોય તેનાથી બહારની વસ્તુ મંગાવવા માટે 'તમે આ લઈ આવો' એ જાતનો સંદેશ વગેરે આપીને બીજાને વસ્તુ લાવવાની પ્રેરણા કરવી આનયનપ્રયોગ કહેવાય છે. કોઈને પરાણે મોકલવો પ્રેષણપ્રયોગ

मतप्रयोजनवशात् त्वमवश्यमेव तत्र गत्वा ममाऽभीष्टं गवादिकमानय 'इदं वा ममादिष्टं कुरु' इत्येवमुक्त्वा भृत्यस्य प्रेषणं प्रेषणप्रयोगः २ एव-मभिगृहीत भूप्रदेशतो वहिः प्रदेशे समुत्पन्ने प्रयोजनेऽभिग्रहव्यतिक्रमभयात् स्वयं गन्तु मसमर्थत्वात् छिक्कोत्कासादि शब्दकरणेन वहिः-प्रदेशवर्तिनः पुरुषान प्रतिबोधयति, ते च पुरुषास्तच्छब्दश्रवणाऽनन्तरं झटित्येव तत्समीपमागच्छन्ति' इत्येवं शब्दाऽनुपतनशीलत्वात्-'शब्दानुपात' इति व्यवह्रियते ३ एवं-रूपानुपातः-तावत्-शब्दमनुच्चारयन्नेव प्रयोजनवशात् स्वशरीरावयवभूतं हस्ताङ्गुल्यादिकं परेभ्यो दर्शयति तद्दर्शनाच्च परे द्रष्टारोऽपि तत्प्रत्यासन्ना भवन्ति, इत्येवं रीत्या

प्रेषणप्रयोग कहलाता है। मर्यादित क्षेत्र का उल्लंघन करने से व्रत का भंग हो जाएगा, ऐसा भय हो और मर्यादित क्षेत्र से बाहर कोई प्रयोजन हो तब ऐसा कहना कि-'तुम अवश्य वहां जाकर मेरी अभीष्ट गाय आदि ले आओ' अथवा 'मेरा अमुक कार्य कर दो' इस प्रकार कह कर भृत्य को भेजना प्रेषणप्रयोग है।

इसी प्रकार मर्यादित प्रदेश से बाहर किसी प्रयोजन के उत्पन्न होने पर व्रतभंग के भय से स्वयं न जा सकता हो, तब छींक कर अथवा खांस कर मर्यादा से बाहर के पुरुषों को चेतावनी देता है। वे पुरुष उसका शब्द सुनकर झट-से उसके समीप आ जाते हैं, ऐसा करना शब्दानुपात नामक अतिचार है।

शब्द का उच्चारण किये विना ही प्रयोजनवशात् अपने शरीर के अवयव हाथ या उंगली आदि दूसरे को दिखलाता है और उन्हें

કહેવાય છે. મર્યાદિત ક્ષેત્રનું ઉલ્લંઘન કરવાથી વ્રતનો ભંગ થઈ જશે, એવો ભય લાગે અને મર્યાદિત ક્ષેત્રથી બહાર કોઈ કારણ આવી પડે ત્યારે આ પ્રમાણે કહેવું કે-'તમે અવશ્ય ત્યાં જઈને મારી ગાય વગેરે લઈ આવો' અથવા 'મારૂં અમુક કાર્ય કરી આપો' આવું કહીને નોકરને મોકલવો પ્રેષણપ્રયોગ છે.

આવી જ રીતે મર્યાદિત પ્રદેશથી બહાર કોઈ પ્રયોજન આવી પડવાથી વ્રતખંડનના ભયથી સ્વયં જઇ શકે તેમ ન હોય ત્યારે છીંક ખાઈને અથવા ઉધરસ ખાઈને મર્યાદા બહાર રહેલા પુરૂષોને ઇશારો કરે છે. તે લોકો તેનો શબ્દ સાંભળીને એકદમ તેની પાસે આવી જાય છે. આમ કરવું શબ્દાનુપાત નામક અતિચાર છે.

શબ્દનું ઉચ્ચારણ કર્યા વગર જ પ્રયોજનવશાત પોતાના શરીરના અવયવ હાથ અગર આંગળી વગેરે બીજાને બતાવે છે અને તે જોઇને લોકો

रूपानुपतनशीलत्वाद् रूपानुपातो व्यपदिश्यते ४ एवं बहिः पुद्गलप्रक्षेपस्तावत्-पुद्गलाः परमाणुद्व्यणुकस्कन्धादयः सूक्ष्मस्थूलभेदादनेकविधः तत्र-बादराकार-स्थूलपरिणतानां लोष्टेष्टका-पाषाणखण्डादीनां पुद्गलानां प्रक्षेपः, अभिगृहीतभू-प्रदेशाद् बहिः प्रदेशे प्रक्षेपणम्-बहिः पुद्गलक्षेप उच्यते। प्रयोजनवशात् कार्यार्थी खलु पुरुषप्रतिविशिष्टदेशाभिग्रहे कृते सति ततो बहिः प्रदेशेऽभिग्रहभङ्गभयेन-गमनाऽसम्भवात् परस्मिन् देशे स्थितानां पुरुषाणां प्रतिबोधनार्थं लोष्टादीन् प्रक्षिपति लोष्टादिनिपातानन्तरमेव ते पुरुषास्तत्समीपमागच्छन्ति, इत्येवं रीत्या पुद्गलक्षेपो व्यवह्रियते ५ इत्येते पञ्चदेशावकाशिकव्रतस्य द्वितीयशिक्षाव्रतस्या-

---

देखकर लोग उसके पास आ जाते हैं, इस प्रकार रूपानुपतनशील होने से यह अतिचार रूपानुपात कहलाता है।

परमाणु, द्व्यणुक स्कंध आदि पुद्गल सूक्ष्म और स्थूल के भेद से अनेक प्रकार के हैं। उनमें से बादराकार स्थूल रूप में परिणत मिट्टी के ढेले, ईट, टुकडे आदि पुद्गलों को फेंकना पुद्गलक्षेप कहलाता है। मर्यादितक्षेत्र से बाहर के प्रदेश में पुद्गलों को फेंकना बहिः पुद्गल क्षेप कहलाता है। तात्पर्य यह है कि किसी श्रावक ने देशावकाशिक-व्रत में अमुक भूभाग तक ही जाने की मर्यादा की, तत्पश्चात् उस भूभाग से बाहर का कोई प्रयोजन उपस्थित हो गया, व्रतभंग के भय से वह स्वयं वहां जा नहीं सकता, तब उस बाह्य प्रदेश के लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए वह कंकर-पत्थर आदि फेंकता है,

---

તેની પાસે આવી જાય છે, આ રીતે રૂપાનુપતનશીલ હોવાથી આ અતિચાર રૂપાનુપાત કહેવાય છે.

પરમાણુ, દ્વયણુકસ્કંધ આદિ પુદ્ગલ સૂક્ષ્મ અને સ્થૂળના ભેદથી અનેક પ્રકારના છે તેમાંથી બાદરાકાર સ્થૂળરૂપમાં પરિણત માટીના ઢેફા, ઈંટ, પથ્થરના ટુકડા આદિ પુદ્ગલોને ફેંકવા પુદ્ગલપ્રક્ષેપ કહેવાય છે. મર્યાદિત ક્ષેત્રથી બહારના પ્રદેશમાં પુદ્ગલોને ફેંકવા બહિપુદ્ગલપ્રક્ષેપ કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે કોઈ શ્રાવકે દેશાવકાશિક વ્રતના અમુક પ્રદેશ સુધી જ જવાની મર્યાદા બાંધી ત્યાર બાદ તેને નિશ્ચિત પ્રદેશથી બહાર જવાનુ કોઈ પ્રયોજન ઉપસ્થિત થઇ ગયું. વ્રતભંગના ભયથી તે જાતે ત્યાં જઇ શકતો નથી ત્યારે તે બાહ્યપ્રદેશના લોકોનું ધ્યાન પોતાની તરફ દોરવા માટે તે કાંકરી-પથ્થર વગેરે ફેંકે છે કે જેનાથી તે લોકો તેના સંકેતને સમજીને

ऽतिचारा अवगन्तव्याः। एते पञ्च देशावकाशिकव्रतस्याऽतिचारा भवन्तीति भावः। उक्तञ्चोपासकदशाङ्गे प्रथमाऽध्ययने-'देसावकासियव्वयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा-आणवणपओगे, पेसवणपओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, बहियापोग्गलपक्खेवे' इति। देशावकाशिकव्रतस्य श्रमणोपासकेन पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा-आनायनप्रयोगः १ प्रेषणप्रयोगः २ शब्दानुपातः ३ रूपानुपातः ४ बहिः पुद्गलप्रक्षेपः, इति ।५०॥

मूलम्-पोसहोववासस्स अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-सिज्जा-संथारगाइया पंच अइयारा ॥५१॥

छाया-पौषधोपवासस्याऽप्रतिलेखित दुष्प्रतिलेखित-शय्या-संस्तारादिकाः पञ्चातिचाराः ।५१॥

जिससे वे उसके संकेत को समझ कर उसके पास आ जाएं ऐसा करना देशावकाशिकव्रत का बहिःपुद्गलप्रक्षेप नामक अतिचार है।

ये पांच द्वितीय शिक्षाव्रत, देशावकाशिकव्रत के अतिचार हैं। भावार्थ यह है कि ये पांच देशावकाशिकव्रत के अतिचार हैं। उपासक दशांग के प्रथम अध्ययन में कहा है-

'श्रमणोपासक को देशावकाशिकव्रत के पांच अतिचार जानने चाहिए किन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे अतिचार ये हैं-आनयन प्रयोग, प्रेषणप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात और बहिः पुद्गलप्रक्षेप ।५०।

'पोसहोववासस्स' इत्यादि।

सूत्रार्थ--अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित शय्यासंस्तारक आदि पौषधोपवास के पांच अतिचार हैं ॥५१॥

તેની પાસે આવી જાય આ પ્રમાણે કરવું દેશાવકાશિકવ્રતનો બહિઃપુદ્ગલપ્રક્ષેપ નામક અતિચાર છે.

આ પાંચ દ્વિતીય શિક્ષાવ્રત, દેશાવકાશિક વ્રતના અતિચાર જાણવા જોઈએ પરન્તુ તેમનું આચરણ કરવું જોઈએ નહીં. આ અતિચાર આ પ્રમાણે છે-

આનયનપ્રયોગ, પ્રેષણપ્રયોગ, શબ્દાનુપાત, રૂપાનુપાત અને બહિઃપુદ્ગલપ્રક્ષેપ. ॥૫૦॥

'પોસહોવવાસસ્સ અપ્પડિલેહિય' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-અપ્રતિલેખિત-દુષ્પ્રતિલેખિત શય્યા સંસ્તારક આદિ પૌષધોપવાસના પાંચ અતિચાર છે.

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे क्रमागतस्य शिक्षाव्रत द्वितीयस्य देशावकाशिक-व्रतस्याऽऽनायनप्रयोगादयः पञ्चातिचाराः प्ररूपिताः सम्प्रति–यथाक्रमप्राप्तस्य पौषधोपवासस्य तृतीयशिक्षाव्रतस्याऽप्रतिलेखितदुष्प्रतिलेखित–शय्यासंस्तारादिकान् पञ्चातिचारान् प्ररूपयितुमाह–'पोसहोववासस्स' त्यादि। पौषधोपवासस्य तृतीयशिक्षाव्रतस्याऽप्रतिलेखित–दुष्प्रतिलेखित–शय्या संस्तारादिकाः पञ्चाऽतिचारा अतिक्रमा आत्मनो मालिन्याऽऽपादका दुष्परिणतिविशेषा भवन्ति। तत्रा–ऽप्रतिलेखित–दुष्प्रतिलेखित–शय्यासंस्तारः १ अप्रमार्जित–दुष्प्रमार्जितशय्यासंस्तारः २ अप्रतिलेखित–दुष्प्रतिलेखितोच्चारप्रस्रवण-भूमिः ३ अप्रमार्जित–दुष्प्रमार्जितोच्चारप्रस्रवणभूमिः ४ पौषधोपवासस्य सम्यगननुपालनम् ५ इत्येवं पञ्च पौषधोपवासव्रतस्याऽतिचारा भवन्ति। तत्र–

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्व सूत्र में क्रमागत द्वितीय शिक्षाव्रत देशावकाशिक के आनयनप्रयोग आदि पांच अतिचारों का प्ररूपण किया गया है। अब क्रमप्राप्त तीसरे शिक्षाव्रत पौषधोपवासव्रत के अप्रतिलेखित–दुष्प्रतिलेखित शय्यासंस्तारक आदि पांच अतिचारों की प्ररूपणा करते हैं–

तीसरे शिक्षाव्रत पौषधोपवास के पांच अतिचार हैं जो आत्मा में मलीनता उत्पन्न करने वाले दुष्परिणमनरूप हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं-(१) अप्रतिलेखित–दुष्प्रतिलेखित शय्यासंस्तार (२) अप्रमार्जित–दुष्प्रमार्जित शय्यासंस्तार (३) अप्रतिलेखित–दुष्प्रतिलेखित–उच्चारप्रस्रवणभूमि (४) अप्रमार्जित–दुष्प्रमार्जित उच्चार प्रस्रवणभूमि और पौषधोपवास का सम्यक् प्रकार से अननुपालन। ये पांच पौषधोपवासव्रत के पांच अतिचार हैं।

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં ક્રમાગત દ્વિતીય શિક્ષાવ્રત દેશાવકાશિકના આનયનપ્રયોગ આદિ પાંચ અતિચારોનું પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે. હવે ક્રમપ્રાપ્ત ત્રીજા શિક્ષાવ્રત પૌષધોપવાસ વ્રતના અપ્રતિલેખિત-દુષ્પ્રતિલેખિત શય્યાસંસ્તારક આદિ પાંચ અતિચારોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ–

ત્રીજા શિક્ષાવ્રત પૌષધોપવાસના પાંચ અતિચાર છે જે આત્મામાં મલીનતા ઉત્પન્ન કરવાવાળા દુષ્પરિણમન રૂપ છે તેમના નામ આ પ્રમાણે છે (૧) અપ્રતિલેખિત–દુષ્પ્રતિલેખિત શય્યાસંસ્તાર (૨) અપ્રમાર્જિત–દુષ્પ્રમાર્જિત શય્યાસંસ્તાર (૩) અપ્રતિલેખિત–દુષ્પ્રતિલેખિત–ઉચ્ચારપ્રસ્રવણભૂમિ ૫) પૌષધોપવાસનું સમ્યક્ પ્રકારે અનનુપાલન આ પાંચ પૌષધોપવાસ વ્રતના અતિચાર છે.

शय्या संस्तारकाणां न सर्वथा प्रतिलेखनम्-अन्यमनस्कतया प्रतिलेखनं च प्रथमोऽतिचारः १ तेषामेव शय्या संस्तारकाणां सर्वथा प्रमार्जनाऽभावोऽन्यमनस्कतया प्रमार्जनञ्च द्वितीयः २ एवमेवोच्चारप्रस्रवणभूमौ क्रमेण प्रकारद्वये तृतीय-चतुर्थौ ३-४ प्रवचनोक्तविध्यनुसारेण पौषधोपवासव्रतस्य सम्यगननुपालनाऽभावः, व्रतसमये-आहारशरीरसत्कारमैथुनादिविविधव्यापाराणामनुचिन्तनञ्च पञ्चमः ५ इति । तत्र संस्तारादौ जन्तवः सन्ति-न वा सन्ति-इत्येवं चक्षुर्व्यापाररूपं प्रत्यवेक्षणं-प्रतिलेखनम्, तदेव प्रतिलेखितमुच्यते । न प्रतिलेखितम्-अप्रतिलेखितम्,

इनमें से (१) शय्या और संस्तारक का प्रतिलेखन न करना अथवा अन्य मनस्कभाव से प्रतिलेखन करना प्रथम अतिचार है । (२) शय्या और संस्तारक का बिलकुल ही प्रमार्जन न करना या अन्यमनस्क होकर प्रमार्जन करना दूसरा अतिचार है । (३) इसी प्रकार उच्चार प्रस्रवणभूमि का प्रतिलेखन-प्रमार्जन न करना अथवा अन्य मनस्क होकर प्रतिलेखन-प्रमार्जन करना तीसरा और चौथा अतिचार है । (५) आगमोक्तविधि के अनुसार पौषधोपवास का समीचीनरूप से पालन न करना अर्थात् व्रत के समय में आहार का, शरीरशृंगार का, मैथुन आदि विविध प्रकार के व्यापारों का विचार करना पांचवां अतिचार है ।

संस्तारक आदि में जीव-जन्तु हैं या नहीं हैं, इस प्रकार चक्षु का व्यापाररूप जो अवलोकन है, उसे प्रतिलेखन कहते हैं । प्रतिलेखन ही प्रतिलेखित कहलाता है । जो प्रतिलेखित न हो अर्थात् देखा न गया

આમાંથી (૧) પથારી અને સંથારાનું પડિલેહન ન કરવું, અથવા અન્યમનસ્કભાવથી પડિલેહન કરવું પ્રથમ અતિચાર છે. (૨) પથારી અને સંથારાનું બીલકુલ જ પ્રમાર્જન ન કરવું અથવા અન્યમનસ્ક થઈને પ્રમાર્જન કરવું બીજો અતિચાર છે. (૩-૪) આવી જ રીતે ઉચ્ચારપ્રસ્રવણભૂમિનું પડિલેહન-પ્રમાર્જન ન કરવું અથવા અન્યમનસ્ક થઇને પ્રતિલેખન-પ્રમાર્જન કરવું એ ત્રીજા તથા ચોથા અતિચાર છે. (૫) આગમોક્ત વિધિ અનુસાર પૌષધવ્રતનું યોગ્ય રૂપથી પાલન ન કરવું અર્થાત્ વ્રતના સમયમાં આહારનું, શરીરસુશોભનનું, મૈથુન આદિ વિવિધ પ્રકારના વ્યાપારોનો વિચાર-ચિન્તવન કરવું પાંચમો અતિચાર છે.

સાથરા વગેરેમાં જીવ જન્તુ છે કે નહીં આ રીતે આંખના વ્યાપાર રૂપ જે અવલોકન છે તેને પ્રતિલેખન કહે છે. પ્રતિલેખન જ પ્રતિલેખિત

ऽप्रत्यवेक्षितमित्यर्थः। मृदुना–कोमलेन प्रमार्जनीप्रभृत्युपकरणेन क्रियमाणं संशोधनादिकं प्रमार्जित मुच्यते, न प्रमार्जित–मप्रमार्जितमित्यर्थः, एते पूर्वोक्ताः पौषधोपवासव्रतस्य तृतीयशिक्षाव्रतस्याऽतिचाराः अवगन्तव्याः। तस्मात्–व्रतधारिणा पौषधोपवासस्य पञ्चाऽतिचारवर्जनपूर्वकं पौषधोपवासव्रतमनुपालनीयम् ॥५१॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावत्–यथाक्रमं प्राप्तस्य देशावकाशिकव्रतरूप द्वितीय शिक्षाव्रतस्याऽऽनायनप्रयोगादिकाः पञ्चातिचाराः प्ररूपिताः। सम्प्रति–क्रमागतस्य पौषधोपवासव्रतरूपतृतीयशिक्षाव्रतस्याऽप्रतिलेखित–दुष्प्रतिलेखित–शय्यासंस्तारकादिकान् पञ्चातिचारान् प्ररूपयितुमाह–'पोसहोववासस्स अप्पडिलेहिय–दुप्पडिलेहिय–सिज्जा संथाराइया पंच अइयारा' इति। पौषधोपवासस्याऽप्रतिलेखित–दुष्प्रतिलेखितशय्यासंस्तारादिकाः – तत्राऽप्रतिलेखितशय्यासंस्तारकः १ अप्रमार्जित–दुष्प्रमार्जितशय्यासंस्तारकः २ अप्रतिले-

हो वह अप्रतिलेखित है। नरम पूंजनी आदि उपकरण के द्वारा किया जाने वाला संशोधन आदि प्रमार्जित कहलाता है। प्रमार्जित का अभाव अप्रमार्जित है। ये पाँच पूर्वोक्त तीसरे शिक्षाव्रत पौषधोपवास व्रत के अतिचार हैं। इस कारण व्रत का अनुष्ठान करने वाले श्रावक को अतिचारों से बचते हुए पौषधोपवासव्रत का सम्यक् प्रकार से पालन करना चाहिए ॥५१॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले द्वितीय शिक्षाव्रत देशावकाशिक के आनयनप्रयोग आदि पांच अतिचारों की प्ररूपणा की गई है। अब पौषधोपवासनामक तीसरे शिक्षाव्रत के अतिचारों का कथन करते हैं–

पौषधोपवास के पांच अतिचार हैं–(१) अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिले-

કહેવાય છે. જે પ્રતિલેખિત ન હોય અર્થાત્ જોવામાં ન આવ્યું હોય તે અપ્રતિલેખિત છે. સુંવાળી પૂંજણી આદિ ઉપકરણ દ્વારા કરવામાં આવનાર સંશોધન આદિ પ્રમાર્જિત કહેવાય છે. પ્રમાર્જિતનો અભાવ અપ્રમાર્જિત છે. આ પાંચ પૂર્વોક્ત ત્રીજા શિક્ષાવ્રત પૌષધોપવાસ વ્રતના અતિચાર છે. આ કારણે વ્રતનું અનુષ્ઠાન કરનાર શ્રાવકે અતિચારોથી બચતા થકા પૌષધોપવાસ વ્રતનું સમ્યક્ પ્રકારે પાલન કરવુ જોઈએ. ॥૫૧॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા દ્વિતીય શિક્ષાવ્રત દેશાવકાશિકના આનયન-પ્રયોગ આદિ પાંચ અતિચારોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે. હવે પૌષધો-પવાસ નામક ત્રીજા શિક્ષાવ્રતના અતિચારોનું કથન કરીએ છીએ–

પૌષધોપવાસના પાંચ અતિચાર છે–(૧) અપ્રતિલેખિત દુષ્પ્રતિલેખિત શય્યા-સંસ્તારક (૨) અપ્રમાર્જિત–દુષ્પ્રમાર્જિત શય્યાસંસ્તારક (૩) અપ્રતિલેખિત–

खितोच्चारप्रस्रवणभूमिः ३ अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जितोच्चारप्रस्रवणभूमिः ४ पोषधोपवास व्रतस्य सम्यगननुपालनञ्चेति ५ पञ्चातिचाराः। तत्र-शय्यासंस्तारकाणां न सर्वथा प्रतिलेखनञ्च प्रथमः १ तेषां शय्यासंस्तारकाणां न सर्वथा प्रमार्जनम् अन्यमनस्कतया प्रमार्जनं च द्वितीयः २ एवमेवोच्चारप्रस्रवणभूमौ क्रमेण प्रकारद्वये तृतीय-चतुर्थौ ३-४ प्रवचनोक्तविध्यनुसारेण पोषधोपवासव्रतस्य सम्यगननुपालनाऽभावः, व्रतसमये-आहारशरीरसत्कार मैथुनादि विविधव्यापाराणामनुचिन्तनञ्च पञ्चमः ५ इति, तत्र-प्रतिलेखनं सचित्ताऽचित्तमिश्र स्थावरत्रसजन्तु शून्यत्वेन शय्यादेश्चक्षुषा निरीक्षणम्, प्रमार्जनन्तु-रजोहरणादिना सम्मा-

खित शय्यासंस्तारक (२) अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जितशय्यासंस्तारक (३) अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित-उच्चारप्रस्रवणभूमि (४) अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जित—उच्चारप्रस्रवणभूमि और (५) पौषधव्रत का सम्यक् अननुपालन।

(१) शय्या और संथारे का सर्वथा ही प्रतिलेखन न करना अथवा असावधानी से प्रतिलेखन करना प्रथम अतिचार है। (२) शय्या और संस्तारक का बिलकुल प्रमार्जन न करना अथवा अन्यमनस्क भाव से प्रमार्जन करना दूसरा अतिचार है। (३-४) इसी प्रकार उच्चार भूमि और प्रस्रवणभूमि का प्रतिलेखन और प्रमार्जन न करना या सम्यक् प्रकार से प्रतिलेखन प्रमार्जन न करना तीसरा और चौथा अतिचार है। (५) आगमोक्त विधि के अनुसार पौषधव्रत का सम्यक् प्रकार से पालन न करना, यह पौषधव्रत का पांचवां अतिचार है।

शय्या और संस्तार में त्रस या स्थावर जीव तो नहीं हैं, यह

દુષ્પ્રતિલેખિત-ઉચ્ચારપ્રસ્રવણભૂમિ (૪) અપ્રમાર્જિત-દુષ્પ્રમાર્જિત-ઉચ્ચાર-પ્રસ્રવણભૂમિ અને (૫) પૌષધવ્રતનું સમ્યક્ અનનુપાલન. (૧) શય્યા અને સંથારાનું સર્વથા જ પ્રતિલેખન ન કરવું અથવા અસાવધાનીથી પ્રતિલેખન કરવું પ્રથમ અતિચાર છે. (૨) શય્યા અને સંસ્તારકનું બિલકુલ પ્રમાર્જન ન કરવું અથવા અન્યમનસ્કભાવથી પ્રમાર્જન કરવું બીજો અતિચાર છે. (૩-૪) આવી જ રીતે ઉચ્ચારભૂમિ અને પ્રસ્રવણભૂમિનું પ્રતિલેખન અને પ્રમાર્જન ન કરવું અથવા સમ્યક્ પ્રકારથી પ્રતિલેખન પ્રમાર્જન ન કરવું ત્રીજો અને ચોથા અતિચાર છે. (૫) આગમોક્ત વિધિના અનુસાર પૌષધવ્રતનું સમ્યક્-પ્રકારથી પાલન ન કરવું, એ પૌષધવ્રતનો પાંચમો અતિચાર છે.

શય્યા અને સંથારામાં ત્રસ અથવા સ્થાવર જીવ તો નથી એ જોઈ

र्जनम्, न प्रतिलेखितम् अप्रतिलेखितम्, एवं न प्रमार्जितम्-अप्रमार्जितम्। एवं-पौषधोपवास व्रतधारिणाऽगारिणाऽप्रत्यवेक्षित दुष्प्रतिलेखित शय्यासंस्तारादि पञ्चातिचारवर्जनपूर्वकमेव पौषधोपवासव्रतं पालनीयम्। उक्तञ्चोपासकदशाङ्गे प्रथमेऽध्ययने 'पोसहोववासस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा-अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सिज्जा संथारे, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जियसिज्जा संथारे, अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय उच्चार पासवणभूमी, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमी, पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालणया' इति पौषधोपवासस्य श्रमणोपासकेन पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा-अप्रतिलेखित दुष्प्रतिलेखितशय्यासंस्तारकः १ अप्रमार्जितदुष्प्रमार्जितशय्यासंस्तारकः २ अप्रतिलेखित दुष्प्रतिलेखितोच्चारप्रस्रवणभूमिः ३ अप्रमार्जितदुष्प्रमार्जितोच्चारप्रस्रवणभूमिः ४ पौषधोपवासस्य सम्यगननुपालनता इति ॥५१॥

देखना प्रतिलेखन कहलाता है। रजोहरण आदि के द्वारा पूजना प्रमार्जन कहलाता है। पौषधोपवासव्रत के धारक श्रावक को अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित शय्यासंस्तारक आदि पांच अतिचारों से बचते हुए पौषधोपवासव्रत का पालन करना चाहिए। उपासकदशांग सूत्र के प्रथम अध्ययन में कहा है-'पौषधोपवासव्रत के श्रमणोपासक को पांच अतिचार जानने चाहिए किन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे अतिचार ये हैं-(१) अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित शय्यासंस्तार (२) अप्रमार्जित दुष्प्रमार्जित शय्यासंस्तार (३) अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित उच्चारप्रस्रवणभूमि और पौषधोपवास का सम्यक् अननुपालन ॥५१॥

લેવું પ્રતિલેખન કહેવાય છે. રજોહરણ વગેરેની મદદથી પૂંજવું પ્રમાર્જન કહેવાય છે. પૌષધોપવાસ વ્રતના ધારક શ્રાવકે અપ્રતિલેખિત-દુષ્પ્રતિલેખિત શય્યાસંસ્તારક આદિ પાંચ અતિચારોથી બચતા થકા પૌષધોપવાસવ્રતનું પાલન કરવું જોઈએ. ઉપાસકદશાંગસૂત્રના પ્રથમ અધ્યયનમાં કહ્યું છે-'પૌષધોપવાસ વ્રતના શ્રમણોપાસકે પાંચ અતિચાર જાણવા જોઇએ પરન્તુ તેમનું આચરણ કરવું જોઇએ નહીં આ અતિચાર છે. (૧) અપ્રતિલેખિત-દુષ્પ્રતિલેખિત શય્યાસંસ્તાર (૨) અપ્રમાર્જિત-દુષ્પ્રમાર્જિત શય્યાસંસ્તાર (૩) અપ્રતિલેખિત-દુષ્પ્રતિલેખિત ઉચ્ચારપ્રસ્રવણભૂમિ અને (૫) પૌષધોપવાસનું સમ્યક્-અનનુપાલન. ॥૫૧॥

मूलम्-अतिहिसंविभागस्स सचित्तणिक्खेवणाइया पंच-अइयारा ॥५२॥

छाया—अतिथिसंविभागस्य सचित्तनिक्षेपणादिका पञ्चातिचाराः ।।५२॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वसूत्रे-पौषधोपवासव्रतस्याऽप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित शय्यासंस्तारादिकाः पञ्चातिचारा प्रदर्शिताः सम्प्रति द्वादशव्रते द्वादशस्य निक्षेपणादिकान् पञ्चातिचारान् प्ररूपयितुमाह-'अतिहिसंविभागस्स' इत्यादि-

अतिथिसंविभागस्य-पूर्वोक्तान्तिमशिक्षाव्रतस्याऽतिथिसंविभागव्रतस्य सचित्तनिक्षेपणादिकाः-सचित्तनिक्षेपणम् १ आदिना-सचित्तपिधानम् २ कालातिक्रमः ३ परव्यपदेशः ४ मात्सर्यम् ५ इत्येते पञ्चातिचारा आत्मनो मालिन्यापादका दुष्परिणतिविशेषाः भवन्ति । तत्र-सचित्तनिक्षेपणं तावत् अदानबुद्ध्या

'अतिहिसंविभागस्स' इत्यादि

सूत्रार्थ—अतिथिसंविभागव्रत के सचित्तनिक्षेप आदि पांच अतिचार हैं ॥५२॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्व सूत्र में पौषधोपवासव्रत के अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखितशय्या संस्तारक आदि पांच अतिचारों की प्ररूपणा की गई, अब श्रावक के वारहवां अतिथि संविभाग के पांच अतिचारों की प्ररूपणा करते हैं-

पूर्वोक्त अन्तिम शिक्षाव्रत अतिथिसंविभाग के सचित्त निक्षेपण आदि पांच अतिचार हैं, वे ये हैं-(१) सचित्तनिक्षेपण (२) सचित्तपिधान (३) कालातिक्रम (४) परव्यपदेश और (५) मात्सर्य। ये पांच अतिचार आत्मा के मलीन बनानेवाले दुष्परिणमन हैं। इनका अर्थ इस प्रकार है-

'अतिहिसंविभागस्स सचित्तणिक्खेवणाइया पच अइयारा' ।।५२।।

સૂત્રાર્થ-અતિથિસંવિભાગવ્રતના સચિત્તનિક્ષેપ વગેરે પાંચ અતિચાર છે. ।।૫૨।।

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં પૌષધોપવાસ વ્રતના અપ્રતિલેખિત-દુષ્પ્રતિલેખિત શય્યાસંસ્તારક આદિ પાંચ અતિચારોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી હવે શ્રાવકના બારમાં અતિથિસંવિભાગ વ્રતના પાચ અતિચારોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

પૂર્વોક્ત અન્તિમ શિક્ષાવ્રત અતિથિસંવિભાગ વ્રતના સચિત્ત નિક્ષેપણ આદિ પાંચ અતિચાર છે. તે આ પ્રમાણે છે-(૧) સચિત્ત નિક્ષેપણ (૨) સચિત્તપિધાન (૩) કાલાતિક્રમ (૪) પરવ્યપદેશ અને (૫) માત્સર્ય આ પાંચ અતિચાર આત્માને મલીન બનાવનારા દુષ્પરિણમન છે તેનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે-

सचित्ते कमलपत्रादौ निक्षेपणम् अशनादीनां स्थापनम्, यद्वा–सचित्तस्य धान्यादि पात्रादेरचित्ताहारादौ स्थापनम्, यद्वा–ऽदानबुद्धयाऽचित्तस्य सचित्तेन सचित्तस्याऽचित्तेन वा सम्मेलनम् १ सचित्तनिक्षेपणम्। एवम्–सचित्तेन पद्मपत्र–सचित्त जलपात्रादिना, अथवा–ऽचित्तेनाऽशनादिना सचित्तहरितादेः पिधानम् आच्छादनम् सचित्तपिधानम् २ एवं कालातिक्रमः साधोर्भिक्षा कालस्याऽतिक्रमणम्, अथवा योग्यकाले दानाभावनाकरणमित्यर्थः, यथा–साधुः सत्कृतोऽपि भवेत्–अशनादेर्व्ययोऽपि न भवेत् ३ परव्यपदेशस्तु–अशनादौ परस्याऽऽरोपणम्, यथा–परकीयमिदमशनादिकं–न मम' इत्यादि साधुसमीपे भाषणं परव्यपदेशः।

---

(१) अशन आदि आहार को न देने की बुद्धि से सचित्त कमलपत्र आदि पर रखना सचित्तनिक्षेपण है। या सचित्त धान्यपात्र आदि को अचित्त आहार आदि पर रखना अथवा न देने की भावना से अचित्त को सचित्त के साथ या सचित्त को अचित्त के साथ मिला देना सचित्तनिक्षेपण है।

(२) सचित्त कमलपत्र या जलपात्र आदि से अथवा सचित्त अशन आदि से अचित्त आहार आदि को ढंक देना सचित्तपिधान है।

(३) साधु के भिक्षा के समय का उल्लंघन करना। साधु को असमय में दान देने का उपक्रम करना जिससे साधु का सत्कार भी हो जाय और अशनादि भी बच जाय। यह कालातिक्रम अतिचार है।

(४) अपने अशन आदि को पराया बतलाना, परव्यपदेश अतिचार है, जैसे साधु से कहना कि यह अशन आदि मेरा नहीं है, दूसरे का है।

---

(૧) અશન આદિ આહારને નહીં આપવાની બુદ્ધિથી સચેત કમળપત્ર વગેરે પર રાખવો સચિત્ત નિક્ષેપણુ છે અથવા સચેત ધાન્યપાત્ર વગેરેને અચેત આહાર વગેરે પર રાખવા અથવા ન આપવાની ભાવનાથી અચેતને સચેતની સાથે અથવા સચેતને અચેતની સાથે ભેળવી દેવું સચિત્તનિક્ષેપણુ છે.

(૨) સચેત કમળપત્ર અથવા જળપાત્ર વગેરેથી અથવા સચેત અશન આદિથી અચેત આહાર વગેરેને ઢાંકી દેવું સચિત્ત પિધાન છે.

(૩) ગોચરીમાં–સાધુના સમયનું ઉલ્લંઘન કરવું. સાધુને કસમયે દાન આપવાનો ઉપક્રમ કરવો કે જેથી સાધુનો સત્કાર પણ થઇ જાય અને અશનાદિ પણ બચી જાય આ કાલતિક્રમ અતિચાર છે.

(૪) પોતાના અશન વગેરેને પારકું બનાવવું, પરવ્યપદેશ અતિચાર છે, જેમ કે સાધુને કહેવું કે આ ભોજન વગેરે મારૂં નથી, બીજાનું છે.

यद्वा-स्वयं सुस्थितो-दातुं शुद्धोऽपि परस्मै दातुं कथनम्, यथा-'अहङ्कार्यान्तर-संलग्नोऽस्मि त्वन्देहि' इति व्यपदेशः परव्यपदेशः ४ अन्यस्य दातुर्गुणाऽसहनं मात्सर्यम् ५ उक्तञ्चोपासकदशाङ्गे प्रथमाऽध्ययने-'तयाणंतरं च णं अहा-संविभागस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरि-यव्वा, तं जहा-सच्चित्तनिक्खेवणया १ सच्चित्तपेहणया २ कालाइक्कमे ३ परववएसे ४ मच्छरिया ५।'

छाया-तदनन्तरं यथा संविभागस्य श्रमणोपासकेन पंचाऽतिचारा ज्ञातव्याः तद्यथा-सचित्तनिक्षेपणता-सचित्तपिधानता-कालातिक्रमः-परव्यपदेशः मत्स-रिता इति ॥५२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावत् पञ्चाणुव्रत-त्रिगुणव्रत-शिक्षाव्रतत्रयाणां यथाक्रमं पञ्च-पञ्चाऽतिचाराः प्ररूपिताः, सम्प्रति-चतुर्थस्याऽतिथिसंविभागव्रत-रूपान्तिमशिक्षाव्रतस्य सचित्तनिक्षेपणादिकान् पञ्चातिचारान् प्ररूपयितुमाह-

(५) अन्य दाता के गुणों को सहन न करना मात्सर्य नामक अतिचार है।

उपासकदशांग सूत्र के प्रथम अध्ययन में कहा है-श्रमणोपासक को अतिथिसंविभागव्रत के पांच अतिचार जानना चाहिए परन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे पांच अतिचार इस प्रकार हैं-(१) सचित्तनिक्षेपणता (२) सचित्तपिधानता (३) कालातिक्रम (४) परव्यप-देश और (५) मत्सरिता ॥५२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले पांच अणुव्रतों के, तीन गुणव्रतों के तथा चार में से तीन शिक्षाव्रतों के पांच-पांच अतिचारों का कथन किया जा चुका है। अब चौथे शिक्षाव्रत अतिथिसंविभाग के सचित्तनिक्षेप आदि पांच अतिचारों का प्ररूपण करते हैं-

(૫) અન્ય દાતાના ગુણોને સહન ન કરવા માત્સર્ય નામક અતિચાર છે.

ઉપાસકદશાંગ સૂત્રના પ્રથમ અધ્યયનમાં કહ્યું છે-શ્રમણોપાસકે અતિથિ-સંવિભાગ વ્રતના પાંચ અતિચાર જાણવા જોઈએ આ પાંચ અતિચાર આ પ્રમાણે છે-(૧) સચિત નિક્ષેપણતા (૨) સચિત્ત પિધાનતા (૩) કાલાતિક્રમ (૪) પરવ્યપદેશ અને (૫) મત્સરિતા. ॥૫૨॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—આની પહેલા, પાંચ અણુવ્રતોના, ત્રણ ગુણવ્રતોના તથા ૪ ચારમાંથી ત્રણ શિક્ષાવ્રતોના પાંચ-પાંચ અતિચારોનું કથન કરવામાં આવ્યું છે હવે ચોથા શિક્ષાવ્રત અતિથિસંવિભાગના સચિત્તનિક્ષેપ આદિ પાંચ અતિચારોનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ-

'अतिहिसंविभागस्स' इत्यादि। अतिथिसंविभागस्य-पूर्वोक्तस्याऽतिथि संविभागव्रतस्याऽन्तिम शिक्षाव्रतरूपस्य सचित्तनिक्षेपणादिकाः-सचित्तनिक्षेपणम् १ आदिना-सचित्तविधानम् २ कालातिक्रमः ३ परव्यपदेशः ४ मात्सर्यम् ५ चेत्येते पञ्चातिचारा आत्मनो मालिन्यापादका दुष्परिणतिविशेषा भवन्ति। तत्र सचित्त-निक्षेपणं तावत्-अशनपानखादिमस्वादिमरूपचतुर्विधाऽऽहारस्य सचित्तेषु कमल-कदलीपत्रादिषु व्रीहियवगोधूम शाल्यादि सस्येषु निक्षेपणम्, अदानबुद्ध्या स्थापनम्, इत्येवं सचित्तनिक्षेपणमवसेयम् १ अन्नादिक मोदनखाद्यादि सचित्ते निक्षिप्तं सत् श्रमणाः खलु न गृह्णन्ति इत्यतो मया देयमशनादिक मुपस्थाप्यते, किन्तु-साधवो नाऽऽददत इति मम लाभोऽयं भविष्यतीति जानात्यसाविति भावः।

अन्तिम शिक्षाव्रत अतिथिसंविभाग के पांच अतिचार हैं-(१) सचित्तनिक्षेपण (२) सचित्तपिधान (३) कालातिक्रम (४) परव्यपदेश और (५) मात्सर्य। ये पांच अतिचार आत्मा में मलीनता उत्पन्न करने वाले दुष्परिणमनरूप हैं। इनका अर्थ इस प्रकार है-

(१) सचित्तनिक्षेपण-अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप चारों प्रकार के आहार को कमल या केले के सचित्त पत्ते आदि के ऊपर या व्रीहि, यव, गेहूं, शालि आदि धान्य के ऊपर, न देने की बुद्धि से, रख देना।

अन्न आदि ओदन तथा खाद्य आदि जो सचित्त के ऊपर रक्खा हुआ होता है, उसे साधु ग्रहण नहीं करते, अतएव मैं तो अशनादि उनके समक्ष उपस्थित करूंगा मगर वे लेंगे नहीं, इससे मुझे लाभ ही होगा, ऐसा जानकर गृहस्थ सचित्तनिक्षेपण करे तो अतिचार होता है।

અન્તિમ શિક્ષાવ્રત અતિથિસંવિભાગના પાંચ અતિચાર છે-(૧) સચિત્ત-નિક્ષેપણુ (૨) સચિત્તપિધાન (૩) કાલાતિક્રમ (૪) પરવ્યપદેશ અને (૫) માત્સર્ય આ પાંચ અતિચાર આત્મામાં મલીનતા ઉત્પન્ન કરવાવાળા દુષ્પરિ-ણમન રૂપ છે. તેમનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે-

(૧)સચિત્તનિક્ષેપણુ-અશન, પાન, ખાદ્ય અને સ્વાદ્ય રૂપ ચારે પ્રકારના આહારને કમળ અથવા કેળના સચેત પાંદડાં આદિની ઉપર અથવા ચોખા, જવ, ઘઉં, ડાંગર વગેરે ધાન્યની ઉપર, ન આપવાની બુદ્ધિથી રાખી દેવા.

(૧) અન્ન આદિ ચોખા (ભાત) તથા ખાદ્ય આદિ જે સચેતની ઉપર રાખેલા હોય છે, તેને સાધુ ગ્રહણુ કરતા નથી આથી હું તો અશનાદિ તેમની સમક્ષ ઉપસ્થિત કરીશ પણુ તેઓ સ્વીકારશે. નહીં, આથી મને તો લાભ જ થશે, આમ જાણીને ગૃહસ્થ સચિતનિક્ષેપણુ કરે તો અતિચાર લાગે છે.

एवं-सचित्तपिधानम्, सचित्तेन सूरणकन्दपत्रपुष्पादिनाऽशनपानादि चतुर्विधाहारस्य पिधानम् अदानबुद्धयाऽऽच्छादनम्, सचित्तपिधानम्, अशनादिकं सचित्तेनाऽऽच्छादितं सत् साधवो न गृह्णन्तीति बुद्धया सचित्तेन स्थगयतीति भावः २ कालातिक्रमस्तु-श्रमणानामुचितां भिक्षावेलामतिक्रम्य उल्लंघ्य भोजनम्, यद्वा-साधूनां भिक्षार्थ मागमनकालात् प्रागेव भोजनम्-कालातिक्रमः उच्यते। स चाऽयं कालातिक्रमो भिक्षाग्रहीतुः श्रमणस्याऽप्रीतिकारको भवति-अदानञ्चेति भावः ३ परव्यपदेशस्तु-चतुर्थ-षष्ठाऽष्टम भक्तादि पौषधोपवासव्रतपारणावेलायां भिक्षार्थं समागतं स्पष्टतयाऽन्नादिकं पश्यन्तमपि श्रमणं प्रति परस्येदमन्नादिकं वर्तते-न ममेति, तस्मात्-न दातुमर्हामि-इत्येवमपरमार्थतः कथनं परव्यपदेशः, परमार्थ·

(२) सचित्तपिधान-सचित्त सूरण कन्द, पत्र, पुष्प आदि से अशन पान आदि चार प्रकार के आहार को ढंक देना अर्थात् साधु को न देने की भावना से आच्छादित करदेना सचित्तपिधान अतिचार है। क्यों कि सचित्त वस्तु से आच्छादित आहार को साधु ग्रहण नहीं करते हैं।

(३) कालातिक्रम-साधुओं के भिक्षाकाल को टाल कर भोजन कर लेना, वा यद्यपि साधु का भिक्षा काल दिन का ही है, अतः दान न देने की इच्छा से रात्रि भोजन करना इत्यादि यह कालातिक्रम भिक्षा ग्रहण करने वाले श्रमण के लिए अप्रीतिकर होता है और इससे दान का अभाव भी होता है।

(४) परव्यपदेश—उपवास, वेला, तेला आदि की तपस्या करने वाले या नित्य भोजी श्रमण के भिक्षार्थ उपस्थित होने पर सामने

(૨) સચિત્તપિધાન-સચેત સૂરણકન્દમૂળ, પત્ર, પુષ્પ આદિથી અશનપાન આદિ ચાર પ્રકારના આહારને ઢાંકી દેવો અર્થાત્ સાધુને ન વહોરાવવાની ભાવનાથી ઢાંકી દેવું સચિત્તપિધાન અતિચાર છે કારણ કે સચેત વસ્તુથી આચ્છાદિત આહારને સાધુ ગ્રહણ કરતા નથી.

(૩) કાલાતિક્રમ-સાધુઓના ભિક્ષાકાળને ટાળીને, અર્થાત્ સાધુને ભિક્ષાકાળ દિવસને જ હોય આથી દાન ન આપવાની ઇચ્છાથી રાત્રિભોજન કરવું વગેરે-આ કાલાતિક્રમ ભિક્ષા ગ્રહણ કરનારા શ્રમણ માટે અપ્રીતિકર હોય છે અને આથી દાનનો અભાવ પણ થાય છે.

(૪) પરવ્યપદેશ-ઉપવાસ, છટ્ઠ અઠ્ઠમ વગેરેની તપસ્યા કરનારા અથવા નિત્ય ભોજન લેનાર શ્રમણનું ભિક્ષાર્થે ઉપસ્થિત થવા પર નજર સામે

वस्तु-तदीयमेव तदन्नादिकं वर्तते, यद्वा-परस्य-अन्यजनस्येदमन्नादिकं वर्तते इति तत्र तं गत्वा यूयं भिक्षध्वम् इत्येवं परव्यपदेशः ४ । एवम्-मात्सर्यं तावत्-मत्सरता, यः श्रावको भिक्षादिकं श्रमणेन भिक्षितः सन् क्रुध्यति अनादरं वा करोति, याचितोऽपि न ददाति स मत्सर उच्यते, तस्य भावो मात्सर्यम्, परगुणोत्कर्षाऽसहिष्णुत्वं वा, मात्सर्यम् । यद्वा-स खलु द्रमको दत्तवान् किमहं ततोऽपि न्यूनोऽस्मीत्येवं मात्सर्यात्-दाने मात्सर्यं व्यपदिश्यते, अथवा-कषाय कलुषितेन चित्तेन श्रमणेभ्यो ददतः श्रावकस्य मात्सर्यमुच्यते ५ तथाचैते पञ्चाऽतिथिसंविभागस्याऽतिचारा भवन्ति। उक्तञ्चोपासकदशाङ्गे प्रथमेऽध्ययने-'अहा संविभागस्स पंच अइयारा जाणियव्वा, न समाचरियव्वा, तं जहा-सचित्तनिक्खेवणया, सचित्तपेहणया, कालाइक्कमदाणे, परोवएसे मच्छारिया'

स्पष्ट दिखलाई देने वाले अन्न-पान आदि आहार के विषय में ऐसा कहना कि-'यह अन्न-पान पराया है, मेरा नहीं है, अतएव देने के लिये मैं असमर्थ हूं जब कि वह आहार वास्तव में उसी गृहस्थ का हो, दूसरे का न हो।

(५) मात्सर्य श्रमण द्वारा भिक्षा की याचना करने पर जो श्रावक क्रुद्ध हो जाता है, श्रमण का अनादर करता है अथवा याचना करने पर भी देता नहीं है, वह मत्सर कहलाता है। मत्सर का भाव मात्सर्य है। अथवा दूसरे के गुण को सहन न करना मात्सर्य है। अथवा उस दरिद्र ने दान दिया है तो क्या मैं उससे भी गया बीता हूं, इस प्रकार के मात्सर्य भाव से दान देना भी मात्सर्य कहलाता है। अथवा कषाय से कलुषित चित्त से श्रमणों को दान देना मात्सर्य है।

ये पांच अतिथिसंविभागव्रत के अतिचार हैं। उपासकदशांग

સ્પષ્ટ દેખાતાં અન્ન-પાણી આદિ આહારના વિષયમાં આ પ્રમાણે કહેવું કે-'આ અનાજ-પાણી, બીજાનાં છે, મારા નથી એ આપવા માટે હું લાચાર છું. આ પરવ્યપદેશ નામક અતિચાર છે. હકીકતમાં તો તે આહાર ઈન્કાર કરનાર પેલા ગૃહસ્થનો જ છે, બીજાનો નથી.

(૫) માત્સર્ય-શ્રમણ દ્વારા ભિક્ષાની યાચના કરવામાં આવે ત્યારે જે શ્રાવક ગુસ્સે થઈ જાય છે, શ્રમણનો અનાદર કરે છે અથવા યાચના કરવા છતાં પણ આપતો નથી તે મત્સર કહેવાય છે. મત્સરનો ભાવ માત્સર્ય છે અથવા બીજાના ગુણો સહન ન કરવા માત્સર્ય છે અથવા પેલા દ્રરિદ્રે દાન આપ્યું છે તો શું હું તેનાથી ઉતરતી કક્ષાનો છું ? એ પ્રકારના માત્સર્ય ભાવથી દાન આપવું પણ માત્સર્ય કહેવાય છે અથવા કષાયથી કલુષિત ચિત્તથી શ્રમણોને દાન આપવું માત્સર્ય છે.

આ પાંચ અતિથિસંવિભાગ વ્રતના અતિચાર છે. ઉપાસકદશાંગસૂત્રના

इति। यथा संविभागस्य पञ्चाऽतिचारा ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा-सचित्तनिक्षेपणम् १ सचित्तपिधानम् २ कालातिक्रमदानम् ३ परव्यपदेशः ४ मत्सरता ५ इति ॥५२॥

मूलम्-मारणंतिय संलेहणाजोसणाए इहलोगासंसप्पओगाइया पंच अइयारा ॥५३॥

छाया—मारणान्तिकसंलेखनाया जोषणा इहलोकाऽऽशंसा प्रयोगादिकाः पञ्चातिचाराः ॥५३॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रेऽतिथिसंविभागव्रतरूपस्या-ऽन्तिमशिक्षाव्रतस्य द्वादशसु द्वादशस्य सचित्तनिक्षेपणादिकाः पञ्चातिचाराः प्ररूपिताः, द्वादशव्रत पालनानन्तर-मासन्नमरणं सम्भाव्य यथाऽवसरं श्रावकैः संलेखनाऽवश्यं कर्त्तव्या

सूत्र के प्रथम अध्ययन में कहा है-यथासंविभागव्रत के पांच अतिचार जानना चाहिए मगर उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे अतिचार यों हैं-(१) सचित्तनिक्षेपणता (२) सचित्तपिधानता (३) कालातिक्रम-दान (४) परव्यपदेश और (५) मत्सरता ॥५२॥

'मारणंतिय संलेहणा' इत्यादि।

मारणान्तिकसंलेखना जोषणा के इहलोकाशंसा प्रयोग आदि पांच अतिचार हैं ॥५३॥

तत्त्वार्थदीपिका--पूर्वसूत्र में अन्तिम शिक्षाव्रत, बारह व्रतों में बारह वें अतिथिसंविभाग के सचित्तनिक्षेपण आदि पांच अतिचारों का प्ररूपण किया गया है। बारह व्रतों का पालन करते हुए श्रावक को जब अपना मरण सन्निकट प्रतीत हो तब अवसर आने पर संले-खना अवश्य करना चाहिए। संलेखना का आशय है-कषाय और

પ્રથમ અધ્યયનમાં કહ્યું છે-અતિથિસંવિભાગ વ્રતના પાંચ અતિચાર જાણવા જોઈએ પરન્તુ તેમનુ આચરણુ કરવું જોઈએ નહીં. આ અતિચાર આ છે-(૧) સચિત્તનિક્ષેપણુતા (૨) સચિત્તપિધાનતા (૩) કાલાતિક્રમદાન (૪) પર-વ્યપદેશ અને મત્સરતા. ।।૫૨।।

'मारणांतिय संलेहणाजोखणाए' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-મારણાન્તિકસંલેખનાજોષણાના ઈહલોકાશંસાપ્રયોગ આદિ પાંચ અતિચાર છે. ।।૫૩।।

તત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં અન્તિમ શિક્ષાવ્રત, બાર વ્રતોમાં બારમા અતિથિસંવિભાગના સચિત્તનિક્ષેપણુ આદિ પાંચ અતિચારોનું પ્રરૂપણુ કરવામાં આવ્યું છે. બાર વ્રતોનું પાલન કરતા થકા શ્રાવકને જ્યારે પોતાનું મરણુ સમીપ છે તેવી ખાત્રી થાય ત્યારે અવસર આવવા પર સંલેખના અવશ્ય કરવી જોઈએ,

सा च संलेखना कषायकायकृशीकरणम्, ततोऽस्या मारणान्तिकसंलेखनाया जीविताशंसादिकान् पञ्चाऽतिचारान् प्ररूपयितुमाह–'मारणंतियसंलेहणा जोसणाए' इत्यादि। मारणान्तिकसंलेखनाजोषणायाः पूर्वोक्तस्वरूपायाः संयम-तपोभ्यां कायकषायकृशीकरणलक्षणाया इहलोकाशंसाप्रयोगादिकाः– इहलोकाशंसाप्रयोगः १ आदिना–परलोकाशंसाप्रयोगः२ जीविताशंसाप्रयोगः३ मरणाशंसाप्रयोगः ४ कामभोगाशंसाप्रयोगः ५ तत्र–संस्तारग्रहणोत्तरम्–इहलोके-मनुष्यलोके आशंसाप्रयोगः, 'मृत्वा चक्रवर्ती वा–राजा वा–तन्मन्त्री वा भूयास' मित्यादिकरूपाभिलापकरणम् १ एवं–परलोकाऽऽशंसाप्रयोगः 'देवो-भूयासं' इत्यादिरूपाभिलापकरणम् २ सम्मानादि लोभेन जीवितस्य–प्राणधारण

काय को कृश करना। अतएव इस मारणान्तिक संलेखना के जीविताशंसा आदि पांच अतिचारों का प्ररूपण करते हैं

जिसका स्वरूप पहले कहा जा चुका है और तप एवं संयम के द्वारा काय तथा कषाय को कृश (दुर्बल) करना जिसका लक्षण है, उस मारणान्तिक संलेखना जोषणा के पांच अतिचार हैं। वे इस प्रकार हैं–(१) इहलोकाशंसा प्रयोग (२) परलोकाशंसाप्रयोग (३) जीविताशंसाप्रयोग (४) मरणाशंसाप्रयोग और (५) कामभोगाशंसाप्रयोग। इनका स्वरूप निम्नलिखित है–

(१) इहलोकाशंसाप्रयोग–संथारा ग्रहण करने के पश्चात् इस लोक संबंधी इच्छा करना, जैसे–मरने के अनन्तर मैं चक्रवर्त्ती, राजा या उसका मंत्री बन जाऊं, इस प्रकार की अभिलाषा करना।

(२) परलोकाशंसाप्रयोग–मृत्यु के पश्चात् इन्द्र या देव होने

સંલેખનાનો આશય છે–કષાય તથા કાયાને પાતળા પાડવાં આથી આ મારણાન્તિકસંલેખનાના જીવીતાશંસા આદિ પાંચ અતિચારોનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ–

જેનું સ્વરૂપ પહેલા કહેવામાં આવી ગયું છે અને તપ તથા સંયમ દ્વારા કાયા તથા કષાયને પાતળા પાડવા જેનું લક્ષણ છે તે મારણાન્તિક-સંલેખના જોષણાના પાંચ અતિચારો આ પ્રમાણે છે–(૧) ઈહલોકાશંસાપ્રયોગ (૨) પરલોકાશંસાપ્રયોગ (૩) જીવિતાશંસાપ્રયોગ અને (૫) કામભોગાશંસા-પ્રયોગ તેમનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે–

(૧) ઈહલોકાશંસાપ્રયોગ–સંથારો ધારણ કર્યા બાદ આ લોક વિશે ઈચ્છા કરવી જેમ કે–મરણ પછી હું ચક્રવર્તી, રાજા અથવા તેનો મંત્રી બની જઉં, એ જાતની અભિલાષા કરવી.

(૨) પરલોકાશંસાપ્રયોગ–મૃત્યુ બાદ ઈન્દ્ર અથવા દેવ થવાની

स्या-ऽऽशंसाप्रयोगः-अभिलाषकरणं जीविताऽऽशंसाप्रयोगः ३ कर्कशक्षेत्रादि-निवासप्रयुक्त क्षुदाद्युपद्रुततया सम्मानाद्यभावेन-'कदाऽहं म्रियेय' इत्यादिरूपं मरणस्याऽभिलाषकरणं मरणाशंसाप्रयोगः ४ कामौ-शब्दरूपे, भोगाः-गन्धरस-स्पर्शा स्तत्राऽऽशंसाप्रयोगः-अभिलाषकरणं कामभोगाऽऽशंसाप्रयोगः, रुचिर-स्पृहयालुतेत्यर्थः ५ । ५३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः--पूर्वं तावदनुक्रमेण पञ्चाणुव्रतानां त्रयाणां गुणव्रतानां चतुर्णां शिक्षाव्रतानाञ्च पञ्च-पञ्चातिचाराः प्ररूपिताः, सम्प्रति-मारणान्तिक सलेखना जोषणायाः पञ्चातिचारान् प्ररूपयितुमाह-'मरणांतिय संलेहणा-

---

की अभिलाषा करना ।

(३) जीविताशंसाप्रयोग--आदर-सन्मान, भक्ति आदि के लोभ से जीवित रहने की इच्छा करना ।

(४) मरणाशंसाप्रयोग-कठोर भूमि में निवास करने से, भूख आदि की पीडा के कारण या सन्मान आदि न होने के कारण 'मैं कब मर जाऊं' इस प्रकार मरण की कामना करना ।

(५) कामभोगाशंसाप्रयोग—काम अर्थात् शब्द और रूप तथा भोग अर्थात् गंध, रस और स्पर्श की कामना करना कामभोगाशंसा प्रयोग नामक अतिचार है ॥५३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-- इससे पहले पांच अणुव्रतों के, तीन गुणव्रतों के और चार शिक्षाव्रतों के पांच पांच अतिचारों का प्ररूपण किया

અભિલાષા કરવી

(૩) જીવિતાશંસાપ્રયોગ-આદર-સન્માન, ભક્તિ આદિના લોભથી જીવતા રહેવાની ઇચ્છા કરવી.

(૪) મરણાશંસાપ્રયોગ-ખરબચડી જમીન પર નિવાસ-કરવાથી, ભૂખ વગેરેની પીડાના કારણે અથવા માન-સન્માન ન મળવાથી 'હું ક્યારે મરી જાઉં' એ પ્રકારે મરણની કામના કરવી.

(૫) કામભોગાશંસાપ્રયોગ-કામ અર્થાત્ શબ્દ અને રૂપ તથા ભોગ અર્થાત્ ગંધ, રસ અને સ્પર્શની કામના કરવી કામભોગાશંસાપ્રયોગ નામક અતિચાર છે ॥૫૩॥

તત્વાર્થનિર્યુક્તિ—આની પહેલા પંચ અણુવ્રતોના, ત્રણ ગુણવ્રતોના અને ચાર શિક્ષાવ્રતોનાં પાંચ-પાંચ અતિચારોનું પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે હવે

जोसणाए इहलोगासंसप्पओगाइया पंच अइयारा' इति। मारणान्तिक संलेखनायाः संयम-तपश्चर्यादिना कायकषाय कृशीकरणलक्षणमारणान्तिक संलेखना जोषणाया इहलोकाशंसाप्रयोगादिका.-इहलोकाशंसाप्रयोगः १ आदिना-परलोकाशंसाप्रयोगः २ जीविताशंसाप्रयोगः ३ मरणाशंसाप्रयोगः ४ कामभोगाशंसाप्रयोगः ५ तत्र तावत्-संस्तारग्रहणोत्तरम् इहलोके-मनुष्यलोके भविष्यज्जन्मनि-आशंसाप्रयोगः, 'मृत्वा चक्रवर्ती वा-राजा वा-तन्मन्त्री वा भूयास' मित्यादिरूपाभिलाषकरणम् १ एवं-परलोकाशंसाप्रयोगः 'देवोऽभूयासम्' इत्या-

---

गया है, अब मारणान्तिक संलेखना-जोषणा के पांच अतिचारों की प्ररूपणा करते हैं-

तप और संयम के द्वारा काय एवं कषाय को कृश करना जिस का लक्षण है, उस मारणान्तिक संलेखना जोषणा के इस लोकाशंसाप्रयोग आदि पांच अतिचार ये हैं-(१) इहलोकाशंसाप्रयोग (२) परलोकाशंसाप्रयोग (३) जीविताशंसाप्रयोग (४) मरणाशंसाप्रयोग और (५) कामभोगाशंसाप्रयोग। इनका स्वरूप इस प्रकार है-

(१) संथारा ग्रहण करने के पश्चात्, आगामी जन्म में मनुष्यलोक संबंधी अभिलाषा करना, जैसे मैं चक्रवर्त्ती या राजा या राजमंत्री हो जाऊं, इत्यादि। यह लोकाशंसाप्रयोग है।

(२) इसी प्रकार मैं इन्द्र या देव हो जाऊं, ऐसी कामना करना परलोकाशंसाप्रयोग है।

આ મારણાન્તિક સંલેખના-જોષણાના પાંચ અતિચારોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ.

તપ અને સંયમ દ્વારા કાયા તથા કષાયોને પાતળા પાડવા જેનું લક્ષણ છે, તે મારણાન્તિકસંલેખના-જોષણાના ઇહલોકાશંસાપ્રયોગ આદિ પાંચ અતિચાર છે, આ પ્રમાણે-(૧) ઇહલોકાશંસાપ્રયોગ (૨) પરલોકાશંસાપ્રયોગ (૩) જીવિતાશંસાપ્રયોગ (૪) મરણાશંસાપ્રયોગ અને (૫) કામભોગાશંસાપ્રયોગ તેમનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે-

(૧) સંથારો ધારણ કર્યા બાદ, આવતા જન્મમાં મનુષ્યલોક સંબંધી અભિલાષા કરવી જેમ કે-હું ચક્રવર્ત્તી રાજા અથવા રાજમંત્રી થઈ જાઉં, વગેરે આ ઇહલોકાશંસાપ્રયોગ છે. (૨) એવી જ રીતે હું ઇન્દ્ર અથવા દેવ થઈ જાઉં એવી કામના કરવી પરલોકાશંસાપ્રયોગ છે. (૩) સંથારા દરમ્યાન મારી પૂજા તથા મહિમા ઘણો વધી રહ્યો છે આથી મારો સંથારો લાંબા સમય સુધી ખેંચાય તો સારૂં એ રીતે સંથારામાં વધારે જીવવાની ઇચ્છા કરવી જીવિતાશંસાપ્રયોગ છે.

दिरूपाभिलाषकरणम् २ जीविताशंसाप्रयोगश्च-संस्तारके मदीयमहिमा पूजा असीमरूपेण भवति । अतो मदीयसंस्तारकः दीर्घसमयं यावत् प्रचलेत तु वरम् । अमुना प्रकारेण संस्तारके अधिकजीवनेच्छाकरणं जीविताशंसाप्रयोगः । एवंविध जीविताशंसा विपरीता खलु मरणाशंसाऽवसेया-तथाहि-नहि तथाविधं प्रतिपन्नाऽनशनं मां कश्चिद्गवेषयति, न वा-कश्चित् पूजते माम्, नाऽप्याद्रियते, नो वा-कश्चित् श्लाघते' इत्येवं भावनया तस्य चेतसि परिणामो जायते 'यदिह झटित्येऽहं म्रियेय पापकर्मेतिरूपा मरणाशंसा दोषधाः ३ कर्कशक्षेत्रादि निवासप्रयुक्त क्षुदाद्युपद्रततया सम्मानाद्यभावेन 'कदाहं म्रियेय' इत्यादिरूपं मरणस्याभिलाषकरणं-मरणाशंसाप्रयोगः ४ कामौ शब्दरूपे, भोगाः-गन्धरसस्पर्शा स्तत्राशंसा-

संथारे में मेरी महिमा पूजा खूब हो रही है। इसलिये मेरा संथारा लम्बे समय तक चले तो अच्छा है, इस प्रकार संथारे में अधिक जीनेकी इच्छा करना जीविताशंसा प्रयोग है।

(४) जीविताशंसप्रयोग से विपरीत मरणाशंसाप्रयोग समझना चाहिए। यथा-मैंने आजीवन अनशन अंगीकार कर लिया है फिर भी कोई मुझे पूछता नहीं है, कोई मेरी पूजा नहीं करता, कोई आदर नहीं करता, कोई प्रशंसा नहीं करता, इस प्रकार की भावना से चित्त में ऐसा विचार उत्पन्न होना कि-'मैं शीघ्र ही मर जाऊं तो अच्छा!' यह मरणाशंसाप्रयोग है। इसी प्रकार कर्कश भूभाग में निवास करने के कारण कष्ट हो या क्षुधा आदि वेदना पीडित कर रही हो, रोगजनित कष्ट हो तब 'हाय, मैं कब मर जाऊं शीघ्र मर जाऊं तो अच्छा' इस प्रकार सोचना भी मरणाशंसाप्रयोग है।

(५) श्रोत्र और चक्षु इन्द्रियों के विषय अर्थात शब्द और रूप

(४) જીવિતાશંસાપ્રયોગથી વિપરીત મરણાશંસાપ્રયોગ સમજવો જેમ કે-મેં આજીવન અનશન અંગીકાર કરી લીધું છે તો પણ કોઈ મારો ભાવ પૂછતા નથી, કોઈ મારી પૂજા કરતું નથી, કોઈ આદર કરતું નથી, કોઈ તેના વખાણ કરતા નથી આ જાતની ભાવનાથી ચિત્તમાં એવો વિચાર ઉદ્ભવવો કે 'હું વહેલો મરી જાઉં તો સારૂં' આ મરણાશંસાપ્રયોગ છે. એવી જ રીતે કર્કશ જમીન પર રહેવાના કારણે કષ્ટ થાય અથવા ક્ષુધા આદિની વેદના દુઃખ આપી રહી હોય, રોગજનિત કષ્ટ થાય તેવા સંજોગોમાં, 'હાય હાય! ક્યારે મરી જાઉં, જલદીથી મરી જાઉં તો સારૂં' આ રીતે વિચારવું એ પણ મરણાશંસાપ્રયોગ છે.

(૫) શ્રોત્ર અને ચક્ષુ ઇન્દ્રિયોના વિષય અર્થાત્ શબ્દ અને રૂપ કામ

प्रयोगो-ऽभिलापकरणं कामभोगाशंसाप्रयोगः, रुचिरविषयस्पृहयालुतेत्यर्थः ५ इत्येते पञ्चजीविताशंसादयो मारणान्तिकसंलेखना जोषणाया अतिचारा बोध्याः। एवञ्च-पञ्चाणुव्रतेषु त्रिगुणव्रतेषु चतुःशिक्षाव्रतेषु मारणान्तिकसंलेखनाजोषणासु च सर्वे सम्मिलितत्रयोदशव्रतेषु प्रत्येकं पञ्च-पञ्चातिचारैः पञ्चषष्टिरतिचाराः पूर्वोक्तरीत्या प्ररूपिताः, ते च-सर्वेऽतिचाराः सर्वथाऽणुव्रतशीलव्रतधारिभिः परिहर्तव्याः। यद्यपि-सम्यक्त्वस्याऽप्यतिचार पञ्चकस्य सद्भावेन सप्तति संख्यकाः सर्वेऽतिचारा भवन्ति, न तु-पञ्चषष्टि संख्यका एव,-तथापि-मूलप्रासाद पीठ रचनावत् सम्यक्त्वव्रतम् अणुव्रतादीनामाधारो वर्तते, तस्मात्-तस्या-ऽऽधारत्वा-द्व्रतशीलेषु न तदतिचारग्रहणं भवति। एवञ्च-उक्तरीत्या वह्वपायदर्शनात्-

काम कहलाते हैं और स्पर्शन, रसना तथा घ्राण इन्द्रियों के विषय अर्थात् गंध, रस और स्पर्श भोग कहलाते हैं। इन काम और भोग की इच्छा करना कामभोगाशंसाप्रयोग है। तात्पर्य यह है कि मनोज्ञ विषयों की कामना करना कामभोगाशंसाप्रयोग है।

इस प्रकार पांच अणुव्रतों के, तीन गुणव्रतों के चार शिक्षाव्रतों के तथा मारणान्तिकसंलेखनाजोषणा के, सब मिलकर तेरह व्रतों के पांच-पांच अतिचार होने से १३×५=६५ अतिचार हुए। इन सब का प्ररूपण किया जा चुका। इन सब का अणुव्रतधारी एवं सप्त शील-धारी श्रावक को परिहार करना चाहिए। यद्यपि सम्यक्त्व के भी पांच अतिचार हैं, इस कारण अतिचारों की संख्या पैंसठ नहीं सत्तर होती है, तथापि सम्यक्त्व, महल की नींव की तरह सब व्रतों का आधार है। अतएव व्रतों के अतिचारों के साथ उसके अतिचारों की गणना

કહેવાય છે અને સ્પર્શન, રસના (જીભ) તથા ઘ્રાણ ઇન્દ્રિયોના વિષય અર્થાત્ ગંધ, રસ અને સ્પર્શ ભોગ કહેવાય છે. આ કામ અને ભોગની ઇચ્છા કરવી કામભોગાશંસાપ્રયોગ છે. તાત્પર્ય એ છે કે મનોજ્ઞ વિષયોની કામના કરવી કામભોગાશંસાપ્રયોગ છે.

'આ રીતે પાંચ અણુવ્રતોના ત્રણ ગુણવ્રતોના, ચાર શિક્ષાવ્રતોના તથા મારણાન્તિકસંલેખના જોષણાના,' બધાં મળીને તેર વ્રતોના પાંચ-પાંચ અતિચાર હોવાથી ૧૩×૫=૬૫ અતિચાર થયા આ બધાનું પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું આ બધાનો અણુવ્રતધારી અને સપ્તશીલધારી શ્રાવકે ત્યાગ કરવો જોઈએ. જો કે સમ્યક્ત્વનાં પણ પાંચ અતિચાર છે આથી અતિચારોની સંખ્યા પાંસઠ નહીં સીત્તેર થાય છે, તો પણ સમ્યક્ત્વ, મહેલના પાયાની જેમ બધા વ્રતોનો આધાર છે. આથી વ્રતોના અતિચારોની સાથે તેના અતિચારોની

एतेषु सम्यक्त्वव्रतशीलव्यतिक्रमस्थानेषु पञ्चषष्टयतिचारस्थानेषु व्रतशीलैः श्रावकैः प्रमादो न कर्तव्यः, अपितु अप्रमादो न्याय्यः ॥५३॥

मूलम्—एएसिं विप्पजहणाओ वयसुद्धी ॥५४॥

छाया—एतेषां विप्रहाणाद्व्रतशुद्धिः ॥५४॥

मूलम्—पाणाइवायाइहिंतो सव्वओ वेरमणं पंच महव्वया ।५५।

छाया—प्राणातिपातादिभ्यः सर्वतो विरमणं पञ्चमहाव्रतानि ॥५५॥

तत्त्वार्थदीपिका—तदेव मुक्तान्यगारिणो द्वादशव्रतानि सातिचाराणि अतिचारवर्जनाद् व्रतशुद्धिरित्यप्युक्तम्, सम्प्रति-पूर्वं यदुक्तं-'सव्वओ महं' सर्वतोमह-

---

नहीं की गई है। इस प्रकार अनेक प्रकार की हानियां होने से सम्यक्त्व के तथा व्रतों और शीलों के पैंसठ अतिचारों के विषय में श्रावकों को प्रमाद नहीं करना चाहिए, बल्कि अप्रमाद ही न्यायसंगत है ।५३॥

'एएसिं विप्पजहणाओ' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—इन पूर्वोक्त अतिचारों का त्याग करने से व्रत की शुद्धि होती है ॥५४॥

'पाणाइवायाइहिंतो' इत्यादि ।

सूत्रार्थ–प्राणातिपात आदि से सर्वथा विरत होना पांच महाव्रत हैं ॥५५॥

तत्त्वार्थदीपिका—इस प्रकार गृहस्थ के बारह व्रतों का अतिचार कथन किया गया और यह भी बतला दिया गया कि अतिचारों का

ગણુતરી કરવામાં આવી નથી. આ રીતે અનેક પ્રકારની ક્ષતિઓ હોવાથી સમ્યક્ત્વના તથા વ્રતો અને શીલોના પાંસઠ અતિચારોના વિષયમાં શ્રાવકે પ્રમાદ કરવો જોઈએ નહીં, બલ્કિ અપ્રમાદ જ ન્યાયસંગત છે. ॥૫૩॥

'एएसिं विप्पजहणाओ वयसुद्धी' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ–આ પૂર્વોક્ત અતિચારોનો ત્યાગ કરવાથી વ્રતની શુદ્ધિ થાય છે. ॥૫૪॥

'पाणाइवायाइहिंतो सव्वओ वेरमणं' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ–પ્રાણાતિપાત આદિથી સર્વથા વિરત થવું પાંચ મહાવ્રત છે. ॥૫૫॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—આ રીતે ગ્રહસ્થના બાર વ્રતોનું અતિચાર સહિત કથન કરવામાં આવ્યું અને એ પણ બતાવી દેવામાં આવ્યું કે અતિચારોનો

दिति, सर्वतो यत्र विरतिर्भवति—तानि महाव्रतानि कथ्यन्ते' इत्यत्र पञ्चमहाव्रतानि प्रदर्श्यन्ते—'पाणाइवायाइहिंतो' इत्यादि। प्राणातिपातादिभ्यः सर्वतो विरमणं महाव्रतानि, तानि पञ्च, प्राणातिपातः १ आदिशब्देन—मृषावादा २ ऽदत्तादाना३ ऽब्रह्मचर्य ४ परिग्रहाणां ५ ग्रहणं भवति तेभ्यः सर्वतो विरमणं महाव्रतानि—उच्यन्ते। तानि पञ्च, तत्र—प्राणातिपातः प्राणिवधः, मृषावादोऽसत्यभाषणम्, अदत्तादानं—स्तेयम्, अब्रह्मचर्यं मैथुनम्, परिग्रहो मूर्च्छा, एतेभ्यः सर्वतः सर्वप्रकारेण त्रिकरण—त्रियोगैर्विरमणं—विरतिर्निवृत्तिरिति भावः ॥५५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं द्वादशव्रतानि सातिचाराणि प्रदर्शितानि, द्वादशव्रतीच तदनन्तरं पञ्च महाव्रतीभवितु मर्हतीति तत्प्रस्तावात्—मोक्षहेतुभूतानि

त्याग करने से ही व्रत की शुद्धि होती है। अब पहले जो कहा था—'सव्वओ महं' अर्थात् हिंसा आदि का पूर्ण रूपेण जो त्याग किया जाता है उसे महाव्रत कहते हैं, सो अब महाव्रतों का कथन किया जाता है

प्राणातिपात आदि से पूर्ण रूप से निवृत्त होना महाव्रत हैं। महाव्रत पांच हैं—(१) प्राणातिपात (२) मृषावाद (३) अदत्तादान (४) अब्रह्मचर्य और (५) परिग्रहसे सर्वथा विरत होना। प्राणातिपात का अर्थ प्राणी की हिंसा, मृषावाद का अर्थ मैथुन और परिग्रह का अर्थ मूर्छा है। इनसे सर्वथा अर्थात् तीन करण और तीन योग से विरत होना महाव्रत कहलाता है ॥५५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—इस पूर्व अतिचारों सहित बारह व्रतों का निरूपण किया गया। बारहव्रतों का धारक श्रावक भी बाद में महा-

---

ત્યાગ કરવાથી જ વ્રતની શુદ્ધિ થાય છે. હવે પહેલા જે કહ્યું હતું—'सव्वओ महं' અર્થાત્ હિંસા આદિને પૂર્ણ રૂપથી જે ત્યાગ કરવામાં આવે છે તેને મહાવ્રત કહે છે જેથી હવે મહાવ્રતોનું કથન કરવામાં આવે છે—

પ્રાણાતિપાત આદિથી પૂર્ણ રૂપથી નિવૃત્ત થઈ જવું મહાવ્રત છે. મહાવ્રત પાંચ છે—(૧) પ્રાણાતિપાત (૨) મૃષાવાદ (૩) અદત્તાદાન (૪) અબ્રહ્મચર્ય અને (૫) પરિગ્રહથી સર્વથા વિરત થવું. પ્રાણાતિપાતનો અર્થ પ્રાણીની હિંસા મૃષાવાદનો અર્થ અસત્ય ભાષણ, અદત્તાદાનનો અર્થ ચોરી, અબ્રહ્મચર્યનો અર્થ મૈથુન અને પરિગ્રહનો અર્થ મૂર્છા છે. આ બધાંથી સર્વથા અર્થાત્ ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી વિરત થવું મહાવ્રત કહેવાય છે.॥૫૫॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—આની અગાઉ અતિચારો સહિત બાર વ્રતોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું. બારવ્રતોનો ધારક શ્રાવક પણ પાછળથી મહાવ્રતી

पञ्च महाव्रतान्याह-'पाणाइवायाइहिंतो सव्वओ वेरमण महव्वया, ते पंच' इति । प्राणातिपातः १ आदिशब्देन-मृषावादा २ ऽदत्तादाना ३ ऽब्रह्मचर्य ४ परिग्रहाः ५ गृह्यन्ते, तेभ्यः सर्वतः-सर्वांशेन द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावेन त्रिकरणै स्त्रियोगैः सर्वथा विरति-निवृत्तिः पञ्च महाव्रतान्युच्यन्ते । तत्र-प्राणातिपातः कषायादि प्रमादपरिणाम परिणतेना-ऽऽत्मना कर्त्रा मनोवाक्कायादिरूपयोग-व्यापारात् करणकारणाऽनुमोदन रूप कायव्यापारेण द्रव्य-भावभेदेन द्विविधेन प्राणिप्राणव्यपरोपणरूपः १ मृषावादस्तावत्-असत्यभाषणम् अनृतवचनम्-अलीकाभिभाषणम् २ अदत्तादानञ्च-अदत्तस्य स्व-स्वत्वनिवृत्ति पूर्वक मवितीर्णस्या

व्रती हो सकता है, इस संबंध से मोक्ष के कारणभूत पांच महाव्रतों का कथन किया जाता है-

प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, अब्रह्मचर्य और परिग्रह से सर्वांश से-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से, तीनों करणों और तीनों योगों से सर्वथा निवृत्त होना महाव्रत हैं।

कषाय आदि प्रमाद रूप परिणाम से युक्त कर्त्ता आत्मा के द्वारा, मन वचन और काय आदि योग के व्यापार से, द्रव्य एवं भाव दोनों प्रकार से करण (स्वयं करना), कारण (करवाना) और अनुमोदन रूप कायव्यापार से प्राणी के प्राणों का व्यपरोपण करना प्राणातिपात है। असत्य भाषण करना, अनृत वचन बोलना, अलीक भाषण करना मृषावाद कहलाता है। दत्त का अर्थ है स्वामी का अपने स्वत्व को हटा लेना। जो दत्त न हो वह अदत्त कहलाता है। उस अदत्त को

થઇ શકે છે આ સંબંધથી મોક્ષના કારણભૂત પાંચ મહાવ્રતોનું કથન કરવામાં આવે છે-

પ્રાણાતિપાત, મૃષાવાદ, અદત્તાદાન, અબ્રહ્મચર્ય અને પરિગ્રહથી સર્વાંશે-દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભાવથી, ત્રણે કરણો અને ત્રણે યોગોથી સર્વથા નિવૃત્ત થવું મહાવ્રત છે.

કષાય આદિ પ્રમાદરૂપ પરિણામથી યુક્ત કર્તા આત્માદ્વારા, મન વચન અને કાયા વગેરે યોગના વ્યાપારથી દ્રવ્ય અને ભાવ બંને પ્રકારના કરણ (જાતે કરવું), કારણ (કરાવવું) અને અનુમોદન રૂપ કાયવ્યાપારથી પ્રાણીનાં પ્રાણોની હિંસા કરવી પ્રાણાતિપાત છે. અસત્ય ભાષણ કરવું, અનૃત (જુઠું) વચન બોલવું, અલીક ભાષણ કરવું મૃષાવાદ કહેવાય છે. દત્તનો અર્થ થાય છે માલિકનું-પોતાનું આધિપત્ય જતું કરવું. જે દત્ત ન હોય તે અદત્ત કહેવાય છે. તે અદત્તને ગ્રહણ કરવું અદત્તાદાન કહેવાય છે. સ્રીસંયોગ

स्थितिक तपस्तावत्-स्थानं कायोत्सर्गः तेन-कायोत्सर्गेण सर्वदा स्थितिर्यस्य स स्थानस्थितिकः उच्यते, तद्रूपं तपः स्थानस्थितिक तपो भवति, धर्मधर्मिणोरभेद विवक्षणात् १ उत्कुटुकासनिक तपस्तु-भूमौ-असंलग्नपुतेन वद्धाञ्जलिपुटेन भूमौ चरणमारोप्यो-पवेशनम् उत्कुटुक मुच्यते तदासनमस्यास्तीति उत्कुटुकाऽऽसनिक उच्यते, तद्रूपं तप उत्कुटुकासनिक तपो भवति २ प्रतिमा स्थायितपस्तु-प्रतिमाः-मासिक्यादि द्वादशाभिग्रहविशेषाः उच्यन्ते ताभिर्मासिक्यादि प्रतिमाभिस्तिष्ठति तच्छीलः प्रतिमास्थायी व्यपदिश्यते तद्रूपं तपः प्रतिमास्थायि तपो भवति३ वीरास निक तपस्तु-सिंहासनोपरि समुपविष्टस्य भूमिस्थितपादस्य सिंहासनाऽपनयने कृते सति सिंहासनोपविष्टवद् अवस्थानं वीरासन मुच्यते तदस्त्य स्येति वीरासनिकः,

---

परिकर्म विभूषा विप्रमुक्त। इस प्रकार कायक्लेश तप अनेक प्रकार का है। इनका स्वरूप इस तरह है-

(१) कायोत्सर्ग करके स्थित रहने वाला स्थानस्थितिक कहलाता है। यहां धर्म और धर्मी के अभेदकी विवक्षा की गई है। अतएव इसी को स्थानस्थितिक तप कहते हैं। (२) जमीनपर पुट्टे विना लगाए, हाथ जोड़कर, धरती पर पांव रख कर बैठना उत्कुटुक आसन कहलाता है। ऐसे आसन वाले को उत्कुटुकासनिक कहते हैं। इस प्रकार की तपस्या उत्कुटुकासनिक तप है। (३) मासिकी आदि बारह प्रकार के अभिग्रहों को प्रतिमा कहतेहैं। उन्हें ग्रहण करके स्थित होने वाला प्रतिमास्थायी कहलाता है। ऐसा तप प्रतिमा स्थायी तप है। (४) कोई पुरुष पृथ्वी पर पैर जमा कर सिंहासन पर बैठा हो, फिर पीछे से सिंहासन खिसका लिया जाय और वह पुरुष ज्यों का त्यों बना रहे,

---

અને (૧૨) સર્વગાત્રપરિ કર્મ વિભૂષા વિપ્રમુકત આ રીતે કાયકલેશ તપ અનેક પ્રકારના છે. એમનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે--

(૧) કાયોત્સર્ગ કરીને સ્થિત રહેનાર સ્થાનસ્થિતિક કહેવાય છે. અહીં ધર્મ અને ધર્મીના અભેદની વિવક્ષા કરવામાં આવી છે આથી આને જ સ્થાનસ્થિતિક તપ કહે છે. (૨) જમીન ઉપર ટેકો દીધા વગર, હાથ જોડીને, ધરતી પર પગ રાખીને બેસવાને ઉત્કુટુક આસન કહે છે. આવા પ્રકારની તપસ્યા ઉત્કુટુકાસનિક તપ છે. (૩) માસિકી આદિ બાર પ્રકારના અભિગ્રહોને પ્રતિમા કહે છે તેમને ગ્રહણ કરીને સ્થિર થનાર પ્રતિમાસ્થાયી કહી શકાય છે. આવું તપ પ્રતિમાસ્થાયી તપ છે. (૪) કોઈ પુરૂષ પૃથ્વી ઉપર પગ રાખીને સિંહાસન પર બેઠો હોય, પછી પાછળથી સિંહાસન ખસેડી લેવામાં આવે અને પેલો પુરૂષ જેમ હતો તેમ

तद्रूपं तपो वीरासनिक तपो भवति४ नैषधिक तपस्तु-निषद्या तावत्-पुताभ्यां भूमावुपवेशन मुच्यते तथाविधया निषद्यया चरतीति नैषधिकः उच्यते तद्रूपं तपो नैषधिक तपो भवति ५ दण्डायतिक तपस्तु-दण्डस्येवायतम् आयामोऽस्यास्तीति दण्डायतिकः, तद्रूपं तपो दाण्डायतिक तपो भवति६ लकुटशायि तपस्तु-लकुटो वक्रकाष्ठं तद्विशेते तच्छीलो लकुटशायी उत्तानशायी भूत्वा पार्ष्णिकद्वयं शिरश्च भूमौ स्थापयित्वा शयनशीलो लकुटशायी इत्युच्यते तद्रूपं तपो लकुटशायि तपो भवति ७ आतापक तपस्तु-आतापयति शीतोष्णादिभिः शरीरं सन्तापयति-क्लेशयति इत्यातापक उच्यते आतापनारूप सूर्यातपादि सहनशील इत्यर्थः तद्रूपं तपो आतापक तपो भवति ८ अप्रावृतक तपः पुनः-शीतकाले प्रावरणरहितः सदोरकमुखवस्त्रिका चोलपट्टातिरिक्तवस्त्रवर्जितः खलु अप्रावृतक उच्यते तद्रूपं

उस समय उसका जो आसन होता है वह वीरासन कहलाता है। वीरासन करने वाला वीरासनिक कहलाता है। (५) पुट्ठों से जमीन पर बैठना निषद्या है, जो निषद्या करे वह नैषधिक, इस प्रकार का तप नैषधिक तप है। (६) दंड के समान लम्बे लेटना रूप जो तप करे वह दण्डायतिक कहलाता है। (७) लकुटशायी-यहां लकुट का अर्थ है वक्र काष्ठ अर्थात् टेढा काठ, उसके समान सोना और पैरों की दोनों एडियां और सिर धरती पर टेक कर मध्य शरीर को अधर रखना लकुटशायी तप कहलाता है (८) सर्दी और धूप में स्थित होकर शरीर को संतपाना आतापकतप कहलाता है। (९) शीतकाल में वस्त्र वर्जित होकर रहना अर्थात् डोरा रहित मुखवस्त्रिका और चोलपट्ट के सिवाय अन्य कोई वस्त्र न रखना अप्रावृतक तप कहलाता है। (१०) अकण्डूयक

જ રહે' આ વખતે તેનું જે આસન હોય છે તે વીરાસન કહેવાય છે. વીરાસન કરનાર વીરાસનિક કહેવાય છે. અઢેલીને પૂંઠેથી જમીન પર બેસવાની મનાઇ છે, જે નિષદ્યા કરે તે નૈષધિક આ પ્રકારનું તપ નૈષધિક તપ છે. (૬) દંડની જેમ લાંબા સુઇ જઇને જે તપ કરે તે દણ્ડાયતિક કહેવાય છે. (૭) લકુટશાયી-અહીં લકુટનો અર્થ છે વક્રકાષ્ઠ અર્થાત્ વાંકુ લાકડું. તેની જેમ સુવું અર્થાત્ પગની બંને એડીઓ અને માથું ધરતી પર ટેકવીને વચ્ચેના શરીરને અદ્ધર રાખવું લકુટશાયી તપ કહેવાય છે (૮) ઠંડી અથવા તડકામાં સ્થિત થઇને શરીરને તપાવવું આતાપક તપ કહેવાય છે. (૯) શિયાળાની ઋતુમાં વસ્ત્રવિહિન થઇને રહેવું અર્થાત્ દોરાસહિત મુખવસ્ત્રિકા અને ચોળપટ્ટ સિવાય અન્ય કોઇ વસ્ત્ર ન રાખવું અપ્રાવૃતક તપ કહેવાય છે (૧૦) અકણ્ડૂયક

तपोऽप्रावृतक तपो भवति ९ अकण्डूयक तपस्तु–कण्डूयनं गात्रघर्षणं तद्रहितोऽकण्डूयकः तद्रूपं तपो–ऽकण्डूयक तपो भवति १० अनिष्ठीवक तपस्तु–निष्ठीवनं–थूत्करणं तद्रहितोऽनिष्ठीवकः तद्रूपं तपोऽनिष्ठीवक तपः उच्यते ११ सर्वगात्र परिकर्म विभूषा विप्रमुक्त तपः पुनः–सर्वस्य गात्रस्य परिकर्म–परिमार्जनं प्रक्षालनं विभूषणञ्च ताभ्यां विप्रमुक्तो रहितः परित्यक्तसर्वगात्रसंमार्जनविभूषणः, तद्रूपं तपः सर्वगात्रपरिकर्मविभूषाविप्रमुक्त तपो भवति, इत्येवं बहुविधं कायक्लेश तपो भवतीतिभावः ॥१७॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः––पूर्वं खलु–चतुर्थं रसपरित्यागरूपं बाह्यं तपः सविस्तरं प्ररूपितम्, सम्प्रति–क्रमागतं पञ्चमं कायक्लेशरूपं बाह्यं तपः प्ररूपयितुमाह–'कायकिलेसे तवे अणेगविहे, ठाणठिइयाइ भेदओ' इति कायक्लेश तपः खलु कायस्य क्लेशो यस्य स कायक्लेशः तद्रूपं तपः कायक्लेश तपः धर्मधर्मिणोरभेदोपचारात्, एवमग्रेऽपि बोध्यम्। तच्चा–ऽनेकविधं भवति, तद्यथा-स्थान स्थिति-

---

तप-खुजली आने पर भी शरीर को न खुजलाना (११) अनिष्ठीवक तप थूकने का त्याग कर देना (१२) समस्त शरीर को धोना, पोंछना, सजाना आदि क्रियाओं का त्याग करना सर्वगात्रपरिकर्मविभूषा विप्रमुक्त तप कहा जाता है। इस प्रकार कायक्लेश तप के अनेक भेद हैं ॥१७॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति–चौथे रसपरित्याग बाह्य तप का सविस्तर वर्णन किया जा चुका, अब क्रमागत पाँचवें कायक्लेश तप की प्ररूपणा करते हैं–

जिस तपस्या में विशेषतः काय को क्लेश पहुंचाया जाता है, वह कायक्लेश तप कहलाता है। इस तप के जो भेद बतलाए गए हैं वे खास तौर से तपस्या करने वालों के भेद हैं, मगर धर्म और धर्मी में अर्थात् तप और तपस्वी में कथंचित् अभेद होता है अतः तपस्वी

તપ–ખજવાળ આવવા છતાંપણ શરીરને ન ખજવાળવું (૧૧) અનિષ્ઠીવક તપ–થૂકવાનું બંધ કરી દેવું (૧૨) આખા શરીરને ધોવું, લૂછવું સજાવટ આદિ ક્રિયાઓનો ત્યાગ કરવો સર્વગાત્રપરિકર્મ વિભૂષાવિપ્રમુક્ત તપ કહેવાય છે. આવી રીતે કાયકલેશ તપના અનેક ભેદ છે. ॥૧૭॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—ચોથા રસપરિત્યાગ બાહ્ય તપનું સવિસ્તર વર્ણન કરવામાં આવ્યું હવે ક્રમાગત પાંચમાં કાયકલેશ તપની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ

જે તપસ્યામાં વિશેષતઃકાયાને કલેશ પહોંચાડવામાં આવે છે તે કાયકલેશ તપ કહેવાય છે આ તપના જે ભેદ બતાવવામાં આવ્યા છે તે ખાસ પ્રકારે તપસ્યા કરનારના ભેદ છે પરંતુ ધર્મ અને ધર્મીમાં અર્થાત્ તપ અને તપસ્વીમાં કથંચિત્ અભેદ હોય છે. આથી તપસ્વીના ભેદ તપના પણ ભેદ કહી

कादि भेदतः, स्थानं कायोत्सर्गः तेन खलु कायोत्सर्गरूपेण स्थानेन सर्वथा स्थिति-र्यस्य स स्थानस्थितिकः, तद्रूपं स्थानस्थितिक तपो भवति १ आदिना-उत्कुटुकासनिकः २ प्रतिमास्थायी ३ वीरासनिकः ४ नैषधिकः ५ दण्डायतिकः ६ लकुटशायी ७ आतापकः ८ अप्रावृतकः ९ अकण्डूयकः १० अनिष्ठीवकः ११ सर्वगात्र परिकर्म विभूषा विप्रमुक्तः १२ इत्येवं खलु—अनेकविधं कायक्लेश तपो भवति। तत्रोत्कुटुकासनिक स्वरूपस्त्वेवम्—उत्कुटुकम् भूमौ असंलग्नपुतेन-बद्धाञ्जलि पुटेन भूतले पादतलमारोप्यो-पवेशन मुच्यते, तदासन मस्त्यस्येति उत्कुटुकासनिकः तद्रूपं तपः उत्कुटुकासनिक तपो भवति२ प्रतिमास्थायि तपस्तु--प्रतिमाः मासिक्यादयो द्वादशनियमविशेषाः, ताभिः-मासिक्यादि प्रतिमाभिस्तिष्ठतीति तच्छीलः प्रतिमा-स्थायी तद्रूपं तपः प्रतिमास्थायितप उच्यते ३ वीरासनिकतपस्तु-

---

के भेद तप के भी भेद कहे जा सकते हैं। इसी दृष्टिकोण को सन्मुख रखकर यहां व्याख्या की जाती है। आगे भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

कायक्लेश तप अनेक प्रकार का है, यथा (१) स्थानस्थितिक (२) उत्कुटुकासनिक (३) प्रतिमास्थायी (४) वीरासनिक (४) नैषधिक (६) दण्डायतिक (७) लकुटशायी (८) आतापक (९) अप्रावृतक (१०) अकण्डूयक (११) अनिष्ठीवक (१२) सर्वगात्रपरिकर्मविभूषाविप्रमुक्त। (१) कायोत्सर्ग करके स्थित रहना स्थानस्थितिक तप है (१) भूमि पर पुट्ठे विना टेके, हाथ जोडकर और दोनों पैर जमीन पर लगाकर बैठना उत्कुटुकासनिक तप कहलाता है। (३) मासिकी आदि बारह प्रकार की प्रतिमाओं (नियमविशेषों) को वहन करना प्रतिमास्थायी तप कह-लाता है। (४) दोनों पांव जमीन पर टेक कर सिंहासन के उपर बैठे

શકાય છે આજ દ્રષ્ટિકોણને સન્મુખ રાખીને અહીં વ્યાખ્યા કરવામાં આવે છે. આગળ પણ આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ

કાયક્લેશ તપ અનેક પ્રકારના છે જેવાકે— (૧) સ્થાનસ્થિતિક (૨) ઉત્કુટુકાસનિક (૩) પ્રતિમાસ્થાયી (૪) વીરાસનિક (૫) નૈષધિક (૬) દણ્ડાયતિક (૭) લકુટશાયી (૮) આતાપક (૯) અપ્રાવૃતક (૧૦) અકણ્ડૂયક (૧૧) અનિ-ષ્ઠીવક (૧૨) સર્વગાત્રપરિકર્મવિભૂષાવિપ્રમુક્ત (૧) કાયોત્સર્ગ કરીને સ્થિત રહેવું સ્થાનસ્થિતિક તપ છે. (૨) ભૂમિ ઉપર પૂંઠ ટેકવ્યા સિવાય, હાથ જોડી ને અને બંને પગ જમીન ઉપર ટેકવીને બેસવું ઉત્કુટુકાસનિક તપ કહેવાય છે. (૩) માસિકી આદિ બાર પ્રકારની પડિમાઓ (નિયમ વિશેષો) નું વહન કરવું પ્રતિમાસ્થાયી તપ કહેવાય છે. (૪) બંને પગ જમીન પર ટેકવીને

सिंहासनोपरि समुपविष्टस्य भूमिस्थितचरणस्य सिंहासनाऽपनयने कृतेऽपि सिंहासनोपविष्टवदेवाऽवस्थानं वीरासन मुच्यते तदस्त्यस्येति वीरासनिक स्तद्रूपं तपो वीरासनिक तप उच्यते ४ नैषधिकतपस्तु–पुताभ्यां भूमावुपवेशनं निषद्या, तया चरति नैषधिकः तद्रूपं तपो नैषधिक तपो भवति ५ दण्डायतिक तपस्तु–दण्डस्येवाऽऽयतं, आयामोऽस्यास्तीति दण्डायतिकः तद्रूपं तपो दण्डायतिक तप उच्यते ६ लकुटशायितपस्तु–लकुटो वक्रकाष्ठं तदिव शयनशीलो लकुटशायी-उत्तानशायी भूत्वा पार्ष्णिक द्वयं–शिरश्च भूमौ संस्थाप्य शयनशील उच्यते तद्रूपं तपो लकुटशायि तपो भवति७ आतापकतपस्तु–आतापयति शीतोष्णादिभिः शरीरं संतापयति–क्लेशयतीति आतापकः तद्रूपं तप आतापकतपः आतापना तावत्= सूर्यातपादि सहनरूपा बोध्या ८ अप्रावृतक तपः–पुनः शीतलकाले सदोरकमुख-वस्त्रिका–चोलपट्टातिरिक्त वस्त्ररूपप्रावरणरहितः अप्रावृतकः तद्रूपं तपोऽप्रावृतक

हुए पुरुष के नीचे से अगर सिंहासन हटा लिया जाय तो उसका जो आसन होता है, वह वीरासन कहलाता है। वीरासन से स्थित होना वीरासनिक तप है। (५) पुट्ठे जमाकर भूमि पर बैठना नैषधिक तप कहला है। (६) दण्डायतिक–दंड की तरह लंबा लेटे रहना। (७) जैसे वक्र काष्ठ के दोनों सिरे जमीन को छूते हैं और मध्य का भाग अधर रहता है उसी प्रकार दोनों पांव और मस्तक धरती पर टेक कर शेष शरीर को अधर रखना लकुटशायी तप कहलाता है। (८) सूर्य की धूप या शीतकाल की सर्दी को विशेष रूप से सहन करना आतापना कहलाता है। आतापना द्वारा शरीर को तपाना क्लेश पहूंचाना आता-पक तप कहलाता है। (९) शीतकाल में डोरा सहित मुखवस्त्रिका

સિંહાસન ઉપર બેસેલા પુરૂષની નીચેથી જો સિંહાસન ખસેડી લેવામાં આવે તે વખતે તેનુ જે આસન હોય છે તે વીરાસન કહેવાય છે. વીરાસનથી સ્થિત થવું વીરાસનિક તપ કહેવાય છે. (૫) પળાંઠી જમાવીને ભૂમિ પર બેસવું નૈષધિક તપ કહેવાય છે (૬) દણ્ડાયતિક દણ્ડની માફક લાંબા થઈ સુઇ રહેવું (૭) જેમ વાંકા લાકડાના બંને છેડા જમીનને સ્પર્શ કરે છે અને મધ્યનો ભાગ અધ્ધર રહે છે તેવીજ રીતે બંને પગ અને મસ્તક ધરતી પર ટેકવીને બાકીના શરીરને ઉંચું રાખવું લકુટશાયી તપ કહેવાય છે (૮) સૂર્ય નો તાપ અથવા શિયાળાની ઠંડીને વિશેષ રૂપથી સહન કરવા આતાપના કહેવાય છે. આતાપના દ્વારા શરીરને કષ્ટ આપવું આતાપક તપ કહેવાય છે. (૯) શિયાળામાં દોરા સહિતની મુખવસ્ત્રિકા તથા પહેરવાના વસ્ત્ર સિવાય

तपो भवति ९ अकण्डूयक तपस्तु-गात्रघर्षणरूपं कण्डूयनवर्जितोऽकण्डूयक उच्यते तद्रूपं तपोऽकण्डूयक तपः १० अनिष्ठीवक तपस्तु-निष्ठीवन रहितोऽनिष्ठीवक स्तद्रूपं तपोऽनिष्ठीवकतपः ११ सर्वगात्रपरिकर्मविभूषा विप्रमुक्त तपः पुनः-सर्वस्य-गात्रस्य परिकर्म मार्जनं विभूषणञ्च ताभ्यां विप्रमुक्तो वर्जितः परित्यक्तसर्वगात्र सम्मार्जनविभूषणः तद्रूपं तपः सर्वगात्रपरिकर्म विभूषा विप्रमुक्त उच्यते १० इत्येवं रीत्या कायक्लेश तपोऽनेकविधं भवति, इतिभावः। उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं कायकिलेसे, कायकिलेसे अणेगविहे पण्णत्ते तं जहा ठाणट्ठिइए १ उक्कुडुयासणिए २ पडिमट्ठाई ३ वीरासणिए ४ नेसज्जिए ५ दंडायइए ६ लउडसाई ७ आयावए ८ अवाउडए ९ अकंडुयए १० अणिट्ठूहए ११ सव्वगाय परिकम्मविभूसविप्पमुक्के-१२ से त्तं कायकिलेसे' इति। अथ कोऽसौ कायक्लेशः ? कायक्लेशोऽनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-स्थानस्थितिकः १ उत्कुटुकासनिकः २ प्रतिमास्थायी ३ वीरा-

---

तथा चोलपट्ट के अतिरिक्त समस्त वस्त्रों को त्यागकर अप्रावरण स्थिति में रहना अप्रावृतक तप कहलाता है। (१०) खुजली आने पर भी शरीर को नहीं खुजलाना अकण्डूयक तप है। (११) थूकने का त्याग कर देना अनिष्ठीवक तप है। (१२) सारे शरीर को धोने पोंछने और सजाने का त्याग कर देना सर्वगात्रपरिकर्म विभूषा विप्रमुक्त तप है। इस प्रकार कायक्लेश तप अनेक प्रकार का है। औपपातिक सूत्र में कहा गया है--

प्रश्न-कायक्लेश तप कितने प्रकार का है ?

उत्तर--कायक्लेश के अनेक भेद हैं, यथा-स्थानस्थितिक (२) उत्कटुकासनिक (३) प्रतिमास्थायी (४) वीरासनिक (५) नैषधिक (६) दंडायतिक (७) लकुटशायी (८) आतापक (९) अप्रावृतक (१०) अक

બાકીના સઘળા વસ્ત્રોનો ત્યાગ કરીને અપાવરણ સ્થિતિમાં રહેવું અપ્રાવૃતક તપ કહેવાય છે (૧૦) ખજવાળ આવવા છતાંપણ શરીરને ખજવાળવું નહીં તે અકણ્ડૂયક તપ છે (૧૧) થૂંકવાનો ત્યાગ કરી દેવો અનિષ્ઠીવક તપ છે (૧૨) આખા શરીરને ધોવા લુછવા તથા સજાવટનો ત્યાગ કરી દેવો સર્વગાત્ર પરિકર્મવિભૂષા વિપ્રમુક્ત તપ છે. આવી રીતે કાયકલેશ તપ અનેક પ્રકારના છે. ઔપપાતિક સૂત્રમાં કહ્યું છે

પ્રશ્ન-કાયકલેશ તપ કેટલા પ્રકારના છે ?

ઉત્તર-કાયકલેશના અનેક ભેદ છે જેવાકે-(૧) સ્થાનસ્થિતિક (૨) ઉત્કુટુકાસનિક (૩) પ્રતિમાસ્થાયી (૪) વીરાસનિક (૬) નૈષધિક (૭) અકણ્ડૂયક

सनिकः४ नैषधिकः५ दण्डायतिकः६ लकुटशायी ७ आतापकः ८ अपावृतकः९ अकण्डूयकः १० अनिष्ठीवकः ११ सर्वगात्र परिकर्मविभूषाविप्रमुक्तः ११ ॥१७॥

मूलम्–पडिसंलीणया तवे चउव्विहे, इंदियपडिसंलीणयाइ भेयओ ॥१८॥

छाया–प्रतिसंलीनता तप श्चतुर्विधम्, इन्द्रियप्रतिसंलीनतादि भेदतः ॥१८॥

तत्त्वार्थदीपिका––'पूर्वं तावत्–क्रमप्राप्तं बाह्यं पञ्चमं कायक्लेशरूपं तपः सविस्तरं प्ररूपितम्, सम्प्रति–क्रमागतं षष्ठं तपः प्रतिसंलीनतारूपं प्रतिपादयितुमाह–'पडिसंलीणया तवे' इत्यादि। प्रतिसंलीनतातपः–इन्द्रिय क्रोधकषायादि निरोधकरणशीलतारूपं तपः खलु चतुर्विधं भवति, तद्यथा–इन्द्रियप्रतिसंलीनतादि भेदतः, इन्द्रियप्रतिसंलीनता १ कषायप्रतिसंलीनता २ योगप्रतिसंलीनता ३ विविक्तशय्यासन–सेवनता ४ चेत्येवं चतुर्विधं तावत्=प्रतिसंलीनतातपो

ण्डूयक (११) अनिष्ठीवक और (१२) सर्वगात्रपरिकर्मविभूषाविप्रमुक्त। यह सब कायक्लेश तप है ॥१७॥

'पडिसंलीणया तवे चउव्विहे' इत्यादि

सूत्रार्थ–इन्द्रियप्रतिसंलीनता, कषायप्रतिसंलीनता योगप्रतिसंलीता और विविक्त शय्यासनसेवनता के भेद से प्रतिसंलीनता तप चार प्रकार का है ॥१८॥

तत्वार्थदीपिका––पहले कायक्लेश तप का वर्णन किया गया अब क्रमागत प्रतिसंलीनता का निरूपण किया जाता है–

इन्द्रियों और कषायों आदि का निग्रह करना प्रतिसंलीनता तप कहलाता है। उसके चार भेद है–(१) इन्द्रिय प्रतिसंलीनता (२) कषाय प्रतिसंलीनता (३) योगप्रतिसंलीनता और (४) विविक्तशय्यासन सेवनता। श्रोत्र आदि इन्द्रियों का गोपन–निग्रह करना अर्थात् इन्द्रियों

---

(૮) આતાપક (૯) અપ્રાવૃતક (૧૦) અકણ્ડૂયક (૧૧) અનિષ્ઠીવક અને (૧૨) સર્વગાત્રપરિકર્મવિભૂષાવિપ્રમુક્ત આ સઘળા કાયક્લેશ તપ છે ॥ ૧૭ ॥

'પડિસંલીણયા તવે ચઉવ્વિહે' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ–ઇન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા, કષાયપ્રતિસંલીનતા, યોગપ્રતિસંલીનતા અને વિવિક્તશય્યાસન સેવિતાના ભેદથી પ્રતિસંલીનતા તપ ચાર પ્રકારના છે ॥૧૮॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલાં કાયક્લેશ તપનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું, હવે ક્રમાગત પ્રતિસંલીનતાનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે

ઇન્દ્રિયો અને કષાયો આદિનો નિગ્રહ કરવો પ્રતિસંલીનતા તપ કહેવાય છે. તેના ચાર ભેદ છે–(૧) ઇન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા (૨) કષાયપ્રતિસંલીનતા (૩) યોગપ્રતિસંલીનતા અને (૪) વિવિક્તશય્યાસન સેવનતા શ્રોત્ર આદિ ઇન્દ્રિયોનું

भवति । तत्रेन्द्रिय प्रतिसंलीनतातप स्तावत्-इन्द्रियाणां श्रोत्रादीनां प्रतिसंलीनता निरोधकरणशीलता, गोपनशीलता, तद्रूपं तप इन्द्रियप्रतिसंलीनता तपो भवति १ एवं-कषाय प्रतिसंलीनतातप स्तावत्=क्रोधादिकाषायाणां प्रतिसंलीनता=गोपन शीलता निरोधकरणशीलता तद्रूपं तपः कषायप्रतिसंलीनता तपो भवति २ एवं-योग प्रतिसंलीनता तपस्तावद्-योगानां मनोवचन-काय व्यापाराणां प्रतिसंलीनता गोपनशीलता तद्रूपं तपो योगप्रतिसंलीनता तपो भवति ३ एवं विविक्त शय्यासनसेवनता विविक्तेषु स्त्री पशुपण्डकरहितस्थानेषु शय्यासनकरणशीलता तद्रूपं तपो विविक्तशय्यासनसेवनता तपो भवतीतिभावः ॥१८॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं खलु कायक्लेशरूपं पञ्चमं बाह्यं तपः सविस्तरं प्ररूपितम् सम्प्रति क्रमप्राप्तं षष्ठं बाह्यं तपः प्रतिसंलनतारूपं चातुर्विध्येन प्ररूपयितुमाह-'पडिसंलीणया तवे चउव्विहे, इंदिय पडिसंलीणयाइ भेयओ' इति । प्रति संलीनतातपः-प्रतिसंलीनस्य स्वान्तर्लीनस्य भावः प्रतिसंलीनता-इन्द्रियकषायादीनां गोपनशीलता निरोधकरणशीलता तद्रूपं तपः प्रतिसंलीनता

को मनोज्ञ-अमनोज्ञ विषयों में समभावधारण करना इन्द्रियप्रतिसंलीनता तप है (२) क्रोध आदि कषायों का निरोध करना कषायप्रतिसंलीनता है (३) योगों का अर्थात् मन वचन काय के व्यापारों का निरोध करना योगप्रतिसंलीनता है और (४) स्त्री, पशु, एवं नपुंसक से रहित स्थान में शयन-आसन करना विविक्त शयनासनसेवनता तप है ॥१८॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-पहले पांचवें बाह्य तप कायक्लेशका विस्तार पूर्वक निरूपण किया गया, अब क्रमप्राप्त छठे तप प्रतिसंलीनता के चार भेदों का निरूपण करते हैं-

इन्द्रियों और कषायों आदिका गोपन-निरोध करना प्रतिसंलीनता

ગોપન-નિગ્રહ કરવો અર્થાત્ ઈન્દ્રિયોના મનોજ્ઞ અમનોજ્ઞ વિષયોમાં સમભાવ ધારણ કરવો ઈન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા તપ છે. (૨) ક્રોધ આદિ કષાયોનો નિરોધ કરવો કષાયપ્રતિસંલીનતા છે. (૩) યોગોનો અર્થાત્ મન, વચન કાયાના વ્યાપારોનો નિરોધ કરવો યોગપ્રતિસંલીનતા છે અને (૪) સ્ત્રી, પશુ તથા નપુંસક વગરના સ્થાનમાં શયન આસન કરવું વિવિક્તશયનાસન સેવનતા તપ છે. ૧૮

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—આની પહેલા પાંચમાં બાહ્ય તપ કાયકલેશનું વિસ્તારપૂર્વક નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે ક્રમપ્રાપ્ત છઠ્ઠા તપ પ્રતિસંલીનતાના ચારે ભેદોનું નિરૂપણ કરીએ છીએ

ઈન્દ્રિયો અને કષાયો વગેરેનું ગોપન-નિરોધ કરવો પ્રતિસંલીનતા તપ

तप उच्यते। तच्चतुर्विधम्, तद्यथा—इन्द्रियप्रतिसंलीनतादि भेदतः, इन्द्रिय प्रति संलीनता १ आदिना—कषाय प्रतिसंलीनता २ योगप्रतिसंलीनता ३ विविक्त-शय्यासन सेवनता ४ चेत्येवं चतुर्विधं खलु प्रतिसंलीनता तपो भवतीति भावः। तत्र—इन्द्रिय प्रतिसंलीनता—इन्द्रियाणां श्रोत्रादीनां प्रतिसंलीनता तद्रूपं तप इन्द्रिय-प्रतिसंलीनता तप उच्यते १ एवं—कषायप्रतिसंलीनतातप स्तावत्—कषायाणां-क्रोधादि कषायाणां प्रतिसंलीनता—गोपनशीलता तद्रूपं तपः कषायप्रतिसंलीनता तप उच्यते २ एवं—योगप्रतिसंलीनता तप स्तावत्—योगानां मनोवाक् कायव्यापारविशेषाणां प्रतिसंलीनता—गोपनशीलता तद्रूपं तपो योगप्रतिसंलीनता तप उच्यते ३ एवं—विविक्तशय्यासनसेवनता तपस्तावत्—विविक्तेषु स्त्री—पशु—पण्डक रहितस्थानेषु शय्यासनकरणशीलता तद्रूपं तपो विविक्तशय्यासनसेवनता तप उच्यते ४। उक्तञ्चौ-पपातिके ३० सूत्रे—'से किं तं पडिसंलीणया? पडि-संलीणया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—इंदियपडिसंलीणया १ कसाय-पडिसंलीणया २ जोगपडिसंलीणया ३ विवित्तसयणासणसेवणया ४ इति। अथ कासौ प्रतिसंलीनता? प्रतिसंलीनता चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—इन्द्रिय

तप है। इसके चार प्रकार हैं—(१) इन्द्रियप्रतिसंलीनता (२) कषाय प्रतिसंलीनता (३) योगप्रतिसंलीनता और (४) विविक्तशयनासनसेवनता

क्षेत्र आदि इन्द्रियों का गोपन करना अर्थात् इन्द्रियों के विषय में राग-द्वेष नहीं उत्पन्न होने देना इन्द्रिय प्रतिसंलीनता है। क्रोध आदि कषायों का निरोध करना कषायप्रतिसंलीनता है। मन वचन और काय की प्रवृत्ति का संवरण करना योग प्रतिसंलीनता है। स्त्री, पशु और पाण्डक से रहित स्थान में शयन-आसन करना विविक्तशयनासनसेवनता तप है। औपपातिकसूत्र में कहा है—

प्रश्न—प्रतिसंलीनता तप कितने प्रकार का है?

છે. એના ચાર પ્રકાર છે (૧) ઇન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા (૨) કષાયપ્રતિસંલીનતા (૩) યોગપ્રતિસંલીનતા અને (૪) વિવિક્તશયનાસન સેવનતા

શ્રોત્ર આદિ ઇન્દ્રિયોનું ગોપન કરવું અર્થાત્ ઇન્દ્રિયોના વિષયમાં રાગ દ્વેષ ન ઉત્પન્ન થવા દેવા ઇન્દ્રિય પ્રતિસંલીનતા છે. ક્રોધ આદિ કષાયોનો નિરોધ કરવો કષાયપ્રતિસંલીનતા છે. મન વચન અને કાયાની પ્રવૃત્તિનું સંવરણ કરવું યોગપ્રતિસંલીનતા છે. સ્ત્રી પશુ અને નપુંસકથી રહિત સ્થાનમાં શયનઆસન કરવા વિવિક્તશયનાસનસેવનતા તપ છે. ઔપપાતિક સૂત્રમાં કહ્યું છે—

પ્રશ્ન—પ્રતિસંલીનતા તપ કેટલા પ્રકારના છે?

प्रतिसंलीनता १ कषायप्रतिसंलीनता २ योगप्रतिसंलीनता ३ विविक्तशय्यासनप्रतिसंलीनता ४ इति ॥१८॥

मूलम्-इंदिय पडिसंलीणयातवे पंचविहे, सोइंदियाइभेयओ।१९।

छाया--'इन्द्रियप्रतिसंलीनतातपः पञ्चविधम्, श्रोत्रेन्द्रियादि भेदतः ॥१९॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वं तावत् क्रमागतस्य षष्ठस्य बाह्यतपसः प्रतिसंलीनता रूपस्य प्ररूपणं कृतम्, सम्प्रति-चतुर्विधेषु प्रतिसंलीनतारूपेषु प्रथमोपात्तस्य इन्द्रियप्रतिसंलीनता तपसः स्वरूपं प्ररूपयितुमाह-'इंदियपडिसंलीणया' इत्यादि। इन्द्रियप्रतिसंलीनता तपः इन्द्रियाणां श्रोत्रादीनां प्रतिसंलीनता, इन्द्रिय-प्रतिसंलीनता तद्रूपं तप इन्द्रिय प्रतिसंलीनता तपः तत् खलु पञ्चविधं भवति, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियप्रतिसंलीनता १ आदिना-चक्षुरिन्द्रियप्रतिसंलीनता २ घ्राण-

---

उत्तर-प्रतिसंलीनता तप चार प्रकार का है—(१) इन्द्रियप्रतिसंलीनता (२) कषायप्रतिसंलीनता (३) योगप्रतिसंलीनता और (४) विविक्तशयनासनसेवनता ॥१८॥

'इंदियपडिसंलीणया तवे' इत्यादि।

सूत्रार्थ—श्रोत्र आदि पांच इन्द्रियों के भेद से इन्द्रियप्रतिसंलीनता तप भी पांच प्रकार का है ॥१९॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले छठे बाह्यतप प्रतिसंलीनता का निरूपण किया गया, अब उसके चार भेदों में से प्रथम भेद इन्द्रिय प्रतिसंलीनता के भेदों की प्ररूपणा करते हैं—

श्रोत्र आदि इन्द्रियों का गोपन करना इन्द्रिय प्रतिसंलीनता तप है। वह पांच प्रकार का है-(१) श्रोत्रेन्द्रिय प्रतिसंलीनता चक्षुरिन्द्रिय-प्रतिसंलीनता (३) घ्राणेन्द्रिय प्रतिसंलीनता (४) रसनेन्द्रिय प्रतिसंलीनता

ઉત્તર-પ્રતિસંલીનતા તપ ચાર પ્રકારના છે-(૧) ઇન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા (૨) કષાયપ્રતિસંલીનતા (૩) યોગપ્રતિસંલીનતા અને (૪) વિવિક્તશયનાસનસેવનતા ॥ ૧૮ ॥

'इंदियपडिसंलीणया तवे पंचविहे' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ--શ્રોત્ર આદિ પાંચ ઈન્દ્રિયોના ભેદથી ઇન્દ્રિયપ્રયિસંલીનતા તપ પણ પાંચ પ્રકારના છે. ॥ ૧૯ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-પહેલા છટ્ઠા બાહ્યતપ પ્રતિસંલીનતાનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે એના ચાર ભેદોમાંથી પ્રથમ ઇન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતાના ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ

શ્રોત્ર આદિ ઈન્દ્રિયોનું ગોપન કરવું ઈન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા તપ છે. તે પાંચ પ્રકારના છે-(૧) શ્રોત્રેન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા (૨) ચક્ષુરિન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા

न्द्रियप्रतिसंलीनता-३ जिह्वेन्द्रियप्रतिसंलीनता ४ स्पर्शेन्द्रियप्रतिसंलीनता ५ चेत्येवं पञ्चविधं तावद् इन्द्रियप्रतिसंलीनता तपो भवतीति भावः। तत्र-श्रोत्रेन्द्रियविषयप्रचारनिरोधः, श्रोत्रेन्द्रियविषयप्राप्तेष्वर्थेषु राग-द्वेषनिग्रहो वा श्रोत्रेन्द्रियप्रतिसंलीनता तपो भवति। तथा च-संयमशीलता विघातकः शब्दो न श्रोतव्यः मधुर मृदङ्गादि शब्देष्वनुरागो न कर्तव्यः, आक्रोशादि शब्देष्वपीति लक्षणश्चित्तविकारात्मको द्वेषो न विधेयः-१ एवं चक्षुरिन्द्रियप्रतिसंलीनता तपस्तु-चक्षुरिन्द्रियविषयप्रचारनिरोधरूपं चक्षुरिन्द्रियविषयप्राप्तेष्वर्थेषु-रागद्वेषनिग्रहरूपं वा बोध्यम् २ एवं-घ्राणेन्द्रियप्रतिसंलीनता तपस्तु-घ्राणेन्द्रियविषयप्रचारनिरोधरूपं घ्राणेन्द्रियविषयप्राप्तेष्वर्थेषु राग-द्वेष निग्रहरूपं वाऽवसेयम् ३ एवं-जिह्वेन्द्रियप्रतिसंलीनता तपस्तु-जिह्वेन्द्रियविषयप्रचार

और (५) स्पर्शेन्द्रियप्रतिसंलीनता। श्रोत्रेन्द्रिय को उसके विषय ग्रहण में प्रवृत्त न होने देना अथवा प्राप्त विषय में अर्थात् इष्ट अनिष्ट शब्द में राग-द्वेष न उत्पन्न देना श्रोत्रेन्द्रिय प्रतिसंलीनता है। अतएव संयम विघातक शब्द सुनना नहीं चाहिए, मृदंग आदि से मनोहर शब्दों में राग और आक्रोश आदि के शब्दों में द्वेष नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार चक्षु इन्द्रिय के व्यापार का निरोध कर देना अथवा चक्षु के द्वारा दिखाई देने वाले रूपों में राग द्वेष न करना चक्षुरिन्द्रिय प्रतिसंलीनता है। घ्राणेन्द्रिय को अपने विषय में प्रवृत्त न होने देना अथवा इष्ट-अनिष्ट गंध की प्राप्ति होने पर राग-द्वेष न करना घ्राणेन्द्रिय प्रतिसंलीनता तप है। इसी प्रकार जिह्वा को रस में प्रवृत्त न करना अथवा

---

(૩) ઘ્રાણેન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા (૪) રસનેન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા (અને) (૫) સ્પર્શેન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા શ્રોત્રેન્દ્રિયને તેના વિષયગ્રહણમાં પ્રવૃત્ત ન થવા દેવી અથવા પ્રાપ્ત વિષયમાં અર્થાત્ ઈષ્ટ અનિષ્ટ શબ્દમાં રાગ દ્વેષ ઉત્પન્ન ન થવા દેવા શ્રોત્રેન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા છે આથી સંયમ વિઘાતક શબ્દ સાંભળવો ન જોઈએ. મૃદંગ આદિના મનોહર શબ્દોમાં રાગ અને આક્રોશ આદિના શબ્દોમાં દ્વેષ ન કરવો જોઈએ એવી જ રીતે ચક્ષુ ઇન્દ્રિયના વ્યાપારનો નિરોધ કરી દેવો અથવા ચક્ષુ દ્વારા જોવામાં આવતા રૂપોમાં રાગ દ્વેષ ન કરવો ચક્ષુરિન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા છે. ઘ્રાણેન્દ્રિયને તેના વિષયમાં પ્રવૃત્ત ન થવા દેવી અથવા ઈષ્ટ અનિષ્ટ ગંધની પ્રાપ્તિ થવા પર રાગ દ્વેષ ન કરવો ઘ્રાણેન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા તપ છે. એવી જ રીતે જીભને રસમાં પ્રવૃત્ત ન કરવી

निरोधरूपं जिह्वेन्द्रिय प्राप्तेष्वर्थेषु राग-द्वेषनिग्रहरूपं वा बोध्यम् ४ एवं-स्पर्शनेन्द्रियप्रतिसंलीनता तपस्तु स्पर्शनेन्द्रियविषयप्रचारनिरोधरूपं स्पर्शनेन्द्रिय-विषयप्राप्तेष्वर्थेषु राग-द्वेषनिग्रहरूपं वाऽवगन्तव्यम् ५ तथा च नेत्रस्य विषये रूपे प्रवृत्तिनिरोधः कर्तव्यः, मनोज्ञाऽमनोज्ञरूपेष्वनुरागस्य-द्वेषस्य च निग्रहः कार्यः, एवं-घ्राणजिह्वा स्पर्शनेन्द्रियाणां गन्धरसस्पर्शनात्मक विषयेषु प्रवृत्तिनिरोधो विधातव्यः, मनोज्ञाऽमनोज्ञगन्धरसस्पर्शेषु रागद्वेषनिग्रहः कर्तव्यः॥ १९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावद्-षष्ठं तपः प्रतिसंलीनतारूपं चतुर्विधं प्रतिपादितम्, तत्र-सम्प्रति-इन्द्रियप्रतिसंलीनता तपः पञ्चविधत्वेन प्रतिपादयितुमाह-

---

प्राप्त मनोज्ञ और अमनोज्ञ रसों में राग-द्वेष उत्पन्न न होने देना रसनेन्द्रिय प्रतिसंलीता है। इसी भांति स्पर्शन इन्द्रिय को स्पर्श विषय में प्रवृत्त न होने देना अथवा प्राप्त स्पर्श में राग द्वेष धारण न करना स्पर्शनेन्द्रिय प्रतिसंलीनता तप है। ऐसा ही नेत्र के विषय रूप में चक्षु की प्रवृत्ति नहीं होने देना चाहिए और यदि प्रवृत्ति हो जाय तो उसमें राग द्वेष नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार घ्राण, रसना और स्पर्शनेन्द्रिय को अपने-अपने विषय में प्रथम तो प्रवृत्त ही नहीं होने देना चाहिए और कदाचित् प्रवृत्ति हो जाय, क्योंकि प्राप्त विषय को इन्द्रिय ग्रहण किये बिना रहती नहीं, तो उन विषयों को मनोज्ञ या अमनोज्ञ मानकर राग-द्वेष नहीं करना चाहिए ॥१९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले छठे तप प्रतिसंलीनता का निरूपण किया गया और उसके चार भेदों का नर्देश भी किया गया, अब उनमें से

પ્રાપ્ત મનોજ્ઞ અમનોજ્ઞ રસોમાં રાગ દ્વેષ ઉત્પન્ન ન થવા દેવા રસનેન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા છે. એવી જ રીતે સ્પર્શનઇન્દ્રિયને સ્પર્શવિષયમાં પ્રવૃત્ત ન થવા દેવી અથવા પ્રાપ્ત સ્પર્શમાં રાગ દ્વેષ ધારણ ન કરવા સ્પર્શેન્દ્રિય પ્રતિસંલીનતા તપ છે. આવીજ રીતે નેત્રના વિષય રૂપમાં ચક્ષુની પ્રવૃત્તિ થવા દેવી ન જોઈએ અને કદાચ પ્રવૃત્તિ થઈ જાય તો તેમાં રાગ દ્વેષ તો ધારણ ન જ કરવા ઘટે એવી જ રીતે ઘ્રાણ, જીભ તેમજ સ્પર્શનેન્દ્રિયને પોત પોતાના વિષયમાં પ્રથમ તો પ્રવૃત્ત જ ન થવા દેવા જોઈએ અને કદાચિત પ્રવૃત્તિ થઈ જાય, કારણકે પ્રાપ્ત વિષયને ઇન્દ્રિય ગ્રહણ કર્યા વગર રહેતી નથી. ત્યારે તે વિષયોને મનોજ્ઞ અથવા અમનોજ્ઞ જાણીને રાગ દ્વેષ ન રાખવા જોઇએ. ૧૯.

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ-પહેલા છટ્ઠા તપ પ્રતિસંલીનતાનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું અને તેના ચાર ભેદોનો નિર્દેશ પણ કરવામાં આવ્યો હવે તે પૈકી

'इंदिय पडिसंलीणया तवे पंचविहे, सोइंदियाइभेयओ' इति। इन्द्रिय प्रतिसंलीनतातपः—इन्द्रियाणां प्रतिसंलीनता संगोपनशीलता इन्द्रियप्रतिसंलीनता तद्रूपंतपः पञ्चविधं भवति तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियादि भेदतः। तथा च—श्रोत्रेन्द्रिय प्रतिसंलीनता १ चक्षुरिन्द्रियप्रतिसंलीनता २ घ्राणेन्द्रियप्रतिसंलीनता ३ जिह्वेन्द्रिय प्रतिसंलीनता ४ स्पर्शनेन्द्रियप्रतिसंलीनता च ५ इत्येवं पञ्चविधं प्रतिसंलीनता तपो भवतीति भावः। तत्र—श्रोत्रेन्द्रियप्रतिसंलीनता तप स्तावत्—श्रोत्रेन्द्रियविषयप्रचार निरोधरूपं श्रोत्रेन्द्रियविषयेष्वर्थेषु रागद्वेषनिग्रहरूपं वा १ चक्षुरिन्द्रियप्रतिसंलीनता तपस्तावत्—चक्षुरिन्द्रियविषयप्रचारनिरोधरूपं चक्षुरिन्द्रियप्राप्तेष्वर्थेषु रागद्वेष निग्रहरूपं वा बोध्यम् २ एवं घ्राणेन्द्रियविषयप्राप्तेष्वर्थेषु रागद्वेषनिग्रहरूपं भवति ३ एवं जिह्वेन्द्रियप्रतिसंलीनता तपस्तु—जिह्वेन्द्रियविषयप्रचारनिरोधरूपम्, जिह्वेन्द्रिय-

---

इन्द्रिय प्रतिसंलीनता तप के पाँच भेदों का निरूपण करते हैं—

इन्द्रियाँ पांच हैं, अतएव इन्द्रिय प्रतिसंलीनता तप भी पांच प्रकार का है, यथा—(१) श्रोत्रेन्द्रिय प्रतिसंलीनता (२) चक्षुरिन्द्रिय प्रतिसंलीनता (३) घ्राणन्द्रिय प्रतिसंलीनता (४) रसनेन्द्रिय प्रतिसंलीनता और (५) स्पर्शनेन्द्रिय प्रतिसंलीनता। श्रोत्रेन्द्रिय को अपने विषय में प्रवृत्त न होने देना अथवा उसके विषय में राग द्वेष उत्पन्न न होने देना श्रोत्रेन्द्रिय प्रतिसंलीनता नामक तप कहलाता है। इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय को अपने विषय में प्रवृत्त न होने देना अथवा प्रवृत्त होने पर भी उसमें राग द्वेष न करना चक्षुरिन्द्रिय प्रतिसंलीनता तप है। घ्राणेन्द्रिय का निग्रह करना घ्राणेन्द्रिय प्रतिसंलनता है। जिह्वा को वचन प्रयोग से विरत कर देना या प्राप्त विषय में राग-द्वेष न उत्पन्न होने

ઈન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા તપના પાંચ ભેદોનું નિરૂપણ કરીએ છીએ

ઈન્દ્રિયો પાંચ છે આથી ઈન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા તપ પણ પાંચ પ્રકારના છે જેવાકે –(૧) શ્રોત્રેન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા (૨) ચક્ષુન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા (૩) ઘ્રાણેન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા (૪) રસનેન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા અને (૫) સ્પર્શનેન્દ્રિય પ્રતિસંલીનતા. શ્રોત્રેન્દ્રિયને તેના વિષયમાં પ્રવૃત્ત ન થવા દેવી અથવા તેના વિષયમાં રાગ દ્વેષ ઉત્પન્ન ન થવા દેવા શ્રોત્રેન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા નામક તપ કહેવાય છે. એવી જ રીતે ચક્ષુરિન્દ્રિયને પોતાના વિષયમાં પ્રવૃત્ત ન થવા દેવી અથવા પ્રવૃત્ત થવા છતાં પણ તેમાં રાગ દ્વેષ ન કરવો ચક્ષુરિન્દ્રિય પ્રતિસંલીનતા તપ છે ઘ્રાણેન્દ્રિયનો નિગ્રહ કરવો ઘ્રાણેન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા છે. જીભને વચન પ્રયોગથી વિરક્ત કરી દેવી અથવા પ્રાપ્ત વિષયમાં રાગ દ્વેષ

विषयप्राप्तेषु—अर्थेषु रागद्वेषनिग्रहात्मकं वाऽवसेयम्४ एवं—स्पर्शनेन्द्रिय प्रतिसंलीनता तपस्तावत्—स्पर्शनेन्द्रियविषयप्रचारनिरोधरूपं, स्पर्शनेन्द्रियविषयप्राप्तेष्वर्थेषु रागद्वेषनिग्रहरूपं वाऽवगन्तव्यम् ५ उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे–'से किं तं इंदिय पडिसंलीणया? इंदियपडिसंलीणया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा सोइंदियविसयप्पयारनिरोहो वा, सोइंदियविसयपत्तेसु अत्थेसु रागदोसनिग्गहो वा १ चक्खिंदियविसयप्पयारनिग्गहो वा, चक्खिंदियसयपत्तेसु अत्थेसु रागदोसनिग्गहो वा २ घाणिंदियविसयप्पयारनिग्गहो वा, घाणिंदियविसयपत्तेसु अत्थेसु रागदोसनिग्गहो वा ३ जिब्भिंदिय विसयप्पयारनिरोहो वा जिब्भिंदियाविसयपत्तेसु अत्थेसु रागदोसनिग्गहो वा ४ फासिंदियविसयप्पयारनिरोहो वा फासिंदियविसयपत्तेसु अत्थेसु रागदोसनिग्गहो वा ५ से त्तं इंदियपडिसंलीनया' इति, अथ का सा इन्द्रियप्रतिसंलीनता ? इन्द्रियप्रतिसंलीनता पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियविषयप्रचारनिरोधो वा श्रोत्रेन्द्रियविषय प्राप्तेष्वर्थेषु रागद्वेषनिग्रहो वा १ चक्षुरिन्द्रियविषयप्रचारनिरोधो वा चक्षुरिन्द्रियविषयप्राप्तेष्वर्थेषु रागद्वेषनिग्रहो वा २ घ्राणेन्द्रियविषयप्रचारनिरोधो वा घ्राणेन्द्रियविषयप्राप्तेष्वर्थेषु रागद्वेषनिग्रहो वा ३ जिह्वेन्द्रियविषय-

---

देना जिह्वेन्द्रिय प्रतिसंलीनता है। स्पर्शन इन्द्रियां को विषय से विरत करना एवं मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्श में राग-द्वेष न करना स्पर्शनेन्द्रिय प्रतिसंलीनता तप है। औपपातिक सूत्र के तीसवें सूत्र में कहा है—

प्रश्न—इन्द्रिय प्रतिसंलीनता के कितने भेद हैं ?

उत्तर—इन्द्रिय प्रतिसंलीनता के पांच भेद हैं। वे इस प्रकार हैं— (१) श्रोत्रेन्द्रिय के विषय प्रचार का निरोध करना या श्रोत्रेन्द्रिय के विषय भूत पदार्थों में राग द्वेष का निग्रह करना (२) चक्षुरिन्द्रिय के विषय प्रचार का निरोध करना या प्राप्त विषय में राग-द्वेष न करना

न उत्पन्न थवा देवा जिह्वेन्द्रियप्रतिसंलीनता छे. स्पर्शन इन्द्रियने विषयथी विरक्त करवी अने मनोज्ञ अमनोज्ञ स्पर्शमां राग द्वेष न करवा स्पर्शनेन्द्रियप्रतिसंलीनता तप छे औपपातिक सूत्रना त्रीसमां सूत्रमां कह्युं छे

प्रश्न—इन्द्रियप्रतिसंलीनताना केटला भेद छे ?

उत्तर—इन्द्रियप्रतिसंलीनताना पांच भेद छे ते आ प्रमाणे (१)श्रोत्रेन्द्रियना विषयभूत पदार्थोमां रागद्वेषनो निरोध करवो अथवा श्रोत्रेन्द्रियना विषयभूत पदार्थोमां राग द्वेषनो निग्रह करवो (२) चक्षुरिन्द्रियना विषय-

प्रचारनिरोधो वा, जिह्वेन्द्रियविषयप्राप्तेष्वर्थेषु रागद्वेषनिग्रहो वा ४ स्पर्शनेन्द्रियविषयप्रचारनिरोधो वा स्पर्शनेन्द्रियप्राप्तेष्वर्थेषु रागद्वेषनिग्रहो वा ५ इति, एषा-इन्द्रियप्रतिसंलीनता, इत्येवं प्रतिसंलीनता बोध्या ॥१९॥

मूलम्—कसायपडिसंलीणया तवे चउव्विहे, कोहपडिसंली-णयाइभेयओ ॥२०॥

छाया—कषायप्रतिसंलीनता तपश्चतुर्विधम्, क्रोधप्रतिसंलीनतादि भेदतः २०

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत् चतुर्विधेषु प्रतिसंलीनता तपःसु 'प्रथमोपात्तम् इन्द्रियप्रतिसंलीनता तपः पञ्चविधत्वेन सविस्तरं प्ररूपितम् सम्प्रति-क्रमप्राप्तं द्वितीयं कषायप्रतिसंलीनता तपश्चतुर्विधत्वेन प्ररूपयितुमाह—'कसायपडिसंली-णया चउव्विहे कोहपडिसंलीणयाइ भेयओ' इति । कषायप्रतिसंलीनता तपः कषायाणां क्रोधादीनां प्रतिसंलीनता-संगोपनशीलता कषाय-प्रतिसंलीनता तद्रूपं तपः खलु चतुर्विधं भवति, तद्यथा—क्रोधप्रतिसं-

---

(३) घ्राणेन्द्रिय के विषय प्रचार को निरोध करना अथवा घ्राणेन्द्रिय के विषय (गंध) में राग द्वेष न करना (४) जिह्वेन्द्रिय के विषय प्रचार का निग्रह करना अथवा उसके विषय में राग द्वेष उत्पन्न न होने देना और (५) स्पर्शनेन्द्रिय के विषय प्रचार का निरोध करना या उसके प्राप्त विषय में राग द्वेष न करना। यह इन्द्रिय प्रतिसंलीनता तप है ॥१९॥

'कसायपडिसंलीणया तवे' इत्यादि सू० २०

सूत्रार्थ—प्रतिसंलीनता तप के चार भेदों में से इन्द्रियप्रतिसंलीनता तप के पांच भेदों का विस्तार सहित निरूपण किया गया, अब क्रमप्राप्त कषाय प्रतिसंलीनता तप के चार भेदों का प्ररूपण करते हैं ॥२०॥

तत्त्वार्थदीपिका—क्रोध आदि कषायों का गोपन करना कषायप्र-तिसंलीनता तप कहलाता है। उसके चार भेद हैं—(१) क्रोधप्रतिसंली-

---

પ્રચારનો નિરોધ કરવો (૩) ઘ્રાણેન્દ્રિયના વિષય (ગંધ)માં રાગદ્વેષ ન રાખવા. (૪) જિહ્વેન્દ્રિયના વિષયપ્રચારનો નિગ્રહ કરવો અથવા તેના વિષયમાં રાગ દ્વેષ ઉત્પન્ન ન થવા દેવો અને (૫) સ્પર્શનેન્દ્રિયના વિષયપ્રચારનો નિરોધ કરવો અથવા તેના પ્રાપ્ત વિષયમાં રાગ દ્વેષ ન કરવો. આ બધાં ઈન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા તપના ભેદ છે. ॥ ૧૯ ॥

'કસાયપડિસંલીણયા તવે ચઉવ્વિહે' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—પ્રતિસંલીનતા તપના ચાર ભેદોમાંથી ઈન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા તપના પાંચ ભેદોનું સવિસ્તર વર્ણન કરવામાં આવ્યું, હવે ક્રમપ્રાપ્ત કષાય પ્રતિસંલીનતા તપના ચાર ભેદોનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ ॥ ૨૦ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-ક્રોધ આદિ કષાયોનું ગોપન કરવું કષાયપ્રતિસંલીનતા તપ કહેવાય છે તેના ચાર ભેદ છે-(૧) ક્રોધપ્રતિસંલીનતા (૨) માનપ્રતિસં-

लीनतादि भेदतः। तथा च-क्रोधप्रतिसंलीनता १ आदिना-मानप्रतिसंलीनता २ मायाप्रतिसंलीनता ३ लोभप्रतिसंलीनता ४ चेत्येवं चतुर्विधं तावत्-कषाय प्रतिसंलीनता तपो भवति। तत्र-क्रोधप्रतिसंलीनता तप स्तावत्-क्रोधस्योदय निरोधरूपम्, उदयप्राप्तस्य क्रोधस्य विफली करणम् अन्तः संगोपनरूपं-विलीन-करणं वा क्रोधप्रतिसंलीनता तप उच्यते यथा क्रोधो नोदयेत तथा यतितव्यम्, यदि कदाचित्क्रोध उदितः स्यात् तदा तस्य विफलतां कुर्यात्-इति भावः १ एवं मानप्रतिसंलीनता तप स्तावत्-मानस्योदयनिरोधरूपम्, उदयप्राप्तस्य मानस्य विफलीकरण मन्तःसंगोपनविलीनीकरणरूपं वा मानप्रतिसंलीनता तपो भवति, यथाऽभिमानरूपमानस्योदय एव न स्यात्तथायत्नः कर्तव्यः, यदि कदाचित् मान उदितः स्यात् तदा तं विफलं कुर्यात्। २ एवं-मायाप्रतिसंलीनता तपस्तावत् मायायाः उदयनिरोधरूपम्, उदयप्राप्ताया मायाया विफलीकरणम्-अन्तः संगोपनं वा मायाप्रतिसंलीनता तप उच्यते, यथा-परवञ्चनारूपा माया नोदयेत तथा

नता (२) मानप्रतिसंलीनता (३) मायाप्रतिसंलीनता (४) लोभप्रतिसं-लीनता। क्रोध को उत्पन्न न होने देना या उदित हुए क्रोध को विफल करना-उसे अन्दर ही दबा देना क्रोध प्रतिसंलीनता तप है। तात्पर्य यह है कि प्रयत्न ऐसा करना चाहिए कि क्रोध की उत्पत्ति ही न होने पाए, कदाचित् क्रोध उत्पन्न भी हो जाय तो उसे निष्फल बना देना चाहिए। इसी प्रकार मान को उत्पन्न न होने देना अथवा उत्पन्न मान को निष्फल कर देना मानप्रतिसंलीनता तप है, अर्थात् प्रयत्न ऐसा करना कि मान कषाय की उत्पत्ति ही न हो, फिर भी कभी उत्पन्न हो जाय तो उसे विफल कर देना चाहिए। इसी तरह माया को उत्पन्न न होने देना और उदित हुई माया को निष्फल कर देना मायाप्रतिसं-

---

લીનતા (૩) માયાપ્રતિસંલીનતા (૪) લોભપ્રતિસંલીનતા. ક્રોધને ઉત્પન્ન ન થવા દેવો અથવા ઉદિત થયેલા ક્રોધને વિફળ બનાવવો તેને અંદરથી જ શમાવી દેવો ક્રોધપ્રતિસંલીનતા તપ છે. તાત્પર્ય એ છે કે પ્રયત્ન એવો કરવો જોઈએ કે ક્રોધની ઉત્પત્તિ જ ન થાય કદાચિત ક્રોધ ઉત્પન્ન થઈ પણ જાય તો તેને નિરંકુશ બનાવી દેવો જોઈએ એવી જ રીતે માનને ઉત્પન્ન ન થવા દેવું અથવા ઉત્પન્ન થનેલા માનને નિષ્ફળ કરી દેવું માનપ્રતિસંલીનતા તપ છે અર્થાત્ પ્રયત્ન એવો કરવો કે માનકષાયનો ઉદ્ભવ જ ન થાય તેમ છતાં કદાચ ઉત્પન્ન થઈ જાય તો તેને નિષ્ફળ કરી દેવું જોઈએ આ પ્રમાણે માયાને ઉત્પન્ન થવા ન દેવી અને ઉદિત થયેલી માયાને બિન અસરકારક બનાવી

यतितव्यम्, कथञ्चिदुदितायाः कपटरूपाया मायायाः विफलतां कुर्यात् ३ एवं लोभप्रतिसंलीनतातप स्तावत्-लोभस्योदयनिरोधरूपम्, उदयप्राप्तस्य लोभस्य विफलीकरणम् अन्तः संगोपनरूपं वा लोभप्रतिसंलीनता तप उच्यते, यथा-परस्व ग्रहणलालसारूपो लोभो-न उदयेत तथा-यत्नं कुर्यात्, यदि कथञ्चित्-कस्मिंश्चित्-वस्तुनि लोभ उदितः स्यात् तदा-तं विफलं विदध्यात्-४ इति भावः ॥२०॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं खलु-प्रतिसंलीनता तपश्चतुर्विधत्वेन प्ररूपितम्, तत्र-प्रथमस्येन्द्रियप्रतिसंलीनता तपः पञ्चविधत्वेन सविशदं निरूपणं कृतम्, सम्प्रति-क्रमप्राप्तस्य कषायप्रतिसंलीनतारूप तपसः खलु चतुर्विधत्वेन प्ररूपणं कर्तुमाह-'कसाय पडिसंलीणया तवे चउव्विहे कोहपडिसंलीणयाइभेयओ इति। कषायप्रतिसंलीनता तपः-कषायाणां क्रोधादीनां प्रतिसंलीनता संगोपनशीलता कषायप्रतिसंलीनता, तद्रूपं तपः खलु चतुर्विधं भवति तद्यथा-क्रोधप्रतिसं-

---

लीनता है। इसी प्रकार लोभ को उत्पन्न न होने देना और उत्पन्न हुए लोभ को विफल कर देना लोभप्रतिसंलीनता तप कहलाता है। ऐसा यत्न करना चाहिए कि परकीय वस्तु को ग्रहण करने की लालसा रूप लोभ उत्पन्न ही न हो, फिर भी किसी प्रकार किसी वस्तु का लोभ उत्पन्न हो जाय तो उसे निष्फल करना चाहिए ।२०॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पहले प्रतिसंलीनता तप के चार भेदों का कथन किया गया था। उनमें से प्रथम इन्द्रियप्रतिसंलीनता तप के चार भेदों का विशद प्ररूपण किया जा चुका, अब क्रमप्राप्त कषाय प्रतिसंलीनता तप के चार भेदों का निरूपण करते हैं—

कषायप्रतिसंलीनता तप के चार भेद है, जो इस प्रकार हैं-(१)

देवी मायाप्रतिसंलीनता छे. એવી જ રીતે લોભને ઉત્પન્ન ન થવા દેવો અને ઉત્પન્ન થયેલા લોભને વિફળ કરી દેવો લોભપ્રતિસંલીનતા તપ છે. એવો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ કે પારકી વસ્તુને ગ્રહણ કરવાની લાલસા રૂપ લોભ ઉત્પન્ન જ ન થાય, આમ છતાં સંજોગવશાત્ કોઈ વસ્તુનો લોભ ઉત્પન્ન થઇ જાય તો તેને નિષ્ફળ બનાવવો જોઇએ ॥ ૨૦ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા પ્રતિસંલીનતા તપના ચાર ભેદોનું કથન કરવામાં આવ્યુ હતું તેમાથી પ્રથમ ઈન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા તપના પાંચ ભેદોનું વિસ્તારપૂર્વક પ્રરૂપણુ કરવામાં આવી ગયું, હવે ક્રમપ્રાપ્ત કષાય પ્રતિસંલીનતા તપના ચાર ભેદોનું પ્રરૂપણુ કરીએ છીએ-

કષાયપ્રતિસંલીનતા તપના ચાર ભેદ આ પ્રમાણે છે-(૧) ક્રોધપ્રતિ-

लीनतादि भेदतः । तथा च क्रोधप्रतिसंलीनता १ आदिना-मानप्रतिसंलीनता-२ मायाप्रतिसंलीनता-३ लोभप्रतिसंलीनता-४ चेत्येवं चतुर्विधं तावत्-कषाय प्रतिसंलीनता तपो भवति । तत्र क्रोधप्रतिसंलीनता तपः खलु-क्रोधस्योदय निरोधरूपम्, उदितस्य क्रोधस्य विफलीकरण मन्तः संगोपनरूपं वा क्रोध प्रतिसंलीनता, तप उच्यते प्रथमं तु-क्रोधस्योदय एव यथा न स्यात् तथा यतितव्यम्, यदि तु कदाचिद् क्रोध उदयं प्राप्नुयात् तदा तं विफलं कुर्यादिति भावः १ एवं-मानप्रतिसंलीनता तप एतावद् अभिमानरूपस्य मानस्योदयनिरोधरूपम् उदय प्राप्तस्य मानस्य विफलीकरण मन्तः संगोपनं वा मानप्रतिसंलीनता तप उच्यते प्रथमतस्तु-मानस्योदय एव यथा न स्यात्तथा यतितव्यम्-यदि कथंचिद्-उदितः स्यान्मानः तदा तं विफलं विदध्यादिति भावः २ एवं मायाप्रतिसंलीनता तपस्तावद् मायायाः परवञ्चनारूपायाः कपटरूपाया वा उदयनिरोधरूपम्, उदय प्राप्ताया

क्रोधप्रतिसंलीनता (२) मानप्रतिसंलीनता (३) मायाप्रतिसंलीनता और (४) लोभप्रतिसंलीनता । क्रोध की उत्पत्ति न होने देना अथवा उत्पन्न क्रोध को विफल कर देना क्रोधप्रतिसंलीनता तप कहलाता है । भाव यह है कि प्रथम तो ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि क्रोध उत्पन्न ही न होने पाए, कदाचित् उत्पन्न हो जाय तो उसे निष्फल बना दे ।

इसी प्रकार मानकषाय को उत्पन्न न होने देना और उत्पन्न हुए मान कषाय को निष्फल कर देना मानप्रतिसंलीनता तप है । तात्पर्य यह है कि प्रथम तो ऐसा यत्न करना चाहिए जिससे मान उत्पन्न ही न हो, कदाचित् उत्पन्न हो जाय तो उसे विफल कर देना चाहिए । इसी भांति परवंचना रूप माया को उत्पन्न न होने देना और उत्पन्न

સંલીનતા (૨) માનપ્રતિસંલીનતા (૩) માયાપ્રતિસંલીનતા (૪) લોભપ્રતિસંલીનતા. ક્રોધની ઉત્પતિ ન થવા દેવી અથવા ઉત્પન્ન ક્રોધનું શમન કરી દેવું ક્રોધપ્રતિસંલીનતા તપ કહેવાય છે. સારાંશ એ છે કે પ્રથમતો એવો પ્રયત્ન કરવો જોઇએ કે ક્રોધ ઉદ્ભવે જ નહીં. કદાચ ઉદ્ભવે તો તેને નિષ્ફળ બનાવી દે

આવી જ રીતે માનકષાયને ઉત્પન્ન ન થવા દેવો અને ઉત્પન્ન થયેલ માન-કષાયને નિષ્પ્રભાવિત કરી દેવો માનપ્રતિસંલીનતા તપ છે. તાત્પર્ય એ છે કે પ્રથમ તો એવો પ્રયત્ન કરવો જોઇએ કે જેથી માન ઉત્પન્ન જ ન થાય, કદાચિત જો ઉત્પન્ન થઈ જાય તો તેને નિષ્ફળ બનાવવું જોઇએ

આજ પ્રમાણે પરવંચના રૂપ માયા ને ઉત્પન્ન ન થવા દેવી અને ઉત્પન્ન થયેલી માયાને વિફળ કરી દેવી અંદરને અંદર જ શમન કરી દેવી

मायाया विफलीकरण मन्तः संगोपनं वा, मायाप्रतिसंलीनता तपो भवति, यथा परवञ्चनारूपा-कपटरूपा वा माया नोदितास्यात्तथा यतितव्यम्, यदि कथञ्चिद् माया-उदितास्यात्तदा तां विफलतां कुर्यादितिभावः३ एवं प्रतिसंलीनता तपस्तावद् लोभस्य परस्वग्रहणलालसारूपस्योदयनिरोधरूपं भवति उदय-प्राप्तस्य लोभस्य विफलीकरणमन्तःसंगोपनरूपं वा लोभप्रतिसंलीनतातप उच्यते, प्रथमतस्तु लोभएव परस्वग्रहणलालसारूपो यथा नोदितः स्यात्तथा यतितव्यम्, यदितु कथञ्चित्कस्मिंश्चि द्वस्तुनि लोभ उदितः स्यात्तदा तं विफलं कुर्यादिति भावः ४ उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं कसायपडिसंलीणया? कसायपडिसंलीणया चउव्विहा पण्णत्ता तं जहा-कोहस्सुदयनिरोहो वा, उदयपत्तस्स वा-कोहस्स विफलीकरणं १ माणस्सुदयनिरोहो वा, उदय पत्तस्स वा माणस्स विफलीकरणं२ माय उदयणिरोहो वा, उदय-पत्ताए वा मायाए विफलीकरणं ३ लोहस्सुदयणिरोहो वा, उदयपत्तस्स लोहस्स विफलीकरणं४ से तं कसायपडिसंलीणया' इति। अथ का सा कषाय प्रतिसंलीनता कषायप्रतिसंलीनता चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-क्रोधस्योदयनिरोधो

हुई माया को विफल कर देना-भीतर ही दबा देना माया प्रतिसंलीनता तप कहलाता है। आशय यह है कि कपटरूप माया उत्पन्न न हो ऐसा यत्न करना चाहिए। कदाचित् उत्पन्न हो जाय तो उसे निष्फल करदेना चाहिए।

परकीय वस्तु को ग्रहण करने की लालसा रूप लोभ को उत्पन्न न होने देना और उत्पन्न हुए लोभ को विफल कर देना लोभप्रतिसंलीनता नामक तप कहलाता है। प्रथम तो यही प्रयत्न करना चाहिए कि लोभ का उदय ही न होसके कदाचित् उदित हो जाय तो उसे विफल कर देना चाहिए। औपपातिकसूत्र के तीसवें सूत्र में कहा भी है—

માયાપ્રતિસંલીનતા તપ કહેવાય છે. આશય એ છે કે કપટ રૂપ માયા ઉત્પન્ન ન થાય એ દિશામાં પ્રયત્ન કરવોજોઈએ, કદાચિત ઉત્પન્ન થઈ પણ જાય તો તેને નિષ્ફળ કરી દેવી જોઈએ.

પરમાલિકીની વસ્તુને ગ્રહણ કરવાની લાલસા રૂપ લોભને ઉત્પન્ન ન થવા દેવો અને ઉત્પન્ન થયેલ લોભને વિફળ કરી દેવો લોભપ્રતિસંલીનતા નામક તપ કહેવાય છે પ્રથમ તો લોભ ઉદ્ભવે જ નહીં એ માટે પ્રયત્નશીલ રહેવું જોઈએ. કદાચિત ઉદિત થઈ જાય તો તેને નિષ્ફળ કરી દેવો જોઈએ ઔપપાતિક સૂત્રના ત્રીસમાં સૂત્રમાં કહ્યું પણ છે–

वाउदय प्राप्तस्य वा क्रोधस्य विफलीकरणम्१ मानस्योदयनिरोधो वा उदयप्राप्तस्य वा, मानस्य विफलीकरणम् २ मायाया उदयनिरोधो वा, उदय प्राप्ताया मायाया विफलीकरणम् ३ लोभस्योदयनिरोधो वा, उदयप्राप्तस्य लोभस्य विफली-करणम् ४ ॥२०॥

मूलम्—जोगपडिसंलीणया तवे तिविहे, मणजोगपडिसंली-णयाइ भेयओ ॥२१॥

छाया—'योगप्रतिसंलीनता तपस्त्रिविधम्, मनोयोगप्रतिसंलीनतादि भेदतः ॥२१॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत्-चतुर्विधं प्रतिसंलीनता तपः प्रतिपादितम्, तत्र-यथाक्रममिन्द्रियप्रतिसंलीनताकषायप्रतिसंलीनतातपः प्ररूपितम्, सम्प्रति

प्रश्न—कषायप्रतिसंलीनता तप के कितने भेद हैं ?

उत्तर—कषायप्रतिसंलीनता तप चार प्रकार का है—(१) क्रोध के उदय का निरोध करना और उदित हुए क्रोध को विफल करना (२) मान को उत्पन्न न होने देना और उत्पन्न मान को विफल करना (३) माया के उदय को रोकना और उदित माया को विफल करना (४) लोभ के उदय को रोकना और उदित लोभ को विफल करना ।२०।

'जोगपडिसंलीणया तवे तिविहे'

सूत्रार्थ—मनोयोगप्रतिसंलीनता आदि भेद से योगसंलीनता तप तीन प्रकार का है ॥२१।

तत्त्वार्थदीपिका—पहले प्रतिसंलीनता तप के चार भेदों का निर्देश किया गया था, उनमें से क्रम के अनुसार इन्द्रियप्रतिसंलीनता और

પ્રશ્ન—કષાયપ્રતિસંલીનતા તપના કેટલા ભેદ છે. ?

ઉત્તર—કષાયપ્રતિસંલીનતા તપ ચાર પ્રકારના છે–(૧) ક્રોધના ઉદયનો નિરોધ કરવો અને ઉદિત થયેલા ક્રોધને બૂઝવવો. (૨) માનને ઉત્પન્ન ન થવા દેવું અને ઉત્પન્ન માનને નિષ્ફળ બનાવવું (૩) માયાના ઉદયને રોકવો અને ઉદય પામેલી માયાને વિફળ બનાવવી. (૪) લોભના ઉદયને રોકવો અને ઉદિત લોભને વિફળ બનાવવો ॥ ૨૦ ॥

'जोगपडिसलीणया तवे तिविहे' ઇત્યાદિ ।

સૂત્રાર્થ—મનોયોગપ્રતિસંલીનતા આદિના ભેદથી યોગપ્રતિસંલીનતા તપ ત્રણ પ્રકારના છે ॥ ૨૧ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—અગાઉ પ્રતિસંલીનતા તપના ચાર ભેદોનો નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો હતો, તેમાંથી ક્રમાનુસાર ઇન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા અને કષાય-

क्रमप्राप्तं तृतीयं योगप्रतिसंलीनतातपः प्ररूपयितुमाह–'जोगपडिसंलीणया तवे' इत्यादि । योगप्रतिसंलीनता तपः–योगानां मनोवचःकायव्यापार विशेषाणां प्रतिसंलीनता संगोपनशीलता–योगप्रतिसंलीनता तद्रूपं तपस्त्रिविधं भवति, तद्यथा, मनोयोगप्रतिसंलीनतादि भेदतः । तथा च–मनोयोगप्रतिसंलीनता १ आदिना–वचोयोगप्रतिसंलीनता २ काययोगप्रतिसंलीनता ३ चेत्येवं त्रिविधं खलु योगप्रतिसंलीनता तपो भवति । तत्र मनोयोगप्रतिसंलीऽता तप स्तावद् अकुशलमनोनिरोधरूपम्, कुशलमनस उदीरणं वा–उच्यते तथा च–शुभ मनसः प्रवर्तनरूपं वचोयोगप्रतिसंलीनता तपस्तावद् अकुशलवचोनिरोधरूपं वा वचोयोगप्रतिसंलीनता तप उच्यते । एवं काययोगप्रतिसंलीनतातप स्तावत् कूर्मवत् संहृतकरचरणगुप्तेन्द्रियसर्वगात्रप्रतिसंलीतारूपं सर्वसावद्याऽनुष्ठान-वर्जनात्मकं काययोगप्रतिसंलीनता तप उच्यते इति भावः ॥२१॥

कषायप्रतिसंलीनता तप का निरूपण किया जा चुका अब क्रमागत तीसरे योगप्रतिसंलीनता तप का निरूपण करते हैं––

मन वचन और काय के व्यापार का गोपन करना योगप्रतिसंलीनता तप है । उसके तीन भेद हैं–मनोयोग प्रतिसंलीनता, वचनयोग प्रतिसंलीनता और काययोग प्रतिसंलीनता । मन के अप्रशस्त व्यापार को रोकना एवं प्रशस्त व्यापार की उदीरणा करना मनोयोग प्रतिसंलीनता तप हैं । इसी प्रकार अप्रशस्त वचनों का निरोध करना और प्रशस्त वचनों की उदीरणा करना (अथवा मौन धारण करना) वचनयोग प्रतिसंलीनता तप है । कूर्म की तरह हाथों पैरों एवं सम्पूर्ण शरीर का संगोपन करना–सब प्रकार के कायिक सावद्य अनुष्ठान का त्याग करना काययोग प्रतिसंलीनता तप कहलाता है ॥२१॥

પ્રતિસંલીનતા તપનું નિરૂપણ કરવામાં આવી ગયું હવે ક્રમાગત ત્રીજા યોગ પ્રતિસંલીનતા તપનું નિરૂપણ કરીએ છીએ–

મન વચન અને કાયાના વ્યાપારનું ગોપન કરવું યોગપ્રતિસંલીનતા તપ છે તેના ત્રણ ભેદ છે–મનોયોગપ્રતિસંલીનતા વચનયોગપ્રતિસંલીનતા અને કાયયોગપ્રતિસંલીનતા. મનના અપ્રશસ્ત વ્યાપારને રોકવો અને પ્રશસ્ત વ્યપારની ઉદીરણા કરવી મનોયોગપ્રતિસંલીનતા તપ છે. એવીજ રીતે અપ્રશસ્ત વચનનો નિરોધ કરવો અને પ્રશસ્ત વચનોની ઉદીરણા કરવી (અથવા મૌન ધારણ કરવું) વચનયોગપ્રતિસંલીનતા તપ છે કાચબાની માફક હાથ પગ અને સંપૂર્ણ શરીરનું સંકોચન કરવું બધા પ્રકારના 'કાયિક સાવદ્ય અનુષ્ઠાનનો ત્યાગ કરવો કાયયોગપ્રતિસંલીનતા તપ કહેવાય છે ॥ ૨૧॥

तत्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं खलु-चतुर्विधबाह्यप्रतिसंलीनतातपसां यथाक्रम मिन्द्रियप्रतिसंलीनता-कषायप्रतिसंलीनता तपः सविशदं प्ररूपितम्, सम्प्रति-क्रमप्राप्तं तृतीयं प्रतिसंलीनता तपो योगप्रतिसंलीनतारूपं प्ररूपयितुमाह-"जोगपडिसंलीणया तवे तिविहे, मणजोगपडिसंलीणयाइ भेयओ-" इति। योगप्रतिसंलीनतातपः-योगानां मनोवचःकायव्यापार विशेषाणां प्रतिसंलीनता-संगोपनशीलता योगप्रतिसंलीनता तद्रूपं तपः खलु त्रिविधं भवति, तद्यथा मनोयोगप्रतिसंलीनतादि भेदतः। तथा च मनोयोगप्रतिसंलीनता १ आदिना वचोयोगप्रतिसंलीनता २ काययोगप्रतिसंलीनता ३ चेत्येवं त्रिविधं खलु योगप्रतिसंलीनतातप उच्यते। तत्र मनोयोगप्रतिसंलीनता तपस्तावद् अकुशलमनोनिरोधरूपं कुशलमनउदीरणं वा मनोयोगप्रतिसंलीनता तप उच्यते, तच्च शुभमनसः प्रवर्तनरूपं बोध्यम्। एव वचोयोगप्रतिसंलीनता तप

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--चार प्रकार के प्रतिसंलीनता तप में से पहले इन्द्रिय प्रतिसंलीनता और कषाय प्रतिसंलीनता तप का विशद रूपसे प्ररूपण किया गया, अब क्रमप्राप्त तीसरे योग प्रतिसंलीनता तप का निरूपण करते हैं-

मन, वचन और काय के योग-व्यापार का निरोध करना योग प्रतिसंलीनता तप कहलाता है। इसके तीन भेद हैं-(१) मनोयोग प्रति संलीनता (२) वचनयोग प्रतिसंलीनता और काययोग प्रतिसंलीनता। अकुशल मन का अर्थात् अप्रशस्त मनोव्यापार की उदीरणा करना मनोयोग प्रतिसंलीनता तप है। अकुशल वचन का निरोध करना और कुशल वचन की उदीरणा करना या वचनयोग की प्रवृत्ति को पूरी तरह रोक देना वचनयोग प्रतिसंलीनता तप हैं। कूर्म की भांति हाथों,

---

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ--ચાર પ્રકારના પ્રતિસંલીનતા તપમાંથી પહેલા ઇન્દ્રિય-પ્રતિસંલીનતા અને કષાયપ્રતિસંલીનતા તપનું વિશદ્ રૂપથી પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે ક્રમપ્રાપ્ત ત્રીજા યોગપ્રતિસંલીનતા તપનું નિરૂપણ કરીએ છીએ

મન, વચન અને કાયાના યોગવ્યાપારનો નિરોધ કરવો યોગપ્રતિસંલીનતા તપ કહેવાય છે. આના ત્રણ ભેદ છે-(૧) મનોયોગપ્રતિસંલીનતા (૨) વચન યોગપ્રતિસંલીનતા અને (૩) કાયયોગપ્રતિસંલીનતા અકુશળ મનનો અર્થાત્ અપ્રશસ્ત મનોવ્યાપારનો નિરોધ કરવો અને પ્રશસ્ત મનોવ્યાપારની ઉદીરણા કરવી મનોયોગપ્રતિસંલીનતા તપ છે. અકુશળ વચનનો નિરોધ કરવો અને કુશળ વચનની ઉદીરણા કરવી વચનયોગપ્રતિસંલીનતા તપ છે. કાચબાની જેમ

स्तावत् अकुशल वचो निरोधरूपं, कुशलस्य उदीरणरूपं वा वचोयोगप्रतिसंलीनता तप उच्यते । एवं काययोग प्रतिसंलीनता तप स्तावद् कूर्मवत् संहतहस्तपाद गुप्तेन्द्रियसर्वगात्रप्रतिसंलीनतारूपं खलु तपो भवति कायिक सावद्य सर्वाऽनुष्ठानपरिवर्जन मुच्यते । तथा च कच्छप इव सुसमाहित पाणिपादो गुप्तेन्द्रियः सर्वगात्र प्रतिसंलीनस्तिष्ठति । तथा च गुप्तेन्द्रियमुसंयत हस्तपाद सर्वगात्रप्रतिसंलीनतातपो भवति । उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं जोगपडिसंलीणया- ? जोगपडिसंलीणया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—मणजोगपडिसंलीणया-१ वयजोग पडिसंलीणया-२ कायजोगपडिसंलीणया-३ से किं तं मणजोग पडिसंलीणया-? मणजोगपडिसंलीणया-अकुसलमणनिरोहो, कुसलमणउदीरणंवा, से तं मणजोगपडिसंलीणया, से किं तं वयजोगपडिसंलीणया-? वयजोग पडिसंलीणया-अकुसलवयणिरोहोवा, कुसलवयउदीरणंवा, से तं वय जोगपडिसंलीणया, से किं तं कायजोगपडिसंलीणया ?-कायजोग पडिसंलीणया-जं तं सुसमाहिय पाणि पादे कुम्मो इव गुत्तिंदिए, सव्वगाय पडिसंलीणे चिट्ठइ, से तं कायजोगपडिसंलीणया,। अथ का सा योगप्रतिसंलीनता ३ योग प्रतिसंलीनता त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा मनोयोगप्रतिसंली-

---

पैरों, इन्द्रियों एवं सम्पूर्ण शरीर का गोपन करना काययोग प्रतिसंलीनता तप है । शरीर संबंधी सावद्य अनुष्ठानों को त्याग देना, कछुए की तरह समस्त इन्द्रियों का गोपन करना काययोग प्रतिसंलीनता तप है । औपपातिक सूत्र के तीसवें सूत्र में कहा है—

प्रश्न—योग प्रतिसंलीनता के कितने भेद हैं ?

उत्तर—योग प्रतिसंलीनता के तीन भेद हैं—मनोयोग प्रतिसंलीनता वचनयोग प्रतिसंलीनता और काययोग प्रतिसंलीनता ।

હાથ, પગ, ઇન્દ્રિયે અને સંપૂર્ણ શરીરને સમેટી લેવું કાયયોગપ્રતિસંલીતા તપ છે. ઔપપાતિકસૂત્રના ત્રીસમાં સૂત્રમાં કહ્યું છે—

પ્રશ્ન—યોગપ્રતિસંલીનતાના કેટલા ભેદ છે ?

ઉત્તર—યોગપ્રતિસંલીનતાના ત્રણ ભેદ છે. મનોયોગપ્રતિસંલીનતા, વચન યોગપ્રતિસંલીનતા અને કાયયોગપ્રતિસંલીનતા.

પ્રશ્ન—મનોયોગપ્રતિસંલીનતા કોને કહે છે ?

ઉત્તર—અકુશળ મનોવ્યાપારનો નિરોધ કરવો અને કુશળમનની પ્રવૃત્તિ કરવી મનોયોગપ્રતિસંલીનતા છે.

नता १ वचोयोगप्रतिसंलीनता२ काययोगप्रतिसंलीनता ३ अथ का सा मनोयोग-प्रतिसंलीनता मनोयोगप्रतिसंलीनता अकुशलमनोनिरोधो वा, कुशल मन उदीरणं वा, सा एषा मनोयोगप्रतिसंलीनता ? अथ का सा वचोयोगप्रतिसंलीनता ? वचोयोगप्रतिसंलीनता अकुशलवचो निरोधो वा, कुशल वच उदीरणं वा सा एषा वचोयोगप्रतिसंलीनता, अथ का सा काययोग प्रतिसंलीनता ? काययोग प्रतिसंलीनता यत् खलु सुसमाहितपाणिपाद कूर्म इव गुप्तेन्द्रियः सर्वगात्रप्रतिसंलीनास्तिष्ठति सा एषा काययोगप्रतिसंलीनता इति ॥२१॥

मूलम्—विवित्त सयणासणसेवणया तवे अणेगविहे, इत्थी-आइविरहिया—अणेगट्ठाणणिवाससेयओ ॥२२॥

प्रश्न—मनोयोग प्रतिसंलीनता किसे कहते हैं ?

उत्तर—अकुशल मनोव्यापार का निरोध करना और कुशल मन की प्रवृत्ति करना मनोयोग प्रतिसंलीनता है।

प्रश्न—वचनयोगप्रतिसंलीनता किसे कहते हैं ?

उत्तर—अकुशल वचनों का निरोध करना और कुशल वचनों की उदीरणा करना वचनयोगप्रतिसंलीनता तप है।

प्रश्न—काययोगप्रतिसंलीनता किसे कहते हैं ?

उत्तर—हाथों-पैरों का संगोपन करना इन्द्रियों का गोपन करना और सम्पूर्ण शरीरका गोपन करना अर्थात् कायिक व्यापार का निरोध कर देना कायप्रतिसंलीनता तप है ॥२१॥

'विवित्तसयणासण' इत्यादि सू० २२

सूत्रार्थ—विविक्त शयनासन सेवनता तप के अनेक भेद हैं, जैसे-स्त्री आदि से रहित अनेक स्थानों में निवास करना आदि ॥२२॥

પ્રશ્ન-વચનયોગપ્રતિસંલીનતા કોને કહે છે. ?

ઉત્તર-અકુશળ વચનોનો નિરોધ કરવો અને કુશળ વચનોની ઉદીરણા કરવી વચનયોગપ્રતિસંલીનતા તપ છે.

પ્રશ્ન-કાયયોગપ્રતિસંલીનતા કોને કહે છે ?

ઉત્તર-હાથ પગોનું સંગોપન કરવું ઇન્દ્રિયોને ગોપવી અને સંપૂર્ણ શરીરનું ગોપન કરવું અર્થાત્ કાયિક વ્યાપારનો નિરોધ કરી દેવો કાયપ્રતિ સંલીનતા તપ છે ॥ ૨૧ ॥

'विवित्तसयणासणसेवणया' ઇત્યાદિ ।

સૂત્રાર્થ--વિવિક્ત શયનાસનસેવનતા તપના અનેક ભેદ છે જેવા કે-સ્ત્રી આદિથી રહિત અનેક સ્થાનોમાં નિવાસ કરવા વગેરે— ॥ ૨૨ ॥

छाया—विविक्तशयनासनसेवनता तपो-ऽनेकविधं, स्त्र्यादिविरहिताऽनेकस्थाननिवासभेदतः—"

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत्-चतुर्विधप्रतिसंलीनतातपःसु यथाक्रममिन्द्रिय कषाययोगप्रतिसंलीनतातपस्त्रयं प्ररूपितम् सम्प्रति क्रमप्राप्तं चतुर्थं विविक्तशय्यासनसेवनतारूपं प्रतिसंलीनतातपः प्ररूपयितुमाह-'विवित्तसयणासण' इत्यादि। विविक्तशयनासनतपः-विविक्तानि दोषवर्जितानि यानि शयनासनानि, तेषां सेवनता-सेवनम्, तद्रूपं प्रतिसंलीनतातपोऽनेकविधं भवति। तद्यथा—स्त्र्यादिविरहिताऽनेकस्थाननिवासभेदतः, स्त्री-पशु-पण्डक-रहितेष्वनेकस्थानेषु-आरामोद्यानादिषु प्रासुकैषणीय पीठ-फलक-शय्या संस्तारकमुपसम्पद्य श्रमणो निवसति। अतएव-धर्मधर्मिणोरभेदाद् विविक्तशयनासनसेवनतातपो भवति, तथाच-यत्खलु श्रमणोऽनगारः स्त्री-पशु-पण्डक संसर्गविरहितेष्वारामेषु कृत्रिमवनेषु-उद्यानेषु कुसुमकाननेषु वसतिकुलेषु, एवं-स्त्री-पशु पण्डक वर्जितेषु स्थानेषु, स्त्र्यादिसंसर्गरहितेषु सामान्यगृहेषु चेत्येवमनेकस्थानेषु प्रासुकैषणीयं-प्रगता असवः असुमन्तः प्राणिनो यस्मात् तत् प्रासुकम्, अचित्तम् एकेन्द्रियादिजीववर्जितेषु, अतएव-एषणीयं निरवद्यं पीठ-फलक-शय्या-संस्तारक मुपसंपद्य तिष्ठतीति विविक्तशयनासनसेवनतातपो भवति ॥२२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—चार प्रकार के प्रतिसंलीनता तप में से पहले इन्द्रिय प्रतिसंलीनता कषायप्रतिसंलीनता का निरूपण किया गया, अब क्रमप्राप्त विविक्तशयनासनसेवनता नामक चौथे प्रतिसंलीनता तप का निरूपण करते है-

विविक्त अर्थात् दोषों से रहित शयन आसन का सेवन करना रूप तप विविक्त शयनासन सेवनता तप है। इसके अनेक भेद हैं, यथा-स्त्री, पशु और पण्डक से रहित अनेक स्थानों में अर्थात् बाग-बगीचा आदि में प्रासुक एवं एषणीय पीठ, पाट, शय्या, संथारा आदि

તત્ત્વાર્થદીપિકા-ચાર પ્રકારના પ્રતિસંલીનતા તપમાંથી પહેલા ઇન્દ્રિય પ્રતિસંલીનતા, કષાયપ્રતિસંલીનતા અને યોગપ્રતિસંલીનતાનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે ક્રમપ્રાપ્ત વિવિક્ત શયનાસનસેવનતા નામક ચોથા પ્રતિસંલીનતા તપનું નિરૂપણ કરીએ છીએ-

વિવિક્ત અર્થાત્ દોષોથી રહિત શયન આસનનું સેવન કરવા રૂપ તપ વિવિક્ત શયનાસનસેવનતા તપ છે તેના અનેક ભેદ છે જેવાકે સ્ત્રી, પશુ અને વ્યંઢળ રહિત અનેક સ્થાનોમાં અર્થાત્ બાગબગીચા વગેરેમાં પ્રાસુક

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं खलु-इन्द्रियप्रतिसंलीनता-कषायप्रतिसंलीनतायोग प्रतिसंलीनतातपस्त्रयं प्ररूपितम्. सम्प्रति-विविक्तशयनासनसेवनतारूपं चतुर्थं प्रतिसंलीनतातपः प्ररूपयितुमाह-'विवित्तसयणासणसेवणया तवे अणेगविहे, इत्थीआइविरहिया णेगट्ठाणनिवासभेदओ' इति। विविक्तशयनासनसेवनतातपः--विविक्तानि दोषवर्जितानि यानि शयनासनानि, तेषां सेवनता-सेवनं, तद्रूपं प्रतिसंलीनतातपः खलु अनेकविधं भवति। तद्यथा-स्त्र्यादिविरहिताऽनेकस्थाननिवासभेदतः, तथा च-स्त्रीपशुपण्डकसंसर्गविरहितेष्वारामोद्यानदेवकुल प्रपापण्यशालादिषु अनेकस्थानेषु निवासो भवति श्रमणानां प्रासुकैषणीयं पीठफलकशय्यासंस्तारकाऽभ्युपगमपूर्वकम् अतएव-धर्मधर्मिणोरभेदविवक्षया विविक्त-शयनासनसेवनतारूपं तपो भवति, यतः किल श्रमणोऽनगारः स्त्री पशु पण्डकवर्जि-

प्राप्त करके साधु निवास करता है, अतएव यह तप विविक्तशयनासन सेवनता कहलाता है ॥२२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-पहले इन्द्रियप्रतिसंलीनता कषायप्रतिसंलीनता और योगप्रतिसंलीनता नामक तीन संलीनता तपों का निरूपण किया गया, अब विविक्तशय्यासनसेवनता नामक चौथे भेद का कथन करते हैं--

विविक्त अर्थात् दोषवर्जित शयन-आसन का सेवन करना विविक्तशयनासनसेवनता तप कहलाता है। यह तप अनेक प्रकार का है, जैसे-स्त्री, पशु और पण्डक से रहित आराम, उद्यान प्रपा (प्याऊ) पण्यशाला आदि अनेक स्थानों में श्रमण प्रासुक एवं एषणीय पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक आदि प्राप्त करके निवास करते हैं। उनका इस प्रकार निवास करना विविक्त शयनासनसेवनता

અને એષણીય પીઠ પાટ, શય્યા, સંથારો વગેરે પ્રાપ્ત કરીને સાધુ નિવાસ કરે છે આથી આ તપ વિવિકત શયનાસનસેવનતા તપ કહેવાય છે ॥૨૨॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ--પહેલા ઇન્દ્રિયપ્રતિસંલીનતા, કષાયપ્રતિસંલીનતા અને યોગપ્રતિસંલીનતા નામક ત્રણ સંલીનતા તપોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે વિવિકતશય્યાસનસેવનતા નામક ચોથા ભેદનું કથન કરીએ છીએ

વિવિકત અર્થાત્ દોષવર્જિત શયન આસનનું સેવન કરવું વિવિકતશયનાસનસેવનતા તપ કહેવાય છે. આ તપ અનેક પ્રકારના છે જેમકે સ્ત્રી, પશુ અને નપુંસક વગરના આરામ ઉદ્યાન પરબ, ધર્મશાળા આદિ અનેક સ્થાનોમાં શ્રમણ પ્રાસુક અને એષણીય પીઠ, ફલક શય્યા અને સંથારો આદિ પ્રાપ્ત કરીને નિવાસ કરે છે તેમનું આ પ્રમાણેનું નિવાસ કરવું વિવિકતશયનાસનસેવનતા તપ કહેવાય છે તાત્પર્ય એ છે કે અનગાર શ્રમણ સ્ત્રી પશુ અને

तेष्वारामोद्यानेषु यक्षकुलरूपेषु देवकुलेषु स्त्रीपशुपण्डकसम्पर्कवर्जितासु सभासु, पानीयशालारूपासु प्रपासु, व्यवहारिकजनाधिष्ठितेषु पण्यगृहेषु बहुदायक ग्राहकजनयोग्यारत्यादि संसर्गरहितेषु सामान्यगृहिगृहेषु वसतिरूपेषु चैत्येव विधानेकस्थानेषु प्रासुकमचित्तम्, एषणीयं-निरवद्यं पीठ=फलक-शय्या-संस्तारकम्-अभ्युपगम्य तिष्ठति, तस्मात्-श्रमणानां विविक्तशयनासनसेवनता तपो भवतीतिभावः। उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं विवित्तसयणासणसेवणया-? विवित्तसयणासणसेवणया-जं णं आरामेसु उज्जाणेसु देवकुलेसु सहासु पवासु पणियगिहेसु पणियसालासु इत्थी=पसु-पंडगसंसत्तविरहियासु वसहीसु फासुएसणिज्जं पीठ फलग सेज्जासंथारगं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, से तं विवित्तसयणासणसेवणया से तं पडिसंलीणया, से तं बाहिरए तवे' अथ का सा विविक्तशयनासनसेवनता-? विविक्तशयनासनसेवनता-यत् खलु आरामेषु उद्यानेषु देवकुलेषु सभासु प्रपासु पणितगृहेषु पणितशालासु स्त्रीपशुपण्डकसंसक्तविरहितासु वसतिषु प्रासुकैषणीयम्

तप कहलाता है। तात्पर्य यह है कि अनगार श्रमण स्त्री, पशु और नपुंसक का संसर्ग न हो ऐसे आरामों और उद्यानों में यक्षायतन रूप सभास्थलों में प्याऊ में, दुकान में तथा गृहस्थ के सामान्य मकान में प्रासुक अर्थात् अचित्त और एषणीय अर्थात् निर्दोष पीठ (पीठा) फलक (पाट) शय्या और संथारा ग्रहण करके रहता है। ऐसा करने से विविक्तशय्यासनसेवनता नामक तप होता है। औपपातिक सूत्र में कहा है—

प्रश्न—विविक्तशयनासनसेवनता तप किसे कहते हैं?

उत्तर—श्रमण आरामों में, उद्यानों में, सभाओं में प्रपाओं में, प्रणितशालाओं-इत्यादि में स्त्री, पशु और पण्डक से रहित स्थानोमें

नपुसकने। ज्यां संसर्ग न होय एवा विश्रान्तिगृहो अने उद्यानोमा यक्षायतन रूप सभास्थळोमां परबमां दुकानमां तथा गृहस्थना सामान्य मकानमां प्रासुक अर्थात् अचित्त अने एषणीय अर्थात् निर्दोष पीठ (पीठा) फलक (पाट) शय्या अने संथारो ग्रहण करीने रहे छे. आ प्रमाणे करवाथी विविक्त शय्यासवसेवनता नामक तप थाय छे औपपातिकसूत्रमां कहेल छे—

प्रश्न—विविकत शयनासनसेवनता तप कोने कहे छे?

उत्तर—श्रमण आरामोमां, उद्यानोमां, सभाओमां, परबमां, प्रणितशाळाओ ईत्यादिमां स्त्री, पशु अने पंडक (नपुंसक) रहित स्थानोमां

स्तद्रूपं तपो दर्शन-विनयतपः तद् द्विविधम्भवति । तद्यथा-शुश्रूषणाविनयः १ अनत्याशातना विनयश्चेति, तत्र-विधिवत् (पूर्वकं) सामीप्येन गुर्वादीनां सेवनं शुश्रूषा तद्रूपं तपः शुश्रूषणा विनयतपः खलु-उच्यते, अनत्याशातना तपस्तावत् अति-अतीव-आयः सम्यक्त्वादि लाभः इत्यति शब्दार्थः तस्य आ-आसमन्तात् शातना-ध्वंसना अत्याशातना । यद्वा-अति-अतीव आयः सम्यक्त्वादिलाभः अत्यायः तस्य शातना 'पृषोदरादित्वाद् य लोपे' अत्याशातना तदभावो विनयोऽनत्याशातनाविनयः तद्रूपं तपोऽनत्याशातना विनय तप उच्यते, गुर्वादेरवर्णवादादि निवारणरूपमित्येवं द्विविधं खलु दर्शनविनयतपो भवतीतिभावः ॥२४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं खलु-सप्तविधेषु विनयतपःसु प्रथमोपात्तं ज्ञानविनय तपः पञ्चविधत्वेन प्ररूपितम्, आभिनिबोधिक ज्ञानविनयादि भेदात्, सम्प्रति-

---

दर्शन संबंधी विनय को दर्शनविनय कहते हैं। इसके दो भेद हैं-शुश्रूषाविनय और अनत्याशातना विनय। यथोचित् विधि के अनुसार गुरु आदि की सेवा करना शुश्रूषा विनय तप कहलाता है।

अति सम्यक्त्व आदि का लाभ होना 'अति' कहलाता है। 'आ' उपसर्ग का आशय है-खूब या पूरी तरह और 'शातना' अर्थात् नष्ट करना। 'अन्' निषेध का सूचक है। इस प्रकार अनत्याशातना का अर्थ हुआ सम्यक्त्व आदि के लाभ को नष्ट न करना अर्थात् सम्यक्त्व आदि का विनाश करने वाला कोई कार्य न करना। यही अनत्याशातना तप कहलाता है, जैसे गुरु आदि का अवर्णवाद न करना आदि। इस प्रकार दर्शन विनय के दो भेद होते हैं ॥२४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पूर्वोक्त विनय तप के सात भेदों में से ज्ञान विनय तप के पांच भेदों का निरूपण किया गया, अब दर्शन विनय

ने દર્શન વિનય કહે છે એના બે ભેદ છે-શુશ્રૂષાવિનય અને અનત્યાશાતના વિનય યોગ્યવિધિ અનુસાર ગુરૂ આદિની સેવા કરવી શુશ્રૂષાવિનય તપ કહેવાય છે

અતિ સમ્યકત્વ આદિનો લાભ થવો 'અતિ' કહેવાય છે. 'આ' ઉપસર્ગનો આશય છે-ઘણુ અથવા સંપૂર્ણ રીતે શાતના અર્થાત્ નાશ કરવું ' અન્ ' નિષેધનું સૂચક છે આ રીતે અનત્યાશાતનાનો અર્થ થયો સમ્યકત્વ વગેરેના લાભને નષ્ટ ન કરવા અર્થાત્ સમ્યકત્વ આદિનો વિનાશ કરનારૂં કોઇ કૃત્ય ન કરવું આ અનત્યાશાતના વિનય તપ કહેવાય છે જેવી રીતે ગુરૂ વગેરેનો અવર્ણવાદ ન કરવો વગેરે. આવી રીતે દર્શન વિનય તપના બે ભેદ હોય છે ।૨૪।

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિઃ--પૂર્વોક્ત વિનયતપના સાત ભેદોમાંથી જ્ઞાનવિનય તપના પાંચ ભેદોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે દર્શન વિનય તપના બે

द्वितीयं दर्शनविनयतपो द्वैविध्येन प्ररूपयितुमाह-'दंसणविणयतवे दुविहे' सुस्सूसणाविणए अणच्चासायणाविणए य' इति। दर्शनविनयतपः-दर्शनमोहनीयक्षयादि जनितस्तत्त्वार्थश्रद्धानरूप आत्मपरिणतिविशेषो दर्शनम् तत्सम्बन्धी विनयो दर्शनविनयो पृषोदरादित्वात्सिद्धिः स्तद्रूपं तपो दर्शनविनयतपः खलु द्विविध भवति। तद्यथा-शुश्रूषणा विनयतपः १ अनत्याशातना विनयतपः२ चेत्येवं तावद् द्विविधं दर्शनविनयतपो भवति। तत्र-विधिपूर्वकं सामीप्येनाऽऽचार्योपाध्यायादिगुर्वादेः सेवनरूपा शुश्रूषणा तद्रूपो विनयः शुश्रूषणा विनयः तत्स्वरूपं तपः शुश्रूषणाविनय तप उच्यते। अत्याशातना तन्निषेधरूपो विनयः अनत्याशातनाविनयः गुर्वादेरवर्णवादादि निवारणरूपः, तत्स्वरूपं तपोऽनत्याशातना तप उच्यते। अथवा-अतिशयेनाऽऽयः सम्यक्त्वादि लाभोऽत्यायः तस्य शातना-ध्वंसनाऽत्याशातना तन्निषेधरूपो विनयोऽनत्याशातनाविनयः, तद्रूपं तपोऽनत्या-

तप के दो भेदों की प्ररूपणा करते हैं—

दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय, उपशम या क्षयोपशम का उत्पन्न तत्त्वार्थ श्रद्धान रूप आत्म परिणाम दर्शन कहलाता है। दर्शन का विनय दर्शन विनय तप है। दर्शन विनय तप दो प्रकार का है—शुश्रूषणा दर्शन विनय तप और अनत्याशातना दर्शन विनय तप। विधिपूर्वक, समीप रहकर आचार्य, उपाध्याय एवं गुरु आदि की सेवा करना शुश्रूषणा विनय है, इसी को शुश्रूषणा विनय तप कहते हैं। गुरु आदि का अवर्णवाद न करना अनत्याशातनाविनय अथवा अनत्याशातना तप कहलाता है। अथवा सम्यक्त्व आदि के अतिशय आय (लाभ) को 'अत्याय' कहते हैं। इस 'अत्याय' की शातना अर्थात् ध्वंसना (विनाश) करना अत्याशातना है। 'अत्याशातना' का निषेध 'अनत्याशातना' तप कह-

ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

દર્શનમોહનીય કર્મના ક્ષય, ઉપશમ અથવા ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન તત્વાર્થ શ્રદ્ધાન રૂપ આત્મપરિણામ દર્શન કહેવાય છે. દર્શનનો વિનય દર્શનવિનયતપ છે. દર્શનવિનય તપ બે પ્રકારના છે-શુશ્રૂષણાદર્શનવિનય તપ અને અનત્યાશાતના દર્શનવિનય તપ વિધિપૂર્વક સાન્નિધ્યમાં રહીને આચાર્ય, ઉપાધ્યાય અને ગુરૂ આદિની સેવા કરવી શુશ્રૂષણાવિનય છે આને જ શુશ્રૂણાવિનય તપ કહે છે. ગુરૂ વગેરેનો અવર્ણવાદ ન કરવો અનત્યાશાતના વિનય અથવા અનત્યાશાતના તપ કહેવાય છે અથવા સમ્યકત્વ આદિનો અતિશય આય (લાભ) ને અત્યાય કહે છે. આ 'અત્યાય'ની શાતના અર્થાત્ ધ્વંસના (વિનાશ) કરવો અત્યાશાતના છે. 'અત્યાશાતના' નો નિષેધ 'અનત્યાશાતના' તપ કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે

शातना तपो भवति ॥ उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं दंसणविणए ? दंसणविणए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-सुस्सूसणा विणए अणच्चासायणाविणए २ इति । अथ कोऽसौ दर्शनविनयः ? दर्शनविनयो द्विविधः प्रज्ञप्तः तद्यथा-शुश्रूषणाविनयः १ अनत्याशातनाविनयः २ इति ॥२४॥

मूलम्-सुस्सूसणाविणयतवे अणेगविहे, अब्भुट्ठाणाइ भेयओ ॥२५॥

छाया-शुश्रूषणाविनयतपोऽनेकविधम्, अभ्युत्थानादि भेदतः ॥२५॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वं तावद्-द्विविधं दर्शनविनयतपो भवतीत्युक्तम्, शुश्रूषणाविनयाऽनत्याशातना विनयभेदात्, सम्प्रति-तत्र प्रथमोपात्तं शुश्रूषणा विनयतपः प्ररूपयितुमाह-'सुस्सूसणाविणयतवे' इत्यादि । शुश्रूषणाविनयतपः-विधि

जाता है । तात्पर्य यह है कि कोई कार्य न करना जिससे सम्यक्त्व-चारित्र आदि गुणों का नाश हो, वह अनत्याशातना विनय है । औपपातिक सूत्र में कहा भि है-

प्रश्न-दर्शन विनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर-दर्शन विनय तप के दो भेद हैं- शुश्रूषणाविनय और अनत्याशातना विनय ॥२४॥

'सुस्सूसणाविणय तवे अणेगविहे' इत्यादि

सूत्रार्थ--अभ्युत्थान आदि के भेद से शुश्रूषणा विनय अनेक प्रकार का है ॥२५॥

तत्त्वार्थदीपिका--पहले कहा गया था कि दर्शन विनय तप दो प्रकार का है-शुश्रूषणा विनय और अनत्याशातना विनय, अब इनमें से पहले शुश्रूषणा विनय तप की प्ररूपणा करते हैं-

---

કે એવુ કોઈ કાર્ય ન કરવું જોઈએ કે જેથી સમ્યકત્વ-ચારિત્ર આદિ ગુણોનો નાશ થાય અને આજ અનત્યાશાતનાવિનય છે. ઔપપાતિક સૂત્રમાં કહ્યું છે.

પ્રશ્ન-દર્શનવિનયના કેટલા ભેદ છે ?

ઉત્તર-દર્શનવિનય તપના બે ભેદ છે-શુશ્રૂષણાવિનય અને અનત્યાશાતનાવિનય ॥ ૨૪ ॥

'सुस्सूसणाविणयतवे' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-અભ્યુત્થાન આદિના ભેદથી શુશ્રૂષણાવિનય અનેક પ્રકારના છે ।૨૫।

તત્ત્વાર્થદીપિકા-પહેલા કહેવામાં આવ્યું. કે દર્શનવિનય તપ બે પ્રકારના છે શુશ્રૂષણાવિનય અને અનત્યાશાતનાવિનય, હવે એ બંનેમાંથી પહેલા શુશ્રૂષણાવિનય તપની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ.

पूर्वकं गुर्वादेः सेवनरूपा शुश्रूषणा तद्रूपं तपः शुश्रूषणा विनयतप उच्यते, तच्चाऽनेकविधम् । तद्यथा–अभ्युत्थानादिभेदतः, तथाचाऽभ्युत्थानविनयतपः १ आदिना–आसनाऽभिग्रहविनयतपः २ आसनप्रदानविनयतपः ३ सत्कारविनय तपः ४ सम्मानविनयतपः ५ कृतिकर्मविनयतपः ६ अञ्जलिप्रग्रहविनयतपः ७ आगच्छतोऽनुगमनतारूपतपः ८ स्थितस्य पर्युपासना विनयतपः ९ गच्छतः पश्चादनुगमशीलता रूपतपः गच्छतः प्रतिसंसाधनतातप उच्यते-१० इत्येवं रीत्याऽनेकविधं खलु शुश्रूषणाविनयतपो भवतीति भावः । तत्राऽऽचार्यादे रागतस्याऽभिमुखम् उत्थानम् विनयार्हस्याऽऽचार्यादे र्दर्शनादेवाऽऽसनत्यागो भवति, तथाविधाऽभ्युत्थानरूपो विनयः अभ्युत्थानविनयः तद्रूपं तपोऽभ्युत्थानविनयतपो भवतीतिभावः । एवम्–आसनाऽभिग्रहविनयतपस्तु–आचार्य–गुर्वादिर्यत्र यत्रोप–

विधिपूर्वक गुरु आदि की सेवा करना शुश्रूषणा विनय कहलाता है। उसके अनेक भेद हैं, यथा–(१) अभ्युत्थानविनय तप (२) आसनाभिग्रह विनय तप (३) आसन प्रदान विनय तप (४) सत्कारविनय तप (५) सन्मान विनय तप (६) कृतिकर्म विनय तप (७) अंजलिप्रग्रहविनय तप (८) गुरु आदि बडे आते हुए के सम्मुख जाना रूप विनय तप (९) स्थित की उपासना रूप विनय तप (१०) जाते हुए के पीछे जाना रूप तप, इस प्रकार शुश्रूषणा विनय तप अनेक प्रकार का है। इनका स्वरूप यह है–

(१) आचार्य आदि पर दृष्टि पडते ही आसन त्याग देना, उनकी ओर मुख करके खडा हो जाना अभ्युत्थान विनय कहलाता है। (२) आचार्य या गुरु आदि जहां–कहीं बैठने की इच्छा करें वहीं आसन

વિધિપૂર્વક ગુરૂ આદિની સેવા કરવી શુશ્રૂષણાવિનય કહેવાય છે તેના અનેક ભેદ છે જેમકે–(૧) અભ્યુત્થાનવિનય તપ (૨) આસનાભિગ્રહવિનય તપ (૩) આસનપ્રદાનવિનયતપ (૪) સત્કારવિનયતપ (૫) સન્માનવિનયતપ (૬) કૃતિકર્મવિનયતપ (૭) અંજલિપ્રગ્રહવિનયતપ (૮) ગુરૂ વગેરે વડીલ આવતા હોય ત્યારે તેમની સન્મુખ જવું, (૯) સ્થિતની ઉપાસના રૂપ તપ (૧૦) જનારાની પાછળ જવા રૂપ તપ, આ રીતે શુશ્રૂષણાવિનય તપ અનેક પ્રકાર છે. એનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે–

(૧) આચાર્ય આદિ પર દ્રષ્ટિ પડતા જ આસન છોડી દેવું તેમની સન્મુખ ઉભા થઈ જવું અભ્યુત્થાનવિનય તપ કહેવાય છે. (૨) આચાર્ય અથવા ગુરૂ આદિ જ્યાં કોઈ સ્થળે બેસવાની ઇચ્છા પ્રદર્શિત કરે ત્યાં જ

पीठ फलकशय्यासंस्तारकमुपसंपद्य खलु विहरति, सा-एषा विविक्तशयनासन-सेवनता, सा-एषा प्रतिसंलीनता, तदेतद् बाह्यं तपः ॥२२॥

मूलम्-छव्विहेसु अब्भिंतरतवेसु णाणविणयतवे पंचविहे, आभिणिबोहिय णाणविणयाइ भेयओ ॥२३॥

छाया-'षड्विधेषु-आभ्यन्तरतपःसु ज्ञानविनयतपः पञ्चविधम्, आभिनिबोधिकज्ञानविनयादि भेदतः ॥२३॥

तत्त्वार्थदीपिका--पूर्वं तावत् कर्मनिर्जराहेतुभूतं षड्विधमपि बाह्यं तपः सविस्तरं प्ररूपितम्-सम्प्रति कर्मनिर्जरा हेतुभूतषड्विधाभ्यन्तरतपःसु प्रथमोपात्तप्रायश्चित्ततपसः पूर्वं प्ररूपणं कृतम्, सम्प्रति-क्रमप्राप्तद्वितीयाभ्यन्तरतपोविशेषसप्तविधविनयेषु प्रथमं ज्ञानविनयतपः प्ररूपयितुमाह'—'छव्विहेसु' इत्यादि। पूर्वोक्तेषु षड्विधेषु प्रायश्चित्ताद्याभ्यन्तरतपःसु द्वितीयस्य सप्तविध विनयतपसः प्रथमं तावद् ज्ञानविनयतपः पञ्चविधं भवति। तद्यथा-आभिनि-

---

निवास करता है, यह विविक्त शयनासनसेवनता तप है। यहां प्रतिसंलीनता तप और बाह्य तपों का प्ररूपण पूर्ण हुआ ॥२२॥

'छव्विहेसु अब्भिंतरतवेसु'-इत्यादि सू० २३

सूत्रार्थ-छह प्रकार के आभ्यन्तर तपों में ज्ञानविनयतप के पांच भेद हैं, आभिनिबोधिकज्ञानविनय आदि ॥२३॥

तत्त्वार्थदीपिका—कर्मनिर्जरा के हेतु छह प्रकार के बाह्य तप का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया, अब कर्मनिर्जरा के हेतु छह प्रकार के आभ्यन्तर तप में सर्वप्रथम गिने जाने वाले प्रायश्चित्त तप का पहले निरूपण हो चुका है, अतः क्रमप्राप्त दूसरे विनयतप में सर्वप्रथम ज्ञानविनय तप की प्ररूपणा करते हैं-

---

નિવાસ કરે છે. આ વિવિકતશયનાસનસેવનતા તપ છે અત્રે પ્રતિસંલીનતા તપ અને બાહ્ય તપોનું પ્રરૂપણ સમાપ્ત થયું. ॥ ૨૨ ॥

'छव्विहेसु अब्भिंतरतवेसु' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ--છ પ્રકારના આભ્યન્તર તપોમાં જ્ઞાનવિનય તપના પાંચ ભેદ છે, આભિનિબોધિકજ્ઞાનવિનય આદિ ॥ ૨૩ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-કર્મનિર્જરાના હેતુ છ પ્રકારના બાહ્ય તપનું વિસ્તાર પૂર્વક વર્ણન કરવામાં આવ્યું, હવે કર્મનિર્જરાના હેતુ છ પ્રકારના આભ્યન્તર તપમાં સર્વપ્રથમ ગણવામાં આવતા પ્રાયશ્ચિત્ત તપનું પહેલા નિરૂપણ થઈ ગયું છે આથી ક્રમપ્રાપ્ત બીજા વિનય તપમાં સર્વપ્રથમ જ્ઞાનવિનય તપની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ

बोधिकज्ञानविनयादि भेदतः, तथा च-आभिनिबोधिकज्ञानविनयः १ आदिना श्रुतज्ञानविनयः २ अवधिज्ञानविनयः ३ मनःपर्यवज्ञानविनयः ४ केवलज्ञानविनयश्च ५ इत्येवं पञ्चविधं खलु ज्ञानविनयतपो भवतीति बोध्यम्। तत्राऽऽभिनिबोधिकज्ञानं मतिज्ञानरूपम् तस्य विनयः विनयति-अपनयति ज्ञानाद्यावरणाद्यष्टविध कर्माणीति विनयः अभ्युत्थान-वन्दन-शुश्रूषा भक्त्यादिरूपः आभिनिबोधिक ज्ञानविनयः तद्रूपं तप आभिनिबोधिकज्ञानविनय तप उच्यते। एवं श्रुतज्ञानविनयतपः अवधिज्ञानविनयतपः, मनःपर्यवज्ञानविनयतपः, केवलज्ञानविनय तपश्चापि बोध्यम् ॥२३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावन्निर्जराहेतुत्वेनोक्तेषु प्रायश्चित्तादि षड्विधाभ्यन्तरतपःसु प्रायश्चित्तं तपः पूर्वं प्ररूपितम्, सप्तविधं विनयतपश्च प्ररूपितम्, सम्प्रति तेषु सप्तविधेषु विनयतपःसु प्रथमं ज्ञानविनयतपः प्ररूपयितुमाह-'छव्वि-

---

सात प्रकार के विनयतप में ज्ञानविनय तप पांच प्रकार का है। (१) आभिनिबोधिकज्ञानविनय (२) श्रुतज्ञानविनय (३) अवधिज्ञानविनय (४) मनःपर्यवज्ञानविनय और (५) केवलज्ञानविनय। आभिनिबोधिकज्ञान का अर्थ मतिज्ञान है। ज्ञानावरण आदि आठों कर्म जिससे हटते हैं उसे विनय कहते है। अभ्युत्थान, वन्दन शुश्रूषा, भक्ति आदि विनय के अन्तर्गत हैं। आभिनिबोधिकज्ञान एवं ज्ञानवान् के प्रति यथायोग्य आदरभाव होना आभिनिबोधक ज्ञान विनय है, इसी प्रकार श्रुतज्ञानविनय अवधिज्ञानविनय मनःपर्यवज्ञानविनय और केवलज्ञानविनय भी समझ लेना चाहिए २४

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--निर्जरा के कारण कहे गए प्रायश्चित्त आदि छह आभ्यन्तर तपों में से पहले प्रायश्चित्त तप का प्ररूपण किया जा चुका,

---

સાત પ્રકારના વિનયતપમાં જ્ઞાન વિનય તપ પાંચ પ્રકારના છે-(૧) આભિનિબોધિકજ્ઞાનવિનય (૨) શ્રુતજ્ઞાનવિનય (૩) અવધિજ્ઞાનવિનય (૪) મનઃપર્યવજ્ઞાનવિનય અને (૫) કેવળજ્ઞાનવિનય. આભિનિબોધિકજ્ઞાનનો અર્થ મતિ જ્ઞાન છે. જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠે કર્મો જેનાથી દૂર થાય છે તેને વિનય કહે છે અભ્યુત્થાન' વન્દન, શુશ્રૂષા, ભક્તિ આદિ વિનયના અન્તર્ગત છે આભિનિબોધિક જ્ઞાન અને જ્ઞાનવાન્ પ્રત્યે યથાયોગ્ય આદર ભાવ હોવો આભિનિબોધિક જ્ઞાનવિનય છે. એવી જ રીતે શ્રુતજ્ઞાનવિનય, અવધિજ્ઞાનવિનય, મનઃપર્યવજ્ઞાનવિનય અને કેવળજ્ઞાનવિનય પણ સમજી લેવા જોઈએ ॥ ૨૪ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ-નિર્જરાના કારણ તરીકે કહેવામાં આવેલા પ્રાયશ્ચિત્ત આદિ છ આભ્યન્તર તપોમાંથી પહેલા પ્રાયશ્ચિત્ત તપનું પ્રરૂપણ કરવામાં

हेसु अब्भिंतरतवेसु णाणविणयतवे पंचविहे, आभिणिबोहियणाण विणयाइभेयओ-" इति। षड्विधेषु पूर्वोक्तेषु आभ्यन्तरतपःसु प्रथमोपात्तं ज्ञानविनयतपः पञ्चविधं भवति। तद्यथा-आभिनिवोधिकज्ञानविनयादि भेदतः, तथा च-विनयति अपनयति ज्ञानदिनयाद्यष्टविधकर्माणीति विनयः, तद्रूपं तप आभिनिबोधिकज्ञानविनय तप उच्यते आभिनिबोधिकज्ञानमेव मतिज्ञान मुच्यते १ आदिना-श्रुतज्ञानविनयः २ अवधिज्ञानविनयः ३ मनःपर्यवज्ञानविनयः४ केवल ज्ञानविनयश्चेत्ये ५ वं पञ्चविधं खलु आभ्यन्तरज्ञानविनयतपो भवति॥ उक्तञ्चौपपातिके-३० सूत्रे-'से किं तं णाणविणए-? णाणविणए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा-आभिणिबोहियणाणविणए-१ सुयणाणविणए-२ ओहिणाणविणए-३ मणपज्जवणाणविणए-४ केवलणाणविणए-५ इति। अथ कः स ज्ञानविनयः? ज्ञानविनयः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-आभिनि-

---

सात प्रकार के विनय तप का भी निर्देश किया गया, अब उसमें से प्रथम ज्ञान विनय तप का निरूपण किया जाता है-

ज्ञान विनय तप के पांच भेद हैं-(१) आभिनिबोधिक ज्ञानविनय तप (२) श्रुतज्ञानविनय तप (३) अवधि ज्ञानविनय तप (४) मनः पर्याय ज्ञानविनय तप और (५) केवलज्ञानविनय तप। जो ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के कर्मों को दूर करता है, उसे विनय कहते हैं। आभिनिबोधिक ज्ञान का अर्थ मतिज्ञान है। इस प्रकार ज्ञान के पांच भेद होने से ज्ञानविनय के पांच भेद हैं, औपपातिक सूत्र के तीसवें सूत्र में कहा है-

प्रश्न-ज्ञानविनय के कितने भेद हैं?

उत्तर-पांच भेद हैं-(१) आभिनिबोधिक ज्ञानविनय (२) श्रुतज्ञान-

આવી ગયું, સાત પ્રકારના વિનયતપનો પણ નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો હવે તેમાંથી પ્રથમ જ્ઞાનવિનય તપનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે-

જ્ઞાનવિનય તપના પાંચ ભેદ છે-(૧) આભિનિબોધિકજ્ઞાનવિનય તપ (૨) શ્રુતજ્ઞાનવિનયતપ (૩) અવધિજ્ઞાનવિનય તપ (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાનવિનય તપ અને (૫) કેવળજ્ઞાનવિનય તપ જે જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ પ્રકારના કર્મોને દૂર કરે છે તેને વિનય કહે છે. આભિનિબોધિક જ્ઞાનનો અર્થ મતિજ્ઞાન છે આ રીતે જ્ઞાનના પાંચ ભેદ હોવાથી જ્ઞાનવિનયના પણ પાંચ ભેદ છે. ઔપપાતિક સૂત્રના ૩૦માં સૂત્રમાં કહ્યું છે-

પ્રશ્ન—જ્ઞાનવિનયના કેટલા ભેદ છે?

ઉત્તર—પાંચ ભેદ છે-(૧) આભિનિબોધિકજ્ઞાનવિનય (૨) શ્રુતજ્ઞાનવિનય

बोधिकज्ञानविनयः, श्रुतज्ञानविनयः अवधिज्ञानविनयः, मनःपर्यवज्ञानविनयः, केवलज्ञानविनयश्चेति ॥२३॥

मूलम्–दंसणविणयतवे दुविहे, सुस्सूसणाविणए, अणच्चासायणाविणए य ॥२४॥

छाया–दर्शनविनयतपो द्विविधम्, शुश्रूषणाविनयः–अनत्याशातनाविनयश्च ।२४।

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत् विनयतपः सप्तविधं प्रतिपादितम्, ज्ञान विनय–दर्शनविनयादि भेदात् तत्र–प्रथमोपात्तं ज्ञानविनयतपः पञ्चविधत्वेन प्ररूपितम्, सम्प्रति–दर्शनविनयतपो द्वैविध्येन प्ररूपयितुमाह–'दंसणविणय तवे' इत्यादि । दर्शनविनयतपः–तत्र–दर्शनम् दर्शनमोहनीय क्षयादि जनित स्तत्त्वार्थश्रद्धानरूपआत्मपरिणतिविशेष स्तत्सम्बन्धी विनयो दर्शनविनय

विनय (३) अवधि ज्ञानविनय (४) मनःपर्यव ज्ञानविनय (५) केवल ज्ञानविनय ॥२३॥

'दंसणविणयतवे दुविहे' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—दर्शन विनय दो प्रकार का है–शुश्रूषा विनय और अनत्याशातना विनय ।।२४।।

तत्त्वार्थदीपिका—पहले विनय तप सात प्रकार का बतलाया गया था, जैसे ज्ञानविनय, दर्शनविनय आदि । इनमें से प्रथम ज्ञानविनय के पांच भेदों का कथन किया जा चुका, अब दर्शनविनय तप के दो भेदों कीप्ररूपणा करते हैं–

दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला तत्त्वार्थ श्रद्धान रूप आत्म परिणाम दर्शन कहलाता है।

---

(૩) અવધિજ્ઞાનવિનય (૪) મનઃપર્યવજ્ઞાનવિનય (૫) કેવળજ્ઞાનવિનય ॥ ૨૩ ॥

'दंसणविणयतवे दुविहे' ઇત્યાદિ।

સૂત્રાર્થ--દર્શનવિનય બે પ્રકારના છે–શુશ્રૂષાવિનય અને અનત્યાશાતના વિનય ॥ ૨૪ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા–પહેલા વિનયતપ સાત પ્રકારના બતાવવામાં આવ્યા છે જેવાકે જ્ઞાનવિનય, દર્શનવિનય આદિ આમાંથી પ્રથમ જ્ઞાનવિનયના પાંચ ભેદો નું કથન કરવામાં આવ્યું હવે દર્શન વિનય તપના બે ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ–

દર્શનમોહનીય કર્મના ક્ષય ઉપશમ અથવા ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થનારા તત્વાર્થશ્રદ્ધાન રૂપ આત્મ પરિણામ દર્શન કહેવાય છે. દર્શન સંબંધી વિનય

वेष्टुमिच्छति तत्र-तत्राऽऽसनस्थापनम्-आसनाभिग्रहविनयतपो भवति। आसनप्रदानविनयस्तु-अचार्यादि गुरुषु समागतेषु सत्सु आसनदानम्भवति तद्रूपो विनयस्तदात्मकं तप आसनविनयतपो भवति। विनयार्हस्याऽऽचार्यादे र्वन्दनादिनाऽऽदरणं सत्कार उच्यते तद्रूपो विनयः सत्कारविनयः तद्रूपं तपः सत्कारविनयतपो व्यपदिश्यते? एवं-गुर्वादीना माहारवस्त्रादि प्रशस्तवस्तुभिः सम्माननं सम्मान स्तद्रूपो विनयः सम्मानविनय स्तदात्मकं तपः सम्मानविनयतप उच्यते। एवं-गुर्वादीनां यथाविधि वन्दनं कृतिकर्म तद्रूपं विनयतपः कृतिकर्म विनयतप उच्यते। एवं-गुरुसम्मुखेऽञ्जलीकरणम्-अञ्जलिप्रग्रहः तद्रूपं विनयतपोऽञ्जलिप्रग्रह विनयतप उच्यते। एवम्-आगच्छन्तं गुर्वादिकं प्रति सम्मुखे गमनम् आगच्छतोऽनुगमनता तद्रूपं विनयतपः आगच्छतोऽनुगमनता विनयतप उच्यते। एवम्-उपविष्टस्याऽऽचार्यादेरिच्छाऽनुकूलसेवा स्थितस्य पर्युपासनताः तद्रूपं विनयतपः स्थितस्य पर्युपासनता विनयतप उच्यते। एवम्-गच्छत आचार्यादेः पश्चादनुसरण-

---

बिछा देना आसनाभिग्रह तप कहलाता है। (३) आचार्य, गुरु आदि का आगमन होने पर आसन प्रदान करना आसन प्रदान विनय कहलाता है। (४) विनय के योग्य आचार्य आदि का वन्दना आदि द्वारा आदर करना सत्कार विनय कहलाता है। (५) गुरु आदि का आहार वस्त्र आदि प्रशस्त वस्तुओं द्वारा सन्मानकरना सम्मान विनय तप कहलाता है। (६) गुरु आदि को विधि के अनुसार वन्दन करना कृतिकर्म विनय है। (७) गुरु के सामने हाथ जोडना अंजलिप्रग्रह विनय है। (८) आते हुए गुरु आदि के सम्मुख जाना भी एक प्रकार का विनय है। (९) आचार्य आदि की इच्छा के अनुसार सेवा करना, बैठे की उपासना करना पर्युपासनता विनय है। (१०) इसी प्रकार आचार्य आदि जाने

આસન પાથરી દેવું આસનાભિગ્રહતપ કહેવાય છે. (૩) આચાર્ય, ગુરૂ આદિના આગમન પ્રસંગે આસન પ્રદાન કરવું આસનપ્રદાનવિનય તપ કહેવાય છે. (૪) વિનયને યોગ્ય આચાર્ય આદિનો વંદણા દ્વારા આદર કરવો સત્કાર વિનય કહેવાય છે. (૫) ગુરૂ આદિનું આહાર-વસ્ત્ર આદિ પ્રશસ્ત વસ્તુઓ દ્વારા સન્માન કરવું સન્માનવિનય તપ કહેવાય છે. (૬) ગુરૂ આદિને વિધિ અનુસાર વંદન કરવું કૃતિકર્મવિનય છે. (૭) ગુરૂની સામે હાથ જોડવા અંજલિપ્રગ્રહવિનય છે. (૮) આગમન કરતાં ગુરૂ આદિની સામા જવું પણ એક પ્રકારનો વિનય છે (૯) આચાર્ય આદિની ઈચ્છા અનુસાર સેવા કરવી, બેઠેલા હોય એની ઉપાસના કરવી પર્યુપાસનતા વિનય છે. એવી જ રીતે

शीलता तद्रूपं विनयतपो गच्छतोऽनुगमनता विनयतप उच्यते, इत्येवमनेकविधं तावत्-शुश्रूषा विनयतपो भवति ॥२५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं खलु द्विविधं दर्शन-विनयतपः प्रतिपादितम्, सम्प्रति तत्र प्रथमोपात्तं शुश्रूषणा विनयतपः प्ररूपयितुमाह—'सुस्सूसणा विणय तवे अणेगविहे, अब्भुट्ठाणाइ भेयओ' इति सुश्रूषणा विनयतपः—विधिपूर्वकं सामीप्येनाऽऽचार्यादीनां सेवनं शुश्रूषणा तद्रूपं विनयतपः खलु-अनेकविधं भवति अभ्युत्थानादि भेदतः। तथा चाऽभ्युत्थानविनयतपः १ आदिनाऽऽसनाभिग्रह विनयतपः २ आसनप्रदानविनयतपः ३ सत्कारविनय तपः ४ सम्मानविनयतपः कृतिकर्मविनयतपः ६ अञ्जलिप्रग्रहविनयतपः ७ अनुगमनता विनयतपः ८ पर्युपासना विनयतपः ९ प्रतिसन्धानता विनयतपश्च १० ति रीत्या शुश्रूषणा-

---

लगे तो उनके पीछे-पीछे जाना गच्छतो अनुगमनता विनय कहलाता है। इसी प्रकार शुश्रूषणता विनय तप के अनेक भेद हैं ॥२५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले दर्शन विनय तप के दो भेदों का प्रतिपादन किया गया, अब पहले शुश्रूषणाविनय तप की प्ररूपणा करते हैं—

विधिपूर्वक, समीप रहकर आचार्य आदि की शुश्रूषा करना शुश्रूषणा विनय तप कहलाता है। यह तप अभ्युत्थान आदि के भेद से अनेक प्रकार का है। यथा—(१) अभ्युत्थान विनय तप (२) आसनाभिग्रह तप (३) आसन प्रदान विनय तप (४) सत्कार विनय तप (५) सम्मान विनय तप (६) कृति कर्म विनय तप (७) अंजलीप्रग्रह विनय तप (८) अनुगमनता विनय तप (९) पर्युपासना विनय तप और (१०) प्रतिसन्धानता विनय तप।

આચાર્ય આદિ જવાની તૈયારી કરતા હોય ત્યારે તેમની પાછળ પાછળ જવું, ગચ્છતો અનુગમનતાવિનય કહેવાય છે આવી રીતે શુશ્રૂષણુતાવિનય તપના અનેક ભેદ છે ॥ ૨૫ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા દર્શનવિનય તપના બે ભેદોનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું હવે પહેલા શુશ્રૂષાવિનય તપની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ

વિધિપૂર્વક, પાસે રહીને આચાર્ય આદિની શુશ્રૂષણા કરવી શુશ્રૂષણાતપ કહેવાય છે આ તપ અભ્યુત્થાન આદિના ભેદથી અનેક પ્રકારના છે. જેવાકે (૧) અભ્યુત્થાનવિનયતપ (૨) આસનાભિગ્રહવિનયતપ (૩) આસનપ્રદાનવિનય તપ (૪) સત્કારવિનયતપ (૫) સન્માનવિનયતપ (૬) કૃતિકર્મવિનયતપ (૭) અંજલિપ્રગ્રહવિનયતપ (૮) અનુગમનતાવિનયતપ (૯) પર્યુપાસનાવિનયતપ અને (૧૦) પ્રતિસન્ધાનતાવિનય તપ.

विनयतपोऽनेकविधं भवति। तत्राऽऽगतानामाचार्यादीनामभिमुखं मुत्थानम्-अभ्युत्थानम्, विनयाऽर्हस्य गुर्वादेर्दर्शनादेवाऽऽसनपरित्यागः तद्रूपं विनयतपोऽभ्युत्थानविनयतपो भवति १ एवम्-आचार्यादिर्यस्मिन् यस्मिन् स्थाने-उपवेष्टुमिच्छति तस्मिन्-तस्मिन् स्थाने तदर्थमासनमापणम् आसनाभिग्रह स्तद्रूपं विनयतप आसनाभिग्रह विनयतपो भवति २ एवम्-आचार्ये समागते सति-आसन दानं खलु-आसनप्रदानमुच्यते, तद्रूपं विनयतप आसनप्रदानविनयतपो भवति ३ एवम्-विनययोग्याऽऽचार्यादीनां वन्दनादिना-ऽऽदरकरणं-सत्कार स्तद्रूपं विनयतपः सत्कारविनयतपो भवति ४ एवम्-आचार्यादेः खलु आहार-वस्त्रादि प्रशस्त वस्तुना सम्मानं-सम्मान स्तद्रूपं विनयतपः सम्मानविनयतपो भवति ५ एवम्-गुर्वादीनां रत्नाधिकानां क्रमेण सावधि वन्दनाकरणं कृतिकर्म तद्रूपं विनयतपः कृतिकर्म विनयतपो भवति ६ एवम्-गुर्वादि सम्मुखाऽञ्जलिकरणम् अञ्जलिप्रग्रह उच्यते, तद्रूपं विनयतपो-ऽञ्जलिप्रग्रहविनयतपो भवति ७ एवम्-आयान्तं गुर्वादिकं प्रति-अभिमुखे गमनम् आगच्छतोऽनुगमनतोच्यते तद्रूपं

(१) आते हुए आचार्य आदि के सामने खडा होना, विनय के योग्य आचार्य आदि पर दृष्टि पड़ते ही आसनत्याग देना अभ्युत्थान विनय तप कहलाता है (२) आचार्यादि जहां कहीं बैठने की इच्छा करें उसी-उसी स्थान पर उनके लिए आसन बिछा देना आसनाभिग्रह विनय तप कहलाता है। (३) आचार्य के आने पर आसन देना आसन-प्रदान विनय तप है। (४) विनय के योग्य आचार्य आदि को वन्दना आदि करना सत्कार विनय कहलाता है। (५) आचार्य आदि का आहार वस्त्र आदि प्रशस्त वस्तुओं द्वारा आदर करना सम्मान विनय तप है। (६) रत्नाधिक आचार्य आदि को विधि पूर्वक वन्दना करना कृतिकर्म विनय कहलाता है। (७) गुरु आदि के सामने अंजलि करना अंजलि-

(૧) આવી રહેલા આચાર્ય આદિની સામે ઉભા થઇ જવું, વિનયને યોગ્ય આચાર્ય આદિ પર નજર પડતાની સાથે જ આસન છોડી દેવું અભ્યુ-ત્થાનવિનય તપ કહેવાય છે (૨) આચાર્ય આદિ જ્યા પણ બેસવાની ઈચ્છા કરે તે જ સ્થાને તેમના માટે આસન પાથરી દેવું આસનાભિગ્રહવિનય તપ કહેવાય છે. (૩) આચાર્યના આગમન પ્રસંગે આસન આપવું આસનપ્રદાન વિનય તપ છે (૪) વિનયને યોગ્ય આચાર્ય આદિનો વંદન વગેરેથી આદર કરવો સત્કારવિનય કહેવાય છે (૫) આચાર્ય આદિનો આહાર વસ્ત્ર આદિ અચેત વસ્તુઓ દ્વારા આદર કરવો સન્માનવિનય તપ છે (૬) રત્નાધિક આચાર્ય આદિને વિધિપૂર્વક વંદણા કરવી કૃતિકર્મવિનય કહેવાય છે (૭) ગુરૂ આદિની

विनयतपोऽनुगमनता विनयतपो भवति ८ एवम्-उपविष्टाना माचार्यादीना मिच्छाऽनुकूला सेवा, स्थितस्य पर्युपासनता विनयतपो-भवति ९ एवम्-गच्छता माचार्यादीनां पश्चाद्गमनशीलता गच्छतः प्रतिसंसाधनतोच्यते तद्रूपं विनयतपः प्रतिसंसाधनता विनयतपो भवति । उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं सुस्सूसणाविणए ? सुस्सूसणाविणए अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा-अब्भुट्ठाणेइ वा १ आसणाभिग्गहे इ वा २ आसणप्पदाणे इ वा ३ सक्कारेइ वा४ सम्माणे इ वा ५ कियकम्मेइ वा६ अंजलिप्पग्गहेइ वा ७ एंतस्स अणुगच्छणया ८ ठियस्स पज्जुवासणया ९ गच्छंतस्स पडिसंसाहणया १० सेतं सुस्सूसणाविणए' इति । अथ कोऽसौ शुश्रूषणा विनयः ? शुश्रूषणाविनयोऽनेकविधः प्रज्ञप्तः तद्यथा-अभ्युत्थानमितिवाऽऽसनाभिग्रह इति वाऽऽसन प्रदानमिति वा सत्कार इति वा सम्मान इति वा कृतिकर्म इति वाऽञ्जलि प्रग्रह इति वाऽऽगच्छतोऽनुगमनता-स्थितस्य पर्युपासनता-गच्छतः प्रतिसंसाधनता, एष शुश्रूषणा विनय इति ॥२५॥

प्रग्रह तप कहलाता है। (८) आते हुए गुरु आदि के सामने जाना अनुगमनता तप है। (९) गुरु के बैठने पर इच्छानुकूल सेवा करना पर्युपासना विनय तप है। (१०) गुरु, आचार्य आदि के जाने पर पीछे-पीछे जाना प्रतिसन्धान तप कहलाता है। औपपातिक सूत्र के ३० वें सूत्र में कहा है-

प्रश्न-शुश्रूषाविनय कितने प्रकार का है ?

शुश्रूषाविनय अनेक प्रकार का है, यथा-अभ्युत्थान, आसनाभिग्रह, आसनप्रदान, सत्कार, सम्मान, कृतिकर्म, अंजलिप्रग्रह, अनुगमनता, स्थित की पर्युपासना, जाते का अनुसरण करना, यह सब शुश्रूषाविनय है ॥२५॥

સામે હાથ જોડવા અંજલિપ્રગ્રહ તપ કહેવાય છે (૮) આવી રહેલા ગુરૂ આદિની સામા જવું અનુગમનતા વિનય તપ છે (૯) ગુરૂના બેઠા પછી ઇચ્છાનુકૂળ સેવા કરવી પર્યુપાસના વિનય તપ છે. (૧૦) ગુરૂ, આચાર્ય આદિના પ્રસ્થાન પ્રસંગે પાછળ-પાછળ જવું પ્રતિસન્ધાનતા તપ કહેવાય છે. ઔપપાતિક સૂત્રના ૩૦માં સૂત્રમાં કહ્યું છે-

પ્રશ્ન—શુશ્રૂષાવિનય કેટલા પ્રકારના છે ?

ઉત્તર—શુશ્રૂષાવિનય અનેક પ્રકારના છે જેવાકે અભ્યુત્થાન, આસનાભિગ્રહ આસનપ્રદાન, સત્કાર, સન્માન, કૃતિકર્મ, અંજલિપ્રગ્રહ, અનુગમનતા સ્થિતની પર્યુપાસના જનારાનું અનુસરણ કરવું, આ બધાં શુશ્રૂષા વિનયના ભેદ છે ।૨૫।

मूलम्—अणच्चासायणा विणयतवे पणयालीसविहे, अरहंताइ भेयओ ॥२६॥

छाया—'अनत्याशातनाविनयतपः पञ्चचत्वारिंशद्विविधम्, अर्हदादि भेदतः ।२६।

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावद्—दर्शनविनयतपसः प्रथमभेदः शुश्रूषणा विनयतपः प्ररूपितम्, सम्प्रति—अनत्याशातना विनयतपः स्वरूपं द्वितीयभेदं पञ्चचत्वारिंशद् विधत्वेन प्ररूपयितुमाह—'अणच्चासायणा' इत्यादि अनत्याशातनाविनयतपः—गुर्वादेरवर्णवादादि रूपात्याशातनानिवारणरूपं तावत् पञ्चचत्वारिंशद्विधं भवति, अर्हदादि भेदतः । तथा चाऽर्हता मनत्याशातना १ आदिनाऽर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्याऽनत्याशातना आचार्याणामनत्याशातना ३ उपाध्यायाना—मनत्याशातना ४ स्थविराणा मनत्याशातना ५ कुलस्याऽनत्याशातना६

'अणच्चासायणा विणयतवे' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—अर्हन्त आदि के भेद से अनत्याशातना विनय तप पैतालीस प्रकार का है ॥२६॥

तत्त्वार्थदीपिका—दर्शन विनय तप के प्रथम भेद शुश्रूषणाविनय तप का निरूपण किया जा चुका, अब उसके दूसरे भेद अनत्याशातना विनय तप के पैंतालीस भेदों की प्ररूपणा करते हैं—

गुरु आदि की आशातना—अवर्णवाद न करना अनत्याशातनाविनय तप कहलाता है। अर्हन्त आदि के भेद से वह पैतालीस प्रकार का है—(१) अर्हन्त की आशातना न करना (२) अर्हत्प्रणीत धर्म की आशातना न करना (३) आचार्य की आशातना न करना (४) उपाध्याय की आशातना न करना (५) स्थविरों की आशातना न करना (६) कुल की आशातना न करना (७) गण की आशा-

---

'अणच्चासायणाविणयतवे' ઈત્યાદિ ।

સૂત્રાર્થ—અર્હન્ત આદિના ભેદથી અનત્યાશાતના વિનય તપ ૪૫ પ્રકારના છે. ॥ ૨૬ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—દર્શનવિનયતપના પ્રથમ ભેદ શુશ્રૂષણાવિનય તપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે તેના બીજા ભેદ અનત્યાશાતના વિનય તપના પિસ્તાળીશ ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ—

ગુરૂ આદિની આશાતના અવર્ણવાદ ન કરવી અનત્યાશાતનાવિનય તપ કહેવાય છે. અર્હન્ત આદિના ભેદથી તે પિસ્તાળીશ પ્રકારના છે—(૧) અર્હન્તની આશાતના ન કરવી (૨) અર્હન્ત પ્રણીત ધર્મની આશાતના ન કરવી (૩)

गणस्याऽनत्याशातना७ संघस्याऽनत्याशातया ८ क्रियाणा मनत्याशातना ९ सम्भोगस्या–ऽनत्याशातना १० आभिनिबोधिकज्ञानस्या–ऽनत्याशातना ११ श्रुतज्ञानस्याऽनत्याशातना अवधिज्ञानस्याऽनत्याशातना १३ मनःपर्यवज्ञानस्या–ऽनत्याशातना १४ केवलज्ञानस्याऽनत्याशातना१५ इत्येवं पञ्चदशअर्हदादिविनया भवन्ति पञ्चदशानाऽर्हदादीनां भक्तिबहुमानपदमाश्रित्य भवन्ति १५ पञ्चदशचार्हदादीनां सद्गुणोत्कीर्तनतारूपा वर्ण संज्वलनता तामाश्रित्य भवन्ति१५ इत्येवं सर्व सम्मेलनेना–ऽनत्याशातना विनयतपः पञ्चचत्वारिंशद्विधं भवतीतिभावः ॥२६॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं खलु शुश्रूषणाविनयतपोरूपं प्रथमं दर्शनविनयतपः

तना न करना (८) संघ की आशातना न करना (९) क्रियाओं की आशातना न करना (१०) सांभोगिक साधु की आशातना न करना (११) आभिनिबोधिक(मतिज्ञान) ज्ञान की आशातना न करना (१२) श्रुतज्ञान की आशातना न करना (१३) अवधिज्ञान की आशातना न करना (१४) मनः पर्यवज्ञान की आशातना न करना (१५) केवलज्ञान की आशातना न करना । ये अर्हन्त आदि के विनय के पन्द्रह भेद हैं। भक्ति-बहुमान पद को लेकर और सद्गुणोत्कीर्त्तन रूप वर्णसंज्वलनता को लेकर पन्द्रह-पन्द्रह भेद करने से तीस भेद और होते हैं। जैसे अर्हन्त की भक्ति करना अर्हत्प्रणीत धर्म की भक्ति करना आदि और अर्हन्त के गुणों का कीर्त्तन करना अर्हत्प्रणीत धर्म के गुणों का कीर्त्तन करना आदि । इस प्रकार सब को मिलाने से अनत्याशातना विनय तप के पैंतालीस भेद समझने चाहिए ॥२६॥

આચાર્યની આશાતના ન કરવી (૪) ઉપાધ્યાયની આશાતના ન કરવી (૫) સ્થવિરોની આશાતના ન કરવી (૬) કુળની આશાતના ન કરવી (૭) ગણની આશાતના ન કરવી (૮) સંઘની આશાતના ન કરવી (૯) ક્રિયાઓની આશાતના ન કરવી (૧૦) સાંભોગિક સાધુની આશાતના ન કરવી (૧૧) આભિનિબોધિક મતિજ્ઞાનની આશાતના ન કરવી (૧૨) શ્રુતજ્ઞાનની આશાતના ન કરવી (૧૩) અવધિજ્ઞાનની આશાતના ન કરવી (૧૪) મનઃપર્યવજ્ઞાનની આશાતના ન કરવી (૧૫) કેવળજ્ઞાનની અશાતના ન કરવી આ અર્હન્ત આદિના વિનયના પંદર ભેદ છે. ભક્તિ-બહુમાન પદને લઈને સદ્ગુણોત્કીર્તન રૂપ વર્ણ સંજ્વલનતાને લઈને પંદર-પંદર ભેદ કરવાથી ત્રીસ ભેદ બીજા થાય છે જેમકે અર્હન્તની ભક્તિ કરવી, અર્હત્પ્રણીત ધર્મની ભક્તિ કરવી. અર્હત્પ્રણીત ધર્મના ગુણોનું કીર્ત્તન કરવું આદિ આવી રીતે બધાનો સરવાળો કરવાથી અનત્યાશાતના વિનય તપનાં પિસ્તાળીશ ભેદ સમજવા જોઈએ ૨૬

प्ररूपितम्, सम्प्रति-द्वितीयमनत्याशातनारूपं दर्शनविनयतपः स्वरूपयितुमाह-'अणच्चासायणाविणयतवे पणयालीसविहे, अरहंताणं अणच्चा' इति। अनत्याशातनाविनयतपः-अर्हदादीनामवर्णवादादि निषेधरूपं पञ्चचत्वारिंशद्विधं भवति। तद्यथा-अर्हतां तीर्थकृताम् अनत्याशातनता १ अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्याऽनत्याशातनता २ आचार्याणामनत्याशातनता ३ उपाध्यायानामनत्याशातनता ४ स्थविराणामनत्याशातनता ५ कुलस्याऽनत्याशातनता ६ गणस्याऽनत्याशातनता ७ संघस्याऽनत्याशातनता ८ क्रियाणामनत्याशातनता ९ सम्भोगस्याऽनत्याशातनता १० आभिनिबोधिकज्ञानस्याऽनत्याशातनता ११ श्रुतज्ञानस्याऽनत्याशातनता १२ अवधिज्ञानस्याऽनत्याशातनता १३ मनःपर्यवज्ञानस्याऽनत्याशातनता १४ केवल-

---

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-इससे पूर्व दर्शनविनय के प्रथम भेद शुश्रूषणा विनय तप का निरूपण किया गया है, अब दूसरे भेद अनत्याशातना दर्शनविनय की प्ररूपणा करते हैं-

अर्हन्त आदि का अवर्णवाद न करने आदि के भेद से अनत्याशातना विनय तप पैंतालीस प्रकार का है-(१) अर्हन्त भगवान की अनत्याशातना-आशातना न करना (२) अर्हत्प्रणीत धर्म की आशातना न करना (३) आचार्य की आशातना न करना (४) उपाध्याय की आशातना न करना (५) स्थविरों की आशातना न करना (६) कुल की आशातना न करना (७) गण की आशातना न करना (८) संघ की आशातना न करना (९) क्रिया की आशातना न करना (१०) सांभोगिक की आशातना न करना (११) आभिनिबोधिकज्ञान की आशातना न करना (१२) श्रुतज्ञान की आशातना न करना (१३) अवधिज्ञान की आशातना

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ-આની અગાઉ દર્શનવિનયના પ્રથમ ભેદ શુશ્રૂષણા વિનય તપનુ નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે બીજા ભેદ અનત્યાશાતના દર્શન વિનયની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ—

અર્હન્ત આદિની આશાતના ન કરવા વગેરેના ભેદથી અનત્યાશાતના વિનય તપ પિસ્તાળીશ પ્રકારના છે—(૧) અર્હન્ત ભગવાનની અનત્યાશાતના—આશાતના ન કરવી (૨) અર્હત્પ્રણીત ધર્મની આશાતના ન કરવી (૩) આચાર્યની આશાતના ન કરવી (૪) ઉપાધ્યાયની આશાતના ન કરવી (૫) સ્થવિરોની આશાતના ન કરવી (૬) કુળની આશાતના ન કરવી (૭) ગણની આશાતના ન કરવી (૮) સંઘની આશાતના ન કરવી (૯) ક્રિયાની આશાતના ન કરવી (૧૦) સાંભોગિકની આશાતના ન કરવી (૧૧) આભિનિબોધિ જ્ઞાનની આશાતના ન કરવી (૧૨) શ્રુતજ્ઞાનની આશાતના ન કરવી (૧૩) અવધિજ્ઞાનની આશાતના ન કરવી (૧૪) મનઃપર્યવજ્ઞાનની આશાતના ન કરવી (૧૪) કેવળ

ज्ञानस्याऽनत्याशातनता१५ इत्येवं पञ्चदशाऽर्हदादि विनया भवन्ति । एवमेवा ऽर्हदादीनां भक्तिबहुमानमाश्रित्य च पञ्चदश भवन्ति १५ । एवमेतेषां खलु अर्हदादीनां सद्भूतगुणोत्कीर्तनतारूपा वर्णसंज्वलनतामाश्रित्य पञ्चदश भवन्ति १५ इत्येवं सर्वमनत्याशातनऽताविनयतपः पञ्चचत्वारिंशद्विधं भवति । तत्र-कुलपदेन, एकाचार्यस्य सन्ततिरूप समानाचारश्रमणसमूहो गृह्यते, गणपदेन परस्परसापेक्षा ऽनेककुलश्रमणसमुदायो-बोध्यते, संघपदेन च-सम्यग्दर्शनादियुक्त श्रमण-श्रमणी श्रावक-श्राविकारूप चतुर्विधः संघो ग्राह्यः, क्रियापदेन चैत्यादिथिकादिक्रिया ग्राह्यः सम्भोगपदेन च-एकसामाचारिकता गृह्यते, सम्-एकत्र भोगो-भोजनं सम्भोगः, समानसामाचारी तया श्रमणानां परस्परमुपध्यादि दानग्रहणव्यापारसम्भोगः

न करना (१४) मनःपर्यवज्ञान की आशातना न करना (१५) केवलज्ञान की आशातना न करना, ये अर्हन्त आदि के पन्द्रह विनय हैं। इन्हीं अर्हन्त आदि पन्द्रह के प्रति भक्ति-बहुमान करने से और इन्हीं पन्द्रह के सद्भूत गुणों का कीर्त्तन-वर्णसंज्वलनता-से भी पन्द्रह भेद होते हैं। इस प्रकार सब को सम्मिलित करने से अनत्याशातना विनय तप पैंतालीस प्रकार का है।

यहां कुल का अर्थ है एक आचार्य की सन्तान रूप समान आचार विचार वाले श्रमणों का समूह। गण का अर्थ है परस्पर सापेक्ष अनेक कुलों के श्रमणों का समुदाय। संघ पद से सम्यग्दर्शन आदि से युक्त साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ समझना चाहिए। क्रिया शब्द से प्रतिलेखन आदि क्रियाओं को ग्रहण करना चाहिए। सम्भोग शब्द का अभिप्राय है समान सामाचारी वाले श्रमणों

જ્ઞાનની આશાતના ન કરવી, આ અર્હન્ત આદિના પંદર વિનય છે. આ જ અર્હન્ત આદિ પંદરના પ્રતિ ભક્તિ—બહુમાન કરવાથી અને આજ પંદર ના સમુદ્ભૂત ગુણોનું કીર્ત્તન-વર્ણસંજ્વલનતાથી પણ બીજા પંદર ભેદ થાય છે, આ રીતે બધાને ભેગા કરવાથી અનત્યાશાતના વિનય તપ પિસ્તાળીશ પ્રકારના છે.

અહીં કુળનો અર્થ છે એક આચાર્યના પરિવાર રૂપ સમાન આચાર-વિચારવાળા શ્રમણોનો સમૂહ-ગણનો અર્થ થાય છે પરસ્પર સાપેક્ષ અનેક કુળોના શ્રમણોનો સમુદાય સંઘ પદથી સમ્યક્દર્શન આદિથી યુક્ત સાધુ સાધ્વી શ્રાવક અને શ્રાવિકા રૂપ ચતુર્વિધ સંઘ સમજવો જોઈએ ક્રિયા શબ્દ થી પ્રતિલેખન આદિ ક્રિયાઓને ગ્રહણ કરવા જોઈએ. સમ્ભોગ શબ્દનો—અભિ-

इति व्युत्पत्तेः। अन्यत् सर्वं स्पष्टम् ॥ उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-"से किं तं अणच्चासायणाविणए-? अणच्चासायणाविणए पणयालीसविहे पण्णत्ते, तं जहा--अरहंताणं अणच्चासायणया-१ अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अणच्चासायणया-२ आयरियाणं अणच्चासायणया-३ एवम्-उवज्झायाणं-४ थेराणं-५ कुलस्स-६ गणस्स -७ संघस्स-८ किरियाणं-९ संभोगस्स-१० आभिणिबोहियणाणस्स-११ सुयणाणस्स १२ ओहिणाणस्स १३ मणपज्जवणाणस्स-१४ केवलणाणस्स-१५ एएसिं चेव भत्तिबहुमाणे-३०, एएसिं चेव वण्णसंजलणया-४५, से तं अणच्चासायणा विणए" इति। अथ कोऽसौ-अनत्याशातनाविनयः? अनत्याशातनाविनयः पञ्चचत्वारिंशद्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-ऽर्हतामनत्याशातनता १ अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्याऽनत्याशातनता २ आचार्याणामनत्याशातनता ३ एव-मुपाध्यायानाम् ४ स्थविराणाम् ५ कुलस्य ६ गणस्य ७ संघस्य ८ क्रियाणाम् ९ सम्भोगस्य १० आभिनिबोधिकज्ञानस्य ११ श्रुतज्ञानस्य १२ अवधि

का पारस्परिक आहार आदि व्यवहार अर्थात् आपस में उपधि आदि को लेना-देना एक साथ बैठकर भोजन करना यथोचित वन्दन आदि करना। अन्य सब स्पष्ट ही है। औपपातिकसूत्र के ३०वें सूत्र में कहा है

प्रश्न—अनत्याशातनाविनय कितने प्रकार के हैं?

उत्तर-अनत्याशातनाविनय पैंतालीस प्रकार का है, यथा-(१) अर्हन्तों की आशातना न करना (२) अर्हत्प्रणीत धर्म की आशातना न करना (३) आचार्यों की आशातना न करना (४) उपाध्यायों की आशातना न करना (५) स्थविरों की (६) कुल की (७) गण की (८) संघ की (९) क्रियाओं की (१०) सांभोगिकों की (११) आभिनिबोधिकज्ञान की (१२) श्रुतज्ञान की (१३) अवधिज्ञान की (१४)

પ્રાય છે સમાન સમાચારવાળા શ્રમણોનો પારસ્પરિક આહાર આદિ વ્યવહાર અર્થાત્ અંદરોઅંદર ઉપધિ વગેરેની લેવડદેવડ, એક સાથે બેસીને ભોજન કરવું, યથોચિત વંદણા વગેરે કરવી. બીજું બધું સ્પષ્ટ જ છે. ઔપપાતિક સૂત્રના ૩૦માં સૂત્રમાં કહ્યું છે—

પ્રશ્ન—અનત્યશાતનાવિનય કેટલા પ્રકારનો છે?

ઉત્તર—અનત્યાશાતનાવિનય પિસ્તાળીશ પ્રકારનો છે જેમ કે—(૧) અર્હન્તોની આશાતના ન કરવી (૨) અર્હત્પ્રણીત ધર્મની આશાતના ન કરવી (૩) આચાર્યોની આશાતના ન કરવી (૪) ઉપાધ્યાયોની આશાતના ન કરવી (૫) સ્થવિરોની (૬) કુળની (૭) ગણની (૮) સંઘની (૯) ક્રિયાઓની (૧૦) સાંમ્ભોગિકોની (૧૧) આભિનિબોધિકજ્ઞાનની (૧૨) શ્રુતજ્ઞાનની (૧૩) અવધિ

ज्ञानस्य १३ मनःपर्यवज्ञानस्य १४ केवलज्ञानस्य १५ एतेषां चैव भक्तिबहुमानानि ३० एतेषा ञ्चैव वर्णसंज्वलनता ४५ स एषोऽनत्याशातनाविनयः इति ।२६।

मूलम्-चरित्तविणयतवे पंचविहे, सामाइयचरित्तविणयाइ भेयओ ॥२७॥

छाया-चारित्रविनयतपः पञ्चविधः सामायिकचारित्रविनयादि भेदतः ॥२७॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत्-सप्तविधेषु विनयतपःसु यथाक्रमं प्रथमं ज्ञानवितयतपः, द्वितीयं दर्शनविनयतपश्च सविशदं प्ररूपितम्; सम्प्रति-क्रमप्राप्तं चारित्रविनयतपः प्ररूपयितुमाह-'चरित्तविणयतवे पंचविहे' इत्यादि। चारित्रविनयतपः-अनेकजन्मसञ्चिताऽष्टविधकर्मचयसंरक्षयाऽयचरणं सर्वविरतिलक्षणं

मनः पर्यवज्ञान की और (१५) केवलज्ञान की आशातना न करना (३०) इन पन्द्रह की भक्ति और बहुमान करना और (४५) इन पन्द्रह की वर्णसंज्वलनता अर्थात् विद्यमान गुणों का उत्कीर्त्तन करना यह पैंतालीस प्रकार का अनत्याशातना विनय है ॥२६॥

'चारित्त विणयतवे पंचविहे' इत्यादि

सूत्रार्थ—चारित्र विनय तप पांच प्रकार का है-सामायिक चारित्रविनय तप इत्यादि ॥२७॥

तत्त्वार्थदीपिका—सात प्रकार के विनयतपों में से क्रमशः पहले ज्ञानविनय तप का और दूसरे दर्शनविनयतप का निरूपण किया गया, अब क्रमागत चारित्रविनयतप की प्ररूपणा करते हैं-

अनेक जन्मों में संचित आठ प्रकार के कर्मसमूह का क्षय करने

જ્ઞાનની (૧૪) મનઃપર્યવજ્ઞાનની અને (૧૫) કેવળજ્ઞાનની આશાતના કરવી નહીં. આ પંદરની ભક્તિ અને બહુમાન કરવા (૩૦) અને આ પંદરની વર્ણ સંજવલનતા અર્થાત્ વિદ્યમાન ગુણોનું ઉત્કીર્ત્તન કરવું આ પિસ્તાળીશ પ્રકારના અનત્યાશાતના વિનય છે ॥૨૬॥

'ચરિત્તવિણયતવે પંચવિહે' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—ચારિત્ર વિનય તપ પાંચ પ્રકારના છે—સામાયિક ચારિત્ર વિનય તપ ઇત્યાદિ ॥૨૭॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-સાત પ્રકારના વિનયતપોમાંથી ક્રમશઃ પહેલા જ્ઞાનવિનય તપનું અને બીજા દર્શન વિનય તપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે ક્રમાગત ચારિત્રવિનય તપની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ—

અનેક જન્મોના સંચિત આઠ પ્રકારના કર્મ સમૂહનો ક્ષય કરવા માટે

चारित्रं, तत्सम्बन्धीविनयस्तद्रूपं तपः पञ्चविधं भवति, सामायिकादि भेदतः। तथा च-सामायिकचारित्रविनयतपः १ आदिना-छेदोपस्थापनीयचारित्रविनय तपः २ परिहारविशुद्धिकचारित्रविनयतपः ३ सूक्ष्मसाम्परायचारित्रविनयतपः४ यथाख्यातचारित्रविनयतपः ५ चेति। तत्र-सर्वजीवेषु रागद्वेषरहितो भावः समः, तस्य समस्य प्रतिक्षणपूर्वापूर्वकर्मनिर्जराहेतुभूतस्य विशुद्धिरूपस्याऽऽयो लाभः समायः समायएव सामायिकं सावद्ययोगविरतिरूपम् सामायिकञ्च तत् चारित्रं सामायिकचारित्रम्, तद्रूपं विनयतपः सामायिकचारित्रविनयतप उच्यते। एवं-छेदेन पूर्वपर्यायच्छेदेन उपस्थाप्यते-आरोप्यते यन्महाव्रत-लक्षणं चारित्रं, तच्छेदोपस्थापनीय मुच्यते तद्रूपं चारित्रं छेदोपस्थापनीय

के लिए सर्वविरतिरूप क्रियाकलाप चारित्र कहलाता है। चारित्र संबन्धी विनय को चारित्रविनय तप कहते हैं। यह पांच प्रकार का है- (१) सामायिक चारित्र विनय तप (२) छेदोपस्थापनीय चारित्रविनय तप परिहार विशुद्ध चारित्रविनय तप (४) सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र विनय तप और (५) यथाख्यातचारित्र विनय तप।

समस्त जीवों पर राग-द्वेष रहित मध्यस्थभाव होना 'सम' कहलाता है। प्रतिक्षण अपूर्व कर्मनिर्जरा के कारणभूत एवं विशुद्धि स्वरूप समभाव के आय अर्थात् लाभ को 'समाय' कहते हैं और समाय को ही सामायिक कहते हैं, जिसका आशय है सावद्य योग का त्याग करना। सामायिक रूप चरित्र सामायिक चारित्र कहलाता है और उसका विनय सामायिक चारित्रविनय तप है। पूर्वपर्याय का छेद करके महाव्रत रूप चारित्र का फिर से आरोपण करना छेदोपस्थापन चारित्र है,

સર્વવિરતિ રૂપક્રિયાકલાપ ચારિત્ર કહેવાય છે. ચારિત્ર સંબંધી વિનયને ચારિત્ર વિનય તપ કહે છે, આ પાંચ પ્રકારના છે—(૧) સામાયિક ચારિત્ર વિનય તપ (૨) છેદોપસ્થાપનીયચારિત્ર વિનય તપ (૩) પરિહાર વિશુદ્ધિ ચારિત્ર વિનય તપ (૪) સૂક્ષ્મસામ્પરાય ચારિત્ર વિનય તપ અને (૫) યથાખ્યાત ચારિત્ર વિનય તપ.

સમસ્ત જીવો પ્રત્યે રાગ-દ્વેષ રહિત મધ્યસ્થ ભાવ હોવો-સમ કહેવાય છે પ્રતિક્ષણ અપૂર્વ-અપૂર્વ કર્મનિર્જરાના કારણભૂત અને વિશુદ્ધિ સ્વરૂપ સમ ભાવના આય અર્થાત્ લાભને સમાય કહે છે અને સમાયને જ સામાયિક કહે છે જેનો ભાવાર્થ છે સાવદ્ય યોગનો ત્યાગ કરવો. સામાયિકરૂપ ચારિત્ર સામાયિક ચારિત્ર કહેવાય છે અને તેનો વિનય સામાયિક ચારિત્ર

चारित्रं तदात्मकं विनयतप श्छेदोपस्थापनीयचारित्रविनयतपो भवति। एवम्-परिहरणं परिहारस्तपो विशेष स्तेन कर्मनिर्जरारूपा विशुद्धिर्यस्मिन् चारित्रे तत्-परिहारविशुद्धिकं चारित्रं, तद्रूपं विनयतपः परिहारविशुद्धिकचारित्रविनय-तप उच्यते। एवं-समर्येति संसार मनेनेति सम्परायः कषायोदयः, सूक्ष्मोलोभांशाऽवशेषः सम्परायो यत्र तत्=सूक्ष्मसम्परायं तद्रूपं यच्चारित्रं तत्सम्बन्धि विनय तपः सूक्ष्मसम्परायचारित्रविनयतप उच्यते। एवं-याथातथ्येनाऽभिविधिना च यत् ख्यातं तीर्थकृद्भिरुपदिष्टं कषायरहितं चारित्रं तत् यथाख्यातचारित्रम् तत्सम्बन्धि विनयतपो यथाख्यातचारित्र विनयतप उच्यते ॥२७॥

तत्त्वार्थनियुक्तिः-पूर्वं सप्तविधं विनयतपः प्रतिपादितम् तत्र-ज्ञानविनयतप दर्शनविनयतपश्च सविशदं प्ररूपितम् सम्प्रति-तृतीयं चारित्रविनयतपः प्र-

---

उसका विनय छेदोपस्थापन चारित्र विनय तप समझना चाहिए। परिहार नामक तप जिस चारित्र में विशिष्ट कर्मनिर्जरा के लिए किया जाता है, वह चारित्र परिहारविशुद्धि कहलाता है। उसका विनय परिहारविशुद्धि चारित्र विनय है। जिसमें संज्वलन कषाय का सूक्ष्म अंश ही शेष रहजाता है वह चारित्र सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र कहलाता है। उसका विनय सूक्ष्मसाम्परायचारित्र विनय है। तीर्थंकर भगवान् द्वारा उपदिष्ट कषाय रहित चारित्र यथाख्यातचारित्र कहलाता है, उसका विनय यथाख्यातचारित्र विनय समझना चाहिए ॥२७॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पहले सात प्रकार के विनय तप का निरूपण किया गया था। उसमें से ज्ञानविनय और दर्शनविनय तप का विशद विवेचन किया जा चुका है। अब तीसरे चारित्र विनय तप का प्ररूपण करते हैं--

---

વિનય તપ છે, પહેલાના પર્યાયોનો છેદ કરીને મહાવ્રતરૂપ ચારિત્રનું પુનઃ આરોપણ કરવું છેદોપસ્થાપન ચારિત્ર છે તેનો વિનય છેદોપસ્થાપન ચારિત્ર વિનય તપ સમજવું જોઈએ પરિહાર નામક તપ જે ચારિત્રમાં વિશિષ્ટ કર્મનિર્જરાને માટે કરવામાં આવે છે તે ચારિત્ર પરિહાર વિશુદ્ધિ ચારિત્ર કહેવાય છે. જેમાં સંજ્વલન કષાયનો સૂક્ષ્મ અંશ જ શેષ રહી જાય છે. તે ચારિત્ર સૂક્ષ્મસામ્પરાય ચારિત્ર કહેવાય છે. તેનો વિનય સૂક્ષ્મસામ્પરાય ચારિત્ર વિનય છે. તીર્થંકર ભગવાન દ્વારા ઉપદિષ્ટ કષાય રહિત ચારિત્ર યથાખ્યાતચારિત્ર કહેવાય છે, તેનો વિનય યથાખ્યાત ચારિત્રવિનય સમજવો જોઈએ ॥૨૭॥

તત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા સાત પ્રકારના વિનયતપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે તેમાંથી જ્ઞાનવિનય અને દર્શનવિનય તપનું વિશદ વિવેચન કરવામાં

विधत्वेन प्ररूपयितुमाह–'चरित्तविणयतवे पंचविहे, सामाइय–चरित्त विणयाइ भेयओ' इति। चारित्रविनयतपः–नानाजन्म सञ्चिताऽष्टविधकर्म चय संक्षयाय चरणं सर्वविरतिस्वरूपं चारित्रं तत्सम्बन्धी विनयः चारित्रविनय स्तद्रूपं तपः पञ्चविधं भवति। सामायिक–चारित्र–विनयादि भेदतः, तथा च– सामायिकचारित्रविनयः १ आदिना–छेदोपस्थापनीयचारित्रविनयः २ परिहार विशुद्धिकचारित्रविनयः ३ सूक्ष्मसम्परायचारित्रविनयः ४ यथाख्यातचारित्र-विनयः ५ चेति। तत्र सावद्ययोगविरतिरूपं सामायिकं तल्लक्षणं चारित्रं सामायिकचारित्रं तद्रूपं विनयतपः सामायिकचारित्रविनयतप उच्यते। एवं– पूर्वपर्यायच्छेदेनो–पस्थाप्यते–आरोप्यते यन्महाव्रतलक्षणं चारित्रं,–तत्–छेदो-पस्थापनीयचारित्रं तत्सम्बन्धिविनयतपः छेदोपस्थापनीयचारित्रविनयतप उच्यते। एवं–तपोविशेषेण परिहारेण कर्मनिर्जरारूपा विशुद्धिर्यस्मिन् चारित्रे

अनेक जन्मों में संचित आठ प्रकार के कर्म समूह का क्षय करने के लिए जो सर्वविरति रूप अनुष्ठान किया जाता है, वह चारित्र कहलाता है। चारित्र का विनय चारित्र विनय तप है। इसके भी पांच भेद हैं– (१) सामायिक चारित्र विनय (२) छेदोपस्थापनीय चारित्र विनय (३) परिहार विशुद्धि चारित्र विनय (४) सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र विनय और (५) यथाख्यात चारित्र विनय। इनमें से सावद्य योग की निवृत्ति को सामायिक चारित्र कहते हैं, उसका विनय सामायिक चारित्र विनय तप कहलाता है। जो महाव्रतरूप चारित्र पूर्व पर्याय का छेदन करके आरोपित किया जाता है वह छेदोपस्थापनीय चारित्र कहलाता है उसका विनय छेदोपस्थापनीय चारित्रविनय है। जिस चारित्र में परिहार नामक

આવી ગયું. હવે ત્રીજા ચારિત્ર વિનય તપનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ—

અનેક જન્મોમાં સંચિત આઠ પ્રકારના કર્મ સમૂહનો ક્ષય કરવાને માટે જે સર્વ વિરતિરૂપ અનુષ્ઠાન કરવામાં આવે છે તે ચારિત્ર કહેવાય છે. ચારિત્રનો વિનય ચારિત્ર વિનય તપ છે એના પાંચ ભેદ છે—

(૧) સામાયિક ચારિત્ર વિનય (૨) છેદોપસ્થાપનીય ચારિત્ર વિનય (૩) પરિહાર વિશુદ્ધિ ચારિત્ર વિનય (૪) સૂક્ષ્મસામ્પરાય ચારિત્ર વિનય અને (૫) યથાખ્યાત ચારિત્ર વિનય આમાંથી સવદ્યયોગની નિવૃત્તિને સામાયિક ચારિત્ર કહે છે, તેનો વિનય સામાયિક ચારિત્ર વિનય કહેવાય છે. જે મહા વ્રત રૂપ ચારિત્ર પૂર્વપર્યાયનું છેદન કરીને પુનઃ આરોપિત કરવામાં આવે છે તે છેદોપસ્થાપનીય ચારિત્ર કહેવાય છે તેનો વિનય છેદોપસ્થાપનીય ચારિત્ર

तत्परिहारविशुद्धिकं चारित्रं तत्सम्बन्धिविनयतपः परिहारविशुद्धिक चारित्र विनयतप उच्यते। एवम्-सम्पर्येति संसारे परिभ्रमति अनेनेति सम्परायः कषायादयः सूक्ष्मो लोभाऽवशेषरूपः सम्परायो यत्र तत् सूक्ष्मसम्परायं तद्रूपं यच्चारित्रं तत्सम्बन्धि विनयतपः सूक्ष्मसम्परायचारित्रविनयतपः उच्यते। एवं-याथातथ्येन आ-समन्तात् यत् ख्यातं तीर्थंकृद्भिरुपदिष्टम् कषायवर्जितं चारित्रं तद् यथाख्यातचारित्रं तत्सम्बन्धि विनयतपो यथाख्यातचारित्रविनयतप उच्यते॥ उक्तं औपपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं चरित्तविणए? चरित्तविणए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा-सामाइयचरित्तविणए१ छेदोवट्ठावणियचरित्तविणए२ परिहारविसुद्धियचरित्तविणए३ सुहुमसंपरायचरित्तविणए४ अहक्खायचरित्तविणए५ सेयं चरित्तविणए' इति अथ कोऽसौ चारित्रविनयः?

तपश्चर्या के द्वारा कर्म निर्जरा रूप विशुद्धि की जाती है, वह परिहार विशुद्धि चारित्र कहलाता है, उसका विनय परिहारविशुद्धि चारित्र विनय है। जिसके कारण जीव संसार में परिभ्रमण करता है, उन कषायों को सम्पराय कहते हैं। जिस चारित्र की दशा में सम्पराय सूक्ष्म लोभांश के रूप में शेष रह जाता है, उस चारित्र को सूक्ष्मसाम्पराय कहते हैं। सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र का विनय सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र विनय कहलाता है। तीर्थंकर भगवान ने यथार्थ रूप से जो चारित्रनिष्कषाय रूप कहा है, वह यथाख्यात चारित्र है। उसका विनय यथाख्यात चारित्रविनय कहलाता है। औपपातिक सूत्र के तीसवें सूत्र में कहा है-

प्रश्न-चारित्र विनय के कितने भेद हैं?

उत्तर-चारित्र विनय के पांच भेद हैं-(१) सामायिक चारित्र विनय

વિનય છે જે ચારિત્રમાં પરિહાર નામક તપશ્ચાર્યા દ્વારા કર્મનિર્જરારૂપ વિશુદ્ધિ કરવામાં આવે છે તે પરિહાર વિશુદ્ધ ચારિત્ર કહેવાય છે, તેનો વિનય પરિહાર વિશુદ્ધચારિત્ર વિનય છે. જેના કારણે જીવ સંસારમાં પરિભ્રમણ કરે છે તે કષાયને સમ્પરાય કહે છે. જે ચારિત્રની દશામાં સમ્પરાય સૂક્ષ્મ-લોભાંશના રૂપમા જ શેષ રહી જાય છે તે ચારિત્રને સૂક્ષ્મસાંમ્પરાય કહે છે. સૂક્ષ્મસામ્પરાય ચારિત્રનો વિનય સૂક્ષ્મસમ્પરાય ચારિત્ર વિનય કહેવાય છે. તીર્થંકર ભગવાને યથાર્થ રૂપથી જે ચારિત્ર વિનય નિષ્કષાય રૂપ કહેલ છે તે યથાખ્યાત ચારિત્ર છે. તેનો વિનય યથાખ્યાત ચારિત્ર વિનય કહેવાય છે. ઔપપાતિકસૂત્રનાં ત્રીસમાં સૂત્રમાં કહેલ છે--

પ્રશ્ન—ચારિત્ર વિનયના કેટલાં ભેદ છે?

ઉત્તર—ચારિત્ર વિનયના પાંચ ભેદ છે-(૧) સામાયિકચારિત્ર વિનય

चारित्रविनयः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा सामायिकचारित्रविनयः १ छेदोपस्थापनीयचारित्रविनयः २ परिहारविशुद्धिकचारित्रविनयः ३ सूक्ष्मसम्परायचारित्रविनयः ४ यथाख्यातचारित्रविनयः ५ स एष चारित्रविनयः इति ॥२७॥

मूलम्–मणवइकायविणयतवे पत्तेयं दुविहे, पसत्थापसत्थमणवइकायविणयाइ भेयओ ॥२८॥

छाया–मनोवचः कायविनयतपः प्रत्येकं द्विविधम्, प्रशस्ताप्रशस्त मनोवचः कायविनयादि भेदतः ॥२८॥

तत्वार्थदीपिका–पूर्वं तावत् क्रमागतं चारित्रविनयतपः पञ्चविधत्वेन प्ररूपितम्, सम्प्रति–क्रमप्राप्तं मनोवचः कायविनयतपः प्रत्येकं द्वैविध्येन प्ररूपयितुमाह–'मणवइकायविणयतवे' इत्यादि । मनोवचः कायविनयतपः–मनो-

---

(२) छेदोपस्थापनीय चारित्र विनय (३) परिहार विशुद्धि चारित्र विनय (४) सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र विनय और (५) यथाख्यात चारित्र विनय। यह चारित्र विनय के पाँच भेद हैं ॥२७॥

'मणवइकायविणयतवे' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—प्रशस्त और अप्रशस्त मन, वचन, काय विनय के भेद से मनोविनय, वचन विनय और कायविनय के दो-दो भेद हैं ॥२८॥

तत्वार्थदीपिका–इससे पूर्व चारित्र विनय के पांच भेदों का निरूपण किया गया, अब क्रमप्राप्त मन-वचन–कायविनय में से प्रत्येक के दो-दो भेदों का प्ररूपण करते हैं–

मनो विनय तप, वचन विनय तप और काय विनय तप में से प्रत्येक के दो-दो भेद हैं–प्रशस्त मनो विनय तप और अप्रशस्त मनो

---

(૨) છેદોપસ્થાપનીય ચારિત્ર વિનય (૩) પરિહાર વિશુદ્ધચારિત્ર વિનય (૪) સૂક્ષ્મસામ્પરાય ચારિત્ર વિનય અને (૫) યથાખ્યાત ચારિત્ર વિનય આ ચારિત્ર વિનયના પાંચ ભેદ છે. ॥૨૭॥

'मणवइकायविणयतवे' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ–પ્રશસ્ત અને અપ્રશસ્ત મન વચન, કાયવિનયના ભેદથી મનોવિનય, વચનવિનય અને કાયવિનયના બબ્બે ભેદ છે. ॥૨૮॥

તત્વાર્થદીપિકા–આની પહેલાં ચારિત્રવિનયના પાંચ ભેદોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે ક્રમપ્રાપ્ત મન–વચન–કાયવિનયમાંથી પ્રત્યેકના બે-બે ભેદોનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ–

મનોવિનય તપ. વચનવિનયતપ અને કાયવિનય તપમાંથી પ્રત્યેકના બે બે ભેદ છે–પ્રશસ્તમનોવિનયતપ અને અપ્રશસ્તમનોવિનય તપ, પ્રશસ્ત વચન વિનય

विनयतपः १ वचोविनयतपः २ कायविनयतपः ३ च प्रत्येकं द्विविधं भवति। तद्यथा—प्रशस्ताप्रशस्त मनोवचः कायविनयादिभेदतः, तथा च-प्रशस्तमनोविनय-तपः ३ अप्रशस्त मनोविनयतपः२ प्रशस्तवचोविनयतपः३ अप्रशस्तवचोविनयतपः ४ प्रशस्तकायविनयतपः ५ अप्रशस्तकायविनयतपः ६ चेत्येवं प्रशस्ताप्रशस्त भेदेन प्रत्येकं द्वैविध्यात् मनोवचःकायविनयतपः षड्विधं सम्पद्यते। तत्र—प्रशस्तम् अवद्यवर्जितं यन्मनोऽन्तःकरणम् तत्सम्बन्धि विनयतपः प्रशस्तमनोविनयतप उच्यते। एवम्—अप्रशस्तं सावद्यं—सपापं यन्मनोऽन्तः—करणं तन्सम्बन्धि विनय-तपो—ऽप्रशस्त मनोविनय तप उच्यते। एवं—प्रशस्ताप्रशस्त मनोविनयतपः, प्रश-स्ताप्रशस्त कायविनयतपश्चापि स्वयमूहनीयम् ॥२८॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वोक्तरीत्या पञ्चविधं चारित्रविनयतपः प्ररूपितम्, सम्प्रति—क्रमप्राप्तं मनोवचः-कायविनयतपः प्रत्येकं द्वैविध्येन प्ररूपयितुमाह—

विनय तप, प्रशस्त वचन विनय तप और अप्रशस्त वचन विनय तप, प्रशस्त काय विनय तप और अप्रशस्त काय विनय तप। इस तरह प्रत्येक के दो-दो भेद होने से तीनों के मिलकर छह भेद होते हैं। प्रशस्त मन अर्थात् निर्मल अन्तःकरण संबंधी विनय तप को प्रशस्त मनो-विनय तप कहते हैं। इसी प्रकार अप्रशस्त अर्थात् पापयुक्त मन अर्थात् अन्तःकरण संबंधी विनय तप को अप्रशस्त मनोविनय तप कहते हैं। इसी भांति प्रशस्त और अप्रशस्त वचन और काय संबंधी विनयों का भी स्वरूप समझ लेना चाहिए ॥२८॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पांच प्रकार के चारित्र विनय तप का निरूपण किया जा चुका, अब क्रमप्राप्त मनोविनय, वचन विनय और कायविनय तप के प्रत्येक के दो-दो भेदों का निरूपण करते हैं—

તપ અને અપ્રશસ્તવચન વિનય તપ, પ્રશસ્ત કાય વિનય તપ અને અપ્રશસ્ત કાયવિનય તપ આ રીતે પ્રત્યેકના બે-બે ભેદ હોવાથી ત્રણેના મળીને છ ભેદ થાય છે પ્રશસ્ત મન અર્થાત્ નિર્મળ અન્તઃ કરણ સંબંધી વિનય તપ ને પ્રશસ્તમનોવિનય તપ કહે છે એવી જ રીતે અપ્રશસ્ત અર્થાત્ પાપ યુક્ત મન અર્થાત્ અન્તઃ કરણ સંબંધી વિનય તપને અપ્રશસ્તમનો વિનય તપ કહે છે,

તેવીજ રીતે પ્રશસ્ત અને અપ્રશસ્ત વચન અને કાયસંબંધી વિનયોનું પણ સ્વરૂપ સમજી લેવું જોઈએ. ॥ ૨૮ ॥

પાંચ પ્રકારના ચારિત્રવિનય તપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું. હવે ક્રમપ્રાપ્ત મનોવિનય વચનવિનય અને કાયવિનય તપના પ્રત્યેકના બે બે ભેદોનું નિરૂપણ કરીએ છીએ-

'मणवइकायविणयतवे पच्चेयं दुविहे, पसत्थापसत्थमणवइकाय विणयाइ भेयओ' इति । मनोवचः-कायविनयतपः-मनोविनयतपः, वचोविनयतपः, कायविनयतपश्च प्रत्येकं द्विविधं भवति, तद्यथा-प्रशस्तापशस्तमनोवचःकायविनयादि भेदतः । तथा च-प्रशस्तमनोविनयतपः१ अप्रशस्तमनोविनयतपः २ प्रशस्तवचोविनयतपः३ अप्रशस्तवचो विनयतपः४ प्रशस्तकायविनयतपः५ अप्रशस्तकायविनयतपः ६ चेत्येवं प्रत्येकं प्रशस्ताप्रशस्तभेदेन द्वैविध्यात् षड्विधं तावत् मनोवचःकायविनयतपो भवतीतिभावः । तत्र प्रशस्तम्-अवद्यवर्जितं पापरहितं यन्मनस्तत्सम्बन्धि विनयतपः प्रशस्तमनोविनयतपः उच्यते । एवम् अप्रशस्तं सावद्यं सपापं-प्राणातिपाताद्यारम्भक्रियायुक्तं कर्कशता-कटुकता, निष्ठुरता-परुषतादि सहितश्च यन्मनोऽन्तःकरणं तत्सम्बन्धि विनयतपोऽप्रशस्तमनोविनयतप उच्यते । एवम्-प्रशस्ताप्रशस्तवचोविनयतपः, प्रशस्ताऽप्रशस्तकायविनयतपश्चाऽप्युक्तरीत्याऽवगन्तव्यम् ॥ उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं मणविणए? मणविणए

मनो विनय तप के, वचनविनय तप के और कायविनय तप के दो दो भेद हैं। वे इस प्रकार हैं-प्रशस्त वचन विनय तप और अप्रशस्त मनो विनय तप, प्रशस्त मनोविनय तप और अप्रशस्त वचन विनय तप, प्रशस्त काय विनय तप और अप्रशस्त काय विनय तप । तीनों के दो-दो भेद होने से सब मिलकर छह भेद होते हैं। प्रशस्त अर्थात् पाप रहित मन संबंधी विनय को प्रशस्त मनोविनय तप कहते हैं। अप्रशस्त अर्थात् पापयुक्त-प्राणातिपात आदि से युक्त, कर्कशता, कटुकता, निष्ठुरता,परुषता आदि सहित जो अन्तःकरण है, उसका विनय अप्रशस्त मनोविनय कहलाता है। प्रशस्त और अप्रशस्त वचन विनय तथा कायविनय भी इस प्रकार समझ लेना चाहिए। औपपातिक सूत्र के तीसवें सूत्र में कहा है।

મનોવિનય તપના વચનવિનય તપના અને કાયવિનય તપના બબ્બે ભેદ છે. જે આ પ્રમાણે છે.-પ્રશસ્તમનોવિનય તપ અને અપ્રશસ્તમનોવિનય તપ પ્રશસ્તવચનવિનયતપ અને અપ્રશસ્તવચનવિનય તપ, પ્રશસ્ત કાયવિનય તપ અને અપ્રશસ્ત કાયવિનય તપ. ત્રણેના બબ્બે ભેદ હોવાથી બધા મળીને ૬ ભેદ થાય છે. પ્રશસ્ત અર્થાત્ પાપરહિત મનસંબંધી વિનયને પ્રશસ્ત મનોવિનય તપ કહે છે. અપ્રશસ્ત અર્થાત્ પાપયુક્ત પ્રાણાતિપાત વગેરેથી યુક્ત, કર્કષતા કટુકતા નિષ્ઠુરતા, પરૂષતા આદિ સહિત જે અંતઃકરણ છે. તેનો વિનય અપ્રશસ્ત મનોવિનય કહેવાય છે. પ્રશસ્ત અને અપ્રશસ્ત વચન વિનય તથા કાયવિનય પણ આ પ્રમાણે સમજી લેવા જોઈએ. ઔપપાતિક સૂત્રના ત્રીસમાં સૂત્રમાં કહ્યું છે

दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-पसत्थमणविणए १ अप्पसत्थमणविणए २, से किं तं अप्पसत्थमणविणए ? अप्पसत्थ मणविणए-जे य मणे सावज्जे १ सकिरिए २ सकक्कसे-३ कडुए ४ णिठ्ठुरे-५ फरूसे-६ अण्हयरे-७ छेयकरे-८ भेयकरे९ परितावणकरे १० उद्दवणकरे-११ भूओवघाइए-१२ तहप्पगारं मणो णो पहारेज्जा, से तं अप्पसत्थमणविणए, से किं तं पसत्थमणविणए ? पसत्थमणविणए तं चेव पसत्थं णेयव्वं, एवं चेव वइविणओवि एएहिं पएहिं चेव णेयव्वो, से तं वइविणए, से किं तं कायविणए ? कायविणए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-पसत्थकायविणए १ अपसत्थकायविणए-२ से किं तं अपसत्थकायविणए-३ अप्पसत्थकायविणए सत्तविहे पण्णत्ते तं जहा-अणाउत्तं गमणे-१ अणाउत्तं ठाणे-२ अणाउत्तं निसीयणे-३ अणाउत्तं तुयट्टणे-४ अणाउत्तं उल्लंघणे-५ अणाउत्तं पल्लंघणे-६ अणाउत्तं सव्विंदियकायजोगजुंजणया-७ से तं अप्पसत्थकायविणए, पसत्थकायविणए एवं चेव पसत्थं भाणियव्वं, से तं पसत्थ कायविणए, से तं कायविणए" इति।

अथकोऽसौ मनोविनयः १ मनोविनयो द्विविधः प्रज्ञप्तः तद्यथा प्रशस्तमनोविनयः अप्रशस्तमनोविनयः२ अथ कोऽसौ अप्रशस्तमनोविनयः ३ अप्रशस्तमनोविनयः-यच्च मनः सावद्यं-सक्रियं-स कर्कशं-कटुकं-निष्ठुरं-परुषम्-आस्रवकरं-

प्रश्न-मनोविनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर-मनोविनय के दो भेद हैं-प्रशस्त मनोविनय और अप्रशस्त मनोविनय।

प्रश्न—अप्रशस्त मनोविनय किसे कहते हैं ?

उत्तर-जो मन पापयुक्त है, क्रियायुक्त है, कर्कश है, कटुक है, निष्ठुर है, परुष है आस्रवजनक है, छेदकारी है, भेदकारी है, परितापकारी है,

પ્રશ્ન—મનોવિનયના કેટલા ભેદ છે ?

ઉત્તર—મનોવિનયના બે ભેદ છે. પ્રશસ્ત મનોવિનય અને અપ્રશસ્તમનોવિનય

પ્રશ્ન—પ્રશસ્તમનોવિનય કોને કહે છે ?

ઉત્તર-જે મન પાપયુક્ત છે, ક્રિયાયુક્ત છે, કર્કષ છે, કટુક છે, નિષ્ઠુર છે, પરૂષ છે. આસ્રવજનક છે, છેદકારી છે, ભેદકારી છે, પરિતાપકારી છે, ઉપદ્રવકારી છે,

छेदकरं-भेदकरं-परितापनकरम्-उपद्रवणकरं-भूतोपघातिकम्, तथाप्रकारं मनो न प्रधारयेत्, स एषोऽप्रशस्तमनोविनयः । अथ कोऽसौ प्रशस्तमनोविनयः ? प्रशस्तमनोविनयः तच्चैव प्रशस्तं ज्ञातव्यम्, एवञ्चैव वचोविनयोऽपि एतैः पदैश्चैव ज्ञातव्यः स एव वचोविनयः, अथ कोऽसौ कायविनयः? कायविनयो द्विविधः, प्रज्ञप्तः, तद्यथा-प्रशस्तकायविनयः अप्रशस्तकायविनयः, अथ कोऽसौ अप्रशस्तकायविनयः? अप्रशस्तकायविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-अनायुक्तं गमनम्-१ अनायुक्तं स्थानम्२ अनायुक्तं निषदनम्-३ अनायुक्तं त्वग्वर्तनम् ४ अनायुक्तम् उल्लंघनम्५

उपद्रवकारी है, भूतों का घातक है, ऐसे मन का व्यापार न होने देना अप्रशस्त मनोविनय है।

प्रश्न--प्रशस्तमनोविनय किसे कहते हैं ?

उत्तर--पूर्वोक्त अप्रशस्त मन से विपरीत अर्थात् निरवद्य, क्रिया हीन आदि मन का व्यापार होना प्रशस्तमनोविनय है।

पूर्वोक्त पदों के अनुसार ही वचनविनय भी समझ लेना चाहिए केवल 'मन' के स्थान पर 'वचन' शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

प्रश्न--कायविनय किसे कहते हैं ?

उत्तर--कायविनय दो प्रकार का है-प्रशस्तकायविनय और अप्रशस्तकायविनय।

प्रश्न-अप्रशस्तकायविनय किसे कहते हैं ?

उत्तर--अप्रशस्तकायविनय सात प्रकार का है, यथा-(१) उपयोग शून्य होकर चलना (२) उपयोगहीन होकर खडा होना (३) उपयोगरहित

પ્રાણીઓનું ઘાતક છે. એવા મનનો વ્યાપાર ન થવા દેવો અપ્રશસ્તમનોવિનય છે.

પ્રશ્ન--પ્રશસ્તમનોવિનય કોને કહે છે ?

ઉત્તર--પૂર્વોકત અપ્રશસ્ત મનથી વિપરીત અર્થાત્ નિરવદ્ય, ક્રિયારહિત આદિ મનનો વ્યાપાર હોવો પ્રશસ્તમનોવિનય છે.

પૂર્વોક્ત પદ અનુસાર જ વચનવિનય પણ સમજી લેવો જોઈએ. માત્ર મનની જગ્યાએ વચન શબ્દનો પ્રયોગ કરવો જોઇએ.

પ્રશ્ન--કાયવિનય કોને કહે છે ?

ઉત્તર--કાયવિય બે પ્રકારના છે,-પ્રશસ્તકાયવિનય અને અપ્રશસ્ત કાયવિનય

પ્રશ્ન--અપ્રશસ્તકાયવિનય કોને કહે છે ?

ઉત્તર--અપ્રશસ્તકાયવિનય સાત પ્રકારના છે. જેમકે-(૧) ઉપયોગશૂન્ય થઇને ચાલવું (૨) ઉપયોગહીન થઇને ઉભા થવું (૩) ઉપયોગરહિત બેસવું

अनायुक्तं मलङ्घनम् ६ अनायुक्तं सर्वेन्द्रियकाययोगयोजनता ७ स एषोऽप्रशस्त कायविनयः प्रशस्तकायविनयः एवञ्चैव प्रशस्तं भाणितव्यम्, स एष प्रशस्तकायविनयः, स एष कायविनयः इति ॥२८॥

मूलम्—लोगोवयारविणयतवे सत्तविहे, अब्भासवत्तियाइ भेयओ ॥२९॥

छाया—लोकोपचारविनयतपः सप्तविधम्, अभ्यासवृत्तितादि भेदतः ॥२९॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत्–सप्तविधेषु विनयतपःसु मनोवचः काय विनयतपः सविस्तरं प्ररूपितम्, सम्प्रति–लोकोपचारविनयतपः सप्तविधत्वेन प्ररूपयितुमाह–'लोगोवयारविणयतवे' इत्यादि। लोकोपचारविनयतपः–लोकानामुपचरणं लोकोपचार स्तत्सम्बन्धि विनयतपो लोकव्यवहारसाधकविनय

बैठना (४) उपयोगरहित लेटना (५) उपयोगरहित होकर उल्लंघन करना–एक वार लांघना (६) उपयोगरहित होकर बार–बार लांघना और (७) उपयोग रहित होकर सब इन्द्रियों का काययोग का व्यापार करना, यह अप्रशस्तकायविनय है। इससे विपरीत प्रशस्तकायविनय कहलाता है।

'लोगोवयारविणयतवे सत्तविहे' इत्यादि

सूत्रार्थ—लोकोपचार विनय तप सात प्रकार का है–निकट में रहना आदि ॥२९॥

तत्त्वार्थदीपिका—सात प्रकार के विनय में से मन–वचन–काय विनय तप का विस्तार पूर्वक विवेचन किया जा चुका, अब लोकोपचार विनय तप के सात भेदों का प्रतिपादन करते हैं–

लोक व्यवहार का साधक विनय लोकोपचार विनय कहलाता है।

---

(४) ઉપયોગરહિત સુવું (૫) ઉપયોગરહિત થઇને ઉલ્લંઘન કરવું એકવાર લાંઘવુ (૬) ઉપયોગરહિત થઇને વારંવાર લાંઘવુ અને (૭) ઉપયોગરહિત થઇને બધી ઇન્દ્રિયોનો અને કાયયોગનો વ્યાપાર કરવો. આ અપ્રશસ્તકાયવિનય છે. આથી વિપરીત પ્રશસ્તકાયવિનય કહેવાય છે. ॥ ૨૮ ॥

'लोगोवयारविणयतवे सत्तविहे' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—લોકોપચારવિનય સાત પ્રકારનો છે–નજીકમાં રહેવું વગેરે ।૨૯।

તત્ત્વાર્થદીપિકા—સાત પ્રકારના વિનય તપમાંથી મન–વચન–કાયવિનય તપનું વિસ્તાર પૂર્વક વિવેચન કરવામાં આવ્યું. હવે લોકોપચાર વિનય તપના સાત ભેદોનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ–

લોકવ્યવહારનો સાધક વિનય લોકોપચારવિનય તપ કહેવાય છે. તે સાત

तपः सप्तविधं भवति, अभ्यासवृत्तितादि भेदतः । तथा च-अभ्यासवृत्तिताविनयतपः १ आदिना परच्छन्दानुवर्तिताविनयतपः २ कार्यार्थं शुश्रूषाविनयतपः ३ कृतप्रतिक्रियाविनयतपः ४ आर्तगवेषणताविनयतपः ५ देशकालज्ञता विनयतपः ६ सर्वाऽर्थेषु-अप्रतिलोमता विनयतप ७ इति । तत्र-ज्ञानाऽऽचार्यादीनां मधुरवचनादिरूप मभ्यासवृत्तिता विनयतप उच्यते १ पराभिप्रायानुवर्तनशीलतारूप परच्छन्दानुवर्तिताविनयतप उच्यते २ विद्यादि प्राप्त्यर्थं भक्तपानाद्यानयन द्वारा शुश्रूषाकरणं कार्यहेतुशुश्रूषाविनयतप उच्यते३ भक्तादिनोपचारे कृते सति प्रसन्नाः सन्तो गुरवो मे श्रुतदानरूपां प्रतिक्रियां प्रत्युपकारं करिष्यन्तीति बुद्ध्या गुर्वादीनां शुश्रूषणरूप प्रतिक्रियाविनयतप उच्यते ४ आर्तस्य-पीडितस्य गवेषणतां, औषध

वह सात प्रकार का है-(१) अभ्यासवृत्तिता (२) परच्छन्दानुवर्तिता (३) (३) कार्यार्थशुश्रूषा (४) कृत प्रतिक्रिय (५) आर्त्तगवेषणता (६) देशकालज्ञता और (७) सर्व पदार्थों में अप्रतिलोमिता ।

इनमें से (१) ज्ञानाचार्य (ज्ञान की शिक्षा देनेवाले शिक्षक) के प्रति मधुर वचन आदि का प्रयोग करना अभ्यासवृत्तिता विनय तप कहलाता है। (२) दूसरे के अभिप्राय को तोडकर तदनुसार वर्ताव करना परच्छन्दानुवर्तिता विनय तप हैं। (३) ज्ञान आदि की प्राप्ति के लिए आहार-पानी आदि लाकर सेवा करना कार्य हेतु शुश्रूषाविनय तप कहलाता है। (४) आहार-पानी द्वारा सेवा करने पर गुरु प्रसन्न होकर मुझे श्रुत का दान देकर प्रत्युपकार करेंगे, ऐसे अभिप्राय से गुरु आदि की शुश्रूषा करना कृतप्रतिक्रिया विनय तप है। (५) रोगी को औषध भेषज आदि देकर उसका उपकार करना आर्त्तगवे-

---

પ્રકારનો છે-(૧) અભ્યાસવૃત્તિતા (૨) પરછંદનુવૃત્તિના (૩) કાર્યાર્થશુશ્રૂષા (૪) કૃતપ્રતિક્રિય (૫) આર્ત્તગવેષણુતા (૬) દેશકાલજ્ઞતા અને (૭) સર્વપદાર્થોમાં અપ્રતિલોભતા

આમાંથી (૧) જ્ઞાનાચાર્ય (જ્ઞાનનો બોધ આપનાર શિક્ષક) ની પ્રત્યે મધુર વચન વગેરેનો પ્રયોગ કરવો અભ્યાસવૃત્તિતા વિનયતપ કહેવાય છે. (૨) બીજાના અભિપ્રાયને સમજીને તદ્દનુસાર વર્તાવ કરવો પરછંદાનુવર્ત્તિતા વિનયતપ છે. (૩) જ્ઞાન વગેરેની પ્રાપ્તિને માટે આહારપાણી વગેરે લાવીને સેવા કરવી કાર્યહેતુ શુશ્રુષાવિનય તપ કહેવાય છે. (૪) આહારપાણી દ્વારા સેવા કરવાથી ગુરૂ પ્રસન્ન થઈને મને શ્રુત દાન દઈને પ્રત્યુપકાર કરશે એવા આશયથી ગુરૂ વગેરેની શુશ્રૂષા કરવી કૃતપ્રતિક્રિયા વિનયતપ છે. (૫) રોગીને ઔષધ ભેષજ વગેરે આપીને તેમનો ઉપકાર કરવો આર્તગવેષણુતા

भैषज्यादिना दुःखितस्योपकाररूपा तत्करणम् आर्तगवेषणता विनयतप उच्यते५ देशकालोचितार्थसम्पादनरूपं देशकालज्ञता विनयतप उच्यते ६ सर्वप्रयोजने-ष्वानुकूल्यरूपं सर्वार्थेषु–अप्रतिलोमता विनयतपो भवति ७॥ ।२९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः–पूर्वोक्तरीत्यासप्तविधविनयतपःसु यथाक्रमं मनोवचः काय विनयतपः सविस्तरं प्ररूपितम्, सम्प्रति–सप्तमं लोकोपचारविनयतपः सप्तविधत्वेन प्ररूपयितुमाह—'लोगोवयारविणयतवे सत्तविहे अब्भासवत्तियाइभे-यओ–' इति। लोकोपचारविनयतपः–लोकव्यवहारसाधकविनयतपः सप्तविधं भवति, अभ्यासवृत्तितादिभेदतः। तथाच–अभ्यासवृत्तिताविनयतपः–परच्छन्दानु-वर्तिताविनयतपः–२ कार्यप्रात्यर्थं शुश्रूषादिकरणविनयतपः–३ कृतप्रतिक्रियावि-नयतपः–४ आर्तगवेषणताविनयतपः –५ देशकालज्ञताविनयतपः–६ सर्वार्थेषु

षणता विनय तप है। (६) देश और काल के अनुरूप अर्थ सम्पादन करना–कार्य करना देशकालज्ञता विनय तप है। (७) समस्त प्रयोजनों में अनुकूलता अप्रतिलोभता विनय तप है ॥२९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—सात प्रकार के विनय तप में से क्रमानुसार मन वचन-कायविनय तप का विस्तार पूर्वक निरूपण किया गया, अब सातवें लोकोपचार विनय तप के सात भेदों का प्रतिपादन करते हैं–

लोक व्यवहार साधक तप लोकोपचार विनय तप कहलाता है। अभ्यास वृत्तिता आदि के भेद से उसके सात भेद हैं–(१) अभ्यास वृत्तिता विनय तप (२) परच्छन्दानु वर्तिता विनय तप (३) शुश्रूषादि करणविनय तप (४) कृतप्रतिक्रिया विनय तप (५) आर्त्तगवेषणता विनय तप (६) देशकालज्ञता विनय तप और (७) अप्रतिलोभता विनय तप।

વિનયતપ છે. (૬) દેશ અને કાળને અનુરૂપ અર્થ સંપાદન કરવો–કાર્ય કરવું દેશકાલજ્ઞતા વિનયતપ છે. (૭) સમસ્તપ્રયોજનોમાં અનુકૂળતા, અપ્રતિલોભતા વિનય તપ છે ॥ ૨૯ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—સાત પ્રકારના વિનય તપમાંથી ક્રમાનુસાર મન વચન કાયવિનય તપનું સવિસ્તર નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે સાતમા લોકો પચાર વિનય તપના સાત ભેદોનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ–

લોકવ્યવહાર સાધક તપ લોકોપચારવિનય તપ કહેવાય છે. અભ્યાસવૃત્તિતા આદિના ભેદથી તેના સાત ભેદ છે–(૧) અભ્યાસવૃત્તિતાવિનય તપ (૨) પરચ્છન્દા નુવૃત્તિતાવિનય તપ (૩) શુશ્રૂષાઆદિકરણવિનય તપ (૪) કૃતપ્રતિક્રિયાવિનય તપ (૫) આર્ત્તગવેષણતાવિનય તપ (૬) દેશકાલજ્ઞતાવિનય તપ અને (૭)

अप्रतिलोमताविनयतपः-७ इत्येवं सप्तविधं लोकोपचारविनयतपो भवतीति भावः। तत्र-लोकानामुपचरणं लोकोपचारस्तत्सम्बन्धिविनयतपो लोकोपचारविनयतपो बोध्यम्। तत्र अभ्यासवृत्तिता-ज्ञानाचार्यादीनां मधुरभाषणरूपा तद्रूपं विनयतपो-ऽभ्यासवृत्तिताविनयतपउच्यते-१ परच्छन्दानुवर्त्तिता तावत्-पराभिप्रायानुवर्तन-शीलता तद्रूपं तपः परच्छन्दानुवर्त्तितातप उच्यते-२ विद्यादिप्राप्तिनिमित्तं गुर्वा-दीनां शुश्रूषाकरणम्, कार्यसम्प्राप्तिहेतुकशुश्रूषाकरणविनयतपो भवति३ भक्तपाना-दिनोपचारे कृते सति गुरवः प्रसन्नाः सन्तो मे श्रुतदानरूपां प्रतिक्रियां प्रत्युपकारं करिष्यन्तीति बुद्ध्या गुरूणां शुश्रूषाकरणरूपं कृतप्रतिक्रियाविनयतपः उच्यते-४ आर्तस्य-पीडितस्यगवेषणता औषधोपचारादिना दुःखितस्योपकरणं तद्रूपम्

यह सात प्रकार का लोकोपचार विनय तप है।

लोगों का उपचार करना लोकोपचार कहलाता है। लोकोपचार संबंधी विनय तप को लोकोपचार विनय तप कहते हैं। इसके भेदों का स्वरूप इस प्रकार है-(१) ज्ञानाचार्य आदि का मधुर भाषण अभ्यास वृत्तिताविनय तप कहलाता है। (२) दूसरे के अभिप्राय को ताड कर तदनुसार कार्य करना परच्छन्दानुवर्त्तिता विनय तप है। (३) विद्या आदि की प्राप्ति निमित्त गुरु आदि की शुश्रूषा करना कार्यसम्प्राप्ति हेतुक शुश्रूषाकरण विनय तप कहलाता है। (४) आहार पानी आदि के द्वारा उपचार करने से प्रसन्न होकर गुरु मुझे श्रुत का दान रूप प्रत्युपकार करेंगे, ऐसे बुद्धि से गुरु की शुश्रूषा करना कृतप्रतिक्रिया विनय तप कहलाता है। (५) जो रुग्ण है उसके लिए औषध भेषज ला देना, दुःखी का उपचार करना आर्त्तगवेषणता विनय तप है। (६)

અપ્રતિલોભતાવિનય તપ આ સાત પ્રકારના લોકોપચાર વિનય તપ છે.

લોકોનો ઉપચાર કરવો લોકોપચાર કહેવાય છે. લોકોપચાર સંબંધી વિનય તપને લોકોપચાર વિનય તપ કહેવાય છે. તેના ભેદોનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે-(૧) જ્ઞાનાચાર્ય આદિના મધુરભાષણ અભ્યાસવૃત્તિતા વિનય તપ કહેવાય છે. (૨) બીજાના અભિપ્રાયને પામી જઈને તદનુસાર કર્મ કરવું પરચ્છન્દાનુવર્તિતાવિનય તપ છે (૩) વિદ્યા આદિની પ્રાપ્તિના નિમિત્તથી ગુરૂ આદિની શુશ્રૂષા કરવી કાર્યસમ્પ્રાપ્તિહેતુક શુશ્રૂષાકરણવિનય તપ કહેવાય છે (૪) આહાર-પાણી વગેરે દ્વારા ઉપચાર કરવાથી પ્રસન્ન થઈને ગુરૂ મને શ્રુતના દાન રૂપ પ્રત્યુપકાર કરશે એવી બુદ્ધિથી ગુરૂની શુશ્રૂષા કૃતપ્રતિક્રિયા વિનય તપ કહેવાય છે. (૫) જે રોગી છે તેને માટે ઔષધ-ભેષજ લાવી આપવા દુઃખીનો

आर्तगवेषणताविनयतपो भवति–५ देशकालोचितार्थ सम्पादनरूप देशकालज्ञता-विनयतप उच्यते ६ सर्वप्रयोजनेषु आनुकूल्यं सर्वार्थेषु अप्रतिलोमताविनयतप–७ श्रोच्यते ॥ उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे–"से किं तं लोगोवयारविणए–? लोगोवयारविणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा–अब्भासवत्तियं १ परच्छंदाणुवत्तियं–२ कज्जहेओ ३कयपडिकिरिया–४ अत्तगवेसणया–५ देस-कालण्णुया–सव्वट्ठेसु अप्पडिलोमया–७ से तं लोगोवयारविणए से तं विणए–" इति । अथ कोऽसौ लोकोपचारविनयः ? लोकोपचारविनयः सप्त-विधः प्रज्ञप्तः–अभ्यासवृत्तिता–१ परच्छन्दानुवर्त्तिता २ कार्यहेतु (शुश्रूषा) ३ कृतप्रतिक्रिया–४ आर्तगवेषणता–५ देशकालज्ञता–६ सर्वार्थेषु अप्रतिलोमता–७ स एष लोकोपचारविनयः स एष विनय इति ॥२९॥

मूलम्–विउसग्गे तवे दुविहे, दव्वभावभेयओ ॥३०॥

छाया–"व्युत्सर्गतपो द्विविधम्, द्रव्यभावभेदतः–" ।३०॥

देश और काल के अनुरूप अर्थसम्पादन करना देश कालज्ञता विनय तप कहलाता है। (७) सब प्रयोजनों में अनुकूल होना अप्रतिलोभता विनय तप है। औपपातिक सूत्र के तीसवें सूत्र में कहा है–

प्रश्न–लोकोपचार विनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर–लोकोपचार विनय के सात भेद हैं, यथा–(१) अभ्यास वृत्तिता (२) परच्छन्दानुवर्त्तिता (३) कार्यहेतुशुश्रूषा (४) कृतप्रतिक्रिया (५) आर्त्तगवेषणता (६) देशकालज्ञता और (७) सर्वार्थों में अप्रतिलो-भता। यह सब लोकोपचार कहलाता है ॥२९॥

'विउस्सग्गे तवे दुविहे' इत्यादि ।

ઉપકાર કરવો આર્ત્તગવેષણુતાવિનય તપ છે. (૬) દેશ અને કાળને અનુરૂપ અર્થ સમ્પાદન કરવું દેશકાલજ્ઞતા વિનય તપ કહેવાય છે (૭) બધા પ્રયોજનોમાં અનુકૂળતા હોવી અપ્રતિલોભતા વિનય તપ છે. ઔપપાતિક સૂત્રના ત્રીસમાં સૂત્રમાં કહ્યું છે–

પ્રશ્ન– લોકોપચાર વિનયના કેટલા ભેદ છે?

ઉત્તર–લોકોપચાર વિનયના સાત ભેદ છે જેવાકે–(૧) અભ્યાસવૃત્તિતા (૨) પરચ્છન્દાનુવર્ત્તિતા (૩) કાર્યહેતુશુશ્રૂષા (૪) કૃતપ્રતિક્રિયા (૫) આર્ત્તગ-વેષણુતા (૬) દેશકાલજ્ઞતા અને (૭) સર્વાર્થિક અપ્રતિલોભતા. આ બધાં લોકોપચારવિનય કહેવાય છે. ॥ ૨૯ ॥

'વિઉસગ્ગે તવે દુવિહે' ઇત્યાદિ

तत्त्वार्थदीपिका— पूर्वं तावद्-सप्तमाध्याये वैयावृत्य-स्वाध्यायो-ध्यानं चाऽऽभ्यन्तरतपः सविस्तरं प्ररूपितम्, साम्प्रतं षष्ठस्याभ्यन्तरतपसो व्युत्सर्गरूपस्य विशेषतः प्ररूपणं कर्तुमाह-'विउस्सग्गे तवे दुविहे, दव्वभावभेयओ-' इति। व्युत्सर्गः-वि-विशेषेण उत्-उत्कृष्टभावनया सर्गः-त्यागो व्युत्सर्गः, एतद्रूपं तपो व्युत्सर्गतप उच्यते। तद्-द्रव्यतोभावतश्चेति द्विविधम्, तत्र-द्रव्यव्युत्सर्गः-बाह्यवस्तूनां त्यागः। भावव्युत्सर्गः आभ्यन्तरवस्तुनस्त्यागः उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं विउस्सग्गे? विउस्सग्गे दुविहे पन्नत्ते, तं जहा-दव्वविउस्सग्गे१ भावविउस्सग्गे२ य-" इति, अथ कोऽसौ व्युत्सर्गः? व्युत्सर्गो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-द्रव्यव्युत्सर्गः-१ भावव्युत्सर्गश्च-२ इति ॥३०॥

सूत्रार्थ--व्युत्सर्ग तप के दो भेद हैं--द्रव्यव्युत्सर्ग और भावव्युत्सर्ग ॥३०॥

तत्वार्थदीपिका—सातवें अध्याय में पहले वैयावृत्य, स्वाध्याय और ध्यान, इन आभ्यन्तर तपों का विस्तार पूर्वक प्ररूपण किया गया, अब छठे आभ्यन्तर तप व्युत्सर्ग की विशेषरूप से प्ररूपणा करते हैं-

'व्युत्सर्ग' शब्द का विश्लेषण इस प्रकार है-वि+उत्+सर्ग। 'वि' अर्थात् विशेष रूप से, 'उत्' अर्थात् उत्कृष्ट भावना से, 'सर्ग' अर्थात् त्याग करना व्युत्सर्ग कहलाता है। व्युत्सर्ग तप के दो भेद हैं-द्रव्यव्युत्सर्ग और भावव्युत्सर्ग। बाह्य वस्तुओं का त्याग करना द्रव्यव्युत्सर्ग तप है और आभ्यन्तर वस्तुओं का त्याग भावव्युत्सर्ग है। औपपातिक सूत्र के तीसवें सूत्र में कहा हैं-

प्रश्न-व्युत्सर्ग के कितने भेद हैं?

उत्तर-व्युत्सर्ग के दो भेद हैं-द्रव्य व्युत्सर्ग और भावव्युत्सर्ग।३।

સૂત્રાર્થ—વ્યુત્સર્ગ તપના બે ભેદ છે—દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ અને ભાવવ્યુત્સર્ગ ।૩૦।

તત્ત્વાર્થદીપિકા—સાતમા અધ્યાયમાં પ્રથમ વૈયાવૃત્ય, સ્વાધ્યાય અને ધ્યાન—આ આભ્યન્તર તપોનું વિસ્તારપૂર્વક પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે છટ્ઠા આભ્યન્તર તપ વ્યુત્સર્ગની વિશેષ રૂપથી પ્રરૂપણા કરીએ છીએ

વ્યુત્સર્ગ શબ્દનું વિશ્લેષણ આ પ્રમાણે થાય છે—વિ+ઉત્+સર્ગ 'વિ' અર્થાત્ વિશેષ રૂપથી ઉત્ અર્થાત્ ઉત્કૃષ્ટ ભાવનાથી, 'સર્ગ' અર્થાત્ ત્યાગ કરવો વ્યુત્સર્ગ તપ છે જ્યારે આભ્યન્તર વસ્તુઓનો ત્યાગ ભાવવ્યુત્સર્ગ છે ઔપપાતિક સૂત્રના ત્રીસમાં સૂત્રમાં કહ્યું છે

પ્રશ્ન—વ્યુત્સર્ગના કેટલા ભેદ છે

ઉત્તર—વ્યુત્સર્ગના બે ભેદ છે દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ અને ભાવવ્યુત્સર્ગ ।૩૦।

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—स्पष्टा-दीपिका गम्याचेति ॥३०॥

मूलम्—दव्वविउस्सग्गतवे चउव्विहे, सरीरविउसग्गाइ भेयओ ॥३१॥

छाया-द्रव्य व्युत्सर्गतपश्चतुर्विधम्, शरीरव्युत्सर्गादिभेदतः-" ॥३१॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत्-व्युत्सर्गतपसो द्वैविध्यं प्ररूपितम्, तत्र-व्युत्सर्गतपसो द्वैविध्यं प्रतिपादयन्नाह-"दव्वविउसग्गतवे-" इत्यादि। द्रव्य व्युत्सर्गतपः-द्रव्यस्य शरीरादे व्युत्सर्गः ममत्वत्यागः, तद्रूपं तप स्तावद् चतुर्विधं भवति,। तद्यथा शरीरव्युत्सर्गादिभेदतः,तथा च-शरीरव्युत्सर्ग तपः १ आदिना-गणव्युत्सर्ग तपः-२ उपधिव्युत्सर्गतपः-३ भक्तपानव्युत्सर्गतपश्च-४ इत्येवं चतुर्विधं द्रव्यव्युत्सर्गतपो भवति। तत्र शरीरस्य ममत्वत्यागः शरीरव्युत्सर्ग तप उच्यते, विशेषेणोत्कृष्टभावनया त्यागस्यैव व्युत्सर्गपदार्थत्वात्। एवं-द्वादश

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—स्पष्ट है और दीपिका टीका से समझी जा सकती है ॥३०॥

'दव्व विउस्सग्गतवे चउव्विहे' इत्यादि।

सूत्रार्थ—द्रव्यव्युत्सर्ग तप चार प्रकार का है-शरीर व्युत्सर्ग आदि ॥३१॥

तत्त्वार्थदीपिका—इससे पहले व्युत्सर्ग तप के दो भेदों का निर्देश किया गया था, अब उसके दो भेदों का व्याख्यान करते हैं--

शरीर आदि द्रव्य का ममत्व त्यागना द्रव्यव्युत्सर्ग है। इसके चार भेद हैं-(१) शरीरव्युत्सर्गतप (२) गणव्युत्सर्गतप (३) उपधिव्युत्सर्ग तप। शरीर संबन्धी ममता का त्याग करना अर्थात् अपने शरीर को भी अपने से भिन्न मानना शरीरव्युत्सर्गतप कहलाता है। विशेषरूप से और उत्कृष्ट भावना से त्याग करना ही व्युत्सर्ग शब्द का अर्थ है।

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—સ્પષ્ટ છે અને દીપિકા ટીકાથી જ સમજી શકાય છે ।૩૦।

'दव्वविउस्सग्गे तवे चउव्विहे' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ તપ ચાર પ્રકારના છે શરીરવ્યુત્સર્ગ આદિ ।૩૧।

તત્ત્વાર્થદીપિકા-આનાથી પહેલા વ્યુત્સર્ગ તપના બે ભેદોનો નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો હતો હવે તેના બે ભેદોનું નિરૂપણ કરીએ છીએ

શરીર આદિ દ્રવ્યનું મમત્વ છોડવું દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ છે. આના ચાર ભેદ છે (૧) શરીરવ્યુત્સર્ગતપ (૨) ગણવ્યુત્સર્ગતપ (૩) ઉપધિવ્યુત્સર્ગ તપ અને (૪) ભક્તપાનવ્યુત્સર્ગ તપ. શરીર સંબંધી મમતાનો ત્યાગ કરવો અર્થાત્ પોતાના શરીરને પણ પોતાનાથી ભિન્ન ગણવુ શરીરવ્યુત્સર્ગ શબ્દનો અર્થ થાય છે.

प्रतिमा आराधनाय गणस्य साधु समुदायस्य ममत्वत्यागो गणव्युत्सर्गतप उच्यते। एवम् वस्त्रादि रूपस्योपधेर्ममत्वत्यागरूपम् उपधिव्युत्सर्ग तप उच्यते। एवम् अशनादि त्यागरूपं भक्तपानव्युत्सर्गतप उच्यते ॥३१॥

तत्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावत्-प्रायश्चित्तादि षड्विधा भ्यन्तरतपःसु वैयावृत्य-स्वाध्यायध्यानरूपाणि पञ्च तपांसि सविस्तरं प्ररूपितानि, सम्प्रति-षष्ठस्य व्युत्सर्गनामकाऽभ्यन्तरतपसः सविस्तरं विशेषं प्ररूपयितुमाह-'दव्वविउसग्ग तवे चउव्विहे, सरीरविउसग्गाइभेयओ-" इति। द्रव्यव्युत्सर्गतपः-द्रव्यस्य शरीरवस्त्रादि व्युत्सर्गो विशेषेण-उत्कृष्टभावनया सर्गो ममत्वत्यागः द्रव्यव्युत्सर्ग स्तद्रूपं तपो द्रव्यव्युत्सर्ग तपस्तावच्चतुर्विधं भवति, शरीरव्युत्सर्गादिभेदतः। तथा च-शरीरव्युत्सर्ग तपः-१ आदिना-गणव्युत्सर्गतपः-२ उपधिव्युत्सर्ग तपः-३ भक्तपानव्युत्सर्गतपश्चे-४ त्येवं चतुर्विधं द्रव्यव्युत्सर्ग तपो

इसी प्रकार द्वादश प्रतिमाओं की आराधना आदि के लिए गण अर्थात् साधु समुदाय का त्याग करना—एकाकी विचरना गणव्युत्सर्ग है। वस्त्र आदि उपधि का त्याग कर देना उपधिव्युत्सर्ग है। इसी प्रकार अशनादि का त्याग करना भक्तपानव्युत्सर्गतप कहलाता है ॥३१॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले छह प्रकार के आभ्यन्तर तपों में से वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान आदि पांच का विस्तारपूर्वक प्ररूपण किया जा चुका, अब छठे आभ्यन्तरतप व्युत्सर्ग का विस्तृत एवं विशेष रूपसे निरूपण किया जाता है—

विशेष रूप से, उत्कृष्ट भावना से, शरीर आदि द्रव्यों की ममता का त्याग करना द्रव्यव्युत्सर्ग तप कहलाता है। इस तप के चार भेद हैं—(१) शरीरव्युत्सर्ग तप (२) गणव्युत्सर्ग तप (३) उपधिव्युत्सर्गतप (४)

એવી જ રીતે બાર પડિમાઓની આરાધના આદિને માટે ગણ અર્થાત્ સાધુ સમુદાયનો ત્યાગ કરવો—એકલવિહારી વિચરવું ગણવ્યુત્સર્ગ છે. વસ્ત્ર આદિ ઉપધિનો ત્યાગ કરી દેવો ઉપધિવ્યુત્સર્ગ છે એવી જ રીતે અશન આદિનો ત્યાગ કરવો ભક્તપાનવ્યુત્સર્ગ તપ કહેવાય છે. ॥ ૩૧ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા છ પ્રકારના આભ્યન્તર તપોમાંથી વૈયાવૃત્ય સ્વાધ્યાય, ધ્યાન આદિ પાંચનું વિસ્તારપૂર્વક પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું. હવે છટ્ઠા આભ્યન્તરતપ વ્યુત્સર્ગનું વિસ્તૃત તેમજ વિશેષ નિરૂપણ કરવામાં આવે છે.

વિશેષરૂપથી ઉત્કૃષ્ટ ભાવનાથી શરીર આદિ દ્રવ્યોની મમતાનો ત્યાગ કરવો. દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગતપ કહેવાય છે. આ તપના ચાર ભેદ છે—(૧) શરીરવ્યુત્સર્ગ તપ (૨) ગણવ્યુત્સર્ગતપ (૩) ઉપધિવ્યુત્સર્ગતપ અને (૪) ભક્તપાનવ્યુત્સર્ગ

भवतीति बोध्यम् । तत्र शरीरस्य औदारिकादिरूपस्य व्युत्सर्गः विशेषेण-उत्कृष्ट-भावनया ममत्वत्यागः शरीरव्युत्सर्ग स्तद्रूपं तपः शरीरव्युत्सर्गतप उच्यते। एवं प्रतिमा आराधनाय गणस्य श्रमणसम्प्रदायस्य व्युत्सर्गो विशिष्टोत्कृष्ट भावनया ममत्वत्यागो गणव्युत्सर्गः ममत्वत्यागः उपधिव्युत्सर्गः तद्रूपं तप उपधि व्युत्सर्ग तपः उच्यते । एवं-भक्तस्याऽऽहारस्य-पानस्य जलस्य च व्युत्सर्गः परित्यागो भक्तपानव्युत्सर्ग स्तद्रूपं तपो भक्त-पान व्युत्सर्ग तप उच्यते ।। उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं दव्वविउस्सग्गे-? दव्वविउस्सग्गे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-सरीरविउस्सग्गे१ गणविउस्सग्गे२ उवहिविउस्सग्गे-३ भत्तपानविउस्सग्गे-४ से तं दव्वविउस्सग्गे' इति । अथ कोऽसौ द्रव्यव्युत्सर्गः? द्रव्य व्युत्सर्गश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा शरीरव्युत्सर्गः-१ गणव्युत्सर्गः२ उपधिव्युत्सर्गः-३ भक्तपानव्युत्सर्गः-४ स एष द्रव्यव्युत्सर्गः ॥३१॥

भक्तपानव्युत्सर्गतप द्रव्यव्युत्सर्ग के यह चार भेद समझने चाहिए ।

औदारिक शरीर के प्रति विशेष रूप से, उत्कृष्ट भावना पूर्वक ममत्व न रखना शरीरव्युत्सर्ग तप कहलाता है। प्रतिमा की आराधना आदि के लिए गच्छ को त्याग देना गणव्युत्सर्ग तप है । वस्त्र आदि उपधि का त्याग कर देना उपधि व्युत्सर्ग तप है । आहार और पानी का त्याग कर देना भक्तपानव्युत्सर्ग तप है । औपपातिकसूत्र के ३० वें सूत्र में कहा है-'शरीरव्युत्सर्ग गणव्युत्सर्ग उपधिव्युत्सर्ग और भक्तपानव्युत्सर्ग यह चार प्रकार का द्रव्यव्युत्सर्गतप है ॥३१॥

'भावविउस्सग्ग तवे तिविहे' इत्यादि

भावव्युत्सर्ग तप तीन प्रकार का है-(१) कषायव्युत्सर्ग (२) संसार

તપ દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગના આ ચાર ભેદ સમજવા જોઈએ.

ઔદારિક શરીરની પ્રતિ વિશેષરૂપથી ઉત્કૃષ્ટભાવના પૂર્વક મમત્વ ન રાખવું શરીરવ્યુત્સર્ગતપ કહેવાય છે. પડીમાંની આરાધના વગેરેના કારણે ગચ્છનો ત્યાગ કરી દેવો ગણવ્યુત્સર્ગતપ છે. વસ્ત્ર આદિ ઉપધિનો ત્યાગ કરવો ઉપધિવ્યુત્સર્ગ તપ છે. આહાર અને પાણી ત્યજી દેવા ભક્તપાનવ્યુત્સર્ગતપ છે. ઔપપાતિક સૂત્રના ત્રીસમાં સૂત્રમાં કહ્યું છે

શરીરવ્યુત્સર્ગ, ગણવ્યુત્સર્ગ અને ભક્તપાન વ્યુત્સર્ગ આ ચાર પ્રકારના દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ તપ છે. ॥ ૩૧ ॥

'ભાવવિઉસગ્ગે તવે તિવિહે' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-ભાવવ્યુત્સર્ગતપ ત્રણ પ્રકારના છે-(૧) કષાયવ્યુત્સર્ગ (૨)

मूलम्–भावविउस्सग्गतवे तिविहे, कसायसंसारकम्म-विउस्सग्ग भेयओ ॥३२॥

छाया–भावव्युत्सर्गतपस्त्रिविधं कषाय संसार-कर्म व्युत्सर्गभेदतः–"।३२।

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावद्–द्रव्यव्युत्सर्गतपश्चतुर्विधं सविस्तरं प्ररूपितम् सम्प्रति-भावव्युत्सर्गं तपः प्ररूपयितुमाह–"भावविउस्सग्ग तवे–" इत्यादि। भावव्युत्सर्गं तपः–भावस्य कषायादे व्युत्सर्गः विशेषेणोत्कृष्टभावनया त्यागो–भावव्युत्सर्गः स्तद्रूपं तपो भावव्युत्सर्गतपः खलु त्रिविधं भवति। तद्यथा–कषाय-व्युत्सर्गतपः १ संसारव्युत्सर्गतपः २ कर्मव्युत्सर्गं तपश्च ३ इत्येवं त्रिविधं भावव्यु-त्सर्गं तपो भवति। तत्र–कषायानां क्रोधादेर्भावस्य व्युत्सर्गः परित्यागः कषाय-व्युत्सर्गः स्तद्रूपं तपः कषायव्युत्सर्गं तप उच्यते। एवं–संसारस्य नरक–तिर्यग्-मनुष्य–देवगतिरूपस्य व्युत्सर्गः संसारव्युत्सर्गं तप उच्यते। एवं–कर्मणां ज्ञाना-वरणाद्यष्टविधानां व्युत्सर्गः परित्यागः कर्मव्युत्सर्गः स्तद्रूपं तपः कर्मव्युत्सर्ग-तप उच्यते ॥३२॥

व्युत्सर्ग और (३) कर्मव्युत्सर्ग ॥३२॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले द्रव्यव्युत्सर्ग का विस्तारपूर्वक प्ररूपण किया गया, अब भावव्युत्सर्गतप की प्ररूपणा करते हैं–

कषाय आदि भाव का व्युत्सर्ग करना अर्थात् उत्कृष्ट भावना से विशिष्ट त्याग करना भावव्युत्सर्ग तप कहलाता है। इस तप के तीन भेद हैं–कषायव्युत्सर्गतप, संसारव्युत्सर्ग तप और कर्मव्युत्सर्ग तप क्रोध आदि कषायभाव का त्याग करना कषायव्युत्सर्ग तप कहलाता है। नरकगति तिर्यंचगति मनुष्यगति और देवगति रूप चतुर्विध संसार का त्याग करना संसारव्युत्सर्गतप कहलाता है और ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के कर्मों का त्याग करना कर्मव्युत्सर्ग तप कहलाता है ॥३२॥

સંસારવ્યુત્સર્ગ (૨) અને (૩) કર્મવ્યુત્સર્ગ ॥ ૩૨ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગનું વિસ્તારપૂર્વક પ્રરૂપણા કર્યું. હવે ભાવવ્યુત્સર્ગતપની પ્રરપણા કરીએ છીએ

કષાય આદિ ભાવનો વ્યુત્સર્ગ કરવો ભાવવ્યુત્સર્ગતપ કહેવાય છે આ તપના ત્રણ ભેદ છે–કષાયવ્યુત્સર્ગતપ, સંસારવ્યુત્સર્ગતપ અને કર્મવ્યુત્સર્ગતપ

ક્રોધ આદિ કષાય ભાવનોત્યાગ કરવો કષાયવ્યુત્સર્ગતપ કહેવાય છે. નરક ગતિ, તિર્યંચગતિ, મનુષ્યગતિ અને દેવગતિરૂપ ચતુર્વિધ સંસારનો ત્યાગ કરવો સંસાર વ્યુત્સર્ગતપ કહેવાય છે અને જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ પ્રકારના કર્મોનો ત્યાગ કરવો કર્મવ્યુત્સર્ગતપ કહેવાય છે. ॥ ૩૨ ॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पूर्वं तावद्-द्रव्यभावभेदेन द्विविधेषु व्युत्सर्गतपःसु चतुर्विधत्वेन द्रव्यव्युत्सर्गतपः प्ररूपितम्, सम्प्रति–भावव्युत्सर्गं तपस्त्रैविध्येन प्ररूपयितुमाह–'भावविउस्सग्गतवे तिविहे, कसाय-संसार कम्मविउस्सग्ग भेयओ' इति। भावव्युत्सर्गतपः–भावस्य क्रोधादिकषायादेः खलु व्युत्सर्गः विशेषेणोत्कृष्टभावनया त्यागो भावव्युत्सर्ग स्तद्रूपं तप स्तावत् त्रिविधं भवति, तद्यथा–कषायव्युत्सर्ग तपः १ संसारव्युत्सर्गतपः २ कर्मव्युत्सर्गतपश्चे–३ ति। तत्र–कषायस्य क्रोधादिरूपस्य भावस्य व्युत्सर्गः विशिष्टोत्कृष्टभावनया परित्यागः कषायव्युत्सर्ग स्तद्रूपं तपः कषायव्युत्सर्गतपो व्यपदिश्यते। एवं संसारस्य नरक–तिर्यङ्मनुष्य–देवगति रूपस्य व्युत्सर्गः परित्यागः संसारव्युत्सर्ग स्तद्रूपं तपः संसारव्युत्सर्गतपो व्यपदिश्यते एवं कर्मणां ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्मणां व्युत्सर्गः परित्यागः कर्मव्युत्सर्ग स्तद्रूपं तपः कर्मव्युत्सर्ग तपो व्यपदिश्यते। उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे–'से किं तं भावविउग्गे? भावविउस्सग्गे तिविहे

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—व्युत्सर्ग तप के दो भेदों में से द्रव्यव्युत्सर्गतप के चार भेदों की प्ररूपणा की गई, अब भावव्युत्सर्गतप के तीन भेदों का व्याख्यान किया जाता हैं–

विशेष रूप से उत्कृष्ट भावनापूर्वक क्रोधादि कषाय–भाव का त्याग भावव्युत्सर्ग कहलाता है। उसके तीन भेद हैं–(१) कषायव्युत्सर्ग (२) संसारव्युत्सर्ग और (३) कर्मव्युत्सर्ग। क्रोध आदि कषयों का त्याग करना कषायव्युत्सर्ग तप है। इसी प्रकार नारक–तिर्यंच–मनुष्य देवगति रूप संसार का परित्याग करना संसारव्युत्सर्गतप है और ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के कर्मों का परित्याग करना कर्मव्युत्सर्ग तप कहलाता है। औपपातिकसूत्र के तीसवें सूत्र में कहा है—

તત્વાર્થનિર્યુક્તિ--વ્યુત્સર્ગતપનાં બે ભેદોપૈકી દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગતપના ચાર ભેદોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી. હવે ભાવવ્યુત્સર્ગતપના ત્રણ ભેદોનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે.

વિશેષરૂપથી, ઉત્કૃષ્ટભાવના પૂર્વક ક્રોધાદિકષાયભાવનો ત્યાગ ભાવવ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે. તેના ત્રણ ભેદ છે (૧) કષાયવ્યુત્સર્ગ (૨) સંસારવ્યુત્સર્ગ અને (૩) કર્મવ્યુત્સર્ગ ક્રોધ આદિ કષાયનો ત્યાગ કરવો કષાયવ્યુત્સર્ગતપ છે એવી જ રીતે નરક–તિર્યંચ–મનુષ્ય દેવગતિ રૂપ સંસારનો પરિત્યાગ કરવો સંસાર વ્યુત્સર્ગતપ છે; જ્યારે જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ પ્રકારના કર્મોનો પરિત્યાગ કરવો કર્મવ્યુત્સર્ગતપ કહેવાય છે. ઔપપાતિક સૂત્રના ત્રીસમાં સૂત્રમાં કહ્યું છે

पण्णत्ते, तं जहा कसायविउस्सग्गे१ संसारविउस्सग्गे२ कम्मविउस्सग्गे' इति। अथ कोऽसौ भावव्युत्सर्गः ? भावव्युत्सर्गे स्त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-कषायव्युत्सर्गः १ संसारव्युत्सर्गः २ कर्मव्युत्सर्गः ३ इति ॥३२।

मूलम्-कसायविउस्सग्गतवे चउव्विहे, कोहकसायाइ विउस्सग्ग भेयओ ॥३३॥

छाया-कषायव्युत्सर्गतपश्चतुर्विधं, क्रोधकषायादि व्युत्सर्गभेदतः ।.३३॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वसूत्रे-कषायसंसारकर्मभेदेन त्रिविधं भावव्युत्सर्गतपः प्ररूपितम्, सम्प्रति-तेषु कषायव्युत्सर्गतपश्चातुर्विध्येन प्ररूपयितुमाह-'कसायविउस्सग्गतवे' इत्यादि। कषायव्युत्सर्गतपः खलु चतुर्विधं भवति, तद्यथा-क्रोधकषायादि भेदतः। तथा च-क्रोधकषायव्युत्सर्गतपः १ मानकषायव्युत्सर्गतपः

प्रश्न-भावव्युत्सर्ग के कितने भेद हैं ?

उत्तर-भावव्युत्सर्ग के तीन भेद हैं-(१) कषायव्युत्सर्ग (२) संसार व्युत्सर्ग और (३) कर्मव्युत्सर्ग ॥३२॥

'कसायविउस्सग्ग तवे' इत्यादि

सूत्रार्थ-क्रोध कषायव्युत्सर्ग आदि के भेद से कषायव्युत्सर्ग तप के चार भेद हैं ॥३३॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्र में भावव्युत्सर्ग तप के कषाय संसार और कर्म के भेद से तीन भेदों की प्ररूपणा की गई थी अब उनमें से कषायव्युत्सर्ग के चार भेदों की व्याख्या करते हैं-

कषाय व्युत्सर्ग तप चार प्रकार का है, यथा-(१) क्रोध कषायव्युत्सर्ग (२) मानकषाय व्युत्सर्ग (३) मायाकषाय व्युत्सर्ग और (४) लोभ

પ્રશ્ન--ભાવવ્યુત્સર્ગના કેટલા ભેદ છે ?

ઉત્તર--ભાવવ્યુત્સર્ગના ત્રણ ભેદ છે-(૧) કષાયવ્યુત્સર્ગ (૨) સંસાર વ્યુત્સર્ગ અને (૩) કર્મવ્યુત્સર્ગ. ॥ ૩૨ ॥

સૂત્રાર્થ-ક્રોધકષાયવ્યુત્સર્ગ આદિના ભેદથી કષાયવ્યુત્સર્ગતપના ચાર ભેદ છે ।૩૩।

તત્ત્વાર્થદીપિકા--પૂર્વસૂત્રમાં ભાવવ્યુત્સર્ગતપના કષાય સંસાર અને કર્મના ભેદથી ત્રણ ભેદોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી. હવે તે પૈકી કષાયવ્યુત્સર્ગના ચાર ભેદોની વ્યાખ્યા કરીએ છીએ

કષાયવ્યુત્સર્ગતપ ચાર પ્રકારના છે. જેમકે-(૧) ક્રોધકષાયવ્યુત્સર્ગ (૨) માનકષાયવ્યુત્સર્ગ (૩) માયાકષાયવ્યુત્સર્ગ અને (૪) લોભકષાયવ્યુત્સર્ગ. તાત્પર્ય એ છે કે કષાયવ્યુત્સર્ગ તપના ચાર ભેદ હોય છે. ॥ ૩૩ ॥

मायाकषायव्युत्सर्गतपः ३ लोभकषायव्युत्सर्गतपश्च ४ इत्येवं चतुर्विधं तावत् कषायव्युत्सर्गं तपो भवतीतिभावः ॥३३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावत्-त्रिविधं भावव्युत्सर्गं तपः प्ररूपितम्, कषायसंसार-कर्मव्युत्सर्ग भेदात्, सम्प्रति-तेषु प्रथमोपात्तं कषायव्युत्सर्गतपश्चतुर्विधत्वेन प्ररूपयितुमाह-'कसायविउस्सग्गतवे-चउव्विहे, कोहकसायाइ विउस्सग्गभेयओ' इति। कषायव्युत्सर्गतपः कषायस्य-क्रोधादिरूपस्य व्युत्सर्गः परित्याग स्वरूपं तपः खलु चतुर्विधं भवति तद्यथा-क्रोधकषायादि व्युत्सर्ग भेदतः। क्रोधकषायव्युत्सर्गं तपः १ आदिना-मानकषाय व्युत्सर्गतपः२ मायाकषायव्युत्सर्गतपः ३ लोभकषाय व्युत्सर्गतपश्च ४ इत्येवं चतुर्विधं खलु-कषायव्युत्सर्गतपो भवतीति भावः॥ उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं कसायविउस्सग्गे? कसाय विउस्सग्गे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—कोहकसायविउस्सग्गे १ माणकसायविउस्सग्गे २ मायाकसायविउस्सग्गे ३ लोहकसायविउस्सग्गे ४ से तं कसायविउस्सग्गे' इति। अथ कोऽसौ कषायव्युत्सर्गः ? कषायव्युत्सर्गं श्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः तद्यथा—क्रोधकषाय-

---

कषायव्युत्सर्ग। आशय यह है कि कषाय व्युत्सर्ग तप के चार भेद होते हैं ॥३३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—कषाय, संसार और कर्म के भेद से भाव व्युत्सर्ग के तीन भेदों का निरूपण किया गया, अब उनमें से प्रथम कषाय व्युत्सर्ग तप के चार भेदों का कथन करते हैं—

क्रोध आदि कषायों का त्याग करना कषाय व्युत्सर्ग तप कहलाता है। यह कषायव्युत्सर्ग तप, कषायों के चार भेद होने के कारण चार प्रकार का है। वे चार प्रकार ये हैं-(१) क्रोध व्युत्सर्ग तप (२) मान व्यु-व्युत्सर्ग तप (३) माया व्युत्सर्ग तप और (४) लोभ व्युत्सर्ग तप। औपपातिक सूत्र के तीसवें सूत्र में कहा है—

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—કષાયસંસાર અને કર્મના ભેદથી ભાવવ્યુત્સર્ગતપના ત્રણ ભેદોનું પહેલા નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું. હવે તેમાના પ્રથમ કષાયવ્યુત્સર્ગ તપનાં ચાર ભેદોનું કથન કરીએ છીએ—

ક્રોધ આદિ કષાયોનો ત્યાગ કરવો કષાય વ્યુત્સર્ગ તપ કહેવાય છે. આ કષાયવ્યુત્સર્ગ તપ, કષાયોના ચાર ભેદ હોવાના કારણે ચાર પ્રકારનું છે જે આ પ્રમાણે છે—(૧) ક્રોધવ્યુત્સર્ગ તપ (૨) માનવ્યુત્સર્ગ તપ (૩) માયાદ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ તપ અને (૪) લોભવ્યુત્સર્ગ તપ ઔપપાતિકસૂત્રના ત્રીસમાં સૂત્રમાં કહ્યું છે—

व्युत्सर्गः मानकषायव्युत्सर्गः-मायाकषायव्युत्सर्गः लोभकषायव्युत्सर्गः स एष कषायव्युत्सर्गः इति ॥३३॥

मूलम्—संसारविउस्सग्गतवे चउव्विहे, णेरइयसंसारविउ-स्सग्गाइ भेयओ ॥३४॥

छाया-संसारव्युत्सर्गतपश्चतुर्विधम्, नैरयिकसंसारव्युत्सर्गादि भेदतः ॥३४।

तत्त्वार्थदीपिका--'पूर्वं तावत्-त्रिविधस्य भावव्युत्सर्गतपसः प्रथमभेदं कषायव्युत्सर्गं तपश्चातुर्विध्येन प्ररूपितम्, सम्प्रति-द्वितीयं संसारव्युत्सर्गतपश्चातुर्विध्येन प्ररूपयितुमाह-'संसारविउस्सग्गतवे' इत्यादि। संसारव्युत्सर्गतपः-संसारस्य नैरयिकादि गतिरूपस्य व्युत्सर्गः विशेषेण-उत्कृष्टतः सर्वथा परित्यागः

प्रश्न-कषाय व्युत्सर्ग के कितने भेद हैं?

उत्तर-कषाय व्युत्सर्ग के चार भेद हैं-(१) क्रोधकषायव्युत्सर्ग (२) मानकषायव्युत्सर्ग (३) मायाकषायव्युत्सर्ग और लोभ कषाय व्युत्सर्ग। यह कषायव्युत्सर्ग तप का वर्णन है ॥३३।

'संसारविउस्सग्गतवे चउव्विहे' इत्यादि।

सूत्रार्थ—संसार व्युत्सर्ग तप चार प्रकार का है-नैरयिकसंसार-व्युत्सर्ग आदि ॥३४।

तत्त्वार्थदीपिका—इससे पूर्व भावव्युत्सर्ग तप के प्रथम भेद कषाय व्युत्सर्ग तप के चार भेदों का कथन किया गया, अब दूसरे संसार-व्युत्सर्ग तप के चार भेदों का निरूपण किया जाता है-

नैरयिकगति आदि रूप संसार का विशेष रूप से उत्कृष्ट भावना

પ્રશ્ન--કષાયવ્યુત્સર્ગના કેટલા ભેદ છે ?

ઉત્તર-કષાયવ્યુત્સર્ગના ચાર ભેદ છે-(૧) ક્રોધકષાયવ્યુત્સર્ગ (૨) માન કષાયવ્યુત્સર્ગ (૩) માયાકષાયવ્યુત્સર્ગ અને (૪) લોભકષાયવ્યુત્સર્ગ આ રીતે આ કષાય વ્યુત્સર્ગ તપનું વર્ણન છે ॥૩૩।

'સંસારવિઉસ્સગ્ગતવે ચઉવ્વિહે' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-સંસારવ્યુત્સર્ગ તપ ચાર પ્રકારના છે.-નૈરયિકસંસાર વ્યુત્સર્ગ આદિ... ॥૩૪।

તત્ત્વાર્થદીપિકા-આની પૂર્વે ભાવવ્યુત્સર્ગતપના પ્રથમ ભેદ કષાયવ્યુત્સર્ગ તપના ચાર ભેદોનું કથન કરવામાં આવ્યું હવે બીજા સંસારવ્યુત્સર્ગ તપના ચાર ભેદોનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે-

નૈરયિકગતિ આદિ રૂપ સંસારનો વિશેષ રૂપથી ઉત્કૃષ્ટ ભાવનાથી ત્યાગ

संसारव्युत्सर्ग इत्येतद्रूपं तपः खलु चतुर्विधं भवति। तद्यथा-नैरयिकसंसारव्युत्सर्गादि भेदतः। नैरयिकसंसारव्युत्सर्गतपः-१ तिर्यक् संसारव्युत्सर्गतपः-२ मनुष्य-संसारव्युत्सर्गतपः--३ देवसंसारव्युत्सर्गतपश्चे४ त्येवं चतुर्विधं खलु संसारव्युत्सर्ग तपो भवति। तत्र नैरिकगतिरूपस्य संसारस्य व्युत्सर्गः परित्यागो नैरयिकसंसा-व्युत्सर्गतप उच्यते। एवं-तिर्यग्गतिरूपस्य संसारस्य व्युत्सर्गः परित्यागः तिर्यक् संसारव्युत्सर्ग तप उच्यते। एवं-मनुष्यगतिरूपस्य संसारस्य व्युत्सर्गः परित्यागो मनुष्यसंसारव्युत्सर्गतप उच्यते। एवं-देवगतिरूपस्य संसारस्य व्युत्सर्गः परित्यागो देवसंसारव्युत्सर्ग तप उच्यते इति, ॥३४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः--पूर्वं खलु भावव्युत्सर्गतपस्त्रिविधं प्ररूपितम्, तत्र-प्रथमं कषायव्युत्सर्गतपो रूपं भावव्युत्सर्गतपश्चतुर्विधत्वेन प्रतिपाद्य सम्प्रति-द्वितीयं संसारव्युत्सर्गतपः प्ररूपयितुमाह-"संसारविउस्सग्गे तवे चउ-व्विहे, णेरइयसंसारविउस्सग्गाइ भेयओ-" इति। संसारव्युत्सर्गतपः-

---

से त्याग करना संसारव्युत्सर्ग तप कहलाता है। वह चार प्रकार का है-(१) नैरयिक संसारव्युत्सर्ग तप (२) तिर्यक् संसारव्युत्सर्ग तप (३) मनुष्य संसारव्युत्सर्गतप और (४) देवसंसार व्युत्सर्ग तप। इस प्रकार संसारव्युत्सर्ग के चार भेद हैं। इनमें से नैरयिक गति रूप संसार का परित्याग करना नैरयिक संसारव्युत्सर्गतप कहलाता है। तिर्यंचगति रूप संसार का परित्याग तिर्यक्संसार व्युत्सर्ग तप कहलाता है। मनुष्य-गतिरूप संसार का परित्याग मनुष्य संसारव्युत्सर्गतप कहलाता है और देवगति रूप संसार का परित्याग देव संसारव्युत्सर्ग कहलाता है ॥३४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले भाव व्युत्सर्ग तप के तीन भेद कहे गए थे। उनमें से पहले कषाय व्युत्सर्ग तप रूप भाव व्युत्सर्ग तप के चार

કરવો સંસારવ્યુત્સર્ગ તપ કહેવાય છે. તે ચાર પ્રકારના છે-(૧) નૈરયિકસંસાર વ્યુત્સર્ગ તપ (૨) તિર્યંચસંસાર વ્યુત્સર્ગ તપ (૩) મનુષ્યસંસારવ્યુત્સર્ગ તપ અને (૪) દેવસંસારવ્યુત્સર્ગ તપ આવી રીતે સંસારવ્યુત્સર્ગ તપના ચાર ભેદ છે, આમાંથી નૈરયિકગતિરૂપ સંસારનો પરિત્યાગ કરવો નૈરયિકસંસારવ્યુત્સર્ગ તપ કહેવાય છે. તિર્યંચગતિરૂપ સંસારનો પરિત્યાગ તિર્યંચ સંસારવ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે. મનુષ્યગતિ રૂપ સંસારનો પરિત્યાગ મનુષ્યસંસારવ્યુત્સર્ગ તપ કહેવાય છે, અને દેવગતિરૂપ સંસારનો પરિત્યાગ દેવસંસારવ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે.

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ-પહેલાં ભાવવ્યુત્સર્ગ તપના ત્રણ ભેદ કહેવામાં આવ્યા હતા તેમાંથી પહેલા કષાયવ્યુત્સર્ગતપ રૂપ ભાવવ્યુત્સર્ગ તપના ચાર ભેદોનું

संसारस्य नरकादि रूपस्य व्युत्सर्गः परित्याग स्वरूपं तपः खलु चतुर्विधं भवति, तद्यथा-नैरयिकसंसारव्युत्सर्गादि भेदतः । नैरयिकसंसारव्युत्सर्गतपः १ आदिना-तिर्यक्संसारव्युत्सर्गतपः-मनुष्यसंसारव्युत्सर्गतपः-३ देवसंसारव्युत्सर्गतपश्च-४ इत्येवं चतुर्विधं खलु संसारव्युत्सर्गं तपो भवति । तत्र-नैरयिक गतिरूपस्य संसारस्य परित्यागरूपं तपो नैरयिकसंसार व्युत्सर्गतपो व्यपदिश्यते । एवं-तिर्यग्गति रूपस्य संसारस्य परित्यागरूपं तपो तिर्यग् संसारव्युत्सर्ग तपो व्यपदिश्यते । एवं मनुष्य गतिरूपस्य संसारस्य परित्यागरूपं तपो मनुष्यसंसारव्युत्सर्गतपो व्यपदिश्यते । एवं देवगतिरूपस्य संसारस्य परित्यागरूपं तपो देवसंसारव्युत्सर्गतपो व्यपदिश्यते ॥ उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं

भेदों का प्रतिपादन किया गया, अब दूसरे संसार व्युत्सर्ग तप की प्ररूपणा करने के लिए कहते हैं-

नरक आदि स्वरूप वाले संसार का व्युत्सर्ग अर्थात् परित्याग संसार व्युत्सर्ग कहलाता है । वह चार प्रकार का है (१) नैरयिक संसार व्युत्सर्ग (२) तिर्यक्संसार व्युत्सर्ग (३) मनुष्यसंसार व्युत्सर्ग और(४) देवसंसार व्युत्सर्ग । इनमें से नैरयिक गतिरूप संसार का परित्याग नैरयिक संसार व्युत्सर्ग तप कहलाता है । तिर्यंचगति रूप संसार का परित्याग तिर्यक्संसार व्युत्सर्ग तप कहलाता है । मनुष्य गति रूप संसार का परित्याग मनुष्य संसार व्युत्सर्ग कहलाता है । देवगति रूप संसार का परित्याग देव संसार व्युत्सर्ग कहलाता है । औपपातिक सूत्र के तीसवें सूत्र में कहा है-

---

પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું હવે બીજા સંસારવ્યુત્સર્ગ તપની પ્રરૂપણા કરવા માટે કહીએ છીએ-

નરક આદિ સ્વરૂપવાળા સંસારનો વ્યુત્સર્ગ અર્થાત્ પરિત્યાગ સંસાર વ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે. તે ચાર પ્રકારનો છે-(૧) નૈરયિકસંસારવ્યુત્સર્ગ (૨) તિર્યકસંસારવ્યુત્સર્ગ (૩) મનુષ્યસંસારવ્યુત્સર્ગ (૪) દેવસંસારવ્યુત્સર્ગ આમાંથી નૈરયિકગતિરૂપ સંસારનો પરિત્યાગ નૈરયિકસંસારવ્યુત્સર્ગ તપ કહેવાય છે તિર્યંચગતિરૂપ સંસારનો પરિત્યાગ તિર્યંચસંસારવ્યુત્સર્ગ તપ કહેવાય છે. મનુષ્યગતિરૂપ સંસારનો પરિત્યાગ મનુષ્યસંસારવ્યુત્સર્ગ તપ કહેવાય છે. દેવગતિરૂપ સંસારનો પરિત્યાગ દેવસંસારવ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે. ઔપપાતિક સૂત્રના ૩૦માં સૂત્રમાં કહ્યું છે—

संसारविउस्सग्गे-? संसारविउस्सग्गे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-णेरइयसंसारविउस्सग्गे-१ तिरियसंसारविउस्सग्गे-२ मणुयसंसारविउस्सग्गे-३ देवसंसारविउस्सग्गे-४ से तं संसारविउस्सग्गे' इति, अथ कोऽसौ संसारव्युत्सर्गः-? संसारव्युत्सर्गश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा -नैरयिकसंसारव्युत्सर्गः, तिर्यक्संसारव्युत्सर्गः, मनुष्यसंसारव्युत्सर्गः, देवसंसारव्युत्सर्गः, स एष संसारव्युत्सर्गः इति। ॥३४॥

मूलम्-कम्मविउस्सग्गतवे अट्ठविहे, णाणावरणिज्जाइ कम्मविउस्सग्गभेयओ ॥३५॥

छाया-कर्मव्युत्सर्गतपोऽष्टविधं, ज्ञानावरणीयादि कर्मव्युत्सर्गभेदतः ॥३५॥

तत्त्वार्थदीपिका-'पूर्वं खलु भावव्युत्सर्गतपो विशेषरूपं संसारव्युत्सर्गतपश्चतुर्विधं प्रतिपादितम्, सम्प्रति-भावव्युत्सर्गतपो विशेषरूपं कर्मव्युत्सर्ग तपोऽष्टविधं प्रतिपादयितुमाह-'कम्म विउस्सग्गतवे' इत्यादि। कर्मव्युत्सर्गतपः

प्रश्न-संसारव्युत्सर्ग के कितने भेद हैं?

उत्तर-संसारव्युत्सर्ग तप के चार भेद हैं, यथा-(१) नैरयिक संसार व्युत्सर्ग (२) तिर्यक्संसारव्युत्सर्ग (३) मनुष्य संसारव्युत्सर्ग और (४) देवसंसार व्युत्सर्ग। यह संसार व्युत्सर्ग तप का वर्णन हुआ ॥३४॥

'कम्मविउस्सग्गतवे' इत्यादि।

सूत्रार्थ—कर्म व्युत्सर्ग तप के आठ भेद हैं-ज्ञानावरण कर्मव्युत्सर्ग आदि ॥३५॥

तत्त्वार्थदीपिका—इससे पहले संसारव्युत्सर्ग नामक भावव्युत्सर्ग तप विशेष के चार प्रकार प्रदर्शित किये गये, अब उसी के अन्तिम भेद कर्म व्युत्सर्ग के भेदों का प्रतिपादन करते हैं-

---

પ્રશ્ન--સંસારવ્યુત્સર્ગના કેટલા ભેદ છે?

ઉત્તર--સંસારવ્યુત્સર્ગ તપના ચાર ભેદ, જેવાકે-(૧) નૈરયિકસંસારવ્યુત્સર્ગ (૨) તિર્યક્સંસારવ્યુત્સર્ગ (૩) મનુષ્યસંસારવ્યુત્સર્ગ અને (૪) દેવ સંસારવ્યુત્સર્ગ આ સંસારવ્યુત્સર્ગ તપનું વર્ણન થયું ॥૩૪॥

'कम्मविउस्सग्गतवे' ઈત્યાદિ।

સૂત્રાર્થ--કર્મવ્યુત્સર્ગ તપના આઠ ભેદ છે-જ્ઞાનાવરણ કર્મવ્યુત્સર્ગ ।૩૫।

તત્ત્વાર્થદીપિકા-આની પહેલા સંસારવ્યુત્સર્ગ નામક ભાવવ્યુત્સર્ગ તપ વિશેષના ચાર પ્રકાર પ્રદર્શિત કરવામાં આવ્યા છે, તેના જ અન્તિમ ભેદ કર્મવ્યુત્સર્ગના ભેદોનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ-

कर्मणां ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधानां व्युत्सर्गः विशेषेणोत्कृष्टतया परित्यागः कर्मव्युत्सर्ग स्तद्रूपं तपः खल्वष्टविधं भवति। तद्यथा-ज्ञानावरणीआदि कर्मव्युत्सर्गभेदतः तथा च-ज्ञानावरणीयकर्मव्युत्सर्गतपः १ आदिना-दर्शनावरणीयकर्मव्युत्सर्ग तपः २ वेदनीयकर्मव्युत्सर्गतपः ३ मोहनीयकर्मव्युत्सर्गतपः आयुष्यकर्मव्युत्सर्ग तपः ५ नामकर्मव्युत्सर्गतपः ६ गोत्रकर्मव्युत्सर्गतपः ७ अन्तरायकर्मव्युत्सर्ग तपश्च ८ इत्येवं तावदष्टविधं कर्मव्युत्सर्गतपो भवतीति भावः। तत्र=ज्ञानावरणीयस्य कर्मणः परित्यागरूपं ज्ञानावरणीय कर्मव्युत्सर्गतप उच्यते। दर्शनावरणीयस्य कर्मणः परित्यागरूपं दर्शनावरणीयकर्मव्युत्सर्ग तप उच्यते। एवं-वेदनीयस्य कर्मणः परित्यागरूपं वेदनीयकर्मव्युत्सर्गतप उच्यते। एवं मोहनीयस्य दर्शन चारित्रमोहनीयरूपस्य कर्मणः परित्यागरूपं मोहनीयकर्मव्युत्सर्ग तप

ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों का व्युत्सर्ग अर्थात् विशेष रूप से, उत्कृष्ट भावना से, परित्याग करना कर्म व्युत्सर्ग तप कहलाता है।

यह तप आठ प्रकार का है, यथा-(१) ज्ञानावरणीयकर्मव्युत्सर्गतप (२) दर्शनावरणीय कर्म व्युत्सर्ग तप (३) वेदनीय कर्म व्युत्सर्ग तप (४) मोहनीय कर्म व्युत्सर्ग तप (५) आयुष्य कर्म व्युत्सर्ग तप (६) नामकर्म व्युत्सर्ग तप (७) गोत्र कर्म व्युत्सर्ग तप और अन्तराय कर्म व्युत्सर्ग तप। इस तरह कर्म व्युत्सर्ग तप आठ प्रकार का है।

ज्ञानावरणीय कर्म का परित्याग करना ज्ञानावरणीय कर्म व्युत्सर्ग तप कहलाता है। इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म का परित्याग दर्शनावरणीय कर्म व्युत्सर्ग, वेदनीय कर्म का परित्याग वेदनीय कर्म व्युत्सर्ग, दर्शन-चारित्र मोहनीय रूप मोहनीय कर्म का परित्याग मोहनीय कर्म

જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોનો વ્યુત્સર્ગ અર્થાત્ વિશેષરૂપથી ઉત્કૃષ્ટ ભાવનાથી પરિત્યાગ કરવો કર્મવ્યુત્સર્ગ તપ કહેવાય છે આ તપ આઠ પ્રકારના છે, જેમ કે-(૧) જ્ઞાનાવરણીય કર્મવ્યુત્સર્ગ તપ (૨) દર્શનાવરણીય કર્મવ્યુત્સર્ગ તપ (૩) વેદનીયકર્મવ્યુત્સર્ગ તપ (૪) મોહનીયકર્મ વ્યુત્સર્ગ તપ (૫) આયુષ્યકર્મ વ્યુત્સર્ગ તપ (૬) નામકર્મવ્યુત્સર્ગ તપ (૭) ગોત્ર કર્મવ્યુત્સત્સર્ગ તપ અને (૮) અન્તરાયકર્મવ્યુત્સર્ગ તપ આ રીતે કર્મવ્યુત્સર્ગ તપ આઠ પ્રકારના છે.

જ્ઞાનવરણીયકર્મનો પરિત્યાગ કરવો જ્ઞાનાવરણીય કર્મવ્યુત્સર્ગ તપ કહેવાય છે, એવી જ રીતે દર્શનાવરણીય કર્મનો પરિત્યાગ દર્શનાવરણીય કર્મ વ્યુત્સર્ગ, વેદનીય કર્મનો પરિત્યાગ વેદનીયકર્મવ્યુત્સર્ગ, દર્શન-ચારિત્રમોહનીય રૂપ મોહનીયકર્મનો પરિત્યાગ મોહનીયકર્મવ્યુત્સર્ગ, આયુષ્યકર્મનો પરિત્યાગ

उच्यते। एवम्-आयुष्य रूपस्य कर्मणः परित्यागरूपम् आयुष्य कर्मव्युत्सर्ग तप उच्यते। एवं नामरूपस्य कर्मणः परित्यागरूपं नामकर्मव्युत्सर्गतप उच्यते। एवं गोत्ररूपस्य कर्मणः परित्यागरूपं गोत्रकर्म व्युत्सर्ग तप उच्यते एवम्-अन्तरायरूपस्य कर्मणः परित्यागरूपम् अन्तरायकर्मव्युत्सर्ग तप उच्यते ॥३५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः— पूर्वं तावत्-संसारव्युत्सर्ग तपोरूपं भावव्युत्सर्ग तप श्चतुर्विधत्वेन प्ररूपितम्, सम्प्रति-कर्मव्युत्सर्ग तपोरूपं भावव्युत्सर्ग तपोऽष्टविधत्वेन प्ररूपयितुमाह-'कम्म विउस्सग्गतवे अट्ठविहे णाणावरणिज्जाइ कम्म विउस्सग्गभेयओ' इति। कर्मव्युत्सर्गतपः-कर्मणां ज्ञानावरणीयादीनां व्युत्सर्गः परित्याग स्वरूपं तपः खल्वष्टविधं भवति, तद्यथा-ज्ञानावरणीयादि कर्मव्युत्सर्गभेदतः ज्ञानावरणीयकर्मव्युत्सर्गतपः १ आदिना-दर्शनावरणीयकर्मव्युत्सर्गतपः २ वेदनीयकर्मव्युत्सर्गतपः ३ मोहनीयकर्मव्युत्सर्गतपः-४

व्युत्सर्ग, आयुष्य कर्म का परित्याग आयुष्य कर्म व्युत्सर्ग, नामकर्म का परित्याग नामकर्म व्युत्सर्ग, गोत्र कर्म का परित्याग गोत्र कर्म व्युत्सर्ग और अन्तराय कर्म का परित्याग अन्तराय कर्म व्युत्सर्ग कहलाता है ॥३५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—इससे पूर्व संसार व्युत्सर्ग रूप भावव्युत्सर्ग तप के चार भेदों का निरूपण किया गया था, अब कर्म व्युत्सर्ग तप के आठ भेदों की प्ररूपणा की जाती है—

ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के परित्याग को कर्म व्युत्सर्ग तप कहते हैं। कर्म के भेद से इस तप के भी आठ भेद होते हैं, यथा-(१) ज्ञानावरणीय कर्मव्युत्सर्ग तप (२) दर्शनावरणीय कर्मव्युत्सर्ग तप (३) वेदनीय कर्मव्युत्सर्ग तप (४) मोहनीय कर्मव्युत्सर्ग तप (५) आयुष्य-

---

આયુષ્યકર્મવ્યુત્સર્ગ, નામકર્મનો પરિત્યાગ નામ કર્મવ્યુત્સર્ગ, ગોત્રકર્મનો પરિત્યાગ ગોત્રકર્મવ્યુત્સર્ગ અને અન્તરાયકર્મનો પરિત્યાગ અન્તરાયકર્મવ્યુત્સર્ગ તપ કહેવાય છે ॥૩૫॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—આની પહેલા સંસારવ્યુત્સર્ગ રૂપ ભાવવ્યુત્સર્ગ તપના ચાર ભેદોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે કર્મવ્યુત્સર્ગતપ રૂપ ભાવવ્યુત્સર્ગ તપના આઠ ભેદોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે—

જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મોના પરિત્યાગને કર્મવ્યુત્સર્ગ તપ કહે છે. કર્મભેદથી આ તપના પણ આઠ ભેદ હોય છે, જેમકે-(૧) જ્ઞાનાવરણીયકર્મવ્યુત્સર્ગતપ (૨) દર્શનાવરણીયકર્મવ્યુત્સર્ગતપ (૩) વેદનીયકર્મવ્યુત્સર્ગતપ (૪) મોહનીયકર્મવ્યુત્સર્ગતપ (૫) આયુષ્યકર્મવ્યુત્સર્ગતપ (૬) નામકર્મવ્યુત્સર્ગ

आयुष्यकर्मव्युत्सर्गतपः ५ नामकर्म व्युत्सर्ग तपः ६ गोत्रकर्म व्युत्सर्गतपः ७ अन्तरायकर्मव्युत्सर्गतपश्च-८ इत्येवं खल्वष्टविधं कर्मव्युत्सर्गतपो भवतीति भावः। तत्र ज्ञानावरणकर्मणः परित्यागो ज्ञानावरणीयकर्मव्युत्सर्गतपो व्यपदिश्यते। दर्शनावरणीयकर्मणः परित्यागो दर्शनावरणीयकर्मव्युत्सर्गतपो भवति। एवं वेदनीयकर्मणः परित्यागरूपं वेदनीयकर्मव्युत्सर्गतपो भवति। एवं चारित्रमोहनीयस्य दर्शनमोहनीयस्य च कर्मणः परित्यागरूपं मोहनीय कर्मव्युत्सर्गतपो भवति। एवं खलु-आयुष्यकर्मणः परित्यागरूपम् आयुष्यकर्मव्युत्सर्ग तपो भवति एवं-नामकर्मणः परित्यागरूपं नामकर्म व्युत्सर्ग तपो भवति। एवम्-गोत्रकर्मणः परित्यागरूपं गोत्रकर्मव्युत्सर्गतपो भवति, एवमेवाऽन्तरायकर्मणः परित्याग रूपम् अन्तरायकर्मव्युत्सर्ग तपो भवति। उक्तञ्च औपपातिके३० सूत्रे-'से किं तं कम्मविउस्सग्गे? कम्मविउस्सग्गे अट्ठविहे पन्नत्ते, तं जहा-णाणावरणिज्जकम्मविउस्सग्गे १ दरिसणावरणिज्ज कम्मविउस्सग्गे-२ वेयणिज्ज कम्म विउस्सग्गे३ मोहणिज्ज कम्म विउस्सग्गे ४ आउकम्म

कर्मव्युत्सर्ग तप (६) नामकर्म व्युत्सर्ग तप (७) गोत्रकर्मव्युत्सर्ग तप और (८) अन्तराय कर्म व्युत्सर्ग तप। -इ आठ प्रकार का कर्मव्युत्सर्ग तप है।

ज्ञानावरण कर्म का परित्याग ज्ञानावरणीय कर्म व्युत्सर्ग कहलाता है, दर्शनावरण कर्म का परित्याग दर्शनावरणीय कर्म व्युत्सर्ग कहलाता है, वेदनीय कर्म को परित्याग वेदनीय कर्म व्युत्सर्ग कहलाता है, दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय कर्म का परित्याग मोहनीय कर्म व्युत्सर्ग कहलाता है, आयुष्य कर्म का परित्याग आयुष्य कर्म व्युत्सर्ग कहलाता है, गोत्रकर्म का परित्याग गोत्र कर्म व्युत्सर्ग कहलाता है और अन्तराय कर्म का परित्याग अन्तराय कर्म व्युत्सर्ग कहलाता है। औपपातिक सूत्र के तीसवें सूत्र में कहा है-

---

તપ (૭) ગોત્રકર્મવ્યુત્સર્ગતપ અને (૮) અન્તરાયકર્મવ્યુત્સર્ગતપ આ આઠ પ્રકારના કર્મવ્યુત્સર્ગ તપ છે.

જ્ઞાનાવરણકર્મનો પરિત્યાગ જ્ઞાનાવરણીયકર્મવ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે, દર્શનાવરણ કર્મનો પરિત્યાગ દર્શનાવરણીયકર્મવ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે વેદનીયકર્મનો પરિત્યાગ વેદનીયકર્મવ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે દર્શનમોહનીય અને ચારિત્ર મોહનીય કર્મનો પરિત્યાગ મોહનીયકર્મવ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે. આયુષ્યકર્મનો પરિત્યાગ આયુષ્યકર્મવ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે, નામકર્મનો પરિત્યાગ નામકર્મવ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે, ગોત્રકર્મનો પરિત્યાગ ગોત્રકર્મવ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે અને અન્તરાયકર્મનો પરિત્યાગ અન્તરાયકર્મવ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે. ઔપપાતિ સૂત્રના ત્રીસમાં સૂત્રમાં કહ્યુ છે

विउस्सग्गे ५ णामकम्म विउस्सग्गे ६ गोयकम्म विउस्सग्गे ७ अंतराय कम्मविउस्सग्गे ८ से तं कम्मविउस्सग्गे, से तं भावविउस्सग्गे, इति, अथ कोऽसौ कर्मव्युत्सर्गः ? कर्मव्युत्सर्गोऽष्टविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-ज्ञानावरणीय कर्मव्युत्सर्गः-दर्शनावरणीयकर्मव्युत्सर्गः वेदनीयकर्मव्युत्सर्गः मोहनीयकर्मव्युत्सर्गः-आयुष्यकर्म व्युत्सर्गः-नामकर्मव्युत्सर्गः गोत्रकर्मव्युत्सर्गः अन्तरायकर्मव्युत्सर्गः इति। एवञ्चैतद् द्विविधमपि बाह्याऽभ्यन्तरञ्च प्रत्येकं षड्विधत्वेन द्वादश प्रकारकं तपो नूतनकर्मास्रवनिरोधहेतुत्वात् संवरकरणं भवति पूर्वोपार्जित कर्मपुञ्जरजोविधूनन निमित्तत्वाच्च निर्जराहेतुश्च भवतीति भावः,। एवञ्च-ज्ञानावरणदर्शनावरणोः क्षयाद् अनन्तज्ञान-दर्शने भवतः, वेदनीयकर्मक्षयाद् इन्द्रियजनित

प्रश्न-कर्मव्युत्सर्ग के कितने भेद हैं ?

उत्तर-कर्मव्युत्सर्ग के आठ भेद हैं, यथा-(१) ज्ञानावरणीय कर्म व्युत्सर्ग (२) दर्शनावरणीय कर्म व्युत्सर्ग (३) वेदनीय कर्म व्युत्सर्ग (४) मोहनीयकर्मव्युत्सर्ग (५) आयुकर्मव्युत्सर्ग (६) नामकर्मव्युत्सर्ग (७) गोत्रकर्म व्युत्सर्ग और (८) अन्तराय कर्म व्युत्सर्ग।

इस प्रकार छह बाह्य और छह आभ्यन्तर तप मिलकर बारह होते हैं। यह बारह कर्मों का तप नवीन कर्मों के आस्रव के निरोध का कारण होने से संवर का हेतु है और पूर्वसंचित कर्मों के क्षय का कारण होने से निर्जरा का भी हेतु होता है। जब पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षय और नूतन कर्मों के आस्रव का निरोध हो जाता है तो आत्मा की स्वभाविक शक्तियां अभिव्यक्त हो उठती है। ज्ञानावरण के क्षय से अनन्त ज्ञान और दर्शनावरण के क्षय से अनन्त दर्शन की प्राप्ती होती है।

પ્ર—કર્મવ્યુત્સર્ગના કેટલાં ભેદ છે ?

ઉત્તર—કર્મવ્યુત્સર્ગના આઠ ભેદ છે, જેમકે-(૧) જ્ઞાનાવરણીયકર્મ વ્યુત્સર્ગ (૨) દર્શનાવરણીયકર્મવ્યુત્સર્ગ (૩) વેદનીયકર્મવ્યુત્સર્ગ (૪) મોહનીય કર્મવ્યુત્સર્ગ (૫) આયુકર્મવ્યુત્સર્ગ (૬) નામકર્મવ્યુત્સર્ગ (૭) ગોત્રકર્મ વ્યુત્સર્ગ (૮) અન્તરાયકર્મવ્યુત્સર્ગ,

આ રીતે છ બાહ્ય અને છ આભ્યન્તર તપ મળીને બાર થાય છે આ બાર પ્રકારના તપ નવીન કર્મોના આસ્રવના નિરોધના કારણ હોવાથી સંવરના હેતુ છે અને પૂર્વસંચિત કર્મોના ક્ષયના કારણુ હોવાથી નિર્જરાના પણ હેતુ છે. જ્યારે પૂર્વોપાર્જિત કર્મોનો ક્ષય અને નૂતન કર્મોના આસ્રવનો નિરોધ થઈ જાય છે ત્યારે આત્માની સ્વાભાવિક શક્તિઓ અભિવ્યક્ત થઈ જાય છે. જ્ઞાનાવરણના ક્ષયથી અનન્તજ્ઞાન અને દર્શનાવરણના ક્ષયથી અનન્તદર્શનની

सुख-दुःखक्षयो भवति, मोहनीयकर्मक्षयात् अनन्तसुखं भवति, आयुष्यकर्मक्षयात् जन्म-मरणक्षयो भवति, नामगोत्रक्षयाद् अमूर्त्तत्वं भवति, गोत्रकर्मक्षयात् नीचोच्चगोत्रक्षयो भवति, अन्तरायकर्मक्षयादनन्तवीर्यं भवति इतिभावः ॥३५॥

मूलम्—मिच्छादिट्ठिआइ चउद्दसगुणट्ठाणट्ठियाणं जहक्कमं असंखेज्जगुणनिज्जरा ॥३६॥

छाया—मिथ्यादृष्ट्यादि चतुर्दशगुणस्थानस्थितानां यथाक्रमम् असंख्येयगुणनिर्जरा ॥३६॥

तत्त्वार्थदीपिका—एवं तावद् बाह्याभ्यन्तर द्वादश तपोभिर्देशतः कर्मक्षयलक्षणा निर्जरा भवतीत्युक्तम्, सम्प्रति सा सर्वेषां मिथ्यादृष्टिप्रभृतीनां किं समानैव भवति आहोस्विदस्ति कश्चित् प्रतिविशेषः? इति जिज्ञासायामाह-'मिच्छादिट्ठि'

वेदनीय कर्म के क्षय से इन्द्रियजनित सुख और दुःख का अन्त हो जाता है। मोहनीय कर्म के क्षय से अनन्त सुख की प्राप्ती होती है। आयु कर्म के क्षय से जन्म-मरण का अन्त आ जाता है। नामकर्म के क्षय से आत्मा का अमूर्त्तत्व गुण प्रकट हो जाता है। गोत्र कर्म का क्षय होने पर नीच और उच्च गोत्रों का क्षय हो जाता है। अन्तराय कर्म के क्षय से अनन्त वीर्य प्रकट होता है ॥३५॥

'मिच्छादिट्ठि आइ' इत्यादि।

सूत्रार्थ—मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थानों में स्थित जीवों को अनुक्रम से असंख्यात-असंख्यात गुणी निर्जरा होती है ॥३६॥

तत्त्वार्थदीपिका--पहले बतलाया गया है कि बाह्य और आभ्यन्तर तप से कर्म की निर्जरा होती है, अब इस जिज्ञासा का समाधान करते

પ્રાપ્તિ થાય છે. વેદનીયકર્મના ક્ષયથી ઇન્દ્રિયજનિત સુખ અને દુઃખનો અન્ત થઈ જાય છે મોહનીયકર્મના ક્ષયથી અનન્ત સુખની પ્રાપ્તિ થાય છે આયુષ્ય કર્મના ક્ષયથી જન્મ-મરણનો અન્ત આવી જાય છે. નામકર્મના ક્ષયથી આત્માનો અમૂર્ત્તત્વગુણ પ્રકટ થઈ જાય છે. ગોત્રકર્મનો ક્ષય થવાથી નીચ અને ઉચ્ચ ગોત્રોનો ક્ષય થઈ જાય છે. અન્તરાયકર્મના ક્ષયથી અનન્તવીર્ય પ્રકટ થાય છે. ।૩૫।

'मिच्छादिट्ठिआइ' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-મિથ્યાદૃષ્ટિ આદિ ચૌદ ગુણસ્થાનોમાં સ્થિત જીવોને અનુક્રમથી અસંખ્યાત-અસંખ્યાતગણી નિર્જરા થાય છે ॥ ૩૬ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા બતાવવામાં આવ્યું કે બાહ્ય અને અભ્યન્તર તપથી કર્મની નિર્જરા થાય છે, હવે એ જિજ્ઞાસાનું સમાધાન કરીએ છીએ

इत्यादि। मिथ्यादृष्टेः प्रथमगुणस्थानस्थितस्य, आदिना सास्वादन सम्यग्दृष्टेः२, सम्यग्मिथ्यादृष्टेः३, अविरतसम्यग्दृष्टेः४, विरताविरतस्य ५, प्रमत्तसंयतस्य ६, अप्रमत्तसंयतस्य७, निवृत्तिबादरस्य८, अनिवृत्तिबादरस्य ९, सूक्ष्मसंपरायस्य १०, उपशान्तमोहस्य ११, क्षीणमोहस्य१२, सयोगिकेवलिनः१३, अयोगिकेवलिनश्च, इत्येतेषां सर्वेषां यथाक्रमं क्रमशः पूर्वपूर्वस्मादुत्तरोत्तरेषामसंख्येयगुणा निर्जरा भवतीति सूत्रसंक्षेपार्थः।

अथैकैकश एते प्रदर्श्यन्ते—तत्र प्रथमं तावद् जीवः अनादिकालतो मिथ्यादृष्टिरेव, तत्र यः पञ्चेन्द्रियः संज्ञीपर्याप्तकः पूर्वकालिकलब्ध्यादि सहायः स

हैं कि वह निर्जरा मिथ्यादृष्टि आदि को समान होती है या कुछ अन्तर पडता है?—

(१) मिथ्यादृष्टि (२) सास्वादन सम्यग्दृष्टि (३) सम्यग् मिथ्यादृष्टि (४) अविरत सम्यग्दृष्टि (५) विरताविरत (६) प्रमत्तसंयत (७) अप्रमत्तसंयत (८) निवृत्तिबादर (९) अनिवृत्तिबादर (१०) सूक्ष्मसाम्पराय (११) उपशान्त मोह (१२) क्षीणमोह (१३) सयोगि केवली और (१४) अयोगि केवली, इनमें से पहले-पहले वाले की अपेक्षा आगे-आगे वाले को असंख्यात-असंख्यात गुणी निर्जरा होती है। तात्पर्य यह है कि मिथ्या दृष्टि की अपेक्षा सास्वादन सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणी अधिक निर्जरा करता है, सास्वादन सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा मिश्रदृष्टि असंख्यात गुणी निर्जरा करता है और मिश्रदृष्टि की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणी निर्जरा करता है, इसी प्रकार अयोगि केवली तक समझना चाहिए।

કે તે નિર્જરા મિથ્યાદૃષ્ટિ વગેરેની માફક હોય છે કે તેમાં કોઈ ફેર પડે છે?

(૧) મિથ્યાદષ્ટિ (૨) સાસ્વાદન સમ્યગ્દષ્ટિ (૩) સમ્યગ્મિથ્યાદષ્ટિ (૪) અવિરતસમ્યક્દષ્ટિ (૫ વિરતાવિરત (૬) પ્રમત્તસંયત (૭) અપ્રમત્તસંયત (૮) નિવૃત્તિબાદર (૯) અનિવૃત્તિબાદર (૧૦) સૂક્ષ્મસામ્પરાય (૧૧) ઉપશાન્તમોહ (૧૨) ક્ષીણમોહ (૧૩) સયોગિકેવળી અને (૧૪) અયોગિકેવળી, એમાંથી પહેલા-પહેલાવાળાની અપેક્ષા પછી-પછીવાળાને અસંખ્યાત અસંખ્યાત ગુણી વધારે નિર્જરા થાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે મિથ્યાદૃષ્ટિની અપેક્ષા સાસ્વાદન સમ્યક્દૃષ્ટિ અસંખ્યાતગણિ નિર્જરા કરે છે. સાસ્વાદન સમ્યક્દૃષ્ટિની અપેક્ષા મિશ્રદૃષ્ટિ અસંખ્યાતગણી નિર્જરા કરે છે અને મિશ્રદૃષ્ટિની અપેક્ષા સમ્યક્દૃષ્ટિ અસંખ્યાતગણી નિર્જરા કરે છે. એવી જ રીતે અયોગિ કેવળી પર્યન્ત સમજવું જોઈએ.

क्रमशः परिणामविशुद्धया वर्द्धमानपरिणामः सन् अपूर्वकरणादि सोपानपङ्क्त्या समुत्प्लवमानः कर्मनिर्जरां कर्तुं यतते ?, स एव पुनः प्रथमं शुभकर्मवशात् सम्यक्त्वप्राप्ति हेतुसान्निध्ये सति सम्यक्त्वमासादितुमिच्छुः सास्वादनसम्यग्दृष्टि-र्भवति, सास्वादनसम्यग्दृष्टिरिति कोऽर्थः ? सह आस्वादनेन तत्त्वश्रद्धानरूपेषद्-रसास्वादरूपेण वर्त्तते यत्तत् सास्वादनम्, तादृशसम्यक्त्ववान् सास्वादनसम्यग्दृष्टिरुच्यते। अयं हि शुक्लक्षीरान्नविषयव्यलीकचित्तः पुरुषोऽरुचिवशात्तद्वमन-काले: यादृशं क्षीरान्नरसस्यास्वादमनुभवति तथैव सम्यक्त्वस्य तथाविधमास्वाद-मात्रमनुभवति, अस्य काल एकसमया दारभ्योत्कृष्टतः षडावलिकापरिमितो

अब इन सब का स्वरूप प्रदर्शित करते हैं-(१) जो जीव दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से युक्त है और इस कारण तत्त्वश्रद्धा से रहित है, वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है।

(१) किसी मिथ्यादृष्टि जीव ने पंचेन्द्रिय, संज्ञी और पर्याप्त अवस्था प्राप्त करके तथा अपूर्व आदि परिणामों को प्राप्त करके एवं दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम करके सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, किन्तु अन्तर्मुहूर्त्त के पश्चात (क्योंकि औपशमिक सम्यक्त्व अन्तर्मुहूर्त्त तक ही रहता है) वह सम्यक्त्व से च्युत हो गया मगर मिथ्यात्व की स्थिति में नहीं पहुंचा उस समय की उसकी दशा सास्वादन सम्यग्दृष्टि अवस्था कहलाती है। जैसे कोई मनुष्य किसी प्रासाद की छत से नीचे गिरे और पृथ्वी पर न पहुंच पाए, वैसी ही दशा सास्वादन सम्यग्दृष्टि की होती है। जैसे किसी ने खीर का भोजन किया हो और वह उसका वमन करे

હવે આ બધાના સ્વરૂપ પ્રદર્શિત કરીએ છીએ-(૧) જે જીવ દર્શન મોહનીયકર્મના ઉદયથી યુક્ત છે અને આ કારણે તત્વશ્રદ્ધાથી રહિત છે તે મિથ્યાદષ્ટિ કહેવાય છે (૨) કોઈ મિથ્યાદષ્ટિ જીવે પંચેન્દ્રિય સંજ્ઞી અને પર્યાપ્ત અવસ્થા પ્રાપ્ત કરીને તથા અપૂર્વકરણ આદિ પરિણામોને પ્રાપ્ત કરીને અને દર્શનમોહનીય કર્મનો ઉપશમ કરીને સમ્યક્દર્શન પ્રાપ્ત કર્યું પરંતુ અન્તર્મુહૂર્ત બાદ (કારણ કે ઔપશમિક સમ્યકત્વ અન્તર્મુહૂર્ત સુધી જ રહે છે) તે સમ્યકત્વથી ભ્રષ્ટ થઈ ગયો પરંતુ મિથ્યાત્વની સ્થિતિમાં પહોંચ્યો નથી. તે સમયની તેની દશા સાસ્વાદન સમ્યક્દૃષ્ટિ અવસ્થા કહેવાય છે. જેમ કોઈ મનુષ્ય કોઈ મહેલની છત પરથી નીચે પડે અને પૃથ્વી પર ન પહોંચી શકે, એવી જ દશા સાસ્વાદન સમ્યગ્દષ્ટિની થાય છે. ધારો કે કોઈએ ખીરનું ભોજન કર્યું હોય અને તે તેનું વમન કરે ત્યારે ઉલટીના સમયે જેવો ખીર

भवति । ततो मिथ्यादृष्टेरपेक्षयाऽसंख्येयगुणनिर्जरावान् भवति २ । ततः परमसौ सम्यक्त्वास्वादप्रभावाद् वर्द्धमानपरिणामः सन् षडावलिकाकालानन्तरं मिथ्यात्वभावमल्पीकुर्वन् सम्यग्मिथ्यादृष्टिः (मिश्रदृष्टिः) भवति । सम्यक्-समीचीना च मिथ्या च दृष्टिर्यस्याऽसौ सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः, मिथ्यात्वपुद्गला एव ईषद् विशुद्धाः सम्यङ्मिथ्यात्वव्यपदेशभाजो भवन्ति । यदुदयवशात् जिनप्रणीतं

तो वमन के समय जैसे खीर का स्वाद आता है, उसी प्रकार सास्वदन सम्यक्त्व के समय सम्यग्दर्शन का कुछ-कुछ आस्वादन रहता है। जीव की यह दशा चौदह गुणस्थानों में से द्वितीय गुणस्थान कहलाती है। यह दशा सम्यक्त्व से गिरते समय ही होती है। इसका उत्कृष्ट काल छह आवलिका है। मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा सास्वादन सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणी अधिक निर्जरा करता है।

(३) मिश्रमोहनीय कर्म के उदय से जीव न तो पूरी तरह तत्त्व श्रद्धान करता है और न तत्त्वों के प्रति एकान्त अश्रद्धा ही करता है। उसके परिणाम उस समय मिले-जुले अर्थात् सम्यक्त्व-मिथ्यात्वमय होते हैं। इस मिली-जुली अवस्था को मिश्रदृष्टि कहते हैं। जिसकी दृष्टि अर्थात् श्रद्धा आंशिक रूप में समीचीन और आंशिक रूप में असमीचीन है वह मिश्रदृष्टि बन्ध के समय मिथ्यात्व के ही पुद्गलों का बन्ध होता है, किन्तु वे पुद्गल ही जब अर्धविशुद्ध अवस्था को प्राप्त होते हैं तब मिश्र कहलाते हैं। उन मिश्र पुद्गलों के उदय से जीव की

સ્વાદ આવે છે તેવીજ રીતે સાસ્વાદન સમ્યકત્વના સમયે સમ્યગ્ દર્શનનું કંઈ કંઈ આસ્વાદન રહે છે. જીવની આ દશા ચૌદ ગુણસ્થાનોમાંથી દ્વિતીય ગુણસ્થાન કહેવાય છે. આ દશા સમ્યકત્વથી પડતી વખતે જ થાય છે. આનો ઉત્કૃષ્ટ કાળ છ આવલિકા છે. મિથ્યાદષ્ટિની અપેક્ષા સાસ્વાદન સમ્યક્દષ્ટિ અસંખ્યાત ગુણી અધિક નિર્જરા કરે છે.

(૩) મિશ્રમોહનીયકર્મના ઉદયથી જીવ ન તો પૂરી રીતે તત્ત્વશ્રદ્ધાન કરે છે અને ન તત્ત્વોની પ્રતિ એકાન્ત અશ્રદ્ધા જ કરે છે તેના પરિણામે તે સમય સેળભેળ અર્થાત્ સમ્યકત્વ મિથ્યાત્વમય હોય છે. આ મિશ્ર અવસ્થાને મિશ્રદષ્ટિ કહે છે જેની દષ્ટિ અર્થાત્ શ્રદ્ધા આંશિક રૂપમાં સમીચીન અને આંશિક રૂપમાં અસમીચીન છે તે મિશ્રદષ્ટિ. બન્ધના સમયે મિથ્યાત્વના જ પુદ્ગલો બંધાય છે પરન્તુ તે પુદ્ગલ જ જ્યારે અર્ધવિશુદ્ધ અવસ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે ત્યારે 'મિશ્ર' કહેવાય છે. આ મિશ્ર પુદ્ગલોના ઉદયથી જીવની

तत्वं न सम्यक् श्रद्धत्ते, नापि निन्दति, मतिदौर्बल्यवशात्सम्यगसम्यगा' इत्येकान्ततो निश्चयं न करोति, तद्विशिष्टदृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः । अयौ सास्वादन सम्यग्दृष्टेरपेक्षया–ऽसंख्येयगुणनिर्जरावान्भवति ३ तथा पुनः स एव सम्यक्त्वांशसद्भावाद् वर्धमानपरिणामः सन् अविरतसम्यग्दृष्टि र्भवति न विरतः सावद्य व्यापारेभ्यो यः सोऽविरतः, स चाऽसौ सम्यग्दृष्टिः, यः परममुनिप्रणीतां सावद्य योगविरतिं सिद्धिप्रासादपर्यारोहणसोपानभूतां जानन्नपि अप्रत्याख्यानकषायोदयविघ्नवशात् तां नाधिगच्छति, नापि तत् पालनाय प्रयतते इत्यतावविरत-

बुद्धि में एक प्रकार की दुर्बलता पैदा हो जाती है जिसके कारण वह सम्यक् और असम्यक् का विवेक नहीं कर पाता। जैसे दही और शर्करा का मिश्रण करने पर न खट्टा रहता है, न मीठा ही, मिला-जुला स्वाद होता है, उसी प्रकार मिश्र मोहनीय कर्म के उदय से मिश्रित परिणाम होते हैं। सास्वादन सम्यक्त्व की स्थिति की अपेक्षा इस स्थिति में असंख्यात गुणी निर्जरा होती है।

जो जीव मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम से सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेता है, वह सम्यग्दृष्टि कहलाता है किन्तु अप्रत्याख्यान कषाय के उदय से एकदेश विरति को भी प्राप्त नहीं कर पाने से अविरत होता है। उसकी अवस्था अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान है। ऐसा जीव सर्वज्ञप्रणीत विरति को सिद्धि रूपी महल में प्रवेश करने के लिए सोपान के समान समझता है, मगर अप्रत्याख्यान कषाय के उदय रूप विघ्न के कारण उसे प्राप्त नहीं कर पाता। उसका

બુદ્ધિમા એક પ્રકારની દુર્બળતા ઉત્પન્ન થઈ જાય છે કે જેના કારણે તે સમ્યક્ તથા અસમ્યક્નો વિવેક કરી શકતો નથી. જેવી રીતે દહીં અને સાકરનું મિશ્રણ કરવાથી ન તો ખાટો સ્વાદ રહે છે, ન મીઠો, મિશ્ર સ્વાદ હોય છે. એવી જ રીતે મિશ્રમોહનીય કર્મના ઉદયથી મિશ્રિત પરિણામ થાય છે સાસ્વાદન સમ્યક્ત્વની સ્થિતિની અપેક્ષા આ સ્થિતિમાં અસંખ્યાતગણી નિર્જરા થાય છે

(૪) જે જીવ મિથ્યાત્વ મોહનીય કર્મના ઉપશમ ક્ષય અથવા ક્ષયોપશમથી સમ્યક્ત્વન પ્રાપ્ત કરી લે છે તે સમ્યક્દૃષ્ટિ કહેવાય છે. પરંતુ અપ્રત્યાખ્યાન કષાયના ઉદયથી એકદેશવિરતીને પણ પ્રાપ્ત નહીં થવાથી અવિરત હોય છે. તેની અવસ્થા અવિરત સમ્યક્દૃષ્ટિ ગુણસ્થાન છે. આવો જીવ સર્વજ્ઞપ્રણીત વિરતીને સિદ્ધિ રૂપી મહેલમાં પ્રવેશ કરવા માટેની સીડી સમાન સમજે છે. પરંતુ અપ્રત્યાખ્યાન કષાયના ઉદયરૂપ વિઘ્નના કારણે તેને પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી. તેનું પાલન કરવા માટે પ્રયત્ન પણ નથી કરતો. તે અવિરતસમ્યક્દૃષ્ટિ કહેવાય

सम्यग्दृष्टि रुच्यते। यथा कश्चित् पुरुषो न्यायोपार्जितधनधान्यः प्रचुरभोग-विलाससुखसौन्दर्यसमुत्पन्नः सुकुलसमुत्पन्नोऽपि दुरन्तद्यूतादि व्यसनजनिता-पराधलब्धराजदण्डः संखण्डिताभिमानश्चण्डदण्डपाशिकैः विडम्ब्यमानः स्वकं-कुत्सितं कर्मस्वप्रतिष्ठाप्रतिकूलं जानन् स्वकुलसौन्दर्यसम्पदमभिलषन्नपि दण्ड-पाशिकसमीपे किमपि वक्तुं न शक्नोति, तथैवाऽयं जीवोऽविरतिं कुत्सितकर्म कल्पां जानन् सुधोपमविरति सुखसौन्दर्यं समभिलषन्नपि दण्डपाशिककल्पा द्वितीया प्रत्याख्यानकषायाणां समीपे व्रतोत्साहमपि कर्तुं न शक्नोति इत्यविरत-सम्य ग्दृष्टित्व मनुभवति अयं सम्यग्मिथ्यादृष्टयपेक्षयाऽसंख्येयगुणनिर्जरावान्भ-

पालन करने के लिए प्रयत्न भी नहीं करता। वह अविरत सम्यग्दृष्टि कहलाता है। कोई पुरुष न्याय- नीति से धन उपार्जन करता था, प्रचुर भोग-विलास एवं सुख-सामग्री में उत्पन्न हुआ, सुकुल में जन्म पाया किन्तु जुआरियों की संगति में पड़कर जुआ खेलने लगा। फलस्वरूप उसे राजदण्ड की प्राप्ती हुई। उसका अभिमान खंडित हो गया। दण्डपा-शिक उसे सताते हैं। वह अपने कुकृत्य को अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझता है। अपने कुल की प्रतिष्ठा को कायम रखना चाहता है। मगर दण्डपाशिकों के सामने उसकी एक नहीं चलती। इसी प्रकार यह जीव अविरति को कुकृत्य के समान समझता है। वह अमृत के समान विरति-सुख की अभिलाषा भी करता है। मगर दण्डपाशिक के समान अप्रत्याख्यान कषाय के उदय के कारण विरति के लिए उत्साह भी प्रकट नहीं कर सकता। ऐसा अविरत सम्यग्दृष्टि पुरुष मिश्रदृष्टि की अपेक्षा असंख्यात गुणी कर्मनिर्जरा करता है।

છે. કોઈ પુરૂષ ન્યાયનીતિથી ધર્મોપાર્જન કરતો હતો, પ્રચુર ભોગવિલાસ અને સુખસામગ્રીમાં ઉત્પન્ન થયો. ઉત્તમ કુળોમાં જન્મ્યો પરંતુ જુગારીઓની સોબતમાં જ પડીને જુગાર રમવા લાગ્યો પરિણામે તેને રાજદંડની પ્રાપ્તિ થઈ તેનું અભિમાન ઓસરી ગયું. દંડપાશિક તેને સતાવે છે તે પોતાના કુકૃત્યને પોતાની પ્રતિષ્ઠાની પ્રતિકૂળ સમજે છે. પોતાના કુળની પ્રતિષ્ઠાને કાયમી રાખવા ઇચ્છે છે પરંતુ દંડપાશિકો આગળ તેની એક પણ યુક્તિ કારણગત નિવડતી નથી. તેવી જ રીતે આ જીવ અવિરતીને કુકૃત્યની બરાબર સમજે છે. તે અમૃત જેવા વિરતી સુખની ઝંખના પણ કરે છે પરંતુ દંડપાશિકની જેમ અપ્રત્યાખ્યાન કષાયના ઉદયને કારણે વિરતીને માટે ઉત્સાહ પણ પ્રગટ કરી શકતો નથી. આવો અવિરત સમ્યક્દૃષ્ટિ પુરૂષ મિશ્ર-દૃષ્ટિની અપેક્ષા અસંખ્યાતગણી કર્મનિર્જરા કરે છે.

वति ४। स एव पुनश्चारित्रमोहनीयकर्मविकल्पाऽप्रत्याख्यानावरणक्षयोपशमकारण-परिणामप्राप्तिकाले विशुद्धिप्रकर्षयोगाद् विरताविरतो देशविरतिश्रावको भवन् विरताऽविरत इति-स्थूलप्राणातिपातादि पापेभ्यो विरतः सूक्ष्मेभ्योऽविरत एतादृशः सन् पूर्वापेक्षयाऽसंख्येयगुणनिर्जरावान् भवति ५ एवमग्रेऽपि चतुर्दशगुण-स्थानपर्यन्तं स्वयमूहनीयम् ६ ॥३६॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं खलु अनशनादि षड्विधबाह्यतपोऽनुष्ठाना-त्प्रायश्चित्तादि षड्विधाऽभ्यन्तरतपोऽनुष्ठानाच्च कर्मणः फलभोगलक्षणविपाकाच्च देशतः कर्मक्षयलक्षणा निर्जरा भवतीति प्रतिपादितम्, सम्प्रति सा खलु निर्जरा किं सर्वेषां मिथ्यादृष्ट्यादीनां समानैव भवति ? आहोस्वित्-कश्चित्प्रतिविशेषो-

(५) अविरत सम्यग्दृष्टि जीव अप्रत्याख्यान कषाय के क्षय या उपशम से जब कुछ विशुद्धि प्राप्त करता है और देशविरति आंशिक चारित्र परिणाम को प्राप्त करता है तब विरताविरत कहलाता है। वह स्थूल प्राणातिपात से निवृत्त हो जाता है किन्तु सूक्ष्म प्राणातिपात से निवृत्त नहीं होता। ऐसा जीव श्रावक कहलाता है और वह अविरत सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा असंख्यात गुणी कर्मनिर्जरा का भागी होता है।

इसी प्रकार आगे भी चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त स्वयं ही समझ लेना चाहिए ॥३६॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पहले प्रतिपादन किया गया था कि अनशन आदि बाह्य तपों के अनुष्ठान से, प्रायश्चित्त आदि आभ्यन्तर तपों के अनुष्ठान से तथा कर्म के विपाक से निर्जरा होती है। किन्तु वह निर्जरा मिथ्यादृष्टि आदि सभी को समान ही होती है या इसमें कुछ विशेषता

(૫) અવિરતસમ્યક્દૃષ્ટિ જીવ અપ્રત્યાખ્યાન કષાયના ક્ષય અથવા ઉપશમથી જ્યારે થોડી વિશુદ્ધિ સંપાદન કરે છે અને દેશવિરતી—આંશિકચારિત્ર પરિણામને પ્રાપ્ત કરે છે ત્યારે વીરતાવિરત કહેવાય છે તે સ્થૂલ પ્રાણાતિપાત આદિથી નિવૃત્ત થઇ જાય છે. પરંતુ સૂક્ષ્મપ્રાણાતિપાત આદિથી નિવૃત્ત થતો નથી. આવો જીવ શ્રાવક કહેવાય છે અને તે અવિરત સમ્યક્દૃષ્ટિની અપેક્ષા અસંખ્યાતગણી કર્મનિર્જરાનો ભાગી થાય છે.

આજ રીતે પછી પણ ચૌદમા ગુણસ્થાન પર્યંત જાતે જ સમજી લેવુ ઘટે. ।૩૬।

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલાં પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું કે અનશન આદિ બાહ્ય તપશ્ચર્યાના અનુષ્ઠાનથી પ્રાયશ્ચિત આદિ આભ્યન્તર તપોના અનુષ્ઠાનથી તથા કર્મના વિપાકથી નિર્જરા થાય છે. પરંતુ તે નિર્જરા મિથ્યાદૃષ્ટિ આદિ બધાને સરખી જ થાય છે. કે એમાં કાંઇ વિશેષતા છે એ શંકાનું નિવારણ કરવા અર્થે કહીએ છીએ

ऽस्ति ? इति शङ्कानिवारणार्थमाह—'मिच्छादिट्ठि आइचउद्दसगुणट्ठाणट्ठियाणं जहक्कमं असंखेज्जगुणनिज्जरा' मिथ्यादृष्टेः१ आदिना—सास्वादन सम्यग्दृष्टेः२ सम्यग्दृष्टेः३ अविरतसम्यग्दृष्टेः४ विरताविरतस्य५ प्रमत्तसंयतस्य६ अप्रमत्तसंयतस्य ७ निवृत्तिबादरस्य ८ अनिवृत्तिबादरस्य ९ सूक्ष्मसम्परायस्य१० उपशान्तमोहस्य११ संयोगि केवलिन१४श्च यथाक्रमं- क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जरा भवति । एते चतुर्दश क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जरावन्तो भवन्तीतिभावः । अथैकैकश एते प्रदर्श्यन्ते—तत्र प्रथमं तावज्जीवोऽनादिकालतो मिथ्यादृष्टिरेव, तत्र—यः पञ्चेन्द्रियः संज्ञीपर्याप्तकः पूर्वकालिक लब्ध्यादि सहायः स क्रमशः परिणाम विशुद्धया वर्द्धमानपरिणामः सन् अपूर्वकरणादि सोपानपङ्क्त्या समुत्प्लवमानः कर्मनिर्जरां कर्तुं यतते १ स एव पुनः प्रथमं शुभकर्मवशात् सम्यक्त्वप्राप्तिहेतु-

है, इस शंका का निवारण करने के लिए कहते हैं—

(१) मिथ्यादृष्टि (२) सास्वादन सम्यग्दृष्टि (३) सम्यग्मिथ्यादृष्टि (४) अविरत सम्यग्दृष्टि (५) विरताविरत (६) प्रमत्तसंयत (७) अप्रमत्तसंयत (८) निवृत्ति बादर (९) अनिवृत्ति बादर (१०) सूक्ष्मसाम्पराय (११) उपशान्त मोह (१२) क्षीणमोह (१३) सयोगिकेवली और (१४) अयोगि केवली के अनुक्रम से असंख्यात-असंख्यातगुणी निर्जरा होती है। अब इनमें से एक एक का स्वरूप दिखलाते हैं—

(१) जिस जीव के दर्शन मोहनीय और अनन्तानुबंधी कषाय का उदय होता है और इसी कारण जिसमें तत्त्वश्रद्धान रूप परिणाम उत्पन्न नहीं होता, वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है। मिथ्यादृष्टि जीव दो प्रकार के होते हैं—अनादिमिथ्यादृष्टि और सादिमिथ्यादृष्टि। मिथ्यादृष्टि जीव सब से कम निर्जरा करता है।

(૧) મિથ્યાદૃષ્ટિ (૨) સાસ્વાદનસમ્યકૂદૃષ્ટિ (૩) સમ્યકૂમિથ્યાદૃષ્ટિ (૪) અવિરતસમ્યકૂદૃષ્ટિ (૫) વિરતાવિરત (૬) પ્રમત્તસંયત (૭) અપ્રમતસંયત (૮) નિવૃત્તિબાદર (૯) અનિવૃત્તિબાદર (૧૦) સૂક્ષ્મસંપરાય (૧૧) ઉપશાંતમોહ (૧૨) ક્ષીણમોહ (૧૩) સયોગીકેવળી અને (૧૪) અયોગીકેવળીને અનુક્રમથી અસંખ્યાત–અસંખ્યાતગણી નિર્જરા થાય છે. હવે એમાંથી એકએકનું સ્વરૂપ બતાવીએ છીએ

(૧) જે જીવને દર્શનમોહનીય અને અનંતાનુબંધિકષાયને ઉદય થાય છે અને એ કારણે જ જેનામાં તત્વશ્રદ્ધાન રૂપ પરિણામ ઉત્પન્ન થતું નથી તે મિથ્યાદૃષ્ટિ કહેવાય છે. મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ બે પ્રકારનાં હોય છે અનાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ અને સાદી મિથ્યાદૃષ્ટિ મિથ્યાદૃષ્ટિજીવ બધાંથી ઓછી કર્મનિર્જરા કરે છે

सान्निध्ये सति सम्यक्त्वमास्वादितुमिच्छुः सास्वादनसम्यग्दृष्टिर्भवति, सास्वादनसम्यग्दृष्टिरितिकोऽर्थः ? सह-आस्वादनेन तत्त्वश्रद्धानरूपेषद् रसास्वादरूपेण वर्तते यत्तत् सास्वादनम् तादृश सम्यक्त्ववान् सास्वादनसम्यग्दृष्टिरुच्यते । अयं हि-भुक्तक्षीरान्नविषयव्यलीकचित्तः पुरुषोऽरुचिवशाद्वमनकाले यादृशं क्षीरान्नरसस्याऽऽस्वादमनुभवति तथैव सम्यक्त्वस्य तथाविधमास्वादमात्रमनुभवति, अस्य कालः-एकसमयादारभ्योत्कृष्टतः षडावलिकापरिमितो भवति । ततो मिथ्यादृष्टेरपेक्षयाऽयमसंख्येयगुणनिर्जरावान् भवति २ ततः परमसौम्यक्त्वास्वादप्रभावाद् वर्द्धमानपरिणामः सन् षडावलिकाकालानन्तरं मिथ्यात्वभावमल्पीकुर्वन् सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः (मिश्रदृष्टिः) भवति । सम्यक् समीचीना च मिथ्या च

(२) दूसरा गुणस्थान सास्वादन सम्यग्दृष्टि है । यह गुणस्थान सम्यक्त्व से च्युत होते समय ही होता है । जीव जब सम्यक्त्व रूपी पर्वत से गिर जाता है किन्तु मिथ्यात्व रूपी धरातल पर नहीं पहुंचता-वमन किये हुए सम्यक्त्व का किंचित् आस्वादन होतारहता है, उस समय की स्थिति सास्वादन गुणस्थान कहलाती है । इस गुणस्थान का काल एक समय से लेकर अधिक से अधिक छह आवलिका है । सास्वादन सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा असंख्यात गुणी कर्मनिर्जरा करता है ।

(३) मिश्रमोहनीयकर्म के उदय से न एकान्तमिथ्यात्वरूप और न एकान्त सम्यक्त्वरूप परिणाम होता है किन्तु मिश्रितपरिणाम होता है । जीव की वह स्थिति मिश्रदृष्टिगुणस्थान कहलाती है । मिथ्यात्व के

(२) બીજું ગુણસ્થાન સાસ્વાદનસમ્યક્દૃષ્ટિ છે આ ગુણસ્થાન સમ્યક્ત્વથી ભ્રષ્ટ થતી વખતે થાય છે જીવ જ્યારે સમ્યકત્વરૂપી પર્વત ઉપરથી પડી જાય છે. પણ મિથ્યાત્વરૂપી ધરાતલ સુધી પહોંચતો નથી-વમન કરેલા સમ્યક્ત્વનું કિંચિંત આસ્વાદન થતું રહે છે તે સમયની સ્થિતિ સાસ્વાદન ગુણસ્થાન કહેવાય છે. આ ગુણસ્થાનનો કાળ એક સમયથી લઇને વધુમાં વધુ છ આવલિકાનો છે. સાસ્વાદન સમ્યક્દૃષ્ટિ જીવ, મિથ્યાદૃષ્ટિની અપેક્ષા અસંખ્યાત ગણી કર્મનિર્જરા કરે છે.

(૩) મિશ્ર મોહનીય કર્મના ઉદયથી ન તો એકાંત મિથ્યાત્વરૂપ કે ન એકાંત સમ્યકત્વરૂપ પરિણામ થાય છે. પરંતુ મિશ્રિત પરિણામ થાય છે. જીવની તે સ્થિતિ મિશ્રદૃષ્ટિ ગુણસ્થાન કહેવાય છે. મિથ્યાત્વના પુદ્ગલ જ

दृष्टिर्यस्याऽसौ सम्यग्मिथ्यादृष्टिः, मिथ्यात्वपुद्गला एव ईषद् विशुद्धाः सम्यङ्मिथ्यात्वव्यपदेशभाजो भवन्ति । यदुदयवशात्-जिनप्रणीतं तत्त्वं न सम्यक् श्रद्धत्ते नापि निन्दति मतिदौर्बल्यवशात्-'सम्यगसम्यग्वा' इत्येकान्ततो निश्चयं न करोति तद्विशिष्टादृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः । असौ सास्वादनसम्यग्दृष्टेरपेक्षय-ऽसंख्येयगुणनिर्जरावान् भवति ३ तथा पुनः स एव सम्यक्त्वांशसद्भावाद् वर्द्धमान परिणामः सन् सर्वथा मिथ्यात्व मपनीय अविरतसम्यग्दृष्टिर्भवति न विरतः सावद्य व्यापारेभ्यो यः सोऽविरतः स चासौ सम्यग्दृष्टिश्चा-ऽविरतसम्यग्दृष्टिः, यः परममुनिप्रणीतां सावद्य योगविरतिं सिद्धिप्रासादपर्यारोहणसोपानभूता जानन्नपि

पुद्गल ही किंचित् विशुद्ध होकर सम्यङ्मिथ्यात्व कहलाते हैं, जिनका उदय होने पर जीव न तो जिनप्रणीत तत्त्व पर श्रद्धा करता है और न उनकी निन्दा करता है । उसकी मति इतनी दुर्बल हो जाती है कि वह सम्यक्-असम्यक् का विवेक नहीं कर पाता । ऐसी दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहलाती है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सास्वादनसम्यग्दृष्टि की अपेक्षा असंख्यातगुणी कर्मनिर्जरा करता है ।

(४) जो जीव मिथ्यात्वमोहनीय और अनन्तानुबंधी कषाय के क्षय उपशम अथवा क्षयोपशम होने पर मिथ्यात्व को सर्वथा हटा हटा कर शुद्ध तत्त्वश्रद्धान प्राप्त कर लेता है किन्तु सावद्यव्यापारों से तनिक भी विरत नहीं होता अर्थात् स्थूल हिंसा आदि का भी त्याग नहीं कर सकता, अब अविरत सम्यग्दृष्टि कहलाता है । अविरतसम्यग्दृष्टि जीव सावद्ययोगविरति को मोक्ष-महल में प्रवेश करने के लिए सोपान के समान समझता हुआ भी अप्रत्याख्यान कषाय रूप

કિંચિત વિશુદ્ધ થઇને સમ્યક્ મિથ્યાત્વ કહેવાય છે. જેનો ઉદય થવાથી જીવ ન તો જીનપ્રણીત તત્વ પર શ્રદ્ધા કરે છે કે નથી તેની નિંદા કરતો. તેની બુદ્ધિ એટલી દુર્બળ થઈ જાય છે કે તે સમ્યક્-અસમ્યક્નો વિવેક પણ કરી શકતો નથી. આવી દષ્ટિ સમ્યક મિથ્યાદષ્ટિ કહેવાય છે. સમ્યક્ મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ સાસ્વાદન સમ્યક્દષ્ટિની અપેક્ષા અસંખ્યાત ગણી કર્મ નિર્જરા કરે છે.

(૪) જે જીવ મિથ્યાત્વ મોહનીય અને અનંતાનુબંધી કષાયનો ક્ષય ઉપશમ અથવા ક્ષયોપશમ થવાથી મિથ્યાત્વને સર્વથા દૂર કરીને શુદ્ધ તત્વશ્રદ્ધાન પ્રાપ્ત કરી લે છે. પરંતુ સાવદ્ય વ્યાપારોથી થોડો પણ વિરત થતો નથી અર્થાત્ સ્થૂલ હિંસા વગેરેનો પણ ત્યાગ કરી શકતો નથી. તે અવિરત સમ્યક્ દૃષ્ટિ કહેવાય છે. અવિરત સમ્યક્દષ્ટિ જીવ સાવદ્યયોગવિરતિને મોક્ષ મહેલ માં પ્રવેશ કરવા માટેની સીડી માફક સમજતો થકો પણ અપ્રત્યાખ્યાન કષાય

अप्रत्याख्यानकषायोदयविघ्नवशात् तां नाधिगच्छति-नाऽपि-तत् पालनाय प्रयतते इत्यसावविरतसम्यग्दृष्टिः रुच्यते। यथा कश्चित् पुरुषो न्यायोपार्जित-धनधान्यः प्रचुरभोगविलाससुखसौन्दर्यसमुत्पन्नः सुकुलमुत्पन्नोऽपि दुरन्तद्यूतादि व्यसनजनिताऽपराधकव्यराजदण्डः संखण्डिताऽभिमानश्च दण्डपाशिकै र्विडम्ब्य-मानः स्वकं कुत्सितं कर्म स्वप्रतिष्ठाप्रतिकूलं जानन् स्वकुलसौन्दर्यसम्पदमभि-लषन्नपि दण्डपाशिकसमीपे किमपि वक्तुं न शक्नोति, तथैवायं जीवोऽविरतिं कुत्सितकर्मकल्पां जानन् सुधोपमविरतिसुखसौन्दर्यमभिलषन्नपि दण्ड-पाशिककल्पद्वितीयकषायाणां सकाशे प्रतोत्साहमपि कर्तुं न शक्नोति इत्यविरत-सम्यग्दृष्टित्व मनुभवति अयं सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यपेक्षयाऽसंख्येयगुणनिर्जरावान्

विघ्न के सद्भाव से उसे प्राप्त नहीं कर सकता और न उसका पालन करने का प्रयत्न ही करता है। जैसे कोई पुरुष न्यायपूर्वक धनोपा-र्जन करता था, विपुल वैभव एवं सुखसामग्री वाले उच्च परिवार में उत्पन्न हुआ, किन्तु संसर्ग दोष से जुआरी हो गया॥ जुआ खेलने के अपराध में उसे राजदण्ड का भागी होना पडा। उसका अभिमान खंडित हो गया। दण्डपाशिक उसे सताते हैं। वह अपने कुकर्म को अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझता है और अपने कुल की प्रतिष्ठा को कायम रखने की अभिलाषा करता है, मगर दण्डपाशिकों के सामने कुछ कर नहीं सकता, उसी प्रकार यह जीव अविरति को कुकर्म के समान समझता है और सुधा के समान विरति के सुख-सौन्दर्य की अभिलाषा करता है, किन्तु दण्डपाशिक के समान द्वितीय कषाय अप्रत्याख्यानावरण के उदय के सामने उसकी कुछ भी नहीं

૩૫ વિઘ્નના સદ્ભાવથી તેને પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી. તેમજ તેનું પાલન કરવાનો પણ પ્રયત્ન કરતો નથી. જેમ કોઈ પુરૂષ ન્યાયપૂર્વક દ્રવ્યોપાર્જન કરતો હોય વિપુલ, વૈભવ તથા સુખસામગ્રી સંપન્ન ઉચ્ચ પરિવારમાં ઉત્પન્ન થયો હોય પરંતુ સંસર્ગ દોષથી જુગાર રમવાના અપરાધ બદલ તેને રાજદંડના ભાગી થવું પડયું હોય તેથી તેનું અભિમાન ખંડિત થઈ જાય છે. દંડ પાશ્વિંક તેને સતાવે છે તે પોતાના કુકર્મને પોતાની પ્રતિષ્ઠાથી પ્રતિકૂળ સમજે છે તેમજ પોતાના કુળની પ્રતિષ્ઠાને કાયમ રાખવાની અભિલાષા કરે છે. પરંતુ દંડપાશ્વિંકો આગળ તે કશું કરી શકતો નથી. બરાબર એવી જ રીતે આ જીવ અવિરતિને કુકર્મની બરાબર સમજે છે અને અમૃત જેવી વિરતિના સુખસૌંદર્યની આકાંક્ષા સેવે છે પરંતુ દંડપાશ્વિંકની માફક દ્વિતીય કષાય અપ્રત્યાખ્યાનના ઉદયની આગળ તેનું

भवति ४ स एव पुनश्चारित्रमोहनीयकर्मविरलवाऽप्रत्याख्यानाऽऽवरणक्षयोपशम कारणपरिणामप्राप्तिकाले विशुद्धिप्रकर्षयोगात्-विरताविरतो देशविरतिश्रावको भवन् विरताविरत इति स्थूल प्राणातिपातादि पापेभ्यो विरतः सूक्ष्मेभ्योऽविरतः एतादृशः सन् पूर्वाऽपेक्षयाऽसंख्येयगुणनिर्जरावान् भवति-५ ततश्च स एव परिणामविशुद्धया प्रवर्द्धमानः सर्वविरतित्वं स्वीकुर्वन् प्रथमं प्रमत्तसंयतः किञ्चित्प्रमादयुक्तः सर्वविरतो भवति। अयं विरताविरतापेक्षयाऽसंख्येयगुणनिर्जरावान् भवति ६ स एव पुनस्तत्रापि परिणामविशुद्धिवशात् प्रमादं परित्यजन् अप्रमत्त संयतः सर्वप्रमादरहितः सर्वसंयतो भवति पूर्वापेक्षयाऽसंख्येयगुणनिर्जरावान्

चलती-वह व्रत के प्रति उत्साह भी प्रदर्शित नहीं कर सकता। इस कारण अविरतसम्यग्दृष्टि कहलाता है। यह मिश्रदृष्टि की अपेक्षा असंख्यातगुणी निर्जरा करता है।

(५) अविरतसम्यग्दृष्टिजीव जब कुछ अधिक विशुद्धि प्राप्त करता है और प्रत्याख्यानावरण कषाय का उपशमादि करता है तब उसमें देशविरतिपरिणाम उत्पन्न होता है। वह स्थूल प्राणातिपात आदि पापों से निवृत्त हो जाता है तब विरताविरत या देशविरत कहलाता है। इस अवस्था में वह अविरत सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा असंख्यातगुणी कर्मनिर्जरा करता है।

(६) तत्पश्चात् जब प्रत्याख्यानावरण कषाय भी हट जाता है और परिणामों में विशेष शुद्धि उत्पन्न होती है तब वह सर्वविरति को अंगीकार करता है किन्तु बाह्य क्रियाओं में निरत होने से किंचित् प्रमादयुक्त होता है। यह विरताविरत की अपेक्षा असंख्यातगुणी निर्जरा करता है।

કંઈ નિવડતું નથી. તે વ્રત પ્રત્યે ઉત્સાહ પણ પ્રદર્શિત કરી શકતો નથી. આથી તે અવિરત સમ્યક્દૃષ્ટિ કહેવાય છે. આ મિશ્રદૃષ્ટિની અપેક્ષા અસંખ્યાત ગણી નિર્જરા કરે છે.

(૫) અવિરત સમ્યક્દૃષ્ટિ જીવ જ્યારે થોડી વધારે વિશુદ્ધિ પ્રાપ્ત કરે છે. અને પ્રત્યાખ્યાનાવરણ કષાયનો ઉપશમાદિ કરે છે ત્યારે તેનામાં દેશવિરતિ પરિણામ ઉત્પન્ન થાય છે. તે સ્થૂલ પ્રાણાતિપાત આદિ પાપોથી મુકત થઈ જાય છે. ત્યારે વિરતાવિરત અથવા દેશવિરત કહેવાય છે આ અવસ્થામાં તે અવિરત સમ્યક્દૃષ્ટિની અપેક્ષા અસંખ્યાતગણી કર્મનિર્જરા કરે છે.

(૬) ત્યારબાદ જ્યારે પ્રત્યાખ્યાનાવરણ કષાય પણ દૂર થાય છે. અને પરિણામોમાં વિશેષ શુદ્ધિ ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે તે સર્વવિરતિને અંગીકાર કરે છે. પરંતુ બાહ્ય ક્રિયાઓમાં નિરત હોવાથી થોડા પ્રમાદયુકત હોય છે. આ વિરતાવિરતની અપેક્ષા અસંખ્યાતગણી નિર્જરા કરે છે.

भवति ७ इत्थं परिणामविशुद्धया क्रमश उत्तरोत्तरं प्रवर्द्धमानो निवृत्तिबादरः, ८ अनिवृत्तिबादरः ९ सूक्ष्मसंपरायः १० उपशान्तमोहः ११ क्षीणमोहः१२ सयोगिकेवली-१३ भवति। एते पूर्व पूर्वस्मादुत्तरोत्तरमसंख्येयासंख्येय-गुणकर्मनिर्जरावन्तो भवन्ति १३ ततोऽसौ सयोगिकेवलि चतुर्दश गुणस्थानमारोहन् तत्र योगनिरोधं कृत्वा शैलेश्यवस्थां प्राप्तः सन् अयोगिकेवली भूत्वा सर्वकर्मक्षयरूपां निर्जरां करोतीति ॥१४॥ एतेषां विस्तरतो वर्णनं समवायाङ्गसूत्रस्य चतुर्दशसमवाये मत्कृतायां भावबोधिनीटीकाया मवलोकनीयम्। तथाचोक्तम्-'कम्मविसोहि

---

(७) प्रमत्तसंयत पुरुष जब परिणाम विशुद्धि के कारण प्रमाद का परित्याग कर देता है-आत्माभिमुख होकर बाह्यविकल्पों से शून्य होता है तब अप्रमत्तसंयत कहलाता है। यह प्रमत्तसंयत की अपेक्षा असंख्यातगुणी निर्जरा करता है।

इस प्रकार परिणामों की शुद्धि से क्रमशः उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होकर (८) निवृत्तिबादर (९) अनिवृत्तिबादर (१०) सूक्ष्मसम्पराय (११) उपशान्तमोह (१२) क्षीणमोह और (१३) सयोगि केवली भी असंख्यात-असंख्यातगुणी निर्जरा वाले होते हैं। सयोगि केवली जब योग का निरोध करके अयोगिकेवली अवस्था में पहुंचते हैं तो सर्व कर्मक्षय रूप निर्जरा करते हैं।

इन सब का विशद वर्णन समवायांगसूत्र की मेरे द्वारा रचित भावबोधिनी टीका के चौदहवें समवाय में देख लेना चाहिए। कहा भी है—

---

(૭) પ્રમત્તસંયત પુરૂષ જ્યારે પરિણામ વિશુદ્ધિને કારણે પ્રમાદનો પરિત્યાગ કરી દે છે આત્માભિમુખ થઈને બાહ્ય વિકલ્પોથી શૂન્ય થાય છે ત્યારે અપ્રમત સંયત કહેવાય છે. આ પ્રમતસયતની અપેક્ષા અસંખ્યાતગણી નિર્જરા કરે છે.

આ રીતે પરિણામોની શુદ્ધિથી ક્રમશ ઉત્તરોત્તર વૃદ્ધિને પ્રાપ્ત થઈને (૮) નિવૃત્તિ બાદર (૯) અનિવૃત્તિ બાદર (૧૦) સૂક્ષ્મસંપરાય (૧૧) ઉપશાન્ત મોહ (૧૨) ક્ષીણમોહ (૧૩) સયોગીકેવળી પણ અસંખ્યાતગણી નિર્જરાવાળા હોય છે સયોગીકેવળી જ્યારે યોગનો નિરોધ કરીને અયોગીકેવળી અવસ્થામાં પહોંચે છે. ત્યારે સર્વકર્મક્ષયરૂપ નિર્જરા કરે છે.

આ બધાનુ વિશદ વર્ણન સમવાયાંગ સૂત્રની મારી રચેલી ભાવબોધીની ટીકામાં, ચૌદમા સમવાયમાં જોવા ભલામણ છે. કહ્યું પણ છે-

मग्गणं पडुच्च चउदस जीवट्ठाणा पण्णत्ता तं जहा-मिच्छादिट्ठी १ सासायणसम्मदिट्ठी २ सम्मामिच्छादिट्ठी ३ अविरय सम्मदिट्ठी ४ विरयाविरए ५ पमत्तसंजए ६ अप्पमत्तसंजए ७ नियट्टीबायरे ८ अनियट्टीबायरे ९ सुहुमसंपराए १० उवसामएवा-खवएवा-उवसंतमोहे ११ खीणमोहे १२ सजोगीकेवली १३ अजोगीकेवली १४ इति' कर्मविशुद्धिमार्गणं प्रतीत्य चतुर्दशजीवस्थानानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा-मिथ्यादृष्टिः १ सास्वादन सम्यग्दृष्टिः २ सम्यग्मिथ्यादृष्टिः ३ अविरतसम्यग्दृष्टिः ४ विरताविरतः ५ प्रमत्त संयतः ६ अप्रमत्तसंयत ७ नियन्त्रितबादरः ८ अनियन्त्रितबादरः ९ सूक्ष्मसंपरायः १० उपशमको वा-क्षपको वा, उपशान्तमोहः ११ क्षीणमोहः १२ सयोगिकेवली १३ अयोगिकेवली १४ इति ॥३६॥

मूलम्-सम्मदंसण नाणचरित्ताइ तवेय मोक्खमग्गो ॥३७॥

छाया-सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि तपश्च मोक्षमार्गः ॥३७॥

तत्त्वार्थदीपिका--'पूर्वं तावद्-चतुर्दश जीवस्थानान्याश्रित्योत्तरमसंख्येय-

---

'कर्म विशुद्धिमार्गणा की अपेक्षा चौदह जीवस्थान कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं—(१) मिथ्यादृष्टि (२) सास्वादनसम्यग्दृष्टि (३) सम्यङ्मिथ्यादृष्टि (४) अविरतसम्यग्दृष्टि (५) विरताविरत (६) प्रमत्तसंयत (७) अप्रमत्तसंयत (८) निवृत्तिबादर (९) अनिवृत्तिबादर (१०) सूक्ष्मसाम्पराय (११-१२) उपशमक, क्षपक, उपशान्तमोह, क्षीणमोह (१३) सयोगि केवली (१४) अयोगि केवली ॥३६॥

'सम्मदंसणनाणचरित्ताइ' इत्यादि

सूत्रार्थ-सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र और तप मोक्ष का मार्ग है ॥३७।

तत्त्वार्थदीपिका--इससे पहले बतलाया गया है कि चौदह जीव-

કર્મવિશુદ્ધિમાર્ગણાની અપેક્ષા ચૌદ જીવસ્થાન કહેવામાં આવ્યા છે તે આ પ્રમાણે છે—(૧) મિથ્યાદષ્ટિ (૨) સાસ્વાદન સમ્યફ્દષ્ટિ (૩) સમ્યગ્ મિથ્યાદષ્ટિ (૪) અવિરતસમ્યગ્દષ્ટિ (૫) વિરતાવિરત (૬) પ્રમતસંયત્ત (૭) અપ્રમતસંયત (૮) નિવૃત્તિબાદર (૯) અનિવૃત્તિબાદર (૧૦) સૂક્ષ્મસામ્પરાય (૧૧-૧૨) ઉપશમકક્ષપક ઉપશાન્તમોહ, ક્ષીણમોહ (૧૩) સયોગિકેવળી (૧૪) અયોગિકેવળી ॥ ૩૬ ॥

'सम्मदंसणणाणचरित्ताइ' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર અને તપ મોક્ષના માર્ગ છે ।૩૭।

તત્ત્વાર્થદીપિકા—આની પહેલા બતાવવામાં આવ્યું કે ચૌદ જીવસ્થાનોમાં

गुणनिर्जरा भवतीति प्रोक्तम्, सा च-सम्यग्दर्शनादिरूपमोक्षमार्गाश्रयणेनैव भवतीति मोक्षमार्गस्वरूपं निरूपयितुमाह-'सम्मदंसण' इत्यादि। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि तपश्च, सम्यग्दर्शनं-सम्यग्ज्ञानं-सम्यक् चारित्रं-तपश्चेत्येतच्चतुष्टयं समुदितं मोक्षमार्गः मुक्तिसाधनं वर्तते, तत्रापि-सम्यग्दर्शनं मोक्षसाधनेषु प्रधानं साधन मस्तीति सूचयितुं सर्वप्रथमं सम्यग्दर्शनपदोपादनं कृतम्। एवञ्च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रवत् तपोऽपि मोक्षसाधनं बोध्यम्, अतएव-तपोऽपि मोक्षमार्गतयोपात्तं तच्च-तपो द्वादशविधम् बाह्याभ्यन्तरभेदभिन्नं बोध्यम्। सम्यग्दर्शं तावत्-येन रूपेणाऽनादि सिद्धाः जीवादिपदार्थाः सन्ति तेन रूपेण तीर्थकृद्भिः प्रतिपादिते तत्त्वार्थे-तदविपरीताभिनिवेशराहित्येन श्रद्धानं सम्यग्-

---

स्थानों में उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी निर्जरा होती है वह निर्जरा सम्यग्दर्शन आदि मोक्ष मार्ग का अवलम्बन लेने से ही होती है, अत एव मोक्षमार्ग का निरूपण करने के लिए कहते हैं-

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और (सम्यक्) तप, यह चारों मिलकर मोक्ष का मार्ग हैं। इन चारों में सम्यग्दर्शन प्रधान मोक्ष-साधन है, यह सूचित करने के लिए सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन, पद का प्रयोग किया है। सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र के समान तप भी मोक्ष का मार्ग है अतएव उसका भी यहां ग्रहण किया गया है। तप के बारह भेद हैं-छह बाह्य तप और छह आभ्यन्तर तप।

जिस रूप में अनादि सिद्ध जीवादि पदार्थ हैं, उसी रूप में तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित तत्त्वार्थ पर श्रद्धा रखना, उनके विषयमें

ઉત્તરોત્તર અસંખ્યાત-અસંખ્યાતગણી નિર્જરા થાય છે. તે નિર્જરા સમ્યગ્દર્શન આદિ મોક્ષમાર્ગનો આધાર હોવાથી જ થાય છે, આથી મોક્ષમાર્ગનું નિરૂપણ કરવા માટે કહીએ છીએ

સમ્યગ્દર્શન સમ્યગ્જ્ઞાન સમ્યગ્ચારિત્ર અને (સમ્યક્) તપ આ ચારે મળીને મોક્ષનો માર્ગ બને છે. આ ચારેયમાં સમ્યક્દર્શન પ્રધાન મોક્ષ સાધન છે, એ સૂચિત કરવા માટે સર્વ પ્રથમ સમ્યક્દર્શન પદનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે સમ્યક્દર્શન જ્ઞાન અને ચારિત્રની માફક તપ પણ મોક્ષનો માર્ગ છે આથી તેનું પણ અહીં ગ્રહણ કરવામા આવ્યું છે તપના બાર ભેદ છે છ બાહ્યતપ અને છ આભ્યન્તર તપ.

જે સ્વરૂપે અનાદિસિદ્ધ જીવાદિ પદાર્થ છે તે જ સ્વરૂપે તીર્થંકરો દ્વારા પ્રતિપાદિત તત્વાર્થ પર શ્રદ્ધા રાખવી તેમના વિષયમાં કોઇ પ્રકારનો વિપરીત

विश्वासरूपं बोध्यम्, तच्च निसर्गेण-गुरोरभिगमेन वा भवति। एवं येन येन प्रकारेण स्वभावेन जीवादि वस्तूनि सन्ति तेन तेन प्रकारेण स्वभावेन संशयविपरीताऽनध्यवसायरूप दोषत्रयरहितत्वेनाऽवगमः सम्यग्बोधः सम्यग्ज्ञान मुच्यते। एवं भ्रमणकारणभूतकर्मणः समूल मुन्मूलयितुं समुद्यतस्य श्रद्धानस्य संसार-कान्तारभीरो र्भव्यस्य प्राणातिपातादि पञ्चाश्रवनिवारणकारणीभूत पञ्चसंवर सम्यगाचरणं सम्यक् चारित्र मुच्यते। तथाचैतानि—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र-तपांसि कुलालदण्डचक्रचीवरादि न्यायेन सङ्गीभूय मोक्षरूपं फलं साधयन्ति। न तु—तृणारणिमणिन्यायेन प्रत्येकं पृथग्भूयेति भावः ॥३७॥

किसी प्रकार का विपरीत अभिनिवेश धारण न करना सम्यग्दर्शन समझना चाहिए। सम्यग्दर्शन निसर्ग से या गुरु के अभिगम से उत्पन्न होता है।

इसी प्रकार जीवादि पदार्थ जिस—जिस रूप में रहे हुए हैं, उसी रूप में, संशय विपर्यय और अनध्यवसाय—इन तीन दोषों से रहित उन्हें सम्यक् प्रकार से समझना—जानना सम्यग्ज्ञान है।

भवभ्रमण के कारणभूत कर्मों का उन्मूलन करने के लिए उद्यत श्रद्धावान् संसार—कान्तार से भयभीत भव्यजीव प्राणातिपात आदि पांच आस्रवों का निवारण करने के कारणभूत पांच संवरों का आचरण करता हैं वह सम्यक् चारित्र है।

यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप कुंभार के दंड चक्र और चीवर आदि के न्याय से मिलकर मोक्षरूपी फल को सिद्ध करते है, पृथक्-पृथक् मोक्ष के साधन नहीं होते ॥३७॥

અભિનિવેશ ધારણ ન કરવો। સમ્યગ્દર્શન સમજવું જોઈએ સમ્યગ્દર્શન નિસર્ગથી અથવા ગુરૂના અભિગમથી ઉદ્ભવે છે.

એવી જ રીતે જીવાદિ પદાર્થ જે-જે સ્વરૂપમાં રહેલા છે તે જ રૂપે, સંશય વિપર્યય અને અનધ્યવસાય. આ ત્રણ દોષોથી રહિત તેમને સમ્યક્ પ્રકારથી સમજવા જાણવા એ સમ્યક્જ્ઞાન છે.

ભવભ્રમણના કારણભૂત કર્મોનો નાશ કરવા માટે ઉદ્યત શ્રદ્ધાવાન્ સંસાર કાન્તારથી ભયભીત ભવ્યજીવ પ્રાણાતિપાત આદિ પાંચ આસ્રવોનું નિવારણ કરવાના કારણભૂત પાંચ સંવરોનું આચરણ કરે છે તે સમ્યક્ચારિત્ર છે.

આ સમ્યક્દર્શન જ્ઞાન ચારિત્ર અને તપ, કુંભારના દંડચક્ર અને ચીવર વગેરેના ન્યાયથી મળીને મોક્ષરૂપી ફળને પ્રાપ્ત કરે છે, પૃથક્ પૃથક્ મોક્ષના સાધન હોતા નથી ॥ ૩૭ ॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावत्-तपो विशेषानुष्ठानादिना सकलकर्मक्षय-लक्षणमोक्षस्य प्रतिपादितत्वात्, सम्प्रति-तस्य मोक्षस्य हेतुत्वेन सम्यग्दर्शन-ज्ञानचरित्रतपोरूपरत्नचतुष्टयं प्ररूपयितुमाह—'सम्मदंसणनाणचरित्ताइं तवे य मोक्खमग्गो' इति। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि तपश्च मोक्षमार्गो वर्तते, तत्र-सम्यक् पदस्य द्वन्द्वादौ श्रूयमाणतया प्रत्येकमभिसम्बन्धात् सम्यग्दर्शनं-सम्यग्ज्ञानं-सम्यक् चारित्रं-तपश्चेत्येतच्चतुष्टयं तावत्-मोक्षसाधनं वर्तते। तत्र-सम्यग्दर्शनं तावत्-येन रूपेणाऽनादिसिद्धं जीवादितत्त्व मस्ति तेन रूपेण भगवद्भिस्तीर्थङ्करैः प्रज्ञप्ते जीवादि तत्त्वार्थे विपरीताभिनिवेशराहित्येन सम्यक्

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-तपोविशेष के अनुष्ठान आदि से सकल कर्म क्षय रूप मोक्ष का पहले प्रतिपादन किया गया है, अब यह प्रतिपादन करते हैं कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप, यह रत्न चतुष्टय मोक्ष का कारण है-

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र तथा सम्यक् तप मोक्ष का मार्ग हैं। 'सम्यक्' पद द्वन्द्व समास की आदि में प्रयुक्त होने से प्रत्येक पद के साथ जुडता है, इस कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप, यह चारों मोक्ष के साधन हैं। अनादि सिद्ध जीवादि तत्त्व जिस रूप में हैं, उसी रूप में तीर्थंकरों द्वारा कथित उन जीवादि तत्त्वों पर विपरीताभिनिवेश से रहित सम्यक् श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है। इसी प्रकार जीवादि पदार्थ जिस रूप में हैं, उसी रूप में, संशय विपर्यय और अनध्यवसाय से रहित उन्हें जानना सम्यग्ज्ञान है। कहा भी है-

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—તપોવિશેષના અનુષ્ઠાન આદિથી સકળ કર્મક્ષય રૂપ મોક્ષનું પહેલા પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું હવે એ પ્રતિપાદન કરીએ છીએ કે સમ્યક્દર્શન, જ્ઞાન, ચારિત્ર અને તપ આ રત્ન ચતુષ્ટય મોક્ષના કારણ છે

સમ્યક્દર્શન સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક્ચારિત્ર (સમ્યક્) તપ મોક્ષના માર્ગ છે. 'સમ્યક્' પદ દ્વન્દ્વ સમાસની આદિમાં વપરાયેલો હોવાથી પ્રત્યેક પદની સાથે જોડાય છે આથી સમ્યક્દર્શન સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક ચારિત્ર અને સમ્યક્તપ એ ચારેય મોક્ષના સાધન છે અનાદિ સિદ્ધ જીવાદિ તત્વ જે રૂપે છે, તેજ રૂપમાં તીર્થંકરો દ્વારા કથિત તે જીવાદિ તત્વો પર વિપરીતાભિનિવેશથી રહિત સમ્યક્ શ્રદ્ધાન કરવી સમ્યગ્દર્શન કહેવાય છે. એવી જ રીતે જીવાદિ પદાર્થ જે રૂપમા છે તેજ રૂપમાં સંશય વિપર્યય અને અનધ્યવસાયથી રહિત તેમને જાણવા સમ્યક્જ્ઞાન છે કહ્યું પણ છે.

श्रद्धानरूपमवगन्तव्यम् । एवं सम्यग् ज्ञानं खलु येन येन प्रकारेण स्वभावेन जीवादयः पदार्थाः सन्ति तेन तेन प्रकारेण स्वभावेन संशयविपर्ययानध्यवसायदोषत्रय रहितत्वेनाऽवभासात्मकं सम्यग्बोधमवसेयम् । तथाचोक्तम्

रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु सम्यक् श्रद्धान मुच्यते ।
जायतेतन्निसर्गेण गुरोरधिगमेन च ॥१॥
यथाऽवस्थिततत्त्वानां संक्षेपाद् विस्तरेण वा ।
योऽवबोध स्तमत्राहुः सम्यग्ज्ञानं मनीषिणः ॥२॥ इति

एवं सम्यक् चारित्रं तावद् संसारचक्रभ्रमिहेतु ज्ञानावरणादि कर्मणां समूलोन्मूलनार्थमुद्यतस्य श्रद्धानशीलस्य भवाटवी भयभीतस्य भव्यस्य प्राणिप्राणव्यपरोपण मृषावाद स्तेयमैथुनपरिग्रहरूप पञ्चास्रवनिवारणकारणीभूत पञ्च-

---

'जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कथित तत्वों पर रूची होना सम्यक् श्रद्धान कहलाता है । वह श्रद्धान या तो निसर्ग से होता है या गुरु के उपदेश से होता है ॥१॥

वास्तविक तत्वों का विस्तार से अथवा संक्षेप से जो ज्ञान होता है उसे मनिषी जन सम्यग्ज्ञान कहते हैं ॥२॥

भवभ्रमण के कारण ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का सूक्ष्म उन्मूलन करने के लिए उद्यत, श्रद्धान शील और भव-अटवी से भयभीत भव्य-प्राणी हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह रूप पांच आस्रवों का निवारण करने वाले पांच संवरों का जो समीचीन आचरण करता है, वह सम्यक् चारित्र कहलाता है । कहा भी है-

'सावद्ययोग का सर्वथा त्याग कर देना चारित्र कहलाता है । यह चारित्र अहिंसा आदि व्रतों के भेद से पांच प्रकार का कहा गया है । १।

જિનેન્દ્ર ભગવાન દ્વારા કથિત તત્વો પર રૂચિ હોવી સમ્યક્શ્રદ્ધા કહેવાય છે. આ શ્રદ્ધા ક્યાં તો નિસર્ગથી થાય છે અથવા ગુરૂના ઉપદેશથી થાય છે ।૧।

વાસ્તવિક તત્વોનું વિસ્તારથી અથવા સંક્ષેપથી જે જ્ઞાન થાય છે, તેને મનીષી જન સમ્યક્જ્ઞાન કહે છે ॥ ૨ ॥

ભવભ્રમણના કારણ જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોનો સમૂળગો ક્ષય કરવા માટે ઉદ્યત શ્રદ્ધાવાન્ અને ભવ અટવીથી ભયભીત ભવ્ય પ્રાણીહિંસા અસત્ય ચોરી મૈથુન અને પરિગ્રહરૂપ પાંચ આસ્રવોનું નિવારણ કરનાર પાંચ સંવરોનું જે સમીચીન આચરણ કરે છે તે સમ્યક્ચારિત્ર કહેવાય છે. કહ્યું પણ છે

સાવદ્યયોગનો સર્વથા ત્યાગ કરવો ચારિત્ર કહેવાય છે આ ચારિત્ર અહિંસા, આદિ વ્રતોના ભેદથી પાંચ પ્રકારના કહેવામાં આવ્યા છે ॥ ૧ ॥

संवर सम्यगाचरणरूपं बोध्यम् । तथाचोक्तम्-'सर्वसाऽवद्ययोगानां त्यागश्चारित्र मुच्यते । कीर्तितं तदहिंसादि भेदेन पञ्चधा ॥१॥ अहिंसा सूनृताऽस्तेय ब्रह्मचर्या-ऽपरिग्रहाः । न यत्प्रमादयोगेन जीवित व्यपरोपणम् ॥१॥ चराणां स्थावराणां च तदहिंसाव्रतं मतम् ॥२॥ प्रियं पथ्यं वचस्तथ्यं सूनृतं व्रत मुच्यते । तत्तथ्यमपि नो तथ्यम प्रियं चाऽहितं च यत् ॥३॥ अनादान मदत्तस्याऽस्तेय व्रत मुदीरितम् । बाह्याः प्राणाः नृणामर्थोहरता तं हताहिते ॥४॥ दिव्यौदारिककामानां कृतानुमतकारितैः । मनोवाक्कायत स्त्यागो ब्रह्मऽष्टादशधा मतम् ॥५। सर्वभावेषु मूर्च्छाया स्त्यागः स्यादपरिग्रहः । यदसत्स्वपि जायेत मूर्च्छया चित्तविप्लवः ॥६॥ भावनाभि र्भाविता

'चारित्र के पांच कारण ये हैं-(१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय (४) ब्रह्मचर्य और (५) अपरिग्रह। प्रमाद के योग से त्रस और स्थावर जीवों के प्राणों का व्यपरोपण न करना अहिंसा व्रत माना गया है। जो वचन प्रिय, पथ्य और तथ्य हो वह सत्य कहा गया है। जो वचन अप्रिय और अहितकर है, वह तथ्य होने पर भी सत्य नहीं है' ।३।

'अदत्त वस्तु को ग्रहण न करना अस्तेय व्रत कहा गया है। अर्थ अर्थात् धन मनुष्यों का बाह्य प्राण कहलाता है, जो उसे हरण करता है वह मानो प्राणहरण करता है ॥४॥'

'दिव्य और औदारिक शरीर संबंधी कायभोगों का कृत, कारित और अनुमोदना से तथा मन, वचन और काय से त्याग कर देना अठारह प्रकार का ब्रह्मचर्य व्रत कहलाता है ॥५॥

'समस्त पदार्थों में ममता का त्याग करना अपरिग्रह व्रत है। असत्

ચારિત્રના પાંચ કારણો આ છે-(૧) અહિંસા (૨) સત્ય (૩) અસ્તેય (૪) બ્રહ્મચર્ય અને (૫) અપરિગ્રહ. પ્રમાદના યોગથી ત્રસ અને સ્થાવર જીવોના પ્રાણોની હિંસા ન કરવી અહિંસાવ્રત માનવામાં આવ્યું છે ॥ ૨ ॥ જે વચન પ્રિય, પથ્ય અને તથ્ય હોય તેને સત્ય કહેવામાં આવ્યું છે. જે વચન અપ્રિય અને અહિતકર છે તે તથ્ય હોવા છતાંપણ સત્ય નથી ॥ ૩ ॥

'અદત્ત વસ્તુને ગ્રહણ ન કરવી અસ્તેયવ્રત કહેવામાં આવ્યું છે. અર્થ અર્થાત્ ધન મનુષ્યોનો બાહ્ય પ્રાણ કહેવાય છે. જે તેનું હરણ કરે છે તે જાણે કે પ્રાણહરણ કરે છે ' ॥ ૪ ॥

દિવ્ય અને ઔદારિક શરીર સંબંધી કામભોગોનો કૃત, કારિત અને અનુમોદનાથી તથા મન વચન અને કાયાથી ત્યાગ કરી દેવો અઢાર પ્રકારનું બ્રહ્મચર્યવ્રત કહેવાય છે. ॥ ૫ ॥

સમસ્ત પદાર્થોની મમતાનો ત્યાગ કરવા અપરિગ્રહવ્રત છે, અસત્ પદાર્થોમાં

नि पञ्चभिः पञ्चधा क्रमात्। महाव्रतानि लोकस्य साधयन्त्यव्ययं पदम् ॥७॥ इति, तपस्तावद्-बाह्याभ्यन्तरभेदेन द्वादशविधम्, तथा च द्वादशविधं खलु तपो मोक्षसाधनं वर्तते, एवञ्च-सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्र तपांसि इत्येतच्चतुष्टयं खलु दण्डचक्रचीवरन्यायेन सम्मिलितमेव मोक्षसाधनं भवति नतु-तृणारणिमणिन्यायेनेति बोध्यम्। उक्तञ्चोत्तराध्ययने २८ अध्ययने १=३ गाथासु-'मोक्खमग्ग-

पदार्थों में भी मूर्छा होने से चित्त में विकलता उत्पन्न होती है ॥६॥

'प्रत्येक व्रत की पांच-पांच भावनाओं से भावित यह पांच महाव्रत साधकों को अव्यय पद (मोक्ष) प्रदान करते हैं ॥७॥

छह बाह्य और छह आभ्यन्तर तप मिलकर बारह होते हैं। ये बारह तप भी मोक्ष के साधन हैं। इस प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप, ये चारों दण्ड, चीवर के न्याय से सम्मिलित होकर मोक्ष के साधन हैं, अर्थात् जैसे कुमार का डंडा, चाक और चीवर मिलकर ही घट के कारण होते हैं, पृथक्-पृथक् नहीं, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन आदि मिलकर ही मोक्ष के साधन होते हैं, पृथक्-पृथक् नहीं तृण, अरणि और मणी की तरह ये कारण नहीं हैं अर्थात् जैसे अग्नि अकेले तीनके से, अकेले अरणि नामक काष्ठ से या अकेले मणी से उत्पन्न हो जाती है, वैसे अकेले सम्यग्दर्शन या ज्ञानादि से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

પણ મૂર્છા હોવાથી ચિત્તમાં વિકલતા ઉત્પન્ન થાય છે ॥ ૬ ॥

પ્રત્યેક વ્રતની પાંચ-પાંચ ભાવનાઓથી ભાવિત આ પાંચ મહાવ્રત સધકોને અવ્યય પદ (મોક્ષ) પ્રદાન કરે છે ॥ ૭ ॥

૭ બાહ્ય અને ૭ આભ્યન્તર તપ મળીને બાર થાય છે આ બાર તપ પણ મોક્ષના સાધન છે. આવી રીતે સમ્યંક્દર્શન સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક્ચારિત્ર અને સમ્યક્ તપ આ ચારેય દંડ, ચક્ર માટીના ન્યાયથી સમ્મિલિત થઇને મોક્ષના સાધન છે. અર્થાત્ જેવી રીતે કુંભારનો ડાંડો ચાક અને માટી એ ત્રણે મળીને જ ઘડાના કારણ બને છે જુદા જુદા નહીં એવી જ રીતે સમ્યક્દર્શન આદિ પણ મળીને મોક્ષના સાધન બને છે, સ્વતંત્ર સ્વતંત્ર નહીં તૃણ અગ્નિ અને મણિની માફક આ કારણ નથી અર્થાત્ જેમ અગ્નિ એકલા તણખલાથી એકલા અરણિ નામક કાષ્ઠથી અથવા એકલા મણિથી ઉત્પન્ન થઈ જાય છે એવી રીતે એકલા સમ્યક્ દર્શન અથવા જ્ઞાનાદિથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થઈ શકતી નથી

गइं तच्चं सुणेह जिणभासियं। चउकारणसंजुत्तं नाणदंसणलक्खणं ॥१॥ नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा। एस मग्गुत्ति पण्णत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं ॥२॥ नाणं च दंसणंचेव चरित्तं च तवो तहा एयं मग्ग मणुप्पत्ता जीवा गच्छंति सोग्गइं ३ इति॥ मोक्षमार्गगतिं तथ्यं शृणुत जिनभाषितम्। चतुष्कारणसंयुक्तां ज्ञानदर्शन लक्षणाम् ॥१॥ ज्ञानं च दर्शनं चैव चरित्रं च तपस्तथा। एष मार्ग इति प्रज्ञप्तो जिनैर्वरदर्शिभिः ॥२॥ ज्ञानं च दर्शनं चैव चरित्रं च तपस्तथा। एतं मार्ग मनुप्राप्ता जीवा गच्छन्ति स्वर्गतिम् ३ इति एवञ्च-सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रवत् तपोऽपि मोक्षसाधनं वर्तते। इति फलितम्। तत्र-तपसः सम्यग्ज्ञानादि त्रयेऽपि हेतुत्वेन प्रथमोपादानयोग्यत्वेऽपि सम्यग्दर्शनस्य मोक्षम्प्रति मुख्यकारणतया प्रथमं तदुपादानमेव कृतम्। तथाचोक्तम् 'नादंसणिस्स नाणं नाणेण विणा न होंति चरणगुणा। अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ॥१॥ इति, नादर्शनिनो ज्ञानं ज्ञानेन

उत्तराध्ययन सूत्र के २८वें अध्ययन की गाथा १-३ में कहाभी है- 'जिन भगवान् द्वारा भाषित, चार कारणों से युक्त, ज्ञान-दर्शन लक्षण वाली मोक्षमार्गगति को सुनो ॥१॥ ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप, इन चारों को सर्वज्ञ-सर्वदर्शी जिनेन्द्र ने मोक्षमार्ग कहा है ॥२॥ ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के मार्ग को प्राप्त जीव सुगति को प्राप्त करते हैं ॥३॥

इस प्रकार यह फलित हुआ की सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र की भांती तप भी मोक्ष का कारण है। यद्यपि सम्यग्ज्ञान आदि तीनों में कारण होने से सर्वप्रथम स्थान देने योग्य हैं, तथापि सम्यग्दर्शन मोक्ष का मुख्य कारण है, अतएव उसी को प्रथम स्थान दिया गया है। कहा भी है-

ઉત્તરાધ્યાયનસૂત્રના ૨૮માં અધ્યયનની ગાથા ૧-૩માં કહ્યું પણ છે- જિનેન્દ્ર ભગવન્તો દ્વારા ભાષિત, ચાર કારણોથી યુકત, જ્ઞાનદર્શન લક્ષણવાળી મોક્ષમાર્ગ ગતિને 'સાંભળો ॥૧॥ જ્ઞાન, દર્શન ચારિત્ર અને તપ આ ચારેયને સર્વજ્ઞ સર્વદર્શી જિનેન્દ્રોએ મોક્ષમાર્ગ કહેલ છે. ॥ ૨ ॥ જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર અને તપના માર્ગને પ્રાપ્ત જીવ સુગતિને પ્રાપ્ત કરે છે ' ॥ ૩ ॥

આ રીતે એ પ્રતિપાદિત થયું કે સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક્દર્શન અને સમ્યક્ ચારિત્રની જેમ તપ પણ મોક્ષના કારણભૂત છે. જો કે તપ સમ્યક્જ્ઞાન આદિ ત્રણેમાં કારણ હોવાથી સર્વપ્રથમ સ્થાન આપવા યોગ્ય છે તો પણ સમ્યક્દર્શન મોક્ષનું મુખ્ય કારણ છે આથી તેને જ પ્રથમ સ્થાન આપવામાં આવ્યું છે કહ્યું પણ છે

विना न भवन्ति चरणगुणाः। अगुणिनो नास्ति मोक्षो नास्त्यमोक्षस्य निर्वाणम् ॥१॥ इति, सम्यक्त्वं तावत्–त्रिविधं भवति, दर्शनसम्यक्त्वम्, ज्ञानसम्यक्त्वम्, चारित्रसम्यक्त्वञ्चेति ॥ उक्तञ्च–स्थानाङ्गे ३ स्थाने ४ उद्देशके–'तिविहे सम्मे पण्णत्ते, तं जहा–नाणसम्मे दंसणसम्मे चरित्तसम्मे' इति, त्रिविधं सम्यक्त्वम्–प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–ज्ञानसम्यक्त्वम्, दर्शनसम्यक्त्वम्, चारित्रसम्यक्त्वम्, इति। तत्रापि सम्यग्दर्शनं द्विविधम्भवति। निसर्गसम्यग्दर्शनम्–अभिगमसम्यग्दर्शनञ्चेति। तत्र–निसर्ग सम्यग्दर्शनमपि द्विविधम् प्रतिपाति च–अप्रतिपाति चेति। एवम् अभिगमसम्यग्दर्शनमपि द्विविधम्, प्रतिपाति च अप्रतिपातिचेति। उक्तञ्च स्थानाङ्गे २ स्थाने १ उद्देशे–'सम्मदंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–णिसग्ग

'जो सम्यग्दर्शन से रहित है उसे ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के अभाव में चारित्र रूप गुण अथवा चारित्र अर्थात् मूलगुण और गुण अर्थात् उत्तरगुण नहीं होते। गुणहीन को मोक्ष प्राप्त नहीं होता और मोक्ष प्राप्त हुए बिना निर्वाण प्राप्त नहीं होता ॥१॥

सम्यक्त्व तीन प्रकार का है–दर्शनसम्यक्त्व, ज्ञानसम्यक्त्व, और चारित्रसम्यक्त्व। स्थानांग सूत्र के तीसरे स्थानक के चौथे उद्देशक में कहा है–'सम्यक्त्व तीन प्रकार का है–ज्ञानसम्यक्त्व, दर्शनसम्यक्त्व और चारित्रसम्यक्त्व।' इसमें भी सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है–निसर्ग सम्यग्दर्शन और अभिगम सम्यग्दर्शन। निसर्ग सम्यग्दर्शन भी प्रतिपाती और अप्रतिपाती के भेद से दो प्रकार का है। इसी प्रकार प्रतिपाती और अप्रतिपाती के भेद से अभिगम सम्यग्दर्शन भी दो प्रकार का है। स्थानांग सूत्र के दूसरे स्थान के प्रथम उद्देशक में कहा

જે સમ્યક્દર્શનથી રહિત છે તેને જ્ઞાન લાધતું નથી અને જ્ઞાનના અભાવમાં ચારિત્ર રૂપ ગુણ અથવા ચારિત્ર અર્થાત્ મૂળગુણ અને ગુણ અર્થાત્ ઉત્તરગુણ હોતાં નથી નિર્ગુણને મોક્ષ પ્રાપ્ત થતો નથી અને મોક્ષ પ્રાપ્ત થયા વગર નિર્વાણ પ્રાપ્ત થતું નથી

સમ્યકત્વ ત્રણ પ્રકારનું છે–દર્શનસમ્યકત્વ, જ્ઞાનસમ્યકત્વ અને ચારિત્રસમ્યકત્વ. સ્થાનાંગસૂત્રના ત્રીજા સ્થાનકના ચોથા ઉદ્દેશકમાં કહ્યું છે સમ્યકત્વ ત્રણ પ્રકારના છે જ્ઞાનસમ્યક્ત્વ, દર્શનસમ્યકત્વ અને ચારિત્રસમ્યક્ત્વ એમા પણ સમ્યગ્દર્શન બે પ્રકારના છે–નિસર્ગસમ્યક્દર્શન અને અભિગમ સમ્યક્દર્શન નિસર્ગસમ્યક્દર્શન પણ પ્રતિપાતી અને અપ્રતિપાતીના ભેદથી બે પ્રકારના છે. એવીજ રીતે પ્રતિપાતી અને અપ્રતિપાતીના ભેદથી અભિગમ સમ્યક્દર્શન પણ બે પ્રકારનું છે. સ્થાનાંગ સૂત્રના બીજા સ્થાનના પ્રથમ ઉદ્દેશકમાં કહ્યું છે સમ્યક્-

सम्मदंसणे चेव, अभिगमसम्मदंसणे चेव, अभिगमसम्मदंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-पडिवाइचेव, अपडिवाइचेव' इति। सम्यग्दर्शनं द्विविधं प्रज्ञप्तम् तद्यथा-निसर्गसम्यग्दर्शनम् चैव अभिगमसम्यग्दर्शनम्, चैव। निसर्गसम्यग्दर्शनं द्विविधं प्रज्ञप्तम् तद्यथा-प्रतिपातिचैव, अप्रतिपातिचैव, अभिगमसम्यग्दर्शनं द्विविधं प्रज्ञप्तम् प्रतिपातिचैव-अप्रतिपातिचैव इति ॥३७॥

मूलम्-तत्तत्थ सद्धाणं सम्मदंसणं ॥३८॥

छाया--'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥३८॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत्-मोक्षसाधनत्वेन सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्रतपांसि प्ररूपितानि, तत्र-प्रथमोपात्तं सम्यग्दर्शनं विस्तररूपेण प्ररूपयितुमाह-'तत्तत्थ सद्धाणं सम्मदंसणं' इति। तत्त्वार्थश्रद्धानम्-तत्त्व शब्दो भावसामान्यवाची वर्तते, तदिति सर्वनाम्नः सामान्ये वर्त्तमानत्वात्, सर्वेषां यन्नाम

है-निसर्ग सम्यग्दर्शन और अभिगम सम्यग्दर्शन। इन दोनों के भी प्रतिपाती और अप्रतिपाती के भेद से दो-दो भेद हैं॥३७॥

'तत्तत्थ सद्धाणं सम्मदंसणं'

सूत्रार्थ—तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है ॥३८॥

तत्त्वार्थदीपिका—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप मोक्ष के कारण हैं, यह पहले कहा गया है, इनमें से अब सम्यग्दर्शन की विस्तारपूर्वक प्ररूपणा करते हैं-

तत्त्वार्थ का श्रद्धान सम्यग्दर्शन कहलाता है। यहाँ तत्त्व शब्द सामान्य भाव का वाचक है, क्योंकि 'तत्' यह सर्वनाम शब्द सामान्य के अर्थ में है। जो सब का नाम हो वह सर्वनाम, ऐसी उसकी अन्वर्थ

દર્શન બે પ્રકારનું છે નિસર્ગસમ્યક્દર્શન અને અભિગમ સમ્યક્દર્શન આ બંનેના પણ પ્રતિપાતી અને અપ્રતિપાતીના ભેદથી બબ્બે ભેદ છે ॥ ૩૭ ॥

'तत्तत्थ सद्धाणं सम्मदंसणं'

સૂત્રાર્થ--તત્વાર્થની શ્રદ્ધા કરવી સમ્યગ્દર્શન છે ॥ ૩૮ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-સમ્યક્દર્શન, સામ્યક્જ્ઞાન, સમ્યક્ચારિત્ર અને સમ્યક્ તપ મોક્ષના કારણ છે એ અગાઉ કહેવામાં આવ્યું છે, એમાંથી હવે સમ્યક્ દર્શનનું વિસ્તારપૂર્વક પ્રરૂપણ કરીએ છીએ

તત્વાર્થની શ્રદ્ધા સમ્યગ્દર્શન કહેવાય છે. અત્રે 'તત્વ' શબ્દ સામાન્ય ભાવનો વાચક છે કારણકે 'તત્' આ સર્વનામ શબ્દ સામાન્યના અર્થમાં છે. જે બધાનું નામ છે તે સર્વનામ એવી તેની અન્વર્થ સંજ્ઞા છે, આ રીતે

तत् सर्वनाम इत्यन्वर्थसंज्ञाबलात्, तस्य सामान्यस्य भावस्तत्त्वम् । तथा च-यद्वस्तु यथा व्यवस्थितं वर्तते तस्य वस्तुनः तथाभावो-भवनम्, तत्त्वेनार्थं स्तत्त्वार्थः तत्त्व मेवार्थ स्तत्त्वार्थः, तत्त्वार्थस्य श्रद्धानं तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन मवगन्तव्यम् । तत्त्वानि च प्रथमाध्याये प्ररूपितानि नवविधानि बोध्यानि, सम्यक्त्वञ्च-पूर्वोक्तानां जीवादि नवतत्त्वानाम्-अर्थानां यथावस्थितस्य वास्तविकस्वरूपस्य तथा भावेनोपदेशो विश्वासविशेषरूप श्रद्धानञ्चोच्यते । एवञ्च-जीवादि तत्त्वार्थानां जैनागमेषु येन रूपेण वास्तविकं स्वरूपं प्रतिपादितं तेनैव रूपेण विज्ञाय तद्भावेनोपदेशनं श्रद्धाकरणं च सम्यग्दर्शनं बोध्यम् । उक्तञ्चोत्तराध्ययने२८ अध्यने १५ गाथायाम्-'तहियाणं तु भावाणं सब्भावे उवएसणं । भावेणं सद्दहंतस्स सम्मत्तं त वियाहियं ।१।। इति, तथ्यानान्तु भावानां सद्भाव उपदेशनम् । भावेन श्रद्दधतः सम्यक्त्वं तद् व्याख्यातम् ।।१।। इति ।।३८।।

संज्ञा है । इस प्रकार तत्त्व शब्द का अर्थ हुआ-जो वस्तु जिस स्वरूप में है उसका वैसा ही होना, तत्त्वार्थ का श्रद्धान तत्व श्रद्धान कहलाता है। यही सम्यग्दर्शन है। तत्वों का निर्देश प्रथम अध्याय में किया जा चुका है। उनकी संख्या नौ हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त जीव अजीव आदि तत्वों पर यथार्थ रूप से विश्वास करना श्रद्धान कहलाता है। अतएव जैनागमों में जीवादि तत्वों का जिस रूप में प्रतिपादन किया गया है, उन्हें उसी रूप में समझकर सही श्रद्धान करना सम्यगदर्शन है। उत्तराध्ययन सूत्र के २८ वें अध्ययन की गाथा २५ वीं में कहा है-'तथ्य अर्थात् वास्तविक पदार्थों का यथार्थ कथन करना और भाव पूर्वक श्रद्धा करना सम्यक्त्व कहा गया है ।।३८।।

તત્વ શબ્દનો અર્થ થયો જે વસ્તુ જે સ્વરૂપમાં છે તેનુ તેજ પ્રમાણે હોવું તત્વાર્થની શ્રદ્ધા તત્વશ્રદ્ધા કહેવાય છે, આજ સમ્યક્દર્શન છે તત્વોનો નિર્દેશ પ્રમથ અધ્યાયમાં કરવામાં આવ્યો છે. તેમની સંખ્યા નવ છે. આ રીતે પૂર્વોક્ત જીવ અજીવ આદિ તત્વો પર યથાર્થ રૂપથી વિશ્વાસ કરવો શ્રદ્ધા કહેવાય છે. આથી જૈનાગમોમાં જીવાદિ તત્વોનુ જે સ્વરૂપે પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે તેમને તે જ સ્વરૂપે સમજીને સાચી શ્રદ્ધા ભાવવી સમ્યક્દર્શન છે. ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના ૨૮માં અધ્યયનની ૧૫મી ગાથામાં કહ્યુ છે તથ્ય અથાત્ વાસ્તવિક પદાર્થોનું યથાર્થ કથન કરવું અને ભાવપૂર્વક શ્રદ્ધા કરવી સમ્યકત્વ કહેવામાં આવ્યું છે ।। ૩૮ ।।

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः--'पूर्वसूत्रे-सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र-तपांसि इति चतुष्टयस्य मोक्षम्प्रति कारणत्वं प्रतिपादितम्, सम्प्रति-तत्र प्रथमोपात्तं सम्यग्दर्शनं प्ररूपयितुमाह-'तत्तत्थ सद्धाणं सम्मदंसण' इति। तत्त्वार्थश्रद्धानम् तत्त्वानां जीवाजीवादि नवाना मर्थानां श्रद्धानं रुचिरप्रीतिः, तत्त्वेन वा अर्थानां स्वैः स्वैर्ज्ञानविशेषैः परिच्छिद्यमानानां जीवादिपदार्थानां स्याद्वादसिद्धान्तानुसारेण प्रतिपादितानां श्रद्धानं-रुचिपूर्वकं विश्वसनं तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन मुच्यते भगवताऽर्हता वीतरागद्वेषेण यथारूपं जीवादितत्त्वं प्रतिपादितं तथारूपेणैव तेषां श्रद्धानं प्रत्ययावधारणं सम्यग्दर्शनं व्यपदिश्यते। तत्र तस्य भावस्तत्त्वम्, तत्त्वेन भावेन स्व प्रतिपत्त्या जीवादिपदार्थानां निश्चयनं न तु मातापित्रादि दाक्षिण्यानुरोधात्, न वा-धनादि लाभापेक्षया कृत्रिममात्र श्रद्धानम्, अपितु-तदेव वस्तु

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पूर्वसूत्र में प्रतिपादन किया गया है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र और सम्यक् तप, ये चारों मोक्ष के कारण हैं, अब इन चारों में से प्रथम सम्यग्दर्शन की प्ररूपणा की जाती है-

तत्त्वार्थ का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। तत्त्वों अर्थात् जीवादि नौ पदार्थों पर श्रद्धा-रूची-प्रतीति करना अथवा यथार्थ रूप से अपने-अपने ज्ञानों द्वारा जाने जाने वाले, स्याद्वाद सिद्धान्त के अनुसार प्रतिपादित पदार्थों का रूचि पूर्वक श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है। तात्पर्य यह है कि वीतराग अर्हन्त भगवान् ने तत्त्वों का जिस रूप में प्रतिपादन किया है, उसी रूप में उन का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। जीवादि पदार्थों का श्रद्धान अपनी प्रतिपत्ति से करना चाहिए, माता-पिता आदि की लिहाज से अथवा धन आदि के लाभ की इच्छा से

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પૂર્વસૂત્રમાં પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું કે સમ્યક્દર્શન, સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક્ચારિત્ર અને સમ્યક્ તપ, એ ચારે મોક્ષના કારણ છે, હવે આ ચારે પૈકી પ્રથમ સમ્યક્દર્શનની પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે

તત્વાર્થની શ્રદ્ધા સમ્યક્દર્શન છે તત્વો અર્થાત્ જીવાદિ નવ પદાર્થો પર શ્રધા રૂચિ પ્રતીતિ કરવી અથવા યથાર્થ રૂપથી પોત-પોતાના જ્ઞાનો દ્વારા જાણી શકાનારાં સ્યાદ્વાદસિદ્ધાંત અનુસાર પ્રતિપાદિત પદાર્થોની રૂચિપૂર્વક શ્રદ્ધા કરવી સમ્યક્દર્શન કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે વીતરાગ અર્હન્ત ભગવંતોએ તત્વોનું જે રૂપમાં પ્રતિપાદન કરેલ છે તે જ સ્વરૂપે તેમની શ્રદ્ધા કરવી સમ્યક્દર્શન છે. જીવાદિ પદાર્થોની શ્રદ્ધા પોતાની આગવી પ્રેરણાથી કરવી જોઇએ માતા પિતા આદિના ફરમાનથી અથવા ધન વગેરેના લાભની ઇચ્છાથી બનાવટી

तथ्यस्वरूपं यज्जिनैरुपलब्धमुपदिष्टं वा, इत्येवं रीत्या तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं बोध्यम्। यथाऽनादि सादि पारिणामिकादि भावेन जीवपुद्गलाः, अनादिपारिणामिकेन च जीवत्वेन उपयोगस्वरूपेण भावेन, सादिपारिणामिकेन च भावेन नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवादिना च जीवाः, पुद्गला अपि अजीवत्वेनाऽनुपयोगस्वरूपेणाऽनादिपारिणामिकेन, सादिपरिणामिकेन च श्वेतकृष्णनीलरक्तादिना परिच्छिद्यमानत्वादर्था उच्यन्ते। धर्मास्तिकायाधर्मास्तिकायाऽऽकाशास्तिकायास्तु-अनादिपारिणामिकेनैव गतिस्थित्यवगाहावस्था मत्याक्षुस्त्यजन्ति त्यक्ष्यन्ति वा, परतस्तु-सादिपारिणामिकेनाऽपि भावेन परिच्छिद्यन्त एव, अत एवाऽर्था इत्युच्यन्ते। एव मन्येऽपि पदार्था अवसेयाः, तदेवं खलु प्रथम संवेगनिर्वेदानुकम्पाऽस्तिक्यादि लक्षणं तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यक्त्वं बोध्यम्। सम्यक्त्वञ्च

बनावटी श्रद्धान नहीं होना चाहिए। 'वही वस्तु सत्य है जिसे जिन भगवान् ने जाना या प्रतिपादन किया है' इस रूप से तत्त्वार्थ श्रद्धान होना सम्यग्दर्शन है। उदाहरणार्थ जीव अनादि काल से उपयोगमय है और वह कर्मोदय के वशीभूत होकर नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति में परिभ्रमण करता है। पुद्गल रूपी अजीव है, अनुपयोग स्वभाव वाला है, वह काला नीला पीला लाल श्वेत आदि विभिन्न पदार्थों में परिणत होता रहता है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय स्वभावतः गति, स्थिति और अवगाह के कारण हैं, अरूपी है, अजीव है, ये सभी द्रव्य नित्यानित्य, सामान्य विशेषात्मक और सत्-असत् स्वरूप हैं। सभी उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त हैं। इसी प्रकार अन्य पदार्थों का भी स्वरूप यथायोग्य समझ लेना चाहिए। इस तरह

(ઢોંગી) શ્રદ્ધા હોવી જોઈએ નહીં. તે જ વસ્તુ સત્ય છે જેને જિનેશ્વર ભગવાને જાણ્યું અથવા પ્રતિપાદન કરેલ છે 'આ રૂપથી તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધા થવી સમ્યક્દર્શન છે

ઉદાહરણાર્થ—જીવ અનાદિકાળથી ઉપયોગમય છે અને તે કર્મોદયને વશીભૂત થઈને નારકી, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવગતિમાં પરીભ્રમણ કરે છે. પુદ્ગલ રૂપી અજીવ છે, અનુપયોગસ્વભાવ વાળો છે, તે કાળા, ભૂરા, પીળા, લાલ, સફેદ વગેરે વિભિન્ન પર્યાયોમાં પરિણત થતો રહે છે. ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાય અને આકાશાસ્તિકાય સ્વભાવત ગતિ સ્થિતિ અને અવગાહદાનના કારણ છે, અરૂપી છે, અજીવ છે. આ બધા દ્રવ્યો નિત્યાનિત્ય સામાન્ય વિશેષાત્મક અને સત્ અસત્ સ્વરૂપ છે. બધા ઉત્પાદ વ્યય અને ધ્રૌવ્યથી યુક્ત છે. એવીજ રીતે અન્ય પદાર્થોનું પણ સ્વરૂપ યથાયોગ્ય સમજી લેવું

जीवा जीवादि नवतत्त्वार्थानां यथावस्थितस्वरूपस्य तथाभावेनोपदेशः श्रद्धानञ्च बोध्यम् । उक्तञ्चोत्तराध्ययने २८ अध्ययने-'तहियाणं तु भावाणं सब्भावे उवएसणं भावेणं सद्दहंतस्स सम्मत्तं तं वियाहियं' ॥१॥ तथ्यानान्तु भावानां सद्भाव उपदेशनम् । भावेन श्रद्दधतः सम्यक्त्वं तद्व्याख्यातम् ।१। ३८

मूलम्-तं दुविहं णिसग्ग सम्मदंसणे अभिगमसम्मदंसणेय।३९।

छाया-तद् द्विविधम्, निसर्गसम्यग्दर्शनम्-अभिगमसम्यग्दर्शनञ्च ॥३९॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत्-मोक्षसाधकतया प्रतिपादितेषु सम्यग्दर्शनादिषु चतुर्षु प्रथमोपात्तस्य सम्यग्दर्शनस्य स्वरूपं प्ररूपितम्, सम्प्रति-तदेव सम्यग्दर्शनं द्वैविध्येन प्ररूपयितुमाह-तं दुविहं०' इत्यादि । तत्खलु पूर्वसूत्रोक्त

जिनोक्त तत्त्व पर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है जिसके लक्षण प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य हैं। उत्तराध्ययन सूत्र के २८ वें अध्ययन में कहा है-यथार्थ भावों के उपदेश पर वास्तविक रूप से भावपूर्वक श्रद्धान करने वाले को सम्यक्त्व होता है, ऐसा तीर्थंकर भगवान् ने कहा है ॥३८॥

'तं दुविहं णिसग्ग सम्म' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है-निसर्ग सम्यग्दर्शन और अभिगमसम्यग्दर्शन ॥३९॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले मोक्ष के चार सम्यग्दर्शन आदि कारणों में से प्रथम कारण सम्यग्दर्शन के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया, अब उसके दो भेदों की प्ररूपणा करते हैं-

---

જોઈએ. આ રીતે જિનોક્ત તત્ત્વપર શ્રદ્ધા કરવી સમ્યક્દર્શન છે. જેના લક્ષણ, પ્રશમ, સંવેગ, નિર્વેદ, અનુકંપા અને આસ્તિકય છે. ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રના અઠયાવીસામા અધ્યયનમા કહ્યું છે યથાર્થ ભાવોના (ઉદ્દેશ) ઉપદેશ પર વાસ્તવિક રૂપથી ભાવપૂર્વક શ્રદ્ધા કરનારને સમ્યકત્વ થાય છે. એવું તીર્થંકર ભગવાને કહ્યું છે ॥ ૩૮ ॥

'તં દુવિહં નિસગ્ગસમ્મદંસણે' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—સમ્યક્દર્શન બે પ્રકારનું છે- નિસર્ગસમ્યક્દર્શન અને અભિગમસમ્યકદર્શન. ॥ ૩૯ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-પહેલાં મોક્ષના ચાર સમ્યકદર્શન વગેરે કારણોમાંથી પ્રથમ કારણ સમ્યકદર્શનના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યુ હવે તેના બે ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ

स्वरूपं सम्यग्दर्शनं द्विविधं भवति, तद्यथा–निसर्गसम्यग्दर्शनम्, अभिगमसम्यग्दर्शनं चेति तत्र–निसर्गतः पूर्वभवसंस्कारादिजन्यस्वभाववतो जायमानं सम्यग्दर्शनम् निसर्गसम्यग्दर्शन मुच्यते। एवम्–अभिगमाद् आचार्य गुरूपाध्यायादि सदुपदेशादि रूपाभिगमाज्जायमानं सम्यग्दर्शनम्, अभिगमसम्यग्दर्शन मुच्यते तथा च-पूर्वजन्म विशिष्टसंस्कारादि स्वभावात् स्वयमेवात्मनि यत्प्रकटी भवति तद् निसर्ग सम्यग्दर्शनं बोध्यम्। एवम्–आचार्यादि सदुपदेशात् यज्जायते तद्–अभिगमसम्यग्दर्शनं ज्ञेयम् इति ॥३९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—'पूर्वसूत्रे–सम्यग्दर्शनादि चतुष्टयस्य मोक्षसाधनत्वेन प्रतिपादितस्य मध्ये प्रथमोपात्तं सम्यग्दर्शनस्वरूपं प्रतिपादितम् (प्ररूपितम्), सम्प्रति–तस्य खलु सम्यग्दर्शनस्य द्वैविध्यं प्ररूपयितुमाह–'तं दुविहं णिसग्ग

सम्यग्दर्शन के दो भेद हैं–निसर्ग सम्यग्दर्शन और अभिगम सम्यग्दर्शन। निसर्ग से अर्थात् दूसरे के उपदेश के बिना ही पूर्व संस्कार आदि से उत्पन्न होने वाला सम्यग्दर्शन निसर्ग सम्यग्दर्शन कहलाता है। अभिगम अर्थात् आचार्य, उपाध्याय, गुरु आदि के सदुपदेश रूप अभिगम से होने वाला सम्यगूदर्शन अभिगम सम्यगूदर्शन कहलाता है। अभिप्राय यह है कि पूर्व जन्म के विशिष्ट संस्कार आदि स्वभाव से जो सम्यग्दर्शन स्वतः आत्मा में प्रकट हो जाता है वह निसर्ग सम्यग्दर्शन है एवं आचार्य आदि के सदुपयोग से जो उत्पन्न होता है वह अभिगम सम्यग्दर्शन है ॥३९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—सम्यग्दर्शनादि चतुष्टय मोक्ष का साधन है, यह प्रतिपादन किया गया था, उसमें से सम्यग्दर्शन के स्वरूप का पूर्वसूत्र में निरूपण किया गया, अब उसके दो भेदों का निर्देश करते हैं–

સમ્યગ્દર્શનના બે ભેદ છે નિસર્ગસમ્યકદર્શન અને અભિગમસમ્યકદર્શન નિસર્ગથી અર્થાત્ બીજાના ઉપદેશ વગરજ પૂર્વસંસ્કાર આદિથી ઉત્પન્ન થનાર સમ્યકદર્શન નિસર્ગ સમ્યકદર્શન કહેવાય છે. અભિગમ અર્થાત્ આચાર્ય ઉપાધ્યાય, ગુરૂ, આદિના સદુપદેશ રૂપ અભિગમથી થનારૂં સમ્યક્દર્શન અભિગમસમ્યકદર્શન કહેવાય છે. અભિપ્રાય એ છે કે પૂર્વ જન્મના વિશિષ્ટ સંસ્કાર આદિ સ્વભાવથી જે સમ્યકદર્શન સ્વતઃઆત્મામાં પ્રગટ થઈ જાય છે તે નિસર્ગસમ્યકદર્શન છે અને આચાર્ય વગેરેના સદુપદેશથી જે ઉત્પન્ન થાય છે. તે અભિગમસમ્યકદર્શન છે ॥ ૩૯ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ--સમ્યકદર્શનાદિ ચતુષ્ટય મોક્ષના સાધન છે. એ

सम्मदंसणे अभिगमसम्मदंसणेय' इति। तत् खलु पूर्वसूत्रप्रतिपादित स्वरूपं सम्यग्दर्शनं द्विविध मवगन्तव्यम् तद्यथा-निसर्गसम्यग्दर्शनम्-अभिगम-सम्यग्दर्शनञ्चेति। तत्र-निसर्गः स्वभावः विशेषात्मपरिणामः अपरोपदेश उच्यते तस्माज्जायमानं सम्यग्दर्शनं निसर्ग सम्यग्दर्शनं भवति। ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षण-स्याऽऽत्मनो जीवस्य अनादौ संसारकान्तारे परिभ्रमतः स्वकृतस्य कर्मणो बन्ध-निकाचनोदयावलिका प्रवेशनिर्जरापेक्षतया नारक-तिर्यङ्मनुष्य-देव भवग्रहणेषु नानाप्रकारकं पुण्य-पापफलं सुख-दुःखरूपमनुभवतो ज्ञानदर्शनोपयोग स्वाभा-व्यात् तत्तत् परिणामाध्यवसाय स्थानान्तराणि प्राप्नुवतोऽनादि मिथ्यादर्शन-स्यापि परिणामविशेषात् तथाविधमपूर्वकरणं भवति येनाऽस्यात्मनः उपदेशं विनैव

सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है-निसर्गसम्यग्दर्शन और अभिगम सम्य ग्दर्शन। निसर्ग अर्थात् स्वभाव, आत्मा का विशेष परिणाम या परोप-देश का अभाव तात्पर्य यह है कि परोपदेश के विना ही जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है वह निसर्ग सम्यग्दर्शन कहलाता है। आत्मा ज्ञानदर्शन स्वभाव वाला है, अनादि संसार-अटवी में परिभ्रमण कर रहा है, अपने किये कर्म के बन्ध, निकाचन, उदयावलिकाप्रवेश और निर्जरा की अपेक्षा से नारक तीर्यंच मनुष्य और देव गतियों में पुण्य-पाप के नाना प्रकार के सुख-दुःख रूप फल को भोग रहा है, अपने ज्ञान-दर्शन-उपयोग स्वभाव के कारण विभिन्न प्रकार अध्यवसाय स्थानों को प्राप्त करता रहता है, ऐसा जीव यदि अनादि मिथ्यादृष्टि हो तो भी परिणामविशेष से ऐसा अपूर्वकरण करता है कि उपदेश के विना ही उसे सम्यग्दर्शन

પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું. એમાંથી સમ્યક્દર્શનના સ્વરૂપનું પૂર્વસૂત્રમાં નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું. હવે તેના બે ભેદોનું નિર્દેશન કરીએ છીએ

સમ્યક્દર્શન બે પ્રકારના છે નિસર્ગસમ્યકદર્શન અને અભિગમસમ્યક દર્શન નિસર્ગ અર્થાત્ સ્વભાવ, આત્માનું વિશેષ પરિણામ અથવા પરોપદેશ નો અભાવ, તાત્પર્ય એ છે કે પારકાના ઉપદેશ વગરજ જે સમ્યકદર્શન ઉદ્ભવે છે તેને નિસર્ગસમ્યકદર્શન કહેવાય છે. આત્મા, જ્ઞાન દર્શન સ્વભાવ વાળો છે, અનાદિ સંસાર અટવીમાં પરિભ્રમણ કરી રહ્યો છે, પોતાના કરેલા કર્મના બંધ નિકાચન ઉદયાવલિકા પ્રવેશ અને નિર્જરાની અપેક્ષાથી નારકી તીર્યંચ મનુષ્ય અને દેવગતિઓમાં પુણ્ય પાપના જુદા જુદા પ્રકારના સુખ દુઃખ રૂપ ફળને ભોગવી રહ્યો છે, પોતાના જ્ઞાન દર્શન ઉપયોગ સ્વભાવના કારણે વિભિન્ન પ્રકારના અધ્યવસાય સ્થાનોને પ્રાપ્ત કરતો રહે છે. આવો જીવ જો અનાદિ મિથ્યાદૃષ્ટિ હોય તો પણ પરિણામવિશેષથી એવું અપૂર્વ કરણ-

सम्यग्दर्शनं संजायते, इत्येवं निसर्गसम्यग्दर्शनमवसेयम्। एवम्–अभिगमः अधिगमः–श्रवणं शिक्षणम् उपदेशः तस्माद् अभिगमाद् आचार्योपाध्यायगुर्वादि सकाशात् उपदेशाज्जायमानं यद् तत्त्वार्थश्रद्धानं तदभिगमसम्यग्दर्शनमवगन्तव्यम्। एवञ्च–यत्खलु अपूर्वकरणानन्तरभाव्यनिवृत्तिकरणं तत्–निसर्ग इति व्यपदिश्यते, तस्मात् खलु निसर्गरूपात् कारणाद् यः खलु जीवादितत्त्वेषु रुचिरुत्पद्यते तन्निसर्गसम्यग्दर्शन मुच्यते। या पुनर्जीवादि तत्त्वेषु आचार्याद्युपदेशादिना रुचिरुत्पद्यते तदभिगमसम्यग्दर्शनं व्यवह्रियते। उक्तञ्च स्थानाङ्गे २–स्थाने १ उद्देशके ७० सूत्रे–'सम्मदंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–णिसग्गसम्मदंसणे चेव अभिगमसम्मदंसणे चेव' इति, सम्यग्दर्शनं द्विविधं प्रज्ञप्तम् तद्यथा–निसर्गसम्यग्दर्शनम् अभिगमसम्यग्दर्शनञ्चेति ॥३९॥

मूलम्–पमेयववगे ववसायस्सभावे सम्मनाणे ॥४०॥

छाया–'प्रमेयव्यापि व्यवसायस्वभावं सम्यग्ज्ञानम् ॥४०॥

प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार उत्पन्न होने वाला सम्यग्दर्शन निसर्ग सम्यग्दर्शन कहलाता है। अभिगम का अर्थ है श्रवण, शिक्षा या उपदेश, आचार्य उपाध्याय या गुरु के उपदेश से जो तत्त्वार्थ श्रद्धान उत्पन्न होता है वह अभिगम सम्यग्दर्शन कहलाता है।

तात्पर्य यह है कि आचार्य आदि के उपदेश के बिना ही जो तत्त्व श्रद्धान उत्पन्न होता है वह निसर्ग सम्यग्दर्श कहलाता है और आचार्य आदि के उपदेश से उत्पन्न होने वाला सम्यग्दर्शन अभिगम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। स्थानांग सूत्र के दूसरे स्थान में ७० वें सूत्र में कहा है–सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा गया है–निसर्ग सम्यग्दर्शन और अभिगम सम्यग्दर्शन ॥३९।

કરે છે કે વગર ઉપદેશે જ તેને સમ્યક્‌દર્શન પ્રાપ્ત થઈ જાય છે. આ રીતે ઉત્પન્ન થનાર સમ્યક્‌દર્શન નિસર્ગસમ્યક્‌દર્શન કહેવાય છે. અભિગમનો અર્થ છે અભિગમ શ્રવણ, શિક્ષણ, અથવા ઉપદેશ, આચાર્ય, ઉપાધ્યાય અથવા ગુરૂના ઉપદેશથી જ તત્વાર્થશ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે. તે અભિગમ સમ્યક્‌દર્શન કહેવાય છે

તાત્પર્ય એ છે કે આચાર્ય આદિના ઉપદેશ વગરજ જે તત્વ શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે. તે નિસર્ગસમ્યકદર્શન કહેવાય છે અને આચાર્ય આદિના ઉપદેશથી ઉત્પન્ન થનાર સમ્યકદર્શન અભિગમ સમ્યકદર્શન કહેવાય છે. સ્થાનાંગ સૂત્રના સમ્યક્‌દર્શન બે પ્રકારના કહેવામાં આવ્યા છે નિસર્ગ સમ્યકદર્શન અને અભિગમ સમ્યકદર્શન ॥ ૩૯ ॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावद्-मोक्षम्प्रति सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक् चारित्र तप इति चतुष्टयस्य हेतुत्वप्रतिपादनात् तत्र-सम्यग्दर्शनस्य सभेदं स्वरूपं निरूपितम्, सम्प्रति--सम्यग्ज्ञानस्य स्वरूपं प्ररूपयितुमाह-'पमेय वावगे' इत्यादि। प्रमेयव्यापि-प्रमेयं वस्तुव्याप्तुम् अपरित्यक्तुं शीलमस्येति प्रमेयव्यापि नियतो वस्तुग्राहि नियतवस्तुसहचारि व्यवसायस्वभावम् अध्यवसायात्मकं निश्चयात्मकं ज्ञानं सम्यग् ज्ञान मुच्यते। तत्र प्रमेय व्यापकपदेन-विपरीतज्ञानस्य व्यावृत्ति र्भवति, व्यवसाय स्वभावपदेन-अनध्यवसायसंशयात्मकं ज्ञानं व्यावर्त्यते,। तथा च-येन येन प्रकारेण स्वभावेन जीवादयः पदार्थाः व्यव-

'पमेयवावगे ववसाय' इत्यादि।

सूत्रार्थ—जो प्रमेयव्यापी और व्यवसाय स्वभाव वाला (निश्चयात्मक हो वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है ॥४०॥

तत्वार्थदीपिका—पहले सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप, इस चतुष्टय को मोक्ष के कारण कहा था, उसमें से सम्यग्दर्शन का सभेद स्वरूप कहा जा चुका, अब सम्यग्ज्ञान के स्वरूप का कथन करते हैं

जो प्रमेय अर्थात् वस्तु को प्राप्त करे वह प्रमेय व्यापी कहलाता है जिसका अर्थ है नियम से वस्तुग्राही या नियत वस्तु सहचारी। व्यवसायात्मक उसे कहते हैं जो निश्चयात्मक हो। ऐसा प्रमेयव्यापी और व्यवसायात्मक ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। यहां 'प्रमेयव्यापी' इस पद से विपरीत ज्ञान का निरास किया गया है और 'व्यवसायात्मक' पद से अनध्यवसाय तथा संशय ज्ञान का निवारण किया गया है। तात्पर्य यह

'पमेयवावगे ववसाय' ईत्यादि

સૂત્રાર્થ—જે પ્રમેયવ્યાપી અને વ્યવસાય સ્વભાવવાળુ નિશ્ચયાત્મક છે તે સમ્યક્‌જ્ઞાન કહેવાય છે ॥ ૪૦ ॥

તત્વાર્થદીપિકા—પહેલા સમ્યક્‌દર્શન સમ્યક્‌જ્ઞાન સમ્યક્‌ચારિત્ર અને સમ્યક્‌તપ એ ચતુષ્ટયતપને મોક્ષના કારણ કહ્યા હતા તેમાંથી સમ્યગ્દર્શનનું સભેદ સ્વરૂપ કહેવામાં આવ્યું હવે સમ્યક્‌જ્ઞાનના સ્વરૂપનું કથન કરીએ છીએ

જે પ્રમેય અર્થાત્ વસ્તુને વ્યાપ્ત કરે તે પ્રમેયવ્યાપી કહેવાય છે. જેનો અર્થ છે નિયમથી વસ્તુગ્રાહી અથવા નિયતવસ્તુસહચારી વ્યવસાયાત્મક તેને કહે છે જે નિશ્ચયાત્મક હોય. આવુ પ્રમેયવ્યાપી અને વ્યવસાયાત્મક જ્ઞાન સમ્યક્‌જ્ઞાન છે. અહીં 'પ્રમેયવ્યાપી' એ પદથી વિપરીત જ્ઞાન અભિપ્રેત કરવામાં આવ્યું છે અને 'વ્યવસાયાત્મક' પદથી અનધ્યવસાય તથા સંશયજ્ઞાનનું નિવારણ

स्थिता स्तेन स्तेन प्रकारेणाऽनध्यवसाय–संशय–विपर्ययभिन्नं ज्ञानं सम्यग्ज्ञानं व्यपदिश्यते, सम्यक्पदेनाऽपि–अनध्यवसायसंशयविपर्ययज्ञानस्य व्यावृत्ति र्भवति। अनध्यवसायादि त्रयस्य मिथ्याज्ञानरूपत्वेन मोक्षसाधने तेषा मनुपयुक्तत्वात् तत्राऽनध्यवसायो मोहः, संशयः, संदेहः विपर्ययो–विपरीतत्वमितिभावः ॥४०॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति––पूर्वं तावत्–सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञानादि चतुष्टयस्य मोक्षसाधकत्वेन प्रतिपादितत्वात् तत्र–प्रथमोपात्तस्य सम्यग्दर्शनस्य स्वरूपं प्ररूपितम्, सम्प्रति क्रमप्राप्तस्य सम्यग्ज्ञानस्य स्वरूपं प्ररूपयितुमाह–'पमेयववगे ववसायस्स भावे सम्मनाणे' इति। प्रमेयव्यापकं प्रमेयम्, प्रमातुं योग्यं प्रमेयं–

निकला कि जो जीवादि पदार्थ जिस–जिस रूप में अवस्थित हैं, उसी उसी रूप में, जानने वाला अनध्यवसाय, संयम और विपर्यय से भिन्न ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है। इसके अतिरिक्त सम्यक् पद से भी अनध्यवसाय, संशय और विपर्यय रूप ज्ञान की व्यावृत्ति हो जाती हैं, क्योंकि ये तीनों मिथ्याज्ञान हैं, अतएव मोक्ष के साधन नहीं हो सकते।

अनध्यवसाय का अर्थ मोह, संशय का अर्थ सन्देह और विपर्यय का अर्थ विपरीतता है ॥४०॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति–पहले सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप को मोक्ष का साधन कहा था, उनमें से सम्यग्दर्शन के स्वरूप की व्याख्या की, अब क्रमप्राप्त सम्यग्ज्ञान के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं—

जो प्रमिति के योग्य अर्थात् जानने के लायक हो वह प्रमेय कहलाता है। प्रमेय वस्तु को व्याप्त करना अर्थात् त्याग न करना या नियम

કર્યું છે. સાર એ નીકળ્યો કે જે જીવાદિ પદાર્થ જે જે રૂપમાં રહેલા છે તે તે રૂપમાં જાણવાવાળા અનધ્યવસાય, સંશય અને વિપર્યયથી ભિન્નજ્ઞાન સમ્યક્જ્ઞાન કહેવાય છે. આ સિવાય સમ્યક્પદથી પણ અનધ્યવસાય, સંશય અને વિપર્યયરૂપ જ્ઞાનની વ્યાવૃત્તિ થઈ જાય છે કારણકે આ ત્રણે મિથ્યાજ્ઞાન છે. જેથી મોક્ષના સાધન થઈ શકતા નથી અનધ્યવસાયનો અર્થ મોહ સંશયનો અર્થ સંદેહ અને વિપર્યયનો અર્થ વિપરીતતા છે. ॥ ૪૦ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ–પહેલાં સમ્યક્દર્શન, સમ્યક્જ્ઞાન, સમ્યક્ચારિત્ર, અને સમ્યક્તપને મોક્ષનાં સાધન કહ્યાં હતાં. તેમાથી સમ્યક્દર્શનનાં સ્વરૂપની વ્યાખ્યા કરી હવે ક્રમપ્રાપ્ત સમ્યક્જ્ઞાનનાં સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ

જે પ્રતીતિને યોગ્ય અર્થાત્ જાણવાને લાયક છે તે પ્રમેય કહેવાય છે.

वस्तु, व्याप्तुम्=अपरित्यक्तुं नियमतो ग्रहीतुं शीलमस्येति प्रमेय व्यापकं नियमतो वस्तुग्राहि वस्तुनो नियमतो ग्रहणशीलं, व्यवसाय स्वभावम्–व्यवसायोऽध्यवसायः निश्चयः=स्वभावः स्वरूपं यस्य तत् व्यवसायस्वभावम् अध्यवसायस्वरूपम्, निश्चयात्मकं ज्ञानं सम्यग्ज्ञान मुच्यते। तत्र–प्रमेयव्यापकपदेन विपर्ययज्ञानम् व्यावृत्तिः क्रियते, तस्य प्रमेयाव्यापकत्वात् अध्यवसायस्वरूपव्यवसायस्वभाव-कथनेन च मोहरूपानध्यवसायस्य संशयस्य च व्यावृत्ति र्भवति। एतेषां खलु त्रयाणाम् अनध्यवसायसंशयविपर्ययाणां मिथ्याज्ञानरूपत्वेन मोक्षसाधनेऽनुपयुक्तत्वात्, तथा च–येन येन स्वरूपेण स्वभावेन जीवादीनि तत्त्वानि व्यवस्थितानि सन्ति तेन तेन स्वरूपेण स्वभावेन तेषां परिज्ञानं सम्यग्ज्ञानमवगन्तव्यम्। तच्च सम्यग्ज्ञानं द्विविधं, प्रत्यक्ष–परोक्ष भेदात्, तत्र–प्रत्यक्षमपि द्विविधं भवति, सां-

---

से ग्रहण करना जिसका स्वभाव हो वह व्यवसाय स्वभाव कहलाता है। व्यवसाय अर्थात् अध्यवसाय या निश्चय जिसका स्वभाव हो वह व्यवसायस्वभाव। इस प्रकार जो ज्ञान प्रमेयव्यापक और व्यवसायस्व-भाव होता है, वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

'प्रमेयव्यापक, पद से विपर्ययज्ञान की व्यावृत्ति की गई है, क्योंकि वह प्रमेयव्यापक नहीं होता और व्यवसायात्मक पद से मोह रूप अनध्यवसाय का तथा संशयज्ञान का निराकरण हो जाता है। ये तीनों अनध्यवसाय, संशय और विपर्यय मिथ्याज्ञान होने के कारण मोक्ष साधन में उपयुक्त नहीं है। अभिप्राय यह है कि जो जीवादि पदार्थ जिस-जिस रूप में स्थित हैं, उन्हें उसी रूप में जानना सम्यग्ज्ञान है।

सम्यग्ज्ञान दो प्रकार का है–प्रत्यक्ष और परोक्ष। इन में से प्रत्यक्ष

પ્રમેય વસ્તુને વ્યાપ્ત કરવી અર્થાત્ ત્યાગ ન કરવો અથવા નિયમથી ગ્રહણ કરવું જેનો સ્વભાવ છે તે 'વ્યવસાયસ્વભાવ' કહેવાય છે. વ્યવસાય અર્થાત્ અધ્યવસાય અથવા નિશ્ચય જેનો સ્વભાવ છે તે વ્યવસાયસ્વભાવ આ રીતે જે જ્ઞાન પ્રમેયવ્યાપક અને વ્યવસાયસ્વભાવ હોય છે તે સમ્યક્જ્ઞાન કહેવાય છે

પ્રમેયવ્યાપક પદથી વિપર્યય જ્ઞાનની વ્યાવૃત્તિ કરવામાં આવી છે કારણકે તે પ્રમેયવ્યાપક હોતું નથી અને 'વ્યવસાયાત્મક પદથી મોહરૂપ અનધ્યવસાયનું' તથા સંશયજ્ઞાનનું નિરાકરણ થઇ જાય છે. આ ત્રણે–અનધ્યવસાય, સંશય અને વિપર્યય મિથ્યાજ્ઞાન હોવાથી મોક્ષસાધનમાં ઉપયોગી નથી. કહેવાનું એ છે કે જે જીવાદિ પદાર્થ જે જે સ્વરૂપમાં સ્થિત છે તેમને તેજ રૂપમાં જાણવા એ સમ્યક્જ્ઞાન છે

સમ્યક્જ્ઞાન બે પ્રકારનાં છે–પ્રત્યક્ષ અને પરોક્ષ આમાંથી પ્રત્યક્ષનાં પણ

व्यावहारिक-पारमार्थिकभेदात्। तत्र-सांव्यवहारिक मपि द्विविधम्, इन्द्रिय निबन्धनम्-अनिन्द्रिय निबन्धनञ्चेति। तत्र-चक्षुरादीन्द्रियहेतुकं प्रत्यक्षम् अनिन्द्रिय निबन्धन मुच्यते, मनोहेतुकं प्रत्यक्षम्-अनिन्द्रियनिबन्धनं व्यपदिश्यते। एवम्-परमार्थिकं प्रत्यक्षमपि द्विविधं भवति, विकलं=सकलञ्चेति, तत्राऽसमग्रविषयकं विकलं प्रत्यक्षम् मुच्यते समग्रविषयकन्तु-सकलं प्रत्यक्षं व्यपदिश्यते। तत्र-विकलं प्रत्यक्षम् अवधिमनःपर्यवज्ञानभेदेन द्विविधमवगन्तव्यम्, सकलंप्रत्यक्षं पुन-रेकमेव समस्ताऽऽवरणक्षयहेतुकसकलद्रव्यपर्यायसाक्षात्कारस्वरूपं केवलज्ञान मुच्यते। परोक्षं तावत्-सम्यग्ज्ञानं पञ्चविधं भवति, स्मरणप्रत्यभिज्ञानतर्काऽनु-

के भी दो भेद हैं-सांव्यवहारिकप्रत्यक्ष और पारमार्थिकप्रत्यक्ष। सांव्य वहारिक प्रत्यक्ष भी दो प्रकार का है-इन्द्रिय निबन्धन और अनिन्द्रिय निबन्धन। चक्षुआदि इन्द्रियों से जो प्रत्यक्ष होता है वह इन्द्रियनिबन्धन कहलाता है और मन से होने वाला प्रत्यक्ष अनिन्द्रिय निबन्धन। पारमार्थिकप्रत्यक्ष भी दो प्रकार का है-विकल और सकल। जो समस्त वस्तुओं को ग्रहण न करे वह विकलपारमार्थिक प्रत्यक्ष कहलाता है और समग्र वस्तुओं को जाननेवाला सकलपारमार्थिक प्रत्यक्ष कहा जाता है। विकलपारमार्थिक प्रत्यक्ष के दो भेद हैं-अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान। सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष एक ही प्रकार का है। वह समस्त आवरणों के क्षय से उत्पन्न होता है और समस्त द्रव्यों और पर्यायों को साक्षात् करना उसका स्वरूप है। उसे केवलज्ञान कहते है।

परोक्ष सम्यग्ज्ञान पांच प्रकार का है-(१) स्मरण (२) प्रत्यभिज्ञान (३) तर्क (४) अनुमान और (५) आगम। उत्तराध्ययनसूत्र के २८ वें

બે ભેદ છે સાંવ્યવહારિકપ્રત્યક્ષ અને પારમાર્થિકપ્રત્યક્ષ. સાંવ્યવહારિકપ્રત્યક્ષ પણ બે પ્રકારનાં છે-ઇન્દ્રિયનિબંધન અને અનિંદ્રીયનિબંધન ચક્ષુ આદિ ઇન્દ્રિયોથી જે પ્રત્યક્ષ હોય છે તે ઇન્દ્રિયનિબંધન કહેવાય છે અને મનથી થનારા પ્રત્યક્ષ અનિંદ્રીયનિબંધન. પારમાર્થિક પ્રત્યક્ષ પણ બે પ્રકારના છે વિકલ અને સકલ જે સમસ્ત વસ્તુઓને ગ્રહણ ન કરે તે વિકલપારમાર્થિકપ્રત્યક્ષ કહેવાય છે અને સમગ્ર વસ્તુઓને જાણનાર સકલપારમાર્થિકપ્રત્યક્ષ કહેવાય છે વિકલપારમાર્થિપ્રત્યક્ષનાં બે ભેદ છે અવધિજ્ઞાન અને મનઃપર્યવજ્ઞાન સકલ-પારમાર્થિકપ્રત્યક્ષ એક જ પ્રકારનું છે. તે સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોને સાક્ષાત કરવા તેનું સ્વરૂપ છે. તેને કેવળજ્ઞાન કહે છે.

પરોક્ષ સમ્યકજ્ઞાન પાંચ પ્રકારનાં છે (૧) સ્મરણ (૨) પ્રત્યભિજ્ઞાન (૩) તર્ક (૪) અનુમાન અને (૫) આગમ ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના ૨૮માં અધ્યયનની

मानाऽऽगमभेदात् ॥ उक्तञ्चोत्तराध्ययने२८ अध्ययने २४ गाथायाम्-'दव्वाणं सव्वभावा, सव्वपमाणेहिं जस्स उवलद्धा। सव्वाहिं नयविहीहिं, वित्थाररुइत्ति नायव्वो॥१ इति द्रव्याणां सर्वभावाः सर्वप्रमाणैर्यस्योपलब्धाः। सर्वै नयविधिभि, र्विस्ताररुचिरिति ज्ञातव्यः।१॥ इति, तथा च-यस्य जीवस्य द्रव्याणां सर्वेभावाः गुणपर्यायादयः सर्वप्रमाणैः सर्वनयै श्चोपलब्धाः परिज्ञाता भवन्ति स विस्ताररुचिरुच्यते ॥४०॥ इति

मूलम्-तं च पंचविहे, मइसुयओहिमणपज्जवकेवलनाण-भेयओ ॥४१॥

छाया-तच्च पञ्चविधं, मतिश्रुतावधि मनःपर्यवकेवलज्ञानभेदतः ॥४१॥

तत्त्वार्थदीपिका--पूर्वं तावद्-मोक्षसाधकतया प्रतिपादितेषु सम्यग्दर्शनादिषु चतुर्षु सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञानञ्च प्ररूपितम्, सम्प्रति तत्र-सम्यग्ज्ञानस्य मति श्रुतादि पञ्चभेदान् प्ररूपयितुमाह-'तं च पंचविहे' इत्यादि। तच्च पूर्वोक्त स्वरूपं

अध्ययन की २४ वीं गाथा में कहा है--

'जिसने द्रव्यों के समस्त पर्यायों को समस्त प्रमाणों से और सब नयविधानों से जान लिया, वह विस्तार रुचि कहलाता है ॥१॥

इस प्रकार जो जीव द्रव्यों को गुण-पर्यायरूप भावों को प्रमाणों और सब नयों से जान लेना है, वह विस्ताररुचि कहलाता है ॥४०॥

'तं च पंचविहे मइसुय' इत्यादि ४१

सूत्रार्थ—सम्यग्ज्ञान पांच प्रकार है-(१) मतिज्ञान (२) श्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मनःपर्यज्ञान और (५) केवलज्ञान ॥४१॥

तत्त्वार्थदीपिका--मोक्ष के साधन कहे गए सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान आदि में से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की प्ररूपणा की गई, अब सम्यग्ज्ञान के मति श्रुत आदि पांच भेदों की प्ररूपणा करते हैं-

---

૨૪ મી ગાથામાં કહ્યું છે-જેણે દ્રવ્યોના સમસ્ત પર્યાયોને સમસ્ત પ્રમાણોથી અને બધાં નયવિધાનોથી જાણી લીધા તે વિસ્તારરૂચિ કહેવાય છે ।।૧।।

આ રીતે જે જીવ દ્રવ્યોના સમસ્ત ગુણ-પર્યાયરૂપ ભાવોને બધાં પ્રમાણો અને બધાં નયોથી જાણી લે છે તે વિસ્તાર રૂચિ કહેવાય છે. ।।૪૦।।

'તં ચ પંચવિહે મઇસુય' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-સમ્યક્જ્ઞાન પાંચ પ્રકારના છે-(૧) મતિજ્ઞાન (૨) શ્રુતજ્ઞાન (૩) અવધિજ્ઞાન (૪) મનઃ પર્યવજ્ઞાન અને (૫) કેવળજ્ઞાન ।।૪૧।।

તત્ત્વાર્થદીપિકા-મોક્ષના સાધન કહેવામાં આવેલા સમ્યગ્દર્શન સમ્યગ્જ્ઞાન આદિમાંથી સમ્યગ્દર્શન અને સમ્યગ્જ્ઞાનની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી હવે

सम्यग्ज्ञानं पञ्चविधं भवति, मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानभेदात्, तत्राऽऽभिनिबोधिकज्ञानरूपं मतिज्ञानमवसेयम्। तत्र–ज्ञानाऽऽवरणं तावद् ज्ञानप्रतिबन्धक मुच्यते, तत् त्रिविधं भवति, मनोगतम्–इन्द्रियगतं–विषयगतञ्चेति। तत्र-मात्सर्यादिकं मनोगतमावरणम् काच–कामलादिक मिन्द्रियगतमावरणम्, (काचश्चाऽत्र–नेत्ररोगविशेषः काचबिन्दु नाम्ना प्रसिद्धः) सूक्ष्मत्वगाढान्धकारव्याप्तत्वादिकं विषयगतमावरणं भवति, तस्य खलु–आवरणस्य सर्वथा नाशः क्षय उच्यते। आवरणस्य विद्यमानत्वेऽपि–अनुद्भूतत्वावस्था उपशम उच्यते। तत्र मतिज्ञानावरणक्षयोपशमे सति–इन्द्रिय मनसि पुरस्कृत्य व्यापृतः सन् यथार्थं

पूर्वोक्त सम्यग्ज्ञान पांच प्रकार का है–(१) मति (२) श्रुत (३) अवधि (४) मनःपर्यव और (५) केवलज्ञान। आभिनिबोधिकज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान को आवृत्त–आच्छादित करे वह ज्ञानावरण कहलाता है। आवरण तीन प्रकार के होते हैं–मनोगत, इन्द्रियगत और विषयगत। मात्सर्य आदि मनोगत आवरण है, काच–कामलादिक रोग इन्द्रियगत आवरण हैं (काच नामक नेत्रों का एक रोग होता है जो काचबिन्दु नाम से भी प्रसिद्ध है)। सूक्ष्मता, गाढ अंधकार से व्याप्त होना आदि विषयगत आवरण हैं। आवरण का सर्वथा नाश होना क्षय कहलाता हैं आवरण विद्यमान तो हो मगर उद्भूत (प्रकट) न हो तो ऐसी अवस्था को उपशम कहते हैं।

मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर इन्द्रिय और मन के निमित्त से जो यथार्थ ज्ञान होता है वह मतिज्ञान कहलाता है। तात्पर्य यह

સમ્યગ્જ્ઞાનના મતિશ્રુત આદિ પંચ ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ—

પૂર્વોક્ત સમ્યગ્જ્ઞાન પાંચ પ્રકારનું છે-(૧) મતિ (૨) શ્રુત (૩) અવધિ (૪) મનઃ પર્યવ અને (૫) કેવળજ્ઞાન આભિનિબોધિક રૂ-જ્ઞાનને મતિજ્ઞાન-કહે છે. જે જ્ઞાનને આવૃત્ત–આચ્છાદિત કરે તે જ્ઞાનાવરણ કહેવ ય છે. આવરણ ત્રણ પ્રકારના હોય છે—મનોગત ,ઈન્દ્રિયગત અને વિષયગત. માત્સર્ય આદિ મનોગત આવરણ છે, કાચ-કામલાદિક રોગ ઈન્દ્રિયગત આવરણ છે. (કાચ નાનો આખોનો એક રોગ હોય છે જે કાચબિન્દુ નામથી પણ પ્રસિદ્ધ છે,) સૂક્ષ્મતા, ગાઢ અન્ધકારથી વ્યાપ્ત થવું વગેરે વિષયગત આવરણ છે. આવરણનો સર્વથા નાશ થવો ક્ષય કહેવાય છે. આવરણ વિદ્યમાન તો હોય પરન્તુ ઉદ્ભૂદ (પ્રકટ) ન હોય તો એવી અવસ્થાને ઉપશમ કહે છે.

મતિજ્ઞાનાવરણનો ક્ષયોપશમ થવાથી ઇન્દ્રિય તેમજ મનના નિમિત્તથી યથાર્થ જે જ્ઞાન થાય છે તે મતિજ્ઞાન કહેવાય છે તાત્પર્ય એ છે કે મતિજ્ઞાના-

मनुते सा मति रुच्यते। तथा च-मन्यते इन्द्रियमनोद्वारेण नियतं वस्तु परिच्छिद्य- तेऽनयेति मतिः योग्य देशावस्थितवस्तुविषयक इन्द्रिय मनोनिमित्तकज्ञानविशेषो मतिज्ञान मुच्यते। तथा च मतिज्ञानावरणस्य क्षयोपशमे प्रथमतो जायमानं मनना त्मकं ज्ञान मित्यर्थः मननान्मतिरिति व्युत्पत्तेः ततो मतिज्ञानजन्यं यत् अस्पष्टम् ज्ञानं तत्-श्रुतज्ञानमुच्यते इदञ्च ज्ञानद्वयं परोक्षं भवति। ततोऽवच्छिन्नो मर्यादित सीमितो विषयो यस्य तादृशमिदं मीदृश मित्याकारकं ज्ञानमवधिज्ञानम्। श्रूयते इति श्रुतं शब्दः तत्सम्बन्धि ज्ञानं श्रुतज्ञान मुच्यते श्रवणं वा श्रुतं शब्द ज्ञानविशेषः तथा च-भाषमाणस्य शब्दं शृण्वतः पुस्तकादि न्यस्तलिपिं वा चक्षुषा पश्यतो यज्ज्ञानं तत्-श्रुतज्ञानमवसेयम्। इदञ्च ज्ञानद्वयं परोक्षं भवति, यद्वा- श्रवणं श्रुतं वाच्य वाचक भावपुरस्सरीकरणेन शब्दसम्बद्धार्थग्रहणहेतुरुपलब्धि- विशेषः श्रुतज्ञान मुच्यते। इदञ्च ज्ञानद्वयं परोक्षं भवति, ततोऽवच्छिन्नो मर्यादितः

है कि मतिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर सर्वप्रथम मननात्मक जो ज्ञान होता है, वह मतिज्ञान कहलाता है। मतिज्ञान के पश्चात् वाच्य-वाचक भाव संबन्ध के आधार पर जो ज्ञान होता है, वह श्रुत ज्ञान कहलाता है। जो सुना जाय वह शब्द-शब्द संबन्धी ज्ञान श्रुत- ज्ञान है। अथवा सुनना श्रुत कहलाता है। वक्ता के द्वारा प्रयुक्त शब्द को श्रवण करके उसके अर्थ (वाच्य) को जानना श्रुतज्ञान कह लाता है। तात्पर्य यह है कि वाच्य-वाचकभाव संबन्ध के आधार पर शब्द के साथ सम्बद्ध अर्थ को ग्रहण करने वाला ज्ञान श्रुतज्ञान कह- लाता है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान-दोनों परोक्ष हैं।

इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना जिस ज्ञान के द्वारा मर्या- दित रूपी पदार्थों का बोध हो वह अवधिज्ञान कहलाता है। जो अवधि

વરણ કર્મનો ક્ષયોપશમ થવાથી સર્વપ્રથમ મનનાત્મક જે જ્ઞાન થાય છે તે મતિજ્ઞાન કહેવાય છે. મતિજ્ઞાન પછી જે વાચ્ય-વાચક ભાવ સંબંધના આધારે જે જ્ઞાન થાય છે તે શ્રુતજ્ઞાન કહેવાય છે જે સાંભળી શકાય તે શબ્દ, શબ્દ સંબંધી જ્ઞાન શ્રુતજ્ઞાન છે. અથવા સાંભળવું શ્રુત કહેવાય છે વક્તા દ્વારા વપરાયેલા શબ્દનું શ્રવણ કરીને તેના અર્થને (વાચ્ય) જાણવો શ્રુતજ્ઞાન કહેવાય છે તાત્પર્ય એ છે કે વાચ્ય-વાચકભાવ સંબંધના આધારે શબ્દની સાથે સમ્બદ્ધ અર્થને ગ્રહણ કરનાર જ્ઞાન શ્રુતજ્ઞાન કહેવાય છે. મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન-બંને પરોક્ષ છે.

ઇન્દ્રિય અને મનની સહાયતા વગર જે જ્ઞાન દ્વારા મર્યાદિત રૂપી પદાર્થો નો બોધ થાય તે અવધિજ્ઞાન કહેવાય છે જે અવધિ અર્થાત્ રૂપી દ્રવ્યોને

सीमितो विषयो यस्य तादृशमिदं मीदृशमित्याकारकं ज्ञानम् अवधिज्ञान मुच्यते। अवधीयते द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावैः परिच्छिद्यते विषयोऽनेनेति व्युत्पत्तेः, यद्वा–ऽधस्ताद् विप्रज्ञानबहुतरविषयग्रहणा दवधिरुच्यते, अवशब्दोऽधः शब्दार्थः अव–अधो विस्तृतं वस्तु धीयते–परिच्छिद्यतेऽनेनेति–अवधिः, यद्वा–अवधिमर्यादा रूपिष्वेव द्रव्येषु परिच्छेदकतया ज्ञानम् अवधिज्ञानम्। देवाः खलु अवधिज्ञानेन सप्तमनरकपर्यन्तं पश्यन्ति। उपरि पुनरल्पमेव स्वविमानदण्डपर्यन्तं पश्यन्ति। एवम्–मात्सर्यादि ज्ञावरणक्षयोपशमे सति अन्य मनोगतस्याऽर्थस्य स्फुटं परि-

---

अर्थात् रूपी द्रव्यों का जानने की मर्यादा से युक्त हो वह अवधिज्ञान अथवा जो ज्ञान अधस्तन अर्थात् नीचि दिशा में अधिक जाने वह अवधिज्ञान। यहां 'अव' शब्द अधः अर्थात् नीचे के अर्थ में है।

देव अवधिज्ञान से सातवें नरक तक देखते है मगर ऊपर थोडा ही देखपाते हैं–केवल अपने विमान के दण्ड पर्यन्त ही।

मनःपर्यायज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर दूसरे के मनोगत पर्यायों को साक्षात् रूप से जानने वाला ज्ञान मनःपर्ययज्ञान कहलाता है। यह ज्ञान परमनोद्रव्यों और उनके पर्यायों को ही प्रत्यक्ष जानता है मगर मन द्वारा चिन्तित घट आदि बाह्य पदार्थों को नहीं जानता। उन्हें अनुमान से ही जानता है। तात्पर्य यह है कि जब कोई संज्ञी जीव किसी पदार्थ का मनन–चिन्तन करता है तब उस चिन्तनीय पदार्थ के अनुरूप उसके मन के पर्याय उत्पन्न होते हैं। मनःपर्ययज्ञान

જાણવાની મર્યાદાથી યુક્ત હેય તે અવધિજ્ઞાન અથવા જે જ્ઞાન અધસ્તાત અર્થાત્ નીચી દિશામાં અધિક જાણે તે અવધિજ્ઞાન અહીં અવશબ્દ અધઃ અર્થાત્ નીચેના અર્થમાં છે.

દેવ અવધિજ્ઞાનથી સાતમી નરક સુધી જુએ છે પરંતુ ઉપર તે થોડુ જ જોઈ શકે છે– માત્ર પોતાના વિમાનના દણ્ડ પર્યન્ત જોઈ શકે છે.

મનઃ પર્યાયજ્ઞાનાવરણનો ક્ષયોપશમ થવાથી બીજાનાં મનોગત પર્યાયોને સાક્ષાત્ રૂપથી જાણનાર જ્ઞાન મનઃ પર્યવજ્ઞાન કહેવાય છે. આ જ્ઞાન પરમનો દ્રવ્યો અને તેના પર્યાયોને જ પ્રત્યક્ષ જાણે છે પરન્તુ મન દ્વારા ચિન્તિત ઘટ આદિ પણ પદાર્થોને જાણતો નથી. તેને અનુમાનથી જ જાણે છે તાત્પર્ય એ છે કે જ્યારે કોઈ સંજ્ઞી જીવ કોઈ પદાર્થનું મનન–ચિન્તન કરે છે ત્યારે તે ચિન્તનીય પદાર્થના અનુરૂપ તેના મનના પર્યાય ઉત્પન્ન થાય છે. મનઃ પર્યવજ્ઞાન તે પર્યાયોને સાક્ષાત જાણે છે અને તેના આધારે બાહ્ય પદાર્થોનુ

च्छेदकं ज्ञानम्-'इदमित्थंभूतमनवचिन्तितम्' इत्येवंरूपं ज्ञानं मनःपर्यवज्ञान मुच्यते। तपस्विनो जना यदर्थं तपः क्रियाविशेषं कुर्वन्ति तज्ज्ञान सकलद्रव्य पर्यायाऽवभासकम् अन्यज्ञानासंसृष्टं केवलज्ञानं व्यपदिश्यते। तच्च-मोक्षसाधकं भवतीति ॥४१॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः--पूर्वं तावद् मोक्षसाधनत्वेन सम्यग्ज्ञानं प्रतिपादितम्, सम्प्रति=तस्य मूलभेदान् प्रतिपादयितुमाह-'त च पंचविहं, मइसुयओहि मणपज्जव केवलनाण भेयओ' इति। तच्च पूर्वोक्तस्वरूपं सम्यग्ज्ञानं

उन पर्यायों को साक्षात् जानता है और उनके आधार पर बाह्य पदार्थ का अनुमान करता है। जैसे सामान्य ज्ञानवान् पुरुष किसी के चेहरे को प्रत्यक्ष देखता है और फिर चेहरो के आधार से उसके अन्तःकरण के क्रोध, करुणा, अनुराग आदि भावों का अनुमान करता है उसी प्रकार मनःपर्यवज्ञानी दूसरे के मनोद्रव्यों को प्रत्यक्ष देखता है और फिर मनोद्रव्यों के पर्यायों के आधार पर बाह्य पदार्थों का अनुमान करता है—'जाणइ बज्झेऽणुमाणाओ'. अर्थात् बाह्य पदार्थों को अनुमान से जानता है।

जिस ज्ञान के लिए तपस्वी जन तपश्चरण में प्रवृत्त होते हैं, वह सभी द्रव्यों और पर्यायों को जानने वाला एवं अन्य ज्ञानों से अछूता ज्ञान केवलज्ञान कहलाता है। यही ज्ञान मोक्ष का साधक होता है।४१।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले सम्यग्ज्ञान को मोक्ष का साधन कहा है, अब उसके मूलभेदों का प्रतिपादन करते हैं-

---

અભિમાન કરે છે. જેમ સામાન્ય જ્ઞાનવાન પુરૂષ કોઇના ચહેરાને પ્રત્યક્ષ જુએ છે અને પછી ચહેરાના અધારથી તેના અન્તઃકરણના ક્રોધ અનુરાગ આદિ ભાવોનું અનુમાન કરે છે. તે જ રીતે મનઃપર્યવજ્ઞાની બીજાના મનોદ્રવ્યોને પ્રત્યક્ષ જુએ છે અને પછી મનોદ્રવ્યોના પર્યાયોના આધાર પર બાહ્ય પદાર્થોનું અનુમાન કરે છે. કહ્યું પણ છે-'जाणइ बज्झेणुमाणाओ' અર્થાત્ બાહ્યપદાર્થોને અનુમાનથી જાણે છે.

જે જ્ઞાનને માટે તપસ્વીજન તપશ્ચર્યામાં પ્રવૃત્ત થાય છે તે બધા દ્રવ્યો અને બધાં પર્યાયોને જાણનાર તેમજ અન્ય જ્ઞાનોથી ન સ્પર્શેલું જ્ઞાન કેવળ જ્ઞાન કહેવાય છે. આજ જ્ઞાન મોક્ષનું સાધક હોય છે ॥ ૪૧ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—અગાઉ સમ્યક્જ્ઞાનને મોક્ષનું સાધન કહ્યું છે હવે તેના મૂળ ભેદોનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ

पञ्चविधं भवति मतिश्रुताऽवधि मनःपर्यव–केवलज्ञानभेदतः । तथा च–मतिज्ञानं श्रुतज्ञानम्–अवधिज्ञानं–मनःपर्यवज्ञानं–केवलज्ञान ञ्चेत्येवं तावत्–पञ्चविधं सम्यग्ज्ञानमवसेयम् । अवान्तरभेदास्तु–अनेकविधाः सन्तीति वक्ष्यते, तत्र–मननं मतिः परिच्छेदः, ज्ञप्तिर्ज्ञानं–वस्तु स्वरूपावधारणम्, मतिरूपं ज्ञानं–मतिज्ञानम्, इदमेवाऽऽभिनिबोधिकज्ञान मुच्यते । तच्च–श्रोत्रेन्द्रिय व्यतिरिक्त चक्षुरादीन्द्रिया नक्षरोपलब्धिरूपं मतिज्ञानं बोध्यम्, श्रूयते इति श्रुतम्, तच्च शब्दमात्रं बोध्यं, तस्यैव श्रूयमाणत्वात् तत्सम्बन्धिज्ञानं श्रुतज्ञान मुच्यते । यद्वा–श्रवणं श्रुतरूपं श्रुतं, शब्दज्ञान विशेष उच्यते भावे क्त प्रत्ययः, तच्च श्रुतज्ञानं भाषमाणस्य शब्द माकर्णयतः पुस्तकादिन्यस्तलिपिंवा–पश्यतो यज्ज्ञानं भवति तत्–श्रुतज्ञानं बोध्यम् । अवधि-

---

पूर्वोक्त सम्यग्ज्ञान पांच प्रकार का है–(१) मतिज्ञान (२) श्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मनःपर्यवज्ञान (५) केवलज्ञान । इनके अवान्तर भेद अनेक प्रकार से हैं, जिसका आगे कथन किया जाएगा।

मनन करना मति कहलाता है, जानना अर्थात् वस्तु के स्वरूप का अवधारण करना ज्ञान है । मतिरूप ज्ञान मतिज्ञान । इसे आभिनिबोधिक ज्ञान भी कहते हैं। पांचों इन्द्रियों से और मन से जो अनक्षरात्मक बोध होता है, उसे मतिज्ञान समझना चाहिए।

जो सुना जाय सो श्रुत। श्रुत शब्द ही है क्योंकि शब्द ही सुना जाता है। श्रुत संबंधी ज्ञान श्रुतज्ञान कहलाता है । अथवा श्रवण को अर्थात् शब्दज्ञान विशेष को श्रुत कहते हैं। यहां भाव में 'क्त' प्रत्यय हुआ है। किसी वक्ता के द्वारा उच्चारण किये गये शब्द को सुनने के पश्चात्

પૂર્વોક્ત સમ્યક્જ્ઞાન પાંચ પ્રકારનું છે—(૧) મતિજ્ઞાન (૨) શ્રુતજ્ઞાન (૩) અવધિજ્ઞાન (૪) મનઃપર્યવજ્ઞાન અને (૫) કેવળજ્ઞાન એમના અવાન્તર ભેદ અનેક પ્રકારથી છે જેમનું કથન હવે પછી કરવામાં આવશે.

મનન કરવું મતિ કહેવાય છે, જાણવું અર્થાત્ વસ્તુના સ્વરૂપનું અવધારણ કરવું જ્ઞાન છે. મતિરૂપ જ્ઞાન મતિજ્ઞાન એને આભિનિબોધિક જ્ઞાન પણ કહે છે. પાંચે ઇન્દ્રિયોથી અને મનથી જે અનક્ષરાત્મક બોધ થાય છે, તે મતિજ્ઞાન સમજવું જોઇએ.

જે સાંભળી શકાય તે શ્રુત, શ્રુત શબ્દનો જ પર્યાય છે કારણકે શબ્દ જ સાંભળી શકાય છે. શ્રુત સંબંધી જ્ઞાન શ્રુતજ્ઞાન કહેવાય છે. અથવા શ્રવણને શબ્દજ્ઞાન વિશેષ ને શ્રુત કહે છે. અહીં ભાવમાં 'ક્ત' પ્રત્યય લાગ્યો તે. કોઈ વક્તા દ્વારા બોલાયેલા શબ્દોને સાંભળ્યા બાદ તે શબ્દના અર્થનું જે જ્ઞાન

ज्ञानं तावद्-अवशब्दस्याऽधः शब्दार्थकत्वेनाऽधोधानादवधिः तद्रूपं ज्ञानं परिच्छेदः अवधिज्ञानम्, तच्चाऽधो विस्तृत सप्तमनरकपर्यन्तविषयक मनुत्तरविमान-वासिनां देवानाम् अवधिज्ञान मुच्यते। यद्वा-अवधि शब्दस्य मर्यादार्थकतया-ऽवच्छिन्नो मर्यादितः सीमितो विषयो यस्य तादृशं ज्ञानम् 'इदमीदृशम्' इत्या कारकमवधिज्ञान मुच्यते। अवधीयते द्रव्य-क्षेत्र-कालभावैः परिच्छिद्यते मर्यादी क्रियते विषयोऽनेनेति व्युत्पत्तिः, तच्चाऽमूर्त द्रव्यपरिहारेण मूर्त द्रव्यनिबन्धन-त्वादेव-सीमितत्वेनाऽवधिज्ञानपदेन व्यपदिश्यते तच्च-नरकादि चतुर्गतिष्वपि वर्तमानानां जीवानां निरिन्द्रियमनःनिरपेक्षं प्रतिविशिष्टक्षयोपशमहेतुकं पुद्गल-

उक्त शब्द के अर्थ का जो ज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान कहलाता है। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि कान के द्वारा शब्द को सुनना अथवा नेत्रों द्वारा लिपि-अक्षरों को देखना मतिज्ञान है, उसके अनन्तर उस शब्द के अर्थ का वाच्य-वाचक सम्बन्ध के आधार पर जो बोध होता है, वह श्रुतज्ञान है।

'अवधि' शब्द में जो 'अव' भाग है वह अधः अर्थात् नीचे का वाचक है। अवधिज्ञान निची दिशा में अधिक विस्तृत होता है। अनुत्तर विमानवासी देव अवधिज्ञान से सप्तम नरक पर्यन्त जानते देखते हैं। अथवा अवधि का अर्थ है मर्यादा। जो ज्ञान मर्यादा युक्त है वह अवधिज्ञान। अवधिज्ञान की मर्यादा यह है कि यह ज्ञान अमूर्त्त पदार्थों को छोडकर सिर्फ मूर्त द्रव्यों को ही जानता है। इस कारण यह मर्यादित-सीमित या अवधिज्ञान कहलाता है। यह ज्ञान चारों गतियों के जीवों को हो सकता है। इसमें इन्द्रिय और मन की सहायता

થાય છે તે શ્રુતજ્ઞાન કહેવાય છે· અત્રે એ યાદ રાખવું જોઈએ કે કાન વડે શબ્દને સાંભળવો અથવા નેત્રા દ્વાર લિપિ અક્ષરોંને જોવા મતિજ્ઞાન છે. આના અનન્તર તે શબ્દના અર્થનો વાચ્ય-વાચક સંબંધના આધારે જે બોધ થાય છે. તે શ્રુતજ્ઞાન છે.

અવધિ શબ્દમાં 'અવ' ભાગ છે તે અધ· અર્થાત્ નીચેનો વાચક છે. અવધિજ્ઞાન નીચી દશામાં અધિક વિસ્તૃત હોય છે. અનુત્તરવિમાનવાસી દેવ અવધિજ્ઞાન વડે સાતમી નરક સુધી જોઈ શકે છે અથવા અવધિનો અર્થ મર્યાદા છે. જે જ્ઞાન મર્યાદાયુકત છે તે અવધિજ્ઞાન અવધિજ્ઞાનની મર્યાદા એ છે કે આ જ્ઞાન અમૂર્ત્ત પદાર્થોને બાદ કરતા માત્ર મૂર્ત્ત દ્રવ્યોને જ જાણે છે. આથી તે મર્યાદિત સીમિત અથવા અવધિજ્ઞાન કહેવાય છે. આ જ્ઞાન ચારે ગતિઓના જીવોને થઈ શકે છે, એમાં ઈન્દ્રિય અને મનની સહાયતાની

परिच्छेदि देव-मनुष्य-तिर्यङ्-नारक स्वामिकमवधिज्ञानं भवति । तत्र-देवनारकाणां भवप्रत्ययिकं, मनुष्यतिरश्चाञ्च लब्धि प्रत्ययिकमवधिज्ञानं भवतीति विवेकः अवधि द्विविधो भवति यथार्थो विपरीतश्च । तत्र यथार्थोऽवधिः अवधिज्ञानम् विपरीतोऽवधि र्विभङ्गज्ञानं उच्यते । सम्यग्दृष्टे र्जीवस्य अवधिज्ञानं जायते, मिथ्यादृष्टे र्जीवस्य च विभङ्गज्ञानं जायते । मनःपर्यवज्ञानन्तु-मनस्तावद् द्विविधम्, द्रव्यमनो-भावमनश्चेति । तत्र-मनोवर्गणारूपं द्रव्यमन उच्यते, भावमनः पुनस्ता एव द्रव्यमनोवर्गणा जीवेनोपात्ताः सत्यश्चिन्त्यमाना भावमन उच्यते । तत्र प्रकृते-भावमनः परिगृह्यते तस्य भावमनसः पर्यवाणां पर्यवेषु वा

की अपेक्षा नहीं रहती-सीधा आत्मा से ही उत्पन्न होता है । अवधि ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है और रूपी द्रव्यों को ही जानता है । देवों और नारकों को भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है तथा मनुष्यों और तीर्यञ्चो को गुण प्रत्यय अवधिज्ञान होता है । कोई भी देव और नारक अवधिज्ञान से रहित नहीं होता जबकि मनुष्यों और तिर्यंचों में से किसी-किसी को ही होता है । अवधि दो प्रकार का होता है । सुलट और उलटा । सुलटे अवधि को अवधिज्ञान कहते हैं, और उलटे अवधि को विभंगज्ञान कहते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव को अवधिज्ञान होता है और मिथ्यादृष्टि को विभंग ज्ञान होता है ।

मन दो प्रकार का है-द्रव्यमन और भावमन । द्रव्यमन मनोवर्गणा के पुद्गलों से निर्मित होता है और आत्मा का मनन करने की शक्ति भावमन कहलाती है । यहां द्रव्यमन अभिप्रेत है । द्रव्यमन के पर्यायों का

અપેક્ષા રહેતી નથી સીધું આત્માથી જ ઉત્પન્ન થાય છે અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થાય છે અને રૂપી દ્રવ્યોને જ જાણે છે. દેવો અને નારકીના જીવોને ભવપ્રત્યય અવધિજ્ઞાન થાય છે તથા મનુષ્યો અને તિર્યંચોને ગુણ પ્રત્યય અવધિજ્ઞાન થાય છે. કોઇ પણ દેવ અને નારક અવધિજ્ઞાનથી રહિત હોતા નથી જ્યારે મનુષ્યો અને તિર્યંચોમાં કોઈ કોઈ ને જ હોય છે. અવધિ બે પ્રકારના હોય છે (સીધું અને ઉંધું) સીધા અવધિને અવધિજ્ઞાન કહે છે જ્યારે ઉંધા અવધિને વિભંગજ્ઞાન કહે છે, સમદૃષ્ટિજીવને અવધિજ્ઞાન થાય છે અને મિથ્યાદૃષ્ટિને વિભંગજ્ઞાન થાય છે.

મન બે પ્રકારના છે દ્રવ્યમન અને ભાવમન દ્રવ્યમન મનોવર્ગના પુદ્ગલોથી નિર્મિત થાય છે. અને આત્માની મનન કરવાની શકિત ભાવમન કહેવાય છે. અત્રે દ્રવ્યમન અભિપ્રેત છે. દ્રવ્યમનના પર્યાયોનું જે જ્ઞાન થાય

यद् ज्ञानं तन्मनःपर्यवज्ञानम्-भावमनः पर्यवाश्चैवंविधा बोध्याः। यथा-कश्चिज्जीवः-एवं चिन्तयेत् किं स्वभावः खल्वात्मा वर्तते ? ज्ञान स्वभावोऽमूर्तः कर्ता सुखादीना मनुभाविता इत्यादयो ज्ञेयविषयाऽध्यवसायाः परगता भवन्ति तानेव मनःपर्यवान् परमार्थतः समवबुध्यते, बाह्यांस्तु-मनःपर्यवान् अनुमानादेवाऽसौ जानाति तन्मनः पर्यवज्ञानं बोध्यम्। तथा च-'इदमित्थंभूतमनेन चिन्तितम्' इत्येवं रूपं ज्ञानं मनःपर्यवज्ञान मुच्यते तच्च-मनःपर्यवज्ञानं सार्धद्वयद्वीप समुद्रान्तर्वर्ति संज्ञि मनोद्रव्यालम्बनं भवति। केवलज्ञानन्तु-केवलपदेन सम्पूर्ण

जो ज्ञान होता है वह मनःपर्यव ज्ञान कहलाता है। तात्पर्य यह है कि-जैसे किसी पुरुष के अन्तःकरण में प्रेम, करुणा, क्रोध आदि किसी भाव के उदय होने पर उसके चेहरे की आकृति तदनुसार बदलती रहती है और उसके चेहरे को देखकर उन-उन भावों को समझा जा सकता है, इसी प्रकार जब कोई संज्ञी जीव किसी वस्तु का चिन्तन करता है तब उस वस्तु के अनुरूप द्रव्यमन की आकृतियां-अवस्थाएं भी पलटती रहती हैं। उन आकृतियों या अवस्थाओं अथवा पर्यायों को मनःपर्यवज्ञानी उसी प्रकार प्रत्यक्ष देखता है जैसे हम किसी के चेहरे को प्रत्यक्ष देखते हैं मन के उन पर्यायों को प्रत्यक्ष देखना-जानना ही मनःपर्यव ज्ञान है। मन के द्वारा जिन पदार्थों का चिन्तन किया जाता है उन पदार्थों को मनःपर्यवज्ञान नहीं जानता वे पदार्थ मन के पर्यायों के आधार पर किये जाने वाले अनुमान के द्वारा ही जाने जाते हैं, जैसे-इस पुरुषने घट का चिन्तन किया है, यदि ऐसा न किया होता तो उसके मन के पर्याय

છે તે મનઃપર્યયજ્ઞાન કહેવાય છે. સારાંશ આ છે—જેમ કોઈ પુરૂષનાં અન્તઃકરણમાં પ્રેમ, કરૂણા, ક્રોધ આદિ કોઇ ભાવનો ઉદય થવાથી તેના ચહેરાની આકૃતિ તદનુસાર બદલાતી રહે છે અને તેના ચહેરા (મુખમુદ્રા) ને જોઈને તે તે ભાવોને સમજી શકાય છે, એવીજ રીતે જ્યારે કોઇ સંજ્ઞી જીવ કોઈ વસ્તુનું ચિંતન કરે છે ત્યારે તે વસ્તુને અનુરૂપ દ્રવ્યમનની આકૃતિએ અવસ્થાઓ પણ બદલાતી રહે છે તે આકૃતિઓ અગર અવસ્થાઓ અથવા પર્યાયોને મનઃપર્યયજ્ઞાની તે જ રીતે પ્રત્યક્ષ જુવે છે જેમ આપણે કોઈના ચહેરાને પ્રત્યક્ષ જોઇએ છીએ મનના તે પર્યાયોને જોવા જાણવા એજ મનઃપર્યવજ્ઞાન છે. મન દ્વારા જે પદાર્થોનું ચિન્તન કરવામાં આવે છે તે પદાર્થોને મનઃપર્યવજ્ઞાન જાણતું નથી. તે પદાર્થ મનના પર્યાયોના આધાર પર કરાનાર અનુમાન દ્વારા જ જાણી શકાય છે. જેમકે-આ પુરૂષે ઘડાનું ચિન્તન કર્યું છે, જો એમ ન કર્યું

ज्ञेयं परिगृह्यते तस्य-तस्मिन् वा सकलज्ञेये तपः क्रियानुष्ठानविशुद्ध्यतिशया- दिना यद् ज्ञानं भवति तत्केवलज्ञान मुच्यते। तच्च-सर्वद्रव्यसामान्यपर्याय- परिच्छेदि भवति, यद्वा केवलशब्दस्याऽसहायार्थकतया केवलम् एकमेव मत्यादि ज्ञानासम्बद्धमात्यन्तिक ज्ञानावरणक्षयजन्यं केवलज्ञानमविद्यमानत्त्वेदं सकल पदार्थाऽवभासकं भवति, तत्र-मतिज्ञानस्य पञ्चावग्रहादयो भेदाः, श्रुतज्ञानस्याऽ- ङ्गाऽनङ्ग प्रविष्टादयः, अवधिज्ञानस्य भवप्रत्ययादयः, मनःपर्यवज्ञानस्य ऋजुमत्या- दयो भेदाः अग्रेऽभिधास्यन्ते, केवलज्ञानस्य तु भेदा न सन्तीति-बोध्यम् उक्तञ्च

ऐसे-घटानुरूप नहीं होते, इत्यादि। वह मनःपर्यवज्ञान अढाई द्वीप (मनुष्य लोक) में स्थित संज्ञी जीव के मनोद्रव्यों को जानता है।

जिस ज्ञान के द्वारा समस्त ज्ञेय पदार्थ जाने जाते हैं, वह केवल- ज्ञान कहलाता है। यह ज्ञान विशिष्टतर तपश्चरण एवं ध्यान आदि साधना से ज्ञानावरण कर्म का पूर्ण रूप से क्षय होने पर उत्पन्न होता है। यह समस्त द्रव्यों और समस्त पर्यायों को जानता है।

'केवल' शब्द का अर्थ असहाय भी है। इस अर्थ के अनुसार जो ज्ञान असहाय है अर्थात् मतिज्ञान आदि किसी भी ज्ञान की अपेक्षा नहीं रखता-अकेला ही होता है और ज्ञानावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न होता है, वह केवलज्ञान है।

इनमें से मतिज्ञान के चार भेद हैं-अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। श्रुतज्ञान के अंगप्रविष्ट, अनंगप्रविष्ट (अंगबाह्य) आदि

હોત તો એના મનના પર્યાય આવા ઘડાનુરૂપ ન હોત, વગેરે આ મનઃપર્ય- વજ્ઞાન અઢી દ્વીપ (મનષ્યલોક) માં સ્થિત સંજ્ઞી જીવના મનોદ્રવ્યોને જાણે છે.

જે જ્ઞાન વડે સમસ્ત જ્ઞેય પદાર્થ જાણી શકાય છે. તે કેવળજ્ઞાન કહેવાય છે. આ જ્ઞાન વિશિષ્ટતર તપશ્ચર્યા તેમજ ધ્યાન આદિ સાધનાથી જ્ઞાનાવરણ કર્મનો પૂર્ણરૂપથી ક્ષય થવાથી ઉત્પન્ન થાય છે. આ સમસ્ત દ્રવ્યો અને સમસ્ત પર્યાયોને જાણે છે.

કેવળ શબ્દનો અર્થ અસહાય પણ થાય છે. આ અર્થ અનુસાર જે જ્ઞાન અસહાય છે અર્થાત્ મતિજ્ઞાન આદિ કોઇ પણ જ્ઞાનની અપેક્ષા રાખતું નથી એકલું જ હોય છે અને જ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયથી ઉત્પન્ન થાય છે તે કેવળ જ્ઞાન છે.

આમાંથી મતિજ્ઞાનના ચાર ભેદ છે અવગ્રહ, ઈહા, અવાય અને ધારણા શ્રુતજ્ઞાનના અંગપ્રવિષ્ટ અનંગપ્રવિષ્ટ (અંગબાહ્ય) આદિ અવાન્તર ભેદ છે.

स्थानाङ्गे ५ स्थाने ३ उद्देशके ४६३ सूत्रे-'पंचविहे णाणे पण्णत्ते तं जहा-आभिणिबोहियणाणे-सुयणाणे ओहिणाणे मणपज्जवणाणे-केवलणाणे' इति, पञ्चविधं ज्ञानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा=आभिनिबोधिकज्ञानम्, श्रुतज्ञानम्, अवधिज्ञानम्, मनःपर्ययज्ञानम् केवलज्ञानम् इति ॥ एवमेव भगवतीसूत्रे-८ शतके २उद्देशके ३१८-सूत्रे अनुयोगद्वारसूत्रे, नन्दिसूत्रे चोक्तम् ॥४१॥

मूलम्—तत्थ मइसुयनाणे परोक्खे ॥४२॥

छाया—तत्र मति–श्रुतज्ञानं परोक्षम् ॥४२॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं सूत्रे-सम्यग्ज्ञानं पञ्चविधत्वेन प्रतिपादितम् मति-श्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानभेदात्, तेषु च पञ्चसु प्रथमद्वयं परोक्षम्, अन्तिम·

आवान्तर भेद हैं। अवधिज्ञान के भवप्रत्यय आदि भेद हैं और मनःपर्यवज्ञान के ऋजुमति आदि भेद हैं, जिनका कथन आगे किया जाएगा। केवलज्ञान के भेद नहीं होते हैं। स्थानांग सूत्र के पांचवें स्थानक के तृतीय उद्देशक में कहा है-'ज्ञान पांच प्रकार के कहे गए हैं-(१) आभिनिबोधिक ज्ञान (२) श्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मनः पर्यवज्ञान (५) और केवलज्ञान।

इसी प्रकार भगवती सूत्र में शतक ८, उद्देशक २ सूत्र ३१८ में, अनुयोगद्वार में तथा नन्दी सूत्र में भी कहा है ॥४१॥

'तत्थ मइ सुयनाणे परोक्खे' इत्यादि।

सूत्रार्थ—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं ॥४२॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्र में सम्यग्ज्ञान पांच प्रकार का प्रतिपादन किया गया है—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवलज्ञान। इन

અવધિજ્ઞાનના ભવપ્રત્યય આદિ ભેદ છે અને મનઃપર્યવજ્ઞાનના ઋજુમતિ આદિ ભેદ છે જેનું કથન હવે પછીથી કરવામાં આવશે. કેવળજ્ઞાનના ભેદ હોતા નથી સ્થાનાંગસૂત્રના પાંચમાં સ્થાનકના ત્રીજા ઉદ્દેશનમાં કહ્યું છે જ્ઞાન પાંચ પ્રકારના કહેલાં છે-(૧) આભિનિબોધિકજ્ઞાન (૨) શ્રુતજ્ઞાન (૩) અવધિજ્ઞાન (૪) મનઃ-પર્યવજ્ઞાન અને (૫) કેવળજ્ઞાન.

એજ પ્રમાણે ભગવતીસૂત્રમાં શતક ૮, ઉદ્દેશક ૨, સૂત્ર ૧૩૮માં, અનુયોગદ્વાર સૂત્રમાં તથા નન્દીસૂત્રમાં પણ કહેવામાં આવ્યું છે ॥ ૪૧ ॥

'તત્થ મઇસુયનાણે પચક્ખે' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—તજ્ઞાન અને શ્રતજ્ઞાન પરોક્ષ છે. ॥ ૪૨ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-પૂર્વસૂત્રમાં સમ્યગ્જ્ઞાન પાંચ પ્રકારના પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યા—મતિશ્રુત અવધિમનઃપર્યવ અને કેવળજ્ઞાન આ પાંચમાંથી આરંભના

त्रयञ्च प्रत्यक्षं व्यपदिश्यते इति प्रतिपादयितुं प्रथमं मतिश्रुतज्ञानद्वयस्य परोक्षत्वं प्ररूपयति-'तत्थ मइसुयनाणे परोक्खे' इति। तत्र-तेषु खलु पूर्वोक्तेषु मत्यादि ज्ञानेषु प्रथमद्वयं मतिश्रुतज्ञानं-मतिज्ञानं श्रुतज्ञानञ्च परोक्षं वर्तते, मतिज्ञानस्य चक्षुरादीन्द्रियाऽनपेक्षतयैवोपजायमानस्मरणात्मकविषयचिन्तनरूपतया परोक्षत्वं बोध्यम्। यथा-नाटकाद्यवलोकने जवनिकाऽपसारणा-ऽव्यवहित पूर्वकाले किं पात्र मागच्छतीत्यौत्सुक्येन दर्शकानां जवनिका प्रदेशे मनोव्यापार पूर्विकादृष्टिः संलग्ना भवति तथाविध ज्ञानस्यैव मतिज्ञानपदेन व्यवह्रियमाणत्वात् श्रुतज्ञानस्य च शब्द सम्बन्धाज्जायमानतया परोक्षत्वं बोद्धव्यम् ॥४२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावत्-सम्यग्ज्ञानं मोक्षसाधनं पञ्चविधं प्ररूपितम् मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानभेदात् तत्र-प्रथमद्वयं-मतिश्रुतज्ञानरूपं परोक्षं

पांच में से प्रारंभ के दो परोक्ष और अन्तिम तीन प्रत्यक्ष हैं। यह प्रतिपादन करने के लिए पहले मतिज्ञान और श्रुतज्ञान को परोक्ष कहते हैं-

पूर्वोक्त पांच ज्ञानों में से प्रारंभ के दो अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं। जो ज्ञान इन्द्रिय या मन रूप पर निमित्त से उत्पन्न हो वह परोक्ष कहलाता है। मतिज्ञान इन्द्रियों की और मन की सहायता से उत्पन्न होता है, अतएव वह परोक्ष है और श्रुतज्ञान मन के निमित्त से उत्पन्न होने के कारण परोक्ष है। इसी प्रकार प्रकाश एवं परोपदेश आदि बाह्य कारणों से जनित होने के कारण भी ये दोनों ज्ञान परोक्ष कहलाते हैं ॥४२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पहले मोक्ष के साधन सम्यग्ज्ञान के पांच भेद कहे गये हैं-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवल ज्ञान। इनमें से प्रारंभ के दो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं और

બે પરોક્ષ, જ્યારે અન્તિમ ત્રણ પ્રત્યક્ષ છે, એવું પ્રતિપાદન કરવાના આશયથી પહેલા મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનને પરોક્ષ કહીએ છીએ

પૂર્વોક્ત પાંચ જ્ઞાનોમાંથી આરંભના બે અર્થાત્ મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન પરોક્ષ છે જે જ્ઞાન ઇન્દ્રિય અથવા મન રૂપ નિમિત્તથી ઉત્પન્ન થાય તે પરોક્ષ કહેવાય છે. મતિજ્ઞાન ઇન્દ્રિયોની તથા મનની સહાયતાથી ઉત્પન્ન થાય છે આથી તે પરોક્ષ છે. એવી જ રીતે પ્રકાશ તેમજ પરોપદેશ આદિ બાહ્ય કારણોથી ઉત્પન્ન થવાના કારણે પણ આ બંને જ્ઞાન પરોક્ષ કહેવાય છે ।૪૨।

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા મોક્ષના સાધન સમ્યગ્જ્ઞાનના પાંચ ભેદ કહેવામાં આવ્યા છે મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાન, મનઃપર્યવજ્ઞાન અને કેવળજ્ઞાન આમાંથી આરંભના બે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન પરોક્ષ છે અને

वर्तते, इति प्रतिपादयितुं प्रथमं मतिश्रुतज्ञानद्वयस्य परोक्षत्वं प्ररूपयति-'तत्थ मइसुयनाणे परोक्खे' इति तत्र-तेषु मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानेषु प्रथमद्वयं मतिश्रुतज्ञानम्, मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं च परोक्षं व्यपदिश्यते। तत्र-मतिज्ञानस्य चक्षुरादीन्द्रियानपेक्षतयैवोपजायमानस्मरणात्मकविषयचिन्तनरूपतया परोक्षत्वं बोध्यम्। स्मरणात्मकस्यैव मतिज्ञानस्य परोक्षत्वेन विवक्षितत्वात् तेन-सांव्यावहारिकस्य मतिज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वेऽपि न कश्चिद् विरोधः। एवं श्रुतज्ञानस्यापि शब्दाज्जायमानत्वेन परोक्षत्वमवगन्तव्यम्। वस्तुतस्तु-अक्षः-आत्मा तस्मात्पराणीन्द्रियाणि मनश्च प्रकाशोपदेशादि च बाह्यनिमित्तं प्रतीत्याऽपेक्ष्य तदावरणकर्मक्षयोपशमजन्यत्वात् मतिज्ञानस्य श्रुतज्ञानस्य च परोक्षत्वमवगन्तव्यम्। परैरिन्द्रियादिभि रुपेक्ष्यते-सिच्यतेऽभिवृह्यते इति परोक्षपद

अंतिम तीन अर्थात् अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान प्रत्यक्ष हैं, इस भेद का प्रतिपादन करने के लिए पहले मति-श्रुतज्ञान को परोक्ष बतलाते हैं—

मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवलज्ञान में से पहले के दो अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष कहलाते हैं। जो ज्ञान आत्मा से भिन्न किसी पर निमित्त से उत्पन्न होता है वह परोक्ष कहलाता है। मतिज्ञान पांचों इन्द्रियों से और मन से उत्पन्न होता है, अतएव वह परोक्ष है। इसी प्रकार श्रुतज्ञान भी मनोजन्य होने के कारण परोक्ष है। वास्तव में इन्द्रियां और मन आत्मा से पर-भिन्न हैं और ये दोनों ज्ञान इन परनिमित्तों से तथा प्रकाश और परोपदेश आदि बाह्य निमित्तों से उत्पन्न होते हैं, इस कारण परोक्ष हैं। परोक्ष शब्द की व्युत्पत्ति

છેલ્લા ત્રણ અર્થાત્ અવધિજ્ઞાન મનઃપર્યવજ્ઞાન તથા કેવળજ્ઞાન પ્રત્યક્ષ છે આ ભેદનું પ્રતિપાદન કરવા માટે પ્રથમ મતિ શ્રુતજ્ઞાનને પરોક્ષ બતાવીએ છીએ

મતિ શ્રુત અવધિ મનઃપર્યવ અને કેવળજ્ઞાનમાંથી પહેલા બે અર્થાત્ મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન પરોક્ષ કહેવાય છે. જે જ્ઞાન આત્માથી ભિન્ન કોઈ બીજા નિમિત્તથી ઉત્પન્ન થાય છે તે પરોક્ષ કહેવાય છે- મતિજ્ઞાન પાંચે ઇન્દ્રિયોથી અને મનથી ઉત્પન્ન થાય છે આથી તે પરોક્ષ છે એવી જ રીતે શ્રુતજ્ઞાન પણ મનોજન્ય હોવાથી પરોક્ષ છે. હકીકતમાં ઇન્દ્રિયો અને મન આત્માથી પર ભિન્ન છે અને આ બંને જ્ઞાન આ પરનિમિત્તોથી તથા પ્રકાશ અને પરોપદેશ આદિ બાહ્ય નિમિત્તોથી ઉત્પન્ન થાય છે એ કારણ પરોક્ષ છે. પરોક્ષ શબ્દની વ્યુત્પત્તિ આ પ્રમાણે છે પર અર્થાત્ ઇન્દ્રિય આદિથી જે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય અથવા અક્ષ અર્થાત્ આત્માથી પર

व्युत्पत्तिः अक्षादात्मनः परावृत्तं वा परोक्षमिति व्युत्पत्तिः तथा च-अक्षस्याऽऽत्मरूपस्य परेभ्य इन्द्रियादिभ्यो यद् जायते तत्परोक्षम् अपौद्गलिकत्वादरूपी जीवो वर्तते, द्रव्येन्द्रियमनांसितु-पौद्गलिकत्वाद् रूपीणि वर्तन्ते ततश्च जीवापेक्षया पराणि-अन्यानि द्रव्येन्द्रियमनांसि तेभ्यः पौद्गलिकेभ्यो द्रव्येन्द्रिय मनोभ्योऽक्षस्य जीवस्य यज्ज्ञानमुत्पद्यते तत्परोक्ष ज्ञानम् । तच्च द्विविधं मतिज्ञानरूपं श्रुतज्ञानञ्च परोक्ष मुच्यते । उक्तञ्च स्थानाङ्गादौ-'दुविहे नाणे पण्णत्ते, तं जहा-पच्चक्खे चेव-परोक्खे चेव, परोक्खेणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अभिणिबोहिय णाणे चेव, सुयणाणे चेव' इति द्विविधं ज्ञानं प्रज्ञप्तम् तद्यथा-प्रत्यक्षञ्चैव परोक्षं चैव, परोक्षं ज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानं चैव श्रुतज्ञानंचैव इति ॥४२॥

मूलम्—ओहिमणपज्जवकेवलणाणे पच्चक्खे ॥४३॥

छाया—'अवधि मनःपर्यवकेवलज्ञानं प्रत्यक्षम् ॥४३॥

इस प्रकार है-पर अर्थात् इन्द्रिय आदि से जो ज्ञान उत्पन्न हो अथवा अक्ष अर्थात् आत्मा से पर-इन्द्रियादि से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह परोक्ष कहलाता है। जीव अपौद्गलिक होने से अरूपी है और इन्द्रियां तथा द्रव्यमन पौद्गलिक होने के कारण रूपी हैं। भावेन्द्रिय और भाव-मन भी कारण होने के कारण कर्त्ता आत्मा से भिन्न हैं अर्थात् पर हैं। इन पर निमित्तों से अक्ष (आत्मा) को जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे परोक्षज्ञान समझना चाहिए। परोक्ष ज्ञान दो हैं-मतिज्ञान और श्रुतज्ञान।

स्थानांग सूत्र में कहा है-ज्ञान दो प्रकार का कहा है-प्रत्यक्ष और परोक्ष। भी दो प्रकार का है-आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान ॥४२॥

'ओहिमणपज्जव केवल' इत्यादि।

सूत्रार्थ—अवधि-मनःपर्यव और केवलज्ञान प्रत्यक्ष हैं ॥४३॥

ઈન્દ્રિયાદિથી જે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તે પરોક્ષ કહેવાય છે. જીવ અપૌદ્ગલિક હોવાથી અરૂપી છે અને દ્રવ્યેન્દ્રિયો તથા દ્રવ્યમન પૌદ્ગલિક હોવાથી રૂપી છે. ભાવેન્દ્રિયો અને ભાવમન પણ કરણ હોવાના કારણે કર્તા આત્માથી ભિન્ન છે અર્થાત્ પર છે. આ પરનિમિત્તોથી અક્ષ (આત્મા) ને જે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તેને પરોક્ષ સમજવા જોઈએ પરોક્ષ જ્ઞાન બે છે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન

સ્થાનાંગસૂત્રમાં કહ્યું છે- 'જ્ઞાન બે પ્રકારના કહ્યા છે પ્રત્યક્ષ અને પરોક્ષ. પરોક્ષ જ્ઞાન પણ બે પ્રકારના છે આભિનિબોધિકજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન' ॥૪૨॥

'ઓહિમણપજ્જવકેવલ' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—અવધિ મનઃપર્યવ અને કેવળજ્ઞાન પ્રત્યક્ષ છે ॥ ૪૩ ॥

तत्त्वार्थदीपिका--पूर्वं खलु मोक्षसाधकतया प्रतिपादितस्य सम्यग्ज्ञानस्य मतिश्रुतावधि मनःपर्यवकेवलज्ञानभेदेन पञ्चविधत्वप्रतिपादनात् तत्र प्रथमद्वयं मतिश्रुतज्ञानं परोक्षं वर्तते इत्युक्तम् सम्प्रति-अन्तिमत्रयस्याऽवधि-मनःपर्यव-केवलज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वं प्रतिपादयितुमाह-'ओहिमणपज्जवकेवलनाणे पच्चक्खे' इति । अवधिमनःपर्यवकेवलज्ञानम्- पूर्वोक्तस्वरूपम्, अवधिज्ञानं-मनःपर्यव-ज्ञानं-केवलज्ञानं चेत्येतत् त्रितयं प्रत्यक्षमुच्यते । नतु-परोक्षम् । अक्ष्णोति-व्याप्नोति-जानातिवा इत्यक्ष आत्मा, तमेवा-ऽक्षमात्मानं प्राप्तक्षयोपशमं प्रक्षी-

तत्त्वार्थदीपिका—पहले मोक्ष के साधक सम्यग्ज्ञान के मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवलज्ञान के भेद से पांच भेद प्रतिपादन किये गए, उनमें से मति और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं, यह पहले कहा जा चुका है। अब अन्तिम अर्थात् अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान प्रत्यक्ष हैं, ऐसा निरूपण करते हैं-

अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान प्रत्यक्ष कहलाते हैं। अक्ष अर्थात् आत्मा को, ज्ञानावरण का क्षयोपशम क्षय होने पर जो प्रतिनियत सम्यग्ज्ञान होता है, वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है। अथवा ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम या क्षय से इन्द्रिय और मन की सहायता के विना, केवल आत्मा से ही जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष कहलाता है। वह निश्चयनय से तीन प्रकार का है-अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान। इन तीनों में अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान क्षयोपशम से होते हैं एवं केवलज्ञान क्षय से होता है।

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલાં મોક્ષના સાધક સમ્યક્જ્ઞાનના મતિ, શ્રુત, અવધિ મનઃપર્યવ અને કેવળજ્ઞાનના ભેદથી પાંચ ભેદ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યા. તેમાંથી મતિ અને શ્રુતજ્ઞાન પરોક્ષ છે એ પહેલા કહેવાઇ ગયું હવે અંતિમ ત્રણ અર્થાત્ અવધિજ્ઞાન મનઃપર્યજ્ઞાન અને કેવળજ્ઞાન પ્રત્યક્ષ છે, એવું નિરૂપણ કરીએ છીએ

અવધિજ્ઞાન, મનઃપર્યયજ્ઞાન અને કેવળજ્ઞાન પ્રત્યક્ષ કહેવાય છે. અક્ષ અર્થાત્ આત્માને, જ્ઞાનાવરણનો ક્ષયોપશમ અથવા ક્ષય થવાથી પ્રતિનિયત સમ્યક્જ્ઞાન થાય છે તે સમ્યક્જ્ઞાન કહેવાય છે. અથવા કર્મના ક્ષયોપશમ અથવા ક્ષયથી ઇન્દ્રિય અને મનની સહાયતા વગર માત્ર આત્માથીજ જે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તે પ્રત્યક્ષ કહેવાય છે તે નિશ્ચયનયથી ત્રણ પ્રકારનું છે અવધિજ્ઞાન મનઃપર્યવજ્ઞાન અને કેવળજ્ઞાન આ ત્રણેયમાં અવધિજ્ઞાન અને મનઃપર્યવજ્ઞાન ક્ષયોપશમથી થાય છે. અને કેવળજ્ઞાન ક્ષયથી થાય છે.

णावरणं च प्रतिनियतं यत्सम्यग्ज्ञानं तत्–प्रत्यक्ष मुच्यते। यद्वा–प्राणिनां यद् ज्ञानदर्शनावरणयो क्षयोपशमाद्–क्षयाच्च इन्द्रियानिन्द्रियनिरपेक्षमात्मानमेव केवलमाश्रित्योत्पद्यते तत्प्रत्यक्षम्। तच्च प्रत्यक्षं निश्चयनयेन त्रिविधं भवति अवधिमनःपर्यव केवलज्ञानभेदात्। तत्रा–ऽवधिमनःपर्यवज्ञानापेक्षया परिप्राप्तक्षयोपशमम् इत्युक्तम्, केवलज्ञानाऽपेक्षयाच–प्रक्षीणावरणमित्युक्तम्। यद्यपि–अवधिदर्शनस्य केवलदर्शनस्य विभङ्गज्ञानस्य चाऽपि अक्ष–मात्मानं प्रतिनियतत्वात् प्रत्यक्षत्वं प्राप्नोति, तथापि–सम्यग्ज्ञानस्यैव तथाविधाक्षप्रतिनियतत्वविशेषणेन प्रत्यक्षत्व कथनात् अवधिदर्शनस्य–केवलदर्शनस्य च सम्यक्त्वेऽपि ज्ञानत्वाऽभावात् न प्रत्यक्षत्वं सम्भवति। विभङ्गज्ञानस्य च ज्ञानत्वेऽपि मिथ्याज्ञानत्वेन सम्यक्त्वाऽभावात् तस्यापि न प्रत्यक्षत्वमिति भावः। मतिज्ञानस्य–श्रुतज्ञानस्य च सम्यग्ज्ञानत्वेऽपि, अक्षात्–आत्मनः पराणीन्द्रियाणि मनश्च प्रकाशोपदेशादि च बाह्यं निमित्तं

यद्यपि अवधिदर्शन, केवलदर्शन और विभंगज्ञान भी सिर्फ आत्माश्रित हैं, अतएव उनमें भी प्रत्यक्षता का प्रसंग होता है किन्तु यहां सम्यग्ज्ञान का प्रकरण होने से उनका निराकरण हो जाता है। वे सम्यग्ज्ञान नहीं हैं। अवधिदर्शन और केवलदर्शन ज्ञानरूप न होने के कारण प्रत्यक्ष नहीं कहलाते। विभंगज्ञान यद्यपि ज्ञानरूप है किन्तु सम्यक् नहीं मिथ्याज्ञान है, इस कारण उसकी भी प्रत्यक्ष सम्यग्ज्ञानों में गणना नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त जो उपयोग विशेष का ग्राहक होता है उसी में सम्यक् असम्यक् का व्यवहार हो सकता है। दर्शनोपयोग सिर्फ सामान्य ग्राहक है, अतएव उसमें सम्यक्–असम्यक् का व्यवहार ही नहीं होता।

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान यद्यपि सम्यग्ज्ञान हैं किन्तु आत्मा से पर

જો કે અવધિદર્શન, કેવળદર્શન અને વિભંગજ્ઞાન પણ કેવળ આત્માશ્રિત છે. આથી તેમનામાં પણ પ્રત્યક્ષતાનો પ્રસંગ હોય છે. પરંતુ અહીં સમ્યક્ જ્ઞાનનું પ્રકરણ હોવાથી તેમનું નિરાકરણ થઇ જાય છે. તે સમ્યક્જ્ઞાન નથી અવધિદર્શન અને કેવળદર્શન જ્ઞાનરૂપ ન હોવાના કારણે પ્રત્યક્ષ કહેવાતા નથી. વિભંગજ્ઞાન જો કે જ્ઞાનરૂપ છે પરંતુ સમ્યક્ નહિ, મિથ્યાજ્ઞાન છે એ કારણે તેની પણ પ્રત્યક્ષ સમ્યક્જ્ઞાનોમાં ગણના કરી શકાય નહિ. આના સિવાય જે ઉપયોગ વિશેષનો ગ્રાહક હોય છે. તેમાંજ સમ્યક, અસમ્યક્નો વ્યવહાર થઇ શકે છે. દર્શનોપયોગ માત્ર સામાન્ય ગ્રાહક છે. આથી તેમાં સમ્યક્ અસમ્યક્નો વ્યવહારજ હોતો નથી.

મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન જો કે સમ્યક્જ્ઞાન છે. પરંતુ આત્માથી પર

प्रतीत्याऽपेक्ष्य तदावरणकर्मक्षयोपशमजन्यत्वात् तयोः परोक्षत्वमेव सम्भवति न तु प्रत्यक्षत्वम्, अक्षात्-आत्मनः पराङ्मुखत्वाद् वा परोक्षत्वं तयो रवसेयम् ॥४३॥

तत्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावत् सम्यग्ज्ञानस्य मोक्षम्प्रति हेतुभूतस्य मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानभेदात् पञ्चविधं प्रतिपादितम्, तत्र-प्रथमद्वयस्य मतिश्रुतज्ञानस्य परोक्षत्वं प्ररूपितम्, सम्प्रति-अन्तिमत्रयस्याऽवधिमनःपर्यवकेवलज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वमतिपादयितुमाह-'ओहि मणपज्जव केवलनाणे पच्चक्खे' इति। अवधिमनःपर्यवकेवलज्ञानम् अवधिज्ञानं मनःपर्यवज्ञानं केवलज्ञानं चेत्येतत् त्रितयं सम्यग्ज्ञानं प्रत्यक्षं व्यपदिश्यते। तत्र-ज्ञानावरणक्षयोपशमात् क्षयाच्च, इन्द्रियाऽनिन्द्रियद्वारनिरपेक्षतयाऽक्षमात्मानमेव केवलमाभिमुख्येन गृह्णत् अवधि-

---

इन्द्रिय, मन, प्रकाश एवं उपदेश आदि बाह्य निमित्तों की अपेक्षा रखते हैं, अतएव प्रत्यक्ष नहीं हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष के उक्त लक्षण में अतिव्याप्ति दोष नहीं है ॥४३॥

तत्वार्थनिर्युक्ति--पहले सम्यग्ज्ञान के मोक्ष का कारण कहा गया और उसके मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवल ज्ञान, इन पांच भेदों का कथन किया गया। इन पांचों भेदों में से मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं, यह भी कहा जा चुका। अब अंतिम तीन ज्ञानों की प्रत्यक्षता का प्रतिपादन करते हैं—

अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान, ये तीनों प्रत्यक्ष हैं। ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम और क्षय से, इन्द्रिय और मन की अपेक्षा न रखते, हुए केवल आत्मा से ही उत्पन्न होने के कारण ये तीनों ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाते हैं। अक्ष का अर्थ आत्मा है। ज्ञानावरण कर्म का क्षयो-

---

ઇન્દ્રિય મન પ્રકાશ અને ઉપદેશ આદિ બાહ્ય નિમિત્તોની અપેક્ષા રાખે છે. આથી પ્રત્યક્ષ નથી. આ રીતે પ્રત્યક્ષના ઉક્ત લક્ષણમાં અતિવ્યાપ્તિ દોષ નથી. ।૪૩।

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ-પહેલાં સમ્યકજ્ઞાનને મોક્ષનું કારણ કહેવામાં આવ્યું. તેમજ તેના મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાન મનઃપર્યવજ્ઞાન અને કેવળજ્ઞાન એ પાંચ ભેદોનું કથન કરવામાં આવ્યું. આ પાંચ ભેદોમાંથી મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન પરોક્ષ છે. એ પણ કહેવામાં આવ્યું. હવે અંતિમ ત્રણ જ્ઞાનોની પ્રત્યક્ષતાનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ.

અવધિજ્ઞાન, મનઃપર્યયજ્ઞાન અને કેવળજ્ઞાન આ ત્રણેય પ્રત્યક્ષ છે. જ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયોપશમ અને ક્ષયથી, ઇન્દ્રિય અને મનની અપેક્ષા ન રાખતાં થકા કેવળ આત્માથી જ ઉત્પન્ન થવાના કારણે આ ત્રણેય જ્ઞાન પ્રત્યક્ષ કહેવાય છે. અક્ષ નો અર્થ આત્મા છે. જ્ઞાનાવરણ કર્મનો ક્ષયોપશમ અથવા ક્ષય થવાથી

ज्ञानम् मनःपर्यवज्ञानं–केवलज्ञानञ्च सम्यग्ज्ञानरूपं समुदेति, अतः प्रत्यक्ष मुच्यते। एवञ्चा–ऽक्ष्णोति व्याप्नोति जानाति वेत्ति–अक्षः–आत्मा, तमेवाक्षमात्मानं प्राप्तक्षयोपशमम्–प्रक्षीणावरणं च प्रतिनियतं यत् सम्यग्ज्ञानं तत् प्रत्यक्षं व्यपदिश्यते। एवंविधं खलु सम्यग्ज्ञानम्–अवधिमनःपर्यवकेवलज्ञानमेव भवति नतु–मतिज्ञानं–श्रुतज्ञानं वा, तयोरक्षात् परभूतेन्द्रिय मनःप्रकाशोपदेशादि बाह्यनिमित्तापेक्षया जायमानत्वात्, अवधिदर्शनस्य केवलदर्शनस्य बाह्यनिमित्तापेक्षया जायमानत्वात्, अवधिदर्शनस्य केवलदर्शनस्य च तथाविधबाह्यनिमित्तानपेक्षतया जायमानत्वेऽपि ज्ञानत्वाभावादेव प्रत्यक्षत्वं न सम्भवति। विभङ्गज्ञानस्य तु–ज्ञानत्वेऽपि तस्य मिथ्याज्ञानत्वेन सम्यक्त्वाभावात् प्रत्यक्षत्वं नापद्यते इति सर्वं मनवद्यम्॥ उक्तञ्च स्थानाङ्गे २–स्थाने १ उद्देशके ७१ सूत्रे–'पच्चक्खे नाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा=केवलनाणे चेव, णो केवलनाणे चेव, णो केवलनाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–ओहिणाणे चेव, मणपज्जवणाणे चेव'–इति

पशम या क्षय होने पर अक्ष अर्थात् आत्मा को जो सम्यग्ज्ञान होता है, वह प्रत्यक्ष कहलाता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष सम्यग्ज्ञान अवधि, मनःपर्यव और केवलज्ञान ही है, मतिज्ञान और श्रुतज्ञान नहीं, क्योंकि ये दोनों ज्ञान अक्ष से भिन्न इन्द्रिय, मन, प्रकाश एवं परोपदेश आदि बाह्य निमित्तों से उत्पन्न होते हैं। यद्यपि अवधिदर्शन और केवलदर्शन भी बाह्य निमित्तों से उत्पन्न नहीं होते तथापि ज्ञान स्वरूप न होने के कारण उन्हें प्रत्यक्ष नहीं कहा जा सकता। विभंगज्ञान ज्ञान होने पर भी सम्यक् नहीं मिथ्या है। अतएव वह भी प्रत्यक्ष सम्यग्ज्ञानों की गणना में नहीं आता। इस प्रकार पूर्वोक्त विधान निर्दोष है।

स्थानांग सूत्र के द्वितीय स्थानक, प्रथम उद्देशक, सूत्र ७१ में कहा

અક્ષ અર્થાત્ આત્માને જે સમ્યક્‌જ્ઞાન થાય છ તે પ્રત્યક્ષ કહેવાય છે. આ રીતનું પ્રત્યક્ષ સમ્યક્‌જ્ઞાન અવધિ મનઃપર્યવ અને કેવળજ્ઞાન જ છે. મતિજ્ઞાન અનેશ્રુતજ્ઞાન નહિ. કારણકે એ બંને જ્ઞાન અક્ષથી ભિન્ન ઇન્દ્રીય, મન પ્રકાશ અને પરોપદેશ આદિ બાહ્યનિમિત્તોથી ઉત્પન્ન થાય છે. જો કે અવધિદર્શન અને કેવળદર્શન પણ બાહ્યનિમિત્તોથી ઉત્પન્ન થતાં નથી. તો પણ જ્ઞાનસ્વરૂપ ન હોવાને લીધે તેમને પ્રત્યક્ષ કહેવામાં આવતા નથી. વિભંગજ્ઞાન જ્ઞાન હોવા છતાં પણ સમ્યક્ નહિ પરંતુ મિથ્યા છે. આથી તે પણ પ્રત્યક્ષ સમ્યક્‌જ્ઞાનોની ગણનામાં આવતું નથી આ રીતે પૂર્વોકત વિધાન નિર્દોષ છે.

સ્થાનાંગસૂત્રના દ્વિતીયસ્થાનકના, પ્રથમ ઉદ્દેશક, સૂત્ર ૭૧માં કહ્યું છે—

प्रत्यक्षं ज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम् तद्यथा—केवलज्ञानञ्चैव, नो केवलज्ञानञ्चैव, नो केवल-ज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अवधिज्ञानञ्चैव-मनःपर्यवज्ञानञ्चैव इति ॥४३॥

मूलम्—मइनाणे दुविहे, इंदियनिमित्ते-नो इंदियनिमित्ते य ।४४।

छाया—'मतिज्ञानं द्विविधम्, इन्द्रियनिमित्तं नो इन्द्रियनिमित्तं च ॥४४॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत्-मतिज्ञानमात्मरूपाक्षातिरिक्तमिन्द्रियं मनश्चाऽपेक्ष्यजायमानत्वात् परोक्षं प्रतिपादितम् सम्प्रति तन्निमित्तद्वयभेदात्तस्य द्वैविध्यं प्रतिपादयति—'मइनाणे दुविहे' इत्यादि । मतिज्ञानं-पूर्वोक्तस्वरूपं द्विविधं बोध्यम्, तद्यथा—इन्द्रियनिमित्तम् नो इन्द्रियनिमित्तञ्चेति । तत्र—इन्दतीति इन्द्र आत्मा तस्यात्मन उपयोगलक्षणस्य ज्ञानदर्शनपरिणामिन स्तत्तावरणक्षयो-

---

है—'प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा—केवलज्ञान और नोकेवलज्ञान । नोकेवलज्ञान भी दो प्रकार का है—अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान ॥४३॥

'मइनाणे दुविहे इंदिय' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—मतिज्ञान दो प्रकार का है—इन्द्रियनिमित्तक और नोइन्द्रियनिमित्तक ॥४४॥

तत्त्वार्थदीपिका—आत्मा से भिन्न इन्द्रिय और मन के निमित्त से उत्पन्न होने के कारण मतिज्ञान को परोक्ष कहा गया है, अब उक्त दोनों निमित्तों के भेद से मतिज्ञान के दो भेद होते हैं, यह प्रतिपादन करते हैं—

पूर्वोक्त मतिज्ञान के दो भेद हैं—इन्द्रियनिमित्तक और अनिन्द्रिय निमित्तक । इन्द्र अर्थात् आत्मा उपयोग स्वभाववाला है, ज्ञानदर्शन परिणाम वाला है, तथापि स्वयं ही पदार्थों को जानने में असमर्थ हो रहा है,

---

'પ્રત્યક્ષજ્ઞાન બે પ્રકારના કહેવામા આવ્યા છે. જેમકે કેવળજ્ઞાન અને નો કેવળજ્ઞાન નો કેવળજ્ઞાન પણ બે પ્રકારના છે. અવધિજ્ઞાન અને મનઃપર્યયજ્ઞાન.' ॥૪૩॥

'मइनाणे दुविहे' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—મતિજ્ઞાન બે પ્રકારનાં છે—ઇન્દ્રિયનિમિત્તક અને નોઇન્દ્રિયનિમિત્તક ।૪૪।

તત્ત્વાર્થદીપિકા—આત્માથી ભિન્ન ઈન્દ્રિય અને મનનાં નિમિત્તથી ઉત્પન્ન થવાના કારણે મતિજ્ઞાનને પરોક્ષ કહેવામાં આવ્યું છે. હવે ઉકત બંને નિમિત્તોનાં ભેદથી મતિજ્ઞાનનાં બે ભેદ થાય છે એ પ્રતિપાદન કરીએ છીએ

પૂર્વોકત મતિજ્ઞાનનાં બે ભેદ છે ઇન્દ્રિયનિમિત્તક અને નો અનિન્દ્રિયનિમિત્તક ઈન્દ્ર અર્થાત્ આત્મા ઉપયોગસ્વભાવ છે, જ્ઞાનદર્શન પરિણામ વાળો છે, તો

क्षमे सति स्वयमर्थान् ग्रहीतुमसमर्थस्य यदर्थोपलब्धिनिमित्तं भवति तदिन्द्रिय-मुच्यते, तच्च स्पर्शनादिकमवसेयम्। नो इन्द्रियं मन उच्यते, तथा च-स्पर्शना-दीन्द्रियं निमित्तं यस्य तदिन्द्रियनिमित्तकं मतिज्ञानं भवति, एवं नो इन्द्रियं मनो निमित्तं यस्य तद्-नो इन्द्रियनिमित्तकं मतिज्ञानं भवति। एवञ्च-मतिज्ञानस्य पञ्चेन्द्रिय-मनोरूपानिन्द्रियभेदेन षट्कारणभेदात् षट्त्रिंशदधिकशतत्रयभेदा भवन्ति, तच्चाग्रे स्फुटी भविष्यति। अतएवेदं मतिज्ञानम् इन्द्रिय मनोनिमित्तकत्वात् सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षमपि व्यपदिश्यते, तथा च-मतिरेव स्मृति-प्रतिभा-बुद्धि-मेधा-चिन्ता-प्रज्ञा शब्देनापि व्यवह्रियते ॥४४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं मतिज्ञानस्येन्द्रियमनोनिमित्तकत्वेन परोक्षत्वं

अतएव पदार्थों की उपलब्धि में जो निमित्त होता है उसे इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रियां स्पर्शनादि के भेद से पांच है। नोइन्द्रिय का अर्थ मन है। इस प्रकार जो मतिज्ञान स्पर्शन आदि इन्द्रियों के निमित्त से होता है वह इन्द्रियनिमित्तक कहलाता है और जो नोइन्द्रिय अर्थात् मन के निमित्त से उत्पन्न होता है वह नोइन्द्रियनिमित्तक कहलाता है-इस प्रकार मतिज्ञान के छह कारण हैं-पांच इन्द्रियां और छठा मन। इन कारणों से तथा विषयभूत पदार्थों के भेद से मतिज्ञान के ३३६ भेद होते हैं, इसका स्पष्टीकरण आगे किया जाएगा। मतिज्ञान इन्द्रियों और मन के द्वारा उत्पन्न होने के कारण सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी कहलाता है। स्मृति, प्रतिभा, बुद्धि, मेधा, चिन्ता और प्रज्ञा शब्दों से भी मतिज्ञान का व्यवहार होता है ॥४४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—इन्द्रिय-मनोनिमित्तक होने से मतिज्ञान को

પણ સ્વયમ્ પદાર્થોને જાણવામાં અસમર્થ રહેલો છે. આથી પદાર્થોની ઉપલબ્ધિમા જે નિમિત્ત બને છે તેને ઇન્દ્રિય કહે છે. ઇન્દ્રિયો સ્પર્શનાદિનાં ભેદથી પાંચ છે નોઇન્દ્રિયનો અર્થ મન છે. આ રીતે જે મતિજ્ઞાન સ્પર્શન વગેરે ઇન્દ્રિયોના નિમિત્તથી થાય છે તે ઇન્દ્રિયનિમિતક કહેવાય છે અને જે નોઇન્દ્રિય અર્થાત્ મનના નિમિત્તથી ઉત્પન્ન થાય છે તે નોઇન્દ્રિયનિમિત્તક કહેવાય છે. આ રીતે મતિજ્ઞાનનાં છ કારણ છે પાચ ઇન્દ્રિયો અને છઠું મન આ કારણોથી તથા વિષયભૂત પદાર્થોના ભેદથી મતિજ્ઞાનનાં ૩૩૬. ભેદ થાય છે જેનું સ્પષ્ટીકરણ આગળ ઉપર કરવામાં આવશે. ઇન્દ્રિયો મતિજ્ઞાન અને મન વડે ઉત્પન્ન થવાના કારણે સાંવ્યવહારિક પ્રત્યક્ષપણ કહેવાય છે સ્મૃતિ, પ્રતિભા, બુદ્ધિ, મેધા, ચિંતા અને પ્રજ્ઞા શબ્દોથી પણ મતિજ્ઞાનનો વહેવાર થાય છે. ।૪૪।

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—ઇન્દ્રિય મનોનિમિત્તક હોવાથી મતિજ્ઞાનને પરોક્ષ

प्रतिपादितम्, सम्प्रति-तन्निमित्तद्वयभेदात्तस्य द्वैविध्यं प्रतिपादयति-'मइनाणे-दुविहे, इंदियनिमित्ते-नो इंदियनिमित्ते य'-इति। मतिज्ञानम्-बहिरङ्ग मन्तरङ्गश्चाऽर्थं यथा-ऽऽत्मा परिस्फुटं मन्यते सा मतिः तद्रूपं ज्ञानं मतिज्ञानं द्विविधं भवति, तद्यथा--इन्द्रियनिमित्तम् नो इन्द्रियनिमित्तञ्च। तत्र-ज्ञस्वभावस्या-त्मनः उपयोगलक्षणस्य ज्ञानदर्शनपरिणामिनोऽर्थान् स्वयं ग्रहीतुमसमर्थस्याऽर्थो-पलब्धिनिमित्तं यद् भवति तद्-इन्द्रिय मुच्यते। तच्च-स्पर्शनरसनादिकं बोध्यम्. नो इन्द्रियपदेन मन उच्यते तदुभयनिमित्तकं मतिज्ञानं भवति, तथाचे-न्द्रियमनोनिमित्तकत्वात् मतिज्ञानं सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षमपि व्यपदिश्यते। मतिरेव-स्मृति प्रत्यभिज्ञा प्रतिभाबुद्धि मेधा प्रज्ञा प्रभृति शब्दैरपि व्यवह्रियते। उक्तञ्च-'बुद्धिस्तात्कालिकी ज्ञेया मतिरागामि गोचरा। धीर्धारणावती मेधा प्रज्ञात्यातीतकालिकी॥ बुद्धिं नवनवोन्मेष शालिनीं प्रतिभां विदुः॥'

परोक्ष कहा है, अब दो निमित्तों के भेद से उसके दो भेदों का प्रति-पादन करते हैं--

मतिज्ञान दो प्रकार का है-इन्द्रियनिमित्तक और अनिन्द्रियनिमित्तक। आत्मा ज्ञान स्वभाववाला है, उपयोग लक्षण वाला है, ज्ञान-दर्शनप-रिणामवाला है किन्तु पदार्थों को स्वयं ग्रहण करने में असमर्थ है, अतएव पदार्थों को ग्रहण करने में जो निमित्त होता है, उसे इन्द्रिय कहते हैं। स्पर्शन, रसना आदि पांच इन्द्रियां हैं। नो इन्द्रिय का अर्थ मन है। इन दोनों कारणों से मतिज्ञान उत्पन्न होता हैं और इसी कारण उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी कहते है। मतिज्ञान ही स्मृति, प्रत्यभिज्ञा प्रतिभा, बुद्धि, मेधा प्रज्ञा आदि भी कहलाता है। कहा भी है-

जो वर्त्तमानकालविषयक हो अर्थात् जिससे वर्त्तमान की बात

કહ્યું છે. હવે બે નિમિત્તોનાં ભેદથી તેનાં બે ભેદનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ.

મતિજ્ઞાન બે પ્રકારનાં છે ઇન્દ્રિયનિમિત્તક અને અઇન્દ્રિયનિમિત્તક. આત્મા જ્ઞાન સ્વભાવવાળો છે ઉપયોગલક્ષણવાળો છે જ્ઞાન દર્શનપરિણામવાળો છે. પરંતુ પદાર્થોને જાતે ગ્રહણ કરવા માટે અશકત છે. આથી પદાર્થોને ગ્રહણ કરવામાં જે નિમિત્ત બને છે તેને ઇન્દ્રિય કહે છે સ્પર્શન રસના આદિ પાંચ ઇન્દ્રિયો છે. નોઇન્દ્રિયનો અર્થ મન છે. આ બંને કારણોથી મતિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે અને એ કારણે જ તેને સાંવ્યવહારિકપ્રત્યક્ષ પણ કહેવાય છે મતિજ્ઞાન જ સ્મૃતિ, પ્રત્યભિજ્ઞા-પ્રતિભા બુદ્ધિ, મેધા, પ્રજ્ઞા વગેરે પણ કહેવાય છે કહ્યુ પણ છે

જે વર્તમાન કાળ વિષયક હોય અર્થાત્ જેનાથી વર્તમાનની વાત જાણી શકાય તે બુદ્ધિ કહેવાય છે. આગામી કાળથી સંબંધ રાખવાવાળી બુદ્ધિને મતિ

अतीतार्थ ग्राहिणी प्रतीतिः-स्मृतिः 'इदन्ता तत्तावगाहिनी' तदेवेदम् इत्यादि बुद्धिः प्रत्यभिज्ञा, तथाचात्र-इन्द्रिय निमित्तमेकं मतिज्ञानम् अपरमनिन्द्रिय मनोनिमित्तम् अन्यत्पुनरिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तञ्चेति। तृतीयं मतिज्ञानं सूत्रस्थ चकारेण समुच्चीयते, तत्र-एकमिन्द्रियनिमित्तं मतिज्ञानम्, यथा-पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतीनामेकेन्द्रियाणां द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियाणा मसंज्ञिनां च पञ्चेन्द्रियाणां मनसोऽभावात् संजायते। अनिन्द्रिय मनोनिमित्तं स्मृतिरूपं ज्ञानम् इन्द्रियनिरपेक्ष भवति, तत्र चक्षुरादीन्द्रियव्यापाराभावात् इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तन्तु-जाग्रदवस्थायां स्पर्शनेन मनसा चोपयुक्तो जीवः कश्चित् स्पृशति-उष्णमिदं शीतञ्चेति। तत्रेन्द्रियनिमित्तं मतिज्ञानं स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणां पञ्चानामिन्द्रियाणां स्पर्शरसगन्धरूपशब्देषु पञ्चसु स्वविषयेषु संजायते अनिन्द्रियमनोनिमित्तञ्च स्मृतिरूपं

जानी जाय वह बुद्धि कहलाती है आगामी काल से संबन्ध रखने वाली बुद्धि को मति कहते हैं। धारणा वाली बुद्धि मेधा कहलाती है और अतीतकालीन वस्तु को विषय करने वाली प्रज्ञा कहलाती है। नई-नई सूझ वाली बुद्धि को प्रतिभा, पुरानी बात को याद करना स्मृति है। 'यह वही है' इस प्रकार भूत और वर्त्तमानकालिक पर्यायों की एकता को जानने वाली बुद्धि प्रत्यभिज्ञा कहलाती है। इस प्रकार एक मतिज्ञान इन्द्रियनिमित्तक और दूसरा मनोनिमित्तक है। कोई इन्द्रिय मनोनिमित्तक भी होती है? मतिज्ञान के इस तीसरे भेद का सूत्र में प्रयुक्त च शब्द से ग्रहण होता है। केवल इन्द्रियनिमित्तक मतिज्ञान पृथ्वीकाय अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय. और वनस्पतिकाय, इन एकेन्द्रियजीवों को तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियजीवों को होता है, क्योंकि इनमें मन का अभाव होता है। मनोनिमित्तक मतिज्ञान स्मरणरूप होता है और उसमें इन्द्रियों की अपेक्षा नहीं रहती, इन्द्रियों का

કહે છે. ધારણાવાળી બુદ્ધિ મેધા કહેવાય છે અને અતીત કાલિન વસ્તુને વિષય કરવાવાળી પ્રજ્ઞા કહેવાય છે. નવીનવી હૈયાઉકલત વાળી બુદ્ધિને પ્રતિભા, જૂની વાતને સંભારવી સ્મૃતિ છે. "આ તેજ છે" એ રીતે ભૂત અને વર્ત-વર્તમાનકાલિક પર્યાયોની એકતાને જાણનારી બુદ્ધિ પ્રત્યભિજ્ઞા કહેવાય છે. આ રીતે એક મતિજ્ઞાન ઇન્દ્રિય નિમિત્તક અને બીજું મનો નિમિત્તક છે. કોઈ ઇન્દ્રિય મનોનિમિત્તક પણ હોય છે. મતિજ્ઞાનનાં આ ત્રીજા ભેદનુ સૂત્રમાં વપરાયેલ 'ચ' શબ્દથી ગ્રહણ થાય છે માત્ર ઈન્દ્રિયનિમિત્તક મતિજ્ઞાન પૃથ્વીકાય, અપ્કાય તેજસ્કાય વાયુકાય અને વનસ્પતિકાય, એ એકેન્દ્રિય જીવોને તથા બેઇંદ્રિય તેઇંદ્રિય, ચૌઇંદ્રિય, તેમજ અસંજ્ઞિ પંચેન્દ્રિય જીવોને થાય છે કારણકે એમનામા મનનો અભાવ હોય છે મનોનિમિત્તક મતિજ્ઞાન સ્મરણ રૂપ હોય છે.

मतिज्ञानं भावमनसो विषयपरिच्छेदकतया परिणतिजन्यं भवति। तथा च- मतिज्ञानस्य पञ्चेन्द्रिय मनोरूपानिन्द्रियभेदेन षट्कारणभेदात् षट्त्रिंशदधिक शतत्रयभेदा भवन्ति ते च भेदा अग्रेऽभिधास्यन्ते ॥ उक्तञ्च नन्दिसूत्रे ३ 'से किं तं पच्चक्खं ? पच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा-इंदिय पच्चक्खं नो इंदियपच्चक्खं च'-इति, अथ किं तत् प्रत्यक्षम् ? प्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तम् तद्यथा-इन्द्रियप्रत्यक्षम्, नो इन्द्रिय प्रत्यक्षञ्च, इति। पुनस्तत्रैव नन्दि सूत्रे उक्तम् 'ईहा अपोहवीमंसा मग्गणाय गवेसणा। सन्ना सई मई पन्ना सव्वं आभिणिबोहिअं ॥ इति, ईहा अपोहो विमर्शो मार्गणा च गवेषणा। संज्ञा स्मृतिः मतिः प्रज्ञा सर्वमाभिनिबोधिकम् ॥४४॥

वहां व्यापार नहीं होता। तीसरा इन्द्रियमनोनिमित्तक मतिज्ञान उस समय होता है जब मनुष्य जागता हो और स्पर्शन आदि का तथा मन का उपयोग लगाए हो। जैसे कोई किसी वस्तु का स्पर्श करके सोचता है- यह शीत है, यह उष्ण है इत्यादि। इन्द्रियनिमित्तक मतिज्ञान स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र, इन पांच इन्द्रियों के विषय स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द का होता है। अनिन्द्रियनिमित्तक मतिज्ञान स्मृति रूप होता है। वह भावमन के विषय परिच्छेदक परिणमन से उत्पन्न होता है। पांच इन्द्रिय और मन, इन छह कारणों के भेद से तथा विषयभूत पदार्थों के भेद से मतिज्ञान के तीन सौ छत्तीस भेद होते हैं, उनका निरूपण आगे किया जाएगा। नन्दी सूत्र में कहा है—

प्रश्न—प्रत्यक्ष के कितने भेद है ?

उत्तर—प्रत्यक्ष के दो भेद हैं—इन्द्रियप्रत्यक्ष और नोइन्द्रियप्रत्यक्ष।

અને તેમાં ઇન્દ્રિયોની અપેક્ષા રહેતી નથી. ઇન્દ્રિયોનો ત્યાં વ્યાપાર હોતો નથી. ત્રીજુ ઇન્દ્રિયમનોનિમિત્તક મતિજ્ઞાન તે સમયે થાય છે જ્યારે મનુષ્ય જાગતો હોય અને સ્પર્શન વગેરેના તથા મનનો ઉપયોગ લગાડેલ હોય. જેમ કોઈ વસ્તુનો સ્પર્શ કરીને વિચારે છે આ ઠંડુ છે આ ગરમ છે. વગેરે ઇન્દ્રિયનિમિત્તક મતિજ્ઞાન સ્પર્શન રસન ઘ્રાણ, ચક્ષુ અને શ્રોત્ર આ પાંચ ઇન્દ્રિયોના વિષય સ્પર્શ, ગંધ, રસ, વર્ણ અને શબ્દનો હોય છે. અનિન્દ્રિય નિમિત્તક મતિજ્ઞાન સ્મૃતિરૂપ હોય છે. તે ભાવમનના વિષય પરિચ્છેદક પરિણમનથી ઉત્પન્ન થાય છે. પાંચ ઇન્દ્રિય અને મન એ છ કારણોના ભેદથી તથા વિષયભૂત પદાર્થોના ભેદથી મતિજ્ઞાનનાં ૩૩૬ ભેદ થાય છે. તેમનું નિરૂપણ પછીથી કરવામાં આવશે નંદીસૂત્રમાં કહ્યું છે.

પ્રશ્ન—પ્રત્યક્ષનાં કેટલા ભેદ છે ?

ઉત્તર—પ્રત્યક્ષનાં બે ભેદ છે ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ અને અઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ

मूलम्—तं च पुण चउव्विहं, उग्गहईहावायधारणा भेयओ ।४५।

छाया—तच्च पुनश्चतुर्विधम्—अवग्रहे-हा ऽवाय—धारणा भेदतः ॥४५॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावद् इन्द्रियानिन्द्रियानिमित्तभेदात् मतिज्ञानस्य द्वैविध्यं प्रतिपादितम्, सम्प्रति—तस्यैव मतिज्ञानस्य चातुर्विध्यं प्रतिपादयितुमाह—'तं च पुणच्चउव्विहे'—इत्यादि। तच्च पुनः पूर्वोक्तस्वरूपं मतिज्ञानं चतुर्विधं बोध्यम्, अवग्रहेहाऽवायधारणा भेदतः। तथा च—सांव्यवहारिक मतिज्ञानम्, प्रत्याक्षावग्रहरूपम्, ईहारूपम्, अवायरूपम्, धारणारूपञ्चेत्येवं चतुर्विधं भवति तत्र—सामान्यतः 'अयं पुरुष.' इत्येवं रूपं ज्ञानमवग्रह उच्यते। ततः

नन्दीसूत्र में ही फिर कहा गया है—'इहा, अपोह विमर्श, मार्गणा गवेषणा, संज्ञा, मति, स्मृति, और प्रज्ञा, यह सब आभिनिबोधिक ज्ञान हैं ॥४४॥

'तं च पुण चऊव्विहं' इत्यादि

सूत्रार्थ—मतिज्ञान चार प्रकार का है-(१) अवग्रह (२) ईहा (३) अवाय और (४) धारणा ॥४५॥

तत्वार्थदीपिका—पहले इन्द्रियनिमित्तक और अनिन्द्रिनिमित्तक के भेद से मतिज्ञान के दो भेदों का प्रतिपादन किया जा चुका है, अब उसी के चार भेदों का प्रतिपादन करते हैं—

पूर्वोक्त मतिज्ञान चार प्रकार का है-अवग्रह, इहा, अवाय और धारणा। परसामान्यग्राही दर्शनोपयोग के पश्चात् अपरसामान्य को ग्रहण करने वाला ज्ञान अवग्रह कहलाता है, जैसे—'यह पुरुष है।' अव-

---

नंदीसूत्रमां ज वळी कहेवामां आव्युं छे "इहा, अपोह, विमर्श, मार्गणा गवेषणा, संज्ञा, मति, स्मृति अने प्रज्ञा ए बधां आभिनिबोधिकज्ञान छे" ।४४।

'तं च पुण चउव्विहं' इत्यादि

सूत्रार्थ—मतिज्ञान ४ प्रकारना छे-(१) अवग्रह (२) ईहा अवाय अने धारणा. ॥ ४५ ॥

तवार्थदीपिका—पहेला इन्द्रियनिमित्तक अने अनिन्द्रियनिमित्तकना भेदथी मतिज्ञानना बे भेदोनु प्रतिपादन करवामां आव्युं छे. हवे तेना चार भेदोनुं प्रतिपादन करीए छीए

पूर्वोकत मतिज्ञान चार प्रकारनां छे अवग्रह, ईहा, अवाय अने धारणा. परसामान्यग्राही दर्शनोपयोगनी बहार अपर सामान्यने ग्रहण करनारुं ज्ञान अवग्रह कहेवाय छे जेमके "आ पुरुष छे.' अवग्रहनी पछी "आ दक्षिणी

किमयं दाक्षिणात्यः' उताहो–औदीच्यः इत्येवं संशये सति 'नूनमयं दाक्षिणात्य' इति ज्ञानमीहा उच्यते। इदञ्चोत्प्रेक्षारूपं मतिज्ञानम् उत्कटैककोटिक संभावनात्मकं भवति, नतु निश्चयात्मकम्, ततो भाषादि विशेषज्ञानाद् 'अयं दाक्षिणात्य एव' इत्येवं निश्चयात्मकं ज्ञानमवायः, ततश्च–तस्यैव दाक्षिणात्यस्य विषयस्य यत्खलु संस्कारजनकं ज्ञानमुत्पद्यते सा धारणा व्यपदिश्यते। यथा खलु धारणया कालान्तरे तद्विषयकं स्मरणमुपजायते, तथा च–यत्क्रमेणाऽवग्रहादीनामुत्पत्तिर्भवति तत्क्रमेणैव तेषां मत्रोपन्यासः कृतः प्रथमं विषयविषयि सन्निपाते सति दर्शनं भवति तदनन्तरं सामान्यतो–ऽर्थस्य ग्रहणमवग्रहः। तदनन्तरं

ग्रह के पश्चात् 'यह दक्षिणि है या उत्तरीय' इस प्रकार का संशय होने पर 'यह दक्षिणि होना चाहिए' इस प्रकार एक ओर को झुका हुआ जो ज्ञान होता है वह ईहाज्ञान कहलाता है। संशय में दोनों कोटियाँ समान होती हैं जब कि ईहा में एक कोटि की संभावना बढी हुई होती है, फिर भी ईहाज्ञान निश्चय की कोटि तक नहीं पहुंच पाता। तत्पश्चात् भाषा आदि की विशेषता से 'यह दक्षिणि ही है' ऐसा जो निश्चयात्मक ज्ञान होता है, वह अवाय कहलाता है। अवायज्ञान जब इतना दृढ हो जाता है कि संस्कार को उत्पन्न कर सके तब उसे धारणा के नाम से कहते हैं। इस धारणा ज्ञान से कालान्तर में स्मृति उत्पन्न होती है।

इस प्रकार जिस क्रम से अवग्रह आदि की उत्पत्ति होती है, उसी क्रम से उनका सूत्र में निर्देश किया गया है। सर्वप्रथम विषय (वस्तु) और विषयी (इन्द्रिय) के योग्य देश के संबंध होने पर दर्शन उत्पन्न

છે અથવા ઉતરીય" આ પ્રકારના સંશય થવાથી "આ દક્ષિણી હોવો જોઈએ" એ રીતે એક તરફ નમેલું જે જ્ઞાન થાય છે તે ઈહાજ્ઞાન કહેવાય છે. સંશયમાં બંને કોટિઓ સરખી છે. જ્યારે કે ઇહામાં એક કોટિની શકયતા વધેલી હોય છે. તેમ છતાં આ ઇહાજ્ઞાન નિશ્ચયની કોટિ સુધી પહોંચી શકતું નથી. ત્યારબાદ ભાષા આદિની વિશેષતાથી "આ દક્ષિણી જ છે" એવું જે નિશ્ચયાત્મક જ્ઞાન થાય છે તે અવાય કહેવાય છે. અવાયજ્ઞાન જ્યારે એટલું દૃઢ થઇ જાય છે કે સંસ્કાર ઉત્પન્ન કરી શકે ત્યારે તેને ધારણા નામથી ઓળખે છે. આ ધારણાજ્ઞાનથી કાલાન્તરમાં સ્મૃતિ ઉત્પન્ન થાય છે.

આ રીતે જે ક્રમથી અવગ્રહ આદિની ઉત્પત્તિ થાય છે તે ક્રમથી તેમનો સૂત્રમાં ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો છે. સર્વપ્રથમ વિષય (વસ્તુ) અને વિષયી (ઈન્દ્રિય) નો યોગ્ય દેશમાં સંબંધ થવાથી દર્શન ઉત્પન્ન થાય છે. દર્શનની

तद्विशेषाकांक्षणमीहा, तदन्तरम्–विशेषनिर्ज्ञानात् याथात्म्यावगमोऽवायः, तदनन्तरं कालान्तरेऽविस्मरणकारणं धारणा भवति, इति बोध्यम् ॥४५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावन्मतिज्ञानं द्विविधं भवति स्पर्शनादीन्द्रियनिमित्तकम् अनिन्द्रियमनोनिमित्तकञ्चेति प्रतिपादितम्, सम्प्रति–तस्यैव मतिज्ञानस्य षट्त्रिंशदधिकशतत्रयभेदान्प्रतिपादयितुं प्रथमं चतुर्भेदान् आह–'तं च पुण चउव्विहं, उग्गह–ईहा–वायधारणा भेयओ' इत्यादि। तच्च पुनः पूर्वोक्तस्वरूपं मतिज्ञानं चतुर्विधं भवति तद्यथा–अवग्रहेहाऽवायधारणा भेदतः। तथा च–अवग्रहरूपम्, ईहारूपम्, अवायरूपम्, धारणारूपं चेत्येवं चतुर्विधं खलु मतिज्ञानं भवति। तत्रा–ऽवग्रहणम् अवग्रहः सामान्यतोऽर्थपरिच्छेदः, अव्यक्तं ज्ञानमित्यर्थः, तथा च–विषयविषयि सन्निपातानन्तरं यथायथं चक्षुरादीन्द्रिये

होता है, दर्शन के अनन्तर सामान्यरूप से अर्थ का ग्रहण होना अवग्रह है। अवग्रह के बाद विशेष धर्म को जानने की आकांक्षा ईहा कहलाती है, ईहा के पश्चात् विशेष का निश्चय होना अवाय है, उसके अनन्तर धारणाज्ञान होता है जो कालान्तर के स्मरण का कारण होता है ॥४५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति–पहले निरूपण किया गया है कि मतिज्ञान दो प्रकार का है–स्पर्शनादि इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाला और मन से उत्पन्न होने वाला अब मतिज्ञान के तीन सौ छत्तीस भेदों का प्रतिपादन करने के लिए सर्वप्रथम चार भेदों का कथन करते हैं–

पूर्वोक्त मतिज्ञान चार प्रकार का है–अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। इनमें से अवग्रहण को अर्थात् सामान्य रूप से पदार्थ के बोध को अवग्रह कहते हैं। इन्द्रिय और पदार्थ के योग्य सन्निपात के अनन्तर सर्वप्रथम दर्शनोपयोग उत्पन्न होता है। दर्शनोपयोग के पश्चात् जो

અનન્તર સામાન્ય રૂપે અર્થનું ગ્રહણ થવું અવગ્રહ કહેવાય છે. ઇહા પછી વિશેષનો નિશ્ચય થવો અવાય છે. તેના પછી ધારણાજ્ઞાન થાય છે. જે કાળાન્તરે સ્મરણનું કારણ બને છે. ॥ ૪૫ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલાં નિરૂપણ કર્યું કે મતિજ્ઞાન બે પ્રકારનાં છે સ્પર્શનાદિ ઇન્દ્રિયોથી ઉત્પન્ન થનાર અને મનથી ઉત્પન્ન થનાર. હવે મતિજ્ઞાનનાં ૩૩૬ ભેદોનું પ્રતિપાદન કરવા માટે સર્વ પ્રથમ ચાર ભેદોનું કથન કરીએ છીએ

પૂર્વોકત મતિજ્ઞાન ચાર પ્રકારનાં છે. અવગ્રહ, ઇહા, અવાય અને ધારણા આમાંથી અવગ્રહને અર્થાત્ સામાન્ય રૂપથી પદાર્થનાં બોધને અવગ્રહ કહે છે ઇન્દ્રિય અને પદાર્થના યોગ્ય સન્નિપાત પછી સર્વપ્રથમ દર્શનોપયોગ થાય

विषयाणां यदव्यक्तम्-अस्फुटम्-आलोचनमात्रमवधारणं भवति-सोऽवग्रहः उच्यते । ततश्च-सामान्यतोऽवग्रहेणाऽवगृहीतस्य तस्यैव विषयस्य निश्चयविशेष जिज्ञासा विशेषा काङ्क्षा-ईहा-उच्यते, अहः-तर्कः-परीक्षा-विचारणा-ईहा-जिज्ञासा-इत्येते शब्दाः समानार्थका अवसेयाः । ततश्चा-ऽवग्रहेण गृहीतस्य ईहया गृहीतस्य तस्यैव विषयस्य सम्यगसत्ग्यगुवे' त्येवं गुणदोष विचारणाऽवाय उच्यते । ततश्चाऽवायेनाऽवेतस्य तस्यैव विषयस्य या प्रतिपत्तिः मतिस्थिरता सा धारणा-व्यपदिश्यते । तथा च-प्रथमं चक्षुरिन्द्रियस्य शुक्लादिरूपे विषये सन्निपाते सति चक्षुषा शुक्लं रूप मित्येवं ग्रहणमवग्रहः । ततश्चावग्रहगृहीते शुक्ले रूपे विशेषा-कांक्षणमीहा । यथा-शुक्लमिदं किं बलाकारूपं किं वा-पताकारूपं स्यात् इत्येवं जिज्ञासारूपा-ईहा भवति । ततश्च-विशेष निर्ज्ञानात् याथात्मनिश्चयोऽवायः उच्यते । यथा-उत्पतननिपतन पक्षविस्फुरण विक्षेपादिभि र्बलाकैवेयं, नतु-पताका

अव्यक्त -अपरिस्फुट बोध-अंश होता है वह व्यंजनावग्रह कह-लाता है और व्यंजनावग्रह के पश्चात् अवान्तर सामान्य जानने वाला ज्ञान अर्थावग्रह कहा जाता है । सामान्य रूप से जाने गये उसी विषय में विशेष को जानने की जो आकांक्षा होती है या जो उपक्रम होता है उसे ईहा कहते हैं । ईहा को ऊह, तर्क परीक्षा विचारणा या जिज्ञासा भी कहते हैं । ईहा के पश्चात् पदार्थ का विशेष धर्म का निश्चय हो जाना अवाय है । अवाय के द्वारा जाने हुए विषय में जो प्रतिपत्ति या मति स्थिरता होती है, उसे धारणा कहते हैं ।

चक्षु इन्द्रिय और रूप का यथायोग्य सन्निपात होने पर 'यह रूप है' इस प्रकार सामान्य ग्रहण होना अवग्रह है । अवग्रह के द्वारा जाने हुए विषय में विशेष को जानने की आकांक्षा होना ईहाज्ञान है । ईहा-ज्ञान यद्यपि विशेष का निर्णय नहीं कर पाता तथापि विशेष की ओर उन्मुख हो जाता है । तत्पश्चात् जब ज्ञान विशेष निश्चय कर लेता है तब वह अवाय कहलाता है, जैसे यह बलाका (बगुला की पंक्ति) ही है,

---

છે. દર્શનોપયોગ પછી જે અવ્યકત, અપરિસ્ફુટ બોધ અંશ થાય છે તે વ્યંજના વગ્રહ કહેવાય છે. અને વ્યંજનાવગ્રહની પછી અવાન્તર સામાન્યને જાણનારૂ જ્ઞાન અર્થાવગ્રહ કહેવામાં આવે છે સામાન્ય રૂપથી જાણેલા તે જ વિષયમાં વિશેષ જાણવાની જે આકાંક્ષા થાય છે અથવા જે ઉપક્રમ થાય છે તેને ઈહા કહે છે. ઈહાજ્ઞાન જો કે વિશેષનો નિર્ણય કરી શકતું નથી. તો પણ વિશેષની તરફ ઉન્મુખ થઈ જાય છે. ત્યાર પછી જ્યારે જ્ઞાન વિશેષનો નિશ્ચય કરી લે છે ત્યારે તે અવાય કહેવાય છે. જેમકે આ બગલાંની હાર જ છે, ધજા નથી.

इत्येवं निश्चयरूपोऽवायो भवति। ततश्चाऽवायज्ञान विषयीभूताया बलाकायाः कालान्तरेऽविस्मरणकारणं धारणा भवति, यथा-सैवेयं बलाका वर्तते यां पूर्वाह्णे ऽहं अद्राक्षम् इत्येवं रूपा धारणा बोध्या। अथ कथं तावद् अवग्रहादयः क्रमेणैव भवन्ति न व्युत्क्रमेण? येन प्रथमे क्षणे तं विषयं यथावत् परिच्छेत्तुं न पारयति परतश्च क्रमशः परिच्छेत्तुं पारयतीतिचेत् अत्रोच्यते-मतिज्ञानावरणीयकर्मणस्तथाविधएव क्षयोपशमो भवति, येन-प्रथमक्षणे तं विषयं सामान्यतः परिच्छिनत्ति ईहया चाऽन्यादृशएव क्षयोपशमो भवति येन स्फुटं परिच्छिनत्ति, अवायेचाऽन्यादृश एव

पताका नहीं। अवायज्ञान निर्णयात्मक होता है। अवायज्ञान ही जब इतना दृढ हो जाता हैं कि वह संस्कार को उत्पन्न कर सके और कालान्तर में स्मरण का कारण बन सके, तब धारणा कहलाता है। जैसे वह बलाका। अथवा यह वही बलाका है जिसे मैंने पूर्वाह्न में देखा था।

प्रश्न-अवग्रह आदि क्रम से क्यों होते हैं? व्युत्क्रम से क्यों नहीं होते? जिससे कि प्रथम दर्शन में विषय को यथावत् बोध होता है?

उत्तर-मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम के अनुसार ही बोधव्यापार होता है और वह क्षयोपशम उक्त क्रम से ही उत्पन्न होता है। अर्थात् मतिज्ञान का क्षयोपशम इस प्रकार का होता है कि प्रारंभ में वह अपने विषय को सामान्य रूप से जानता है, तत्पश्चात् ईहामतिज्ञानावरण का क्षयोपशम होता है जिससे उपयोग विशेषोन्मुख होता है, फिर अवायज्ञानावरण के क्षयोपशम से वह विशेष का निर्णय करने में समर्थ

અવાય જ્ઞાન નિર્ણયાત્મક હોય છે. અવાય જ્ઞાન જ જ્યારે એટલું દૃઢ થઇ જાય છે કે તે સંસ્કારને ઉત્પન્ન કરી શકે અને કાલાંતરમાં સ્મરણનું કારણ બની શકે, ત્યારે ધારણા કહેવાય છે. જેમકે તે બગલાંની હાર અથવા આ તે જ બગલાંની હાર છે. કે જે મેં પહેલાં પ્હોરમાં જોઇ હતી.

પ્રશ્ન-અવગ્રહ આદિ ક્રમથી કેમ હોય છે? વ્યુત્ક્રમથી કેમ નહિ? જેમ કે પ્રથમ દર્શનમાં વિષયનો યથાવત્ બોધ થતો નથી. અને પાછળથી યથાવત્ બોધ થાય છે?

ઉત્તર-મતિજ્ઞાનાવરણના ક્ષયોપશમ મુજબ જ બોધ વ્યાપાર થાય છે. અને તે ક્ષયોપશમ ઉક્ત ક્રમથી જ ઉત્પન્ન થાય છે. અર્થાત્ મતિજ્ઞાનનો ક્ષયોપશમ આ રીતે જ હોય છે. કે આરંભમાં તે પોતાના વિષયને સામાન્ય રૂપે જાણે છે. ત્યારબાદ ઈહા મતિજ્ઞાનાવરણનો ક્ષયોપશમ થાય છે. જેનાથી વિશેષોન્મુખ થાય છે. પછી અવાયજ્ઞાનાવરણનો ક્ષયોપશમ થવાથી તે ધારણ

क्षयोपशमो येन तमेव विषयं स्फुटतरमवच्छिनत्ति, धारणायामपि-अन्यादृशएव-क्षयोपशमो भवति, येन ततोऽपि स्फुटतरमवधारयति। तस्मात्- क्षयोपशमस्यादौ मलीमसत्वात् अव्यक्तमस्फुटज्ञानं भवति। अतएवाऽवग्रहादिषु उत्तरोत्तरं स्फुटताऽवगन्तव्येति। तत्र-बहुबहुविधा-क्षिप्रानिःसृताऽनुक्तध्रुवरूपाणां षड्विधानाम् तद्विपरीतैः षड्विधैश्च-अल्पएकविधाऽक्षिप्र निःसृतोक्ताऽध्रुवरूपैः सहितानां द्वादशविधानां प्रत्येकं मवग्रहेहावायधारणाभेदेन चतुर्भेदात् मतिज्ञानस्य षट्त्रिंशद्-धिकशतत्रयभेदा भवन्ति। तथाहि-प्रथमं तावद् मतिज्ञानस्याऽवग्रहईहाऽवायो-धारणाचेति चत्वारो भेदाः। ततः प्रत्येकं चतुर्णां बहुबहुविधादि द्वादशभेदात् द्वादश-द्वादशभेदा भवन्ति तथा चाऽष्टचत्वारिंशद्भेदाः सम्पद्यन्ते। ततश्च तेषां प्रत्येकं पञ्चेन्द्रियमनोरूप नो इन्द्रियभेदेन षट्षट् भेदा भवन्ति. इत्येवमष्टचत्वा-

---

हो जाता है। तत्पश्चात् धारणा मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर वह धारण करने में समर्थ होता है। इस प्रकार प्रारंभ में जो क्षयोपशम होता है वह इतना अस्फुट होता है कि सिर्फ सामान्य को जान पाता है, फिर क्रम से उसमें सबलता आती जाती है। यही कारण है कि अवग्रह आदि में उत्तरोत्तर स्पष्टता होती है।

मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थ बारह प्रकार के है-(१) बहु (२) बहुविध (३) क्षिप्र (४) अनिसृत (५) अनुक्त और (६) ध्रुव, तथा इनसे विपरीत अल्प, एकविध, अक्षिप्र, निसृत, उक्त और अध्रुव। ये बारह प्रकार के हैं। इन बारह प्रकार के पदार्थों के अवग्रह, ईहा, अवाय, और धारणा चारों होते हैं, अतः १२×४=४८ (अड़तालीस) भेद हो जाते हैं। यह अडतालीस प्रकार का मतिज्ञान पांचों इन्द्रियों से तथा

કરવામા શક્તિમાન થાય છે. આ રીતે પ્રારંભમા જે ક્ષયોપશમ થાય છે. તે એટલો અસ્ફુટ હોય છે કે માત્ર સામાન્યને જાણી શકે છે. પછી ક્રમથી તેનાનાં સબળતા આવી જાય છે. આજ કારણ છે કે અવગ્રહ આદિમાં ઉત્તરોત્તર સ્પષ્ટતા હોય છે.

મતિજ્ઞાનના વિષયભૂત પદાર્થ બાર પ્રકારના છે (૧) બહુ (૨) બહુવિધ (૩) ક્ષિપ્ર (૪) અનિસૃત (૫) અનુક્ત અને (૬) ધ્રુવ, તથા આનાથી વિપરીત અલ્પ એકવિધ અક્ષિપ્ર, નિસૃત, ઉક્ત અને અધ્રુવ આ બાર પ્રકારના પદાર્થો છે આ બાર પ્રકારના પદાર્થોને અવગ્રહ ઈહા, અવાય અને ધારણા ચારેય હોય છે. આથી ૧૨×૪=૪૮ (અડતાળીસ) ભેદ થઈ જાય છે. આ ૪૮ પ્રકારના મતિજ્ઞાન પાંચેય ઇન્દ્રિયોથી તથા છઠા મનથી હોવાના કારણે છ થી ગુણવાથી ૨૮૮ ભેદ નિષ્પન્ન થાય છે.

रिंशतः षड्भिर्गुणनेऽष्टाशीत्यधिकशतद्वयभेदाः स्पष्टरूपमतिज्ञानस्य सम्पन्नाः, अस्पष्टरूपमतिज्ञानस्य चाऽष्टचत्वारिंशद्भेदाः सम्पद्यन्ते इति सर्वे सम्मिल्य षट्त्रिंशदधिकशतत्रयभेदाः सम्पद्यन्ते इतिभावः ॥ उक्तञ्च भाष्यकारेण-'जं बहुबहुविहखिप्पाअणिस्सियनिच्छियधुवेयरविभिन्ना, पुणरोग्गहादओ तोसं छत्तीसतिसयभेदं' इति, बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतनिःसृतध्रुवेतरविभिन्ना। यत् पुनरवग्रहादयोऽतस्तत् षट्त्रिंशदधिकत्रिशतभेदम्. इति। उक्तञ्च नन्दिसूत्रे-'२७ सूत्रे-'से किं तं सुअनिस्सिअं ? चउव्विहं पण्णत्तं तं जहा-१ उग्गहे, २-ईहा, ३ अवाओ, ४ धारणा' इति, अथ किं तत् श्रुतनिःसृतम्? चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-अवग्रहः-ईहाऽवायोधारणा इति। स्थानाङ्गे ६ स्थाने ५१० सूत्रे चोक्तम्-'छव्विहा उग्गहमती पण्णत्ता तं जहा

छठे मन से होने के कारण छह से गुणित करने पर दो सौ अठासी भेद निष्पन्न होते हैं।

अवग्रह के दो भेद हैं-व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह। व्यंजनावग्रह अव्यक्त होता है और अर्थावग्रह व्यक्तज्ञान। उल्लिखित दो सौ अठासी भेदों में सिर्फ अर्थावग्रह के ७२ भेदों की गणना की गई है। व्यंजनावग्रह चक्षु और मन से नहीं होता-सिर्फ चार इन्द्रियों से होता और पूर्वोक्त बारह प्रकार के पदार्थों को जानता है, अतएव उसके अडतालीस भेद ही होते है। इन अडतालीस भेदों को दो सौ अठासी भेदों में मिला देने से मतिज्ञान के सब भेद ३३६ हो जाते हैं। भाष्यकार ने भी कहा है-'मतिज्ञान बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिसृत, निसृत, ध्रुव और इनसे विपरीत पदार्थों को जानता है और उसके अवग्रह आदि भेद होते हैं, इस कारण वह तीन सौ छत्तीस प्रकार का है।'

અવગ્રહના બે ભેદ છે. વ્યંજનાવગ્રહ અને અર્થાવગ્રહ વ્યંજનાવગ્રહ અવ્યકત હોય છે. જ્યારે અર્થાવગ્રહ વ્યકતજ્ઞાન. ઉપર જણાવેલ ૨૮૮ ભેદોમાં માત્ર અર્થાવગ્રહના ૭૨ ભેદોની ગણના કરવામાં આવી છે. વ્યજંનાવગ્રહ ચક્ષુ અને મનથી થતું નથી માત્ર ચાર ઇન્દ્રિયોથી થાય છે. અને પૂર્વોકત બાર પ્રકારના પદાર્થોને જાણે છે. આથી તેના અડતાળીસ ભેદ જ હોય છે. આ અડતાળીસ ભેદોને ૨૮૮ ભેદોમાં ઉમેરી દેવાથી મતિજ્ઞાનના બધા મળીને ૩૩૬ ભેદ થઈ જાય છે. ભાષ્યકારે પણ કહ્યું છે. મતિજ્ઞાન બહુ બહુવિધ ક્ષિપ્ર, અનિસૃત, નિસૃત, ધ્રુવ અને એનાથી વિપરીત પદાર્થોને જાણે છે અને તેના અવગ્રહ આદિ ભેદ હોય છે એ કારણે તે ૩૩૬ પ્રકારનું છે

खिप्पमोगिण्हइ, बहुमोगिण्हइ बहुविधमोगिण्हइ, धुवमोगिण्हइ, अणिस्सियमोगिण्हइ, असंदिद्धमोगिण्हइ, छव्विहा ईहामती पण्णत्ता, तं जहा खिप्पमीहति, बहुमीहति, जाव असंदिद्धमीहति। छव्विहा अवायमती पण्णत्ता, तं जहा-खिप्पमवेति, जाव असंदिद्धं अवेति। छव्विहा धारणा पण्णत्ता, तं जहा-बहुं धारेइ, पोराणं धारेइ, दुद्धरं धारेति, अणिस्सितं धारेति असंदिद्धं धारेति' इति। षड्विधाऽवग्रहमतिः प्रज्ञप्ता तद्यथा-क्षिप्रमवगृह्णाति, ध्रुवमवगृह्णाति, अनिःसृतमवगृह्णाति, असंदिग्धमवगृह्णाति। षड्विधा ईहा मतिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-क्षिप्रमीहते, बहुमीहते, यावदसंदिग्धमीहते षड्विधाऽवायमतिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा क्षिप्रमवैति, यावदसंदिग्धमवैति। षड्विधा धारणा प्रज्ञप्ता तद्यथा बहुं धारयति बहुविधं धारयति पुराणं धारयति दुद्धरं धारयति अनिःसृतं धारयति असंदिग्धं धारयति इति।४५॥

नन्दीसूत्र में भी कहा है-श्रुतनिश्रित मतिज्ञान के कितने भेद हैं? उसके चार भेद हैं-(१) अवग्रह (२) ईहा (३) अवाय और (४) धारणा।

स्थानांग सूत्र के छठे स्थान के सूत्र ५१० में कहा है-अवग्रहमति के छह भेद कहे गए हैं, यथा-क्षिप्र का अवग्रह, बहु का अवग्रह, बहुविध का अवग्रह ध्रुव का अवग्रह, अनिसृत का अवग्रह, असंदिग्ध का अवग्रह। ईहामतिज्ञान के भी छह भेद हैं-क्षिप्र की ईहा, यावत् असंदिग्ध की ईहा। अवाय मतिज्ञान भी छह प्रकार का है-क्षिप्र का अवाय यावत् असंदिग्ध का अवाय। धारणा के भी छह भेद हैं-बहु की धारणा, पुरातन की धारणा, दुर्द्धर की धारणा, असंदिग्ध की धारणा। इस प्रकार मतिज्ञान के तीन सौ छत्तीस भेदों का स्पष्टीकरण समझना चाहिए ॥४५॥

નન્દીસૂત્રમાં પણ કહ્યું છે, શ્રુતનિશ્રિત મતિજ્ઞાનના કેટલા ભેદ છે? તેના ચાર ભેદ છે (૧) અવગ્રહ (૨) ઈહા (૩) અવાય (૪) ધારણા.

સ્થાનાંગ સૂત્રના ૬ઠા સ્થાનના સૂત્ર ૫૧૦ માં કહ્યું છે અવગ્રહમતિના ૬ ભેદ કહેવામાં આવ્યા છે જેવાકે ક્ષિપ્રનો અવગ્રહ, બહુનો અવગ્રહ, બહુવિધનો અવગ્રહ, ધ્રુવનો અવગ્રહ, અનિશ્રુતનો અવગ્રહ, અસંદિગ્ધનો અવગ્રહ ઈહામતિજ્ઞાનના પણ ૬ ભેદ છે ક્ષિપ્રની ઈહા બહુની ઇહા, એ રીતે અસંદિગ્ધની ઈહા અવાયમતિજ્ઞાન પણ ૬ પ્રકારનું છે, ક્ષિપ્રનો અવાય એ રીતે અસંદિગ્ધ નો અવાય ધારણાના પણ ૬ ભેદ છે. બહુ ની ધારણા, પુરાતનની ધારણા, દુર્ધરની ધારણા, અનિશ્રુતની ધારણા, અસંદિગ્ધની ધારણા આ રીતે મતિજ્ઞાનના ૩૩૬ ભેદોનું સ્પષ્ટીકરણ સમજવું જોઈએ ॥ ૪૫ ॥

मूलम्–उग्गहे दुविहे, अत्थोग्गहे वंजणुग्गहे य ॥४६॥

छाया–'अवग्रहो द्विविधः अर्थावग्रहो व्यञ्जनावग्रहश्च ॥४६॥

तत्त्वार्थदीपिका–पूर्वं तावत्–मतिज्ञानं चतुर्विधं प्रतिपादितम्, अवग्रहेहाऽवायधारणाभेदात्। तत्र–प्रथमोपात्तमवग्रहं द्वैविध्येन प्ररूपयितुमाह–'उग्गहे दुविहे'–इत्यादि। अवग्रहः पूर्वोक्त स्वरूपो मतिज्ञानविशेषः द्विविधो भवति तद्यथा–अर्थावग्रहः व्यञ्जनाऽवग्रहश्चेति। तत्राऽर्थस्तावत्–वस्तुरूपः द्रव्यरूपो वा चक्षुरादीन्द्रियग्राह्याणां ग्राह्यो गम्यो गोचरो विषय उच्यते, तथाविधस्य चक्षुरादीन्द्रियग्राह्यस्यार्थस्य व्यक्तस्वरूपस्याऽवग्रहो मतिज्ञानविशेषः अर्थावऽग्रह उच्यते। एवम्–व्यञ्जनमव्यक्तं शब्दरूपरसगन्धस्पर्शजातम्। तस्य खलु व्यञ्जनस्याऽव्यक्तशब्दादेरवग्रहो मतिज्ञानविशेषः व्यञ्जनाऽवग्रह उच्यते। तथ चाऽर्था-

---

'उग्गहे दुविहे' इत्यादि।

सूत्रार्थ–अवग्रह दो प्रकार का है–अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह ।४६।

तत्त्वार्थदीपिका—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के भेद से मतिज्ञान चार प्रकार का कहा गया है। इनमें से पहले अवग्रह के दो भेदों की प्ररूपणा करते हैं–

पूर्वोक्त स्वरूप वाला अवग्रह मतिज्ञान दो प्रकार का है–अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह। यहां अर्थ का आशय द्रव्य या वस्तु है। वह चक्षु आदि इन्द्रियों का ग्राह्य, गम्य, गोचर या विषय भी कहलाता है। चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य व्यक्त रूप पदार्थ का अवग्रह अर्थावग्रह कहलाता है। व्यंजन अर्थात् अव्यक्त शब्द, रस, गंध और स्पर्श का जो अवग्रह होता है वह व्यंजनावग्रह कहलाता है। इस प्रकार अर्थावग्रह

'उग्गहे दुविहे' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ–અવગ્રહ બે પ્રકારનો છે અર્થાવગ્રહ અને વ્યંજનાવગ્રહ ॥ ૪૬ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા:–અવગ્રહ ઇહા, અવાય અને ધારણાના ભેદથી મતિજ્ઞાન ચાર પ્રકારનું કહેવામાં આવ્યું છે એ પૈકી પ્રથમ અવગ્રહના બે ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ–પૂર્વોક્ત સ્વરૂપવાળુ અવગ્રહ મતિજ્ઞાન બે પ્રકારનું છે–અર્થાવગ્રહ અને વ્યંજનાવગ્રહ. અત્રે અર્થનો આશય દ્રવ્ય અગર વસ્તુ છે તે ચક્ષુ આદિ ઇન્દ્રિયોનો ગ્રાહ્ય, ગમ્ય, ગોચર અથવા વિષય પણ કહેવાય છે. ચક્ષુ આદિ ઇન્દ્રિયો દ્વારા ગ્રાહ્ય વ્યક્ત રૂપ પદાર્થનો અવગ્રહ અર્થાવગ્રહ કહેવાય છે. વ્યંજન અર્થાત્ અવ્યક્ત શબ્દ, રસ, ગંધ તથા સ્પર્શનો જે અવગ્રહ થાય છે તે વ્યંજનાવગ્રહ કહેવાય છે. આ રીતે વ્યંજનાવગ્રહ અને અર્થાવગ્રહમાં અવ્ય-

वग्रह व्यञ्जनावग्रहयो र्व्यक्ताऽव्यक्तकृतो विशेषो द्रष्टव्यः अभिनवशरावार्द्रीकरणवत्, यथा—जलकरणेन द्वित्रिवारं सिक्तो नूतनः शरावो नार्द्रो भवति किन्तु—पुनः पुनः सिच्यमानः शनैः शनैरार्द्रो भवति । एवं श्रोत्रादीन्द्रियेषु शब्दादिरूपेण परिणताः पुद्गला द्वित्रादिषु समयेषु गृह्यमाणाः खलु न व्यक्ती भवन्ति पुनः पुनरवग्रहे सति तु व्यक्ती भवन्ति तस्मात्—व्यक्तग्रहणात् पूर्वमव्यक्तगुणरूपो व्यञ्जनावग्रहो भवति । ततश्च व्यक्तग्रहणरूपोऽर्थावग्रहो बोध्यः । अतएव—अव्यक्तावग्रहणाद् व्यञ्जनस्येहादयो न भवन्ति । एवं चक्षुषाऽनिन्द्रियेण मनसा च व्यञ्जनावग्रहो न भवति । तयोरप्राप्यकारित्वात् । चक्षुस्तावत्—अप्राप्तमर्थमवि-

---

और व्यंजनावग्रह में व्यक्तता और अव्यक्तता का अन्तर है। जैसे नवीन शराव (सिकोरा) में जल की एक दो तीन बूंद डाले जाएँ तो वह गीला नहीं होता, परन्तु बार-बार सींचने से धीरे-धीरे गीला हो जाता है, इसी प्रकार श्रोत्र आदि इन्द्रियों में शब्दादि रूप से परिणत पुद्गल एक दो तीन आदि समयों में जो ग्रहण किये जाते हैं, वे व्यक्त नहीं होते, किन्तु वार वार ग्रहण होने पर व्यक्त होते हैं। इस कारण व्यक्त ग्रहण से पहले अव्यक्त ग्रहण होता है जो व्यंजनावग्रह कहलाता है। उसके अनन्तर व्यक्त ग्रहणरूप अर्थावग्रह उत्पन्न होता है। इस प्रकार अव्यक्त का ग्रहण होने से व्यंजन के ईहा, अवाय और धारणा नहीं होती। इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय और मन से भी व्यंजनावग्रह नहीं होता, क्योंकि ये दोनों अप्राप्यकारी हैं अर्थात् उनके विषय के साथ उनका संयोग हुए विना ही वे अपने विषय को ग्रहण करते हैं। अर्थात् चक्षु

क्तता अने व्यक्ततानुं अन्तर छे. जेवी रीते नवा शकोरामां पाणीना एक, बे, त्रण टीपां नाखवामां आवे तो ते भीनुं थतुं नथी परन्तु वारंवार पाणी सींचवाथी क्रमशः भीनुं थई जाय ते. एज रीते श्रोत्र आदि इन्द्रियोमां शब्दार्थ रूपथी परिणत पुद्गल एक बे त्रण आदिसमयोमां जे ग्रहण करवामां आवे छे. ते व्यक्त होतां नथी. परन्तु वारंवार ग्रहण थवाथी व्यक्त थाय छे आ कारणे व्यक्तथी पहेला अव्यक्त ग्रहण थाय छे जे व्यंजनावग्रह कहेवाय छे तेनी पछी व्यक्त ग्रहण रूप अर्थावग्रह उत्पन्न थाय छे. आ रीते अव्यक्तनुं ग्रहण थवाथी व्यंजनना ईहा, अवाय तेमज धारणा होता नथी. एवी ज रीते चक्षुरिन्द्रिय अने मनथी पण व्यंजनावग्रह थतो नथी कारण के ए बंने अप्राप्यकारी छे अर्थात् विषयनी साथे तेमनो संयोग थया वगर ज तेओ पोताना विषयने ग्रहण करे छे. अर्थात् चक्षुनो रूप साथे संयोग नथी थतो, ते

दिवक्कं युक्तसन्निकर्षविशेषेऽवस्थितं बाह्यप्रकाशाभिव्यक्तमुपलभते। एवं मनश्चापि—अप्राप्तमभिव्यक्तमेवोपलभते तस्मात्—चक्षुर्मनसो व्यंञ्जनावग्रहो न भवति, एवञ्च—चक्षुर्मनसी परित्यज्य श्रोत्ररसनस्पर्शनजिह्वाघ्राणेन्द्रियैश्चतुर्भिः खलु व्यञ्जनावग्रहो भवति। अर्थावग्रहस्तु—सर्वैरिन्द्रियाऽनिन्द्रियैः संजायते। एवमर्थस्येहादयोऽपि संभवन्ति ॥४६॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावत्—अवग्रहेहाऽवायधारणाभेदात् मतिज्ञानस्य चातुर्विध्यं प्रतिपादितम्, सम्प्रति—तत्र प्रथमोपात्तस्याऽवग्रहस्य भेदद्वयं प्रतिपादयितुमाह—'उग्गहे दुविहे, अत्थोग्गहे—वंजणुग्गहे य' इति। अवग्रहः पूर्वोक्त स्वरूपो मतिज्ञानविशेषो द्विविधो भवति, तद्यथा—अर्थाऽवग्रहः व्यञ्जनावग्रहश्चेति,

---

का रूप के साथ संयोग नहीं होता, फिर भी वह असन्निकृष्ट रूप को ग्रहण करती है। मन भी अप्राप्त और अभिव्यक्त पदार्थ कोही ग्रहण करता है। इस कारण चक्षु और मन से व्यंजनावग्रह नहीं होता। अतएव चक्षु और मन को छोड़कर श्रोत्र, रसना, घ्राण और स्पर्शन, इन चार ही इन्द्रियों से व्यंजनावग्रह होता है। अर्थावग्रह सभी इन्द्रियों से और मन से होता है। इसी प्रकार अर्थ के ईहा आदि भी होते हैं।४६।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के भेद से मतिज्ञान के चार भेदों का निरूपण किया जा चुका, अब इनमें सर्वप्रथम निर्दिष्ट अवग्रह के दो भेदों का कथन करते हैं—

अवग्रह, के जिसका स्वरूप पहले कहा गया है और जो एक प्रकार का मतिज्ञान है, दो भेद हैं—अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह। चक्षु आदि

અસન્નિકૃષ્ટ રૂપને ગ્રહણ કરે છે. મન પણ અપ્રાપ્ત અને અભિવ્યક્ત પદાર્થને જ ગ્રહણ કરે છે આથી ચક્ષુ અને મનથી વ્યંજનાવગ્રહ થતો નથી. આથી ચક્ષુ અને મનને બાદ કરતાં શ્રોત્ર રસના ઘ્રાણ અને સ્પર્શન આ ચાર જ ઈન્દ્રિયોથી વ્યંજનાવગ્રહ થાય છે. અર્થાવગ્રહ બધી ઈન્દ્રિયોથી અને મનથી થાય છે. એજ રીતે અર્થના ઈહા આદિ પણ થાય છે. ॥ ૪૬ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—અવગ્રહ ઈહા, અવાય અને ધારણાના ભેદથી મતિ જ્ઞાનના ચાર ભેદોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે એમાંથી સર્વપ્રથમ નિર્દિષ્ટ અવગ્રહના બે ભેદોનું કથન કરીએ છીએ—

અવગ્રહ, કે જેનું સ્વરૂપ અગાઉ કહેવામાં આવ્યું તેમજ જે એક પ્રકારનું મતિજ્ઞાન છે તેના બે ભેદ હોય છે—અર્થાવગ્રહ અને વ્યંજનાવગ્રહ, ચક્ષુ આદિ

तत्राऽर्थस्य व्यक्तस्य चक्षुरादीन्द्रियग्रहणयोग्यस्य परिस्फुटार्थस्यावग्रहोऽर्थावग्रह उच्यते। एवं-व्यञ्जनस्याऽन्धकारावृतघटरूपादेरिवाऽपरिस्फुटशब्दादेरवग्रह व्यञ्जनावग्रह उच्यते। तथा च-स्पर्शनाद्युपकरणेन्द्रिय संश्लिष्ट स्पर्शनाकार परिणत पुद्गलस्वरूपव्यञ्जनस्य सामान्यतः परिच्छेदकोऽव्यक्तावग्रहो भवति, अवग्रहस्यात्यन्तपरिच्छेदकत्वात्। किन्तु व्यञ्जनस्याऽव्यक्तस्य शब्दादेः परिच्छेदिका ग्राहिका ईहाऽवायधारणा न भवन्ति तासां स्वांशे व्यक्तस्यैव भेदमार्गण निश्चय धारणाख्ये नियतत्त्वात् व्यक्तस्यार्थस्य ग्राहिकाः पुनश्चस्रोऽपि-अवग्रहेहावायधारणा भवन्त्येव तथा च-अर्थाऽवग्रह-व्यञ्जनावग्रहयोः खलु व्यक्ताव्यक्तपदार्थकृतो विशेषोऽवगन्तव्यः। एवं-चक्षुरिन्द्रियेण नो इन्द्रियेण मनसाचापि व्यञ्जनावग्रहो न भवति, तयोः खलु-चक्षुर्मनसोरप्राप्यकारित्वात्। अपितु-श्रोत्ररसनघ्राण-

इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करने के योग्य परिस्फुट अर्थ का जो अवग्रह होता है वह अर्थावग्रह कहलाता है। व्यंजन अर्थात् अव्यक्त शब्द आदि का जो ग्रहण होता है वह व्यंजनावग्रह कहलाता है। इस प्रकार स्पर्शन आदि उपकरणेन्द्रिय के साथ संयुक्त, स्पर्शाकार परिणत पुद्गल रूप से जानने वाला अव्यक्तावग्रह कहलाता है। मगर अव्यक्त शब्द आदि को ईहा, अवाय और धारणा नहीं होती, उनकी अपने अपने व्यक्त विषय में ही प्रवृत्ति होती है। मार्गणा करना, निश्चय करना और धारण करना, यह ईहा आदि का व्यापार व्यक्त विषय में ही हो सकता है। इस प्रकार अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह में व्यक्त और अव्यक्त पदार्थ के कारण भेद है।

व्यंजनावग्रह चक्षु और मन से नहीं होता, क्योंकि ये दोनों अप्रा-

ઇન્દ્રિયો દ્વારા ગ્રહણ કરવાને યોગ્ય પરિસ્ફુટ અર્થનું જે અવગ્રહણ થાય છે તે અર્થાવગ્રહ કહેવાય છે વ્યંજન અર્થાત્ અવ્યક્ત શબ્દ આદિનું-જેમ અંધકારથી વ્યાપ્ત ઘટ આદિનું જે ગ્રહણ થાય છે, તે વ્યંજનાવગ્રહ કહેવાય છે આ રીતે સ્પર્શન આદિ ઉપકરણેન્દ્રિયોની સાથે મળેલ સ્પર્શાકાર પરિણત પુદ્ગલ રૂપ વ્યંજનને સામાન્ય રૂપથી જાણનાર અવ્યક્તાવગ્રહ કહેવાય છે. પરન્તુ અવ્યક્ત શબ્દ આદિને જાણનારા ઈહા અવાય અને ધારણાનો અભાવ હોય છે. તેમની પોત-પોતાના વ્યક્ત વિષયમાં જ પ્રવૃત્તિ રહે છે માર્ગણા કરવી નિશ્ચય કરવો અને ધારણા કરવી, એ ઇહા આદિનો વ્યાપાર વ્યક્ત વિષયમાં જ થઈ શકે છે આ રીતે અર્થાવગ્રહ અને વ્યંજનાવગ્રહમાં વ્યક્ત અને અવ્યક્ત પદાર્થના કારણે ભેદ છે.

વ્યંજનવગ્રહ ચક્ષુ અને મનથી થતું નથી કારણકે એ બંને અપ્રાપ્યકારી છે.

स्पर्शनरूपैश्चतुरिन्द्रियैरेव व्यञ्जनावग्रहो भवति। एवञ्च-ये खलु दृश्यमाना श्चिन्त्यमानाश्च पदार्थविशेषा भवन्ति। ते चक्षुरूपकरणेन्द्रियेण नो इन्द्रियेण-मनसा च सह संश्लेषमप्राप्ता एव परिच्छिद्यन्ते। न तु-संश्लेषं प्राप्ताः यतश्चक्षु स्तावत् शारीरस्थं सदैव योग्यदेशावस्थितं पदार्थं परिच्छिनत्ति। न तु-विषयदेशं गत्वा तत्परिच्छेदे व्यापृयते, नवा-विषयमेव मसूर-धान्याकृतिके चक्षुरिन्द्रियदेशे समागतं परिच्छिनत्ति। तस्मात्-चक्षुरप्राप्यैव विषयग्राहि भवति, यदि विषयं प्राप्यैव चक्षुः परिच्छिन्द्यात् तदाऽग्नि प्रदेशगमने चक्षुषो दाहोऽपि स्यात्। एवं-स्वसमीपवर्ति-अञ्जनादिकमपि परिच्छिन्द्यात्, न तु-परिच्छिनत्ति। अतएव-

---

प्यकारी हैं। श्रोत्र, रसना, घ्राण और स्पर्शन रूप चार ही इन्द्रियों से व्यंजनावग्रह होता है। जो पदार्थ विशेष दृश्यमान और चिन्त्यमान होते हैं वे चक्षु उपकरणेन्द्रिय और मन के साथ संयुक्त हुए विना ही जाने जाते हैं, संयुक्त होकर नहीं जाने जाते। क्योंकि चक्षु शरीर के अन्दर ही स्थित रहकर सदैव योग्य देश में स्थित पदार्थ को देखती है। वह विषयदेश में अर्थात् दृश्य वस्तु जहां हो वहां जाकर पदार्थ नहीं जानती है और न मसूर नामक धान्य की आकृति वाली चक्षु के पास आये हुए और उससे स्पृष्ट हुए पदार्थ को ही जानती है। तात्पर्य यह है कि न तो नेत्र पदार्थ के पास जाकर स्पृष्ट होता है और न पदार्थ नेत्र के पास आकर स्पृष्ट होता है। इस कारण वह अप्राप्यकारी है। यदि अपने विषय को प्राप्त करके चक्षु जानती होती तो अग्नि के साथ संयोग होने पर उसका दाह हो जाता और अपने साथ संयुक्त अंजन आदि

શ્રોત્ર રસના, ઘ્રાણ અને સ્પર્શન રૂપ ચાર જ ઇન્દ્રિયોથી વ્યંજનાવગ્રહ થાય છે જે પદાર્થ વિશેષ દૃશ્યમાન અને ચિન્ત્યમાન હોય છે તે ચક્ષુઉપકરણેન્દ્રિય અને મનની સાથે સંયુકત થયા વગરજ જાણી શકાય છે, સંયુકત થઈને જાણી શકાતાં નથી કારણ કે ચક્ષુ શરીરની અંદરજ સ્થિત રહીને જ સદૈવ યોગ્ય દેશમાં સ્થિત પદાર્થને જુએ છે. તે વિષય દેશમાં અર્થાત્ દૃશ્ય વસ્તુ જ્યાં છે ત્યાં જઈને પદાર્થને જોતું નથી અથવા ન તો મસૂર નામક ધાન્યની આકૃતિવાળી આંખની પાસે આવેલ અને તેનાથી સ્પૃષ્ટ થયેલા પદાર્થને જાણે છે. તાત્પર્ય એ છે કે આંખ ન તો પદાર્થની પાસે જઈને સ્પૃષ્ટ થાય છે અથવા તેથી વિપરીત પણ બનતું નથી. આ કારણે તે અપ્રાપ્યકારી છે. જો પોતાના વિષય ને પ્રાપ્ત કરીને ચક્ષુ જાણતી હોત તો અગ્નિની સાથે સંયોગ થવાથી તે બળી જાત અને પોતાની સાથે જોડાયેલા અંજન આદિને પણ તે જાણી લઈ શકત

बाह्यप्रकाशाभिव्यक्तमेव पदार्थं योग्यसन्निकर्षेऽवस्थितमुपलभते चक्षुः, न तु-मलीमस तमसावृतमव्यक्तं पदार्थम् । तस्मात्-चक्षुषा व्यञ्जनावग्रहो न भवति । एवं-नो इन्द्रियमनोऽपि न चिन्त्यमानं विषयं प्राप्यैव चिन्तयति, नापि-कुतश्चिदागत्याऽऽत्मनि अवस्थितमेव विषयं मनःपर्यालोचयति । यदि च विषयं संश्लिष्यैव मनोऽपि परिच्छिन्द्यात् तदा-तदपि ज्ञेयकृतमनुग्रहं विक्लेदादिरूपं भवेत् । दाहादिरूपमुपघातं वा प्राप्नुयात्, न तु विक्लेदादि मनुभवति-नवा-दाहादिकमुपघातं प्राप्नोति । तस्मात्-मनोऽऽप्यप्राप्यैव विषयग्राहि भवति तस्मात्-मनसाऽपि व्यञ्जनावग्रहो न भवति । श्रोत्ररसघ्राणस्पर्शनरूपाणि चक्षुरि-

को भी वह जान लेती, मगर जानती नहीं है । अतएव बाह्य प्रकाश से प्रकट पदार्थ को ही, जो योग्य देश में स्थित हो, चक्षु देखती है, मलीन अन्धकार से आच्छादित पदार्थ को नहीं देखती । इस कारण चक्षु द्वारा व्यंजनावग्रह नहीं होता है ।

इसी प्रकार मन भी अपने चिन्त्यमान पदार्थ को प्राप्त करके नहीं जानता और न ऐसा होता है कि कहीं से आकर विषय आत्मा में स्थित हो जाय और मन उसका चिन्तन करे । अगर मन भी प्राप्त पदार्थ को ही चिन्तन करता होता तो उसमें ज्ञेयकृत निग्रह-अनुग्रह भी होते । अग्नि का चिन्तन करने पर दाह रूप उपघात को भी प्राप्त होता । अतएव यही मानना उचित है कि मन भी विषय के साथ संयुक्त हुए बिना ही अपने विषय का ग्राहक होता है । यही कारण है कि मन से भी व्यंजनावग्रह नहीं होता । श्रोत्र, रसना, घ्राण और स्पर्शन इन्द्रियाँ

પરન્તુ આમ થતું નથી. આથી બાહ્ય પ્રકાશથી પ્રકટ પદાર્થને કે જે યોગ્ય દેશમાં સ્થિત હોય, ચક્ષુ તે જુવે છે. મલીન અન્ધકારથી આચ્છાદિત પદાર્થને જોઈ શકતી નથી આ કારણે ચક્ષુ દ્વારા વ્યંજનાવગ્રહ થતો નથી.

એવી જ રીતે મન પણ પોતાના ચિન્ત્યમાન પદાર્થને પ્રાપ્ત કરીને જાણતું નથી અને એવું પણ બનતું નથી કે ક્યાંયથી આવીને વિષય આત્મામાં સ્થિત થઈ જાય અને મન તેનું ચિન્તન કરે. જો મન પણ પ્રાપ્ત પદાર્થનું જ ચિન્તન કરતું હોત તો એનામાં જ્ઞેયકૃત નિગ્રહ અનુગ્રહ પણ હોત. અગ્નિનું ચિન્તન કરવાથી દાહરૂપ ઉપઘાતને પણ પ્રાપ્ત થાત આથી મન પણ વિષયની સાથે સંયુક્ત થયા વગર જ પોતાનો વિષય ગ્રહણ કરે છે. એમ માનવું એ જ યોગ્ય છે. મનથી પણ વ્યંજનાવગ્રહ થતો નથી તેનું કારણ પણ આ જ છે. શ્રોત્ર રસના ઘ્રાણ અને સ્પર્શન ઈન્દ્રિઓ પ્રાપ્યકારી છે આથી તેઓ

न्द्रियाणि तु-प्राप्यकारित्वात् मलीमसतमसा हतमव्यक्तमपि पदार्थं क्लिष्टं परिच्छिन्दन्ति। तस्मात्-श्रोत्रादि चतुरिन्द्रियैरेव व्यञ्जनावग्रहो भवति। तथाचेन्द्रियनिमित्त नो इन्द्रियनिमित्तभेदेन मतिज्ञानं द्विविधम्, पुनरवग्रहादि भेदात् चतुर्विधम्, स्पर्शनादि मनःपर्यन्तानषडिन्द्रियाणां प्रत्येकमर्थावग्रहादयः समुदिताश्चतुर्विंशतिविधाः, चक्षुर्मनोभिन्न चतुरिन्द्रियाणां व्यञ्जनावग्रहचतुर्भेदः, तदेवाष्टाविंशतेः बहुबहुविधादि द्वादशभिर्गुणने षट्त्रिंशदधिक शतत्रयमितं ३३६ मतिज्ञानं संपद्यते। उक्तञ्च स्थानाङ्गे द्वितीयस्थाने १ उद्देशके ७१ सूत्रे-'सुयनिस्सिए दुविहे पन्नत्ते, तं जहा-अत्थोग्गहे चेव, वंजणोग्गहे चेव' इति. श्रुतनिःसृतं द्विविधं प्रज्ञप्तम् तद्यथा-अर्थावग्रहश्चैव, व्यञ्जनावग्रहश्चैव. इति। नन्दिसूत्रे३०

प्राप्यकारी हैं, अतएव वे अपने विषय के साथ संयुक्त होकर ही उसे जानती हैं।

इस प्रकार इन्द्रियनिमित्तक और अनिन्द्रियनिमित्तक के भेद से मतिज्ञान दो प्रकार का है, फिर अवग्रह आदि के भेद से चार प्रकार का है और स्पर्शन से लेकर मन पर्यन्त छह इन्द्रियों से उत्पन्न होने के कारण अर्थावग्रह आदि चारों मिलकर चौवीस भेद होते हैं। चक्षु और मन को छोडकर शेष चार इन्द्रियों से उत्पन्न होने के कारण व्यंजनावग्रह के चार भेद हैं। सब मिलकर अट्ठाईस भेद हुए। इन अट्ठाईस भेदों का बहु, बहुविध आदि बारह पदार्थों के साथ गुणाकार करने से मतिज्ञान के कुल तीन सौ छत्तीस भेद हो जाते हैं।

स्थानांगसूत्र के द्वितीय स्थान के प्रथम उद्देशक के ७१ वें सूत्र में कहा है—

પોતાના વિષયની સાથે સંયુકત થઈને જ તેને જાણે છે.

આમ ઇન્દ્રિયનિમિત્તક અને અનિન્દ્રિયનિમિત્તકના ભેદથી મતિજ્ઞાન બે પ્રકારના છે, ત્યારબાદ અવગ્રહ આદિના ભેદથી ચાર પ્રકારના છે અને સ્પર્શનથી લઈને મનપર્યન્ત છ ઇન્દ્રિયોથી ઉત્પન્ન થવાના કારણે અર્થાવગ્રહ આદિ ચારે મળીને ચોવીસ ભેદ થય છે. ચક્ષુ અને મનને છોડીને શેષ ચાર ઇન્દ્રિયોથી ઉત્પન્ન થતા હોવાથી વ્યંજનાવગ્રહના ચાર ભેદ છે. બધાં મળીને અઠયાવીસ ભેદ થયા આ અઠયાવીશ ભેદોના બહુ, બહુવિધ આદિ બાર પદાર્થોની સાથે ગુણાકાર કરવાથી મતિજ્ઞાનના કુલ ત્રણસોને છત્રીસ ભેદ થઈ જાય છે.

સ્થાનાંગસૂત્રના દ્વિતીય સ્થાનના પ્રથમ ઉદ્દેશકના ૭૧માં સૂત્રમાં કહ્યું છે

શ્રુતનિસૃત (મતિજ્ઞાન) બે પ્રકારનું કહેવામાં આવ્યું છે જેમકે અર્થાવગ્રહ અને વ્યંજનાવગ્રહ

सूत्रे चोक्तम्- 'से किं तं अत्थुग्गहे-? अत्थुग्गहे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा सोइंदिय अत्थुग्गहे, चक्खिंदिय अत्थुग्गहे घाणिंदिय अत्थुग्गहे, जिब्भिंदिय अत्थुग्गहे फासिंदिय अत्थुग्गहे नोइंदिय अत्थुग्गहे' इति। अथ कोऽसावर्थावग्रहः ? अर्थावग्रहः षड्विधः प्रज्ञप्तः तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः चक्षुरिन्द्रियार्थावग्रहः घ्राणेन्द्रियार्थावग्रहः जिह्वेन्द्रियार्थावग्रहः स्पर्शनेन्द्रियार्थावग्रहः नो इन्द्रियार्थावग्रहः। ततः पूर्वमपि नन्दिसूत्रे २९ सूत्रेचोक्तम्-'से किं तं वंजणुग्गहे ? वंजणुग्गहे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-सोइंदियवंजणुग्गहे घाणिंदिय वंजणुग्गहे जिब्भिंदियवंजणुग्गहे, फासिंदियवंजणुग्गहे से तं वंजणुग्गहे. इति। अथ कोऽसौ व्यञ्जनावग्रहः ? व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः घ्राणेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः जिह्वेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः स्पर्शनेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः स एष व्यञ्जनावग्रहः इति। एवं चैकत्र-उपसंहाररूपेणैवाऽर्थावग्रहस्य व्यञ्जनेन सह चतुष्कगणनयाऽवग्रहाद्यष्टाविंशतिभेदा मतेः संभवन्ति ॥४६॥

मतिज्ञान (अभिनिबोधिकज्ञान) दो प्रकार का कहा गया है, यथा-अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह।

नन्दीसूत्र के ३० वें सूत्र में कहा है-अर्थावग्रह कितने प्रकार का है ? उत्तर-अर्थावग्रह छह प्रकार का है, यथा-श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह, चक्षुरिन्द्रिय-अर्थावग्रह, घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह, जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय-अर्थावग्रह और नोइन्द्रिय-अर्थावग्रह।

इससे पहले भी नन्दीसूत्र के २९ वें सूत्र में कहा है-व्यंजनावग्रह के कितने भेद हैं ? व्यंजनावग्रह के चार भेद हैं-श्रोत्रेन्द्रिय व्यंजनावग्रह, घ्राणेन्द्रिय व्यंजनावग्रह, जिह्वेन्द्रिय व्यंजनावग्रह और स्पर्शेन्द्रिय व्यंजनावग्रह,।

નન્દીસૂત્રના ૩૦માં સૂત્રમાં કહ્યું છે અર્થાવગ્રહ કેટલા પ્રકારના છે ? ઉત્તર-અવગ્રહ છ પ્રકારના છે જેમકે શ્રોત્રેન્દ્રિય અર્થાવગ્રહ, ચક્ષુરિન્દ્રિય, અર્થાવગ્રહ. ઘ્રાણેન્દ્રિય અર્થાવગ્રહ, જિહ્વેન્દ્રિય અર્થાવગ્રહ સ્પર્શેન્દ્રિય અર્થાવગ્રહ અને અઇન્દ્રિય અર્થાવગ્રહ

આથી પહેલા નન્દીસૂત્રના ૨૯માં સૂત્રમાં કહ્યું છે વ્યંજનાવગ્રહના કેટલાં ભેદ છે ? વ્યંજનાવગ્રહના ચાર ભેદ છે શ્રોત્રેન્દ્રિયવ્યંજનાવગ્રહ, ઘ્રાણેન્દ્રિયવ્યંજનાવગ્રહ, જિહ્વેન્દ્રિયવ્યંજનાવગ્રહ અને સ્પર્શેન્દ્રિયવ્યંજનાવગ્રહ.

मूलम्—सुयनाणे दुविहे, अंगपविट्ठे—अंगबाहिरेय ॥४७॥

छाया—श्रुतज्ञानं द्विविधम् अङ्गप्रविष्टम्-अङ्गबाह्यञ्च-॥४७॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावद् मतिज्ञानं सविस्तरं भेदोपभेदपूर्वकं प्रतिपादितम्, सम्प्रति श्रुतज्ञानं द्वैविध्येन प्ररूपयितुमाह-"सुयनाणे-" इत्यादि। श्रुतज्ञानम्-श्रूयते इति श्रुतम् शब्दस्वरूपम् तत्सम्बन्धिज्ञानम् श्रुतज्ञानम् श्रवणं वा-श्रुतिरूपम् श्रुतम्-तद्रूपं ज्ञानं श्रुतज्ञानं तावद् द्विविधं भवति-। तद्यथा-आचाराङ्ग-१ सूत्रकृताङ्ग-२ स्थानाङ्ग-३ समवायाङ्ग-४ व्याख्याप्रज्ञप्त्यङ्गम्-५ ज्ञातृधर्मकथाङ्गम्-६ उपासकदशाङ्गम्-७ अन्तकृद्दशाङ्गम्-८ अनुत्तरोपपातिक दशाङ्गम्-९

नन्दीसूत्र के केवल उपलक्षण रूप में ही अर्थावग्रह का कथन किया गया है, अतएव ईहा, अवाय और धारणा के भेद भी इसी प्रकार जान लेने चाहिए ॥४६॥

'सुयनाणे दुविहे' इत्यादि।

सूत्रार्थ—श्रुतज्ञान दो प्रकार का है-अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य ॥४७॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले भेदोपभेदों सहित विस्तार पूर्वक मतिज्ञान का निरूपण किया गया, अब श्रुतज्ञान के भेद कहते हैं—

जो सुना जाय सो श्रुत अर्थात् शब्द। शब्द संबंधी ज्ञान श्रुतज्ञान कहलाता है। अथवा सुनना श्रुत कहलाता है और श्रुतरूपज्ञान श्रुतज्ञान कहलाता श्रुतज्ञान दो प्रकार का है-अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य। इनमें से अंगप्रविष्ट श्रुत के बारह भेद हैं, यथा-(१) आचारांग (२) सूत्रकृतांग (३) स्थानांग (४) समवायांग (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति (६) ज्ञाताधर्मकथांग (७)

નન્દીસૂત્રમાં માત્ર ઉપસંહાર રૂપે જ અર્થાવગ્રહનું કથન કરવામાં આવ્યું છે આથી ઈહા, અવાય અને ધારણાના ભેદ પણ આ પ્રમાણે જાણી લેવા જોઇએ ।૪૬।

'सुयनाणे दुविहे' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—શ્રુતજ્ઞાન બે પ્રકારનું છે-અંગપ્રવિષ્ટ અને અંગબાહ્ય ॥૪૭॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા ભેદોપભેદ સહિત વિસ્તારપૂર્વક મતિજ્ઞાનનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે શ્રુતજ્ઞાનના ભેદ કહીએ છીએ.

જે સંભળાય તે શ્રુત અર્થાત્ શબ્દ. શબ્દ સંબંધી જ્ઞાન શ્રુતજ્ઞાન કહેવાય છે અથવા સાંભળવું શ્રુત કહેવાય છે અને શ્રુતરૂપ જ્ઞાન શ્રુતજ્ઞાન કહેવાય છે. શ્રુતજ્ઞાન બે પ્રકારનું છે અંગપ્રવિષ્ટ અને અંગબાહ્ય. એમાંથી અંગપ્રવિષ્ટ શ્રુતના બાર ભેદ છે જેવાકે—(૧) આચારંગ (૨) સૂત્રકૃતાંગ (૩) સ્થાનાંગ (૪) સમવાયાંગ (૫) વ્યાખ્યાપ્રજ્ઞપ્તિ (૬) જ્ઞાતાધર્મકથાંગ (૭) ઉપાસકદશાંગ (૮)

प्रश्नव्याकरणम्–१० विपाकश्रुताङ्गम्–११ दृष्टिवादाङ्गञ्च–१२ इति। अङ्गबाह्यञ्च श्रुतज्ञानमनेकविधं बोध्यम्। तद्यथा–अङ्गबाह्यं तावत्–प्रथमतो द्विविधम्, आवश्यकम्–आवश्यकव्यतिरिक्तश्चेति, तत्राऽऽवश्यकव्यतिरिक्तं द्विविधम्, कालिकञ्च–उत्कालिकञ्चेति–तत्र कालिकमनेकविधम्, उत्तराध्ययनानि–दशा–कल्पः–व्यवहारः–निशीथम्–महानिशीथम्–जम्बुद्वीपप्रज्ञप्तिः–द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः–चन्द्रप्रज्ञप्तिः–सूर्यप्रज्ञप्ति रित्यादि। उत्कालिकञ्चाप्यनेकविधम्, दशवैकालिकम्–कल्पिकाकल्पिकम्–क्षुल्लकल्पश्रुतम्–महाकल्पश्रुतम् –औपपातिकम्–राजप्रसेनकम्–जीवाभिगमः –प्रज्ञापना–महाप्रज्ञापना, इत्यादि। आवश्कं षड्विधम्, सामायिकं चतुर्विंशतिस्तवः, वन्दनकम्,प्रतिक्रमणम्, कायोत्सर्गः, प्रत्याख्यानम्, इति–। तच्च–श्रुतज्ञानं मतिज्ञानपूर्वकमेव भवति–न तु मतिज्ञानम् श्रुतज्ञानपूर्वक मित्यवधेयम् ॥४७॥

उपासकदशांग (८) अन्तकृद्दशांग (९) अनुत्तरौपपातिक दशांग (१०) प्रश्नव्याकरणांग (११) विपाकश्रुतांग और (१२) दृष्टिवादांग।

अंगबाह्य श्रुतज्ञान अनेक प्रकार का है। वह इस प्रकार है–आवश्यक और आवश्यक व्यतिरिक्त। आवश्यक व्यतिरिक्त के भी दो भेद हैं–कालिक और उत्कालिक। इनमें से कालिक श्रुत अनेक प्रकार का है–उत्तराध्ययन, दशा, कल्प, व्यवहार, निशीथ, महानिशीथ, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति आदि उत्कालिक श्रुत भी अनेक प्रकार का है, जैसे–दशवैकालिक, कल्पिका-कल्पिक, क्षुल्लकल्पश्रुत, महाकल्पश्रुत, औपपातिक, राजप्रसेनिक, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, महाप्रज्ञापना इत्यादि।

आवश्यक श्रुत के छह प्रकार है–(१) सामायिक (२) चतुर्विंशति-

અન્તકૃદ્દશાંગ (૯) અનુત્તરોપપાતિકદશાંગ (૧૦) પ્રશ્નવ્યાકરણાંગ (૧૧) વિપાક શ્રુતાંગ અને (૧૨(દૃષ્ટિવાદાંગ'

અંગબાહ્ય શ્રુતજ્ઞાન અનેક પ્રકારનું છે તે આ પ્રમાણે અંગબાહ્ય પ્રથમ તો બે પ્રકારનું છે આવશ્યક અને આવશ્યકવ્યતિરિકત આવશ્યક વ્યતિરિકતના પણ બે ભેદ છે કાલિક અને ઉત્કાલિક એમાંથી કાલિકશ્રુત અનેક પ્રકારના છે ઉત્તરાધ્યયન દશા, કલ્પ, વ્યવહાર, નિશીથ, મહાનિશીથ, જમ્બૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિ, દ્વીપસાગરપ્રજ્ઞપ્તિ, ચન્દ્રપ્રજ્ઞપ્તિ, સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ આદિ ઉત્કાલિક સૂત્ર પણ અનેક પ્રકારના છે. જેવાકે––દશવૈકાલિક, કલ્પિકાકલ્પિક, ક્ષુલ્લકલ્પશ્રુત, મહાકલ્પશ્રુત ઔપપાતિક, રાજપ્રશ્રેણિક, જીવાભિગમ, પ્રજ્ઞાપના મહાપ્રજ્ઞાપના ઇત્યાદિ

આવશ્યકશ્રુતના છ પ્રકાર છે (૧) સામાયિક, (૨)ચતુર્વિંશતિસ્તવ (૩)

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पूर्वं तावत्–मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानभेदात् सम्यग्ज्ञानं पञ्चविधं प्रतिपादितम्, तत्र मतिश्रुतम्–अवग्रहेहावायधारणाभेदात्–तदवान्तरभेदाच्च षट्त्रिंशदधिकशतत्रयमितं प्ररूपितम् सम्प्रति–श्रुतज्ञानं द्वैविध्येन प्ररूपयितुमाह–"सुयनाणे दुविहे, अंगपविट्ठे–अंगबाहिरे य–" इति–। श्रुतज्ञानम्–श्रूयते इति श्रुतम्–श्रूयमाणशब्दस्वरूपं, श्रवणं वा–श्रुतम्–भावे क्तः प्रत्ययः, तत् सम्बन्धि–तद्रूपम् वा श्रुतज्ञानम् आगमरूपम् जिनवचनं तीर्थकृदुपदेशः आप्तोपदेशः आप्तवचनं चोच्यते। तच्च–श्रुतज्ञानं मतिज्ञानपूर्वकं भवति, न तु–

स्तव (३) वन्दनक (४) प्रतिक्रमण (५) कायोत्सर्ग और (६) प्रत्याख्यान।

यह श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक ही होता है, मगर मतिज्ञान श्रुतज्ञान पूर्वक नहीं होता ॥४७॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवल के भेद से ज्ञान के पांच प्रकार प्रदर्शित किए गए थे। इनमें से मतिज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के भेद से तथा अवान्तर भेदों से तीन सौ छत्तीस प्रकार का है, यह भी प्रतिपादन किया गया। अब श्रुतज्ञान के दो भेदों का प्ररूपणा करते हैं–

जो सुना जाय सो श्रुत अर्थात् शब्द। अथवा सुनना श्रुत कहलाता है। यहाँ भाव के अर्थ में 'क्त' प्रत्यय होने से 'श्रुत' शब्द निष्पन्न होता है। यह श्रुतज्ञान आगमरूप जिन वचन, तीर्थंकरोपदेश, आप्तोपदेश या आप्तवचन भी कहलाता है।

વન્દનક (૪) પ્રતિક્રમ (૫) કાયોત્સર્ગ અને (૬) પ્રત્યાખ્યાન.

આ શ્રુતજ્ઞાન મતિજ્ઞાનપૂર્વક જ થાય છે પરન્તુ મતિજ્ઞાન શ્રુતજ્ઞાનપૂર્વક થતું નથી ॥ ૪૭ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ–પહેલા મતિ, શ્રુત, અવધિ, મનઃપર્યવ અને કેવળના ભેદથી જ્ઞાનના પાંચ પ્રકાર પ્રદર્શિત કરવામાં આવ્યા હતા. તે પૈકી મતિજ્ઞાન અવગ્રહ, ઈહા, અવાય અને ધારણાના ભેદથી તથા અવાન્તર ભેદોથી ત્રણસો છત્રીસ પ્રકારના છે, એવું પણ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું. હવે શ્રુતજ્ઞાનના બે ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ

જે સંભળાય તે શ્રુત અર્થાત્ શબ્દ. અથવા સાંભળવું શ્રુત કહેવાય છે. અહીં ભાવના અર્થમાં 'ક્ત' પ્રત્યય હોવાથી શ્રુત શબ્દ નિષ્પન્ન થાય છે. આ શ્રુતજ્ઞાન આગમરૂપ જિનવચન, તીર્થંકરોપદેશ, આપ્તોપદેશ અથવા આપ્તવચન પણ કહેવાય છે.

मतिज्ञानं श्रुतज्ञानपूर्वकम्-। उक्तञ्च नन्दिसूत्रे २४ सूत्रे-'मइपुव्वं जेण सुयं न मई सुयपुव्विया-" इति मतिपूर्वं येन श्रुतम्-न मतिः श्रुतपूर्विका, इति-। तत्राऽङ्गप्रविष्टं खलु श्रुतज्ञानं द्वादशविधं भवति तद्यथा-आचाराङ्गम् १ सूत्रकृताङ्गम्२ स्थानाङ्गम्३ समवायाङ्गम्४ व्याख्याप्रज्ञप्तिः ५ ज्ञातधर्मकथा६ उपासकदशाङ्गम्७ अन्तकृद्दशाङ्गम्८ अनुत्तरोपपातिकदशाङ्गम्९ प्रश्नव्याकरणम् १० विपाकसूत्राङ्गम्११ दृष्टिपातश्च१२ अङ्गबाह्यञ्च प्रथमं तावत् द्विविधं भवति' आवश्यकम्१ आवश्यकव्यतिरिक्तञ्च २ तत्राऽऽवश्यकं षड्विधम् चतुर्विंशतिस्तवः, वन्दनम्, प्रतिक्रमणम्, कायोत्सर्गः प्रत्याख्यानञ्चेति ! आवश्यक व्यतिरिक्तं द्विविधम्, कालिकम्-उत्कालिकञ्चेति। तत्र-कालिकम्-अनेकविधम् तद्यथा

श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है, मतिज्ञान श्रुतज्ञानपूर्वक नहीं होता। नन्दीसूत्र के २४ वें सूत्र में कहा है- श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है, मगर मतिज्ञान ज्ञानपूर्वक नहीं होता।

अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान बारह प्रकार का है-आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातधर्मकथा, उपासकदशांग, अनुत्तरोपपातिकदशांग, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुतांग और दृष्टिवाद या दृष्टिपात।

अंगबाह्य दो प्रकार का है-आवश्यक और आवश्यक व्यतिरिक्त। आवश्यक के छह भेद हैं-(१) सामायिक (२) चतुर्विंशतिस्तव (३) वन्दना (४) प्रतिक्रमण (५) कायोत्सर्ग और (६) प्रत्याख्यान। आवश्यक व्यतिरिक्त दो प्रकार का है-कालिक और उत्कालिक। कालिक

શ્રુતજ્ઞાન મતિજ્ઞાનપૂર્વક થાય છે મતિજ્ઞાન શ્રુતજ્ઞાનપૂર્વક થતું નથી નન્દી સૂત્રના ૨૪માં સૂત્રમાં કહ્યું છે શ્રુતજ્ઞાન મતિજ્ઞાનપૂર્વક થાય છે, પરન્તુ મતિજ્ઞાન શ્રુતપૂર્વક થતુ નથી.

અંગપ્રવિષ્ટ શ્રુતજ્ઞાન બાર પ્રકારનું છે-આચારાંગ, સૂત્રકૃતાંગ, સ્થાનાંગ, સમવાયાંગ, વ્યાખ્યાપ્રજ્ઞપ્તિ, જ્ઞાતાધર્મકથાંગ, ઉપાસકદશાંગ, અનુત્તરોપપાતિક દશાંગ, પ્રશ્નવ્યાકરણ, વિપાકશ્રુતાંગ, અને દષ્ટિવાદ અગર દષ્ટિપાત.

અંગબાહ્ય બે પ્રકારનું છે. આવશ્યક અને આવશ્યકવ્યતિરિકત આવશ્યકના છ ભેદ છે-(૧) સામાયિક (૨) ચતુર્વિંશતિસ્તવ (૩) વંદણા (૪) પ્રતિક્રમણ (૫) કાયોત્સર્ગ અને (૬) પ્રત્યાખ્યાન. આવશ્યકવ્યતિરિકત બે પ્રકારના છે-કાલિક અને ઉત્કાલિક તેમાં કાલિક અનેક પ્રકારના છે જેમકે-ઉત્તરાધ્યયન દશા કલ્પ

उत्तराध्ययनानि दशा–कल्पः–व्यवहारः–निशीथम्–महानिशीथम्=जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः–द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः–चन्द्रप्रज्ञप्तिः–सूर्यप्रज्ञप्तिः–क्षुद्रिका–विमानप्रविभक्तिः–महल्लिका–विमानप्रविभक्तिः–अङ्गचूलिका–वङ्गचूलिका–विवाहचूलिका–अरुणोपपातः वरुणोपपातः–गरुडोपपातः–धरणोपपातः–वैश्रवणोपपातः–वेलन्धरोपपातः देवेन्द्रोपपातः–उत्थानसूत्रम् – समुत्थानसूत्रम्–निरयावलिका–कल्पिका–कल्पावतंसिका–पुष्पिका–पुष्पचूलिका–इत्यादि। उत्कालिकश्चापि–अनेकविधम्, तद्यथा दशवैकालिकम् – कल्पिकाकल्पिकम्–क्षुल्लकल्पश्रुतम्–महाकल्पश्रुतम्–उपपातिकम्–राजप्रश्नीयकम्–जीवाभिगमः–प्रज्ञापना–महाप्रज्ञापना इत्यादि। उक्तञ्च–स्थानाङ्गे २ स्थाने १ उद्देशके ७१ सूत्रे–'सुयनाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा=अंगपविट्ठे चेव, अंगबाहिरे चेव' इति, श्रुतज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–अङ्ग·

अनेक प्रकार का है, यथा–उत्तराध्ययन, दशा, कल्प, व्यवहार, निशीथ, महानिशीथ, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागर, चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्ति, महल्लिकाविमानप्रविभक्ति, अंगचूलिका, वङ्गचूलिका, विवाहचूलिका, अरुणोपपात, वरुणोपपात, गरुडोपपात, धरणोपपात, वैश्रवणोपपात, वेलंधरोपपात, देवेन्द्रोपपात, उत्थानसूत्र, समुत्थानसूत्र, निरयावलिका, कल्पिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका इत्यादि।

उत्कालिक श्रुत भी अनेक प्रकार है, यथा–दशवैकालिक, कल्पिकाकल्पिक, क्षुल्लकल्पश्रुत, महाकल्पश्रुत, उपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, महाप्रज्ञापना इत्यादि। स्थानांग सूत्र के द्वितीय स्थान के प्रथम उद्देशक के सूत्र ७१ वें में कहा है–'श्रुतज्ञान दो प्रकार का कहा

વ્યવહાર, નિશીથ, મહાનિશીથ, જમ્બૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિ દ્વીપસાગરપ્રજ્ઞપ્તિ ચન્દ્રપ્રજ્ઞપ્તિ સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ, ક્ષુદ્રિકાવિમાનપ્રવિભક્તિ, મહલ્લિકાવિમાનપ્રવિભક્તિ, અંગચૂલિકા, વઙ્ગચૂલિકા વિવાહચૂલિકા. અરૂણોપપાત, વરૂણોપપાત, ગરૂડોપપાત, ધરણોપપાત, વૈશ્રમણોપપાત વેલંધરોપપાત દેવેન્દ્રોપપાત, ઉત્થાનસૂત્ર, સમુત્થાનસૂત્ર, નિરયાવલિકા કલ્પિકા. કલ્પાવતંસિકા, પુષ્પિકા, પુષ્પચૂલિકા ઈત્યાદિ

ઉત્કાલિક સૂત્ર પણ અનેક પ્રકારના છે જેવાકે દશવૈકાલિક, કલ્પિકા-કાલ્પિક, ક્ષુલ્લકલ્પશ્રુત, મહાકલ્પશ્રુત, ઉપપાતિક, રાજપ્રશ્નીય, જીવાભિગમ, પ્રજ્ઞાપના મહાપ્રજ્ઞાપના ઈત્યાદિ. સ્થાનાંગસૂત્રના દ્વિતીયસ્થાનના પ્રથમ ઉદ્દેશકના ૭૧માં સૂત્રમાં કહ્યું છે

શ્રુતજ્ઞાન બે પ્રકારના છે જે આ પ્રમાણે છે–અંગપ્રવિષ્ટ અને અંગબાહ્ય

प्रविष्टश्चैव, अङ्गबाह्यश्चैव, इति । नन्दिसूत्रे-४४ सूत्रे चोक्तम्—'से किं तं अंग-पविट्ठं ? दुवालसविहं पण्णत्तम् तं जहा-आयारो१ सुयगडे२ ठाणं३ समवाओ४ विवाहपण्णत्ती५ नायाधम्मकहाओ६ उवासगदसाओ७ अंतगडदसाओ८ अणुत्तरोववाइयदसाओ९ पण्हावागरणाइं१० विवाग-सुयं११ दिट्ठिवाओ१२ इति । अथ किं तत्-अङ्गप्रविष्टम् ? द्वादशविधं प्रज्ञप्तम् तद्यथा-आचारः-सूत्रकृतम् स्थानम् समवायः व्याख्याप्रज्ञप्तिः ज्ञाताधर्मकथा-उपासकदशा-अन्तकृद्दशा-अनुत्तरोपपातिकदशा प्रश्नव्याकरणम् विपाकश्रुतम् दृष्टिवादः इति । तदग्रे च नन्दिसूत्रे ४४ सूत्रे एवोक्तम्-'अंगबा-हिरं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा-आवस्सयं च, आवस्सयवइरित्तं च, से किं तं आवस्सयं ? आवस्सयं छव्विहं पण्णत्तं, तं जहा-सामाइयं-चउ-वीसत्थवो वंदणयं पडिक्कमणं काउस्सग्गो पच्चक्खाणं सेत्तं आव-स्सयं । से किं तं आवस्सयवइरित्तं ? आवस्सयवइरित्तं दुविहं पण्णत्तं

है, वह इस प्रकार है-अगप्रविष्ट और अंगबाह्य ।'

नन्दी सूत्र के सूत्र ४० में कहा है-अंगप्रविष्ट श्रुत कितने प्रकार का है ? (उत्तर-) बारह प्रकार का है, यथा-(१) आचार (२) सूत्रकृत (३) स्थान (४) समवाय (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति (६) ज्ञातधर्मकथा (७) उपासकदशा (८) अन्तकृद्दशा (९) अनुत्तरोपपातिक (१०) प्रश्नव्याकरण (११) विपाकश्रुत (१२) दृष्टिवाद ।

इससे आगे नन्दीसूत्र में ही सूत्र ४४ में कहा है-अंगबाह्यश्रुत दो प्रकार का है-आवश्यक और अवश्यक व्यतिरिक्त । आवश्यक के कितने भेद हैं ? (उत्तर-) आवश्यक के छह भेद हैं-सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दनक, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान । आवश्यक व्यतिरिक्त के कितने भेद हैं ? (उत्तर-) आवश्यक व्यतिरिक्त के दो भेद हैं, यथा—

નન્દીસૂત્રના ૪૦ માં સૂત્રમાં કહ્યું છે—અંગપ્રવિષ્ટ શ્રુત કેટલા પ્રકારના છે ? ઉત્તર બાર પ્રકારના છે (૧) આચાર (૨) સૂત્રકૃત (૩) સ્થાન (૪) સમ-વાય (૫) વ્યાખ્યાપ્રજ્ઞપ્તિ (૬) જ્ઞાતાધર્મકથા (૭) ઉપાસકદશા (૮) અન્તકૃદ્દશા (૯) અનુત્તરોપપાતિક (૧૦) પ્રશ્નવ્યાકરણ (૧૧) વિપાકશ્રુત અને (૧૨) દૃષ્ટિવાદ.

આથી આગળ નન્દીસૂત્રમાં જ ૪૪ માં સૂત્રમાં કહ્યું છે—અંગબાહ્ય ત બે પ્રકારના છે—આવશ્યક અને આવશ્યકવ્યતિરિકત. આવશ્યકના કેટલા ભેદ છે ?

ઉત્તર—આવશ્યકના છ ભેદ છે—સામાયિક' ચતુર્વિંશતિસ્તવ, વંદના પ્રતિક્રમણ કાયોત્સર્ગ અને પચ્ચખાણ. આવશ્યકવ્યતિરિકતના કેટલા ભેદ છે ? ઉત્તર—આવ-

तं जहा—कालियं च उक्कालियं च, से किं तं उक्कालियं ? उक्कालियं अणेगविहं पण्णत्तं तं जहा दसवेयालियं कप्पियाकप्पियं चुल्लकप्पसुयं, महाकप्पसुयं उववाइयं रायपसेणियं जीवाभिगमो पण्णवणा महापण्णवणा पमायप्पमायं नंदी अणुओगदाराइं देविंदत्थओ तंदुलवेयालियं चंदाविज्झयं सूरपण्णत्ति पोरिसिमंडलं मंडलपवेसो. विज्जाचरणविणिच्छओ गणिविज्जा, झाणविभत्ती, मरणविभत्ती-आयविसोही वीयरागसुअं संलेहणासुअं विहारकप्पो चरणविही आउरपच्चक्खाणं महापच्चक्खाणं एवमाइ। से तं उक्कालियं से किं तं कालियं? कालियं अणेगविहं पण्णत्तं तं जहा उत्तरज्झयणाइं दसाओ कप्पो ववहारो निसीहं महानिसीहं इसिभासियाइं जंबूदीवपण्णत्ती. दीवसागरपण्णत्ती

कालिक और उत्कालिक। उत्कालिक के कितने भेद हैं? (उत्तर) उत्कालिक अनेक प्रकार का है, यथा-दशवैकालिक, कल्पिकाकल्पिक, क्षुल्लकल्पश्रुत, महाकल्पश्रुत, उपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, महाप्रज्ञापना, प्रमादा-प्रमाद नंदी, अनुयोगद्वार, देवेन्द्रस्तव, तन्दुलवैतालिक, चन्द्राविध्यक, सूर्यप्रज्ञप्ति, पौरुषीमंडल, मंडलप्रवेश, विद्याचरण विनिश्चय, गणीविद्या, ध्यानविभक्ति, आत्मविशुद्धि, वीतरागश्रुत, संलेखना-श्रुत, विहारकल्प, चरणविधि, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान इत्यादि।

कालिकश्रुत के कितने भेद हैं? कालिकश्रुत अनेक प्रकार का है, यथा—उत्तराध्ययन, दशा, कल्प, व्यवहार, निशीथ, महानिशीथ, ऋषि-

---

શ્યકવ્યતિરિક્તના બે ભેદ છે જેમકે કાલિક અને ઉત્કાલિક ઉત્કાલિકના કેટલા ભેદ છે ? ઉત્કાલિક અનેક પ્રકારના છે જેમકે દશવૈકાલિક, કલ્પિકાકલ્પિક, ક્ષુલ્લકકલ્પ-શ્રુત, મહાકલ્પશ્રુત, ઉપપાતિક, રાજપ્રશ્નીય, જીવાભિગમ, પ્રજ્ઞપના મહાપ્રજ્ઞાપના, પ્રમાદાપ્રમાદ નંદી અનુયોગદ્વાર, દેવેન્દ્રસ્તવ, તન્દુલવૈતાલિક. ચન્દ્રાવિધ્યક, સૂર્ય-પ્રજ્ઞપ્તિ, પૌરૂષીમંડલ, મંડલપ્રવેશ, વિદ્યાચરણવિનિશ્ચય ગણિતવિદ્યા ધ્યાનવિભક્તિ, ચરણવિભક્તિ આત્મવિશુદ્ધિ, વીતરાગશ્રુત સંલેખનાશ્રુત, વિહારકલ્પ, ચરણવિધિ, આતુરપ્રત્યાખ્યાન, મહાપ્રત્યાખ્યાન, ઈત્યાદિ પ્રમાદાપ્રમાદ, નંદી, અનુયોગદ્વાર દેવે-ન્દ્રસ્તવ. વૈતાલિક ચંદ્રવૈતાલિક. સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ પૌરૂષીમંડળ મંડળપ્રવેશ વિદ્યાચરણ વિનિશ્ચય ગણીવિદ્યા ધ્યાનવિભક્તિ મરણવિભક્તિ આત્મવિશુદ્ધિ, વીતરાગશ્રુત સંલેખનાશ્રુત વિહારકલ્પ ચરણવિધિ આતુરપ્રત્યાખ્યાન મહાપ્રત્યાખ્યાન ઈત્યાદિ

કાલિકશ્રુતના કેટલા ભેદ છે ? કાલિકશ્રુત અનેક પ્રકારનું છે. જેમકે ઉત્તરાધ્યયન દશાકલ્પ વ્યવહાર નિશીથ મહાનિશીથ ઋષિભાષિત જંબૂદ્વીપ પ્રજ્ઞપ્તિ

चंदपण्णत्ती खुड्डिया विमाणपविभत्ती, महल्लिया विमाणपविभत्ती अंगचूलिया वग्गचूलिया विवाहचूलिआ अरुणोववाए वरुणोववाए गरुडोववाए धरणोववाए वेसमणोववाए वेलंधरोववाए देविंदोववाए उट्ठाणसुए नागपरिआवणिआओ, निरयावलियाओ कप्पिआओ कप्पवडिंसियाओ पुप्फिआओ पुप्फचूलिआओ वण्हीदसाओ एवमाइयाइं चउरासीइं पइन्नगसहस्साइं ॥४७॥

मूलम्-ओहिनाणे दुविहे, भवपच्चय खओवसमनिमित्त भेयओ ॥४८॥

छाया-'अवधिज्ञानं द्विविधम्, भवप्रत्ययक्षयोपशमनिमित्तभेदतः ॥४८॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वं तावत् यथाक्रमं मतिज्ञानं श्रुतज्ञानञ्च सविस्तरं प्रज्ञापितम्, सम्प्रति-क्रमप्राप्तमवधिज्ञानमनेकविधत्वेन प्ररूपयितुमाह-'ओहिनाणे

भाषित, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, (सूर्यप्रज्ञप्ति), क्षुल्लिका विमानप्रविभक्ति, महाविमानप्रविभक्ति अंगचूलिका, वर्गचूलिका विवाहचूलिका, अरुणोपपात, वरुणोपपात, गरुडोपपात, धरणोपपात, वैश्रमणोपपात, वेलन्धरोपपात, देवेन्द्रोपपात, उत्थानश्रुत, नागपरियावणिया, निरयावलिका, कल्पिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा, इत्यादि चौरासी हजार प्रकीर्णक होते हैं ॥४७॥

'ओहिनाणे दुविहे' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—अवधिज्ञान दो प्रकार का है-भवप्रत्यय और क्षयोपशमनिमित्तक ॥४८॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले विस्तार के साथ मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की प्ररूपणा की गई, अब क्रमप्राप्त अवधिज्ञान के अनेक भेदों का निरूपण करते हैं-

---

દ્વીપસાગરપ્રજ્ઞપ્તિ ચંદ્રપ્રજ્ઞપ્તિ સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ ક્ષુલ્લિકા વિમાન પ્રવિભક્તિ મહાવિમાન પ્રવિભક્તિ અંગચૂલિકા વર્ગચૂલિકા, વિવાહચૂલિકા અરૂણોપપાત વરૂણોપપાત ગરૂડોપપાત ધરણોપપાત વૈશ્રમણોપપાત વેલંધરોપપાત દેવેન્દ્રોપપાત ઉત્થાનસૂત્ર નાગપરિઆવણિયા નિર્યાવલિકા કલ્પિકા કલ્પાવતંસિકા પુષ્પિકા પુષ્પચૂલિકા. વૃષ્ણીદશા વગેરે ચોર્યાશી હજાર પ્રકીર્ણક હોય છે. ॥ ૪૭ ॥

'ઓહિનાણે દુવિહે' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—અવધિજ્ઞાન બે પ્રકારનું છે ભાવપ્રત્યય અને ક્ષયોપશમનિમિત્તક ॥૪૮॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલાં સવિસ્તર મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી. હવે ક્રમપ્રાપ્ત અવધિજ્ઞાનના અનેક ભેદોનું નિરૂપણ કરીએ છીએ.

दुविहे' इत्यादि। अवधिज्ञानम्-पूर्वोक्तस्वरूपं द्विविधं भवति तस्य खलु अवधिज्ञानस्य द्विविधत्वे हेतुमाह-भवप्रत्ययक्षयोपशमनिमित्तभेदतः, भवः प्रत्ययो-निमित्तं यस्य स भवप्रत्ययः भवहेतुकोऽवधिः। एवं क्षयश्च-उपशमश्चेति क्षयोपशमौ तौ निमित्तं यस्य स क्षयोपशमनिमित्तः खलु अवधिरुच्यते तत्र भवस्तावत् आयुर्नाम कर्मोदयनिमित्तक आत्मनः पर्यायः तन्निमित्तकं खल्ववधिज्ञानं भवप्रत्ययिकं देवानां-नारकाणाञ्च भवति। क्षयः-अवधिज्ञानवरणस्य देशघातिस्पर्द्धकानामुदये सति सर्वघातिस्पर्द्धकानामुदयाभावः क्षयः, तथाविधानमेव स्पर्द्धकाना-

पूर्वोक्त स्वरूप वाला अवधिज्ञान दो प्रकार का है। अवधिज्ञान के दो प्रकार होनेका कारण है भवरूप निमित्त और क्षयोपशमरूप निमित्त जिस अवधिज्ञान का कारण भव हो वह भवप्रत्यय और जिसका कारण क्षयोपशम हो वह क्षयोपशमनिमित्तक कहलाता है। आयुकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले पर्याय को भव कहते हैं। भव जिसमें बाह्य कारण हो वह अवधिज्ञान भवप्रत्यय कहलाता है। यह देवों और नारकों को ही होता है, क्योंकि देवभव और नारकभव के निमित्त से उसकी उत्पत्ति होती है। जो अवधिज्ञान तपश्चरण आदि गुणों के योग से अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर उत्पन्न होता है वह क्षयोपशमनिमित्तक कहलाता है। यह अवधिज्ञान मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचों को होता है।

अवधिज्ञानावरण कर्म के देशघाति स्पर्धकों का उदय उदयागत सर्वघाति स्पर्धकों का क्षय और आगे उदय में आने वाले सर्वघात

પર્વોક્ત સ્વરૂપવાળું અવધિજ્ઞાન બે પ્રકારનું છે. અવધિજ્ઞાનનાં બે પ્રકાર હોવાનું કારણ છે. ભવરૂપનિમિત્ત અને ક્ષયોપશમરૂપનિમિત્ત જે અવધિજ્ઞાનનું કારણ ભવ છે તે ભવપ્રત્યય અને જેનું કારણ ક્ષયોપશમ હોય તે ક્ષયોપશમ-નિમિત્તક કહેવાય છે. આયુષ્યકર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થનાર પર્યાયને ભવ કહે છે. ભવ જેમાં બાહ્ય કારણ હોય તે અવધિજ્ઞાન ભવપ્રત્યય કહેવાય છે. આ દેવો અને નારકોને જ થાય છે કારણકે દેવભવ અને નારકભવના નિમિત્તથી તેની ઉત્પત્તિ થાય છે. જે અવધિજ્ઞાન તપશ્ચર્યા આદિ ગુણોના યોગથી અવ-ધિજ્ઞાનાવરણ કર્મનો ક્ષયોપશમ થવાથી ઉત્પન્ન થાય છે તે ક્ષયોપશમનિમિત્તક કહેવાય છે. આ અવધિજ્ઞાન મનુષ્યો અને તિર્યંચપંચેન્દ્રિયોને થાય છે.

અવધિજ્ઞાનાવરણકર્મનાં દેશઘાતી સ્પર્ધકોનો ઉદય, ઉદયાગત સર્વઘાતી સ્પર્ધકોનો ક્ષય અને આગળ ઉપર ઉદયમાં આવનારા સર્વઘાતી સ્પર્ધકોનો

मनुदयमाप्तानां सदवस्था-उपशमः, स्पर्द्धकञ्च-कर्मपुद्गलशक्तीनां क्रमिक वृद्धि-ह्रासरूपम् तथाविध क्षयोपशमनिमित्तकमवधिज्ञानं षड्विधं देवनारकभिन्नानाम् उपशान्तक्षीणकर्मणां मनुष्यपञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकानां भवति तथा च पक्वानामना मवधिज्ञानावरणीयकर्मणां क्षयेण विपाकमप्राप्तानामवधिज्ञानावरणीयकर्मणामुपशमेन चोत्पद्यमानमवधिज्ञानं क्षायोपशमिकं व्यपदिश्यते। एवञ्च-एकं भवप्रत्ययिकं१ क्षायोपशमिकं षड्विधम् आनुगामिकम् २ अनानुगामिकम् ३ वर्द्धमानम्-४ हीयमानम् ५ प्रतिपाति ६ अप्रतिपाति च ७ इत्येवं सप्तविधं तावद् सर्वमवधि-ज्ञानमवसेयम् ॥४८॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं खलु क्रमप्राप्तं सम्यग्ज्ञानविशेषरूपं मतिज्ञानं-श्रुत ज्ञानञ्च सविस्तरं प्ररूपितम्, सम्प्रति-क्रमप्राप्तमवधिज्ञानं द्विविधत्वेन प्रतिपादयि-तुमाह-'ओहिनाणे दुविहे, भवपच्चय-खओवसमनिमित्तभेयओ' इति अवधिज्ञानं तावत् पूर्वोक्तस्वरूपं द्विविधं भवति तस्य द्विविधत्वे हेतुमाह-भव-प्रत्य क्षयोपशमनिमित्तभेदतः। तत्र-भवः आयुर्नाम कर्मोदयनिमित्तक आत्मनः पर्यायः तथाविधा भवः प्रत्ययः हेतुर्यस्य तत्-भवप्रत्ययम् अवधिज्ञानम्। एवं क्षयश्चो

स्पर्द्धकों का उपशम हो तब अवधिज्ञान का क्षयोपशम होता है। क्षयो-पशम अवधिज्ञान छह प्रकार का है-(१) आनुगामिक (२) अनानुगामिक (३) वर्द्धमान (४) हीयमान (५) प्रतिपाति और (६) अप्रतिपाती ॥४८॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-पहले सम्यग्ज्ञान विशेष मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की विस्तारपूर्वक प्ररूपणा की गई, अब क्रमप्राप्त अवधिज्ञान के दो भेदों की प्ररूपणा करते हैं-

पूर्वोक्त स्वरूप वाला अवधिज्ञान दो प्रकार का है- भवप्रत्यय और क्षयोपशम प्रत्यय। उसके दो भेद होने के कारण यह है कि वह भव रूप निमित्त से और क्षयोपशम रूप निमित्त से उत्पन्न होता है। आयु-कर्म के उदय से होने वाला आत्मा का पर्याय भव कहलाता है। वह

ઉપશમ થાય ત્યારે અવધિજ્ઞાનનો ક્ષયોપશમ થાય છે. ક્ષયોપશમનિમિત્તક અવ ધિજ્ઞાન છ પ્રકારનું છે (૧) આનુગામિક (૨) અનાનુગામિક (૩) વર્ધમાન (૪) હીયમાન (૫) પ્રતિપાતી અને (૬) અપ્રતિપાતિ. ॥ ૪૮ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ-પહેલા સમ્યક્જ્ઞાન વિશેષ મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનની વિસ્તારપૂર્વક પ્રરૂપણા કરવામાં આવી હવે ક્રમપ્રાપ્ત અવધિજ્ઞાનનાં બે ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ પૂર્વોક્ત સ્વરૂપવાળું અવધિજ્ઞાન બે પ્રકારનું છે ભવ પ્રત્યય અને ક્ષયોપશમપ્રત્યય. જેના બે ભેદ હોવાનું કારણ એ છે કે ભવરૂપ નિમિત્તથી અને ક્ષયોપશમ રૂપનિમિત્તથી ઉત્પન્ન થાય છે. આયુષ્યકર્મના ઉદયથી થનારો આત્માનો પર્યાય ભવ કહેવાય છે. આ ભવ જેમાં બાહ્ય કારણ

पशमश्चेति क्षयोपशमौ तौ निमित्तं यस्य तत् क्षयोपशमनिमित्तम् अवधिज्ञानं षड्विधं भवति। तत्र क्षयस्तावत्–अवधिज्ञानावरणस्य देशघाति स्पर्द्धकाना मुदयेसति सर्वघाति स्पर्द्धकानामुदयाभावरूपः। उपशमस्तु–तथाविधानामेव स्पर्द्धकानामुदयमाप्तानां सदवस्थारूपः। स्पर्द्धकञ्च कर्मपुद्गलशक्तीनां क्रमिकवृद्धिहासरूपं बोध्यम् तथाचैकं भवप्रत्ययिकम् १ क्षयोपशामिकं षड्विधम्। आनुगामिकम् २ अनानुगामिकम् ३ वर्द्धमानम् ४ हीयमानम् ५ प्रतिपाति ६ अप्रतिपाति७ चेत्येवं सर्वं सप्तविधं तावत् अवधिज्ञानमवसेयम्। तत्र–भवप्रत्ययिकमवधिज्ञानं देवानां नारकाणाञ्च भवति। क्षयोपशमनिमित्तकञ्च–षड्विधमवधिज्ञानं मनुष्याणां पञ्चे-

भव जिसमें बाह्य कारण हो वह अवधिज्ञान भवप्रत्यय कहलाता है। जिस अवधिज्ञान में क्षयोपशम ही प्रधान कारण हो वह क्षयोपशमनिमित्तक या क्षयोपशम प्रत्यय कहलाता है। क्षयोपशमनिमित्तक अवधि ज्ञान छह प्रकार का है।

अवधिज्ञानावरण कर्म के देशघातक स्पर्धकों का उदय हो, उदय में आये हुए सर्वघातक स्पर्धकों का क्षय हो और आगे उदय में आने वाले स्पर्धकों का उपशम हो, तब अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होता है।

क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान के छह भेद हैं–(१) आनुगामिक (२) अनानुगामिक (३) वर्द्धमान (४) हीयमान (५) प्रतिपाति और (६) अप्रतिपाति। इन भेदों में यदि भवप्रत्यय को सम्मिलित कर दिया जाय तो सात भेद कहे जा सकते हैं।

भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान देवों और नारकों को होता है। क्षयोपशमनिमित्तक उन संज्ञी मनुष्यों और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को होता है

હોય તે અવધિજ્ઞાન ભવ પ્રત્યય કહેવાય છે. જે અવધિજ્ઞાનમાં ક્ષયોપશમ જ પ્રધાન કારણ હોય તે ક્ષયોપશમનિમિત્તક અથવા ક્ષયોપશમપ્રત્યય કહેવાય છે-ક્ષયોપશમનિમિત્તક અવધિજ્ઞાન છ પ્રકારનાં છે.

અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મના દેશઘાતક સ્પર્ધકોનો ઉદય થાય, ઉદયમાં આવેલા સર્વઘાતક સ્પર્ધકોના ક્ષય થાય અને આગળ ઉપર ઉદયમાં આવનારા સ્પર્ધકોનો ઉપશમ થાય ત્યારે અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મનો ક્ષય થાય છે

ક્ષયોપશમનિમિત્તક અવધિજ્ઞાનનાં છ ભેદ છે (૧) આનુગામિક (૨) અનાનુગામિક (૩) વર્ધમાન (૪) હીયમાન (૫) પ્રતિપાતી અને (૬) અપ્રતિપાતી

આ ભેદોમાં જો ભવ પ્રત્યયને મેળવી દેવામાં આવે તો સાત ભેદ કહી શકાય.

ભવ પ્રત્યઈક અવધિ જ્ઞાન દેવો અને નારકોને થાય છે ક્ષયોપશમનિમિત્તક તે સંજ્ઞી મનુષ્યો અને તીર્યંચ પંચેન્દ્રિયોને થાય છે. કે જેઓએ અવધિજ્ઞાના-

न्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चोपशान्त क्षीणकर्मणां भवतीतिभावः। तथा च–एकबालाम्–अवधिज्ञानावरणीय कर्मणां क्षयेण, विपाकमप्राप्तानाम् अवधिज्ञानावरणीय कर्मणामुपशमेन चोत्पद्यमानमवधिज्ञानं क्षायोपशमिकं व्यपदिश्यते। उक्तञ्च स्थानाङ्गे २ स्थाने १ उद्देशके ७१ सूत्रे–दोण्हं भवपच्चइए पण्णत्ते, तं जहा देवाणंचेव, नेरइयाणं चेव' इति। द्वयोर्भव प्रत्ययिकः प्रज्ञप्तः, देवानाञ्चैव–नारकाणाञ्चैव, इति। नन्दिसूत्रे चोक्तम्–'से किं तं भवपच्चइअं? दुण्हं, तं जहा–देवाणय नेरइयाणय' इति, अथ किं तत् भवप्रत्ययिकम्? द्वयोः तद्यथा–देवानाञ्च नैरयिकाणाञ्च इति, । पुनश्च–स्थानाङ्गे २ स्थाने १ उद्देशके ७१ सूत्रे–'दोण्हं खओवसमिए पण्णत्ते तं जहा–मणुस्साणं चेव पंचिंदि-

---

जिन्होंने अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम किया हो। यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि भवप्रत्यय अवधिज्ञान के लिए भी क्षयोपशम होना अनिवार्य है, क्योंकि अवधिज्ञान क्षयोपशमिक भावों में परिणत है, अतएव क्षयोपशम के बिना उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती, फिर भी उसे भवप्रत्यय कहने का कारण यह है कि भव अर्थात् देवभव और नरकभव का निमित्त पाकर अवधिज्ञान का क्षयोपशम अवश्य हो जाता है। इस प्रकार बाह्य कारण की प्रधानता से भवप्रत्यय कहा है।

स्थानांगसूत्र द्वितीय स्थान, प्रथम उद्देशक के ७१ वें सूत्र में कहा है–'देव और नारक इन दो प्रकार के जीवों को भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान होता है। नन्दीसूत्र में भी कहा है–'भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान किसे होता है? दो को होता है–देवों और नारकों को पुनः स्थानांगसूत्र के द्वितीय स्थानक, प्रथम उद्देशक के ७१ वें सूत्र में कहा है–दो प्रकार

પરણુ કર્મનો ક્ષયોપશમ કર્યો હોય અત્રે એ ધ્યાનમાં રાખવું જોઈએ કે ભવપ્રત્યય અવધિજ્ઞાન માટે પણ ક્ષયોપશમ થવું અનિવાર્ય છે. કારણકે અવધિજ્ઞાન ક્ષયોપશમિક ભાવોમાં પરિણત છે. આથી ક્ષયોપશમ વગર તેની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી, તો પણ તેને ભવપ્રત્યય કહેવાનું કારણ એ છે કે ભવ અર્થાત્ દેવભવ અને નરકભવનું નિમિત્ત પામીને અવધિજ્ઞાનનો ક્ષયોપશમ અવશ્ય જ થઈ જાય છે. આ રીતે બાહ્ય કારણની પ્રધાનતાથી એને ભવપ્રત્યય કહેલ છે.

સ્થાનાંગસૂત્ર દ્વિતીય સ્થાન પ્રથમ ઉદ્દેશકના ૭૧માં સૂત્રમાં કહ્યું છે "દેવ અને નારક આ બંને પ્રકારના જીવોને ભવ પ્રત્યઈક અવધિજ્ઞાન થાય છે" નન્દીસૂત્રમાં પણ કહ્યું છે ભવપ્રત્યઈક અવધિજ્ઞાન કોને થાય છે? દેવોને અને નારકોને એમ બંનેને થાય છે. પુનઃ સ્થાનાંગ સૂત્રમાં દ્વિતીયસ્થાનક પ્રથમ ઉદ્દેશકના ૭૧ માં

यतिरिक्ख जोणियाणं चेव' इति द्वयोः क्षायोपशमिकः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-मनुष्याणाञ्चैव पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव, इति। तदग्रे च स्थानाङ्गे ६ स्थाने ५२६ सूत्रे चोक्तम्-'छव्विहे ओहिनाणे पण्णत्ते तं जहा=अणुगामिए १ अणाणुगामिए २ वद्धमाणए ३ हीयमाणए ४ पडिवाती ५ अपडिवाती' इति, षड्विधमवधिज्ञानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-आनुगामिकम् १ अनानुगामिकम् २ वर्द्धमानम् ३ हीयमानम् ४ प्रतिपाति ५ अप्रतिपाति ६ इति। एवं नन्दिसूत्रे ८ सूत्रे चोक्तम्-'से किं तं खाओवसमिअं? खाओवसमिअं दुण्हं तं जहा =मणुस्साणय-पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणय. को हेऊ खाओवसमिअं? खाओवसमिअं तयावरणिज्जाणं कम्माणं उदिण्णाणं खएणं अणुदिण्णाणं उवसमेणं ओहिनाणं समुप्पज्जइ' इति अथ किं तत् क्षायोपशमिकम्? क्षायोपशमिकं द्वयोः, तद्यथा-मनुष्याणाञ्च पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्च, किं हेतु क्षायोपशमिकम्? क्षायोपशमिकं तदावरणीयानां कर्मणाम् उदीर्णानां क्षयेण,

के जीवों को क्षयोपशम अवधिज्ञान कहा गया है-मनुष्यों को और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को, इससे आगे स्थानांग के छठे स्थान के ५२६ सूत्र में कहा है-'अवधिज्ञान छह प्रकार का कहा गया है, यथा-(१) आनुगामिक (२) अनानुगामिक (३) वर्द्धमान (४) हीयमान (५) प्रतिपाति और (६) अप्रतिपाति।' नन्दीसूत्र के आठवें सूत्र में कहा है-'क्षायोपशम अवधिज्ञान किसे होता है? क्षायोपशमिक अवधिज्ञान दो को होता है-मनुष्यों को और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को। इसे क्षायोपशमिक कहने का क्या कारण है? उदय में आये हुए अवधिज्ञानावरणीय कर्मों के क्षय से तथा जो उदय में नहीं आए हैं उनके उपशम से वह अवधिज्ञान उत्पन्न होता है, अतएव क्षायोपशमिक कहा जाता है।

સૂત્રમાં કહ્યું છે બે પ્રકારના જીવોને ક્ષયોપશમિક અવધિજ્ઞાન કહેવામાં આવ્યું છે. મનુષ્યોને અને પંચેન્દ્રિય તિર્યંચોને આથી આગળ સ્થાનાંગના ૬ઠા સ્થાનના ૫૨૬ના સૂત્રમાં કહ્યું છે અવધિજ્ઞાન ૬ પ્રકારના કહેવામાં આવ્યા છે. જેવાકે (૧) આનુગામિક (૨) અનાનુગામિક (૩) વર્ધમાન (૪) હીયમાન (૫) પ્રતિપાતી (૬) અપ્રતિપાતી નન્દીસૂત્રના ૮માં સૂત્રમાં કહ્યું છે ક્ષાયોપશમિક અવધિજ્ઞાન કોને થાય છે? ક્ષાયોપશમિક અવધિજ્ઞાન બેને થાય છે. મનુષ્યોને અને પંચેન્દ્રીય તિર્યંચોને આને ક્ષયોપશમિક કહેવાનું કારણ શું છે? ઉદયમાં આવેલા અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મોનાં ક્ષયથી તથા જે ઉદયમાં આવ્યા નથી. તેમના ઉપશમથી આ અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. આથી ક્ષાયોપશમિક કહેવાય છે.

अनुदीर्णानाम् उपशमेनाऽवधिज्ञानं समुत्पद्यते, इति प्रज्ञापनायां ३३ पदे तु-क्षायोपशमिकावधिज्ञानस्या-ऽवस्थिता-ऽनवस्थितभेदद्वयमपि अवधिक-मुक्तम् ॥४८॥

मूलम्-मणपज्जवनाणे दुविहे, उज्जुमईविउलमईय ॥४९॥

छाया-मनःपर्यवज्ञानं द्विविधम् ऋजुमति-विपुलमति च ॥४९॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत्-अवधिज्ञानं सविस्तरं प्ररूपितम् सम्प्रति-मनःपर्यवज्ञानं द्वैविध्येन प्ररूपयितुमाह-'मणपज्जवनाणे दुविहे' इत्यादि मनःपर्यवज्ञानम् पूर्वोक्तस्वरूपं द्विविधं भवति, तद्यथा-ऋजुमतिः विपुलमतिश्च. तत्र ईर्ष्यादीनां ज्ञानप्रतिबन्धकीभूतानां मनोगताना मन्तरायाणां सम्यग्दर्शनेन सति क्षये वोपशमे सर्वेषां मनसो परस्परं भेद प्रतिभासाभावेन परमनोगतोऽप्यर्थो येन ज्ञायते तज्ज्ञानं मनः पर्यवज्ञानपदेन व्यपदिश्यते । मनःशब्देनाऽत्र मनोगतोऽर्थो

प्रज्ञापना सूत्र के ३३ वें पद में क्षायोपशमिक ज्ञान के अवस्थित और अनवस्थित भेद कहे हैं ॥४८॥

'मणपज्जवनाणे दुविहे' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—मनःपर्यवज्ञान दो प्रकार का है-ऋजुमति और विपुलमति ॥४९॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले अवधिज्ञान का विस्तार सहित निरूपण किया गया, अब मनःपर्यवज्ञान के दो भेदों की प्ररूपणा करते हैं-

मनःपर्यवज्ञान का स्वरूप पहले कहा जा चुका है । उसके दो भेद हैं-ऋजुमति और विपुलमति। मनःपर्यवज्ञानावरण एवं वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से परकीय मनोगत भावों पर्यायों को प्रत्यक्ष जानने वाला ज्ञान मनःपर्यव या मनःपर्यवज्ञान कहलाता है । यहां 'मन' शब्द

પ્રજ્ઞાપના સૂત્રના ૩૩ માં પદમાં ક્ષાયોપશમિક જ્ઞાનના અવસ્થિત અને અનવસ્થિત ભેદ કહ્યા છે ॥ ૪૮ ॥

'મણપજ્જવનાણે દુવિહે' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-મનઃપર્યવજ્ઞાન કેટલા પ્રકારના છે અને ઋજુમતિ અને વિપુલમતિ.।૪૯।

તત્ત્વાર્થદીપિકા-પહેલા અવધિજ્ઞાનનું સવિસ્તર નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે મનઃપર્યવજ્ઞાનના બે ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ.

મનઃપર્યવજ્ઞાનનું સ્વરૂપ પહેલાં કહેવાઈ ગયું છે તેના બે ભેદ છે. ઋજુમતિ અને વિપુલમતિ. મનઃપર્યવજ્ઞાનાવરણ અને વીર્યાન્તરાય કર્મના ક્ષયોપશમથી પરકીય મનોગત ભાવો પર્યાયોને પ્રત્યક્ષ જાણનાર જ્ઞાન મનઃપર્યવ અથવા મનઃપર્યવજ્ઞાન કહેવાય છે. અહીં 'મન' શબ્દથી મનોગત પર્યાય

लक्ष्यते, तस्य मनोगतस्यार्थस्य पर्यवणं मनोन्तरेषु परिगमनं भवतीति मनः पर्यवः-मनःपर्यवोपोऽच्यते। परितः अवनम् अयनं वा मनःपर्यवः मनःपर्ययोवेति व्युत्पत्तिः, तत्र-ऋज्वीमतिर्यस्मिन् तत् ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान मुच्यते। विपुला मतिर्यस्मिन् स्तद् विपुलमति मनःपर्यवज्ञान मुच्यते, तत्र ऋजुमत्यपेक्षया विपुलमति मनःपर्यवज्ञानम् अधिकं विशुद्धं भवति। अप्रतिपाति च-भवति, चारित्रा दपतनशीलत्वाद् अप्रतिपाति व्यपदिश्यते, अतएव-ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानं प्रतिपाति भवति, भूयः परिपतत्यपि, विपुलमति मनःपर्यवज्ञानन्तु-न कदाचिदपि प्रतिपततीति भावः। एवं अवधिज्ञानापेक्षयाऽपि मनःपर्यवज्ञानं विशुद्धतरं भवति, एवञ्च-विशुद्धिकृतः क्षेत्रकृतः स्वामिकृतः विषयकृतश्च मनःपर्यवज्ञानस्य अवधिज्ञानापेक्षया विशेषो द्रष्टव्यः। तथा च विपुलमति मनःपर्यव-

से मनोगत पर्याय समझना चाहिए। दूसरे के मन के पर्यायों को जो ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से जानता है, उसे मनःपर्यवज्ञान कहते हैं। जिसमें मति ऋजु-सरल या साधारण हो वह ऋजुमति और जिसमें मति विपुल हो वह विपुलमति कहलाता है। ऋजुमति की अपेक्षा विपुल मतिज्ञान अधिक विशुद्ध होता है। इसके अतिरिक्त दोनों में दूसरा अन्तर प्रतिपाति-अप्रतिपाति का होता है। ऋजुमतिज्ञान प्रतिपाति है अर्थात् उत्पन्न होकर नष्ट भी हो जाता है, मगर विपुलमति अप्रतिपाति है अर्थात् वह एक बार उत्पन्न होकर केवलज्ञान की उत्पत्ति होने तक नष्ट नहीं होता। इस प्रकार ऋजुमति और विपुलमति में विशुद्धि और अप्रतिपात से अन्तर है।

अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान में विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय की अपेक्षा अन्तर है।

સમજવો જોઈએ બીજાના મનના પર્યાયોને જે જ્ઞાન પ્રત્યક્ષ રૂપથી જાણે છે. તેને મનઃપર્યવ જ્ઞાન કહે છે. જેમાં મતિ ઋજુ સરલ અથવા સાધારણ હોય તે ઋજુમતી અને જે મતિ વિપુલ હોય તે વિપુલમતિ કહેવાય છે. ઋજુમતિની અપેક્ષા વિપુલમતિ જ્ઞાન અધિક વિશુદ્ધ હોય છે. આ સિવાય બંનેમાં બીજો તફાવત પ્રતિપાતિ અપ્રતિપાતીનો છે ઋજુમતિ પ્રતિપાતી અર્થાત્ ઉત્પન્ન થઈને નષ્ટ પણ થઈ જાય છે. પરંતુ વિપુલમતિ અપ્રતિપાતી છે અર્થાત્ તે એકવાર ઉત્પન્ન થઈને કેવળજ્ઞાન ઉત્પત્તિ થતા સુધી નાશ પામતું નથી આ રીતે ઋજુમતિ અને વિપુલમતિમાં વિશુદ્ધિ અને અપ્રતિપાતથી તફાવત છે

અવધિજ્ઞાન અને મન પર્યવજ્ઞાનમાં વિશુદ્ધિ ક્ષેત્ર સ્વામી અને વિષયની અપેક્ષા અંતર છે.

ज्ञाने प्राप्ते सति उपशमश्रेणिमदत्त्वैव क्षपकश्रेण्यारूढो भूत्वा क्रमशश्चत्वारि मोहनीय ज्ञानावरण दर्शनावरणान्तरायरूपघातिकर्माणि विनाश्य केवलज्ञानं प्राप्य मोक्षमासादयति । अतएव-विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी चारित्रात् न कदाचित् परिभ्रंशते, किन्तु-ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानी अप्रमत्तसंयतः कदाचित् चारित्रात् परिभ्रंशते कदाचिच्च न परिभ्रंशते यतोहि=ऋजुमतिः सार्द्धं द्वयां अंगुलप्रमाणहीनं पश्यति-जानाति विपुलमतिश्च सार्द्धं द्वयां अंगुलप्रमाणाधिकं पश्यति-जानातीत्येदिवेकः ॥४९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः--पूर्वं तावत् क्रमप्राप्तमवधिज्ञानं सविस्तरं प्ररूपितम् सम्प्रति-क्रमागतं मनःपर्यवज्ञानं द्वैविध्येन प्ररूपयितुमाह-'मणपज्जवनाणे दुविहे उज्जुमइ-विउलमइय' इति मनःपर्यवज्ञानं पूर्वोक्तस्वरूपं द्विविधम-

---

जो मुनि विपुलमति मनःपर्यवज्ञान प्राप्त करता है, वह क्षपकश्रेणी पर आरूढ होकर क्रमशः मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इन चार घातिया कर्मों का क्षय करके नियम से केवलज्ञान का स्वामी होता है और मोक्ष प्राप्त करता है । किन्तु ऋजुमति के संबंध में यह बात नहीं, वह उत्पन्न होकर नष्ट भी हो जाता है ।

मनःपर्यवज्ञान अढाई द्वीप में स्थित संज्ञी जीवों के मनोभावों को जानता है, किन्तु ऋजुमति, विपुलमति की अपेक्षा अढाई अंगुल कम जानता है ॥४९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पहले क्रमप्राप्त अवधिज्ञान का विस्तृत निरूपण किया गया, अब क्रमागत मनःपर्यवज्ञान के दो भेदों की प्ररूपणा करते हैं-

---

જે મુનિ વિપુલમતિ મનઃપર્યવજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે છે. તે ક્ષપકશ્રેણી પર ચઢીને ક્રમશઃ મોહનીય જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ અને અંતરાય આ ચાર ઘાતિ કર્મોનો ક્ષય કરીને નિયમ મુજબ કેવળજ્ઞાનનો સ્વામી બને છે અને મોક્ષ પ્રાપ્ત કરે છે. પરંતુ ઋજુમતિના સંબંધમાં આ હકીકત નથી, તે ઉત્પન્ન થઈને નષ્ટ પણ થઈ જાય છે.

મનઃપર્યવજ્ઞાન અઢીદ્વીપમાં સ્થિત સંજ્ઞી જીવોના મનોભાવને જાણે છે. પરંતુ ઋજુમતિ, વિપુલમતિની અપેક્ષા અઢી આંગળ ઓછું જાણે છે. ॥૪૯॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ--પહેલા ક્રમપ્રાપ્ત અવધિજ્ઞાનનું વિસ્તૃત નિરૂપણ કર્યું. હવે ક્રમાગત મનઃપર્યવજ્ઞાનના બે ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ.

वति, ऋजुमति–विपुमतिश्चेति, तत्र ऋज्वीमतिर्यस्मिन् तत् ऋजुमति मनःपर्यव-ज्ञानम् । एवं–विपुला मतिर्यस्मिन् तत् विपुलमति–मनःपर्यवज्ञान मुच्यते तथाचे-र्ष्यादीनां ज्ञानप्रतिबन्धकानां मनोगतानामन्तरायकर्मविशेषाणां सम्यग्दर्शनेन क्षये–उपशमे वा जाते सति सर्वेषां मनसां परस्परं भेदप्रतिभासाभावेन परमनो-ऽप्यर्थो येन ज्ञायते तज्ज्ञानं मनःपर्ययज्ञानपदेनोच्यते । मनःशब्देनाऽत्र मनोगतो-ऽर्थमुपलक्ष्यते, तस्य खलु मनोगतस्यार्थस्य पर्यवणं–पर्ययणं मनोन्तरेषु परिगमनं भवतीति मनःपर्यय इत्युच्यते । तत्र ऋजुमति प्रतीक्ष्याऽपेक्ष्य विपुलमति मनः-पर्यवज्ञानमधिकं विशुद्धं भवति । एवम्–ऋजुमत्यपेक्षया विपुलमति–अप्रतिपाति चापि भवति चारित्रादपतनशीलत्वात् अप्रतिपाति व्यपदिश्यते । तथा च–

मनःपर्यवज्ञान का स्वरूप पहले कहा जा चुका है। उसके दो भेद हैं–ऋजुमति और विपुलमति। जिसमें मति ऋजु अर्थात् सरल हो वह ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान कहलाता है। जिसमें मति विपुल हो वह विपुलमति है। मनःपर्यवज्ञानावरण एवं वियान्तराय कर्म के क्षयोपशम से परकीय मनोगत भावों–पर्यायों को प्रत्यक्ष रूप से जानने वाला ज्ञान मनःपर्यवज्ञान कहलाता है। यहाँ 'मन' शब्द से मनोगत 'अर्थ' समझना चाहिए। जिस ज्ञान से मनोगत अर्थ जाना जाता है, वह मनःपर्यवज्ञान है।

ऋजुमति की अपेक्षा विपुलमतिज्ञान अधिक विशुद्ध होता है। इसके अतिरिक्त विपुलमति अप्रतिपाति है जब कि ऋजुमति प्रतिपाति है। जो एक बार उत्पन्न होकर केवलज्ञान की उत्पत्ति तक नष्ट न हो वह अप्रपाती कहलाता है और जो पहले ही नष्ट हो जाए वह प्रतिपाति कहलाता

મનઃપર્યવજ્ઞાનનું સ્વરૂપ પહેલાં કહેવાઈ ગયું છે. તેના બે ભેદ છે. ઋજુમતિ અને વિપુલમતિ. જેમાં મતિ, ઋજુ અર્થાત્ સરળ છે. તે ઋજુમતિ મનઃપર્યવજ્ઞાન કહેવાય છે. જેમાં મતિ વિપુલ છે. તે વિપુલમતિ મનઃપર્યવ જ્ઞાનાવરણ અને વીર્યાન્તરાય કર્મોના ક્ષયોપશમથી પરકીય મનોગત ભાવો પર્યાયોને પ્રત્યક્ષ રૂપથી જાણનાર જ્ઞાન મનઃપર્યવજ્ઞાન કહેવાય છે. અહીં 'મન' શબ્દથી મનોગત અર્થ સમજવો જોઈએ. જે જ્ઞાનથી મનોગત અર્થ જાણી શકાય છે. તે મનઃપર્યવજ્ઞાન છે.

ઋજુમતિની અપેક્ષા વિપુલમતિ જ્ઞાન અધિક વિશુદ્ધ હોય છે. આ સિવાય વિપુલમતિ અપ્રતિપાતી છે જ્યારે ઋજુમતિ પ્રતિપાતી છે. જે એકવાર ઉત્પન્ન થઈને કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ સુધી નષ્ટ ન થાય તે અપ્રતિપાતી કહેવાય છે.

वाक्काय मनस्कृतार्थस्य परमनोगतस्य विज्ञानात् निवर्तिता पश्चाद् व्यावर्तिता चालिता व्याघोटिता मतिः ऋजुमति रुच्यते । तथाविधाद् विज्ञानात् न निवर्तिता न पश्चाद् व्यावर्तिता न चालिता-न व्याघोटिता मतिः विपुलमति रुच्यते एवञ्च-विपुलमति मनःपर्यवज्ञाने प्राप्ते सति-उपशम श्रेणीमवद्ध्यैव क्षपक श्रेण्यारूढो भवति ततश्च क्रमशश्चत्वारि घातिकर्माणि मोहनीयज्ञानं दर्शनावरणान्तराय रूपाणि विध्वस्य मोक्षं प्राप्नोति । अतएव-विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी चारित्रान्न कदाचित् परिभ्रंशते, ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानीतु-अप्रमत्तसंयतः चारित्रात्कदाचित् परिभ्रंशते-कदाचिन्नापि परिभ्रंशते इतिभावः । एवं मनःपर्यवज्ञानम्-अवधिज्ञानापेक्षया विशुद्धतरं भवति तथा च-विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामि-विषयकृतः खलु विशेषोऽवधिज्ञानापेक्षया मनःपर्यवज्ञानेऽवगन्तव्यः । तथाचाऽवधिज्ञानस्य-

है। ऋजुमति प्रतिपाती और विपुलमति अप्रतिपाती है। इस प्रकार वचन, काय और मन के द्वारा कृत, परकीय मनोगत सरल भाव को जानने वाला ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान है और उस प्रकार के विज्ञान से जो निवर्तित न हो, पश्चात् व्यावर्तित न हो, चालित न हो, व्याघोटित न हो, वह विपुलमति ज्ञान कहलाता है।

विपुलमति मनःपर्यव ज्ञान की प्राप्ति होने पर मुनि सीधा क्षपक श्रेणी पर आरूढ होता है और पहले मोहनीय कर्म को तथा अन्तर्मुहूर्त्त के पश्चात् एक साथ तीन शेष घातिया कर्मों को क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है।

अवधिज्ञान की अपेक्षा मनःपर्यवज्ञान अधिक विशुद्ध होता है। इन दोनों ज्ञानों में विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय से अन्तर पड़ना

અને જે પહેલાંજ નાશ પામે તે પ્રતિપાતિ કહેવાય છે. ઋજુમતિ પ્રતિપાતી અને વિપુલમતિ અપ્રતિપાતી છે. આ રીતે વચન, કાય અને મન દ્વારા કૃત, પરકીય મનોગત સરળભાવને જાણનારૂં ઋજુમતિ મનઃપર્યવજ્ઞાન છે અને એ પ્રકારના વિજ્ઞાનથી જે નિવર્તિત ન હોય, પશ્ચાત્ વ્યાવર્તિત ન હોય, ચાલિત ન હોય, વ્યાઘોટિત ન હોય તે વિપુલમતિ જ્ઞાન કહેવાય છે.

વિપુલમતિ મનઃપર્યવજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થવાથી મુનિ સીધો ક્ષપક શ્રેણી પર આરૂઢ થાય છે. અને પહેલાના મોહનીય કર્મનો તથા અન્તર્મુહૂર્ત પછી એકી સાથે ત્રણ શેષ ઘાતિ કર્મો ખપાવીને કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી લે છે.

અવધિજ્ઞાનની અપેક્ષા મનઃપર્યવજ્ઞાન અધિક વિશુદ્ધ હોય છે. આ બંને જ્ઞાનોમાં વિશુદ્ધિ ક્ષેત્ર સ્વામી અને વિષયથી ભેદ થાય છે. અવધિજ્ઞાનનો

क्षेत्रं लोकत्रयम्, मनःपर्यवज्ञानस्य क्षेत्रं तु केवलं मध्यलोक एव, तत्रापि—सार्द्धद्वीपद्वयम्, तत्रापि—यत्र केवलं चतुर्थकालः तत्सन्धि वा भवति, तथाविध कर्मभूमिर्बोध्या। एवमधिज्ञानस्य स्वामी चतसृष्वपि नरक-देव-मनुष्य-तिर्यग्गतिषु भवति मनःपर्यवज्ञानस्य स्वामीतु—विरल एव भवति। तथाहि—मनःपर्यवज्ञानं केवलं गर्भजमनुष्याणामेव भवति तत्र कर्मभूमिजातानामेव तत्रापि—संख्येयवर्षायुषामेव नाऽप्यकर्मभूमिजानाम्, न वा—ऽसंख्येयवर्षायुषाम्, तत्रापि पर्याप्तकानामेव—नाऽ-

---

है। अवधिज्ञान का विषय, क्षेत्र की अपेक्षा, सम्पूर्ण लोक है, अर्थात् लोक में विद्यमान समस्त रूपी पदार्थ को वह जान सकता है। यही नहीं, परमावधिज्ञान में तो इतना सामर्थ्य होता है कि वह आलोक में लोकाकाश के बराबर-बराबर के असंख्यात खंडों को भी जान सकता है, मगर अलोक में रूपी पदार्थ होते नहीं हैं अतएव वह जानता भी नहीं है। मनःपर्यवज्ञान का क्षेत्र सिर्फ मनुष्यलोक अर्थात् अढाई द्वीप है।

स्वामी की अपेक्षा विचार किया जाय तो अवधिज्ञान के स्वामी चारों गतियों के जीव होते हैं, वह नारकों, देवों और तीर्यंचों को भी होता है। मनःपर्यवज्ञान विरल मनुष्यों को ही होता है, यथा—वह केवल गर्भज मनुष्यों को होता है, उनमें से भी केवल कर्मभूमिजों को ही होता है, उनमें संख्यात वर्ष की आयु वालों को ही होता है, न अकर्मभूमिज मनुष्यों को होता है और न असंख्यात वर्ष की आयु वालों को। संख्यात वर्ष की आयु वालों में भी पर्याप्तकों को और

વિષય ક્ષેત્રની અપેક્ષા સંપૂર્ણ લોક છે. અર્થાત્ લોકમાં વિદ્યમાન સઘળા રૂપી પદાર્થોને તે જાણી શકે છે. એટલું જ નહિ પરમાવધિ જ્ઞાનમાં તો એટલું સામર્થ્ય હોય છે કે તે અલોકમાં લોકાકાશની બરાબર બરાબરના અસંખ્યાત ખંડોને જાણી શકે છે. પરંતુ અલોકમાં રૂપી પદાર્થ હોતા નથી આથી તે જાણતો પણ નથી. મનઃપર્યવ જ્ઞાનનું ક્ષેત્ર કેવળ મનુષ્યલોક અર્થાત્ અઢીદ્વીપ છે, સ્વામીની અપેક્ષા વિચાર કરવામાં આવે તો અવધિજ્ઞાનના સ્વામી ચારેય ગતિઓના જીવ હોય છે. તે નારકો દેવો મનુષ્યો અને તિર્યંચોને પણ થાય છે. મનઃપર્યવ જ્ઞાન વિરલ મનુષ્યોને જ થાય છે. જેમકે તે કેવળ ગર્ભજ મનુષ્યોને થાય છે. તેમાં પણ કેવળ કર્મભૂમિને જ થાય છે. તેમાંથી પણ સંખ્યાત વર્ષની આયુષ્યવાળાઓને જ થાય છે. ન તો અકર્મભૂમિ જ મનુષ્યોને થાય છે કે ન અસંખ્યાત વર્ષના આયુષ્યવાળાઓને સંખ્યાત વર્ષના આયુષ્યવાળાઓમાં પણ પર્યાપ્તને અને તેમાં પણ સમ્યક

पर्याप्तानाम्, तत्रापि सम्यग्दृष्टीनामेव नाऽसम्यग्दृष्टीनाम्, तत्रापि ऋद्धिप्राप्ताना-मेव भवतीतिभावः ॥ एवम्-अवधिज्ञान विषयीभूतस्य रूपि द्रव्यस्याऽनन्ते सूक्ष्मे भागे मनःपर्यवज्ञानस्य वृत्तिर्भवति, तथा च-यद् द्रव्यं खलु अवधिज्ञानं जानाति तस्मादपि अनन्तभागं सूक्ष्मपदार्थं मनःपर्यवज्ञान जानातीति बोध्यम्। उक्तञ्च नन्दिसूत्रे १८ सूत्रे 'उज्जुमईणं अणंते अणंतपएसिए खंधे जाणइ पासइ ते चेव विउलमई अब्भहियतराए विउलतराए विसुद्धतराए वितिमिरतराए जाणइ पासइ, खेत्तओणं उज्जुमई य जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अहे जाव ईमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेट्ठिल्ले खुड्डगपयरे उड्ढं जाव जोइसस्स उवरिमतले तिरियं जाव अंतो मणुस्साखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पण्णरस्स कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पणए अंतरदीवगेसु सण्णीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तयाणं भावे जाणइ-पासइ, तं चेव विउलमइ अड्ढाइज्जेहिं अंगुलेहिं अब्भहियतरं विउलतरं विसुद्धतरं वितिमिरतरागं खेत्तं जाणइ-पासइ कालओणं उज्जुमइ जहण्णेणं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं वि पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं अतीयमणागयं वा कालं जाणइ पासइ, तं चेव विउलमइ अब्भहियतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ, पासइ, भावओ णं उज्जुमइ अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्व-भावाणं अणंतभागं जाणइ पासइ मणपज्जवणाणं पुण जण मण परिचिंति अत्थपागडणं माणुसखित्त निबद्धं गुणा पच्चइयं चरित्त-वओ' से तं मणपज्जवणाणं-इड्ढीपत्त अप्पमत्तसंजय सम्मदिट्ठी पज्ज-त्तग संखेज्जवासाउयकम्मभूमि अगब्भवक्कंति अमणुस्साणं मण-पज्जवणाणं समुप्पज्जइ, तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं तं जहा

उनमें भी सम्यग्दृष्टियों को होता है। सम्यग्दृष्टियों में भी अप्रमत्त-संयतों को ही होता है और उनमें से भी ऋद्धिप्राप्त मुनियों को ही होता है।

विषय की अपेक्षा से अवधिज्ञान के विषयभूत रूपी द्रव्य के अन-न्तवें भाग में मनःपर्यवज्ञान का व्यापार होता है। इस प्रकार अवधि-ज्ञान जिस द्रव्य को जानता है उसके अनन्तवें भाग सूक्ष्म अर्थ में

દૃષ્ટિઓને થાય છે સમ્યકદૃષ્ટિઓમાં પણ અપ્રમત્ત સંયતોને જ થાય છે અને તેમાં પણ ઋદ્ધિ પ્રાપ્ત મુનિઓને જ થાય છે.

વિષયની અપેક્ષાથી અવધિજ્ઞાનના વિષયભૂત રૂપી દ્રવ્યના છેવટના ભાગમાં મનઃપર્યવજ્ઞાનનો વ્યાપાર થાય છે આ રીતે અવધિજ્ઞાન જે દ્રવ્યને જાણે છે. તેના અનંતમાં ભાગ સૂક્ષ્મ અર્થમાં મનઃપર્યવજ્ઞાન જાણે છે. નન્દી

दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ' इत्यादि। ऋजुमतिः खलु अनन्तान् अनन्तप्रदेशकान् स्कन्धान् जानाति पश्यति, तांश्चैव विपुलमतिः अभ्यधिकतरं विपुलतरं विशुद्धतरं वितिमिरतरं जानाति पश्यति, क्षेत्रतः खलु ऋजुमतिश्च जघन्येनांऽगुलस्याऽसंख्येयभागान् उत्कृष्टेनाऽधो यावद् अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या उपरिमाऽधस्तात् क्षुल्लकप्रतरे ऊर्ध्वं यावत् ज्योतिष्कस्योपरितले तिर्यग् यावत् अन्तोमनुष्यक्षेत्रे सार्द्धतृतीययोः द्वीपसमुद्रयोः पञ्चदश कर्मभूमिषु त्रिंशदकर्मभूमिषु षट्पञ्चाशदन्तर्द्वीपेषु संज्ञीनां पञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तकानां मनोगतं भावं जानाति पश्यति, तच्चैव विपुलमतिः सार्धतृतीयैरंगुलैरभ्यधिकतरं विपुलतरं विशुद्धतरं वितिमिरतरं क्षेत्रं जानाति पश्यति, कालतः खलु ऋजुमतिः जघन्येन पल्योपमस्याऽसंख्येयभागम् उत्कृष्टेनापि

मनःपर्ययज्ञान जानता है। नन्दिसूत्र के १८ वें सूत्र में कहा है-'ऋजुमति अनन्त अनन्तप्रदेशी स्कन्धों को जानता देखता है, विपुलमति उन्हीं स्कन्धों को अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर और निर्मलतर जानता-देखता है। क्षेत्र की अपेक्षा ऋजुमति जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग को, उत्कृष्ट नीचे इस रत्नप्रभा पृथ्वी के उपरी-निचले क्षुद्रक प्रतर तक, उपर ज्योतिष्कों के उपरी तल तक, तिर्छे मनुष्यक्षेत्र के अन्दर, अढाई द्वीप-समुद्रों में, पन्द्रह कर्मभूमियों में, तीस अकर्मभूमियों में और छप्पन अन्तर्द्वीपों में, संज्ञी, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त जीवों के भावों को जानता-देखता है, विपुलमति उसी को अढाई अंगुल अधिक विपुलतर, विशुद्धतर और वितिमितरतर-निर्मलतर क्षेत्र को जानता-देखता है।

काल की अपेक्षा से, ऋजुमति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें

સૂત્રના અઢારમાં સૂત્રમાં કહ્યું છે ઋજુમતિ અનંત પ્રદેશી સ્કંધોને જાણે દેખે છે. વિપુલમતિ તે જ સ્કંધોને અધિકતર વિપુલતર વિશુદ્ધતર અને નિર્મળતર જાણે જૂએ છે. ક્ષેત્રની અપેક્ષા ઋજુમતિ જઘન્ય આંગળના અસંખ્યાતમાં ભાગને, ઉત્કૃષ્ટ રીતિએ આ રત્નપ્રભા પૃથ્વીનાં ઉપલા-નીચલા ક્ષુદ્રક પ્રતર સુધી ઉપર જ્યોતિષ્કોના ઉપરી સપાટી સુધી, તીરછા મનુષ્યક્ષેત્રની અંદર, અઢીદ્વીપ સમુદ્રોમાં, પંદર કર્મભૂમિઓમાં, ત્રીસ અકર્મ ભૂમિઓમાં અને છપ્પન અંતર દ્વીપોમાં. સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય પર્યાપ્ત જીવોના ભાવોને જાણે જુએ છે. વિપુલમતિ તેને અઢી આંગળ અધિક વિપુલતર, વિશુદ્ધતર અને વિતિમિરતર નિર્મળતર ક્ષેત્રને જાણે જુએ છે.

કાળની અપેક્ષાથી ઋજુમતિ જઘન્ય પલ્યોપમનાં અસંખ્યાતમાં ભાગને

पल्योपमस्याऽसंख्येभागम् अतीतमनागतं वा जानाति पश्यति, तं चैव विपुलमति अभ्यधिकतरं विशुद्धतरं वितिमिरतरं जानाति-पश्यति, भावतः खलु ऋजुमतिः अनन्तं भावं जानाति पश्यति, सर्वभावाना मनन्तभागं जानाति पश्यति तंचैव विपुलमति खलु अभ्यधिकतरं विपुलतरं विशुद्धतरं जानाति पश्यति-ऋद्धिप्राप्ता-ऽप्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टिपर्याप्तकसंख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्याणां मनःपर्यवज्ञानं समुत्पद्यते। तत् समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-

भाग को और उत्कृष्ट भी पल्योपम के असंख्यातवें भाग को-अतीत और अनागत काल को-जानता-देखता है। विपुलमति उसी को अधिकतर, विशुद्धतर और निर्मलतर जानता-देखता है।

भाव की अपेक्षा से ऋजुमति अनन्त भावों को जानता-देखता है। सर्व भावों के अनन्तवें भाग को जानता-देखता है, विपुलमति उसी को अधिकतर, विपुलतर और विशुद्धतर जानता-देखता है। "मनःपर्यवज्ञान मनुष्यों के मन द्वारा चिन्तित अर्थ को प्रकट करने वाला है, वह मनुष्य क्षेत्र तक सीमित है, गुण प्रत्यय ही होता है अर्थात् तपस्या आदि गुणों के द्वारा ही उत्पन्न होता है और संयमी मुनियों को ही प्राप्त होता है।

और भी कहा है-ऋद्धिप्राप्त, अप्रमत्तसंयत, सम्यग्दृष्टि, पर्याप्त, संख्यात वर्ष की आयु वाले, कर्मभूमिज और गर्भज मनुष्यों को ही मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है।

मनःपर्यवज्ञान संक्षेप में चार प्रकार का कहा गया है, यथा-(१) द्रव्य

અને ઉત્કૃષ્ટથી પણ પલ્યોપમનાં અસંખ્યાતમા ભાગને અતીત અને અનાગત કાલને જાણે જુએ છે. વિપુલમતી તેને અધિકતર વિશુદ્ધતર અને નિર્મળતર જાણે જુએ છે.

ભાવની અપેક્ષાથી ઋજુમતિ અનંત ભાવોને જાણે છે જુએ છે. સર્વ ભાવોના અનંતમા ભાગને જાણે છે જુએ છે વિપુલમતી તેને અધિકતર વિપુલતર તેમજ વિશુદ્ધતર જાણે જુએ છે. 'મનઃ' પર્યવજ્ઞાન મનુષ્યોના મન દ્વારા ચિંતિત અર્થને પ્રકટ કરનારૂ છે, ને મનુષ્યક્ષેત્ર સુધી મર્યાદિત છે, ગુણપ્રત્યય જ થાય છે. અર્થાત્ તપસ્યાં આદિ ગુણો દ્વારા જ ઉત્પન્ન થાય છે અને સંયમી મુનિઓને જ પ્રાપ્ત થાય છે.

વળી પણ કહ્યું છે લબ્ધિપ્રાપ્ત, અપ્રમત્તસંયત સમ્યક્દૃષ્ટિ, પર્યાપ્ત સંખ્યાત વર્ષની આયુવાળા કર્મભૂમિ જ અને ગર્ભજ મનુષ્યોને જ મનઃપર્યય જ્ઞાન થાય છે. મનઃપર્યયજ્ઞાન સંક્ષેપમાં ચાર પ્રકારનું કહેવામાં આવ્યું

द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्चेति। एवञ्च–विषयापेक्षयापि अवधिज्ञानतो मनः पर्यवज्ञानस्य विशेषोऽवगन्तव्यः। एवं सर्वस्तोकाः खलु मनः पर्यवज्ञानपर्यवा भवन्ति तदपेक्षयाऽवधिज्ञानपर्यवा अनन्तगुणा अवसेयाः तथा च–मनःपर्यवज्ञानस्य पर्यवाः सर्वज्ञानापेक्षयास्तोका भवन्ति, तस्य सर्वज्ञानापेक्षया सूक्ष्मपदार्थग्राहित्वात् इतिभावः ॥४९॥

मूलम्–मइसुयनाणे–असव्वपज्जवेसु दव्वेसु ॥५०॥

छाया–'मति–श्रुतज्ञानम्–असर्वपर्यवेषु द्रव्येषु॥५०॥

तत्त्वार्थदीपिका–पूर्वं तावत्–सम्यग्ज्ञानस्य मोक्षम्प्रति कारणतया मतिश्रुतावधिमनःपर्यव केवलज्ञानरूपस्य तस्य प्ररूपणं कृतम्, तत्रापि मोक्षम्प्रति मुख्य कारणतया केवलज्ञानं प्रथमं प्ररूपितम् तदन्तरं मतिज्ञानादिकं क्रमशः प्ररूपितम्

से (२) क्षेत्र से (३) काल से और (४) भाव से। इस प्रकार विषय की दृष्टि से भी अवधिज्ञान की अपेक्षा मनःपर्यवज्ञान की विशेषता समझना चाहिए।

इस प्रकार मनःपर्यवज्ञान के पर्याय सब से थोडे हैं, उसकी अपेक्षा अवधिज्ञान के पर्याय अनन्त गुणा हैं ॥४९॥

'मइसुयनाणे' इत्यादि।

सूत्रार्थ––मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सब द्रव्यों को जानते हैं किन्तु उनके सब पर्यायों को नहीं जानते ॥५०॥

तत्त्वार्थदीपिका––मोक्ष के कारणभूत सम्यग्ज्ञान के मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवलज्ञान के भेदों की प्ररूपणा की गई, उन में भी मोक्ष का प्रधान कारण होने से केवलज्ञान की पहले प्ररूपणा की

છે. જેમકે (૧) દ્રવ્યથી (૨) ક્ષેત્રથી (૩) કાલથી અને (૪) ભાવથી એ રીતે વિષયની દૃષ્ટિએ પણ અવધિજ્ઞાનની અપેક્ષા મનઃપર્યયજ્ઞાનની વિશેષતા સમજવી જોઇએ

આ રીતે મનઃપર્યયજ્ઞાનનાં પર્યાય સૌથી થોડા છે. તેની અપેક્ષા અવધિજ્ઞાનના પર્યાય અનંતગણુ છે.

'મઇસુયણાણે' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ–મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન બધાં દ્રવ્યોને જાણે છે. પરંતુ તેમનાં બધાં પર્યાયોને જાણતા નથી ॥ ૫૦ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા–મોક્ષનાં કારણભૂત સમ્યક્જ્ઞાનના મતિ, શ્રુત અવધિ મનઃપર્યય અને કેવળજ્ઞાનના ભેદોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી. તેમાં પણ મોક્ષ

सम्प्रति-तेषां पञ्चानां मध्ये पूर्वपूर्वज्ञानापेक्षया-उत्तरोत्तरस्योत्कर्षादिकम्प्रतिपदयितुं प्रथमं मतिश्रुतज्ञानस्य विषयं प्ररूपयति-'मइसुयनाणे' इत्यादि। मतिश्रुतज्ञानम्-मतिज्ञानं श्रुतज्ञानञ्च पूर्वोक्तस्वरूपम् असर्वपर्यायेषु न सर्व द्रव्य-पर्यायेषु प्रवर्तते, अपितु-द्रव्येषु सर्वेषु प्रवर्तते। तथा च-मतिश्रुतज्ञानयोर्वृत्तिः सर्वद्रव्येषु भवति, न तु-सर्वद्रव्यपर्यायेष्विति भावः। मतिज्ञानं श्रुतज्ञानञ्च सर्वाण्येव द्रव्याणि विषयतया-ऽवगाहते जानाति, न तु-सर्वद्रव्यपर्यायान् किञ्चिदेव द्रव्यपर्यायान् जानातीति बोध्यम्। द्रव्याणि च धर्माधर्माकाशकाल पुद्गलजीवरूपाणि पूर्वोक्तानि अवगन्तव्यानि। तत्रापि देशत एव मतिज्ञानम्, द्रव्याणि जानाति, न तु सर्वतः। श्रुतज्ञानन्तु-सर्वतएव द्रव्याणि जानाति, अत-एव-मतिज्ञानापेक्षया श्रुतज्ञानस्य वैशिष्ट्य मवसेयम् ॥५०॥

गई और उसके बाद क्रम से मतिज्ञान आदि का निरूपण किया गया, अब उन पांचों ज्ञानों में पूर्व-पूर्व की अपेक्षा आगे-आगे वाले ज्ञान का उत्कर्ष प्रतिपादन करने के लिए सर्वप्रथम मति और श्रुत ज्ञान के विषय का कथन करते हैं।

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सभी द्रव्यों को तो जानते हैं परन्तु सब पर्यायों को नहीं जानते। इस प्रकार मतिश्रुतज्ञान का व्यापार समस्त द्रव्यों में होता है, मगर समस्त पर्यायों में नहीं। मतिज्ञान और श्रुत-ज्ञान सब द्रव्यों को विषय करते हैं मगर सब पर्यायों को नहीं-थोडे पर्यायों को ही जानते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव, ये छह द्रव्य हैं, जिनका कथन पहले किया जा चुका है। मति ज्ञान द्रव्यों को देशतः जानता है, श्रुतज्ञान सर्वतः जानता है, अतएव मतिज्ञान की अपेक्षा श्रुतज्ञान विशिष्ट है ॥५०॥

તું પ્રધાન કારણ હોવાથી કેવળજ્ઞાનની પહેલાં પ્રરૂપણા કરી અને ત્યાર પછી ક્રમથી મતિજ્ઞાન આદિનું નિરૂપણ કર્યું. હવે તે પાંચે જ્ઞાનોમાં પૂર્વ-પૂર્વની અપેક્ષાએ ઉત્તર-ઉત્તરવાળા જ્ઞાનનાં ઉત્કર્ષ પ્રતિપાદન કરવા માટે સર્વપ્રથમ મતિ અને શ્રુતજ્ઞાનનાં વિષયનું કથન કરીએ છીએ

મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન બધાં દ્રવ્યોને તો જાણે છે પરંતુ બધાં દ્રવ્યોનાં બધા પર્યાયોને જાણતા નથી. આ રીતે મતિ શ્રુતજ્ઞાનનો વ્યાપાર બધાં દ્રવ્યો માં થાય છે પણ બધાં પર્યાયોમાં નહીં મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન બધા દ્રવ્યોને વિષય બનાવે છે. પરંતુ બધા પર્યાયોને નહીં થોડા પર્યાયો ને જ જાણે છે ધર્મ, અધર્મ, આકાશ, કાલ, પુદ્ગલ અને જીવ આ છ દ્રવ્ય છે. જેમનું કથન

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं खलु मोक्षसाधनत्वेन मतिश्रुतावधिमनःपर्यव-केवलज्ञानरूपं सम्यग्ज्ञानं प्ररूपितम् तत्रापि केवलज्ञानस्य मुख्यत्वात् प्रथमं प्ररूपणं कृतम् तदन्तरं मतिज्ञानादिकं प्ररूपितम्, सम्प्रति तेषु मत्यादि पञ्चज्ञानेषु पूर्वं पूर्वमपेक्ष्य उत्तरोत्तरस्य वैशिष्ट्यादिकं प्ररूपयितुमाह–'मइसुयनाणे असव्व पज्जवेसु दव्वेसु' इति। मतिश्रुतज्ञानम्–पूर्वोक्त स्वरूपं मतिज्ञानम् आभिनिबोधिक ज्ञानरूपम् श्रुतज्ञानञ्च–असर्वपर्यवेषु, न सर्वद्रव्यपर्यायेषु भवति अपितु-द्रव्येषु सर्वेषु भवति। तथा च–मतिज्ञानं श्रुतज्ञानञ्च न सर्वद्रव्यपर्यायविषयकं भवति; अपितु–धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवरूप–सर्वद्रव्यविषयकं भवति। एवञ्च–मतिश्रुताभ्यां सर्वाणि द्रव्याणि जानाति, न तु–सर्वद्रव्यपर्यान् इति भावः।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पहले मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवलज्ञानरूप सम्यग्ज्ञान मोक्ष का साधन है, यह प्रतिपादन किया गया, उनमें भी प्रधान होने से केवलज्ञान का पहले निरूपण किया गया, उसके अनन्तर मतिज्ञान आदि का कथन किया गया, अब उन पाँचों ज्ञानों में उत्तरोत्तर की विशिष्टता का प्रतिपादन करने के लिए कहते हैं—

पूर्वोक्त मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की प्रवृत्ति सब द्रव्यों में होती है किन्तु सब पर्यायों में नहीं होती। इस कारण मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सब द्रव्य-पर्याय विषयक नहीं हैं, अपितु धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव रूप सर्व द्रव्यों को जानते हैं। इस प्रकार मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से जीव सब द्रव्यों को तो जानता है मगर

પહેલા કરવામાં આવી ગયું. મતિજ્ઞાન દ્રવ્યને દેશતઃ જાણે છે. શ્રુતજ્ઞાન સર્વતઃ જાણે છે. આથી મતિજ્ઞાનની અપેક્ષા શ્રુતજ્ઞાન વિશિષ્ટ છે. ॥ ૫૦ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ–પહેલા મતિ, શ્રુત, અવધિ, મનઃપર્યય અને કેવળ જ્ઞાન રૂપ સમ્યક્જ્ઞાન મોક્ષનું સાધન છે એ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું. તેમાં પણ પ્રધાન હોવાથી કેવળજ્ઞાનનું પ્રથમ નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું. તેના પછી મતિજ્ઞાન આદિનું કથન કરવામાં આવ્યું. હવે તે પાંચે જ્ઞાનોમાં ઉત્તરોઉત્તર વિશિષ્ટતાનું પ્રતિપાદન કરવા માટે કહીએ છીએ

પૂર્વોક્ત મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનની પ્રવૃત્તિ બધાં દ્રવ્યોમાં થાય છે પરંતુ બધાં પર્યાયોમાં થતી નથી. આ કારણે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન સર્વદ્રવ્ય પર્યાય વિષયક નથી, તો પણ ધર્મ, અધર્મ, આકાશ, કાલ, પુદ્ગલ અને જીવ રૂપ સર્વદ્રવ્યોને જાણે છે. આ રીતે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનથી જીવ બધાં દ્રવ્યોને તો જાણે છે પરન્તુ તેના બધાં પર્યાયોને જાણતા નથી. જ્યારે મતિ-

यदा खलु-मतिज्ञानी श्रुतज्ञानेनोपलब्धेष्वर्थेषु अक्षरपरम्परापरिपाटीं विनैव-सम्यग्ज्ञानादि द्रव्याणि ध्यायति तदा-मतिज्ञानविषयाः सर्वद्रव्याणि भवन्ति, न तु-सर्वद्रव्यपर्यायाः अल्पकालत्वात्-मनसश्चाऽशक्तत्वात्। एवम्-श्रुतग्रन्थानु-सारेण सर्वाणि धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवद्रव्याणि जानाति, न तु-तेषां सर्व-पर्यायान् तत्रापि-मतिज्ञानेन देशतएव द्रव्याणि जानाति, न तु-सर्वतः। श्रुत-ज्ञानेन तु-सर्वतो द्रव्याणि जानाति, सर्वद्रव्यपर्यायांस्तु-न तास्यां जानातीति फलितम्। उक्तञ्च नन्दिसूत्रे ३७ सूत्रे-'तत्थ दव्वओणं आभिणिबोहियणाणी आएसेणं सव्वाइं दव्वाइं जाणइ न पासइ, कालओणं आभिणिबोहिय णाणी आएसेणं सव्वकालं जाणइ न पासइ, भावओणं आभिणिबोहि-यणाणी आएसेणं सव्वे भावे जाणइ न पासइ' तदग्रे तत्रैव-५८ सूत्रे चोक्तम्-'से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते तं जहा-दव्वओ खित्तओ-

---

सब पर्यायों को नहीं जानता। जब मतिज्ञान श्रुतज्ञानी के द्वारा उप-लब्ध पदार्थों को अक्षरपरम्परा की परिपाटी के बिना ही द्रव्यों का ध्यान करता है तब सभी द्रव्य मतिज्ञान के विषय हो जाते हैं, मगर सब द्रव्यों के सब पर्याय उसके विषय नहीं हो सकते, क्योंकि वह इन्द्रियों और मन से उत्पन्न होता है और सब पर्यायों को जानने में असमर्थ है। इस प्रकार वह मूल-ग्रंथ के अनुसार धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव द्रव्यों को जानता है मगर उनके सब पर्यायों को नहीं जानता। इन में भी मतिज्ञान के द्वारा एकदेश से ही द्रव्यों को जानता है, सर्व देश से नहीं। श्रुतज्ञान के द्वारा सर्व देश से जानता है, मगर इन दोनों ज्ञानों से द्रव्यों के समस्त पर्याय नहीं जाने जाते, यह इसका फलितार्थ है। नन्दिसूत्र के ३७ वें सूत्र में कहा है-'द्रव्य की अपेक्षा मतिज्ञानी सामान्य रूप से सभी

જ્ઞાન શ્રુતજ્ઞાન દ્વારા ઉપલબ્ધ પદાર્થોને અક્ષરપરમ્પરાની પરિપાટી વગર જ દ્રવ્યોનું જ્ઞાન કરે છે ત્યારે બધાં દ્રવ્ય મતિજ્ઞાનના વિષય બની જાય છે, પરન્તુ બધાં દ્રવ્યોના બધા પર્યાય તેના વિષય થઈ શકતા નથી, કારણકે તે ઇન્દ્રિયો અને મનથી ઉત્પન્ન થાય છે અને બધાં પર્યાયોને જાણવામાં અસમર્થ છે. આ રીતે તે શ્રુતગ્રંથ અનુસાર ધર્મ, અધર્મ, આકાશ, કાળ, પુદ્ગલ અને જીવ દ્રવ્યોને જાણે છે પરન્તુ તેના બધા પર્યાયોને જાણતું નથી. એમાં પણ મતિજ્ઞાન દ્વારા એક દેશથી જ દ્રવ્યોને જાણે છે, સર્વ દેશથી નહીં. શ્રુતજ્ઞાન દ્વારા સર્વદેશથી જાણે છે. પરન્તુ આ બંને જ્ઞાનોથી દ્રવ્યોના સમસ્ત પર્યાય જાણી શકતા નથી, આ એનો ફલિતાર્થ છે. નન્દીસૂત્રના ૩૭માં સૂત્રમાં કહ્યું છે દ્રવ્યની અપેક્ષા મતિજ્ઞાની સામાન્ય રૂપથી બધાં દ્રવ્યોને જાણે છે પણ જોતો

कालओ-भावओ, तत्थ दव्वओणं सुयणाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ, खित्तओणं सुयणाणी उवउत्ते सव्वं खेत्तं जाणइ पासइ कालओणं-सुयणाणी उवउत्ते सव्वं कालं जाणइ पासइ भावओणं सुयणाणी उवउत्ते सव्वे भावे जाणइ पासइ' इति, तत्र द्रव्यतः खलु आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वाणि द्रव्याणि जानाति न पश्यति, क्षेत्रतः खलु आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वं क्षेत्रं जानाति न पश्यति, कालतः खलु आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वं कालं जानाति न पश्यति, भावतः खलु आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वान् भावान् जानाति न पश्यति । अथ समासतश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः तद्यथा-द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतः, तत्र द्रव्यतः खलु श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वं क्षेत्रं जानाति पश्यति कालतः खलु श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वान् भावान् जानाति पश्यति इत्येतेन खलु आगमेन मतिज्ञानापेक्षया श्रुतज्ञानस्य वैशिष्ट्यं स्पष्टं ज्ञायते इति ५०॥

द्रव्यों को जानता है, मगर देखता नहीं है, काल की अपेक्षा मतिज्ञानी सामान्यरूप से सर्व काल को जानता है मगर देखता नहीं है, भाव की अपेक्षा मतिज्ञानी सामान्यतः सभी भावों को जानता है मगर देखता नहीं है ।' आगे वहीं ५८ वें सूत्र में कहा है-'श्रुतज्ञान संक्षेप से चार प्रकार का कहा गया है-द्रव्यसे, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से श्रुतज्ञानी उपयोग लगाकर सब द्रव्यों को जानता-देखता है, क्षेत्र से श्रुतज्ञानी उपयोग लगाकर सर्व क्षेत्र को जानता-देखता है, काल से श्रुतज्ञानी उपयोग लगाकर सर्व काल को जानता देखता है, भाव से श्रुतज्ञानी उपयोग लगाकर सब भावों को जानता देखता है।' इस आगम से मतिज्ञान की अपेक्षा श्रुतज्ञान की विशिष्टता स्पष्ट ही ज्ञात होती है ॥५०॥

નથી, કાલની અપેક્ષા મતિજ્ઞાની સામાન્ય રૂપથી સર્વકાલને જાણે છે પરન્તુ જોતા નથી, ભાવની અપેક્ષા મતિજ્ઞાની સામાન્યતઃ બધા ભાવોને જાણે છે પણ જોતા નથી આગળ જતાં ત્યાં જ ૫૮માં સૂત્રમાં કહે છે શ્રુતજ્ઞાન ટુંકામાં ચાર પ્રકારનું કહેવામાં આવ્યું છે દ્રવ્યથી ક્ષેત્રથી, કાલથી અને ભાવથી દ્રવ્યથી શ્રુતજ્ઞાની ઉપયોગ લગાવીને સર્વદ્રવ્યોને જાણે જુએ છે, ક્ષેત્રથી શ્રુતજ્ઞાની ઉપયોગ લગાડીને સર્વ ક્ષેત્રને જાણે જુએ છે. કાલથી શ્રુતજ્ઞાની ઉપયોગ લગાવીને સર્વ કાલને જાણે જુએ છે ભાવથી શ્રુતજ્ઞાની ઉપયોગ લગાવીને બધાં ભાવોને જાણે જુએ છે આ આગમથી મતિજ્ઞાનની અપેક્ષા શ્રુતજ્ઞાનની વિશિષ્ટતા સ્પષ્ટપણે જ્ઞાત થાય છે ॥ ૫૦ ॥

मूलम्-ओहिनाणे सव्वरूविदव्वेसु ॥५१॥

छाया-अवधिज्ञानं सर्वरूपिद्रव्येषु ॥५१॥

तत्वार्थदीपिका-'पूर्वसूत्रे-मतिश्रुतज्ञानयो विषयप्ररूपणं कृतम् सम्प्रति अवधिज्ञानस्य विषयं प्ररूपयितुमाह-'ओहिनाणे सव्वरूवि दव्वेसु' इति। अवधिज्ञानम्-पूर्वोक्तस्वरूपं भवप्रत्ययिकं क्षायोपशमिकञ्चाऽवधिज्ञानं सर्वरूपि द्रव्येष्वेव पुद्गलद्रव्यपर्यायेषु भवति न तु सर्वरूपिपुद्गलद्रव्यपर्यायेषु नापि-अरूपिद्रव्येषु धर्माधर्माकाशाऽऽत्मद्रव्येषु, तथा चावधिज्ञानं रूपि द्रव्य-विषयकमेव भवति न तु-अरूपि द्रव्यविषयकम् नापि सर्वपर्यायविषयकम् अत्यन्त विशुद्धेनापि अवधिज्ञानेन रूपीण्येव द्रव्याणि परमावधिज्ञानी जानाति नापि द्रव्याणि, तान्यपि रूपि द्रव्याणि सर्वैः पर्यायैः अतीतानागतवर्तमानैरुत्पादव्यय ध्रौव्यादिभिरनन्तैः पर्यवैर्वा न जानाति इति भावः ॥५१॥

'ओहिनाणे सव्व' इत्यादि।

सूत्रार्थ—अवधिज्ञान सब रूपी द्रव्यों को जानता है ॥५१॥

तत्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्र में मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के विषय का निरुपण किया गया, अब अवधिज्ञान के विषय का प्रतिपादन करते हैं-पूर्वोक्त स्वरूप वाला भवप्रत्ययिक और क्षयोपशमप्रत्ययिक अवधि-ज्ञान रूपी द्रव्यों अर्थात् पुद्गलों में ही व्यापार करता है, किन्तु रूपी द्रव्यों के समस्त पर्यायों में व्यापार नहीं करता। वह अरूपी द्रव्यों को भी नहीं जानता। सब से अधिक विशुद्ध अवधिज्ञान भी रूपी द्रव्यों को ही जानता है, किन्तु उनके अतीत, अनागत, वर्त्तमान, उत्पाद व्यय और ध्रौव्य आदि सब अनन्त पर्यायों को नहीं जानता है ॥५१॥

'ओहिनाणे सव्व' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-અવધિજ્ઞાન બધાં રૂપી દ્રવ્યોને જાણે છે ॥ ૫૧ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા:-પૂર્વસૂત્રમાં મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનના વિષયનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે અવધિજ્ઞાનના વિષયનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ

પૂર્વોક્ત સ્વરૂપવાળા ભવપ્રત્યયિક અને ક્ષયોપશમપ્રત્યયિક અવધિજ્ઞાન રૂપી દ્રવ્યોને અર્થાત્ પુદ્ગલમાં જ વ્યાપાર કરે છે, પરન્તુ રૂપી દ્રવ્યોના સમસ્ત પર્યાયોમાં વ્યાપાર કરતું નથી તે અરૂપી દ્રવ્યોને પણ જાણતું નથી સહુથી અધિક વિશુદ્ધ અવધિજ્ઞાન પણ રૂપી દ્રવ્યોને જ જાણે છે પરન્તુ તેમનાં અતીત અનાગત, ઉત્પાદ વ્યય અને ધ્રૌવ્ય આદિ બધા અનન્ત પર્યાયોને જાણતું નથી ॥ ૫૧ ॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावत् मतिज्ञान-श्रुतज्ञानयो र्विषयस्य निरूपणं विहितम् सम्प्रति-तदन्तरावगतस्या-ऽवधिज्ञानस्य विषयं निरूपयितुमाह-'ओहिनाणे सव्वरूविदव्वेसु' इति। अवधिज्ञानम्-भवप्रत्ययिकं क्षायोपशमिकञ्च पूर्वोक्त स्वरूपमवधिज्ञानं सर्वरूपिद्रव्येषु-पुद्गलद्रव्यस्वरूपेष्वेव भवति नत्वरूपि द्रव्येषु धर्माधर्माकाशात्मस्वरूपेषु, नवा-सर्वरूपि पुद्गलद्रव्यपर्यायेषु, तथा चाऽवधिज्ञानं सर्वरूपि पुद्गलद्रव्यविषयकमेव संभवति। न तु-अरूपि द्रव्यविषयकम्, नापि-रूपि पुद्गलद्रव्यसर्वपर्यायविषयकम् परमावधिज्ञान्यपि सुविशुद्धेनाऽपि अवधिज्ञानेन रूपीण्येव पुद्गलद्रव्याणि जानाति, नाऽरूपीणि धर्माधर्माकाशात्म द्रव्याणि जानाति, न वा-ज्ञान्यपिरूपि पुद्गलद्रव्याणि सर्वैरतीतानागतवर्तमानै-रुत्पादव्ययध्रौव्यादिभिरनन्तैः पर्यायैः परिच्छिनत्ति परमावधिज्ञानी अत्यन्त विशुद्धेनापि अवधिज्ञानेन। उक्तञ्चा-ऽनुयोगद्वारे १४४ सूत्रे-'ओहि दंसणं

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के विषय का निरूपण किया गया, अब क्रमप्राप्त अवधिज्ञान के विषय का प्रतिपादन करते हैं-

भवप्रत्यय और क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान पुद्गल द्रव्य रूप सर्व रूपी द्रव्यों में ही व्यापार करता है, धर्म, अधर्म, आकाश और जीव, इन अरूपी द्रव्यों में उसका व्यापार नहीं होता। वह रूपी द्रव्यों के समस्त पर्यायों को भी नहीं जानता है। परमावधि ज्ञानी भी अनन्त विशुद्धि अवधिज्ञान के द्वारा रूपी द्रव्यों को ही जानता है, अरूपी द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश और आत्मा को नहीं। रूपी द्रव्यों को भी सभी अतीत, अनागत, वर्त्तमान, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य आदि अनन्त पर्यायों से नहीं जानता।

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનના વિષયનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે ક્રમપ્રાપ્ત અવધિજ્ઞાનના વિષયનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ

ભવપ્રત્યય અને ક્ષયોપશમનિમિત્તક અવધિજ્ઞાન પુદ્ગલદ્રવ્ય રૂપ સર્વ રૂપી દ્રવ્યોમાં જ વ્યાપાર કરે છે. ધર્મ, અધર્મ, આકાશ અને જીવ આ અરૂપી દ્રવ્યોમાં તેનો વ્યપાર હોતો નથી, તે રૂપી દ્રવ્યોના સમસ્ત પર્યાયોને પણ જાણતું નથી. પરમાવધિજ્ઞાની પણ અત્યન્ત વિશુદ્ધ અવધિજ્ઞાન દ્વારા રૂપી દ્રવ્યોને જ જાણે છે. અરૂપી દ્રવ્ય ધર્મ, અધર્મ, આકાશ અને આત્માને નહીં રૂપી દ્રવ્યોને પણ બધાં અતીત, અનાગત, વર્તમાન, ઉત્પાદ, વ્યય અને અને ધ્રૌવ્ય આદિ અનન્ત પર્યાયોથી જાણતું નથી.

ओहिदंसणिस्स सव्वरूवि दव्वेसु न पुण सव्व पज्जवेसु' इति अवधि-दर्शनम्-अवधिदर्शनिनः सर्वरूपि द्रव्येषु न पुनः सर्वपर्यायेषु, इति एवं नन्दिसूत्रे १६ सूत्रे चोक्तम्-'तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा-दव्वओ-खेत्तओ कालओ भावओ, तत्थ दव्वओ ओहिनाणी जहण्णेणं अणंताइं रूविदव्वाइं जाणइ-पासइ उक्कोसेणं सव्वाइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ खेत्तओणं ओहिनाणी जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं जाणइ पासइ उक्कोसेणं असंखिज्जाइं अलोग लोगपमाणमित्ताइं खंडाइं जाणइ-पासइ कालओणं ओहिनाणी जहण्णेणं आवलियाए असंखि ज्जाइं भागं जाणइ-पासइ, उक्कोसेणं असंखिज्जाओ उस्सप्पिणीओ ओसप्पिणीओ अईयं अणागईयं च कालं जाणइ पासइ भावओणं ओहिनाणी जहण्णेणं अणंते भावे जाणइ पासइ उक्कोसेणं वि अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्वभावाणं अणंतभागं जाणइ पासइ-इति तत् समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम् तद्यथा-द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतः। तत्र द्रव्यतो-ऽवधिज्ञानीजघन्येनाऽनन्तानि रूपिद्रव्याणि जानाति पश्यति, उत्कृष्टेन सर्वाणि रूपि द्रव्याणि जानाति पश्यति, क्षेत्रतः खलु अवधिज्ञानी जघन्येनांगुलस्यासंख्येय-

---

अनुयोगद्वार सूत्र के १४४ वें सूत्र में कहा है-'अवधिदर्शन वाले का समस्त रूपी द्रव्यों में व्यापार होता है, मगर उनके समस्त पर्यायों में नहीं।

नन्दिसूत्र के १६ वें सूत्र में भी कहा है-अवधिज्ञान संक्षेप से चार प्रकार का है-द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य की अपेक्षा अवधिज्ञानी जघन्य अनन्त रूपी द्रव्यों को जानता-देखता है, उत्कृष्ट समस्त रूपी द्रव्यों को जानता और देखता है। क्षेत्र की अपेक्षा अवधिज्ञानी जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग को जानता-देखता

અનુયોગદ્વાર સૂત્રના ૧૪૪માં સૂત્રમાં કહ્યું છે 'અવધિદર્શન અવધિદર્શન વાળાના સમસ્ત રૂપી દ્રવ્યોમાં વ્યાપાર હોય છે પરન્તુ તેમના સમસ્ત પર્યાયોમાં નહીં'

નંદીસૂત્રમાં ૧૬માં સૂત્રમાં પણ કહ્યું કે અવધિજ્ઞાન સંક્ષેપસી ચાર પ્રકારનું છે દ્રવ્યથી ક્ષેત્રથી કાલથી અને ભાવથી દ્રવ્યની અપેક્ષા અવધિજ્ઞાની જઘન્ય અનન્ત રૂપી દ્રવ્યોને જાણે જુએ છે ઉત્કૃષ્ટ સમસ્ત રૂપી દ્રવ્યોને જાણે જુએ છે. ક્ષેત્રની અપેક્ષા અવધિજ્ઞાની જઘન્ય આંગળના અસંખ્યાતમાં ભાગને જાણે જુએ છે, ઉત્કૃષ્ટ અલોકમાં લોકપ્રમાણ અસંખ્યાત ખંડોને જાણે જુએ છે. કાલથી અવધિજ્ઞાન જઘન્ય આવલિકાની અસંખ્યાતમાં ભાગને જાણે જુએ

भागं जानाति पश्यति उत्कृष्टेनाऽसंख्येयानि अलोकेलोकप्रमाणमितानि खण्डानि जानाति पश्यति, कालतः खलु अवधिज्ञानी जघन्येनावलीकायाऽसंख्येयभागं जानाति पश्यति, उत्कृष्टेनाऽसंख्येयाः उत्सर्पिण्यवसर्पिणीः अतीतम्-अनागतञ्च कालं जानाति पश्यति, भावतः खलु अवधिज्ञानी जघन्येन अनन्तान् भावान् जानाति पश्यति उत्कृष्टेनापि अनन्तान् भावान् जानाति पश्यति, सर्वभावानाम् अनन्तभागं जनाति पश्यति, इति ॥५१॥

मूलम्—मणपज्जवनाणे तदनंतभागे ॥५२॥

छाया — मनः पर्यवज्ञानं तदनन्तभागे ॥५२॥

तत्त्वार्थदीपिका——पूर्वमवधिज्ञानस्य विषयः प्ररूपितः सम्प्रति—अवधिज्ञानापेक्षया मनःपर्यवज्ञानस्य वैशिष्ट्यं प्रतिपादयितुं तस्य विषयमाह—'मण

है, उत्कृष्ट अलोक में लोकप्रमाण असंख्यात खण्डों को जानता-देखता है। काल से अवधिज्ञानी जघन्य आवलिका के असंख्यातवें भाग को जानता-देखता है, उत्कृष्ट असंख्यात अतीत और अनागत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालों को जानता-देखता है। भाव से अवधिज्ञान जघन्य अनन्त भावों को जानता देखता है-सर्व भावों के अनन्तवें भाग को जानता और देखता है" ॥५१॥

'मणपज्जवनाणे' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—मनःपर्यवज्ञान, अवधिज्ञान के विषय के अनन्तवें भाग को जानता है ॥५२॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले अवधिज्ञान के विषय का निरूपण किया गया, अब अवधिज्ञान की अपेक्षा मनःपर्यवज्ञान की विशिष्टता का प्रतिपादन करने के लिए उसके विषय का निरूपण करते हैं—

છે, ઉત્કૃષ્ટ અસંખ્યાત અતીત અને અનાગત ઉત્સર્પિણિ અને અવસર્પિણી કાલોને જાણે જુએ છે ભાવથી અવધિજ્ઞાની જઘન્ય અનન્ત ભાવોને જાણે જુએ છે અને ઉત્કૃષ્ટ પણ અનન્ત ભાવોને જાણે જુએ છે સર્વ ભવોના અનન્તમાં ભાગને જાણે અને જુએ છે.॥ ૫૧ ॥

'મણપજ્જવનાણે' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—મનઃપર્યવજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાનના વિષયના અનન્તમાં ભાગને જાણે છે. ॥ ૫૨ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા અવધિજ્ઞાનના વિષયનું નિરૂપણ કર્યું, હવે અવધિજ્ઞાનની અપેક્ષા મનઃપર્યવજ્ઞાનની વિશિષ્ટતાનું પ્રતિપાદન કરવાને માટે તેના વિષયનું નિરૂપણ કરીએ છીએ

पज्जवनाणे सव्वंपज्जवाणे' इति मनःपर्यवज्ञानम्-पूर्वोक्तस्वरूपं तदनन्तभागे तस्याऽवधिज्ञानविषयीभूतस्य रूपि पुद्गलद्रव्यस्याऽपेक्षयाऽनन्ते-सूक्ष्मे भागे भवति। तथा च-यद् द्रव्यम् अवधिज्ञानं विषयी करोति तस्यापि अनन्तभागमेकं सूक्ष्मपदार्थं मनःपर्यवज्ञानं विषयी करोति। तथा चाऽवधिज्ञानविषयाऽपेक्षया मनःपर्यवज्ञानस्याऽत्यन्तसूक्ष्मपदार्थविषयकत्वात् अवधिज्ञानापेक्षया तस्य वैशिष्ट्यं वर्तते इति भावः। तथा च यानि रूपिपुद्गलद्रव्याणि अवधिज्ञानी जानाति तेषामवधिज्ञानविषयी कृत रूपि पुद्गलद्रव्याणा मनन्तभागे एकस्मिन् मनःपर्यवज्ञानस्य प्रवृत्तिरिति एवञ्च अवधिज्ञानविषयस्य सर्वरूपि पुद्गलद्रव्यस्या नन्तभागमेकं मनःपर्यवज्ञानी जानाति। अतएवाऽवधिज्ञानापेक्षया मनःपर्यवज्ञान-वैशिष्ट्य मुत्कृष्टत्वञ्च वर्तते इत्यवसेयम्। अवधिज्ञानमविरतसम्यग्दृष्टेरपि भवति मनःपर्यवज्ञानन्तु-संयतस्याप्रमत्तस्य, ऋद्धि प्राप्तस्यैव भवतीति विशेषः॥५२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं सूत्रोक्तावधिज्ञानमपेक्ष्य मनःपर्यवज्ञानस्य सूक्ष्म-पदार्थ विषयकत्वाद् अवधिज्ञानमपेक्ष्य मनःपर्यवज्ञानस्योत्कृष्टत्वं प्रतिपादयितुमाह-

---

मनःपर्यवज्ञान, अवधिज्ञान के विषयभूत रूपी पुद्गल द्रव्य के अनन्तवें भाग को जानता है। अतः अवधिज्ञान जिस द्रव्य को विषय करता है, उसके अनन्तवें भाग को मन,पर्यवज्ञान विषय करता है। इस कारण अवधिज्ञान की अपेक्षा मनःपर्यवज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ को जानने के कारण उसकी अपेक्षा विशिष्ट है। अवधिज्ञान अविरत सम्यग्दृष्टि को भी प्राप्त होता है किन्तु मनःपर्यवज्ञान अप्रमत्तसंयत और ऋद्धिप्राप्त को ही होता है। यह भी उसकी विशेषता है॥५२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-पूर्वसूत्रोक्त अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान की अपेक्षा सूक्ष्म पदार्थ में प्रवृत्त होने के कारण विशिष्ट हैं, अतएव उसकी उत्कृष्टता का प्रतिपादन करते हैं-

---

મનઃપર્યવજ્ઞાન અવધિજ્ઞાનના વિષયભૂત રૂપી પુદ્ગલ દ્રવ્યના અનન્તમાં ભાગને જાણે છે અર્થાત્ અવધિજ્ઞાન જે દ્રવ્યને વિષય બનાવે છે, તેના અનન્તમાં ભાગને મનઃપર્યવજ્ઞાન વિષય બનાવે છે. આ કારણે અવધિજ્ઞાનની અપેક્ષા મનઃપર્યવજ્ઞાન અત્યન્ત સૂક્ષ્મ પદાર્થને જાણવાના કારણે તેની અપેક્ષા વિશિષ્ટ છે. અવધિજ્ઞાન અવિરત સમ્યગ્દૃષ્ટિને પણ પ્રાપ્ત થાય છે પરન્તુ મનઃપર્યવજ્ઞાન અપ્રમત્ત સંયત અને ઋદ્ધિપ્રાપ્તને જ થાય છે એ પણ એની વિશેષતા છે. ॥ ૫૨ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ--પૂર્વસૂત્રોક્ત અવધિજ્ઞાન મનઃપર્યવજ્ઞાનની અપેક્ષા સૂક્ષ્મ પદાર્થોમાં પ્રવૃત્ત થવાના કારણે વિશિષ્ટ છે. આથી તેની ઉત્કૃષ્ટતાનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ

'मणपज्जवनाणे तदनंतभागे' इति । मनःपर्यवज्ञानम्-पूर्वोक्तस्वरूपं तदनन्तभागे, तस्याऽवधिज्ञानविषयीकृतस्य रूपिपुद्गलद्रव्यस्याऽनन्ते सूक्ष्मे एकस्मिन् भागे प्रवर्तते । एवञ्च-यद् रूपि पुद्गल द्रव्यम् अवधिज्ञानं विषयी करोति तस्यापि अनन्तभागं सूक्ष्ममेकं पदार्थं मनःपर्यवज्ञानं विषयी करोति । तथा च-यानि रूपि पुद्गलद्रव्याणि अवधिज्ञानी जानाति तेषामवधिज्ञानदृष्टरूपि पुद्गलद्रव्याणामनन्तभागमेकं मनःपर्यवज्ञानी जानाति। तान्यपि चाऽवधिज्ञानविषयानन्तभागवर्त्तीनि रूपि द्रव्याणि न कुडयाद्याकारव्यवस्थितानि जानाति । अपितु-मनश्चिन्तनविचाराऽन्वेषणविषयीभूतान्येव जानातीति तानि पुनर्न सर्वलोकवर्तिनि, अपितु मनुष्यक्षेत्रवर्तीन्येव जानातीतिभावः । तानि चाऽवधिज्ञानिनः सकाशात् विशुद्धतराणि अत्यन्त सूक्ष्मपर्यायाणि द्रव्याणि मनःपर्यवज्ञानी जानातीति

अवधिज्ञान के विषयभूत रूपी पुद्गलद्रव्य के अनन्त सूक्ष्म एक भाग में मनःपर्यवज्ञान की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार जिस रूपी पुद्गल द्रव्य को अवधिज्ञान जानता है, उसके भी अनन्तभाग सूक्ष्म एक पदार्थ को मनःपर्यवज्ञान जानता है। अतएव जिन रूपी पुद्गल द्रव्यों को अवधिज्ञानी जानता है, उन अवधिज्ञान के द्वारा दृष्ट-ज्ञान रूपी पुद्गल द्रव्यों के अनन्त भाग-एक को मनःपर्यवज्ञानी जानता है। अवधिज्ञान के विषय से अनन्तवें भागवर्त्ती रूपी द्रव्यों को कुडय (दीवार) आदि आकारों में व्यवस्थित रूप से नहीं जानता है किन्तु मन द्वारा चिन्तन, विचार एवं अन्वेषण के विषयभूत द्रव्यों को ही जानता है। उन द्रव्यों को भी समस्त लोक में नहीं जानता वरन् मनुष्य क्षेत्रवर्त्ती द्रव्यों को ही जानता है। अवधिज्ञानी की अपेक्षा विशुद्धतर और अत्यन्त सूक्ष्म पर्याय वाले द्रव्यों को मनःपर्यवज्ञानी जानता है।

અવધિજ્ઞાનના વિષયભૂત રૂપી પુદ્ગલદ્રવ્યના અનન્ત સૂક્ષ્મ એક ભાગમાં મનઃપર્યવજ્ઞાનની પ્રવૃત્તિ થાય છે. આ રીતે જે રૂપી પુદ્ગલ દ્રવ્યને અવધિજ્ઞાન જાણે છે તેના પણ અનન્ત ભાગ સૂક્ષ્મ એક પદાર્થને મનઃપર્યવજ્ઞાન જાણે છે. આથી જે રૂપી પુદ્ગલ દ્રવ્યોને અવધિજ્ઞાની જાણે છે, તે અવધિજ્ઞાન દ્વારા દૃષ્ટ-જ્ઞાન રૂપી પુદ્ગલ દ્રવ્યોના અનન્ત ભાગ-એકને મનઃપર્યવજ્ઞાની જાણે છે. અવધિજ્ઞાનના વિષયથી અનન્તમાં ભાગવર્તી રૂપી દ્રવ્યોને દીવાલ આદિ આકારોમાં વ્યવસ્થિત રૂપથી જાણતા નથી પરન્તુ મનદ્વારા ચિન્તન, વિચાર અને અન્વેષણના વિષયભૂત દ્રવ્યોને જ જાણે છે. તે દ્રવ્યોને પણ સમસ્ત લોકમાં જાણતો નથી પરન્તુ મનુષ્યક્ષેત્રવર્ત્તી દ્રવ્યોને જ જાણે છે. અવધિજ્ઞાનીની અપેક્ષા વિશુદ્ધતર અને અત્યન્ત સૂક્ષ્મ પર્યાયવાળા દ્રવ્યોને મનઃપર્યવજ્ઞાની જાણે છે.

भावः। उक्तञ्च भगवती सूत्रे ८ शतके २ उद्देशके ३२३ सूत्रे-'सव्वत्थोवा मणपज्जवणाणपज्जवा, ओहिणाणपज्जवा अणंतगुणा, सुयनाणपज्जवा अणंतगुणा, आभिनिबोहियनाणपज्जवा अणंतगुणा केवलनाणपज्जवा अणंतगुणा-'' इति। सर्वस्तोकाः मनःपर्यवज्ञानपर्यवाः अवधिज्ञानपर्यवा अनन्तगुणाः श्रुतज्ञानपर्यवा अनन्तगुणाः, आभिनिबोधिक ज्ञानपर्यवा अनन्तगुणाः, केवलज्ञानपर्यवाः अनन्तगुणाः इति ॥५२॥

मूलम्-मोहणिज्जणाणदंसणावरणांतरायक्खयाय केवलणाणं ॥५३॥

छाया-मोहनीय ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलज्ञानम् ॥५३॥

तत्त्वार्थदीपिका-'पूर्वं ज्ञानावरणादिकर्मणां सर्वतः क्षये जनिष्यमाणो मोक्षः केवलज्ञानोत्पत्ति कारणमाह-'मोहणिज्ज'-इत्यादि। मोहनीयज्ञानदर्शनावरणा-

---

भगवतीसूत्र के आठवें शतक के द्वितीय उद्देशक में सूत्र ३२३ में कहा है-'मनःपर्ययज्ञान के पर्याय सब से कम हैं, अवधिज्ञान के पर्याय उससे अनन्तगुणा हैं, श्रुतज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा हैं, आभिनिबोधिकज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा हैं और केवलज्ञान के पर्याय अनन्त गुणा हैं ॥५२॥

'मोहणिज्जणाणदंसणा' इत्यादि।

सूत्रार्थ—मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म के क्षय से केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है ॥५३॥

तत्त्वार्थदीपिका—ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का पूर्ण रूप से क्षय होने पर उत्पन्न होने वाला मोक्ष केवलज्ञान की उत्पत्ति के बिना संभव नहीं है, अतएव केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण कहते हैं—

ભગવતીસૂત્રના આઠમાં શતકના દ્વિતીય ઉદ્દેશકના સૂત્ર ૩૨૩માં કહ્યું છે મનઃપર્યવજ્ઞાનના પર્યાય બધાથી ઓછા છે અવધિજ્ઞાનના પર્યાય તેનાથીઅનન્ત ગણા છે, આભિનિબોધિકજ્ઞાનના પર્યાય અનન્તગણા છે અને કેવળજ્ઞાનના પર્યાય અનન્તગણા છે ॥ ૫૨ ॥

'मोहणिज्जणाणदंसणा' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-મોહનીય, જ્ઞાનાવરણ દર્શનાવરણ અને અન્તરાય કર્મના ક્ષયથી કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ થાય છે. ॥ ૫૩ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા--જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોનો સંપૂર્ણપણે ક્ષય થઈ જવાથી ઉત્પન્ન થનાર મોક્ષ કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ વગર શક્ય નથી આથી કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિનું કારણ કહીએ છીએ

न्तरायक्षयात्–अष्टाविंशतिविधस्य मोहनीयकर्मणः क्षयात्, पञ्चविधस्य ज्ञानावरणीय-कर्मणः क्षयात्, नवविधस्य–दर्शनावरणीकर्मणः क्षयात्, पञ्चविधस्याऽन्तरायकर्मणः क्षयात्, चकारात् मनुष्याऽऽयुष्यवर्जायुष्यत्रयस्य क्षयात् साधारणातप पञ्चेन्द्रिय भिन्नचतुर्जाति नरकगति नरकगत्यानुपूर्वी स्थावर सूक्ष्मतिर्यग्गति तिर्यग्गत्यानु-पूर्वी–उद्योतलक्षणत्रयोदशविधनामकर्मणः क्षयाच्च त्रिषष्टि कर्मप्रकृति क्षयरूपात् केवलज्ञान मुत्पद्यते इतिभावः। तत्र–सर्वप्रथमं मोहनीयकर्मण एव दर्शनीयचारित्र-मोहनीयरूपस्य क्षयप्रतिपादनार्थं प्रथमं मोहनीयपदोपादनमवसेयम् ॥५३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं ज्ञानावरणीयादि कर्मणामन्तरायाणां सर्वतः क्षये

अट्ठाईस प्रकार के मोहनीय कर्म के क्षय से, पाँच प्रकार के ज्ञाना-वरणीय कर्म के क्षय से नौ प्रकार के दर्शनावरणीय कर्म के क्षय से और पांच प्रकार के अन्तराय कर्म के क्षय से तथा 'च' शब्द के प्रयोग से मनुष्यायु के सिवाय तीन आयुओं के क्षय से, साधारण नामकर्म आतप नामकर्म, पंचेन्द्रिय जाति को छोड़कर चार जातियों के क्षय से, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूक्ष्म, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानु-पूर्वी एवं उद्योत–इन तेरह प्रकार के नामकर्म के क्षय से त्रेसठ कर्म-प्रकृतियों का क्षय होने पर केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है। सर्वप्रथम दर्शन–चारित्र मोहनीय रूप मोहनीय कर्म का क्षय होता है, यह बत-लाने के लिए सर्वप्रथम मोहनीय कर्म का ग्रहण किया है, ऐसा समझ लेना चाहिए ॥५३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का सर्वथा क्षय होने

અઠયાવીસ પ્રકારના મોહનીયકર્મના ક્ષયથી, પાંચ પ્રકારના જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયથી નવ પ્રકારના દર્શનાવરણીય કર્મના ક્ષયથી અને પાંચ પ્રકારના અન્તરાય કર્મના ક્ષયથી તથા 'ચ' શબ્દના પ્રયોગથી મનુષ્યાયુ સિવાયના ત્રણ આયુષ્યોના ક્ષયથી સાધારણ નામકર્મ, આતપ નામ કર્મ. પંચેન્દ્રિય જાતિને બાદ કરતાં ચાર જાતિઓના ક્ષયથી નરકગતિ નરકગત્યાનુપૂર્વી, સ્થાવર, સૂક્ષ્મ તિર્યંચગતિ તિર્યંચગત્યાનુપૂર્વી અને ઉદ્યોત આ તેર પ્રકારના નામકર્મના ક્ષય થી ત્રેંસઠ કર્મ પ્રકૃતિઓનો ક્ષય થવાથી કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ થાય છે. સર્વપ્રથમ દર્શન ચારિત્ર મોહનીય રૂપ મોહનીય કર્મનો ક્ષય થાય છે, એ દર્શાવવા માટે સર્વપ્રથમ મોહનીયકર્મ ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે, એવું સમજી લેવાનું છે ॥ ૫૩ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ–જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોનો સર્વથા ક્ષય થવાથી મોક્ષ

जनिष्यमाणो मोक्षः केवलज्ञानमन्तरा न सम्भवतीति केवलज्ञानोत्पत्तिहेतुमाह—'मोहणिज्जणाणदंसणावरणंतरायक्खयाय केवलनाणं'—इति। मोहनीय-ज्ञानदर्शनावरणीयान्तरायक्षयाच्च केवलज्ञानं भवति, तत्राष्टाविंशतिविधस्य दर्शन-चारित्रमोहनीयकर्मणः, पञ्चविधस्य ज्ञानावरणीयकर्मणः नवविधस्य दर्शनावरणीय कर्मणः, पञ्चविधस्या—न्तरायकर्मणः क्षयात् चकारात्—मनुष्यायुष्यभिन्नस्य नरक तिर्यग्देवायुष्यरूपस्य त्रिविधस्याऽऽयुष्यकर्मणः क्षयात्, साधारणाऽऽतप पञ्चेन्द्रिय भिन्न चतुर्जाति नरकगति नरकगत्यानुपूर्वी स्थावर सूक्ष्मतिर्यग्गति तिर्यग्गत्यानु-पूर्वी—उद्योतलक्षणत्रयोदशविधनामकर्मक्षयाच्च त्रिषष्टि कर्मप्रकृतिक्षयरूपात् केवलज्ञानमुत्पद्यते इतिभावः। तत्र—प्रथमं तावत् तपोविशेषाऽनुष्ठानादिना-ऽष्टा-

---

पर मोक्ष उत्पन्न होता है, किन्तु केवलज्ञान के बिना यह संभव नहीं है, अतः केवलज्ञान की उत्पत्ति के कारणों का निरूपण करते हैं—

मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म के क्षय से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। अट्ठाईस प्रकार के दर्शन-चारित्र मोहनीय के, पांच प्रकार के ज्ञानावरणीय कर्म के, नौ प्रकार के दर्शनावरणीय कर्म के और पांच प्रकार के अन्तराय कर्म के क्षय से तथा 'च' शब्द के प्रयोग से मनुष्यायु से भिन्न शेष तीन आयुष्य—नरकायु, तिर्यंचायु और देवायु कर्म के क्षय से, साधारण, आतप, पंचेन्द्रिय को छोड शेष चार जातियों के, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूक्ष्म, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी और उद्योत—इस प्रकार तेरह तरह के नामकर्म के क्षय से, कुल त्रेसठ कर्मप्रकृतियों के क्षय से केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

ઉત્પન્ન થાય છે. પરંતુ કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ વગર શકય નથી, આથી કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિનું કારણ કહીએ છીએ

મોહનીય, જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ, અને અન્તરાય કર્મના ક્ષયથી કેવળ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. અઠયાવીસ પ્રકારના દર્શનચારિત્ર મોહનીયના, પાંચ પ્રકારના જ્ઞાનાવરણીયકર્મના, નવ પ્રકારના દર્શનાવરણીયકર્મના અને પાંચ પ્રકારના અન્તરાયકર્મના ક્ષયથી તથા 'ચ' શબ્દના પ્રયોગથી મનુષ્યાયુથી ભિન્ન બાકીના ત્રણ આયુષ્ય નરકાયુ, તિર્યંચાયુ અને દેવાયુ કર્મના ક્ષયથી, સાધારણ આતપ, પંચેન્દ્રિયને છોડી શેષ ચાર જાતિઓના નરકગતિ, નરકગત્યાનુપૂર્વી સ્થાવર સૂક્ષ્મ, તિર્યંચગતિ. તિર્યંચગત્યાનુપૂર્વી અને ઉદ્યોત આ રીતે તેર પ્રકારના નામકર્મના ક્ષયથી, કુલ તેંસઠ કર્મપ્રકૃતિઓના ક્ષયથી કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે.

विंशतिविधे मोहनीयकर्मणि क्षीणे सति पञ्चविध ज्ञानावरण नवविध दर्शनावरण पञ्चविधान्तरायकर्मसु क्षीणेषु मनुष्यायुष्यभिन्ने त्रिविधायुष्यकर्माणि च क्षीणे पूर्वोक्त त्रयोदश नामकर्मसु च क्षीणेषु समस्त द्रव्यपर्यायपरिच्छेदि केवलज्ञान दर्शनं घातिकर्म चतुष्टयापगमात् प्रादुर्भवतीति भावः, उक्तञ्च स्थानाङ्गे ३ स्थाने-"खीणमोहस्सणं अरहओ तओ कम्मंसा जुगवं खिज्जंति, तं जहा-नाणावरणिज्जं, दंसणावरणिज्जं, अंतराइयं-" इति, क्षीणमोहस्य खलु अर्हतस्त्रयः कर्मांशाः युगपत् क्षीयन्ते, तद्यथा-ज्ञानावरणीयं, दर्शनावरणीयम्, आन्तरायिकम्, इति ॥५३॥

मूलम्-सव्वदव्वपज्जवोभासिणाणं केवलं ॥५४॥

छाया-सर्व द्रव्य पर्यवावभासि ज्ञानं केवलम् ॥५४॥

पहले विशिष्ट तप के अनुष्ठान आदि द्वारा अट्ठाईस प्रकार के मोहनीय कर्म के क्षय होने पर तथा पांच प्रकार के ज्ञानावरण, नौ प्रकार के दर्शनावरण और पांच प्रकार के अन्तराय कर्म का क्षय होने पर, मनुष्यायु के सिवाय तीन प्रकार के आयु कर्म का क्षय होने पर और तेरह प्रकार के नामकर्म का क्षय होने पर समस्त द्रव्यों और पर्यायों को जानने वाला केवलज्ञान और केवलदर्शन, चार घातिया कर्मों के हट जाने से प्रकट होता है। स्थानांगसूत्र के तीसरे स्थान में कहा है-'जिसका मोहकर्म क्षीण हो चुका है उन अरिहन्त के तीन कर्मांश एक साथ क्षय को प्राप्त होते हैं, यथा-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, और अन्तराय।५३।

'सव्व दव्व पज्जवा' इत्यादि।

सूत्रार्थ-केवलज्ञान समस्त द्रव्यों और पर्यायों को जानता है।५४।

અગાઉ વિશિષ્ટ તપના અનુષ્ઠાન આદિ દ્વારા અઠ્યાવીશ પ્રકારના મોહનીય કર્મનો ક્ષય થવાથી તથા પાંચપ્રકારના જ્ઞાનાવરણ નવ પ્રકારના દર્શનાવરણ અને પાંચ પ્રકારના અન્તરાય કર્મનો ક્ષયથવાથી, મનુષ્યાયુ સિવાયના ત્રણ આયુષ્ય કર્મોનો ક્ષય થવાથી અને તેર પ્રકારના નામકર્મનો ક્ષય થવાથી સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોને જાણનાર કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શન, ચાર ઘાતિ કર્મોના દૂર થવાથી પ્રકટ થાય છે. સ્થાનાંગસૂત્રના ત્રીજા સ્થાનમાં કહ્યું છે - જેમનું મોહકર્મ ક્ષીણ થઈ ચુક્યું છે તે અરિહન્તના ત્રણ કર્માંશ એકી સાથે ક્ષયને પ્રાપ્ત થાય છે જેમકે જ્ઞાનાવરણીય, અને દર્શનાવરણીય અને અન્તરાય ।૫૩।

'सव्वदव्व पज्जवा' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-કેવળજ્ઞાન સમસ્ત દ્રવ્યો તેમજ પર્યાયોને જાણે છે. ॥૫૪॥

तत्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत् केवलज्ञानपूर्विका मोक्षप्राप्तिर्भवतीति मोक्ष प्राप्त्यर्थं केवलज्ञानोत्पत्ति कारणतया ज्ञानावरण–दर्शनावरण–मोहनीयान्तराय रूपघातिकर्मचतुष्टयस्य तपोऽनुष्ठानादिनाक्षयः प्रतिपादितः सम्प्रति–केवलज्ञानस्य लक्षणं प्ररूपयितुमाह–'सव्व दव्वपज्जवोभासिणाणं केवलं'–इति। सर्वद्रव्य-पर्यायावभासि सर्वेषां द्रव्याणां धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवस्वरूपाणां सर्वेषां पर्यवानाञ्चा–ऽवभासि प्रकाशनं ज्ञानं केवलमुच्यते, तस्य च केवलज्ञानस्य मत्यादि-ज्ञानान्तरा संसृष्टत्वेना–ऽसहायत्वात् केवलव्यपदिश्यते। तथा च–सकलद्रव्य सकलपर्यायविषयकं ज्ञानं भवतीति बोध्यम्। तथाच केवलम्–एकम्–असहायम्, इन्द्रियादि साहाय्यानपेक्षणात्। यद्वा–केवलं सकलं–सम्पूर्णम्, सम्पूर्णज्ञेयग्राहि-

---

तत्वार्थदीपिका—मोक्ष की प्राप्ति केवलज्ञान के होने पर होती है, अतएव मोक्ष की प्राप्ति के लिए केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय, इन चार घाति कर्मों का तपश्चरण आदि के द्वारा क्षय प्रतिपादन किया गया, अब केवलज्ञान के लक्षण का निरूपण करते हैं–

समस्त द्रव्यों और पर्यायों को जानने वाला केवलज्ञान है अर्थात् जो ज्ञान, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव रूपी सभी द्रव्यों को और उनके समस्त पर्यायों को युगपत् प्रत्यक्ष रूप से जानता है, वह केवलज्ञान कहलाता हैं। केवलज्ञान के उत्पन्न होने पर मतिज्ञान आदि कोई भी अन्य ज्ञान नहीं रहता अतएव उसका कोई सहायक साथी ज्ञान न होने से वह 'केवल' कहलाता है। अतएव यह समझना चाहिए कि केवलज्ञान का विषय सकल द्रव्य और सकल पर्याय है।

તત્ત્વાર્થદીપિકા–મોક્ષની પ્રાપ્તિ કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થવા થાય છે, આથી મોક્ષની પ્રાપ્તિને માટે કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિના કારણ જ્ઞાનાવરણ દર્શનાવરણ, મોહનીય અને અન્તરાય, એ ચાર ઘાતિ કર્મોનો તપશ્ચર્યા આદિ દ્વારા ક્ષયનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું, હવે કેવળજ્ઞાનના લક્ષણનું નિરૂપણ કરીએ છીએ

સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોને જાણનાર કેવળજ્ઞાન છે. અર્થાત્ જે જ્ઞાન ધર્મ, અધર્મ, આકાશ, કાલ, પુદ્ગલ અને જીવ રૂપ બધાં દ્રવ્યોને અને તેમના સમસ્ત પર્યાયોને યુગવત્ પ્રત્યક્ષ રૂપથી જાણે છે, તે કેવળજ્ઞાન કહેવાય છે કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થવાથી મતિજ્ઞાન આદિ કોઈ પણ અન્ય જ્ઞાન રહેતું નથી આથી તેનું કોઇ સહાયક સાથી જ્ઞાન ન હોવાથી તે કેવળ કહેવાય છે આથી એ સમજવાનું છે કે કેવળજ્ઞાનનો વિષય સકળ દ્રવ્ય અને સકળ પર્યાય છે.

स्यात्। यद्वा-केवलम्-असाधारणम्-अनन्यसदृशम्, तादृशापरज्ञानाभावात्। यद्वा-केवलम् अनन्तम्, अप्रतिपातित्वेन पर्यन्तरहितत्वात्। ज्ञेयानन्त्याच्च-इत्येवमेकादिष्वर्थेषु केवलशब्दो (ऽत्र-) वर्तते, तद्रूपं ज्ञानं-केवलज्ञानमुच्यते। एवञ्च-मोहक्षये ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायकर्मणां तत्प्रकृतीनां चा-ऽऽत्यन्तिकनिरवशेषक्षयसम्भवं करतलकलितविपुल स्थूलमुक्ताफलवदतां यथावस्थिता-ऽशेषभूत-भवद्-भाविभावस्वभावावभासकं केवलज्ञानं भवतीतिभावः। तत्र जीवद्रव्याणि तावदनन्तानि वर्तन्ते, पुद्गलद्रव्याण्यप्यनन्तानि-अणु स्कन्धभेदेन भिन्नानि सन्ति, धर्माधर्माकाशानि त्रीणि द्रव्याणि अनेक प्रदेशत्वेऽपि

केवल अर्थात् अकेला या असहाय क्योंकि वह इन्द्रिय आदि की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता। अथवा केवल शब्द का अर्थ है-सकल, सम्पूर्ण, क्योंकि वह समस्त ज्ञेय पदार्थ को ग्रहण करता है। अथवा केवल अर्थात् असाधारण, अनन्यसदृश, क्योंकि ऐसा ज्ञान दूसरा कोई नहीं है। अथवा केवल अर्थात् अनन्त, क्योंकि वह अप्रतिपाति होने से अन्तरहित है तथा उसके ज्ञेय भी अनन्त हैं। इस प्रकार यहां केवल शब्द एक आदि अर्थ वाला है।

इस प्रकार मोह का क्षय होने पर और ज्ञानावरण, दर्शनावरण, तथा अन्तराय कर्म का सर्वथा क्षय होने पर उत्पन्न होने वाला, हथेली पर रक्खे हुए अतुल स्थूल मोती के समान, यथार्थ, समस्त भूत वर्त्तमान और भविष्यत्‌कालीन पदार्थों को जानने वाला केवलज्ञान होता है।

इनमें से जीव द्रव्य अनन्त है। पुद्गल द्रव्य भी अनन्त है और

કેવળ અર્થાત્ એકલું અથવા અસહાય, કારણ કે તે ઇન્દ્રિય આદિની સહાયતાની અપેક્ષા રાખતું નથી અથવા કેવળ શબ્દનો અર્થ થાય સકળ સમ્પૂર્ણ, કારણ કે તે સમસ્ત જ્ઞેય પદાર્થોને ગ્રહણ કરે છે. અથવા કેવળ અર્થાત્ અસાધારણ, અનન્ય સદૃશ કેમકે એવું જ્ઞાન બીજું કોઈ જ નથી. અથવા કેવળ અર્થાત્ અનન્ત, કારણકે તે અપ્રતિપાતી હોવાથી અન્તરહિત છે તથા તેના ક્ષય પણ અનન્ત છે. આ રીતે અહીં કેવળ શબ્દ એક આદિ અર્થવાળો છે.

આ પ્રમાણે મોહનો ક્ષય થવાથી અને જ્ઞાનાવરણ દર્શનાવરણ તથા અન્તરાય કર્મનો સર્વથા ક્ષય થવાથી ઉત્પન્ન થનાર હથેળી પર રાખેલા અતુલ સ્થૂળ મોતીની સમાન યથાર્થ સમસ્ત ભૂત, વર્ત્તમાન અને ભવિષ્યત્ કાલીન પદાર્થોને જાણનાર કેવળજ્ઞાન હોય છે.

આ માંથી જીવદ્રવ્ય અનન્ત છે. પુદ્ગલદ્રવ્ય પણ અનન્ત છે અને તે

खण्डात्मकत्वाभावात् प्रत्येकमेकत्वमेव। कालद्रव्यमप्यनन्तं वर्तते, तस्याऽतीता-ऽनागतादिरूपत्वेन नानात्वं बोध्यम्। तेषां षण्णामपि द्रव्याणां पर्यायाश्च त्रिकालभुवः प्रत्येकमनन्तानन्ता भवन्ति, तेषु द्रव्यं-पर्यायजातं वा न किञ्चिदपि केवलज्ञानस्य विषयतामतिक्रामति, अपितु-सर्वमेवद्रव्यं पर्यायजातञ्च केवलज्ञानस्य विषयो भवति। अपरिमितमाहात्म्यं खलु केवलज्ञानं भवति येन सर्वमपि द्रव्यं पर्यायञ्च विषयी करोति तच्च केवलज्ञानम् एकमेव तिष्ठति न तेन सह-इतराणि क्षायोपशमिकादीनि युगपदवतिष्ठन्ते, कदाचिद्-मतिश्रुते द्वे अपि युगपत्संभवतः, कदाचित् त्रीणि मतिश्रुता-ऽवधिज्ञानानि युगपत्संभवन्ति। कदाचित्-चत्वारि

वे अणु तथा स्कन्ध के भेद से भिन्न हैं। धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य अनेकप्रदेशी होने पर भी खंडात्मक न होने के कारण एक-एक ही हैं। कालद्रव्य भी अनन्त है और अतीत तथा अनागत आदि के भेद से नाना प्रकार का है। उन छहों द्रव्यों के त्रिकालभावी पर्याय प्रत्येक के अनन्तानंत हैं। इनमें से कोई भी द्रव्य पर्याय केवलज्ञान के विषय से पर नहीं है। बल्कि सभी द्रव्य और सभी पर्याय केवलज्ञान के विषय हैं। केवलज्ञान का माहात्म्य अपरिमित है, जिससे वह सभी द्रव्यों और पर्यायों को जानता है। केवलज्ञान अकेला ही रहता है। उसके साथ कोई भी क्षायोपशमिक ज्ञान नहीं रह सकता। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों एक साथ ही रहते हैं, कदाचित् किसी आत्मा में मति, श्रुत और अवधि अथवा मति, श्रुत और मनःपर्यव ये तीन ज्ञान एक साथ होते हैं, किसी आत्मा में मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यव,

---

અણુ તથા સ્કંધના ભેદથી ભિન્ન છે. ધર્મ, અધર્મ અને આકાશ દ્રવ્ય અનેક
પ્રદેશી હોવા છતાં પણ ખણ્ડાત્મક ન હોવાના કારણે એક એક જ છે. કાલ
દ્રવ્ય પણ અનન્ત છે અને અતીત તથા અનાગત આદિના ભેદથી વિવિધ
પ્રકારના છે. આ છએ દ્રવ્યોના ત્રિકાળ ભાવીપર્યાય પ્રત્યેકના અનન્તાનન્ત છે.
આમાંથી કોઈ પણ દ્રવ્ય અથવા પર્યાય કેવળજ્ઞાનના વિષયથી પર નથી બલ્કે
બધાં દ્રવ્ય અને બધાં પર્યાય કેવળજ્ઞાનના વિષય છે. કેવળજ્ઞાનનું માહાત્મ્ય
અપરિમિત છે જેથી તે બધાં દ્રવ્યો અને પર્યાયોને જાણે છે. કેવળજ્ઞાન એકલું
જ રહે છે. તેની સાથે કોઈ પણ ક્ષાયોપશમિક જ્ઞાન રહી શકતું નથી. મતિ-
જ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન બંને એક સાથે જ રહે છે, કદાચિત કોઈ આત્મામાં મતિ
શ્રુત અને અવધિ અથવા મતિ. શ્રુત અને મનઃપર્યવ એ ત્રણ જ્ઞાન સંયુક્ત

मतिश्रुता-ऽवधि-मनःपर्यवज्ञानानि युगपद् भवन्ति। किन्तु-न कदाचित्-पञ्चाऽपि ज्ञानानि युगपद् भवन्ति-केवलज्ञानस्य-असहायत्वाद् इति भावः ॥५४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वसूत्रे मोक्षप्राप्तिम्प्रति हेतुभूतस्य केवलज्ञानस्योत्पादकारणत्वेन ज्ञानाऽवरण-दर्शनावरण-मोहनीयान्तरायरूपघातिकर्मचतुष्टयस्य तपो विशेषानुष्ठानविपाकादिना क्षयः प्रतिपादितः सम्प्रति-केवलज्ञानस्य लक्षणं प्ररूपयितुमाह-"सव्व दव्वपज्जवोभासिणाणं केवलं-" इति। सर्वद्रव्यपर्यवावभासि ज्ञानम्-सर्वेषां द्रव्याणां-धर्मास्तिकायाधर्मास्तिकायाकाशा-

---

ये चारों ज्ञान भी पाये जाते हैं। पांचों ज्ञान एक साथ नहीं हो सकते। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि उपयोग एक समय में एक ही ज्ञान का होता है, एक से अधिक दो, तीन या चार ज्ञानों का एक साथ होना जो कहा गया है, वह सिर्फ क्षयोपशम की अपेक्षा से है। अर्थात् एक आत्मा में एक साथ चार ज्ञानों तक का क्षयोपशम होता है ॥५४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पूर्वसूत्र में प्रतिपादन किया गया है कि मोक्ष की प्राप्ति में कारणभूत जो ज्ञान है, उसकी उत्पत्ति का कारण ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय-इन चार घातिक कर्मों का क्षय है जो कि विशिष्ट तपश्चरण से होता है। अब केवलज्ञान के लक्षण का प्रतिपादन करते हैं—

जो समस्त द्रव्यों और समस्त पर्यायों को जानता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्-

---

પણ હોય છે કોઈ આત્મામાં મતિ શ્રુત અવધિ અને મનઃપર્યવ એ ચારે જ્ઞાન પણ જોવામાં આવે છે પાંચે જ્ઞાન એકી સાથે હોઇ શકતા નથી પરન્તુ યાદ રાખવુ ઘટે કે ઉપયોગ એક સમયમાં એક જ જ્ઞાનને થાય છે. એથી અધિક બે, ત્રણ અથવા ચાર જ્ઞાનોનું એકી સાથે હોવાનું જે કહેવામાં આવ્યું છે, તે માત્ર ક્ષયોપશમની અપેક્ષાથી છે અર્થાત્ એક આત્મામાં એક સાથે ચાર જ્ઞાનો સુધી ક્ષયોપશમ થાય છે. ॥ ૫૪ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પૂર્વસૂત્રમાં પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે કે મોક્ષની પ્રાપ્તિ માટે કારણભૂત જે કેવળજ્ઞાન છે તેની ઉત્પત્તિના કારણ, જ્ઞાનાવરણ દર્શનાવરણ મોહનીય અને અન્તરાય આ ચાર ઘાતિકર્મોનો ક્ષય છે કે જે વિશિષ્ટ તપશ્ચર્યા આદિથી થાય છે. હવે કેવળજ્ઞાનના લક્ષણનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ

જે સમસ્ત દ્રવ્યો અને સમસ્ત પર્યાયોને જાણે છે, તેને કેવળજ્ઞાન કહે છે, ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય, પુદ્ગલાસ્તિકાય, જીવાસ્તિ

स्तिकायपुद्गलास्तिकायजीवास्तिकायकालरूपाणां, सर्वेषां पर्यवानाञ्चावभासि अवभासकं प्रकाशकं विषयतयाऽवलम्बि ज्ञानं केवलज्ञान मुच्यते। तथाच–सकलद्रव्यसकलपर्यायविषयकं ज्ञानं केवलज्ञानं व्यपदिश्यते। एवञ्च–धर्मास्तिकायादि सकलद्रव्यविषयकम्–उत्पादादि सकलपर्यायविषयकञ्च केवल ज्ञानं भवति। तत्र–धर्माधर्माकाशरूपद्रव्यत्रयाणाम् परत उत्पाद–व्ययौ भवतः, पुद्गलानां–जीवानां कालानाञ्च द्रव्य त्रयाणां स्वतः–परतश्चोत्पाद–व्ययौ भवतः। यथा–पुद्गलस्य शुक्लत्वादिना व्ययो भवन् स नीलत्वादिना समुपजायमानोऽपि पुद्गलत्वेनाऽवतिष्ठते। एवं जीवोऽपि देवत्वादिनोपजायमानो मनुष्यत्वादिना व्येति जीवत्वेनच सदाऽवतिष्ठते। एवं कालोऽपि आवलिकादित्वेन

गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल, इन सभी द्रव्यों को तथा समस्त पर्यायों को जानने वाला ज्ञान केवलज्ञान कहलाता है। इस प्रकार सकल द्रव्य और सकल पर्याय विषयक केवलज्ञान कहा जाता है। इस तरह जो धर्मास्तिकाय आदि सब द्रव्यों को और उत्पाद आदि सब पर्यायों को जानता है वह केवलज्ञान होता है।

धर्म, अधर्म और आकाश, इन तीन द्रव्यों का उत्पाद और व्यय परतः होता है तथा पुद्गल जीव और काल, इन तीन द्रव्यों का उत्पाद और व्यय स्वतः और परतः होता है। पुद्गल द्रव्य का शुक्ल पर्याय से व्यय (विनाश) होता है, नील पर्याय के रूप में उत्पाद होता है, फिर भी वह पुद्गल रूप से ध्रुव रहता है, इसी प्रकार जीव का भी देव पर्याय से उत्पाद, मनुष्य पर्याय से विनाश और जीव रूप से ध्रौव्य होता है–अर्थात् जीवत्व दोनों पर्यायों में कायम रहता है। इसी प्रकार काल भी आवलिका आदि रूप से नष्ट होता है, समय आदि रूप से

કાય અને કાલ, આ બધાં દ્રવ્યોને તથા બધાં પર્યાયોને જાણનારા જ્ઞાન કેવળ જ્ઞાન કહેવાય છે. આ રીતે સકળ દ્રવ્ય અને સકળ પર્યાય વિષયક કેવળજ્ઞાન કહેવામાં આવે છે. આ રીતે જે ધર્માસ્તિકાય આદિ બધા દ્રવ્યોને તેમજ ઉત્પાદ આદિ બધાં પર્યાયોને જાણે છે તે કેવળજ્ઞાન કહેવાય છે.

ધર્મ, અધર્મ, અને આકાશ આ ત્રણ દ્રવ્યોના ઉત્પાદ અને વ્યય પરતઃ હોય છે. પુદ્ગલદ્રવ્યનો શુક્લ પર્યાયથી વ્યય (વિનાશ) થાય છે, નીલપર્યાયના રૂપ માં ઉત્પાદ થાય છે, તે પણ તે પુદ્ગલ રૂપથી ધ્રુવ રહે છે એજ રીતે જીવ નો પણ દેવ પર્યાયથી ઉત્પાદ, મનુષ્યપર્યાયથી વિનાશ અને જીવ રૂપથી ધ્રૌવ્ય થાય છે– અર્થાત્ જીવત્વ બંને પર્યાયોમાં કાયમ રહે છે એવી જ રી

वियन् समयत्वादिना समुपजायमानोऽपि कालत्वेन सदावतिष्ठते अवस्थित एव भवति, तथा चैवंविध सकलद्रव्यपर्यायावभासकं केवलज्ञानं भवति॥

अथ कथं तावत्-केवलज्ञानस्य सकलद्रव्याणि सर्वपर्यायाश्च गोचरी भवन्ति-तेषामनन्तानन्तत्वात् इतिचेदत्रोच्यते-अपरिमितमाहात्म्यं खलु केवलज्ञानं भवति। अतएवा-अपरिच्छिन्न माहात्म्यात्-केवलज्ञानं सर्वेषां द्रव्यक्षेत्र-कालभावविशिष्टानां पदार्थाना मवभासकं भवति, तथाच-सम्पूर्णलोकालोक विषयकं खलु केवलज्ञानं भवति, नातः परं किञ्चिद् ज्ञानमस्ति नापि-केवल ज्ञानविषयादन्यत् किमपि ज्ञेय मस्ति। तत्र धर्माधर्मास्तिकायद्रव्यद्वया वच्छिन्नमाकाशं पुद्गलास्तिकायजीवास्तिकायश्च लोकपदेनोच्यते। यत्र पुनराकाशे धर्माधर्मास्तिकायौ नस्तः सोऽलोको लोकभिन्नः उच्यते, तथाच-यदिह

उत्पन्न होता है और कालत्व की दृष्टि से सदा स्थिर रहता है। इस प्रकार के सभी द्रव्यों और पर्यायों को केवलज्ञान जानता है।

प्रश्न-केवलज्ञान सर्व द्रव्यों और सर्व पर्यायों को कैसे जान सकता है? क्योंकि वह अनन्तानन्त हैं।

उत्तर-केवलज्ञान का माहात्म्य अपरिमित है। असीम महात्म्य होने के कारण केवलज्ञान समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से विशिष्ट पदार्थों का बोधक होता है। केवलज्ञान समस्त लोक और अलोक को जानता है। उससे बढकर अन्य कोई ज्ञान नहीं है और ऐसा कोई ज्ञेय नहीं है जो केवलज्ञान के विषय से बाहर हो। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय से व्याप्त आकाश लोक कहलाता है। जिस आकाशखंड में धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय विद्यमान नहीं हैं, वह लोक से

કાલ પણ આવલિકા આદિ રૂપથી નષ્ટ થાય છે, સમય આદિ રૂપથી ઉત્પન્ન થાય છે અને કાલત્વની દૃષ્ટિથી સદા સ્થિર રહે છે. આ પ્રકારના સઘળા-દ્રવ્યો તેમજ પર્યાયોને કેવળજ્ઞાન જાણે છે.

પ્રશ્ન—કેવળજ્ઞાન સર્વદ્રવ્યો અને સર્વપર્યાયોને કેવી રીતે જાણી શકે? કારણ કે તેઓ તો અનન્તાનન્ત છે!

ઉત્તર—કેવળજ્ઞાનનું માહાત્મ્ય અપરિમિત છે. અસીમ માહાત્મ્ય હોવાના કારણે કેવળજ્ઞાન સમસ્ત દ્રવ્ય, ક્ષેત્રકાલ અને ભાવથી વિશિષ્ટ પ્રકારોનું બોધક હોય છે કેવળજ્ઞાન સમસ્ત લોક અને અલોકને જાણે છે. તેનાથી વધીને અન્ય કોઈ જ્ઞાન નથી અને એવું કોઈ જ્ઞેય નથી જે કેવળજ્ઞાનના વિષયથી બહાર હોય. ધર્માસ્તિકાય અને અધર્માસ્તિકાયથી વ્યાપ્ત આકાશ લોક કહેવાય છે. જે આકાશખંડમાં ધર્માસ્તિકાય અને અધર્માસ્તિકાય વિદ્યમાન નથી,

लोके-ऽलोके वा किञ्चिदपि ज्ञेयमस्ति तद्यथा बहिः पश्यति एव मन्तरपि केवल ज्ञानेन पश्यति केवली, इत्येवं सम्पूर्ण लोकालोकविषयकं खलु केवल ज्ञानं भवति। अतएव केवलज्ञानं परिपूर्णं व्यपदिश्यते समग्रस्य द्रव्यभावजातस्य परिच्छेदकत्वात्,। एवं समग्र, मत्यादि ज्ञानापेक्षया विशिष्टम् असाधारणं निरपेक्षं विशुद्धं सर्वभावज्ञापकं लोक लोकविषयकत्वात् अनन्तपरिणामात्मकञ्च केवलज्ञानं भवति। तच्च केवलज्ञानं नान्येन मत्यादि ज्ञानादिना सह युगपत् सम्भवति, अपितु-केवलमेकमेव तिष्ठति न खलु केवलज्ञानेन सह क्षायोपशमिकादीनि संभवन्ति। कदाचिदेकस्मिन् जीवे मत्यादि ज्ञानद्वयं-ज्ञानत्रयं-ज्ञानचतुष्टयं वा

भिन्न अलोक कहलाता है। इस प्रकार इस लोक और अलोक में जो भी ज्ञेय है, उस सब को केवली केवलज्ञान से जानते हैं-जैसे बाहर देखते हैं वैसे ही भीतर देखते हैं। इस तरह केवलज्ञान सम्पूर्ण लोक-अलोक विषयक है। इस कारण केवलज्ञान परिपूर्ण कहलाता है, क्योंकि वह समस्त द्रव्य भाव समूह का परिच्छेदक है। इस प्रकार समग्र, मति आदि ज्ञानों की अपेक्षा विशिष्ट, असाधारण, निरपेक्ष, विशुद्ध, सर्व भावों का ज्ञापक तथा लोक-अलोक विषयक होने के कारण अनन्त परिणामात्मक केवलज्ञान होता है।

केवलज्ञान मति आदि ज्ञानों के साथ नहीं रह सकता, किन्तु अकेला ही रहता है। केवलज्ञान के साथ क्षायोपशमिक ज्ञानों का रहना संभव नहीं है। एक जीव में मतिज्ञान और श्रुतज्ञान-दो तो साथ ही होते हैं, कदाचित् अवधिज्ञान या मनःपर्यय के साथ तीन भी हो सकते

તે લોકથી ભિન્ન અલોક કહેવાય છે. આ રીતે આ લોક અને અલોકમાં જે કોઈ પણ જ્ઞેય હોય છે, તે સર્વેને કેવળી કેવળજ્ઞાન દ્વારા જાણે છે જેવી રીતે બહાર જુએ છે તેવી જ રીતે અંદર પણ જુએ છે. આ રીતે કેવળજ્ઞાન સંપૂર્ણ લોક અલોક વિષયક છે. આથી પરિપૂર્ણ કહેવાય છે, કારણકે તે સમસ્ત દ્રવ્યભાવસમૂહને પરિચ્છેદક છે, આ પ્રકારે સમગ્ર મતિ આદિ જ્ઞાનોની અપેક્ષા વિશિષ્ટ, અસાધારણ નિરપેક્ષ વિશુદ્ધ સર્વભાવોના જ્ઞાપક તથા લોક અલોક વિષયક હોવાના કારણે અનન્ત પરિણામાત્મક કેવળજ્ઞાન હોય છે.

કેવળજ્ઞાન મતિ આદિ જ્ઞાનોની સાથે રહી શકતું નથી પરન્તુ એકલું જ રહે છે. કેવળજ્ઞાનની સાથે ક્ષયોપશમિક જ્ઞાનોનું રહેવું, શકય નથી. એક જીવમાં મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન બંને તો સાથે જ હોય છે, કદાચિત અવધિજ્ઞાન અથવા મનઃપર્યવજ્ઞાન સાથે પણ ત્રણ હોઈ શકે છે અને કોઈ

युगपत् मत्यादि मनःपर्यवज्ञान पर्यन्तं सम्भवति । किन्तु—न कदाचिदपि ज्ञानपञ्चकं युगपत्सम्भवति, केवलज्ञानऽकालेऽन्येषां मत्यादि ज्ञानानामसद्भावात् । अतएव ज्ञानान्तरा सम्बद्धत्वेनाऽसहायत्वात् तस्य केवलत्वव्यवहारो भवति ॥ उक्तञ्चाऽनुयोगद्वारे दर्शनगुणप्रमाणप्रकरणे १४४ सूत्रे—'केवलदंसणं केवलदंसणिस्स सव्वदव्वेसुय—सव्वपज्जवेसु य'—इति, केवलदर्शनं केवलदर्शनिनः सर्वद्रव्येषु च—सर्वपर्यायेषु च इति । नन्दिसूत्रे २२ सूत्रेचोक्तम्—'तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ, खित्तओ कालओ, भावओ, तत्थ दव्वओणं केवलनाणी सव्व दव्वाइं जाणइ पासइ, खित्तओणं केवलनाणी सव्वं खित्तं जाणइ पासइ, कालओणं केवलनाणी सव्वं कालं जाणइ पासइ, भावओणं केवलनाणी सव्वे भावे जाणइ पासइ, अहसव्व दव्वपरिणाम भाव विण्णत्ति कारणमणंतं, सासयमप्पडिवाई एगविहं केवलं नाणं' इति । तत् समासतः चतुर्विधम् प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतः तत्र—द्रव्यतः खलु केवलज्ञानी सर्वद्रव्याणि जानाति पश्यति, क्षेत्रतः खलु केवल-

---

हैं और किसी आत्मा में चारों भी पाये जा सकते हैं। मगर एक साथ पाँचो ज्ञानो का होना संभव नहीं है। केवलज्ञान के सद्भाव में मति आदि चार ज्ञानो का सद्भाव नहीं होता। अतएव दूसरे ज्ञानों के साथ सम्बद्ध न होने से, असहाय होने के कारण वह 'केवलज्ञान कहलाता है।

अनुयोगद्वार सूत्र में दर्शनगुणप्रमाण के प्रकरण में, सूत्र १४४ में कहा है—'केवलदर्शन—केवलदर्शनी का सर्व द्रव्यो में और सर्वपर्यायो—'

नन्दिसूत्र के २२ वें सूत्र में भी कहा है—'वह—केवलज्ञान संक्षेप से चार प्रकार का कहा गया है—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य से केवलज्ञानी सब द्रव्यो को जानता—देखता है, क्षेत्र से केवलज्ञानी

આત્મામાં ચારે પણ જોવા મળે છે પરન્તુ એકી સાથે પાંચ જ્ઞાનોનું હોવું સંભવિત નથી. કેવળજ્ઞાનના સદ્ભાવમાં મતિ આદિ ચાર જ્ઞાનોને સદ્ભાવ હોતો નથી. આથી બીજા જ્ઞાનોની સાથે સમ્બદ્ધ ન હોવાથી અસહાય હોવાના કારણે તે 'કેવળ' જ્ઞાન કહેવાય છે.

અનુયોગદ્વાર સૂત્રના દર્શનગુણ પ્રમાણના પ્રકરણના સૂત્ર ૧૪૪માં કહ્યું છે કેવલદર્શન કેવલદર્શનીના સર્વદ્રવ્યમાં અને સર્વપર્યાયોમાં નંદીસૂત્રના ૨૨માં સૂત્રમાં પણ કહ્યું છે કે—તે કેવળજ્ઞાન સંક્ષેપથી ચાર પ્રકારનું કહેવામાં આવ્યું છે દ્રવ્યથી ક્ષેત્રથી કાળથી અને ભાવથી. દ્રવ્યથી કેવળજ્ઞાની બધાં દ્રવ્યોને જાણે છે જુએ છે, ક્ષેત્રથી કેવળજ્ઞાની સર્વક્ષેત્રને જાણે છે જુએ છે,

ज्ञानी सर्वं क्षेत्रं जानति पश्यति, कालतः खलु केवलज्ञानी सर्वं कालं जानाति-पश्यति, भावतः खलु केवलज्ञानी सर्वान् भावान् जानाति पश्यति। अथ सर्वद्रव्य-परिणामभाव विज्ञप्ति कारण मनन्तं शाश्वतम् अप्रतिपाति एकविधं केवलज्ञानम्' इति। तथा चाऽपरिमित माहात्म्यं खलु केवलज्ञानं भवतीति फलितम् ॥५४॥

इति श्री विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-
कलितललितकलापालापकप्रविशुद्धगद्यपद्यानैकग्रन्थनिर्मापक,
वादिमानमर्दक-श्रीशाहूच्छत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त-
'जैनाचार्य' पदभूषित — कोल्हापुरराजगुरु-
बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य – जैनधर्मदिवाकर
पूज्य श्री घासीलालव्रतिविरचिया श्री
दीपिका-निर्युक्ति व्याख्या द्वयो-
पेतस्य तत्त्वार्थसूत्रस्याष्टमो-
ध्यायः समाप्तः ॥८॥

सर्व क्षेत्र को जानता-देखता है, काल से केवलज्ञानी सम्पूर्ण काल को जानता-देखता है और भाव से केवलज्ञानी सकल भावों को जानता-देखता है। 'केवलज्ञान सम्पूर्ण द्रव्यों, भावों और परिणामों को जानने का कारण है, अनन्त है, शाश्वत है, अप्रतिपाती है और एक प्रकार का है। इससे यह फलित हुआ कि केवल का माहात्म्य अपरिमित है ॥५४॥

जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालजीमहाराजकृत
'तत्त्वार्थसूत्र' की दीपिका-निर्युक्ति व्याख्या का
आठवां अध्याय समाप्त ॥८॥

કાળથી કેવળજ્ઞાની સમ્પૂર્ણ કાળને જાણે જુએ છે અને ભાવથી કેવળજ્ઞાની સકળ ભાવોને જાણે જુએ છે. કેવળજ્ઞાન સમ્પૂર્ણ દ્રવ્યો. અને પરિણામોને જાણવાનું કારણ છે, અનન્ત છે' શાશ્વત છે, અપ્રતિપાતી છે અને એક પ્રકારનું છે. આનાથી એ ફલિત થયું કે કેવળનું મહાત્મ્ય અપરિમિત છે. ॥ ૫૪ ॥

જૈનાચાર્ય જૈનધર્મદિવાકર પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજકૃત "તત્ત્વાર્થસૂત્ર"ની
દીપિકા-નિર્યુક્તિ વ્યાખ્યાનો આઠમો અધ્યાય સમાપ્તઃ ॥૮॥

卐

॥ अथ नवमोऽध्यायः प्रारभ्यते ॥

मूलम्—सयलकम्मक्खए मोक्खे ॥१॥

छाया–सकलकर्मक्षयो मोक्षः ॥१॥

तत्त्वार्थदीपिका–पूर्वं तावत्–'जीवाजीवा य बन्धो य पुण्णं पावासवो तहा। संवरो णिज्जरा मोक्खो संतेए तहिया नव ॥१॥ इत्युत्तराध्ययनानुसारेणा–ष्टास्वध्यायेषु यथाक्रममेकैकस्मिन्नध्याये जीवादि निर्जरा पर्यन्तानामष्टतत्त्वानां प्ररूपणं कृतम्. सम्प्रति–क्रमप्राप्तं नवमं मोक्षतत्त्वं सविशदं प्ररूपयितुं नवममध्यायं प्रारभते–पूर्वं तत्र मिथ्यादृष्टित आरभ्य त्रयोदशगुणस्थान पर्यन्तं देशतो निर्जरा भवति। ततः परमयोगिकेवलिनः सर्वकर्मणां क्षयरूपं निर्जरणं भवतीति प्रोक्तम्। सम्प्रति–सर्वकर्मक्षये पुनः किम्भवतीति प्ररूपयितुमाह–'सयल

नवम अध्याय का प्रारम्भ

'सयलकम्मक्खएमोक्खे'।

सूत्रार्थ—समस्त कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है ॥१॥

तत्त्वार्थदीपिका—"जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये नौ तत्त्व हैं।" इस उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार पहले आठ अध्यायों में, क्रम से एक–एक अध्ययन में, जीव से लेकर निर्जरा पर्यन्त आठ तत्त्वों की प्ररूपणा की गई, अब क्रमप्राप्त नौवें मोक्ष तत्त्व की विशद प्ररूपणा की जाती है—

पहले मिथ्यादृष्टि से लेकर तेरहवें गुणस्थान तक देशतः निर्जरा होती है' तत्पश्चात् अयोग केवली को समस्त कर्मों की क्षय रूप निर्जरा होती है, यह कहा जा चुका है। अब यह बतलाते हैं कि समस्त कर्मों

નવમા અધ્યાયનો પ્રારંભ—

'सयलकम्मक्खए मोक्खे'

સૂત્રાર્થ–સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય થઈ જવો મોક્ષ છે ॥ ૧ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા–'જીવ, અજીવ, બન્ધ, પુણ્ય, પાપ, આસ્રવ, સંવર, નિર્જરા અને મોક્ષ. આ નવ તત્વ છે" આ ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રના અનુસાર પ્રથમ આઠ અધ્યાયોમાં ક્રમથી એક-એક અધ્યયનમા જીવથી લઈને નિર્જરાપર્યંત આઠ તત્ત્વોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી, હવે ક્રમપ્રાપ્ત નવમાં મોક્ષતત્વની વિશદ પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે–

પહેલા મિથ્યાદૃષ્ટિથી લઈને તેરમાં ગુણસ્થાન સુધી દેશતઃ નિર્જરા થાય છે, ત્યારબાદ અયોગકેવળીને સમસ્તકર્મોના ક્ષયરૂપ નિર્જરા થાય છે એ કહેવામાં આવી ગયું છે, હવે એ બતાવીએ છીએ કે સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય થવાથી શું થાય છે?

कम्मक्खए मोक्खे-इति। अनशन प्रायश्चित्तादितपः संयमादिना कर्मफलभोगलक्षणविपाकेन च देशतः कर्मक्षयलक्षणा निर्जरा भवतीत्युक्तम् ततश्च-मिथ्यादर्शनादीनां बन्धहेतूनां तदावरणीयकर्मणः क्षयादभावे सति केवलज्ञान-केवलदर्शनोत्पादे च ज्ञानावरणाद्यन्तरायपर्यन्ताऽष्टविधकर्ममूल प्रकृतीनामष्टचत्वारिंशदधिकशतसंख्यकोत्तरप्रकृतीनां च क्षयात् सकलकर्मक्षयः सकलस्य-सम्पूर्णस्य निरवशेषस्य-कृत्स्नस्य कर्मणः क्षयः, आत्मप्रदेशेभ्यः परिशाटः पृथग्भवनम् सकलकर्मप्रध्वंसो मोक्षो व्यपदिश्यते। तथा च-ज्ञानावरण दर्शनाऽवरण मोहनीयाऽन्तरायरूपघातिकर्मचतुष्टये सति केवलज्ञानोत्पत्त्यनन्तरं वेदनीयनामगोत्राऽऽयुष्करूप कर्म चतुष्टयस्य भवधारणीयस्यापि क्षयो भवति, इत्येवं सकल कर्म-

---

का क्षय होने पर क्या होता है ?-

अनशन तथा प्रायश्चित्त आदि बाह्य एवं आभ्यन्तर तप से, संयम आदि से तथा कर्मफल के योग रूपी विपाक से एकदेश कर्मक्षय रूप निर्जरा होती है, यह कहा गया है। तदनन्तर बन्ध के कारण मिथ्यादर्शन आदि का अभाव हो जाने पर और केवलज्ञान तथा केवलदर्शन की उत्पत्ति हो जाने पर ज्ञानावरण से लेकर अन्तराय कर्म पर्यन्त आठ मूल कर्म प्रकृतियों का एवं एक सौ अडतालीस उत्तर प्रकृतियों का क्षय होने से समस्त कर्मों का क्षय हो जाता है, अर्थात् वे कर्म आत्मा से पृथक् हो जाते हैं। यही मोक्ष कहलाता है।

इस प्रकार ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय-इन चार घातिया कर्मों का क्षय होने पर केवलज्ञान की उत्पत्ति के पश्चात् वेदनीय, नाम, गोत्र और आयु-इन चार भवधारणीय कर्मों का भी

અનશન તથા પ્રાયશ્ચિત્ત આદિ બાહ્ય તથા આભ્યન્તર તપથી, સંયમ આદિથી તથા કર્મફળમા ભોગરૂપી વિપાકથી એકદેશ કર્મક્ષય રૂપ નિર્જરા થાય છે એ કહેવામાં આવ્યું છે. તદનન્તર બન્ધના કારણે મિથ્યાદર્શન આદિ ના અભાવ થઈ જવાથી અને કેવળજ્ઞાન તથા કેવળદર્શનની ઉત્પત્તિ થઇ જવાથી જ્ઞાનાવરણથી લઇને અન્તરાયકર્મ પર્યન્ત આઠ મૂળ કર્મપ્રકૃતિઓને તથા એકસો અડતાળીશ ઉત્તરપ્રકૃત્તિઓના ક્ષય થવાથી સઘળાં કર્મોના ક્ષય થઈ જાય છે, અર્થાત્ તે કર્મ આત્માથી જુદાં થઇ જાય છે આ જ મોક્ષ કહેવાય છે.

આ રીતે જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ, મોહનીય અને અન્તરાય એ ચાર ઘનઘાતિ કર્મોના ક્ષય થવાથી કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ બાદ વેદનીય, નામ, ગોત્ર અને આયુ એ ચાર ભવધારણીય કર્મોના પણ ક્ષય થઇ જાય છે. આ રીતે

क्षय समकालमेव–औदारिकशरीरविमुक्तस्याऽस्य मनुष्यजन्मनः प्रहाणं–समुच्छेदो बन्धहेतु मिथ्यादर्शनाद्यभावाच्चोत्तर जन्मनोऽप्रादुर्भाव इत्येवं पूर्वजन्मन उच्छेद उत्तरजन्म प्रादुर्भावश्च कृत्स्न कर्मक्षयलक्षणो मोक्षः ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणस्या–ऽऽत्मनः स्व–स्वरूपावस्थानं भवतीति भावः। तत्राऽष्टसु ज्ञानावरण–दर्शनावरण–मोहनीय–वेदनीयाऽऽयुर्नाम–गोत्रान्तरायेषु मूलप्रकृतिकर्मसु पञ्च ज्ञानावरणानि मतिज्ञानावरणादि भेदात्, नवदर्शनावरणीयानि चक्षुर्दर्शनावरणादि-भेदात् अष्टाविंशति मोहनीयानि कर्माणि, दर्शन–मोहनीय, चारित्रमोहनीयादि भेदात्, द्वे वेदनीयकर्मणी–सदसद्वेदनीय भेदात्। चत्वारि–आयुः कर्माणि, नरक-

क्षय हो जाता है। इस प्रकार समस्त कर्मों का क्षय होते ही औदारिक शरीर से मुक्त हुए इस मनुष्य–जन्म का अन्त होता है और मिथ्यादर्शनादि का अभाव होने से अगला जन्म होता नहीं है। इस प्रकार पूर्वजन्म का विच्छेद हो जाना और उत्तर जन्म का प्रादुर्भाव होना मोक्ष है और सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होना उसका लक्षण है। तात्पर्य यह है कि ज्ञान–दर्शन उपयोग रूप आत्मा का अपने ही स्वरूप में अवस्थान हो जाना ही मोक्ष कहलाता है।

कर्मकी आठ मूल प्रकृतियां हैं–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। इनमें से मतिज्ञानावरण आदि के भेद से ज्ञानावरण के पांच भेद हैं, चक्षुदर्शनावरण आदि के भेद से दर्शनावरण के नौ भेद हैं, दर्शनमोहनीय चारित्रमोहनीय आदि के भेद से मोहनीय कर्म के अट्ठाईस भेद हैं, साता–असाता के भेद से वेदनीय कर्म के दो भेद हैं, नरकायु तिर्यंचायु आदि के भेद से

સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય થતાં જ ઔદારિક શરીરથી મુક્ત થયેલા આ મનુષ્ય જન્મનો અન્ત આવે છે અને મિથ્યાદર્શનાદિનો અભાવ થવાથી પુનર્જન્મ થતો નથી આમ પૂર્વજન્મનો વિચ્છેદ થઈ જવો અને ઉત્તરજન્મનો પ્રાદુર્ભાવ ન થવો મોક્ષ છે અને સમ્પૂર્ણ કર્મોનો ક્ષય થવો તેનું લક્ષણ છે. તાત્પર્ય એ છે કે જ્ઞાન દર્શન ઉપયોગ રૂપ આત્માનું પોતાના જ સ્વરૂપમાં અવસ્થાન થઈ જવું એ જ મોક્ષ કહેવાય છે.

કર્મની આઠ મૂળ પ્રકૃતિઓ છે જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ, મોહનીય વેદનીય આયુ, નામ, ગોત્ર અને અન્તરાય આમાંથી મતિજ્ઞાનાવરણ આદિના ભેદથી જ્ઞાનાવરણના પાચ ભેદ છે, ચક્ષુદર્શનાવરણ આદિના ભેદથી દર્શનાવરણ આદિ દર્શનાવરણના નવ ભેદ છે, દર્શનમોહનીય ચારિત્રમોહનીય આદિના ભેદથી મોહનીય કર્મના અઠયાવીસ ભેદ છે, સાતા અસાતાના ભેદથી વેદનીય

तिर्यगादि भेदात्, त्रिणवति नामकर्माणि गति-जाति-नाम भेदात्, द्वे गोत्र कर्मणी उच्चनीचगोत्र भेदात्। पञ्चान्तरायकर्माणि दानान्तरायादि भेदात्, इत्येवं सङ्कानां पञ्च-नवाऽष्टाविंशति द्विचतुःत्रिणवति द्विपञ्च संख्यकानां ५-९-२८-२ ४-९३-२-५-अष्टचत्वारिंशदधिकशत कर्मणां क्षयलक्षणो मोक्षोऽवगन्तव्यः। एतेषां च कर्मणां विशेष स्वरूपाणि निर्युक्तौ प्रदर्शयिष्यन्ते।।१।।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पूर्वं खलु-जीवाजीवबन्धपुण्यपापास्रवसंवर निर्जरामोक्ष-रूपनवतत्त्वेषु-उत्तराध्ययनोक्तेषु यथाक्रमं जीवादि निर्जरापर्यन्तानामष्ट-तत्त्वानामष्टसु अध्यायेषु प्रत्येक मेकैकस्मिन् अध्याये सविस्तरं प्ररूपणं कृतम्, सम्प्रति-नवमं मोक्षतत्त्वं प्ररूपयितुं नवममध्यायं प्रारभते-'सयल कम्मक्खए

आयुकर्म के चार भेद हैं, गतिनाम, जातिनाम आदि के भेद से तेरानवे नामकर्म के भेद हैं, उच्च और नीच के भेद से गोत्रकर्म दो प्रकार का है। दानान्तराय आदि के भेद से अन्तराय कर्म के पांच भेद हैं। इस प्रकार पांच, नौ, अट्ठाईस, दो, चार, तिराणवे, दो और पांच (५-९-२८-२-४-९३-२-५) मिलकर एक सौ अडतालीस कर्म प्रकृतियों का क्षय हो जाना मोक्ष समझना चाहिए। इन कर्मों का विशेष स्वरूप निर्युक्ति में दिखलाएंगे ।।१।।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष, इन उत्तराध्ययनसूत्र में प्रतिपादित नौ तत्वों में से क्रमानुसार जीव से लेकर निर्जरा पर्यन्त आठ तत्वों का आठ अध्यायों में-एक-एक का एक-एक अध्याय में विस्तारपूर्वक प्ररूपण किया गया,

---

કર્મના બે ભેદ છે, નરકાયુ તિર્યગાયુ આદિના ભેદથી આયુકર્મના ચાર ભેદ છે ગતિનામ, જાતિનામ આદિના ભેદથી નામકર્મના ત્રાણુ ભેદ છે ઉચ્ચ અને નીચના ભેદથી ગોત્રકર્મ બે પ્રકારના છે. દાનાન્તરાય આદિના ભેદથી અન્તરાય કર્મના પાંચ ભેદ છે. આવી રીતે પાંચ, નવ, અઠયાવીસ, બે, ચાર. ત્રાણુ બે અને પાંચ (૫+૯×૨૮×૨×૪×૯૩×૨×૫) મળીને એકસો અડતાલીસ (૧૪૮) કર્મ પ્રકૃતિઓનો ક્ષય થઈ જવો મોક્ષ સમજવો જોઈએ આ કર્મોનું વિશેષ સ્વરૂપ નિર્યુક્તિમાં દર્શાવીશું ।। ૧ ।।

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ--જીવ, અજીવ, બન્ધ, પુણ્ય, પાપ, આસ્રવ, સંવર, નિર્જરા અને મોક્ષ આ ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમાં પ્રતિપાદિત નવ તત્વોમાંથી ક્રમાનુસાર જીવથી લઈને નિર્જરા પર્યન્ત આઠ તત્વોનું આઠ અધ્યાયોમાં એક એકનું એક એક અધ્યાયમાં વિસ્તારપૂર્વક પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે નવમા મોક્ષતત્વની પ્રરૂપણા કાજે નવમો અધ્યાય પ્રારંભ કરવામાં આવે છે-

मोक्खे' इति । सकलकर्मक्षयः—सकलानां—ज्ञानावरण—दर्शनावरणाद्यष्टविधमूल-प्रकृतिरूपाणामष्टचत्वारिंशदधिकशतसंख्यकोत्तरप्रकृतिरूपाणाञ्च कर्मणां क्षयः आत्मप्रदेशेभ्योऽपरिशटनं मोक्षः ज्ञानदर्शनोपयोग लक्षणस्याऽऽत्मनः स्व—स्वरूपा वस्थानं भवतीति भावः । तथा च—प्रथमं तावत्—तपः संयमनिर्जरादिभिः ज्ञाना-वरण—दर्शनावरण—मोहनीयाऽन्तरायाख्यचतुर्विधघातिककर्मसु क्षीणेषु केवल-ज्ञानोत्पत्ति र्भवति, तदनन्तरं भवधारणीयानां वेदनीय—नामगोत्राऽऽयुष्करूप चतुर्विध कमणाञ्च क्षयो भवति । इत्येव मुत्तरप्रकृतिसहिताऽष्ट=विधकर्मक्षयसम-काल मेवौदारिकशरीर वियुक्तस्याऽस्य मनुष्यजन्मनः प्रहाणम् उच्छोदो भवति ।

अब नौवें मोक्षतत्व की प्ररूपणा करने के लिए नौवें अध्याय प्रारम्भ किया जाता है—

सम्पूर्ण कर्मों का अर्थात् ज्ञानावरण दर्शनावरण आदि आठ मूल कर्मप्रकृतियों का एवं एक सौ अडतालीस उत्तरप्रकृतियों का क्षय होना अर्थात् आत्मप्रदेशों से पृथक् होना मोक्ष है। तात्पर्य यह है कि ज्ञान-दर्शन—उपयोग लक्षण वाले आत्मा को अपने स्वरूप में अवस्थान हो जाता है, यही मोक्ष है ।

पहले तप, संयम और निर्जरा आदि द्वारा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, और अन्तराय नामक चार घातिक कर्मों का क्षय हो जाने पर केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है, तत्पश्चात् भवोपग्राही वेदनीय, नाम, गोत्र और आयु नामक चार कर्मों का क्षय होता है। इस प्रकार उत्तर-प्रकृतियों सहित आठ कर्मों का क्षय होते ही औदारिकशरीर वाले इस मनुष्य जन्म का अन्त हो जाता है और बंध के कारण मिथ्यादर्शन

સમ્પૂર્ણ કર્મોનો અર્થાત્ જ્ઞાનાવરણ દર્શનાવરણ આદિ આઠ મૂળ કર્મપ્રકૃતિ-ઓનો એકસો અડતાલીશ ઉત્તરપ્રકૃતિઓનો ક્ષય થવો અર્થાત્ આત્મપ્રદેશથી પૃથક્ થઈ જવું મોક્ષ છે. તાત્પર્ય એ છે કે જ્ઞાન-દર્શન ઉપયોગ લક્ષણવાળા આત્માનું પોતાના સ્વરૂપમાં અવસ્થાન થઈ જવું એ જ મોક્ષ છે.

પહેલા તપ સંયમ અને નિર્જરા આદિ દ્વારા જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ, મોહનીય અને અન્તરાય નામક ચાર ઘનઘાતિ કર્મોનો ક્ષય થઈ જવાથી કેવળ-જ્ઞાનની ઉત્પત્તિ થાય છે, ત્યારબાદ ભવોપગ્રાહી વેદનીય, નામ, ગોત્ર અને આયુષ્ય નામક ચાર કર્મોનો ક્ષય થાય છે. આ રીતે ઉત્તરપ્રકૃતિઓ સહિત આઠકર્મોનો ક્ષય થતાંની સાથે જ ઔદારિક શરીરવાળા આ મનુષ્ય જન્મનો અન્ત થઈ જાય છે અને બન્ધના કારણે મિથ્યાદર્શન આદિનો અભાવ થવાથી

मिथ्यादर्शनादीनां बन्धहेतूनामभावाच्चोत्तरजन्मनो-ऽप्रादुर्भावो भवति, एवं विधा ऽपूर्वजन्मोच्छेदोत्तरजन्मा-ऽप्रादुर्भावावस्था खलु कृत्स्नकर्मक्षयलक्षणो मोक्षो व्यपदिश्यते। एवञ्च-कृत्स्नकर्मणां क्षयः आत्मप्रदेशेभ्यः पृथग्भवनरूपं परिशटनम् कर्मराशिप्रध्वंसः आत्मनः स्वस्वरूपावस्थानमेव मोक्षो भवतीति बोध्यम्, नतु-आत्मनोऽपि-अभावो मोक्षावस्थायां भवति। आत्मनो ज्ञानादि परिणामि स्वभावतया तस्य निरन्वयनाशसम्भवात्, तदानीमपि-ज्ञानादि परिणामित्वेन स्थितिसम्भवात्। तपः संयमादिना स्थगित सकलाऽऽस्रवद्वारस्य संवरसंवृतस्य परमातिशयसम्पन्नस्य सम्यक्क्रयाऽनुष्ठायिन श्छद्मस्थस्य सयोगिकेवलिनो निरुद्धसकलयोगस्य च मिथ्यादर्शनादीनां बन्धहेतूनामभावात्। तदावरणीयकर्म-

---

आदि का अभाव होने से उत्तर जन्म का प्रादुर्भाव नहीं होता है। इस प्रकार वर्त्तमान जन्म के उच्छेद से और अगले जन्म का प्रादुर्भाव न होने से जो समस्त कर्मों से रहित विदेहावस्था प्राप्त होती है, वही मोक्ष है। इस प्रकार समस्त कर्मों का क्षय, आत्मप्रदेशों से पृथक् होना रूप निर्जरण, कर्मसमूह का प्रध्वंस या आत्मा का स्व-स्वरूप में स्थित होना ही मोक्ष कहलाता है। मोक्ष अवस्था में आत्मा का अभाव नहीं होता है। आत्मा ज्ञानादि परिणाम स्वभाव वाला होने से समूल नष्ट नहीं होता। उस अवस्था में भी ज्ञानादि स्वभाव से उसकी सत्ता रहती है।

तप संयम आदि के द्वारा समस्त आस्रवद्वारों का निरोध कर देने वाले, संवरयुक्त, परम अतिशय से सम्पन्न, क्रिया का समीचीन अनुष्ठान करने वाले छद्मस्थ, सयोग केवली और सम्पूर्ण योग का निरोध कर देने वाले को मिथ्यादर्शन आदि बन्धकारणों का अभाव हो जाने

ઉત્તરજન્મનો પ્રાદુર્ભાવ થતો નથી. આ રીતે વર્તમાન જન્મના ઉચ્છેદથી અને પુનર્જન્મનો પ્રાદુર્ભાવ ન થવાથી જે સમસ્ત કર્મોથી રહિત વિદેહાવસ્થા પ્રાપ્ત થાય છે તે જ મોક્ષ છે. આમ સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય, આત્મપ્રદેશોથી પૃથક્ થવું રૂપ નિર્જરણ, કર્મ સમૂહનો પ્રધ્વંસ અથવા આત્માનું પોતાના સ્વરૂપમાં સ્થિત થવું એ જ મોક્ષ કહેવાય છે. મોક્ષ અવસ્થામાં આત્માનો અભાવ થતો નથી. આત્મા જ્ઞાનાદિપરિણામ સ્વભાવવાળો હોવાથી સમૂળગો નષ્ટ થતો નથી. તે અવસ્થામાં પણ જ્ઞાનાદિ સ્વભાવથી તેની સત્તા તો રહે જ છે.

તપ, સંયમ આદિ દ્વારા સમસ્ત આસ્રવદ્વારોનો નિરોધ કરનારી સંવરે યુક્ત, પરમ અતિશયથી સમ્પન્ન, ક્રિયાનું સમીચીન અનુષ્ઠાન કરનારા છદ્મસ્થ સયોગકેવળી અને સમ્પૂર્ણ યોગનો નિરોધ કરનારાઓને મિથ્યાદર્શન આદિ

क्षयात् सम्यग्दर्शनादीनाञ्चोत्पादात् अपूर्वकर्मणो बन्धो न भवति। पूर्वोपार्जितस्य च कर्मण स्तपोऽनुष्ठानादिभिः क्षयो भवति, तत्र-घातिकर्मणो मोहनीये-क्षये ज्ञानावरणा-ऽन्तरायरूपस्याऽऽत्यन्तिकः क्षयो भवति। भवधारणीयस्य च वेदनीयनामगोत्रा-ऽऽयुष्यरूपस्य क्षयो भवति। तत्र-घातिकर्मक्षयानन्तरमेव समस्तद्रव्यपर्यायविषयं परमैश्वर्यसम्पन्न मनन्तम् अनुत्तरं निर्व्याघातं निरावरणं कृत्स्नं प्रतिपूर्णं केवलज्ञानं-केवलदर्शनं च लब्ध्वा शुद्धः परिशटितसकलकर्ममलत्वाद् बुद्धः सर्वज्ञः सर्वदर्शीजिनः केवली भवति। ततश्चाऽघाति भवतनु शुभवेदनीय नामगोत्राऽऽयुः कर्मविशेषः सन् आयुष्यकर्मणः संस्कारवशात् शीत-

से, तदावरणीय कर्म के क्षय से सम्यग्दर्शन आदि की उत्पत्ति हो जाने से नवीन कर्मों का बन्ध नहीं होता। और तप के अनुष्ठान आदि से पूर्वोपार्जित कर्म का क्षय हो जाता है। तब मोहनीय कर्म का क्षय होने पर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का आत्यन्तिक-सदा के लिए क्षय हो जाता है। भवधारणीय वेदनीय, नाम, गोत्र और आयु कर्म का भी क्षय हो जाता है।

घाति कर्मों का क्षय होते ही समस्त द्रव्यों और पर्यायों को जानने वाला, परम ऐश्वर्य से युक्त, अनन्त, अनुत्तर (सर्वोत्कृष्ट) निर्व्याघात, निरावरण, सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण, केवलदर्शन और केवलज्ञान उत्पन्न होता है। इन्हें प्राप्त करके जीव शुद्ध हो जाता है, समस्त कर्ममल के क्षीण होने से बुद्ध, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, जिन और केवली बन जाता है। उस समय अत्यन्त हलके शुभ वेदनीय, नाम, गोत्र और आयु कर्म शेष

બન્ધ કારણોનો અભાવ થઈ જવાથી તદાવરણીય કર્મના ક્ષયથી સમ્યકદર્શન-આદિની ઉત્પત્તિ થવાથી નવીન કર્મો બંધાતા નથી અને તપના અનુષ્ઠાન આદિથી પૂર્વોપાર્જિત કર્મોનો ક્ષય થઈ જાય છે ત્યારે મોહનીયકર્મનો ક્ષય થઈ જવાથી જ્ઞાનાવરણ; દર્શનાવરણ અને અન્તરાય કર્મોના આત્યન્તિક-હમ્મેશને માટે ક્ષય જાય છે. ભવધારણીય વેદનીય, નામ, ગોત્ર અને આયુષ્ય કર્મોનો ક્ષય થઈ જાય છે.

ઘાતિકર્મનો ક્ષય થતાં જ સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોને જાણનારા, પરમ ઐશ્વર્યથી યુક્ત, અનન્ત, અનુત્તર (સર્વોત્કૃષ્ટ) નિર્વ્યાઘાત, નિરાવરણ, સમ્પૂર્ણ કેવળદર્શન અને કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. આમને પ્રાપ્ત કરીને જીવ શુદ્ધ થઈ જાય છે. સઘળાં કર્મમાત્ર, ક્ષીણ થવાથી બુદ્ધ સર્વજ્ઞ, સર્વદર્શી, જિન અને કેવળી બની જાય છે. આ સમયે અત્યન્ત હલકાં શુભ વેદનીય નામ, ગોત્ર

रश्मिवद् भव्यजनकुमुदवनोद्बोधनाय भू-गगनमण्डले विहरति, ततश्चोक्त-विधिना-ऽऽयुष्ककर्मपरिसमाप्तौ सत्यां वेदनीयनामगोत्रकर्मणामपि क्षयो भवति, इति सकलकर्मक्षये सति स्वात्मन्यवस्थानलक्षणो मोक्षो भवतीति भावः। तत्र-पञ्चविध ज्ञानावरणस्य नवविध दर्शनावरणस्या-ऽष्टाविंशति प्रकार मोहनीयकर्मणो द्विविधवेदनीयस्य त्रिणवतिविधनामकर्मण श्चतुर्विधायुष्यकर्मणो द्विविध गोत्रकर्मणः पञ्चविधान्तरायकर्मणश्च सकलकर्मरूपस्याऽष्ट चत्वारिंशदधिकशतसंख्यकप्रकारस्य १४८ क्षयोऽवगन्तव्यः। तत्रा=ऽविरतसम्यग्दृष्टि-देशविरति-प्रमत्ताप्रमत्तस्थानानामन्यतमगुणस्थाने सप्त मोहनीयकर्म-

रह जाते हैं। ऐसी स्थिति में आयुकर्म के संस्कारवश वह चन्द्रमा के समान भव्यजीव रूपी कुमुदवनों को विकसित-उद्बोधित-करने के लिए भूमण्डल में विचरते हैं। तदनन्तर उक्त विधि के अनुसार आयु कर्म की समाप्ति होने पर साथ ही वेदनीय, नाम, और गोत्र कर्म का भी क्षय हो जाता है। इस तरह सकल कर्मों का क्षय होने पर अपनी आत्मा में ही अवस्थित हो जाना रूप मोक्ष होता है।

यह पांच प्रकार के ज्ञानावरण का नौ प्रकार के दर्शनावरण का, (१) अट्ठाईस प्रकार के मोहनीय का, (२) दो प्रकार के वेदनीय का (३) तेरानवे प्रकार के नामकर्म का (४) चार प्रकार के आयुकर्म का, दो प्रकार के गोत्रकर्म का और पांच प्रकार के अन्तराय कर्म का, इस प्रकार सब को मिलाकर एक सौ अडतालीस (१४८) कर्मप्रकृतियों का क्षय समझना चाहिए। इनमें से अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रम-

અને આયુષ્ય કર્મો શેષ રહી જાય છે. આવી સ્થિતિમાં આયુષ્યકર્મને સંસ્કાર વશ તે ચન્દ્રમાની જેમ ભવ્યજીવ રૂપી કુમુદવનોને વિકસિત ઉદ્બોધિત કરવાને માટે ભૂમંડળમાં વિચરે છે. તદનન્તર ઉકત વિધિ અનુસાર આયુષ્યકર્મની સમાપ્તિ થવાની સાથે જ વેદનીય, નામ અને ગોત્ર કર્મોનો પણ ક્ષય થઇ જાય છે. આ રીતે સકળ કર્મોનો ક્ષય થવાથી પોતાનુ આત્મામાંજ અવસ્થિત થઈ જવા રૂપ મોક્ષ થાય છે.

અહીં પાંચ પ્રકારના જ્ઞાનાવરણનું નવ પ્રકારના દર્શનાવરણનો (૧) અઠયાવીશ પ્રકારના મોહનીયનો (૨) બે પ્રકારના વેદનીયનો (૩) ત્રાણુ પ્રકારના નામકર્મનો, ચાર પ્રકારના આયુષ્યકર્મનો—બે પ્રકારના ગોત્ર કર્મનો અને પાંચ પ્રકારના અંતરાય કર્મનો એ રીતે બધા મળીને એકસો અડતાળીશ (૧૪૮) કર્મપ્રકૃતિઓનો ક્ષય સમજવો જોઇએ. આમાંથી અવિરત

प्रकृतय श्चतुरनन्तानुबन्धिकषायत्रि मिथ्यात्वसम्यक्त्व-मिश्रमोहनीयरूपाः क्षीणा भवन्ति। अनिवृत्तिगुणस्थाने च विंशति मोहनीयकर्मप्रकृतयः क्षीणा भवन्ति, त्रयोदशनामकर्मप्रकृतयश्च नरकगतिः, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिः, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, एक द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियजातयः, आतपम्, उद्द्योतम्, स्थावरम्, सूक्ष्मम्, साधारणञ्चेति क्षीणानि भवन्ति। तिस्रो दर्शनावरणकर्मप्रकृतय श्च-निद्रानिःद्रा-प्रचला प्रचला-स्त्यानर्द्धिरूपाः क्षीणा भवन्ति। मोहनीयेषु च क्रमेणा-ऽप्रत्याख्यानाः क्रोधादय श्चत्वारः, प्रत्याख्यानावरणा क्रोधादयश्चत्वारः क्षीयन्ते। ततश्च-नपुंसकस्त्रीवेदौ, हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साः पुरुषवेदश्च संज्वलनक्रोध-मान-माया इति। सूक्ष्मसम्परायगुणस्थाने चरमसमये संज्वलन

संयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानों में से किसी गुणस्थान में मोहनीय कर्म की सात प्रकृतियां-चार अनन्तानुबन्धी और दर्शनमोहनीय की तीन-मिथ्यात्व, सम्यक्त्वमोह और मिश्र-क्षीण होती हैं। अनिवृत्ति गुणस्थान में मोहनीय कर्म की वीस प्रकृतियों का क्षय होता है और नामकर्म की तेरह प्रकृतियों का क्षय होता है, जो इस प्रकार हैं-नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण। निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानर्द्धि नामक दर्शनावरण की तीन प्रकृतियों का क्षय होता है। मोहनीय प्रकृतियों में से चार अप्रत्याख्यानी क्रोध आदि, चार प्रत्याख्यानी क्रोध आदि का क्षय होता है। नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा पुरुषवेद तथा संज्वलन क्रोध, मान और

સમ્યકદૃષ્ટિ, દેશવિરત, પ્રમત્તસંયત અને અપ્રમત્તસંયત ગુણસ્થાનોમાંથી કોઈ ગુણસ્થાનમાં મોહનીય કર્મની સાત પ્રકૃતિઓ ચાર અનન્તાનુબન્ધી અને દર્શન મોહનીયની ત્રણ મિથ્યાત્વ, સમ્યકત્વ મોહ અને મિશ્ર ક્ષીણ થાય છે. અનિવૃત્તિ ગુણસ્થાનમાં મોહનીયકર્મની વીસ પ્રકૃતિઓને ક્ષય થાય છે અને નામકર્મની તેર પ્રકૃતિઓનો ક્ષય થાય છે જે આ પ્રમાણે છે નરકગતિ, નરકગત્યાનુપૂર્વી તિર્યંગ્ગતિ, તિર્યંગ્ગત્યાનુપૂર્વી, એકેન્દ્રિયજાતિ, દ્વીઇન્દ્રિયજાતિ, ત્રીન્દ્રિયજાતિ ચતુરિન્દ્રિયજાતિ, આતપ, ઉદ્દ્યોત. સ્થાવર સૂક્ષ્મ અને સાધારણ નિદ્રા નિદ્રા પ્રચલાપ્રચલા અને સ્ત્યાનર્દ્ધિ નામક દર્શનાવરણની ત્રણ પ્રકારની પ્રકૃતિઓનો ક્ષય થાય છે. મોહનીય પ્રકૃતિઓમાંથી ક્રમથી ચાર અપ્રત્યાખ્યાની ક્રોધ આદિ ચાર પ્રત્યાખ્યાની ક્રોધ આદિનો ક્ષય થાય છે. પછી નપુંસકવેદ, સ્ત્રીવેદ, હાસ્ય રતિ અરતિ, શોક, ભય, જુગુપ્સા, પુરૂષવેદ તથા સંજવલન ક્રોધ માન તથા

लोभः क्षीणो भवति। ततश्च-क्षीणकषायस्थाने निद्राप्रचले द्वे द्विचरमसमये क्षीणे भवतः। चरमसमये-पुनश्चतुर्दशकर्मप्रकृतयः पञ्चज्ञानावरणरूपाणि चतुर्दश दर्शनावरणरूपाणि च क्षीणानि भवन्ति। अयोगिकेवलिनश्च-द्विचरमसमये पञ्चचत्वारिंशत् नामप्रकृति कर्माणि क्षीणानि भवन्ति। यथा-देवगतिः, औदारिकादि शरीरपञ्चकम्, संस्थानषट्कम्, अङ्गोपाङ्गत्रयम्, संहननषट्कम्, वर्ण-रस-स्पर्श चतुष्कम्, मनुष्यगति देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघातम्, पराघातम् उच्छ्वासः, प्रशस्त विहायो गतिः, अपर्याप्तकम्, स्थिरम्, अस्थिरम्, शुभम्, अशुभम्, दुर्भगम्, सुस्वरम्, दुःस्वरम्, अनादेयम्, अयशः कीर्तिः, निर्माणमिति बाह्ये च द्वे सातासातारूपान्यतरवेदनीये नीचै र्गोत्राख्ये कर्मणि क्षीणे सति तीर्थकृदयोगि केवलिन श्चरमसमये द्वादश कर्मप्रकृतयः क्षीणा भवन्ति। तद्यथा-अन्य-

माया का क्षय होता है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान के चरम समय में संज्वलन लोभ का क्षय होता है। तत्पश्चात् क्षीणकषाय गुणस्थान में निद्रा और प्रचला नामक दो प्रकृतियों का द्विचरम समय में क्षय होता है और चरम समय में चौदह प्रकृतियों का क्षय होता है जो इस प्रकार हैं-पांच ज्ञानावरण और नौ दर्शनावरण की। अयोगकेवली द्विचरम-में पैंतालीस नामकर्म प्रकृतियों का क्षय करते हैं, वे इस प्रकार हैं-देवगति, औदारिक आदि पांचशरीरनाम, छह संस्थान, तीन अंगोपांग, छह संहनन, वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, अपर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, अनादेय, अयशः कीर्त्ति, और निर्माण ? साता-आसाता में से

માયાનો ક્ષય થાય છે સૂક્ષ્મસામ્પરાય ગુણસ્થાનના ચરમ સમયમાં સંજવલન લોભનો ક્ષય થાય છે ત્યારબાદ ક્ષીણકષાય ગુણસ્થાનમાં નિદ્રા અને પ્રચલા નામક બે પ્રકૃતિઓના દ્વિચરમ સમયમાં ક્ષય થાય છે અને ચરમ સમયમાં ચૌદ પ્રકૃતિઓનો ક્ષય થાય છે જે આ પ્રમાણે છે પાંચ જ્ઞાનાવરણ અને નવ દર્શનાવરણની અયોગકેવળી દ્વિચરમસમયમાં પીસ્તાળીશ નામ પ્રકૃતિઓનો ક્ષય કરે છે તે આ પ્રમાણે છે દેવગતિ, ઔદરિક આદિ પાંચ શરીરનામ છ સંસ્થાન ત્રણ અંગોપાંગ, છ સંહનન. વર્ણ, રસ, ગંધ, સ્પર્શ, મનુષ્યગત્યાનુપૂર્વી, અગુરૂલઘુ, ઉપઘાત, પરાઘાત, ઉચ્છવાસ, પ્રશસ્તવિહાયોગતિ, અપ્રશસ્ત વિહાયોગતિ, અપર્યાપ્ત, પ્રત્યેક, સ્થિર, અસ્થિર. શુભ, અશુભ, દુર્ભગ, સુસ્વર દુસ્વર, અનાદેય. અયશઃકીર્તિ અને નિર્માણ સાતા અસાતામાંથી કોઇ એક

तरवेदनीयम्, उच्चैर्गोत्रम्, मनुष्यायुष्कम्, मनुष्यगति पञ्चेन्द्रियजाति त्रसबादर पर्याप्त सुभगाऽऽदेययशः कीर्ति तीर्थकरनामानि चेति। अतीर्थकृदयोगि केवलिनस्तु-चरमसमये एतान्येवोपर्युक्तानि तीर्थकरनामकर्मवर्जितानि एकादशकर्मप्रकृतयः क्षीणा भवन्ति। आयुष्यश्चैकमेव मनुष्यायुष्करूपं बद्धं नतु-तदितराणि त्रीणि पूर्वबद्धानि तस्मादेकमेव मनुष्यायुष्यकर्मक्षीणं भवति तदानीमिति भावः। उक्तञ्च-स्थानाङ्गे ३-स्थाने ४ उद्देशके २२६ सूत्रे-खीणमोहस्स णं अरहओ तओ कम्मंसा जुगवं खिज्जंति, तं जहा-नाणावरणिज्जं दंसणावरणिज्जं अंतराइय'-इति, क्षीणमोहस्य खलु अर्हत स्त्रयः कर्मांशाः युगपत् क्षीयन्ते, तद्यथा-ज्ञानावरणीयम्-दर्शनावरणीयम्-आन्तरायिकम्, इति। उत्तराध्ययने२९

कोई एक वेदनीय और नीचगोत्र कर्म का क्षय होने पर तीर्थंकर अयोगकेवली चरमसमय में बारह कर्मप्रकृतियों का क्षय करते हैं। वे इस प्रकार हैं-कोई एक वेदनीय, उच्चगोत्र, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्त्ति और तीर्थंकर नामकर्म। अतीर्थंकर केवली चरम समय में इन्हीं उपर्युक्त प्रकृतियों का क्षय करते हैं, केवल तीर्थंकर प्रकृति का क्षय नहीं करते, क्योंकि वह उनके होती ही नहीं है। इस प्रकार वे ग्यारह प्रकृतियों का क्षय करते हैं। आयु केवल एक मनुष्यायु ही उनमें होती है, शेष तीन आयुष्क बांधे नहीं होते। अतएव एक मात्र मनुष्यायु कर्म का ही उस समय क्षय होता है। स्थानांग के तीसरे स्थान, चौथे उद्देशक में कहा है—

'क्षीण मोहनीय अरिहन्त भगवान् के तीन कर्मांश एक साथ

વેદનીય અને નીચ ગોત્ર કર્મનો ક્ષય થવાથી તીર્થંકર અયોગકેવળી ચરમ સમયમાં બાર કર્મપ્રકૃતિઓનો ક્ષય કરે છે તે આ પ્રમાણે છે કોઇ એક વેદનીય ઉચ્ચગોત્ર, મનુષ્યાયુ મનુષ્યગતિ, પંચેન્દ્રિય જાતિ ત્રસ, બાદર, પર્યાપ્ત, સુભગ, આદેય યશઃકીર્તિ અને તીર્થંકર નામકર્મ અતીર્થંકર કેવળી ચરમસમયમાં આજ ઉપર કહેલી પ્રકૃતિઓનો ક્ષય કરે છે, માત્ર તીર્થંકર પ્રકૃતિનો ક્ષય કરતાં નથી કારણ કે તેમને પ્રકૃતિઓ હોતી જ નથી. આમ તેઓ અગીયાર પ્રકૃતિઓનો ક્ષય કરે છે આયુષ્ય કેવળ એક મનુષ્યાયુ જ તેમનામાં હોય છે, શેષ ત્રણ આયુષ્ય બાંધ્યા હોતા નથી આથી એક માત્ર મનુષ્યાયુ કર્મનો જ તે સમયે ક્ષય થાય છે સ્થાનાંગના ત્રીજા સ્થાન, ચોથા ઉદ્દેશકમાં કહ્યું છે—

ક્ષીણમોહનીય અરિહન્ત ભગવાનના ત્રણ કર્માંશનો એકી સાથે ક્ષય થાય છે

अध्ययने ७१ सूत्रेचोक्तम्-'तप्पढमयाए-जहाणुपुव्वीए-अट्ठवीसइविहं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ, पंचविहं नाणावरणिज्जं, नवविहं अंतराइयं एए तिन्नि वि कम्मंसे जुगवं खवेइ' इति, तत्प्रथमतया यथानुपूर्व्या-ऽष्टाविंशति विधं मोहनीयं कर्म समुद्घात्यते, पञ्चविधं ज्ञानावरणीयम्, नवविधं दर्शनावरणीयम्, पञ्चविधम्-आन्तरायिकम्, एतानि त्रीनपि कर्मांशान् युगपत्-क्षपयति, इति, पुनश्चोत्तराध्ययने२९ अध्ययने ७२ सूत्रे-चोक्तम्-'अणगारे समुच्छिन्नकिरियं अनियट्टि सुक्कज्झाणं-झियायमाणे वेयणिज्जं आउयं नामं गोत्तं च-एए चत्तारि कम्मंसे जुगवं खवेइ' इति, अनगारः समुच्छिन्नक्रियः अनिवर्त्ति शुक्लध्यानं ध्यायन् वेदनीयम् आयुष्यं नामगोत्रं च, एतान् चतुरः कर्मांशान् युगपत् क्षपयति' इति। तथाचोत्तराध्ययन-स्थानाङ्ग सूत्रागमप्रामाण्येण मोक्षावस्थायाम् आत्मनः कृत्स्नकर्मक्षयो भवतीति ज्ञायते, अतएव सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्षो व्यपदिश्यते इति प्रकृतसूत्रे प्रोक्तम् ॥१॥

क्षीण होते हैं। वे इस प्रकार हैं-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय।'

उत्तराध्ययन के २९ वें अध्ययन के ७१ वें बोल में कहा है-'सर्वप्रथम यथाक्रम अट्ठाईस प्रकार के मोहनीय कर्म का क्षय करते हैं, पांच प्रकार के ज्ञानावरण को, नौ प्रकार के दर्शनावरण कर्म को और पांच प्रकार के अन्तराय कर्म को, इन तीनों कर्मांशों को एक साथ क्षय करते हैं।'

पुनः उत्तराध्ययन के २९ वें अध्ययन के ७२ में बोल में कहा है-'अनगार समुच्छिन्नक्रिय अनिवृत्ति शुक्लध्यान ध्याता हुआ वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र-इन चार कर्मांशो का एक साथ क्षय करता है'

इस प्रकार उत्तराध्ययन और स्थानांग नामक सूत्रागम के प्रामाण्य से

તે આ પ્રમાણે છે જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય અન્તરાય

ઉત્તરાધ્યયનના ૨૯માં અધ્યયનના ૭૧ માં બોલમાં કહ્યુ છે સર્વપ્રથમ યથાક્રમ અઠયાવીશ પ્રકારના મોહનીયકર્મનો ક્ષય કરે છે, પાંચ પ્રકારના જ્ઞાનાવરણનો, નવ પ્રકારના દર્શનાવરણ કર્મનો અને પાંચ પ્રકારના અન્તરાયકર્મનો આ ત્રણે કર્માશોનો એકી સાથે ક્ષય કરે છે.

પુનઃઉત્તરાધ્યયનના ૨૯માં અધ્યયનના ૭૨માં બોલમાં કહ્યુ છે અનગાર સમુચ્છિન્નક્રિય અનિવૃત્તિ શુકલધ્યાન ધ્યાતો થકો વેદનીય, આયુ. નામ અને ગોત્ર આ ચાર કર્માંશોનો એકી સાથે ક્ષય કરે છે.

मूलम्–केवलसम्मत्तनाणदंसणसिद्धत्तं वज्जित्ता ओवसमियाइ भव्वत्तक्खए य ॥२॥

छाया–'केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वं वर्जयित्वा–औपशमिकादिभव्यत्वक्षयश्च ॥२

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं सूत्रे खलु सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्षो भवतीत्युक्तम् तत्र–आत्मनो मोक्षावस्थायां न केवलं द्रव्यकर्ममात्रस्यैव क्षयो भवति, अपितु–औपशमिक–क्षायोपमिकौदयिकादि भावकर्मणामपि क्षयो भवतीति प्ररूपयितुमाह

ज्ञात होता है कि मोक्ष अवस्था में समस्त कर्मों का क्षय होता है। इस कारण सम्पूर्ण कर्मों का क्षय मोक्ष कहलाता है, ऐसा प्रकृत सूत्र में कहा गया है ॥१॥

'केवल सम्मत्तनाणदंसण' इत्यादि।

सूत्रार्थ–केवल सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन और सिद्धत्व को छोडकर औपशमिक आदि भावों का तथा भव्यत्व भाव का भी क्षय हो जाता है ॥१॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्र में कहा गया है कि सकल कर्मों का क्षय होना मोक्ष है। मोक्ष–अवस्था में केवल द्रव्य कर्मों का ही क्षय नहीं होता वरन् क्षायोपशमिक, औदयिक आदि भावों का भी क्षय हो जाता है, यह प्ररूपणा करने के लिए कहते हैं–

केवल सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन और सिद्धत्व को छोडकर औपश-

આ રીતે ઉત્તરાધ્યયન અને સ્થાનાંગ નામક સૂત્રાગમના પ્રમાણુથી જ્ઞાત થાય છે કે મોક્ષ અવસ્થામાં સમસ્ત કર્મોના ક્ષય થાય છે.

આથી સમ્પૂર્ણ કર્મોના ક્ષય મોક્ષ કહેવાય છે એવું પ્રકૃતસૂત્રમાં કહેવામાં આવ્યું છે. ॥ ૧ ॥

'केवलसम्मत्तनाणदसण' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ–કેવળસમ્યકત્વ, જ્ઞાન, દર્શન અને સિદ્ધત્વને બાદ કરતા ઔપશમિક આદિ ભાવોના તથા ભવ્યત્વ ભાવના પણ ક્ષય થઈ જાય છે ॥ ૨ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં કહેવામાં આવ્યું કે સકળ કર્મોના ક્ષય થવો મોક્ષ છે. મોક્ષ અવસ્થામાં કેવળ દ્રવ્યકર્મોના જ ક્ષય થતો નથી પરન્તુ ક્ષયોપશમિક, ઔદયિક આદિ ભાવોના પણ ક્ષય થઇ જાય છે એ પ્રતિપાદન કરવા માટે કહીએ છીએ

કેવળ સમ્યકત્વ, જ્ઞાન, દર્શન અને સિદ્ધત્વ સિવાય ઔપશમિક આદિ

'केवल सम्मत्त' इत्यादि। केवल सम्यक्त्व ज्ञानदर्शनसिद्धत्वं वर्जयित्वा दर्शन सप्तकक्षयात् क्षायिकं केवल सम्यक्त्वम्, समस्त ज्ञानावरण क्षयात् क्षायिकं केवल ज्ञानम्, सकलदर्शनावरण क्षयात् क्षायिकं केवलदर्शनम्, समस्त कर्मक्षयात् क्षायिकं सिद्धत्वञ्च विहाय तदतिरिक्ता औपशमिकादयः औपशमिकः आदिना-क्षायिकः क्षायोपशमिकः औदयिकश्च भावा गृह्यन्ते, तथाचौ-पशमिकस्य केवल सम्यक्त्वादि चतुष्टयभिन्नस्य क्षायिकस्य, क्षायोपशमिकस्य-औदयिकस्य, सेत्स्यत्लक्षण भव्यत्व रूपस्य पारिणामिकस्य च भावस्य क्षयश्च-आत्मप्रदेशेभ्यः पृथग्भवनलक्षणं-परिशटनं च मोक्षावस्थायां भवतीति भावः। एवञ्च-मुक्तात्मनि औपशमिक-क्षायोपशमिकौदयिका भावाः सर्वथैव न भवन्ति। किन्तु क्षायिके भावे केवलसम्यक्त्वलक्षणं क्षायिक सम्यक्त्वम्-१ क्षायिक केवलज्ञानम् २ क्षायिककेवलदर्शनम् ३ क्षायिक सिद्धत्वञ्च ४ सम्भवति। एतच्चतुष्टयातिरिक्तः क्षायिको भावो न सम्भवति, एवम्-पारिणामिके भावेतु-सेत्स्यत्लक्षण भव्यत्वमेव केवलं परिणामिकं

मिक आदि भावों का तथा भव्यत्व भाव का भी क्षय हो जाता है। दर्शनमोह की सात प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है, सम्पूर्ण ज्ञानावरण के क्षय से क्षायिक केवलज्ञान होता है, दर्शनावरण कर्म के क्षय से क्षायिक केवलदर्शन होता है, सकल कर्मों के क्षय से क्षायिक सिद्धत्व उत्पन्न होता है। इन भावों के सिवाय जो औपशमिक, क्षायोपशमिक और औदयिक भाव हैं उनका क्षय हो जाता है। भव्यत्व नामक पारिणामिक भाव भी क्षीण हो जाता है। इस प्रकार मुक्तात्मा में औपशमिक, क्षायोपशमिक और औदयिक भाव सर्वथा ही नहीं होते। क्षायिक भावों में से क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिक केवलज्ञान, क्षायिक केवलदर्शन, क्षायिक सिद्धत्व विद्यमान रहते हैं। इन चार के सिवाय अन्य कोई क्षायिक भाव नहीं रहता। पारिणामिक भावों में

ભાવોના તથા ભવ્યત્વનો પણ ક્ષય થઇ જાય છે. દર્શનમોહનીય સાત પ્રકૃતિઓના ક્ષયથી ક્ષાયિક સમ્યકત્વ થાય છે. સમ્પૂર્ણ જ્ઞાનાવરણના ક્ષયથી ક્ષાયિક કેવળ જ્ઞાન થાય છે, દર્શનાવરણકર્મના ક્ષયથી ક્ષાયિક કેવળદર્શન થાય છે. સમસ્ત કર્મોના ક્ષયથી ક્ષાયિક સિદ્ધત્વ ઉત્પન્ન થાય છે. આ ભાવોના સિવાય જે ઔપશમિક, ક્ષાયોપશમિક અને ઔદયિક ભાવ છે તેમનો ક્ષય થઇ જાય છે ભવ્યત્વ નામક પારિણામિક ભાવ પણ ક્ષીણ થઇ જાય છે. આ રીતે મુકતાત્મામાં ઔપશમિક ક્ષાયોપશમિક અને ઔદયિક ભાવ સર્વથા જ હોતા નથી ક્ષાયિક ભાવોમાંથી ક્ષાયિકસમ્યકત્વ, ક્ષાયિક કેવળજ્ઞાન, ક્ષાયિક કેવળદર્શન' ક્ષાયિક સિદ્ધત્વ વિદ્યમાન રહે છે આ ચાર સિવાય અન્ય કોઇ ક્ષાયિકભાવ રહેતો નથી પારિણામિક ભાવોમાં ભવ્યત્વ જેના કારણે સિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરવાની યોગ્યતા સાં

मुक्तात्मनि न सम्भवति, किन्तु-भव्यत्वातिरिक्तः खलु पारिणामिको भावो ज्ञानदर्शनोपयोगास्तित्व-गुणवत्वानादित्वा संख्येयप्रदेशवत्वनित्यत्व द्रव्यत्वादि लक्षणः सम्भवत्येव एतेषां खलु सम्यक्त्वादीनां क्षायिकभावानां नित्यत्वात्-मुक्तस्यापि ते क्षायिकाः केवलसम्यक्त्वादयो भवन्ति इति भावः ॥२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावद् मोक्षावस्थायां ज्ञानावरणादि सकलकर्मक्षयो भवती-त्युक्तम् तत्र न केवलं सकलद्रव्यकर्मणामेव क्षयो भवति-अपितु-आत्मनः स्व तत्त्वभूतस्य औपशमिक-क्षायिक क्षायोपमिकौ-दयिक-पारिणामिक भावस्यापि क्षयो भवतीति सापवादं प्ररूपयितुमाह-केवल सम्मत्तनाण-दंसणसिद्धत्तं वज्जित्ता ओवसमियाइ भव्वत्तक्खएय' इति । केवलसम्यक्त्व ज्ञानदर्शन-सिद्धत्वं वर्जयित्वा दर्शनसप्तक क्षयात् क्षायिकं केवलसम्यक्त्वं-क्षायिक सम्यक्त्व-

भव्यत्व, जिसके कारण सिद्धि प्राप्त करने की योग्यता होती है, सिद्धि प्राप्त होने के पश्चात् नहीं रहता है। किन्तु अस्तित्व, गुणत्व, अनादित्व, असंख्येयप्रदेशावत्व, नित्यत्व, द्रव्यत्व आदि पारिणामिक भाव रहते हैं। ये सम्यक्त्व आदि क्षायिक भाव अनन्त होने के कारण मुक्त जीव में भी रहते हैं॥२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले कहा गया था कि मुक्तावस्था में ज्ञानावरणीय आदि सब कर्मों का क्षय हो जाता है, किन्तु अब यह निरूपण करते हैं कि केवल कर्मों का ही क्षय नहीं होता किन्तु आत्मा के असाधारण भाव औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक का भी क्षय हो जाता है, किन्तु इसमें कुछ अपवाद भी है।

दर्शनसप्तक के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है, ज्ञानावरण के क्षय से केवलज्ञान, दर्शनावरण के क्षय से केवलदर्शन और समस्त

છે, સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થયા બાદ રહેતું નથી. પરંતુ અસ્તિત્વ, ગુણવત્વ, અનાદિત્વ અસંખ્યેયપ્રદેશવત્વ, નિત્યત્વ, દ્રવ્યત્વ આદિ પારિણામિક ભાવ રહે છે. આ સમ્યકત્વ આદિક્ષાયિક ભાવ અનન્ત હોવાના કારણે મુક્ત જીવોમાં જ હોય છે ।૨।

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા કહેવામાં આવ્યું હતું કે મુક્તાવસ્થામાં જ્ઞાનાવરણીય આદિ બધાં કર્મોનો ક્ષય થઈ જાય છે, પરન્તુ હવે એ નિરૂપણ કરીએ છીએ કે કેવળ કર્મોનો ક્ષય થતો નથી પરન્તુ આત્માના અસાધારણ ભાવ ઔપશમિક, ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક ઔદયિક અને પારિણામિકનો પણ ક્ષય થઈ જાય છે પરન્તુ આમાં થોડો અપવાદ પણ છે.

દર્શનસપ્તકના ક્ષયથી ક્ષાયિક સમ્યકત્વ થાય છે, જ્ઞાનાવરણના ક્ષયથી કેવળજ્ઞાન, દર્શનાવરણના ક્ષયથી કેવળદર્શન અને સમસ્ત કર્મોના ક્ષયથી સિદ્ધત્વ

रूपम्, समस्तज्ञानावरणक्षयात् क्षायिकं केवलज्ञानम्, सकलदर्शनावरणक्षयात् क्षायिकं केवलदर्शनम्, समस्तकर्मक्षयात् क्षायिकं सिद्धत्वञ्च विहाय तदन्येषा मौपशमिकादीनाम्-औपशमिकस्य आदिना-क्षायिकस्य, क्षायोपशमिकस्य औदयिकस्य, पारिणामिकस्य च सेत्स्यल्लक्षणभव्यत्वस्य भावस्य क्षयो भवति। तथा च-मुक्तात्मनि औपशमिक क्षायोपशमिकौदयिका भावास्त्रयः सर्वथैव न सम्भवन्ति, क्षायिके भावेतु-क्षायिकसम्यक्त्वम् क्षायिककेवलज्ञानं क्षायिक-

कर्मों के क्षय से सिद्धत्व उत्पन्न होता है। इनको छोड़कर अन्य औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और सिद्धि प्राप्त करने की योग्यता रूप भव्यत्व नामक पारिणामिक भावों का भी क्षय हो जाता है। इस कारण मुक्तात्मा में औपशमिक, क्षायोपशमिक एवं औदयिक, ये तीन भाव तो सर्वथा ही नहीं होते। क्षायिक भावों में से क्षायिक सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन और सिद्धत्व रहते हैं। इन चार के सिवाय अन्य क्षायिक भाव भी मुक्तात्मा में नहीं होते। सम्यक्त्व आदि चार भाव नित्य होने के कारण रहते हैं। किन्तु पारिणामिक भावों में से सिद्धि प्राप्त करने की योग्यता रूप भव्यत्व भाव का ही अभाव होता है, उसके अतिरिक्त पारिणामिक भाव जैसे अस्तित्व, गुणवत्व, अनादित्व, असंख्यात प्रदेशत्व, नित्यत्व, द्रव्यत्व आदि मोक्षावस्था में भी विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार मोक्षावस्था में औपशमिक, क्षायोपशमिक और औदयिक भावों का सर्वथा अभाव हो जाता है। इसी प्रकार क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक केवलज्ञान, क्षायिक केवल-

ઉત્પન્ન થાય છે. આ બધાંને બાદ કરતા અન્ય ઔપશમિક, ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક, ઔદયિક અને સિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરવાની યોગ્યતા રૂપ ભવ્યત્વ નામક પારિણામિક ભાવનો પણ ક્ષય થઈ જાય છે આ કારણે મુકતાત્મામાં ઔપશમિક ક્ષાયોપશમિક અને ઔદયિક આ ત્રણે ભાવ તો સર્વથા જ હોતાં નથી, ક્ષાયિક ભાવોમાથી ક્ષાયિકસમ્યકત્વ, કેવળજ્ઞાન, કેવળદર્શન અને સિદ્ધત્વ રહે છે આ સિવાય અન્ય કોઇ ક્ષાયિકભાવ પણ મુકતાત્મામાં હોતા નથી, સમ્યકત્વ આદિ ચાર ભાવ નિત્ય હોવાથી રહે છે, પરન્તુ પારિણામિક ભાવોમાંથી સિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરવાની યોગ્યતા રૂપ ભવ્યત્વ ભાવનો જ અભાવ હોય છે. તેના સિવાય પારિણામિક ભાવ જેવાકે અસ્તિત્વ, ગુણવત્વ અનાદિત્વ, અસંખ્યાત પ્રદેશવત્વ નિત્યત્વ, દ્રવ્યત્વ આદિ મોક્ષાવસ્થામાં પણ વિદ્યમાન હોય છે જ આ રીતે મોક્ષાવસ્થામાં ઔપશમિક, ક્ષાયોપશમિક અને ઔદયિક ભાવોનો સર્વથા અભા

केवलदर्शनं क्षायिक सिद्धत्वञ्च संभवति। एतच्चतुष्टयाऽतिरिक्तं क्षायिकत्वमपि मुक्तात्मनि न संभवति क्षायिकसम्यक्त्वादि चतुष्कस्य तु-क्षायिकत्वेन नित्यत्वात् मुक्तस्यापि भवत्येवेति भावः। किन्तु पारिणामिके भावे खलु केवलं सेत्स्यल्लक्षणं भव्यत्वमेव पारिणामिकभावो मुक्तात्मनि न भवति, तदतिरिक्ताः पारिणामिकाः भावास्तु-ज्ञानदर्शनोपयोग-अस्तित्वगुणवत्त्वाऽनादित्वाऽसंख्येय प्रदेशवत्त्व-नित्यत्व द्रव्यत्वादयो मोक्षावस्थायामपि आत्मनि भवन्त्येवेतिभावः। एवञ्च-मोक्षावस्थाया औपशमिक औदयिक भावानां सर्वथा परिशटनं भवति-आत्मप्रदेशेभ्यः। एवं-केवलसम्यक्त्वलक्षण क्षायिकसम्यक्त्व-क्षायिककेवलज्ञान क्षायिककेवलदर्शन-क्षायिक सिद्धत्वातिरिक्तक्षायिकभावानामपि परिशटनं भवति। क्षायिकसम्यक्त्वादीनां चतुर्णां क्षायिक भावानान्तु-नित्यत्वात् मोक्षावस्थायामात्मप्रदेशेभ्यः परिशटनं न भवति। पारिणामिकभावेतु-केवलं सेत्स्यल्लक्षणभव्यत्वरूप एव पारिणामिकभावो मुक्तात्मनि परिशटति, तदतिरिक्ताः पुनर्ज्ञानदर्शनोपयोगादयः पारिणामिकभावाः नात्मप्रदेशेभ्यः परिशटन्ति न क्षीयन्ते, आत्मनस्तथाविधपरिणामस्वभावात्। उक्तञ्चाऽनुयोगद्वारे षण्णामाऽधिकारे १२६ सूत्रे='खीणमोहे केवल सम्मत्तं, केवलणाणी. केवलदंसणीसिद्धे' इति, क्षीणमोहः केवलसम्यक्त्वः, केवलज्ञानी, केवलदर्शनीसिद्धः' इति प्रज्ञापना-

---

दर्शन, क्षायिक सिद्धत्व के अतिरिक्त अन्य क्षायिक भावों का भी अभाव हो जाता है। मगर क्षायिक सम्यक्त्व आदि चार क्षायिक भाव नित्य होने के कारण मोक्षावस्था में आत्मप्रदेशों से पृथक् नहीं होते। पारिणामिक भावों में से भव्यत्व नामक पारिणामिक मुक्तात्मा में नहीं रहता, उसके अतिरिक्त अन्य अस्तित्व आदि पारिणामिक भाव बने रहते हैं क्यों कि आत्मा का वैसा ही परिणाम स्वभाव है।

अनुयोग द्वार में षट् नामों के अधिकार में कहा है-'क्षीणमोह, केवलसम्यक्त्वी, केवलज्ञानी, केवलदर्शनी और सिद्ध होते हैं। प्रज्ञापना

થઇ જાય છે. એવી જ રીતે ક્ષાયિકસમ્યક્ત્વ, ક્ષાયિકકેવળજ્ઞાન, ક્ષાયિકકેવળદર્શન ક્ષાયિક સિદ્ધત્વ સિવાય અન્ય ક્ષાયિકભાવોનો પણ અભાવ થઈ જાય છે પરંતુ ક્ષાયિકસમ્યક્ત્વ આદિ ચાર ક્ષાયિકભાવો નિત્ય હોવાના કારણે મોક્ષાવસ્થામાં આત્મપ્રદેશોથી પૃથક્ થતાં નથી પારિણામિકભાવોમાંથી ભવ્યત્વ નામક પારિણામિક મુક્તાત્મામાં રહેતો નથી એ સિવાય અન્ય અસ્તિત્વ આદિ પારિણામિક ભાવ કાયમ રહે છે કારણ કે આત્માનો એવો જ પરિણામસ્વભાવ છે.

અનુયોગદ્વાર માં ષટ્ નામોનાં અધિકારમાં કહ્યું છે ક્ષીણમોહ કેવળ-સમ્યક્ત્વી, કેવળજ્ઞાની, કેવળદર્શની અને સિદ્ધ હોય છે.

याश्च १८=१९ पदे चोक्तम्-'नोभवसिद्धिए, नो अभवसिद्धिए, सिद्धासम्मदिट्ठी' इति, नो भवसिद्धिकः, नो अभवसिद्धिकः, सिद्धासम्यग्दृष्टयः, इति ॥२॥

मूलम्-तओ पच्छा उड्ढं गच्छइ जाव लोगंतं ॥३॥

छाया—ततः पश्चात् ऊर्ध्वं गच्छति यावद् लोकान्तम् ॥३॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावद् सकलकर्मक्षयरूपो मोक्षः प्रतिपादितः, स च मुक्तः सन् किं तत्रैवावतिष्ठते उतान्यत्र कुत्रचिद् गच्छतीत्याह-'तओ पच्छा' इत्यादि। ततः पश्चात् सर्वकर्मक्षयानन्तरम् औपशमिकाद्यभावानन्तरं च स मुक्तात्मा ऊर्ध्वमेव गच्छति। कियत्पर्यन्तं गच्छति? इत्याह-यावद् लोकान्तम् लोकस्य अन्तः मस्तकः, तत्पर्यन्तं गच्छति। लोकस्तावत् पञ्चास्तिकाय समुदायात्मकः तत्रेषत्प्राग्भारा पृथिवी हिमशकलधवला उत्तानकच्छत्राकृतिर्वर्तते।

सूत्र में १८-१९ वें पद में भी कहा है-'मुक्तात्मा न भव्य कहलाते हैं, न अभव्य हैं, वे सिद्ध हैं, सम्यग्दृष्टि हैं' ॥२॥

'तओ पच्छा उड्ढं' इत्यादि।

सूत्रार्थ—मुक्त होने के पश्चात् आत्मा लोक के अन्त तक ऊर्ध्वगमन करता है ॥३॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले प्रतिपादन किया गया है कि समस्त कर्मों का क्षय होना मोक्ष कहलाता है, मगर मुक्त होकर आत्मा वहीं रह जाता है या अन्यत्र कहीं जाता है, इस प्रश्न का समाधान करते हैं-

समस्त कर्मों का क्षय होने के पश्चात् मुक्तात्मा ऊपर गमन करता है। कहाँ तक जाता है? सो कहते हैं-लोक के अन्त तक अग्रभाग तक जाता है। पंचास्तिकायात्मक इस लोक के अग्रभाग में ईषत्प्रा-

---

પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રમાં ૧૮-૧૯માં પદમાં કહ્યું છે—મુકતાત્મા ન તો ભવ્ય કહેવાતા, નથી અભવ્ય, તેઓ સિદ્ધ છે, સમ્યકદષ્ટિ છે ॥ ૨ ॥

'તઓ પચ્છા ઉડ્ઢં' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-મુક્ત થયા બાદ આત્મા લોકના અન્ત સુધી ઉર્ધ્વગમન કરે છે ॥ ૩ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-પહેલા પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું કે સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય થવો મોક્ષ કહેવાય છે, પરન્તુ મુક્ત થઈને આત્મા ત્યાં જ રહી જાય છે અથવા બીજે કયાંય જાય છે એ પ્રશ્નનું સમાધાન કરીએ છીએ

સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય થવા બાદ મુક્તાત્મા ઉપર ગમન કરે છે. તે કયાં સુધી જાય છે? તો કહે છે—લોકના અન્ત સુધી અગ્રભાગ સુધી જાય છે. પંચાસ્તિકાયાત્મક આ લોકના અગ્રભાગમાં ઈષત્પ્રાગ્ભારા નામક પૃથ્વી છે. તે

तस्या अप्युपरि चतुष्क्रोशात्मकं योजनमेकं यावद् लोकः, तत्र चतुर्षु क्रोशेषु क्रोशत्रयं हित्वा चतुर्थस्य क्रोशस्योपरितमः षष्ठोभागः त्रयस्त्रिंशदुत्तरधनुः शतत्रयप्रमितो द्वात्रिंशद् अंगुलाधिकः, एतावत्परिमितं क्षेत्रं लोकान्तशब्देन गृह्यते तत्र लोकान्ते गत्वा मुक्तात्मा सिद्धो भूत्वा तिष्ठतीति ॥३॥

मूलम्—ण तओ परं धम्मत्थिकायाऽभावा ॥४॥

छाया—न ततः परं धर्मास्तिकायाऽभावात् ॥४॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावद् मोक्षानन्तरं मुक्तात्मा ऊर्ध्वं लोकान्तं यावद् गच्छतीत्युक्तं, यदि मुक्तात्मन ऊर्ध्वगमनं भवति तदा को नियमः यद् लोकान्त पर्यन्तमेव गच्छतीति, गच्छतु स तदग्रेऽपि का बाधा तत्र ? गति निवारकस्या

ग्भार नामक पृथ्वी है। वह हिम के समान धवल और ऊर्ध्वमुख छत्र के आकार की है। उसके भी ऊपर एक योजन अर्थात् चार कोस तक लोक है। इन चार कोसों में से तीन कोस छोडकर चौथे कोस का छठा भाग तीन सौ तेतीस धनुष और बत्तीस अंगुल प्रमित क्षेत्र लोकान्त शब्द से ग्रहण किया जाता है। उस लोकान्त में जाकर मुक्तात्मा अर्थात् सिद्ध अवस्थित हो जाते हैं ॥३॥

'ण तओ परं धम्मत्थिकायाऽभावा'

सूत्रार्थ—'लोकान्त से आगे मुक्तात्मा नहीं जाते, क्योंकि वहां धर्मास्तिकाय का अभाव है ॥४॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले बतलाया गया है कि मुक्त होने के अनन्तर मुक्तात्मा ऊपर लोकान्त तक गमन करते है। किन्तु प्रश्न उपस्थित होता है कि अगर मुक्तात्मा का ऊर्ध्वगमन होता है तो लोकान्त

બરફના જેવી શ્વેત તેમજ ઉર્ધ્વમુખ છત્રના આકારની છે. તેની પણ ઉપર એક યોજન અર્થાત્ ચાર ગાઉ સુધી લોક છે. આ ચાર ગાઉમાંથી ત્રણ ગાઉ છોડીને ચોથા ગાઉને છઠ્ઠો ભાગ ત્રણસોતેંત્રીશ ધનુષ્ય અને બત્રીશ આંગળી પ્રમિત ક્ષેત્ર લોકાન્ત શબ્દથી ગ્રહણ કરવામાં આવે છે. તે લોકાન્તમાં જઈને મુક્તાત્મા અર્થાત્ સિદ્ધ અવસ્થિત થઇ જાય છે ॥ ૩ ॥

'ન તઓ પરં ધમ્મત્થિકાયાऽભાવા'

સૂત્રાર્થ—લોકાન્તથી આગળ મુક્તાત્મા જતા નથી કારણકે ત્યાં ધર્માસ્તિકાયને અભાવ છે ॥ ૪ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા બતાવવામાં આવ્યું કે મુક્ત થઈ ગયા બાદ મુક્તાત્મા ઉપર લોકાન્ત સુધી ગમન કરે છે, પરન્તુ પ્રશ્ન ઉપસ્થિત થાય છે

भावात्? अत्रोच्यते='ण तओ परं' इत्यादि ततः परं लोकान्तादग्रे न गच्छति धर्मास्तिकायाभावात्, गतिपरिणतजीवपुद्गलानां धर्मद्रव्यमुपग्रहकारकं भवति मीनस्य यथा जलं, तच्च तदग्रे नास्ति जीवपुद्गलानां गतौ धर्मद्रव्यं कारणं भवति लोकान्तात्परमलोकः तत्र तदभावः अतो मुक्तात्मा लोकान्तादग्रे न गच्छति तत्रैव सिद्धो भवतीतिभावः-उक्तंचोत्तराध्ययने षट्त्रिंशत्तमेऽध्ययने-

कहिं पडिहया सिद्धाः कहिं सिद्धा पइट्ठिया।
कहिं बोंदिं चइत्ताणं कत्थ वा गंतूण सिज्झइ ।५६॥
अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया।
इह बोंदिं चइत्ताणं तत्थ गंतू ण सिज्झइ ।५७॥

तक ही जाने का नियम क्यों है? आगे जाने में बाधा क्या है? जब कि गति को रोकने वाला कोई कारण नहीं है? इस प्रश्न का समाधान करते हैं-लोकान्त से आगे मुक्तात्मा का गमन नहीं होता क्यों कि वहां धर्मास्तिकाय नहीं है। धर्मद्रव्य गतिपरिणत जीवों और पुद्गलों की गति में निमित्त कारण होता है, जैसे जल मछली की गति में सहायक होता है। धर्मास्तिकाय आगे विद्यमान नहीं है, अतएव मुक्तात्मा आगे नहीं गमन करते। लोक के आगे अलोक है अलोक में धर्मास्तिकाय का अभाव है। यही कारण है कि सिद्ध जीव लोकान्त में ही स्थित हो जाते हैं। उत्तराध्ययन के छत्तीसवें अध्ययन में कहा है

'सिद्ध कहां रुक जाते हैं? सिद्ध कहां अवस्थित होते हैं? कहां शरीर का परित्याग करके कहां जाकर सिद्ध होते हैं? ॥५६॥

કે જો મુકતાત્માનું ઉર્ધ્વગમન થાય છે તો લોકાન્ત સુધી જ જવાનો નિયમ શા માટે છે.? આગળ જવામાં શું વાંધો છે? આ પ્રશ્નનું સમાધાન કરીએ છીએ લોકાન્તથી આગળ મુકતાત્માનું ગમન થતું નથી કારણકે ત્યાં ધર્માસ્તિકાય નથી ધર્મદ્રવ્ય ગતિપરિણુત જીવો અને પુદ્ગલોની ગતિમાં નિમિત્ત કારણ હોય છે, જેવી રીતે જળ માછલીની ગતિમાં સહાયક થાય છે. ધર્માસ્તિકાય આગળ વિદ્યમાન નથી આથી મુકતાત્મા આગળ ગમન કરતાં નથી. લોકાન્તની પછી અલોક છે અને અલોકમાં ધર્માસ્તિકાયનો અભાવ છે. સિદ્ધ જીવ લોકાન્તમાં જ અવસ્થિત થઈ જાય છે તેનું આજ કારણ છે. ઉત્તરાધ્યયનના છત્રીસમાં અધ્યયનમાં કહ્યું છે

સિદ્ધ કયાં રોકાઈ જાય છે? સિદ્ધ કયાં અવસ્થિત થાય છે! શરીરનો પરિત્યાગ કયાં કરે છે? અને કયાં જઈને સિદ્ધ થાય છે ॥ ૫૬

छाया–कुत्र प्रतिहताः सिद्धाः कुत्र सिद्धाः प्रतिष्ठिताः ।
कुत्र बोंदिं त्यक्त्वा कुत्र गत्वा सिध्यति ॥
अलोके प्रतिहताः सिद्धाः लोकाग्रे च प्रतिष्ठिताः ।
इह बोंदिं त्यक्त्वा तत्र गत्वा सिध्यति इति । सू० ॥४॥

मूलम्–निस्संगओ निरंगणओ गइपरिणामाओ बंधच्छेयओ निरंधणओ पुव्वप्पओगाओ य तग्गई ॥५॥

छाया–निस्सङ्गतो निरङ्गणतो गतिपरिणामात् बन्धच्छेदात् ।
निरिन्धनतः पूर्वप्रयोगाच्च तद्गति ॥५॥

तत्त्वार्थदीपिका—'पूर्वं तावत् मुक्तात्मनो गतिरुक्ता, सा च कर्मसद्भावादेव भवति, सर्व कर्मक्षये मोक्षः इति पूर्वं मुक्तमेव ततोऽकर्मणः पुनः कथं गति संभवः ? इत्याह–'निस्संगओ' इत्यादि । निस्सङ्गात् सर्व कर्मक्षये गतिरोधक

'सिद्ध अलोक में रुक जाते हैं, लोक के अग्र भाग में अवस्थित होते हैं, यहां शरीर का त्याग करके वहां जाकर सिद्ध होते हैं ॥५७॥४

'निस्संगओ निरंगणओ' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—निःसंग होने के कारण, कर्म-लेप का अभाव होने के कारण, गतिपरिणाम के कारण, बन्ध का छेद न हो जाने के कारण कर्मरूपी ईंधन का अभाव होने के कारण और पूर्व-प्रयोग के कारण सिद्धों की ऊर्ध्व गति होती है ॥५॥

तत्त्वार्थदीपिका-पहले मुक्तात्मा की गति का निरूपण किया गया है, किन्तु गति तो कर्म के सद्भाव से होती है और यह पहले ही कहा जा चुका है कि समस्त कर्मों का क्षय होने पर मोक्ष होता है । तो फिर अकर्मा जीव की गति का किस प्रकार संभव है ? इसका उत्तर

સિદ્ધ અલોકમાં રોકાઈ જાય છે, લોકના અગ્રભાગમાં અવસ્થિત થાય છે, અહીં શરીરનો ત્યાગ કરીને ત્યાં જઈને સિદ્ધ થાય છે ॥ ૪ ॥

'निस्संगओ निरंगणओ' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—નિઃસંગ હોવાના કારણે, કર્મ લેપનો અભાવ હોવાના કારણે ગતિપરિણામના કારણે, બન્ધનું છેદન થઈ જવાના કારણે કર્મ રૂપી બળતણનો અભાવ હોવાના કારણે તેમજ પૂર્વયોગના કારણે સિદ્ધોની ઉર્ધ્વગતિ થાય છે ॥ ૫ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-પહેલા મુક્તાત્માની ગતિનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે, પરંતુ ગતિ તો કર્મના સદ્ભાવથી થાય છે, અને એ તો પહેલા જ કહેવાઈ ગયું છે કે સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય થવાથી મોક્ષ થાય છે તો પછી અકર્મી જીવની ગતિ કઈ રીતે શક્ય છે ? આનો જવાબ પ્રસ્તુત સૂત્રમાં

कर्मणोऽप्यभावस्ततः कर्म सङ्गराहित्यात् सङ्गः स्खलनं, तद्राहित्यात्, निरङ्गणात् मोहापगमेन तत्रावस्थानकारणभूतरागलेपाभावात्, गतिपरिणामात् तथाविध गतिपरिणामात्, बन्धछेदात् कर्मबन्धच्छेदात्, निरिन्धनात्-कर्मरूपेन्धनाभावात्, तथा पूर्वप्रयोगाच्च सकर्मावस्थायां गतिमत्त्व स्वभावमाश्रित्यापि गति र्भवति, एवं कारणषट्काद् अकर्मणोऽपि गति र्भवतीति ॥५॥

मूलम्—ववगयलेव जलट्ठिय तुंबं विव, विप्फुडियकोस एरंडबीयं विव, इंधणविमुक्कधूमं विव, धणुविमुक्कसायगं विव ॥६॥

छाया-व्यपगतलेप जलस्थिततुम्बमिव, विस्फुटितकोशैरण्डबीजमिव, इन्धन विमुक्तधूमइव, धनुर्विमुक्त सायकमिव ॥६॥

इस सूत्र में दिया जाता है-

सिद्ध जीवों की निःसंग होने के कारण गति होती है, अर्थात् गति में रुकावट डालने वाले कर्म का भी अभाव हो जाने से उनका ऊर्ध्वगमन होता है। दूसरे, मोह के हट जाने से वहां ठहरने के कारणभूत राग का लेपन नहीं रह जाता, इस कारण भी गति होती है। तीसरे, जीव का स्वभाव ही ऊर्ध्वगमन करने का है। चौथे, कर्मबन्धका विच्छेद हो जाता है। पांचवें, कर्मरूपी ईंधन का अभाव हो जाता है। छठे, पूर्वप्रयोग से अर्थात् सकर्म अवस्था में गतिमत्व स्वभाव होने से अकर्म-अवस्था में भी गति होती है। इस प्रकार छह कारणों से सिद्ध जीव की ऊर्ध्वगति होती है है ॥५॥

'ववगयलेव जलट्ठिय' इत्यादि।

सूत्रार्थ-लेप के हट जाने पर जल की सतह पर स्थित होने वाले

આપવામાં આવે છે

નિઃસંગ હોવાના કારણે સિદ્ધ જીવોની ગતિ થાય છે, અર્થાત્ ગતિમાં અવરોધ કરનાર કર્મનો પણ અભાવ થઇ જવાથી તેમનું ઉર્ધ્વગમન થાય છે. બીજું મોહ દૂર થઇ જવાથી ત્યાં રોકાવાના કારણભૂત રાગનો લેપ રહેતો નથી એ કારણે પણ ગતિ થાય છે ત્રીજું, જીવનો સ્વભાવ જ ઉર્ધ્વગમન કરવાનો છે. ચોથું, કર્મબંધનો વિચ્છેદ થઇ જાય છે. પાંચમું, કર્મરૂપી ઇંધનનો અભાવ થઈ જાય છે. છટ્ઠું, પૂર્વપ્રયોગથી અર્થાત્ સકર્મ અવસ્થામાં પણ ગતિ થાય છે. આ રીતે છ કારણોથી સિદ્ધ જીવની ઉર્ધ્વગતિ થાય છે ॥૫॥

'વવગયજલટ્ઠિય' ઈત્યાદિ।

સૂત્રાર્થ-લેપના દૂર થવાથી પાણીની સપાટી પર સ્થિત થનાર તુંબડાની

तत्त्वार्थदीपिका—'पूर्वं तावद् निस्सङ्गत्वादिभिरकर्मणो मुक्तात्मनो गतिः प्रदर्शिता, सा च केन दृष्टान्तेन गति र्भवतीति निरूपयितुमाह—'ववगय' इत्यादि। व्यपगतलेपजलस्थित तुम्बमिव, यथा तुम्बफलं शुष्कं निश्छिद्रं अष्टभिः कुशमृत्तिकादिलेपैः लिप्तम् आतपे दत्तं सत् शुष्कं भवति, तत् जले क्षिप्तं सत् गुरुकत्वेन जलगततलप्रतिष्ठानं भवति, तदेव क्रमशो लेपनिर्गलनात् जलगततल मतिक्रम्य स्वभावत एव सलिलतलप्रतिष्ठानं भवति तद्वद् अकर्मणो गतिर्भवति ।१। एवमेव निरङ्गणत्वेन तथाविध गतिणामेन चाऽप्यकर्मणो गतिर्भवति २-३, एवं बन्धच्छेदादपि अकर्मणो गतिर्भवति—यथा एरण्डफलम् आतपे दत्तं सत् शुष्कं भवति, शुष्कस्य तस्य कोशभेदे तद्गतमेरण्डबीजमुपर्युत्पतति तद्वदेवाकर्मणोऽपि

तूंबे के समान, कोश के फटने पर एरंड के बीज के समान, ईंधन से विमुक्त धूम के समान और धनुष से छूटे हुए बाण के समान ।।६॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले निस्संगता आदि हेतुओं से मुक्तात्मा की गति का विधान किया है, इस सूत्र में दृष्टान्तों द्वारा उसे पुष्ट करते हैं—(१) जैसे कोई सूखा तुम्बाफल हो, छिद्रहीन हो और मिट्टी के आठ लेपों से लिप्त करके धूप में रखकर सुखा लिया जाय। फिर उसे जल में डाला जाय तो लेपयुक्त होने के कारण भारी होने से वह जल के तलभाग में जाकर ठहरता है। फिर धीरे-धीरे लेपों के हटने पर वह स्वभावतः जल के ऊपर आ जाता है, इसी प्रकार कर्म-लेप के हट जाने से सिद्ध जीव भी ऊर्ध्वगमन करते हैं। (२-३) इसी प्रकार निरंगण होने से अर्थात् मोह के नष्ट होने से भी अकर्मा जीव की गति

જેમ, કોશના ફાટવાથી એરંડાના બીજની માફક, ઈંધણુથી વિમુક્ત ધૂમાડાની સમાન અને ધનુષ્યથી છુટેલા બાણુની સમાન ॥ ६ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા નિસ્સંગતા આદિ હેતુઓથી મુક્તાત્માની ગતિનું વિધાન કર્યું, આ સૂત્રમાં દૃષ્ટાંતો દ્વારા તેની પુષ્ટિ કરીએ છીએ (૧) જેમ કોઈ સુકું તુંબડું હોય, છિદ્ર વગરનું હોય, તેને માટીના આઠ લેપોથી લીપીને તડકામાં રાખીને સુકાવી દેવામાં આવે, પછી તેને પાણીમાં નાખવામાં આવે તો લેપયુક્ત હોવાના કારણે વજનદાર હોવાથી તે જળના તળભાગમાં જઈને સ્થિર થાય છે. પછી ધીમે-ધીમે લેપોના દૂર થવાથી તે સ્વભાવતઃ પાણીની સપાટી ઉપર આવી જાય છે. આવી જ રીતે કર્મ-લેપ દૂર થવાથી સિદ્ધજીવ પણુ ઉર્ધ્વગમન કરે છે. (૨-૩) આ જ પ્રમાણે નિરંગણુ હોવાથી અર્થાત્ મોહના દૂર થઈ જવાથી પણુ અકર્મા જીવની ગતિ થાય છે (૪) બન્ધનો

गतिर्भवति ४। तथा-इन्धनमुक्तस्य धूमस्य गतिर्भवति, यथा इन्धन विप्रमुक्तस्य धूमस्य स्वभावत एव व्याघाताभावे ऊर्ध्वं गतिर्भवति तथैवाकर्मणोऽपि गतिर्भवति ५। पूर्वं प्रयोगाच्चाकर्मणो गतिर्भवति, यथा आकृष्टकर्णान्तचापः पुरुषो धनुषा बाणं क्षिपति, तस्य बाणस्य धनुर्मुक्तस्य पुरुष व्यापाररहितस्यापि गतिर्भवति तथैवाऽकर्मणोऽपि गतिर्भवति पूर्वं येन कर्मणाऽस्य गति प्रयोगो जनितः स क्षीणेऽपि कर्मणि अविच्छिन्न संस्कारत्वाद् गतिहेतुर्भवति ततस्तत्कृता गतिर्भवति। एवं पूर्वोक्तैः षड्भि र्दृष्टान्तैरकर्मणोऽपि गतिर्भवतीति ॥६॥

होती है। (४) बन्ध के नष्ट होने से भी कर्म रहित जीव गति करता है। जैसे एरंड का फल धूप लगने से जब सूख जाता है तो उसका कोश फटता है और अन्दर रहा हुआ बीज ऊपर उचटता है, उसी प्रकार बन्ध हट जाने पर अकर्मक जीव भी ऊर्ध्वगमन करता है। (५) ईंधन से विमुक्त धूम की, व्याघात के अभाव में स्वभाव से ही ऊर्ध्वगति होती है, उसी प्रकार अकर्मक जीव की भी ऊर्ध्वगति होती है। (६) पूर्वप्रयोग से भी सिद्ध जीव ऊर्ध्वगमन करते हैं। जैसे कान तक धनुष की डोरी को खींच कर पुरुष बाण छोडता है। वह बाण पुरुष के व्यापार के विना भी पूर्व प्रयोग से गति करता है, उसी प्रकार सिद्ध जीव भी पूर्वप्रयोग से गमन करता है। तात्पर्य यह है कि जिस कर्म के कारण उसकी पहले गति होती थी, उसका क्षय हो जाने पर भी संस्कार का विच्छेद न होने से वह गति का हेतु होता है। इस प्रकार इन छह दृष्टान्तों से अकर्मक जीव की गति सिद्ध होती है ॥६॥

નાશ થવાથી પણ કર્મરહિત જીવ ગતિ કરે છે જેવી રીતે એરંડાનું ફળ તડકો લાગવાથી જ્યારે સુકાઇ જાય છે ત્યારે તેનો કોશ ફાટી જાય છે અને અંદર બીજ ઉપર ઉચકાય છે એ જ રીતે બન્ધ દૂર થઇ જવાથી અકર્મક જીવ પણ ઉર્ધ્વગમન કરે છે. (૫) ઈંધણુથી વિમુકત ધુમાડાની વ્યાઘાતના અભાવમાં સ્વભાવથી જ ઉર્ધ્વગતિ થાય છે, તેવી જ રીતે અકર્મ જીવની પણ ઉર્ધ્વગતિ થાય છે. (૬) પૂર્વપ્રયોગથી પણ સિદ્ધ જીવ ઉર્ધ્વગમન કરે છે. જેવી રીતે કાન સુધી ધનુષ્યની દોરીને ખેંચીને પુરૂષ બાણ છોડે છે. આ બાણ-પુરૂષના વ્યાપાર વગર પણ પૂર્વપ્રયોગથી ગતિ કરે છે તેવી જ રીતે સિદ્ધ જીવ પણ પૂર્વપ્રયોગથી ગમન કરે છે. તાત્પર્ય એ છે કે જે કર્મના કારણે તેની પહેલા ગતિ થતી તેનો ક્ષય થઈ જવા છતા પણ સંસ્કારનો વિચ્છેદ ન થવાથી તે ગતિનો હેતુ થાય છે. આમ આ છ દૃષ્ટાંતોથી અકર્મક જીવની ગતિ સિદ્ધ થય છે. ॥ ૬ ॥

मूलम्—खेत्त १ काल २ गइ ३ वेय ४ तित्थ ५ लिंग ६ चारित्त ७ बुद्ध ८ नाणा ९ ऽवगहणु १० क्कोसं ११ तरा १२ णुसमय १३ संख १४ ऽप्पबहुत्तओ १५ सज्झा ॥७॥

छाया-क्षेत्र १ काल २ गति ३ वेद ४ तीर्थ ५ लिङ्ग ६ चारित्र ७ बुद्ध ८ ज्ञाना ९ ऽवगाहनो १० त्कर्षा ११ न्तरा १२ नुसमय १३ संख्या १४ ऽल्पबहुत्वतः १५ साध्याः ॥७।

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत् सर्वकर्मक्षयरूपे मोक्षे सति सिद्धो भवतीति सिद्धस्वरूपं पञ्चदशभिर्द्वारैः निरूपयितुमाह-'खेत्त काल' इत्यादि ।

अत्र सिद्धाः साध्याः अनुगमनीयाः । कथम् ? क्षेत्रादि पञ्चदशभिर्द्वारैः । अत्र सिद्धानां स्वरूपज्ञाने क्षेत्रादीनि पञ्चदश द्वाराणि सन्ति, एतै द्वारैः सिद्ध·

'खेत्त १ काल २ गइ' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—सिद्ध जीव इन पन्द्रह द्वारों से चिन्तनीय या प्ररूपणीय हैं-(१) क्षेत्र (२) काल (३) गति (४) वेद (५) तीर्थ (६) लिंग (७) चारित्र (८) बुद्ध (९) ज्ञान (१०) अवगाहना (११ उत्कर्ष (१२) अन्तर (१३) अनुसमय (१४) संख्या और (१५) अल्पबहुत्व ॥७॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले कहा गया है कि जीव कर्मों का क्षय होने पर सिद्ध होता है, अतएव यहां पन्द्रह द्वारों से सिद्ध के स्वरूप का निरूपण किया जाता है—

सिद्ध पन्द्रह द्वारों से समझने योग्य हैं । तात्पर्य यह है कि सिद्धों के स्वरूप को समझने के लिए पन्द्रह द्वार हैं, उनसे उनके

'खेत्त१ काल२ गई३' ઇત્યાદિ ।

સૂત્રાર્થ-સિદ્ધજીવ આ પંદર દ્વારોથી ચિન્તનીય અથવા પ્રરૂપણીય છે (૧) ક્ષેત્ર (૨) કાળ (૩) ગતિ (૪) વેદ (૫) તીર્થ (૬) લિંગ (૭) ચારિત્ર (૮) બુદ્ધ (૯) જ્ઞાન (૧૦) અવગાહના (૧૧) ઉત્કર્ષ (૧૨) અન્તર (૧૩) અનુસમય (૧૪) સંખ્યા અને (૧૫) અલ્પબહુત્વ ॥ ૭ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલાં કહેવામાં આવ્યું કે જીવ સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય થયા બાદ સિદ્ધ થાય છે. આથી અહીં પંદર દ્વારોથી સિદ્ધના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે.

સિદ્ધ પંદર દ્વારોથી સમજવા યોગ્ય છે. તાત્પર્ય એ છે કે સિદ્ધોના સ્વરૂપને સમજવા માટે પંદર દ્વાર છે તેનાથી તેમના સ્વરૂપનો વિચાર કરવો

स्वरूपं चिन्तनीयमिति भावः। तानि द्वाराणि यथा 'खेत्त' इत्यादि। अत्र क्षेत्राद्यल्पबहुत्वान्तानां द्वन्द्वः। ततः क्षेत्रतः कालतः इत्यादि। तत्र क्षेत्रतः कस्मिन् क्षेत्रे सिध्यन्ति, त्रिधेऽपि क्षेत्रे ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्लोकरूपे सिध्यन्ति। तत्र-ऊर्ध्वलोके पण्डकवनादौ, अधोलोके सलिलावती विजयाधोलौकिकेषु ग्रामेषु, तिर्यग्लोके मनुष्यक्षेत्रे सिध्यन्ति। तत्रापि संहारणाभावेन पञ्चदशसु कर्मभूमिषु-भरत पञ्चैरवत पञ्चकमहाविदेहपञ्चकरूपासु सिद्धा भवन्ति संहरणमपेक्ष्य समुद्रनदी वर्षधरपर्वतादावपि भवन्ति। तीर्थकराः पुनरधोलोकेऽधोलौकिकेषु ग्रामेषु, तिर्यग्लोके पञ्चदशसु कर्मभूमिषु भवन्ति न शेषेषु स्थानेषु, तत्र तेषां संहरणत एव सद्भावात्, न तीर्थकृतां भगवतां कदाचिदपि संहरण संभव इति। संहरणं द्विविधं

स्वरूप का विचार करना चाहिए। उसका निरूपण इस प्रकार है-

(१) क्षेत्रद्वार-किस क्षेत्र में जीव सिद्ध होते हैं? उत्तर यह है कि ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक्, इन तीनों लोकों में जीव सिद्ध होते हैं। पण्डकवन आदि ऊर्ध्वलोक में, सलिलावती विजय के अधोलौकिक ग्रामरूप अधोलोक में मनुष्यक्षेत्ररूप तिर्छे लोक में सिद्ध होते हैं। उसमें भी संहरण के अभाव में पन्द्रह कर्मभूमियों में अर्थात् पांच भरत, पांच एरवत और पांच महाविदेह में सिद्ध होते है, संहरण की अपेक्षा समुद्र, नदी वर्षधर, एवं पर्वत आदि में भी सिद्ध होते हैं। तीर्थंकर अधोलोक में अधोलौकिक ग्रामों में, तिर्यक् लोक में पन्द्रह कर्म भूमियों में सिद्ध होते हैं, शेष स्थानों में नहीं। शेष स्थानों में जो सिद्ध होते हैं वे संहरण से ही होते हैं किन्तु तीर्थकर भगवान् का

જોઈએ. તેનું નિરૂપણ આ પ્રમાણે છે

ક્ષેત્રદ્વાર-- કયા ક્ષેત્રમાં જીવ સિદ્ધ થાય છે ? જવાબ એ છે કે ઉર્ધ્વ, અધઃ-અને તિર્યક્, આ ત્રણે લોકોમાં સિદ્ધ થાય છે પણ્ડકવન આદિ ઉર્ધ્વ લોકમાં સલિલાવતી વિજયના અધોલૌકિક ગ્રામરૂપ અધોલોકમાં તથા મનુષ્યક્ષેત્ર રૂપ તિર્છાલોકમાં સિદ્ધ થાય છે આમાં પણ સંહરણના અભાવમાં પંદર કર્મભૂમિઓમાં અર્થાત્ પાંચ ભરત, પાંચ એરવત અને પાંચ મહાવિદેહમાં સિદ્ધ થાય છે, સંહરણની અપેક્ષા સમુદ્ર, નદી, વર્ષધર અને પર્વત આદિમાં પણ સિદ્ધ થાય છે. તીર્થંકર અધોલોકમાં અધોલૌકિકગ્રામોમાં તિર્યક્લોકમાં પંદર કર્મભૂમિઓમાં સિદ્ધ થાય છે, શેષ સ્થાનોમાં નહીં શેષ સ્થાનોમાં જે સિદ્ધ થાય છે તેઓ સંહરણથી જ થાય છે પરંતુ તીર્થંકર ભગવાનનું સંહરણ કદી પણ થઇ શકતું નથી. સંહરણ બે પ્રકારના હોય છે

भवति स्वकृतं परकृतं च। तत्र स्वकृतं यत् जङ्घाचारणविद्याचारणानां स्वेच्छातो विशिष्ट स्थानानुगमनं भवति तत्। परकृतं यत् चारणविद्याधरैर्देवैश्च वैरभावतो ऽनुकम्पातो वा तत्र उत्क्षिप्यान्यत्र प्रक्षेपणं भवति तत्। संहरणं तु प्रमत्तसंयतानां देशविरतानामेव भवति न तु सर्वेषां साधूनाम्। श्रमणी, व्यपगतवेदः, परिहारविशुद्धिसंयतः, पुलाकः अप्रमत्तसंयतः, चतुर्दशपूर्वी, आहारकशरीरी चेत्येतेषां सप्तानां कदाचिदपि संहरणं न भवति। तथा चोक्तम्—

"समणीमवगयवेदं, परिहार पुलागमप्पमत्तंच।
चोद्दसपुव्वि आहा–रगंच णवि कोवि संहरइ।" इति

छाया–श्रमणीमपगतवेदं परिहारं पुलाकमप्रमत्तं च।
चतुर्दश पूर्विणं आहारकं च नापि कोऽपि संहरति ॥इति क्षेत्रद्वारम्।१।

संहरण कभी हो नहीं सकता। संहरण दो प्रकार का होता है–स्वकृत और परकृत। जंघाचरण मुनि अपनी इच्छा से विशिष्ठ स्थानों पर गमन करते हैं, वह स्वकृत संहरण कहलाता है। विद्याधरों अथवा देवों द्वारा वैरभाव के कारण या अनुकंपा से प्रेरित होकर नियत स्थान से किसी दूसरे स्थान पर ले जाना परकृत संहरण कहलाता है। यह संहरण प्रमत्त संयतो और देशविरत श्रावकों का ही हो सकता है, सब साधुओं का नहीं। श्रमणी, वेदरहित साधु, परिहार विशुद्धि संयत, पुलाक, अप्रमत्तसंयत, चतुर्दशपूर्वी और आहारक शरीरी, इन सातका संहरण कदापि नहीं होता। कहा भी है–

'श्रमणी वेदविहीनश्रमण, परिहार विशुद्धि संयमवान् पुलाक, प्रमत्त संयत, चौदहपूर्वी और आहारक शरीरी श्रमण का कोई संहरण नहीं करता।

સ્વકૃત અને પરકૃત જંઘાચારણ અથવા વિદ્યાચારણ મુનિ પોતાની ઇચ્છાથી વિશિષ્ટ સ્થાનો ભણી ગમન કરે છે, તે સ્વકૃત સંહરણ કહેવાય છે. વિદ્યાધરો અથવા દેવો દ્વારા વેરભાવના કારણે અથવા અનુકંપાથી પ્રેરિત થઇને નિયત સ્થાનેથી કોઇ બીજા સ્થાને લઈ જવું પરકૃત સંહરણ કહેવાય છે. આ સંહરણ પ્રમત્તસંયતો અને દેશવિરત શ્રાવકોને જ હોઇ શકે છે, બધાં જ સાધુઓને નહીં. સાધ્વી વેદરહિત સાધુ પરિહાર વિશુદ્ધ સંયત, પુલાક, અપ્રમત્તસંયત, ચતુર્દશપૂર્વી અને આહારકશરીરી, આ સાતનું સંહરણ કદાપી થતું નથી વળી કહ્યું પણ છે

શ્રમણી, વેદવિહિન શ્રમણ, પરિહાર વિશુદ્ધિ સંયમવાન પુલાક, અપ્રમત્તસંયત, ચૌદપૂર્વી અને આહારક શરીરી શ્રમણનું કોઇ સંહરણ કરતું નથી

कालतः सिद्धाः कस्मिन् काले सिद्ध्यन्ति ?। सामान्यतो जन्मतोऽवसर्पिण्युत्सर्पिणीरूपेषु कालेषु सिद्ध्यन्ति। विशेषतस्तु-अवसर्पिण्यां सुषमदुष्षमा रूपे तृतीयकालभागे संख्येयेषु वर्षेषु शेषेषु जाताः सन्तः सिद्धयन्तिः। दुष्षमसुषमायां सर्वस्यामिति चतुर्थाऽरके सर्वत्र सिद्धयन्ति। दुष्षसुषमायां जाता दुष्षमा रूपे पञ्चमारके सिद्धयन्ति किन्तु दुष्षमायां जाता न कदाचित् सिद्धयन्तीतिभावः। संहरणापेक्षयातु अवसर्पिण्यादिषु सर्वेष्वपि कालेषु सिद्ध्यन्ति। यथा-अवसर्पिण्यां तृतीयचतुर्थारकयोश्चरमशरीरिणां जन्म सिद्धिगमनं तु केषाञ्चित् पञ्चमेऽप्यरके भवति यथा जम्बूस्वामिनः। केषाञ्चित् चरमशरीरिणां उत्सर्पिण्यां दुष्षमादिषु द्वितीयतृतीयचतुर्थारकेषु जन्म. सिद्धिग-

(२) कालद्वार-काल सिद्धजीव किस काल में सिद्ध होते हैं ? सामान्य रूप से, जन्म की अपेक्षा अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी-सभी कालों में सिद्ध होते हैं। विशेष का विचार किया जाय तो अवसर्पिणी के सुषम दुष्षम रूप तीसरे आरे में संख्यात वर्ष शेष रहने पर जन्मे हुए सिद्ध होते हैं। दुष्षम-सुषम नामक पूरे चौथे आरे में सिद्ध होते हैं। दुष्षम सुषम आरे में जो उत्पन्न हुए हैं वे पंचम आरे में सिद्ध हो सकते हैं किन्तु दुष्षम नामक पांचवें आरे में जन्मे हुए जीव सिद्ध नहीं होते। संहरण की अपेक्षा अवसर्पिणी आदि सभी कालों में सिद्ध होते हैं। यथा-अवसर्पिणी काल में तीसरे और चौथे आरे में चरमशरीरी मनुष्यों का जन्म होता है किन्तु उनमें से कोई-कोई पांचवें आरे में भी मोक्ष जाते हैं, जैसे जम्बू स्वामी। किन्हीं-किन्हीं चरमशरीरीयों का

(૨) કાલદ્વાર—કાલથી સિદ્ધ જીવ કયા કાળમાં સિદ્ધ થાય છે? સામાન્ય રૂપથી, જન્મની અપેક્ષા અવસર્પિણી અને ઉત્સર્પિણી બધાં જ કાળોમાં સિદ્ધ થાય છે. વિશેષને વિચાર કરવામાં આવે તો અવસર્પિણીના સુષમદુષ્ષમ રૂપ ત્રીજા આરામાં, સંખ્યાત વર્ષ શેષ રહેવા પર જન્મેલા સિદ્ધ થાય છે. દુષ્ષમ સુષમ નામક પૂરા ચોથા આરામાં સિદ્ધ થાય છે. દુષ્ષમસુષમ આરામાં જે ઉત્પન્ન થાય છે તે પંચમ આરામાં સિદ્ધ થઇ શકે છે પરન્તુ દુષ્ષમ નામક પાંચમાં આરામાં જન્મેલા જીવ સિદ્ધ થતાં નથી સંહરણની અપેક્ષા અવસર્પિણી આદિ બધાં કાળમાં સિદ્ધ થાય છે જેમકે—અવસર્પિણી કાળમાં ત્રીજા અને ચોથા આરામાં ચરમશરીરી મનુષ્યોનો જન્મ થાય છે પણ તેમાંથી કોઇ કોઇ પાંચમાં આરામાં પણ મોક્ષે જાય છે જેમ કે જમ્બૂસ્વામી કોઈ કોઇ ચરમશરીરિઓનો ઉત્સર્પિણી કાળમાં દુષ્ષમ આદિ બીજા ત્રીજા ચોથા આરામાં

मनं तु तीतयचतुर्थारकयोरेव भवति ।–"दोसु वि समासु जाया सिज्झंतो सप्पिणीए कालतिगे। तीसुय जाया ओसप्पिणीए सिज्झंति कालदुगे ॥१॥" इति द्वयोरपि समये जाताः सिद्धयन्ति उत्सर्पिण्यां कालत्रिके। तिसृषु च (समासु) जाता अवसर्पिण्यां सिद्धयन्ति कालद्विके इतिच्छाया ॥ संहरणमपेक्ष्यतु–उत्सर्पिण्यामवसर्पिण्यां च षट्स्वप्यरकेषु सिद्धयन्ति। तीर्थंकृतां पुनरवसर्पिण्यामुत्सर्पिण्यां च जन्म सिद्धिगमनंतु–सुषमदुष्षमा दुष्षमसुष्षमारूपयो स्तृतीय चतुर्थारकयोरेव वेदित्व्यं, न तु शेषेष्वरकेषु' यथा भगवत ऋषभस्वामिनः सुषमदुष्षमारकपर्यन्तभागे जन्म, एकोननवति पक्षेषु इति सार्द्धाष्टमासाधिकेषु त्रिषु वर्षेषु शेषेषु च सिद्धिगमनम्। भगवतो वर्द्धमान-

---

उत्सर्पिणी काल में दुष्षम आदि द्वितीय–तृतीय चतुर्थ आरे में जन्म होता है किन्तु सिद्धिगमन तो तीसरे–चौथे आरे में ही होता है। कहा भी है–'अवसर्पिणी काल के दो आरों में उत्पन्न हुए जीव तीन आरों में सिद्ध होते हैं और उत्सर्पिणी काल के तीन आरों में जन्मे हुए दो आरों में सिद्ध होते हैं' ॥१॥ संहरण की अपेक्षा उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में छहों आरों में सिद्ध होते हैं। तीर्थंकरों का जन्म अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल के तीसरे और चौथे आरे में होता है और सिद्धिगमन भी सुषम दुषमा और दुष्षम सुषमा काल में—तीसरे और चौथे आरे में ही समझना चाहिए, अन्य आरों में नहीं। जैसे भगवान् ऋषभदेव का जन्म सुषम दुष्षम आरे के पर्यन्त भाग में हुआ और ८९ पक्ष, अर्थात् तीन वर्ष और साढे आठ मास शेष रहने पर मोक्षगमन हुआ। भगवान् वर्द्धमान स्वामी का जन्म

જન્મ થાય છે પરન્તુ સિદ્ધિગમન તો ત્રીજા ચોથા આરામાં થાય છે. કહ્યું પણ છે અવસર્પિણી કાળના બે આરામાં ઉત્પન્ન થયેલા જીવ ત્રણ આરામાં સિદ્ધ થાય છે ઉત્સર્પિણી કાળના ત્રણ આરામાં જન્મેલા બે આરામાં સિદ્ધ થાય છે ॥૧॥ સંહરણની અપેક્ષા ઉત્સર્પિણી અને અવસર્પિણી કાળમાં છ એ આરામાં સિદ્ધ થાય છે. તીર્થંકરોનો જન્મ અવસર્પિણી અને ઉત્સર્પિણી કાળના ત્રીજા અને ચોથા આરામાં થાય છે અને સિદ્ધિગમન પણ સુષમદુષમા અને દુષ્ષમસુષમા કાળમાં ત્રીજા અને ચોથા આરામાં જ સમજવું જોઈએ, અન્ય આરાઓમાં નહીં. જેમ ભગવાન ઋષભદેવનો જન્મ સુષમદુષ્ષમ આરાના છેલ્લા ભાગમાં થયો અને ૮૯ પખવાડીઆ અર્થાત્ ત્રણ વર્ષ અને સાડા આઠ માસ શેષ રહેવા પર મોક્ષગમન થયું. ભગવાન મહાવીર સ્વામીનો જન્મ દુષ્ષમ-

स्वामिनस्तु दुष्षमसुषमारक पर्यन्त भागे जन्म, एकोननवति पक्षेषु शेषेषु सिद्धि, गमनमिति। इति द्वितीयं कालद्वारम् ॥२॥

गतिमाश्रित्य कस्यां गतौ सिद्धयन्ति। अत्र नयद्वयम्-अनन्तरनयः पाश्चात्कृतनयश्चेति, तत्र अनन्तरनयमिति गत्युत्पन्नभवमधिकृत्य मनुष्यगतावेव सिद्ध्यन्ति नान्यस्यां गतौ। पश्चात्कृतनयमिति पाश्चात्यमनन्तरं भवमधिकृत्य पुनः सामान्यतश्चतसृभ्योऽपि गतिभ्य आगताः सिद्धयन्ति। तत्रायं विवेकः-नरकगतिमाश्रित्य चतसृभ्य आद्याभ्यो नरकपृथिवीभ्य आगताः सिद्धयन्ति। तिर्यग्गतिमाश्रित्य पृथिव्यब्वनस्पति पञ्चेन्द्रियतिर्यग्गतिभ्य आगताः सिद्धयन्ति। मनुष्यगति माश्रित्य स्त्रीभ्यः पुरुषेभ्यो वा समागताः सिद्धयन्ति ३ देवगति मश्रित्य चतुर्भ्यो देवनिकायेभ्य आगताः सिद्धयन्ति ४। तीर्थकराः पुनर्देवगतेर्नरक गते-

---

दुष्षम सुषम नामक आरे के अन्तिम भाग में हुआ ८९ पक्ष शेष रहने पर मोक्षगमन हुआ।

(३) गतिद्वार-गति की अपेक्षा एक गति में सिद्ध होते हैं। इस विषय में दो नय हैं-अनन्तर नय और पश्चात्कृत नय। अनन्तर नय अर्थात् वर्त्तमान भव की अपेक्षा से मनुष्यगति में ही सिद्धि प्राप्त होती है, किसी अन्य गति में नहीं। पश्चात्कृत नय अर्थात् वर्त्तमान भव से पहले के भव के अपेक्षा से, सामान्य रूप से चारों ही गतियों से आये जीव सिद्ध होते हैं। इसमें विशेषता यह है-नरकगति की अपेक्षा प्रारंभ की चार पृथिवियों से आये जीव सिद्ध हो सकते हैं। तिर्यंच गति की अपेक्षा पृथ्वी, जल वनस्पति और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों से आये जीव सिद्ध होते हैं। देवगति की अपेक्षा चारों निकायों से आये

સુષમ નામક આરાના અન્તિમ ભાગમાં થયે. ૮૯ પખવાડીઆ શેષ રહ્યા ત્યારે મોક્ષગમન થયું.

(૩) ગતિદ્વાર—ગતિની અપેક્ષા એક ગતિમાં સિદ્ધ થાય છે આ વિષયમાં બે નય છે—અનન્તરનય અને પશ્ચાત્કૃતનય અનન્તરનય અર્થાત્ વર્તમાન ભવની અપેક્ષાએ મનુષ્યગતિમાં જ સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે, કોઇ અન્ય ગતિમાં નહીં પશ્ચાત્કૃતનય અર્થાત્ વર્તમાન ભવના પહેલાના ભવની અપેક્ષાથી, સામાન્ય રૂપથી ચારેય ગતિઓમાંથી આવેલા જીવ સિદ્ધ થાય છે. આમાં વિશેષતા આ છે નરકગતિની અપેક્ષા પ્રારંભની ચાર પૃથ્વીઓથી આવેલા જીવ સિદ્ધ થઇ શકે છે. તિર્યંચગતિની અપેક્ષા પૃથ્વી, જળ વનસ્પતિની અને પંચેન્દ્રિય તિર્યંચોથી આવેલા જીવ સિદ્ધ થાય છે. તીર્થંકર દેવગતિ અથવા

वीऽनन्तरागताएव सिद्धयन्ति। तत्रापि नरकगतिमाश्रित्य तिसृभ्य आद्याभ्य एव नरक पृथिवीभ्य आगता सिद्धयन्ति। देवगति माश्रित्य वैमानिक देवनिकायेभ्य एव आगताः सिद्धयन्ति। न तु शेषनिकायेभ्यः। इति तृतीयं गतिद्वारम् ॥३॥

वेदतः-कस्मिन् वेदे सिद्धयन्ति? प्रत्युत्पन्ननयमधिकृत्य अपगतवेदा एव सिद्ध्यन्ति तद्भवानुभूतपूर्ववेदमाश्रित्य तु सर्वेष्वपि वेदेषु स्त्री पुं नपुंसकरूपेषु सिद्ध्यन्ति। उक्तञ्च-"अवगयवेओ सिज्झइ, पच्चुप्पण्णं नयं पडुच्च।१। सव्वेहिय वेएहिय, सिज्झइसमइयनयवाया ॥१॥" अपगतवेदः सिद्धयति, प्रत्युत्पन्नं नयं प्रतीत्य तु। सर्वैश्च वेदैश्च सिद्धयति समतीतनयवादात् इति च्छाया। तीर्थकराः पुनः स्त्रीवेदे वा पुरुष वेदेवा सिद्ध्यन्तिन तु नपुंसक वेदे ॥ इति चतुर्थं वेदद्वारम् ।४।

जीव सिद्ध होते हैं। तीर्थंकर देवगति या नरकगति से अनन्तर आकर ही सिद्ध होते हैं। नरक से आएं जो प्रारंभ की तीन नरक-भूमियों से आकर सिद्ध होते है। देवगति की अपेक्षा वैमानिकनिकाय से सिद्ध होते हैं, अन्य किसी निकाय से नहीं।

(४) वेदद्वार-वेद की अपेक्षा किस वेद से सिद्ध होते है? प्रत्यु-त्पन्ननय अर्थात् वर्त्तमानग्राहीनय की अपेक्षा तो वेद रहित जीव ही सिद्ध होते हैं उस भव में अनुभव किये हुए पूर्व वेद की अपेक्षा स्त्री-वेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद तीनों से सिद्ध होते हैं। कहा भी है-प्रत्युत्पन्न नय की अपेक्षा सभी वेदों से सिद्ध होते हैं ॥१॥ तीर्थंकर स्त्रीवेद अथवा पुरुषवेद में ही सिद्ध होते हैं, नपुसकवेद में नहीं।

નરકગતિથી અનન્તર આવીને જ સિદ્ધ થાય છે. તીર્થંકર નરકથી આવે તો પ્રારંભની ત્રણ નરકભૂમિઓથી આવીને સિદ્ધ થાય છે. દેવગતિની અપેક્ષા વૈમાનિકનિકાયથી જ આવીને સિદ્ધ થાય છે. અન્ય કોઇ નિકાયથી નહીં

(૪) વેદદ્વાર-વેદની અપેક્ષા કયા વેદથી સિદ્ધ થાય છે? પ્રત્યુત્પન્ન નય અર્થાત્ વર્ત્તમાનગ્રાહી નયની અપેક્ષા તો વેદરહિત જીવ જ સિદ્ધ થાય છે. તે ભવમાં અનુભવેલા પૂર્વવેદની અપેક્ષા સ્ત્રીવેદ, પુરૂષવેદ અને નપુંસકવેદ ત્રણેથી સિદ્ધ થાય છે કહ્યું પણ છે પ્રત્યુત્પન્ન નયની અપેક્ષા વેદથી રહિત જીવ સિદ્ધ થાય છે, પરન્તુ અતીતગ્રાહી નયની, અપેક્ષા બધા વેદોથી સિદ્ધ થાય છે, ॥ ૧ ॥ તીર્થંકર સ્ત્રીવેદ અથવા પુરૂષવેદમાં જ સિદ્ધ થાય છે, નપુંસકવેદમાં નહીં.

तीर्थतः कस्मिन् तीर्थे सिद्धयन्ति? तीर्थङ्करतीर्थे च अतीर्थे च सिद्ध्यन्ति ॥ इति पञ्चमं तीर्थद्वारम् ।५।

लिङ्गतः कस्मिन् लिङ्गे सिद्ध्यन्ति ?, गृहिलिङ्गे स्वलिङ्गे च सिद्ध्यन्ति, इदं च सर्वं द्रव्यलिङ्गापेक्षया ज्ञातव्यम् । संयमरूपभावलिङ्गापेक्षया तु स्वलिङ्गे एव सिद्ध्यन्ति न तु तदतिरिक्ते लिङ्गे भावलिङ्गेनैव सिद्धि प्राप्तेः । इतिषष्ठ लिङ्गद्वारम् ।६।

चारित्रतः कस्मिन् चारित्रे सिद्ध्यन्ति ? प्रत्युत्पन्ननयमधिकृत्य यथाख्यात-चारित्रे सिद्ध्यन्ति । तद्भवानुभूतपूर्वचारित्राऽपेक्षया केचित् सामायिक सूक्ष्म-संपराय-यथाख्यातेति चारित्रिणः १ केचित्-सामायिक छेदोपस्थापनीय-सूक्ष्म-

---

(५) तीर्थद्वार-तीर्थ की अपेक्षा किस तीर्थ में सिद्ध होते हैं ? तीर्थंकर के तीर्थ में, तीर्थंकरी के तीर्थ में और अतीर्थ में भी सिद्ध होते हैं ।

(६) लिङ्गद्वार-लिंग की अपेक्षा किस लिंग में सिद्ध होते हैं ? अन्य लिंग में, गृहस्थलिंग में और स्वलिंग की अपेक्षा समझना चाहिए । संयमरूप भावलिंग की अपेक्षा तो स्वलिंग में ही सिद्धि प्राप्त होती है उसका सिवाय अन्य भावलिंग में नहीं ।

(७) चारित्रद्वार-चारित्र की अपेक्षा किस चारित्र में सिद्ध होते हैं ? प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा यथाख्यात चारित्र में सिद्ध होते हैं उसी भव में पहले अनुभव किये चारित्र की अपेक्षा कोई सामायिक सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात-तीन चारित्र वाले होते हैं, कोई चार-सामायिक, छेदोपस्थापना, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात चारित्र वाले होते हैं

---

(૫) તીર્થદ્વાર—તીર્થની અપેક્ષા કયા તીર્થમાં ઉત્પન્ન થાય છે ? તીર્થંકરના તીર્થમાં, તીર્થંકરીના તીર્થમાં અતીર્થમાં પણ સિદ્ધ થાય છે.

(૬) લિંગદ્વાર—લિંગની અપેક્ષા કયા લિંગમાં સિદ્ધ થાય છે ? અન્યલિંગમાં, ગૃહસ્થલિંગમાં અને સ્વલિંગમાં સિદ્ધ થાય છે આ કથન દ્રવ્ય-લિંગની અપેક્ષા સમજવું જોઇએ સંયમરૂપ ભાવલિંગની અપેક્ષા તો સ્વલિંગમાં જ સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે એ સિવાયના અન્ય ભાવલિંગમાં નહીં.

(૭) ચારિત્રદ્વાર—ચારિત્રની અપેક્ષા કયા ચારિત્રમાં સિદ્ધ થાય છે ? પ્રત્યુત્પન્નનયની અપેક્ષા યથાખ્યાત ચારિત્રમાં સિદ્ધ થાય છે, તે જ ભવમાં પહેલા અનુભવેલા ચારિત્રની અપેક્ષા કોઈ સામાયિક, સૂક્ષ્મસામ્પરાય અને યથાખ્યાત ત્રણ ચારિત્ર વાળા હોય છે. કોઈ ચાર-સામાયિક, છેદોપસ્થાપના સૂક્ષ્મસામ્પરાય અને યથાખ્યાત ચારિત્રવાળા હોય છે. કોઇ સામાયિક, છેદો-

सपराय-यथाख्यातेति चतुश्चारित्रिणः २, केचित्-सामायिक छेदोपस्थापनीय-परिहारविशुद्धिक सूक्ष्मसंपराय यथाख्याते ति पञ्चचारित्रिणः ३, इति।

"चरणम्मि अहक्खाए, पच्चुप्पण्णेण सिज्झइ णएण।
पुव्वाणंतर चरणे, ति-चउक्कग-पंचग-णएणं ॥१॥ इति

छाया-चरणे यथाख्याते, प्रत्युत्पन्नेन सिध्यति नयेन। पूर्वान्तरचरणे, त्रि-चतुष्कक-पञ्चक नयेन ॥इति॥ तीर्थकराः पुनः सामायिक सूक्ष्मसंपराय यथाख्यात चारित्रिण एव सिद्ध्यन्तिती सप्तमं चारित्रद्वारम् ॥७॥

बुद्धत्वमाश्रित्य कीदृशा बुद्धा सिद्ध्यन्ति? स्वयंबुद्धाः प्रत्येक बुद्धाः बुद्धबोधितावा सिद्ध्यन्ती ति तत्र स्वयं बुद्धा-स्वयमेव आत्मनैव बुद्धाः नान्येन बोधिताः-ते च तीर्थकराः तीर्थकरनामकर्मोदयसंपन्ना उच्यन्ते। प्रत्येक बुद्धाः-प्रत्येकमेव स्वात्मानं प्रति किञ्चिन्निमित्तमाश्रित्य संजात जाति स्म-

---

सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धिक सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात इस प्रकार पांचों चारित्रों की आराधना करके सिद्ध होते हैं। कहा भी है-'प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा यथाख्यात चारित्र में सिद्ध होते हैं पूर्वाचरित चारित्रों की अपेक्षा कोई तीन, कोई चार कोई पांच चारित्र से सिद्ध होते हैं।' तीर्थंकर सामायिक, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात चारित्र का आराधन करके ही सिद्ध होते हैं।

(८) बुद्धद्वार-बुद्धत्व की अपेक्षा किस प्रकार के बुद्ध सिद्ध होते हैं? स्वयंबुद्ध-जिन्हें परोपदेश के बिना स्वयं ही बोध प्राप्त हुआ हो प्रत्येकबुद्ध-जिन्हें कोई बाह्य निमित्त पाकर बोध प्राप्त हुआ हो और बुद्ध बोधित-ज्ञानीजनों से उपदेश पाकर जिन्हें बोध प्राप्त हुआ हो. सिद्ध होते हैं। तीर्थङ्कर स्वयं बुद्ध ही होते हैं उन्हें

પસ્થાનીય, પરિહાર વિશુદ્ધિક, સૂક્ષ્મસામ્પરાય અને યથાખ્યાત એ રીતે પાંચે ચારિત્રોની આરાધના કરીને સિદ્ધ થાય છે કહ્યું પણ છે પ્રત્યુત્પન્નનયની અપેક્ષા યથાખ્યાત ચારિત્રમા સિદ્ધ થાય છે અને પૂર્વાચરિત ચારિત્રોની અપેક્ષા કોઈ ત્રણ કોઈ ચાર અને કોઈ પાંચ ચારિત્રોથી સિદ્ધ થાય છે. 'તીર્થંકર સામાયિક, સૂક્ષ્મસામ્પરાય અને યથાખ્યાત ચારિત્રની આરાધના કરીને જે સિદ્ધ થાય છે.

(૮) બુદ્ધદ્વાર-બુદ્ધત્વની અપેક્ષા કયા પ્રકારના બુદ્ધ સિદ્ધ થાય છે? સ્વયંબુદ્ધ જેમને પરોપદેશ વગર સ્વયંજ બોધ પ્રાપ્ત થયો છે. પ્રત્યેક બુદ્ધ જેમને કોઈપણ નિમિત્ત મેળવી બોધ પ્રાપ્ત થયો હોય અને બુદ્ધબોધિત જ્ઞાની જનોથી ઉપદેશ પામીને જેમને બોધ પ્રાપ્ત થયો હોય-સિદ્ધ થાય છે તીર્થંકર સ્વયંબુદ્ધ જ હોય છે, તેમને કોઈ પાસેથી બોધ પ્રાપ્ત કરવાની જરૂર પડતી

रणा दबुद्धा करकण्डूवदिवत् ते प्रत्येकबुद्धा उच्यन्ते। बुद्धबोधिताः- बुद्धेन-ज्ञात सिद्धान्ततत्त्वेन विदितसंसारस्वभावेन ये बोधितास्ते बुद्धबोधिता उच्यन्ते, एते सम्भूताः सिद्ध्यन्तीति। इत्यष्टमं बुद्धद्वारम् ।८।

ज्ञानतः-कस्मिन् ज्ञाने सिद्ध्यन्ति? प्रत्युत्पन्ननयमाश्रित्य केवलज्ञाने सिद्ध्यन्ति। तद्भवानुभूतपूर्वानन्तरज्ञानमपेक्ष्य तु केचित्-मतिश्रुतज्ञानिनः, केचित् मतिश्रुतावधिज्ञानिनः, केचित् मतिश्रुतमनःपर्यायज्ञानिनः, केचित्-मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानिनः सिध्यन्ति। तीर्थकरास्तु मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानिनः सिद्धयन्ति तत्र मतिश्रुतावधीतिज्ञानत्रयवन्त एव परमततः समागच्छन्ति। दीक्षा-

---

किसी से बोध प्राप्त नहीं करना पडता। प्रत्येकबुद्ध भी किसी का उपदेश पाये बिना ही बोध प्राप्त करते हैं मगर उन्हें किसी बाहरी निमित्त की आवश्यकता होती है जैसे करकण्डू आदि। जो सिद्धान्त के सार को समीचीन रूप से जानने वाले ज्ञानी पुरुष का उपदेश पाकर बुद्ध होते हैं, वे बुद्धबोधित कहलाते हैं। ये तीनों प्रकार के साधकसिद्धि प्राप्त करते हैं।

(९) ज्ञानद्वार-ज्ञान की अपेक्षा किस ज्ञान से सिद्ध होते हैं? प्रत्युत्पन्न अर्थात् वर्त्तमानग्राहीनय की अपेक्षा केवलज्ञान में सिद्धि होती है। किन्तु उसी भव में प्राप्त पूर्वकालीन ज्ञानों का विचार किया जाय तो कोई मति-श्रुतज्ञानी होते हैं कोई मति, श्रुत और अवधिज्ञानी होते हैं, कोई मति, श्रुत मनःपर्यवज्ञानी होते हैं। और कोई मति, श्रुत और अवधिज्ञानी होते हैं। तीर्थङ्करों को नियम से चारों ही

નથી. પ્રત્યેકબુદ્ધ પણ કોઈનો ઉપદેશ પામ્યા વગર જ બોધ પ્રાપ્ત કરે છે પરંતુ તેમને કોઇ બહારના નિમિત્તની જરૂરીયાત રહે છે જેમ કે કરકણ્ડૂ આદિ જે સિદ્ધાંતના સારને સમીચીન રૂપથી જાણનાર જ્ઞાની પુરૂષનો ઉપદેશ પામીને બુદ્ધ થાય છે તે બુદ્ધ બોધિત કહેવાય છે. આ ત્રણે પ્રકારના સાધક સિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરે છે.

(૯) જ્ઞાનદ્વાર-જ્ઞાનની અપેક્ષા કયા જ્ઞાનથી સિદ્ધ થાય છે? પ્રત્યુત્પન્ન અર્થાત્ વર્ત્તમાનગ્રાહીનયની અપેક્ષા કેવળજ્ઞાનમાં સિદ્ધ થાય છે, પરન્તુ તે જ ભવમાં પ્રાપ્ત પૂર્વકાલીન જ્ઞાનોનો વિચાર કરવામાં આવે તો કોઈ મતિ શ્રુત-જ્ઞાની હોય છે, કોઇ મતિ, શ્રુત અને અવધિજ્ઞાની હોય છે જ્યારે કોઇ મતિ શ્રુત, અવધિ અને મનઃપર્યવજ્ઞાની હોય છે. તીર્થંકરોને નિયમ

काले चतुर्थं मनःपर्यवज्ञानमपि समुत्पद्यते, ततः केवलं प्राप्य सिद्धयन्तीति विवेकः । इति नवमं ज्ञानद्वारम् ॥९॥

अवगाहनातः—कस्यामवगाहनायां सिद्धयन्ति? अवगाहना त्रिविधा—जघन्या उत्कृष्टा, मध्यमा चेति । तत्र जघन्या द्विरत्नि प्रमाणा, उत्कृष्टा पञ्चशतधनुः प्रमाणा, मध्यमा—सप्तहस्तादि प्रमाणा । तत्र जघन्यावगाहनया द्विरत्नि प्रमाणा सिद्धाः वामनकूर्मीपुत्रादयः, उत्कृष्टावगाहनया पञ्चशतधनुःप्रमाणा सिद्धाः भरतबाहुबल्यादयः, मध्यमावगाहनया सप्तहस्तादि प्रमाणा सिद्धाः गौतमादयः जघन्योत्कृष्टावगाहनातिरिक्ता सर्वाऽप्यवगाहना मध्यमैव ज्ञातव्येतिविवेकः इति दशममवगाहनाद्वारम् ॥१०॥

ज्ञान होते हैं । मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान से युक्त होकर ही परभव से आते हैं । दीक्षा धारण करते ही उन्हें मनःपर्यवज्ञान प्राप्त हो जाता है और फिर केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्ध होते हैं ।

(१०) अवगाहनाद्वार—अवगाहना की अपेक्षा किस अवगाहना से सिद्ध होते हैं ? अवगाहना तीन प्रकार की है—जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम । जघन्य दो हाथ की अवगाहना से सिद्ध होते हैं, उत्कृष्ट पांच सौ धनुष की अवगाहना वाले सिद्ध होते हैं और मध्यम सात हाथ आदि की अवगाहना वाले सिद्ध होते है जघन्य अवगाहना से कूर्मपुत्र आदि सिद्ध हुए, उत्कृष्ट पांचसौ धनुष की अवगाहना से भरत बाहुबली सिद्ध हुए । और मध्यम सात हाथ की अवगाहना से गौतम आदि ने सिद्धि प्राप्त की । जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के बीच की सारी अवगाहनाएं मध्यम ही समझनी चाहिए ।

ચારેય જ્ઞાન હોય છે. તેઓ મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાન અને અવધિજ્ઞાનથી યુકત થઈને જ પરભવથી આવે છે દીક્ષા અંગીકાર કરતા જ તેમને મનઃપર્યવજ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ જાય છે અને પછી કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને સિદ્ધ થાય છે.

(૧૦) અવગાહનાદ્વાર—અવગાહનાની અપેક્ષા કયા અવગાહનથી સિદ્ધ થાય છે ? અવગાહના ત્રણ પ્રકારની છે જઘન્ય ઉત્કૃષ્ટ અને મધ્યમ. જઘન્ય બે હાથની અવગાહનાથી સિદ્ધ થાય છે, ઉત્કૃષ્ટ પાંચસો ધનુષ્યોની અવગાહનાવાળા સિદ્ધ થાય છે અને મધ્યમ સાત આદિની અવગાહનાવાળા સિદ્ધ થાય છે જઘન્ય અવગાહનાથી કૂર્મપુત્ર આદિ સિદ્ધ થયા ઉત્કૃષ્ટ પાંચસો ધનુષ્યની અવગાહનાથી ભરત બાહુબલી આદિ સિદ્ધ થયા અને મધ્યમ સાત હાથની અવગાહનાથી ગૌતમ વગેરેએ સિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી. જઘન્ય અને ઉત્કૃષ્ટ અવગાહના વચ્ચેની બધી અવગાહનાઓ મધ્યમ જ સમજવી જોઈએ.

सम्यक्त्व परिभ्रष्टा उत्कृष्टतः कियति कालेऽतिक्रान्ते सिद्धयन्ति ? सम्यक्त्व परिभ्रष्टा उत्कर्षतो देशोनापार्द्ध पुद्गलपरावर्त्त-संसारातिक्रमे सति सिद्धयन्ति अनुत्कर्षतस्तु केचिद् संख्येयकालातिक्रमे, केचिच्चानन्तेन कालेन सिद्धयन्ति ति । इत्येकादशमुत्कृष्टद्वारम् ॥११॥

अन्तरतः सिद्धानां कियत्कालिकमन्तरं भवति ? अन्तरमिति सिध्यमानानां जीवानामन्तरकालः । तथाहि-एको वर्त्तमानसमये सिद्धः, ततोऽन्यः कियता-कालेन सेत्स्यतीति सिद्धेर्गमनशून्यो यः कालः स अन्तरं कथ्यते । वर्तमानकाले एकः सिद्धः द्वितीयो जघन्येन तत एक समयव्यवधानेन सिध्यति उत्कृष्टतः

(११) उत्कर्षद्वार-सम्यक्त्व से च्युत हुए जीव अधिक से अधिक कितना काल व्यतीत होने पर सिद्ध होते हैं ? सम्यक्त्व से च्युत जीव उत्कृष्ट देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्त्तन काल में सिद्ध होते हैं । अनुत्कर्ष की अपेक्षा कोई संख्येय काल बीतने पर और कोई अनन्त काल व्यतीत होने पर सिद्ध होते हैं ।

(१२ अन्तरद्वार-सिद्ध जीवों का कितने काल का अन्तर होता है ? सिद्ध होने वाले जीवों में समय का जो व्यवधान होता है वह अन्तर कहलाता है । जैसे-एक जीव वर्त्तमान समय में सिद्ध हुआ, उसके पश्चात् दूसरा जीव जितने समय के बाद सिद्ध होगा उतना बीच का काल अन्तर कहलाता है अर्थात् सिद्धिगमन से शून्यकाल । वर्त्तमान समय में एक जीव सिद्ध हुआ, दूसरा एक समय के व्यवधान से सिद्ध होता है, इस प्रकार जघन्य अन्तर एक समय का होता है । उत्कृष्ट

(११) ઉત્કર્ષદ્વાર—સમ્યકત્વથી ભ્રષ્ટ થયેલા જીવ અધિકમાં અધિક કેટલો કાળ વ્યતીત થયા પછી સિદ્ધ થાય છે? સમ્યકત્વથી ભ્રષ્ટ જીવ ઉત્કૃષ્ટ દેશોન અપાર્ધ પુદ્ગલ પરાવર્ત્તન કાળમાં સિદ્ધ થાય છે અનુત્કૃષ્ટની અપેક્ષા કોઈ સંખ્યેય કાળ વીત્યા બાદ અને કોઇ અનન્ત કાળ વ્યતીત થવા બાદ સિદ્ધ થાય છે.

(१२) અન્તરદ્વાર—સિદ્ધ જીવોનું કેટલા કાળનું અન્તર હોય છે ? સિદ્ધ થનારા જીવોમાં સમયનું જે વ્યવધાન થાય છે તે અન્તર કહેવાય છે જેમકે—એક જીવ વર્તમાન સમયમાં સિદ્ધ થયો ત્યાર બાદ બીજો જીવ જેટલા સમય બાદ સિદ્ધ થશે તેટલો વચ્ચેનો કાળ અન્તર કહેવાય છે અર્થાત્ સિદ્ધિગમનથી શૂન્યકાળ વર્ત્તમાન સમયમાં એક જીવ સિદ્ધ થયો, બીજો એક સમયના વ્યવધાનથી સિદ્ધ થાય છે, આ રીતે જઘન્ય અન્તર એક સમયનો

षण्मासव्यवधानेनान्यः सिद्ध्यत्येव । इति द्वादशमन्तरद्वारम् ॥१२॥

अनुसमयतो निरन्तरत इत्यनुसमयमाश्रित्य कति समयान् यावत् सिद्ध्यन्ति निरन्तरं नैरन्तर्येण जघन्यतो द्वौ समयौ यावत् सिद्ध्यन्ति, उत्कृष्टतोऽष्टौ समयान् यावत् निरन्तरं सिद्ध्यन्ति ततः परं व्यवच्छेदः ।
इति त्रयोदशमनुसमयद्वारम् ।१३॥

संख्यातः-एकस्मिन्समये कति संख्यका सिद्ध्यन्ति ? जघन्यत एकस्मिन् समये एक एव सिद्ध्यति, उत्कृष्टतोऽष्टाधिकं शतं सिद्ध्यति । तच्चास्मिन् भरतक्षेत्रेऽस्यामवसर्पिण्यां भगवतः श्रीऋषभदेवस्वामिनो निर्वाणसमये उत्कृष्टावगाहनावतामष्टोत्तरशतमेकस्मिन् समये सिद्धमिति श्रूयते । तच्चाश्चर्यभूतं कथ्यते शास्त्रे मध्यमावगाहनावतामेवाष्टोत्तरशतसंख्यकानामेकसमयसिद्धत्वेन कथितत्वात् ।

अन्तर छह मास का होता है ।

(१३) अनुसमयद्वार–अनुसमय अर्थात् बीच में एक भी समय का अन्तर हुए विना लगातार सिद्ध हों तो कितने समयों तक सिद्ध होते रहते हैं ? निरन्तर सिद्ध हों तो लगातार दो समयों तक सिद्ध होते हैं । उत्कृष्ट लगातार आठ समयों तक सिद्ध होते रहते हैं आठ समय के पश्चात् अन्तर अवश्य होता है ।

(१४) संख्याद्वार–एक समय में कितने जीव सिद्ध होते हैं ? एक समय में जघन्य अर्थात् कम से कम एक जीव सिद्ध होता है । उत्कृष्ट अर्थात् अधिक से अधिक एकसमय में एक सौ आठ जीव सिद्ध होते हैं । इस अवसर्पिणी काल में इस भरत क्षेत्र में भगवान् ऋषभदेव स्वामी के निर्वाण के समय में उत्कृष्ट अवगाहना वाले एक सौ आठ जीव एक साथ (एक ही समय में) सिद्ध हुए । यह एक अच्छेरा

હોય છે. ઉત્કૃષ્ટ અન્તર છ માસનું હોય છે.

(૧૩) અનુસમયદ્વાર–અનુસમય અર્થાત્ વચમાં એક પણ સમયનું અન્તર પડયા વગર સતત સિદ્ધ થાય તો કેટલા સમયો સુધી સિદ્ધ થતાં રહે છે ? નિરન્તર સિદ્ધ હોય તા લગાતાર બે સમયો સુધી સિદ્ધ થાય છે. ઉત્કૃષ્ટ લગાતાર આઠ સમયો સુધી સિદ્ધ થતાં રહે છે. આઠ સમય પછી અન્તર અવશ્ય પડે છે.

(૧૪) સંખ્યાદ્વાર–એક સમયમાં કેટલા જીવ સિદ્ધ થાય છે ? એક સમયમાં જઘન્ય અર્થાત્ ઓછામાં ઓછો એક જીવ સિદ્ધ થાય છે ઉત્કૃષ્ટ અર્થાત્ અધિકમાં અધિક એક સમયમાં એકસો આઠ જીવ સિદ્ધ થાય છે. આ અવસર્પિણીકાળમાં આ ભરત ક્ષેત્રમાં ભગવાન ઋષભદેવ સ્વામીના નિર્વાણના

उक्तंचोत्तराध्ययनस्य षट्त्रिंशत्तमाध्ययने चतुष्पञ्चाशत्तमगाथायाम्-'उक्कोसो-गाहणाए य सिज्झंते जुगवं दुवे। चत्तारिय जहन्नाए, मज्झे अट्ठुत्तरं सयं॥१॥' इति उत्कर्षावगाहनया च सिद्ध्यतीयुगपद् द्वौ। चत्वारश्च जघन्यया, मध्येऽष्टोत्तरं शतम् ।इति इतिच्छाया इति। चतुर्दशं संख्याद्वारम् ॥१४॥

अल्पबहुत्वतः-केभ्यः केऽल्पाः के संख्येयगुणा ? इत्यादि । चिन्त्यते, तत्र संक्षेपतोऽल्पबहुत्वं यथा-सर्वस्तोका युगपद् द्वित्रादिकाः सिद्धाः, एकका एकाकिन सिद्धाः संख्येयगुणाः, उक्तञ्च-'संखाए जहन्नेणं, एक्को उक्कोसएण अट्ठसयं' । सिद्धाऽणेगा थोवा, एक्कगसिद्धा उ संखगुणा ॥१॥'

छाया-संख्यया जघन्येन एकः, उत्कर्षेण अष्टशतम्, सिद्धा अनेकाः

आश्चर्य मय घटना-कही जाती है, क्योंकि शास्त्र में मध्यम अवगाहना वाले एक सौ जीवों का ही सिद्ध होना कहा है। उत्तराध्यन सूत्र के छत्तीसवें अध्ययन की ५४ वीं गाथा में कहा है-'उत्कृष्ट अवगाहना वाले एक साथ दो जीव सिद्ध होते हैं, जघन्य अवगाहना वाले चार सिद्ध होते हैं और मध्यम अवगाहना वाले एक सौ आठ सिद्ध होते हैं।'

(१५) अल्पबहुत्वद्वार-किनसे कौन अल्प है, किनसे कौन बहुत है, इस प्रकार न्यूनाधिकता का विचार जहां किया जाता है, वह अल्प-बहुत्वद्वार कहलाता है। संक्षेप से अल्पबहुत्व इस प्रकार है-एक साथ दो-तीन आदि सिद्ध होने वाले सब से कम हैं, एकाकी सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा अधिक हैं। कहा भी है-संख्या की अपेक्षा जघन्य

સમયે ઉત્કૃષ્ટ અવગાહના વાળા એકસો આઠ જીવ એક સાથે (એક જ સમયમાં) સિદ્ધ થયા આ એક અભૂતપૂર્વ આશ્ચર્યકારક બનાવ કહેવામાં આવ્યો છે કારણ કે શાસ્ત્રમાં મધ્યમ અવગાહનાવાળા એકસો આઠ જીવોનું જ સિદ્ધ હોવાનું કહેવામાં આવ્યું છે. ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના ૩૬માં અધ્યયનની ૫૪ મી ગાથામાં કહ્યું છે ઉત્કૃષ્ટ અવગાહનવાળા એકી સાથે બે જીવ સિદ્ધ થાય છે, જઘન્ય અવગાહના વાળા ચાર સિદ્ધ થાય છે અને મધ્યમ અવગાહનાવાળા એકસો આઠ સિદ્ધ થાય છે.

(૧૫) અલ્પબહુત્વદ્વાર- કોનાથી કોણ અલ્પ છે. કોનાથી કોણ વધારે છે. એ રીતે ન્યૂનાધિકતાનો વિચાર જ્યાં કરવામાં આવે છે તે અલ્પબહુત્વદ્વાર કહેવાય છે. સંક્ષેપથી અલ્પબહુત્વ આ પ્રમાણે છે-એક સાથે બે ત્રણ આદિ સિદ્ધ થનારા સહુથી ઓછા છે, એકાકી સિદ્ધ થનારા સંખ્યાતગણા અધિક છે. કહ્યું પણ છે સંખ્યાની અપેક્ષા જઘન્ય એક અને ઉત્કૃષ્ટ એકસો આઠ સિદ્ધ

स्तोकाः, एकक सिद्धास्तु संख्येयगुणाः ॥१॥

अथ विस्तारत एतानि क्षेत्रादीनि चतुर्दशद्वाराण्यधिकृत्याल्पबहुत्वं चिन्तनीयं जन्मतः संहरणतश्च। तत्र जन्मतः पञ्चदशसु कर्मभूमिषु। अकर्मभूमयस्त्रिंशत् हैमवताद्याः सन्ति। तत्र संहरणं कर्मभूमिषु अकर्मभूमिषु वा भवति, तत्र सर्वस्तोकाः संहरणसिद्धाः, ततोऽसंख्येयगुण जन्मतः सिद्धाः। संहरणं स्वकृतपरकृतभेदेन द्विविधम्। स्वकृतं चारणविद्याधराणां स्वेच्छया, परकृतं देवै-

---

एक और उत्कृष्ट एक सौ आठ सिद्ध होते हैं। एक साथ अनेक सिद्ध होने वाले कम हैं और एक-एक सिद्ध होनेवाले संख्यातगुण हैं ॥१॥'

अब विस्तार से क्षेत्र आदि चौदह द्वारों के आधार पर अल्पबहुत्व का विचार किया जाता है, जिसमें जन्म और संहरण दोनों का विचार भी सम्मिलित है।

क्षेत्र से अल्पबहुत्व—जन्म से पन्द्रह कर्मभूमियों में सिद्ध होते हैं। हैमवत क्षेत्र आदि तीस अकर्मभूमियां हैं। संहरण कर्मभूमियों में अथवा अकर्मभूमियों में होता है। संहरण सिद्ध अर्थात् जिन्हें कोई देव या विद्याधर एक स्थान से दूसरे स्थान पर उठा ले गया और वहीं से जिनको सिद्धि प्राप्त हुई ऐसे जीव सबसे कम हैं, जन्म से सिद्ध होने वाले उनसे असंख्यातगुणा अधिक हैं। संहरण दो प्रकार का है-स्वकृत और परकृत। चारण विद्याधर का स्वेच्छापूर्वक जो संहरण होता है वह स्वकृत कहलाता है। देवों और विद्याधरों द्वारा होने वाला परकृत

થાય છે. એક સાથે અનેક સિદ્ધ થનારાં ઓછા છે અને એક એક સિદ્ધ થનારા સંખ્યાતગણા છે ॥ ૧ ॥

હવે વિસ્તારથી ક્ષેત્ર આદિ ચૌદ દ્વારોના આધાર પર અલ્પબહુત્વનો વિચાર કરવામાં આવે છે જેમાં જન્મ અને સંહરણ બંનેનો વિચાર પણ સમ્મિલિત છે.

(૧) ક્ષેત્રથી અલ્પબહુત્વ—જન્મથી પંદર કર્મભૂમિઓમાં સિદ્ધ હોય છે. હૈમવત ક્ષેત્ર આદિ ત્રીસ અકર્મભૂમિઓ છે. સંહરણ કર્મભૂમિઓમાં અથવા અકર્મભૂમિઓમાં થાય છે. સંહરણસિદ્ધ અર્થાત્ જેમને કોઈ દેવ અથવા વિદ્યાધર એક સ્થાનેથી બીજા સ્થાને ઉપાડી ગયા અને ત્યાંથી જ જેમને સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થઇ હોય એવા જીવ સહુથી ઓછા છે. જન્મથી સિદ્ધ થનારા તેથી અસંખ્યાતગણા અધિક છે. સંહરણ બે પ્રકારનું છે-સ્વકૃત અને પરકૃત ચારણ વિદ્યાધરોનું સ્વેચ્છાપૂર્વક જે સંહરણ થાય છે તે સ્વકૃત કહેવાય છે દેવો

चारणविद्याधरैश्च जायमानम् । एषां क्षेत्राणां विभागः कर्मभूमिरकर्मभूमिः समुद्राद्वीपा ऊर्ध्वमधस्तिर्यगिति लोकत्रयम् । तत्र सर्वस्तोका ऊर्ध्वलोक सिद्धाः, अधोलोकसिद्धाः संख्येयगुणा, तिर्यग्लोक सिद्धाः संख्येयगुणाः । सर्वस्तोका समुद्रसिद्धाः, द्वीपसिद्धाः संख्येयगुणाः सर्वस्तोकाः लवणसमुद्रसिद्धाः, कालोदधि सिद्धाः संख्येयगुणाः जम्बूद्वीप सिद्धाः संख्येयगुणाः धातकीखण्डसिद्धाः संख्येयगुणाः पुष्करार्द्ध सिद्धाः संख्येयगुणाः गतं क्षेत्रतोऽल्पबहुत्वम् ॥१॥

कालतोऽल्पबहुत्वं चिन्त्यते—कालः अवसर्पिण्युत्सर्पिणी मध्यकालरूपस्त्रिविधः । तत्र पूर्वभवमधिकृत्य सर्वस्तोका उत्सर्पिणी सिद्धाः, अवसर्पिणी सिद्धा विशेषाधिकाः, मध्यकालसिद्धाः संख्येयगुणाः । प्रत्युत्पन्नभवापेक्षया अकाले

संहरण कहलाता है। इन क्षेत्रों का विभाग कर्मभूमि, अकर्मभूमि, समुद्र, द्वीप, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक है । इनमें से ऊर्ध्वलोकसिद्ध सब से कम हैं, अधोलोकसिद्ध संख्यातगुणा हैं और मध्यलोकसिद्ध उनसे भी संख्यातगुणा हैं। समुद्रसिद्ध सब से कम हैं, द्वीपसिद्ध उनसे संख्यातगुणा अधिक हैं। लवणसमुद्रसिद्ध सबसे कम हैं, कालोदधिसमुद्रसिद्ध उनसे संख्यातगुणा अधिक हैं, जंबूद्वीपसिद्ध संख्यातगुणा हैं, धातकीखण्डसिद्ध संख्यातगुणा हैं, पुष्करार्धसिद्ध संख्यातगुणा हैं।

२–काल से अल्पबहुत्व—काल तीन प्रकार का है–अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी और मध्यकाल। पूर्वभव की अपेक्षा उत्सर्पिणीकालसिद्ध सब से कम हैं, अवसर्पिणी कालसिद्ध विशेषाधिक हैं और मध्यकाल-

---

અને વિદ્યાધરો દ્વારા થનારૂં પરકૃત સંહરણ કહેવાય છે. આ ક્ષેત્રોના વિભાગ કર્મભૂમિ, અકર્મભૂમિ, સમુદ્ર, દ્વીપ, ઉર્ધ્વલોક અધોલોક અને મધ્યલોક છે. એમાંથી ઉર્ધ્વલોકસિદ્ધ સહુથી ઓછા છે, અધોલોકસિદ્ધ સંખ્યાતગણા છે અને મધ્યલોકસિદ્ધ તેથી સંખ્યાતગણા છે. સમુદ્રસિદ્ધ સહુથી ઓછા છે, દ્વીપસિદ્ધ તેથી પણ સંખ્યાતગણા અધિક છે લવણસમુદ્રસિદ્ધ સહુથી ઓછા છે, કાલોદધિ સમુદ્રસિદ્ધ તેથી સંખ્યાતગણા અધિક છે, જંબૂદ્વીપસિદ્ધ સંખ્યાતગણા છે, ધાતકીખણ્ડસિદ્ધિ સંખ્યાતગણા છે, પુષ્કરાર્ધ સિદ્ધ સંખ્યાતગણા છે.

(૨) કાલથી અલ્પબહુત્વ–કાલ ત્રણ પ્રકારના છે-અવસર્પિણી ઉત્સર્પિણી અને મધ્યકાળ. પૂર્વભવની અપેક્ષા ઉત્સર્પિણીકાલસિદ્ધ સહુથી ઓછા છે. અવસર્પિણીકાલસિદ્ધ વિશેષાધિક છે અને મધ્યમકાલસિદ્ધ સંખ્યાતગણા છે.

सिद्धयन्त्यतो नास्त्यल्पबहुत्वम् । गतं कालतोऽल्पबहुत्वम् ॥२॥

गतिमधिकृत्याल्पबहुत्वं चिन्त्यते–प्रत्युत्पन्नभावापेक्षया सिद्धिगतौ सिद्धयन्तीतिनास्त्यल्पबहुत्वम् । पूर्वभावापेक्षयाऽनन्तर पश्चात्कृतिको मनुष्यगतौ सिद्धयतीति नास्त्यल्पबहुत्वम् । परम्परपश्चात्कृति कस्यानन्तरागति श्चिन्त्यते, तथाहि–सर्वस्तोका मनुष्ययोनिकानन्तरगतिसिद्धाः, नरकयोनिकाऽनन्तरगति सिद्धाः संख्येयगुणाः तिर्यग्योनिकानन्तरगति सिद्धाः संख्येयगुणाः, देवयोनिकाऽनन्तर गति सिद्धाः संख्येयगुणा । इति गतं गतितोऽल्पबहुत्वम् ॥३॥

लिङ्गतोऽल्पबहुत्वं चिन्त्यते–लिङ्गद्वारे वेदद्वारमन्तर्हितम् । प्रत्युत्पन्नभावा-

---

सिद्ध संख्यातगुणा हैं । प्रत्युत्पन्न भव की अपेक्षा अकाल सिद्ध होते हैं, अतएव अल्पबहुत्व नहीं है ।

३–गति से अल्पबहुत्व—प्रत्युत्पन्न नय की अपेक्षा सिद्धगति में सिद्ध होते हैं, अतएव इस अपेक्षा से कोई अल्पबहुत्व नहीं हैं । अनन्तर पूर्वभव की अपेक्षा सभी मनुष्यगति में सिद्ध होते हैं, अतएव इस अपेक्षा से भी अल्पबहुत्व नहीं है । परम्पर पूर्वभव की अपेक्षा से अर्थात् चरम भव से पहले के भव की अपेक्षा से विचार किया जाय तो मनुष्यगति से मनुष्यगति में आकर सिद्ध होने वाले सब से कम हैं, नरकगति से आकर सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा अधिक हैं, तिर्यंचगति से आकर सिद्ध होने वाले उनसे भी संख्यातगुणा अधिक हैं और देवगति से आकर सिद्ध होने वाले उनसे भी संख्यातगुणा अधिक हैं ।

४–लिंग से अल्पबहुत्व—लिंगद्वार में वेदद्वार अन्तर्गत है । प्रत्यु-

---

પ્રત્યુત્પન્ન ભવની અપેક્ષા અકાલસાં સિદ્ધ થાય છે આથી અલ્પબહુત્વ નથી

(૩) ગતિથી અલ્પબહુત્વ–પ્રત્યુત્પન્ન નયની અપેક્ષા સિદ્ધિગતિમાં સિદ્ધ હોય છે; આથી આ અપેક્ષાથી કોઇ અલ્પબહુત્વ નથી. પૂર્વભવની અપેક્ષા બધા મનુષ્યગતિથી સિદ્ધ થાય છે આથી આ અપેક્ષા પણ અલ્પબહુત્વ નથી. પરમ્પરા પૂર્વભવની અપેક્ષાથી અર્થાત્ ચરમ ભવથી પહેલાના ભવની અપેક્ષાથી વિચાર કરવામાં આવે તો મનુષ્યગતિથી મનુષ્યગતિમાં આવીને સિદ્ધ થનારા સહુથી ઓછા છે, નરકગતિથી આવીને સિદ્ધ થનારા સંખ્યાતગણા અધિક છે, તિર્યંચગતિથી આવીને સિદ્ધ થનારા તેથી પણ સંખ્યાતગણા અધિક છે જ્યારે દેવગતિથી આવીને સિદ્ધ થનારા તેમનાથી પણ સંખ્યાતગણા અધિક છે.

(૪) લિંગથી અલ્પબહુત્વ–લિંગદ્વારમાં વેદદ્વાર અન્તર્ગત છે. પ્રત્યુત્પન્ન

पेक्षया व्यपगतवेदः सिद्ध्यतीति नास्त्यल्पबहुत्वम् पूर्वभावापेक्ष्य सर्वस्तोका-नपुंसकलिङ्गसिद्धाः, स्त्रीलिङ्गसिद्धाः संख्येयगुणाः पुंल्लिङ्गसिद्धाः संख्येयगुणाः गतं लिङ्ग वेदद्वारम् ॥४॥

तीर्थतोऽल्पबहुत्वं चिन्त्यते—सर्वस्तोकास्तीर्थकर सिद्धाः तीर्थकरतीर्थे नो तीर्थकर सिद्धाः संख्येयगुणाः । तीर्थकरतीर्थसिद्धाः नपुंसकाः संख्येयगुणाः तीर्थकरतीर्थसिद्धाः स्त्रियः संख्येयगुणाः तीर्थकरतीर्थसिद्धाः पुमांसः संख्येयगुणाः गतं तीर्थतोऽल्पबहुत्वम् ।५।

चारित्रतोऽल्पबहुत्वं चिन्त्यते तत्र प्रत्युत्पन्नभावापेक्षया नो चारित्रि नो अचारित्री सिद्ध्यतीति नास्त्यल्पबहुत्वम् । पूर्व भावापेक्षया- सामान्यतः सर्वस्तोकाः

त्पन्न भव की अपेक्षा वेद का क्षय करके वेदहीन हुए जीव ही सिद्ध होते हैं, अतएव इस अपेक्षा से कोई अल्पबहुत्व नहीं है। पूर्वभाव की अपेक्षा से नपुंसकलिंगसिद्ध सब से कम हैं, स्त्रीलिंगसिद्ध उनसे संख्यातगुणा अधिक हैं और पुलिंगसिद्ध उनसे भी संख्यातगुणा अधिक हैं।

५–तीर्थ से अल्पबहुत्व—तीर्थंकरसिद्ध सब से कम हैं, तीर्थंकर के तीर्थ में नो तीर्थंकरसिद्ध संख्यातगुणा अधिक हैं, अथवा द्रव्यलिंग की अपेक्षा तीर्थंकर तीर्थसिद्ध नपुंसक सब से थोडे हैं, तीर्थंकर तीर्थसिद्ध स्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं, तीर्थंकर तीर्थसिद्ध पुरुष संख्यातगुणा हैं।

६–चारित्र से अल्पबहुत्व—प्रत्युत्पन्न भाव की अपेक्षा नो चारित्री नो अचारित्री जीव ही सिद्ध होता हैं, अतएव कोई अल्पबहुत्व नहीं

ભાવની અપેક્ષા વેદનો ક્ષય કરીને વેદહીન થયેલા જીવ જ સિદ્ધ થાય છે આથી આ અપેક્ષાથી કોઇ અલ્પબહુત્વ નથી. પૂર્વભવની અપેક્ષાથી નપુંસકલિંગસિદ્ધ સહુથી ઓછા છે, સ્ત્રીલિંગસિદ્ધ તેથી સંખ્યાતગણા અધિક છે અને પુલ્લિંગ-સિદ્ધ તેથી પણ સંખ્યાતગણા અધિક છે.

(૫) તીર્થથી અલ્પબહુત્વ-તીર્થંકરસિદ્ધ સહુથી ઓછા છે, તીર્થંકરના તીર્થમાં અતીર્થંકરસિદ્ધ સંખ્યાતગણા અધિક છે અથવા દ્રવ્યલિંગની અપેક્ષા તર્થંકર તીર્થસિદ્ધ નપુંસક સહુથી થોડાં છે. તીર્થંકર તીર્થસિદ્ધ સ્ત્રિઓ સંખ્યાતગણી છે, તીર્થંકર તીર્થસિદ્ધ પુરૂષ સંખ્યાતગણા છે.

(૬) ચારિત્રથી અલ્પબહુત્વ-પ્રત્યુત્પન્ન ભાવની અપેક્ષાનો ચારિત્રી અચારિત્રી જીવ જ સિદ્ધ થાય છે આથી કોઈ અલ્પબહુત્વ નથી. પૂર્વભવની અપેક્ષાથી,

पञ्चचारित्र सिद्धाः, चतुश्चारित्रसिद्धाः संख्येयगुणाः, त्रिचारित्रसिद्धाः चतुश्चारित्र- सिद्धाः संख्येयगुणाः त्रिचारित्रा सिद्धाः संख्येयगुणाः विशेषापेक्षया–सर्वस्तोकाः सामायिक- छेदोपस्थापनीय–परिहारविशुद्धिक–सूक्ष्मसंपराय– यथाख्यातचारित्र- सिद्धाः, सामायिक छेदोपस्थापनीय–सूक्ष्मसंपराय–यथाख्यात चारित्रसिद्धाः संख्येयगुणाः गतं। चारित्र तोऽल्पबहुत्वम् ॥६॥

बुद्धत्वतोऽल्पबहुत्वं चिन्त्यते–सर्वस्तोकाः प्रत्येकबुद्ध सिद्धाः, बुद्धबोधित सिद्धाः नपुंसकाः संख्येयगुणाः, बद्धबोधित सिद्धाः स्त्रियः संख्येयगुणाः, बुद्ध- बोधित सिद्धाः पुमांसः संख्येय गुणाः इति। गतं बुद्धत्वतोऽल्पबहुत्वम् ॥७॥

है। पूर्वभाव की अपेक्षा से, सामान्य रूप से पंचचारित्री (सामायिक आदि पांचों चारित्रों की आराधना करने वाले) सिद्ध सब से कम हैं, चार चारित्रों की आराधना करके सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा अधिक हैं, त्रिचारित्री संख्यातगुणा अधिक हैं। विशेष की अपेक्षा सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धिक, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात, इन पांचों चारित्रों से सिद्ध होने वाले सब से कम हैं। सामायिक, छेदोपस्थापनीय, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात चारित्र से सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा हैं। सामायिक, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात चारित्र से सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा अधिक हैं।

७–बुद्धत्व से अल्पबहुत्व—प्रत्येक बुद्ध सिद्ध सब से कम हैं बुद्ध- बोधित सिद्ध नपुंसक संख्यातगुणा अधिक हैं, बुद्धबोधित सिद्ध स्त्रियां संख्यातगुणा हैं, बुद्धबोधितसिद्ध पुरुष संख्यातगुणा हैं।

સામાન્ય રૂપથી પંચચારિત્રી (સામાયિક વગેરે પાંચે ચારિત્રોની આરાધના કરવાવાળા) સિદ્ધ સહુથી ઓછા છે. ચાર ચારિત્રોની આરાધના કરીને સિદ્ધ થનારા સંખ્યાતગણુા અધિક છે, ત્રિચારિત્રી સંખ્યાતગણુા અધિક છે વિશેષની અપેક્ષા સામાયિક, છેદોપસ્થાપનીય; પરિહારવિશુદ્ધિક, સૂક્ષ્મસામ્પરાય અને યથાખ્યાત, આ પાંચે ચારિત્રોથી સિદ્ધ થનારાં સહુથી ઓછા છે. સામાયિક છેદોપસ્થાપનીય, સૂક્ષ્મસામ્પરાય અને યથાખ્યાત ચારિત્રથી સિદ્ધ થનારા સંખ્યા- તગણુા અધિક છે

(૭) બુદ્ધત્વથી અલ્પબહુત્વ–પ્રત્યેકબુદ્ધ સિદ્ધ સહુથી ઓછા છે બુદ્ધ બોધિતસિદ્ધ નપુંસક સંખ્યાતગણુા અધિક છે. બુદ્ધબોધિતસિદ્ધ સ્ત્રિઓ સંખ્યા- ગણી છે. જ્યારે બુદ્ધિબોધિતસિદ્ધ પુરૂષ સંખ્યાતગણુા છે.

ज्ञानतोऽल्पबहुत्वं चिन्त्यते-प्रत्युत्पन्नभावमपेक्ष्य केवलज्ञानी सिद्धयतीति-नास्त्यल्पबहुत्वम् । पूर्वभावमपेक्ष्य सामान्यतः सर्वस्तोका द्विज्ञानसिद्धाः चतुर्ज्ञान सिद्धाः संख्येयगुणाः, त्रिज्ञानसिद्धाः संख्येयगुणाः विशेषतः सर्वस्तोका मतिश्रुतज्ञानसिद्धाः, मतिश्रुतावधिमनःपर्यवज्ञानसिद्धा संख्येयगुणा, मतिश्रुतावधिज्ञानसिद्धाः संख्येयगुणा इति । गतं ज्ञानतोऽल्पबहुत्वम् ।८।।

अवगाहनातोऽल्पबहुत्वं चिन्त्यते-सर्वस्तोका जघन्यावगाहनासिद्धाः, उत्कृष्टावगाहनासिद्धास्ततोऽसंख्येयगुणा, यवमध्यसिद्धा असंख्येयगुणाः, यवमध्योपरिसिद्धाः असंख्येयगुणाः यवमध्याधस्तात्सिद्धा विशेषाधिकाः, सर्वे विशेषा-

८-ज्ञान से अल्पबहुत्व—वर्त्तमान भाव की अपेक्षा से केवलज्ञानी को ही सिद्धिप्राप्त होती है,अतएव इस दृष्टि से कोई अल्पबहुत्व नहीं है। पूर्वभाव की अपेक्षा से सामान्य रूप से द्विज्ञानसिद्ध अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से सीधा केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्ध होने वाले सब से कम हैं, चार ज्ञान से सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा अधिक हैं, त्रिज्ञानसिद्ध संख्यातगुणा अधिक हैं। विशेष रूप से मति-श्रुतज्ञान से सिद्ध होने वाले सब से कम हैं। मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यवज्ञान से सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा अधिक हैं। मति, श्रुत और अवधिज्ञान से सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा हैं।

९-अवगाहना से अल्पबहुत्व—जघन्य अवगाहना से सिद्ध होने वाले सब से कम हैं। उत्कृष्ट अवगाहना से सिद्ध होने वाले उनसे असंख्यातगुणा अधिक हैं, यवमध्य सिद्ध असंख्यातगुणा हैं, यवमध्य उपर वाले सिद्ध असंख्यातगुणा हैं। यवमध्य नीचे वाले सिद्ध विशे-

(८)જ્ઞાનથી અલ્પબહુત્વ-વર્ત્તમાન ભાવની અપેક્ષાથી કેવળજ્ઞાનીને જ સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે આથી આ દૃષ્ટિએ કોઇ અલ્પબહુત્વ નથી. પૂર્વભવની અપેક્ષાથી સામાન્ય રૂપથી દ્વિજ્ઞાનસિદ્ધ અર્થાત્ મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનથી સીધું કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને સિદ્ધ થનારાં સહુથી ઓછા છે, ચાર જ્ઞાનથી સિદ્ધ થનારા સંખ્યાતગણા અધિક છે, ત્રિજ્ઞાનસિદ્ધ સંખ્યાતગણા અધિક છે. વિશેષરૂપથી મતિ શ્રુતજ્ઞાનથી સિદ્ધ થનારા સૌથી ઓછા છે. મતિ, શ્રુત, અવધિ અને મનઃપર્યવજ્ઞાનથી સિદ્ધ થનારા સંખ્યાતગણા અધિક છે. મતિ, શ્રુત અને અવધિજ્ઞાનથી સિદ્ધ થનારાં સંખ્યાતગણા છે.

(૯) અવગાહનાથી અલ્પબહુત્વ-જઘન્ય અવગાહનાથી સિદ્ધ થનારાં સહુથી ઓછા છે. ઉત્કૃષ્ટ અવગાહનાથી સિદ્ધ થનારાં તેથી અસંખ્યાતગણા અધિક

धिकाः। गतमवगाहनातोऽल्पबहुत्वम् ।१०। उत्कर्षद्वारे नास्त्यल्पबहुत्वम् ॥११॥

अन्तरतः अनुसमयत इत्यनन्तरश्चाल्पबहुत्वं चिन्त्यते–सर्वस्तोका अष्टसमयानन्तरसिद्धाः, सप्तसमयानन्तरसिद्धाः षट्समयानन्तर सिद्धा इत्यारभ्य यावद् द्विसमयानन्तर सिद्धाः एते सर्वे संख्येयगुणाः। एवं तावदनन्तरेषु सान्तरेष्वपि सर्वस्तोकाः षण्मासान्तर सिद्धाः, एक समयान्तरसिद्धाः संख्येयगुणाः, यवमध्यान्तरसिद्धाः संख्येयगुणाः, अधस्ताद् यवमध्याऽन्तरा सिद्धाः संख्येयगुणाः,

---

षाधिक हैं। सब विशेषाधिक हैं।

१०–अन्तर–अनन्तर से अल्पबहुत्व—लगातार आठ समय तक सिद्ध होने वाले सब से कम हैं, उनकी अपेक्षा निरन्तर सात समय तक सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा हैं, उनकी अपेक्षा निरन्तर छह समय तक सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा हैं, उनसे पांच समय तक सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा हैं, उनसे लगातार चार समय तक सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा हैं, उनसे लगातार तीन समय तक सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा अधिक हैं, और उनसे दो समय तक निरन्तर सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा हैं, यह अनन्तर सिद्धि का अल्पबहुत्व है। सान्तर सिद्धि में अर्थात् जिनके समय में व्यवधान है उनमें छह मास के अन्तर से सिद्ध होने वाले सब से कम हैं, एक समय के अन्तर से सिद्ध होने वाले संख्यातगुणा हैं, यवमध्य अन्तर सिद्ध संख्यातगुणा हैं, नीचे यवमध्य अन्तर सिद्ध संख्यातगुणा हैं, उपरियवमध्य अन्तरसिद्ध विशेषाधिक हैं, सब विशेषाधिक हैं।

છે, યવમધ્યસિદ્ધ અસંખ્યાતગણુા છે, યવમધ્ય ઉપરવાળા સિદ્ધ અસંખ્યાતગણુા છે. યવમધ્ય નીચેવાળા સિદ્ધ વિશેષાધિક છે. બધાં વિશેષાધિક છે.

(૧૦) અન્તર અનન્તરથી અલ્પબહુત્વ–લગાતાર આઠ સમય સુધી સિદ્ધ થનારા સહુથી ઓછા છે તેમની અપેક્ષા નિરન્તર સાત સમય સુધી સિદ્ધ થનરા સંખ્યાતગણુા છે. તેમની અપેક્ષા નિરન્તર છ સમય સુધી સિદ્ધ થનારા સંખ્યાતગણુા છે તેમનાથી લગાતાર ચાર સમય સુધી સિદ્ધ થનારા સંખ્યાત ગણુા છે. તેથી લગાતાર ત્રણ સમય સુધી સિદ્ધ થનારા સંખ્યાતગણુા અધિક છે અને તેથી બે સમય સુધી નિરન્તર સિદ્ધ થનારા સંખ્યાતગણુા છે. આ અનન્તર સિદ્ધોનું અલ્પબહુત્વ છે. સાન્તર સિદ્ધોમાં અર્થાત્ જેમના સમયમાં વ્યવધાન છે તેમનામાં છ માસના અન્તરથી સિદ્ધ થનારાં સંખ્યાતગણુા છે.

उपरियवमध्यान्तरसिद्धाः, विशेषाधिकाः सर्वे विशेषाधिकाः। गतमन्तरतोऽनन्तरतश्चाल्पबहुत्वम् ।१२।१३॥

संख्यातोऽल्पबहुत्वं चिन्त्यते–सर्वस्तोका अष्टोत्तरशत् सिद्धाः पश्चानुपूर्व्या सप्तोत्तरशत सिद्धादारभ्य यावत् पञ्चाशत् सिद्धा अनन्तगुणाः। एवमेव पश्चानुपूर्व्या एकोनपञ्चाशत्सिद्धादारभ्य यावत् पञ्चविंशति सिद्धा असंख्येयगुणाः। एवमेव पश्चानुपूर्व्या चतुर्विंशति सिद्धादारभ्य यावद् एक सिद्धाः, सर्वे एते संख्येयगुणाः पश्चानुपूर्वी हानिः प्रदर्श्यते–सर्वस्तोका अनन्तगुणहानि सिद्धाः, असंख्येयगुणहानि सिद्धा अनन्तगुणाः, संख्येयगुणहानिसिद्धाः संख्येगुणा इति। गतं संख्यातोऽल्पबहुत्वम् ।१४॥

११–संख्या से अल्पबहुत्व—एक समय में एक सौ आठ सिद्ध सब से कम हैं पश्चानुपूर्वी से एक सौ सात सिद्ध से लगाकर पचास सिद्ध तक अनन्तगुणा हैं। इसी प्रकार पश्चानुपूर्वी से लेकर पच्चीस तक असंख्यातगुणा हैं। इसी प्रकार एक साथ चौवीस सिद्धों से लगाकर एक सिद्ध तक संख्यातगुणा हैं। अब पश्चानुपूर्वीहानि दिखाते हैं–अनन्तगुण हानि सिद्ध सबसे कम हैं, असंख्येयगुणहानि सिद्धअनन्तगुणा हैं, संख्येयगुणहानि सिद्ध संख्यातगुणा हैं।

યવમધ્ય અન્તરસિદ્ધ સંખ્યાતગણા છે, નીચે યવમધ્ય અન્તરસિદ્ધ સંખ્યાતગણા છે, ઉપરિયવમધ્ય અન્તર સિદ્ધ વિશેષાધિક છે, બધાં વિશેષાધિક છે.

(૧૧) સંખ્યાથી અલ્પબહુત્વ–એક સમયમાં એકસો આઠ સિદ્ધ સહુથી ઓછા છે, પશ્ચાનુપૂર્વીથી એકસો સાત સિદ્ધથી લઇને પચાસ સિદ્ધ સુધી અનન્તગણા છે. એવી જ રીતે પશ્ચાનુપૂર્વીથી લઇને પચ્ચીસ સુધી અસંખ્યાતગણા છે. એવી જ રીતે એકી સાથે ચોવીસ સિદ્ધોથી લઇને એક સિદ્ધ સુધી સંખ્યાતગણા છે હવે પશ્ચાનુપૂર્વી હાનિ બતાવીએ છીએ અનન્તગુણ હાનિસિદ્ધ સહુથી ઓછા છે. અસંખ્યેયગુણહાનિ અનન્તગણા છે, સંખ્યેય ગુણહાનિ સિદ્ધ સંખ્યાતગણા છે.

एतानि चतुर्दशद्वाराणि अधिकृत्याल्पबहुत्वद्वारं पञ्चदशमवसेयम् । एतैः पूर्वोक्तैः पञ्चदशद्वारैः साध्याः अनुगमनीयाः एतैः पूर्वोक्तैद्वारैः सिद्धानां स्वरूपं चिन्तनीयमिति भावः । सूत्र ।७।

इति श्री विश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक–पञ्चदशभाषा-
कलितललितकलापालापकप्रविशुद्धगद्यपद्यानैकग्रन्थनिर्मापक,
वादिमानमर्दक–श्रीशाहूच्छत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त–
'जैनाचार्य' पदभूषित — कोल्हापुरराजगुरु–
बालब्रह्मचारि–जैनाचार्य – जैनधर्मदिवाकर
पूज्य श्री घासीलालव्रतिविरचितस्य श्री
दीपिका–निर्युक्ति व्याख्यया द्वयो-
-पेतस्य तत्त्वार्थसूत्रस्य नवमो-
ऽध्यायः समाप्तः ॥९॥
इति श्रीतत्त्वार्थसूत्रं दीपिका तोनिर्युक्तितश्च–
–ः समाप्तम् ः–

इस प्रकार उन चौदह द्वारों से अल्पबहुत्व का विचार करने पर पन्द्रह द्वारों से सिद्धों का स्वरूप चिन्तनीय है ॥७॥

जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालजीमहाराजकृत
'तत्त्वार्थसूत्र' की दीपिका–निर्युक्ति व्याख्या का
नववां अध्याय समाप्त ॥९॥

दीपिका और निर्युक्ति के साथ तत्त्वार्थसूत्र
– समाप्त –

આ રીતે આ ચૌદ દ્વારોથી અલ્પબહુત્વનો વિચાર કરવાથી પંદર દ્વારોનું નિરૂપણ સમ્પૂર્ણ થયું. આ પૂર્વોક્ત પંદર દ્વારોથી સિદ્ધોનું સ્વરૂપ ચિન્તનીય છે ।૭।

જૈનાચાર્ય જૈનધર્મદિવાકર પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજકૃત "તત્ત્વાર્થસૂત્ર"ની
દીપિકા–નિર્યુક્તિ વ્યાખ્યાનો નવમો અધ્યાય સમાપ્તઃ ।।૯।।

તત્ત્વાર્થ સૂત્ર સંપૂર્ણ

ऽऽदानमुच्यते ३ अब्रह्मचर्यं-स्त्रीसंयोगः, मैथुन मितियावत् ४ परिग्रहस्तु-मूर्च्छा, सचित्ताऽचित्तमिश्रेषु शास्त्रानुमतिरहितेषु द्रव्यादिषु ममत्वरूपः ५ एतेभ्यः प्राणाऽतिपातादिभ्यः सर्वतः-सर्वात्मना त्रिकरणै स्त्रियोगैर्मनोवाक्काये र्विरमणं-निवृत्तिः पञ्च महाव्रतान्यवसेयानि। प्राणिवधादितो निवृत्तिर्व्रत मुच्यते, तत्र स्थितो हिंसादिलक्षणं क्रियाकलापं नाऽनुतिष्ठति, अपितु-अहिंसादिलक्षणमेव क्रियाकलापमनुतिष्ठतीति फलति। प्राणातिपातादिभ्यो निवृत्तस्य शास्त्रविहित क्रियाऽनुष्ठानात् सदसत्प्रवृत्तिनिवृत्तिक्रियासाध्यं कर्मक्षपणं भवति, कर्मक्षपणाच्च -मोक्षाऽवाप्तिरिति भावः। अत्रेदं बोध्यम्-प्राणातिपातस्तावत्-प्राणवियोजनम्,

---

ग्रहण करना अदत्तादान है। स्त्री संयोग या मैथुन अब्रह्मचर्य कहलाता है। मूर्च्छा अर्थात् शास्त्र की अनुमति जिनके लिए नहीं है ऐसे सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्य आदि में ममत्वधारण करना परिग्रह है।

इन प्राणातिपात आदि से पूर्ण रूपेण तीन करण और तीन योग से मन वचन काय से निवृत्त होना पांच महाव्रत हैं। हिंसा आदि से निवृत्त होना व्रत कहलाता है, व्रत में स्थित पुरुष हिंसा रूप क्रिया-कलाप नहीं करता है। इससे यह फलित हुआ कि वह अहिंसा रूप क्रियाकलाप ही करता है। भावार्थ यह है कि जो प्राणातिपात आदि से विरत होता है वह शास्त्रोक्त क्रियाओं का अनुष्ठान करता है, अतएव सत्प्रवृत्ति और असद्निवृत्ति रूप क्रियाओं द्वारा होने वाला कर्मक्षय करता है और कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

यहां यह समझ लेना चाहिए-प्राणातिपात का अर्थ है-प्राणवि-

અથવા મૈથુન અબ્રહ્મચર્ય કહેવાય છે. મૂર્છા અર્થાત્ જેના માટે શાસ્ત્રની અનુમતિ નથી એવા સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર દ્રવ્ય આદિમાં મમત્વ ધારણ કરવું પરિગ્રહ છે.

આ પ્રાણાતિપાત આદિથી પૂર્ણતયા, ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી-મન વચન કાયાથી નિવૃત્ત થવું પાંચ મહાવ્રત છે. હિંસા આદિથી નિવૃત્ત થવું વ્રત કહેવાય છે. વ્રતમાં રહેલો પુરૂષ હિંસારૂપ ક્રિયાકાન્ડ કરતો નથી. આનાથી એવું સાબિત થયું કે તે અહિંસારૂપ ક્રિયાકલાપ જ કરે છે. ભાવાર્થ એ છે કે જે પ્રાણાતિપાદ આદિથી વિરત થાય છે તે શાસ્ત્રોક્ત ક્રિયાઓનું અનુષ્ઠાન કરે છે આથી સત્પ્રવૃત્તિ અને અસત્નિવૃત્તિ રૂપ ક્રિયા દ્વારા થનારાં કર્મ ક્ષય કરે છે અને કર્મોનો ક્ષય કરીને મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી લે છે.

અહીં એક બાબત સમજી લેવાની જરૂર છે-પ્રાણાતિપાતનો અર્થ છે-

प्राणाश्चेन्द्रियादयः तत्सम्बन्धात्प्राणिनो जीवाः पृथिवीकायाद्येकेन्द्रियद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियास्तान्-जीवान् विज्ञाय-श्रद्धया प्रतिपद्य भावतस्तस्याऽकरणं ज्ञानश्रद्धानपूर्वकं चारित्रमुच्यते, तच्च-सदसत्प्रवृत्तिनिवृत्तिक्रिया-लक्षणं चारित्रं मनोवाक् कायकृतकारिताऽनुमोदितभेदेनाऽनेकविधं बोध्यम्। उक्तञ्च-स्थानाङ्गे पञ्चमस्थाने प्रथमोद्देशके-'पंच महव्वया पण्णत्ता, तं जहा-सव्वाओ पाणाइवायाओ, जाव सव्वओ परिग्गहाओ वेरमणं' इति,। पञ्च महाव्रतानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-प्राणातिपाताद्विरमणम्, यावत्-सर्वस्मात् परिग्रहाद् विरमणम्-इति, आवश्यके दशवैकालिकेऽप्युक्तम् ॥५५॥

योजन। प्राण इन्द्रिय आदि दस हैं। उन्हीं के संबंध से जीव प्राणी कहलाते हैं। पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, ये सब प्राणी हैं। इन जीवों को जानकर एवं इन पर श्रद्धा करके भाव से प्राणातिपात न करना ज्ञान-श्रद्धान-पूर्वक चारित्र कहलाता है। सत् अनुष्ठान में प्रवृत्ति और असत् अनुष्ठान से निवृत्ति उसका लक्षण है। मन, वचन, काय, कृत, कारित और अनुमोदन आदि के भेद से चारित्र अनेक प्रकार का है। स्थानांगसूत्र के पंचम स्थान के प्रथम उद्देशक में कहा है-'पांच महाव्रत कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं-समस्त प्राणातिपात से विरत होना, जाव अर्थात् समस्त मृषावाद से विरत होना, समस्त अदत्तादान से विरत होना, समस्त मथुन से विरत होना और समस्त परिग्रह से विरत होना।' आवश्यक और दशवैकालिक सूत्र में भी ऐसा ही कहा है ॥५५॥

પ્રાણવિયોજન પ્રાણ ઇન્દ્રિય આદિ દસ છે તેમના જ સંબંધથી જીવ પ્રાણી કહેવાય છે. પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિય, દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય, આ બધાં પ્રાણી છે આ જીવોને જાણીને અને એમનામાં શ્રદ્ધા કરીને ભાવથી પ્રાણાતિપાત ન કરવો જ્ઞાન-શ્રદ્ધાનપૂર્વક ચારિત્ર કહેવાય છે. સત્ અનુષ્ઠાનમાં પ્રવૃત્તિ અને અસત્ અનુષ્ઠાનથી નિવૃત્ત તેનું લક્ષણ છે. મન, વચન, કાયા, કૃત, કારિત અને અનુમોદન આદિના ભેદથી ચારિત્ર અનેક પ્રકારના છે. સ્થાનાંગસૂત્રના પંચમ સ્થાનના પ્રથમ ઉદ્દેશકમાં કહ્યું છે-'પાંચ મહાવ્રત કહેવામાં આવ્યા છે તે આ મુજબ છે-સમસ્ત પ્રાણાતિપાતથી વિરત થવું, સમસ્ત મૃષાવાદથી વિરત થવું, સમસ્ત અદત્તાદાનથી વિરત થવું, સમસ્તમૈથુનથી વિરત થવું અને સમસ્ત પરિગ્રહથી વિરત થવું'. આવશ્યક તેમજ દશવૈકાલિક સૂત્રમાં પણ આ પ્રમાણે જ કહેવામાં આવ્યું છે. ॥૫૫॥

मूलम्-तत्थेज्जट्ठं ईरियाइया पणवीसं भावणाओ ॥५६॥

छाया—'तत्स्थैर्यार्थम्-ईर्यादिकाः पञ्चविंशति र्भावनाः' ॥५६॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं देशतो हिंसादिविरतिलक्षण पञ्चाणुव्रतादिस्वरूपं प्ररूपितम्, सम्प्रति-तेषां व्रतानां स्थिरता सम्पादनार्थं तावद् ईर्यादिकाः पञ्चविंशतिर्भावनाः प्ररूपयितुमाह-'तत्थेज्जट्ठं' इत्यादि। तत्स्थैर्यार्थम्-तेषां पूर्वोक्तानां व्रतानां स्थूल प्राणातिपातविरमणादिलक्षणानां स्थिरताकरणार्थं दृढी-करणार्थम् ईर्यादिकाः-ईर्यादिलक्षणाः पञ्चविंशतिर्भावना भवन्ति। तत्र-ईर्या-ईरणं यतनया गमनम् १ आदिपदेन-मनः प्राशस्त्य २ वचः प्राशस्त्यं ३ एषणा ४ ऽऽदाननिक्षेपरूपाः५ पञ्च प्रथममहाव्रतस्य भावनाः१ आलोच्य सम्भाषणम्१ क्रोध

'तत्थेज्जट्ठं ईरियाइया' इत्यादि ॥५६॥

सूत्रार्थ-व्रतों की स्थिरता के लिए ईर्यादिक पच्चीस भावनाएं हैं।५६।

तत्त्वार्थदीपिका—पहले एक देश से हिंसादि से विरति रूप पांच अणुव्रत आदि का लक्षण कहा गया है, अब उन व्रतों में स्थिरता लाने के लिए ईर्या आदि पच्चीस भावनाओं का प्ररूपण करते हैं-पूर्वोक्त स्थूल प्राणातिपात विरमण आदि व्रतों की स्थिरता के लिए अर्थात् उन्हें दृढ करने के लिए ईर्या आदि पच्चीस भावनाएं कही गई है। वे इस प्रकार है।

(१) ईर्या अर्थात् यतनापूर्वक गमन करना (२) मन की प्रशस्तता (३) वचन की प्रशस्तता (४) एषणा (५) आदाननिक्षेप, यह पांच प्रथम व्रत की भावनाएं हैं।

(१) सोच-विचार कर भाषण करना (२) क्रोधत्याग (३) लोभ-

'तत्थेज्जट्ठं ईरियाइया पणवीसं भावणाओ'

સૂત્રાર્થ—વ્રતોની સ્થિરતા માટે ઈર્યાદિક પચ્ચીસ ભાવનાઓ છે.।૫૬।

તત્ત્વાર્થદીપિકા—અગાઉ એકદેશથી હિંસાદિથી વિરતિરૂપ પાંચ અણુવ્રત આદિના લક્ષણ કહેવામાં આવ્યા છે હવે તે વ્રતોમાં સ્થિરતા લાવવાના આશયથી ઈર્યા વગેરે પચ્ચીસ ભાવનાઓનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ-

પૂર્વોક્ત સ્થૂલપ્રાણાતિપાત વિરમણ વગેરે વ્રતોની સ્થિરતા માટે અર્થાત્ તેમને દૃઢ કરવા માટે ઈર્યા વગેરે પચ્ચીસ ભાવનાઓ કહેવામાં આવી છે. તે આ પ્રમાણે છે-(૧) ઈર્યા અર્થાત્ યતનાપૂર્વક ગમન કરવું (૨) મનની પ્રશસ્તતા (૩) વચનની પ્રશસ્તતા (૪) એષણા (૫) આદાન નિક્ષેપ આ પાંચ પ્રથમ વ્રતની ભાવનાઓ છે.

(૧) સમજી વિચારીને બોલવું (૨) ક્રોધ ત્યાગ (૩) લોભત્યાગ (૪)

२ लोभ ३ भय ४ हास्येषु ५ अनृतविवर्जनश्चेति पञ्च द्वितीय महाव्रतस्य भावनाः २ अष्टादशविध विशुद्धवसतेर्याचनापूर्वकं सेवनम् १ प्रतिदिनमवग्रहं याचित्वा तृणकाष्ठादिग्रहणम् २ पीठफलकाद्यर्थमपि वृक्षादीनां छेदनम् ३ साधारण पिण्डस्याऽधिकतो न सेवनम् ४ साधुवैयावृत्त्यकरणश्चे ५ ति पञ्च तृतीयमहाव्रतस्य भावनाः ३। स्त्रीपशुपण्डकरहितवसतिसेवनम् १ स्त्रीकथावर्जनम् २ स्त्र्यङ्गोपाङ्गाऽनवलोकनम् ३ पूर्वकृतसुरतरतेरस्मरणम् ४ प्रतिदिनं भोजनपरित्यागश्चे ५ ति पञ्च चतुर्थमहाव्रतस्य भावनाः ४ प्रशस्ताऽप्रशस्तशब्द १ रूप २ रस ३ गन्ध ४

त्याग (४) भयत्याग और (५) हास्यत्याग यह द्वितीयव्रत की पांच भावनाएं हैं।

(१) अठारह प्रकार से विशुद्ध वसति का याचना पूर्वक सेवन करना (२) प्रतिदिन अवग्रह की याचना करके तृण काष्ठ आदि को ग्रहण करना (३) पाट आदि के लिए भी वृक्ष आदि का छेदन न करना (४) साधारण पिण्ड का अधिक सेवन न करना अर्थात् अनेक साधुओं का जो सम्मिलित आहार हो उसमें से अपने उचित भाग से अधिक न लेना और (५) साधुओं का वैयावृत्य करना, यह तृतीयव्रत की पांच भावनाएं हैं।

(१) स्त्री, पशु और पण्डक से रहित वसति का सेवन करना (२) स्त्रीकथा न करना (३) स्त्री के अंगोपांगों का अवलोकन नहीं करना (४) पूर्व भुक्त भोगों का स्मरण न करना और (५) प्रतिदिन गरिष्ठ भोजन का परित्याग करना, यह चौथे व्रत की पांच भावनाएं हैं।

ભયત્યાગ અને (૫) હાસ્યત્યાગ, આ બીજાવ્રતની પાંચ ભાવના છે.

(૧) અઢાર પ્રકારથી વિશુદ્ધ વસતીનું યાચનાપૂર્વક સેવન કરવું (૨) દરરોજ અવગ્રહની યાચના કરીને તૃણ કાષ્ઠ વગેરેને ગ્રહણ કરવા (૩) પાટ વગેરે માટે પણ વૃક્ષ વગેરેનું છેદન ન કરવું (૪) સાધારણ પિણ્ડનું અધિક સેવન ન કરવું અર્થાત્ અનેક સાધુઓ માટેનો જે ભેગો કરેલો આહાર હોય તેમાંથી પોતાના ભાગે હોય તેનાથી વધુ ન લેવું અને (૫) સાધુઓની વૈયાવચ્ચ (સેવા) કરવી આ ત્રીજા વ્રતની પાંચ ભાવનાઓ છે.

(૧) સ્ત્રી, પશુ અને નપુંસક વગરની વસતીમાં વાસ કરવો (૨) સ્ત્રીકથા ન કરવી (૩) સ્ત્રીના અંગોપાંગોનું અવલોકન ન કરવું (૪) પૂર્વ ભોગવેલા ભોગોનું સ્મરણ ન કરવું અને (૫) દરરોજ સ્વાદિષ્ટ ભોજનનો પરિત્યાગ કરવો, આ ચોથા વ્રતની પાંચ ભાવના છે.

स्पर्शेषु ५ रागद्वेषवर्जनं शब्दादिभेदात् पञ्च पञ्चमम्हाव्रतस्येति मिलिताः पञ्चविंशतिर्भावनाः कर्तव्याः ॥२५॥५६॥

'तत्त्वार्थनिर्युक्तिः–पूर्वं सर्वप्राणातिपातविरमणादिलक्षणानि पञ्चमहाव्रतानि प्ररूपितानि, सम्प्रति–तेषां व्रतानां दाढर्यार्थं मेकैकस्य महाव्रतस्य पञ्च पञ्चभावनाः प्ररूपयितुमाह–'तत्थेज्जइं ईरियाइया पणवीसं भावणाओ' इति। तत्स्थैर्यार्थम्–इर्यादिकाः पञ्चविंशतिर्भावना भावनीयाः, तेषां पूर्वोक्तस्वरूपाणां सर्वत,

(१) प्रशस्तरूप (२) रस (३) गंध (४) स्पर्श और (५) शब्द में राग और अप्रशस्त रूपादि में द्वेष धारण न करना, यह पांच पंचमव्रत की भावनाएं हैं। सब मिलकर पच्चीस भावनाएं होती हैं ॥५६॥

तत्त्वार्थनिर्युक्त—पहले सम्पूर्ण प्राणातिपातविरमण आदि पांच महाव्रतों की प्ररूपणा की गई, अब उन व्रतों की दृढता के लिए–एक-एक महाव्रत की पांच–पांच भावनाएं कहते हैं।

उन व्रतों की स्थिरता के लिए ईर्या आदि पच्चीस भावनाओं का सेवन करना चाहिए अर्थात् सम्पूर्ण प्राणातिपातविरमण आदि पांच महाव्रतों का तथा स्थूलप्राणातिपात विरमण आदि पांच अणुव्रतों को दृढ करने के लिए पच्चीस भावनाएं कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं– (१) ईर्यासमिति (२) मनोगुप्ति (३) वचनगुप्ति (४) एषणा (५) आदाननिक्षेपणा (६) आलोच्य संभाषण–सोच–विचार करके बोलना (७) क्रोध का त्याग (८) लोभ का त्याग (९) भय का त्याग (१०) हास्य

(૧) પ્રશસ્ત રૂપ (૨) રસ (૩) ગંધ (૪) સ્પર્શ અને (૫) શબ્દમાં રાગ તથા અપ્રશસ્ત રૂપાદિમાં દ્વેષ ધારણ ન કરવો એ પાંચ પાંચમાવ્રતની ભાવનાઓ છે. બધી મળીને પચ્ચીસ ભાવનાઓ થાય છે ॥ ૫૬ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—અગાઉ સમ્પૂર્ણ પ્રાણાતિપાત વિરમણ આદિ પાંચ મહાવ્રતોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી હવે આ વ્રતોની દ્રઢતાને માટે એક એક મહાવ્રતની પાંચે પાંચ ભાવનાઓ કહીએ છીએ

તે વ્રતોની સ્થિરતા માટે ઈર્યા આદિ પચ્ચીસ પ્રકારની ભાવનાઓનું સેવન કરવું જોઈએ અર્થાત્ સમ્પૂર્ણ પ્રાણાતિપાત વિરમણ આદિ પાંચ અણુવ્રતો ને દૃઢ કરવા માટે પચ્ચીસ ભાવનાઓ કહેવામાં આવી છે જે આ પ્રમાણે છે– (૧) ઈર્યાસમિતિ (૨) મનોગુપ્તિ (૩) વચનગુપ્તિ (૪) એષણા (૫) આદાન નિક્ષેપણા (૬) આલોચ્ય સંભાષણ– સમજી વિચારીને બોલવું (૭) ક્રોધનો ત્યાગ (૮) લોભનો ત્યાગ (૯) ભયનો ત્યાગ (૧૦) હાસ્યનો ત્યાગ (૧૧)

प्राणातिपातविरमणादि लक्षणानां पञ्च महाव्रतानां देशतः प्राणातिपातादिविरति-लक्षणाऽणुव्रतानाञ्च स्थैर्यार्थं दृढतासम्पादनार्थम् ईर्यासमितिः १ आदिपदेन-मनोगुप्तिः २ वचोगुप्तिः ३ एषणा ४ आदाननिक्षेपणा आलोच्य सम्भाषणम् ६ क्रोध प्रत्याख्यानम् ७ लोभप्रत्याख्यानम् ८ भयप्रत्याख्यानम् ९ हास्य प्रत्याख्यानम् १० अष्टादशविधविशुद्धवसतेर्याचनापूर्वकं सेवनम् ११ प्रतिदिनमवग्रहं याचित्वा तृणकाष्ठादिग्रहणम् १२ पीठ फलकाद्यर्थमपि वृक्षादीना सच्छेदनम् १३ साधारण-पिण्डस्याऽधिकतो न सेवनम् १४ साधु वैयावृत्यकरणञ्च १५ स्त्रीपशुनपुंसक संसक्तशयनाऽऽसनवर्जनम् १६ रागयुक्तस्त्रीकथा वर्जनम् १७ स्त्रीणां मनोहरेन्द्रिय-वर्जनम् १८ पूर्वरतानुस्मरणवर्जनम् १९ प्रतिदिनं भोजनपरित्यागश्च २० मनो-ज्ञाऽमनोज्ञस्पर्श २१ रस २२ गन्ध २३ वर्ण २४ शब्दानां २५ रागद्वेषवर्जनञ्चे -त्येवं पञ्चविंशतिर्भावनाः। तत्र-प्रथमाः पञ्च भावनाः ईर्यासमितेः (प्राणाति-

---

का त्याग (११) अठारह प्रकार से विशुद्ध वसति का याचनापूर्वक सेवन (१२) प्रतिदिन अवग्रह की याचना करके तृण काष्ठ आदि को ग्रहण करना (१३) पीठ फलक आदि के लिए भी वृक्ष आदि को न काटना (१४) साधारण पिण्ड का अपने समुचित भाग से अधिक सेवन न करना (१५) साधुओं का वैयावृत्य करना (१६) स्त्री, पशु और नपुं-सक के संसर्गवाले शय्या एवं आसन के सेवन से बचना (१७) राग-युक्त स्त्री कथा का त्याग (१८) स्त्रियों की मनोहर इन्द्रियों को न देखना (१९) पहले भोगे भोगों का स्मरण न करना (२०) प्रतिदिन सरस भोजन का त्याग करना-कभी-कभी उपवास आदि करना (२१-२५) मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द पर राग-द्वेष न करना, ये पच्चीस भावनाएं हैं।

અઢાર પ્રકારથી વિશુદ્ધ વસતીનું યાચનાપૂર્વક સેવન કરવું (૧૨) દરરોજ અવગ્રહની યાચના કરીને તૃણ કાષ્ઠ વગેરેનું ગ્રહણ કરવું (૧૩) પીઠ-પાટ વગેરે માટે પણ વૃક્ષ વગેરે ન કાપવા (૧૪) સાધારણ પિણ્ડનું પોતાના ભાગથી વધારે સેવન ન કરવું (૧૫) સાધુઓની વૈયાવંચા (શુશ્રૂષા) કરવી (૧૬) સ્ત્રી પશુ અને નપુંસકના સંસર્ગવાળી પથારી અને આસનના સેવનથી દૂર રહેવું (૧૭) રાગયુક્ત સ્ત્રીકથાનો ત્યાગ (૧૮) સ્ત્રીઓની મનોહર ઈન્દ્રિયોને ન જોવી (૧૯) પૂર્વે ભોગવેલા ભોગોનું સ્મરણ ન કરવું (૨૦) દરરોજ સ્વાદુ ભોજ-નનો ત્યાગ કરવો-ક્યારેક ક્યારેક ઉપવાસ વગેરે કરવા (૨૧-૨૫) મનોજ્ઞ અને અમનોજ્ઞ સ્પર્શ રસ, ગંધ, રૂપ તથા શબ્દ પર રાગ-દ્વેષ ન કરવો. આ પચ્ચીસ ભાવનાઓ છે.

पातविरतेः) द्वितीयाः पञ्च भावनाः-असत्यविरतेः, तृतीयाः पञ्चभावनाः स्तेयविरतेः, चतुर्थ्यः पञ्च भावनाः-ब्रह्मचर्यस्य, पञ्चम्यः पञ्च भावनाः परिग्रहविरते रवगन्तव्याः तत्र तावत्-ईरणं गमनम्-ईर्या, तस्यां समितिः-सङ्गतिः श्रुतरूपेणाऽऽत्मनः परिणतिः, तदुपयोगेन पुरस्तात् युगमात्रया दृष्ट्या स्थावरजङ्गमानि-भूतानि परित्यजन् अप्रमत्तः सन् गच्छेत्-इत्यादिरूपो विधिः ईर्यासमिति रुच्यते १ मनोगुप्तिश्च-मनसो रक्षणम्, आर्तरौद्रध्यानाऽपचारः-धर्मध्याने उपयोगश्च२ वचोगुप्तिश्च-एषणासमितिरूपा ३ एषणा च-त्रिविधा, गवेषण १ ग्रहण २ ग्रास ३ भेदात्। तस्यामेषणायामसमितस्य षण्णामपि कायाना मुपधानापत्तिः स्यादतस्तत्संरक्षणार्थं सकलेन्द्रियोपयोगलक्षणा-एषणासमितिः कर्तव्या ४ आदाननिक्षेपणा

इनमें से प्रारंभ की पांच भावनाएं प्राणातिपात विरमणव्रत की, दूसरी पांच असत्यविरति की, तीसरी पांच स्तेयविरति की, चौथी पांच ब्रह्मचर्यव्रत की और पांचवीं भावनाएं परिग्रहविरति की हैं।

इन भावनाओं का अर्थ इस प्रकार है-गमन करने में यतना रखना ईर्यासमिति है अर्थात् चार हाथ आगे की भूमि देखकर स्थावर और त्रस जीवों की रक्षा करते हुए, अप्रमत्त भाव से गमन करना प्रथम भावना है। मनोगुप्ति का अर्थ है आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान से बच कर धर्मध्यान में लीन होना। वचन को गोपन करना अर्थात् मौन धारण करना वचनगुप्ति है। एषणा के तीन भेद हैं-गवेषणा, ग्रहणैषणा और ग्रासैषणा। जो एषणा समिति से रहित होता है, वह छहों कायों का विराधक होता है, अतएव जीवों की रक्षा के लिए

આમાંથી પ્રારંભની પાંચ ભાવનાઓ પ્રાણાતિપાત વિરમણ વ્રતની બીજી પાંચ અસત્યવિરતિની ત્રીજી પાંચ સ્તેયવિરતિની, ચોથી પાંચ બ્રહ્મચર્ય વ્રતની અને પાંચમી પાંચ ભાવનાઓ પરિગ્રહ વિરતિની છે.

આ ભાવનાઓનો અર્થ આ પ્રમાણે છે. ચાલવામાં જતના રાખવી ઈર્યાસમિતિ છે. અર્થાત્ ચાર હાથ આગળની જમીનનું બારીકાઇથી નિરીક્ષણ કરીને સ્થાવર તેમજ ત્રસ જીવોની રક્ષા કરતા થકા અપ્રમત્ત ભાવથી ગમન કરવું એ પ્રથમ ભાવના છે. મનોગુપ્તિનો અર્થ છે. આર્ત્તધ્યાન તથા રૌદ્ર ધ્યાનથી અળગા રહીને ધર્મધ્યાનમાં લીન થવું, વચનને ગોપવું અર્થાત્ મૌનવ્રત ધારણ કરવું વચનગુપ્તિ છે. એષણાના ત્રણ ભેદ છે-ગવેષણા, ગ્રહણૈષણા અને ગ્રાસૈષણા જેઓ એષણા સમિતિથીરહિત હોય છે તે છએ કાયોના વિરાધક હોય છે આથી જીવોની રક્ષા માટે એષણાસમિતિનું પાલન કરવું

समितिस्तु—औधिक-औपग्रहिकभेदेन द्विविधस्योपधेर्ग्रहण—स्थापनलक्षणयोरादान निक्षेपणयोरागमनानुसारेण प्रत्यवेक्षण—प्रमार्जनरूपा समिति रुच्यते५ आलोकित-पानभोजनन्तु—प्रतिगृहे पात्रमध्यपतितपिण्डस्य चक्षुराद्युपयोगेन तत्समुत्थाऽऽगन्तुकसत्त्वसंरक्षणार्थं प्रत्यवेक्षणं कर्तव्यम् उपाश्रयमागत्य च पुनरपि प्रकाशयुक्त-प्रदेशे स्थित्वा पानभोजनं सुप्रत्यवेक्षितं कृत्वा प्रकाशप्रदेशाऽवस्थितेन वल्गनं कर्तव्य मिति बोध्यम् इत्येवं रीत्या—एताः पञ्चभावनाः पुनः पुनर्भावयन् वासयन् बाहुल्येन सम्पादयन् समस्तासु प्राणातिपातलक्षणामहिंसां पातुं समर्थो भवतीति भावः। अथाऽनृतविरतिलक्षण सत्यवचनस्य दाढर्चार्थं पूर्वोक्त पञ्च भावनासु प्रथमं तावत्—अनुवीचिभाषणमुच्यते, अनुवीचिशब्दो देशीयः—आलोचनार्थकः। तथा च

एषणासमिति का पालन करना चाहिए। औधिक और औपग्रहिक के भेद से दोनों प्रकार की उपधि के धरने—उठाने में, आगम के अनुसार प्रमार्जन एवं प्रतिलेखन का ध्यान रखना आदाननिक्षेपणा समिति है।

पात्र में पडे हुए या रक्खे हुए आहार को चक्षु आदि का उपयोग लगा कर, उसमें उत्पन्न हुए अथवा बाहर से आए जीवों की रक्षा के लिए देखना चाहिए। उपाश्रय में आकर पुनः प्रकाशयुक्त प्रदेश में स्थित होकर आहार—पानी को भली—भांति देखकर प्रकाशपूर्ण स्थान में ही उसे खाना चाहिए। यह आलोकितपानभोजन भावना है। इन पांच भावनाओं से सम्पन्न श्रमण पूर्णरूपेण प्राणातिपातविरमण व्रत का पालन करने में समर्थ होता है।

मृषावादविरमणव्रत की दृढता के लिए इन पांच भावनाओं का सेवन करना चाहिए—'अनुवीचिभाषण' यहां 'अनुवीचि शब्द देशीय

જોઈએ, ઔધિક અને ઔપગ્રાહિકના ભેદથી બંને પ્રકારની ઉપધિને ઉપાડવા તથા મૂકવામાં આગમ અનુસાર પ્રમાર્જન તથા પડિલેહણાનું ધ્યાન રાખવું આદાનનિક્ષેપણા સમિતિ છે.

પાત્રમાં પડેલા અથવા રાખેલા આહારને ચક્ષુ વગેરેનો ઉપયોગ લગા-વીને, તેમાં ઉત્પન્ન થયેલા અથવા બહારથી આવેલા જીવોની રક્ષા માટે અવલોકન કરવું જોઈએ. ઉપાશ્રયમા આવીને ફરી એકવાર પ્રકાશવાળી જગ્યાએ બેસીને આહાર—પાણીને સારી પેઠે જોઈ તપાસીને અજવાળું હોય એવી જગ્યાએ જ તેનો ઉપભોગ કરવો જોઈએ. આ છે આલોકિતપાન ભોજન ભાવના આ પાંચ ભાવનાઓથી સંપન્ન સાધુ સંપૂર્ણતયા પ્રાણાતિપાત વિર-મણવ્રતનું પાલન કરવામાં સમર્થ થાય છે.

મૃષાવાદ વિરમણવ્રતની દૃઢતા કાજે આ પાંચ ભાવનાઓનું સેવન કરવું

-समीक्ष्याऽऽलोच्य वचनप्रवर्तनम् अनुवीचिभाषणं बोध्यम्, अनालोचितवक्ता कदाचिन्मृषा मपि ब्रूयात् ततश्चाऽऽत्मनोलाघव-वैर-पीडाः खलु-ऐहिकानि-फलानि स्युः, परप्राणोपघातश्चाऽवश्यंभावी, अतः-समीक्ष्योदाहरणेनाऽऽत्मानं भावयन् न मृषाभाषण जनितपापेन सम्पृक्तो भवति १ क्रोधस्य कषायविशेषस्य मोहकर्मोदयनिष्पन्नप्रद्वेषप्रायस्याऽप्रीतिलक्षणस्य प्रत्याख्यानं-निवृत्तिरनुवृत्तिर्वा, तेन क्रोधप्रत्याख्यानेन सततमात्मानं भावयेत्, तथा भावयन्-त्रासयंश्च सत्यादिभ्यो न व्यभिचरतीति२ एवं-लोभप्रत्याख्यानं तावत् तृष्णालक्षणस्य लोभस्य प्रत्याख्यानं-परित्यागः, तेनाऽप्यात्मानं भावयन् न वितथभाषीभवति ३ एवं-भयशी-

है और उसका अर्थ है 'विचार करना'। अशय यह हुआ कि सोच-समझ कर बोलना 'अनुवीचिभाषण' कहलाता है। विना विचारे बोलने वाला कदाचिद् मिथ्या भाषण भी करता है। इससे आत्मा की लघुता, वैर और पीडा आदि इस लोक संबंधी फलों' की प्राप्ति होती है और दूसरे के प्राणों का घात होता है। अतएव जो सोच-विचार कर भाषण करता है वह कभी मिथ्या भाषण के पापसे लिप्त नहीं होता।

मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले द्वेष रूप एवं अप्रीति लक्षणवाले क्रोध का त्याग करना चाहिए। क्रोध प्रत्याख्यान से आत्मा की निरन्तर भावना करनी चाहिए। जो ऐसी भावना करता है वह असत्य आदि से बच जाता है। तृष्णा रूप लोभ का भी परित्याग करना चाहिए। जो लोभ प्रत्याख्यान से आत्मा को भावित करता है वह मिथ्याभाषी नहीं होता। इसी प्रकार जो भय या भीरुता का

જોઈએ-'અનુવીચિભાષણ' અહીં 'અનુવીચિ' શબ્દ દેશીય છે અને તેનો અર્થ થાય છે 'વિચાર કરવો તાત્પર્ય એ થયું કે સમજી વીચારીને બોલવું 'અનુવીચિભાષણ' કહેવાય છે વગર વિચાર્યે બોલનાર ક્વચિત્ મિથ્યાભાષણ પણ કરતો હોય છે. આથી આત્માની લઘુતા વેર અને પીડા વગેરે આલોક સંબંધી ફળોની પ્રાપ્તિ થાય છે અને બીજાના પ્રાણોની હિંસા થાય છે. આથી જે સમજી -વિચારીને બોલે છે તે ક્યારેય પણ મિથ્યાભાષણના પાપથી ખરડાતો નથી.

મોહનીયકર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થનારા દ્વેષરૂપ તેમજ અપ્રીતિ લક્ષણ વાળા ક્રોધનો ત્યાગ કરવો જોઇએ ક્રોધ પ્રત્યાખ્યાનથી આત્માની નિરન્તર ભાવના કરવી જોઇએ જે આવી ભાવના ભાવે છે તે અસત્ય આદિથી બચી જાય છે. તૃષ્ણારૂપી લોભનો પણ પરિત્યાગ કરવો જોઇએ. જે લોભ પ્રત્યાખ્યાનથી આત્માને ભાવિત કરે છે તે મિથ્યાભાષી હોતો નથી આવી જ

लस्य भीरुत्वस्य प्रत्याख्यानेनाऽपि-आत्मानं भावयन् नाऽनृतं कदाचिद् वदति भयशीलो जनः कदाचित् वितथमपि भाषते चौरोऽथपिशाचो वा मया रात्रौ दृष्ट इति, तस्माद्-निर्भय वासनाध्यान मात्मनि भावयेत्४ एवं-मोहोद्भवपरिहासलक्षणहास्य परिणतः आत्मपरिहासं कुर्वन् परेण सह वितथमपि भाषेत, तस्मात्-तस्य प्रत्याख्यानेनाऽऽत्मानं भावयन् सत्यव्रतपालनक्षमो भवति १० एवं-खलु-अनुवीचि-अवग्रहयाचनं तावत्-आलोच्याऽवग्रहयाचनरूपं बोध्यम् ११ अवग्रहश्च-देवेन्द्रराज-गृहपति शय्यातरसाधर्मिकभेदेन पञ्चविधः, तत्र-यो यत्र स्वामी स एव याचनीयः, अस्वामियाचने दोषाधिक्यं स्यात्। तस्मात्-'आलोच्याऽवग्रहो याच्य,' इत्येव

प्रत्याख्यन करता है, वह कभी असत्य भाषण नहीं करता डरपोक होता है वह मिथ्या भाषण भी करता है, जैसे-आज रात्रि में मुझे चोर अथवा पिशाच दिखाई दिया था इत्यादि। अतः अपने आपको निर्भय बनना चाहिए। मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न एवं परिहास लक्षण वाला हास्य जो करता है वह अपनी हंसी करता हुआ दूसरे के प्रति मिथ्या भाषण भी करता है। अतएव हास्य के प्रत्याख्यान से आत्मा को भावित करने वाला सत्य व्रत का पालन करने में समर्थ होता है।

अस्तेयव्रत की पांच भावनाएं-सोच-विचार कर अवग्रह की याचना करना चाहिए। अवग्रह पांच प्रकार का है-(१) इन्द्र (२) राजा (३) गृहपति (४) शय्यातर और (५) साधर्मिक का अवग्रह। जहां जो स्वामी हो वहां उसी से याचना करना चाहिए। जो स्वामी नहीं है

રીતે ભય અથવા કાયરતાનુ પ્રત્યાખ્યાન કરે છે તે કદી પણ અસત્ય બોલતો નથી. જે ડરપોક હોય છે તે મિથ્યાભાષણ પણ કરનો હોય છે જેમ કે આજે રાતે મને ચોર અથવા પિશાચ દેખાયા હતા. વગેરે આથી દરેકે પોતાની જાતને નિર્ભય બનાવવી જોઈએ મોહનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન તથા લક્ષણવાળું હાસ્ય જે કરે છે તે પોતાની મશ્કરી કરતો થકો બીજાની પ્રતિમિથ્યાભાષણ પણ કરે છે. આથી હાસ્યના પ્રત્યાખ્યાનથી આત્માને પ્રભાવિત કરનાર સત્યવ્રતનું પાલન કરવા સમર્થ બને છે.

અસ્તેયવ્રતની પાંચ ભાવનાઓ—સમજી વિચારીને અવગ્રહની યાચના કરવી જોઈએ અવગ્રહ પાંચ પ્રકારના છે-(૧) ઈન્દ્ર (૨) રાજા (૩) ગૃહપતિ (૪) શય્યાતર અને (૫) સાધર્મિકનો અવગ્રહ જ્યાં જે માલિક હોય ત્યાં તેની પાસે જ યાચના કરવી જોઈએ, જે માલિક નથી તેની પાસે યાચના

मात्मनि भावयेत् इत्थञ्च भावयन् नाऽदत्तादाने प्रवर्तेत इति । अभीक्ष्णाऽवग्रह याचनं तावत्-स्वामिना सकृद्दत्तेऽपि परिग्रहे मुहुर्मुहुरवग्रहयाचनरूपं बोध्यम् । पूर्वलब्धपरिग्रहः-ग्लानाद्यवस्थासु मूत्र-पुरीषोत्सर्ग पात्र हस्तपादप्रक्षालनस्थानानि स्वामिचित्तपीडापरिहारार्थं याचनीयानि । एव-मेतावत्परिमितं सर्वतः क्षेत्र मवग्रहीतव्यम् इत्येतदेवाऽवधारणरूपम् एतावदित्यवग्रहाऽवधारणं बोध्यम्-१२ एवम्-पीठफलकाद्यर्थमपि वृक्षादीनामच्छेदनं ज्ञेयम्-१३ एवं-साधारणपिण्डस्यापि सेवनं नाऽधिकृतम्, अपितु-गुरुभि रनुज्ञापितमेव पान-भोजनं ग्रहीतव्यम् गुरुणा मनुज्ञया स्वीकृतं पानभोजनं सूत्रोक्तविधिना भुञ्जीत । औधिको

उससे याचना से दोषों की अधिकता होती है। अतएव 'सोच--विचार कर अवग्रह की याचना करनी चाहिए' ऐसी भावना करे। जो ऐसी भावना करता है वह अदत्तादान में प्रवृत्ति नहीं करता। एक बार स्वामी द्वारा परिग्रह प्रदान करने पर भी बार-बार अवग्रह की याचना 'अभीक्ष्ण-अवग्रह याचना' कहलाता है। रुग्णता आदि अवस्थाओं में मल-मूत्र के त्याग का पात्र तथा हाथ-पैर धोने के स्थान की याचना पुनः इसलिए करनी चाहिए कि जिस से स्वामी के चित्त को पीडा न पहुंचे। इसी प्रकार 'इतना ही क्षेत्र मुझे ग्रहण करना है, ऐसा अवधारण कर लेना चाहिए। और पीढा तथा पाटा आदि के लिए भी वृक्ष आदि का छेदन नहीं करना चाहिए। साधारण पिण्ड का अधिक सेवन नहीं करना चाहिए, बल्कि गुरुने जिन को सेवन की अनुमति दी हो उस का भोजन-पानी ही ग्रहण करना चाहिए। गुरु की आज्ञा से स्वीकृत भोजन-पानी भी सूत्रोक्त विधि से खाना

કરવાથી દોષોની અધિકતા થાય છે. આથી સમજી-વિચારીને અવગ્રહની યાચના કરવી જોઇએ એવી ભાવના ભાવે. જે આ જાતની ભાવના સેવે છે તે અદત્તાદાનમાં પ્રવૃત્ત થતો નથી એકવાર માલિક દ્વારા પરિગ્રહનું પ્રદાન થવા છતાં વારંવાર અવગ્રહની યાચના કરવી 'અભીક્ષ્ણ-અવગ્રહ યાચના કહેવાય છે. રોગી વગેરે અવસ્થાઓમાં મળ-મૂત્રના ત્યાગ કરવાના પાત્ર તથા હાથ-પગ ધોવાના સ્થાનની યાચના ફરીવાર એ માટે કરવી જરૂરી છે કે જેથી માલિકના મનને વ્યથા ન પહોચે એવી જ રીતે આટલું જ ક્ષેત્ર મારે ગ્રહણ કરવું છે એવો અભિગ્રહ ધારણ કરી લેવો જોઇએ તેમજ પીઠ પાટ વગેરે માટે પણ વૃક્ષ વગેરેનું છેદન કરવું ન જોઇએ પરંતુ ગુરૂએ જેટલા આહારપાણીની અનુમતિ આપી હોય તેટલું ભોજનપાણી જ ગ્રહણ કરવું જોઇએ ગુરૂજીની આજ્ઞાથી સ્વીકારેલા ભોજન પાણી પણ સૂત્રોક્ત વિધિ

पग्रहिकमेद मुपधिरूपं वस्त्रादिकमपि सर्वं गुरुभिरनुज्ञातं वन्दनपूर्वकं गुरुवचन-विधिना परिभोक्तव्यम् एवंरीत्याऽऽत्मनि भावयन्–वासयंश्चाऽस्तेयव्रतं नातिक्रामति । १४ एवं–साधुवैयावृत्यकरणमपि बोद्धव्यम् १५ एवं–ब्रह्मचर्यस्य–मैथुन विरतिलक्षणस्य पूर्वोक्तासु भावनासु स्त्रीपशु नपुंसकसंसक्तशयनाऽऽसनवर्जनं तावत्–देव–मनुष्य स्त्रीतिर्यग्जाति वडवा गोमहिष्य–जाऽविकादिभिः सह संसक्ताऽऽसन शयनादिपरित्यागरूपं बोध्यम् ताभिः सह प्रतिश्रय–संस्तारकाऽऽसनादि बह्वपायत्वाद्वर्जनीय मित्येवं वासयन्नात्मानं भावयेदिति १६ एवं–स्त्रीपशु नपुंसकानामसद्भावेऽपि रागसंयुक्त स्त्रीकथावर्जनं कर्तव्यम् मोहोद्भव-कषायरूप रागाकार परिणतियुक्ता रागजननी खलु स्त्रीकथा देशजातिकुलनेपथ्य·

चाहिए। इसी प्रकार औघिक और औपग्रहिक उपधि वस्त्र आदि भी गुरु की आज्ञापूर्वक, वन्दनपूर्वक, गुरु के वचनों की विधि के अनुसार ही काम में लाना चाहिए जो ऐसी भावना करता है वह अस्तेयव्रत का उल्लंघन नहीं करता। इसी प्रकार साधु का वैयावृत्य करना भी समझ लेना चाहिए। ये पांच अदत्तादान व्रत की भावनाएं हैं।

ब्रह्मचर्यव्रत की भावनाएं––ब्रह्मचर्यव्रत की पूर्वोक्त भावनाओं में से स्त्रीपशु नपुंसक संसक्त शयनासनवर्जन का अर्थ है–देवांगना, मानवस्त्री, तिर्यक्स्त्री जैसे घोडी, गाय, भैंस, बकरी, मेड आदि के संसर्गवाले शयन एवं आसन का त्याग करना चाहिए, क्योंकि उस से अनेक प्रकार की हानियां होती हैं, स्त्री पशु और नपुंसक का संसर्ग न होने पर भी रागयुक्त स्त्री से बचना चाहिए। स्त्रीकथा मोहजनित कषायरूप परिणति से युक्त होती है और रागभाव को

મુજબ જ ખાવા જોઈએ એવી જ રીતે ઔઘિક તેમજ ઔપગ્રાહિક ઉપધિ વસ્ત્ર વગેરે પણ ગુરૂની આજ્ઞ પૂર્વક વંદનપૂર્વક ગુરૂના વચનોની વિધિ અનુસાર જ કામમાં લેવા જોઈએ જે આ જાતની ભાવના ભાવે છે તે અસ્તેયવ્રતનું ઉલ્લંઘન કદી પણ કરતો નથી આવી જ રીતે સાધુની શુશ્રૂષા માટે પણ સમજી લેવું આ પાંચ અદત્તાદાન વ્રતની ભાવનાઓ છે.

બ્રહ્મચર્યવ્રતની ભાવનાઓ—બ્રહ્મચર્યવ્રતની પૂર્વોક્ત ભાવનાઓમાંથી સ્ત્રી-પશુનપુંસકસંસકત શયનાસનવર્જનનો અર્થ છે–દેવાંગના માનવસ્ત્રી જેવા કે ઘોડી, ગાય, ભેંસ, બકરી ઘેટી વગેરેના સંસર્ગવાળી પથારી તથા આસનનો ત્યાગ કરવો જોઈએ કારણકે તેનાથી અનેક પ્રકારની નુકશાનીઓ થાય છે, સ્ત્રી, પશુ, તથા નપુંસકનો સંસર્ગ ન હોવા છતાં પણ રાગયુકત સ્ત્રીકથાથી બચવું જોઈએ. સ્ત્રીકથા મોહ જનિત કષાય રૂપ પરિણતિથી યુકત હોય છે તથા તે રાગભાવને

वचनाऽऽलापगतिविलासविभ्रम-भ्रूभङ्ग कटाक्षहास्यलीलाप्रणयकलह-शृङ्गाररसपरिपूर्णा सती वात्या-इव (वण्टोरिया जैसे) दिन्धोदधिं नूनमेव विक्षोभयति तस्मात्-रागानुबन्धि स्त्रीकथा वर्जनं श्रेयः इति भावयेत् १७ एवं स्त्रीणां मनोहरेन्द्रियाऽऽलोकनवर्जनं कर्तव्यम्, तासां-कमनीय कुचकलशाद्यवलोकनादि विरतिः खलु श्रेयसी वर्तते, इत्येवं भावयेत् १८ एवं पूर्वरतानुस्मरणवर्जनं कर्तव्यम्, साधवस्थायां गृहस्थदशोऽनुभूतरत क्रीडाद्यनुस्मरणात् कामाग्नि सन्धुक्षणं (सन्दीपनम्) भवति, तस्मात्-तद्वर्जनं श्रेयः इति स्वात्मनि भावयेत् १९ एवं-प्रणीतरसभोजन वर्जनं कर्तव्यम्, प्रणीतस्य वृष्यस्य-स्निग्ध मधुरादि रसस्य दुग्ध-दधि-हैयङ्ग-

उत्पन्न करती है, वह देश, जाति, कुल, वेषभूषा, वचनालाप, गति, विलास, विभ्रम, भ्रूभंग, कटाक्ष, हास्यलीला, प्रणयकलह, आदि रूप शृंगाररस से परिपूर्ण होती हुई चित्त को उसी प्रकार क्षुब्ध कर देती है जैसे तूफान समुद्र को। इस कारण रागानुबन्धिनी स्त्रीकथा का त्याग करना श्रेयस्कर है। इसी प्रकार स्त्रियों के मनोहर अंगो के अवलोकन का भी त्याग करना चाहिए और ऐसी भावना करनी चाहिए कि-'स्त्रियों के सुन्दर कुच-कलश आदि के अवलोकन से विरत होना ही श्रेयस्कर है। और साधु होने से पहले गृहस्थावस्था में की हुई काम-क्रीडा के स्मरण का भी त्याग करना चाहिए। पूर्वकालीन काम-क्रीडा के स्मरण से कामाग्नि प्रज्वलित हो उठती है, अतएव उसका त्याग करना श्रेयस्कर है। पौष्टिक भोजन का भी त्याग कर देना चाहिए। पुष्टिकर स्निग्ध और मधुर दूध, दही, घी,

ઉત્પન્ન કરે છે તે દેશ, જાતિ કુળ, વેશભૂષા, વચનાલાપ, ગતિ, વિલાસ, વિભ્રમ ભ્રૂભંગ કટાક્ષ હાસ્ય પ્રણય કલહ વગેરે રૂપ શૃંગારરસથી પરિપૂર્ણ થતી થતી ચિત્તને તેજ પ્રકારથી ક્ષુબ્ધ કરી દે છે જેમ કે વાવાઝોડાથી સમુદ્રની થતી ડામાડોળ સ્થિતી. આથી રાગ વધારનારી સ્ત્રીકથાનો ત્યાગ કરવો એ જ શ્રેયસ્કર છે એવી જ રીતે સ્ત્રીઓના ચારૂ અંગોપાંગોનું અવલોકન પણ ત્યજી દેવું જોઇએ અને એવી ભાવના ભાવવી જોઇએ કે સ્ત્રીઓના સુંદર સ્તન-યુગ્મ વગેરેના અવલોકનથી વિરત થવામાં જ ભલું રહેલુ છે અને સાધુ થતાં પહેલા ગૃહસ્થાવસ્થમાં કરેલી રતિક્રીડાના સ્મરણનો પણ ત્યાગ કરવો જરૂરી છે. પૂર્વકાલીન કામક્રીડાના સ્મરણથી કામાગ્નિ પ્રજ્વલિત થઈ જાય છે માટે તેનો ત્યાગ કરવો શ્રેયસ્કર છે. પૌષ્ટિક ભોજનનો પણ ત્યાગ કરી દેવો જોઇએ. પૌષ્ટિક સ્નિગ્ધ અને મીઠાં દૂધ દહીં ગોળ ઘી

वीनघृतगुडतैलादि भक्षणेन मेदो मज्जा शुक्राद्युपचयादपि मोहोद्भवो भवति, तस्मात्-निरन्तराभ्यासेन प्रणीतरसभोजनं वर्जनीयमिति ब्रह्मचर्यरक्षार्थं मात्मनि भावयेत् २० एवं-बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहशून्यस्य श्रमणस्य पञ्चानां रूप १ रस २ गन्ध ३ स्पर्श ४ शब्दानां ५ मनोज्ञाना मिन्द्रियार्थानां प्राप्तौ रागस्य वर्जनम्, अमनोज्ञानां च तेषां प्राप्तौ द्वेष वर्जनं कर्तव्य मित्यात्मनि भावयेत् २५ उक्तञ्च-समवायाङ्गे २५ समवाये-'पंचजामस्स पणवीसं भावणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-ईरियासमिई १, मणगुत्ती २, वयगुत्ति ३, आलोय-भायण-भोयणं ४, आदाण भंडमत्तनिक्खेवणासमिई ५, अणुवीइभासणया ६, कोहविवेगे ७, लोभविवेगे ८, भयविवेगे ९, हासविवेगे १०, उग्गह अणुण्णवणया ११, उग्गहसीम जाणणया, सयमेव उग्गहं-अणुगिण्ह-णया, साहम्मि उग्गहं अणुण्णविय परिभुंजणया, साहारणभत्तपाणं अणुण्णाविय पडिभुंजणया, इत्थी पसुपंडगसंसत्त सयणासणवज्ज-णया, इत्थी कहवज्जणया, इत्थीणं इंदियाणमालोयणवज्जणया, पुव्व-रत्त पुव्वकीलियाणं अणणुसरणया, पणीयाहारवज्जणया, सोइंदिय-रागोवरई, चक्खिंदियरागोवरई, घाणिंदियरागोवरई, जिब्भिंदियरागो-वरई, फासिंदियरागोवरई' इति ।

गुड, तेल आदि के आहार से मेद मज्जा शुक्र आदि धातुओं का उपचय होता है और इस से भी मोह की उत्पत्ति होती है, अतएव निरन्तर अभ्यास रूप से पौष्टिक भोजन का त्याग करना चाहिए। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए ऐसी भावना करनी चाहिए।

इसी प्रकार बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से शून्य श्रमण को रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द, इन पाँचों इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयों में राग और अमनोज्ञ रूपादि में द्वेष नहीं करना चाहिए।

ગોળ તેલ વગેરેના આહારથી મેદ મજ્જા શુક્ર વગેરે ધાતુઓનો ઉપચય થાય છે અને આમ થવાથી પણ મોહની ઉત્પત્તિ થાય છે આથી નિરંતર અભ્યાસ રૂપથી સ્વાદુ ભોજનનો ત્યાગ કરવો જોઇએ બ્રહ્મચર્યની રક્ષા માટે આવા પ્રકારની ભાવના ભાવવી જરૂરી છે.

એવી જ રીતે બાહ્ય આભ્યન્તર પરિગ્રહથી શૂન્ય સાધુએ રૂપ રસ ગંધ સ્પર્શ અને શબ્દ એ પાંચ ઇન્દ્રિયના મનોજ્ઞ વિષયોમાં રાગ અને અમનોજ્ઞ વિષયોમાં દ્વેષ ન રાખવા જોઇએ.

पञ्च यमस्य पञ्चविंशति भावनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-ईर्यासमितिः १ मनोगुप्तिः २ वचोगुप्तिः ३ आलोकितपानभोजनम् ४ आदानभण्डाऽमत्रनिक्षेपणासमितिः ५ अनुवीचिभाषणम् ६ क्रोधविवेकः ७ लोभविवेकः ८ भयविवेकः ९ हास्यविवेकः १० अवग्रहानुज्ञापनता ११ अवग्रहसीमानुज्ञापनता १२ स्वयमेवाऽवग्रहाऽनुग्रहणता १३ साधर्मिकावग्रहमनुज्ञाय परिभोगता १४ साधारणभक्तपानमनुज्ञाप्य परिभुञ्जनेन १५ स्त्री पशुपण्डक संसक्तक शयनाऽऽसनवर्जनता १६ स्त्रीकथावर्जनता १७ स्त्रीणा मिन्द्रियालोकवर्जनता १८ पूर्वरतपूर्वक्रीडितानामननुस्मरणता १९ प्रणीताहारवर्जनता-श्रोत्रेन्द्रियरागोपरतिः चक्षुरिन्द्रियरागोपरतिः -घ्राणेन्द्रियरागोपरतिः-जिह्वेन्द्रियरागोपरतिः स्पर्शेन्द्रियरागोपरतिः इति।५६।

समवायांग सूत्र के पचीसवें समवाय में कहा है-पांच व्रतो की पच्चीस भावनाएं कही गई है, वे इस प्रकार है-(१) ईर्यासमिति (२) मनोगुप्ति (३) वचनगुप्ति (४) आलोकितपानभोजन (५) आदानभाण्डामत्र निक्षेपणासमिति (६) अनुवीचिभाषणता (७) क्रोधविवेग (८) लोभविवेक (९) भयविवेक (१०) हास्यविवेक (११) अवग्रह-अनुज्ञापनता (१२) अवग्रहसीमानुज्ञापनता (१३) स्वयमेव अवग्रह-अनुग्रहणता (१४) साधर्मिकअवग्रहअनुज्ञायपरिभोगता (१५) साधारणभक्तपान को अनुमति लेकर काम में लाना (१६) स्त्रीपशुपंडक के संसर्गवाले शयनासन का त्याग करना (१७) स्त्री कथा का त्याग (१८) स्त्रियों को इन्द्रियों के अवलोकन का त्याग (१९) पूर्वभुक्तरतिक्रीडा का स्मरण न करना (२०) पौष्टिक आहार का त्याग (२१) श्रोत्रेन्द्रिय के विषय पर राग न करना (२२) चक्षु के विषय पर राग न

સમવાયાંગસૂત્રના પચ્ચીસમાં સમવાયમાં કહેવામા આવ્યુ છે-પાંચ વ્રતોની પચ્ચીસ ભાવનાઓ કહેવામાં આવી છે જે આ પ્રમાણે છે-(૧) ઈર્યાસમિતિ (૨) મનોગુપ્તિ (૩) વચનગુપ્તિ (૪) આલોકિતપાનભોજન (૫) આદાનભાણ્ડામત્ર નિક્ષેપણા સમિતિ (૬) અનુવીચિભાષણતા (૭) ક્રોધવિવેક (૮) લોભવિવેક (૯) ભયવિવેક (૧૦) હાસ્યવિવેક (૧૧) અવગ્રહ-અનુગ્રહણતા (૧૪) સાધર્મિક અવગ્રહ અનુજ્ઞાય પરિભોગતા (૧૫) સાધારણ ભક્તપાનને આજ્ઞા લઇને ઉપયોગ કરવો (૧૬) સ્રી પશુ નપુંસકના સંસર્ગવાળા શયનાસનનો ત્યાગ કરવો (૧૭) સ્રીકથાનો ત્યાગ (૧૮) સ્રીઓની ઇન્દ્રિયોના અવલોકનનો ત્યાગ (૧૯) પૂર્વ ભોગવેલ રતિક્રીડાનુ સ્મરણ ન કરવું (૨૦) પૌષ્ટિક આહારનો ત્યાગ (૨૧) શ્રોત્રેન્દ્રિયના વિષયમાં રાગ ન કરવો (૨૨)

मूलम्—हिंसादिसु उभयलोगे घोरदुहं चउग्गइ भमणं च।५७।

छाया—'हिंसादिषूभयलोके घोरदुःखं-चतुर्गतिभ्रमणञ्च' ॥५७॥

तत्त्वार्थदीपिका--पूर्वसूत्रे प्राणातिपातादिविरमणलक्षणेषु पञ्चसु महाव्रतेषु प्रतिव्रत मधिकृत्य पञ्च पञ्च भावनाः प्ररूपिताः सम्प्रति-सामान्यतः सर्वव्रत-साधारणी भावनाः प्रतिपादयितु माह-'हिंसादिसु' इत्यादि। हिंसादिषु प्राणातिपाताऽनृत-स्तेयाऽब्रह्मचर्य-परिग्रहेषु पञ्च वक्ष्यमाणास्त्रेषु उभयलोके, इहलोके-परलोके च नरकादिजन्मनि घोरदुःखं, तद्विपाकान्नरकादिषु तीव्र यात नाऽनुभवनं तद् भावयेत्। ज्ञानपूर्वकक्रियानुष्ठानेन हिंसादिषु ऐहिक-पारलौ-

---

करना (२३) घ्राणेन्द्रिय के विषय पर राग न करना (२४) जिह्वा इन्द्रिय के विषय पर राग न करना और (२५) स्पर्शेन्द्रिय के विषय पर राग न करना ॥५६॥

'हिंसादिसु उभयलोगे' इत्यादि।

सूत्रार्थ—हिंसा आदि पापों का सेवन करने पर इह-परलोक में घोर दुःख होता है और चारों गतियों में भ्रमण करना पडता है ॥५७॥

तत्त्वार्थदीपिका— पूर्व सूत्र में प्राणातिपातविरमण आदि पांच महाव्रतों में से प्रत्येक की पांच-पांच भावनाओं का प्ररूपण किया गया, अब सभी व्रतों के लिए समान भावनाओं का प्रतिपादन करते हैं।

हिंसा आदि अर्थात् हिंसा, अनृत, अदत्तादान, अब्रह्मचर्य और परिग्रह, इन पांचों आस्रवों का सेवन करने से इस लोक में तथा नारक आदि परलोक में घोर दुःख भुगतना पडता है, ऐसी भावना करनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि जान-बुझ कर हिंसा आदि का आचरण

ચક્ષુના વિષયમાં રાગ ન કરવો (૨૪) જીભ સ્વાદુ ઈન્દ્રિયના વિષયમાં રાગ ન કરવો અને (૨૫) સ્પર્શેન્દ્રિયના વિષયમાં રાગ ન કરવો ॥ ૫૬ ॥

'हिंसादिसु उभयलोगे' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-હિંસા આદિ પાપોનું સેવન કરવાથી આલોક તેમજ પરલોકમાં ઘોર દુઃખ થાય છે અને ચારે ગતિઓમાં ભ્રમણ કરવું પડે છે. ॥૫૭॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં પ્રાણાતિપાત વિરમણ આદિ પાંચ મહાવ્રતોમાંથી પ્રત્યેકની પાંચ-પાંચ ભાવનાઓનું પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે બધાં વ્રતો માટે સમાન ભાવનાઓનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ—

હિંસા આદિ અર્થાત્ હિંસા, અનૃત, અદત્તાદાન, અબ્રહ્મચર્ય અને પરિગ્રહ આ પાંચે આસ્રવોનું સેવન કરવાથી આલોકમાં તથા નારક વગેરે પરલોકમાં ઘોર દુઃખો ભોગવવા પડે છે એવી ભાવના રાખવી જોઈએ. કહેવાનો આશય એ છે કે ઈરાદાપૂર્વક હિંસા વગેરેનું સ્મરણ કરવાથી ઐહિક અને

क्रिक नरकादिजन्माऽनर्थपरम्परां गर्हित नारकादि तीव्रदुःखानुभवनञ्चोपलभमानो जीवः प्राणातिपातादिषु न प्रवर्तते इति भावः। घोरदुःखमेव हिंसादिषु सर्वत्र भावयेत्. चतुर्गतिभ्रमणञ्च-नारक तिर्यङ्मनुष्यदेवगतिरूपचतुर्गतिषु भ्रमणञ्च भवति हिंसादिनेति भावः ॥५७॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः--पूर्वं सर्वतो-देशतश्च हिंसाऽनृत-स्तेयाऽब्रह्मचर्य-परिग्रहेभ्यो विरतिलक्षणेषु पञ्च महाव्रताऽणुव्रतेषु प्रतिव्रतं पञ्च पञ्च भावनाः तेषां दाढर्यार्थं प्ररूपिताः, सम्प्रति-सर्वव्रतसामान्य भावनाः प्ररूपयितुमाह-'हिंसादिसु उभयलोगे घोरदुहं-चउग्गइभमणं च' इति। हिंसादिषु हिंसाऽसत्य-स्तेय-मैथुन-परिग्रहेषु पञ्चसु वक्ष्यमाणास्रवेषु तिष्ठतामुभयलोकेऽस्मिन् -परलोके च नरकादौ घोरदुःखं-तीव्रयातना, तद्विपाकजन्य तीव्रनारकादियातनाऽनुभवनं 'मा भूयात्' इति भावनया व्रतीजीवो हिंसादिषु कथञ्चिदपि न प्रवर्तते,।

करने पर ऐहिक और पारलौकिक अनेक प्रकार के अनर्थों की परम्परा उत्पन्न होती है, नरक आदि दुर्गतियों में तीव्र दुःख का अनुभव करना पड़ता है, ऐसी भावना करने से जीव प्राणातिपात आदि में प्रवृत्ति नहीं करता। हिंसा आदि में घोर दुःख है और उसके कारण चारों गतियों में भ्रमण करना पड़ता है ॥५७॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—इससे पूर्व सर्वविरतिरूप महाव्रतों और देश विरतिरूप अणुव्रतों में से प्रत्येक की पांच-पांच भावनाओं का प्रतिपादन किया गया, अब सभी व्रतों के लिए साधारण भावनाओं का निरूपण करते हैं-

हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य और परिग्रह, इन पांच आस्रवों में प्रवृत्ति करने वालों को इस लोक में तथा नरक आदि परलोक में तीव्र यातनाएं न भोगनी पड़े, इस प्रकार की भावना से व्रतीजीव

પારલૌકિક અનેક પ્રકારના અર્થોની પરમ્પરા ઉત્પન્ન થાય છે, નરક આદિ દુર્ગતિઓમાં તીવ્ર દુઃખનો અનુભવ કરવો પડે છે, એવી ભાવના કરવાથી જીવ પ્રાણાતિપાત આદિમાં પ્રવૃત્તિ કરતો નથી હિંસા આદિમાં ઘોર દુઃખ જ દુઃખ છે અને તેના કારણે ચારે ગતિઓમાં ભ્રમણ કરવું પડે છે. ॥૫૭॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—આની પૂર્વે વિરતિરૂપ મહાવ્રતોને અને દેશવિરતિ રૂપ અણુવ્રતોમાંથી પ્રત્યેકની પાંચ પાંચ ભાવનાઓનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું, હવે બધાં વ્રતો માટે સાધારણ ભાવનાનું નિરાકરણ કરીએ છીએ-

હિંસા, અસત્ય, સ્તેય, અબ્રહ્મચર્ય અને પરિગ્રહ, આ પાંચ આસ્રવોમાં પ્રવૃત્તિ કરનારાઓને આલોકમાં તથા નરક આદિ પરલોકમાં તીવ્ર યાતનાઓ ન ભોગવવી પડે, આ પ્રકારની ભાવનાથી વ્રતીજીવ હિંસા આદિમાં પ્રવૃત્તિ

तथा चेहैव तावद् हिंसादिषु प्रवृत्तस्य जनस्याऽमी प्रत्यवाया दरीदृश्यन्ते, नरकादावमुत्र च दारुणः पाकविपाको भवतीति भूयो भूयो भावयेत् इति। तत्र-प्राणिवधे तावत्-घोरदुःखं प्रदर्श्यते, हिंसनशीलो हिंस्रो जनः सतत मुद्वेजयिता सन्त्रासकारी भवति, स खलु हिंस्रो भीषणवेषो ललाटरचितकुटिलभ्रूभङ्गो नितान्तेर्ष्याऽऽमर्षनिर्भरनेत्रद्वष्टदन्तदष्टोष्ठः प्राणिनां सन्त्रासजनको भवति, नित्याऽनुबद्धवैरश्च संजायते। एवञ्च-इहलोकेऽपि वंशदलकशादिभिस्ताडनं निगड-शृङ्खलादिभिर्वधबन्धनं विविधकाष्ठेष्टकाऽऽरोपणादि परिक्लेशञ्च प्रतिलभते। प्रेत्यच नरकादिगति प्रति प्राप्नोति, लोके-गर्हितो निन्दितश्च भवति, पूर्वजन्मो-

हिंसा आदि में प्रवृत्ति नहीं करता। जो हिंसा आदि में प्रवृत्ति करता है उसे प्रथम तो इसी लोक में अनेक अनर्थों का सामना करना पडता है, फिर नरक आदि में दारुण फल भोगना पडता है, ऐसा बार-बार चिन्तन करना चाहिए। हिंसा से कैसा घोर दुःख होता है यह बतलाते हैं-हिंसक जीव सदैव उद्वेग और त्रास उत्पन्न करता है। उसका वेष भीषण होता है, उसके ललाट पर सलवट पडे रहते हैं। उसके नेत्रों से ईर्ष्या और क्रोध टपकता है। वह दांतों से होठ चबाता रहता है और प्राणियों को त्रास उत्पन्न करता है। वह सदैव वैर बांधे रहता है। वह इस लोक में भी लाठियों और चाबुकों से पीटा जाता है, हथकडियों और बेडियों से जकडा जाता है वध-बन्धनका पात्र बनता है और विविध प्रकार के काठ, ईट आदि से पीटा जाता है। और भी अनेक प्रकार के क्लेशों को प्राप्त होता है। हिंसक जीव पर-

કરતો નથી. જે હિંસા આદિમાં પ્રવૃત્તિ કરે છે તેને પ્રથમ તો આ જ લોકમાં અનેક અનર્થોનો સામનો કરવો પડે છે પછી નરક આદિમાં દારૂણ ફળ ભોગવવા પડે છે એ પ્રમાણે પુનઃ પુનઃ ચિન્તન કરવું જોઈએ હિંસાથી કેવું ઉગ્ર દુઃખ થાય છે એ બતાવીએ છીએ-હિંસક જીવ સદૈવ ઉદ્વેગ અને ત્રાસનું સામ્રાજ્ય ફેલાવે છે, તેનો વેશ ભીષણ હોય છે. તેના ભાલપ્રદેશ પર કરચળીઓ પડેલી રહે છે. તેની આંખોમાંથી ઇર્ષ્યા અને ક્રોધ રૂપી અગ્નિ વરસે છે. તે દાંતોથી હોઠ ચાવતો હોય છે અને પ્રાણિઓને ત્રાસ ઉપજાવતો હોય છે તે હમેશાં દુશ્મનાવટ બાંધતો રહે છે. તે આ લોકમાં પણ લાઠી તથા ચાબુકોથી ફટકારાય છે, હાથકડી તથા જંજીરોથી જકડાય છે, ફાંસીના માંચડે ચઢવાને પાત્ર બને છે અને વિવિધ પ્રકારના લાઠી, ઈંટ આદિથી લોકો તેને મારે છે બીજા પણ અનેક પ્રકારનાં કલેશોને પ્રાપ્ત થાય

पार्जिताऽशुभकर्मविपाकोऽयं खलु 'एतस्य मम वराकस्ये' त्येवं सम्भावयतश्च विवेकबलात् 'प्राणिवधाद्व्युपरमः श्रेयान्' इति तस्य दृढनिश्चयः समुत्पद्यते इति भावः। एवं–हिंसादिना नारक–तिर्यङ्मनुष्यदेवगतिरूप चतुर्गतिके संसारे· भ्रमणम्, नरक निगोदादिषु–अनन्ताऽनन्तजन्ममरणादिकं घोरातिघोरं दुःखं प्राप्नुवन्ति। अथ हिंसको जनो यथा प्रत्यवायेन लिप्यते, एव मसत्यवाद्यपि· जनः प्रत्यवायभाग्भवति, लोकेऽश्रद्धेयवचनश्च संजायते। एवमैहिकं प्रत्य· वायजन्यम् असत्यभाषणप्रयुक्तं जिह्वाच्छेदन श्रोत्रनासिकाच्छेदनादिकं प्रति·

लोक में नरक आदि दुर्गतियां प्राप्त करता है, लोक में गर्हित और निन्दित होता है। जो मनुष्य विवेक के बल से यह समझता है कि पूर्व जन्म में उपार्जित, अशुभ कर्म का ही यह फल मुझ अभागे को प्राप्त हुआ है, अब हिंसा से विरत हो जाना ही श्रेयस्कार है, इस प्रकार का दृढ निश्चय उसके चित्तमें उत्पन्न हो जाता है।

इसी प्रकार हिंसा आदि पापों के कारण नरक तिर्यंच मनुष्य और देव गति रूप संसार में परिभ्रमण करना पडता है। हिंसक नरक–निगोद आदि में जन्म–मरणादि के अनन्तानन्त घोर अति–घोर दुःख प्राप्त करते हैं।

जैसे हिंसक पुरुष अनर्थों का भागी होता है, उसी प्रकार असत्य वादी जन भी अनर्थ भागी होता है। लोक में उसके वचन का कोई विश्वास नहीं करता। असत्य भाषण के कारण असत्यभाषी की जीभ काटली जाती है, कान काट लिये जाते हैं, नाक काट ली जाती है।

હિંસક જીવ પરલોકમાં નરક આદિ દુર્ગતિઓ પ્રાપ્ત કરે છે, લોકમાં ગર્હિત અને નિન્દિત થાય છે. જે મનુષ્ય વિવેકના બળથી એવું સમજે છે કે પૂર્વજન્મમાં ઉપાર્જિત, અશુભ કર્મનું જ ફળ મને અભાગીયાને પ્રાપ્ત થયું છે હવે તો હિંસાથી વિરત થઇ જવામાં જ ભલું છે એ જાતનો દૃઢ નિશ્ચય એના ચિત્તમાં ઉત્પન્ન થઈ જાય છે.

આવી જ રીતે હિંસા આદિ પાપોના કારણે નરક, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવગતિરૂપ સંસાર અટવિમાં પરિભ્રમણ કરવું પડે છે. હિંસક નરક–નિગોદ વગેરેમાં જન્મ મરણાદિના અનન્તાનન્ત ઘોર અતિઘોર દુઃખ પ્રાપ્ત કરે છે.

જેમ હિંસક પુરૂષ અનર્થોનો ભાગીદાર થાય છે તેવી જ રીતે અસત્યવાદી મનુષ્ય પણ અનર્થભાગી થાય છે લોકમાં તેના વચનને કોઈ વિશ્વાસ કરતું નથી. અસત્ય ભાષણના કારણે અસત્યભાષીની જીભ કાપી લેવામાં

गर्हितं फलं लभते, नारकादितीव्रयातनादुःखं चाऽऽमुष्मिकं फलं लभते। एवमनृतभाषणजनितदुःखयुक्तेभ्यो बद्धवैरेभ्यो जिह्वाच्छेदनादिपूर्वोक्त दोषापेक्षयाऽपि यातनाविशेषान् अधिकान् वधबन्धादीन् दुःखहेतून् प्राप्नोति, तीव्राशयो जनः स्तीव्रस्थित्यनुभागमेव कर्मोपादत्ते प्रेत्यचाऽशुभाऽतीव्रनारकादियातनामासादयति, तस्माद्-अनृतभाषणस्यैवंविधविषमफलविपाकं स्वात्मनि भावयन् 'तद्व्युपरमः श्रेयान्' इति रीत्या विचार्याऽनृतभाषणाद् व्युपरतो भवति, यथा च-प्राणातिपाताऽनृतभाषणाऽनुष्ठायिनः प्रत्यवाययुक्ता भवन्ति, एवं-परद्रव्य-

इसी प्रकार के अन्य गर्हित फल भी होते हैं। उसे परलोक में नरक आदि की तीव्र यातनाएं भोगनी पड़ती हैं। जो लोग असत्य भाषण से उत्पन्न दुःखयुक्त वैरानुबंध से हैं, वे जिह्वाछेदन आदि पूर्वोक्त दोषों की अपेक्षा भी अधिक यातना वध-बन्ध आदि दुःख के हेतुओं को प्राप्त करते हैं। जिसका आशय-अध्यवसाय तीव्र होता है वह दीर्घ स्थिति और तीव्र अनुभाग वाले अशुभ कर्मों का बंध करता है और परलोक में नरक आदि की अशुभ एवं तीव्र यातना को प्राप्त करता है। अतएव असत्य भाषण का ऐसा विषम फलविपाक होता है, ऐसी भावना करता हुआ 'इससे विरत हो जाना ही श्रेयस्कर है, इस प्रकार विचार करके असत्य भाषण से निवृत्त हो जाता है।

जैसे हिंसा और असत्य भाषण करने वाले दुःखों के पात्र होते

આવે છે, કાન કાપી લેવામાં આવે છે, નાક કાપી લેવામાં આવે છે આવી જ જાતના અન્ય ગર્હિત ફળ પણ ભોગવવા પડે છે. તેને પરલોકમાં નરક આદિની તીવ્ર યાતનાઓ ભોગવવી પડે છે. જે લોકો અસત્ય ભાષણથી ઉત્પન્ન થનારા દુઃખયુક્ત વૈરાનુબંધવાળાઓ છે. તેઓ જિહ્વાછેદન આદિ પૂર્વોક્ત દોષોની અપેક્ષાએ પણ અધિક યાતના વધ બન્ધન આદિ દુઃખના હેતુઓને પ્રાપ્ત કરે છે જેમનો આશય-અધ્યવસાય તીવ્ર હોય છે તે દીર્ઘ સ્થિતિ અને તીવ્ર અનુભાગવાળા અશુભ કર્મો બંધે છે અને પરલોકમાં નરક આદિની અશુભ અને તીવ્ર યાતનાઓને પ્રાપ્ત કરે છે આથી અસત્ય-ભાષણનું આવું વિષમ ફળ વિપાક મળે છે, એવી ભાવના કરતો થકો, આનાથી વિરત થઈ જવું એમાં જ શ્રેય છે. આ પ્રમાણે ચિન્તવન કરીને અસત્ય ભાષણથી નિવૃત્ત થઈ જાય છે

જેવી રીતે હિંસા અને અસત્ય ભાષણ કરવાળાં દુઃખોને પ્રાપ્ત થાય

हरणप्रसक्तमतिरपि स्तेनः सर्वस्योद्वेजको भवति-अपह्रियमाणद्रव्यादिधनस्वामिन उद्वेगं समुत्पादयति, (तेन) इहलोकेऽन्यद्रव्यापहरणजन्य ताडन-पीडनकशायभिघातनिगडशृङ्खलादिबन्धनं कर-चरण-श्रोत्र नासिकौष्ठच्छेदनभेदनं सर्वस्वहरणादिकं लभते, प्रेत्यच नारकादितीव्रयातनागतिं प्राप्नोति तस्मात्-'स्तेयाद्व्युपरमः श्रेयान्' इति भावयन् चौर्याद् व्युपरतो भवति, यथा खलु-प्राणातिपाताऽसत्यभाषणस्तेयाऽनुष्ठायिनः प्रचुरान् प्रत्यवायान् प्राप्नोति । एव-मब्रह्मसेविनोऽपि, कामिनीविलासविशेषविभ्रमोद्भ्रान्तस्वान्ताः विप्रकीर्णेन्द्रियवृत्तयः तुच्छविषये प्रवर्तितेन्द्रियाः मनोज्ञेषु शब्द रूप-रस गन्धस्पर्शेषु रागाङ्केषु अनु-

हैं उसी प्रकार परद्रव्य का अपहरण करने वाला चोर भी दुःखों का भागी होता है और सब को उद्वेग पहुंचाता है-जिसका धन हरण करता है उसे दुःख पहुंचाता है । इसके फलस्वरूप उसे ताडन-पीडन, चाबुकों की मार, हथकडी-बेडी आदि का बन्धन, हाथ-पैर-कान-नाक और होठों का छेदन-भेदन तथा सर्वस्व हरण आदि भोगना पडता है । वह परलोक में नरक आदि की तीव्र वेदनाएं प्राप्त करता है । अतएव 'स्तेय से विरत हो जाना श्रेयस्कर है, ऐसी भावना करता हुआ चोरी से विरत हो जाता है ।

जैसे प्राणातिपात, असत्य भाषण और चोरी करने वाले अनेक अनर्थों को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार अब्रह्मचर्य का सेवन करने वाला भी । स्त्रियों के हाव-भाव विभ्रम-विलास आदि से जिनका चित्त डांवाडोल रहता है, जिनकी इन्द्रियां चंचल होती हैं और तुच्छ विषयों

છે તેવી જ રીતે પરદ્રવ્યનુ અપહરણ કરનારો ચોર પણ દુઃખનો ભાગી થાય છે અને બધાંને ઉદ્વેગ પહોંચાડે છે-જેનું ધન હરણ કરે છે તેને દુઃખ પહોંચાડે છે-આના ફળસ્વરૂપે તેને તાડન-પીડન, ચાબુકોનો માર હાથકડી-જંજીર વગેરેનું બન્ધન'-હાથ-પગ-કાન-નાક અને હોઠોનું છેદન-ભેદન તથા સર્વસ્વ હરણ વગેરે ભોગવવા પડે છે. તે પરલોકમાં નરક આદિની તીવ્ર વેદનાઓ પ્રાપ્ત કરે છે. આથી સ્તેયથી વિરત થઈ જવું શ્રેયસ્કર છે, એવી ભાવના કરતો થકો ચોરીથી વિરત થઇ જાય છે.

જેવી રીતે પ્રાણાતિપાત, અસત્યભાષણ અને ચોરી કરતારા અનેક અનર્થોને પ્રાપ્ત થાય છે તેવી જ રીતે અબ્રહ્મચર્યનું સેવન કરનાર પણ સ્ત્રીઓના હાવ-ભાવ, વિભ્રમ વિલાસ આદિથી જેમનું ચિત્ત ડામાડોળ રહે છે, જેમની ઈન્દ્રિયો ચંચલ હોય છે તેમજ હલકા પ્રકારના વિષયોમાં રચેલી

रक्ताः सन्तो मदोन्मत्तगजेन्द्रा इव निरङ्कुशा इष्टानिष्ट प्रवृत्तिनिवृत्तिविचाररहिताः कुत्राऽपि न शर्मलभन्ते, मोहाभिभूताश्च कर्तव्याऽकर्तव्य विवेकरहितत्वात् सर्वमपि कर्म शोभनमेव मन्यमानाः कर्तुं प्रवर्तन्ते ग्रहाविष्टपुरुषवत् परस्त्रीगमनप्रयुक्तांश्चेहलोके वैरानुबन्धलिङ्गच्छेदन वध बन्धन सर्वस्वापहरणादीन् अपायान् प्रतिलभन्ते, प्रेत्यच नारकादिगतिं प्राप्नुवन्ति, तस्मात्-'मैथुनतो व्युपरमः श्रेयान्' इति भावयन् ततो व्युपरतो भवति। एवं परिग्रहवानपि जन स्तस्करादीना माक्रमणीयो भवति,-यथा कश्चित् पक्षी मांसपेशीकरः श्येनादिपक्षिभिः आममांस

में व्यापृत रहते हैं, जो मनोज्ञ शब्द, रूप, रस गंध और स्पर्श में अनुरक्त होते हैं, जो मतवाले हाथी के समान निरंकुश होते हैं और इष्ट तथा अनिष्ट विषयों में प्रवृत्ति-निवृत्ति के विचार से रहित होते हैं, वे कहीं भी सुख-शान्ति प्राप्त नहीं करते। मोह से अभिभूत होने के कारण कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विवेक से रहित हो जाते हैं और प्रत्येक कार्य को अच्छा ही समझ कर करने को तैयार रहते हैं मानों उन्हें भूत लग गया हो। परस्त्रीगमन के कारण इस लोक में दूसरों के साथ उनका वैर बंध जाता है। वे लिंग-छेदन, वध, बन्धन और सर्वस्वापहरण आदि अपायों को प्राप्त करते हैं। परलोक में उन्हें नरक आदि गतियां प्राप्त होती हैं। इस कारण 'मैथुन से विरत होजाना श्रेयस्कर है, ऐसी भावना करता हुआ पुरुष उससे निवृत्त हो जाता है।

इसी प्रकार परिग्रहवान् पुरुष पर तस्कर आदि आक्रमण करते हैं। जैसे मांस का टुकड़ा चोंच में दबाने वाले पक्षी पर श्येन आदि दूसरे

પચેલી રહે છે, જે મનોજ્ઞ શબ્દ, રૂપ, રસ, ગંધ અને સ્પર્શમાં લીન રહે છે, જે મદમસ્ત હાથીની માફક નિરંકુશ હોય છે અને ઇષ્ટ તથા અનિષ્ટ વિષયોમાં પ્રવૃત્તિ-નિવૃત્તિના વિચારથી રહિત હોય છે, તેઓ કોઈ પણ સ્થળે સુખ-શાન્તિ પ્રાપ્ત કરતા નથી. મોહથી અભિભૂત હોવાના કારણે કર્ત્તવ્ય-અકર્ત્તવ્યના વિવેકથી રહિત થઇ જાય છે અને દરેક કાર્યને સારૂં જ સમજીને તે કરવા તત્પર રહે છે જાણે તેઓને ભૂત ન વળગ્યું હોય! પરસ્ત્રીગમનના કારણે આ લોકમાં બીજાઓની સાથે તેમનું વેર બંધાઈ જાય છે તેઓ લિંગચ્છેદન, વધ, બન્ધન અને સર્વસ્વાપહરણ આદિ મુશ્કેલીઓને વહોરે છે. પરલોકમાં તેમને નરક આદિ ગતિઓ પ્રાપ્ત થાય છે. આ કારણથી મૈથુનથી વિરત થઈ જવું શ્રેયસ્કર છે, એવી ભાવના કરતો થકો પુરૂષ તેનાથી નિવૃત્ત થઇ જાય છે.

આ પ્રમાણે પરિગ્રહવાન્ પુરૂષ ઉપર ચોર વગેરે આક્રમણ કરે છે જેવી રીતે માંસનો ટુકડો ચાંચમાં દબાવનાર પક્ષી પર બાજ આદિ બીજા

भक्षिभिरभिभवनीयो भवति। तथैव-परिग्रहीजनोऽपि तस्करादिभिरभिभूयते-तदुपार्जनरक्षणक्षयप्रयुक्तांश्च दुःखपरिश्रमशोकादिदोषान् प्रतिलभते, परिग्रहशीलस्य शुष्केन्धनैरग्नेरिव द्रव्यादिभिरतृप्तिर्न भवति, लोभाभिभवाच्च कर्तव्याऽकर्तव्यविवेकराहित्यान्महदनिष्टं प्राप्नोति, प्रेत्य च नारकादि तीव्रगतिं प्राप्नोति, 'लुब्धोऽयं जनः' इति च सगर्वितो भवति, तस्मात्-'परिग्रहतो व्युपरतिः श्रेयसी' इत्यात्मनि भावयन् परिग्रहाद् व्युपरतो भवति। लोभरूपया तृष्णापिशाचिकया वशीकृतचित्तो न कानपि प्रत्यवायान् पश्यति, लोभग्रहग्रस्तो जनः

कच्चा मांस भक्षण करने वाले पक्षी हमला करते हैं, उसी प्रकार परिग्रहवान् पुरुष को तस्कर आदि सताते हैं। परिग्रही को धन आदि के उपार्जन में कष्ट उठाना पडता है, उपार्जित करने के पश्चात् उनकी रक्षा करने की चिन्ता करनी पडती है और रक्षा करते-करते भी जब वह नष्ट हो जाता है तो शोकसन्ताप का अनुभाव करना पडता है। जैसे सूखे ईंधन से अग्नि की तृप्ति नहीं होती उसी प्रकार तृष्णावान् पुरुष धन से कभी सन्तुष्ट नहीं होता। वह लोभ से घिरा रहने के कारण कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विवेक से रहित हो जाता है और परिणामस्वरूप महान् अनिष्ट प्राप्त करता है। परलोक में उसे नरक आदि की तीव्र यातनाएं भोगनी पडती हैं। लोग उसे 'लोभी-कंजूस-मक्खीचूस' आदि कह कर तिरस्कृत करते हैं। अतएव' परिग्रह से विरत हो जाना ही श्रेयस्कर हैं, ऐसी भावना करने वाला परिग्रह से विरत हो जाता है। जिसका चित्त लोभ रूप तृष्णापिशाची के वशीभूत हो

કાચા માંસનું ભક્ષણ કરનાર પક્ષી હુમલો કરે છે તેવી જ રીતે પરિગ્રહવાન્ પુરૂષને ચોર વગેરે પજવે છે. પરિગ્રહીને ધન આદિના ઉપાર્જનમાં કષ્ટ સહેવા પડે છે, ઉપાર્જિત કર્યા બાદ તેનું રક્ષણ કરવાની ચિન્તા સવાર થાય છે અને રક્ષણ કરવા છતાં પણ જ્યારે તે નાશ પામે છે ત્યારે શોક-સન્તાપનો અનુભવ કરવો પડે છે. જેમ સુકા ઇંધણથી અગ્નિની તૃપ્તિ થતી નથી તેમ તૃષ્ણાવાન્ પુરૂષ ધનથી કદી પણ ધરાતો નથી. તે લોભથી ઘેરાયેલો રહેવાના કારણે કર્ત્તવ્ય-અકર્ત્તવ્યના વિવેકથી રહિત થઈ જાય છે અને પરિણામ સ્વરૂપ મહાન્ અનિષ્ટ પ્રાપ્ત કરે છે. પરલોકમાં તેને નરક આદિની તીવ્ર યાતનાઓ, સહન કરવી પડે છે. લોકો તેને 'લોભી-કંજુસ-મખ્ખીચૂસ' વગેરે ઉપનામ લગાડીને તેને હડધૂત, કરે છે. આથી 'પરિગ્રહથી વિરત થઈ જવું જ શ્રેયસ્કર છે. એવી ભાવના ભાવનાર પરિગ્રહથી વિરત થઈ જાય છે. જેનું ચિત્ત લોભરૂપી તૃષ્ણા પિશાચીનીને વશીભૂત થઈ જાય છે તે

पितरमपि धनार्थं व्यापादयति मातरमपि हिनस्ति च सुतमपि हन्तुमुद्यतो भवति, भ्रात्रादीनपि द्रव्यार्थं जिघांसति, किं बहुना स्व प्राणप्रियां प्रेयसीमपि तदर्थं हन्ति, एवमन्यानपि बहूनर्थान् करोति इति लोभाभिभूतो जनः किमपि कार्यमकार्यं न परिगणयति, तस्मात् परिग्रहेऽनर्थान् बहून् भावयन् ततो निवृत्तिं समासादयति, हिंसादिषु पञ्चसु दुःखमेव च भावयेत्। एवञ्च-हिंसादि पञ्चकं यथा मम दुःखजनकत्वाद् अप्रियं भवति एवं-सर्वेषामपि प्राणिनां हिंसादिकं वध बन्धनच्छेदनादि हेतुकत्वमप्रियं भवति इत्यात्मानुभवेन सर्वेषां दुःखं हिंसादौ भाव-

---

जाता है, वह किन्हीं भी अनर्थों को नहीं देख पाता। लोभ के चंगुल में फंसा मनुष्य धन के लिए पिता की भी हत्या कर डालता है, माता की भी जान ले लेता है, पुत्र का घात करने को भी उद्यत हो जाता है, द्रव्य के लिए भाई भाई का भी खून कर डालना चाहता है, अधिक क्या कहा जाय, अपनी प्राणप्रिया पत्नी की भी हत्या कर डालता है! ऐसे अन्यान्य बहुत-से अनर्थ करता है। इस प्रकार लोभ से अभिभूत प्राणी कार्य-अकार्य का कुछ भी विवेक नहीं करता। जो परिग्रह के बहुत-से दुष्परिणामों का विचार करता है। वह उससे निवृत्त हो जाता है।

साधक को चाहिए कि वह हिंसा आदि में दुःख की भावना करे। जैसे हिंसा आदि पांचों मुझे दुःख जनक होने के कारण अप्रिय हैं, उसी प्रकार वध, बन्धन, छेदन आदि के कारण हिंसा आदि सभी को अप्रिय हैं, इस प्रकार के आत्मानुभव से हिंसा आदि में सभी के

કોઈ જ અનર્થોને જોઈ શકતો નથી. લોભની પકડમાં આવેલ મનુષ્ય ધન માટે સગા બાપની પણ હત્યા કરી બેસે છે, માતાનો જીવ પણ લઈ લે છે, પુત્રનો ઘાત કરવા માટે પણ તત્પર થઈ જાય છે, દ્રવ્ય કાજે ભાઈનું ખૂન કરી નાખવા ઇચ્છે છે, વધારે શું કહી શકાય, પોતાની પ્રાણવલ્લભાની પણ હત્યા કરી નાખે છે. આ જાતના અન્યાન્ય ઘણા બધા અનર્થ કરે છે. આ રીતે લોભથી અભિભૂત પ્રાણી કાર્ય-અકાર્યનો કંઈ પણ વિવેક કરતો નથી. જે પરિગ્રહના ઘણા બધાં દુષ્પરિણામોનો વિચાર કરે છે તે તેનાથી નિવૃત્ત થઈ જાય છે.

સાધકે હિંસા આદિમાં દુઃખની જ ભાવના કરવી જોઈએ. જેવી રીતે હિંસા આદિ પાંચે મને દુઃખજનક હોવાના કારણે અપ્રિય છે. તેવી જ રીતે વધ, બન્ધન, છેદન આદિના કારણે હિંસા વગેરે બધાંને અપ્રિય છે. આ જાતના આત્માનુભવથી હિંસા આદિમાં બધાના દુઃખની ભાવના કરતો થકો

यत् प्राणातिपाताद् विरतिं श्रेयसीति भावनया तस्माद् विरतो भवति। एवं यथा ममाऽसत्यभाषणादि बहु महद्दुःखमुपजायते, एवं सर्वेषामपि प्राणिना मसत्य भाषणाभ्याख्यानेनाऽभ्याख्यानहेतुकं महद्दुःखमस्मिल्लोके भवति। परलोकेतु-असत्यभाषणपरो यत्र जन्म मासादयति तत्र तत्र च सर्वत्र तथाविधैरेवाऽसत्यभाषणाभ्याख्यानैरभियुज्यमानः सदा महद्दुःखमनुभवतीति भावयन् अनृतभाषणाद् विरतो भवति। एवं-यथा तस्करादिभि र्ममेष्टद्रव्यापहरणेन दुःखं भवति-भूतपूर्वश्च तथा सर्व प्राणिनामपि द्रव्यापहारे दुःखं भवति भविष्यति चेत्यात्मानुभवेन भावयन् अदत्तादानतो विरतो भवति। एवं-मैथुनस्यापि रागद्वेषमूल-

दुःख की भावना करता हुआ पुरुष को 'प्राणातिपात से विरत हो जाना ही श्रेयस्कर है', इस भावना से हिंसा आदि से निवृत्त हो जाता है।

जैसे असत्यभाषण से मुझे महान् दुःख होता है, उसी प्रकार प्राणियों को असत्यभाषण एवं मिथ्यादोषारोपण से इस लोक में घोर दुःख की प्राप्ति होती है। असत्यभाषी जहां कहीं जन्म लेता है वहीं उसे असत्यभाषण-द्वारा मिथ्या आरोपों का शिकार होना पडता है और सदैव घोर दुःखों का पात्र बनना पडता है। ऐसी भावना करने वाला पुरुष असत्य भाषण से विरत हो जाता है।

इसी प्रकार जैसे तस्कर आदि के द्वारा मेरे इष्ट द्रव्य का अपहरण करने से मुझे दुःख होता है या पहले हुआ था, उसी प्रकार अन्य प्राणियों को भी उनके द्रव्य के अपहरण से दुःख होता है और होगा, इस प्रकार आत्मानुभव से भावना करता हुआ अदत्तादान से विरत हो जाता है।

પુરૂષ-'પ્રાણાતિપાતથી વિરત થઈ જવું જ શ્રેયસ્કર છે' એવી ભાવના ભાવતો હિંસા આદિથી નિવૃત્ત થઈ જાય છે.

જેમ અસત્ય ભાષણથી મને મહાન્ દુઃખ થાય છે, તેવી જ રીતે બધાં પ્રાણિઓને અસત્ય ભાષણ અને મિથ્યાદોષારોપણથી આ લોકમાં ઘોર દુઃખની પ્રાપ્તિ થાય છે અસત્યભાષી જ્યાં પણ જન્મ લે છે ત્યાં જ તેને અસત્ય ભાષણ દ્વારા મિથ્યા આરોપોનો શિકાર થવું પડે છે અને સદૈવ ઘોર દુઃખોના પાત્ર બનવું પડે છે. આવી ભાવના રાખનાર પુરૂષ અસત્યભાષણથી વિરત થઈ જાય છે.

આવી જ રીતે તસ્કર વગેરે દ્વારા પ્રિય ધનનું અપહરણ થવાથી મને દુઃખ થાય છે અથવા તો અગાઉ થવું હતું તેવી જ રીતે અન્ય પ્રાણિઓને પણ તેમના દ્રવ્યના અપહરણથી દુઃખ થાય છે અને આ રીતે આત્માનુભવથી ભાવના કરતો થકો અદત્તાદાનથી વિરત થઇ જાય છે.

कत्वाद् हिंसादिवदेव दुःखजनकत्वेन लोकसमाजगर्हितत्वेन च दुःखजनकत्वं भावयन् तस्माद् विरतो भवति। अथ स्त्रीणामुपभोगे यतोऽधरपानादि संस्पर्शजनित सुखविशेषाऽनुभवएव लौकिकशास्त्रकारिभिः सडिण्डिमघुच्चैर्घुष्यते, संशब्यते, तदनुयायिभिश्च रागानुसारिभि र्वाद्यैरिव (गीयते) तत् किमिति तस्य दुःखात्मकत्वमितिचेत् ? अत्रोच्यते-यथा खलु क्षयकुष्ठादयो व्याधिविशेषाः भैषज्योपयोगेन, पथ्याऽऽसेवनेन चांऽशतः समुच्छिद्यमाना अपि पुनः पुनः उद्भवन्ति, एवं-कामदेवव्याधयोऽपि न खलु मैथुनसेवनेन सर्वथा शान्ताः अभवन् न वा भवन्ति भविष्यन्ति च। तथा चोक्तम्-

मैथुन भी राग-द्वेष मूलक है, हिंसा आदि के समान दुःख जनक है, लोक और समाज में गर्हित है, इस कारण दुःख जनक है, ऐसी भावना करने वाला उससे निवृत्त हो जाता है।

शंका—स्त्रियों के उपभोग में, उनके अधरपान आदि संस्पर्श से उत्पन्न होने वाला विशेष प्रकार का सुखानुभव ही लौकिक शास्त्रकार डिंडिमनाद के साथ उच्च स्वर से घोषित करते हैं और उनके अनुयायी रागानुसारी वाद्यों के जैसे उसका ही गान करते हैं। ऐसी स्थिति में उसे दुःखरूप कैसे कह सकते हैं ?

समाधान-जैसे क्षय एवं कोढ आदि व्याधियां औषध के प्रयोग से और पथ्य के सेवन से आंशिकरूप से मिट जाती हैं किन्तु वारंवार प्रकट हो उठती हैं, इसी प्रकार काम-व्याधि भी मैथुन-सेवन से न कभी पूरी तरह शान्त हुई है, न होती है और न होगी ही। कहा भी है-

મૈથુન પણ રાગ-દ્વેષમૂલક છે, હિંસા આદિની જેમ દુઃખજનક છે, લોક અને સમાજમાં તિરસ્કૃત છે. આ કારણે દુઃખજનક છે એવી ભાવના કરનાર તેનાથી નિવૃત્ત થઈ જાય છે.

શંકા—સ્ત્રીઓના ઉપભોગમાં, તેમના અધરપાન આદિ સંસ્પર્શથી ઉત્પન્ન થનો વિશેષ પ્રકારનો સુખાનુભવ જ લૌકિક શાસ્ત્રકાર ડિંડિમનાદની સાથે ઉચ્ચસ્વરથી ઘોષણા કરે છે અને તેમના શિષ્યો રાગાનુસારી વાદ્યોની જેમ તેમનું જ ગાન કરે છે. આવી સ્થિતિમાં તેને દુઃખરૂપ કેવી રીતે કહી શકાય ?

સમાધાન—જેવી રીતે ક્ષય અને કોઢ આદિ વ્યાધિઓ ઔષધના પ્રયોગથી અને પરહેજના સેવનથી આંશિક રૂપથી મટી જાય છે પરંતુ વારંવાર ઉથલા મારે છે, એવી જ રીતે કામ-વ્યાધિ પણ મૈથુન સેવનથી ક્યારેય પણ પૂર્ણતયા શાન્ત થયો નથી, અને ક્યારે પણ થશે નહીં કહ્યું પણ છે-

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।

हविषा कृष्णवर्त्मेव भूयो भूयो विवर्धते ॥१॥

इति, तस्मात्-कर्मणां क्षयोपशमादयः क्षेत्रकालद्रव्यभावापेक्षिणो नाऽत्यन्तिकं सुखमुत्पादयितुं समर्था भवन्ति, केवलं तेषां किञ्चित्कालार्थं दुःखप्रतिबन्धमात्र कारित्वात्, तस्मात्-मूढा स्तमवस्थाविशेषं वस्तुतो दुःखमपि सुखमभिमन्यन्ते। यथा-कण्डूयनं (गात्रखर्जनम्) कुर्वन् जनो दुःखमेव तदानीं सुखमभिमन्यते-मोहात्, तथा-मैथुनमुपसेवमानोऽपि मोक्षप्रतिबन्धकीभूताऽनन्ताऽनन्तसंसार-भ्रमणादि दुःखमेव (आपातरमणीयकम्) स्पर्शसुखमभिमन्यते, तस्मात्-मैथुनेऽपि दुःखभावनाभावितचेतसो मैथुनाद्विरतिर्भवति । एवम्-धनादिषु ममत्वरूप

'कामों के उपभोग से काम कदापि शान्त नहीं होता । यही नहीं, वरन् जैसे घृत डालने से अग्नि अधिक प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार काम सेवन से काम की अभिलाषा अधिकाधिक बढती ही जाती है ।

'कर्म के क्षयोपशम आदि क्षेत्र, काल, द्रव्य और भाव की अपेक्षा रखते है, उनसे आत्यन्तिक सुख की उत्पत्ति नहीं हो सकती । वास्तव में उनसे थोडे समय के लिए दुःख की रुकावट मात्र ही होती है। अतएव मूढ जन उस दुःख प्रतिबन्ध अवस्था को सुख मान लेते हैं। जैसे खाज खुजलाने वाला पुरुष उस समय दुःख को ही सुख समझता है, उसी प्रकार मैथुन का सेवन करने वाला पुरुष मोक्ष के विरोधी एवं अनन्तानन्त संसार भ्रमण के दुःख को जो आपातर-मणीय है-केवल ऊपरी दृष्टि से ही रम्य प्रतीत होता है, स्पर्शसुख

કામોના ઉપભોગથી કામ કદાપિ શાન્ત થતો નથી એટલું જ નહીં, પરન્તુ જેમ ઘી હોમવાથી અગ્નિ અધિક પ્રજ્વલિત થાય છે તેવી જ રીતે કામસેવનથી, કામની અભિલાષા અધિકાધિક વધતી જાય છે.

કર્મના ક્ષયોપશમ આદિ ક્ષેત્ર, કાળ, દ્રવ્ય અને ભાવની અપેક્ષા રાખે છે, તેનાથી આત્યન્તિક સુખની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી. વાસ્તવમાં તેમનાથી થોડા સમય માટે દુઃખનું રોકાણ માત્ર થાય છે આથી મૂઢ લોકો તે દુઃખ પ્રતિબન્ધ અલ્પ અવસ્થાને જ સુખ માની બેસે છે જેમ ખરજવાને ખંજોળ-નાર પુરૂષ તે સમયે દુઃખને જ સુખ સમજે છે તેવી જ રીતે મૈથુનનું સેવન કરનાર પુરૂષ મોક્ષના વિરોધી અને અનન્તાનન્ત સંસારભ્રમણના દુઃખને, જે આપાતરમણીય છે, માત્ર ઉપલકીયા દૃષ્ટિથી જ રમ્ય ભાસે છે, સ્પર્શસુખ

परिग्रहवान् जनोऽप्राप्तप्राप्त-नष्टेषु धनादिवस्तुषु क्रमशोऽभिलाषा-रक्षण-शोकोद्भवं दुःखमेव सर्वथा प्राप्नोति, तस्माद् अप्राप्तेषु वस्त्रादिवस्तुषु प्राप्त्यभिलाषां कुर्वन् तदनासादयन् दुःखमेवाऽनुभवति, प्राप्तेषु च तेषु राज-तस्कराऽनल-दायादमूषिकादिभ्यो रक्षणे सतत मुद्विग्नः सन् दुःखमेवासादयति, विनष्टेषु च तेषु परिग्रहेषु तद्वियोगजनितोऽसह्य स्मृत्यनुषङ्गलक्षणः शोकानलः सन्तापयति-नितराम्, तस्मात्-तेषु परिग्रहेषु दुःखमेव भावयतो जनस्य परिग्रहाद् विरमो

समझता है। इस कारण जो मैथुन में दुःखरूपता की भावना करता है वह मैथुन से विरत हो जाता है।

इसी प्रकार धनादि में ममत्व रखने वाला परिग्रही जन धन आदि की अप्राप्ति में उसकी अभिलाषा जनित दुःख का अनुभव करता है, उसके प्राप्त होने पर उसकी रक्षा का दुःख उठाता है और रक्षा करते-करते भी जब उसका विनाश हो जाता है तो वियोग जन्य शोक का अनुभव करता है। जब धनादि प्राप्त नहीं होते और उनको प्राप्त करने की अभिलाषा होती है तो दुःख का अनुभव होता है। जब उनकी प्राप्ति हो जाती है तब राजा, चोर, अग्नि, मूषिक और भागीदारों आदि से रक्षा करने में उद्विग्न होकर दुःख का ही अनुभव करता है। और जब वह धन आदि नष्ट हो जाता है तो उसके वियोग की असह्य शोकाग्नि उसे सन्तप्त करती है। अतएव परिग्रह में दुःख ही है, ऐसी भावना करने वाला पुरुष परिग्रह से उपरत होजाता है।

સમજે છે. આ કારણે જે મૈથુનમાં દુઃખરૂપતાની ભાવના કરે છે તે મૈથુનથી વિરત થઇ જાય છે.

એવી જ રીતે ધનાદિમાં મમત્વ રાખનાર પરિગ્રહીજન ધન વગેરેની અપ્રાપ્તિમાં તેની અભિલાષાનું દુઃખ અનુભવે છે, તેની પ્રાપ્તિ થવાથી તેના રક્ષણનું દુઃખ ભોગવે છે અને રક્ષણ કરવા છતાં પણ જ્યારે તેનો વિનાશ થઇ જાય છે ત્યારે વિયોગજન્ય શોકનો અનુભવ કરે છે. જ્યારે ધન આદિ પ્રાપ્ત થતા નથી અને તેમને મેળવવાની અભિલાષા થય છે ત્યારે દુઃખનો અનુભવ થાય છે. જ્યારે તેમની પ્રાપ્તિ થઇ જાય છે ત્યારે રાજા, ચોર, અગ્નિ ઉંદર અને ભાગીદારો વગેરેથી તેનું રક્ષણ કરવામાં 'ઉદ્વિગ્ન' થઈ દુઃખનો જ અનુભવ કરે અને જ્યારે તે ધન આદિ નષ્ટ થઇ જાય છે ત્યારે તેના વિયોગનો અસહ્ય શોકાગ્નિ તેને પ્રજવાળે છે આથી પરિગ્રહમાં દુઃખ જ છે, એવી ભાવના રાખનાર પુરૂષ પરિગ્રહથી મુક્ત થઇ જાય છે.

भवति, एवं-रीत्या प्राणातिपाताऽनृतभाषण-स्तेयाऽब्रह्मपरिग्रहेषु दुःखमेव भावयतो व्रतिनः पञ्चव्रतेषु स्थिरत्वालक्षण दृढता भवतीति भावः। उक्तञ्च-स्थानाङ्गे ४ स्थाने २ उद्देशके २८२-सूत्रे-'संवेगिणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा-इहलोगसंवेगिणी, परलोगसंवेगिणी, आयसरीर संवेगिणी परसरीरसंवेगिणी। णिव्वेयणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा-इहलोगे दुच्चिण्णा कम्मा इहलोगे दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति १ इहलोगे दुच्चिन्ना कम्मापरलोगे दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति२ परलोगे दुच्चिण्णा कम्मा इहलोगे दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति३ परलोगे दुच्चिण्णा कम्मा परलोगे दुहविवागफलसंजुत्ता भवंत्ति४ इहलोगे सुच्चिन्ना कम्मा इहलोगे सुहफलविवागसंजुत्ता भवंति१ इहलोगे सुच्चिण्णा कम्मा परलोगे सुहफलविवाग संजुत्ता भवंति २ एवं चउभंगो'

संवेगिनी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता तद्यथा-इहलोगसंवेगिनी, परलोकसंवेगिनी, आत्मशरीरसंवेगिनी, परशरीरसंवेगिनी, निर्वेदिनी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-इहलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि-इहलोके दुःखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति१ इहलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि परलोके दुःखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति २

इस प्रकार प्राणातिपात, मृषाभाषण, स्तेय, अब्रह्मचर्य और परिग्रह में जो दुःख की ही भावना करता है वह व्रती पांचों व्रतों में स्थिर होता है। स्थानांगसूत्र के चौथे स्थान के द्वितीय उद्देशक में कहा है-

'संवेगिनी कथा चार प्रकार की कही गई है, यथा-(१) इह लोक संवेगिनी (२) परलोकसंवेगिनी (३) स्वशरीरसंवेगिनी और (४) परशरीरसंवेगिनी। इसी प्रकार निर्वेदनी कथा भी चार प्रकार की कही गई है, यथा-(१) इस लोक में किये गये खोटे कर्म इसी लोक में दुःख रूप फल विपाक को उत्पन्न करते हैं (२) इस लोक में किये गये खोटे कर्म

આવી રીતે પ્રાણાતિપાત, મૃષાભાષણ, સ્તેય, અબ્રહ્મચર્ય અને પરિગ્રહમાં, જે દુઃખની જ ભાવના કરે છે તે વ્રતી પાંચે વ્રતોમાં સ્થિર થાય છે. સ્થાનાંગસૂત્રના ચોથા સ્થાનના દ્વિતીય ઉદ્દેશકમાં કહ્યું છે-

'સંવેદિની કથા ચાર પ્રકારની કહેવામાં આવી છે. જેવી કે-(૧) ઈહલોકસંવેદિની (૨) પરલોકસંવેદિની (૩) સ્વશરીરસંવેદિની અને (૪) પરશરીરસંવેદિની એવી જ રીતે નિર્વેદિની કથા પણ ચાર પ્રકારની કહેવામાં આવી છે જેવી કે-(૧) આ લોકમાં કરવામાં આવેલા ખોટા કર્મો આ જ લોકમાં દુઃખરૂપ ફળવિપાકને ઉત્પન કરે છે. (૨) આ લોકમાં કરેલા ખોટાં

परलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि इहलोके दुःखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति ३ परलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि परलोके दुःख फलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति ४ इहलोके सुचीर्णानि कर्माणि इहलोके सुख फलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति १ इहलोके सुचीर्णानि कर्माणि परलोके सुखफलविपाकसंयुक्तानि २ एवं चतुर्भङ्गः। तथा च-परलोके सुचीर्णानि कर्माणि इहलोके सुखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति ३ परलोके सुचीर्णानि कर्माणि परलोके सुख फलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति ४ इत्येवं चत्वारो भङ्गाः सुचीर्णकर्मफलविपाकानां बोध्याः। संवेद्यते-संवेग्यते संसाराऽसारतामदर्शनेन मोक्षाभिलाष उत्पाद्यतेऽनयेति संवेदिनी-संवेगिनी, तत्र-या कथा संसारस्यासारतां प्रदर्श्य भव्यजीवेषु मोक्षाभिलाषां जनयति सा-संवेगिनी

परलोक में दुःख उत्पन्न करते हैं (२) परलोक में किये गये खोटे कर्म इस लोक में दुःख उत्पन्न करते हैं और (४) परलोक में किये गये खोटे कर्म परलोक में दुःख उत्पन्न करते हैं। एवं (१) इस लोक में किये गये सुकृत इसी लोक में सुख रूप फल प्रदान करते हैं (२) इस लोक में किये गये सुकृत परलोक में सुखरूप विपाक उत्पन्न करते हैं (३) परलोक में किये गये सुकृत इस लोक में सुख उत्पन्न करते हैं और (४) परलोक में किये गये सुकृत परलोक में सुख उत्पन्न करते हैं।

जो कथा अर्थात् धर्मदेशना संसार की असारता प्रदर्शित करके मोक्ष की अभिलाषा उत्पन्न करती है वह संवेगिनी या संवेदिनी कथा कहलाती है। इस प्रकार जो कथा संसार की असारता प्रदर्शित करके भव्यजीवों में मोक्ष की अभिलाषा उत्पन्न करती है, उसे संवेगिनी

કર્મો પરલોકમાં દુઃખ ઉત્પન્ન કરે છે. (૩) પરલોકમાં કરવામાં આવેલા ખોટાં કર્મો આ લોકમાં દુઃખ ઉત્પન્ન કરે છે અને (૪) પરલોકમાં કરવામાં આવેલા ખોટા કર્મો પરલોકમાં દુઃખ ઉત્પન્ન કરે છે અને (૧) આ લોકમાં કરેલા સુકૃત્યો આ લોકમાં સુખરૂપ ફળ પ્રદાન કરે છે. (૨) આ લોકમાં કરેલા સુકૃત્યો પરલોકમાં સુખરૂપ વિપાક ઉત્પન્ન કરે છે. (૩) પરલોકમાં કરવામાં આવેલા સુકૃત્યો આ લોકમાં સુખ ઉત્પન્ન કરે છે અને (૪) પરલોકમાં કરવામાં આવેલા સુકૃત્યો પરલોકમાં સુખ ઉત્પન્ન કરે છે.

જે કથા અર્થાત્ ધર્મદેશના સંસારની અસારતા પ્રદર્શિત કરીને મોક્ષની અભિલાષા ઉત્પન્ન કરે છે તે સંવેદિની કથા કહેવાય છે. એ રીતે જે કથા સંસારની અસારતા પ્રદર્શિત કરીને ભવ્યજીવોમાં મોક્ષની અભિલાષા ઉત્પન્ન કરે છે તેને સંવેદિની કથા સમજવી જોઈએ જેવી રીતે

बोध्या, यथा-मल्लीकुमारी स्वस्यामनुरक्तान् षडपि भूमिपालान् विज्ञाय तेभ्यः संसारासारतां प्रदर्श्य विनीय मोक्षाभिलाषं जनयामास । तथा चोक्तम्-

यस्याः श्रवणमात्रेण मुक्ति वाञ्छा प्रजायते ।
संवेदिनी यथा मल्ली षड् नृपान् प्रत्यबोधयत् ॥१॥

निर्विद्यते विषयभोगेभ्यो विरज्यते श्रोताऽनयेति निर्वेदिनी । तथाचोक्तम्-

यदाकर्णनमात्रेण वैराग्यमुपजायते ।
निर्वेदिनी यथा शालिभद्रो वीरेण बोधितः ॥१॥

यस्याः कथायाः श्रवणमात्रेणैव वैराग्यमुपजायते, सा निर्वेदिनी कथा धर्मकथा प्रोच्यते, यथा-भगवान् महावीरः शालिभद्रं प्रतिबोधितवान् इति ॥५७॥

मूलम्-सत्तसमूयगुणाहिगकिलिस्समाणा विणएसु मित्तिप्पमोय कारुण्णामज्झत्थाइं ॥५८॥

कथा समझना चाहिए, जैसे कुमारी मल्ली ने छह राजाओं को अपने ऊपर अनुरक्त जान कर, उन्हें संसार की असारता दिखलाकर मोक्ष की अभिलाषा उत्पन्न की थी । कहा भी है-

'जिस कथा के सुनने मात्र से मुक्ति की अभिलाषा उत्पन्न होती है, वह संवेदिनी कथा कहलाती है, जैसे मल्ली कुमारी ने छह राजाओं को प्रतिबोध दिया ॥१॥

जिस कथा के द्वारा श्रोता विषयभोगों से विरक्त होता है वह निर्वेदिनी कथा कहलाती है । कहा भी है-

'जिस कथा के श्रवण मात्र से वैराग्य की उत्पत्ति होती है, वह निर्वेदिनी कथा कहलाती है, जैसे भगवान् महावीर ने शालिभद्र को प्रतिबोध दिया ॥५७॥

કુમારી મલ્લીએ છ રાજાઓને પોતાની ઉપર અનુરક્ત જાણીને, તેમને સંસારની અસારતા બતાવીને મોક્ષની અભિલાષા ઉત્પન્ન કરી હતી કહ્યું પણ છે-

'જે કથાને સાંભળવા માત્રથી મોક્ષની અભિલાષા ઉત્પન્ન થાય છે, તે સંવેદિની કથા કહેવાય છે, જેવી રીતે મલ્લીકુમારીએ ૬ (છ) રાજાઓને પ્રતિબોધ આપ્યો. ॥૧॥

જે કથા દ્વારા શ્રોતા વિષયભોગોથી વિરકત થાય છે તે નિર્વેદિની કથા કહેવાય છે કહ્યું પણ છે-

'જે કથાના શ્રવણમાત્રથી વૈરાગ્યની ઉત્પત્તિ થાય છે, તે નિર્વેદિની કથા કહેવાય છે જેવી રીતે ભગવાન મહાવીરે શાલિભદ્રને ઉપદેશ આપ્યો. ॥૫૭॥

छाया—सर्वभूतगुणाधिक क्लिश्यमानाऽविनयेषु मैत्रीप्रमोद कारुण्य माध्य स्थानि ॥५८॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे हिंसादि निवृत्तिलक्षण पञ्चव्रत साधारणतया प्राणातिपातादिषु, इहाऽमुत्र घोरदुःखभावना च प्ररूपिता, सम्प्रति–तद्व्रतस्यैव दार्ढ्यार्थं सर्व सत्त्वादिषु मैत्र्यादि भावनाः प्ररूपयितुमाह–'सव्वभूय०' इत्यादि। सर्वभूत गुणाधिकक्लिश्यमानाऽविनयेषु मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि, इति। तत्र–सर्वभूतेषु सर्वप्राणिषु मैत्रीं भावयेत्, गुणाधिकेषु स्वाऽपेक्षयाऽधिकगुणवत्सु प्रमोदं–हर्षातिशयं भावयेत्, क्लिश्यमानेषु–क्लेशमनुभवत्सु च कारुण्यं–दया·

'सव्वभूयगुणाहिग' इत्यादि।

सूत्रार्थ--सर्व प्राणियों पर मैत्री, अधिक गुणवानों पर प्रमोद, क्लेश पाते हुओं पर करुणा और अविनीतों पर मध्यस्थ भाव धारण करना चाहिए ॥५८॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्व सूत्र में हिंसाविरमण आदि पांचों व्रतों की साधारण भावना अर्थात् हिंसा आदि में इस लोक में और परलोक में घोर दुःख का विचार करना ऐसी भावना का प्ररूपण किया गया, अब उसी व्रत की दृढता के लिए मैत्री आदि भावनाओं का प्ररूपण करते हैं–

सर्वभूत, गुणाधिक, क्लिश्यमान और अविनीत पर अनुक्रम से मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य भाव रखना चाहिए। अर्थात् समस्त प्राणियों पर मैत्री भावना भावे, अपने से अधिक गुणवानों पर

'सव्वभूयगुणाहिग' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ–સર્વ પ્રાણિઓ પ્રતિ મૈત્રી, અધિક ગુણવાનો પર પ્રમોદ, કલેશ પામનારાઓ પર કરૂણા અને અવિનીતો પર મધ્યસ્થ ભાવ ધારણ કરવો જોઈએ ॥૫૮॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં 'હિંસવિરમણ આદિ પાંચે' વ્રતોની સાધારણ ભાવના અર્થાત્ હિંસા આદિમાં આ લોકમાં અને પરલોકમાં ઘોર દુઃખનો વિચાર કરવો–એવી ભાવનાનું પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે તે જ વ્રતની દૃઢતા માટે મૈત્રી આદિ ચાર ભાવનાઓનું વિવેચન કરીએ છીએ–

સર્વભૂત, ગુણાધિક, કિલશ્યમાન અને અવિનીત પર અનુક્રમથી મૈત્રી, પ્રમોદ, કારૂણ્ય અને માધ્યસ્થ ભાવ રાખવો જોઈએ અર્થાત્ સમસ્ત પ્રાણિઓ પર મૈત્રી ભાવના ભાવે, પોતાના કરતાં અધિક ગુણવાનો પર પ્રમોદ ભાવના

दाक्षिण्यं भावयेत, अविनयेषु-अविनीतेषु शठेषु च माध्यस्थ्यम् औदासीन्यम् उपेक्षावृत्ति भावयेत, एवं विध मैत्र्यादि भावयद्भिः सर्वैः सह वैरादिकं विनष्टं भवति इति भावः तथाचोक्तम्-

सत्त्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोदं-क्लिष्टेषु-जीवेषु दयापरत्वम् ।
माध्यस्थ्यभावं विपरीतवृत्तौ-सदा ममाऽऽत्माविदधातु धीरः
(देव ?) ।१। इति ।५८।।

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं प्राणातिपातादि विरतिलक्षण पञ्चव्रतानां स्थिरतार्थं सर्वसाधारणतया हिंसादिषु ऐहिक-पारलौकिकाऽपायाऽवद्य दर्शनरूपा भावना दुःखभावना च प्ररूपिता, सम्प्रति-तेषामेव व्रतानां परम्परया स्थिरता सम्पा-

---

प्रमोद भावना भावे अर्थात् उन्हें देख कर अतिशय हर्ष का अनुभव करे, जो जीव क्लेश का अनुभव कर रहे हैं उनके प्रति करुणा भाव का अनुभव करे और जो अविनीत अर्थात् शठ हैं, उनके प्रति मध्यस्थता, उदासीनता या उपेक्षा वृत्ति धारण करे। इस प्रकार मैत्रीभाव आदि धारण करने से किसी के प्रति बैर-विरोध नहीं रहता। कहा भी है-

'प्रभो! मेरी आत्मा प्राणी मात्र के प्रति मैत्रीभाव धारण करे, गुणी जनों के प्रति प्रमोद भाव धारण करे, क्लेश भोगने वालों पर करुणा भाव धारण करे और विपरीत आचरण करने वालों पर मध्यस्थता का भाव धारण करे ।।५८।।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले प्राणातिपातविरमण आदि पांच व्रतों की स्थिरता के लिए हिंसा आदि में अपाय एवं अवद्यदर्शन भावना और दुःख भावना का निरूपण किया गया, अब उन्हीं व्रतों की परम्परा से

ભાવે અર્થાત્ તેમને જોઇને અતિશય હર્ષ અનુભવે, જે જીવ કલેશનો અનુભવ કરી રહ્યાં છે તેમના પ્રતિ કરૂણાભાવનો અનુભવ કરે અને જેઓ અવિનીત અર્થાત્ શઠ છે તેમના તરફ મધ્યસ્થતા ઉદાસીનતા અથવા ઉપેક્ષાવૃત્તિ ધારણ કરે આ રીતે મૈત્રીભાવ આદિ ધારણ કરવાથી કોઈની પ્રત્યે વેર-વિરોધ રહેતો નથી કહ્યું પણ છે-

'પ્રભો! મારો આત્મા પ્રાણીમાત્ર પ્રતિ મૈત્રીભાવ ધારણ કરે, ગુણિજનોની તરફ પ્રમોદભાવ ધારણ કરે, કલેશ ભોગવનારા પર કરૂણાભાવ ધારણ કરે અને વિપરીત આચરણ કરનારાઓ પર મધ્યસ્થતાનો ભાવ ધારણ કરે. ।।૫૮।।

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—આની અગાઉ પ્રાણાતિપાત વિરમણ આદિ પાંચ વ્રતોની સ્થિરતા માટે હિંસા આદિમાં અપાય અને અવદ્યદર્શનભાવના અને

दनार्थं सर्वभूतादिषु मैत्र्यादिभावनाः प्रतिपादयितुमाह-'सत्त्वमनुग' इत्यादि। सर्वभूतगुणाधिक क्लिश्यमानाऽविनयेषु मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि इति, तत्र-यथाक्रमं सर्वसत्त्वेषु मैत्रीम् १ गुणाधिकेषु प्रमोदम् २ क्लिश्यमानेषु कारुण्यम् ३ अविनयेषु माध्यस्थ्यञ्च भावयेतेति बोध्यम्। तत्र मेद्यति-स्निह्यति इति मित्रम् तस्य भावो मैत्री परहितचिन्तारूपा, सकलप्राणिविषय आत्मनः स्नेह परिणामः, प्रमादाद् अन्यथा कृतापकारेष्वपि प्राणिषु मित्रतां हृदये निधाय 'अहमेतस्य मित्रमस्मि' एतेच मम मित्राणि सन्ति इति 'नाऽहं मित्रद्रोहित्वं प्रतिपत्स्ये' मित्रद्रोहित्वस्य दुर्जनाश्रयत्वात्। तस्मात्-'सर्वप्राणिनोऽहं क्षमे' इति सर्व

स्थिरता के लिए सर्वभूत आदि में मैत्री आदि भावनाओं का प्रतिपादन करते हैं।

सर्वभूत, गुणाधिक, क्लिश्यमान और अविनीतों के प्रति मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थभाव धारण करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि समस्त प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव धारण करे अपने से अधिक गुणवान् जनों के प्रति प्रमोदभाव धारण करे, जो क्लेश के पात्र बने हुए हैं उनके प्रति करुणाभाव धारण करे और अविनीत जनों पर मध्यस्थभाव धारण करे।

पर के हित का चिन्तन करना मैत्री है अर्थात् समस्त जीवों के प्रति अपना स्नेहभाव होना। अगर कोई जीव प्रमाद के कारण किसी प्रकार का अपकार करें तो भी उनके ऊपर मैत्री भाव धारण करके 'मैं इनका मित्र हूं और ये मेरे मित्र हैं. मैं मित्रद्रोह नहीं करूंगा

દુઃખભાવનાનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે તે જ વ્રતોની પરમ્પરાથી સ્થિરતા માટે સર્વભૂત આદિમાં મૈત્રી વગેરે ભાવનાઓનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ-

સર્વભૂત, ગુણાધિક, ક્લિશ્યમાન અને અવિનીતોના પ્રતિ મૈત્રી, પ્રમોદ, કારૂણ્ય અને માધ્યસ્થભાવ ધારણ કરવા જોઇએ તાત્પર્ય એ છે કે સમસ્ત પ્રાણિઓ તરફ મૈત્રીભાવ ધારણ કરે, પોતાના કરતાં અધિક ગુણવાન્ જનો તરફ પ્રમોદભાવ ધારણ કરે, જેઓ કલેશના પાત્ર બનેલા છે તેમના પ્રત્યે કરૂણાભાવ ધારણ કરે અને અવિનીત જનો પ્રત્યે મધ્યસ્થભાવ ધારણ કરે.

બીજાના હિતનું ચિન્તન કરવું મૈત્રી છે અર્થાત્ સમસ્ત જીવો તરફ પોતાનો સ્નેહભાવ હોવો અગર કોઈ પ્રમાદના કારણે કોઈ જાતનો અપકાર કરે તો પણ તેમના પર મૈત્રીભાવ ધારણ કરીને 'હું એમનો મિત્ર છું અને આ મારો મિત્ર છે, હું મિત્રદ્રોહ કરીશ નહીં' કારણ કે મિત્રનો દ્રોહ કરવો

सत्त्वान् प्रतिभावयेत् 'सम्यग्मनोवचनकायैः सर्वसत्त्वानहं सहे' इत्येवं भावनया मित्रता यथार्थतयाऽऽसाद्यते। ये च मयापकृताः प्राणिन स्तानपि मित्रत्वत्वात् क्षमेऽहम्, तथा च सर्वप्राणिषु मम मैत्री वर्तते न केनापि मम वैरमिति, स चैव वैरानुबन्धः प्रसृतप्रत्यवायशाखाशतसंबाधो मात्सर्यविषयोदयो भूयोभूयो विच्छिन्नबीजाङ्कुर प्रसवसमर्थोऽपि तीक्ष्ण प्रज्ञाविवेकाऽसिधाराच्छेद्य स्तिरस्कृत निखिलशेषहेतुरपि मैत्रीभावनया निरवशेषं समूलघातं प्रतिहन्तव्यः इति बोध्यम् । एव-सम्यक्त्वादि गुणाधिकेषु प्रतिषु प्रमोदं-हर्षातिशयं भावयेत् ।

क्यों कि मित्र का द्रोह करना दुर्जनता का लक्षण है अतएव मैं सब प्राणियों को क्षमा करता हूं' इस प्रकार की समस्त जीवों के प्रति भावना करे। 'मैं सम्यक् मन वचन काय से समस्त प्राणियों को सहन करता हूं, ऐसी भावना से वास्तविक मित्रता की प्राप्ति होती है। और जिन प्राणियों का मैंने अपकार किया है, मित्र होने के कारण मैं उनसे खमाता हूं। मेरा समस्त प्राणियों पर मैत्रीभाव है, किसी के साथ वैरभाव नहीं है। यह वैरानुबंध जब बढता है तो इसमें से सैकडों अनर्थों की शाखा-प्रशाखाएं फूटती हैं, मात्सर्य आदि दोषों की उत्पत्ति होती है, इसके अंकुर तीक्ष्ण प्रज्ञा एवं विवेक रूपी तलवार की धार से ही काटे जा सकते हैं और किसी कारण से उसका उच्छेद नहीं हो सकता। इसका समूल विनाश मैत्री भावना के द्वारा ही करना चाहिए।

इसी प्रकार जो सम्यक्त्व आदि गुणों में अधिक हैं, उनके प्रति

દુર્જનતાનું લક્ષણ છે. આથી હું બધાં પ્રાણિઓને ક્ષમા આપું છું" આ પ્રકારની સમસ્ત જીવો તરફ ભાવના રાખે 'હું સમ્યક્ મન વચન કાયાથી સમસ્ત પ્રાણિઓને સહન કરૂં છું" એવી ભાવનાથી વાસ્તવિક મિત્રતની પ્રાપ્તિ થાય છે અને જે પ્રાણિઓનો મેં અપકાર કર્યો છે, મિત્રના નાતે હું તેમનાથી ક્ષમાપના મેળવું છું મારો સમસ્ત પ્રાણિઓ પર મૈત્રીભાવ છે, કોઈની સાથે વેરભાવ નથી. આ વેરાનુબંધ જ્યારે વધે છે ત્યારે એમાંથી સેંકડો અનર્થોની શાખા-પ્રશાખાઓ ફૂટી નીકળે છે, માત્સર્ય આદિ દોષોની ઉત્પત્તિ થાય છે, આના અંકુર તીક્ષ્ણ પ્રજ્ઞા અને વિવેક રૂપી તરવારની ધાર વડે જ કાપી શકાય છે બીજા કોઈ કારણે તેનું ઉચ્છેદન થઈ શકતું નથી. આનો જડમૂળથી વિનાશ મૈત્રીભાવના દ્વારા જ કરવો જોઈએ

એવી જ રીતે જેઓ સમ્યક્ત્વ આદિ ગુણોમાં અધિક છે તેમના પ્રત્યે

तत्र प्रमोद स्तावद्–वन्दनस्तवनप्रशंसनवैयावृत्त्यकरणादिभिः सम्यक्त्वज्ञान-चारित्रतपोऽधिकेषु मुनिवरेषु स्व, पर, तदुभय कृतसम्मानजन्यः सर्वेन्द्रियाभि व्यक्त आनन्दातिरेक उच्यते। तत्र सम्यक्त्वं तावत्–तत्त्वार्थश्रद्धानस्वरूपं बोध्यम्, ज्ञानञ्चे–ष्टाऽनिष्टप्रवृत्तिनिवृत्तिविषयकं बोधरूपं, चारित्रञ्च–मूलोत्तर-गुणभेदम्, तपश्च–बाह्याभ्यन्तरभेदेन द्विविधमवसेयम्, एतैश्चोपर्युक्तलक्षणैः सम्य-क्त्वादिभिः श्रावकापेक्षया विशिष्टेषु श्रमणेषु स्वेन परेण तदुभाभ्यां वा कृत-वन्दनादिना मुनिजनगुणोत्कीर्तनसमये–एकतान श्रवणसमुत्फुल्लनयनाविर्भूत-

---

प्रमोद अर्थात् हर्ष के अतिरेक को धारण करे अर्थात् गुणी जनों को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हो। जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अथवा तप में अधिक–अपने से ऊंचे हैं उनका यथोचित वन्दन, स्तवन, प्रशंसा, वैयावृत्य आदि करना, आदर–सत्कार करना और सब इन्द्रियों से आनन्द की अधिकता को व्यक्त करना प्रमोद कहलाता है। इनमें से सम्यक्त्व का अर्थ है तत्वार्थ का श्रद्धान करना। इष्ट में प्रवृत्त और अनिष्ट से निवृत्त होने के बोध को ज्ञान कहते हैं और मूलगुणों और उत्तरगुणों को चारित्र कहते हैं। बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से तप के दो भेद हैं। इन सम्यक्त्व आदि गुणों में जो अपने से अधिक उत्कृष्ट हैं, उनके प्रति मानसिक हर्ष प्रकट करना प्रमोद है। एक श्रावक की अपेक्षा दूसरा श्रावक और एक मुनि की अपेक्षा दूसरा मुनि इन गुणों में अधिक होता है। श्रावक की अपेक्षा मुनि में ये गुण अधिक पाये ही जाते हैं। मुनिजन के गुणोत्कीर्त्तन के

પ્રમોદ અર્થાત્ હર્ષના અતિરેકને ધારણ કરે અર્થાત્ ગુણીજનોના દર્શનથી અત્યન્ત પ્રસન્ન થાય જે સમ્યક્દર્શન, જ્ઞાન, ચારિત્ર અથવા તપમાં અધિક–પોતાનાથી વધારે હોય તેમનું યથોચિત વંદન સ્તવન, પ્રશંસા, વૈયાવૃત્ય, વગેરે કરવા, આદર–સત્કાર કરવા અને બધી ઇન્દ્રિયોથી આનંદની પરાકાષ્ઠાને વ્યક્ત કરવી, પ્રમોદ કહેવાય છે. આમાંથી સમ્યક્ત્વનો અર્થ છે તત્ત્વાર્થની શ્રદ્ધા કરવી ઇષ્ટમાં પ્રવૃત્તિ અને અનિષ્ટથી નિવૃત્ત થવાના બોધને જ્ઞાન કહે છે અને મૂળગુણો તથા ઉત્તરગુણોને ચારિત્ર કહે છે. બાહ્ય અને આભ્યન્તરના ભેદથી તપના બે ભેદ છે, આ સમ્યક્ત્વ આદિ ગુણોમાં જે પોતાના કરતાં અધિક ઉત્કૃષ્ટ છે તેમના પ્રત્યે માનસિક હર્ષ પ્રગટ કરવો પ્રમોદ છે એક શ્રાવકની અપેક્ષા બીજો શ્રાવક અને એક મુનિની અપેક્ષા બીજા મુનિ આ ગુણોમાં અધિક હોય છે શ્રાવકની અપેક્ષા મુનિમાં આ ગુણ અવશ્ય અધિક જોવા મળે છે. મુનિજને ગુણોત્કીર્ત્તન વેળાએ એકાગ્ર થઈને

रोमाञ्चकञ्चुकितगात्रयष्ट्यादि लिङ्गेन प्रकटितो मनःप्रहर्षः प्रमोदो व्यपदिश्यते तं भावयेदिति। एवं-क्लेशमनुभवत्सु क्लिश्यमानेषु दीनेषु-अनाथबालवृद्धादिषु कारुण्यं भावयेत्, तत्र-कारुण्यं खल्वनुकम्पारूप मुच्यते, दीनोपरि-अनुग्रहो दयादृष्टिः दीनत्वञ्च-मानसिकशारीरिकदुःखैरभिभूतत्वं बोध्यम्। तत्र-करुणाक्षेत्रेषु सत्त्वेषु मिथ्यादर्शनाऽनन्तानुबन्ध्यादिरूप महामोहाभिभूतेषु मतिश्रुतविभङ्गज्ञान व्याप्तेषु इष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारवर्जितेषु-अनेकदुःखपीडितेषु दीनकृपणाऽनाथ-बालवृद्धादिषु-अविच्छिन्नं कारुण्यं भावयेत्, तथाविधं कारुण्यं भावयंश्च मोक्षोपदेशदेश-कालापेक्ष वस्त्रान्नपानमतिश्रयौषधादिभिस्तानुगृह्णीयात् इति।

समय एकाग्र होकर श्रवण करना नेत्रों का खिल उठना, समस्त शरीर में रोमांच प्रकट होना, इत्यादि चिह्नों से मानसिक हर्ष प्रकट होना है। इस प्रमोद से आत्मा को भावित करे।

जो क्लेश-कष्ट का अनुभव कर रहे हों, ऐसे दुःखी, दीन, अनाथ और वृद्ध आदि पर करुणा भाव से आत्मा को भावित करे। कारूण्य का अर्थ है अनुकम्पा, दीन प्राणी पर अनुग्रह, दयादृष्टि। जो शारीरिक या मानसिक दुःखों से पीडित हैं वे दीन कहलाते हैं। इनमें से जो प्राणी मिथ्यादर्शन तथा अनन्तानुबंधी आदि महामोह से ग्रस्त हैं, कुमति कुश्रुत और विभंग ज्ञान से व्याप्त हैं, जो इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहार नहीं कर सकते और अनेक दुःखों से पीडित हैं, जो दीन, कृपण, अनाथ, बाल और वृद्ध हैं, उनके प्रति निरन्तर करुणा की भावना करनी चाहिए और करुणा की भावना

શ્રવણ કરવું, આંખોનું નાચી ઉઠવું, સમસ્ત શરીરમાં રોમાંચ જાગૃત થવો ઈત્યાદિ ચિહ્નોથી આ માનસિક હર્ષ પ્રગટ થાય છે. આ પ્રમોદથી આત્માને ભાવિત કરવો જોઈએ.

જેઓ કલેશ-કષ્ટનો અનુભવ કરી રહ્યા હોય એવા દીન, દુઃખી અનાથ અને વૃદ્ધ આદિ પર કરૂણા ભાવથી આત્માને ભાવિત કરવો. કારૂણ્યનો અર્થ છે અનુકમ્પા, દીનપ્રાણી પર અનુગ્રહ, કૃપાદૃષ્ટિ જેઓ શારીરિક અથવા માનસિક વ્યથાઓથી પીડિત છે તેઓ દીન કહેવાય છે. આમાંથી જે પ્રાણી મિથ્યાદર્શન તથા અનન્તાનુબંધી આદિ મહામોહથી ગ્રસ્ત છે, કુમતિ, કુશ્રુત અને વિભંગ જ્ઞાનથી વ્યાપ્ત છે, જેઓ ઈષ્ટ પ્રાપ્તિ અને અનિષ્ટ પરિહાર કરી શકતા નથી અને અનેક દુઃખોથી પીડિત છે, જેઓ દીન, કૃપણ, બાલ તેમજ વૃદ્ધ છે, તેમના તરફ હરહમેશ કરૂણાની ભાવના ભાવવી જોઈએ

अविनेयेषु शठेषु जनेषु माध्यस्थ्यम्-औदासीन्यम्-उपेक्षां भावयेत्। तत्र-विनीयन्ते शिक्षां ग्राहयितुं शक्यन्ते ये ते विनेयाः शिक्षार्हाः, ये तथा न भवन्ति तेऽविनेयाः शिक्षाऽनर्हाः उच्यन्ते। चेतनाः अपि काष्ठ-कुडयाऽश्मसन्निभाः ग्रहणधारणेहाऽपोहशून्याः मिथ्यादर्शनाभिभूताः दुष्टजनविप्रलब्धा उच्यन्ते, तेष्वौदासीन्यं भावयेत्, तेषु-सदुपदेशादिकं शुष्कदीनभित्तिदोषरभूमिषु, उप्तमपि न किमपि फलाधायकं भवति, तस्मात्-तेषूपेक्षैव कर्तव्येति भावः।

तथाचोक्तम्-परहितचिन्ता मैत्री, परदुःखनिवारणं तथा करुणा।

परसुखतोषो मोदः, परदोषोपेक्षणमुपेक्षा ॥१॥ इति

करते हुए उन्हें मोक्ष का उपदेश देना चाहिए, देश-कालोचित वस्त्र, अन्न, पानी, आवास तथा औषध आदि से उन पर अनुग्रह करना चाहिए।

जो अविनेय-शठ हैं उन पर माध्यस्थ्य भाव धारण करना चाहिए। जो शिक्षा ग्रहण करने योग्य हों वे विनेय कहलाते हैं और जो शिक्षा के योग्य न हों वे अविनेय कहे जाते हैं अर्थात् जो सचेतन होते हुए भी काठ, दीवाल एवं पाषाण के समान ग्रहण, धारण, ईहा, अपोह से शून्य हैं, मिथ्यादर्शन से ग्रस्त हैं और दुष्ट जनों द्वारा बहकाये हुए हैं, उन्हें अविनेय समझना चाहिए। ऐसे जनों पर उदासीन भाव धारण करे। जैसे ऊषर भूमि में डाला हुआ बीज निष्फल होता है, उसी प्रकार ऐसे लोगों को दिया हुआ उपदेश व्यर्थ जाता है। उसका कुछ भी फल नहीं होता, अतएव उन पर उपेक्षाभाव धारण

અને કરૂણાની ભાવના કરતા થકા તેઓને મોક્ષનો ઉપદેશ આપવો જોઈએ, દેશ-કાળ પ્રમાણે વસ્ત્ર, અનાજ, પાણી, આવાસ તથા ઔષધ આદિ દ્વારા તેમના પર અનુગ્રહ કરવો જોઈએ.

જેઓ અવિનયી-શઠ છે તેમના તરફ માધ્યસ્થભાવ ધારણ કરવો જોઈએ. જેઓ શિક્ષણ ગ્રહણ કરવા લાયક છે તેઓ વિનેય કહેવાય છે અને જેઓ શિક્ષણને યોગ્ય ન હોય તેમને અવિનેય કહેવામાં આવે છે અર્થાત્ જે સચેતન હોવા છતાં પણ લાકડા, દીવાલ અને પથરાની માફક, ગ્રહણ, ધારણ, ઈહા, અપોહથી શૂન્ય છે, મિથ્યાદર્શનથી ગ્રસ્ત છે અને દુષ્ટજનો દ્વારા ભમેરાયેલા છે તેમને અવિનેય સમજવા જોઈએ આવા માણસો તરફ ઉદાસીનભાવ ધારણ કરવો જેવી રીતે ખારાપાટવાળી જમીનમાં નાખેલું બીજ નિષ્ફળ નીવડે છે તેવી જ રીતે આવા લોકોને આપવામાં આવેલો ઉપદેશ નિષ્ફળ જાય છે. તેનું કંઈ જ ફળ આવતું નથી આથી તેમના પર ઉપેક્ષાભાવ ધારણ કરવો એ જ યોગ્ય છે. કહ્યું પણ છે-'બીજાના હિતની

उक्तञ्च सूत्रकृताङ्गे प्रथमश्रुतस्कन्धे १५ अध्ययने तृतीयगाथायाम्—'मैत्रीं भूतेषु कल्पयेत्' इति। एवम्—औपपातिके प्रथमसूत्रे २० प्रकरणे चोक्तम्—'सुप्पडियाणंदा' इति। पुनस्तत्रैवौपपातिके भगवदुपदेशे चोक्तम्—'साणुक्कोसयाए' सानुक्रोशतया इति आचाराङ्गप्रकरणे श्रुतस्कन्धे ८ अध्ययने ७ उद्देशे ५ गाथायाञ्चोक्तम्—

'मज्झत्थो निज्जरापेही, समाहिमनुपालए' इति।

मध्यस्थो निर्जरापेक्षी, समाधिमनुपालयेत् ॥इति॥५८॥

मूलम्—चरित्तं पंचविहं सामाइय छेदोवट्ठावणपरिहारविसुद्धिय सुहुमसंपराय जहक्खायभेयओ ॥५९॥

करना ही उचित है। कहा भी है—'दूसरों के हित की चिन्ता करना मैत्री है, पराये दुःख का निवारण करना करुणा है, दूसरे के सुख को देखकर सन्तोष मानना प्रमोद है और पराये दोषों की उपेक्षा करना उपेक्षा भावना है ॥१॥

सूत्र कृतांग के प्रथम श्रुतस्कंध के पन्द्रहवें अध्ययन की तीसरी गाथा में कहा है—'प्राणियों पर मैत्री धारण करे'। इसी प्रकार औपपातिक सूत्र के प्रथम सूत्र के २० वें प्रकरण में भी कहा है—'सुप्रत्यानन्दः-प्रमोदः'। इसी सूत्र में भगवान् के उपदेश-प्रकरण में कहा है—'साणुक्कोसयाए' अर्थात् दया युक्तता से। आचारांग श्रुतस्कंध के आठवें अध्ययन, सातवें उद्देशक की पांचवीं गाथा में कहा है—

'मध्यस्थ एवं निर्जरा की अपेक्षा करने वाला श्रमण समाधि का अनुपालन करे ॥५८॥

ચિન્તા કરવી મૈત્રી છે, બીજાના દુઃખોનું નિવારણ કરવું કરૂણા છે, બીજાના સુખને જોઈ સન્તોષ માનવો પ્રમોદ છે, અને પારકા દોષોની ઉપેક્ષા કરવી ઉપેક્ષા ભાવના છે. ॥૧॥

સૂત્રકૃતાંગના પ્રથમ શ્રુતસ્કંધના પંદરમાં અધ્યયનની ત્રીજી ગાથામાં કહ્યું છે—'પ્રાણિઓ પર મૈત્રી ધારણ કરો' એ જ પ્રમાણે ઔપપાતિકસૂત્રના પ્રથમ સૂત્રના, ૨૦માં પ્રકરણમાં પણ કહ્યું છે—સુપ્રત્યાનન્દ—પ્રમોદ. આ જ સૂત્રમાં ભગવાનના ઉપદેશ પ્રકરણમાં કહ્યું છે. 'साणुकोसयाए' અર્થાત્ દયા-યુક્તતાથી આચારંગ શ્રુતસ્કંધના આઠમાં અધ્યયન, સાતમા ઉદ્દેશકની પાંચમી ગાથામાં કહ્યું છે—'મધ્યસ્થ' અને નિર્જરાની અપેક્ષા કરનાર શ્રમણ સમાધિનું અનુપાલન કરે. ॥૫૮॥

छाया—चारित्रं पञ्चविधं, सामायिक छेदोपस्थापन परिहारविशुद्धिकसूक्ष्म साम्पराय यथाख्यातभेदतः ॥५९॥

तत्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत् समितिगुप्तिधर्मानुप्रेक्षा परीषहजय चारित्राणां कर्मास्रवनिरोधलक्षणसंवरहेतुत्वेन प्रतिपादितत्वात् तेषां खलु संवरहेतूनां मध्ये चारित्रसंज्ञाव्यपदेशार्थं प्रथमं चारित्रभेदान् प्रतिपादयितुमाह-'चरित्तं पंचविहं' इत्यादि। चारित्रं तावत्-पूर्वोक्तदशविधश्रमणधर्मान्तर्भूतं संयमात्मकं पञ्चविधं वर्तते, सामायिक १ छेदोपस्थापन २ परिहारविशुद्धिक ३ सूक्ष्मसाम्पराय ४ यथाख्यात ५ भेदतः। तथा च-सामायिकचारित्रम् १ छेदोपस्थापनचारित्रम् २ परिहारविशुद्धिकचारित्रम् ३ सूक्ष्मसाम्परायिकचारित्रम् ४ यथाख्यात चारित्रञ्चे ५ त्येवं पञ्चविधं चारित्रमवगन्तव्यम्। समः-सम वं रागद्वेषरहितत्वेन

'चरित्तं पंचविहं सामाइय' इत्यादि।

सूत्रार्थ—चारित्र पांच प्रकार का है-(१) सामायिक (२) छेदोपस्थापनीय (३) परिहार विशुद्धि (४) सूक्ष्मसाम्पराय और (५) यथाख्यात ।५९।

तत्त्वार्थदीपिका—पहले प्रतिपादन किया गया था कि समिति, गुप्ति धर्म अनुप्रेक्षा, परीषह जय और चारित्र संवर के कारण हैं। इन संवर के हेतुओं में से चारित्र का स्वरूप प्रतिपादन करने के लिए उसके भेदों का निर्देश करते हैं-

पूर्वोक्त दस प्रकार के श्रमण धर्मों के अन्तर्गत संयमात्मक चारित्र पांच प्रकार का है-(१) सामायिक (२) छेदोपस्थापनीय (३) परिहार विशुद्धिक (४) सूक्ष्मसाम्पराय और (५) यथाख्यात। इस प्रकार चारित्र पांच प्रकार का समझना चाहिए।

'चरित्त पंचविहं' इत्यादि ॥५९॥

સૂત્રાર્થ–ચારિત્ર પાંચ પ્રકારના છે-(૧) સામાયિક (૨) છેદોપસ્થાપનીય (૩) પરિહારવિશુદ્ધિ (૪) સૂક્ષ્મસામ્પરાય અને (૫) યથાખ્યાત ॥૫૯॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું હતું કે સમિતિ, ગુપ્તિ, ધર્મ, અનુપ્રેક્ષા, પરીષહજય અને ચારિત્ર, સંવરના કારણ છે. આ સંવરના હેતુઓમાંથી ચારિત્રના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરવા માટે તેના ભેદોનું નિદર્શન કરીએ છીએ-

પૂર્વોક્ત દશ પ્રકારના શ્રમણધર્મોના અન્તર્ગત સંયમાત્મક ચારિત્ર પાંચ પ્રકારના છે-(૧) સામાયિક (૨) છેદોપસ્થાપનીય (૩) પરિહાર વિશુદ્ધિક (૪) સૂક્ષ્મસામ્પરાય અને (૫) યથાખ્યાત આવી રીતે ચારિત્ર પાંચ પ્રકારના સમજવા જોઈએ.

सर्वेषु जीवेषु स्वात्मसमत्वम्, तस्य समत्वस्य आयः-प्राप्तिः समायः प्रवर्धमान-शारदशुक्लचन्द्रकलावत् प्रतिक्षणविलक्षणज्ञानादिलाभः स प्रयोजनमस्येति सामायिकम्, सामायिकञ्च तत् चारित्रञ्चेति सामायिकचारित्रम्, एतस्य खलु-सर्वसुखनिदानभूतायाः सर्वेषु जीवेषु स्वात्मतुल्यदर्शनरूपायाः समतायाः प्राप्तयेऽनुष्ठानं क्रियते। तत्र-पूर्वोक्तस्वरूपं सामायिकचारित्रं तावद् द्विविधम्, नियतकालिकम्, अनियतकालिकञ्च। तत्र-स्वाध्यायादिकं सामायिकचारित्रं नियत कालिकम्, ऐर्यापथिकादिकन्तु-अनियतकालिकं सामायिकचारित्रं बोध्यम्। छेदोपस्थापनन्तु-प्रमादकृत हिंसाद्यव्रताऽनुष्ठानस्य सर्वथा परित्यागानन्तरं सम्य-

सम अर्थात् समत्व या राग-द्वेष के अभाव के कारण समस्त जीवों को अपने समान समझना। उस समत्व के आय (लाभ) को समाय कहते हैं अर्थात वृद्धि को प्राप्त होती हुई शरद् ऋतु के चन्द्रमा की कलाओं के समान प्रतिक्षण विलक्षण ज्ञानादि की प्राप्ति। वह समाय जिसका प्रयोजन हो उसे सामायिक कहते हैं, सामायिक रूप चारित्रको सामायिक चारित्र कहा गया है। समस्त सुखों के कारण और समस्त प्राणियों पर आत्म तुल्य दर्शन रूप समता की प्राप्ति के लिए सामायिक का अनुष्ठान किया जाता है। यह सामायिकचारित्र दो प्रकार का है-नियतकालिक और अनियतकालिक। इन में से स्वाध्याय आदि सामायिक चारित्र नियतकालिक कहलाता है और ऐर्यापथिक अनियतकालिक सामायिक चारित्र है।

प्रमाद के कारण हिंसा आदि अव्रतों के अनुष्ठान का सर्वथा

સમ અર્થાત્ સમત્વ અથવા રાગ-દ્વેષના અભાવના કારણે સમસ્ત જીવોને પોતાના જેવા સમજવા તે સમત્વના આય (લાભ)ને સમાય કહે છે અર્થાત્ વૃદ્ધિને પ્રાપ્ત થતી થકી શરદ ઋતુના ચંદ્રમાની કળાઓની જેમ પ્રતિક્ષણે વિલક્ષણ જ્ઞાનાદિની પ્રાપ્તિ તે સમાય જેનું પ્રયોજન હોય તેને સામાયિક કહે છે, સામાયિક રૂપ, ચારિત્રને સામાયિક ચારિત્ર કહેવામાં આવ્યું છે સમસ્ત સુખોના કારણ અને સમસ્ત પ્રાણીઓ પર આત્મતુલ્ય દર્શનરૂપ સમતાની પ્રાપ્તિ માટે સામાયિકનું અનુષ્ઠાન કરવામાં આવે છે. આ સામાયિક ચારિત્ર બે પ્રકારના છે. નિયતકાલિક અને અનિયતકાલિક આમાથી સ્વાધ્યાય આદિ સામાયિક ચારિત્ર નિયતકાલિક કહેવાય છે અને ઐર્યાપથિક અનિયતકાલિક સામાયિક ચારિત્ર છે.

પ્રમાદને કારણે હિંસા આદિ અવ્રતોના અનુષ્ઠાનનો સર્વથા પરિત્યાગ

गागमोक्तविधिना पुनर्व्रतारोपणं सम्यक् प्रतिक्रियात्मकं बोध्यम्। छेदेन दिवस पक्षमासादि प्रव्रज्या-ह्रापनेनोपस्थापनं पुनर्व्रतारोपणं छेदोपस्थापनमिति व्युत्पत्तिः, सङ्कल्पविकल्पनिषेधो वा छेदोपस्थापनचारित्रमुच्यते। परिहरणं परिहारः प्राणातिपातान्निवृत्तिः, परिहारेण विशिष्टा शुद्धिः कर्ममलकलङ्कपङ्कप्रक्षालनं यस्मिश्चारित्रे तत् परिहारविशुद्धिचारित्रमुच्यते, यथा- द्वात्रिंशद्वर्षजातस्य चिरकालतीर्थपादसेविनः प्रत्याख्याननामधेयनवमपूर्वोक्त सम्यगाचारवेदिनोऽपि प्रचुरचर्याऽनुष्ठायिनः सन्ध्यात्रयं वर्जयित्वा द्विगव्यूतगामिनः संयतस्य मुनेः परिहारविशुद्धि-

परित्याग करने के पश्चात् आगमोक्तविधि के अनुसार पुनः व्रतों का आरोपण करना छेदोपस्थापनीय चारित्र है। उसे सम्यक् प्रतिक्रिया रूप समझना चाहिए। 'छेदोपस्थापन' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है- छेद अर्थात् दिन, पक्ष, मास आदि की दीक्षा कम करके, उपस्थापन अर्थात् फिर व्रतों में अरोपण करना 'छेदोपस्थापन' है। अथवा संकल्प-विकल्प का निषेध छेदोपस्थापन चारित्र कहलाता है।

परिहार का आशय है प्राणातिपात से निवृत्त होना। जिस चारित्र में 'परिहार' के द्वारा विशिष्ट शुद्धि अर्थात् कर्ममल रूप पंक का प्रक्षालन किया जाता है, वह परिहारविशुद्धि चारित्र है। जो बत्तीस वर्ष का हो चुका हो, चिरकाल तक जिसने तीर्थङ्कर के चरणों की सेवा की हो, जो प्रत्याख्यान नामक नौवें पूर्व में कथित आचार वस्तु का ज्ञाता हो' उग्र चर्यावान् हो, जो तीनों संध्याओं को बचाकर

કર્યા બાદ આગમોક્ત વિધિ અનુસાર પુનઃ વ્રતોનું આરોપણ કરવું છેદોપસ્થાપનીય ચારિત્ર છે તેને સમ્યક્ પ્રતિક્રિયા રૂપ સમજવું જોઈએ. 'છેદોપસ્થાપન' શબ્દની વ્યુત્પત્તિ આ પ્રમાણે છે. છેદ અર્થાત્ દિવસ, પખવાડિયું, માસ વગેરેની દિક્ષા ઓછી કરીને, ઉપસ્થાપન અર્થાત્ ફરીવાર વ્રતોમાં આરોપણ કરવું 'છેદોપસ્થાપન' અથવા સંકલ્પ-વિકલ્પનો નિષેધ છેદોપસ્થાન ચારિત્ર કહેવાય છે.

પરિહારનો આશય છે પ્રાણાતિપાતથી નિવૃત્ત થવું. જે ચારિત્રમાં 'પરિહાર' દ્વારા વિશિષ્ટ શુદ્ધિ અર્થાત્ કર્મમળરૂપ કાદવનું પ્રક્ષાલન કરવામાં આવે છે તે પરિહાર વિશુદ્ધિ ચારિત્ર છે. જે બત્રીસ વર્ષનો થઈ ગયો હોય, ચિરકાળ સુધી જેણે તીર્થંકરના ચરણોની સેવા કરી હોય, જે પ્રત્યાખ્યાન નામક નવમા પૂર્વમાં કથિત આચારવસ્તુનો જ્ઞાતા હોય, ઉગ્ર ચર્યાવાન હોય, જે ત્રણે સંધ્યાઓને બચાવીને બે ગવ્યૂતિ ગમન કરે છે. એવા સંયમશીલ

चारित्रं भवति। अतिसूक्ष्म क्रोधमानमायादि कषायत्वात् सूक्ष्मसाम्परायचारित्र-मुच्यते, सम्परायशब्दस्य कषायवाचकत्वात्। सर्वस्य मोहनीयस्योपशमः क्षयो वा वर्तते यस्मिन् तत् परमौदासीन्यलक्षणं जीवस्वभावदशाविशिष्टं यथाख्यात-चारित्रम्, यथा-ऽऽत्मनः शुद्धः स्वभावः स्थितः तथैवाऽऽख्यातः कथित आत्मनः स्वभावो यस्मिंश्चारित्रे तत्-यथाख्यातचारित्रमिति व्युत्पत्तिः, तथाच-निरव-शेषस्य मोहनीयकर्मण उपशमात्-क्षयाच्चाऽऽत्मस्वभावापेक्षालक्षणं यथाख्यात चारित्रं व्यपदिश्यते, यथाख्यातमेवाऽथाख्यातचारित्र नाम्नापि व्यपदिश्यते। तस्याऽयमर्थः-प्राक्तनचारित्र विधायिभिः खलु आत्मनो यदुत्कृष्टं चारित्रमाख्यातं

दो गव्यूति गमन करता हो, ऐसे संयमशील मुनि को परिहारविशुद्धि चारित्र होता है।

जिस अवस्था में कषाय अत्यन्त सूक्ष्म रह जाते हैं, उस अवस्था में होने वाला चारित्र सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र कहलाता है। सम्पराय शब्द कषाय का वाचक है।

मोहनीय कर्म का सर्वथा उपशम या क्षय होने पर जो चारित्र प्रकट होता है वह यथाख्यात चारित्र है। यह चारित्र परम उदासीनता-मय और जीवन की स्वभावदशा रूप है। आत्मा का जो शुद्ध स्वभाव है वही जिस चारित्र में कहा गया हो, वह यथाख्यात चारित्र। इस कारण सम्पूर्ण मोहनीय कर्म के उपशम से या क्षय से आत्मस्वभाव-यथाख्यात चारित्र कहलाता है। इसे अथाख्यात चारित्र भी कहते हैं। उसका आशय यह है-पहले चारित्र के जो आराधक हुए हैं उन्हें आत्मा का जो उत्कृष्ट चारित्र कहा है, वैसा चारित्र जीवने पहले नहीं प्राप्त

મુનિને પરિહારવિશુદ્ધિચારિત્ર હોય છે.

જે અવસ્થામાં કષાય અત્યંત સૂક્ષ્મ રહી જાય છે તે અવસ્થામાં થનારૂં ચારિત્ર સૂક્ષ્મસામ્પરાય ચારિત્ર કહેવાય છે. સંપરાય શબ્દ કષાયનો વાચક છે.

મોહનીય કર્મનો સર્વથા ઉપશમ ક્ષય થવાથી જે ચારિત્ર પ્રકટ થાય છે તે યથાખ્યાતચારિત્ર છે. આ ચારિત્ર પરમઉદાસીનતામય અને જીવના સ્વભાવદશા રૂપ છે. આત્મનો જે શુદ્ધ સ્વભાવ છે તે જે ચારિત્રમાં કહેવામાં આવ્યું હોય, તે યથાખ્યાત ચારિત્ર આથી સંપૂર્ણ મોહનીય કર્મના ઉપશમથી અથવા ક્ષયથી આત્મસ્વભાવરૂપ યથાખ્યાતચારિત્ર કહેવાય છે આને અથા-ખ્યાતચારિત્ર પણ કહે છે. તેનો આશય આ છે. પહેલાં ચારિત્રના જે આરાધક થયા છે તેઓએ આત્માનું જે ઉત્કૃષ્ટ ચારિત્ર કહ્યું છે એવું ચારિત્ર જીવે

कथितं तथाविधं चारित्रं जीवेन पूर्वं न प्राप्तम् किन्तु-अथानन्तरं मोहनीयकर्मक्षयोपशमाभ्यां प्राप्तं यच्चारित्रं तद्-अथाख्यातचारित्र मित्युच्यते, अथ शब्दस्याऽऽनन्तर्योऽर्थकतया सकलमोहनीयकर्मक्षयोपशमानन्तर मात्मस्वभावाऽऽविर्भावात् ५९।

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं क्रमप्राप्तस्य संवरहेतुभूतपरीषहजयस्य प्ररूपणं कृतम्, सम्प्रति-संवरहेतुतया प्रतिपादितस्य चारित्रस्य भेदान् प्रतिपादयितुमाह-'चरित्तं पंचविहं' इत्यादि। चारित्रं खलु-संयमलक्षणं पञ्चविधम्, सामायिक छेदोपस्थापन-परिहारविशुद्धिक-सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यात ५ भेदात्, तथाच-सामायिकचारित्रम् १ छेदोपस्थापनचारित्रम् २ परिहारविशुद्धिकचारित्रम् ३ सूक्ष्मसाम्परायचारित्रम् ४ यथाख्यातचारित्रम् ५ चेत्येवं पञ्चविधं चारित्रमव-

---

किया है, इस कारण वह अथाख्यात चारित्र कहलाता है। 'अथ' शब्द आनन्तर्य अर्थ का वाचक है, अतएव समस्त मोहनीय कर्म के क्षय अथवा उपशम के अनन्तर जो चारित्र प्राप्त हो वह अथाख्यात चारित्र है इस चारित्र की उपस्थिति में आत्मा का शुद्ध स्वभाव प्रकट होता है ॥५९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले संवर के क्रमप्राप्त कारण परीषह जय का निरूपण किया गया था। अब चारित्र के, जो संवर का कारण कहा जा चुका है, भेदों का निर्देश करते हैं-

संयम रूप चारित्र पांच प्रकार का है (१) सामायिक (२) छेदोपस्थापनीय (३) परिहार विशुद्धिक (४) सूक्ष्मसाम्पराय और (५) यथाख्यात। इस प्रकार (१) सामायिकचारित्र (२) छेदोपस्थापनचारित्र (३)

અગાઉ પ્રાપ્ત કર્યું ન હતું પરન્તુ પાછળથી મોહનીય કર્મના ક્ષય અથવા ઉપશમ દ્વારા સંપાદન કરેલું છે. આ કારણે તે અથાખ્યાતચારિત્ર કહેવાય છે. 'અથ' શબ્દ આનન્તર્ય અર્થનો વાચક છે. આથી સમસ્ત મોહનીય કર્મના ક્ષય અથવા ઉપશમના અનન્તર જે ચારિત્ર પ્રાપ્ત થાય તે અથાખ્યાત-ચારિત્ર છે આ ચારિત્રની ઉપસ્થિતિમાં આત્માનો શુદ્ધ સ્વભાવ પ્રકટ થાય છે ॥૫૯॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલાં સંવરના ક્રમપ્રાપ્ત કારણ પરીષહજયનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હતું. હવે ચારિત્રના. જે સંવરના કારણ કહેવાઈ ગયા છે, તેનાં ભેદોનું નિદર્શન કરીએ છીએ-

સંયમ રૂપ ચારિત્ર ૫ પ્રકારના છે-(૧) સામાયિક (૨) છેદોપસ્થાપનીય (૩) પરિહાર વિશુદ્ધિક (૪) સુક્ષ્મસાંપરાય અને (૫) યથાખ્યાત આ રીતે (૧) સામાયિક ચારિત્ર (૨) છેદોપસ્થાપન ચારિત્ર (૩) પરિહાર વિશુદ્ધિક

ज्ञातव्यम्। तत्र-सर्वसावद्ययोगविरतिलक्षणं सामायिकं तद्विशेषा एव छेदोपस्थापनीयादयो भवन्ति, सावद्ययोगविरतेरेव विशुद्धतराध्यवसायविशेषा भवन्ति। तत्र-समस्य आयो गमनं प्राप्तिः समायः, स एव सामायिकम्, सामायिकञ्च तच्चारित्रं सामायिकचारित्रम्। तच्च सामायिकं द्विविधम्, इत्वरकालिकम्-यावज्जीविकञ्च, तत्र प्रथमं तावत् प्रथमतीर्थकृद् अन्त्यतीर्थकृतोः प्रव्रज्याप्रतिपत्तौ कथितं शस्त्रपरिज्ञाध्ययनादिविदः श्रद्धां कुर्वतश्छेदोपस्थापनीय संयमारोपणविशिष्टतरत्वाद् विरतेः सामायिकव्यपदेशं परित्यजति, तस्माद्-इत्वरकालम्। मध्यमतीर्थकृतां विदेहक्षेत्रवर्तिनाञ्च यावज्जीविकं सामायिकं भवति, तच्च-प्रव्रज्या प्रतिपत्ति-

---

परिहारविशुद्धिकचारित्र (४) सूक्ष्मसांपरायचारित्र और (५) यथाख्यातचारित्र, यह पाँच प्रकार का चारित्र समझना चाहिए।

इनमें से सामायिक का अर्थ है सर्व सावद्य योग का त्याग करना। छेदोपस्थापनीय आदि सामायिक के ही विशेष रूप हैं। 'सम' के 'आय' अर्थात् लाभ को 'समाय' कहते हैं और उसी को सामायिक कहते हैं। सामायिक के दो प्रकार हैं-इत्वरकालिक और यावज्जीविक। प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के शासन में दीक्षा लेने पर इत्वरकालीन सामायिकचारित्र होता है। जो शास्त्र परिज्ञा अध्ययन आदि का ज्ञाता होता है और श्रद्धा धारता है, वह छेदोपस्थापनसंयम से युक्त हो जाता है, अतएव उसका चारित्र 'सामायिक' इस नाम से नहीं कहा जाता, अतएव वह इत्वरकालिक अर्थात् अल्पकालिक कहलाता है। बीच के बाईस तीर्थंकरों के शासन में तथा विदेहक्षेत्र के तीर्थंकरों के शासन

ચારિત્ર (૪) સૂક્ષ્મસાંપરાય ચારિત્ર અને (૫) યથાખ્યાત ચારિત્ર આ ૫ પ્રકારના ચારિત્ર સમજવા જોઈએ.

આમાંથી સામાયિકનો અર્થ છે સર્વ સાવદ્ય યોગનો ત્યાગ કરવો. છેદોપસ્થાપનીય આદિ સામાયિકના જ વિશેષ રૂપ છે. 'સમ' નો 'અય' અર્થાત્ લાભને 'સમાય' કહે છે. અને તેને જ સામાયિક કહે છે. સામાયિક બે પ્રકારનું છે. ઈત્વરકાલિક અને યાવજ્જીવિક પ્રથમ અને અંતિમ તીર્થંકરોના શાસનમાં દીક્ષા લેવા પર ઈત્વરકાલિન સામાયિક ચારિત્ર થાય છે જે શસ્ત્રપરીજ્ઞા અધ્યયન આદિનો જ્ઞાતા હોય છે અને શ્રદ્ધા રાખે છે તે છેદોપસ્થાપન સંયમથી યુક્ત થઈ જાય છે. આથી તેનું ચારિત્ર 'સામાયિક' એ નામથી કહેવાતું નથી આથી તે ઈત્વરકાલિક અર્થાત્ અલ્પકાલિક કહેવાય છે. વચ્ચેના બાવીસ તીર્થંકરોના શાસન દરમિયાન તથા વિદેહ ક્ષેત્રના તીર્થંક-

कालादारभ्य मरणकालपर्यन्तं तिष्ठति प्रथमाऽन्त्यतीर्थकृतोः शिष्याणां-सामान्य सामायिकपर्यायच्छेदो विशुद्धतरसर्वसावद्ययोगविरतौ समवस्थानं विविक्ततर-महाव्रतारोपणं छेदोपस्थापनीयचारित्रम्। पूर्वपर्यायच्छेदे सति-उत्तरपर्याये-उपस्थापनम्, तच्चापि द्विविधम् निरतिचारसातिचारभेदतः, तत्र-शिक्षकस्य निरतिचारं छेदोपस्थापनीयमधीत विशिष्टाऽध्ययन विदो मध्यमतीर्थकरशिष्यो वा यदा-चरमतीर्थकरशिष्याणां सविधे-उपतिष्ठते, सातिचारं छेदोपस्थापनीयन्तु विनिष्टमूलगुणस्य पुनर्व्रतारोपणाद्भवति। तथा चे-तदुभयमपि सातिचारं निरति-

---

में यावज्जीविक सामायिकचारित्र होता है। वह दीक्षा अंगीकार करने के समय से लगाकर मरणकाल पर्यन्त रहता है। प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के शासन में शिष्यों के सामान्य पर्याय का छेद होना, विशुद्धतर सर्वसावद्ययोगविरति में स्थित होना और विविक्ततर महाव्रतों में आरोपण करना छेदोपस्थापनीयचारित्र कहलाता है। तात्पर्य यह है कि पूर्व पर्याय का छेद होकर उत्तर पर्याय में स्थापित करना छेदोपस्थापन है। उसके भी दो भेद हैं-निरतिचार और सातिचार। जिसने विशिष्ट अध्ययन का अध्ययन कर लिया है उसको तथा जब मध्यम तीर्थंकर का कोई शिष्य चरम तीर्थंकर के शिष्यों के पास जाता है तब निरतिचार छेदोपस्थापन चारित्र कहलाता है। जिस साधु का मूलगुण नष्ट हो जाता है उसे पुनः प्रव्रज्या देकर व्रतों में आरोपित किया जाना सातिचार छेदोपस्थापन चारित्र है। इस कारण यह दोनों अर्थात् सातिचार और निरतिचार छेदोपस्थापन चारित्र प्रथम

રોના શાસનમાં યાવજ્જીવિક સામાયિક ચારિત્ર થાય છે તે દીક્ષા અંગીકાર કરવાના સમયથી માંડીને મરણકાળ પર્યંત રહે છે. પહેલા અને છેલ્લા તીર્થંકરોના શાસનમાં શિષ્યોના સામાન્ય પર્યાયને છેદ, વિશુદ્ધતર થવો, સર્વસાવદ્ય યોગ વિરતિમાં સ્થિત હોવું અને વિવિક્તતર મહાવ્રતોમાં આરોપણ કરવું છેદોપસ્થાપનીય ચારિત્ર કહેવાય છે તાત્પર્ય એ છે કે પૂર્વપર્યાયમાં સ્થાપિત કરવું છેદોપસ્થાપન છે. તેના પણ બે ભેદ છે-નિરતિચાર અને સાતિચાર જેણે વિશિષ્ટ અધ્યયનનો અભ્યાસ કરી લીધો છે તેને તથા જ્યારે મધ્યમતીર્થંકરનો કોઈ શિષ્ય ચરમતીર્થંકરના શિષ્યોની પાસે જાય છે ત્યારે નિરતિચાર છેદોપસ્થાપન ચારિત્ર કહેવાય છે. જે સાધુનો મૂળગુણ નષ્ટ થઈ જાય છે તેને ફરીવાર દીક્ષા આપીને વ્રતોમાં આરોપિત કરવું સાતિચાર છેદોપસ્થાપનચારિત્ર છે. આથી આ બંને અર્થાત્ સાતિચાર અને નિરતિચાર

चारश्च प्रथमाऽन्त्यतीर्थकृतोरेव सम्भवति, । परिहरणं–परिहारः तपोविशेषः तेन–विशुद्धं परिहारविशुद्धिक चारित्रमुच्यते, तदपि–परिहारविशुद्धिकं द्विविधम् निर्विश्यमानकम्–निर्विष्टकायिकञ्चेति । तत्राऽसेव्यमानं परिभुज्यमानस्वरूपं निर्विश्यमानकमुच्यते, आसेवितम्–उपयुक्तस्वरूपम्, निर्विष्टकायिकमुच्यते । तत्सहचरितत्वात् तदनुष्ठायिनोऽपि निर्विश्यमानाः उच्यन्ते । उपभोगो निर्वेशः, तदुपभुञ्जानाः निर्विश्यमानका भवन्ति । निर्विष्टकायिकाः पुन निर्विष्टः कायो येषां ते–निर्विष्टकायिकाः, तत्सहचरितत्वात् तेनाकारेण तपोनुष्ठानद्वारेण परियुक्तः कायो यैस्ते परियुक्त तथाविधतपसो निर्विष्टकायिका उच्यते, परिहारविशुद्धिकञ्च तपः प्रतिपन्नानां नवको गच्छो भवति । तत्र चत्वार तावत् परीहाराः, चारिणश्चत्वारोऽनुपरिहारिणः, एकस्तु–कल्पितो वाचनाचार्यः

और अन्तिम तीर्थंकर के शासनकाल में ही होता है ।

परिहार नामक एक विशेष प्रकार का तप है, उससे जो विशुद्ध हो वह परिहारविशुद्धिक चारित्र कहलाता है। परिहारविशुद्धिकचारित्र भी दो प्रकार का है–निर्विश्यमानक और निर्विष्ट कायिक । जो सेवन किया जा रहा हो वह निर्विश्यमानक कहलाता है और जो सेवन किया जा चुका हो वह निर्विष्टकायिक कहा जाता है । इन दोनों प्रकार के चारित्र का सेवन करने वाले भी निर्विश्यमान और निर्विष्ट-कायिक कहलाते हैं। तात्पर्य यह है कि जो विशिष्ट तपश्चरण कर रहे हों वे निर्विश्यमान और जो कर चुके हों वे निर्विष्टकायिक कहलाते हैं।

नौ साधु मिलकर परिहारविशुद्धिक चारित्र का सेवन करते हैं। उनमें से चार परिहारी होते हैं अर्थात् तप करते हैं, चार अनुपरिहारी

છેદોપસ્થાપન ચારિત્ર પ્રથમ અને અંતિમ તીર્થંકરના શાસનકાળ દરમ્યાન જ થાય છે.

પરિહાર નામનું એક વિશેષ પ્રકારનું તપ છે. તેનાથી જે વિશુદ્ધ છે તે પરિહાર વિશુદ્ધિક ચારિત્ર કહેવાય છે. પરિહાર વિશુદ્ધિકચારિત્ર પણ બે પ્રકારના છે-નિર્વિષ્ઠમાનક અને નિર્વિષ્ઠકાયિક જેનું સેવન કરવામાં આવતું હોય તે નિર્વિષ્ઠમાનક કહેવાય છે. અને જેનું સેવન થઇ ચૂકયું છે તે નિર્વિષ્ઠકાયિક કહેવાય છે આ બને પ્રકારના ચારિત્રનું સેવન કરનારા પણ નિર્વિષ્ઠમાનક અને નિર્વિષ્ઠકાયિક કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે જેઓ વિશિષ્ઠ તપશ્ચર્યા કરી રહ્યા છે તેઓ નિર્વિષ્ઠ માનક અને જેઓ સેવન કરી ચૂકયા છે તે નિર્વિષ્ઠકાયિક કહેવાય છે.

નવ સાધુ મળીને પરિહાર વિશુદ્ધિક ચારિત્રનું સેવન કરે છે એમાંથી ચાર પરિહારિ હોય છે. અર્થાત્ તપ કરે છે, ચાર અનુપરિહારિ હોય છે.

इत्येवं नवको गच्छः। तत्र-यद्यपि सर्वेऽपि ते श्रुताद्यतिशयसम्पन्ना भवन्ति, तथापि-प्रसिद्ध्या-कल्पस्थित नवस्तु विशिष्टवाचनाचार्य एकः कश्चिद्व्यवस्थाप्यते। तत्र ये खलु विभिन्नकाले विहिततपोऽनुष्ठानं कुर्वन्ति ते-परिहारिण उच्यन्ते। अनुपहारिणस्तु-वैयावृत्यकारिणः नियताचाम्लभक्ताः सन्त स्तेषामेव तपोग्लानानां परिहारिणामन्तिके साहाय्यमाचरन्त स्तिष्ठन्ति, कल्पस्थितोऽपि-नियताचाम्लभक्त एव भवति। यत् खलु परिहारिणां तपो ग्रीष्मर्तौ चतुर्थषष्ठाऽष्टमभक्तलक्षणकं जघन्यं मध्यममुत्कृष्टञ्च, वर्षर्तौ चाऽष्टमदशमद्वादशभक्तस्वरूपं तपो जघन्यं मध्यममुत्कृष्टञ्चाऽवसेयम्। पारणाकाले च-समुपस्थितेऽपि आचाम्लमेव पारयन्ति तथाविधं तपः षण्मासं विधाय परिहारिणोऽनुपरिहारित्वमासादयन्ति। अनुपरिहारि-

होते हैं अर्थात् उन तपस्वियों का वैयावृत्य करते हैं और एक वाचनाचार्य होता है। यद्यपि वे सभी साधु विशिष्ट श्रुत के ज्ञाता होते हैं तथापि उनमें से कोई एक विशिष्टवाचनाचार्य स्थापित कर लिया जाता है। तथा विभिन्न कालों में जो शास्त्रविहित तप का सेवन करते हैं वे परिहारी कहलाते हैं और उनका जो वैयावच्च करते हैं वे अनुपरिहारि कहलाते हैं। वे अनुपरिहारी नियत आयंबिल करते हैं और तपस्या में संलग्न परिहारियों के समीप रह कर उनकी सेवा सहायता करते हैं। कल्पस्थित भी नियत आयंबिल ही करता है। परिहारियों का तप ग्रीष्म ऋतु में अनुक्रम से जघन्य चतुर्थभक्त, मध्यम षष्ठ और उत्कृष्ट अष्टम भक्त होता है। वर्षा ऋतु में जघन्य अष्टम भक्त मध्यम दश भक्त और उत्कृष्ट द्वादश भक्त होता है। जब पारणा का काल आता है तो आयंबिल से ही पारणा करते हैं। इस प्रकार वह

અર્થાત્ તે તપસ્વીઓની વૈયાવચ્ચ કરે છે અને એક વાચનાચાર્ય હોય છે. જો કે તે બધા સાધુ વિશિષ્ટ શ્રુતના જ્ઞાતા હોય છે. તો પણ તેમનામાંથી કોઈ એકને વિશિષ્ટ વાચનાચાર્ય નિયુક્ત કરી લેવામાં આવે છે તથા વિભિન્ન કાળોમાં જેઓ શાસ્ત્રવિહિત તપનું સેવન કરે છે તેઓ પરિહારિ કહેવાય છે. તે અનુપરિહારિ હમેશા આયંબિલ કરે છે અને તપસ્યામાં રહેલા પરિહારિઓની પાસે રહીને તેમની સેવાચાકરી કરે છે. કલ્પસ્થિત પણ નિયત આયંબિલ જ કરે છે પરિહારિઓનો તપ ગ્રીષ્મ ઋતુમાં અનુક્રમથી જઘન્ય ચતુર્થભક્ત, મધ્યમ, ષષ્ઠભક્ત અને ઉત્કૃષ્ટ અષ્ટમભક્ત હોય છે. વર્ષાઋતુમાં જઘન્ય અષ્ટમભક્ત, મધ્યમ, દશમભક્ત અને ઉત્કૃષ્ટ દ્વાદશ ભકત છે, જ્યારે પારણાંનો સમય આવે છે. ત્યારે આયંબિલથી જ. પારણાં કરે છે. આ રીતે

णश्च परिहारिणो भवन्ति, तेऽपि खलु-अनुपरिहारिणः षण्मासं तत्तपः समाचरन्ति तदनन्तरं कल्पस्थित एकएव षण्मासावधिकं परिहारतपः समासादयति। तस्य चैकोऽनुपरिहारी भवति, तन्मध्ये चाऽपर एकः कल्पस्थितो भवति, इत्येवं रीत्या खलु परिहारविशुद्धं तपोऽष्टादशभिर्मासैः परिपूर्णं भवति, परिपूर्णे च तस्मिन् पुन स्तदेव परिहारतपः केचिदन्ये स्वशक्त्यनुसारं प्रतिपद्यन्ते, केचित्पुनर्जिन-कल्पं प्रतिपद्यन्ते, केचिदन्येतु-गच्छमेव वा प्रविशन्ति। परिहारविशुद्धिकाश्च स्थितकल्प एवाद्य चरमतीर्थङ्कर तीर्थयोरेव भवन्ति नतु-मध्यमतीर्थेषु इति भावः। सूक्ष्मसाम्पराय संयमचारित्रन्तु-श्रेणीमारोहतः प्रपततो वा सम्भवति, श्रेणिस्तावद्

मास तक तप करके परिहारि अनुपरिहारि बन जाते हैं और जो अनु-परिहारि थे वे परिहारि बन जाते हैं। वे अनुपरिहारि भी परिहारि बन कर छह महीनों तक वही तप करते हैं। तत्पश्चात् कल्पस्थित एक साधु छह मास तक परिहार तप करता है। उसका एक अनुपरिहारि होता है, उनमें से दूसरा एक कोई कल्पस्थित होता है। इस प्रकार परिहार विशुद्ध तप अठारह महीनों में परिपूर्ण होता है।

जब परिहार विशुद्ध तप परिपूर्ण हो जाता है तब कोई-कोई अपनी शक्ति के अनुसार पुनः उस तप का अनुष्ठान करते हैं, कोई जिनकल्प को अंगीकार कर लेते हैं और कोई अपने गच्छ में शामिल हो जाते हैं। स्थितकल्प में, आद्य और अन्तिम तीर्थंकर के तीर्थ में ही परिहार विशुद्धिक होते हैं, मध्य के बाईस तीर्थंकरों के शासन में नहीं होते।

सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र या तो श्रेणी चढते समय होता है या

છ માસ સુધી તપ કરીને પરિહારિ અનુપરિહારિ થઇ જાય છે અને જેઓ અનુપરિહારિ હોય છે તેઓ પરિહારિ બની જાય છે તે અનુપરિહારિ પણ પરિહારિ બની જઇને છ માસ સુધી તે જ તપ કરે છે ત્યાર બાદ કલ્પ-સ્થિત એક સાધુ છ માસ સુધી પરિહાર તપ કરે છે તેનો એક અનુપરિહારિ હોય છે તેમાથી બીજો એક કોઇ કલ્પસ્થિત થાય છે. આ રીતે પરિહાર વિશુદ્ધ તપ ૧૮ માસમાં પરિપૂર્ણ થાય છે.

જ્યારે પરિહારવિશુદ્ધ તપ પરિપૂર્ણ થઈ જાય છે ત્યારે કોઇ કોઈ પોતાની શકિત મુજબ પુનઃ તે તપનું અનુષ્ઠાન કરે છે, કોઈ જિનકલ્પને અંગીકાર કરી લે છે જ્યારે કોઇ પોતાના ગચ્છમાં સામેલ થઈ જાય છે. સ્થિતકલ્પમાં, આદ્ય અને અંતિમ તીર્થંકરના તીર્થમાં જ પરિહારવિશુદ્ધિક થાય છે, મધ્યના બાવીસ તીર્થંકરોના શાસનમાં થતાં નથી.

સૂક્ષ્મસામ્પરાય ચરિત્ર ક્યાંતો શ્રેણી ચઢતી વખતે થાય છે અથવા

द्विविधा, औपशमिकी-क्षायिकी च। तत्रौपशमिकी श्रेणिस्तावद् अनन्तानुबन्धिनो मिथ्यात्वादित्रयं स्त्री-नपुंसकवेदाः, हास्यरत्यादिषट्कम्, अप्रत्याख्याना-वरणम्, संज्वलनश्चेति, अस्याः खलु औपशमिकश्रेणेरारम्भकोऽप्रमत्तसंयतो भवति। सूक्ष्मः श्लक्ष्णावयवः सम्परायः क्रोधादिकषायः संसारहेतुर्यत्र स सूक्ष्म-सम्परायसंयमः, स चो-पशान्तकषायोऽपि स्वल्पप्रत्ययलाभात् दावानल-दग्धाञ्जनवृक्षो यथो-दक सिञ्चनादि लाभादङ्कुरादि स्वरूप मुपदर्शयति एवमेव-सदोरक-मुखवस्त्रिकादिषु ममत्व समीरणेन संधुक्ष्यमानः कषाग्निः-चारि-त्रेन्धनम् आमूलतो दहन् प्रतिविशिष्टा-ऽध्यवसायात् स्वपतं प्रत्यासयति।

श्रेणी से गिरते समय होता है। श्रेणी दो प्रकार की होती है। उप-शम श्रेणी और क्षपक श्रेणी। मोहनीय कर्म की प्रकृतियों का उपशा-मन करते हुए ऊँचे चढना उपशम श्रेणी है और उनका क्षपण करते हुए आगे बढना क्षपक श्रेणी है। दोनों में से किसी भी श्रेणीका आरंभ अष्टम गुण स्थान वर्त्ती अप्रमत्त मुनि ही करता है। उपशम श्रेणी करने वाला मुनि जब आठवें गुणस्थानसे नौवें और नौवें से दसवें गुणस्थान में पहुँचता है तब उसे सूक्ष्मसम्पराय चारित्र की प्राप्ति होती है। तत्पश्चात् वह मुनि ग्यारहवें गुणस्थान में पहुँचता है और वहां मोहनीय कर्म को एक अन्तर्मुहूर्त्त के लिए पूर्ण रूप से उपशान्त करता है। फिर संज्वलन कषाय का उदय होता है और श्रेणी समुत्पन्न मुनि पुनः गिर कर दशवें गुनस्थान में आ जाता है। उस समय भी उससे सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र होता है।

શ્રેણીથી પડતી વખતે થાય છે શ્રેણી બે પ્રકારની હોય છે. ઉપશમ શ્રેણી અને ક્ષપક શ્રેણી મોહનીય કર્મની પ્રકૃતિઓનું ઉપશમ કરતાં થકા ઉંચે ચઢવું ઉપશમ શ્રેણી છે. અને તેમનું ક્ષપણ કરતાં થકા આગળ વધવું ક્ષપક શ્રેણી છે. બંનેમાંથી કોઇ પણ શ્રેણીનો આરંભ અષ્ટમ ગુણસ્થાનવર્તી અપ્રમત્ત મુની જ કરે છે. ઉપશમ શ્રેણી કરનારા મુનિ જ્યારે આઠમાં ગુણસ્થાનથી નવમા અને નવમાંથી દશમાં ગુણસ્થાનમાં પહોંચે છે ત્યારે તેને સૂક્ષ્મ સંપરાયચારિત્રની પ્રાપ્તિ થાય છે. ત્યાર બાદ તે મુનિ અગિયારમા ગુણસ્થાનમાં પહોંચે છે. અને ત્યાં મોહનીય કર્મને એક અંતરમુહૂર્તને માટે પૂર્ણતયા ઉપશાન્ત કરે છે. પછી સંજ્જવલન કષાયનો ઉદય થાય છે. અને શ્રેણી સંપન્ન મુનિ પુનઃ પડીને દશમાં ગુણસ્થાનમાં આવી જાય છે. તે સમયે પણ તેનો સૂક્ષ્મસામ્પરાય ચારિત્ર હોય છે.

क्षायिकीश्रेणिः—अनन्तानुबन्धिनः कषायाः मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वानि अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणानि, पुं-नपुंसक-स्त्रीवेदाः, हास्यादिषट्कम् सज्वलन कषायश्च-ति, अस्याश्च क्षायिकश्रेणेः—मारोहकः अविरतदेशप्रमत्ताऽप्रमत्ताऽविरतान्यतमः कश्चिद् विशुद्ध्यमानाऽध्यवसायो भवति। स खलु अनन्तानुबन्धिनः कषायान् अन्तर्मुहूर्तेनैव युगपदेव क्षपयति, ततश्च-यावत् संज्वलनलोभकषाय संख्येयभागं क्षपयति, तथासति-सूक्ष्मसम्परायसंयमचारित्रवान सम्पद्यते। समस्तमोहनीयकर्मोपशमेतु एकादशगुणस्थानप्राप्तः सन् उपशान्तकषायो यथाख्यातसंयमचारित्रवान् भवति, क्षपकः पुनः समस्तमोहनीयकर्मोदधि

क्षपक श्रेणी करने वाला मुनि भी जब दसवें गुणस्थान में पहुंचता है तब उसे भी सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र होता है, विशेषता यही है कि क्षपक श्रेणी वाला दसवें से सीधे बारहवें गुणस्थान में पहुंच कर अप्रतिपाती हो जाता है। उसका पतन नहीं होता।

उपशम श्रेणी में अनन्तानुबंधी कषाय, दर्शनत्रिक, अप्रत्याख्यानी कषाय, प्रत्याख्यानावरणीय कषाय, पुरुष वेद-स्त्री वेद-नपुंसक वेद, हास्यादि षट्क और संज्वलन कषाय का उपशम करता है जब कि क्षपक श्रेणी वाला इन प्रकृतियों का क्षय करता है।

उपशम श्रेणी वाला मुनि जब ग्यारहवें गुणस्थान को प्राप्त करता है तब अन्तर्मुहूर्त्त समय के लिए उसे यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति होती है। क्षपक श्रेणी वाला बारहवें गुणस्थान को प्राप्त करके अप्रतिपाती यथाख्यात चारित्र प्राप्त करता है।

ક્ષપક શ્રેણી કરવાવાળા મુનિ પણ જ્યારે દશમા ગુણસ્થાનમાં પહોંચે છે ત્યારે તેને પણ સૂક્ષ્મસામ્પરાય ચારિત્ર થાય છે. વિશેષતા એ છે કે ક્ષપક શ્રેણીવાળા દશમાંથી સીધા બારમા ગુણસ્થાનમાં પહોંચીને અપ્રતિપાતિ થઈ જાય છે. તેનું પતન થતું નથી

ઉપશમ શ્રેણીમાં અનન્તાનુબંધી કષાય, દર્શનત્રિક, અપ્રત્યાખ્યાની કષાય, પ્રત્યાખ્યાનાવરણ કષાય, પુરૂષવેદ-સ્રીવેદ, નપુંસકવેદ, હાસ્યાદિ ષટ્ક અને સંજ્વલન કષાયનો ઉપશમ કરે છે જ્યારે ક્ષપક શ્રેણીવાળા આ પ્રકૃતિઓનો ક્ષય કરે છે.

ઉપશમ શ્રેણીવાળા મુનિ જ્યારે અગીયારમા ગુણસ્થાનને પ્રાપ્ત કરે છે. ત્યારે અંન્તર્મુહૂર્ત સમયને માટે તેને યથાખ્યાત ચારિત્રની પ્રાપ્તિ થાય છે ક્ષપક શ્રેણીવાળા બારમા ગુણસ્થાનને પ્રાપ્ત કરીને અપ્રતિપાતિ યથાખ્યાત ચારિત્ર પ્રાપ્ત કરે છે.

समुत्तीर्णो निर्ग्रन्थः श्रमणो यथाख्यातचारित्र संयमी सम्पद्यते। यथाख्यातः कथितस्तीर्थकृता तथैव यो वर्तते स यथाख्यातसंयमउच्यते, अकषायः खलु संयम स्तीर्थकृताख्यातः, स चैकादश-द्वादशगुणस्थानयोः सम्भवति, उपशान्तत्वात्-क्षीणत्वाच्च कषायाभाव इति भावः। तथा चैवं रीत्या पञ्चविधं चारित्रमवगन्तव्यम् ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्मपुञ्जस्य रिक्तीकरणात्। उक्तञ्चोत्तराध्ययने २८-अध्ययने ३२-३३ गाथायाम्।

'सामाइयत्थपढमं-छेदोवट्ठावणं भवे बीयं।
परिहारविसुद्धीयं-सुहुमतहसंपरायं च' ॥१॥
'अकसायमहक्खायं-छउमत्थस्स जिणस्स वा।
एवं चयरित्तकरं-चारित्तं होइ आहियं' ॥२॥ इति।
'सामायिकमथ प्रथमं-छेदोपस्थापनं भवेद् द्वितीयम्।
परिहारविशुद्धिकं-सूक्ष्मं तथा सम्परायञ्च' ॥१॥

तीर्थंकरों ने 'यथा' अर्थात् जैसा 'ख्यात' अर्थात् कहा है, वैसा ही जो हो वह 'यथाख्यात' कहलाता है। तीर्थंकरों ने कषायरहित संयम कहा है। यह यथाख्यात चारित्र ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में होता है, इन गुणस्थानों में कषाय उपशान्त या क्षीण हो जाते हैं, अतएव उनका उदय नहीं रहता।

इस प्रकार पांच प्रकार का चारित्र समझना चाहिए। ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों के समूह को रिक्त करने से उसे चारित्र कहते हैं। उत्तराध्ययनसूत्रके २८ वें अध्ययन की ३२-३३ वीं गाथा में कहा है—

पहला सामायिक चारित्र है, दूसरा छेदोपस्थापन चारित्र है, तत्प

તીર્થંકરો એ 'યથા' અર્થાત્ જેવું 'ખ્યાત' અર્થાત્ કહ્યુ છે તેવું જ જે હોય તે 'યથાખ્યાત' કહેવાય છે તીર્થંકરોએ કષાય રહિત સંયમ કહેલ છે આ યથાખ્યાત ચરિત્ર અગિયારમાં અને બારમા ગુણસ્થાનમાં થાય છે, આ ગુણસ્થાનોમાં કષાય, ઉપશાન્ત અથવા ક્ષીણ થઈ જાય છે. આથી તેમનો ઉદય રહેતો નથી.

આ રીતે પાંચ પ્રકારના ચારિત્ર સમજવા ઘટે જ્ઞાનાવરણીય આદિ ૮ પ્રકારના કર્મોના સમૂહને ખપાવવા તેને ચારિત્ર કહે છે. ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના ૨૮ મા અધ્યયનની બત્રીસ-તેત્રીસમી ગાથામાં કહ્યું છે-પહેલું સામયિક ચારિત્ર છે, બીજું છેદોપસ્થાપન ચારિત્ર છે ત્યાર બાદ પરિહાર-

'अकषाययथाख्यातं-छद्मस्थस्य जिनस्य वा, ।
एवं चयरिक्तकरं-चारित्रं भवति आख्यातम्' ॥२॥ इति । ५९॥

मूलम्-तवो दुविहं, बाहिरए-अब्भिंतरए य ॥६०॥

छाया---तपो द्विविधम्, बाह्यम्-आभ्यन्तरञ्च ॥६०॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत्-कर्मास्रवनिरोधलक्षणसंवर हेतुत्वेन तपस उक्तत्वात्, सम्प्रति- तत्तपः प्ररूपयितुं प्रथमं तस्य बाह्याभ्यन्तरभेदेन भेदद्वयमाह- 'तवो दुविहं, बाहिरए-अब्भिंतरए य' इति । तपति-दहति अष्टविधकर्माणि, तप्यति वा तपः कर्तरि असुन् प्रत्ययः, संयमविशिष्टात्मनः शेषाशयविशोधनार्थं बाह्याभ्यन्तरतापनं तपः उच्यते, शरीरेन्द्रियतापनात्-कर्मनकनिर्दाहकत्वाच्च

थात् परिहार विशुद्धिक और सूक्ष्मसाम्पराय है। पांचवां चारित्र यथा ख्यात है जो छद्मस्थ को और जिन भगवान् को प्राप्त होता है। कर्मों के चय-समूह को रिक्त-नष्ट करने से चारित्र संज्ञा सार्थक होती है ॥५७॥

'तवो दुविहं बाहिरए' इत्यादि

सूत्रार्थ—तप दो प्रकार का है-बाह्य और आभ्यन्तर ।६०॥

तत्वार्थदीपिका—पहले तप को संवर का कारण कहा गया था, अब उस तप की प्ररूपणा करने के लिए पहले उसके बाह्य और आभ्यन्तर भेदों का निर्देश करते हैं-

तप दो प्रकार का है-बाह्य तप और आभ्यन्तर तप। जो आठ प्रकार के कर्मों को तपाता-जलाता है, वह तप कहलाता है। संयम से युक्त आत्मा का शेष आशय को शुद्ध करने के लिए बाह्य और

વિશુદ્ધિક અને સૂક્ષ્મસાંપરાય છે પાંચમું ચારિત્ર યથાખ્યાત છે જે છદ્મસ્થને અને જિન ભગવાનને પ્રાપ્ત થાય છે. કર્મોના ચય-સમૂહને રિક્ત-નષ્ટ કરવાથી ચારિત્ર સંજ્ઞા સાર્થક થાય છે. ॥૫૯॥

'तवो दुविहे, बाहिरए अब्भिंतरए य' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-તપ બે પ્રકારના છે-બાહ્ય અને આભ્યન્તર. ॥૬૦॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા——અગાઉ તપને સંવરનું કારણ કહેવામાં આવ્યું હતું. હવે તે તપની પ્રરૂપણા કરવાને માટે પહેલાં તેના બાહ્ય અને આભ્યન્તર ભેદોનું નિદર્શન કરીએ છીએ-

તપ બે પ્રકારના છે-બાહ્ય તપ અને આભ્યન્તર તપ જે ૮ પ્રકારના કર્મોને તપાવે-બાળે છે તે તપ કહેવાય છે. સમયથી યુક્ત આત્માના શેષ આશયને શુદ્ધ કરવા માટે બાહ્ય અને આભ્યન્તર તાપનને તપ કહે છે.

तपो व्यपदिश्यते, तच्च द्विविधम्, बाह्यमाभ्यन्तरञ्च । तत्र-बाह्य द्रव्यापेक्षत्वात् -बाह्यं तप उच्यते, आभ्यन्तरञ्च-अन्तःकरणव्यापारसाध्यत्वात् बाह्यद्रव्यानपेक्षत्वाच्चाऽऽभ्यन्तर तप उच्यते तत्राऽऽतापनादिः कायक्लेशात्मकं तपो बहिर्लक्ष्यते इति बाह्यं तत्-तप उच्यते, अनशनादिकञ्चापि बाह्यं तपः । प्रायश्चित्त विनयादिकन्तु-आभ्यन्तरं तप उच्यते, अथवा-परप्रत्यक्षं तपो बाह्यम्, स्वप्रत्यक्षं पुन राभ्यन्तरं तप उच्यते, अथवा-परप्रत्यक्षं तपो बाह्यम्, स्वप्रत्यक्षं पुन राभ्यन्तरं तप उच्यते । तदुभयं तपः प्रत्येकं षड्भेदाद् द्वादशविधं बोध्यम् ॥६०॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं कर्मास्रवनिरोधलक्षणसंवरं प्रति समिति-गुप्ति-

---

आभ्यन्तर तापन को तप कहते हैं। शरीर और इन्द्रियों को तप्त करने के कारण या कर्म-फल को दग्ध करने के कारण भी वह तप कहलाता है।

बाह्य तप और आभ्यन्तर तप के भेद से तप दो प्रकार का है। जिस तप में बाह्य द्रव्यों की अपेक्षा होती है वह बाह्य तप और अन्तःकरण के व्यापार से ही होने के कारण एवं बाह्य द्रव्यों की अपेक्षा न रखने के कारण आभ्यन्तर तप कहलाता है। आतापना आदि कायक्लेश रूप तप बाह्य से प्रतीत होता है, अतः बाह्य तप कहलाता है। अनशन आदि भी बाह्य तप ही हैं। प्रायश्चित्त, विनय आदि को आभ्यन्तर तप कहते हैं। या जो तप दूसरों को प्रत्यक्ष हो सके वह बाह्य और जो स्वप्रत्यक्ष ही हो वह आभ्यन्तर तप। दोनों तपों के छह-छह भेद हैं, अतः सब मिलकर बारह प्रकार का तप है ॥ ६० ॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-पहले यह प्रतिपादन किया गया था कि कर्मास्रव

શરીર અને ઇન્દ્રિયોને તપાવવાના કારણે અથવા કર્મફળને દગ્ધ કરવાના કારણે પણ આ તપ કહેવાય છે.

બાહ્ય તપ અને આભ્યન્તર તપના ભેદથી તપ બે પ્રકારના છે. જે તપમાં બાહ્ય દ્રવ્યોની અપેક્ષા રહે છે. તે બાહ્ય તપ અને અંતઃકરણના વ્યાપારથી જ થવાના કારણે અને બાહ્ય દ્રવ્યોની અપેક્ષા ન રાખવાને કારણે આભ્યન્તર તપ કહેવાય છે આતાપના આદિ કાયકલેશ રૂપ તપ બહારથી પ્રાપ્ત થાય છે. આથી બાહ્ય તપ કહેવાય છે. અનશન આદિ પણ બાહ્ય તપ છે. પ્રાયશ્ચિત્ત વિનય આદિને આભ્યન્તર તપ કહે છે. અથવા જે તપ બીજાને પ્રત્યક્ષ થઈ શકે તે બાહ્ય અને જે સ્વપ્રત્યક્ષ જ હોય તે આભ્યન્તર તપ બંને તપના છ છ ભેદ છે. આથી બધા મળીને બાર પ્રકારના તપ છે ॥૬૦॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલાં એ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું હતું કે

धर्मानुप्रेक्षापरीषहजय-चारित्र तपसां हेतु त्वकथनात् क्रमशः समित्यादि चारित्रान्तानां प्ररूपणं कृतम्, सम्प्रति-तपः प्ररूपयितुं प्रथमं तावत् तद्भेदद्वयं प्रतिपादयति-'तवो दुविहे, बाहिरए-अब्भिंतरए य' इति । तपः खलु-कर्मफल निर्दहनरूपं द्विविधम् भवति, बाह्यम्-आभ्यन्तरञ्च, तत्र-बाह्यन्तावद् वक्ष्यमाणमनशनादिकं षड्विधम्, एवम्-आभ्यन्तरं चाऽपि प्रायश्चित्तादिकं षड्विधमवगन्तव्यम् । तथा च-तदुभयं तपः खलु-द्वादशविधं भवति, परिसेव्यमानम् आतापनादिकं तपः कर्माणि-आत्म प्रदेशेभ्यः पृथक्कृत्य परिशाटयति, अनशनप्रायश्चित्तध्यानादितपोऽवश्यमेव कर्मास्रवद्वारं संवृणोति, । तथा च-तपसा खलु-पूर्वोपचित कर्म परिक्षयो भवति नूतनकर्मप्रवेशाभावश्च, तस्मात्-संवरस्य-निर्जरायाश्च हेतुभूतं तपो भवतीतिभावः ॥६०॥

निरोध रूप संवर के कारण समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, चारित्र और तप हैं । इनमें से समिति से लेकर चारित्र तक की प्ररूपणा की जा चुकी है, अब तप की प्ररूपणा करने के लिए सर्वप्रथम उनके दो भेदों का कथन करते हैं—

कर्मनिर्दहन रूप तप दो प्रकार का है-बाह्य और आभ्यन्तर । बाह्य तप अनशन आदि छह प्रकार का है और आभ्यन्तर तप भी प्रायश्चित्त आदि के भेद से छह प्रकार का है । दोनों के मिलकर बारह भेद होते हैं । आराधन किया जाने वाला आतापना आदि तप कर्मों को आत्मप्रदेशों से पृथक् करके हटा देता है और अनशन, प्रायश्चित्त एवं ध्यान आदि तप अवश्य ही कर्मों के आस्रवद्वार को रोकता है । तपस्या के द्वारा पूर्वसंचित कर्मों का क्षय (निर्जरा) होता है और नवीन

કર્માસ્રવનિરોધ રૂપ સંવરના કારણ સમિતિ, ગુપ્તિ, ધર્મ, અનુપ્રેક્ષા, પરીષહજય ચારિત્ર, અને તપ છે. આમાંથી સમિતિથી લઈને ચારિત્ર સુધીની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે. હવે તપની પ્રરૂપણા કરવા માટે સર્વ પ્રથમ તેના બે ભેદોનું કથન કરીએ છીએ.

કર્મનિર્દહન રૂપ. તપ બે પ્રકારના છે. બાહ્ય અને આભ્યન્તર બાહ્ય તપ અનશન આદિ છ પ્રકારના છે. અને આભ્યન્તર તપ પણ પ્રાયશ્ચિત્ત આદિના ભેદથી ૬ પ્રકારના છે. બંનેના મળીને બાર ભેદ થાય છે. આરાધના કરવામાં આવનાર આતાપના આદિ તપ કર્મોના આત્મપ્રદેશોથી પૃથક્ કરીને કાઢી નાખે છે અને અનશન, પ્રાયશ્ચિત્ત અને ધ્યાન આદિ તપ અવશ્ય જ કર્મોના આસ્રવદ્વારને રોકે છે. તપસ્યા દ્વારા પૂર્વસંચિત કર્મોનો ક્ષય (નિર્જરા)

मूलम्—बाहिरए तवे छव्विहे, अणसणऊणोयरियाभिक्खायरिया रसपरिच्चाग-कायकिलेस-संलीणया भेयओ ॥६१॥

छाया—'बाह्यन्तपः षड्विधम्, अनशनाऽवमौदर्य-भिक्षाचर्यारसपरित्याग-कायक्लेश-संलीनताभेदतः' ॥६१॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे-संवरहेतुभूतपसो द्वैविध्यं प्रतिपादितम्, बाह्याऽभ्यन्तरभेदात्, सम्प्रति-तस्यैव तपसः प्रथमभेदभूतस्य बाह्यतपसः षड्भेदान् प्ररूपयितुमाह-'बाहिरए तवे छव्विहे' इत्यादि। बाह्यं बहिर्भवं तपः खलु षड्विधं वर्तते, तद्यथा—अनशनाऽवमौदर्य—भिक्षाचर्या—रसपरित्याग—कायक्लेश—संलीनता-भेदतः। तत्राऽशनपान खाद्य स्वाद्यरूपचतुर्विधाहारपरित्यागोऽनशनमुच्यते, तत्र-

---

कर्मों का आस्रव रुक जाता है। इस प्रकार तप संवर और निर्जरा दोनों का कारण है ॥ ६० ॥

'बाहिरए तवे छव्विहे' इत्यादि

सूत्रार्थ—बाह्य तप छह प्रकार का है-(१) अनशन (२) अवमौदर्य (३) भिक्षाचर्या (४) रसपरित्याग (५) कायक्लेश और (६) प्रति-संलीनता ।.६०॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्व सूत्र में संवर के कारणभूत तप के दो भेद कहे हैं-बाह्य और आभ्यन्तर। अब बाह्य तप के भेदों का निरूपणकरते हैं।

बाह्य तप छह प्रकार का है-(१) अनशन (२) अवमौदर्य (३) भिक्षाचर्या (४) रसपरित्याग (५) कायक्लेश और (६) संलीनता। इनमें से अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप चार प्रकार के आहार का परित्याग करना अनशन कहलाता है। उपवास, बेला, तेला, चौला

થાય છે અને નવા કર્મોનો આસ્રવ રોકાઇ જાય છે આ રીતે તપ, સંવર અને નિર્જરા બંનેનું કારણ છે. ॥૬૦॥

'बाहिरए तवे छव्विहे' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—બાહ્ય તપ છ પ્રકારના છે-(૧) અનશન (૨) અવમૌદર્ય (૩) ભિક્ષાચર્યા (૪) રસપરિત્યાગ (૫) કાયકલેશ અને (૬) પ્રતિસંલીનતા.

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં સંવરના કારણભૂત તપના બે ભેદ કહેવામાં આવ્યા છે બાહ્ય તેમજ આભ્યન્તર હવે બાહ્ય તપના ભેદોનું નિરૂપણ કરીએ છીએ-

બાહ્ય તપ છ પ્રકારના છે-(૧) અનશન (૨) અવમૌદર્ય (૩) ભિક્ષાચર્યા (૪) રસપરિત્યાગ (૫) કાયકલેશ અને (૬) પ્રતિસંલીનતા આમાંથી અશન, પાન, ખાદ્ય અને સ્વદ્ય રૂપ ચાર પ્રકારના આહારનો પરિત્યાગ

चतुर्थ षष्ठाऽष्टम-दशम-द्वादशादि भेदादनेकविधम्। तथा-इत्वरिक-मरणकालिकभेदादनशनं द्विविधं भवति, तत्रापि-इत्वरिकं श्रेणितपःप्रभृति भेदैरनेकविधम्। एवं-मरणकालिकं तपोऽपि सविचाराऽविचारनिर्हारिमाऽनिर्हारिमादिभेदैरनेकविधं भवति। तच्च दृष्टाऽदृष्टफलाऽनपेक्षतया संयमसिद्धिरागोच्छेदकर्मविनाशध्यानाऽऽगमप्राप्त्यर्थं क्रियते १ संयम ज्ञानादिहेतोर्यत् स्वाहारपरिमाणं न्यूनं भुज्यते तद्-अवमौदर्य मुच्यते, तच्च-द्रव्यक्षेत्रकालभावपर्यवैः पञ्चविधं भवति, तद्धि-संयमवृद्ध्यर्थं तद्गतदोषप्रशमार्थं सन्तोषस्वाध्यायादि सिद्ध्यर्थं

और पंचोला आदि के भेद से अनशन अनेक प्रकार का है। इत्वरिक अनशन और यावज्जीवन अनशन के भेद से भी अनशन दो प्रकार का है। इत्वरिक अनशन श्रेणि तप आदि के भेद से कई प्रकार का है। इसी प्रकार यावज्जीवन (मरणकालिक) अनशन के भी सविचार, अविचार, निर्हारिम, अनिर्हारिम के भेद से अनेक भेद हैं। अनशन तप प्रत्यक्ष और परोक्ष लौकिक फल की अपेक्षा न रखते हुए संयम की सिद्धि के लिए, राग को नष्ट करने के लिए, कर्मों का विनाश करने के लिए, ध्यान और ज्ञान की प्राप्ति के लिए किया जाता है।

संयम और ज्ञान आदि की सिद्धि के लिए अपने आहार में जो कमी की जाती है वह अवमौदर्य तप कहलाता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और पर्यव के भेद से इसके पांच भेद हैं। संयम की वृद्धि के लिए, संयम संबंधी दोषों को शान्त करने के लिए, तथा संतोष एवं

કરવો અનશન કહેવાય છે. ઉપવાસ, છઠ, અટ્ઠમ, ચોલુ અને પંચોળુ વગેરેના ભેદથી અનશન અનેક પ્રકારના છે. ઇત્વરિક અનશન અને યાવજ્જીવન અનશનના ભેદથી પણ અનશન બે પ્રકારના છે. ઇત્વરિક અનશન શ્રેણિતપ આદિના ભેદથી ઘણી જાતના છે. એવી જ રીતે યાવજ્જીવન (મરણપર્યન્તક) અનશનના પણ સવિચાર, અવિચાર, નિર્હારિમ અનિર્હારિમના ભેદથી અનેક ભેદ છે. અનશન તપ પ્રત્યક્ષ અને પરોક્ષ લૌકિક ફળથી અપેક્ષા ન રાખતા થકા સંયમની સિદ્ધિને માટે, રાગનો નાશ કરવા માટે, કર્મોનો વિનાશ કરવા કાજે, ધ્યાન તથા જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ અર્થે કરવામાં આવે છે.

સંયમ અને જ્ઞાન આદિની સિદ્ધિ માટે પોતાના આહારમાં જે ઘટાડો કરવામાં આવે છે તે અવમૌદર્ય તપ કહેવાય છે દ્રવ્ય ક્ષેત્ર, કાળ ભાવ અને પર્યવના ભેદથી તેના પાંચ ભેદ સંયમની વૃદ્ધિ માટે સંયમ સંબંધી દોષોને શાન્ત કરવા માટે તથા સંતોષ અને સ્વાધ્યાય વગેરેની સિદ્ધિના

च क्रियते २ भिक्षार्थं चरणं-भिक्षाचर्या, साचाऽष्टविधगोचराग्र सप्तैषणा-तदन्याभिग्रहरूपा भवति, इयं वृत्तिपरिसंख्यानमिति नाम्नापि प्रसिद्धेति ३ इन्द्रिय-मदनिग्रहार्थं क्षीर-दधि-घृतादि प्रणीतपानभोजनस्य परिवर्जनम्, 'खीर दहि-सप्पिमाई' इत्युत्तराध्ययनोक्तेनाऽऽदिशब्देन तिक्त-कटु-कषायादिरसानामपि ग्रहणं बोध्यम् रसपरित्याग इन्द्रियदर्पनिग्रह निद्रादिजयस्वाध्यायसिद्ध्यादि-निमित्तं दुग्धादि पौष्टिकरसपरित्यागश्चतुर्थं तप उच्यते ४ शुभपरिणामजनक-मोक्ष सुखसम्पादक-वीरासनोत्कुटुकाद्युग्रासन विधानादि रूपः कायक्लेशः, तद्रूपं तपः

स्वाध्याय आदि की सिद्धि के लिए किया जाता है।

भिक्षा के लिए विचरण करना भिक्षाचर्या है। यह आठ प्रकार के गोचराग्र, सात एषणा तथा अन्य अभिग्रह रूप है। इसका दूसरा नाम 'वृत्तिपरिसंक्षेप' भी प्रसिद्ध है।

इन्द्रियों के उन्माद का तथा निद्रा आदि का निग्रह करने के लिए दूध, दही, घृत आदि पौष्टिक आहार पानी का त्याग करना रसपरि-त्याग तप है। 'खीर-दहि-सप्पिमाई' उत्तराध्ययन में यहां जो 'आदि शब्द का प्रयोग किया है, उससे तिक्त, कटु और कषाय आदि रसों का भी ग्रहण कर लेना चाहिए। इन्द्रियों की प्रबलता को दबाने के लिए, निद्राविजय के लिए तथा स्वाध्याय आदि की सिद्धि के लिए दूध आदि पौष्टिक रसों का त्याग करना रसपरित्याग नाम का चौथा तप है।

शुभ परिणामों को उत्पन्न करने के लिए और मोक्षसुख को प्राप्त

માટે કરવામાં આવે છે.

ભિક્ષા માટે વિચરણ કરવું ભિક્ષાચર્યા છે. આ આઠ પ્રકારના ગોચરાગ્ર, સાત એષણા તથા અન્ય અભિગ્રહ રૂપ છે આનું બીજું નામ 'વૃત્તિપરિ-સંક્ષેપ' પણ જાણીતું છે.

ઇન્દ્રિયોના ઉન્માદનું તથા નિદ્રા આદિનો નિગ્રહ કરવા માટે દૂધ, દહીં, ઘી આદિ પૌષ્ટિક આહાર-પાણીનો, ત્યાગ કરવો રસપરિત્યાગ તપ છે. 'खीर दही सप्पिमाई' ઉત્તરાધ્યયનમાં અહીં જે 'આદિ' શબ્દનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે તેનાથી તીખા, કડવા અને કસાયેલા વગેરે રસોનું પણ ગ્રહણ કરી લેવું જોઈએ. ઇન્દ્રિયોની પ્રબળતાને દબાવવા કાજે, નિદ્રાવિજયને માટે તથા સ્વાધ્યાય આદિની સિદ્ધિ માટે દૂધ વગેરે પૌષ્ટિક રસોનો ત્યાગ કરવો રસપરિત્યાગ નામક ચોથું તપ છે.

શુભ પરિણામોને ઉત્પન્ન કરવા માટે અને મોક્ષસુખને પ્રાપ્ત કરવા

-कायक्लेशतपः पञ्चममुच्यते, । तच्च-कायक्लेशरूपं तपः शारीरिक दुःख तितिक्षा सुखानभिष्वङ्ग प्रवचन प्रभावनाद्यर्थम्, अथ परीषह कायक्लेशयोः को विभेदः ? इति चेदुच्यते-परीषह स्तावद् यदृच्छया खलु-उपनिपतितो भवति, कायक्लेशस्तु-स्वयंकृतो भवतीति विशेषो द्रष्टव्यः। बाह्यद्रव्यापेक्षत्वात्--परप्रत्यक्षत्वाच्च कायक्लेशस्य बाह्यत्वव्यवहारो भवतीतिभावः ६ संलीनता -चतुर्विधा, इन्द्रिय १ कषाय २ योग ३ विविक्तचर्या ४ भेदात् तत्रे-न्द्रियसंलीनता-इन्द्रियगोपनम् १ कषायसंलीनता--कषायोदयनिरोधः, २ योग संलीनता-मनोवाक्कायर्योगानां शुभेषु प्रवृत्तिः ३ विविक्तचर्या-

---

करने के लिए वीरासन, उत्कुटुकासन आदि कठिन आसन करना आदि कायक्लेश तप है। यह पांचवां है। इस तप का उद्देश्य है-शारीरिक कष्ट को सहन करना, सुख में आसक्ति न उत्पन्न होने देना और प्रवचन की प्रभावना।

प्रश्न-परीषह और कायक्लेश में क्या भेद है ?

उत्तर-परिषह वह कष्ट है जो अपने-आप आ पड़ता है किन्तु कायक्लेश स्वेच्छा से उत्पन्न किया होता है। यह दोनों में अन्तर है।

बाह्य द्रव्यों की अपेक्षा होने से दूसरों को प्रत्यक्ष होने से काय क्लेश बाह्य तप कहलाता है।

संलीनता चार प्रकार की है-(१) इन्द्रिय संलीनता (२) कषायसंली-नता (३) योगसंलीनता और (४) विविक्त चर्या संलीनता। इन्द्रियों का गोपन करना इन्द्रियसंलीनता है, कषाय के उदय का निरोध करना

માટે વીરાસન, ઉત્કુટુકાસન વગેરે અઘરાં આસન કરવા કાયકલેશ તપ છે. આ પાંચમું તપ છે. આ તપનો હેતુ છે-શારીરિક કષ્ટને સહન કરવા, સુખમાં આસકિત ઉત્પન્ન ન થવા દેવી અને પ્રવચનની પ્રભાવના.

પ્રશ્ન—પરીષહ અને કાયકલેશમાં શો ભેદ છે?

ઉત્તર—પરીષહ તે કષ્ટ છે જે પોતાની મેળે આવી પડે છે પરન્તુ કાયકલેશ સ્વેચ્છાપૂર્વક ઉત્પન્ન કરવામાં આવે છે બંનેમાં આ તફાવત છે

બાહ્ય દ્રવ્યોની અપેક્ષા હોવાથી, બીજાઓને પ્રત્યક્ષ હોવાથી કાયકલેશ બાહ્ય તપ કહેવાય છે.

સંલીનતા ચાર પ્રકારની છે-(૧) ઇન્દ્રિયસંલીનતા (૨) કષાયસંલીનતા (૩) યોગસંલીનતા અને (૪) વિવિકતચર્યાસંલીનતા ઇન્દ્રિયોનું ગોપન કરવું ઈન્દ્રિયસંલીનતા છે, કષાયના ઉદયનો નિરોધ કરવો કષાયસંલીનતા છે, મન

एकान्ताऽनपातस्त्री पशु पण्डकविवर्जित शयनाऽऽसनसेवनम् ४ तद्रूपं तपः संलीनता तपः षष्ठं बाह्यं तप उच्यते ६ इति ॥६१॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावत्-कर्मास्रवनिरोधलक्षण संवरस्य हेतुतया तपः प्रतिपादितम्, तत्खलु तपो द्वादशविधम् तत्र-षड्विधं बाह्यम्, षड्विधमाभ्यन्तरश्चेतिप्ररूपितत्वात्, सम्प्रति-प्रथमं षड्विधं बाह्यं तपो निरूपयितुमाह-'बाहिरए तवे छव्विहे, अणसण-ऊणोयरिया-भिक्खायरिया-रसपरिच्चाग-कायकिलेस-संलीणया भेयओ' इति। बाह्य-बहिर्भवं बहिर्लक्ष्यमाणं तावत्तावत् षड्विधं भवति अनशनाऽवमौदर्य-भिक्षाचर्या-रसपरित्याग-कायक्लेशसंलीनता भेदात्, तत्र-अनशनम् १ अवमौदर्यम् २ भिक्षाचर्या ३ रसपरित्यागः ४ संलीनता ६ कायक्लेशः ५ इत्येवं षड्विधं बाह्यं तप उच्यते। यः पुनः प्रवचनोक्त-

---

कषायसंलीनता है। मन वचन और काय को अशुभ व्यापार में प्रवृत्त न होने देना योगसंलीनता है और एकान्त, जहां लोगों का आवागमन न हो तथा जो स्त्री, पशु और पण्डक से रहित हो ऐसे शयनासन का सेवन करना विविक्तचर्या है। यह प्रति संलीनता नामक छठा बाह्य तप है ॥ ६१ ॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले कर्मास्रवनिरोध रूप संवर का कारण तप है, ऐसा प्रतिपादन किया गया था। उस तप के बारह भेद हैं-छह बाह्य और छह आभ्यन्तर, यह भी कहा जा चुका है। अब प्रथम बाह्य तप के छह भेदों की प्ररूपणा करते हैं-

बाह्य तप छह प्रकार का है-अनशन, अवमौदर्य, ऊनोदरता, भिक्षाचर्या, रसपरित्याग, कायक्लेश और प्रतिसंलीनता। जो तप बाह्य हो और बाहय से जाना जा सके वह बाहय तप कहलाता है।

વચન અને કાયાને અશુભ વ્યાપારમાં પ્રવૃત્ત ન થવા દેવી યેગસંલીનતા છે અને એકાન્ત, જ્યાં લેકેનું આવાગમન ન હોય તથા જે સ્રી, પશુ અને નપુંસકથી રહિત હોય એવા શયનાસનનું સેવન કરવું વિવિકતચર્યા છે. આ પ્રતિસંલીનતા નામક છઠું બાહ્ય તપ છે. ॥૬૧॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુકિત—પહેલાં કર્માસ્રવનિરોધ રૂપ સંવરનું કારણ તપ છે, એવું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું હતું. તે તપના બાર ભેદ છે-છ બાહ્ય તથા છ આભ્યન્તર એ પણ કહેવામાં આવ્યું છે. હવે પ્રથમ બાહ્ય તપના છ ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

બાહ્ય તપ છ પ્રકારના છે-અનશન, અવમૌદર્ય, ઉનોદરતા, ભિક્ષાચર્યા, રસપરિત્યાગ, કાયકલેશ અને પ્રતિસંલીનતા જે તપ બહાર હોય અને બહારથી જાણી શકય તે બાહ્ય તપ કહેવાય છે.

श्रद्धया स्वसामर्थ्यानुसारं द्रव्यक्षेत्रकालभावविज्ञः सन् अहोरात्राभ्यन्तर कर्तव्य क्रियाश्चापरित्यजन् अनशनादिकं तपश्चरति स कर्मनिर्जराभाग् भवति इति बोध्यम्। पूर्वोक्तस्य–सप्तदशविधस्य पृथिवीकायिकादि संयमस्य सामायिकादि पञ्चविधचारित्ररूपस्य वा संयमस्य परिपालनार्थं रसत्यागादिकं तपो भवति। तेन–तपसा ज्ञानावरणादि कर्मण आत्मप्रदेशेभ्यः पृथक्करणरूपपरिशाटन-लक्षणा निर्जरा भवति। तत्र–ऽशनम्-आहारः, तत् परित्यागोऽनशनम्, तच्च द्विविधम् इत्वरं–यावज्जीवञ्च। तत्रेत्वरमनशनं नमस्कारसहितादिकं चतुर्थभक्तादि –षण्मासपर्यन्तञ्चाऽवसेयम्। यावज्जीवं पुन स्त्रिविधम्, पादपोपगमनम्–इङ्गितम्–

जो साधक प्रवचन में श्रद्धा रखता हुआ, अपने सामर्थ्य के अनुसार, द्रव्य-क्षेत्र–काल–भाव को जानता हुआ, दिनमें और रात्रि में करने योग्य क्रियाओं का परित्याग न करता हुआ अनशन आदि तप करता है, वह कर्मनिर्जरा का भागी होता है। पूर्वोक्त सतरह प्रकार के पृथ्वीकाय संयम आदि का पालन करने के लिए या पांच प्रकार के सामायिक चारित्र आदि रूप संयम के पालन के लिए रसपरित्याग आदि तप किया जाता है। तप से कर्मों की निर्जरा होती है अर्थात् ज्ञानावरण आदि कर्मों का आत्मप्रदेशों से पृथक् करण रूप परिशाटन होना है।

अशन का अर्थ है–आहार, उसका त्याग करना अनशन है। इसके दो भेद हैं–इत्वरिक और यावज्जीव। इत्वरिक अनशन नौकारसी से लेकर उपवास आदि छह महीने तक का होता है। यावज्जीव अनशन के तीन भेद हैं–पादपोपगमन, इंगिनमरण और भक्तप्रत्याख्यान।

જે સાધક પ્રવચનમાં શ્રદ્ધા રાખતો થકો, પોતની શકિત મુજબ, દ્રવ્ય–ક્ષેત્ર–કાળ–ભાવને જાણતો થકો, દિવસ અને રાત્રિદરમ્યાન કરવા યોગ્ય ક્રિયાઓનો પરિત્યાગ ન કરતો થકો, અનશન વગેરે તપ કરે છે, તે કર્મ-નિર્જરાનો ભાગી થાય છે પૂર્વોકત સત્તર પ્રકારના પૃથ્વીકાય સંયમ આદિનું પાલન કરવા માટે અથવા પાંચ પ્રકારના સામાયિક ચારિત્ર આદિ રૂપ સંયમના પાલન માટે રસપરિત્યાગ આદિ તપ કરવામાં આવે છે. તપથી કર્મોની નિર્જરા થાય છે અર્થાત્ જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મોના આત્મપ્રદેશોથી પૃથક્કરણ રૂપ પરિશાટન થાય છે.

અશનનો અર્થ છે–આહાર, તેનો ત્યાગ કરવો અનશન છે આના બે ભેદ છે–ઈત્વરિક અને યાવજ્જીવ ઈત્વરિક અનશન નોકારશીથી લઇને ઉપ-વાસ વગેરે છ માસ સુધીનું હોય છે. યાવજ્જીવ અનશનના ત્રણ ભેદ છે–

भक्तप्रत्याख्यानञ्च । तत्र-पादपोपगमनं द्विविधम्, सव्याघातम्-निर्व्याघातञ्च तत्र-सतोऽप्यायुषः समुत्पन्नव्याधिना संजात महावेदनेन यत्प्राणोत्क्रान्तिं करोति तत्-सव्याघातमुच्यते. निर्व्याघातं पादपोपगमनं तु-प्रव्रज्या शिक्षा पदादिक्रमेण जराजर्जरितदेहः सन् उपहितचतुर्विधाहार प्रत्याख्यानः प्रशस्तध्यानव्यापृतान्तःकरणो जन्तुरहितं स्थण्डलमाश्रित्य पादपवत् एकेन पार्श्वेन निपत्य परिस्पन्दशून्यः तावत्कालपर्यन्तमास्ते यावत्प्राणा नोत्क्रामन्ति, इत्येवं तावत् पादपोपगमरूपं द्विविध मनशनम् । श्रुतविहित क्रियाविशेषरूप मिङ्गितमुच्यते, तद्विशिष्टं मरणमिङ्गितमरणम् । इदमपि-अनशनव्रतस्वीकुर्वन् दीक्षा-शिक्षापदादि-

पादपोपगमन के दो भेद हैं-सव्याघात और निर्व्याघात । जिसे व्याधि उत्पन्न हुई है और घोर वेदना हो रही है वह आयु शेष होने पर भी प्राणों की जो उत्क्रान्ति करता है वह सव्याघात पादपोपगमन हैं । जिस साधु का शरीर प्रव्रज्या एवं शिक्षा पद आदि के क्रम से जरा से जर्जरित हो गया हो, वह चारों प्रकार के आहार का परिहार करके, प्रशस्त ध्यान में चित्त लगाकर जीव-जन्तुओं से रहित भूमि का आश्रय लेकर पादप (वृक्ष) के जैसे एक पसवाडे से लेट जाता है, हलन-चलन बिलकुल बंध कर देता है और जीवन के अन्त तक उसी प्रकार स्थिर रहता हैं । यह निर्व्याघात पादपोपगमन कहलाता है । यह दोनो प्रकार का पादपोपगमन नामक अनशन है ।

शास्त्रविहित क्रिया को इंगित कहते हैं, उससे युक्त मरण इंगित मरण समझना चाहिए । इस अनशन व्रत को भी वह स्वीकार करता

પાદપોપગમન્ ઇંગિતમરણુ અને ભક્તપ્રત્યાખ્યાન પાદપોપગમનના બે ભેદ છે સવ્યાઘાત અને નિર્વ્યાઘાત જેને વ્યાધિ ઉત્પન્ન થઈ છે અને ઘોર વેદના થઇ રહી છે તે આયુષ્ય બાકી હોવા છતાં પણ પ્રાણોની જે ઉત્કાન્તિ કરે છે તે સવ્યાઘાત પાદપોપગમન છે. જે સાધુનું શરીર પ્રવજ્યા અને શિક્ષાપદ આદિના ક્રમથી ઘડપણથી જર્જરિત થઈ ગયું છે, તે ચારે પ્રકારના આહારનો ત્યાગ કરીને, પ્રશસ્ત ધ્યાનમાં ચિત્ત પરોવીને, જીવજન્તુઓ વગરની ભૂમિનો આશરો લઈને, પાદપ (વૃક્ષ)ની જેમ એક પડખેથી સુઈ જાય છે, હલન-ચલન તદ્દન બંધ કરી દે છે અને જીવનના અન્ત સુધી તે જ હાલતમાં સ્થિર રહે છે. આ નિર્વ્યાઘાત પાદપોપગમન કહેવાય છે. આ બંને પ્રકારના અનશન પાદપોપગમન નામક છે.

શાસ્ત્રવિહિત ક્રિયાને ઇંગિત કહે છે, તેનાથી યુક્ત મરણુ ઇંગિતમરણુ સમજવું. આ અનશન વ્રતનો પણ તે જ સ્વીકાર કરે છે જે દીક્ષા અને

प्रतिपत्तिक्रमणेना-ऽऽयुषः क्षीणतामवगम्य गृहीतस्वोपकरणो निर्जन्तुकस्थण्डिल शायी भूत्वा-एकक एव प्रत्याख्यान चतुर्विधाहारो मर्यादितभूमौ गमनाऽगमनं कुर्वन्-चेष्ठावान् सम्यग्ज्ञाननिष्ठः प्राणान् परित्यजति, एतद् खलु-इङ्गितमरणं परपरिकर्मवर्जितञ्च भवति। भक्तप्रत्याख्यानरूपमनशनं तु-गच्छमध्यवर्तिनः संयतस्य बोध्यम्, स खलु गच्छमध्यवर्ती संयतः कदाचित् त्रिविधाहारप्रत्याख्याता भवति-कदाचित्-चतुर्विधाहार प्रत्याख्याता भवति, अन्ते च-मृदुसंस्तारकाश्रितः कृतसकलप्रत्याख्यानः शरीराद्युपकरणममत्वरहितः सन् स्वयं परि-

है जो दीक्षा और शिक्षा पद आदि के क्रम से आयु को क्षीण हुआ समझता है। वह अपने उपकरणों को ग्रहण करके जीव-जन्तु विहीन भूमिभाग में चला जाता है। अकेला ही चारों प्रकार के आहार का त्याग कर देता है और मर्यादा की गई भूमि में ही गमनागमन करता है। इस प्रकार सम्यक् ज्ञान में निष्ठ हो कर समाधि पूर्वक प्राणों का परित्याग कर देता है। इंगित मरण परपरि कर्म से वर्जित होता है अर्थात् इस में भी दूसरे से किसी प्रकार की सेवा-शुश्रूषा नहीं करवाई जाती।

भक्तप्रत्याख्यान अनशन गच्छ में रहे हुए साधु को होता है। गच्छ के अन्दर रहा हुआ साधु कभी तीन प्रकार के आहार का, त्याग करता हैं और कभी चारों प्रकार के आहार का परित्याग कर देता है। अन्त में संस्तारक पर लेट कर, सब प्रकार का प्रत्याख्यान करके, शरीर एवं उपकरण आदि में ममता से रहित होकर, स्वयं नमस्कार

શિક્ષાપદ આદિના ક્રમથી આયુષ્યને ક્ષીણ થયેલું સમજે છે. તે પોતાના ઉપકરણોને ગ્રહણ કરીને જીવ-જન્તુ વિહોણી ભૂમિભાગમાં ચાલ્યો જાય છે. એકલો જ ચારે પ્રકારના આહારનો ત્યાગ કરી દે છે અને મર્યાદા બાંધેલી ભૂમિમાં જ ગમનાગમન કરે છે. આ રીતે સમ્યગ્જ્ઞાનમા નિષ્ઠ થઈને સમાધિપૂર્વક પ્રાણોનો પરિત્યાગ કરી દે છે ઇંગિતમરણ પરપરિકર્મથી વર્જીત હોય છે અર્થાત્ આમાં પણ બીજાથી કોઇ પ્રકારની સેવા-શુશ્રૂષા કરવામાં આવતી નથી

ભકતપ્રત્યાખ્યાન અનશન ગચ્છમાં રહેલા સાધુ માટે હોય છે. ગચ્છની અંદર રહેલો સાધુ કોઈ વાર ત્રણ પ્રકારના આહારનો ત્યાગ કરે છે અને કયારેક ચારે પ્રકારના આહારનો ત્યાગ કરે છે. છેવટે સાથરા પર સુઇ જઇને, બધા પ્રકારના પચ્ચખાણ કરીને, શરીર અને ઉપકરણ વગેરેમાં મમતાથી રહિત થઈને સ્વયં નમસ્કાર ગ્રહણ કરીને અથવા પાસે રહેતા

ग्राहितनमस्कारः, प्रत्यासन्न श्रमणकृतनमस्कारो वा-उद्वर्तन पार्श्वपरिवर्तनादिकं विदधत् समाधिना कालं करोति, तदेतत् खलु-भक्तप्रत्याख्यानरूप मनशनमव सेयम् १ अवमौदर्यं तावत्-अवमं-न्यूनम्-उदरं यस्य सोऽवमोदरः तस्य भावः अवमौदर्यम्, न्यूनोदरत्वम्, तच्च-अवमौदर्यं तप श्चतुर्विधं भवति। १ जघन्याऽवमौदर्यम्, २ प्रमाणप्राप्ताऽवमौदर्यम्, ३ अर्धाऽवमौदर्यम्, ४ उत्कृष्ट ऽवमौदर्यम्, २। यत्र-एका सिक्थादारभ्य कवलपर्यन्तं न्यून माहारादिकं भुज्यते तत्-जघन्याऽवमौदर्यम्, द्वात्रिंशत्प्रमाणे-आहारे चतुर्विंशति कवलमात्रं भुज्यते यत्र, तत्-प्रमाणप्राप्ताऽवमौदर्यम्, षोडशकवलमात्रं यत्र भुज्यते तद्-अर्द्धाऽवमौदर्यम्, कवलाष्टका दारभ्य सिक्थमात्रं यत्र भुज्यते तद्-उत्कृष्टाऽवमौदर्यम्। एतच्च-न्यूनतर-न्यूनतमा-ऽऽहारे उत्कृष्टम्-उत्कृष्टतमञ्चाऽवमौदर्यं भवतीति २ भिक्षा-

ग्रहण करके या पास में रहे हुए साधु के द्वारा कृत नमस्कार होकर, पसवाड़ा बदलता हुआ समाधि के साथ कालधर्म को प्राप्त होता है। यह भक्तप्रत्याख्यान अनशन है।

(१) ऊनोदरता को अवमौदर्य कहते हैं। अवमौदर्य तप के चार भेद हैं—(१) जघन्य अवमौदर्य (२) प्रमाणप्राप्त अवमौदर्य (३) अर्धावमौदर्य और (४) उत्कृष्टावमौदर्य। एक सीथ से लेकर एक ग्रास तक कम आहार करना जघन्य-अवमौदर्य है। पूर्ण आहार बत्तीस कवल माना जाता है, उसमें से चौबीस कवल मात्र खाना प्रमाणप्राप्त अवमौदर्य है। सोलह कवल खाना अर्धावमौदर्य है और आठ कवल से लेकर एक सीथ तक खाना उत्कृष्टावमौदर्य है। तात्पर्य यह है कि परिपूर्ण आहार में से जितना-जितना आहार कम किया जाता है, उतना-उतना उत्कृष्ट अवमौदर्य तप होता है।

સાધુ દ્વારા કૃતનમસ્કાર થઈને પડખું બદલતો થકો સમાધિપૂર્વક કાળધર્મને પ્રાપ્ત થાય છે. આ ભકતપ્રત્યાખ્યાન અનશન છે

(૨) ઉનોદરતાને અવમૌદર્ય કહે છે. અવમૌદર્ય તપના ચાર ભેદ છે—(૧) જઘન્ય અવમૌદર્ય (૨) પ્રમાણપ્રાપ્ત અવમૌદર્ય (૩) અર્ધાવમૌદર્ય અને (૪) ઉત્કૃષ્ટાવમૌદર્ય એક સીથથી લઈને એક કોળિયા સુધી આહાર ઓછો કરવો જઘન્ય-અવમૌદર્ય છે. પૂર્ણ આહાર બત્રીસ કોળીયા માનવામાં આવે છે તેમાંથી ચોવીસ કોળિયા જ ખાવું પ્રમાણપ્રાપ્ત-અવમૌદર્ય છે. સોળ કોળિયા ખાવા અર્ધાવમૌદર્ય છે અને આઠ કોળિયાથી લઈને એક સીથ સુધી ખાવું ઉત્કૃષ્ટાવમૌદર્ય છે તાત્પર્ય એ છે કે પરિપૂર્ણ આહારમાંથી જેટ-જેટલો આહાર ઓછો કરવામાં આવે છે, તેટલુ-તેટલું ઉત્કૃષ્ટાવમૌદર્ય તપ થાય છે.

चर्या च-वृत्ति परिसंख्यानरूपाऽनेकविधा भवति, उत्क्षिप्तचर्या-निक्षिप्तचर्यादि भेदात्। तत्रोत्क्षिप्त-निक्षिप्तचर्यादीनां सक्तु-कुल्माषौदनादीनामन्यतममभिग्रह-मभिगृह्य भिक्षायै पर्यटनम्-तदन्यस्य प्रत्याख्यानं भिक्षाचर्या। तत्र-द्रव्यक्षेत्र-काल-भावतो विभक्तानभिगृहान् कृत्वा भिक्षाटनं कर्तव्यम्, तत्र-दत्तीनां भिक्षाणाञ्च परिग्रहणं कर्तव्यम्। तद्यथा-'अद्यैकां दत्तिं ग्रहीष्यामि द्वे वा-तिस्रो वा' एवम्-भिक्षाणामपि परिगणनं कर्तव्यम्, तत्र द्रव्यतोऽभिग्रहः सक्तु-कुल्माषाऽन्न शुष्कौदनादेर्ग्रहणविषये, तक्रस्य-एककस्याऽऽचाम्ल पर्णकस्य मण्डकानाञ्चाऽऽभिग्रहः क्षेत्रतोऽभिग्रहो देहलीभागस्य जङ्घयोरन्तःकरणेन भिक्षाग्रहण-

(३) भिक्षाचर्या को वृत्तिपरिसंक्षेप भी कहते हैं। यह अनेक प्रकार की हैं—उत्क्षिप्तचर्या, निक्षिप्तचर्या आदि। उत्क्षिप्त या निक्षिप्त, सक्तु, कुल्माष, ओदन आदि में से किसी का अभिगृह लेकर भिक्षा के लिए अटन करना और दूसरी वस्तुओं का त्याग करना भिक्षाचर्या है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से विभक्त वस्तुओं का अभिग्रह करके भिक्षाटन करना चाहिए। अभिग्रह दत्ति और भिक्षा का किया जाता है, जैसे-आज एक ही दत्ति ग्रहण करूंगा या दो अथवा तीन ही ग्रहण करूंगा। इसी प्रकार भिक्षा की भी गणना-मर्यादा कर लेनी चाहिए। सक्तु, कुल्माष, अन्न या ओदन को ग्रहण करने के विषय में या तक्र आचाम्ल पर्णक या मण्डक के विषय में अभिग्रह करना द्रव्य से भिक्षाचर्या है। एक पैर देहली के बाहर और एक भीतर हो तो भिक्षा लूंगा, इस प्रकार का अभिग्रह करना क्षेत्र संबंधी भिक्षा-

(૩) ભિક્ષાચર્યાને વૃત્તિપરિસંક્ષેપ પણ કહે છે આ અનેક પ્રકારની છે-ઉત્ક્ષિપ્તચર્યા, નિક્ષિપ્તચર્યા આદિ ઉત્ક્ષિપ્ત અથવા નિક્ષિપ્ત સત્તુ કુલ્માષ ઓદન વગેરેમાંથી કોઈનો અભિગ્રહ લઈને ભિક્ષા માટે અટન કરવું અને બીજી વસ્તુઓનો ત્યાગ કરવો ભિક્ષાચર્યા કહેવાય છે. દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવથી વિભક્ત વસ્તુઓનો અભિગ્રહ કરીને ભિક્ષાટન કરવું જોઈએ. અભિગ્રહ દત્તિ તથા ભિક્ષાનો કરવામાં આવે છે, જેમ કે-આજે એક જ વસ્તુ ગ્રહણ કરીશ અથવા બે અગર ત્રણનું જ ગ્રહણ કરીશ આ રીતે ભિક્ષાની પણ ગણના-મર્યાદા બાંધી લેવી જોઈએ. સત્તુ, કુલ્માષ અનાજ અથવા ઓદનને ગ્રહણ કરવાના વિષયમાં અથવા છાશ આચામ્લ પર્ણક અથવા મંડકના વિષયમાં અભિગ્રહ કરવો દ્રવ્યથી ભિક્ષાચર્યા છે. એક પગ ઉંબરા બહાર અને બીજો અંદર હોય તો જ ભિક્ષા લઈશ આ જાતનો અભિગ્રહ ક્ષેત્રસંબંધી ભિક્ષાચર્યા છે, જ્યારે બધાં જ ભિક્ષુકો ચાલ્યા જશે ત્યારે ભિક્ષા

विषये कालतोऽभिग्रहः सर्वेषां भिक्षचराणां विनिर्गमनानन्तरं ग्रहण विषये। भावतोऽभिग्रहो हास्यरोदनादि व्यापृतस्य दायकस्य भिक्षा-दानविषयेऽवगन्तव्यः, तदेवं-द्रव्याद्यन्यतमाऽभिग्रहं कृत्वा शेष प्रत्याख्यानं वृत्ति परिसंख्यानरूपां भिक्षाचर्यातपो व्यपदिश्यते ३ रसपरित्यागस्तावत्-अनेकविधः, दुग्ध दध्यादि रसविकृतीनां प्रत्याख्यानं विरस-रूक्षादीनामभिग्रहश्च बोध्यः। तत्र-रस्यन्ते-ऽतिशयेना-ऽऽस्वाद्यन्ते इति रसाः दुग्ध-दधि-घृतादयः तेषां परित्यागः परिहरणं-रसपरित्यागः, तद्रूपं तपो रसपरित्यागतपः ४ एकान्ते शरीरोपघातरहिते सूक्ष्म-स्थूल प्राणिवर्जिते स्त्री पशुपण्डकरहिते स्थाने स्थितिः, शून्यागार-गिरि-

चर्या है। जब सभी भिक्षुक निकल चुकेंगे तब भिक्षा लूंगा, इत्यादि काल संबंधी अभिग्रह करना काल से भिक्षाचर्या है। अगर दाता हंसता हुआ या रोता हुआ आहार देगा तो ही ग्रहण करूंगा, इत्यादि अभिग्रह करना भाव से भिक्षाचर्या है। इस प्रकार इन द्रव्य, क्षेत्र आदि में से किसी का अभिग्रह करके शेष का त्याग करना वृत्तिपरिसंख्यान रूप भिक्षाचर्या तप है।

(४) रसपरित्याग तप भी अनेक प्रकार का है। दूध, दहीं आदि रसविकृतियों का त्याग करना और विरस-नीरस सूखे आदि का अभिग्रहण करना इसी तप के अन्तर्गत है। जो रसे जाएं अर्थात् आस्वादन किये जाएं उन्हें रस कहते हैं, जैसे दूध, दहीं, घृत आदि, उन रसों का त्याग रसपरित्याग कहलाता है।

(५) एकान्त, शारीरिक व्याघात से वर्जित, सूक्ष्म और स्थूल

ગ્રહણ કરીશ વગેરે કાળ સંબંધી અભિગ્રહ કરવો, કાળથી ભિક્ષાચર્યા છે જો દાતા હસતા હસતા અથવા રડતા રડતા આહાર આપશે તો જ ગ્રહણ કરીશ વગેરે અભિગ્રહ કરવો, ભાવથી ભિક્ષાચર્યા છે આવી રીતે આ દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર વગેરેમાંથી કોઇનો અભિગ્રહ કરીને શેષનો ત્યાગ કરવો એ વૃત્તિપરિસંખ્યાન રૂપ ભિક્ષાચર્યા તપ છે.

(૪) રસપરિત્યાગ તપ પણ અનેક પ્રકારના છે. દૂધ, દહીં આદિ રસવિકૃતિઓનો ત્યાગ કરવો અને વિરસ-નીરસ રૂક્ષ આદિનો અભિગ્રહ કરવો આ તપના જ અન્તર્ગત છે જે રસી શકાય અર્થાત્ આસ્વાદન કરી શકાય તેમને રસ કહે છે, જેવી રીતે દૂધ, દહીં, ઘી આદિ રસોનો ત્યાગ રસપરિત્યાગ કહેવાય છે.

(૫) એકાન્ત, શારીરિક વ્યાઘાતથી વર્જિત, સૂક્ષ્મ અને સ્થૂળ પ્રાણિ-

गुहादौ समाधये निवसनं कायक्लेशश्चाऽनेकविधः, आतापनादिकम्-वीरासनम्-उत्कुटुकासनम् एकपार्श्वशायित्वम्-दण्डायतशायित्वम्-अप्रावृतादिकम्-केशलुञ्चनञ्चाऽऽगन्तव्यम् ६ संलीनता तावत्-इन्द्रिय-कषाय-योग-विविक्तचर्याभेदात् चतुर्विधा। इन्द्रियकषाययोगानां शुभेषु प्रवृत्तिरिन्द्रियकषाययोगसंलीनता चतुर्थी-विविक्तशय्या, एषा-विविक्तशयनासनसेवनता-इत्यपि कथ्यते ६ इत्येवं षड्विधबाह्यतपसा खलु संसारसङ्गत्यागः-शरीरलघुत्वम्-इन्द्रियविजयः संयमरक्षणं-ज्ञानावरणादि कर्म निर्जरणञ्च समासाद्यते संयतैः-श्रमणैः इति ॥६१॥

प्राणियों से रहित एवं स्त्री पशु तथा नपुंसक जहां न हो ऐसे स्थान में रहना-समाधि के लिए सूने घर या पर्वत की गुफा आदि में निवास करना कायक्लेश है। उसके अनेक भेद हैं, जैसे—आतापना लेना, वीरासन करना, उत्कुटुक आसन करना, एक ही पसवाडे से शयन करना, दण्डायत (दंड की तरह लंबा) होकर शयन करना जीर्णशीर्ण रखना, अल्प मूल्यवस्त्र रखना केशलोंच करना आदि।

(६) संलीनता—इसके चार भेद हैं-इन्द्रिय संलीनता, कषाय-संलीनता, योग संलीनता और विविक्तचर्या। इन्द्रियों की अशुभ प्रवृत्ति न होने देना इन्द्रिय संलीनता, कषायों की प्रवृत्ति न होने देना कषाय संलीनता और योगों की अशुभ प्रवृत्ति न होने देकर शुभ प्रवृत्ति करना योग संलीनता हैं। स्त्री आदि से वर्जित शयन-आसन का सेवन करना विविक्तशय्या नामक संलीनता है।

જીવોથી રહિત અને સ્ત્રી, પશુ તથા નપુંસક જ્યાં ન હોય એવા સ્થાનમાં વાસ કરવો-સમાધિ માટે સુના ઘર અથવા પર્વતની ગુફા આદિમાં નિવાસ કરવો કાયક્લેશ છે તેના અનેક ભેદ છે, જેવાં કે—આતાપના લેવી, વીરાસન કરવું, ઉત્કુટુક આસન કરવા, એક જ પડખે શયન કરવું, દણ્ડાયત (દંડની જેમ લાંબા) થઈને શયન કરવું, જીર્ણશીર્ણ વસ્ત્રો રાખવા, અલ્પમૂલ્ય વસ્ત્ર રાખવા, કેશલોચ કરવો વગેરે.

(૬) સંલીનતા—આના ચાર ભેદ છે-ઇન્દ્રિયસંલીનતા, કષાયસંલીનતા, યોગસંલીનતા અને વિવિક્તચર્યા ઇન્દ્રિયોની અશુભ પ્રવૃત્તિ ન થવા દેવી ઇન્દ્રિયસંલીનતા, કષાયોની પ્રવૃત્તિ ન થવા દેવી કષાયસંલીનતા અને યોગોની અશુભ, પ્રવૃત્તિ ન થવા દઈ શુભ પ્રવૃત્તિ કરવી યોગસંલીનતા છે. સ્ત્રી આદિથી વર્જિત શયન-આસનનું સેવન કરવું વિવિક્તશય્યા નામક સંલીનતા છે.

આ રીતે છ પ્રકારના બાહ્ય તપથી સંસાર તરફથી આસક્તિનો ત્યાગ

मूलम्—अब्भिंतरए तवे छव्विहे, पायच्छित्त-विणय-वेयावच्च-सज्झाय-झाण-विउस्सग्गभेयओ ॥६२॥

छाया—आभ्यन्तरं तपः षड्विधम्, प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्य स्वाध्याय-ध्यानव्युत्सर्गभेदतः ॥६२॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावद्-बाह्याऽभ्यन्तरभेदेन तपसो द्वैविध्यस्योक्तत्वात् तत्र पूर्वसूत्रे षड्विधं बाह्यं तपः प्ररूपितम्, सम्प्रति-षड्विधमेवाऽभ्यन्तरं तपः प्रतिपादयितुमाह-'अब्भिंतरए तवे छव्विहे' इत्यादि। तथा च-प्रायश्चित्तम्, विनयः, वैयावृत्यम्, स्वाध्यायः, ध्यानम्, व्युत्सर्गः, इत्येवं षड्विधं

इस प्रकार छह प्रकार के बाह्य तप से संसार के प्रति आसक्ति का त्याग होता है, शारीरिक लघुता आती है, इन्द्रियों पर विजय प्राप्ती होती है, संयम की रक्षा होती है और ज्ञानावरण आदि कर्मों की निर्जरा होती है ॥६१॥

'अब्भिंतरए तवे छव्विहे' इत्यादि

सूत्रार्थ—आभ्यन्तर तप के छह भेद हैं—(१) प्रायश्चित्त (२) विनय (३) वैयावृत्य (४) स्वाध्याय (५) ध्यान और (६) व्युत्सर्ग ॥६२॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले बाह्य और आभ्यन्तर ये तप के दो भेद कहे थे, इसमें से पूर्वसूत्र में बाह्य तप के छह भेदों का निरूपण किया गया अब आभ्यन्तर तप के छह भेदों का प्रतिपादन करने के लिए कहते हैं—

(१) प्रायश्चित्त (२) विनय (३) वैयावृत्य (४) स्वाध्याय (५) ध्यान और (६) व्युत्सर्ग, यह छह प्रकार का आभ्यन्तर तप हैं। ये प्रायश्चित्त

થાય છે, શારીરિક લઘુતા આવે છે, ઇન્દ્રિયો પર વિજય પ્રાપ્ત થાય છે, સંયમનું રક્ષણ થાય છે અને જ્ઞાનાવરણ વગેરે આઠ કર્મોની નિર્જરા થાય છે. ॥૬૧॥

अब्भिंतरए तवे छव्विहे' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—આભ્યન્તર તપના છ ભેદ છે-(૧) પ્રાયશ્ચિત્ત (૨) વિનય (૩) વૈયાવૃત્ય (૪) સ્વાધ્યાય (૫) ધ્યાન અને (૬) વ્યુત્સર્ગ. ॥૬૨॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા બાહ્ય અને આભ્યન્તર એમ તપના બે ભેદ કહેવામાં આવ્યા હતા. આમાંથી પૂર્વસૂત્રમાં બાહ્ય તપના ભેદોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે આભ્યન્તર તપના છ ભેદોનું પ્રતિપાદન કરવા માટે કહીએ છીએ-

(૧) પ્રાયશ્ચિત્ત (૨) વિનય (૩) વૈયાવૃત્ય (૪) સ્વાધ્યાય (૫) ધ્યાન અને (૬) વ્યુત્સર્ગ, આ છ પ્રકારના આભ્યન્તર તપ છે. આ પ્રાયશ્ચિત્ત વગેરે

खल्वाभ्यन्तरं तप उच्यते, मनोनियमनार्थत्वा देतेषामाभ्यन्तरत्वेन व्यपदेशो भवति। तत्र प्र-प्रकृष्टोऽयः, प्रशस्तः शुभावहो विधिर्यस्य श्रमणलोकस्य स प्रायः, प्रकृष्टचारित्रः तस्य प्रायस्य-प्रकृष्टचारित्रस्य श्रमणलोकस्य चित्तं यस्मिन् कर्मणि तत्-प्रायश्चित्तम्, आत्मविशुद्धिकारकः क्रियाविशेष उच्यते। यद्वा-प्र-प्रणष्टः-गतोऽयः प्रायः अपराधः, तस्य चित्तं-शुद्धिः प्रायश्चित्तम् प्रमादोत्पन्न दोषनिवारणं प्रायश्चित्तम्। तथाचोक्तम्—

'प्राय इत्युच्यते लोक श्चित्तं तस्य मनो भवेत्।
तस्य शुद्धिकरं कर्म प्रायश्चित्तं तदुच्यते ॥इति॥ १

पर्यायज्येष्ठेषु मुनि प्रभृतिषु समादरो विनयः २ कायिकचेष्टया-द्रव्यान्तरेण चोपासनं वैयावृत्यम् ३ शरीरप्रवृत्त्या-द्रव्यान्तरेण वा ग्लानस्य-मुनेः पाद-

---

आदि मन को नियंत्रित करने वाले हैं. इस कारण इन्हें आभ्यन्तर कहा है। 'प्र' अर्थात् प्रकृष्ट (उत्कृष्ट), 'अय' अर्थात् अप्रशस्त-शुभंकर विधि को 'प्रायः' कहते हैं जिस का अर्थ है उत्कृष्ट चारित्र। प्रकृष्ट चित्त वाले साधुजनों का 'चित्त' जिसमें हो वह 'प्रायश्चित्त' कहलाता है। आत्म शुद्धि करने वाले क्रियाविशेष को प्रायश्चित्त कहते हैं। अथवा 'प्रायः' का अर्थ अपराध हैं, उस चित्त अर्थात् शोधन को प्रायश्चित्त कहते हैं। कहा भी हैं-

'प्रायः' का अर्थ हैं लोग और 'चित्त' का अर्थ है-उसका मन चित्त की शुद्धि करने वाला कृत्य प्रायश्चित्त कहलाता है ॥१॥

दीक्षापर्याय में ज्येष्ठ मुनि आदि का आदर करना विनय है। कायिक व्यापार से अथवा अन्य द्रव्यों से उपासना करना वैयावृत्य

મનને અંકુશમાં રાખનારાં છે, આ કારણે એમને આભ્યન્તર કહેવામાં આવ્યા છે. 'પ્ર' અર્થાત્ પ્રકૃષ્ટ (ઉત્કૃષ્ટ) 'અય' અર્થાત્ અપ્રશસ્ત-શુભંકર વિધિને 'પ્રાય' કહે છે જેનો અર્થ ઉત્કૃષ્ટ ચારિત્ર પ્રકૃષ્ટ ચિત્તવાળા સાધુપુરૂષોનું 'ચિત્ત' જેમાં હોય તે 'પ્રાયશ્ચિત્ત' કહેવાય છે. આત્મશુદ્ધિ કરનાર ક્રિયા. વિશેષને પ્રાયશ્ચિત્ત કહે છે અથવા 'પ્રાયઃ'નો અર્થ અપરાધ છે. તે 'ચિત્ત' અર્થાત્ શોધનને પ્રાયશ્ચિત્ત કહે છે. કહ્યું પણ છે-'પ્રાયઃ'નો અર્થ થાય છે લોક અને ચિત્તનો અર્થ થાય છે-તેનું મન ચિત્તની શુદ્ધિ કરનાર કૃત્ય પ્રાયશ્ચિત્ત કહેવાય છે. ॥૧॥

દીક્ષાપર્યાયમાં જયેષ્ઠ મુનિ આદિનો આદર કરવો વિનય છે. કાયિક વ્યાપારથી અથવા અન્ય દ્રવ્યોથી ઉપાસના કરવી વૈયાવૃત્ય છે. શરીરથી

संवाहनादिभिराराधनं वैयावृत्यम्। ज्ञानभावनार्थं मूलसूत्रपठनं स्वाध्यायः ४ ध्यानं-धर्मशुक्लरूपं ध्यातव्यमितिपञ्चममाभ्यन्तरं ध्यानम् ५ शयनाऽऽसन-स्थानेषु काय चेष्टायाः परित्यागो व्युत्सर्गः ६ ॥६२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावत् संवरहेतुत्वेन तपः प्ररूपितम्, तच्च-द्विविधम्, बाह्याऽभ्यन्तरभेदात् तत्र-बाह्यन्तपः षड्विधमनशनादिकं पूर्वसूत्रे प्ररूपितम्, सम्प्रति-आभ्यन्तरं तपः षड्विधं भवतीति प्ररूपयितुमाह-'अब्भिंतरए तवे छव्विहे पायच्छित्त-विणय वेयावच्च सज्झाय-झाण-'विउसग्गभेयओ' इति। आभ्यन्तरं तपः षडविधम्, प्रायश्चित्त-विनयवैयावृत्य स्वाध्याय-ध्यान-व्युत्सर्गभेदतः इति, तथा च-प्रायश्चित्तं, विनयवैयावृत्यं-

---

है। शरीर से रुग्ण मुनि के पांव दबाना अथवा अन्य प्रकार से उसकी आराधना करना वैयावृत्य है। ज्ञान-भावना के लिए मूलसूत्रों का पठन करना स्वाध्याय है। चित्त को एकाग्र करना ध्यान हैं या धर्मध्यान और शुक्लध्यान करना ध्यान तप है। काय की चेष्टा का परित्याग करना व्युत्सर्ग है ॥६२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पहले तप को संवर का कारण कहा था। तप के दो भेद हैं-बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य तप के अनशन आदि छह भेद हैं, यह पहले सूत्र में प्रतिपादन किया जा चुका हैं, अब आभ्यन्तर तप के छह भेद कहते हैं-

आभ्यन्तर तप के छह भेद हैं-(१) प्रायश्चित्त (२) विनय (३) वैयावृत्य (४) स्वाध्याय (५) ध्यान और (६) व्युत्सर्ग। इस प्रकार

પીડિત મુનિના પગ દબાવવા અથવા અન્ય પ્રકારથી તેમની આરાધના કરવી વૈયાવૃત્ય છે. જ્ઞાન-ભાવના માટે મૂળસૂત્રોનું પઠન કરવું સ્વાધ્યાય છે ચિત્તને એકાગ્ર કરવું ધ્યાન છે અર્થાત્ ધર્મધ્યાન અને શુકલધ્યાન કરવું ધ્યાન તપ કાયાની ચેષ્ટાનો પરિત્યાગ કરવો વ્યુત્સર્ગ છે. ॥૬૨॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલાં તપને સંવરના કારણ રૂપ કહેવામાં આવ્યું. તપના બે ભેદ છે-બાહ્ય તથા આભ્યન્તર બાહ્ય તપના અનશન આદિ છ ભેદ છે એ પહેલા સૂત્રમાં પ્રતિપાદન કરવામાં આવી ગયું છે, હવે આભ્યન્તર તપના છ ભેદ કહીએ છીએ-

આભ્યન્તર તપના છ ભેદ છે-(૧) પ્રાયશ્ચિત્ત (૨) વિનય (૩) વૈયાવૃત્ય (૪) સ્વાધ્યાય (૫) ધ્યાન અને (૬) વ્યુત્સર્ગ આરીતે પ્રાયશ્ચિત્ત,

स्वाध्यायो-ध्यानं-व्युत्सर्ग इत्येवं षड्विध माभ्यन्तरं तप उच्यते । मूलोत्तर-गुणेषु कश्चिदतीचारश्चित्तं मलिनयतीति तच्छुद्धयर्थं प्रायश्चित्तं विहितं भवति, पापच्छेदकारित्वात् प्रायश्चित्तमुच्यते, प्रायो बाहुल्येन चित्तविशुद्धिहेतुत्वात्-प्रायश्चित्तम् १ विनीयते ज्ञानावरणादिकमष्टप्रकारकं कर्माऽपनीयते येन स विनयः २ श्रुतोपदेशेन व्यावृत्ता-शुभव्यापारवान्, तस्य भावः-कर्म वा वैयावृत्यम् ३ निर्जरार्थं ग्लानादि सेवाकरणं वैयावृत्य मुच्यते ३ सुष्ठु-मर्यादया काल वेला-परिहारेण, पौरुष्यापेक्षया वा मूलसूत्रस्याऽऽध्यायः पठनं स्वाध्याय उच्यते ४ ध्यायते चिन्त्यते वस्त्वनेनेति ध्यानम्, तच्चाऽऽर्त्त-रौद्रे वर्जयित्वा धर्मशुक्लरूपम्,

---

प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग, ये छह आभ्यन्तर तप कहलाते हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार है।

(१) प्रायश्चित्त-मूल या उत्तर गुणों में कोई अतिचार लगा हो और वह चित्त को मलीन बना रहा हो तो उसकी शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त किया जाता है। पाप का छेद (विनाश) करने के कारण वह प्रायश्चित्त कहलाता है।

(२) विनय-जिसके सेवन से ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के कर्म विनीत-दूर होते हैं, वह विनय तप है।

(३) वैयावृत्य-श्रुत के उपदेश के अनुसार शुभ व्यापारवान् का भाव या कर्म वैयावृत्य कहलाता है। अर्थात् अपने कर्मों की निर्जरा के अर्थ ग्लान मुनि की सेवा करना वैयावृत्य तप कहलाता है।

(४) सु अर्थात् समीचीन रूप से-मर्यादा के साथ-कालवेला का

વિનય, વૈયાવૃત્ય, સ્વાધ્યાય; ધ્યાન અને વ્યુત્સર્ગ આ છ આભ્યન્તર તપ કહેવાય છે. તેમનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે—

(૧) પ્રાયશ્ચિત્ત-મૂળ અથવા ઉત્તરગુણોમાં કોઇ અતિચાર લાગ્યો હોય તેમજ તે ચિત્તને કલુષિત બનાવતો હોય તો તેની શુદ્ધિ કાજે પ્રાયશ્ચિત્ત કરવામાં આવે છે, પાપનો છેદ (વિનાશ) કરવાના) કારણે તે પ્રાયશ્ચિત્ત કહેવાય છે.

(૨) વિનય-જેના સેવનથી જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ પ્રકારના કર્મ વિનીત-દૂર થાય છે, તે વિનય તપ છે.

(૩) વૈયાવૃત્ય- શ્રુતના ઉપદેશ અનુસાર શુભ વ્યાપારવાન્નો ભાવ અથવા કર્મ વૈયાવૃત્ય કહેવાય છે અર્થાત્ પોતાના કર્મોની નિર્જરા માટે ઉદાસીન મુનિની સેવા-શુશ્રૂષા કરવી વૈયાવૃત્ય તપ કહેવાય છે.

(૪) સુ અર્થાત્ સમીચીન રૂપથી-મર્યાદા સહિત-કાળ-વેળાનો પરિહાર

एतत्पञ्चममाभ्यन्तरं तपः उच्यते५ शयने-उपवेशने स्थाने-ऊर्ध्वस्थाने कायचेष्टा-याः वर्जनं व्युत्सर्ग इत्युच्यते ६ इत्येवं षड्विधं खल्वाभ्यन्तरं तपो व्यपदिश्यते ।६२।

मूलम्—पायच्छित्ते तवे दसविहे, आलोयण पडिक्कमण—तदु-भयविवेगविउस्सग्गतवछेदमूलावणट्ठप्पपारंचियभेयओ ॥६३॥

छाया—प्रायश्चित्तं दशविधम्, आलोचन-प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेकव्युत्सर्ग-तप-श्छेद-मूलानवस्थाप्य-पाराञ्चिकभेदतः, ॥६३॥

परिहार करके या पौरुषी का ध्यान रख कर मूल सूत्र का अध्याय अर्थात् पठन करना स्वाध्याय है।

(५) ध्यान-जिसके द्वारा वस्तु का चिन्तन किया जाय वह ध्यान। यहां आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को त्याग कर धर्मध्यान और शुक्ल-ध्यान ही ग्रहण करना चाहिए। यह पांचवां आभ्यन्तर तप है।

(६) शयन या स्थान में अर्थात् बैठ कर या खडे होकर काय संबंधी चेष्टाओं का त्याग करना व्युत्सर्ग है। यह छह प्रकार का आभ्यन्तर तप है ॥६२॥

'पायच्छित्ते दसविहे' इत्यादि ॥सू०६३॥

सूत्रार्थ—प्रायश्चित्त दस प्रकार का है-(१) आलोचन (२) प्रतिक्रमण (३) तदुभय-आलोचन-प्रतिक्रमण (४) विवेक (५) व्युत्सर्ग (६) तप (७) छेद (८) मूल (९) अनवस्थाप्य और (१०) पारांचिक ॥६३॥

કરીને અથવા પોરસીનું ધ્યાન રાખીને મૂળસૂત્રનું અધ્યયન અથવા પઠન કરવું સ્વાધ્યાય છે.

(૫) ધ્યાન-જેના વડે વસ્તુનું ચિન્તન કરવામાં આવે તે ધ્યાન અત્રે આર્ત્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાનનો ત્યાગ કરીને ધર્મધ્યાન અને શુકલધ્યાન જ ગ્રહણ કરવું જોઈએ. આ પાંચમું આભ્યન્તર તપ છે.

(૬) શયન અથવા સ્થાનકમાં અર્થાત્ ઉભા થઈ ને કે બેસીને, કાયા સંબંધી ચેષ્ટાઓનો ત્યાગ કરવો વ્યુત્સર્ગ છે.

આ છ પ્રકારના આભ્યન્તર તપ છે. ॥૬૨॥

'પાયચ્છિત્ત દસવિહે' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-પ્રાયશ્ચિત્ત દશ પ્રકારના છે-(૧) આલોચન (૨) પ્રતિક્રમણ (૩) તદુભયે-આલોચન-પ્રતિક્રમણ (૪) વિવેક (૫) વ્યુત્સર્ગ (૬) તપ (૭) છેદ (૮) મૂળ (૯) અનવસ્થાપ્ય અને (૧૦) પારાંચિક. ॥૬૩॥

तत्त्वार्थदीपिका–पूर्वसूत्रे–प्रायश्चित्तविनय–वैयावृत्त्यादिभेदेन षड्विधमाभ्यन्तरं तपः प्ररूपितम्, तत्र–प्रथमोपात्तं प्रायश्चित्तं तावद् दशविधं भवतीति प्ररूपयितुमाह– पायच्छित्ते दसविहे' इत्यादि। प्रायश्चित्तम्–आत्मशुद्धिकारकक्रियाविशेषो दशविधं वर्तते, आलोचनप्रतिक्रमण–तदुभय–विवेक–व्युत्सर्ग–तप–च्छेद्–मूलानवस्थाप्यपाराञ्चिक भेदतः। तथा चाऽऽलोचनप्रायश्चित्तम् १ प्रतिक्रमणप्रायश्चित्तम् २ तदुभयप्रायश्चित्तम् ३ विवेकप्रायश्चित्तम् ४ व्युत्सर्गप्रायश्चित्तम् ५ तपः प्रायश्चित्तम् ६ छेद प्रायश्चित्तम् ७ मूलप्रायश्चित्तम् ८ अनवस्थाप्यप्रायश्चित्तम् ९ पाराञ्चिक प्रायश्चित्तम् १०, इत्येवं दशविधं प्रायश्चित्तम्। तत्राऽऽचार्यस्य प्रमादस्य दशदोषविवर्जितं निवेदन मालोचन मुच्यते, एकान्तो

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्व सूत्र में प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य आदि के भेद से छह प्रकार के आभ्यन्तर तप का निरूपण किया गया, उनमें प्रथम आभ्यन्तर तप प्रायश्चित्त के दस भेदों का यहां निरूपण किया जाता है।

प्रायश्चित्त अर्थात् आत्मशुद्धि कारक क्रिया के दस भेद हैं–(१) आलोचन (२) प्रतिक्रमण (३) उभय–आलोचन–प्रतिक्रमण (४) विवेक (५) व्युत्सर्ग (६) तप (७) छेद (८) मूल (९) अनवस्थाप्य और पारांचिक। इस प्रकार (१) आलोचन प्रायश्चित्त (२) प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त (३) तदुभयप्रायश्चित्त (४) विवेकप्रायश्चित्त (५) व्युत्सर्गप्रायश्चित्त (६) तपः प्रायश्चित्त और (१०) पारांचिकप्रायश्चित्त, इस तरह दस प्रकार का प्रायश्चित्त है।

(१) आलोचन–आचार्य और उपाध्याय के समक्ष अपने प्रमाद

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં પ્રાયશ્ચિત્ત, વિનય, વૈયાવૃત્ય આદિનાં ભેદથી છ પ્રકારના આભ્યન્તર તપનું નિરૂપણ કરવામા આવ્યું, તેમાં પ્રથમ આભ્યન્તર તપ પ્રાયશ્ચિતના દશ ભેદોનું અહીં નિરૂપણ કરવામાં આવે છે–

પ્રાયશ્ચિત્ત અર્થાત્ આત્મશુદ્ધિકારક ક્રિયાના દશ ભેદ છે–(૧) આલોચન (૨) પ્રતિક્રમણ (૩) ઉભય–આલોચન–પ્રતિક્રમ (૪) વિવેક (૫) વ્યુત્સર્ગ (૬) તપ (૭) છેદ (૮) મૂળ (૯) અનવસ્થાપ્ય અને (૧૦) પારાંચિક આ રીતે (૧) આલોચન (૨) પ્રાયશ્ચિત્ત (૨) પ્રતિક્રમણ પ્રાયશ્ચિત્ત (૩) તદુભય-પ્રાયશ્ચિત (૪) વિવેકપ્રાયશ્ચિત્ત (૫) વ્યુત્સર્ગપ્રાયશ્ચિત્ત (૬) તપઃપ્રાયશ્ચિત્ત (૭) છેદપ્રાયશ્ચિત્ત (૮) મૂળપ્રાયશ્ચિત્ત (૯) અનવસ્થાપ્યપ્રાયશ્ચિત્ત અને (૧૦) પારચિકપ્રાયશ્ચિત્ત આ રીતે દશ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્ત છે.

(૧) આલોચન–આચાર્ય અને ઉપાધ્યયની રૂબરૂ પોતાના પ્રમાદનું દશ

पविष्टाय प्रसन्नचित्ताय विज्ञातदोष-देश-कालाय गुरवे सविनयं वञ्चनारहितस्य शिशुवत् सरलबुद्धेः-शिष्यस्य निजापराधस्य मर्यादया प्रकाशनम्-आलोचनं बोध्यम् १ मिथ्यादुष्कृताभिधानात्-अभिव्यक्तप्रतिक्रियं तावत्-प्रतिक्रमणं नाम प्रायश्चित्तं भवति तद्धि-गुरुणाऽनुज्ञातः शिष्य एव कुर्यात् यत्रालोचनं मिथ्यादुष्कृतदानरूपं-प्रतिक्रमणं चेति द्वयमपि भवेत्तत् २ तदुभयं नामप्रायश्चित्तम् शुद्धस्याऽपि यत्राऽशुद्धत्वेन सन्देह-विपर्ययौ (स्तः) भवतः-अशुद्धस्याऽपि च शुद्धत्वेन यत्र निश्चयो भवति तत्राऽऽलोचन-प्रतिक्रमण द्वयं भवतीति भावः ३ सदोषान्नपानोपकरणादिवर्जनं विवेको नाम प्रायश्चित्तम् ४ यद्वस्तुनियमितं भवति तद्वस्तु चेत्

को दस दोषों से रहित निवेदन करना आलोचन कहलाता है। अर्थात् एकान्त में बैठे हुए, प्रसन्नचित्त, देश-काल और दोष के स्वरूप के ज्ञाता गुरु के सन्मुख, विनयपूर्वक, वंचनभाव से रहित होकर शिशु के समान सरल बुद्धि से शिष्य का अपने अपराधों का निवेदन करना आलोचन नामक प्रायश्चित्त समझना चाहिए।

(२) प्रतिक्रमण-'मिच्छामि दुक्कडं' ऐसा कह कर प्रतिक्रिया प्रकट करना। गुरु की अनुमति से शिष्य ही प्रतिक्रमण करे।

(३) तदुभय-किसी अतिचार की शुद्धि के लिए आलोचन और प्रतिक्रमण-दोनों का अनुष्ठान करना तदुभय प्रायश्चित्त है। तात्पर्य यह है कि जहां शुद्ध होने पर भी अशुद्ध होने का संदेह या विपर्यास हो या अशुद्ध का भी शुद्ध रूप से निश्चय हो जाय, वहां आलोचन-प्रतिक्रमण दोनों किये जाते हैं।

દોષોથી રહિત નિવેદન કરવું આલોચન કહેવાય છે અર્થાત્ એકાન્તમાં બેઠેલા, પ્રસન્નચિત્ત, દેશ-કાળ અને દોષના સ્વરૂપના જ્ઞાતા ગુરૂની સન્મુખ, વિનયપૂર્વક વંચનાભાવથી રહિત થઈને, બાળકની માફક સરળ બુદ્ધિથી શિષ્યનું પોતાના અપરાધોનું નિવેદન કરવું આલોચન નામક પ્રાયશ્ચિત સમજવું.

(૨) પ્રતિક્રમણ-'मिच्छामि दुक्कडं' એમ કહીને પ્રતિક્રિયા પ્રકટ કરવી. ગુરૂની અનુમતિથી શિષ્ય જ પ્રતિક્રમણ કરે.

(૩) તદુભય-કોઇ અતિચારની શુદ્ધિ માટે આલોચન અને પ્રતિક્રમણ એ બંનેનું અનુષ્ઠાન કરવું તદુભય પ્રાયશ્ચિત છે. તાત્પર્ય એ છે કે જ્યાં શુદ્ધ હોવા છતાં પણ અશુદ્ધ હોવાની શંકા અથવા ભ્રમ થાય અથવા અશુદ્ધ પણ શુદ્ધ રૂપથી નક્કી થઇ જાય, ત્યારે આલોચન-પ્રતિક્રમણ એમ બંને કરવામાં આવે છે.

स्वहस्तगतपात्रे पतति मुखमध्ये वा गच्छति, यस्मिन् वस्तुनि गृहीते वा लोभादि कषायादिकमुपजायते तस्य सर्वस्य वस्तुनस्त्यागो विवेकनाम प्रायश्चित्तं बोध्यम् ४ नियतकालं कायस्य-वाचो-मनसश्च त्यागरूपः कायोत्सर्गः व्युत्सर्गनाम प्रायश्चित्तम् ५ एवञ्चाऽनशनाऽवमौदर्यभिक्षाचर्यारसपरित्यागविविक्तशय्याऽऽसन कायक्लेशरूपं बाह्यं षड्विधं तप स्तपोनाम प्रायश्चित्तम् इति फलितम् ६ दिवस-पक्ष-मासादिना दीक्षा-पर्यायच्छेदनं छेदोनाम प्रायश्चित्तम् दिवस-पक्ष-मासादि-विभागेन दीक्षाऽस्वीकरणमित्यर्थः ७ पुनर्महाव्रतारोपणं मूलं नाम प्रायश्चित्त मुच्यते

---

४ विवेक-दोषयुक्त अन्न, पानी, उपकरण आदि का वर्णन करना विवेक नामक प्रायश्चित्त है। जिस वस्तु का त्याग कर रक्खा हो वह अपने पात्र में पडजाय अथवा मुख में चलीजाय अथवा जिस वस्तु का ग्रहण करने पर लोभ आदि कषायों की उत्पत्ति होती है, उस वस्तु का उत्सर्ग-त्याग करदेना विवेक नामक प्रायश्चित्त है।

(५) व्युत्सर्ग-नियमित समय पर्यन्त काय, वचन और मन का त्याग करना कायोत्सर्ग या व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त है।

(६) तप-अनशन, अवमौदर्य, भिक्षाचर्या रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेशरूप छह प्रकार का तप करना तप नामक प्रायश्चित्त है।

(७) छेद-दिवस पक्ष, मास आदि की दीक्षा का छेदन करना अर्थात् उसे कम कर देना छेद नामक प्रायश्चित्त है।

---

(૪) વિવેક-દોષયુક્ત અન્ન, પાણી, ઉપકરણ આદિનો ત્યાગ કરવો વિવેક નામક પ્રાયશ્ચિત્ત છે. જે વસ્તુનો ત્યાગ કરી દીધો હોય તે પોતાના પાત્રમાં પડી જાય અથવા મોઢામાં આવી જાય અથવા જે વસ્તુનુ ગ્રહણ કરવાથી લોભ આદિ કષાયોની ઉત્પત્તિ થાય છે તે વસ્તુનો ઉત્સર્ગ-ત્યાગ કરી દેવો વિવેક નામક પ્રાયશ્ચિત્ત છે.

(૫) વ્યુત્સર્ગ-નિયમિત સમય સુધી કાયા, વચન અને મનનો ત્યાગ કરવો કાયોત્સર્ગ અથવા વ્યુત્સર્ગ પ્રાયશ્ચિત્ત છે.

(૬) તપ-અનશન, અવમૌદર્ય, ભિક્ષાચર્યા રસપરિત્યાગ, વિવિક્ત શય્યાસન અને કાયક્લેશ રૂપ છ પ્રકરના તપ કરવા તપ નામક પ્રાયશ્ચિત્ત છે.

(૭) છેદ-દિવસ, પક્ષ, માસ આદિની દીક્ષાનું છેદન કરવું અર્થાત્ તેને ઓછા કરી નાખવા છેદ નામક પ્રાયશ્ચિત્ત છે.

८ यस्मिन्नासेविते कञ्चन कालं व्रतेष्वनवस्थाप्यं कृत्वा पश्चाच्चीर्ण तपा तद्दोषोपरतो व्रतेषु स्थाप्यते तद् अनवस्थाप्यं नाम प्रायश्चित्तम् ९ एवम्-यस्मिन्प्रतिषेविते लिङ्ग-क्षेत्र-काल-तपोभिः पाराञ्चिको बहिर्भूतः क्रियते तद्-पाराञ्चिकं नाम प्रायश्चित्त मुच्यते १० इति ॥६३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः— पूर्वं तावत् तपो द्विविध मित्युक्तम् बाह्यमाभ्यन्तरञ्च, तत्र-प्रायश्चित्तादि भेदात् षड्विधे आभ्यन्तरतपसि प्रथमोपात्तस्य प्रायश्चित्तस्य दशभेदान् प्ररूपयितुमाह-'पायच्छित्ते दसविहे, आलोयण-पडिक्कमण-तदुभय-विवेग-विउस्सग्गतव-छेद-मूलाणवट्ठप्प पारंचिय भेयओ' इति । प्रायश्चित्तं पूर्वोक्तचित्त विशुद्धिहेतुभूततपः क्रियाविशेषरूपं दशविधं भवति,

---

(८) मूल-नये सिरे से महाव्रतों का आरोपण करना मूल नामक प्रायश्चित्त है ।

(९) अनवस्थाप्य-जिसका सेवन करने पर कुछ काल तक व्रतों में अनवस्थाप्य करके बाद में जिसका आचरण करने से दोष की निवृत्ति होने पर व्रतों में स्थापित किया जाय वह अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त कहलाता है ।

(१०) पारांचिक-जिस प्रायश्चित्त में लिंग (वेष), क्षेत्र, काल और तप से पारांचिक अर्थात् बाहर कर दिया जाता है, वह परांचिक नामक प्रायश्चित्त कहलाता है ॥१०॥६३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से तप के दो भेद कहे गए हैं, उनमें से आभ्यन्तर तप के छह भेदों में पहला भेद प्रायश्चित्त बतलाया गया है । उसके दस भेदों की प्ररूपणा करते हैं ।

प्रायश्चित्त अर्थात् चारित्र संबंधी लगे हुए दोष की शुद्धि के लिए

---

(૮) મૂળ-નવેસરથી મહાવ્રતનું આરોપણ કરવું મૂળ નામક પ્રાયશ્ચિત્ત છે

(૯) અનવસ્થાપ્ય-જેનું સેવન કરવાથી થોડા સમય સુધી વ્રતોમાં અનવસ્થાપ્ય કરીને પાછળથી જેનું આચરણ કરવાથી દોષની નિવૃત્તિ થવાથી વ્રતોમાં સ્થાપિત કરવામાં આવે તે અનવસ્થાપ્ય પ્રાયશ્ચિત્ત કહેવાય છે.

(૧૦) પારાંચિક-જે પ્રાયશ્ચિત્તમાં લિંગ (વેશ), ક્ષેત્ર, કાળ અને તપથી પારાંચિક અર્થાત્ બહાર કરી નાખવામાં આવે છે તે પારાંચિક નામક પ્રાયશ્ચિત્ત કહેવાય છે. ॥૬૩॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા બાહ્ય અને આભ્યન્તર ભેદથી તપના બે ભેદ કહેવામાં આવ્યા છે તેમાંથી આભ્યન્તર તપના છ ભેદોમાં પહેલો પ્રાયશ્ચિત્ત બતાવવામાં આવેલ છે. તેના દશ ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

પ્રાયશ્ચિત્ત અર્થાત્ ચારિત્ર સંબંધી લાગેલા દોષની શુદ્ધિ માટે કરવામાં

आलोचन-प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेक-व्युत्सर्ग-तप-छेद-मूलाऽनवस्थाप्य-पाराञ्चितभेदतः। तथा चाऽऽलोचनम् १ प्रतिक्रमणम् २ आलोचन-प्रतिक्रमणरूपं तदुभयम् ३ विवेकः ४ व्युत्सर्गः ५ तपः ६ छेदः ७ मूलम् ८ अनवस्थाप्य ९ पाराञ्चिकम् १० दशविधं प्रायश्चित्तम्। तत्रै-कान्तोपविष्टाय प्रसन्नचित्ताय विदितदोषदेशकालाय गुरवे तथाविधेन शिष्येण सविनयं स्व प्रमादनिवेदनं दशदोषवर्जनपूर्वकं निजप्रमादप्रकाशनम्-आलोचनं नाम प्रायश्चित्त मुच्यते। तथाचोक्तं दशदोषविषये स्थानाङ्गे दशमस्थाने।

'आकंपिय अणुमाणिय जं दिट्ठं बादरं च सुहुमं च।
छण्णं सद्दा उलयं बहुजण अव्वत्त तस्सेवि' ॥१॥
'आकम्पित मनुमानितं यद्दृष्टं बादरञ्च सूक्ष्मञ्च।
छन्नं शब्दाकुलञ्च बहुजनमव्यक्तं तत्सेवी ॥१॥इति॥

किया जाने वाला तपश्चरणविशेष दस प्रकार का है-(१) आलोचन (२) प्रतिक्रमण (३) तदुभय (४) विवेक (५) व्युत्सर्ग (६) तप (७) छेद (८) मूल (९) अनवस्थाप्य और (१०) पारांचित। इस प्रकार (१) आलोचन (२) प्रतिक्रमण (३) तदुभय-आलोचन-प्रतिक्रमण (४) विवेक (५) व्युत्सर्ग (६) तप (७) छेद (८) मूल (९) अनवस्थाप्य और (१०) पारांचित, यह दस प्रकार का प्रायश्चित्त है। इनका स्वरूप इस प्रकार है।

(१) आलोचन—एकान्त में स्थित, प्रसन्नचित्त, दोष, देश एवं काल के स्वरूप के जानकार गुरु के समक्ष शिष्य विनय पूर्वक आलोचना के दस दोषों से बचकर अपने प्रमाद का निवेदन करता है-अपने दोष को प्रकट करता है, वह आलोचन नामक प्रायश्चित्त कहलाता है। स्थानांग सूत्र के दसवें स्थान में दस दोषों के संबंध में कहा है।

આવતી તપસ્યા વિશેષ દશ પ્રકારની છે-

(૧) આલોચન (૨) પ્રતિક્રમણ (૩) તદુભય (૪) વિવેક (૫) વ્યુત્સર્ગ (૬) તપ (૭) છેદ (૮) મૂળ (૯) અનવસ્થાપ્ય અને (૧૦) પારાંચિત આ દશ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્ત છે. એમનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે-

(૧) આલોચન-એકાન્તમાં સ્થિત, પ્રસન્નચિત્ત, દોષ, દેશ તથા કાળના સ્વરૂપના જ્ઞાતા ગુરૂની સમક્ષ, શિષ્ય વિનયપૂર્વક આલોચનાના દશ દોષોથી બચીને પોતાના પ્રમાદનું નિવેદન કરે છે-પોતાના દોષને પ્રકટ કરે છે તે આલોચના નામક પ્રાયશ્ચિત્ત કહેવાય છે. સ્થાનાંગસૂત્રના દશમાં સ્થાનમાં દશ દોષોના સંબંધમાં કહેવામાં આવેલ છે-

तत्रोपकरणादि दानेन गुरोरनुकम्पामुत्पाद्याऽऽलोचने-आकम्पितं नाम दोषः, वचनेनाऽनुमायाऽऽलोचनेऽनुमानितं नामदोषः, यल्लोकैर्दृष्टं तस्यैवालोचने दृष्टं नामदोषः, स्थूलस्यैवाऽऽलोचने बादरं नाम दोषः, अल्पस्यैव दोषस्याऽऽलोचने सूक्ष्मं नामदोषः, केनचित्-पुरुषेण निजदोषे प्रकाशिते सति यादृशो दोषोऽनेन प्रकाशित स्तादृशो ममापि वर्तते इत्येवं प्रच्छन्नस्य दोषस्याऽऽलोचने छन्नं नाम-

---

आकम्पित, अनुमानित, दृष्ट, बादर, सूक्ष्म, छन्न, शब्दाकुल, बहुजन, अव्यक्त और तत्सेवी नामक दस दोष आलोचना के समझना चाहिए। इनका स्वरूप इस प्रकार है।

(१) गुरु को उपकरण वस्त्र आदि देकर, उनके चित्त में अपने प्रति अनुकम्पा उत्पन्न करके आलोचन करना आकम्पित नामक दोष है।

(२) वचन से अनुमान करके आलोचन करना अनुमानित दोष है।

(३) लोगों ने जिस दोष को देख लिया हो उसी की आलोचना करता दृष्ट नामक दोष है।

(४) स्थूल दोष की ही आलोचना करना बादर दोष है।

(५) सूक्ष्म-छोटे से अपराध की आलोचना करना सूक्ष्म दोष है।

(६) छन्न-किसी पुरुष के द्वारा अपना दोष प्रकाशित करने पर ऐसा कहना कि-'जैसा दोष इन्हें लगा है वैसा ही मुझे भी लगा है, इस प्रकार प्रच्छन्न (गुप्त) रूप से दोष को प्रकाशित करना छन्न नामक दोष है।

આકમ્પિત, અનુમાનિત, દૃષ્ટ, બાદર, સૂક્ષ્મ, છન્ન, શબ્દાકુલ, બહુજન, અવ્યક્ત અને તત્સેવી નામના દશ દોષ આલોચનાના સમજવા જોઈએ. એમનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે-

(૧) ગુરૂને ઉપકરણ વસ્ત્ર આદિ આપીને, તેમના ચિત્તમાં પોતાની તરફ અનુકમ્પા ઉત્પન્ન કરીને, આલોચના કરવી આકમ્પિત-નામક દોષ છે.

(૨) વચનથી અનુમાન કરીને, આલોચના કરવી અનુમાનિત દોષ છે.

(૩) લોકોએ જે દોષને જોઈ લીધા હોય તેની જ આલોચના કરવી દૃષ્ટ નામક દોષ છે.

(૪) સ્થૂળ દોષની જ આલોચના કરવી બાદર દોષ છે.

(૫) સૂક્ષ્મ-નાના સરખા અપરાધની [illegible] કરવી સૂક્ષ્મ દોષ છે.

(૬) છન્ન-કોઇ પુરૂષ દ્વારા દોષ [illegible] તે આ પ્રમાણે કહેવું

दोषः, शब्दाकुलं यथा-भवति तथाविधकोलाहलमध्ये यथा-गुरुरपि न शृणोति इत्येवंविधालोचने शब्दाकुलं नाम दोषः-बहून् गुरुजनान् प्रति आलोचने बहुजनं नामदोषः, अव्यक्तस्याऽप्रबुद्धस्याऽग्रे-आलोचनेऽव्यक्तं नामदोषः, तद्दोषसेविनो गुरोरग्रे आलोचने तत्सेवीनामदोषो भवति, इत्येवं दश दोषविवर्जितं द्व्याश्रयं त्र्याश्रयं वाऽऽलोचनं भवति। तथा च कश्चिदतीचारः प्रकाशन मात्रेणैव दूरी भवति, यथा-श्रुतोपदिष्ट व्यापारानुष्ठायीसंयतः शिष्यो मोक्षार्थं प्रयतमानोऽवश्यानुष्ठेयेषु प्रत्युपेक्षण-प्रमार्जन-वैयावृत्त्यस्वाध्याय-तपश्चरणाऽऽहारविहार-मुनि-

(७) जब कोलाहल हो रहा हो तब अपने दोष को प्रकाशित करना, जिससे गुरु भी ठीक तरह न सुन सके, यह शब्दाकुल नामक दोष है।

(८) एक ही अपराध की अनेकों के सामने आलोचना करना बहुजन नामक दोष है।

(९) जो अव्यक्त हो अर्थात् प्रायश्चित्तशास्त्र का ज्ञाता न हो ऐसे के समक्ष आलोचन करना अव्यक्त दोष है।

(१०) जिस दोष की आलोचना करना है, उसी दोष का सेवन करने वाले साधु के सामने उस दोष की आलोचना करना तत्सेवी नामक दोष है।

इस प्रकार आलोचन दस दोषों से रहित द्व्याश्रय अथवा त्र्याश्रय होता है। जैसे-किसी अतिचार को प्रकाशित करने मात्र से शुद्धि हो जाती है। यथा-जो साधु शास्त्रविहित आचार का परिपालन करता है, मोक्ष के लिए प्रयत्नशील है, अवश्य करने योग्य प्रतिलेखन, प्रमार्जन, वैया

કે-'જેવો દોષ એને લાગ્યો છે તેવો જ મને પણ લાગ્યો છે' આ રીતે પ્રચ્છન્ન (ગુપ્ત) રૂપથી દોષને જાહેર કરવું એ છન્ન નામક દોષ છે.

(૭) જ્યારે શોરબકોર થઈ રહ્યો હોય ત્યારે પોતાના દોષને પ્રકાશિત કરવા, જેને ગુરૂ પણ સારી પેઠે સાંભળી ન શકે, આ શબ્દાકુલ નામક દોષ છે.

(૮) એક જ અપરાધની અનેકની સામે આલોચના કરવી બહુજન-નામક દોષ છે.

(૯) જે અવ્યક્ત હોય અર્થાત્ પ્રાયશ્ચિત્ત શાસ્ત્રનો જે જ્ઞાતા નથી એવાની સામે આલોચના કરવી અવ્યકત દોષ છે.

(૧૦) જે દોષની આલોચના કરવાની હોય તે જ દોષનું સેવન કરનાર સાધુની સમક્ષ તે દોષની આલોચના કરવી તત્સેવી નામક દોષ છે,

આ રીતે આલોચન દશ દોષોથી રહિત દ્વયાશ્રય અથવા ત્ર્યાશ્રય હોય છે જેમ કે-કોઈ અતિચારને જાહેર કરવા માત્રથી શુદ્ધિ થઈ જાય છે યથા-જે સાધુ શાસ્ત્રવિહિત આચારનું પરિપાલન કરે છે, મોક્ષને માટે પ્રયત્ન-શીલ છે, અવશ્ય કરવા યોગ્ય પડિલેહન, પ્રમાર્જન, વૈયાવૃત્ય, સ્વાધ્યાય,

वन्दनादिकार्येषु नितान्तोपयुक्तो निरस्तस्थूलातिचारः सूक्ष्माऽऽस्रव-प्रमाद-क्रिया विशुद्ध्यर्थ मालोचनमात्रादेव विशुद्धो भवति । एवम्-अतिचाराभिमुख्य परिहारेण प्रतीपं क्रमणम् अपसरणं प्रतिक्रमणम् मिथ्यादुष्कृताभिधानात् अभिव्यक्तीकृतपश्चात्तापः सूत्रविरुद्धमिद मया दुष्टं कृतं दुष्कृतं चरणविराधनं स्वच्छन्दतो, नतु-सूत्रानुसारेणेति समुत्पन्नपश्चात्तापस्तत्प्रतीपमपसर्पति-प्रत्याचष्टे न खलु-पुनरेवं करिष्यामि' इत्येवं प्रत्याख्यानं प्रतिक्रमण मुच्यते २ तदुभय-

---

कृत्य, स्वाध्याय, तपश्चरण, आहार, विहार एवं मुनिवन्दन आदि कार्यों में खूब उपयोग लगाए रहता है, स्थूल अतिचारों से बचा रहता है, वह अपने सूक्ष्म प्रमाद के लिए यदि आलोचना कर लेता है तो उस से शुद्ध हो जाता है। उसे किसी अन्य प्रायश्चित्त की आवश्यकता नहीं रहती।

(२) प्रतिक्रमण—अतिचारों की अभिमुखता त्याग कर उलटा चलना प्रतिक्रमण है। जो साधु मिथ्या दुष्कृत देकर अपने पश्चात्ताप को प्रकट करता है और कहता है-'मैंने सूत्र से विरुद्ध यह दूषित कर्म किया है, स्वच्छन्द भाव से चारित्र की विराधना की है, सूत्र के अनुकूल नहीं किया है' और ऐसा कहकर जो पश्चात्ताप करता है फिर उस दूषित कृत्य से विपरीत कथन करता है कि-'अब ऐसा फिर नहीं करूंगा' इस प्रकार का प्रत्याख्यान करना प्रतिक्रमण कहलाता है।

(३) तदुभय-का आशय है आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों।

તપસ્યા, આહાર, વિહાર અને મુનિવંદણા આદિ કાર્યોમાં ઘણો ઉપયોગ રાખતો હોય, સ્થૂળ અતિચારોથી બચતો રહે છે તે પોતાના સૂક્ષ્મ પ્રમાદને માટે જો આલોચના કરી લે છે તો તેથી જ શુદ્ધ થઈ જાય છે. તેને કોઈ અન્ય પ્રાયશ્ચિત્તની આવશ્યકતા રહેતી નથી.

(૨) પ્રતિક્રમણ-અતિચારોની અભિમુખતા ત્યાગીને વિપરીત ચાલવું પ્રતિક્રમણ છે. જે સાધુ મિથ્યા દુષ્કૃત દઈને પોતાના પશ્ચાત્તાપને પ્રકટ કરે છે અને કહે છે-'મેં સૂત્ર વિરૂદ્ધ આ દૂષિત કર્મ કર્યું છે, સ્વચ્છંદ, ભાવથી ચારિત્રની વિરાધના કરી છે, સૂત્રને અનુકૂળ કર્યું નથી' અને આ પ્રમાણે કહીને જે પશ્ચાત્તાપ કરે છે અને પછી તે દૂષિત કૃત્યથી વિપરીત કથન કરે છે કે-'આવું ફરી કયારે પણ કરીશ નહીં' એ પ્રકારના પચ્ચખાણ કરવા પ્રતિક્રમણ કહેવાય છે.

(૩) તદુભય-આનો આશય છે આલોચના અને પ્રતિક્રમણ બંને

पदेन-आलोचन प्रतिक्रमण रूपोऽयं प्रायश्चित्तमुच्यते, तत्राऽऽलोचनं प्रतिक्रमणञ्च पूर्वं मधुनैव व्याख्यातं वर्तते, तत्र-पूर्वं मालोचनं पश्चाद् गुरुसन्दिष्टस्य प्रतिक्रमणम्, एतदुभयं प्रायश्चित्तं सम्भ्रमभयातुरापतत् सहसाऽनाभोगाऽनात्मवशगतस्य दुष्टचिन्तनभाषणचेष्टायुक्तस्य च कृते विहितमवगन्तव्यम् एवं विवेकः शुद्धाऽशुद्धान्नपानादिविषये विवेचनम् अशुद्धान्नपानादिपरित्याग इत्यर्थः खलु त्यागपरिणतिरूपविवेचन भावविशुद्धयात्मको विशोधनरूपः प्रत्युपेक्षणरूपो भवति, अयं तावद् विवेको नाम प्रायश्चित्तं संसक्ताहारपानोपकरणौपग्रहिकोपधि शय्यासनादिषु भवति। तथा च-यस्मिन् वस्तुनि गृहीते सति लोभादि कषायादिकमुत्पद्यते तस्य सर्वस्य वस्तुनस्त्यागो विवेको नाम प्रायश्चित्त मवगन्तव्यम्, यथा-

आलोचना और प्रतिक्रमण की अभी-अभी व्याख्या की गई है। पहले आलोचना फिर गुरु के कहने पर प्रतिक्रमण करना आलोचन प्रतिक्रमण कहलाता है। जो मुनि संभ्रम या भय से आतुर हैं, सहसा उपयोग शून्यता के कारण अपने अधीन नहीं रहा है और जो दुष्ट चिन्तन, दुष्ट भाषण एवं दुष्ट चेष्टा से युक्त है, उसके लिए इस प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।

(४) विवेक--शुद्ध-अशुद्ध अन्न-पानी आदि के विषय में पृथक् करण करना अर्थात् अशुद्ध अन्न-पानी आदि का त्याग करना विवेक प्रायश्चित्त है। त्याग परिणतिरूप यह विवेचन भाव शुद्धिस्वरूप है, विशोधनरूप है, प्रत्युपेक्षणरूप है, यह विवेक प्रायश्चित्त दूषित आहार, पानी, उपकरण, औपग्रहिक उपधि, शय्या तथा आसन आदि के विषय

આલોચના અને પ્રતિક્રમણની હમણા જ વ્યાખ્યા કરવામાં આવી છે. પહેલા આલોચના પછી ગુરૂની આજ્ઞાથી પ્રતિક્રમણ કરવું આલોચનપ્રતિક્રમણ કહેવાય છે. જે મુનિ સંભ્રમ અથવા ભયથી આતુર છે. એકાએક ઉપયોગ-શૂન્યતાને કારણે પોતાને વશ રહેતો નથી અને જે દુષ્ટ ચિન્તન, દુષ્ટ ભાષણ તેમજ દુષ્ટચેષ્ટાથી યુક્ત છે તેના માટે આ પ્રાયશ્ચિત્તનું વિધાન કરવામાં આવ્યું છે.

(૪) વિવેક-શુદ્ધ-અશુદ્ધ અન્ન-પાણી વગેરેના પૃથક્કરણ કરવું અર્થાત્ અશુદ્ધ અન્ન-પાણી આદિનો ત્યાગ કરવો વિવેક પ્રાયશ્ચિત્ત છે. ત્યાગપરિણતિરૂપ આ વિવેચન ભાવશુદ્ધિ સ્વરૂપ છે, વિશોધનરૂપ છે, પ્રત્યુપેક્ષણરૂપ છે. આ વિવેક પ્રાયશ્ચિત્ત દૂષિત આહાર, પાણી, ઉપકરણ, ઔપગ્રહિત ઉપધિ, શય્યા તથા આસન આદિના વિષયમાં થાય છે. આથી જે

उपयुक्तेन गीतार्थेनाऽन्नादिकं प्रथमं गृहीतं पश्चादशुद्धं चेज्ज्ञातं भवति तदा-तस्य त्यागो विवेकाख्यं प्रायश्चित्तं भवति ३ एवं-विशिष्ट उत्सर्गो व्युत्सर्गः, काय वाङ्मनो व्यापाराणां प्रणिधानपूर्वको निरोधो व्युत्सर्गप्रायश्चित्त मुच्यते, तथा च नियतकालं कायस्य वाचो मनसश्च व्यापारत्यागो व्युत्सर्गो नाम प्रायश्चित्तम् एतत्कायोत्सर्गशब्देनाऽयुते ५ एवं-षड्विधं पूर्वोक्त मनशनाऽवमौदर्यादिकं बाह्यं तपः खलु तपोनाम प्रायश्चित्तमुच्यते ६ अथाऽऽभ्यन्तरतपोरूपतया प्राय श्चित्तस्य, बाह्यतपोरूपत्वेनाऽनशनादेश्च कथं तयो रैक्यं सम्भवति, परस्परविरो·

में होता है। अतएव जिन वस्तुओं के ग्रहण करने पर लोभादिक कषायों की उत्पत्ति होती है, उन सब का त्याग करना विवेक प्राय· श्चित्त है। जैसे किसी उपयोगवान् गीतार्थ मुनि ने पहले अन्न आदि को ग्रहण कर लिया, पश्चात् वह दूषित मालूम हुआ तो उसका त्याग करदेना विवेक प्रायश्चित्त है।

(५) व्युत्सर्ग-विशिष्ट प्रकार के उत्सर्ग को व्युत्सर्ग कहते हैं अर्थात् शरीर, वचन और मन के व्यापारों का उपयोग पूर्वक निरोध करना व्युत्सर्ग है। इस प्रकार मर्यादित समय के लिए शरीर के, वचन के और मन के व्यापार का त्याग करना व्युत्सर्ग नामक प्रायश्चित्त है। इसे 'कायोत्सर्ग' भी कहते हैं।

(६) तप—पूर्वोक्त अनशन आदि छह प्रकार का बाह्य तप प्राय- श्चित्त कहलाता है।

शंका—प्रायश्चित्त आभ्यन्तर तप है, वह अनशन आदि बाह्य

વસ્તુઓનું ગ્રહણ કરવાથી લોભાદિક કષાયોની ઉત્પત્તિ થાય છે આ બધાનો ત્યાગ કરવો વિવેક પ્રાયશ્ચિત્ત છે જેમ કોઈ ઉપયોગવાન્ ગીતાર્થ મુનિએ પ્રથમ અન્ન વગેરે ગ્રહણ કરી લીધા, પાછળથી તે દૂષિત જણાય તો તેનો ત્યાગ કરી દેવો વિવેક પ્રાયશ્ચિત્ત છે.

(૫) વ્યુત્સર્ગ-વિશિષ્ટ પ્રકારના ઉત્સર્ગને વ્યુત્સર્ગ કહે છે અર્થાત્ શરીર, વચન અને મનના વ્યાપારોનો ઉપયોગપૂર્વક નિરોધ કરવો વ્યુત્સર્ગ છે. આવી રીતે મર્યાદિત સમયને માટે શરીરના, વચનના અને મનના વ્યાપારનો ત્યાગ કરવો વ્યુત્સર્ગ નામક પ્રાયશ્ચિત્ત છે. આને 'કાયોત્સર્ગ' પણ કહે છે.

(૬) તપ-પૂર્વોક્ત અનશન આદિ છ પ્રકારના બાહ્ય તપ-પ્રાય- શ્ચિત્ત કહેવાય છે.

શંકા-પ્રાયશ્ચિત્ત આભ્યન્તર તપ છે, તે અનશન આદિ બાહ્ય તપ રૂપ

धात् इतिचेत् ? उच्यते–अध्यात्मनि खेदजनकत्वेनाऽऽभ्यन्तरत्वमिति न कश्चिद् विरोधः। छेदोनाम प्रायश्चित्तं तावद् दिवस–पक्ष–मासादिविभागेन दीक्षापर्याय च्छेदनं प्रव्रज्यान्यूनकरणम्, तथा च–महाव्रतारोपणकालादारभ्य प्रव्रज्यादिवस –पक्ष–मास–संवत्सराणा मन्यतमानां, पर्यायस्य च छेदो भवति यस्मिन् दिवसे महाव्रतारोपणं कृतं तथाविधप्रव्रज्यादिवसादिः पर्याय उच्यते, तत्र–पञ्चक प्रभृति च्छेदः पर्यायस्य यथा यस्य खलु दशवर्षाणि–आरोपितमहाव्रतस्याऽप· राधानुरूपः 'कदाचित्–पञ्चकच्छेदः 'कदाचिद्–दशकच्छेदः' इत्यादिरीत्या

तप रूप किस प्रकार हो सकता है ? दोनों एक कैसे हो सकते हैं ? दोनों में परस्पर विरोध है।

समाधान–आत्मा में खेदजनक होने के कारण इसे भी आभ्यन्तर कहा जाता है, अतएव कोई विरोध नहीं है। (यों भी बाह्य और आभ्यन्तर तप में पारस्परिक विरोध नहीं है, बाह्य तप भी परिणाम विशेष से आभ्यन्तर बन जाता है और आभ्यन्तर तप भी बाह्य बन सकता है।

(७) छेद—कतिपय दिन, पक्ष या मास की दीक्षा का छेदन करना अर्थात् उसे कम कर देना छेद प्रायश्चित्त है। महाव्रतों के आरोपणकाल से लगाकर जो दीक्षाकाल है उसमें से कुछ दिन, पक्ष या मास का दीक्षा काल कम करदेना छेद कहलाता है। जिस दिन महव्रतों का आरोपित किया गया वह दीक्षा दिवस आदि पर्याय कहलाता है। उसमें पांच आदि का छेदन होता है। उदाहरणार्थ–किसी की दीक्षा

કઇ રીતે હોઇ શકે ? બંને એક કેવી રીતે હોઈ શકે ? બંનેમાં પરસ્પર વિરોધ છે.

સમાધાન–આત્મામાં ખેદજનક હોવાના કારણે આને પણ આભ્યન્તર કહેવામાં આવે છે. આથી કોઈ વિરોધાભાસ નથી (આમ પણ બાહ્ય અને અને આભ્યન્તર તપમાં પારસ્પરિક વિરોધ નથી, બાહ્ય તપ પણ પરિણામ વિશેષથી આભ્યન્તર બની જાય છે અને આભ્યન્તર તપ પણ બાહ્ય બની શકે છે.)

(૭) છેદ–કેટલાંક દિવસ પક્ષ અથવા માસની દીક્ષાનું છેદન કરવું અર્થાત્ તેમાં ઘટાડો કરી દેવો છેદ પ્રાયશ્ચિત્ત છે, મહાવ્રતોનાં આરોપણ-કાળથી માંડીને જે દીક્ષાકાળ છે તેમાંથી થોડાં દિવસ, પક્ષ અથવા માસનો દીક્ષાકાળ ઓછો કરી દેવો છેદ કહેવાય છે. જે દિવસે મહાવ્રતોનું આરોપણ કરવામાં આવ્યું તે દીક્ષાદિવસ આદિ પર્યાય કહેવાય છે તેમાં પાંચ આદિનો છેદ થાય છે. દાખલા તરીકે–કોઈની દીક્ષા પર્યાય દશ વર્ષની છે તો અપરાધ

यावत्–षण्मासपरिमाणच्छेदो लघु-गुरुर्वा भवति। एवंविधेन छेदेन छिद्यमानः प्रव्रज्यादिवसमपि छेदयति ७ मूलं प्रायश्चित्तं पुनर्व्रतारोपणम् अस्य विषयः–सङ्कल्पात् कृतः प्राणातिपातश्चतुर्थाऽऽस्रवसेवन-मुत्कृष्टं मृषावादादिकं वाऽऽसेवमानो बोध्यः ८ अनवस्थाप्यं नाम प्रायश्चित्तं सेविताऽतिचारस्याऽकृततपो विशेषस्य व्रताऽनारोपणीयतारूपमवसेयम्, तथा–यद् आसेविते च दोषे कञ्चनकालं व्रता·रोपणाऽयोग्यं कृत्वा पश्चाच्चीर्ण तपास्तद् दोषोपरतो व्रतेषु स्थाप्यते तत् ९ पारा·

—पर्याय दस वर्ष की है तो अपराध के अनुसार उसमें से कदाचित् पंचकच्छेद होता है, कदाचित् दशकच्छेद होता है। अधिक से अधिक छह महीने का छेद प्रायश्चित्त दिया जाता है।

(८) मूल— नये सिरे से पुनः दीक्षा देना मूल प्रायश्चित्त है। यह प्रायश्चित्त तभी दिया जाता है जब कोई साधु संकल्प पूर्वक प्राणाति·पात करे, चतुर्थ आस्रव-मैथुन का सेवन करे या उत्कृष्ट मृषावाद आदि का सेवन करे।

(९) अनवस्थाप्य—जिस साधु ने अतिचार का सेवन किया हो किन्तु उसके प्रायश्चित्तस्वरूप तपविशेष का सेवन न किया हो, वह व्रतारोपण के योग्य नहीं होता। उसकी यह अयोग्यता अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त है। दोष का सेवन करने पर कुछ काल तक वह साधु व्रतारोपण के योग्य नहीं होता, बाद में जब तपश्चरण कर लेता है और उस दोष की निवृत्ति हो जाती है तब व्रतों में उसे स्थापित किया जाता है।

મુજબ તેમાંથી કદાચિત્ પંચકચ્છેદ થાય છે, કદાચિત્ દશકચ્છેદ થાય છે. વધારેમાં વધારે છ માસનું છેદપ્રાયશ્ચિત્ત આપવામાં આવે છે.

(૮) મૂળ-નવેસરથી ફરીવાર દીક્ષા આપવી મૂળ પ્રાયશ્ચિત્ત છે જ્યારે કોઈ સાધુ સંકલ્પપૂર્વક પ્રાણાતિપાત કરે ત્યારે જ આ પ્રાયશ્ચિત્ત કરવામાં આવે છે, ચતુર્થ આસ્રવ-મૈથુનનું સેવન કરે અથવા ઉત્કૃષ્ટ મૃષાવાદ આદિનું સેવન કરે.

(૯) અનવસ્થાપ્ય-જે સાધુએ અતિચારનું સેવન કર્યું છે. પરન્તુ તેના પ્રાયશ્ચિત્ત સ્વરૂપ તપવિશેષનું સેવન કર્યું નથી, તે વ્રતારોપણ માટે યોગ્ય હોતો નથી તેની આ અયોગ્યતા અનવસ્થાપ્ય પ્રાયશ્ચિત્ત છે. દોષનું સેવન કરવાથી થોડા સમય સુધી તે સાધુ વ્રતારોપણ માટે યોગ્ય રહેતો નથી, છેલ્લે જ્યારે તપસ્યા કરી લે છે અને દોષની નિવૃત્તિ થઇ જાય છે ત્યારે વ્રતોમાં તેને સ્થાપિત કરવામાં આવે છે.

ञ्चिकं नाम दशमं प्रायश्चित्तम्, तथाहि-पारं-प्रायश्चित्तानामन्तम्, यस्मात्-पर-मुत्कृष्टं प्रायश्चित्ताऽभावात् अञ्चति-प्राप्नोतीति पाराञ्चिक मुच्यते । यद्वा-पारः अपराधानामन्तः अञ्च्यते-प्राप्यते येन प्रायश्चित्तेन तत्-पाराञ्चिकं नाम प्रायश्चित्त मुच्यते । अत्राऽयं विवेकः-कृतातिचारं लिङ्ग-क्षेत्र-कालतो बहिर्भूतं कृत्वा कृत्वा च तपसा शुद्धं पुनः स महाव्रतेष्वारोप्यते, । इदं प्रायश्चित्तं जातिकुल-सम्पन्न एव-(कश्चित् कदाचित्) स्वीकरोतीति । यः कोऽपि साधुर्गच्छाधिष्ठात्री राज-राज्ञी-श्रेष्ठिपत्नीगामी, तथा-स्त्यानर्द्धि निद्रावान् मृतगुरुदन्तोत्पाटक इत्यादि दुष्कृत्याऽऽकारी भवति तस्मै-इदं प्रायश्चित्तं देयं भवति ॥१०॥इति भावः॥६३॥

(१०) पारांचिक—यह दसवां प्रायश्चित्त है । जिससे बडा अन्य कोई प्रायश्चित्त न हो अर्थात् जो सर्वोत्कृष्ट प्रायश्चित्त हो वह परांचिक प्रायश्चित्त कहलाता है । अथवा जिस प्रायश्चित्त के सेवन से अपराधि अपने अपराध के पार (अन्त) पहुंच जाय अर्थात् शुद्ध हो जाय वह परांचिक प्रायश्चित्त, यहां यह समझ लेना चाहिए कि जिसने अनाचार का सेवन किया है उसे लिंग क्षेत्र और काल से बाहर करके, तत्पश्चात् तपस्या कर चुकने पर पुनः दीक्षित किया जाता है । जाति और कुल से सम्पन्न कोई-कोई ही इस प्रायश्चित्त को कदाचित् स्वीकार करता है । जो साधु गच्छ की अधिष्ठात्री (प्रवर्तिनी) राजरानी या किसी सेठानी के साथ संगम करता है अथवा जो स्त्यानर्द्धि निद्रावान् होता है और अपने मृत गुरु के दांतों को कषायाविष्ट होकर उखाडना जैसा घोर अनाचार करता है, उसी को यह प्रायश्चित्त किया जाता है ॥६३॥

(૧૦) પારાંચિક- આ દશમું પ્રાયશ્ચિત્ત છે. જેનાથી મોટું કોઈ બીજું પ્રાયશ્ચિત્ત હોય નહીં, અર્થાત્ જે સર્વોત્કૃષ્ટ પ્રાયશ્ચિત્ત છે તે પારાંચિક પ્રાયશ્ચિત્ત કહેવાય છે, અથવા જે પ્રાયશ્ચિત્તના સેવનથી અપરાધી પોતાના અપરાધને છેડે પહોંચી જાય, અર્થાત્ શુદ્ધ થઈ જાય તે પારાંચિક પ્રાયશ્ચિત્ત, અહીં એ સમજી લેવું જોઈએ કે જેને અનાચારનું સેવન કર્યું છે તેને લિંગ, ક્ષેત્ર અને કાળથી બહાર કરીને, ત્યાર બાદ, પુનઃ દીક્ષિત કરવામાં આવે છે. જાતિ અને કુળથી સમ્પન્ન કોઈ-કોઈ જ આ પ્રાયશ્ચિત્તનો કદાચિત્ સ્વીકાર કરે છે. જે સાધુ ગચ્છની અધિષ્ઠાત્રી (પ્રવર્તિની), રાજરાણી અથવા કોઈ શેઠાણીની સાથે સંગમ કરે છે, અથવા જે સ્ત્યાનર્ધિ નિદ્રાવાન્ થાય છે અને પોતાના મૃત ગુરૂના દાંતને કષાયાવિષ્ટ થઈને ઉખાડવા જેવો ઘોર અનાચાર કરે છે, તેને જ આ પ્રાયશ્ચિત્ત આપવામાં આવે છે. ॥૬૩॥

मूलम्—विणए सत्तविहे, णाणदंसणचरित्तमणवइकायलोगो-वयारभेयओ ॥६४॥

छाया—'विनयः सप्तविधः, ज्ञान-दर्शन-चारित्र-मनो-वचः-कायलोकोप-चारभेदतः' ॥६४॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे-प्रायश्चित्तविनय वैयावृत्यादि षड्विधाभ्यन्तर-तपसां प्रथमोपात्तस्य प्रायश्चित्तस्याऽऽलोचनप्रतिक्रमणादिदशभेदानां प्ररूपणं कृतम् सम्प्रति-क्रमप्राप्तस्य द्वितीयस्य विनयरूपस्याभ्यन्तर तपसो भेदान् प्ररूप-यितुमाह-'विणए सत्तविहे' इत्यादि । विनयः-विनीयतेऽपनीयते क्षिप्यते ज्ञानावरणाद्यष्टविध कर्मरजोराशिर्येन स विनयः सप्तविधः ज्ञान-दर्शन-चारित्र-मनो-वचः-काय-लोकोपचारभेदतः । तथा च ज्ञानविनयः १ दर्शनविनयः २

'विणए सत्तविहे णाण' इत्यादि

सूत्रार्थ-विनय सात प्रकार का है-(१) ज्ञान (२) दर्शन (३) चारित्र (४) मन (५) वचन (६) काय और (७) लोकोपचार ॥६४॥

पूर्वसूत्र में प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य आदि छह प्रकार के आभ्यन्तर तपों में से प्रायश्चित्त के आलोचन प्रतिक्रमण आदि दस भेदों का निरूपण किया गया, अब क्रमप्राप्त विनय नामक आभ्यन्तर तप के भेदों की प्ररूपणा करते हैं—

जिसके द्वारा ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार का कर्म-रज विनीत किया जाय-हटाया जाय उसे विनय कहते हैं। वह ज्ञान, दर्शन, चारित्र, मन, वचन, काय और लोकोपचार के भेद से सात प्रकार है अर्थात् उसके सात भेद हैं, यथा--(१) ज्ञानविनय (२) दर्शन

'विणए सत्तविहे णाणदंसण' ईत्याहि

સૂત્રાર્થ-વિનય સાત પ્રકારનો છે-(૧) જ્ઞાન (૨) દર્શન (૩) ચારિત્ર (૪) મન (૫) વચન (૬) કાય અને (૭) લોકોપચાર. ॥૬૪॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં પ્રાયશ્ચિત્ત વિનય વૈયાવૃત્ય આદિ છ પ્રકારના આભ્યન્તર તપોમાંથી પ્રાયશ્ચિત્તના આલોચન પ્રતિક્રમણ આદિ દશ ભેદોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે ક્રમપ્રાપ્ત વિનય નામક આભ્યન્તર તપના ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

જેના વડે જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ પ્રકારના કર્મ-રજ વિનીત કરવામાં આવે-દૂર કરવામાં આવે તેને વિનય કહે છે. તે જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર, મન, વચન, કાયા અને લોકોપચારના ભેદથી સાત પ્રકારનો છે અર્થાત્

चारित्रविनयः ३ मनोविनयः ४ वचोविनयः ५ कायविनयः ६ लोकोपचारविनयश्च ७। तत्राऽऽलस्यवर्जितेन देश-काल-द्रव्य-भावादिशुद्धिकरणेन बहुमानेन मोक्षप्राप्त्यर्थं ज्ञानग्रहणं ज्ञानाभ्यासो ज्ञानस्मरणादिकं ज्ञानविनय उच्यते। स च पञ्चविधः, मतिज्ञानविनयश्रुतज्ञानविनयाऽवधिज्ञानविनय-केवलज्ञानविनयभेदात्। तत्र-शङ्काऽऽकाङ्क्षाऽऽदिदोषवर्जितं तत्वश्रद्धानं दर्शनविनय १ उच्यते स च-सुश्रूषणाऽत्याशातनाभेदाद् द्विविधः २। ज्ञानदर्शनवतः पुरुषस्य चारित्रे ज्ञाते सति तस्मिन् पुरुषे-भावतोऽतिभक्तिविधानं भावतः स्वयं चारित्रानुष्ठानञ्च चारित्रविनय उच्यते। स च पञ्चविधः, सामायिकचारित्रविनय-छेदोपस्थापनीय

विनय (३) चारित्र विनय (४) मनोविनय (५) वचन विनय (६) काय विनय और (७) लोकोपचार विनय।

आलस्यरहित होकर देश, काल, द्रव्य और भाव आदि संबंधी शुद्धि करके, बहुमानपूर्वक, मोक्ष प्राप्त करने के हेतु ज्ञान को ग्रहण करना ज्ञान का अभ्यास करना ज्ञान का स्मरण आदि करना ज्ञान विनय कहलाता है? ज्ञानविनय के पांच भेद हैं मतिज्ञानविनय, श्रुतज्ञानविनय, अवधिज्ञानविनय, मनःपर्यव ज्ञानविनय और केवल ज्ञानविनय।

शंका, कांक्षा आदि दोषों से रहित होकर तत्त्वार्थ पर श्रद्धान करना दर्शनविनय है। इसके दो भेद हैं--शुश्रूषणा और अनत्याशातना।

ज्ञान-दर्शन सम्पन्न पुरुष में यदि चारित्र मालूम हो तो उसके प्रति भावपूर्वक अत्यन्त भक्ति करना और स्वयं भावपूर्वक चारित्र का अनुष्ठान करना चारित्रविनय है। चारित्रविनय पांच प्रकार का

તેના સાત ભેદ છે-(૧) જ્ઞાનવિનય (૨) દર્શનવિનય (૩) ચારિત્રવિનય (૪) મનોવિનય (૫) વચનવિનય (૬) કાયવિનય અને (૭) લોકોપચારવિનય.

આળસ ખંખેરીને દેશ, કાળ, દ્રવ્ય અને ભાવ આદિ સંબંધિ શુદ્ધિ કરીને, બહુમાનપૂર્વક, મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવાના હેતુથી જ્ઞાન ગ્રહણ કરવું, જ્ઞાનનો અભ્યાસ કરવો, જ્ઞાનનું સ્મરણ આદિ કરવું જ્ઞાનવિનય કહેવાય છે. જ્ઞાનવિનયના પાંચ ભેદ છે-મતિજ્ઞાનવિનય, શ્રુતજ્ઞાનવિનય, અવધિજ્ઞાનવિનય, મનઃપર્યવજ્ઞાનવિનય અને કેવળજ્ઞાનવિનય.

શંકા—કાંક્ષા આદિ દોષોથી રહિત થઇને તત્ત્વાર્થ પર શ્રદ્ધા કરવી દર્શનવિનય છે. આના બે ભેદ છે-શુશ્રૂષણા અને અનત્યાશાતના,

જ્ઞાન—દર્શન સમ્પન્ન પુરૂષમાં જો ચારિત્ર જણાય તો તેના પ્રત્યે ભાવપૂર્વક અત્યન્ત ભક્તિ કરવી અને સ્વયં ભાવપૂર્વક ચારિત્રનું અનુષ્ઠાન

चारित्रविनय-परिहारविशुद्धिक चारित्रविनय-सूक्ष्मसाम्पराय चारित्रविनय-यथाख्यातचारित्रभेदात्। तथा च ज्ञानदर्शनवतः पुरुषस्य चारित्रसमाहितचित्तता चारित्रविनयो व्यपदिश्यते ३ मनोविनयस्तु परोक्षेष्वपि-आचार्योपाध्यायादिषु गुणानुस्मरणादिरूप उच्यते ४ स च-प्रशस्ताऽप्रशस्तभेदाद् द्विविधः। एवं वचोविनयोऽपि-परोक्षेष्वपि तेषु वचसा गुणकीर्तनादिरूप उच्यते, अयमपि प्रशस्ताऽप्रशस्तभेदाद् द्विविधः ५ एवं-कायविनयोऽपि परोक्षेष्वपि आचार्योपाध्यायादिषु कायेन शिरोहस्तादिनाऽञ्जलिक्रियादिरूपोऽस्सेयः ६ असावपि-प्रशस्ता-

हैं-सामायिक चारित्रविनय, छेदोपस्थापनीय चारित्रविनय, परिहारविशुद्धिक चारित्रविनय, सूक्ष्मसाम्पराय चरित्रविनय और यथाख्यातचारित्रविनय। इस प्रकार ज्ञान और दर्शन से युक्त पुरुष का चारित्र में चित्त लग जाना चारित्रविनय है।

आचार्य या उपाध्याय आदि परोक्ष में हों तो भी उनके गुणों का स्मरण आदि करना मनोविनय कहलाता है। मनोविनय के दो भेद हैं-प्रशस्तमनोविनय और अप्रशस्तमनोविनय।

आचार्य उपाध्याय आदि परोक्ष हों तो भी वचन से उनके गुणों का कीर्त्तन करना आदि वचन विनय है। प्रशस्त और अप्रशस्त के भेद से यह भी दो प्रकार का है।

इसी प्रकार काय विनय भी समझना चाहिए- आचार्य आदि परोक्ष हो तो भी उन्हें काय से हाथ आदि से अंजलि क्रिया करना आदि काय विनय है। प्रशस्त और अप्रशस्त के भेद से इसके भी दो भेद हैं।

કરવું ચારિત્રવિનય છે. ચારિત્રવિનય પાંચ પ્રકારના છે-સામાયિક ચારિત્રવિનય, છેદોપસ્થાપનીય ચારિત્રવિનય, પરિહારવિશુદ્ધિ ચારિત્રવિનય સૂક્ષ્મસંપરાય ચારિત્રવિનય અને યથાખ્યાત ચારિત્રવિનય આ રીતે જ્ઞાન અને દર્શનથી યુક્ત પુરૂષનું ચારિત્રમાં મન પરોવાઈ જવું ચારિત્રવિનય છે.

આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય આદિ પરોક્ષ હોય તો તેમના ગુણોનું સ્મરણ વગેરે કરવું મનોવિનય કહેવાય છે. મનોવિનયના બે ભેદ છે-પ્રશસ્તમનોવિનય અને અપ્રશસ્તમનોવિનય.

આચાર્ય, ઉપાધ્યાય આદિ પરોક્ષ હોય તો પણ વચનથી તેમનાં ગુણોનું કીર્તન કરવું વગેરે વચનવિનય છે. પ્રશસ્ત તેમજ અપ્રશસ્તના ભેદથી આ પણ બે પ્રકારના છે-

આવી જ રીતે કાયવિનય પણ સમજવો-આચાર્ય આદિ પરોક્ષ હોય તો પણ તેમને કાયાથી-હાથ વગેરેથી અંજલિક્રિયા કરવી આદિ કાયવિનય છે. પ્રશસ્ત અને અપ્રશસ્તના ભેદથી આના પણ બે ભેદ છે.

ऽप्रशस्तभेदाद् द्विविधः ६ लोकोपचारविनयस्तु-उपचरणमुपचारः लोकविषय श्रद्धानपूर्वक नम्रता विशेषलक्षणो विलक्षणोऽव्यवहारः सचाऽसौ विनयश्चेति लोकोपचारविनयः । स च-सप्तविधः, अभ्यासवृत्तिता-परिच्छन्दानुवर्त्तिताऽऽदिभेदात् ७ । विनयस्य सविस्तरं भेदानुभेदरूपं वर्णनम्-'औपपातिक' सूत्रस्य मत्कृतायां 'पीयूषवर्षिणी' टीकायां त्रिंशत्तमसूत्रव्याख्यायां (पृष्ठ-२५७×२७२) विलोकनीयम् ॥६४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावत्-षड्विधाऽऽभ्यन्तरतपसः प्रथमोपात्तस्य प्रायश्चित्तस्याऽऽलोचन-प्रतिक्रमणादि दशभेदानां प्ररूपणं कृतम्, सम्प्रति क्रमप्राप्तस्य द्वितीयस्य विनयरूपाभ्यन्तरतपसः प्ररूपणं कर्त्तुमाह-'विणए सत्तविहे, णाण-दंसण-चरित्त-मण-वइ-काय-लोगोवयारभेयओ' इति । विनयस्तावत् पूर्वोक्त स्वरूपो ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्मरजोराशि विनाशक नम्रता विशेषः

लोक विषयक श्रद्धापूर्वक नम्रता होना लोकोपचार विनय है। इसके सात भेद हैं-अभ्यासवृत्तिता अर्थात् गुरू के निकट में रहना, परछन्दानुवर्तिता दूसरे की इच्छा को समझकर उसके अनुसार कार्य करना आदि ।

विनय का विस्तार पूर्ण भेदानुभेद सहित वर्णन 'औपपातिक' सूत्र की मेरे द्वारा रचित 'पीयूषवर्षिणी' टीका में, तीसवें सूत्र की व्याख्या में देखना चाहिए ॥ ६४।

तत्वार्थनिर्युक्ति-छह प्रकार के आभ्यन्तर तप में परिगणित प्रथम भेद प्रायश्चित्त के आलोचन प्रतिक्रमण आदि दस भेदों का वर्णन पूर्वसूत्र में किया गया, अब क्रमप्राप्त द्वितीय आभ्यन्तर तप विनय की प्ररूपणा करते हैं-

લોકવિષયક શ્રદ્ધાપૂર્વક નમ્રતા હોવી લોકોપચારવિનય છે. આના સાત ભેદ છે-અભ્યાસવૃત્તિતા અર્થાત્ ગુરૂની સાંનિધ્યમાં રહેવું; પરછન્દાનુવર્ત્તિતા-બીજાની ઇચ્છાને સમજી લઈ ને તદ્ અનુસાર કાર્ય કરવું વગેરે.

વિનયનું વિસ્તારપૂર્વક ભેદાનુભેદ સહિત વર્ણન 'ઔપપાતિક' સૂત્રની મારા વડે રચાયેલી 'પીયૂષવર્ષિણી' ટીકામાં, ત્રીસમાં સૂત્રની વ્યાખ્યામાં જોઈ લેવા ભલામણ છે ॥૬૪॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—છ પ્રકારના આભ્યન્તર તપમાં પરિગણિત પ્રથમ ભેદ પ્રાયશ્ચિત્તના આલોચન પ્રતિક્રમણ આદિ દશ ભેદોનું વર્ણન પૂર્વસૂત્રમાં કરવામાં આવ્યું, હવે ક્રમ પ્રાપ્ત દ્વિતીય આભ્યન્તર તપ વિનયની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

सप्तविधो भवति, विनीयन्ते–क्षिप्यंते ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्माणि येन स विनय इति व्युत्पत्तेः। तद्यथा–ज्ञान, दर्शन, चारित्र, मनो, वचः, काय, लोकोपचार, भेदतः। १ ज्ञानविनयः २ दर्शनविनयः ३ चारित्रविनयः ४ मनोविनयः ५ वचोविनयः ६ कायविनयः ७ लोकोपचारविनयश्चेति। तत्र–ज्ञानविनयस्तावत् पञ्चविधः, तद्यथा–मतिज्ञानविनयः केवलज्ञानविनयश्चेति। तथा च–आदरपूर्वकं मोक्षार्थं ज्ञानग्रहणं ज्ञानाभ्यासः ज्ञानस्मरणादिकं यथाशक्ति ज्ञानविनय उच्यते। ज्ञानविनये सति मति ज्ञानादि पञ्चके सबहुमानं शक्त्यतिशयो ज्ञानस्वरूपश्रद्धानं तद्विषयं श्रद्धानञ्चोपजायते, श्रुतेच विशेषो जायते। तथा चोक्तम्–

'काले विणए बहुमाणे उवहाणे तह अनिह्नवणे।
वंजण अत्थ तदुभए अट्ठविहो नाणमायारो' ॥१॥

ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के कर्म रूपी रज को दूर करने वाली नम्रता को विनय कहते हैं–उसके सात भेद हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, मन, वचन, काय और लोकोपचार अर्थात् (१) ज्ञान विनय (२) दर्शन विनय (३) चरित्रविनय (४) मनो विनय (५) वचन विनय (६) कायविनय और (७) लोकोपचारविनय, इनमें से ज्ञानविनय के पांच भेद हैं–मतिज्ञानविनय, श्रुतज्ञानविनय, अवधिज्ञानविनय, मनःपर्यवज्ञानविनय और केवलज्ञानविनय, आदर के साथ ज्ञान को ग्रहण करना, ज्ञान का अभ्यास करना, ज्ञान का स्मरण आदि करना, ज्ञान विनय है। ज्ञानविनय के होने पर मतिज्ञान आदि पांच ज्ञानों में बहुमानपूर्वक शक्ति का आधिक्य होता है, ज्ञान के स्वरूप का श्रद्धान होता है और ज्ञान के विषय पर भी श्रद्धान होता है। श्रुतज्ञान में विशिष्टता उत्पन्न होती है। कहा भी है–

જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ પ્રકારના કર્મરૂપી રજને દૂર કરનારી નમ્રતાને વિનય કહે છે, તેના સાત ભેદ છે–જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર, મન, વચન, કાયા અને લોકોપચાર અર્થાત્ (૧) જ્ઞાનવિનય (૨) દર્શનવિનય (૩) ચારિત્રવિનય (૪) મનોવિનય (૫) વચનવિનય (૬) કાયવિનય અને (૭) લોકોપચારાવનય.

આમાંથી જ્ઞાનવિનયના પાંચ ભેદ છે–મતિજ્ઞાનવિનય, શ્રુતજ્ઞાનવિનય, અવધિજ્ઞાનવિનય, મનઃપર્યવજ્ઞાનવિનય અને કેવળજ્ઞાનવિનય સન્માનપૂર્વક જ્ઞાન ગ્રહણ કરવું. જ્ઞાનનો અભ્યાસ કરવો, જ્ઞાનનું સ્મરણ વગેરે કરવું જ્ઞાનવિનય છે જ્ઞાનવિનયના હોવાથી મતિજ્ઞાન આદિ પાંચ જ્ઞાનોમાં બહુમાનપૂર્વક શક્તિનું આધિક્ય થાય છે, જ્ઞાનના સ્વરૂપની શ્રદ્ધા થાય છે અને જ્ઞાનના વિષય પર પણ શ્રદ્ધા થાય છે. શ્રુતજ્ઞાનમાં વિશિષ્ટતા ઉત્પન્ન થાય છે. કહ્યું પણ છે–

'काले विनये बहुमाने उपधाने तथा अनिह्नवे ।
व्यञ्जनेऽर्थे तदुभये अष्टविधो ज्ञाने आचारः ॥१॥ इति,

शङ्कादिदोषवर्जितं तत्त्वार्थश्रद्धानं दर्शनविनय उच्यते, स च-सम्यग्दर्शनविनयः शुश्रूषणाऽनत्याशातनभेदाद् द्विविधः २, तथा--तीर्थकृत् प्रणीतस्य धर्मस्याऽऽचार्यो-पाध्याय-स्थविर-कुलगण-संघ-श्रमणसाम्भोगिकमनोज्ञानाञ्चाऽनाशातना प्रशम संवेग-वैराग्याऽनुकम्पाऽऽस्तिक्यानि च सम्यग्दर्शनविनयो बोध्यः ज्ञानदर्शनवतः पुरुषस्य चारित्रे विज्ञाते सति तस्मिन् पुरुषे भावत आदरातिशयकरणम्-द्रव्यभावतः स्वयं चारित्रानुष्ठानञ्च चारित्रविनय उच्यते, । स चारित्रविनयः पञ्चविधः, सामायिकचारित्रविनयः-छेदोपस्थापनचारित्रविनयः-

काल, विनय, बहुमान, उपधान, अनिह्नव, शब्द अर्थ और उभय-शब्दार्थ, यह आठ प्रकार का ज्ञानविनय है ।

शंका आदि दोषों से रहित तत्त्वार्थ का श्रद्धान दर्शनविनय कहलाता है । शुश्रूषणा और अनत्याशातना के भेद से यह दो प्रकार का है । तीर्थंकर द्वारा प्रणीत धर्म की आशातना न करना तथा आचार्य, उपाध्याय, स्थविर शैक्ष, ग्लान, तपस्वी, साधर्मिक, कुल, गण संघ, एवं मनोज्ञ श्रमणों की आशातना न करना तथा प्रशम, संवेग, वैराग्य अनुकम्पा आस्तिक्य यह सम्यग्दर्शनविनय है ।

ज्ञान दर्शनवान् पुरुष के चारित्र का ज्ञान होने पर उस पुरुष का अतिशय आदर करना तथा द्रव्य भाव से स्वयं चारित्र का अनुष्ठान करना चारित्र विनय है । चारित्र विनय के पांच भेद हैं-सामायिक चरित्र विनय, छेदोपस्थापन चारित्रविनय, परिहार विशुद्धिक चारित्र-

કાળ, વિનય, બહુમાન, ઉપધાન અનિહ્નવ શબ્દ અર્થ અને ઉભય શબ્દાર્થ-આ આઠ પ્રકારના જ્ઞાનવિનય છે.

શંકા વગેરે દોષોથી રહિત તત્ત્વાર્થની શ્રદ્ધા દર્શનવિનય કહેવાય છે. શુશ્રૂષણા અને અનત્યાશાતનાના ભેદથી તે બે પ્રકારના છે. તીર્થંકર દ્વારા પ્રણીત ધર્મની અશાતના ન કરવી તથા આચાર્ય, ઉપાધ્યાય, સ્થવિર, શૈક્ષ-ગ્લાન તપસ્વી, સાધર્મિક, કુળ, ગણ, સંઘ અને મનોજ્ઞ શ્રમણોની અશાતના ન કરવી તથા પ્રશમ, સંવેગ, વૈરાગ્ય, અનુકમ્પા અને આસ્તિકય આ સમ્યગ્દર્શનવિનય છે.

જ્ઞાન-દર્શનવાન્ પુરૂષના ચારિત્રનું જ્ઞાન થવાથી તે પુરૂષનો અતિશય આદર કરવો તથા દ્રવ્ય-ભાવથી સ્વયં ચારિત્રનું અનુષ્ઠાન કરવું ચારિત્રવિનય છે ચારિત્રવિનયના પાંચ ભેદ છે-સામાયિક ચારિત્રવિનય છેદોપસ્થાપન ચારિત્ર-

सूक्ष्मसाम्परायिकचारित्रविनयः—यथाख्यातविनयश्चेति। तथा च पूर्वोक्त सामायिकादि स्वरूपश्रद्धानपूर्वकं चानुष्ठानविधिना प्ररूपणं चारित्रविनय उच्यते २ परोक्षेपु चापि आचार्योपाध्यायादिषु मनसा-वचसा कायेन च खलु मनो विनयः, वचो विनयः, कायविनयश्चोच्यते। लोकोपचारविनयस्तु-उपचरण-मुपचारः श्रद्धानपूर्वको नम्रतारूपक्रियाविशेषलक्षणो लोकविषयो व्यवहारः, सचाऽसौ विनयश्चेति लोकोपचारविनयः उच्यते। स च-सप्तविधः, अभ्यास-वृत्तिता परच्छन्दानुवर्तितादिभेदात्। विनयस्य सविस्तरवर्णनं भेदानुभेदरूपम् 'औपपातिक' सूत्रस्य मत्कृतायां 'पीयूषवर्षिणी' टीकायां त्रिंशत्तमसूत्रव्याख्यायां (पृष्ठ २४७-२७२) विलोकनीयम् ॥६४॥

विनय, सूक्ष्म साम्परायिक चारित्रविनय और यथाख्यात चारित्र विनय। इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त सामायिक आदि के स्वरूप के श्रद्धान के साथ अनुष्ठान विधि से प्ररूपण करना चारित्र विनय है।

आचार्य आदि परोक्ष में हो तो भी मन से वचन और काय से उनका विनय करना क्रमशः मनोविनय, वचनविनय और कायविनय कहलाता है।

उपचरण को उपचार कहते हैं। श्रद्धानपूर्वक नम्रतारूप क्रिया विशेष उपचार कहलाता है तात्पर्य यह है कि लौकिक व्यवहार में नम्रता एवं सौजन्य रखना लोकोपचार विनय है। अभ्यासवृत्तिता, परछन्दानुवर्त्तिता आदि के भेद से इसके सात भेद हैं।

भेद-प्रभेद के साथ विनय का विस्तृत वर्णन मेरे द्वारा रचित

વિનય, પરિહાર વિશુદ્ધિક ચારિત્રવિનય, સૂક્ષ્મસામ્પરાયિક ચારિત્રવિનય અને યથાખ્યાત ચારિત્રવિનય આ સિવાય પૂર્વોક્ત સામાયિક આદિના સ્વરૂપની શ્રદ્ધા સહિત અનુષ્ઠાન વિધિથી પ્રરૂપણા કરવી ચારિત્રવિનય છે.

આચાર્ય આદિ પરોક્ષ હોય તો પણ મનથી, વચનથી તેમજ કાયાથી તેમનો વિનય કરવો અનુક્રમે મનોવિનય, વચનવિનય અને કાયવિનય કહેવાય છે.

ઉપચરણને ઉપચાર કહે છે. શ્રદ્ધાપૂર્વક નમ્રતારૂપ ક્રિયા વિશેષ ઉપચાર કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે લૌકિક વ્યવહારમાં નમ્રતા અને સૌજન્ય દાખવવા લોકોપચારવિનય છે અભ્યાસવૃત્તિતા, પરછન્દાનુવર્ત્તિતા આદિના ભેદથી આના સાત ભેદ છે.

ભેદ-પ્રભેદની સાથે વિનયનું વિસ્તૃત વર્ણન મારા વડે રચાયેલી

मूलम्—वेयावच्चे दसविहे, आयरिय उवज्झाय—थेर—तव-स्सि—सेह—गिलाणकुलगणसंघ—साहम्मिय भेयओ ॥६५॥

छाया—'वैयावृत्त्यं दशविधम्, आचार्यो—पाध्याय—स्थविर—तपस्वि—शैक्ष—ग्लान कुल—गण—संघ—साधर्मिकभेदतः' ॥६५॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावद् आभ्यन्तरतपसः प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यादिभेदेन षड्विधस्य प्रतिपादितत्वेन तत्र—क्रमशः प्रायश्चित्तस्य दशभेदानामालोचन—प्रतिक्रमणादीनां विनयस्य च सप्तभेदानां ज्ञान—दर्शनचारित्रादिविनयानां प्ररूपणं कृतम्, सम्प्रति—क्रमप्राप्तस्य वैयावृत्त्यरूपतृतीयाभ्यन्तरतपसो दशभेदानाम् आचार्यो—पाध्यायादि वैयावृत्त्यानां प्ररूपणं कर्तुमाह—'वैयावच्चे दसविहे' इत्यादि । वैयावृत्त्यम् सूत्रोक्तविधिना व्यावर्त्तते स्मेतिव्यावृत्तः निर्जरालक्षण शुभव्यापारत्वात् तस्य भावः—कर्म वा

'औपपातिक सूत्र की 'पीयूषवर्षिणी' टीका में, तीसवें सूत्र की व्याख्या में (पृ—२५७—२७२—पर) देखना चाहिए ॥सूत्र ६४॥

'वेयावच्चे दसविहे' इत्यादि ॥ सू० ६५ ॥

सूत्रार्थ—वैयावृत्य दस प्रकार का है—१ आचार्य २, उपाध्याय ३, स्थविर ४ शैक्ष ५ ग्लान ६ तपस्वी ७ साधर्मिक ८ कुल ९ गण १० संघ के वैयावृत्य के भेद से ॥सू०॥६५॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले आभ्यन्तर के प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य आदि छह भेद कहे गए थे। उनमें से आलोचन, प्रतिक्रमण आदि दस भेद प्रायश्चित्त के तथा ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय आदि दस भेद विनय के कहे जा चुके हैं, अब क्रम प्राप्त तीसरे आभ्यन्तर तप वैयावृत्य के आचार्य वैयावृत्य, उपाध्याय वैयावृत्य आदि दस भेदों की प्ररूपणा

ઔપપાતિક સૂત્રની પીયૂષવર્ષિણી' ટીકામાં, ત્રીસમાં સૂત્રની વ્યાખ્યામાં (પાના નં. ૨૫૭—૨૭૨) પર જોઈ લેવા ભલામણ છે. ॥૬૪॥

સૂત્રાર્થ-વૈયાવૃત્ય દશ પ્રકારની છે—(૧) આચાર્ય (૨) ઉપાધ્યાય (૩) સ્થવિર (૪) શૈક્ષ (૫) ગ્લાન (૬) તપસ્વી (૭) સાધર્મિક (૮) કુળ (૯) ગણ તથા (૧૦) સંઘની વૈયાવૃત્યના ભેદથી. ॥૬૫॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા આભ્યન્તર તપના પ્રાયશ્ચિત્ત, વિનય, વૈયાવૃત્ય આદિ છ ભેદ કહેવામાં આવ્યા. તેમાંથી આલોચન, પ્રતિક્રમણ આદિ દશ ભેદ પ્રાયશ્ચિત્તના તથા જ્ઞાનવિનય, દર્શનવિનય, ચારિત્રવિનય આદિ દશ ભેદ વિનયના કહેવામાં આવેલ છે હવે ક્રમપ્રાપ્ત ત્રીજા આભ્યન્તર તપ વૈયાવૃત્યના આચાર્ય વિનય, ઉપાધ્યાયવિનય આદિ દશ ભેદોની

वैयावृत्त्यम्, सेवाकरणम् तद् दशविधं भवति । तद्यथा-आचार्योपाध्यायस्थविर-तपस्वि-शैक्ष-ग्लान-कुल-गण-संघ-साधर्मिकभेदतः, तत्र-दशविधं खलु वैयावृत्त्यं भवति आचार्यस्य वैयावृत्यं सेवाऽऽचार्य वैयावृत्त्यम्१ उपाध्यायस्य शुश्रूषा-करणम्-उपाध्यायवैयावृत्त्यम् २ स्थविरस्य-वृद्धमुनेर्वैयावृत्त्यं स्थविरवैयावृत्त्यम् ३ तपस्वी-मासभक्षणादिकारकः, तस्य वैयावृत्त्यं तपस्विवैयावृत्त्यम् ४ शैक्षस्य-ग्रहणाऽऽसेवनशिक्षाभ्यासशीलस्य वैयावृत्त्यं-शैक्षवैयावृत्त्यम् ५ ग्लानस्य रुग्णस्य रोगादिक्लेशयुक्तशरीरस्य वैयावृत्त्यं ग्लानवैयावृत्त्यम् ६ अनेकगणसमुदायः-कुलं तस्य वैयावृत्त्यं कुलवैयावृत्त्यम् ७ मुनिसमूहस्य वैयावृत्त्यं गणवैयावृत्त्यम् ८ संघस्य--साधु साध्वी श्रावक श्राविकारूपस्य चतुर्विधस्य संघस्य वैयावृत्त्यं संघ-

---

करने के लिए कहते हैं-निर्जरा रूप शुभव्यापारवाले को व्यावृत्त कहते हैं वैयावृत्यका भाव या कर्म वैयावृत्य कहलाता है, जिसका अभिप्राय है सेवा करना। वैयावृत्य के दस भेद हैं-(१) आचार्य की सेवा करना आचार्य वैयावृत्य है (२) उपाध्याय की सेवा करना उपाध्याय वैयावृत्य है (३) स्थविर अर्थात् वृद्ध मुनि की सेवा करना स्थविर वैयावृत्य है (४) ग्रहण-आसेवन रूप शिक्षा का जो अभ्यास कर रहा हो ऐसे नव दीक्षित मुनि की सेवा करना शैक्ष वैयावृत्य है (५) ग्लान-अर्थात् रोग ग्रस्त की सेवा करना ग्लान वैयावृत्य है (६) मास खमण आदि तपस्या करने वाले तपस्वी की सेवा करना तपस्वि वैयावृत्य है (७) साधर्मिक अर्थात् समान समाचारीवाले साधु की सेवा करना साधर्मिक वैयावृत्य है अनेक कुल के समूह को गण कहते हैं, कुल की सेवा करना कुल वैयावृत्य है (९) अनेक गण के अर्थात् मुनियों के

પ્રરૂપણા કરવા માટે કહીએ છીએ-નિર્જરા રૂપ શુભ વ્યાપારવાળાઓને વ્યાવૃત્ત કહે છે, વ્યાવૃત્તનો ભાવ અથવા કર્મ વૈયાવૃત્ય કહેવાય છે જેનો અર્થ એ થાય કે સેવા કરવી વૈયાવૃત્યના દશ ભેદ છે-(૧) આચાર્યની સેવા કરવી આચાર્ય વૈયાવૃત્ય છે (૨) ઉપાધ્યાયની સેવા કરવી ઉપાધ્યાય વૈયાવૃત્ય છે (૩) સ્થવિર અર્થાત્ વૃદ્ધ મુનિની સેવા કરવી સ્થવિર વૈયાવૃત્ય છે (૪) ગ્રહણ-આસેવન રૂપ શિક્ષણનો જે અભ્યાસ કરતો હોય એવા નવદીક્ષિત મુનિની સેવા કરવી ગ્લાનવૈયાવૃત્ય છે (૬) માસખમણ આદિ તપસ્યા કરનાર તપસ્વીની સેવા કરવી તપસ્વી વૈયાવૃત્ય છે. (૭) સાધર્મિક અર્થાત્ સમાન સમાચારીવાળા સાધુની સેવા કરવી સાધર્મિક વૈયાવૃત્ય છે. (૮) અનેક કુળના સમૂહને ગણ કહે છે કુળની સેવા કરવી કુળવૈયાવૃત્ય છે. (૯) અનેક ગણના

वैयावृत्यम् ९ एवम्–साधर्मिकस्य–समानाचारवतः साधो वैयावृत्यं साधर्मिक वैयावृत्यम् उच्यते १० इत्येवं दशविधं वैयावृत्यमवगन्तव्यम् वैयावृत्येन च समाधिप्राप्तिः-प्रवचने शङ्काद्यभावः–प्रवचन वात्सल्यप्राकट्यश्च भवतीति भावः ॥६५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः–पूर्वं तावत्–प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यादि षड्विधस्याऽभ्यन्तरतपसो यथाक्रमं दशविधप्रायश्चित्तस्य, सप्तविधविनयस्य च प्ररूपणं कृतम्, सम्प्रति–क्रमप्राप्तस्य वैयावृत्यस्य दशभेदान् आचार्योपाध्यायादि वैयावृत्यरूपान् प्ररूपयितुमाह–'वेयावच्चे दसविहे, आयरिय–उवज्झाय–थेर–तवस्सि–सेह–गिलाणकुल–गण–संघ–साहम्मिय भेयओ' इति। वैयावृत्यम् व्यावृत्तस्य–निर्जरादिशुभव्यापारप्रवृत्तस्य प्रवचनप्रयोजितक्रियाविशेषाऽनुष्ठानतत्परस्य भावः तथाविधपरिणामः–कर्म वा, वैयावृत्यम्, तच्च–

समूह की सेवा करना गण वैयावृत्य तप है (१०) संघ की अर्थात् साधु–साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ की सेवा करना संघ वैयावृत्य है। यह दस प्रकार का वैयावृत्य तप है। वैयावृत्य से समाधि की प्राप्ति होती है, प्रवचन संबन्धी शंका–कांक्षा आदि की निवृत्ति हो जाती है और प्रवचन वात्सल्य प्रकट होता है ॥६५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति–पहले प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य आदि छह प्रकार के आभ्यन्तर तप में से दस प्रकार के प्रायश्चित्तका तथा सात प्रकार के विनय का निरूपण किया गया, अब क्रमप्राप्त वैयावृत्य के आचार्य वैयावृत्य, उपाध्याय वैयावृत्य आदि दस भेद का प्ररूपण करते है।

जो निर्जरा आदि शुभव्यापार में प्रवृत्त है और शास्त्र प्रतिपादित क्रिया विशेष के अनुष्ठान में तत्पर है, उसका भाव या कर्म वैया-

અર્થાત્ મુનિઓના સમૂહની સેવા કરવી ગણવૈયાવૃત્ય છે. (૧૦) સંઘની અર્થાત્ સાધુ, સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકા રૂપ ચતુર્વિધસંઘની સેવા કરવી સંઘવૈયાવૃત્ય છે. આ દશ પ્રકારનું વૈયાવૃત્ય તપ છે. વૈયાવૃત્યથી સમાધિની પ્રાપ્તિ થાય છે, પ્રવચન સંબન્ધી શંકા–કાંક્ષા વગેરેની નિવૃત્તિ થઈ જાય છે અને પ્રવચનવાત્સલ્ય પ્રકટ થાય છે. ॥૬૫॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—આ અગાઉ, પ્રાયશ્ચિત્ત, વિનય, વૈયાવૃત્ય આદિ છ પ્રકારના આભ્યન્તર તપમાંથી દશ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તના તથા સાત પ્રકારના વિનયનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે ક્રમપ્રાપ્ત વૈયાવૃત્યના આચાર્યવૈયાવૃત્ય, ઉપાધ્યાય વૈયાવૃત્ય આદિ દશ ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ–

જે નિર્જરા આદિ શુભવ્યાપારમાં પ્રવૃત્ત છે અને શાસ્ત્રપ્રતિપાદિત ક્રિયા વિશેષના અનુષ્ઠાનમાં તત્પર છે, તેનો ભાવ અથવા કર્મ વૈયાવૃત્ય

यथायोगं क्षेत्र-वसति-प्रत्यवेक्षण भक्तपानवस्त्रपात्रौषधभैषजशरीरशुश्रूषादिरूप मवगन्तव्यम्, तत् खलु-वैयावृत्त्यम्-आचार्योपाध्यायस्थविरतपस्विशैक्ष-ग्लानकुलगणसंघसाधर्मिकभेदतो दशविधं भवति। तत्राऽऽचरति आचारयति वा धर्मादिक मित्याचार्य स्तस्य वैयावृत्त्यम्-आचार्यवैयावृत्त्यम् १ उपाध्यायस्य वैयावृत्त्यम् उपाध्यायवैयावृत्त्यम्-२ स्थविरस्य वयसा पर्यायेण श्रुतेन वृद्धस्य वैयावृत्त्यं स्थविरवैयावृत्त्यम् ३ चतुर्थषष्ठाऽष्टमभक्तादिविविधतपकारक स्तपस्वी तस्य वैयावृत्त्यं तपस्विवैयावृत्त्यम् ४ एकदिनादारभ्य षण्मासाऽवधि दीक्षायुक्तस्य नवदीक्षितस्य शैक्षस्य वैयावृत्त्यं शैक्षवैयावृत्त्यम् ५ ग्लानस्य-रुग्णस्य व्याध्यभि-

वृत्य कहलाता है। उसे यथायोग्य क्षेत्र-वसति प्रत्यवेक्षण, भक्त-पान, वस्त्र, पात्र, औषध भेषज, शरीर शुश्रूषा आदिरूप समझना चाहिये, अर्थात् इन सब के द्वारा सेवा करना वैयावृत्य है। सेव्य के भेद से वैयावृत्य के दस भेद हैं (१) आचार्य (२) उपाध्याय (३) स्थविर (४) शैक्ष (५) ग्लान (६) तपस्वी (७) साधर्मिक (८) कुल (९) गण १० संघ का वैयावृत्य। जो स्वयं पांच आचार रूप धर्म का पालन करता है और दूसरों से पालन करवाता है वह आचार्य कहलाता है, उस के वैयावृत्य को आचार्य वैयावृत्य कहते हैं। (२) उपाध्याय की सेवा करना उपाध्याय वैयावृत्य है। (३) स्थविर अर्थात् वय दीक्षा-पर्याय और श्रुतसे जो वृद्ध है उसकी सेवा करना स्थविर वैयावृत्य हैं। (४) एक दिन से लेकर छहमास तक का दीक्षित नव दीक्षित या शैक्ष कहलाता हैं। उसका वैयावृत्य शैक्षवैयावृत्य है। (५) ग्लान अर्थात्

કહેવાય છે. તેને યથાયોગ્ય ક્ષેત્ર-વસતિ-પ્રત્યવેક્ષણ, ભક્ત-પાન, વસ્ત્ર, પાત્ર, ઔષધ, ભેષજ, શરીર શુશ્રૂષા આદિ રૂપ સમજવું જોઈએ અર્થાત્ આ બધા વડે સેવા કરવી વૈયાવૃત્ય છે. સેવ્યના ભેદથી વૈયાવૃત્યના દશ ભેદ છે-(૧) આચાર્ય (૨) ઉપાધ્યાય (૩) સ્થવિર (૪) શૈક્ષ (૫) ગ્લાન (૬) તપસ્વી (૭) સાધર્મિક (૮) કુળ (૯) ગણ અને (૧૦) સંઘનું વૈયાવૃત્ય જે સ્વયં પાંચ આચાર રૂપ ધર્મનું પાલન કરે છે અને બીજાઓ મારફતે પાલન કરાવે છે આચાર્ય કહેવાય છે. તેના વૈયાવૃત્યને આચાર્યવૈયાવૃત્ય કહે છે. (૨) ઉપાધ્યાયની સેવા કરવી ઉપાધ્યાયવૈયાવૃત્ય છે. (૩) સ્થવિર અર્થાત્ વય, દીક્ષાપર્યાય તથા શ્રુતથી જે વૃદ્ધ છે તેમની સેવા કરવી સ્થવિર વૈયાવૃત્ય છે. (૪) એક દિવસથી લઈને છ માસ સુધીના દીક્ષિત નવદીક્ષિત અથવા શૈક્ષ કહેવાય છે તેનું વૈયાવૃત્ય શૈક્ષવૈયાવૃત્ય છે. (૫) ગ્લાન અર્થાત્ રોગી, જે

भूतस्य श्रमणस्य वैयावृत्यं ग्लानवैयावृत्यम् ६ अनेकगणसमुदायः कुलम् तस्य वैयावृत्यम् कुलवैयावृत्यम् ७ अनेक साधुसमुदायो गणः तस्य वैयावृत्यं गणवैयावृत्यम् ८ संघस्य साधु साध्वी श्रावक श्राविकारूपस्य चतुर्विधस्य वैयावृत्यं संघवैयावृत्यम् ९ साधर्मिकाः-समानाचारवन्तः तेषां-ज्ञानदर्शनादि पौरुषेय शक्तिभि मोक्षसाधकानां मूलोत्तरगुणसम्पान्नानां वैयावृत्यं साधर्मिकवैयावृत्यम् १०। तथाचैतेषा माचार्यादीनाम् आहारपानवस्त्रपात्रप्रतिश्रयपीठफलकशय्यासंस्तारादिभिर्धर्मसाधनभूतैः कान्तारादि विषमस्थानगर्तकूपकण्टकादियात्

रुग्ण, जो किसी व्याधि से पीडित हो उसका वैयावृत्य ग्लान वैयावृत्य कहलाता है। (६) उपवास बेला, तेला, आदि विविध प्रकार का तपश्चरण करने वाला तपस्वी कहलाता है। उसका वैयावृत्य तपस्वि वैयावृत्य है। (७) साधर्मिक अर्थात् समान समाचारीवाले साधु की सेवा करना साधर्मिक वैयावृत्य है। (८) कुल अनेक साधुओं के समूह को कुल कहते हैं अनेक कुल के समूह को गण कहते हैं अनेक गण के समूह को संघ कहते हैं कुल की सेवा करना कुल वैयावृत्य है (९) गण-अनेक गणके अर्थात् मुनियों के समूह की सेवा करना गण-वैयावृत्य है (१०) संघ-साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ की सेवा करना संघ वैयावृत्य है।

पूर्वोक्त आचार्य आदि की आहार-पानी से, वस्त्र-पात्र से, उपाश्रय, पीठ, फलक, शय्या एवं संस्तारक आदि मोक्ष के साधनों से सेवा करना, कान्तार आदि विषम स्थानों से, गड्ढा, कूप, कंटक आदि से युक्त

व्याधिथी पीडित होय, वैयावृत्य ग्लानवैयावृत्य कहेवाय छे. (६) उपवास, छठ, अठम आदि विविध प्रकारनुं तपश्चरण करनार तपस्वी कहेवाय छे तेनुं वैयावृत्य तपस्विवैयावृत्य छे. (७) साधर्मिक+अर्थात् समान समाचारीवाळा साधुनी सेवा करवी साधर्मिकवैयावृत्य छे. (८) कुळ-अनेक साधुओना समूहने कुळ कहे छे, अनेक कुळना समूहने गण कहे छे. अनेक गणना समूहने संघ कहे छे कुळनी सेवा करवी कुळवैयावृत्य छे. (९) गण-अनेक गणनी अर्थात् मुनिओना समूहनी सेवा करवी गणवैयावृत्य छे. (१०) संघ-साधु-साध्वी, श्रावक अने श्राविका रूप चतुर्विध संघनी सेवा करवी संघवैयावृत्य छे.

पूर्वोक्त आचार्य आदिनी, आहार-पाणीथी, वस्त्र-पात्रथी, उपाश्रय, पीठ, फळक, शय्या अने संथारा वगेरे मोक्षना साधनोथी सेवा करवी कान्तार आदि विषम स्थानोथी, खाडो, कूवो, कंटक आदिथी युक्त स्थळोथी

स्थल ज्वराऽतीसार-कासश्वासाद्युपसर्गेषु शुश्रूषणम् औषधभैषज्यकरणम् अभ्युद्धरणं परिरक्षणादिकं वैयावृत्यमुच्यते। उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ भगवती सूत्रे २५ शतके ७ उद्देशके ८०२-सूत्रे 'वेयावच्चे दसविहे पण्णत्ते तं जहा-आयरिय वेयावच्चे, उवज्झायवेयावच्चे, सेह वेयावच्चे, गिलाणवेयावच्चे, तवस्सिवेयावच्चे, थेरवेयावच्चे, साहम्मिवेयावच्चे, कुलवेयावच्चे, गणवेयावच्चे, संघवेयावच्चे, इति'। वैयावृत्यं दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-आचार्यवैयावृत्यम् १ उपाध्याय वैयावृत्यम् २ शैक्षवैयावृत्यम् ३ ग्लानवैयावृत्यम् ४ तपस्विवैयावृत्यम् ५ स्थविरवैयावृत्यम् ६ साधर्मिक वैयावृत्यम् ७ कुलवैयावृत्यम् ८ गणवैयावृत्यम् ९ संघवैयावृत्यम् १० इति ॥६५॥

मूलम्—सज्झाए पंचविहे, वायणा-पुच्छणा-परियट्टणाऽणुप्पेहा-धम्मकहा भेयओ ॥६६॥

छाया—'स्वाध्यायः पञ्चविधः, वाचना-प्रच्छना-परिवर्तनाऽनुप्रेक्षा-धर्मकथा, भेदतः' ॥६६॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे-प्रायश्चित्तादि षड्विधाऽभ्यन्तरतपसो यथाक्रमं तृतीयस्य वैयावृत्यस्याऽऽचार्यो-पाध्यायादि दशविधस्य प्ररूपणं विहितम्, सम्प्रति-क्रमागतस्य चतुर्थस्य स्वाध्यायस्य वाचना-प्रच्छनादि पञ्चभेदान्

स्थल से, ज्वर, अतिसार, खांसी, श्वास आदि का कष्ट होने पर सेवा करना-औषध-भेषज लाकर देना इत्यादि वैयावृत्य कहलाता है ॥६५॥

'सज्झाए पंचविहे' इत्यादि

सूत्रार्थ—स्वाध्यायतप पांच प्रकार का है-(१) वाचना (२) पृच्छना (३) परिवर्तना (४) अनुप्रेक्षा और (५) धर्मकथा ॥ ६६ ॥

तत्वार्थदीपिका-पूर्वसूत्र में प्रायश्चित्त आदि छह प्रकार के आभ्यन्तर तप में से तीसरे वैयावृत्य तपके दस भेदों-आचार्य वैयावृत्य, उपा-

---

બચાવવા, જ્વર, અતિસાર, ઉધરસ શ્વાસ વગેરેનું કષ્ટ હોય ત્યારે સેવા કરવી-ઔષધ-ભેષજ લાવીને આપવા વગેરે વૈયાવૃત્ય કહેવાય છે. ॥૬૫॥

'સજ્ઝાए पंचविहे' ઈત્યાદિ।

સૂત્રાર્થ-સ્વાધ્યાય તપ પાંચ પ્રકારનું છે-(૧) વાચના (૨) પૃચ્છના (૩) પરિવર્ત્તના (૪) અનુપ્રેક્ષા અને (૫) ધર્મકથા ॥૬૬॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વ સૂત્રમાં પ્રાયશ્ચિત્ત આદિ છ પ્રકારના આભ્યન્તર તપમાંથી ત્રીજા વૈયાવૃત્યતપના દશ ભેદો-આચાર્યવૈયાવૃત્ય, ઉપાધ્યાયવૈયાવૃત્ય

प्ररूपयितुमाह–'सज्झाए पंचविहे' इत्यादि। स्वाध्यायः–सु–सुष्ठु आ–अद्म-र्यादयाऽस्वाध्यायपरिहारेण पौरुष्याद्यपेक्षयाऽध्यायः–अध्ययनं सूत्रमूलपठनं स्वाध्यायः, स पञ्चविधो भवति, तद्यथा–वाचना १ प्रच्छना २ परिवर्तना ३ ऽनुप्रेक्षा ४ धर्मकथा ५ चेति। तत्र–निरवद्य सूत्रार्थ तदुभयस्याऽऽदान–प्रदान-रूपा वाचना १ सन्देहनिवारणाय निश्चितार्थदार्ढ्याय वा शास्त्रस्यार्थं जानतोऽपि गुरुं प्रति पृच्छा–प्रच्छनं प्रच्छना २ अधीतस्य सूत्रादेः पुनः पुनरावृत्तिकरणं–गुणनं परिवर्तना ३ अधिगतार्थस्य-ज्ञातार्थस्य सूत्रस्य मनसा चिन्तनम् अनुप्रेक्षा ४ अहिंसा-दिधर्मस्य प्ररूपणं–धर्मकथा ५ इत्येवं पञ्चविधः खलु स्वाध्यायोऽवगन्तव्य ॥६६॥

ध्यायवैयावृत्य आदि, का प्ररूपण किया गया अब क्रमागत चौथे स्वाध्याय तप के वाचना पृच्छना आदि पांच भेदों का प्ररूपण करते हैं।

मर्यादापूर्वक अर्थात् असज्झाय को टालकर पौरुषी आदि का ख्याल रखते हुए अध्याय–अध्ययन अर्थात् मूलपाठ पढाना स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय पांच प्रकार का है–वाचना, पृच्छना, परिवर्तना अनुप्रेक्षा और धर्मकथा। इनका स्वरूप इस प्रकार है–(१) निर्दोष सूत्र, अर्थ और सूत्रार्थ दोनों का आदान प्रदान करना वाचना है। (२) संदेह का निवारण करने के लिए अथवा निश्चित अर्थ की दृढता के लिए शास्त्र के अर्थ को जानते हुए भी गुरु के समक्ष प्रश्न करना पृच्छना है। (३) पढे हुए सूत्र आदि की वार-वार आवृत्ति करना, उसे गुनना परिवर्त्तना है। (४) जिसका अर्थ जान लिया हो उस सूत्र

આદિનું પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે ક્રમાગત ચોથા સ્વાધ્યાય તપના વાચના, પૃચ્છના આદિ પાંચ ભેદોનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ–

મર્યાદાપૂર્વક અર્થાત્ અસજ્ઝાયને ટાળીને, પોરસી વગેરેનો ખ્યાલ રાખતા થકા અધ્યાય–અધ્યયન કરવું અર્થાત્ મૂળપાઠ ભણવો, સ્વાધ્યાય કહેવાય છે. સ્વાધ્યાય પાંચ પ્રકારના છે–વાચના, પૃચ્છના, પરિવર્ત્તના, અનુ-પ્રેક્ષા અને ધર્મકથા એમનું સ્વરૂપ આ પ્રકારે છે–(૧) નિર્દોષસૂત્ર, અર્થ અને સૂત્રાર્થ બંનેનું આદાન–પ્રદાન કરવું વાચના છે. (૨) સન્દેહનું નિવારણ કરવા માટે અથવા નિશ્ચિત અર્થની દઢતા માટે શાસ્ત્રના અર્થને જાણતા હોવા છતાં પણ ગુરૂ સમક્ષ પ્રશ્ન કરવો પૃચ્છના છે. (૩) ભણી ગયેલા સૂત્ર આદિની વારંવાર આવૃત્તિ કરવી, તેને ફરી ફરીવાર જોઈ જવું પરિવર્ત્તના છે. (૪) જેનો અર્થ જાણી લીધો હોય તે સૂત્રનું મનથી ચિન્તન કરવું

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः--'पूर्वं तावद् यथाक्रमं षड्विधाऽभ्यन्तरतपसः प्रायश्चित्तस्य-विनयस्य-वैयावृत्यस्य च प्ररूपणं कृतम्, सम्प्रति-क्रमप्राप्तस्य स्वाध्यायस्य चतुर्थाभ्यन्तरतपसो वाचनादि पञ्चभेदान् प्ररूपयितुमाह-'सज्झाए पंचविहे, वायणापुच्छणापरियट्टणाअणुप्पेहा-धम्मकहाभेयओ' इति। स्वाध्यायः-सुष्ठु मर्यादया कालवेलापरिहारेण पौरुष्याद्यपेक्षया वाऽध्यायः-मूलसूत्रपठनम्-स' पञ्चविधो वर्तते। तद्यथा-वाचना प्रच्छना परिवर्तनाऽनुप्रेक्षा धर्मकथा चेत्येवं परिसंख्यातः स्वाध्यायोऽवगन्तव्यः, तत्र-शिष्याणा मागमार्थाध्यापनरूपा वाचना १ कालिकस्यो-त्कालिकस्याऽऽलापप्रदानं वा-वाचना २ सन्देहविनाशाय निश्चितार्थदार्ढ्यार्थं वा सूत्रार्थयोराचार्य-

का मन से चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। (५) अहिंसा आदि धर्म की प्ररूपणा करना धर्म कथा है। यह पांच प्रकार का स्वाध्याय जानना चाहिए ॥६६।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति- छह प्रकार के आभ्यन्तर तप हैं से प्रायश्चित्त, विनय और वैयावृत्य का निरूपण किया जा चुका, अब चौथे आभ्यन्तर तप स्वाध्याय के वाचना आदि पांच भेदों की प्ररूपणा करते हैं-

मर्यादापूर्वक अर्थात् असज्झाय काल को टालकर या पौरुषी आदि का ध्यान रखकर मूलसूत्रका पठन स्वाध्याय कहलाता है। उसके पांच भेद हैं (१) वाचना (२) पृच्छना (३) परिवर्तना(४) अनुप्रेक्षा और (५) धर्मकथा शिष्यों को आगम का अर्थ पढाना वाचना है या कालिक और उत्कालिक के आलापों का प्रदान करना वाचना स्वाध्याय कहलाता है। संशय का निवारण करने के लिए या निश्चित

અનુપ્રેક્ષા છે. (૫) અહિંસા આદિ ધર્મની પ્રરૂપણા કરવી ધર્મકથા છે. આ પાંચ પ્રકારના સ્વાધ્યાય જાણવા જોઈએ. ॥૬૬॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—છ પ્રકારના આભ્યન્તર તપમાંથી પ્રાયશ્ચિત્ત, વિનય અને વૈયાવૃત્યનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે ચોથા આભ્યન્તર તપ સ્વાધ્યાયના વાચના આદિ પાંચ ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

મર્યાદાપૂર્વક અર્થાત્ અસજ્ઝાયકાળ વગેરેને ટાળી દઈને અથવા પોરસી આદિનું ધ્યાન રાખીને મૂળસૂત્રનું પઠન સ્વાધ્યાય કહેવાય છે-તેના પાંચ ભેદ છે-(૧) વાચના (૨) પૃચ્છના (૩) પરિવર્ત્તના (૪) અનુપ્રેક્ષા (૫) ધર્મકથા શિષ્યોને આગમનો અર્થ ભણાવવો વાચના છે અથવા કાલિક અને ઉત્કાલિકના આલાપોનું પ્રદાન કરવું વાચના સ્વાધ્યાય કહેવાય છે. સંશયનું નિવારણ કરવા માટે અથવા નિશ્ચિત અર્થની દઢતા માટે સૂત્ર અથવા અર્થના વિષયમાં આચાર્યને પ્રશ્ન પૂછવો પૃચ્છના છે. ભણી ગયેલા સૂત્ર અને અર્થનું

स्पति प्रश्नः-प्रच्छना-२ अधीत सूत्रार्थयोः पुनः पुनः पठनम् परिवर्तना-३ विदितार्थस्य मनसा चिन्तनम्-अनुप्रेक्षा ४ श्रुतचारित्ररूपधर्मस्योपदेशो धर्मकथा५ उक्तञ्च भगवती सूत्रे २५ शतके ७ उद्देशके ८०२-सूत्रे-'सज्झाए पंचविहे पण्णत्ते वायणा-पडिपुच्छणा-परियट्टणा अणुप्पेहा-धम्मकहा' इति। स्वाध्यायः पञ्चविधः, प्रज्ञप्तः, तद्यथा-वाचना १ प्रतिप्रच्छना २ परिवर्तनम् ३ अनुप्रेक्षा ४ धर्मकथा ५ इति। एवम्-उत्तराध्यायेऽप्युक्तम् एवञ्च-वाचनादयः पञ्च तावत् स्वाध्यायपदेन ग्रहीतव्याः ॥६६॥

मूलम्—एगत्त चित्तावट्ठाणं झाणं ॥६७॥

छाया—'एकत्र चित्तावस्थानं ध्यानम्' ॥६७॥

तत्त्वार्थदीपिका—'पूर्वं तावत् षड्विधेषु प्रायश्चित्ताद्याभ्यन्तरतपःसु पञ्चानां प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायानां यथाक्रमं प्ररूपणं विहितम्,

---

अर्थ की दृढता के लिए सूत्र या अर्थ के विषय में आचार्य से प्रश्न करना प्रच्छना है। पठित सूत्र एवं अर्थ का पुनःपुनः पठन करना परिवर्तना है। ज्ञात अर्थ का बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। श्रुत एवं चारित्र रूप धर्म का उपदेश देना धर्मकथा है। भगवतीसूत्र के २५ वे शतक के ७वे उद्देशक के ८०२ सूत्र में कहा है-'स्वाध्याय पांच प्रकार का कहा गया है-वाचना, प्रतिप्रच्छना, परिवर्त्तना, अनुप्रेक्षा एवं धर्म कथा। इसी प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र में भी कहा गया है। इस प्रकार स्वाध्याय शब्द से वाचना आदि पांचों को ग्रहण करना चाहिए ॥६६॥

'एगत्त चित्तावट्ठाणं' इत्यादि-

सूत्रार्थ--एक जगह चित्त का स्थिर होना ध्यान है ॥६७॥

तत्त्वार्थदीपिका-पहले छह प्रकार के आभ्यन्तर तपों में से प्रायश्चित्त

પુનઃ પુનઃ પઠન કરવું પરિવર્ત્તના છે. જાણેલા અર્થનું વારંવાર ચિન્તન કરવું અનુપ્રેક્ષા છે અને શ્રુત અને ચારિત્ર રૂપ ધર્મનો ઉપદેશ આપવો ધર્મકથા છે. ભગવતી સૂત્રના ૨૫માં શતકના ૭માં ઉદ્દેશકના ૮૦૨ સૂત્રમાં કહ્યું છે-સ્વાધ્યાય પાંચ પ્રકારના કહેવામાં આવ્યા છે-વાચના પ્રતિપૃચ્છના, પરિવર્ત્તના, અનુપ્રેક્ષા અને ધર્મકથા આવી જ રીતે ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમાં પણ કહેવામાં આવ્યું છે. આમ સ્વાધ્યાય શબ્દથી વાચના આદિ પાંચેયનું ગ્રહણ કરવું જોઈએ. ॥૬૬॥

'एगत्तचित्तावट्ठाणं झाणं' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-એક જગ્યાએ ચિત્તનું સ્થિર થવું ધ્યાન છે. ॥૬૭॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા છ પ્રકારના આભ્યન્તર તપોમાંથી પ્રાય-

सम्प्रति-क्रमप्राप्तं ध्यानाख्यमाभ्यन्तरतपः प्ररूपयितुमाह-'एगत्तचित्ता-वट्टाणं झाणं' इति। ध्यानम्-ध्यातिर्ध्यानम्, परिणामस्थैर्यम् अन्तर्मुहूर्त्तमात्रकाल मेकाग्रचित्तताऽध्यवसान मित्यर्थः नानार्थावलम्बनेन परिस्पन्दवतश्चित्तस्याऽन्याऽशेषविषयेभ्यो व्यावर्त्य-एकत्रैव विषये नियमतः स्थापनम् अन्यतोऽन्तःकरणवृत्तिनिरोधो ध्यानमितिभावः। तच्च-ध्यानं चतुर्विधम्, आर्तरौद्र-धर्म-शुक्ल भेदात्,। तदत्र समाहितचित्तस्याऽऽर्त-रौद्र ध्याने वर्जयित्वा धर्म-शुक्लरूपं ध्यानद्वयं ध्यानशब्देन ग्राह्यम्। उक्तंच-उत्तराध्ययने त्रिंशत्तमेऽध्ययने पञ्चत्रिंशत्तमगाथायाम्-

विनय वैयावृत्य और स्वाध्याय का क्रम से निरूपण किया गया है, अब क्रमागत ध्यान नामक आभ्यन्तर तप का प्ररूपण करने के लिए कहते हैं-

परिणाम की स्थिरता ध्यान है। अभिप्राय यह है कि अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त चित्त का एकाग्र रहना ध्यान कहलाता है। यह चित्त नाना अर्थों का अवलम्बन करता हुआ चंचल रहता है, अतः इसे अन्य समस्त विषयों से हटाकर किसी एक ही विषय में लगा देना-और सब तरफ से चित्तवृत्ति का निरोध कर देना ध्यान है।

ध्यान चार प्रकार का है-आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान, यहां आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को छोडकर धर्मध्यान और शुक्लध्यान ये दो ध्यान ही समझना चाहिए, क्योंकि यहां मोक्षमार्ग का प्रकरण है और आर्त्तध्यान तथा रौद्रध्यान मोक्षोपयोगी

श्चित्त, विनय, वैयावृत्य तप अने स्वाध्यायनुं क्रमथी निरूपण करवामां आव्युं हवे क्रमागत ध्यान नामक आभ्यन्तर तपनुं प्ररूपण करवा माटे कहीએ छीએ-

परिणामनी स्थिरता ध्यान छे. अभिप्राय એ छे के अन्तर्मुहूर्त्त काળ पर्यन्त चित्तनुं એकाग्र रहेवुं ध्यान कहेवाय छे. आ चित्त जाणेला अर्थोनुं अवलम्बन करतुं थकुं चंचળ रहे छे, आथी तेने बीजा बधां विषयोथी मुक्त करीने कोઈ એक ज विषयमां परोवी देवुं-अने चारे बाजुએथी चित्त वृत्तिनो निरोध करवो ध्यान छे.

ध्यान चार प्रकारना छे-आर्त्तध्यान रौद्रध्यान, धर्मध्यान अने शुक्लध्यान अहीं आर्त्तध्यान अने रौद्रध्यानने छोडी दઈ धर्मध्यान अने शुक्लध्यान એ बे ध्यान ज समजवाना छे कारण के आ मोक्षमार्गनुं प्रकरण चाली रह्युं छे ज्यारे आर्त्तध्यान तथा रौद्रध्यान मोक्षोपयोगी नथी पण

'अट्ट-रुद्दाणि वज्जित्ता-झाएज्जा सुसमाहिए ।
धम्म-सुक्काइं झाणं तं तु बुहावए' ॥१॥
'आर्तरौद्रे वर्जयित्वा-ध्यायेत सुसमाहितः ।
धर्म-शुक्ले ध्याने-ध्यानं तत्तु बुधा वदन्ति' ॥१॥ इति ॥६७॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वसूत्रे-षड्विधाभ्यन्तरतपसः क्रमप्राप्तस्य स्वाध्यायस्य प्ररूपणं कृतम्, सम्प्रति-पञ्चमस्याऽभ्यन्तरतपसो ध्यानस्य प्ररूपणं कर्तुमाह-'एगग्गचिन्तावट्ठाणं झाणं' इति । एकस्मिन् एव ध्येयवस्तुनि चित्तावस्थानम्, अन्यविषयेभ्यो व्यावर्तनपूर्वकम्-एकाग्रतया चित्तस्य व्यवस्थापनं-स्थिरत्तापादनं निर्वातस्थानस्थितस्थिरदीपशिखावत् (तत्) । एवञ्च-कावलम्बनं निश्चलं स्थिरता युक्तमध्यवसानं छद्मस्थविषयध्यानमुच्यते । केवलिनान्तु

नहीं वरन् उसके बाधक हैं। उत्तराध्ययन सूत्र के तीसवें अध्ययन की पच्चीसवीं गाथा में कहा है –

'समाधिमान् पुरुष आर्त्त और रौद्र ध्यानों का परित्याग करके धर्मध्यान और शुक्लध्यान ध्यावे । ज्ञानी पुरुष इसी को ध्यान कहते हैं ।६७।

तत्वार्थनिर्युक्ति--पूर्वसूत्र में छह आभ्यन्तर तपों में से क्रमप्राप्त स्वाध्याय का प्ररूपण किया गया, अब पांचवें आभ्यन्तर तप ध्यान की प्ररूपण करने के लिए कहते हैं—

किसी एक ही ध्येय वस्तु में चित्त का स्थिर होना अर्थात् वायु रहित स्थान में स्थित दीपक की शिखा के समान चित्त का एकाग्र रूप में स्थिर हो जाना ध्यान कहलाता है। इस प्रकार एक वस्तु का अवलम्बन करने वाला, निश्चल, स्थिरता से युक्त छद्मस्थ विषयक अध्यव-

તેના અવરોધક છે. ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના ત્રીસમાં અધ્યયનની પચ્ચીસમી ગાથામાં કહ્યું છે–સમાધિમાન્ પુરૂષ આર્ત્ત અને રૌદ્ર ધ્યાનોનો પરિત્યાગ કરીને ધર્મધ્યાન અને શુકલધ્યાન ધ્યાવે જ્ઞાની પુરૂષ આને જ ધ્યાન કહે છે. ॥૬૭॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પૂર્વસૂત્રમાં છ આભ્યન્તર તપોમાંથી ક્રમપ્રાપ્ત સ્વાધ્યાયનું પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે પાંચમાં આભ્યન્તર તપ ધ્યાનની પ્રરૂપણા કરવા માટે કહીએ છીએ–

કોઈ એક જ લક્ષ્ય વસ્તુમાં ચિત્તનું સ્થિર થવું અર્થાત્ વાયુરહિત સ્થાનમાં રહેલા દીવાની જ્યોતની સમાન ચિત્તનું એકાગ્ર રૂપમાં સ્થિર થઇ જવું ધ્યાન કહેવાય છે. આ રીતે એક વસ્તુનું અવલમ્બન કરનાર, નિશ્ચલ, સ્થિરતાથી યુક્ત છદ્મસ્થ વિષયક અધ્યવસાન ધ્યાન સમજવું જોઇએ. જેને

मनसोऽभावाद् वाक्काययोगनिरोध एव ध्यानमवगन्तव्यम् । प्राप्त केवलज्ञानस्य मनोव्यापारो न सम्भवति सकलकरणसमुदायनिरपेक्षत्वात् । तच्च ध्यानम् आर्त-रौद्र-धर्म-शुक्लभेदाद् चतुर्विधम् भवति, तदत्राऽऽर्त-रौद्रे वर्जयित्वा धर्म-शुक्लरूपं ज्ञेयम् । तत् खलु-ध्यानं जघन्येन-एकं समयम्, उत्कृष्टेनाऽन्तर्मुहूर्तं मात्रम्, मुहूर्तात्परतो न भवति, मोहनीय कर्माऽनुभावात्-संक्लेशाद्वा । उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ भगवती सूत्रे २५ शतके ६ उद्देशके ७०७ सूत्रे पुलाकादि विषये' 'केवइयं कालं अवट्ठिय परिणामे होज्जा ? गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतो मुहुत्तं' कियन्तं कालम् अवस्थितपरिणामो भवति ?

साथ ध्यान समझना चाहिए। केवली मनन व्यापार से रहित होते हैं अतएव उनकी अपेक्षा वचन और काय योग का निरोध ही समझना चाहिए। जिसे केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है उसमें मनोव्यापार नहीं होता क्योंकि वह समस्त कारणों से निरपेक्ष होता है।

ध्यान चार प्रकार का है—आर्त्तध्यान रौद्रध्यान धर्मध्यान और शुक्लध्यान आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को छोडकर यहां धर्म और शुक्लध्यानको ही तप में परिपगणित करना चाहिए, क्योंकि यही दो ध्यान मोक्षसाधना में उपयोगी होते हैं :—आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं।

ध्यान का काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त है। इससे अधिक समय तक मोहनीय कर्म के अनुभाव सेअथ वा संक्लेश के कारण ध्यान स्थिर नहीं रह सकता भगवती सूत्र के पच्चीसवें शतक के छठे उद्देशक के ७०७ वें सूत्र में पुलाक आदि के विषय में कहा है—

प्रश्न— भगवन् ! कितने काल तक स्थिर परिणाम वाला रहता है ?

કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ જાય છે તેમનામાં મનોવ્યાપાર હોતો નથી કારણ કે તે સમસ્ત કરણોથી નિરપેક્ષ હોય છે.

ધ્યાન ચાર પ્રકારનું છે—આર્ત્તધ્યાન, રૌદ્રધ્યાન, ધર્મધ્યાન અને શુકલધ્યાન આર્ત્તધ્યાન અને રૌદ્ર ધ્યાનને છોડીને અહીં ધર્મ અને શુકલ ધ્યાનને જ તપમાં પરિગણિત કરવા જોઈએ કારણ કે આ જ બે ધ્યાન મોક્ષ સાધનામાં ઉપયોગી થાય છે—આર્ત્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાન નહીં.

ધ્યાનનો કાળ જઘન્ય એક સમય અને ઉત્કૃષ્ટ અન્તર્મુહૂર્ત્ત છે. આનાથી વધુ સમય સુધી મોહનીય કર્મના અનુભાવથી અથવા સંકલેશના કારણે ધ્યાનમાં સ્થિરતા રહી શકતી નથી. ભગવતી સૂત્રના પચ્ચીસમાં શતકના છઠા ઉદ્દેશકના ૭૦૭માં સૂત્રમાં પુલાક વગેરેના વિષયમાં કહ્યું છે—

પ્રશ્ન— ભગવન્ ! કેટલા કાળ સુધી સ્થિર પરિણામવાળા રહે છે ?

गौतम ! जघन्येन एकं समयम्, उत्कृष्टेन अन्तर्मुहूर्तम् इति। स्थानाङ्गवृत्तौ ४ स्थाने प्रथमोद्देशके २४७ सूत्रे चोक्तम्—

'अंतोमुहुत्तमित्तं चित्तावट्ठाणमेगवत्थुम्मि।
छउमत्थाणं झाणं जोगनिरोहो जिणाणंतु' ॥१॥

'अन्तर्मुहूर्तमात्रं चित्ताऽवस्थानमेकवस्तुनि।
छद्मस्थानां ध्यानं योगनिरोधो जिनानान्तु ॥१॥ इति ६७॥

मूलम्—तं च चउव्विहं, अट्टरोद्दधम्मसुक्कमेयओ ॥६८॥

छाया—'तच्च चतुर्विधम्, आर्त-रौद्र-धर्म-शुक्ल भेदतः ॥६८।

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वसूत्रे-मोक्ष साधन सम्यक्त्वादि प्रधानतया ध्यानस्वरूपं प्ररूपितम्, सम्प्रति-तस्य ध्यानस्य चतुर्भेदान् प्रतिपादयितुमाह-'तच्चउव्विहं अट्ट-रोद्द-धम्म सुक्कमेयओ' इति। तत् खलु पूर्वोक्तस्वरूपं ध्यानं चतुर्विधं

उत्तर-गौतम ! जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक स्थानांग सूत्र की टीका में, चौथे स्थान के प्रथम उद्देशक में कहा है-

छद्मस्थों के चित्त की स्थिरता एक वस्तु में अन्तर्मुहूर्त्त तक हो सकती है। वह चित्त स्थिरता ही ध्यान है। केवली के योगों का निरोध हो जाना ध्यान कहलाता है ॥६७॥

'तं च चउव्विहं' इत्यादि

सूत्रार्थ-ध्यान चार प्रकार का है-आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल ।६८।

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्र में मोक्ष के सम्यक्त्व आदि साधनों में प्रधान होने के कारण ध्यान के स्वरूप का प्ररूपण किया गया, अब ध्यान के चार भेदों की प्ररूपणा करते हैं--

---

ઉત્તર—ગૌતમ ! જઘન્ય એક સમય, ઉત્કૃષ્ટ અન્તર્મુહૂર્ત્ત સુધી. સ્થાનાંગસૂત્રની ટીકામાં ચોથા સ્થાનના પ્રથમ ઉદ્દેશકમાં કહ્યું છે-

છદ્મસ્થોના ચિત્તની સ્થિરતા એક વસ્તુમાં અન્તર્મુહૂર્ત્ત સુધી રહી શકે છે. આ ચિત્ત સ્થિરતા જ ધ્યાન છે. કેવળીના યોગોનો નિરોધ થઇ જવો ધ્યાન કહેવાય છે. ॥૬૭॥

'तं च चउव्विहं' ઇત્યાદિ।

સૂત્રાર્થ-ધ્યાન ચાર પ્રકારનું છે-આર્ત્ત, રૌદ્ર, ધર્મ અને શુકલ. ॥૬૮॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં મોક્ષના સમ્યક્ત્વ આદિ સાધનોમાં, મુખ્ય હોવાના કારણે, ધ્યાનના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે ધ્યાનના ચાર ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

भवति, आर्त्त-रौद्र-धर्म-शुक्ल भेदतः। तथा च-आर्तध्यानम् १ रौद्रध्यानम् २ धर्मध्यानम् ३ शुक्लध्यानञ्चे ४ ति। तत्र-ऋतं दुःखम्, अर्दन-मर्तिवा तत्र भवम् आर्तम्, तद्रूपं ध्यानम्-आर्तध्यानम् उच्यते १ रुद्रः-क्रूराशयः तस्य कर्म, तत्र भवं वा रौद्रम् तद्रूपं ध्यानं-रौद्रध्यानमुच्यते २ पूर्वोक्तस्वरूपाद् धर्मादनपेतं (धर्म्यम्) धर्मध्यान मुच्यते, तच्च धर्मध्यानं परंपरया मोक्षहेतुर्भवति, गौणतया मोक्षसाधन मुपचर्यते, शुक्लध्यानं पुनः साक्षात् तद्भवे मोक्षकारणं भवति, । उपशमक श्रेण्यपेक्षयातु-शुक्लध्यानं तृतीये भवे मोक्षदायकं भवति तच्च शुक्लध्यानं शुचिगुणयोगात् शुक्लं व्यपदिश्यते ॥६८॥

तत्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावत्-षष्ठाऽभ्यन्तरतपसो ध्यानरूपस्य स्वरूपं प्रतिपादितम्, तस्य खलु ध्यानस्य भेदान् प्रतिपादयितुमाह-'तच्चउव्विहं अट्टरोद्दधम्मसुक्कभेयओ' इति। तत् खलु ध्यानं चतुर्विधम्, तद्यथा-आर्तरौद्र

जिसका स्वरूप पहले कहा गया है वह ध्यान चार प्रकार का है-(१) आर्तध्यान (२) रौद्रध्यान (३) धर्मध्यान और (४) शुक्लध्यान ऋत या अर्ति से अर्थात् दुःख के कारण जो ध्यान होता है वह आर्तध्यान कहलाता है। रुद्र अर्थात् क्रूर का जो कर्म है रौद्र ध्यान कहलाता है पूर्वोक्त धर्म से जो युक्त हो वह धर्मध्यान परम्परा से मोक्ष का कारण होता है अर्थात् मोक्ष का गौण कारण है। शुक्लध्यान उसी भव में मोक्ष का साक्षात् कारण है उपशम श्रेणी की अपेक्षा से शुक्ल ध्यान तीसरे भव में मोक्ष दायक होता है। शुक्ल ध्यान शुचि गुण के योग से शुक्ल कहलाता है ॥६८॥

तत्वार्थनिर्युक्ति--पहले छठे आभ्यन्तर तप ध्यान के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया, अब ध्यान के भेदों का निरूपण करते हैं—

જેનું સ્વરૂપ પહેલા કહેવામાં આવ્યું તે ધ્યાન ચાર પ્રકારનું છે-(૧) આર્ત્તધ્યાન (૨) રૌદ્રધ્યાન (૩) ધર્મધ્યાન અને (૪) શુકલધ્યાન ઋત અથવા અર્તિથી અર્થાત્ દુઃખના કારણે જે ધ્યાન થાય છે તે આર્ત્તધ્યાન કહેવાય છે. રૂદ્ર અર્થાત્ ક્રૂરનું જે કર્મ છે તે રૌદ્રધ્યાન કહેવાય છે પૂર્વોક્ત ધર્મથી જે યુક્ત હોય તે ધર્મધ્યાન છે. ધર્મધ્યાન પરંપરાથી મોક્ષનું કારણ હોય છે અર્થાત્ મોક્ષનું ગૌણ કારણ છે શુકલધ્યાન તે જ ભવમાં મોક્ષનું સાક્ષાત્ કારણ છે. ઉપશમ શ્રેણીની અપેક્ષાથી શુકલધ્યાન ત્રીજા ભવમાં મોક્ષદાયક હોય છે. શુકલધ્યાન શુચિગુણના યોગથી શુકલ કહેવાય છે. ॥૬૮॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—આની અગાઉ છઠા આભ્યન્તર તપ ધ્યાનના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું હવે ધ્યાનના ભેદોનું નિરૂપણ કરીએ

धर्मशुक्लभेदतः, तथा च आर्तध्यानम् १ रौद्रध्यानम् २ धर्मध्यानम् ३ शुक्लध्यानञ्च ४ इत्येवं चतुर्विधं ध्यानं भवतीति बोध्यम्। तत्र-ऋतं दुःख मुच्यते ऋते भवम् आर्तम् दुःखभवं दुखानुबन्धि च यद्-ध्यानं तद्-आर्तध्यान मुच्यते। एवं रोदयति अन्यान् इति रुद्रो दुःखस्य हेतुः तेन कृतं तत्कर्मवा रौद्रम्, प्राणाऽतिपात कर्मबन्ध परिणत आत्मा रुद्रः तद् सम्बन्धिध्यान मुच्यते। क्षमादिदशविधलक्षणात् धर्मात् अनपेतं धर्म्यम् उच्यते, तथाविधधर्मयुक्तं ध्यानं धर्मध्यानं व्यपदिश्यते। शुक्लं निर्मलं, सकलकर्मक्षयहेतुतया शुचि विशुद्धम्, यद्वा शुचम् अष्टविधकर्मलक्षण दुःखं क्लमयति क्षपयति-ग्लपयति निरस्यतीति शुक्लम् तथाविधं ध्यानं शुक्लध्यान मुच्यते। उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ भगवतीसूत्रे २५ शतके ७ उद्देशके ८०२ सूत्रे-'चत्तारि झाणा पण्णत्ता, तं जहा अट्टे झाणे, रोद्दे झाणे, धम्मे झाणे,

---

ध्यान के चार भेद हैं-(१) आर्तध्यान (२) रौद्रध्यान (३) धर्मध्यान और (४) शुक्लध्यान। इनमें से जो ध्यान दुःख के कारण उत्पन्न होता है और दुःखानुबंधी होता है वह आर्तध्यान कहलाता है। जो दूसरों को रुलावे वह दुःख का कारण रुद्र कहा जाता है उससे जो उत्पन्न या उसका जो कर्म हो वह रौद्र कहलाता है। अथवा हिंसा रूप परिणत आत्मा रुद्र और उसका ध्यान रौद्रध्यान कहलाता है। क्षमा आदि दस प्रकार के, धर्म से जो युक्त हो वह धर्म्य, ऐसा धर्मयुक्तध्यान धर्मध्यान शुक्ल अर्थात् निर्मल, सकल कर्मों के क्षय का कारण होने से शुचि-विशुद्ध, अथवा अष्टविध कर्म रूप दुःख शुचि कहलाता है, उसका जो क्षय कर देता है वह शुक्ल। ऐसा ध्यान शुक्लध्यान है।

भगवतीसूत्र के पच्चीसवें शतक के सप्तम उद्देशक में कहा है—

છીએ-ધ્યાનના ચાર ભેદ છે-(૧) આર્ત્તધ્યાન (૨) રૌદ્રધ્યાન (૩) ધર્મધ્યાન અને (૪) શુકલધ્યાન આમાંથી જે ધ્યાન દુઃખના કારણે ઉત્પન્ન થાય છે અને દુઃખાનુબન્ધી હોય છે તે આર્ત્તધ્યાન કહેવાય છે. જે બીજાને સતાવે તે દુઃખનું કારણ રૂદ્ર કહેવામાં આવે છે, તેનાથી ઉત્પન્ન અથવા તેનું જે કર્મ હોય તે રૌદ્ર કહેવાય છે અથવા હિંસારૂપ પરિણત આત્મા રૂદ્ર અને તેનું ધ્યાન રૌદ્રધ્યાન કહેવાય છે. ક્ષમા આદિ દશ પ્રકારના ધર્મથી જે યુક્ત હોય તે ધર્મ, આવું ધર્મયુક્ત ધ્યાન એ ધર્મધ્યાન શુકલ અર્થાત્ નિર્મળ, સકળ કર્મોના ક્ષયનું કારણ હોવાથી-શુચિ-વિશુદ્ધ અથવા અષ્ટવિધ કર્મરૂપ દુઃખ શુચિ કહેવાય છે તેનો જે નાશ કરી નાખે છે તે શુકલ આવું ધ્યાન શુકલધ્યાન છે.

ભગવતીસૂત્રના પચ્ચીસમાં શતકનાં સાતમાં ઉદ્દેશકમાં કહ્યું છે-'ધ્યાન ચાર કહેવામાં આવ્યા છે-આર્ત્તધ્યાન રૌદ્રધ્યાન ધર્મધ્યાન અને શુકલધ્યાન. ॥૬૮॥

सुक्के' इति चत्वारिध्यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा आर्तध्यानम् रौद्रध्यानम् धर्मध्यानम् शुक्लं ध्यानमिति ॥६८॥

मूलम्—धम्मसुक्काइं मोक्खहेउणो ॥६९॥

छाया—'धर्म्यं शुक्ले मोक्षहेतू ॥६९॥

तत्त्वार्थदीपिका—'पूर्वं तावद् आभ्यन्तरतपसः प्रायश्चित्तादि भेदेन षड्विधस्य क्रमशो निरूपणानन्तरं षष्ठमपि ध्यानरूपमाभ्यन्तरतपः आर्तरौद्र धर्मशुक्लभेदेन चतुर्विधं प्रतिपादितम्, तत्र प्रथमद्वयं संसारहेतुः—अन्तिमद्वयञ्च मोक्षहेतुर्भवतीति प्रतिपादयितुमाह—धम्मसुक्काइं मोक्खहेउणो' इति धर्मशुक्ले पूर्वोक्ते धर्मादनपेतलक्षणधर्म्यं शुक्लञ्चेत्येते द्वे अन्तिमे ध्याने मोक्षहेतू मुक्ति-साधने भवतः । प्रथमद्वयन्तु आर्तध्यानं रौद्रध्यानञ्च संसारस्थितिकारणं भवति,

---

'ध्यान चार कहे गए हैं— आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्ल-ध्यान ॥६८॥

'धम्मसुक्काइं मोक्खहेउणो'

सूत्रार्थ-धर्मध्यान और शुक्लध्यान मोक्ष के कारण हैं ॥६९॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले प्रायश्चित्त आदि के भेद से छह प्रकार के आभ्यन्तर तप का क्रमशः निरूपण करने के पश्चात् छठे आभ्यन्तर तप ध्यान के आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल के भेद से चार प्रकार प्रदर्शित किए गए, इनमें से प्रथम के दो संसार के कारण हैं और अन्तिम दो मोक्ष के कारण हैं, यह प्रतिपादन करने के लिए कहते हैं—

पूर्वोक्त धर्मध्यान और शुक्लध्यान मोक्ष के साधन हैं। प्रारंभ के दो अर्थात् आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान संसार के कारण हैं। अन्तिम दो को जब मोक्ष का साधन कहा तो पारिशेष्य न्याय से आरंभ के

'धम्मसुक्काइं मोक्खहेउणो' इत्यादि

સૂત્રાર્થ-ધર્મધ્યાન અને શુક્લધ્યાન મોક્ષના કારણ છે. ॥૬૯॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા પ્રાયશ્ચિત્ત આદિના ભેદથી છ પ્રકારના આભ્યન્તર તપનું ક્રમશઃ નિરૂપણ કર્યા બાદ છઠ્ઠા આભ્યન્તર તપ ધ્યાનના આર્ત્ત, રૌદ્ર, ધર્મ અને શુક્લના ભેદથી ચાર પ્રકાર પ્રદર્શિત કરવામાં આવ્યા આમાંથી પ્રથમ બે સંસારના કારણ છે જ્યારે છેલ્લા બે મોક્ષના કારણ છે એ પ્રતિપાદન કરવાના આશયથી કહીએ છીએ—

પૂર્વોક્ત ધર્મધ્યાન અને શુક્લધ્યાન મોક્ષના સાધન છે. આરંભના બે અર્થાત્ આર્ત્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાન સંસારના કારણ છે અન્તિમ બેને જો મોક્ષના સાધન કહેવામાં આવ્યા તો પારિશેષ્ય ન્યાયથી આરંભના બે

अन्तिमद्वयस्य मोक्षहेतुत्वकथनेन प्रथमद्वयस्य परिशेषात् संसारहेतुत्वसिद्धेः मोक्षसंसाराभ्यां प्रकारान्तराऽभावात्, तृतीयस्य साध्यस्य कस्यचिदभावात् ।६९।

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वसूत्रे—ध्यानरूपं षष्ठमाभ्यन्तरं तपश्चतुर्विधं मार्तरौद्र धर्म्य—शुक्लभेदात् सविशदं प्रतिपादितम्, संप्रति—तेषु चतुर्विधेषु धर्म—शुक्ल ध्यानद्वयं मोक्षहेतुः, प्रथमद्वयन्तु—आर्त—रौद्र ध्यानरूपं संसारहेतुर्भवतीति प्ररूपयितुमाह—'धम्मसुक्काइं मोक्खहेउणो' इति । पूर्वोक्त ध्यानचतुष्टयेषु अन्तिम द्वयं धर्म शुक्लध्यानरूपं मोक्षहेतुर्भवति, परिशेषात्प्रथमद्वयं खलु—आर्तरौद्रध्यानरूपं संसारकारणं भवति, । तत्रापि—धर्म्यध्यानं शुक्लध्यानञ्च देवगते मुक्तेश्च (उभयोः) कारणं भवतः, नतु—केवलं मुक्तेरेव कारणं भवतः । आर्तरौद्रध्यानयोस्तु

दो संसार के कारण आप ही आप सिद्ध हो गए, क्योंकि मोक्ष और संसार से अतिरिक्त अन्य कोइ प्रकार नहीं है, इन दो के सिवाय तीसरा कोई साध्य नहीं है ॥६९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पूर्वसूत्र में ध्यान नामक आभ्यन्तर तप के चार भेद—आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल विशद रूप से प्रतिपादित किये जा चुके हैं, अब यह प्रतिपादन करते हैं कि उन चार भेदों में से अन्तिम ही मोक्ष के कारण हैं और आदि के दो संसार के कारण हैं—

पूर्वोक्त चार प्रकार के ध्यानों में से अन्तिम दो अर्थात् धर्मध्यान और शुक्लध्यान मोक्ष के कारण हैं और आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान संसार के कारण हैं। धर्मध्यान और शुक्लध्यान देवगति और मुक्ति दोनों के कारण होते हैं, अकेली मुक्ति के कारण नहीं परन्तु आर्त्तध्यान

સંસારના કારણુ સ્વયં જ સાબિત થઈ ગયા કારણુ કે મોક્ષ અને સંસારથી અતિરિકત અન્ય કોઈ પ્રકાર નથી. આ બેના સિવાય ત્રીજું કશું જ સાધ્ય નથી ॥ ૬૯ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પૂર્વસૂત્રમાં ધ્યાન નામક આભ્યન્તર તપના ચાર ભેદ—આર્ત્ત, રૌદ્ર ધર્મ અને શુકલ, વિશદ રૂપથી પ્રતિપાદિત કરવામાં આવ્યા છે. હવે એ પ્રતિપાદન કરીએ છીએ કે તે ચાર ભેદોમાંથી અન્તિમ મોક્ષના કારણુ છે અને શરૂઆતના બે સંસારના કારણુ છે.

પૂર્વોકત ચાર પ્રકારના ધ્યાનો માંથી અન્તિમ બે અથાત્ ધર્મ ધ્યાન અને શુકલધ્યાન મોક્ષના કારણુ છે અને આર્ત ધ્યાન તથા રૌદ્રધ્યાન સંસારના કારણુ છે ધર્મધ્યાન અને શુકલધ્યાન દેવગતિ અને મુકિત બંનેના કારણુ છે એકલી મુકિતનુ કારણુજ નથી પરંતુ આર્ત્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાન એકાન્તતઃ સંસારના જ કારણુ છે. તે મોક્ષના કારણુ કદાપિ હોઇ શકતા નથી.

सर्वथा संसारकारणत्वमेव नतु-कदाचिदपि मोक्षहेतुत्वं संभवति। संसारश्च-नारकादिभेदेन चतुर्विधो वर्तते। एवन्तु-रागद्वेषमोहाः संसारहेतवः, तदनुगतश्चाऽऽर्त्तरौद्ररूपं ध्यान मपि प्रकृष्टतमरागद्वेषमोहभाजो जनस्य भवति, तस्मात् भवभ्रमणहेतुता तयोः खलु भवति, नतु-मोक्षहेतुता इति भावः। उक्तञ्चोत्तराध्ययने ३० अध्ययने ३५ गाथायाम्-

'अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता झाएज्जा सुसमाहिए।
धम्म सुक्काइं झाणाइं झाणं तं तु बुहा वए ॥१॥
आर्तरौद्रे वर्जयित्वा ध्यायेत् सुसमाहितः।
धर्मशुक्ले ध्याने ध्यानं तत्तु बुधा वदन्ति ॥१॥ इति,

तथा च चतुर्विधेषु ध्यानेषु-आर्त्तरौद्रध्याने भवभ्रमणहेतू, धर्मशुक्लध्यानेतु-मोक्षहेतू भवत इति फलितम् तेषां प्रत्येक मवान्तरभेदा अग्रेऽभिधास्यन्ते ॥६९॥

और रौद्रध्यान एकान्ततः संसार के ही कारण हैं, वे मोक्ष के कारण कदापि नहीं हो सकते। नारक आदि के भेद से संसार चार प्रकार का होता है। यों तो राग द्वेष और मोह संसार के कारण हैं, मगर उनसे अनुगत आर्त्त-रौद्र ध्यान भी तीव्रतम राग, द्वेष और मोह वाले पुरुष का होता है उत्तराध्ययन के तीसवें अध्ययन की पैंतीसवीं गाथा में कहा है-

'समाधिमान् पुरुष आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को त्याग कर धर्म और शुक्लध्यान ध्यावे। ज्ञानी जन इसी को ध्यान कहते हैं।

फलित हुआ कि चार प्रकार के ध्यानों में से आर्तध्यान और रौद्रध्यान भवभ्रमण के कारण हैं और धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान मोक्ष के कारण हैं इनमें से प्रत्येक के अवान्तर भेदों का कथन आगे किया जाएगा ॥६९॥

નારકઆદિના ભેદથી સંસાર ચાર પ્રકારનો છે. આમતો, રાગ દ્વેષ અને મોહ સંસારના કારણ છે. પરંતુ તેમનાથી અનુગત આર્ત—રૌદ્રધ્યાન પણ તીવ્રતમ રાગ દ્વેષ અને મોહ વાળા પુરૂષને થાય છે આથી તે બંને પણ ભવભ્રમણના કારણ છે ઉત્તરાધ્યયનના ત્રીસમાં અધ્યયનની પાંત્રીસમી ગાથામાં કહ્યું છે.—

સમાધિમાન પુરૂષ આર્ત્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાનનો ત્યાગ કરીને ધર્મ અને શુકલધ્યાન ધ્યાવે જ્ઞાનીજન આને જ ધ્યાન કહે છે.

સાબિત થયું કે ચાર પ્રકારના ધ્યાનોમાંથી આર્ત્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાન ભવભ્રમણના કારણ છે. જ્યારે ધર્મધ્યાન તથા શુકલધ્યાન મોક્ષના કારણ છે. આમાંથી પ્રત્યેકના અવાન્તર ભેદોનું કથન આગળ જતા કરવામાં આવશે ॥૬૯॥

मूलम्- अट्टज्झाणं चउव्विहं, असमणुण्णसंपओग-विप्पओग-सइआइ भेयओ ॥७०॥

छाया-आर्तध्यानं चतुर्विधम्, अमनोज्ञ संप्रयोग-विप्रयोगस्मृत्यादिभेदतः

तत्त्वार्थदीपिका--पूर्वं तावत्-ध्यानम् आर्त्तरौद्रधर्मशुक्लभेदेन चतुर्विधं प्रतिपादितम्, सम्प्रति-तेषां चातुर्विध्यं प्रतिपादयितुं प्रथममार्तध्यानस्य प्रथमोपात्तस्य चातुर्विध्यं प्ररूपयति-'अट्टज्झाणं चउव्विहं' इत्यादि। आर्तध्यानं चतुर्विधं भवति, तद्यथा-अमनोज्ञसंप्रयोग-विप्रयोग-स्मृत्यादि भेदतः तथाचा-मनोज्ञसंप्रयोगविप्रयोग स्मृतिः १ आदिना-मनोज्ञविप्रयोगसंप्रयोगस्मृतिः २ आतङ्कसंप्रयोगविप्रयोगस्मृतिः ३ परिषेवित कामभोगसंप्रयोगविप्रयोग स्मृतिश्च ४ इत्येवं तावद् आर्तध्यान चतुर्विधं भवति। तत्राऽमनोज्ञस्य शब्दादेः सम्प्रयोगे प्राप्ते सत्यां तद्विप्रयोगाय 'स कथं रीत्या मे न स्यात्' इत्येवं स्मृति-

---

'अट्टज्झाणं चउव्विहं' इत्यादि

सूत्रार्थ-आर्त्तध्यान चार प्रकार का है-अमनोज्ञ सम्प्रयोग-विप्रयोग स्मृति आदि ॥७०॥

तत्त्वार्थदीपिका--पहले आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल के भेद से ध्यान चार प्रकार का कहा गया है, अब उसमें से प्रथम आर्त्तध्यान के भी चार भेदों का प्रतिपादन करते हैं-

आर्त्तध्यान के चार भेद हैं--(१) अमनोज्ञ सम्प्रयोग-विप्रयोग-स्मृति (२ मनोज्ञ विप्रयोग संप्रयोगस्मृति (३) आतंक सम्प्रयोग विप्रयोग स्मृति और (४) आसेवित काम भोग सम्प्रयोग विप्रयोग स्मृति।

अमनोज्ञ वस्तु का संयोग होने पर उसके वियोग के लिए चिन्तन करना- संकल्प प्रबंध होना, जैसे-' किस उपाय से इससे मेरा पिण्ड

'अट्टज्झाणं चउव्विहं' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ:— આર્ત્તધ્યાન ચાર પ્રકારનું છે. અમનોજ્ઞ સામ્પ્રયોગ વિપ્રયોગ સ્મૃતિ વગેરે ॥ ૭૦ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલાં આર્ત્ત રૌદ્ર ધર્મ અને શુકલના ભેદથી ધ્યાન ચાર પ્રકારનું કહેવામાં આવ્યું છે હવે પ્રથમ આર્ત્તધ્યાનના પણ ચાર ભેદોનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ—

આર્ત્તધ્યાનના ચાર ભેદ છે—(૧) અમનોજ્ઞસમ્પ્રયોગ—વિપ્રયોગ—સ્મૃતિ (૨) મનોજ્ઞવિપ્રયોગ સમ્પ્રયોગ સ્મૃતિ (૩) આતંકસમ્પ્રયોગ વિપ્રયોગ સ્મૃતિ અને (૪) આસેવિત—કામભોગસમ્પ્રયોગ વિપ્રયોગસ્મૃતિ

અમનોજ્ઞ વસ્તુને સંયોગ થવાથી તેના વિયોગને માટે ચિન્તન કરવું સંકલ્પપ્રબંધ થવું જેમકે કયા ઉપાયથી આનાથી મારૂ પિન્ડ છુટે એવું વારંવાર

श्चिन्तनं संकल्प प्रबन्धः-अमनोज्ञसंप्रयोगविप्रयोगस्मृतिरुच्यते १ अमऽनोज्ञं-मनसोऽप्रियम् तत्खलु-मनसः प्रतिकूलत्वाद् मनसा न ज्ञायते इत्यमनोज्ञ मुच्यते, तच्चाऽमनोज्ञं वस्तु चेतन-मचेतनञ्च। तत्र-चेतनं कुत्सितरूपं दुर्गन्धशरीर दौर्भाग्यादि सहितं कलत्रादिकम् भयत्रासाद्युत्पादक मुद्वेगजनकं शत्रुसर्प व्याघ्रादिकञ्च, परप्रयुक्तं विषशस्त्रकण्टकादिकं मचेतनं बोध्यम् तेषां पीडा कारकत्वात्, इत्येवं तावत् प्रथमम् आर्तध्यान मनिष्टसंयोगरूपममनोज्ञ विप्रयोगरूपं बोध्यम् १ द्वितीयं तावत्-मनोज्ञविप्रयोगसंप्रयोगचिन्तनरूपम् आर्तध्यानम् मनोज्ञस्येष्टस्य शब्दादेः पुत्रकलत्रधनादेर्वा विप्रयोगे-विरहे सति तत्संप्रयोगाय-तत्प्राप्तये चिन्तनम् विचारप्रबन्धः-मनोज्ञविप्रयोगसंप्रयोग चिन्तन मुच्यते २ अथ तृतीय मार्तध्यानं तावद्-आतङ्कसंप्रयोगविप्रयोग चिन्तारूपम्, आतङ्को रोगः तस्य वातादि प्रकोपजनितस्य संप्रयोगे समुत्पन्ने

छूटे' ऐसा बार बार चिन्तन करना अमनोज्ञ सम्प्रयोग-विप्रयोग स्मृति नामक आर्त्तध्यान कहलाता है। जो मन को प्रिय न लगे वह अमनोज्ञ। अमनोज्ञ वस्तु चेतन भी होती है और अचेतन भी' चेतन जैसे-कुरूपा, दुर्गन्धित शरीर वाली एवं असुन्दर पत्नी आदि तथा भय और त्रास जनक शत्रु, सर्प, व्याघ्र आदि अचेतन अमनोज्ञ, जैसे-विष, शस्त्र, कंटक आदि, क्योंकि ये सब पीडाकारक होते हैं।

दूसरा आर्तध्यान मनोज्ञ विप्रयोग संप्रयोग स्मृत्ति है' इसका अर्थ है-मनोज्ञ अर्थात् इष्ट शब्द आदि एवं पुत्र, कलत्र, धन आदि का वियोग होने पर उनके संयोग के लिए चिन्तन करना।

तीसरा भेद आतंक सम्प्रयोग विप्रयोग चिन्ता है। यहां आतंक का अर्थ है रोग, वात आदि के प्रकोप से रोग के उत्पन्न होने पर उसके

ચિન્તન કરવું અમનોજ્ઞ સમ્પ્રયોગ વિપ્રયોગસ્મૃતિ નામક આર્તધ્યાન કહેવાય છે. જે મનને પ્રિય ન લાગે તે અમનોજ્ઞ અમનોજ્ઞ વસ્તુ ચેતન પણ હોય છે અને અચેતન પણ, ચેતન જેમકે કુરૂપ દુર્ગંધિત શરીરવાળી અને અસુંદર પત્ની વગેરે તથા ભય અને ત્રાસજનક શત્રુ. સાપ વાઘ વગેરે અચેતન અમનોજ્ઞ જેવાકે ઝેર શસ્ત્ર, કાંટો વગેરે કારણકે આ બધા દુઃખદાયક હોય છે.

બીજુ આર્ત્તધ્યાન મનોજ્ઞ વિપ્રયોગ સંપ્રયોગસ્મૃતિ છે. આનો અર્થ થાય છે મનોજ્ઞ અર્થાત ઇષ્ટ શબ્દ આદિ અને પુત્ર પત્ની ધન વગેરેનો વિયોગ થવાથી તેમના સંયોગને માટે ચિન્તન કરવું.

ત્રીજો ભેદ આતંકસંપ્રયોગ વિપ્રયોગ ચિન્તા છે. અહીં આતંકનો અર્થ છે રોગ વાયુ આદિના પ્રકોપથી રોગના ઉત્પન્ન થવાથી તેના વિયોગને માટે

सतीत्यर्थः तद्विप्रयोगाय 'तदपायः कथं मे स्यात्' इत्येवं चिन्तन मुच्यते, आतङ्कस्य-रोगस्य वेदनया पीडितस्य चलचित्तस्य च्युतधैर्यस्य वेदना प्रत्यासत्तौ सत्या कथमेतस्या वेदनाया निवृत्तिर्भविष्यतीति वेदनावियोगाय पुनः पुनश्चिन्तनं कर-शिरः प्रभृति विधूननम् आक्रोशनम्-आक्रन्दनम् अश्रुजलमोचनम्-'पापस्वरूपोऽयं व्याधिरतीव मां बाधते पीडयति कदाऽयं रोगो विनङ्क्ष्यति इत्येवं चिन्तनं तृतीय मार्तध्यानं भवतीति भावः ३ अथ चतुर्थं तावत्-परिषेवित कामभोगसंप्रयोगमियद्विप्रयोग चिन्तारूप मार्तध्यान मुच्यते, भोगाकाङ्क्षां प्रति आतुरस्य पुरुषस्य प्राप्त कामभोगादि विप्रयोगं प्रति मनः प्रणिधानरूपं चिन्तनम्' अनागत विषय भोगाकाङ्क्षारूपं वा' चतुर्थमार्तध्यान मवगन्तव्यम् ४ ॥७०॥

वियोग के लिए चिन्तन करना-'यह रोग कैसे मिट जाय ' ऐसा विचार करना तीसरा आर्तध्यान है तात्पर्य यह है कि जो रोग की वेदना से पीड़ित है, जिसका धैर्य नष्ट हो गया है, वह वेदना का संयोग होने पर सोचता है-कैसे मेरी वेदना की निवृत्ति होगी ? ऐसा सोचकर हाथों से सिर धुनता है, चीखता है, आंसू बहाता है और चिन्तन करता कि-'यह पापरूप व्याधि मुझे सता रही है, कब इसका विनाश होगा ? यह तीसरा आर्तध्यान का भेद है।

चौथा आर्तध्यान सेवन किये हुए कामभोगों के वियोग का चिन्तन करना है। जो भोगों की कामना से पीडित है, वह ऐसा सोचता है कि कहीं ऐसा न हो कि इनका वियोग हो जाए यह चिन्तन चौथा अर्तध्यान है। अथवा भविष्य संबंधी कामभोगों का चिन्तन करना चौथा आर्तध्यान समझना चाहिए ॥७०॥

ચિન્તન કરવું આ રોગ કેવી રીતે મટી જાય આવો વિચાર કરવો ત્રીજું આર્ત્ત ધ્યાન છે.

તાત્પર્ય એ છે કે રોગી, જે રોગની વેદનાથી પીડિત છે. જેની ધીરજનો અંત આવી ગયો છે. તે વેદનાનો સંયોગ થવાથી વિચારે છે કઇ રીતે મારી વેદનાનો છુટકારો થશે? આવું કહીને હાથ વડે માથું કૂટે છે. ચીસાચીસ પાડે છે. આસુ વહેવડ વે છે અને ચિન્તન કરતો હેય છે કે આ પાપ રૂપ વ્યાધિ મને પરેશાન કરી રહી છે. ત્યારે આનો અંત આવશે? આ ત્રીજા આર્ત્તધ્યાનનો ભેદ છે.

ચોથું આર્ત્તધ્યાન સેવેલા કામભોગોના વિયોગનું ચિન્તન કરવું એ છે જે ભોગોની ઇચ્છાઓથી પીડિત છે તે એવું વિચારે છે કે કયાંય એમ ન બને કે આનો વિયોગ થઇ જાય આ ચિન્તન ચોથુ આર્ત્તધ્યાન છે અથવા ભવિષ્ય સંબંધી કામભોગોનું ચિન્તન કરવું ચોથુ આર્ત્તધ્યાન સમજવુ જોઇએ ૫૭૦।

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वसूत्रे-षष्ठस्याऽभ्यन्तरतपसो ध्यान रूपस्याऽऽर्तरौद्र धर्म-शुक्लभेदेन चातुर्विध्य मुक्तम्, तत्र तेषां चतुर्णामपि आर्तध्यानादीनां प्रत्येकं चातुर्विध्यं प्रतिपादयितुं प्रथमं प्रथमोपात्तस्याऽऽर्तध्यानस्य चातुर्विध्यं प्ररूपयति-'अट्टझाणं चउव्विहं, अमणुण्ण संपओग विप्पओग सइ आइ भेयओ' इति। आर्तध्यानं ऋतं-दुःखं, तस्य निमित्तम्, यद्वा-तत्र भवम् आर्तम्, तच्च तद्ध्यानम् आर्तस्य दुःखितस्य वा ध्यानम् आर्तध्यान मुच्यते उक्तञ्च

'राज्योपभोग शयनासनवाहनेषु, स्त्रीगन्ध माल्यमणि रत्नविभूषणेषु।
इच्छाभिलाषमतिमात्रमुपैति मोहाद् ध्यानं तदार्तमिति सम्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥१॥

तत्-चतुर्विधं भवति, तद्यथा-अमनोज्ञसंप्रयोगविप्रयोगस्मृत्यादि भेदतः तथा च अमनोज्ञसंप्रयोगविप्रयोगस्मृतिः १ आदिना-मनोज्ञ संप्रयोगविप्रयोग-स्मृतिः २ आतङ्कसंप्रयोगविप्रयोगस्मृतिः ३ परिषेवितकामभोगसम्प्रयोगविप्रयोग-

---

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पूर्वसूत्र में छठे आभ्यन्तर तप ध्यान के चार भेद कहे-आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्लध्यान। अब उनमें से प्रत्येक के चार-चार भेद बतलाते हुए प्रथम आर्तध्यान के चार भेदों की प्ररूपणा करते हैं-

ऋत का अर्थ दुःख है। जो ऋत का कारण हो अथवा ऋत से उत्पन्न हो वह आर्त। अर्थात् दुःखित का ध्यान आर्तध्यान कहलाता है। कहा भी है-

'राज्य, उपभोग, शयन, आसन, वाहन, स्त्री, गंध, माला, मणि, रत्न तथा आभूषण आदि में मोह की तीव्रता से जो अतीव आकांक्षा होती है, उसे ध्यानवेत्ता आर्त्तध्यान कहते हैं ॥१॥

आर्तध्यान चार प्रकार का है-(१) अमनोज्ञ सम्प्रयोग विप्रयोग स्मृत्ति (२) मनोज्ञ सम्प्रयोग विप्रयोगस्मृत्ति (३) आतंक सम्प्रयोग

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિઃ—પૂર્વસૂત્રમાં છટ્ઠા આભ્યન્તર તપ ધ્યાનના ચાર ભેદ કહયા આર્ત્તરૌદ્રધર્મ અને શુકલધ્યાન હવે તેમાંથી પ્રત્યેકના ચાર ચાર ભેદ બતાવતા થકાં પ્રથમ આર્ત્તધ્યાનના ચાર ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ

ઋતનો અર્થ દુઃખ છે. જે ઋતનું કારણ હોય અથવા ઋતથી ઉત્પન્ન થાય તે આર્ત્ત. આર્ત્ત અર્થાત્ દુઃખિતનુ ધ્યાન આર્ત્તધ્યાન કહેવાય છે. વળી કહ્યું પણ છે

રાજ્ય, ઉપભોગ, શયન, આસન, વાહન, સ્ત્રી, ગંધ મણિ, રત્ન તથા આભૂષણ આદિમાં મોહની તીવ્રતાથી જે અતીવ આકાંક્ષા થાય છે. તેને ધ્યાનવેત્તા આર્ત્તધ્યાન કહે છે ॥ ૧ ॥

આર્ત્તધ્યાન ચાર પ્રકારનુ છે-(૧) અમનોજ્ઞસમ્પ્રયોગ વિપ્રયોગ સ્મૃતિ (૨) મનોજ્ઞસમ્પ્રયોગ વિપ્રયોગ સ્મૃતિ (૩) આતંકસમ્પ્રયોગ વિપયોય સ્મૃતિ

स्मृतिः ४ इत्येवं तावदार्तध्यानं चतुर्विधं गगनन्तव्यम्। तत्र अमनोज्ञस्याऽनिष्टस्य शब्दादिविषयाणां सम्प्रयोगे सम्बन्धे श्रोत्रादीन्द्रियेण सह सम्पर्के सति शब्दादिविषयाणां सान्निध्ये सति इत्यर्थः तेषां शब्दादीनामनिष्टानां विप्रयोगायाऽपगमायाऽनिष्ट शब्दादिविषयपरिहाराय 'कथमहमस्मादनिष्ट संप्रयोगान्मुच्येय' इति चिन्तनम् अमनोज्ञसंप्रयोगविप्रयोगस्मृतिरूपं प्रथममार्तध्यानं भवतीति भावः १ अथ द्वितीयमार्तध्यानं मनोज्ञसंप्रयोगाऽविप्रयोग चिन्तारूपम् यथा—'मनोज्ञस्येष्टस्य वस्तुनः संप्रयोगे तस्याऽविप्रयोगचिन्तनम् यथाकथमपि तस्य विप्रयोगो न स्यात्' इत्येवं चिन्तनं द्वितीयमार्तध्यानमुच्यते २ अथ तृतीयमार्तध्यानम् आतङ्क संप्रयोग विप्रयोग चिन्तारूपम् यथाऽऽतङ्कस्य दु खवेदनायाः पित्तादि धातुप्रकोपजनिताया शूल शिरः कम्पज्वरादिकायाः सम्प्रयोगे प्राप्तौ सत्यां तद्विप्रयोगाय कथमयं मम विनश्येत

विप्रयोग स्मृति और (४) परिषेवित कामभोग सम्प्रयोग विप्रयोग स्मृति। इनका स्वरूप इस प्रकार है—

(१) अनिष्ट वस्तु का संयोग होने पर उसके वियोग के लिए चिन्तन करना—'कैसे मैं इस अनिष्ट वस्तु से छुटकारा पाऊं' ऐसा चिन्तन करना प्रथम आर्त्तध्यान है।

(२) इष्ट वस्तु का संयोग होने पर ऐसा सोचना कि—कहीं इसका वियोग न हो जाय' दूसरा आर्तध्यान है।

(३) पित्त आदि के प्रकोप से रोग की वेदना उत्पन्न हो जाय-शूल उत्पन्न हो जाए, शिर में कम्पन होने लगे या ज्वर आ जाय, तो उसके वियोग के विषय में चिन्तन करना अर्थात् 'कैसे इसका विनाश हो'

અને (૪) પરિષેવિત કામભોગસમ્પ્રયોગ વિપ્રયોગ સ્મૃતિ એમનું સ્વરૂપ આ પ્રકારે છે—

(૧) અનિષ્ટ વસ્તુનો સંયોગ થવાથી તેના વિયોગને માટે ચિંતન કરવું — આ અનિષ્ટ વસ્તુથી કઈ રીતે મારો છુટકારો થાય? આવું ચિન્તન કરવું પ્રથમ આર્ત્તધ્યાન છે.

(૨) ઇષ્ટ વસ્તુનો સંયોગ થવાથી એવું વિચારવું કે ક્યાંય આનો વિયોગ ન થઇ જાય એ બીજું આર્ત્તધ્યાન છે.

(૩) પિત્ત આદિના પ્રકોપથી રોગની વેદના ઉપજે—શૂળ ઉત્પન્ન થઈ જાય માથું ધ્રુજવા માંડે અથવા તાવ આવી જાય ત્યારે એમના વિયોગના વિષયમાં ચિન્તન કરવું અર્થાત્ કઇ રીતે આનો વિનાશ થાય એવો વિચાર

तीति चिन्तनं तृतीय मार्तध्यान मवगन्तव्यम् ३ अथ चतुर्थमार्तध्यानम् यथा – कामोपहतचेतसा परिषेवितकामभोगसंप्रयोगस्य ऽविप्रयोगचिन्तनं चतुर्थमार्तध्यानमवसेयम् ४ तस्यैतस्य चतुर्विधस्यापि आर्तध्यानस्य क्रन्दनादीनि चिह्नानि भवन्ति यैः खलु आर्तध्यायी संलक्ष्यते करतलनिहितप्रम्लान मुखः आक्रन्दति शोचति तपति निःशब्द मश्रु मुञ्चति परिदेवते इत्यर्थः इत्येवं परिस्फुटितानि लक्षणानि भवन्ति। उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ भगवतीसूत्रे २५ शतके ७ उद्देशके ८०३ सूत्रे 'अट्टे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते तं जहा अमणुन्न संपओगसंपउत्ते, तस्स विप्पओग सइ समन्नागए यावि भवइ १ मणुण्णसंपओगसंपउत्ते, तस्स अविप्पओगे सइ समण्णागए यावि भवइ २ आयंकसंपओग संपउत्ते, तस्स विप्पओग सइ समण्णागए यावि भवइ ३ परिजुसित कामभोगसंपओगसंपउत्ते, तस्स अविप्पओग सइ समण्णागए यावि भवइ ४ 'अट्टस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा=कंदणया १ सोयणया २ तिप्पणया ३ परिदेवणया ४। इति,

ऐसा विचार करना तीसरा आर्तध्यान है।

(४) कामभोगों के प्राप्त होने पर उनका वियोग न होने का चिन्तन करना चौथा आर्तध्यान है।

इस चारों प्रकार के आर्तध्यान के लक्षण आक्रन्दन 'रोना' आदि हैं, जिनसे यह पता लग जाता है कि यह आर्तध्यान कर रहा है। आर्तध्यानी अपने म्लान मुख को हथेली पर रख लेता है, आक्रन्दन करता है, शोक करता है, संतप्त होता है और कभी-कभी शब्द किये बिना आंसू बहाता है। ये आर्तध्यान का प्रकट लक्षण हैं। भगवतीसूत्र के पच्चीसवें शतक के सातवें उद्देशक में कहा है–' आर्तध्यान चार प्रकार

કરવો ત્રીજું આર્ત્તધ્યાન છે.

(૪) કામભોગો પ્રાપ્ત થયા પછી તેમનો વિયોગ ન થાય એ જાતનું ચિન્તન કરવું ચોથું આર્ત્તધ્યાન છે..

આ ચારે પ્રકારના આર્ત્તધ્યાન લક્ષણ આક્રન્દ રૂદન આદિ છે જેનાથી એ જાણી શકાય છે કે આ માણસ આર્ત્તધ્યાન કરી રહ્યો છે. આર્ત્તધ્યાની પોતાના મ્લાન મુખને હથેળી ઉપર રાખી લે છે, આક્રન્દ કરે છે, શોક કરે છે, સંતપ્ત થાય છે અને કોઈ કોઈ વાર શબ્દ ઉચ્ચાર કર્યા વગર આંસુ સારે છે. આ બધા આર્ત્તધ્યાનના પ્રકટ લક્ષણ છે ભગવતી સૂત્રના પચ્ચીસમાં શતકના સાતમાં ઉદ્દેશકમાં કહ્યું છે— આર્ત્તધ્યાન ચાર પ્રકારના

आर्तध्यानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा अमनोज्ञ संप्रयोगसंप्रयुक्ते तस्य विप्रयोग-स्मृतिसमन्वागतश्चापि भवति १ मनोज्ञविप्रयोगसंयुक्ते तस्याऽविप्रयोग-स्मृति समन्वागतश्चाऽपि भवति २ आतङ्कसंप्रयोगसंप्रयुक्ते तस्य विप्रयोगस्मृतिसमन्वा-गतश्चापि भवति ३ परिजुष्ट कामभोग संप्रयोग संप्रयुक्ते तस्याऽविप्रयोगसमन्वा-गतश्चापि भवति ४। आर्तस्य खलु ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा -क्रन्दनता १ शोचनता २ तेपनता-३ परिदेवनता ४ इति ॥७०॥

मूलम्—तं च अविरय-देसविरयपमत्तसंजयाणं ॥७१॥

छाया—तच्चाऽविरत-देशविरत-प्रमत्तसंयतानाम् ॥७१॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे खलु—आर्तध्यानस्य स्वरूपम् अमनोज्ञसंप्रयोग-विप्रयोगस्मृत्यादिभेदेन तस्य चातुर्विध्यं प्रतिपादितम्, सम्प्रति किं स्वामिक मेत-

---

का कहा गया है-(१) अमनोज्ञ वस्तु का संप्रयोग होने पर उसके वियोग का विचार करना (२) मनोज्ञ वस्तु का वियोग होने पर उसके संयोग के लिए चिन्तन करना (३) किसी प्रकार का रोग पैदा हो जाने पर उससे छुटकारा पाने की चिन्ता करना और (४) सेवित कामभोगों का संयोग होने पर उनका कहीं वियोग न हो जाय, ऐसा विचार करना। आर्त-ध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं-(१)क्रन्दन करना-चीखना, (२) शोक करना (३) रुदन करना और (४) आंसू बहाना ॥७०॥

'तं च अविरय देस' इत्यादि

सूत्रार्थ—आर्तध्यान अविरत, देशविरत और प्रमत्तसंयत को होता है ॥७१।

तत्त्वार्थदीपिका—पहले आर्तध्यान के स्वरूप और उसके चार भेदों

કહેવામાં આવ્યા છે -- (૧) અમનોજ્ઞ વસ્તુનો સંયોગ થવાથી તેના વિયોગ નો વિચાર કરવો (૨) મનોજ્ઞ વસ્તુનો વિયોગ થવાથી તેના સંયોગને માટે ચિન્તન કરવું (૩) કોઈ જાતનો રોગ ઉત્પન્ન થવાથી તેમાંથી છુટકારો મેળવવાની ચિન્તા કરવી અને (૪) સેવિત કામભોગોનો સંયોગ થવાથી ક્યાંય તેનો વિયોગ ન થઈ જાય એવો વિચાર કરવો આર્તધ્યાનના ચાર લક્ષણ કહેવામાં આવ્યા છે -- (૧) ક્રન્દન કરવું - બરાડા પાડવા (૨) શોક કરવો (૩) રૂદન કરવું અને (૪) આંસૂ વહાવવા ॥ ૭૦ ॥

'तं च अविरय देसविरय' इत्यादि

સૂત્રાર્થ—આર્ત્તધ્યાન, અવિરત દેશવિરત અને પ્રમત્ત સંયતને થાય છે ।૭૧।

તત્ત્વાર્થદીપિકા--- પહેલા આર્ત્તધ્યાનના સ્વરૂપ અને તેના ચાર

च्चतुर्विधमार्तध्यानं भवतीति प्रतिपादयितुमाह-'तं च-अविरय' इत्यादि । तच्च पूर्वोक्तं चतुर्विधमार्तध्यानम्-अविरत, देशविरत, प्रमत्तसंयतानां भवति, तत्राऽविरताः असंयत सम्यग्दृष्ट्यन्ता ग्राह्याः । देशविरतास्तु-संयतासंयताः अवसेयाः । प्रमत्तसंयताः पञ्चदशविध प्रमादोपेताः क्रियाऽनुष्ठायिनोऽवगन्तव्याः तत्राऽविरत-देशविरतानां चतुर्विधमार्तध्यानं भवति, असंयमपरिणामोपेतत्वात्, प्रमत्तसंयतानान्तु-अप्राप्तप्रियवस्तुसम्प्रयोगचिन्तारूपम्, चतुर्थमार्तध्यानं वर्जयित्वा शेषमार्तध्यानत्रयं प्रमादोदयोद्रेकात् कदाचित् सम्भवति, कदाचिन्नापि सम्भवतीति भावः ।७१।

'तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावद्-आर्तध्यानस्वरूपं सभेदं प्ररूपितम्, सम्प्रति

का निरूपण किया गया, अब यह बतलाते हैं कि यह चारों प्रकार का आर्तध्यान किस-किस को होता है ?--

पूर्वोक्त चार प्रकार का आर्तध्यान अविरत, देशविरत और प्रमत्त संयत को होता है। यहां अविरत' शब्द से असंयत सम्यग्दृष्टि तक का ग्रहण करना चाहिए। एकदेश संयमी संयतासंयत कहलाते हैं। प्रमाद से युक्त महाव्रतधारी साधु प्रमत्तसंयत कहलाते हैं।

इनमें से अविरत और देशविरत में चारों प्रकार का आर्तध्यान पाया जाता है, क्योंकि उनमें असंयम रूप परिणाम होते हैं। प्रमत्तसंयतों में अप्राप्त प्रियवस्तु सम्प्रयोग चिन्ता रूप अर्थात् कामभोगों की अभिलाषा रूप चौथे आर्तध्यान को छोडकर शेष तीन आर्तध्यान प्रमाद के उद्रेक से कभी-कभी पाये जाते हैं, और कदाचित् नहीं भी होते हैं।७१।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पहले आर्त्तध्यान के स्वरूप और भेदों का कथन

ભેદોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે એ બતાવીએ છીએ કે આ ચારે પ્રકારના આર્ત્તધ્યાન કોને કોને થાય છે ?

પૂર્વોક્ત ચાર પ્રકારના આર્ત્તધ્યાન અવિરત દેશવિરત અને પ્રમત સંયતને થાય છે. અહીં અવિરત શબ્દથી અસંયત સમ્યક્ દ્રષ્ટિ સુધીનું ગ્રહણ કરવું જોઇએ. એક દેશ સંયમી સંયતાસંયત કહેવાય છે પ્રમાદથી યુકત મહાવ્રતધારી સાધુ પ્રમત્ત સંયત કહેવાય છે.

આમાંથી અવિરત અને દેશવિરતમાં ચારે પ્રકારના આર્ત્તધ્યાન જોવામાં આવે છે કારણકે તેમનાં અસંયમ રૂપ પરિણામ હોય છે. પ્રમત્તસંયતોમાં અપ્રાપ્ત પ્રિય વસ્તુ સમ્પ્રયોગ ચિન્તા રૂપ અર્થાત્ કામભોગોની અભિલાષા રૂપ ચોથા આર્ત્તધ્યાનને છોડીને શેષ ત્રણ આર્ત્તધ્યાન પ્રમાદના ઉદ્રેકથી કોઇ કોઇ વાર જોવા મળે છે અને કદાચિત્ ન પણ હોય ॥ ૭૧॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ-પહેલા આર્ત્તધ્યાનના સ્વરૂપ અને ભેદોનું કથન કરવામાં

के खलु-आर्तध्यानस्य चतुर्विधस्याऽपि ध्यातारो भवन्ति केषां खलु आर्तध्यानं भवतीति प्ररूपयितुमाह-'तं च अविरय देसविरय पमत्त संजयाणं' इति। तच्च पूर्वोक्तस्वरूपं चतुर्विधं मपि-आर्तध्यानम्, अविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानां भवति, तथाचाऽविरत सम्यग्दृष्टीनाम् अविरत पदवाच्यानां चतुर्थगुणस्थानवर्तिनाम्, संयतासंयतानाञ्च देशविरत=पदवाच्यानां पञ्चगुणस्थानवर्तिनां प्रमत्तसंयतानाञ्च षष्ठगुणस्थानवर्तिनां पूर्वोक्तमार्तध्यानं भवति, नत्वप्रमत्तसंयतादीनाम्। अप्रत्याख्यानावरणोदये सति विरतिलक्षणसंयमाभावाद् अविरतसम्यग्दृष्टिरुच्यते। अत्र-नञ्-अल्पार्थकः, तथाचोक्तम्—

किया गया है. अब यह बतलाते हैं कि चारों प्रकार का आर्त्तध्यान किस-किस को होता है—

चारों प्रकार का आर्त्तध्यान अविरत, देशविरत और प्रमत्त संयत को होता है। इस प्रकार पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान तक के सभी 'अविरत' शब्द से कहे जाने वाले जीवों को पंचम गुणस्थान वर्ती संयतासंयतों को अर्थात् देशसंयतों को तथा छठे गुणस्थान में रहे हुए प्रमत्त संयतों को आर्त्तध्यान होता है। अप्रमत्त संयत आदि, जो षष्ठ गुणस्थान से ऊपर होते हैं, उनमें आर्त्तध्यान नहीं पाया जाता।

जिस जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो चुकी हो किन्तु अप्रत्याख्यान कषाय के उदय से देश संयम भी प्राप्त न हो वह अविरत सम्यग्दृष्टि कहलाता है। यहां नञ् का अल्प अर्थ में प्रयोग किया गया है। कहा भी है-

આવ્યું હવે એ બતાવીએ છીએ કે ચારે પ્રકારના આર્ત્તધ્યાન કોને કોને થાય છે?—

ચારે પ્રકારના આર્ત્તધ્યાન અવિરત, દેશવિરત અને પ્રમત્ત સંયતને થાય છે. આ રીતે પ્રથમ ગુણસ્થાનથી ચોથા ગુણસ્થાનક સુધીના બધા 'અવિરત શબ્દથી કહેવામાં આવનારા જીવો' ને પંચમગુણસ્થાનવર્તી સંયતા સંયતોને અર્થાત્ દેશસંયતોને તથા છટ્ઠા ગુણસ્થાનમાં રહેલા પ્રમત્તસંયતોને આર્ત્તધ્યાન થાય છે. અપ્રમત્તસંયત આદી જે છટ્ઠા ગુણસ્થાનથી ઉપર હોય છે, તેમનામાં આર્ત્તધ્યાન જોવામાં આવતું નથી.

જે જીવને સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ ન હોય પરન્તુ અપ્રત્યાખ્યાન કષાયના ઉદયથી દેશસંયમ પણ પ્રાપ્ત ન હોય તે અવિરત સમ્યગ્દ્રષ્ટિ કહેવાય છે. અહીં નઞ્નો અલ્પ અર્થમાં પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે. વળી કહ્યું પણ છે.—

જે કષાય જીવના અલ્પ પ્રત્યાખ્યાનને પણ રોકે છે. તેમને અપ્રત્યાખ્યાન કષાય કહે છે. આ રીતે અહીં નઞ્ અલ્પ અર્થમાં સમજાવો જોઈએ.।૧૨।

आवृण्वन्ति प्रत्याख्यानं स्वल्पमपि येन जीवस्य।
तेनाऽप्रत्याख्यानावरणाः स्तेनञ्हिंसोऽल्पार्थः ॥१॥
'प्रत्याख्यानावरण सदृक्त्वाद्वा तथा भवति सिद्धम्।
नञ्त्र,ह्मणवचने तत् सदृशः पुरुष एवेष्टः ॥२॥ इति,

सम्यग्दर्शनं तावत्-त्रिविधं भवति, औपशमिक १ क्षायोपशमिक २ क्षायिक ३ भेदात्, तद् योगात्सम्यग्दृष्टि रुच्यते। देशविरतस्तु-संयतासंयतो व्यपदिश्यते, हिंसादिभ्यो देशतो-विरतत्वात् संयत उच्यते। स एवाऽन्यतः सावद्ययोगादनिवृत्तत्वाद्-असंयतोऽप्युच्यते, अतएव-स संयताऽसंयतो भवति,

---

जो कषाय जीव के अल्प प्रत्याख्यान को भी रोकते हैं, उनको अप्रत्याख्यान कहते हैं इस प्रकार यहां नञ् अल्प अर्थ में समझना चाहिए ॥१॥

अथवा जो प्रत्याख्यान न हो किन्तु उसके सदृश हो, वह अप्रत्याख्यान कहलाता है। जैसे अब्राह्मण कहने पर ब्राह्मण के सदृश किसी अन्य पुरुष का ही बोध होता है ॥२॥

सम्यग्दर्शन तीन प्रकार का है-(१) औपशमिक (२) क्षायोपशमिक और (३) क्षायिक। इनमें से एक भी सम्यग्दर्शन जिसमें पाया जाय वह सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

संयतासंयत को देशविरत कहते हैं, वह एकदेश से अर्थात् आंशिक रूप से हिंसा आदि पापों से निवृत्त होता है, इस कारण उसे संयत कहते हैं और वह सूक्ष्म सावद्य से विरत होने के कारण असंयत भी कहलाता है। इस प्रकार वह संयतासंयत हैं।

અથવા જે પ્રત્યાખ્યાન ન હોય કિન્તુ તેના જેવું જ હોય, તે અપ્રત્યાખ્યાન કહેવાય છે. જેવી રીતે અબ્રાહ્મણ કહેવાથી બ્રાહ્મણના જેવા કોઈ અન્ય પુરૂષ નો જ બોધ થાય છે ॥ ૨ ॥

સમ્યગ્દર્શન ત્રણ પ્રકારનું છે — (૧) ઔપશમિક (૨) ક્ષાયોપશમિક અને (૩) ક્ષાયિક આમાંથી એક પણ સમ્યગ્દર્શન જેનામાં જોવામાં આવે તે સમ્યગ્દષ્ટિ કહેવાય છે.

સંયતાસંતયને દેશવિરત કહે છે, તે એક દેશથી અર્થાત્ આંશિક પણે હિંસા આદિ પાપોથી નિવૃત્ત થાય છે, આથી તેને સંયત કહે છે અને તે સૂક્ષ્મ સાવદ્યથી વિરત ન હોવાના કારણે અસંયત પણ કહેવાય છે. આવી રીતે તે સંયતાસંયત છે. સંયતાસંયત જીવ અવિરત સમ્યગ્દૃષ્ટિના

स खलु–संयतासंयतोऽविरतसम्यग्दृष्टिस्थानाद् असंख्येयानि विशोधि स्थानानि-गत्वाऽप्रत्याख्यानावरणकपायेषु क्षायोपशमं प्रापितेषु प्रत्याख्यानावरणकषायोदयात् सकलप्रत्याख्यानाऽभावात् देशविरतो व्यपदिश्यते उक्तञ्च–

'तस्मादविरत सम्यग्दृष्टि स्थानाद् विशोधिमुपगम्य।
स्थानान्तराण्यनेका न्यारोहति पूर्वविधिनैव ॥१॥
'क्षपयत्युपशमयति वा प्रत्याख्यानावृतः कषायास्तान्।
स ततो येन भवेत् तस्य विरमणे वुद्धिरल्पेऽल्पा ॥२॥
'तस्य तथैव विशोधि स्थानान्यारोहतोऽति संख्यानि।
गच्छन्ति सर्वथाऽपि प्रकर्षतस्ते क्षयोपशमम् ॥३॥
श्रावकधर्मो द्वादश भेदः संभायते ततस्तस्य।
पञ्चत्रिचतुः संख्य व्रत गुणशिक्षामयः शुद्धः ॥४॥

संयतासंयत जीव अविरतसम्यग्दृष्टि के स्थान से असंख्यात अधिक विशुद्धिस्थानों को प्राप्त होता है। अप्रत्याख्यान कषाय का क्षयोपशम हो जाने पर भी प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय होने के कारण उसमें सकल प्रत्याख्यान नहीं होता। इस कारण उसे देशविरत कहते हैं। कहा भी है–

अविरत सम्यग्दृष्टि के स्थान से अनेक (असंख्यात) विशुद्धि-स्थानों पर पूर्वोक्त विधि से वह आरोहण करता है।

प्रत्याख्यानावरण कषाय का जब उपशम या क्षय करता है तब उसकी देशविरति में अल्प वुद्धि होती है ॥२॥

जब वह पहले की भांति असंख्यात विशुद्धिस्थानों पर आरोहण करता है, तब उसके उनका भी क्षयोपशम हो जाता है ॥३॥

સ્થાનથી અસંખ્યાત અધિક વિશુદ્ધસ્થાનોને પ્રાપ્ત થાય છે. અપ્રત્યાખ્યાન કષાયનો ક્ષયોપશમ થઇ જવાથી પણ પ્રત્યાખ્યાનાવરણ કષાયનો ઉદય થવાના કારણે તેમાં સકલ પ્રત્યાખ્યાન થતું નથી. આ કારણે તેને દેશવિરત કહે છે. કહ્યું પણ છે —

અવિરત સમ્યગ્દૃષ્ટિના સ્થાનથી અનેક (અસંખ્યાત) વિશુદ્ધસ્થાનો પર પૂર્વોક્ત વિધિથી તે આરોહણ કરે છે.

પ્રત્યાખ્યાનાવરણ કષાયનો જ્યારે ઉપશમ અથવા ક્ષય કરે છે. ત્યારે તેની દેશવિરતિમાં અલ્પ બુદ્ધિ હોય છે. ॥ ૨ ॥

જ્યારે તે અગાઉની જેમ અસંખ્યાત વિશુદ્ધિસ્થાનો પર આરોહણ કરે છે ત્યારે તેનો પણ ક્ષયોપશમ થઇ જાય છે ॥ ૩ ॥

सर्वं प्रत्याख्यानं येनावृण्वन्ति तदभिलषतोऽपि।
तेन प्रत्याख्याना वरणास्ते निर्विशेषोक्ताः ॥५॥ इति,

इदानीं प्रमत्तसंयतो व्याख्यायते तस्य देशविरतस्य तस्मादपि देशविरति स्थानात्–असंख्येयानि विशोधिस्थानानि आरोहतो मायाख्यतृतीयकषायेषु प्रकर्षेण क्षयोपशमं प्राप्तेषु सर्वं सावद्य योग प्रत्याख्यान विरति र्भवति तथाचोक्तम्–

'देशविरतोऽपि ततः स्थानात् सविशोधिमुत्तमां प्राप्य।
स्थानान्तराणि पूर्वविधिनैव संयात्यनेकानि।१॥

तब उस जीव के बारह प्रकार का श्रावकधर्म उत्पन्न होता है, जिसमें अणुव्रत पांच, गुणव्रत तीन और शिक्षाव्रत चार होते हैं और वह श्रावकधर्म शुद्ध होता है।४॥

प्रत्याख्यान की अभिलाषा करने पर भी जिसके उदय से प्रत्याख्यान न हो सके वह सामान्यत प्रत्यख्यानावरण कषाय कहे गए हैं।५।

अब प्रमत्तसंयत की व्याख्या करते है–जब देशविरत श्रावक देशविरत स्थान से असंख्यात विशुद्धिस्थानों पर आरूढ होता है और तीसरी माया कषाय का अधिकता के साथ क्षयोपशम करता है, तब सर्वसावद्ययोग का प्रत्याख्यान रूप विरतिउत्पन्न होती है। कहा भी है–

देशविरत भी देशविरतिस्थान से विशिष्ट शुद्धि को प्राप्त हो कर पूर्वोवत विधि के अनुसार अनेक स्थानान्तरों को प्राप्त होता है। वह प्रत्याख्यानावरण कषायों का उपशम अथवा क्षय करता

ત્યારે તે જીવને બાર પ્રકારનો શ્રાવકધર્મ ઉત્પન્ન થાય છે જેમાં અણુવ્રત પાંચ ગુણવ્રત ત્રણ અને શિક્ષાવ્રત ચાર હોય છે અને તે શ્રાવકધર્મ શુદ્ધ હોય છે ॥ ૪ ॥

પ્રત્યાખ્યાનની અભિલાષા કરવા છતાં પણ જેના ઉદયથી શક્ય પ્રત્યાખ્યાન ન થઇ શકે તેને સામાન્યતઃ પ્રત્યાખ્યાનાવરણ કષાય કહેવામાં આવ્યા છે. ॥ ૫ ॥

હવે પ્રમત્તસંયતની વ્યાખ્યા કરીએ છીએ જ્યારે દેશવિરત શ્રાવક દેશવિરતિ સ્થાનથી અસંખ્યાત વિશુદ્ધિ સ્થાનો પર આરૂઢ થાય છે અને ત્રીજા માયા કષાયની અધિકતાની સાથે ક્ષયોપશમ કરે છે, ત્યારે સર્વસાવદ્યયોગના પ્રત્યાખ્યાન રૂપ વિરતિ ઉત્પન્ન થાય છે. કહ્યું પણ છે––

દેશવિરત પણ દેશવિરતિ સ્થાનથી વિશિષ્ટ શુદ્ધિને પ્રાપ્ત થઇને પૂર્વોક્ત વિધિ અનુસાર અનેક સ્થાનાન્તરોને પ્રાપ્ત થાય છે ત્યારે તેનામા સર્વવિરતિ

'क्षपयत्युपशमयति वा प्रत्याख्यानावृतः कषायास्तान् ।
स्वततोदयेन भवेत्, तस्य विरमणे सर्वतोऽपि मतिः ॥२॥
छेदोपस्थाप्यं चावृत्तं सामायिकं चरित्रं वा ।
सततो लभते प्रत्याख्यानावरणक्षयोपशमात् ॥३॥

तस्य खलु–तथाभूतस्य संयतस्य सर्वतोविरमण मतियुक्तस्य पञ्चमहाव्रत समितिगुप्तिविशिष्टस्य कषायनिग्रहात्–इन्द्रियदमनाच्च निरुद्धास्रवस्य निर्वेदादि वैराग्यभावनाभिः स्थिरीकृतसंवेगस्य पूर्वोक्त द्वादश बाह्याभ्यन्तरतपोयोगात् सञ्चितकर्माणि निर्जरयतः सूत्रानुसारं यतमानस्य तदानीं मोहनीयकर्मानुभावात् स तथाभूतः संयतः संक्लेशस्थानाद्वा–विशोधि स्थानाद्वाऽन्तर्मुहूर्तात् परावर्तते, तदनन्तरं संज्वलनकषायोदयात्–इन्द्रियविकथा प्रमादाद् योग दुष्प्रणिधानात्कुश-

है, तब उसमें सर्वविरति की भावना उत्पन्न होती है। तत्पश्चात् वह प्रत्याख्यानावरण कषाय के क्षय या उपशम या क्षयोपशम छेदोपस्थापनीय अथवा सामायिक चारित्र को प्राप्त कर लेता है ॥२-३॥

जो श्रमण सर्वविरति को प्राप्त कर चुका है, जो पाँच महाव्रतों, समितियों और गुप्तियों से सम्पन्न है, जिसने कषायों और इन्द्रियों का निग्रह करके आस्रव का निरोध कर दिया है, निर्वेद आदि भावनाओं से जिसका संवेग स्थिर हो चुका है, जो पूर्वोक्त बारह प्रकार के बाह्य और आभ्यन्तर तप के द्वारा संचित कर्मों की निर्जरा करने में उद्यत है, सूत्र के अनुसार यतनाचार करता है, ऐसा साधु जब संक्लेशस्थान से या विशुद्धि स्थान से अन्तर्मुहूर्त्त के बाद पलटता है, तब संज्वलन कषाय के

ની ભાવના ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારબાદ તે પ્રત્યાખ્યાનાવરણ કષાયના ક્ષય અથવા ઉપશમ અથવા ક્ષયોપશમથી છેદોપસ્થાપનીય અથવા સામાયિક ચારિત્રને પ્રાપ્ત કરી લે છે ॥ ૧ – ૩ ॥

જે શ્રમણ સર્વવિરતિને પ્રાપ્ત કરી ચુકયો છે, જે પાંચ મહાવ્રતો સમિતિઓ અને ગુપ્તિઓથી સમ્પન્ન છે, જેણે કષાયો અને ઇન્દ્રિયોનો નિગ્રહ કરીને આસ્રવનો નિરોધ કર્યો છે, નિર્વેદ આદિ ભાવનાઓથી જેનો સંવેગ સ્થિર થઈ ગયેલ છે. જે પૂર્વોકત બાર પ્રકારના બાહ્ય અને આભ્યન્તર તપ દ્વારા સંચિત કર્મોની નિર્જરા કરવામાં ઉદ્યુક્ત છે. સૂત્ર અનુસાર યતનાચાર કરે છે એવા સાધુ જ્યારે સંકલેશ સ્થાનથી અથવા વિશુદ્ધ સ્થાન થી અન્તર્મુહૂર્ત બાદ બદલાય છે. ત્યારે સંજવલન કષાયના ઉદયથી ઇન્દ્રિય

छेषु कर्मस्वप्यनादराच्च संक्लेशाद्धायां स्थितः प्रमत्तसंयतो भवति। (षष्ठ-सप्तमगुणस्थानयोः परस्परं परावर्तनं कुर्वन्तौ, तत्र प्रत्येकत्राऽन्तर्मुहूर्तकालं यावत् स्थित्वा षष्ठ गुणस्थानात्परावृत्य सप्तमे गुणस्थाने गच्छति, तदाऽप्रमत्तसंयतो भवति। सप्तमात्परावृत्य पुनः षष्ठे यदा समायाति तदा प्रमत्तसंयतो भवतीति भावः)। तथाचैते त्रयोऽपि-अविरतसम्यग्दृष्टि देशविरत-प्रमत्तसंयताः आर्त-ध्यानिनो भवन्तीति भावः। चतुर्विधश्चैतदार्तध्यानं कापोत नील कृष्णलेश्यानु-सारि विज्ञेयम् ॥७१॥

उदय से, इन्द्रियविकथा प्रमाद से, योग के अप्रशस्त व्यापार से कुशल कर्मों में अनादर होने से, संक्लेश काल में प्रमत्तसंयत हो जाता है। तात्पर्य यह है कि छठे और सातवें गुणस्थान का परस्पर परिवर्त्तन होता रहता है। इनमें से किसी एक गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त्त काल तक रहकर दूसरे में चला जाता है, जैसे छठे से सातवे में और सातवें से छठे गुणस्थान में आता-जाना रहता है। जब मुनि आत्मध्यान में लीन होता है और बाह्यक्रिया से निवृत्त होता है तब सप्तम गुणस्थान में होता है। जब धर्मोपदेश, गुरुवन्दन भिक्षाचर्या आदि कोई भी बाह्य प्रवृत्ति करता है तब आत्मिक उपयोग से च्युत हो जाने के कारण छठे गुणस्थान में आ जाता है। इस प्रकार इन दोनों गुणस्थानों में परिवर्त्तन होता ही रहता है।

आशय यह है कि अविरतसम्यग्दृष्टि, तक देशविरत और प्रमत्तसंयत में आर्त्तध्यान पाया जाता है। यह चारों प्रकार का आर्त्तध्यान कापोत, नील और कृष्णलेश्या से अनुगत होता है ॥७१॥

વિકથા પ્રમાદથી યોગના અપ્રશસ્ત વ્યાપારથી કુશળ કર્મોમાં અનાદર થવાથી સંકલેશકાળમાં પ્રમત્તસંયત થઇ જાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે છટ્ઠા અને સાતમાં ગુણસ્થાનોનું પરસ્પર પરિવર્ત્તન થતુ રહે છે આમાંથી કોઇ એક ગુણસ્થાનમાં અન્તમુહૂર્ત્ત કાળ સુધી રહીને બીજામાં ચાલ્યો જાય છે જેમ છટ્ઠામાંથી સાતમામાં અને સાતમામાંથી છટ્ઠા ગુગુસ્થાનમાં આવતો - જતો રહે છે. જ્યારે મુનિરાજ આત્મધ્યાનમાં લીન હોય છે અને બાહ્ય ક્રિયાથી નિવૃત્ત થાય છે ત્યારે સપ્તમ ગુગુસ્થાનમાં હોય છે. જ્યારે ધર્મોપદેશ. ગુરૂવંદણા ભિક્ષાચર્યા આદિ કોઈ પણ બહ્ય પ્રવૃત્તિ કરે છે ત્યારે આત્મિક ઉપયોગથી ભ્રષ્ટ થઈ જવાના કારણે છટ્ઠા ગુણસ્થાનમાં આવી જાય છે. આમ આ બંને ગુણસ્થાનોમાં પરિ-ર્ત્તન થતું જ રહે છે.

કહેવાનું એ છે કે અવિરતસમ્યગ્દૃષ્ટિ સુધી દેશવિરત અને પ્રમત્ત-સંયતમાં આર્ત્તધ્યાન જોવામાં આવે છે. આ ચારે પ્રકારના આર્ત્તધ્યાન કાપોત નીલ અને કૃષ્ણલેશ્યાથી અનુગત હોય છે ॥ ૭૧ ॥

मूलम्—रोद्दज्झाणं चउव्विहं, हिंसा—मोस-तेय-संरक्खणानु-बंधि भेयओ अविरय देसविरयाणं ॥७२॥

छाया—रौद्रध्यानं चतुर्विधम्, हिंसा—मृषा—स्तेय संरक्षणानुबन्धि भेदतोऽवि-रत—देशविरतानाम् ॥७२॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं खलु चतुर्विधेषु ध्यानेषु प्रथमं चतुर्विध मप्यार्तध्यानं प्ररूपितम्, संप्रति—क्रमप्राप्तस्य द्वितीयस्य रौद्रध्यानस्य चातुर्विध्यं तत्स्वामित्वञ्च प्रतिपादयितुमाह—'रोद्दज्झाणं चउव्विहं' इत्यादि । रौद्रध्यानं खलु चतुर्विधं भवति, हिंसाहेतुकत्वात्—मृषास्तेय संरक्षणानुबन्धिभेदतः तथाच—रौद्रध्यानस्य हिंसाहेतुकत्वात्—मृषाहेतुकत्वात्—चौर्यहेतुकत्वात्—संरक्षणहेतुकत्वाच्च कार्ये कार-णोपचारात् रौद्रध्यानमपि चतुर्विधं भवति । हिंसा मृषा स्तेय-संरक्षणानुबन्धि-

---

'रोद्दज्झाणं चउव्विहं' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—रौद्रध्यान चार प्रकार का है— (१) हिंसानुबन्धी (२) मृषावादानुबंधी और (४) संरक्षणानुबंधी यह ध्यान अविरत और देशविरति में ही पाया जाता है ॥७२॥

तत्त्वार्थदीपिका—चार प्रकार के ध्यानों में से प्रथम आर्त्तध्यान के चार भेदों का निरूपण किया जा चुका है, अब क्रमप्राप्त दूसरे रौद्रध्यान के भेदों और उनके स्वामियों का प्रतिपादन करते हैं—

रौद्रध्यान हिंसाहेतुक, मृषाहेतुक, चौर्यहेतुक और संरक्षणहेतुक होने से, कार्य में कारण का उपचार करके रौद्रध्यान को भी चार प्रकार का कहा गया है। हिंसा, मृषा, स्तेय और संरक्षण ये चारों रौद्रध्यान की उत्पत्ति के कारण हैं। भाव यह है कि

રોદ્દજ્ઝાણં ચઉવ્વિહં ઇત્યાદિ ॥

સૂત્રાર્થ—રૌદ્રધ્યાન ચાર પ્રકારનું છે— (૧) હિંસાનુબંધી (૨) મૃષાવાદાનુબંધી (૩) સ્તેયાનુબંધી અને (૪) સંરક્ષણાનુબંધી. આ ધ્યાન અવિરત અને દેશવિરતમાં જ જોવા મળે છે, ॥ ૭૨ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા— ચાર પ્રકારના ધ્યાનોમાંથી પ્રથમ આર્ત્તધ્યાનના ચાર ભેદોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે ક્રમપ્રાપ્ત બીજા રૌદ્રધ્યાનના ભેદો અને સ્વામીઓનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ —

રૌદ્રધ્યાન હિંસાહેતુક, મૃષાહેતુક ચૌર્યહેતુક અને સંરક્ષણહેતુક હોવાથી કાર્યમાં કારણનો ઉપચાર કરીને રૌદ્ર ધ્યાનને પણ ચાર પ્રકારના કહેવામાં આવ્યા છે. હિંસા, મૃષા, સ્તેય અને સંરક્ષણ આ ચારે રૌદ્રધ્યાનની ઉત્પત્તિના કારણ

चतुर्णां रौद्रध्यानोत्पत्ते र्निमित्तत्वात् हिंसानुध्यानरूपम्-मृषानुध्यानरूपम्-स्तेयानुध्यानरूपम् संरक्षणानुध्यानरूपञ्च रौद्रध्यानं चतुर्विधं भवतीति भावः। तच्च रौद्रध्यानम् अविरतसम्यग्दृष्टेर्देशविरतस्य च संयतस्य भवति। अथा-ऽविरतस्य रौद्रध्यानसंभवेऽपि देशविरतस्य न तत्सम्भव इति चेत् ? उच्यते-देशविरतस्यापि हिंसा-मृषा-स्तेयाद्यावेशात् धनादिसंरक्षण तन्त्रत्वाच्च कदाचिद् रौद्रध्यानं सम्भवति तत्र-नारकादीनां रौद्रध्यानमकारणं भवति, सम्यग्दर्शनसामर्थ्यात् खलु संयतस्य रौद्रध्यानं न भवति, अपितु-अविरतस्य-देशविरतस्य चैव भवति ॥७२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वतावत्-आर्त-रौद्र धर्म-शुक्लध्यानभेदेन चतुर्विधस्य

रौद्रध्यान चार प्रकार का है-हिंसानुध्यानरूप, मृषानुध्यानरूप स्तेयानुध्यानरूप और संरक्षणानुध्यानरूप। यह रौद्रध्यान अविरतसम्यग्दृष्टि और देशविरत गुणस्थान तक ही होता है।

शंका-अविरत के रौद्रध्यान हो सकता है मगर देशविरत के नहीं हो सकता।

समाधान-देशविरत को भी हिंसा, मृषा, स्तेय आदि का आवेश आ जाता है और धनादि के संरक्षण भी उसे करना होता है अतएव कदाचित् रौद्रध्यान होना संभव है। नारक आदि को अकारण ही रौद्रध्यान बना रहता हैं, मगर संयम के सामर्थ्य के कारण संयत पुरुष में रौद्रध्यान नहीं होना इस प्रकार अविरत और देशविरत में ही रौद्रध्यान का होना है ॥७२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-पहले बतलाया गया है कि आर्त्त, रौद्र, धर्म और

છે ભાવ એ છે કે રૌદ્રધ્યાન ચાર પ્રકારના છે- હિંસાનુધ્યાનરૂપ, મૃષાનુધ્યાનરૂપ, સ્તેયાનુધ્યાનરૂપ સંરક્ષણાનુધ્યાનરૂપ આ રૌદ્રધ્યાન અવિરત સમ્યગ્દૃષ્ટિ અને દેશવિરત ગુણસ્થાન સુધી જ હોય છે.

શંકા—અવિરતને રૌદ્રધ્યાન થઈ શકે છે પરન્તુ દેશવિરતને થઈ શકતું નથી.

સમાધાન- દેશવિરતને પણ હિંસા, મૃષા. સ્તેય આદિનો આવેશ થઈ જાય છે તેમજ ધનાદિનું સંરક્ષણ પણ તેને કરવું પડે છે, આથી કદાચિત્ રૌદ્રધ્યાન થવાની શકયતા રહેલી છે. નારકી આદિના જીવોને કોઈ કારણ વગર જ રૌદ્રધ્યાન રહેલું હોય છે. પરન્તુ સંયમના સામર્થ્યના કારણે સંયત પુરૂષમાં રૌદ્રધ્યાન હોતુ નથી આ રીતે અવિરત અને દેશવિરતમાં જ રૌદ્રધ્યાન હોય છે ॥ ૭૨ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ-પહેલાં બતાવવામાં આવ્યું કે આર્ત્ત, રૌદ્ર, ધર્મ અને

ध्यानस्य प्रत्येकं चातुर्विध्यस्योक्तत्वेन प्रथमोपात्तस्याऽऽर्तध्यानस्या-ऽमनोज्ञ संप्रयोग विप्रयोग स्मृत्यादि भेदत श्चातुर्विध्यं प्रतिपादितम्, सम्प्रति क्रमागतस्य द्वितीयस्य रौद्रध्यानस्य चातुर्विध्यं प्रतिपादयितुमाह-'रोद्दज्झाणं चउव्विहं हिंसा-मोस-तेय-सारक्खणाऽणुबंधि सेयओ, अविरय देसविरयाणं' इति । रौद्रध्यानं रोदयति परान् इति रुद्रः प्राण्युपघातादि परिणतो जीवः तस्य कर्म रौद्रम् हिंसाद्यति क्रूरतारूपम्, तद्ध्यानं रौद्रध्यानम् उक्तञ्च-

संछेदनैर्दहनभञ्जन मारणैश्च बन्धप्रहारदमनै र्विनिकृन्तनैश्च ।
यो याति रागमुपयाति नचानुकम्पां ध्यानं तु रौद्रमिति तत् प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥१॥

तच्चतुर्विधं भवति, तद्यथा-हिंसामृषास्तेयसंरक्षणानुबन्धि भेदतः तथाच-हिंसार्थं मृषार्थं स्तेयार्थं संरक्षणार्थञ्च रौद्रध्यानं भवति, तत्र-हिंसा मृषा स्तेयसंरक्षणोपायेषु प्रवर्तमानस्य प्रचण्डक्रोधाविष्टस्य महामोहाऽभिभूतस्य तीव्रवधबन्धसंक्लिष्टाऽध्यवसायस्य नानाप्रकारकदोषतः सम्भवति । तथाचहिंसा-

---

शुक्लध्यान के भेद से ध्यान चार प्रकार का है । इनमें से आर्त्तध्यान के भी अमनोज्ञसम्प्रयोग स्मृति आदि चार भेद हैं । अब क्रमागत द्वितीय रौद्रध्यान के चार भेदों का प्रतिपादन करने के लिए कहते हैं-

रौद्रध्यान चार प्रकार का है-हिंसानुबंधी, मृषानुबंधी, स्तेयानुबन्धी और संरक्षणानुबन्धी । यह रौद्रध्यान अविरत और देशविरत में ही पाया जाता है । इस प्रकार रौद्रध्यानहिंसा के लिए मृषा के लिए स्तेय के लिए और विषय संरक्षण के लिए होता है । जो पुरुष हिंसा, मृषावाद, स्तेय और संरक्षण के उपायों में प्रवृत्त होता है, तीव्र क्रोध से युक्त होता है, महामोह से ग्रस्त होता है और वध बन्धन आदि संबंधी संक्लिष्ट परिणामों से युक्त होता है, उसमें अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाते हैं । इस प्रकार हिंसा, असत्या,

---

શુકલધ્યાનના ભેદથી ધ્યાન ચાર પ્રકારના છે. આમાંથી આર્ત્તધ્યાનના પણ અમનોજ્ઞ સમ્પ્રયોગ સ્મૃતિ આદિ ચાર ભેદ છે. હવે ક્રમપ્રાપ્ત દ્વિતીય રૌદ્રધ્યાનના ચાર ભેદોનું પ્રતિપાદન કરવા માટે કહીએ છીએ— રૌદ્રધ્યાન ચાર પ્રકારના છે — હિંસાનુબંધી, મૃષાનુબંધી સ્તેયાનુબંધી અને સંરક્ષણાનુબંધી આ રૌદ્રધ્યાન અવિરત અને દેશવિરતમાં જ હોય છે. આ રીતે રૌદ્રધ્યાન હિંસાને માટે મૃષાને માટે સ્તેયને માટે અને વિષયસંરક્ષણને હોય છે. જે પુરૂષ હિંસા, મૃષાવાદ, સ્તેય અને સંરક્ષણના ઉપયોગમાં પ્રવૃત્ત હોય છે. તીવ્ર ક્રોધથી યુકત હોય છે. મહામોહથી પીડિત હોય છે. તેનામાં અનેક પ્રકારના દોષ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. આ રીતે હિંસા અસત્ય ચોરી

ऽनृतस्तेयवधबन्धनादिविषयसंरक्षणहेतुकत्वात् कार्ये कारणोपचारात् हिंसानुबन्धि रौद्रध्यानम्, मृषानुबन्धि रौद्रध्यानम् स्तेयाऽनुबन्धिरौद्रध्यानम्, विषयादि संरक्षणाऽनुबन्धिरूपं रौद्रध्यानं भवतीति भावः। एतच्चतुर्विधमपि रौद्रध्यानम्-'अविरय देसविरयाणं' अविरत-देशविरतयो र्भवति, अविरतसम्यग्दृष्टेः देशविरतस्य च संयताऽसंयतस्य भवति, एतस्य च चतुर्विधस्य रौद्रध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि, उसन्नदोष-बहुदोषा-ऽज्ञानदोषाऽऽमरणान्तदोषरूपाणि बोध्यानि। तत्र-'उसन्न इति प्रायः इत्यर्थे देशीशब्दः, तेन-उसन्न दोष इति प्रायो दोषवत्त्वम्, दोषसम्भवत्त्वमित्यर्थः। तथाहि-हिंसामृषास्तेयसंरक्षणानां चतुर्णां भेदाना मन्यतमे प्रवर्तमानस्य बाहुल्येन दोषो भवति। एवम्-हिंसामृषादिषु चतुर्ष्वपि प्रवर्तमानस्या

चौर्य और विषयों के संरक्षण के कारण होने से, कार्य में कारण का उपचार करके अर्थात् कार्य को ही कारण मान करके हिंसानुबंधी रौद्र ध्यान, मृषानुबंधी रौद्रध्यान, स्तेयानुबंधी रौद्रध्यान और विषयसंरक्षणानुबंधी रौद्रध्यान होता है। यह चारों प्रकार का रौद्रध्यान अविरत और देशविरत में ही पाया जाता है, अर्थात् पांचवें गुणस्थान से उपर यह नहीं होता।

रौद्रध्यान के चार लक्षण हैं-(१) उसन्नदोष (२) बहुदोष (३) अज्ञानदोष और (४) आमरणान्त दोष।

'उसन्न' शब्द प्राय, अर्थ का वाचक और देशीभाषा का है। उसन्न दोष का अभिप्राय है-प्रायः दोषवान् होना-दोषों का संभव होना। हिंसा, मृषा, स्तेय और संरक्षण, इन चार भेदों में से किसी भी एक में जो प्रवृत्ति करता है, उसे बहुलता से दोष लगता है। इसी प्रकार

અને વિષયોના સંરક્ષણના કારણ હોવાથી કાર્યમાં કારણોનો ઉપચાર કરીને અર્થાત્ કાર્યને જ કારણ માની બેસી હિંસાનુબંધી રૌદ્રધ્યાન, મૃષાનુબંધી સ્તેયાનુબંધી રૌદ્રધ્યાન અને વિષયસંરક્ષણાનુબંધી રૌદ્રધ્યાન હોય જ આ ચારે પ્રકારના રૌદ્રધ્યાન અવિરત અને દેશવિરતમાં જ હોય છે. અર્થાત્ પાંચમાં ગુણસ્થાનથી ઉપર આ હોતાં નથી.

રૌદ્રધ્યાનના ચાર લક્ષણ છે -- (૧) ઉસન્નદોષ (૨) બહુદોષ (૩) અજ્ઞાનદોષ અને (૪) આમરણાન્તદોષ

ઉસન્ન શબ્દ પ્રાયઃ અર્થનો વાચક અને દેશી ભાષાનો છે. ઉસન્નદોષનો આશય છે-પ્રાયઃ દોષિત હોવું- દોષોનો સંભવ હોવો હિંસા. મૃષા, સ્તેય અને સંરક્ષણ આ ચાર ભેદોનાંથી કોઈ પણ એક માં જે પ્રવૃત્તિ કરે છે. તેને બહુલતાથી દોષ લાગે છે. આજ જ રીતે જે હિંસા આદિ ચારમાં

ऽभिनिविष्टान्तःकरणस्य बहुदोषताऽज्ञानदोषताच भवति। आमरणान्तदोषस्तु-मरणावस्थायामपि हिंसामृषास्तेयसंरक्षणकृतः स्वल्पोऽपि पश्चात्तापो यस्य न भवति तस्याऽवगन्तव्यः। एभिश्चै-तैर्लक्षणैः खलु हिंसादिविषयरौद्रध्यानं ज्ञायते उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ भगवतीसूत्रे-'रोद्दज्झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-हिंसाणुबंधी, मोसाणुबंधी तेयाणुबंधी, सारक्खणाणुबंधी' रौद्रध्यानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा हिंसानुबन्धि, मृषानुबन्धि, स्तेयानुबन्धि, संरक्षणानुबन्धि इति ॥७२॥

मूलम्-धम्मज्झाणं चउव्विहं, आणाअवायविवागसंठाण-विचयभेयओ, अप्पमत्तसंजयस्स-उवसंत खीणमोहणा य।७३।

छाया-'धर्मध्यानं चतुर्विधम्, आज्ञाऽपाय-विपाक-संस्थानविचयभेदतः, अप्रमत्तसंयतस्य-उपशान्तक्षीणमोहयोश्च ॥७३॥

जो हिंसा आदि चार में प्रवृत्त होता है और जिसका चित्त अभिनिवेष से युक्त होता है, उसमें बहुदोषता और अज्ञानदोषता भी होती है। आमरणान्त दोष उसे समझना चाहिए जिसे मरण-अवस्था में भी हिंसा, असत्य, स्तेय और संरक्षण के लिए स्वल्प भी पश्चात्ताप न हो -जो अन्तिम श्वास तक इन शब्दों का सेवन करता रहे। इन चार लक्षणों से रौद्रध्यान का पता चल जाता है। श्री भगवतीसूत्र में कहा है-'रौद्रध्यान चार प्रकार का है-हिंसानुबंधी, मृषानुबंधी, स्तेयानुबंधी और संरक्षणानुबंधी ॥७२॥

'धम्मज्झाणं चउव्विहं' इत्यादि

सूत्रार्थ—धर्मध्यान चार प्रकार का है-(१) आज्ञा विचय (२) अपाय विचय (३) विपाकविचय और (४) संस्थानविचय। यह ध्यान अप्रमत्तसंयत, उपशान्तमोह और क्षीणमोह संयतों को होता है ॥७३॥

પ્રવૃત્ત થાય છે અને જેનું મનડું અભિનિવેષથી યુક્ત હોય છે તેનામાં બહુ દોષતા અને અજ્ઞાન દોષતા પણ હોય છે આમરણાન્ત દોષ તેને સમજવો જોઈએ જેને મરણ-અવસ્થામાં પણ હિંસા અસત્ય સ્તેય અને સંરક્ષણ માટે થોડો પણ પ્રશ્ચાત્તાપ ન થાય જે અન્તિમ શ્વાસ સુધી આ દોષોનું સેવન કરતો રહે આ ચાર લક્ષણોથી રૌદ્રધ્યાનની જાણ થઈ જાય છે શ્રી ભગવતીસૂત્રમાં કહેવામાં આવ્યું છે ', રૌદ્રધ્યાન ચાર પ્રકારના છે-હિંસાનુબંધી, મૃષાનુબંધી, સ્તેયાનુબંધી અને સંરક્ષણાનુબંધી ॥ ૭૨ ॥

'धम्मज्झाण चउव्विह' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—ધર્મધ્યાન ચાર પ્રકારના છે- (૧) આજ્ઞાવિચય (૨) અપાય-વિચય (૩) વિપાકવિચય અને સંસ્થાનવિચય. આ ધ્યાન અપ્રમત્તસંયત, ઉપશાન્તમોહ અને ક્ષીણમોહ સંયતોને હોય છે ॥ ૭૩ ॥

तत्त्वार्थदीपिका--पूर्वं तावत्—आर्तरौद्रधर्मशुक्लध्यानभेदेन चतुर्विधेषु ध्यानेषु क्रमशः प्रत्येकं चतुर्विधतयाऽऽर्त्तध्यानं-रौद्रध्यानञ्च प्रतिपादितम्, सम्प्रति-क्रमप्राप्तस्य धर्मध्यानस्य चातुर्विध्यं प्रतिपादयितुमाह-'धम्मज्झाणं चउव्विहं' इत्यादि। धर्मध्यानं चतुर्विधम्, तद्यथा आज्ञाविचयः१ अपायविचयः२ विपाकविचयः ३ संस्थानविचयः ४ आज्ञाविचयादिरूपप्रयोजनचातुर्विध्यात् तच्चतुर्विधप्रयोजनकत्वाद् धर्मध्यानमपि चतुर्विधम्, धर्मः-वस्तुस्वभावरूपः, उक्तञ्च--धम्मो वत्थु सहावो खमादि भावो य दसविहो धम्मो।

चारित्तं खलु धम्मो जीवाण य रक्खणं धम्मो ॥१॥

धर्मो वस्तु स्वभावः क्षमादिभावश्च दशविधो धर्मः।
चारित्रं खलु धर्मो जीवानाञ्च रक्षणं धर्म ॥१॥ इति ।

तत्वार्थदीपिका—आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान, के भेद से चार प्रकार के ध्यानों में से प्रत्येक के चार चार भेद होने से आर्त्त और रौद्रध्यान के भेदों का निरूपण किया जा चुका है, अब क्रमप्राप्त धर्मध्यान के चार भेदों का प्रतिपादन करने के लिए सूत्रकार कहते हैं-

धर्मध्यान चार प्रकार का है-(१) आज्ञाविचय (२) अपायविचय (३) विपाक विचय और (४) संस्थान विचय। आज्ञा आदि प्रयोजन चार प्रकार के हैं अतएव धर्मध्यान भी चार प्रकार का है। धर्म वस्तु का स्वभाव है। कहा भी है-

'वस्तु का स्वभाव धर्म कहलाता है। क्षमा आदि दस प्रकार के भाव भी धर्म कहलाते हैं। चारित्र भी धर्म कहलाता है और जीवों का रक्षण करना भी धर्म कहलाता है ॥१॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-આર્ત્તધ્યાન, રૌદ્રધ્યાન, ધર્મધ્યાન અને શુકલધ્યાનના ભેદથી ચાર પ્રકારના ધ્યાનોમાંથી પ્રત્યેકના ચાર ચાર ભેદ હોવાથી આર્ત્ત અને રૌદ્રધ્યાનના ભેદોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે ક્રમપ્રાપ્ત ધર્મધ્યાનના ચાર ભેદોનું પ્રતિપાદન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—

ધર્મધ્યાન ચાર પ્રકારના છે- (૧) આજ્ઞાવિચય (૨) અપાયવિચય (૩) વિપાકવિચય અને (૪) સંસ્થાનવિચય આજ્ઞા આદિ પ્રયોજન ચાર પ્રકારના છે આથી ધર્મધ્યાન પણ ચાર પ્રકારના છે. ધર્મ એ વસ્તુનો સ્વભાવ છે. કહ્યું પણ છે—

વસ્તુનો સ્વભાવ ધર્મ કહેવાય છે. ક્ષમા આદિ દશ પ્રકારના ભાવ પણ ધર્મ કહેવાય છે ચારિત્ર પણ ધર્મ કહેવાય છે અને જીવોનું રક્ષણ કરવું એ પણ ધર્મ કહેવાય છે ' ॥ ૧ ॥

तस्य तद्विषयं वा ध्यानम्, आज्ञाविचयादिरूपप्रयोजनचातुर्विध्यात् तच्चतुर्विधप्रयोजनकत्वाद् धर्मध्यानमपि चतुर्विधम्, तत्र–विचयः चिन्तनम् आज्ञायाः–जिनोपदेशस्य विचय श्चिन्तनम् आज्ञाविचयः वर्तमानोपदेष्टुरभावात् मन्दबुद्धित्वात् ज्ञानावरणादिकर्मोदयात् पदार्थानां सूक्ष्मत्वाच्च हेतुदृष्टान्ताऽभावे सति सर्वज्ञप्रणीतमागमं प्रमाणत्वेनाऽवधार्य–इदमित्थमेव वर्तते यथा भगवता तीर्थकृता प्रतिपादितम् भगवान् खलु जिनो नाऽन्यथावादी' इत्येवं गहनपदार्थ श्रद्धानपूर्वकमर्थावधारणम् आज्ञाविचय उच्यते। यद्वा-स्वयं विदित पदार्थतत्त्वस्य परं प्रतिपादयितुमिच्छतः स्वसिद्धान्ताऽविरुद्धतया तत्त्वसमर्थनार्थं

धर्म का ध्यान या धर्मविषयक ध्यान धर्मध्यान है। उसके चार प्रयोजन हैं, अतएव प्रयोजन के भेद से धर्मध्यान के भी चार भेद हैं।

विचय अर्थात् चिन्तन। आज्ञा का अर्थात् जिनेन्द्र भगवान् के उपदेश का चिन्तन करना आज्ञाविचय है। वर्त्तमान काल में विशिष्ट उपदेष्टा का अभाव होने से, बुद्धि की मन्दता से, ज्ञानावरण कर्म के उदय से वस्तुस्वरूप की गहनता से हेतु और दृष्टान्त के अभाव में भी सर्वज्ञप्रणित आगम को प्रमाण मानना और ऐसा समझना कि 'भगवान् तीर्थंकर ने जो प्रतिपादन किया है वह सत्य एवं तथ्य ही है। वीतराग देव अन्यथावादि नहीं हो सकते।' इस प्रकार की श्रद्धा रखते हुए अर्थ का निश्चय करना आज्ञाविचय धर्मध्यान कहलाता है। अथवा जिसने वस्तु के स्वरूप को स्वयं जान लिया है और जो दूसरों को उसे समझाना चाहता है, वह अपने सिद्धान्त से अविरुद्ध तत्व का समर्थन

ધર્મનું ધ્યાન અથવા ધર્મવિષક ધ્યાન ધર્મધ્યાન છે. તેના ચાર પ્રયોજન છે આથી પ્રયોજનના ભેદથી ધર્મધ્યાનના પણ ચાર ભેદ છે.

વિચય અર્થાત્ ચિન્તન આજ્ઞાનું અર્થાત્ જિનેન્દ્ર ભગવાનના ઉપદેશનું ચિન્તન કરવું આજ્ઞાવિચય છે. વર્ત્તમાનકાળમાં વિશિષ્ટ ઉપદેષ્ટાનો અભાવ હોવાથી બુદ્ધિની મન્દતાથી, જ્ઞાનાવરણ કર્મના ઉદયથી અને વસ્તુસ્વરૂપની ગહનતાથી હેતુ અને દૃષ્ટાન્તના અભાવમાં પણ સર્વજ્ઞપ્રણીત આગમને પ્રમાણ ભૂત માનવા અને એવું સમજવું કે, ભગવાન્ તીર્થંકરે જે પ્રતિપાદન કર્યું છે તે સત્ય અને તથ્ય છે જ. વીતરાગદેવ અન્યથાવાદી હોઈ શકે નહીં', આ જાતની શ્રદ્ધા રાખતા થકાં અર્થનો નિશ્ચય કરવો આજ્ઞાવિચય ધર્મધ્યાન કહેવાય છે અથવા જેણે વસ્તુના સ્વરૂપને સ્વયં પારખી લીધું છે અને જે બીજાઓને તે સમજાવવા ઇચ્છે છે તે પોતના સિદ્ધાન્તથી અવિરુદ્ધ તત્વનું

तर्कनय-प्रमाणपरकं स्मृत्याधानं सर्वज्ञाज्ञाप्रकाशनार्थस्या दाज्ञाविचय उच्यते। अपायविचयस्तावत्-अपायाः रागद्वेषादिजन्या अनर्थाः, तेषां विचयः तद्दोषाऽनुचिन्तनम्, जात्यन्धवद् मिथ्यादृष्टयः सर्वज्ञप्रणीतमार्गाद् विमुखाः मोक्षार्थिनः सम्यङ्मार्गापरिज्ञानात् सुदूरमेव गच्छन्तीति तद्गतापायचिन्तनरूपः यद्वा-मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः खलु इमे प्राणिनः कथमपसरेयुरिति चिन्तनम् अपायविचयः। विपाकविचयस्तु-ज्ञानावरणादीनां कर्मणां द्रव्य-क्षेत्र काल-भाव भवनिमित्तकफलानुभवरूपः। संस्थानविचयः संस्थानानां द्वीपसमुद्राद्याकृतीनां चिन्तनरूपः, इत्येतदर्थम् उत्तमक्षमादिलक्षणं धर्मध्यानं चतुर्विध मव-

के लिए तर्क, नय और प्रमाण पूर्वक सर्वज्ञ भगवान् की आज्ञा को प्रकाशित करता है। यह भी आज्ञाविचय ध्यान है।

राग-द्वेष आदि से उत्पन्न होने वाले अनर्थ 'अपाय' कहलाते हैं। उनका चिन्तन करना अपायविचय है। जो मोक्षार्थी हैं किन्तु जन्मान्ध के समान मिथ्यादृष्टि हैं और सर्वज्ञप्रणीत मार्ग से विमुख हैं, वे समीचीन मार्ग से अनभिज्ञ होने के कारण मोक्ष से दूर ही जाते हैं। उनको जिन अनर्थों का सामना करना पडता है, उनका विचार करना अपायविचय है।

ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का द्रव्य, क्षेत्रकाल, भाव और भव के निमित्त से जो फल प्राप्त होना है, उसका चिन्तन करना विपाकविचय है।

द्वीप, समुद्र, लोक आदि के आकार का चिन्तन करना संस्थानविचय धर्मध्यान है। यह चारों प्रकार का धर्मध्यान अप्रमत्तसंयत में

સમર્થન કરવા માટે તર્ક નય અને પ્રમાણપૂર્વક સર્વજ્ઞ ભગવાનની આજ્ઞાને પ્રકાશિત કરે છે. આ પણ આજ્ઞાવિચય ધ્યાન છે રાગ-દ્વેષ આદિથી ઉત્પન્ન થનારા અનર્થ 'અપાય' કહેવાય છે તેમનું ચિંતનકરવુ અપાયવિચય છે જેઓ મુમુક્ષુ છે પરન્તુ જન્માંધની માફક મિથ્ય દૃષ્ટિવાળા છે અને સર્વજ્ઞપ્રણીત માર્ગથી વિમુખ છે, તેઓ સમીચીન માર્ગથી અનભિજ્ઞ હોવાથી મોક્ષથી આઘા ને આઘા જાય છે. તેમને જે અનર્થોનો સામનો કરવો પડે છે. તેનો વિચાર કરવો અપાયવિચય છે.

જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોનો દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળભાવ અને ભવના નિમિત્તથી જે ફળ પ્રાપ્ત થાય છે તેનું ચિન્તન કરવું વિપાકવિચય છે

દ્વીપ, સમુદ્ર, લોક આદિના આકારનું ચિંતવન કરવું સંસ્થાન વિચય ધર્મધ્યાન છે. આ ચારે પ્રકારના ધર્મધ્યાન અપ્રમત્તસંયતોમાં સાક્ષાત્ હોય

गन्तव्यम्। एवंविध चतुर्विधमपि धर्मध्यानमप्रमत्तसंयतस्य साक्षाद् भवति, किन्तु -अविरत सम्यग्दृष्टिदेशविरत प्रमत्तसंयतानां गौणवृत्त्या धर्मध्यानं बोध्यम्। एव मुपशान्तकषायस्य क्षीणमोहकषायस्य चापि एतच्चतुर्विधं धर्मध्यानं भवति ॥७३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावदुक्तस्य ध्यानस्य आर्त-रौद्र-धर्म-शुक्ल भेदेन चतुर्विधस्योक्तत्वात् तत्र-क्रमशः प्रत्येकं चातुर्विध्यं प्रतिपादयितुम् आर्त्तस्य-रौद्रस्य च चातुर्विध्यं प्रतिपादितम् सम्प्रति-क्रमप्राप्तस्य धर्मध्यानस्य चातुर्विध्यं प्रतिपादयति-'धम्मज्झाणं चउव्विहं, आणा अवाय विवाग संठाणविचय भेयओ, अप्पमत्तसंजयस्स उवसंतखीणमोहाणं य' इति। धर्मध्यानं-सर्वज्ञाऽऽज्ञाद्यनुचिन्तनम्, उक्तञ्च।

'सूत्रार्थसाधनमहाव्रतधारणेषु-बन्धप्रमोक्षगमनागमनेषु चिन्ता।

पञ्चेन्द्रियव्युपरमश्च दया च भूते ध्यानं तु धर्म मिति सम्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥१॥

साक्षात् होता है और अविरतसम्यग्दृष्टि, देशविरत तथा प्रमत्तसंयत में गौणरूप से होता है। इसी प्रकार उपशान्त कषाय और क्षीणकषाय में भी चारों प्रकार का धर्मध्यान होता है ॥७३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले ध्यान के चार भेद कहे गए हैं। उनमें से प्रत्येक के चार-चार भेदों का निरूपण करते हुए आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान के चार-चार भेद कहे जा चुके हैं। अब क्रमप्राप्त धर्मध्यान के चार भेदों का निरूपण करते हैं-

धर्मध्यान चार प्रकार का है- (१) आज्ञाविचय (२) अपायविचय (३) विपाकविचय और (४) संस्थानविचय। यह ध्यान अप्रमत्तसंयत उपशान्तमोह और क्षीणमोह संयतों को होता है। सर्वज्ञ की आज्ञा आदि का चिन्तन धर्मध्यान कहलाता है। कहा भी है-'सूत्रार्थसाधन

છે અને અવિરતસમ્યગ્દષ્ટિ દેશવિરત તથા પ્રમત્તસંયતમાં ગૌણપણાથી હોય છે. આવી જ રીતે ઉપશાન્ત કષાય અને ક્ષીણકષાયમાં પણ ચારે પ્રકારના ધર્મ ધ્યાન હોય છે. ॥ ૭૩ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ--પહેલાં ધ્યાનના ચાર ભેદ કહેવામાં આવ્યા છે. તેમાંથી પ્રત્યેકના ચાર ચાર ભેદોનું નિરૂપણ કરતા થકા આર્ત્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાન ના ચાર ચાર ભેદ કહેવાઇ ગયા છે હવે ક્રમપ્રાપ્ત ધર્મધ્યાનના ચાર ભેદોનું નિરૂપણ કરીએ છીએ--

ધર્મધ્યાન ચાર પ્રકારના છે-(૧) આજ્ઞાવિચય (૨) અપાયવિચય (૩) વિપાકવિચય અને (૪) સંસ્થાનવિચય આ ધ્યાન અપ્રમત્તસંયત, ઉપશાન્તમોહ અને ક્ષીણમોહ સંયતોને થાય છે. સર્વજ્ઞની આજ્ઞા આદિનું ચિંતન ધર્મધ્યાન

इति, तच्चतुर्विधं भवति, तद्यथा-आज्ञाऽपाय-विपाकसंस्थानविचय भेदतः। तथा च आज्ञाविचयार्थम् अपायविचयार्थम् संस्थानविचयार्थञ्च धर्म ध्यानं भवति। तत्राऽऽज्ञा तावत् सर्वज्ञतीर्थकृत् प्रणीतागमरूपा, तस्या विचयः-अनुचिन्तनम् तथाविधाज्ञायाः आगमरूपायाः पूर्वापरविशुद्धतयाऽतिनिपुणतया सकलजीवकायहितकारितयाऽनवद्यतया महार्थतया महानुभावतया निपुणजन विज्ञेयतया द्रव्यपर्याय विस्तारयुक्ततयाऽनादि निधनतया विचयः पर्यालोचनम्। उक्तञ्च नन्दीसूत्रे-५८। 'इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाइ णासी' इत्यादि, 'इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं न कदाऽपि नासीत्' इति, तत्र यदि

महाव्रतधारण, बन्ध, मोक्ष और गमना-गमन का चिन्तन, पांचों इन्द्रियों के विषयों से उपशम और जीवदया को ध्यानवेत्ता पुरुष धर्म ध्यान कहते हैं।

आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय के भेद से धर्मध्यान चार प्रकार का है। सर्वज्ञ तीर्थंकर द्वारा उपदिष्ट आगम को आज्ञा कहते हैं, उसका चिन्तन करना आज्ञाविचय ध्यान है। तीर्थंकर की आज्ञा पूर्वापरविरोध से रहित है, अत्यन्त निपुण है समस्त जीवों का हित करने वाली है, निरवद्य है, महार्थ से युक्त है, महानुभाव है, कुशल पुरुषों द्वारा ही ज्ञेय है, द्रव्यों और पर्यायों के विस्तार से युक्त है और अनादिनिधन है, इस प्रकार चिन्तन करना आज्ञाविचय है।

नन्दीसूत्र में कहा है-'यह द्वादशांग गणिपिटक कभी नहीं था,

કહેવાય છે. વળી કહ્યું પણ છે—સૂત્રાર્થસાધન, મહાવ્રતધારણ બન્ધ, મોક્ષ અને ગમનાગમનનું ચિંતન, પાંચે ઈન્દ્રિયોના વિષયોથી ઉપશમ અને જીવ—દયાને, ધ્યાનવેત્તા પુરૂષ ધર્મધ્યાન કહે છે.

આજ્ઞાવિચય, અપાયવિચય, વિપાકવિચય અને સંસ્થાનવિચયના ભેદથી ધર્યધ્યાન ચાર પ્રકારના છે. સર્વજ્ઞ તીર્થંકર દ્વારા ઉપાદિષ્ટ આગમ ને આજ્ઞા કહે છે, તેનું ચિન્તન કરવું આજ્ઞાવિચય ધ્યાન છે. તીર્થંકર ની આજ્ઞા પૂર્વાપર વિરોધથી રહિત છે. અત્યન્ત નિપુણ છે સમસ્ત જીવોનું હિત કરનારી છે, નિરવદ્ય છે મહાર્થથી યુકત છે મહાનુભાવ છે. કુશળ પુરૂષો દ્વારા જ જ્ઞેય છે દ્રવ્યો અને પર્યાયોના વિસ્તારથી યુકત છે અને અનાદિ નિધન છે. આ જાતનું ચિન્તન કરવું આજ્ઞા વિચય છે.

નન્દીસૂત્રમાં કહ્યું છે—આ દ્વાદશાંગ ગણિપિટક કયારેય પણ ન હતું એમ

प्रज्ञादुर्बल तयोपयुक्तेऽपि सूक्ष्मधिया केवलज्ञानरूपया विनिश्चिन्वन्तः सत्यवादिनः क्षीणरागद्वेषमोहाः सर्वज्ञाः खलु यद्रूपेण यद्वस्तु व्यवस्थितं भवति तद्वस्तु तेनैव रूपेण प्रतिपादयति न तद्वस्तु तदन्यथारूपेण प्रतिपादयति मृषाभाषणकारणाऽभावात् तस्मात्–सत्यमेवेदं शास्त्रम् आगमरूपम् नाना दुःख जटिलात् संसारार्णवात् समुत्तारकं वर्तते इत्येव माज्ञारूपागमे स्मृत्याधानम् आज्ञाविचयरूपं प्रथमं धर्मध्यान मुच्यते १ अपायविचय स्ता न्–द्वितीयं धर्मध्यान मुच्यते, आपायानां शारीरिक –मानसिक दुःखानां विनाशोऽनुचिन्तनम् इहाऽमुत्र च राग–द्वेषाकुलचित्तवृत्तयः

ऐसा नहीं है, कभी नहीं है, ऐसा भी नहीं है, कभी नहीं होगा, ऐसाभी नहीं है इत्यादि, यदि प्रज्ञा की दुर्बलता के कारण उपयोग लगाने पर भी कोई वास्तविक वस्तु को नहीं समझ पाता तो यही समझना चाहिए कि मेरा ज्ञान आवरणवाला है, इसी कारण मेरी समझ में नहीं आता। जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा वस्तुस्वरूपको जाना है, वे राग द्वेष और मोह से रहित हैं एवं सर्वज्ञ हैं। जो वस्तु जिस रूप में है, उसे वे उसीरूप में प्रतिपादन करते हैं, अन्यथा रूप में नहीं। उनमें मिथ्या भाषण का कोई कारण विद्यमान नहीं हैं। अतएव यह आगम–शास्त्र सत्य ही है और यह विविध प्रकार के दुःखों से व्याप्त संसार सागर से तारने वाला है। इस प्रकार आज्ञारूप आगम में स्मृत्याधान करना आज्ञाविचय नामक प्रथम धर्मध्यान है।

दूसरा धर्मध्यान अपायविचय है। अपायों का अर्थात् शारीरिक और मानसिक दुःखों का चिन्तन करना अपायविचय है। 'जिनका

નથી, ક્યારેયપણ નથી, એમ પણ નથી, ક્યારે પણ હશે નહી એવું પણ નથી, ઈત્યાદિ જો પ્રજ્ઞાની દુર્બળતાના કારણે ઉપયોગ લગાવવાથી પણ કોઈ વાસ્તવિક વસ્તુ ન સમજાય તો એમ જ સમજવું જોઈએ કે મારૂં જ્ઞાન આવરણ વાળું છે. આથી જ મારી સમજણમાં આવતું નથી જિનેન્દ્ર ભગવાને કેવળ જ્ઞાન દ્વારા વસ્તુ સ્વરૂપને જાણ્યું છે. તેઓ સત્યવકતા છે. રાગદ્વેષ તથા મોહથી રહિત છે તેમજ સર્વજ્ઞ છે. જે વસ્તુ જે સ્વરૂપે છે. તેને તેઓ એ જ સ્વરૂપે પ્રતિપાદન કરે છે. અન્યથા રૂપે નહીં તેમનામાં મિથ્યાભાષણનું કોઈ કારણ વિદ્યમાન નથી આથી આ આગમ–શાસ્ત્ર સત્ય જ છે અને આ વિવિધ પ્રકારના દુઃખોથી વ્યાપ્ત સંસારસાગરથી તારનાર છે' આ રીતે આજ્ઞારૂપ આગમમાં સ્મૃત્યાધાન કરવું આજ્ઞા વિચય નામક પ્રથમ ધર્મધ્યાન છે

બીજું ધર્મધ્યાન અપાયવિચય છે. અપાયોનો અર્થાત્ શારીરિક અને માનસિક દુઃખોનું ચિન્તન કરવું અપાયવિચય છે. જેમનું ચિત્ત રાગ અને

खलु प्राणिनो मूलोत्तरप्रकृतिविभागकृतजन्मजरामृत्युसागरपरिभ्रमणश्रान्तान्तरात्मनः सांसारिकसुखप्रपञ्चेषु तृप्तिरहितमानसाः शरीरेन्द्रियादिषु कर्मास्रवद्वारप्रवाहेषु तिष्ठन्तो मिथ्यात्वाऽज्ञानाऽविरतिपरिणतियुक्ता भवन्ति' इत्येवं विवेचनं तावद् अपायविचयरूपं द्वितीयं धर्मध्यानं भवति २। अथ तृतीयं तावद् धर्मध्यानं विपाकविचयरूपमुच्यते, विविधो-विशिष्टो वा पाको-विपाकः, अनुभावो नरक-तिर्यङ् मनुष्यदेवभवेषु कर्मणां रसानुभव उच्यते, तस्य खलु तथाविधरसानुभवरूपविपाकस्य विचयोऽनुचिन्तनम्-मार्गणं तत्समवहितचित्तः सन् तत्रैव स्मृतिमाधाय वर्तमानो विपाकविचयध्यानवान् भवति। तथाहि-ज्ञानावरणादिकमष्टविधं कर्म प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेश भेदम् इष्टाऽनिष्ट

चित्त राग और द्वेष से व्याकुल है, ऐसे प्राणी अपने किये कर्मों के अनुसार जन्म-जरा-मरण रूपी सागर में परिभ्रमण करते शान्त हो गए, सांसारिक सुखों में तृप्तिरहित चित्त वाले हैं, शरीर और इन्द्रिय आदि कर्मों के आस्रवद्वारों में स्थित हैं और मिथ्यात्व, अविरति एवं अज्ञान की परिणति से युक्त हैं। इस प्रकार का विचार करना अपायविचय नामक दूसरा धर्मध्यान है।

तीसरा धर्मध्यान विपाक विचय है। विविध प्रकार का अथवा विशिष्ट पाक अर्थात् नरकगति तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति में होने वाले कर्म-रस का अनुभव विपाक कहलाता है। उस रसानुभव रूप विपाक का विचय अर्थात् चिन्तन करना विपाकविचयध्यान है। जो कर्म-विपाक में ही चित्त लगा देता है और उसका चिन्तन करता है वह विपाकविचयध्यानवान् कहलाता है।

દ્વેષથી વ્યાકુળ છે, એવા પ્રાણિ પોતાના કરેલાં કર્મો અનુસાર જન્મ- જરા મરણ રૂપી સાગરમાં પરિભ્રમણ કરતાં કરતા થકી ગયા છે. સાંસારિક સુખો માં તૃપ્તિરહિત ચિત્તવાળા છે. શરીર અને ઈન્દ્રિય આદિ કર્મોના આસ્રવદ્વાર માં સ્થિત છે અને મિથ્યાત્વ અવિરતિ અને અજ્ઞાનની પરિણતિથી યુક્ત છે- આ પ્રમાણે વિચારવું અપાયવિચય નામક બીજું ધર્મધ્યાન છે. ત્રીજું ધ્યાન વિવિધ વિપાકવિચય છે વિવિધ પ્રકારનો અથવા વિશિષ્ટ પાક અર્થાત્ નરકગતિ તિર્યંચ ગતિ, મનુષ્યગતિ અને દેવગતિમાં થનારા કર્મ રસનો અનુભવ વિપાક કહેવાય છે. તે રસાનુભવ રૂપ વિપાકનો વિચય અર્થાત્ ચિન્તન કરવું વિપાકવિચય ધ્યાન છે. જે કર્મ વિપાકમાં જ ચિત્ત લગાવી દે છે- અને તેનું ચિંતન કરે છે તે વિપાકવિચયધ્યાન કહેવાય છે.

विपाकपरिणामं जघन्य-मध्यमोत्कृष्टस्थितिकं नानाप्रकारविपाकयुक्तं भवति, यथा-ज्ञानावरणात् दुर्मेधस्त्वम् १ दर्शनावरणाच्च-चक्षुर्वैकल्यं, सामान्य ग्राहि-बोधवैकल्यं, निद्राद्युद्भवश्च २ वेदनीयम्, असद्वेद्य-सद्वेद्यभेदाद् द्विविधम् । तत्रा-ऽसद्वेद्याद् दुःखम् सद्वेद्यात्सुखानुभवः ३ मोहनीयकर्मोदयात् विपरीतग्राहित्वं चारित्रनिवृत्तिश्च ४ आयुःकर्मोदयादनेक भवोद्भवश्च ५ नामकर्मोदयाद् शुभाऽशुभ शरीरादिनिष्पत्तिः ६ गोत्रकर्मोदयाच्च नीचकुलोत्पत्तिः ७ अन्तरायोदयात्खलु-अलाभो भवति इत्येवं खलु निरुद्धचेतसः कर्मविपाकानुसरणे एव स्मृत्याधा-

प्रकृति, स्थिति, अनुभाव और प्रदेश इस प्रकार भेदवाले, तथा अनिष्ट परिणमन वाले, जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट स्थिति वाले ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के कर्म विविध प्रकार के विपाक को उत्पन्न करते हैं, जैसे—ज्ञानावरण कर्म से मन्दबुद्धिता एवं दर्शना वरण कर्म के उदय से नेत्रहीनता, दर्शनहीनता, और निद्रा आदि का उद्भव होता है। वेदनीय कर्म दो प्रकार का है—असातावेदनीय और सातावेदनीय। असातावेदनीय से दुःख और सातावेदनीय से सुख का अनुभव होता है। मोहनीय कर्म के उदय से विपरीत ग्रहण तथा चारित्र का अभाव होता है। आयुकर्म के उदय से अनेक भवों में जन्म लेना पडता है। नाम कर्म के उदय से अच्छे-बुरे शरीर की रचना होती है। गोत्र-कर्म के उदय से उच्च-नीच कुलों में उत्पत्ति होती है। अन्तराय कर्म के उदय से लाभ आदि में विघ्न उत्पन्न होता है। चित्त को एकाग्र करके इस प्रकार कर्मविपाक का चिन्तन करना विपाकविचय नामक धर्मध्यान है।

પ્રકૃતિ, સ્થિતિ અનુભાવ અને પ્રદેશ આ જાતના ભેદ વાળા, ઈષ્ટ તથા અનિષ્ટ પરિણમનવાળા. જઘન્ય મધ્યમ અને ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિવાળા, જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ પ્રકાર ના કર્મ, વિવિધ પ્રકારના વિપાકને ઉત્પન્ન કરે છે જેમકે-જ્ઞાનાવરણ કર્મથી મન્દબુદ્ધિતા અને દર્શાનાવરણ કર્મના ઉદયથી નેત્રહીનતા દર્શનહીનતા અને નિદ્રા વગેરેનો ઉદ્ભવ થાય છે. વેદનીય કર્મ બે પ્રકારના છે-અસાત વેદનીય અને સાતાવેદનીય, અસાતાવેદનીયથી દુઃખ અને સાતાવેદનીય થી સુખનો અનુભવ થાય છે. મોહનીય કર્મના ઉદયથી વિપરીત ગ્રહણ તથા ચારિત્રનો અભાવ થાય છે. આયુષ્યકર્મના ઉદયથી અનેક ભવોમાં જન્મ લેવો પડે છે નામકર્મના ઉદયથી સારા નરસા શરીરની રચના થાય છે ગોત્રકર્મના ઉદયથી લાભ આદિમાં અન્તરાય ઉત્પન્ન થાય છે. ચિત્તને એકાગ્ર કરીને આ રીતે કર્મવિપાકનું ચિન્તન કરવું વિપાકવિચય નામક ધર્મધ્યાન છે.

नतो धर्मध्यानं भवति। अथ संस्थानविचयो नाम चतुर्थं धर्मध्यान मुच्यते, तत्र लोकस्य द्रव्याणाञ्च संस्थानम् आकारविशेषः, तत्र लोकः-चतुर्दशरज्जुप्रमाणो -धर्माधर्मादि पञ्चास्तिकायात्मकः-अशेष द्रव्याधारभूतो वैशाख स्थान कटिन्यस्त करयुग्मपुरुषोपलक्षित आकाशखण्डरूपः, तस्य स्थानं तावदधोमुखमल्लकवद् वर्तते। अधोलोकस्य संस्थानन्तु-स्थालवद् बोध्यम्। तिर्यग्लोकस्य संस्थानं पुन रूर्ध्व मधोमल्लकसमुद्गवद् वर्तते, तत्रापि-तिर्यग् लोको ज्योतिष्क वानव्यन्तर व्याप्तो भवति, असंख्येया द्वीपसमुद्रा वलयाकृतयो धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवा स्तिकायस्वरूपाः अनादिनिधनसन्निवेशशालिन आकाशप्रतिष्ठि ताः क्षिति वलयद्वीप-

चौथा धर्मध्यान संस्थान विचय है। लोक का या द्रव्यों का आकार संस्थान कहलाता है। इनमें से लोक चौदह रज्जु परिमाण वाला है, धर्म-अधर्म आदि पांच अस्तिकायमय है समस्त द्रव्यों का आधार है और कमर पर दोनों हाथ रखकर तथा पांव फैलाकर खडे हुए पुरुष के आकार का है। यह लोक सम्पूर्ण आकाश का एक खण्ड है। लोक तीन भागों में विभक्त है-अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक। इनमें से अधोलोक का आकार अधोमुख मल्लक (सिकोरा के समान है। मध्यलोक थाली के आकार का है और ऊर्ध्वलोक उस सिकोरे के आकार का है जिसका मुख ऊपर की ओर हो तिर्छा लोक मनुष्यों, तिर्यंचों ज्योतिष्क देवों और वानव्यन्तर देवों से व्याप्त है। इसमें असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं और वे सब वलय की तरह गोलाकार हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और जीवास्तिकाय स्वरूप हैं, अनादिनिधन सन्निवेश से युक्त हैं, आकाश पर आश्रित हैं। इसी

ચોથું ધર્મધ્યાન સંસ્થાન વિચય છે. લોકનો અથવા દ્રવ્યોનો આકાર સંસ્થાન કહેવાય છે આમાંથી લોક ચૌદ રજ્જુ પરિમાણ વાળો છે. ધર્મ અધર્મ આદિ પાંચ અસ્તિકાયમય છે સમસ્ત દ્રવ્યોનો આધાર છે અને કમર પર બંને હાથ રાખીને તથા પગ પસારીને ઉભા રહેલા પુરૂષના આકારનો છે. આ લોક સમ્પૂર્ણ આકાશનો એક ભાગ છે લોક ત્રણ ભાગોમાં વહેંચાયલો છે- અધોલોક, મધ્યલોક અને ઉર્ધ્વલોક આમાંથી અધોલોકનો આકાર અધોમુખ મલ્લક (શકોરૂં) ના જેવો છે. મધ્યલોક થાળીના આકારે છે જેનું મુખ ઉપરની બાજુએ હોય તિર્છાલોક મનુષ્યો, તિર્યંચો ,જ્યોતિષ્કદેવો. અને વાનવ્યન્તર દેવોથી વ્યાપ્ત છે એમાં અસંખ્યાત દ્વીપ અને સમુદ્ર છે અને તે સઘળા બંગડીની આકૃક ગોળાકાર છે ધર્મ અધર્મ, આકાશ તેમજ જીવાસ્તિકાય સ્વરૂપ છે, અનાદિનિધન સન્નિવેશથી યુકત છે. આકાશ પર

सागरनरकविमानभवनादि संस्थानानि बोध्यानि, आत्माचो–पयोगलक्षण–अनादि निधनः शरीरात्–अर्थान्तरभूतः–अरूपी–कर्ता–भोक्ताच स्वकृतकर्मणा स्व–स्वदेह-परिमितः, मुक्तौ त्रिभागहीनाकारश्च भवति, । ऊर्ध्वलोक स्तावत्–सौधर्मकल्पादयो द्वादशकल्पाः परिपूर्णपूर्णिमा माण्डलाकाराः, नव ग्रैवेयकाणि पञ्चोत्तरमहाविमानानि –ईषत्प्राग्भारा च अधोलोकोऽपि भवनपतिदेवनारकाधिवसतिः धर्मास्तिकाया–धर्मास्तिकायौ लोकाकारौ गतिस्थिति हेतु भूतौ वर्त्तेते, आकाश मवगाहलक्षणं वर्तते, पुद्गलद्रव्यं शरीरादिकार्यजनकं वर्तते इत्येव लोकद्रव्यसंस्थानस्वाभावाऽनुसन्धा-

प्रकार पृथ्वी, द्वीप, सागर, नरक, विमान एवं भवन आदि के संस्थान आकार समझ लेना चाहिए।

आत्मा उपयोगमय है, अनादिनिधन है, शरीर से भिन्न है, अरूपी, कर्त्ता, भोक्ता और अपने कर्म के अनुसार प्राप्त देह के बराबर है। मुक्त दशा में अन्तिम शरीर से तीसरा भाग कम आकार वाला रहता है।

ऊर्ध्वलोक में सौधर्म आदि बारह कल्प हैं जो पूर्णिमा के सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल के आकार के हैं, नौ ग्रैवेयक विमान हैं पांच अनुत्तर महाविमान हैं और ईषत्प्राग्भार पृथ्वी (सिद्धशिला) है। अधोलोक नारकों और भवनपति देवों की निवासभूमि है। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय लोक के आकार के हैं और गति तथा स्थिति के निमित्त कारण हैं। आकाश का लक्षण अवगाह देना है। पुद्गल द्रव्य शरीर आदि का जनक है। इस प्रकार लोक, द्रव्य आदि के संस्थान–स्वभाव का

આશ્રિત છે આવી જ રીતે પૃથ્વી, દ્વીપ, સાગર, નરક, વિમાન તથા ભવન આદિના સંસ્થાન આકાર સમજી લેવા જોઇએ

આત્મા ઉપયોગમય છે, અનાદિ નિધન, શરીરથી ભિન્ન છે અરૂપી, કર્ત્તા, ભોક્તા અને પોતાના કર્માનુસાર પ્રાપ્ત દેહની બરાબર છે. મુક્ત દશામાં અન્તિમ શરીરથી ત્રીજો ભાગ ઓછો એટલા આકારવાળો રહે છે

ઉર્ધ્વલોકમાં સૌધર્મ આદિ બાર કલ્પ છે જે પૂર્ણિમાના સમ્પૂર્ણ ચન્દ્ર મન્ડળના આકારના છે. નવ ગ્રૈવેયક વિમાન છે પાંચ અનુત્તર મહાવિમાન છે અને ઇષત્પ્રાગ્ભાર પૃથ્વી (સિદ્ધશિલા) છે અધોલોક નારકી અને ભવનપતિ દેવોની નિવાસભૂમિ છે. ધર્માસ્તિકાય અને અધર્માસ્તિકાય લોકના આકારના છે અને ગતિ તથા સ્થિતિના નિમિત્ત કારણ છે. આકાશનુ લક્ષણ અવગાહ આપવાનુ છે પુદ્ગલદ્રવ્ય શરીર આદિ કાર્યોનો જનક છે. આ રીતે લોક દ્રવ્ય આદિના સંસ્થાન સ્વભાવનું અનુચિન્તન કરવું સંસ્થાન વિચય ધર્મધ્યાન

नार्थं स्मृत्याधानं चतुर्थं संस्थानविचयाख्यं ध्यान मुच्यते। इत्थञ्च-धर्मध्यानेन पदार्थस्वरूपपरिज्ञानरूपस्तत्त्वावबोधो भवति, तत्त्वावबोधाच्च सत्क्रियानुष्ठानं क्रियते, सत्क्रियानुष्ठानाच्च मोक्ष-प्राप्तिर्भवति। एतच्च चतुर्विधमपि धर्मध्यानम् अप्रमत्तसंयतस्य भवति। प्रमत्तसंयतस्थानात् विशुद्धयमानाऽध्यवसायोऽप्रमत्तसंयतस्थानमासादयति, तस्मात्-विशुद्धायां विद्यमानस्याऽप्रमत्तसंयतस्य खलु तस्य धर्मध्यानादि तपो योगैः कर्माणि क्षपयतो विशोधिस्थानान्तराणि समारोहतश्चाऽऽमर्शौषध्यादिलब्धयः प्रादुर्भवन्ति। उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ श्रीभगवतीसूत्रे २५ शतके ७ उद्देशके ८०२ सूत्रे-'धम्मे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा, आणाविचए, अवायविचए, विवागविचए संठाणविचए' धर्मध्यानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्; तद्यथा-आज्ञाविचयः, अपायविचयः, विपाकविचयः, संस्थानविचय इति ॥७३॥

अनुचिन्तन करना संस्थान विचय धर्मध्यान कहलाता है धर्मध्यान से पदार्थ के परिज्ञान रूप तत्त्वबोध की प्राप्ति होती है, तत्त्वबोध से सत्क्रिया का अनुष्ठान होता है और सत्क्रिया के अनुष्ठान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह चारों प्रकार का धर्मध्यान अप्रमत्त संयत को होता है।

प्रमत्तसंयत के स्थान से जिसके अध्यवसाय विशुद्धि को प्राप्त होते हैं वह अप्रमत्तसंयतस्थान को प्राप्त करता है। इस प्रकार जो विशुद्धता में वर्त्त रहा है, धर्मध्यान आदि तपोयोग से कर्मों का क्षय कर रहा है और अधिकाधिक विशुद्ध अध्यवसायों को प्राप्त कर रहा है, ऐसे अप्रमत्त संयत को आशीविष आदि लब्धियाँ उत्पन्न होती हैं। भगवतीसूत्र शतक २५ उद्देशक ७ में कहा है-'धर्मध्यान चार प्रकार का कहा गया है, यथा-आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय।७३।

કહેવાય છે. ધર્મધ્યાનથી પદાર્થના પરિજ્ઞાન રૂપ તત્વબોધની પ્રાપ્તિ થાય છે, તત્વબોધથી સત્ક્રિયાનું અનુષ્ઠાન થાય છે અને સત્ ક્રિયાના અનુષ્ઠાનથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. આ ચારે પ્રકારના ધર્મધ્યાન અપ્રમત્તસંયતને થાય છે

પ્રમત્તસંયતના સ્થાનથી જેના અધ્યવસાય વિશુદ્ધિને પ્રાપ્ત થાય છે તે અપ્રમત્તસંયતસ્થાનને પ્રાપ્ત કરે છે આ રીતે જે વિશુદ્ધતામાં વર્ત્તી રહ્યો હોય, ધર્મધ્યાન આદિ તપયોગથી કર્મોનો ક્ષય કરી રહ્યો હોય અને અધિકાધિક વિશુદ્ધ અધ્યવસાયોને પ્રાપ્ત કરી રહ્યો હોય એવા અપ્રમત્તસંયતને આશીવિષ આદિ લબ્ધિઓ ઉત્પન્ન થાય છે. ભગવતીસૂત્ર શતક ૨૫ ઉદ્દેશક ૭, માં કહ્યું છે-ધર્મધ્યાન ચાર પ્રકારના કહેવામાં આવ્યા છે યથા આજ્ઞાવિચય, અપાયવિચય, વિપાક વિચય અને સંસ્થાનવિચય ॥ ૭૩ ॥

मूलम्-सुक्कज्झाणे चउव्विहे, पुहुत्तवियक्कसवियार-एगत्त-वियक्कअवियार-सुहुमकिरिय अनियट्टि-समुच्छिन्नकिरिय अप-डिवाइ भेयओ ॥७४॥

छाया-'शुक्लध्यानं चतुर्विधम्, पृथक्त्ववितर्कसविचारैकत्ववितर्का विचारसूक्ष्मक्रियाऽनिवर्ति, समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति भेदतः ॥७४॥

तत्त्वार्थदीपिका---'पूर्वं तावद् धर्मध्यानं चतुर्विधम्, आज्ञाविचयादि भेदतः प्ररूपितम् सम्प्रति-शुक्लध्यानं चतुर्विधतया प्ररूपयितुमाह-'सुक्कज्झाणे चउव्विहे' इत्यादि। शुक्लध्यानं शु-इति शुचं-शोकं, क्ल इति क्लमयति-अपनयतीति शुक्लं- भवक्षयकारणम्, तच्च तद्ध्यानं च शुक्लध्यानम्। उक्तञ्च

'यस्येन्द्रियाणि विषयेषु पराङ्मुखानि संकल्पकल्पनविकल्प विकारदोषैः।
योगैः सच त्रिभिरहो निभृतान्तरात्मा ध्यानोत्तम प्रवरशुक्लमिदं वदन्ति ॥१॥

'सुक्कज्झाणे चउव्विहे' इत्यादि

सूत्रार्थ—शुक्लध्यान चार प्रकार का है-(१) पृथक्त्ववितर्कसविचार (२)एकत्ववितर्क-अविचार (३) सूक्ष्म क्रियानिवर्ति, और (४) समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति ॥७४॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले आज्ञाविचय आदि के भेद से चार प्रकार का धर्मध्यान कहा गया है, अब शुक्लध्यान के चार भेदों की प्ररूपणा करते हैं-शुक्लशब्द का अर्थ इस प्रकार है-'शु' अर्थात् शुच-शोक 'क्ल' अर्थात् दूर करने वाला। तात्पर्य यह है कि जिससे जन्म-मरण का दुःख दूर हो जाय उसे शुक्ल कहते हैं, ऐसा ध्यान शुक्लध्यान कहलाता है। कहा भी है-' जिसकी इन्द्रियाँ विषयों से विमुख हो

'सुक्कज्झाणे चउव्विहे' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—શુકલધ્યાન ચાર પ્રકારના છે-(૧) પૃથકત્વવિતર્કસવિચાર (૨) એકત્વવિતર્ક-અવિચાર (૩) સૂક્ષ્મક્રિયાનિવર્ત્તિ અને (૪) સમુચ્છિન્નક્રિયા-પ્રતિપાત ॥ ૭૪ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા આજ્ઞાવિચય આદિના ભેદથી ચાર પ્રકારના ધર્મધ્યાન કહેવામાં આવ્યા છે, હવે શુકલધ્યાનના ચાર ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

શુકલ શબ્દનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે- 'શુ' અર્થાત્ શુચ-શોક, 'કલ' અર્થાત દૂર કરનાર તાત્પર્ય એ છે કે જેનાથી જન્મ મરણનું દુઃખ દૂર થઈ જાય તેને શુ-લ કહે છે આવું ધ્યાન શુકલ-ધ્યાન કહેવાય છે. કહ્યું પણ છે-' જેની ઇન્દ્રિયો વિષયોથી વિમુખ થઈ ચુકી છે, જેનામાંથી સંકલ્પ

चतुर्विध प्रज्ञप्तम् तद्यथा-पृथक्त्वसविचारादिभेदतः, तथा च-पृथक्त्व-वितर्कसविचारम् १ एकत्ववितर्काऽविचारम् २ सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्ति ३ समुच्छिन्न-क्रियाऽप्रतिपाति ४ चेत्येतच्चतुर्विधं शुक्लध्यानं भवति। तत्र प्रथमं पृथक्त्व-वितर्क सविचारम् पूर्वगतश्रुतज्ञानानुसारेण ध्येयविशेष गतोत्पादादिनानापर्यायाणां द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकादि नानानयैरर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिसहित मनुचिन्तनम् अत्र पूर्वगताः शब्दा स्तदर्था वा ध्येया भवन्ति, किन्तु-ध्यातु स्तादृश सामर्थ्या-भावात् स एकं द्रव्यं तद्गुणं पर्यायं वा परित्यज्येतरस्मिन् अर्थे द्रव्ये गुणे पर्याये वा गच्छति इदमेव परिवर्तनं पृथक्त्व मुच्यते, ततः एकस्मात् अर्थादर्थान्तरं

चुकी हैं, जिसमें से संकल्प, विकल्प, विचार और दोष निवृत्त हो चुके हैं और जिसमें अन्तरात्मा तीनों योगों से निवृत्त हो जाता है, उसे शुक्लध्यान कहते हैं। यह सभी ध्यानों में उत्तम है और श्रेष्ठ है।'

शुक्लध्यान चार प्रकार का है-(१) पृथक्त्व वितर्कसविचार (२) एकत्व वितर्क-अविचार (३) सूक्ष्म क्रियानिवर्ति और (४) समुच्छिन्नक्रियाअप्रतिपाति। इनका स्वरूप इस प्रकार है-

(१) पूर्वगत श्रुत के अनुसार, ध्येय वस्तु की नाना पर्यायों का, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक आदि अनेक नयों से, अर्थ व्यंजन (शब्द) और योग के संक्रमण के साथ चिन्तन करना पृथक्त्ववितर्कसविचार ध्यान कहलाता है। इस ध्यान में पूर्वगत शब्द या उसके अर्थ ध्येय होते हैं, किन्तु ध्यान में उतना सामर्थ्य न होने के कारण वह किसी एक द्रव्य, उसके गुण अथवा पर्याय का परित्याग करके दूसरे द्रव्य,

---

વિકલ્પ વિકાર અને દોષ નિવૃત થઈ ગયા છે અને જેનાંમાં અન્તરાત્મા' ત્રણે યોગોથી' નિવૃત્ત થઈ જાય છે તેને શુકલધ્યાન કહે છે. આ બધાં ધ્યાનોમાં ઉત્તમ અને શ્રેષ્ઠ છે.'

શુકલધ્યાન ચાર પ્રકારના છે—(૧) પૃથક્ત્વ વિતર્કસવિચાર (૨) એકત્વ વિતર્ક અવિચાર (૩) સૂક્ષ્મક્રિયાનિવર્તિ અને (૪) સમુચ્છિન્ન ક્રિયા અપ્રતિપાતિ એમનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે-(૧) પૂર્વગત શ્રુત અનુસાર ધ્યેય વસ્તુના જુદા જુદા પર્યાયોનું દ્રવ્યાર્થિક અને પર્યાયાર્થિક આદિ અનેક નયોથી, અર્થ વ્યંજન (શબ્દ) અને યોગના સંક્રમણની સાથે ચિન્તન કરવું પૃથક્ત્વવિતર્ક સવિચાર ધ્યાન કહેવાય છે. આ ધ્યાનમાં પૂર્વગત શબ્દ અથવા તેના અર્થ ધ્યેય હોય છે પરંતુ ધ્યાતામાં એટલું સામર્થ્ય ન હોવાના કારણે તે કોઈ એક દ્રવ્ય, તેના ગુણ અથવા પર્યાયોનું ચિન્તન કરવા લાગે છે. આ પરિવર્તન

शब्दाच्छब्दान्तरं-योगाद्योगान्तरं गन्तु चिन्तनम्, तत्-विचार उच्यते। उक्तञ्च-

> द्रव्याद्द्रव्यान्तरं याति, गुणाद्याति गुणान्तरम्,
> पर्यायादन्यपर्यायं, स पृथक्त्वं भवत्यतः ॥१॥
> अर्थादर्थान्तरे शब्दाच्छब्दान्तरे च संक्रमः।
> योगाद् योगान्तरे यत्र सविचारं तदुच्यते ॥२॥

इति तदेवम् पृथक्त्वहेतुकविचरणात्मकवितर्करूपं यद्ध्यानं तत् -पृथक्त्ववितर्कसविचारं ध्यान मुच्यते। तच्च-'अपूर्वकरणे'-अनिवृत्तिकरणे सूक्ष्मसंपराये' उपशान्तकषाये चेति गुणस्थानचतुष्टये भवति। यत्र-एकस्मात्स्वद्रव्यं=स्वपर्याय-स्वद्गुणो वा व्यञ्जनार्थयोगविषयक

गुण या पर्याय का चिन्तन करने लगता है। इस परिवर्तन को पृथक्त्व कहते हैं। अतएव एक अर्थ से अर्थान्तर, एक शब्द से शब्दान्तर एवं योग से योगान्तर में प्रवेश करके चिन्तन किया जाता है। इसे विचार कहते हैं। कहा भी है, एक द्रव्य को छोड़कर दूसरे द्रव्य को अवलम्बन करना है एक गुण से दूसरे गुण पर चला जाता है और एक पर्याय का चिन्तन करते करते दूसरे पर्याय का चिन्तन करने लगना पृथक्त्व कहलाता है। ॥१॥

जो ध्यान एक अर्थ से दूसरे अर्थ में, एक शब्द को छोड़कर दूसरे शब्द में तथा एक योग से दूसरे योग में जाया जाता है, वह सविचार ध्यान कहलाता है ॥२॥ इस प्रकार पृथक्त्व हेतुक, विचार-युक्त एवं वितर्करूप जो ध्यान है, वह पृथक्त्व स वितर्कविचार ध्यान कहा जाता है। यह ध्यान अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म साम्पराय और उपशान्त कषाय नामक चार गुणस्थानों में होता है।

ने પૃથક્ત્વ કહે છે આથી એક અર્થથી અર્થાન્તર એક શબ્દથી શબ્દાન્તર અને યોગથી યોગાંતરમાં પ્રવેશ કરીને ચિન્તન કરવામાં આવે છે આને વિચાર કહે છે કહ્યું પણ છે- એક દ્રવ્યને છોડીને બીજા દ્રવ્યનું અવલમ્બન કરવું, એક ગુણથી બીજા ગુણ પર ચાલ્યા જવું અને એક પર્યાયનુ ચિન્તન કરતા કરતા બીજા પર્યાયનું ચિન્તન કરવા લાગવું પૃથક્ત્વ કહેવાય છે. ।૧।

જે ધ્યાન એક અર્થથી બીજા અર્થમાં, એક શબ્દને છોડી બીજા શબ્દમાં તથા એક યોગથી બીજા યોગમાં લાગી જાય છે તે સવિચાર ધ્યાન કહેવાય છે. ॥ ૨ ॥ આ રીતે પૃથક્ત્વ હેતુક, વિચાર યુક્ત અને વિતર્કરૂપ જે ધ્યાન છે તે પૃથક્ત્વવિતર્ક સવિચાર ધ્યાન કહેવાય છે. આ ધ્યાન અપૂર્વકરણ, અનિવૃત્તિકરણ, સૂક્ષ્મસામ્પરાય અને ઉપશાન્તકષાય નામક ચાર ગુણસ્થાનોમાં હોય છે.

परावर्तनविचाररहितं यथास्यात्तथा-एकत्वेन चिन्त्यते तद्-एकत्व वितर्काऽविचारनामकं द्वितीयं शुक्लध्यानं भवति। उक्तञ्च तल्लक्षणम्

निजात्मद्रव्य मेकं वा, पर्याय मथवा गुणम् (आश्रित्य)।
निश्चलं चिन्त्यते यत्र, तदेकत्वं विदुर्बुधाः ॥१॥
यद् व्यञ्जनार्थयोगेषु, परावर्त्तविवर्जितम्।
चिन्तनं तदविचारं, स्मृतं सद्ध्यानकोविदैः ।२।

कायकी--उच्छ्वासादिका यस्मिन् ध्याने तत्-सूक्ष्मक्रियम्, न निवर्तते न व्यावर्तते यत्तत् अनिवर्त्ति, सूक्ष्मक्रिये च-तत्-अनिवर्त्तिचेति सूक्ष्मक्रियानिवर्ति नामकं शुक्लध्यानं तृतीय मुच्यते। समुच्छिन्ना -क्षीणा क्रिया कायिक्यादिका शैलेशीकरणे निरुद्धयोगत्वेन यस्मिं स्तत्तथा न पतितुं शीलं यस्य तत्-अप्रतिपाति-अनुपरति स्वभावम्, समुच्छिन्नं

(२) जिस ध्यान में एक आत्मद्रव्य, उसका पर्याय या गुण, व्यंजन अर्थ और योग विषयक परिवर्त्तन के बिना, एक रूप में चिन्तन किया जाता है, वह एकत्ववितर्क-अविचार नामक दूसरा शुक्लध्यान है। उसका लक्षण इस प्रकार कहा गया है-'एक निजात्म द्रव्य, पर्याय अथवा गुण को अवलम्बन करके निश्चल रूप से जो चिन्तन किया जाता है, उसे ज्ञानी जन 'एकत्व' कहते हैं ॥१२॥ व्यंजन, अर्थ और योग में परिवर्त्तन हुए बिना जो चिन्तन होता है, उसे ध्यान में कुशल पुरुष 'अविचार' कहते हैं ॥२॥

(३) जिस शुक्लध्यान में उच्छ्वास आदि कायिक क्रिया सूक्ष्म रूप में रह जाती है, और जो अनिवर्त्ति होता है, वह सूक्ष्मक्रियानिवर्ति ध्यान कहलाता है।

(४) जिस ध्यान में, शैलेशीकरण में, योगों का सर्वथा निरोध हो

(२) જે ધ્યાનમાં એક આત્મદ્રવ્ય, તેના પર્યાય અથવા ગુણ વ્યંજન અર્થ અને યોગ વિષયક પરિવર્ત્તન વિના, એક રૂપમાં ચિન્તન કરવામા આવે છે તે એકત્વવિતર્ક-અવિચાર નામક બીજું શુકલધ્યાન છે. તેનું લક્ષણ આ પ્રમાણે કહેવામાં આવ્યું છે- એક નિજાત્મદ્રવ્ય પર્યાય અથવા ગુણને અવલમ્બન બનાવીને નિશ્ચલરૂપણે જે ચિન્તન કરવામાં આવે છે તેને જ્ઞાનીજન 'એકત્વ' કહે છે ।૧। વ્યંજન, અર્થ અને યોગમાં પરિવર્ત્તન થયા વગર જે ચિન્તન થાય છે તે ધ્યાનને કુશળ પુરૂષ 'અવિચાર' કહે છે ॥ ૨ ॥ (૩) જે શુકલધ્યાન ઉચ્છ્વાસ આદિ કાયિક ક્રિયા સૂક્ષ્મરૂપમાં રહી જાય છે અને જે અનિવર્ત્તિ હોય છે તે સૂક્ષ્મક્રિયાનિવર્તિ ધ્યાન કહેવાય છે.

(૪) જે ધ્યાનમાં, શૈલેશીકરણમાં, યોગોનો સર્વથા નિરોધ થઈ જવાના

च तद् अप्रतिपातिचेति समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति नामकं चतुर्थं शुक्लध्यानं भवति। उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ श्रीभगवतीसूत्रे–२५–शतके ७ उद्देशके ८०३–सूत्रे–'सुक्के झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–पुहुत्त वितक्के सवियारी१ एगत्त वितक्के अवियारी २सुहुमकिरिए अणियट्टी३ समुच्छिन्न किरिए अपडिवाई' इति, शुक्लध्यानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-पृथक्त्ववितर्कसविचारि, एकत्ववितर्कश्चाविचारि, सूक्ष्मक्रियानिवर्ति, समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति, इति ।७४।

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावद्–धर्मध्यानम् आज्ञाविचयादि भेदतश्चतुर्विधत्वेन प्रतिपादितम्, सम्प्रति–शुक्लध्यानं पृथक्त्ववितर्कसविचारादि भेदतश्चतुर्विधत्वेन प्रतिपादयितुमाह–'सुक्कउज्झाणे चउव्विहे' इत्यादि, । तत्–शुक्लध्यानं चतुर्विधं भवति । अस्य शुक्लध्यानस्य ये चत्वारो भेदास्ते दीपिकायां

जाने के कारण कायिकी आदि क्रियाएं सर्वथा निरुद्ध हो जाती हैं और जिसका कभी पतन नहीं होता वह समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाति नामक चौथा शुक्लध्यान कहलाता है।

भगवतीसूत्र शतक २५ उद्देशक ७। सूत्र ८०३ में कहा है–शुक्लध्यान चार प्रकार का कहा गया है–(१) पृथक्त्व वितर्क सविचार (२) एकत्व विचार अविचार (३) सूक्ष्मक्रियानिवर्त्ति और (४) समुच्छिन्न क्रिया–अप्रतिपाती ॥७४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले आज्ञा विचय आदि के भेद से धर्मध्यान चार प्रकार का कहा गया है, अब शुक्लध्यान के पृथक्त्व वितर्क सविचार आदि चार भेद बतलाते हैं–

शुक्लध्यान चार प्रकार का है। चारों प्रकारों का सविस्तर निरू

કારણે કાયિકી આદિ ક્રિયાઓ સર્વથા નિરૂદ્ધ થઇ જાય છે અને જેનું ક્યારેય પણ પતન થતું નથી તે સમુચ્છિન્ન ક્રિયા અપ્રતિપાતી નામક ચોથું શુક્લ-ધ્યાન કહેવાય છે.

ભગવતીસૂત્ર શતક ૨૫ ઉદ્દેશક ૭, સૂત્ર ૮૦૩માં કહ્યું છે–શુક્લધ્યાન ચાર પ્રકારના કહેવામાં આવ્યા છે (૧) પૃથક્ત્વવિતર્ક સવિચાર (૨) એકત્વ-વિતર્ક અવિચાર (૩) સૂક્ષ્મક્રિયાનિવર્તિ અને (૪) સમુચ્છિન્નક્રિયા અપ્રતિપાતી ॥ ૭૪ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા આજ્ઞાવિચય આદિના ભેદથી ધર્મધ્યાન ચાર પ્રકારના કહેવામાં આવ્યા છે હવે શુક્લધ્યાનના પૃથક્ત્વવિતર્ક સવિચાર આદિ ચાર ભેદ બતાવીએ છીએ–

શુક્લધ્યાન ચાર પ્રકારના છે ચારે પ્રકારોનું વિગતવાર નિરૂપણ દીપિકા

सविस्तरं वर्णिताः अतस्तत्रतो द्रष्टव्याः। अस्य शुक्लध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि भवन्ति, तथाहि-विवेको व्युत्सर्गोऽव्यथम्-असंमोहश्च, तत्र विवेकः पृथक्करणम् स च पृथकारः देहादात्मनो बुद्ध्या विवेचनम्-१ व्युत्सर्गो-निस्सङ्गतया देहोपधित्यागः-२ अव्यथम्-देवाद्युपसर्गजनितं भयं व्यथा, तया रहितम् ३ असंमोहो-देवमाया-जनितस्य मूढत्वस्य निषेधः-४। शुक्लध्यानस्य चत्वारि-आलम्बनानि भवन्ति, क्षान्तिर्मुक्तिः आर्जवम्-मार्दवञ्च। तत्र-क्षान्तिः परकृताऽपकारसहनम् १ मुक्ति निर्लोभता-२ आर्जवं-सरलता ३ मार्दवं-मृदुता ४। शुक्लध्यानस्य चतस्रोऽनुप्रेक्षाः, अपायाऽनुप्रेक्षाऽशुभानुप्रेक्षाऽनन्तवृत्तिताऽनुप्रेक्षा-विपरिणामाऽनुप्रेक्षाश्च

पण दीपिका टीका में किया जा चुका है, अतएव उसी में देख लेना चाहिए।

शुक्लध्यान के चार लक्षण होते हैं-विवेक, व्युत्सर्ग, अव्यथ और असंमोह। विवेक अर्थात् पृथक्करण, यहाँ देह से आत्मा का पृथक्करण समझना चाहिए। व्युत्सर्ग का अर्थ निःसंग होकर देह और उपधि का त्याग करना है। देव आदि को उपसर्ग से उत्पन्न होने वाले भय का न होना अव्यथ है और देवमाया जनित मूढता न होना असंमोह है।

शुक्लध्यान के चार आलम्बन होते हैं—शान्ति, मुक्ति, आर्जव और मार्दव। दूसरों के किए हुए अपराध को सहन कर लेना शान्ति क्षमा है। मुक्ति का अर्थ निर्लोभता है। सरलता को आर्जव कहते हैं। मार्दन का अर्थ मृदुता-नम्रता-कोमलता है।

शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं हैं-अपायानुप्रेक्षा, अशुभानुप्रेक्षा अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा और विपरिणामानुप्रेक्षा। प्राणातिपात आदि आस्रव

ટીકામાં કરવામાં આવી ગયું છે. આથી તેમાં જ જોઈ લેવા ભલામણ છે.

શુકલધ્યાનના ચાર લક્ષણ છે- વિવેક, વ્યુત્સર્ગ, અવ્યથ અને અસંમોહ વિવેક અર્થાત્ પૃથકકરણ, અહીં દેહનું આત્માથી જુદા પડવું એમ સમજવાનું છે. વ્યુત્સર્ગનો અર્થ નિઃસંગ થઈ દેહ અને ઉપધિનો ત્યાગ કરવો એમ-થાય છે. દેવ વગેરેના ઉપસર્ગથી ઉત્પન્ન થનાર ભયનું ન હોવું અવ્યથ છે અને દેવમાયાજનિત મૂઢતા ન હોવી અસંમોહ છે

શુકલધ્યાનના ચાર આલમ્બન હોય છે- ક્ષાન્તિ, મુકિત, આર્જવ અને માર્દવ બીજાના કરેલા અપરાધોને સહન કરી લેવા ક્ષાન્તિ-ક્ષમા છે. મુકિતનો અર્થ નિર્લોભતા છે. સરલત્વને આર્જવ કહે છે માર્દવનો અર્થ મૃદુતા-નમ્રતા-કોમળતા છે.

શુકલધ્યાનની ચાર અનુપ્રેક્ષાઓ છે-અપાયાનુપ્રેક્ષા, અશુભાનુપ્રેક્ષા, અનન્ત વૃત્તિતાનુપ્રેક્ષા, અને વિપરિણામાનુપ્રેક્ષા પ્રાણાતિપાત આદિ આસ્રવદ્વારોના

सुपाऽपायाऽनुप्रेक्षा' अपायानां प्राणातिपाताद्यास्रवद्वारजनितानामनर्थानामनुचिन्तनम् १ अशुभाऽनुप्रेक्षा-संसारस्यैवाऽशुभरूपतयाऽनुचिन्तनम् २ अनन्तवृत्तिताऽनुप्रेक्षा ऽनन्तवृत्तिता, तैलिकचक्रयोजितस्य वृषस्य मार्गोऽनवसानवत् कदाऽप्यसमाप्तिशीलता, तस्या अनुप्रेक्षाऽनुचिन्तनम् ३ विपरिणामाऽनुप्रेक्षा' उत्पाद ध्रौव्य स्वभावानां पदार्थानां यो विपरिणामः प्रतिक्षणं नव नव पर्यायरूपः तस्याऽनुचिन्तनम् ४ तदुक्तम् औपपातिके ३० सूत्रे='सुक्कज्झाणे चउव्विहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते, तं जहा-पुहुत्तवियक्के सवियारी १ एगत्तवियक्के अवियारि २ सुहुमकिरिए अप्पडिवाई३ समुच्छिन्नकिरिए अणियट्टी४ 'सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा-विवेगे-१ विउस्सग्गे २ अव्वहे ३ असंमोहे' ॥४॥

सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णत्ता, तं जहा खंती१ मुत्ती२ अज्जवे ३ मद्दवे४ सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा 'अवायाणुप्पेहा १ असुभाणुप्पेहा २ अणंतवत्तियाणुप्पेहा ३ विपरिणामाणुप्पेहा ४ से तं झाणे सू० ॥३०॥

छाया-शुक्लध्यानं चतुर्विधं चतुष्प्रत्यवतारं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा पृथक्त्व वितर्क सविचारि१ एकत्ववितर्कअविचारि२ सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाति३ समुच्छिन्नक्रिय मनि-

---

द्वारों के कारण होने वाले अनर्थों का विचार करना अपायानुप्रेक्षा है। संसार को अशुभ रूप में चिन्तन करना अशुभानुप्रेक्षा है। जैसे कोल्हू के बैल के मार्ग का अन्त नहीं आता, उसी प्रकार रागी-द्वेषी जीव के भवभ्रमण का भी कभी भी अन्त नहीं आता, ऐसा विचार करना अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा है। प्रत्येक पदार्थ उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वभाववाला है, उसमें प्रति क्षण नवीन-नवीन पर्यायों का उत्पाद और पुरातन पर्याय का विनाश होता रहता है, ऐसा चिन्तन करना विपरिणामानुप्रेक्षा है।

औपपातिकसूत्र के ३० वें सूत्र में कहा है—शुक्लध्यान चार

કારણે થનારા અનર્થોનો વિચાર કરવો અપાયાનુપ્રેક્ષા છે. સંસારનું અશુભરૂપમાં ચિન્તન કરવું અશુભાનુપ્રેક્ષા છે જેમ ઘાણીના બળદના માર્ગનો અન્ત નથી આવતો તેવી જ રીતે રાગીદ્વેષી જીવના ભવભ્રમણનો પણ ક્યારેય પણ અન્ત આવતો નથી એવો વિચાર કરવો અનન્તવૃત્તિતાનુપ્રેક્ષા છે પ્રત્યેક પદાર્થ ઉત્પાદ, વ્યય અને ધ્રૌવ્ય સ્વભાવવાળા છે. તેમાં પ્રતિક્ષણ નવીન-નવીન પર્યાયોનો ઉત્પાદ અને પુરતન પર્યાયનો વિનાશ થતો રહે છે એવું ચિન્તન કરવું વિપરિણામાનુપ્રેક્ષા છે.

ઔપપાતિક સૂત્રના ૩૦ માં સૂત્રમાં કહ્યું છે- શુક્લધ્યાન ચાર પ્રકારના

वर्ति ४ इति ॥ शुक्लस्य खलु ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा विवेकः १ व्युत्सर्गः २ अव्यथम् ३ असम्मोहः४ शुक्लस्य खलु ध्यानस्य चत्वार्यालम्बनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा क्षान्तिः १ मुक्तिः २ आर्जवम् ३ मार्दवम् । शुक्लस्य ध्यानस्य चत्वारोऽनुप्रेक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-अपायाऽनुप्रेक्षा १ अशुभाऽनुप्रेक्षा २ अनन्तवृत्तिताऽनुप्रेक्षा ३ विपरिणामाऽनुप्रेक्षा ४ इति । तदेतद्ध्यानम् ॥सू० ७४॥

मूलम्—पढमा बे सुक्कझाणा पुव्वधरस्स, उवसंतखीण कसायाणं य ॥७५॥

छाया—प्रथमे द्वे शुक्ले ध्याने पूर्वधरस्य, उपशान्तक्षीणकषाययोश्च ॥७५॥

प्रकार का है और चार पदों में उसका अवतरण होता है, यथा-(१) पृथक्त्ववितर्क सविचारी (२) एकत्वविनर्क अविचारी (३) सूक्ष्म क्रिया-अप्रतिपाती और (४) समुच्छिन्नक्रिया अनिवर्त्ति

शुक्लध्यान के चार लक्षण कहे गए हैं-विवेक,व्युत्सर्ग, अव्यथ और असंमोह । शुक्लध्यान के चार आलम्बन कहे हैं-क्षमा, मुक्ति, आर्जव और मार्दव ।

शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं है-अपायानुप्रेक्षा, अशुभानुप्रेक्षा, अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा और विपरिणामानुप्रेक्षा है ।७४॥

'पढमा बे सुक्कझाणा' इत्यादि ।७५।

सूत्रार्थ—प्रथम के दो शुक्लध्यान पूर्वधर को उपशान्त कषाय और क्षीणकषाय को होते हैं ।७५॥

છે અને ચાર પદોમાં તેનું અવતરણ થાય છે, યથા-(૧) પૃથક્ત્વવિતર્ક સવિચાર (૨) એકત્વવિતર્ક અવિચાર (૩) સૂક્ષ્મક્રિયા-અપ્રતિપાતી અને (૪) સમુચ્છિન્નક્રિયા-અનિવર્તિ.

શુક્લધ્યાનનાં ચાર લક્ષણ કહેવામાં આવ્યા છે વિવેક, વ્યુત્સર્ગ અવ્યથ અને અસંમોહ. શુક્લધ્યાનમાં ચાર અવલંબન કહ્યા છે, ક્ષાંતિમુક્તિ, આર્જવ અને માર્દવ.

શુક્લધ્યાનની ચાર અનુપ્રેક્ષાઓ છે-અપાયાનુપ્રેક્ષા અશુભાનુપ્રેક્ષા, અનંતવૃત્તિતાનુપ્રેક્ષા અને વિપરિણામાનુપ્રેક્ષા ॥૭૪ ॥

'पढमा बे सुक्कज्झाण' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ--પ્રથમના બે શુક્લધ્યાન પૂર્વધરને, ઉપશાંતકષાય અને ક્ષીણકષાયને થાય છે. ॥ ૭૫ ॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावद् यथाक्रमं प्रत्येकम् आर्तरौद्रधर्मशुक्लं चतुर्विधमपि चातुर्विध्येन प्रतिपादितम्, सम्प्रति—चतुर्विधस्य शुक्लध्यानस्य के स्वामिनः सन्ति। कस्य कस्य तच्चतुर्विधमपि शुक्लध्यानं भवतीति प्ररूपयितुं प्रथमं तावद् आदिमद्वयं, कस्य कस्य सम्भवतीति प्रतिपादयति—'पढमा वे सुक्कज्झाणा इत्यादि। पूर्वोक्तेषु चतुर्विधेषु शुक्लध्यानेषु प्रथमे—आद्ये द्वे शुक्लेध्याने पृथक्त्ववितर्कसविचारम् एकत्ववितर्काऽविचारम् पूर्वधरस्य, तथा उपशान्तक्षीणकषाययोश्च भवतः, ते द्वे ध्याने चतुर्दशपूर्वधरस्यैव भवतः नत्वेकादशाङ्गविदः श्रुतकेवलिनः। पूर्वं यत्—उपशान्तकषाययो र्धर्मध्यानं प्रोक्तम्, तद्—अविशेषेण सामान्यतया प्रोक्तम्, किन्तु—तयो—र्द्वे शुक्लध्याने अपि भवतः न खलु—तयोश्चतुष्प्रकारकमपि शुक्लध्यानं भवतीति बोध्यम्। तथा च—श्रेण्यारोहणात् प्राक्,

तत्त्वार्थदीपिका—पहले अनुक्रम से आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल ध्यान के चार-चार भेद कहे गए हैं, अब यह निरूपण करते हैं कि चारों प्रकार के शुक्लध्यान किस-किस को होते हैं? किस का स्वामी कौन है?

पूर्वोक्त चार प्रकार के शुक्लध्यानों में से प्रारंभ के दो शुक्ल ध्यान—पृथक्त्ववितर्कसविचार और एकत्ववितर्कअविचार प्रायः पूर्वो के धारक मुनि को होते हैं तथा उपशान्तकषाय और क्षीण कषाय वीतरागों को होते हैं। तात्पर्य यह है कि ये दोनों शुक्लध्यान प्रायः चौदह पूर्वों के ज्ञाता श्रुतकेवली को ही होते हैं, पहले उपशान्तकषाय और क्षीण कषायको जो धर्मध्यान कहा गया है, वह सामान्य रूप से कहा गया है, किन्तु उनको दो शुक्लध्यान भी होते हैं। उनको चारों प्रकारका शुक्लध्यान नहीं होता। श्रेणी पर आरूढ होने से पहले अर्थात्

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા અનુક્રમથી આર્ત, રૌદ્ર, ધર્મ અને શુકલધ્યાનનાં ચાર ભેદ કહેવામાં આવ્યા હવે એ નિરૂપણ કરીએ છીએ કે ચારે પ્રકારના શુકલધ્યાન કોને કોને થાય છે. કયા ધ્યાનનો સ્વામી કોણ છે?

પૂર્વોકત ચાર પ્રકારનાં શુકલધ્યાનોમાંથી પ્રારંભના બે શુકલધ્યાન—પૃથકત્વવિતર્ક સવિચાર અને એકત્વવિતર્ક અવિચાર પ્રાયઃ પૂર્વોનાં ધારક મુનિને હોય છે તથા ઉપશાંત કષાય અને ક્ષીણકષાય વીતરાગોને થાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે આ બંને શુકલધ્યાન પ્રાયઃ ચૌદ પૂર્વોના જ્ઞાતા શ્રુતકેવળીને જ થાય છે પહેલાં ઉપશાંતકષાય અને ક્ષીણકષાયને જે ધર્મધ્યાન કહેવામાં આવ્યા છે તે સામાન્ય રૂપથી કહેવામાં આવ્યા છે પરંતુ તેમને બે શુકલધ્યાન થાય

अपूर्वकरणात्पूर्वमेव चतुर्थाद् गुणस्थानात्-सप्तमगुणस्थाने यावद् धर्मध्यानं भवति, किन्तु-अपूर्वकरणेऽनिवृत्तिकरणे, सूक्ष्मसम्पराये, उपशान्तकषाये चेति गुणस्थानचतुष्टये पृथक्त्ववितर्कसविचारं नाम प्रथमं शुक्लध्यानं भवति क्षीण-कषायगुणस्थानेतु-एकत्ववितर्काऽविचारं नाम द्वितीयं शुक्लध्यानं भवति

उक्तञ्च-निजात्म द्रव्यमेकंवा, पर्याय मथवा गुणम् ।
निश्चलं चिन्त्यते यत्र तदेकत्वं विदुर्बुधाः ॥१॥

इति भावः एवम्-उपशान्तमोहरूपकषायस्य क्षीणमोहकषायस्य चाऽपि प्रथमद्वयंपृथक्त्ववितर्कसविचाररूपम्, एकत्ववितर्काऽविचाररूपञ्च शुक्लध्यानं भवतीति बोध्यम् ॥७४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावद् ध्यानं चतुर्विधमपि-आर्तरौद्र धर्म शुक्लरूपं

अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान से पूर्व, चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक धर्मध्यान होता है किन्तु अपूर्व करण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय और उपशान्तकषाय-इन चार गुणस्थानों में पृथक्त्व वितर्कसविचार नामक प्रथम शुक्लध्यान होता है। क्षीण कषाय में एकत्ववितर्क-अविचार नामक दूसरा शुक्लध्यान होता है। कहा भी है-एक निजात्मद्रव्य का, पर्याय का अथवा गुण का निश्चल रूप से जिस ध्यानमें चिन्तन किया जाता है, उसे विद्वान् जन एकत्व कहतेहैं ।१।

इस प्रकार ऐसा समझना चाहिए कि उपशान्त कषाय और क्षीणकषाय को प्रारंभ के दो-पृथक्त्ववितर्कसविचार और एकत्ववि-तर्क-अविचार नामक दो शुक्लध्यान होते हैं ॥७५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-पहले चारों ध्यानों के चार-चार भेदों का

છે-તેમને ચારે પ્રકારના શુક્લધ્યાન થતાં નથી. શ્રેણી પર આરૂઢ થતાં પહેલા અર્થાત્, અપૂર્વકરણ નામક આઠમા ગુણસ્થાન સુધી ધર્મધ્યાન થાય છે. પરંતુ અપૂર્વકરણ અનિવૃત્તિકરણ, સૂક્ષ્મસાંપરાય અને ઉપશાંતકષાય આ ચાર ગુણસ્થાનોમાં પૃથકત્વ વિતર્ક સવિચાર નામક પ્રથમ શુક્લધ્યાન હોય છે. ક્ષીણકષાયમાં એકત્વવિતર્ક અવિચાર નામક બીજું શુક્લધ્યાન પણ હોય છે કહ્યું પણ છે " એક નિજાત્મદ્રવ્યનાં પર્યાયનું અથવા ગુણનું નિશ્ચલ રૂપથી જે ધ્યાનમાં ચિંતન કરવામાં આવે છે તેને વિદ્વાનજન એકત્વ કહે છે " ૧। આ રીતે એમ સમજવું જોઈએ કે ઉપશાંતકષાય અને ક્ષીણકષાય ના પ્રારંભના પૃથકૂત્વવિતર્ક સવિચાર અને એકત્વવિતર્ક અવિચાર નામક બે શુક્લધ્યાન હોય છે. ॥ ૭૫ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા ચારે ધ્યાનોના ચાર ચાર ભેદોનું નિરૂપણ

प्रत्येकं चतुर्विधं प्ररूपितम्, सम्प्रति-चतुर्विधस्य शुक्लध्यानस्य कः कः स्वामी भवति, कस्य-कस्य पुरुषस्य एतच्चतुर्विधं शुक्लध्यानं भवतीति प्ररूपयितुं प्रथमं प्रथमद्वयं शुक्लध्यानं प्ररूपयति-'पढमा वे सुक्का झाणा पुव्वधरस्स उवसंत खीणकसायाणं च' इति। प्रथमे पूर्वोक्तेषु चतुर्विधेषु शुक्लध्यानेषु आद्ये-द्वे शुक्लध्याने पृथक्त्ववितर्कसविचारं 'एकत्ववितर्काविचारं च पूर्वस्य चतुर्दश पूर्वधारिणो भवतः। एवम्-उपशान्तमोहकषायस्य, क्षीणमोहकषायस्य चाऽपि प्रथमद्वयं शुक्लध्यानं पृथक्त्ववितर्कसविचाररूपम्, एकत्ववितर्काविचार-रूपञ्च भवति। तत्र-उपशान्ताः कषायाः मोहरूपा यस्य स उपशान्तकषायः एकादशगुणस्थानवर्त्ती खलु व्यपदिश्यते। एवं-क्षीणाः कषाया मोहा यस्य स क्षीणकषायः, तयोरपि द्वयोः-पृथक्त्व वितर्कसविचारैकत्ववितर्काविचाररूपे

निरूपण किया गया, अब शुक्लध्यान के चारों भेदों के स्वामियों का अर्थात् कौन-सा शुक्लध्यान किसको होता है, इस बात का कथन करते हैं। इसमें भी पहले प्रारंभ के दो शुक्लध्यानों के स्वामियों का निर्देश करते हैं—

प्रथम के दो अर्थात् पृथक्त्ववितर्कसविचार और एकत्ववितर्क अविचार नामक दो शुक्लध्यान चतुर्दशपूर्वधारी को ही होते है, इसी प्रकार उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय को भी होते हैं। जिसके समस्त कषाय उपशान्त हो चुके हों उसे उपशान्त कषाय कहते हैं और जिसके समस्त कषायों का क्षय हो चुका हो वह क्षीण कषाय कहलाता है। इनके भी पृथक्त्ववितर्कसविचार और एकत्ववितर्क-अविचार नामक शुक्लध्यान होते हैं।

पृथक्त्व का अर्थ अनेकत्व है, उसके साथ सविचार जो वितर्क

કરવામાં આવ્યું. હવે શુકલધ્યાનના ચારે ભેદોના સ્વામીઓનું અર્થાત્ કયું શુકલધ્યાન કોને હોય છે એ વિષયનું કથન કરીએ છીએ. તેમાં પણ પ્રથમ આરંભના બે શુકલધ્યાનના સ્વામીઓનો નિર્દેશ કરીએ છીએ-

પ્રથમના બે અર્થાત્ પૃથક્ત્વવિતર્ક સવિચાર અને એકત્વવિતર્ક અવિચાર નામક બે શુકલધ્યાન ચૌદ પૂર્વધારીને જ હોય છે. એવી જ રીતે ઉપશાંતકષાય અને ક્ષીણકષાયને પણ હોય છે. જેના સમસ્તકષાયો ઉપશાંત થઈ ગયાં છે તેને ઉપશાંતકષાય કહે છે અને જેના સમસ્તકષાયોનો ક્ષય થઈ ચૂકયો હોય તે ક્ષીણકષાય કહેવાય છે આમને પણ પૃથક્ત્વવિતર્ક સવિચાર અને એકત્વવિતર્ક અવિચાર નામક શુકલધ્યાન હોય છે.

પૃથક્ત્વનો અર્થ અનેકત્વ છે, તેની સાથે સવિચાર જે વિતર્ક છે તે

शुक्लध्याने-आद्ये द्वे भवतः। तत्र-पृथक्त्वम् अनेकत्वम् तेन सह गतो वितर्कः सविचारं यत्र भवेत् तत्-पृथक्त्ववितर्कसविचारं नाम शुक्लध्यानम्, पृथक्त्वमेव वा वितर्कसहगतं वितर्कपुरोगतं सविचारसहितं यत्र तत्-पृथक्त्ववितर्कसविचारम्, तच्च-परमाणुजीवादावेकद्रव्ये-उत्पादव्ययध्रौव्यादि पर्यायाऽनेकतयाऽपि यत्-यत् तत्त्वं तत्पृथक्त्वेन तस्य चिन्तनं वितर्कसहचरितं सविचारं च यत् तत् पृथक्त्वमेव वा वितर्के सहगतं वितर्कपरोगतं विचारसहितं यत्र तत्-पृथक्त्व वितर्कसविचारं शुक्लध्यानं प्रथम मुच्यते, विचारः पूर्वगत श्रुताऽनुसारेणाऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः अर्थाद्-व्यञ्जने व्यञ्जने व्यञ्जनाद् अर्थे संङ्क्रान्तिः एवम्-मनोयोगात् काययोगसंक्रमणम्-वाग्योगसङ्क्रमणं वा विचारः। एवं-काययोगाद् मनोयोग सङ्क्रमणम्=वाग्योगसंक्रमणं वा, एवं-वाग्योगात् मनोयोगसंक्रमणं काययोगसंक्रमणं वा विचार उच्यते। यत्र योगसंक्रमणं भवति तत्रैव निरोधो ध्यानं सविचारं भवतीति भावः।

है वह पृथक्त्ववितर्क सविचार नामक शुक्लध्यान कहलाता है। तात्पर्य यह है कि जिस ध्यान में वितर्क अथवा श्रुत का आलम्बन लिया जाता है, जिसमें अर्थ, व्यंजन एवं योग का संक्रमण होता रहता है और साथ ही योग का भी परिवर्त्तन होता रहता है, वह पृथक्त्व वितर्क विचार नामक शुक्लध्यान कहलाता है। विचार का अर्थ पूर्वगत श्रुत के अनुसार अर्थ, व्यंजन और योग का संक्रमण होता है-अर्थ से व्यंजन में और व्यंजन से अर्थ में संक्रमण होता रहता है। कभी मनोयोग से काययोग में संक्रमण होता है, कभी वचन योग में यह संक्रमण विचार कहलाता है। इसी प्रकार काययोग से मनोयोग या वचनयोग में संक्रमण होना तथा वचनयोग से मनोयोग या काययोग में संक्रमण होना भी समझ लेना चाहिए। जहां योग का

પૃથક્ત્વવિતર્કસવિચાર નામક શુકલધ્યાન કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે જે ધ્યાનમાં વિતર્ક અથવા શ્રુતનું આલંબન લેવામાં આવે છે જેમાં અર્થવ્યંજન તેમજ યોગનુ સંક્રમણ થતું રહે છે અને સાથેસાથે યોગનું પણ પરિવર્તન થતું રહે છે તે પૃથકત્વવિતર્ક સવિચાર નામક શુકલધ્યાન કહેવાય છે. વિચારનો અર્થ પૂર્વગતશ્રુત અનુસાર અર્થ વ્યંજન અને યોગનું સંક્રમણ થય છે અર્થથી વ્યંજનમાં અને વ્યંજનથી અર્થમા સંક્રમણ થતું રહે છે. ક્યારેક મનોયોગથી કાયયોગમાં સંક્રમણ થાય છે. કદી વચનયોગમાં આ સંક્રમણ વિચાર કહેવાય છે.એવી જ રીતે કાયયોગથી મનોયોગ અથવા વચનયોગમાં સંક્રમણ થવું તથા વચનયોગથી મનોયોગ તથા કાયયોગમાં સંક્રમણ પણ સમજી લેવા જોઇએ જ્યાં યોગનું સંક્રમણ થાય છે ત્યાંજ

अथ द्वितीयं शुक्लध्यानम्' एकत्ववितर्कम् अविचार मुच्यते, एकस्य भावः एकत्वम्, एकत्वगतो वितर्को विचाररहितो यत्र, तत्-एकत्ववितर्काविचारम् नामद्वितीयं शुक्लध्यानं भवति, एकः कश्चिद् योग स्त्रयाणामन्यतमः अर्थो व्यञ्जनं चैकमेव एकपर्याय चिन्तनम्-उत्पाद-व्यय ध्रौव्यादि पर्यायाणामेकस्मिन्नेव पर्याये निवातगृहस्थित प्रदीपशिखाराजिवद् निष्पकम्पं, पूर्वगतश्रुतानुसारि च चित्तं निर्विचारं यद्भवति तदेकत्ववितर्कमविचारं व्यपदिश्यते। उक्तञ्च-

'क्षीणकषायस्थानं, तत्प्राप्य ततो विशुद्धलेश्यः सन्।
एकत्ववितर्काविचारं, ध्यानं ततोऽध्येति ॥१॥ इति

संक्रमण होता है वहीं ध्यानसविचार होता है।

दूसरा शुक्लध्यान एकत्ववितर्क-अविचार कहलाता है। एक का भाव एकत्व कहलाता है। जो एकत्वरूप हो ऐसा वितर्क एकत्ववितर्क है। वह विचाररहित होने से दूसरा शुक्लध्यान एकत्व वितर्क-अविचार कहा गया है। इसमें तीनों योगों में से एक योग होता है। अर्थ और व्यंजन (शब्द) भी एकही होता है। किसी एक पर्यायका चिन्तन होता है। इस प्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य आदि पर्यायो में से किसी एक पर्याय में, वायुविहीन गृह में स्थित दीपक की शिखा के समान, निष्कंप चित्त होना एकत्ववितर्क-अविचार ध्यान कहलाता है। यह ध्यान भी प्रायः पूर्वगत श्रुत के आलम्बन से ही होता है-कहा भी है।

वीतराग मुनि क्षीणकषाय स्थान को प्राप्त करके विशुद्ध लेश्यावाला होकर एकत्ववितर्काविचारध्यान ध्याता है ॥१॥

ध्यानसुविचार थाय छे

બીજુ શુકલધ્યાન એકત્વવિતર્ક-અવિચાર કહેવાય છે. એક નો ભાવ એકત્વ કહેવાય છે જે એકત્વરૂપ હોય એવો વિતર્ક એકત્વવિતર્ક છે. તે વિચાર રહિત હોવાથી બીજું શુકલધ્યાન એકત્વવિતર્ક-અવિચાર કહેવાયું છે આમાં ત્રણે યોગોમાંથી એક યોગ હોય છે, અર્થ અને વ્યંજન (શબ્દ) પણ એક જ હોય છે કોઈ એક પર્યાયનું ચિન્તન હોય છે આવી રીતે ઉત્પાદ વ્યય અને ધ્રૌવ્ય આદિ પર્યાયોમાંથી કોઈ એક પર્યાયમાં વાયુરહિત ઘરમાં સ્થિત દીપકની વાટની જેમ, નિષ્કંપ ચિત્ત હોવું એકત્વવિતર્ક-અવિચાર ધ્યાન કહેવાય છે. આ ધ્યાન પણ પ્રાયઃ પૂર્વગત શ્રુતના આલંબનથી જ થાય છે કહ્યું પણ છે—

વીતરાગ મુનિ ક્ષીણ કષાય સ્થાનને પ્રાપ્ત કરીને વિશુદ્ધ લેશ્યાવાળો થઈને એકત્વ વિતર્કાવિચાર ધ્યાન ધ્યાવે છે ॥૧॥

तथाचाऽष्टाविंशतिप्रकारकमोहनीयकर्मोपशमा दुपशान्तकषायवीतराग-श्छद्मस्थः छद्मनि-आवरणे स्थितत्वात् छद्मस्थश्च उच्यते, मोहनीयस्य कृत्स्न क्षयात् सक्षीणकषायवीतरागः छद्मस्थश्च धर्मध्यान शुक्लाऽऽद्यद्वयध्यानविशेषात् यथाख्यातसंयमविशुद्धयाऽशेषाणि कर्माणि क्षपयति । तत्र-द्विचरमसमये इति चरम समयद्वयावशिष्टे निद्रा-प्रचले क्षपयति, ततोऽस्य चरमसमये ज्ञान-दर्शनावरणद्वयान्तरायरूप कर्मत्रिक क्षयात् केवलज्ञानदर्शनमुपजायते ॥७५॥

मूलम्-चरमा बे केवलिस्स ॥७६॥

छाया-'चरमे द्वे केवलिनः-॥७६॥

जिन्होंने अट्ठाईस प्रकार के मोहनीय कर्म का उपशम कर दिया है वे उपशान्त कषाय वीतराग छद्मस्थ कहलाते हैं। छद्म अर्थात् आवरण में जो स्थित हो वह छद्मस्थ कहा जाता है। मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय कर देने वाला क्षीण कषाय कहलाता है अगर ऐसा मुनि बारहवें गुणस्थान में हो तो ज्ञानावरणादि के उदय के कारण छद्मस्थ होता है। यह क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ धर्मध्यान और शुक्लध्यान के प्रथम दो भेदों से तथा यथाख्यात संयम की विशुद्धता के प्रभाव से शेष घातिक कर्मों को युगपत् क्षय कर डालता है। वह द्विचरम समय में निद्रा और प्रचला प्रकृतियों का क्षय करके चरम समय में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इन तीनों का क्षय करता है और केवल ज्ञान, केवल दर्शन और अनन्त वीर्य को प्राप्त कर लेता है ॥७५॥

જેઓએ અઠયાવીસ પ્રકારના મોહનીય કર્મનો ઉપશમ કરી દીધો છે તે ઉપશાન્તકષાય વીતરાગ છદ્મસ્થ કહેવાય છે. મોહનીય કર્મનો સર્વથા ક્ષય કરનાર ક્ષીણકષાય કહેવાય છે. આવી રીતે છદ્મ અર્થાત્ આવરણમાં જે સ્થિત હોય તે છદ્મસ્થ કહેવાય છે. જે એવો મુનિ બારમાં ગુણસ્થાને હોય તે જ્ઞાનાવરણાદિના ઉદયના કારણે છદ્મસ્થ હોય છે. આ ક્ષીણકષાય વીતરાગ છદ્મસ્થ ધર્મધ્યાન અને શુકલધ્યાનના પ્રથમના બે ભેદોથી તથા યથાખ્યાતસંયમની વિશુદ્ધતાના પ્રભાવથી શેષ ત્રણ ઘાતિ કર્મોને યુગપત્ ક્ષય કરી નાખે છે. તે દ્વિચરમ સમયમાં નિદ્રા અને પ્રચલા પ્રકૃતિઓનો ક્ષય કરીને ચરમ સમયમાં જ્ઞાનાવરણ દર્શનાવરણ અને અન્તરાય આ ત્રણેનો ક્ષય કરે છે અને કેવળજ્ઞાન, કેવળદર્શન અને અનન્તવીર્યને પ્રાપ્ત કરી લે છે ॥૭૫॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्रे-पृथक्त्ववितर्करूपम्-एकत्ववितर्करूपञ्च प्रथम द्वयं शुक्लध्यानं चतुर्दश पूर्वधरस्य एकादश गुणस्थानवर्तिन उपशान्तकषायस्य क्षीणकषायस्य च भवतीति प्रतिपादितम्, सम्प्रति अन्तिमद्वयं शुक्लध्यानं सूक्ष्मक्रियाऽनिवृत्तिरूपं समुच्छिन्नक्रियाप्रतिपाति रूपञ्च क्रमशः केवलिन एव त्रयोदश चतुर्दश गुणस्थानवर्त्तिनो भवति, न तु-छद्मस्थस्य। तत्र-सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्तिरूपं तृतीयं शुक्लध्यानं सयोगस्य वीतराग केवलिनो भवति तस्य त्रयोदश गुणस्थानवर्तित्वात्। सूक्ष्मक्रिया-कायिकी उच्छ्वासादिका यत्र तत् सूक्ष्मक्रियम् न निवर्तते-अव्युच्छिन्न क्रियाऽप्रतिपातिध्यानावाप्तेरित्यनिवर्ति, सूक्ष्मक्रियञ्च तद् अनिवर्ति चेतादृशं ध्यानं सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्ति व्यपदिश्यते तच्च-योग निरोधकाले

'चरमा वे केवलिस्स'।

सूत्रार्थ—अन्तिम दो शुक्लध्यान केवली में पाये जाते हैं ॥७६॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्र में प्रतिपादन किया गया है कि पृथक्त्व वितर्क तथा एकत्ववितर्क रूप दो शुक्लध्यान प्रायः चौदहपूर्वों के धारक ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान वर्ती उपशान्त कषाय और क्षीणकषाय को होते हैं, अब यह प्रतिपादन करते हैं कि अन्तिम दो शुक्लध्यान केवली को ही होते हैं—

सूक्ष्मक्रियानिवर्त्ति नामक तीसरा शुक्लध्यान सयोग केवली को होता है। जो तेरहवें गुणस्थानवर्ती होते हैं। उच्छ्वास आदि शारीरिक क्रिया जिस ध्यान में निरुद्ध नहीं होती और जो अप्रतिपाति होता है वह सूक्ष्मक्रियानिवर्ती ध्यान कहलाता है। यह ध्यान योगों का निरोध करते समय होता है।

'चरमा वे केवलिस्स' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—અન્તિમ બે શુકલધ્યાન કેવલીમાં હોય છે. ॥૭૬॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું કે પૃથક્ત્વ-વિતર્ક તથા એકત્વવિતર્ક રૂપ શુકલધ્યાન પ્રાયઃ ચૌદ પૂર્વોના ધારક—અગીયારમાં અને બારમાં ગુણસ્થાનવર્તી ઉપશાન્તકષાય અને ક્ષીણકષાયને હોય છે હવે એ પ્રતિપાદન કરીએ છીએ કે અન્તિમ બે શુકલધ્યાન કેવળીને જ હોય છે—

સૂક્ષ્મક્રિયાનિવર્ત્તિ નામક ત્રીજુ શુકલધ્યાન સયોગ કેવળીને હોય છે, જે તેરમાં ગુણસ્થાનવર્ત્તી હોય છે. ઉચ્છવાસ આદિ શારીરિક ક્રિયા જે ધ્યાનમાં નિરૂદ્ધ થતી નથી અને જે અપ્રતિપાતી હોય છે તે સૂક્ષ્મક્રિય નિવર્ત્તિ ધ્યાન કહેવાય છે. આ ધ્યાન યોગોનો નિરોધ કરતી વેળાએ થાય છે.

भवति । समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपातिरूपं चतुर्थं शुक्लध्यानन्तु—अयोगिनो वीतराग केवलिनो भवति । तस्य—चतुर्दश गुणस्थानवर्तित्वात् समुच्छिन्ना—विनष्टा सूक्ष्मा-ऽपि क्रिया उच्छ्वासादिका यत्र तत्—समुच्छिन्नक्रियम् तच्च तत्—अप्रतिपाति अनुपरतिशीलमिति समुच्छिन्नक्रियाप्रतिपातिनामकं चतुर्थं शुक्लध्यान मुच्यते ॥७६

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावत्-प्रथमद्वयं शुक्लध्यानं प्रतिपादितम्, सम्प्रति चरमद्वयं शुक्लध्यानं प्रतिपादयितुमाह—'चरमा दो केवलिस्स' इति चरमे अन्तिमे द्वे शुक्लध्याने सूक्ष्मक्रियानिवर्ति—समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपातिरूपे केवलिनः क्रमशः सयोगिकेवलिनः अयोगिकेवलिनश्च भवतः न तु—छद्मस्थस्य तत्र—सयोगिवीतरागकेवलिन स्त्रयोदश गुणस्थानवर्तित्वात् सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्ति रूपं तृतीयं शुक्लध्यानं भवति, अयोगि केवलिनस्तु—चतुर्दश गुणस्थानवर्तित्वात्

समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती नामक चौथा शुक्लध्यान अयोगी केवली को होता है, जो चौदहवें गुणस्थान में होते हैं। जिस ध्यान में उच्छ्वास आदि सूक्ष्म क्रिया भी निरुद्ध हो जाती है और जो अप्रति-पाती होता है, वह समुच्छिन्न क्रिया प्रतिपाती नामक चौथा शुक्लध्यान कहलाता है ॥७६॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—दो प्रारंभ के शुक्लध्यानों का निरूपण किया जा चुका अब अन्तिम दो का निरूपण करते हैं—

अन्तिम दो शुक्लध्यान सूक्ष्मक्रियानिवर्त्ति और समुच्छिन्न क्रिया-अप्रतिपाति क्रमशः सयोग केवली और अयोग केवली को होते हैं, छद्मस्थ को नहीं होते। इनमें से सयोगि केवली तेरहवें गुणस्थान में होते हैं. अतः इन्हे सूक्ष्मक्रियानिवर्त्ति नामक तीसरा शुक्लध्यान होता है और अयोगि केवली चौदहवें गुणस्थान में होते हैं, इस कारण

સમુચ્છિન્ન ક્રિયાઅપ્રતિપાતી નામક ચોથું શુકલધ્યાન અયોગ કેવળીને થાય છે જેઓ ચૌદમાં ગુણસ્થાનમાં હોય છે. જે ધ્યાનમાં ઉચ્છ્વાસ આદિ સૂક્ષ્મ ક્રિયા પણ નિરૂદ્ધ થઇ જાય છે અને જે અપ્રતિપાતિ હોય છે, તે સમુચ્છિન્ન ક્રિયાપ્રતિપાતી નામક ચોથું શુકલધ્યાન કહેવાય છે. ॥૭૬॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પ્રારંભના બે શુકલધ્યાનોનું નિરૂપણ કરવામાં આવી ગયું, હવે અન્તિમ બેનું નિરૂપણ કરીએ છીએ—

અન્તિમ બે શુકલધ્યાન સૂક્ષ્મક્રિયાનિવર્ત્તિ અને સમુચ્છિન્ન ક્રિયાઅપ્રતિપાતી ક્રમશઃ સયોગ કેવળી અને અયોગ કેવળી ને હોય છે, છદ્મસ્થને હોતા નથી આમાંથી અયોગી કેવળી તેરમા ગુણસ્થાનમાં હોય છે આથી તેમને સૂક્ષ્મક્રિયાનિવર્ત્તી નામક ત્રીજું શુકલધ્યાન હોય છે અને અયોગી-કેવળી ચૌદમાં ગુણસ્થાનમાં હોવાના કારણે તેમને સમુચ્છિન્નક્રિયા—અપ્ર-

समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपातिरूपं चतुर्थं शुक्लध्यानं भवतीति भावः। तथाहि-द्वितीय शुक्लध्यानस्य द्विचरमसमये प्राप्तकेवलः केवली जघन्येनाऽन्तर्मुहूर्तम्, उत्कृष्टेन देशोनपूर्वकोटिवर्षाणि विहृत्य ततो वेदनीय नाम गोत्राख्यानां त्रयाणां कर्मणां भवधारणीयाद्याऽऽयुष्कर्मणोऽधिक स्थितिकाना मायुष्कर्म समीकरणार्थं समुद्घातं करोति. ततोऽसौ सूक्ष्मक्रियानिवर्ति नामकं तृतीयं ध्यायन् सूक्ष्मकाययोग स्वावष्टम्भेनैव निरुणद्धि, तदाऽन्यस्याऽऽवष्टम्भनीय योगान्तरस्याऽसद्भावात्। तद्ध्यान सामर्थ्याच्च वदनोदरादिविवरपूरणात् सङ्कुचित देहविभागवर्त्यात्मप्रदेशो भवति। तत्राऽयं क्रमः- सूक्ष्मनिवर्त्तिरूपं तृतीयं ध्यानं ध्यायन् केवली जघन्ययोगवतः संज्ञिपर्याप्तस्य मनो द्रव्याणि समये समये निरुन्धन्

उन्हें समुच्छिन्नक्रिया–अप्रतिपाति नामक चौथा शुक्लध्यान होता है।

द्वितीय शुक्लध्यान के द्विचरम समय में केवलज्ञान प्राप्त करके केवली जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन करोड पूर्व तक विचरण करने के पश्चात् वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म की स्थिति यदि आयु कर्म से अधिक जानते हैं तो उनकी स्थिति को बराबर करने के लिए समुद्घात करते हैं। फिर वे सूक्ष्मक्रियानिवर्त्ति नामक तीसरा शुक्लध्यान आरंभ करते हुए अपने ही आलम्बन से सूक्ष्म काययोग का निरोध करते हैं क्योंकि उस समय अवलम्बन लेने योग्य दूसरा कोई योग होता नहीं है। उस ध्यान के सामर्थ्य से मुख और उदर आदि के छिद्रों को पूरित कर लेने के कारण आत्मप्रदेश संकुचित देह भागवर्त्ती हो जाते हैं। उसमें क्रम यों है–सूक्ष्मक्रियानिवर्त्ति नामक तीसरे ध्यान को प्रारंभ करते हुए केवली भगवान् जघन्य योग वाले संज्ञी पर्याप्त

तिपाती नामक ચોથું શુકલધ્યાન હોય છે.

દ્વિતીય શુકલધ્યાનના દ્વિચરમ સમયમાં કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને જઘન્ય અન્તર્મુહૂર્ત્ત અને ઉત્કૃષ્ટ દેશોન કરોડ પૂર્વ સુધી વિચરણ કર્યા બાદ વેદનીય નામ અને ગોત્ર કર્મની સ્થિતિ જો આયુષ્ય કર્મથી અધિક જાણે તો તેમની સ્થિતિ સરખી કરવા માટે સમુદ્ઘાત કરે છે. પછી તેઓ સુક્ષ્મક્રિયાનિવર્ત્તી નામક ત્રીજું શુક્લધ્યાન આરંભ કરતા પોતાના જ આલમ્બનથી સૂક્ષ્મકાયયોગનો નિરોધ કરે છે કારણ કે તે સમયે અવલમ્બન રાખવા લાયક બીજો કોઈ યોગ હોતો નથી. તે ધ્યાનના સામર્થ્યથી મુખ તેમ જ ઉદર આદિના છિદ્રોને પૂર્ણ કરી લેવાના કારણે આત્મપ્રદેશ સંકુચિત દેહભાગવર્ત્તી થઈ જાય છે તેમાં ક્રમ આ પ્રમાણે છે. સૂક્ષ્મક્રિયા નિવર્ત્તિ નામક ત્રીજા ધ્યાનનો પ્રારંભ કરતા થકા કેવલ ભગવાન જઘન્ય યોગવાળા સંજ્ઞી પર્યાપ્ત જીવને યોગ્ય....મનોદ્રવ્યોનો પ્રત્યેક સમયમાં

असंख्यातसमयैः सम्पूर्णं मनोयोगं निरुणद्धि, तत्पश्चात् पर्याप्त द्वीन्द्रियस्य वाग्योग पर्यायतोऽसंख्यातगुणहीनवाग्योगपर्यायान् प्रतिसमयं निरुन्धन् असंख्यात समयैः समस्तवाग्योगं निरुणद्धि। ततश्च प्रथमसमयसमुत्पन्नाऽपर्याप्त निगोद जीवस्य जघन्य काययोगपर्यायतोऽसंख्यातगुणहीनकाययोगं प्रतिसमयं निरुन्धन् असंख्यातसमयैः बादरकाययोगं च सर्वथा निरुणद्धि तदेदं तृतीयं सूक्ष्मक्रियानिवर्ति नामकं ध्यानं भवति। ततः स भवोपग्राहि कर्मक्षपणार्थं लेश्यातीत मत्यन्तामकम्पं परमनिर्जराकारणं चतुर्थं समुच्छिन्नक्रियाप्रतिपाति नामकं ध्यानं प्रतिपित्सु र्योगनिरोधार्थ मुपक्रमते। ततोऽसौ चतुर्थे समुच्छिन्न-

जीव के योग्य मनोद्रव्यों का प्रत्येक समय में निरोध करते हुए सम्पूर्ण मनोयोग का निरोध कर देते हैं। तत्पश्चात् पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीव के वचन योग से असंख्यात गुणहीन वचनयोग के पर्यायों को प्रतिसमय निरुद्ध करते हुए असंख्यात समयों में सम्पूर्ण वचनयोग का निरोध करते हैं। तदनन्तर प्रथम समय में उत्पन्न अपर्याप्त निगोदिया जीव के जघन्य काययोग के पर्यायों से असंख्यात गुणहीन काययोग का समय-समय निरोध करते हुए, असंख्यात समयों में बादर काययोग को सर्वथा निरुद्ध कर देते हैं। उस समय यह तीसरा सूक्ष्मक्रियानिवर्त्ति नामक शुक्लध्यान होता है।

तत्पश्चात् भवोपग्राही कर्मों का क्षय करने के लिए लेश्या से अतीत, अत्यन्त निश्चल उत्कृष्ट निर्जरा के कारणभूत चौथे समुच्छिन्न क्रिया-अप्रतिपाती नामक शुक्लध्यान को प्राप्त करने के लिए योग का सर्वथा

નિરોધ કરતા થકા સમ્પૂર્ણ મનોયોગનો નિરોધ કરી દે છે. તત્પશ્ચાત્ પર્યાપ્ત દ્વીન્દ્રિય જીવના વચનયોગથી અસંખ્યાતગુણહીન વચનયોગના પર્યાયોને પ્રતિસમય નિરુદ્ધ કરતા થકા અસંખ્યાત સમયોમાં સમ્પૂર્ણ વચનયોગનો નિરોધ કરે છે. તદનન્તર પ્રથમ સમયમાં અપર્યાપ્ત નિગોદિયા જીવના જઘ-ન્ય કાયયોગના પર્યાયોથી અસંખ્યાતગુણહીન કાયયોગનો સમય-સમયે નિરોધ કરતા થકા અસંખ્યાત સમયોમાં બાદર કાયયોગનો સર્વથા નિરોધ કરી દે છે તે સમયે આ ત્રીજુ સૂક્ષ્મક્રિયાનિવર્તિ નામક શુકલધ્યાન હોય છે.

ત્યારબાદ જીવોપગ્રાહી કર્મોને ખપાવવા માટે લેશ્યાથી અતીત અત્યન્ત નિશ્ચલ, ઉત્કૃષ્ટ નિર્જરાના કારણભૂત ચોથા સમુચ્છિન્નક્રિયા અપ્રતિપાતી નામક શુકલધ્યાનને પ્રાપ્ત કરવા માટે યોગનો સર્વથા નિરોધ કરવાના અર્થે ઉપક્રમ કરે છે. ચોથા શુકલધ્યાનમાં શ્વાસોચ્છવાસરૂપ સૂક્ષ્મ કાયયોગનો

क्रियाऽप्रतिपाति ध्याने श्वासोच्छ्वासरूपं सूक्ष्ममपि काययोगं निरुध्याऽयोगित्वं प्राप्य शैलेशीमवस्थां शैलवद् अविचलामवस्थां प्रतिपद्यते ततोऽसौ मध्यमकालेन अ, इ, उ, ऋ लृ, इत्येवं रूपं पञ्चह्रस्वाक्षरोच्चारणसमकालस्थितिकं चतुर्थं समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपातिध्यानं प्रतिपद्यते इत्येतत्कालानन्तरं मोक्षमाप्तिरवश्यम्भावात् इति ॥७६॥

मूलम्—चउव्विहे सुक्कज्झाणे जहा कम्मंति एगकायजोगा-जोगाणं ॥७७॥

छाया—चतुर्विधं शुक्लध्यानं यथाक्रमं त्र्येककाययोगाऽयोगानाम् ॥७७॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावत्-शुक्लध्यानं चतुर्विधं प्रतिपादितम्, सम्प्रति तेषां चतुर्णां स्थानविशेषनिर्धारणार्थ मुच्यते-'चउव्विहे सुक्कज्झाणे' इत्यादि

निरोध करने के अर्थ उपक्रम करते हैं। चौथे शुक्लध्यान में श्वासोच्छवास रूप सूक्ष्म काययोग का निरोध करके अयोगी दशा प्राप्त करते हैं। इस दशा में वे पर्वत के समान अविचल–अकम्प अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। इस समय उन्हें समुच्छिन्न क्रिया–अप्रतिपाती ध्यान होता है। मध्यम रूप से अ, इ, उ, ऋ, लृ, इन पांच ह्रस्व स्वरों के उच्चारण में जितना काल लगता है, उतने काल तक ही वह ध्यान रहता है। इसके पश्चात् नियम से विदेह दशा–मुक्ति प्राप्त हो जाती है ॥७६॥

'चउव्विहे सुक्कज्झाणे' इत्यादि

सूत्रार्थ—चार प्रकार का शुक्लध्यान अनुक्रम से तीनों योगों वालों को एक योग वाले को, काययोगीको और अयोगी को होता है ॥७७

तत्त्वार्थदीपिका—पहले शुक्लध्यान चार प्रकार का कहा गया है। अब उनके स्थान विशेष का निश्चय करने के लिए कहते हैं—

निरोध करीने, अयोगी दशा प्राप्त करे छे. आ दशामां तेओ पर्वतनी माफक अविचल–अकम्प अवस्थाने प्राप्त करी ले छे. ते समये तेओने समुच्छिन्नक्रिया–अप्रतिपाती ध्यान होय छे मध्यम रूपथी अ. ई, उ, ऋ, लृ, आ पांच ह्रस्व स्वरोना उच्चारणमां जेटलो समय लागे छे तेटला काळ सुधी ज आ ध्यान टकी रहे छे. आनी पश्चात् नियमथी विदेहदशा–मुक्ति प्राप्त थई जाय छे. ॥७६॥

'चउव्विहे सुक्कज्झाणे' ईत्यादि

सूत्रार्थ—चार प्रकारना शुकलध्यान अनुक्रमथी त्रणे योगोवाळाने एक योगवाळाने काययोगीने अने अयोगीने होय छे, ॥७८॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहेला शुकलध्यान चार प्रकारना कहेवामां आव्या छे. हवे तेमना स्थान विशेषनो निश्चय करवा माटे कहीए छीए—

चतुर्विधं खलु शुक्लध्यानम्, पृथक्त्ववितर्क-एकत्ववितर्क सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति-समुच्छिन्नक्रियाऽनिवर्तिरूपं यथाक्रमं क्रमश स्त्रियोगै-कयोग-काययोगाऽयोगानां भवति। तथा च-कायवाङ्मनोयोगत्रयसहितस्य पृथक्त्ववितर्करूपं प्रथमं शुक्लध्यानम् एकयोगस्य योगसंक्रमणकाले कायादि योगान्यतमयोगसहितस्य एकत्ववितर्करूपं द्वितीयं शुक्लध्यानम्। कययोगस्य-काययोगसहितस्य निरुद्ध मनोवाग्योगस्य सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपातिरूपं तृतीयं शुक्लध्यानम्। अयोगस्य योगरहितस्य तु-समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिरूपं चतुर्थं शुक्लध्यानं भवतीति भावः। एवञ्च-मनोवाक् कायाना मवष्टम्भेनाऽऽत्मप्रदेशपरिस्पन्दनम् आत्मप्रदेशचलनरूपं प्रथमं पृथक्त्वसविचारं नाम शुक्लध्यानं भवति। तथाविधत्रियोगेषु मध्ये

पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियानिवर्ति और समुच्छिन्न क्रिया-अप्रतिपाती नामक शुक्लध्यान क्रम से तीनों योगों वाले को, एक योग वाले को, काययोग वाले को और अयोगी को होता है। अर्थात् काययोग वचनयोग और मनोयोग से सहित मुनि को पृथक्त्व वितर्क नामक प्रथम शुक्लध्यान होता है। एक योग वाले को अर्थात् काययोग आदि में से किसी भी एक योग वाले को एकत्व वितर्क शुक्लध्यान होता है। जिसने वचनयोग और मनोयोग का सर्वथा निरोध कर दिया है और जिसमें सिर्फ काययोग ही शेष रह गया है, सूक्ष्मक्रिय-अनिवर्तिध्यान होता है और अयोगी को समुच्छिन्न क्रिय-अप्रतिपाती नामक चौथा शुक्लध्यान होता है।

इस प्रकार मन, वचन और काय के निमित्त से आत्मप्रदेशों में चंचलता जिस ध्यान में रहती है, वह पृथक्त्व वितर्क सविचार शुक्ल-

પૃથક્ત્વવિતર્ક, સૂક્ષ્મ-ક્રિયાનિવર્ત્તિ અને સમુચ્છિન્નક્રિયા-અપ્રતિપાતી નામક શુક્લધ્યાન ક્રમથી ત્રણે યોગવાળાને એક યોગવાળાને કાયયોગવાળાને અને અયોગીને હોય છે અર્થાત કાયયોગ વચનયોગ અને મનોયોગથી સહિત મુનિને પૃથક્ત્વવિતર્ક નામક પ્રથમ શુક્લધ્યાન હોય છે એક યોગ વાળાને અર્થાત્ કાયયોગ આદિમાંથી કોઇ પણ એક યોગવાળાને એકત્વવિતર્ક શુક્લધ્યાન હોય છે જેમણે વચનયોગ અને મનોયોગનો સર્વથા નિરોધ કરેલ છે અને જેમનામાં માત્ર કાયયોગ જ શેષ રહી જવા પામેલ છે તેને સૂક્ષ્મ ક્રિય-અનિવર્ત્તિ ધ્યાન હોય છે અને અયોગીને સમુચ્છિન્નક્રિય-અપ્રતિપાતી નામક ચોથું શુક્લધ્યાન હોય છે.

આ રીતે મન, વચન અને કાયાના નિમિત્તથી આત્મપ્રદેશોમાં ચંચળતા જે ધ્યાનમાં રહે છે, તે પૃથક્ત્વવિતર્ક સવિચાર શુક્લધ્યાન છે. ત્રણે યોગો

मनोवाक्कायानामन्यतमाऽऽलम्बनेना-ऽऽत्मप्रदेशपरिस्पन्दनं द्वितीयम् एकत्ववितर्कविचारं नाम शुक्लध्यानं भवति। काययोगमात्राऽऽलम्बनेनात्मप्रदेशचलनं तृतीयं सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाति नाम शुक्लध्यानं भवति। एकमपि कायादियोगस्यालम्बनाऽऽत्मप्रदेशचलनं चतुर्थं समुच्छिन्नक्रियानिवर्ति नाम शुक्लध्यानं भवतीति फलितम् ॥७७॥

ध्यान है। तीनों योगों में से किसी एक योग वाले को एकत्व वितर्क शुक्लध्यान होता है। जिसके वचनयोग और मनोयोग का सर्वथा निरोध हो चुका है और सिर्फ काययोग शेष रह गया हो, उसे तीसरा शुक्लध्यान सूक्ष्मक्रिय-अनिवर्ति होता है। चौथा शुक्लध्यान अयोगी को होता है।

इस प्रकार शुक्लध्यान में मन वचन और काययोग के आलम्बन से आत्मप्रदेशों में स्पन्दन होता रहता है वह पृथक्त्व वितर्क सविचार शुक्लध्यान कहलाता है। तीनों योगों में से किसी एक योग के आलम्बन से आत्मप्रदेशों में जहां स्पन्दन होता रहता है, वह एकत्व वितर्क-अविचार ध्यान कहलाता है। काययोग मात्र के आलम्बन से आत्म प्रदेशों में हलन चलन होना तीसरा सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाती नामक शुक्लध्यान है। जिस ध्यान में किसी भी योग का आलम्बन नहीं होता अतएव आत्मप्रदेशों का स्पन्दन भी नहीं होता वह समुच्छिन्नक्रिय-अप्रतिपाती शुक्लध्यान कहलाता है, यह फलितार्थ है ॥७७॥

માંથી કોઇ એક યોગવાળાને એકત્વવિતર્ક શુકલધ્યાન હોય છે. જેમના વચનયોગ અને મનોયોગ નો સર્વથા નિરોધ થઈ ચૂકયો છે અને માત્ર કાયયોગ જ શેષ રહી ગયો છે તેને ત્રીજું શુકલધ્યાન સૂક્ષ્મક્રિયા-અનિવર્તિ હોય છે. ચોથું શુકલધ્યાન અયોગીને હોય છે.

આ રીતે જે શુકલધ્યાનમાં મન વચન અને કાયયોગના આલમ્બનથી આત્મપ્રદેશોમાં સ્પન્દન થતું રહે છે તે પૃથક્ત્વ-વિતર્કસવિચાર શુકલધ્યાન કહેવાય છે. ત્રણે યોગોમાંથી કોઇ એક યોગના આલમ્બનથી આત્મપ્રદેશોમાં જ્યાં સ્પન્દન થતું રહે છે તે એકત્વવિતર્ક-અવિચાર ધ્યાન કહેવાય છે કાયયોગ માત્રના આલમ્બનથી આત્મપ્રદેશોમાં હલન-ચલન થતું ત્રીજું સૂક્ષ્મક્રિયા-અપ્રતિપાતી નામક શુકલધ્યાન છે. જે ધ્યાનમાં કોઈ પણ યોગનું આલમ્બન હોતું નથી જેથી આત્મપ્રદેશોનું સ્પન્દન પણ થતું નથી તે સમુચ્છિન્નક્રિયા-અપ્રતિપાતી શુકલધ્યાન કહેવાય છે. આ ફલિતાર્થ છે ॥૭૭॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं खलु चतुर्थं शुक्लध्यानं प्ररूपितम्, तत्र-प्रथममुपशान्तकषायस्यैकादशगुणस्थानवर्तिन श्चतुर्दश पूर्वधारिणो भवति। द्वितीयं क्षीणकषायस्य भवति। तृतीयसन्तु-सयोगि केवलिनो भवति। चतुर्थं पुनः शुक्लध्यानम्-अयोगि केवलिनो भवतीति चाऽपि प्ररूपितम्, ॥ सम्प्रति-तेषां चतुर्णां खलु उपशान्तकषायादीनां स्वामिनां शब्दान्तरेण विशिष्य प्रतिपादनार्थमाह-'चउव्विहे सुक्कज्झाणे जहाक्कमं ति-एग कायजोगा जोगाणं' इति चतुर्विधं खलु पूर्वोक्तं शुक्लध्यानं पृथक्त्ववितर्कसविचाररूपम्, एकत्ववितर्काविचाररूपम्, सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपातिरूपम्, समुच्छिन्नक्रियाऽनिवर्तिरूपञ्च यथाक्रमम्-क्रमशः त्रियोगस्य-मनोवचःकाययोगयुक्तस्य, एकयोगस्य-संक्रमणकाले मनोवचःकायाऽन्यतमयोगयुक्तस्य, काययोगस्य-निरुद्धयोगद्वयस्य काययोगव्यापारवतः, अयोगस्य-कायादियोगरहितस्य च भवति। तत्र मनोवाक्कायव्यापारवतः पृथक्त्ववितर्कसविचार नाम शुक्लध्यानम्, कायादियोगा-

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले शुक्लध्यान का निरूपण किया गया। यह भी बतलाया जा चुका है कि प्रथम दो शुक्लध्यान प्रायः चतुर्दश पूर्वधारक को होते हैं, और अन्तिम दो केवली को होते हैं। तीन योगों की अपेक्षा से भी उनके स्वामियों का उल्लेख करते हैं—

चार प्रकार का शुक्लध्यान अर्थात् पृथक्त्ववितर्क सविचार, एकत्ववितर्क-अविचार, सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती और समुच्छिन्नक्रियानिवर्ति क्रम से तीनों योगों वाले को, एक योग वाले को, काययोगी को और अयोगी को होते हैं। तात्पर्य यह है कि मन, वचन और काय के व्यापार वाले को पृथक्त्व वितर्क सविचार शुक्लध्यान होता है, तीनों योगों में से किसी एक योग वाले को एकत्व वितर्क-अविचार ध्यान होता है। इस ध्यान को करने वाले के काय आदि योगों में से किसी

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ-પહેલા શુકલધ્યાનનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું. એ પણ બતાવવામાં આવ્યું કે પ્રથમના બે શુકલધ્યાન પ્રાયઃ ચૌદ પૂર્વધારકને હોય છે જ્યારે અન્તિમ બે કેવલીને હોય છે. ત્રણ યોગોની અપેક્ષાએ પણ તેના સ્વામિઓનો ઉલ્લેખ કરીએ છીએ—

ચાર પ્રકારના શુકલધ્યાન અર્થાત્ પૃથક્ત્વવિતર્ક સવિચાર એકત્વવિતર્ક-અવિચાર, સુક્ષ્મક્રિયાપ્રતિપાતી અને સમુચ્છિન્ન ક્રિયાનિવર્ત્તિ ક્રમથી ત્રણે યોગોવાળાને, કાયયોગી ને અને અયોગીને હોય છે. આશય એ છે કે મન વચન અને કાયાના વ્યાપારવાળાઓને પૃથક્ત્વવિતર્કસવિચાર શુકલધ્યાન હોય છે, ત્રણે યોગોમાંથી કોઇ એક યોગવાળાને એકત્વવિતર્ક અવિચાર ધ્યાન હોય છે. આ ધ્યાનને ધ્યાવવાવાળાઓને કાય આદિ યોગોમાંથી કોઇ એક યોગનો વ્યાપાર હોય છે જેમ કે કયારેક વચનયોગ

व्यतमयोगवतः–एकत्ववितर्काविचारं नाम शुक्लध्यानम् १ भवति यस्य-ध्यायिनः कायादियोगाना मन्यतमो योगो व्याप्रियते यथा–कदाचिद्–वाग्योगः कदाचित्–मनोयोगो वेति भावः २ कायैकयोगो वेति भावः २ कायैकयोग व्यापारवतस्तु–सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपातिनामकं तृतीयं शुक्लध्यानं भवति ३ कायादियोगरहितस्य शैलेश्यवस्थाविशिष्टस्य मनोवाक् काययोगत्रयरहितत्वात् समुच्छिन्नक्रियाऽनिवर्ति रूपं चतुर्थं शुक्लध्यानं भवतीति भावः ४ ॥७७॥

मूलम्–पढमा दो एगासया सवियक्का सवियाराऽवियारा ।७८।

छाया–'प्रथमे द्वे, एकाश्रये सवितर्के सविचाराऽविचारे ॥७८॥

तत्त्वार्थदीपिका— प्रथमे आद्ये द्वे, पृथक्त्ववितर्कसविचारम्–एकत्ववितर्काविचारं चेति । एकाश्रये–एकः आश्रयः पूर्वधररूपः आलम्बनं ययो स्ते, एकस्वामिके इत्यर्थः । सवितर्के–वितर्केण पूर्वगतश्रुतसम्बन्धिना तर्केण सहिते, तत्र–प्रथमं सविचारम्, द्वितीयमविचारं भवति । अतएव–प्रथमं पृथक्त्ववितर्कं सविचारम्, द्वितीयम्–एकत्ववितर्काऽविचारं व्यपदिश्यते । अनयोर्व्याख्या पूर्वं गता इति ॥७८॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति–पूर्वं तावत्–चतुर्विधस्यापि शुक्लध्यानस्य स्वाम्यादीनां

एक योग का व्यापार होता है, जैसे कभी वचनयोग का और कभी मनोयोग का। सिर्फ एक काययोग वाले को सूक्ष्मक्रिय–अप्रतिपाती नामक तीसरा शुक्लध्यान होता है। जो शैलेशी अवस्था को प्राप्त हो चुका है और तीनों से रहित हो गया है ऐसे अयोगी को समुच्छिन्न क्रिया–अप्रतिपाती ध्यान होता है ॥७७॥

'पढमा दो एगासया' इत्यादि ॥७८॥

प्रथम के दो शुक्लध्यान एक आश्रय वाले हैं, सवितर्क हैं और सविचार अविचार हैं, अर्थात् पहला सविचार है, दूसरा अविचार है ॥७८॥

तत्त्वार्थदीपिका–प्रारंभ के दो शुक्लध्यान पृथक्त्ववितर्क सविचार

નો અને કયારેક મનોયોગનો. માત્ર એક કાયયોગવાળાને સૂક્ષ્મક્રિય–અપ્રતિપાતી નામક ત્રીજું શુક્લધ્યાન હોય છે. જે શૈલેશી અવસ્થાને પ્રાપ્ત થઈ ચૂકયા છે અને ત્રણે યોગોથી રહિત થઈ ગયા છે એવા અયોગીને સમુચ્છિન્નક્રિય–અપ્રતિપાતી ધ્યાન હોય છે. ॥૭૭॥

'पढमा दो एगासया ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ–પ્રથમના બે શુક્લધ્યાન એક આશ્રયવાળા છે, સવિતર્ક છે. અને સવિચાર–અવિચાર છે, અર્થાત્ પહેલુ સવિચાર છે બીજું અવિચાર છે. ॥૭૮॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પ્રારંભના બે શુક્લધ્યાન પૃથક્ત્વ વિતર્ક સવિચાર અને

प्ररूपणं कृतम्, सम्प्रति-प्रथमद्वितीयशुक्लध्यानयोः किञ्चिद् विशेषप्रतिपत्त्यर्थं प्रतिपादयति-'पढमा दो एगासया सवियक्का सविचाराविचारा' इति प्रथमे आदिमे द्वे शुक्लध्याने, सवितर्के वितर्केण-श्रुतज्ञानेन सहिते भवतः, एकद्रव्याश्रये-एकस्वामिके च ते विज्ञेये। परमाणुद्रव्यमेकमवलम्ब्य आत्मादि द्रव्यं वा, एकमालम्ब्य श्रुताऽनुसारेण निरुद्धचेतसः प्रथमद्वितीये शुक्लध्याने भवतः पूर्वगतश्रुतानुसारिणी खलु पृथक्त्ववितर्कसविचारे-कत्ववितर्काऽविचारे

और एकत्ववितर्क-अविचार एक ही आश्रय वाले हैं अर्थात् प्रायः पूर्वधर ही इन दोनों का आश्रय है, दोनों का एक ही स्वामी होता है। दोनों वितर्क सहित हैं अर्थात् पूर्वगत श्रुत के अवलम्बन से होते हैं, किन्तु दोनों में जो अन्तर है वह यह है कि पहला सविचार और दूसरा अविचार है। व्याख्या इनकी पहले की जा चुकी है ॥७८॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पहले चारों प्रकार के शुक्लध्यान के स्वामी आदि की प्ररूपणा की जा चुकी है। अब प्रथम और द्वितीय शुक्लध्यान में जो समानता और असमानता है, उसका प्रतिपादन करते हैं-

आदि के दो शुक्लध्यान सवितर्क अर्थात् श्रुतज्ञान सहित हैं एकस्वामिक हैं। एक परमाणु द्रव्य अथवा आत्मा आदि द्रव्य का अवलम्बन करके श्रुत के अनुसार चित्त-निरोध करने वाले को प्रथम और द्वितीय शुक्लध्यान होते हैं। इस प्रकार पृथक्त्ववितर्क-अविचार नामक दोनों शुक्लध्यान प्रायः पूर्वगत श्रुत के अनुसारी

એકત્વવિતર્ક-અવિચાર એક જ આશ્રયવાળા છે અર્થાત્ પ્રાયઃ પૂર્વધર જ આ બંનેના આશ્રય છે, બંનેના એક જ સ્વામિ હોય છે. બંને વિતર્ક સહિત છે અર્થાત્ પૂર્વગત શ્રુતના અવલમ્બનવાળા હોય છે પરંતુ બંનેમાં જે ફરક છે તે એ છે કે પહેલું સવિચાર અને બીજું અવિચાર છે. એમની વ્યાખ્યા તો અગાઉ કરી દેવામાં આવી છે. ॥૭૮॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ-અગાઉ ચારે પ્રકારના શુક્લધ્યાનના સ્વામિ આદિની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી ગઈ છે હવે પ્રથમ અને દ્વિતીય શુક્લધ્યાનમાં જે સમાનતા અને અસમાનતા છે તેનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ--

પ્રારંભના બે શુક્લધ્યાન સવિતર્ક અર્થાત્ શ્રુતજ્ઞાન સહિત છે, એક પરમાણુ દ્રવ્ય અથવા આત્મા આદિ દ્રવ્યનું અવલમ્બન કરીને શ્રુત અનુસાર ચિત્ત-નિરોધ કરનારાને પ્રથમ અને દ્વિતીય શુક્લધ્યાન હોય છે. આ રીતે પૃથક્ત્વવિતર્ક સવિચાર નામક બંને શુક્લધ્યાન પ્રાયઃ પૂર્વગત શ્રુતને અનુસાર હોય છે પરંતુ પ્રથમ શુક્લધ્યાન સવિચાર અર્થાત્ અર્થ વગેરેના સંક્રમ,

भवतः, किन्तु-प्रथमं तावत्-पृथक्त्ववितर्करूपं शुक्लध्यानं सविचारम् अर्थादि संक्रान्तियुक्तं भवति द्रव्यमालम्ब्य जायमान मपि द्रव्यं विहाय पर्यायमुपैति, पर्यायं वा त्यक्त्वा द्रव्यमाश्रयते इत्येवं संक्रान्तियुक्तं भवति। द्वितीयं पुनरेकत्व वितर्करूपं शुक्लध्यानं यमालम्ब्योपजायते तं परित्यज्य नाऽन्यत्र संक्रामति। अतएव-यद् अविचारं भवति, तस्याऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिरहितत्वात् ॥७८॥

मूलम्—वितक्के-सुए, वियारे-अत्थवंजणजोग संकंती ॥७९॥

छाया—'वितर्कः-श्रुतम्, विचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः ॥७९॥

तत्त्वार्थदीपिका- पूर्वसूत्रे-प्रथमद्वयस्य शुक्लध्यानस्य सवितर्कत्वम्, स-

---

होते हैं। किन्तु प्रथम शुक्लध्यान सविचार अर्थात् अर्थ आदि के संक्रमण से युक्त होता है। वह द्रव्य के आलम्बन से उत्पन्न होकर द्रव्य को छोड कर पर्याय का चिन्तन करने लगता है। कभी पर्याय को त्याग कर द्रव्य का चिन्तन करने लगता है। इस प्रकार का संक्रमण उसमें होता रहता है। मगर दूसरा एकत्ववितर्कध्यान जिस विषय का आलम्बन लेकर उत्पन्न होता है, उसे त्याग कर अन्य विषय का चिन्तन नहीं करता। इस कारण वह अविचार कहलाता है। वह अर्थ व्यंजन और योग के संक्रमण से रहित होता है ॥७८॥

'वितक्के-सुए वियारे' इत्यादि सूत्र० ७९

सूत्रार्थ—वितर्क का अर्थ श्रुत है। अर्थ, व्यंजन और योग का उलट-फेर विचार कहलाता है ॥७९॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्व सूत्र में प्रारंभ के दो शुक्लध्यानों को

ણથી યુકત હોય છે તે દ્રવ્યના આલમ્બનથી ઉત્પન્ન થઈને, દ્રવ્યને છોડી દઈને, પર્યાયનું ચિન્તન કરવા લાગે છે કયારેક પર્યાયનો ત્યાગ કરીને દ્રવ્યનું ચિન્તન કરવા લગે છે. આ જાતનું સંક્રમણ તેનામાં થતું રહે છે પરંતુ બીજું એકત્વવિતર્ક ધ્યાન જે વિષયનું આલમ્બન લઈને ઉત્પન્ન થાય છે તેનો ત્યાગ કરીને અન્ય વિષયનું ચિન્તન કરતું નથી આથી તે અવિચાર કહેવાય છે. તે અર્થ વ્યંજન અને યોગના સંક્રમણથી રહિત હોય છે

'वितक्के सुए वियारे' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ--વિતર્કનો અર્થ, શ્રુતછે અને વ્યંજન અને યોગ નો ઉલટ-ફેર વિચાર કહેવાય છે. ॥૭૯॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા--પૂર્વ સૂત્રમાં આરંભના બે શુકલધ્યાનોને સવિતર્ક કહ્યા છે,

विचारत्वम्, अविचारत्वं चोक्तम्, तत्र-कस्तावद् वितर्कः-विचारो वा ? इति जिज्ञासायामाह-'वितक्के सुए, वियारे अत्थवंजणजोगसंकंती' इति । वितर्कः श्रुतम्, वितर्क्यते-आलोच्यते येन पदार्थः स (कारणभूतः) वितर्कश्रुतज्ञान मुच्यते । विशेषेण तर्कणं वितर्कः श्रुतज्ञानम्, विचारस्तु-अर्थ व्यञ्जनयोगसंक्रान्ति रुच्यते, अर्थस्य परमाण्वादेर्ध्येयवस्तुनो द्रव्यस्य-द्रव्यपर्यायस्य वा संक्रान्तिः-परिवर्तनम् अर्थसंक्रान्तिः, द्रव्यमवलम्ब्य जायमानं ध्यानं द्रव्यं विहाय पर्याय-मुपैति, पर्यायमाश्रित्य जायमानन्तु-पर्यायं परित्यज्य द्रव्यमुपैति । एवं व्यञ्ज-नस्य तद् वाचकशब्दस्य संक्रान्तिः-परिवर्तनं व्यञ्जनसंक्रान्तिः । एकं तद् वाचक-

सवितर्क कहा है. प्रथम शुक्लध्यान को सविचार और दूसरे को अविचार कहा है तो यह वितर्क अथवा विचार क्या हैं ? ऐसी जिज्ञासा होने पर उसका समाधान करते हैं—

वितर्क का अर्थ श्रुत है । अर्थ, व्यंजन और योग का संक्रमण विचार कहलाता है । जिसके द्वारा पदार्थ की वितर्कणा या आलोचना की जाय उसे वितर्क-श्रुतज्ञान कहते हैं । अर्थ, व्यंजन और योग का संक्रमण अर्थात् परिवर्त्तन विचार कहलाता है । अर्थ अर्थात् परमाणु आदि ध्येय वस्तु का-द्रव्य या पर्याय का परिवर्त्तन अर्थ संक्रान्ति है अर्थात् द्रव्य का चिन्तन करते-करते पर्याय का चिन्तन करने लगना और पर्याय का चिन्तन करते-करते द्रव्य का चिन्तन करने लगना, अर्थ संक्रमण है । व्यंजन अर्थात् शब्द का संक्रमण व्यंजन संक्रान्ति है । वस्तु के एक वाचक शब्द को लेकर

પ્રથમ શુકલધ્યાનને સવિચાર અને બીજાને અવિચાર કહ્યું છે તો આ વિતર્ક અથવા વિચાર શું છે ? એવી જિજ્ઞાસા થવાથી તેનું સમાધાન કરીએ છીએ--

વિતર્કનો અર્થ શ્રુત છે. અર્થ વ્યંજન અને યોગનું સંક્રમણ વિચાર કહેવાય છે. જેની દ્વારા પદાર્થની વિતર્કણા અથવા આલોચના કરવામાં આવે તેને વિતર્ક-શ્રુતજ્ઞાન કહે છે. અર્થ. વ્યંજન અને યોગનું સંક્રમણ અર્થાત પરિવર્ત્તન વિચાર કહેવાય છે. અર્થ અર્થાત્ પરમાણુ આદિ ધ્યેય વસ્તુનું-દ્રવ્ય અથવા પર્યાયનું પરિવર્ત્તન અર્થસંક્રાન્તિ છે અર્થાત્ દ્રવ્યનું ચિન્તન કરતાં કરતાં પર્યાયનું ચિન્તન કરવા લાગવું અને પર્યાયનું ચિન્તન કરતાં કરતાં દ્રવ્યનું ચિન્તન કરવા લાગવું અર્થસંક્રમણ છે વ્યંજન અર્થાત્ શબ્દનું સંક્રમણ વ્યંજન સંક્રાન્તિ છે. વસ્તુના એક વાચક શબ્દને લઈને ધ્યાન

शब्दमुपादाय प्रवर्तमानं ध्यान शब्दान्तरमाश्रयते तदपि वचनं परित्यज्याऽन्यद् वचन मालम्बते इति व्यञ्जनसंक्रान्तिः। एवं-कायादियोगानां संक्रान्तिः परिवर्तनं योगसंक्रान्तिः। उच्यते, यथा-काययोगमाश्रित्य जायमानं ध्यानं वचोयोग मालम्बते वचोयोगं विहाय मनोयोगमुपैति, मनोयोगं परित्यज्य पुनः काययोग मुपादत्ते, इत्येवं योगसंक्रान्ति र्भवति इत्येवं रीत्याऽर्थव्यञ्जनयोग परिवर्तनं विचार उच्यते। अथ परिवर्तनरूप संक्रान्तौ सत्यां कथं ध्यानमेक विषयकं संभवति, संक्रान्तौ तस्याऽनेकविषयत्वात् इति चेत् ? उच्यते-ध्यान सन्तानस्यापि ध्यानपदेन ग्रहणाद् दोषाऽभावः। तथा च-ध्यान धाराया अपि ध्यानत्वेन वहुत्वा दुक्तदोषो न संभवति ॥७९॥

ध्यान चालू हो, फिर वह दूसरे शब्द का आश्रय ले ले, फिर उस शब्द को भी त्याग कर तीसरे शब्द का चिन्तन करने लगे, इस परिवर्त्तन को व्यंजन संक्रान्ति कहते हैं। इसी प्रकार काययोग आदि का परिवर्त्तन योगसंक्रान्ति कहलाता है, जैसे काययोग का आलम्बन करके उत्पन्न होने वाला ध्यान वचनयोग का आवलम्बन करता है फिर वचनयोग को त्याग कर मनोयोग का आश्रय लेता है, मनोयोग को त्याग कर पुनः काययोग का सहारा लेता है, इस प्रकार योग संक्रान्ति होती है। इस प्रकार अर्थ, व्यंजन और योग परिवर्त्तन विचार कहलाता है।

शंका--संक्रमण अर्थात् परिवर्त्तन होने पर भी ध्यान एक विषयक किस प्रकार कहा जा सकता है ! संक्रमण होने पर तो वह अनेक विषयक हो जाता है।

समाधान--ध्यान की सन्तान भी ध्यान कहलाती है। अर्थात्

ચાલુ હોય, પછી તે બીજા શબ્દનો આશ્રય લઈ લે પછી તે શબ્દનો પણ ત્યાગ કરીને ત્રીજા શબ્દનું ચિન્તન કરવા લગે, આ પરિવર્ત્તનને વ્યંજનસંક્રાન્તિ કહે છે આવી જ રીતે કાયયોગ આદિનું પરિવર્ત્તન યોગ-સંક્રાન્તિ કહેવાય છે જેવી રીતે કાયયોગનું આલમ્બન લઈને ઉત્પન્ન થનારૂં ધ્યાન વચનયોગનુ અવલમ્બન કરે છે, પાછું વચનયોગનો પણ ત્યાગ કરીને મનોયોગનો આશ્રય લે છે. મનોયોગનો ત્યાગ કરીને પુનઃ કયયોગનો સહારો લે છે. આવી રીતે યોગસંક્રાન્તિ થાય છે આમ, અર્થ વ્યંજન અને યોગનું પરિવર્ત્તન વિચાર કહેવાય છે.

શંકા--સંક્રમણ અર્થાત્ પરિવર્ત્તન થવાથી ધ્યાન એક-વિષયક કેવી રીતે કહી શકાય ? સંક્રમણ થવાથી તો તે અનેક વિષયક થઈ જાય છે.

સમાધાન--ધ્યાનનું સન્તાન પણ ધ્યાન કહેવાય છે. અર્થાત્ ધ્યેયમાં

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावत्-शुक्लध्यानस्य सवितर्कत्वं-सविचारत्वम्-अविचारत्वञ्च यथाक्रमं,मुक्तम् तत्र-कस्तावद् वितर्कः विचारो वा? इत्याकाङ्क्षामाह 'वितक्के सुए, विचारे अत्थवंजण जोग संकंती' इति। वितर्कः श्रुत मुच्यते वितर्कणं विशेषेण ऊहनं वितर्कः श्रुतज्ञानम्, वितर्क्यते-आलोच्यते-पदार्थो येन स वितर्कः श्रुतज्ञानम्. संशयविपर्ययरहितं निर्णयस्वरूप मित्यर्थः। विचारस्तु-अर्थ व्यञ्जनयोगसंक्रान्ति रूच्यते, तत्राऽर्थः परमाण्वादि द्रव्यं-पर्यायश्च, व्यञ्जनं तद् वाचकः शब्दः, योगाः-काय-वाङ्मनोरूपाः, संक्रमणं परिवर्त्तनं संक्रान्तिः, अर्थवचनकायादियोगानां परिवर्तनं विचार उच्यते। तत्राऽर्थसंक्रान्तिर्यथा-आत्मादि द्रव्यमेक मालम्ब्य जायमानं ध्यानं तदपहाय पर्यायं संक्रामति। पर्यायं

ध्येय में परिवर्त्तन हो जाने पर भी ध्यान का प्रवाह यदि अविच्छिन्न रहता है तो वह भी ध्यान ही कहलाता है, अतः पूर्वोक्त आशंका को कोई अवकाश नहीं ॥७९॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले शुक्लध्यान के प्राथमिक दो भेदों को सवितर्क कहा है। पहले को सविचार और दूसरे को अविचार कहा है तो वितर्क और विचार किसे कहते हैं, इस आशंका का समाधान करते हैं—यहां वितर्क का अर्थ श्रुत है, जिसके द्वारा वस्तु की वितर्कणा की जाय आलोचना किया जाय वह वितर्क अर्थात् श्रुतज्ञान विचार का अभिप्राय है अर्थ, व्यंजन और योग का संक्रमण। परमाणु आदि द्रव्य या पर्याय अर्थ कहलाता है, उसका वाचक शब्द व्यंजन कहलाता है और काय, वचन तथा मन का व्यापार योग कहलाता है। संक्रमण का मतलब है उलट-फेर होना। काययोग आदि के उलटफेर को विचार कहते हैं। आत्मा आदि किसी एक द्रव्य का आलम्बन करके

પરિવર્ત્તન થઈ જવાંથી પણ ધ્યાનનો પ્રવાહ કદાચ અવિચ્છિન્ન રહે તો પણ ધ્યાન જ કહેવાય છે, આથી પૂર્વોક્ત આશંકાને કોઈ સ્થાન નથી. ॥૭૯॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ--પહેલા શુક્લધ્યાનના પ્રાથમિક બે ભેદોને સવિતર્ક કહેવામા આવ્યા છે. પહેલા ને સવિચાર અને બીજાને અવિચાર કહેલ છે તો વિતર્ક અને વિચાર કોને કહે છે એ આશંકાનું સમાધાન કરીએ છીએ-અહીં વિતર્કનો અર્થ શ્રુત છે. જેના વડે વસ્તુની વિતર્કણા કરવામાં આવે, આલોચન કરવામા આવે તે વિતર્ક અર્થાત્ શ્રુતજ્ઞાન વિચારનો અભિપ્રાય છે અર્થ વ્યંજન અને યોગનું સંક્રમણ પરમાણુ આદિ દ્રવ્ય અથવા પર્યાય અર્થ કહેવાય છે તેનો વાચક શબ્દ વ્યંજન કહેવાય છે અને કાય વચન તથા મનનો વ્યાપાર યોગ કહેવાય છે. સંક્રમણનો અર્થ થાય છે ઉલટ-ફેર થવું. કાયયોગ આદિની ફેર-બદલીને વિચાર કહે છે. આત્મા આદિ

वाऽऽश्रित्य जायमानं यानं तं विहाय द्रव्यमुपैति। अथ वाचक शब्दव्यञ्जन संक्रान्तिर्यथा-एकं श्रुतशब्दमालम्ब्य जायमानं शब्दान्तर मालम्बते, तदपि परित्यज्य शब्दान्तर मुपादत्ते, योग संक्रान्तिर्यथा-काययोगोपयुक्तध्यानं वाग्योगं संक्रामति, वाग्योगोपयुक्तध्यानञ्च-मनोयोगं संक्रामति, मनोयोगोपयुक्तध्यानञ्च-काययोगं संक्रामति, इत्येवं खलु-अर्थव्यञ्जनयोगसंक्रमणं विचार उच्यते इति भावः। उक्तञ्च--

'उप्पायठिइ भंगाइं पज्जायाण जमेगदव्वंमि।
नाणानयाणुसरणं पुव्वगयसुयाणुसारेणं ॥१॥'
'सवियार मत्थ वंजणजोगंतरओ तयं पढम सुक्कं।
होइ पुहुत्त वियक्क सवियार सरागभावस्स' ॥२॥
'जं पुण सुनिप्पकंपं निवायसरणप्पइवमिवचित्तं।
उप्पायठिइ भंगाइयाणमेगम्मि पज्जाए ॥३॥
अवियारमत्थवंजणजोगंतरओ तयं बिइय सुक्कं।
पुव्वगय सुयालंबण मेगत्त वियक्कमवियारं ॥४॥

होने वाला ध्यान उस द्रव्य को छोडकर पर्याय में चला जाता है, पर्याय का चिन्तन करते-करते द्रव्य का चिन्तन करने लगता है, यह अर्थ का संक्रमण कहलाता है। व्यंजन की संक्रान्ति का मतलब यह है कि श्रुत के किसी एक शब्द का चिन्तन करते-करते दूसरे शब्द का चिन्तन करने लगना। काययोग के अवलम्बन से होने वाला ध्यान कदाचित् वचनयोग का आश्रय लेता है, कदाचित् किसी अन्य योग का यह योग संक्रान्ति है। इस प्रकार अर्थ, व्यंजन और योग का संक्रमण होना विचार कहा गया है। कहा भी है—

'पूर्वगत श्रुत के अनुसार, अनेक नयों की अपेक्षा से एक द्रव्य

કોઇ એક દ્રવ્યનું આલમ્બન લઇને થનારૂં ધ્યાન તે દ્રવ્યને છોડીને પર્યાયમાં ચાલ્યું જાય છે પર્યાયનું ચિન્તન કરતા કરતા દ્રવ્યનું ચિન્તન કરવા લાગે છે આ અર્થનું સંક્રમણ કહેવાય છે, વ્યંજનની સંક્રાન્તિનો અર્થ એવો થાય છે કે શ્રુતના કોઇ એક શબ્દનું ચિન્તન કરતા કરતા બીજા શબ્દનું ચિન્તન કરવા લાગવું કાયયોગના અવલમ્બનથી થનારૂં ધ્યાન કદાચિત વચનયોગનો આશ્રય લે છે, કદાચિત્ કોઇ અન્ય યોગનો આ યોગસંક્રાન્તિ છે આ રીતે અર્થ વ્યંજન અને યોગનું સંક્રમણ થવું-વિચાર કહેવામાં આવ્યો છે, કહ્યું પણ છે-

પૂર્વગત શ્રુત અનુસાર, અનેક નયોની અપેક્ષાથી એક દ્રવ્યના ઉત્પાદ

छाया--उत्पाद स्थिति भङ्गादि पर्यायाणां यदेक द्रव्ये ।
नाना नयानुसरणं पूर्वगतश्रुतानुसारेण ॥१॥
सविचार मर्थ व्यञ्जन योगान्तरतस्तथा प्रथमशुक्लम् ।
भवति पृथक्त्ववितर्कसविचारं सरागभावस्य ॥२॥
यत्पुनः सुनिष्प्रकम्पं निवातशरणप्रदीपमिव चित्तम् ।
उत्पाद स्थिति भङ्गादिकाना मेकस्मिन्पर्याये ॥३॥
अविचारमर्थ व्यञ्जन योगान्तर स्तथा द्वितीयशुक्लम् ।
पूर्वगत श्रुतावलम्बन मेकत्ववितर्कमविचारम् ४ ७९ ।

मूलम्--विउस्सग्गे दुविहे दव्वभावभेयओ ॥८०॥

छाया--व्युत्सर्गो द्विविधः, द्रव्यभावभेदतः ॥८०॥

के उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य आदि पर्यायों का अर्थ व्यञ्जन और योग के परिवर्त्तन के साथ चिन्तन करना पृथक्त्ववितर्क-सविचार नामके प्रथम शुक्लध्यान कहलाता है। यह ध्यान छद्मस्थ में होता है। १-२

जो ध्यान वायुविहीन स्थान में रक्खे हुए दीपक के समान निष्प्रकम्प होता है और उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य आदि में से किसी एक पर्याय का ही चिन्तन करता है वह एकत्ववितर्क अविचार नामक दूसरा शुक्लध्यान कहलाता है। यह ध्यान भी पूर्वगत श्रुत के आश्रय से होता है किन्तु अर्थ, व्यंजन और योग के संक्रमण से रहित होता है ॥ ३-४॥ ७९॥

'विउस्सग्गे दुविहे' इत्यादि सू० ॥८०॥

सूत्रार्थ--व्युत्सर्ग दो प्रकार का है--द्रव्यव्युत्सर्ग और भाव व्युत्सर्ग ॥ ८० ॥

વ્યય અને ધ્રૌવ્ય આદિ પર્યાયોનો અર્થ, વ્યંજન અને યોગના પરિવર્ત્તનની સાથે ચિન્તન કરવું પૃથકત્વવિતર્ક સવિચાર નામક પ્રથમ શુકલધ્યાન કહેવાય છે આ ધ્યાન છદ્મસ્થઅવસ્થામાં થાય છે ॥૧-૨॥

જે ધ્યાન વાયુવિહીન સ્થાનમાં રાખવામાં આવેલા દીપકની માફક નિષ્પ્રકમ્પ હોય છે અને ઉત્પાદ વ્યય તથા ધ્રૌવ્ય આદિમાંથી કોઇ એક પર્યાયનું જ ચિન્તન કરે છે. તે એકત્વવિતર્ક-અવિચાર નામક બીજું શુકલ ધ્યાન કહેવાય છે. આ ધ્યાન પણ પૂર્વગત શ્રુતના આશ્રયથી થાય છે. ॥૩-૪॥ ॥૭૯॥

'विउस्सग्गे दुविहे' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ--વ્યુત્સર્ગ બે પ્રકારના છે-દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ અને ભાવવ્યુત્સર્ગ ॥૮૦॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वं तावत्-आभ्यन्तरतपसः प्रायश्चित्तादि भेदेन षड् विधत्वप्रतिपादनात् तत्र-यथाक्रमं प्रायश्चित्तादयः प्ररूपिताः, सम्प्रति-क्रम प्राप्तस्य पञ्चमाभ्यन्तरतपसो व्युत्सर्गरूपस्य द्रव्य भावभेदेन द्वैविध्यं प्ररूपयितुमाह-'विउस्सग्गे दुविहे' इत्यादि । व्युत्सर्गो व्युत्सर्जनं, स द्विविधो, द्रव्यभावभेदतः, तत्र-द्रव्यत उपध्यादिममत्ववर्जनं व्युत्सर्गः भावतः कषायत्यागो भावव्युत्सर्गः, इत्येवं द्विविधो व्युत्सर्गः अथवा-व्युत्सर्ग इति कायोत्सर्गः कायममत्वत्यागः शयनाऽऽसनस्थानेषु काय चेष्टावर्जनम् । सोऽपि द्विविधः, इत्वरिको यावत्कथिकश्चेति ॥८०॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः पूर्वं खलु-प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वध्याय व्युत्सर्ग भेदेन षड्विधस्याऽऽभ्यन्तरतपसा यथाक्रमं प्रायश्चित्तादीनां सभेदं प्ररूपणं कृतम्,

---

तत्त्वार्थदीपिका--पहले आभ्यन्तर तप के छह भेदों का निरूपण किया गया था, उनमें से प्रायश्चित्त आदि का निरूपण हो चुका, अब क्रमप्राप्त पाचवें आभ्यन्तर तप व्युत्सर्ग के द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार बतलाते हैं हैं--

व्युत्सर्ग के दो भेद हैं-द्रव्यव्युत्सर्ग और भावव्युत्सर्ग । उपधि आदि का त्याग द्रव्यव्युत्सर्ग कहलाता है और कषायों का त्याग भावव्युत्सर्ग कहलाता है । व्युत्सर्ग को कायोत्सर्ग और कायममत्वत्याग भी कहते हैं जिसका आशय है शयन, आसन एवं स्थान में काय की चेष्टा का त्याग । उसके भी दो भेद हैं-इत्वरिक और यावत्कथिक ॥८०॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पहले प्रायश्चित्त विनय, वैयावृत्य स्वाध्याय और

તત્ત્વાર્થદીપિકા-પહેલા આભ્યન્તર તપના છ ભેદોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યુ હતું તેમાંથી આયશ્ચિત્ત આદિનું નિરૂપણ થઈ ગયું હવે ક્રમપ્રાપ્ત પાંચમાં આભ્યન્તર તપ વ્યુત્સર્ગના દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બે પ્રકાર બતાવીએ છીએ-

વ્યુત્સર્ગના બે ભેદ છે-દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ અને ભાવવ્યુત્સર્ગ ઉપધિ આદિનો ત્યાગ દ્રવ્ય વ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે અને કષાયોનો ત્યાગ ભાવવ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે. વ્યુત્સર્ગને-કાયોત્સર્ગ અને કાયમમત્વત્યાગ પણ કહે છે જેનો આશય છે શયન આસન અને સ્થાનમાં કાયની ચેષ્ટાનો ત્યાગ તેના પણ બે ભેદ છે--ઈત્વરિક અને યાવત્કથિક ॥૮૦॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા પ્રાયશ્ચિત્ત, વિનય, વૈયાવૃત્ય, સ્વાધ્યાય અને

सम्प्रति-क्रमप्राप्तस्य पञ्चमाभ्यन्तरतपसो द्रव्य-भाव भेदेन द्विविधस्य प्ररूपणं कर्तुमाह-'विउस्सग्गे दुविहे, दव्वभावभेयओ'-इति। व्युत्सर्गो विविधस्य कायव्यापारस्य प्रवचनविहितेन विधिनोत्सर्गः स्त्यागः स-द्विविधो भवति, द्रव्यभावभेदतः। तत्र-द्रव्यतो बाह्योपधे व्युत्सर्ग-स्त्यागो द्रव्यव्युत्सर्गः, बाह्योपधि ममत्वत्याग इत्यर्थः। भावतश्चाभ्यन्तरोपधेः क्रोधादिकषायरूपस्य व्युत्सर्गस्त्यागो भावव्युत्सर्गः स च मनोवाक्कायैः क्रोधादिकषायाणां कृतकारितानुमतिभिश्च भावव्युत्सर्गो व्यपदिश्यते। उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ श्री भगवती सूत्रे २५-शतके ७ उद्देशके ८०२ सूत्रे -'विउस्सग्गो दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-दव्वविउस्सग्गे य-भाव विउस्सग्गे य' व्युत्सर्गो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-द्रव्यव्युत्सर्गश्च, भावव्युत्सर्गश्चेति

व्युत्सर्ग के भेद से आभ्यन्तर तप के छह भेद कहे गए थे। उनमें से प्रायश्चित्त आदि का भेद प्रदर्शनपूर्वक निरूपण किया गया। अब क्रमप्राप्त पांचवें आभ्यन्तर तप व्युत्सर्ग के दो भेदों की प्ररूपणा करते हैं—

विविध प्रकार के कायिक व्यापार का आगमोक्त विधिसे त्याग करना व्युत्सर्ग है उसके दो भेद हैं-द्रव्यव्युत्सर्ग और भावव्युत्सर्ग। बाह्य उपधि संबंधी ममत्व का त्याग करना द्रव्यव्युत्सर्ग है और आभ्यन्तर उपधि कषाय का त्याग करना भावव्युत्सर्ग है। मन, वचन काय से कृत, कारित और अनुमोदन से कषायों का त्याग करना भावव्युत्सर्ग कहलाता है। भगवती सूत्र शतक २५, उद्देशक ७ में कहा गया है-द्रव्य और भावके भेद से व्युत्सर्ग, दो प्रकारका है। इस

વ્યુત્સર્ગના ભેદથી આભ્યન્તર તપના છ ભેદ કહેવામાં આવ્યા હતા તેમાંથી પ્રાયશ્ચિત્ત આદિના ભેદ પ્રદર્શનપૂર્વક નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે ક્રમપ્રાપ્ત પાંચમાં આભ્યન્તર તપ વ્યુત્સર્ગના બે ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ—

વિવિધ પ્રકારના કાયિક વ્યાપારનો આગમોક્ત વિધિથી ત્યાગ કરવો વ્યુત્સર્ગ છે તેના બે ભેદ છે-દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ અને ભાવવ્યુત્સર્ગ બાહ્ય ઉપધિ સંબંધી મમત્વનો ત્યાગ કરવો દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ છે, અને આભ્યન્તર ઉપધિ કષાયનો ત્યાગ ભાવવ્યુત્સર્ગ છે મન વચન, કાયાથી તથા કૃતકારિત અને અનુમોદનથી કષાયોનો ત્યાગ કરવો ભાવવ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે, ભગવતી સૂત્ર શતક ૨૫, ઉદ્દેશક ૭માં કહ્યું છે-દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી વ્યુત્સર્ગ

तथा च बाह्योपध्यादि ममत्व व्युत्सर्गो द्रव्य व्युत्सर्ग उच्यते आभ्यन्तर क्रोधादि कषाय व्युत्सर्गश्च भावव्युत्सर्ग उच्यते ॥८०॥

इति श्री विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-
कलितललितकलापालापकप्रविशुद्धगद्यपद्यानैकग्रन्थनिर्मापक,
वादिमानमर्दक-श्रीशाहूच्छत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त-
'जैनाचार्य' पदभूषित — कोल्हापुरराजगुरु-
बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर
पूज्य श्री घासीलालव्रतिविरचितायां श्री
दीपिका-निर्युक्ति व्याख्या द्वयो-
तस्य तत्त्वार्थसूत्रस्या सप्तमो-
ध्याय समाप्तः ॥७॥

प्रकार बाह्य उपधि का त्याग द्रव्यव्युत्सर्ग और क्रोध आदि आभ्यन्तर उपधि का त्याग भावव्युत्सर्ग कहलाता है ॥८०॥

जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालजीमहाराजकृत
'तत्त्वार्थसूत्र' की दीपिका-निर्युक्ति व्याख्या का
सातवां अध्याय समाप्त ॥७॥

એ પ્રકારના છે-આવી રીતે બાહ્ય ઉપધિનો ત્યાગ દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ અને ક્રોધ આદિ આભ્યન્તર ઉપધિનો ત્યાગ ભાવવ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે. ॥૮૦॥

જૈનાચાર્ય જૈનધર્મદિવાકર પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજકૃત "તત્ત્વાર્થસૂત્ર"ની
દીપિકા-નિર્યુક્તિ વ્યાખ્યાનો સાતમો અધ્યાય સમાપ્તઃ ॥૭॥

卐

अथाऽष्टमोऽध्यायः प्रारभ्यते

मूलम्—देसओ कम्मक्खओ निज्जरा ॥१॥

छाया—'देशतः कर्मक्षयो निर्जरा ।१

तत्वार्थदीपिका—जीवादि नवतत्त्वानां यथाक्रमं प्ररूपणार्थं पूर्वं जीवादि संवरतत्त्वपर्यन्तं सप्ततत्त्वानां प्ररूपणं कृतम्, सम्प्रति-क्रमप्राप्तमष्टमं निर्जरा-तत्वं प्ररूपयितु मष्टममध्याय मारभते-'देसओ कम्मक्खओ निज्जरा' इति । देशतो न तु-सर्वतः कर्मक्षयः कर्मणां ज्ञानावरणादि कर्मणां क्षयः, आत्मप्रदेशतो देशतः पृथग् भवनम्, विपाकेन-कर्मफलभोगेन-तपसा चाऽनशनादिना देशतो विनाशः परिशटनं जीवात्मनि वस्त्रे लिप्तस्य संश्लिष्टस्य कर्ममलस्य पृथग्भवनेन देशतो विध्वंसनं निर्जरा-उच्यते । तथा च जीवरूपे वस्त्रे कर्मरूपमलस्य ज्ञानरूप

अष्टम अध्याय का प्रारंभ

'देसओ कम्मक्खओ निज्जरा'

सूत्रार्थ—एक देश से कर्मक्षय होना निर्जरा है ॥१॥

तत्त्वार्थदीपिका—जीव आदि नौ तत्वों का निरूपण करते हुए जीव से लेकर संवर तत्त्व पर्यन्त सात तत्त्वों का निरूपण किया जा चुका अब क्रमप्राप्त आठवें निर्जरातत्त्व की प्ररूपणा करने के लिए आठवां अध्याय का आरंभ करते हैं—

ज्ञानावरण आदि कर्मों का आत्मप्रदेशों से पृथक् होना अर्थात् विपाक (कर्मफल के भोग) से और तपस्या से एक देश से विनाश होना निर्जरा है । जैसे वस्त्र में लगा मैल धुलने पर हट जाता है उसी प्रकार कर्म आत्मप्रदेशों से अलग हो जाते हैं । जीव रूपी वस्त्र में, कर्म रूपी मल

આઠમા અધ્યાયનો પ્રારંભ

'દેસઓ કમ્મક્ખઓ નિજ્જરા' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ— એક દેશથી કર્મક્ષય થવો નિર્જરા છે ॥ ૧ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—જીવ આદિ નવ તત્વોનું નિરૂપણ કરતા થકા જીવથી લઈને સંવર તત્વ પર્યન્ત સાત તત્વોનું નિરૂપણ કરવામાં આવી ગયું, હવે ક્રમપ્રાપ્ત આઠમાં નિર્જરા તત્ત્વની પ્રરૂપણા કરવાને માટે આઠમાં અધ્યયનનો આરંભ કરીએ છીએ—

જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મોનું આત્મ પ્રદેશોથી છૂટા પડવું અર્થાત્ વિપાક (કર્મફળના ભોગ) થી અને તપસ્યાથી એક દેશથી વિકાસ થવો નિર્જરા છે. જેમ વસ્ત્રમાં લાગેલો મેલ તેને ધોવાથી દૂર થઇ જાય છે તેજ રીતે કર્મ આત્મ પ્રદેશોથી જુદું થઇ જાય છે. જીવરૂપી વસ્ત્રમાં કર્મરૂપી મળનો, જ્ઞાન-

जलेनाऽनशनादि तपः संयमरूपक्षारद्रव्येण प्रक्षालनद्वारा निर्जरातत्त्वं व्यपदिश्यते, निर्जरणं–देशतः परिशटनं निर्जरेति व्युत्पत्तेः ॥१॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावद् जीवादि संवरपर्यन्तसप्ततत्त्वानां प्ररूपणं कृतम्, सम्प्रति–क्रमप्राप्तस्याऽष्टमस्य निर्जरा तत्त्वस्य प्ररूपणं कर्तुमष्टममध्यायमारभते–'देसओ कम्मक्खओ निज्जरा' इति। देशतो न तु–सर्वतः कर्मक्षयः कर्मणां ज्ञानावरणदर्शनावरणादि कर्मणां विपाकानां वा देशतः क्षयो–विनाशः परिशटनम् आत्मप्रदेशेभ्यो विघटनं–पृथग्भवनं निर्जरोच्यते। 'निर्जरणं परिशटनं निर्जरा'–इति व्युत्पत्तेः, तथा च–पूर्वोपार्जितानां कर्मणाम् आत्म संश्लिष्टानां विपाकेन वेदनरूपकर्मफलभोगेन–तपसा चाऽनशनादिना द्वादशविधेनाऽऽसेव्यमानेन देशतः क्षयो विध्वंसनं निर्जरातत्त्वं व्यपदिश्यते। एवञ्चाऽऽत्मरूप वस्त्रे जतुकाष्ठवत्–संश्लिष्टस्य ज्ञानावरणादि कर्मरजोमलस्य ज्ञानरूपादि सलि-

का, ज्ञान रूपी जल से, अनशन आदि तप एवं संयम रूपी खार (सोडे) से प्रक्षालन द्वारा छूट जाना निर्जरातत्त्व है। १।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पहले जीव से लेकर संवर पर्यन्त सात तत्त्वों का निरूपण किया गया अब क्रमानुसार आठवें निर्जरा तत्व का निरूपण करने के लिए आठवां अध्याय प्रारंभ किया जाता है।

विपाक को प्राप्त अथवा नहीं प्राप्त ज्ञानावरण आदि कर्मों का एक देश से क्षय होना--आत्मप्रदेशों से पृथक् हो जाना निर्जरा है। पूर्वोपार्जित और आत्मप्रदेशों के साथ एकमेक हुए कर्म विपाक के द्वारा अर्थात् फलभोग के द्वारा बारह प्रकार के अनशन आदि तपों के द्वारा क्षय को प्राप्त हो जाते हैं, उसी को निर्जरा कहते हैं।

इस प्रकार आत्मा रूपी वस्त्र में दूध और पानी की तरह परस्पर

રૂપી જળથી અનશન આદિ તપ અને સંયમ રૂપી ખાર (સોડા) થી પ્રક્ષાલન દ્વારા દૂર થઈ જવું નિર્જરાતત્વ છે. ॥ ૧ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિઃ—પહેલા જીવથી લઈને સંવર પર્યન્ત સાત તત્ત્વનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે ક્રમાનુસાર આઠમાં નિર્જરાતત્ત્વનું નિરૂપણ કરવા માટે આઠમો અધ્યાય શરૂ કરવામાં આવે છે.

વિપાકને પ્રાપ્ત અથવા નહીં પ્રાપ્ત જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મોનો એકદેશથી ક્ષય થવો આત્મપ્રદેશોથી પૃથક્ થવું નિર્જરા છે પૂર્વોપાર્જીત અને આત્મપ્રદેશોની સાથે એકમેક થયેલા કર્મવિપાક દ્વારા અર્થાત્ ફળભોગ દ્વારા બાર પ્રકારના અનશન આદિ તપો દ્વારા ક્ષયને પ્રાપ્ત થઈ જાય છે, તેને જ નિર્જરા કહે છે.

આ રીતે આત્મારૂપી વસ્ત્રમાં, દૂધ અને પાણીની જેમ પરસ્પર બદ્ધ જ્ઞાના

लेनाऽनशन प्रायश्चित्तादि तपः संयमरूप क्षारद्रव्येण परिशोधन द्वारा निष्कासनं निस्सरणं निर्जरेत्यवगन्तव्यम् । उत्तराध्ययने ३०-अध्ययने ६ गाथायाञ्चोक्तम् 'एवं तु संजयस्सावि पावकम्मनिरासवे । भवकोडीसंचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ' ॥१॥ एवन्तु संयतस्याऽपि पापकर्मनिरास्रवे । भवकोटी सञ्चितं कर्म तपसा निर्जीर्यते ॥१॥

मूलम्—सा दुविहा, विवागजा-अविवागजा य ॥२॥

छाया-सा द्विधा, विपाकजाऽविपाकजा च ॥२॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वसूत्रे-देशतो ज्ञानावरणादि कर्मक्षयरूपं निर्जरातत्त्वं प्ररूपितम्, सम्प्रति-तद्भेदं प्रतिपादयितुमाह-'सा दुविहा' इत्यादि । सा खलु पूर्वोक्तस्वरूपा निर्जरा द्विविधा भवति, तद्यथा-विपाकजाऽविपाकजाचेति, तत्र-

---

वह ज्ञानावरणीय आदि कर्म रूपी रज-मल का, ज्ञानादि रूप जल से एवं अनशन आदि तथा प्रायश्चित्त आदि तप रूपी सोडे से शोधन होकर हट जाना निर्जरा समझना चाहिए। उत्तराध्ययन के तीसवें अध्ययन की छठी गाथा में कहा है--

पापकर्मों का आस्रव रुक जाने पर संयमी पुरुष के करोडों भवों में संचित कर्मों की तपस्या के द्वारा निर्जरा हो जाती है ॥१।

'सा दुविहा विवागजा' इत्यादि

निर्जरा दो प्रकार की है-विपाकजा और अविपाकजा ॥२॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वसूत्र में ज्ञानावरण आदि का एक देश से क्षय होने रूप निर्जरातत्व का निरूपण किया गया है, अब उसके भेदों का प्ररूपण करते है--

---

વરણીય આદિ કર્મ રૂપી રજ-મેલનો જ્ઞાનાદિ રૂપ જળથી અને અનશન આદિ તથા પ્રાયશ્ચિત્ત આદિ તપ રૂપી સોડાથી શુદ્ધ થઈને દૂર થઈ જવું, નિર્જરા સમજવું જોઈએ. ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના ત્રીસમાં અધ્યયનની છટ્ઠી ગાથામાં કહેવામાં આવ્યું છે—

પાપકર્મોનો આસ્રવ રોકાઈ જવાથી સંયમી પુરૂષના કરોડો ભવોમાં સંચિત કર્મોની તપસ્યા દ્વારા નિર્જરા થઈ જાય છે. ॥ ૧ ॥

'સા દુવિહા વિવાગજા' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—નિર્જરા બે પ્રકારની છે-વિપાકજા અને અવિપાકજા ॥૨॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પૂર્વસૂત્રમાં જ્ઞાનાવરણ આદિનું એક દેશથી ક્ષય થવા રૂપ નિર્જરા તત્વનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે, હવે તેના ભેદોનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ-

विपाकः कर्मफलवेदनरूपो भोगः तस्माद् विपाकाद् जाता-निष्पन्ना जायमाना उत्पद्यमाना निष्पद्यमाना वा निर्जरा देशतः पृथग्भवनरूपा विपाकजा व्यपदिश्यते १। तथाविधकर्मफलभोगरूपविपाकं विनैवाऽनशनप्रायश्चित्तादिना तपः संयमेन जाता देशतः पृथग्भवनरूपा निष्पन्ना जायमाना वा निर्जराऽविपाकजा व्यपदिश्यते २, तत्र-नारकतिर्यङ्मनुष्यदेव चतुर्गतिषु नाना जातिविशेष भ्रमि विघूर्णित संसारमहार्णवे चिरं परिभ्रमणं कुर्वतो जीवस्य शुभाशुभस्य कर्मणः क्रमेण परिपाककालप्राप्तफलानुभवोदयावलिकास्रोतोऽनुप्रविष्टस्यारब्धफलस्य या निवृत्तिः सा विपाकजा निर्जरा भवति। किन्तु-यत्पुनः कर्मविपाककालाप्राप्तमेव-औपक्रमिकक्रियाविशेष सामर्थ्यादनुदीर्णं हठादुदीर्योदयावलिकां प्रवेश्य वेद्यते वह्नि ताप सन्धूरनादिनाऽऽम्र-पनसादिपाकवत् साऽविपाकजा निर्जराऽवगन्तव्या-इति भावः ॥२॥

निर्जरा के दो भेद हैं-विपाकजा और अविपाकजा। उदय में आए हुए कर्म के फल को भोगना विपाक कहलाता है, उससे होने वाली निर्जरा विपाकजा निर्जरा कहलाती है। दूसरी अविपाकजा निर्जरा का अर्थ है-कर्म के फल को भोगे विना ही अनशन-प्रायश्चित्त आदि तपश्चर्या के द्वारा होने वाली निर्जरा।

नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति रूप संसार-महासागर में अनादि काल से भ्रमण करते हुए जीव के, परिपाक को प्राप्त शुभ और अशुभ कर्म, उदयावलिका में प्रविष्ट होकर और अपना फल देकर हट जाते हैं, उसे सविपाक निर्जरा कहते हैं। किन्तु स्थितिकाल पूर्ण हुए विना ही किसी औपक्रमिक क्रियाविशेष के सामर्थ्य से जो कर्म हठात् उदय में ले लाया जाता है और उदयावलिका में प्रविष्ट करा कर फल

નિર્જરાના બે ભેદ છે-વિપાકજા અને અવિપાકજા ઉદયમાં આવેલા કર્મના ફળને ભોગવવા તે વિપાક કહેવાય છે, તેનાથી થનારી નિર્જરા વિપાકજા નિર્જરા કહેવાય છે બીજી અવિપાકજા નિર્જરા જે કર્મના ફળને ભોગવ્યા વગર જ અનશન પ્રાયશ્ચિત્ત આદિ તપશ્ચર્યા દ્વારા થનારીનિર્જરા છે.

નારકી, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવગતિ રૂપ સંસાર મહાસાગરમાં અનાદિ કાળથી ભ્રમણ કરતા થકા જીવને, પરિપાકને પ્રાપ્ત શુભ અને અશુભ કર્મ ઉદયાવલિકામાં પ્રવિષ્ટ થઈને અને એમનું ફળ પ્રદાન કરીને દૂર થઈ જાય તેને સવિપાક નિર્જરા કહે છે પરન્તુ સ્થિતિકાળ પૂર્ણ થયા વગર જ કોઈ ઔપક્રમિક ક્રિયા વિશેષના સામર્થ્યથી જે કર્મ ઉદયમાં લાવવામાં આવે છે અને ઉદયાવલિકામાં પ્રવિષ્ટ કરાવીને ફળ ભોગવી લીધા બાદ તે આત્માથી

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वसूत्रे-कर्मक्षयरूपनिर्जरायाः स्वरूपं निरूपितम्, सम्प्रति-तस्या भेदद्वयं प्रतिपादयितुमाह-'सा दुविहा, विवागजा अविवागजा-य' इति । सा पूर्वोक्तस्वरूपा निर्जरा द्विविधा भवति, तद्यथा-विपाकजाऽविपाकजाचेति । तत्र-विपचनं विपाकः, उदयावलिकाप्रवेशः, ज्ञानावरणादि कर्मणां विशिष्टो नानाप्रकारको वा पाकः कर्मफलानुभावो विपाकः, अप्रशस्त शुभपरिणामाना मुत्कटः, प्रशस्त शुभपरिणामाना मनुत्कटश्च कर्मबन्धफलभोग रूपोऽनुभवः, सर्वासां कर्मप्रकृतीनां फलभोगो विपाकोदयोऽनुभाव उच्यते । विविधः पाको विपाकः, स खलु-विपाक स्तथा भवति, अन्यथा च भवति, यथा येनाऽध्यवसायप्रकारेण यादृग्भावं बद्धं कर्म भवति तत्तथा तेनैव प्रकारेण विपच्यते

भोगने के पश्चात् वह आत्मा से पृथक् हो जाता है, उसे अविपाकजा निर्जरा कहते हैं जैसे गर्मी पहुंचाकर आम को समय से पहले ही पका लिया जाता है, इसी प्रकार स्थिति का परिपाक होने से पहले ही तपस्या आदि के द्वारा कर्म को विपाकोन्मुख कर लेना अविपाकजा निर्जरा है ॥२॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पूर्वसूत्र में निर्जरा का स्वरूप प्रतिपादन किया गया, अब उसके दो भेदों का निरूपण करते हैं—

निर्जरा दो प्रकार की है-विपाकजा और अविपाकजा। ज्ञानावरण आदि कर्मों का नाना प्रकार का जो फलानुभव है, वह विपाक कहलाता है। सभी कर्मप्रकृतियों का फलभोग-विपाकोदय अनुभाव कहा जाता है। विविध प्रकार के पाक को भी विपाक कहते हैं। कर्म का विपाक कभी उसी रूप में होता है, जिस रूप में बांधा है और कभी अन्यथा भी

પૃથક્ થઇ જાય છે, તેને અવિપાકજા નિર્જરા કહે છે. જેમ ગરમી આપીને કેરીને સમય થતા પહેલા જ પકાવી લેવામાં આવે છે. તેવી જ રીતે સ્થિતિનો પરિપાક થતાં અગાઉ જ તપસ્યા આદિ દ્વારા કર્મને વિપાકોન્મુખ કરી લેવા તે અવિપાકજા નિર્જરા છે ॥ ૨ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પૂર્વસૂત્રમાં નિર્જરાનું સ્વરૂપ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું, હવે તેના બે ભેદોનું નિરૂપણ કરીએ છીએ

નિર્જરા બે પ્રકારની છે–વિપાકજા અને અવિપાકજા જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મોનો જુદા જુદા પ્રકારનો જે ફલાનુભવ વિપાકોદય અનુભવ છે તે વિપાક કહેવાય છે બધી કર્મપ્રકૃતિઓના ફળ ભોગને વિપાકોદય અનુભાવ કહેવામાં આવે છે વિવિધ પ્રકારના પાકને પણ વિપાક કહે છે કર્મનો વિપાક કોઈવાર તે જ રૂપમાં હોય છે, કે જે રૂપે બાંધ્યું હોય અને કયારેક અન્યથા પણ હોય છે.

विपाकः कर्मफलवेदनरूपो भोगः तस्माद् विपाकाद् जाता-निष्पन्ना जायमाना उत्पद्यमाना निष्पद्यमाना वा निर्जरा देशतः पृथग्भवनरूपा विपाकजा व्यपदिश्यते १। तथाविधकर्मफलभोगरूपविपाकं विनैवाऽनशनप्रायश्चित्तादिना तपः संयमेन जाता देशतः पृथग्भवनरूपा निष्पन्ना जायमाना वा निर्जराऽविपाकजा व्यपदिश्यते २, तत्र-नारकतिर्यङ्मनुष्यदेव चतुर्गतिषु नाना जातिविशेष भ्रमि विघूर्णित संसारमहार्णवे चिरं परिभ्रमणं कुर्वतो जीवस्य शुभाशुभस्य कर्मणः क्रमेण परिपाककालमाप्तफलानुभवोदयावलिकास्रोतोऽनुप्रविष्टस्यारब्धफलस्य या निवृत्तिः सा विपाकजा निर्जरा भवति। किन्तु-यत्पुनः कर्मविपाककालाप्राप्तमेव-औपक्रमिकक्रियाविशेष सामर्थ्यादनुदीर्णं हठादुदीर्य्योदयावलिकां प्रवेश्य वेद्यते वह्नि ताप सन्धूपनादिनाऽऽम्र-पनसादिपाकवत् साऽविपाकजा निर्जराऽवगन्तव्या-इति भावः ॥२॥

निर्जरा के दो भेद हैं-विपाकजा और अविपाकजा। उदय में आए हुए कर्म के फल को भोगना विपाक कहलाता है, उससे होने वाली निर्जरा विपाकजा निर्जरा कहलाती है। दूसरी अविपाकजा निर्जरा का अर्थ है-कर्म के फल को भोगे बिना ही अनशन-प्रायश्चित्त आदि तपश्चर्या के द्वारा होने वाली निर्जरा।

नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति रूप संसार-महासागर में अनादि काल से भ्रमण करते हुए जीव के, परिपाक को प्राप्त शुभ और अशुभ कर्म, उदयावलिका में प्रविष्ट होकर और अपना फल देकर हट जाते हैं, उसे सविपाक निर्जरा कहते हैं। किन्तु स्थितिकाल पूर्ण हुए विना ही किसी औपक्रमिक क्रियाविशेष के सामर्थ्य से जो कर्म हठात् उदय में ले लाया जाता है और उदयावलिका में प्रविष्ट करा कर फल

નિર્જરાના બે ભેદ છે-વિપાકજા અને અવિપાકજા ઉદયમાં આવેલા કર્મના ફળને ભોગવવા તે વિપાક કહેવાય છે, તેનાથી થનારી નિર્જરા વિપાકજા નિર્જરા કહેવાય છે બીજી અવિપાકજા નિર્જરા જે કર્મના ફળને ભોગવ્યા વગર જ અનશન પ્રાયશ્ચિત્ત આદિ તપશ્ચર્યા દ્વારા થનારીનિર્જરા છે.

નારકી, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવગતિ રૂપ સંસાર મહાસાગરમાં અનાદિ કાળથી ભ્રમણ કરતા થકા જીવને, પરિપાકને પ્રાપ્ત શુભ અને અશુભ કર્મ ઉદયાવલિકામાં પ્રવિષ્ટ થઇને અને એમનું ફળ પ્રદાન કરીને દૂર થઈ જાય તેને સવિપાક નિર્જરા કહે છે પરન્તુ સ્થિતિકાળ પૂર્ણ થયા વગર જ કોઈ ઔપક્રમિક ક્રિયા વિશેષના સામર્થ્યથી જે કર્મ ઉદયમાં લાવવામાં આવે છે અને ઉદયાવલિકામાં પ્રવિષ્ટ કરાવીને ફળ ભોગવી લીધા બાદ તે આત્માથી

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वसूत्रे-कर्म क्षयरूपनिर्जरायाः स्वरूपं निरूपितम्, सम्प्रति-तस्या भेदद्वयं प्रतिपादयितुमाह-'सा दुविहा, विवागजा अविवागजा-य' इति। सा पूर्वोक्तस्वरूपा निर्जरा द्विविधा भवति, तद्यथा-विपाकजाऽविपाकजाचेति। तत्र-विपचनं विपाकः, उदयावलिकाप्रवेशः, ज्ञानावरणादि कर्मणां विशिष्टो नानाप्रकारको वा पाकः कर्मफलानुभावो विपाकः, अप्रशस्त शुभ-परिणामाना मुत्कटः, प्रशस्त शुभपरिणामाना मनुत्कटश्च कर्मबन्धफलभोग रूपोऽनुभवः, सर्वासां कर्मप्रकृतीनां फलभोगो विपाकोदयोऽनुभाव उच्यते। विविधः पाको विपाकः, स खलु-विपाक स्तथा भवति, अन्यथा च भवति, यथा येनाऽध्यवसायप्रकारेण यादृग्भावं बद्धं कर्म भवति तत्तथा तेनैव प्रकारेण विपच्यते

भोगने के पश्चात् वह आत्मा से पृथक् हो जाता है, उसे अविपाकजा निर्जरा कहते हैं जैसे गर्मी पहुंचाकर आम को समय से पहले ही पका लिया जाता है, इसी प्रकार स्थिति का परिपाक होने से पहले ही तपस्या आदि के द्वारा कर्म को विपाकोन्मुख कर लेना अविपाकजा निर्जरा है।।२।।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति--पूर्वसूत्र में निर्जरा का स्वरूप प्रतिपादन किया गया, अब उसके दो भेदों का निरूपण करते हैं—

निर्जरा दो प्रकार की है-विपाकजा और अविपाकजा। ज्ञानावरण आदि कर्मों का नाना प्रकार का जो फलानुभव है, वह विपाक कहलाता है। सभी कर्मप्रकृतियों का फलभोग-विपाकोदय अनुभाव कहा जाता है। विविध प्रकार के पाक को भी विपाक कहते हैं। कर्म का विपाक कभी उसी रूप में होता है, जिस रूप में बांधा है और कभी अन्यथा भी

પૃથક્ થઇ જાય છે, તેને અવિપાકજા નિર્જરા કહે છે. જેમ ગરમી આપીને કેરીને સમય થતા પહેલા જ પકાવી લેવામાં આવે છે. તેવી જ રીતે સ્થિતિનો પરિપાક થતાં અગાઉ જ તપસ્યા આદિ દ્વારા કર્મને વિપાકોન્મુખ કરી લેવા તે અવિપાકજા નિર્જરા છે ॥ ૨ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પૂર્વસૂત્રમાં નિર્જરાનું સ્વરૂપ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યુ, હવે તેના બે ભેદોનું નિરૂપણ કરીએ છીએ

નિર્જરા બે પ્રકારની છે-વિપાકજા અને અવિપાકજા જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મોના જુદા જુદા પ્રકારનો જે ફલાનુભવ વિપાકોદય અનુભવ છે તે વિપાક કહેવાય છે બધી કર્મપ્રકૃતિયોના ફળ ભોગને વિપાકોદય અનુભાવ કહેવામાં આવે છે વિવિધ પ્રકારના પાકને પણ વિપાક કહે છે કર્મનો વિપાક કોઈવાર તે જ રૂપમાં હોય છે, કે જે રૂપે બાંધ્યું હોય અને ક્યારેક અન્યથા પણ હોય છે.

अन्यथा च-प्रकारान्तरेणापि च विपच्यते, स च विपाकः कर्मफलभोगो-रसोऽनुभावश्चोच्यते, स च तीव्र-मन्दादिभेदो भवति। तत्र-कदाचित् शुभमपि कर्माऽशुभविपाकतयाऽनुभूयते, अशुभञ्च-शुभविपाकतयाऽनुभूतं भवति, सर्वासां कर्मप्रकृतीनां फलभोगो विपाकोदयाऽनुभावबन्धाद् जीवस्याऽनुभवनमिच्छाऽनिच्छापूर्वकं भवति। तथाहि-ज्ञानावरणकर्मप्रकृतिफलं ज्ञानाऽभावः, दर्शनावरणकर्मकृमतिफलं दर्शन शक्त्युपरोधः इत्येव रीत्या सर्वकर्मणां स्वस्वकार्यबन्धरूपाऽनुभूतिर्भवति। तत्र-ज्ञानावरणाद्यष्टविधेषु कर्मसु किञ्चित्कर्मपुद्गलेष्वेव विपच्यते,

होता है। तात्पर्य यह है कि कोई कर्म जिस प्रकार के अध्यवसाय से जिस रूप में बांधा गया है, उसी रूप में भोगा जाता है और किसी कर्म का विपाक अन्यथा रूप में भी होता है, अर्थात् अपवर्त्तना, उद्वर्त्तना आदि करणों के द्वारा कर्म के विपाक में तारतम्य भी हो जाता है। वह कर्मफल रस एवं अनुभाव भी कहलाता है। किसी कर्म का अनुभाव मन्द और किसी का तीव्र होता है। कभी-कभी शुभ विपाक अशुभ विपाक के रूप में और अशुभ विपाक शुभ विपाक के रूप में परिणत हो जाता है सभी कर्मप्रकृतियों का फल उनके नाम के अनुसार ही होता है, जैसे ज्ञानावरण प्रकृति का फल ज्ञान को आवृत करता है और दर्शनावरण प्रकृति का फल दर्शन शक्ति को आच्छादित करता है। इसी प्रकार अन्य सब कर्मप्रकृतियों के विषय में समझ लेना चाहिए।

इसी प्रकार ज्ञानावरण आदि आठ कर्मप्रकृतियों में से कोई कर्मप्रकृति पुद्गल विपाकिनी होती है। उसका फल पुद्गल में ही होता है।

તાત્પર્ય એ છે કે કોઈ કર્મ જે પ્રકારના અધ્યવસાયથી જે રૂપમાં બાંધવામાં આવ્યું છે તે જ રૂપમાં ભોગવવામાં આવે છે અને કોઈ કર્મનો વિપાક અન્યથા રૂપમાં પણ હોય છે, અર્થાત્ અપવર્ત્તના ઉદ્વર્ત્તના આદિ કારણો દ્વારા કર્મના વિપાક માં તારતમ્ય પણ થઈ જાય છે. તે કર્મફળ રસ અને અનુભાવ પણ કહેવાય છે કોઈ કર્મનો અનુભાવ મન્દ અને કોઇનો તીવ્ર હોય છે. ત્યારે ક્યારેક શુભ વિપાક અશુભ વિપાકના રૂપમાં અને અશુભ વિપાક શુભ વિપાકનાં રૂપમાં પરિણત થઈ જાય છે. બધી કર્મપ્રકૃતિનુ ફળ તેમના નામ પ્રમાણે હોય છે, જેમ કે જ્ઞાનાવરણ પ્રકૃતિનું ફળ જ્ઞાનને ઢાંકવાનું અને દર્શનાવરણ પ્રકૃતિનું ફળ દર્શન શકિતને આચ્છાદિત કરવાનું છે આવી જ રીતે અન્ય સઘળી કર્મપ્રકૃતિની બાબતમાં પણ સમજવું. આવી જ રીતે જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મપ્રકૃતિયોમાંથી કોઈ કોઈ કર્મપ્રકૃતિ પુદ્ગલ વિપાકિની હોય છે. તેનું ફળ પુદ્ગલમાં જ થાય છે. કોઈ કર્મ પ્રકૃતિ ભવવિપાકિની હોય

तत्कर्म नानाप्रकारेण पुद्गलान् परिणमयति, किञ्चित्पुनः कर्म भवविपाकी भवति तस्मिन् भवे प्राप्तजन्मन आत्मनः शरीरविशेषावच्छिन्नस्य विपच्यते, किञ्चित्कर्म क्षेत्रविपाकी भवति क्षेत्रान्तरे विपच्यते, किञ्चित्कर्म तु जीवविपाकी भवति तज्जीवे एव परभवादावपि विपच्यते, इत्येवं चतुर्धा विपच्यते। तथाचोक्तम्-

'संहननं संस्थानं वर्ण स्पर्श रस गन्ध नामानि।
अङ्गोपाङ्गानि तथा शरीरनामानि सर्वाणि' ॥१॥
'अगुरु लघु पराघातो-पघात नामातपोद्योतनामानि।
प्रत्येकशरीर स्थिर शुभ नामा नीतरैः सार्धम्' ॥२॥
प्रकृतय एताः पुद्गलविपाका भवविपाकमुक्त मायुष्कम्।
क्षेत्रफलमानुपूर्वी जीवविपाकाः प्रकृतयोऽन्याः ॥३॥इति॥

कोई कर्म भवविपाकी होता है। वह अमुक भव में ही या भव के निमित्त से ही अपना फल प्रदान करता है। कोई कर्म क्षेत्रविपाकी होता है, जिसका फल क्षेत्र के निमित्त से ही होता है। कोई कर्म जीव विपाकी होता है। उसका फल आत्मा को ही भोगना पडता है अर्थात् आत्मिक गुणों पर उसका प्रभाव होता है। इस प्रकार चार प्रकारसे कर्म का विपाक होता है। कहा भी है-

संहनन, संस्थान, वर्ण, स्पर्श, रस, गन्ध, अंगोपांगनाम कर्म, शरीरनामकर्म, अगुरूलघुनाम, पराघात, उपघात नामकर्म, आतप नाम-कर्म, उद्योत नामकर्म, प्रत्येक शरीर, स्थिर और शुभ नामकर्म, तथा उनकी विपरीत प्रकृतियां जैसे साधारण शरीर, अस्थिर और अशुभ नामकर्म, ये सब नामकर्म की प्रकृतियां पुद्गल विपाकी हैं। चार

છે. તે અમુક ભવમાં જ અથવા ભવના નિમિત્તથી જ પોતાનું ફળ પ્રદાન કરે છે. કોઈ કર્મપ્રકૃતિ ક્ષેત્રવિપાકી હોય છે- તેનું ફળ ક્ષેત્રના નિમિત્તથી જ થાય છે. કોઈ કર્મપ્રકૃતિ જીવ વિપાકી હોય છે. તેનું ફળ આત્માને જ ભોગવવું પડે છે. અર્થાત્ આત્મિક ગુણો પર તેનો પ્રભાવ હોય છે. આમ ચાર રીતે કર્મનો વિપાક થાય છે. કહ્યું પણ છે-

સંહનન, સંસ્થાન, વર્ણ, સ્પર્શ, રસ. ગન્ધ, અંગોપાંગ નામ કર્મ, શરીર નામ કર્મ, અગુરૂ લઘુ નામ પરાઘાત, ઉપઘાત નામ કર્મ, આતપ નામ કર્મ ઉદ્યોતનામ કર્મ પ્રત્યેક શરીર, સ્થિર અને શુભનામ કર્મ તથા એમની વિપરીત પ્રકૃતિઓ જેમકે સાધારણ શરીર અસ્થિર અને અશુભ નામ કર્મ, આ બધી નામ કર્મની પ્રકૃતિઓ પુદ્ગલ વિપાકી છે. ચાર પ્રકારનું આયુષ્ય કર્મ ભવ-વિપાકી છે. આનુપૂર્વી પ્રકૃતિ ક્ષેત્ર વિપાકી છે અને શેષ બધી પ્રકૃતિઓ જીવ વિપાકી છે. ॥૧—૩॥

अथ कथं तावत्-अन्यथा कर्मबन्धः, तदन्यथा फलविपाकरूपो रसो विपच्यते' इति। चेत् ? अत्रोच्यते-जीवः कर्मफलविपाकमनुभवन् कर्महेतुकमेवाऽनाभोगपूर्वकं कर्म संक्रमं करोति, तथाचोत्पादव्ययध्रौव्यत्वात् परिणामी खल्वात्मा ज्ञानावरणादिकस्य कर्मणः फलविपाकं भुञ्जानो वेद्यमानः सन् मूलकर्मप्रकृतिभिन्नोत्तरप्रकृतीनां संक्रमं करोति यथा-ज्ञानावरणरूपमूलप्रकृतेः पञ्चविधासु मतिज्ञानावरणश्रुतज्ञानावरणरूपोत्तरप्रकृतिषु परस्परं संक्रमो भवति। तत्रोत्तरप्रकृतीनामेवोत्तरप्रकृतिषु संक्रमो बोध्यः यथा-मतिज्ञाना-

---

प्रकार का आयुकर्म भव विपाकी है। आनुपूर्वी प्रकृति क्षेत्र विपाकी है और शेष सब प्रकृतियां जीव विपाकी हैं ॥१-३॥

शंका-कर्म का बन्ध अन्य रूप में हो और उसका फल विपाक अन्य रूप में यह कैसे हो सकता है ?

समाधान-जीव कर्म फल भोगता हुआ अनाभोग पूर्वक अर्थात् अनजान में ही कर्म का संक्रमण कर लेता है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वरूप होने के कारण परिणमन शील आत्मा ज्ञानावरण आदि कर्मों का फल भोगता हुआ उनकी उत्तर प्रकृतियों में उलटफेर कर लेता है। इसी को संक्रमण कहते हैं। यह प्रकृतिसंक्रमण मूल प्रकृतियों का होता, अर्थात् एक मूल प्रकृति दूसरी मूल प्रकृति के रूप में नहीं पलट सकती, जैसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण के रूप में संक्रान्त नहीं होती और दर्शनावरण किसी दूसरी मूल प्रकृति के रूप में नहीं पलटती। एक मूल प्रकृति का उत्तर प्रकृतियों में संक्रमण होता है। उदाहरणार्थ

શંકા—કર્મનો બન્ધ અન્ય રૂપમાં હોય અને તેનો ફળવિપાક અન્ય રૂપમાં હોય એમ કઇ રીતે હોઈ શકે. ?

સમાધાન—જીવ કર્મફળ ભોગવતો થકો અનાભોગપૂર્વક અર્થાત્ અજાણપણે જ કર્મનું સંક્રમણ કરી લે છે. ઉત્પાદ વ્યય અને ધ્રૌવ્ય સ્વરૂપ હોવાના કારણે પરિણમનશીલ આત્મા જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મોનું ફળ ભોગવતો થકો તેમની ઉત્તરપ્રકૃતિઓમાં ફેરબદલી કરી લે છે. આને જ સંક્રમણ કહે છે. આ પ્રકૃતિસંક્રમણ મૂળ પ્રકૃતિઓનું થતું નથી અથાત્ એક મૃળપ્રકૃતિ બીજી મૂળપ્રકૃતિના રૂપમાં બદલાઈ શકતી નથી, જેમકે જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણના રૂપમા સંક્રાન્ત થતી નથી અને દર્શનાવરણ કોઇ બીજી મૂળપ્રકૃતિના રૂપમાં ફેરવાતી નથી. એક મૂળપ્રકૃતિનું ઉત્તરપ્રકૃતિમાં સંક્રમણ થાય છે. દા. ત. મતિ જ્ઞાના-

वरणं श्रुतज्ञानावरणं संक्रामति, श्रुतज्ञानावरणं वा मतिज्ञानावरणं संक्रामति। एवं-श्रुतज्ञानावरणस्य खलु अवधिज्ञानावरणेन संक्रमो भवति, एवं-तस्यापि मनःपर्ययज्ञानावरणादिषु-अपि संक्रमो बोध्यः। किन्तु-मतिज्ञानावरणादिकं पञ्चविधं ज्ञानावरणं न दर्शनावरणमूलप्रकृतेरूप चक्षुर्दर्शनावरणादिषु संक्रामति, नाऽपि मूलप्रकृतिषु संक्रमो भवति, नहि-ज्ञानावरणं दर्शनावरणे संक्रामति, नापि-दर्शनावरणं ज्ञानावरणे वा संक्रामति' इत्येवं अन्यत्रापि योजनीयम्। बन्ध विपाकनिमित्तानां भिन्नजातीयकत्वात् यथा-ज्ञानावरणस्य बन्धनिमित्तं प्रदोष-

मति ज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरण आदि ज्ञानावरण की पांच उत्तर प्रकृतियां हैं, उनमें परस्पर संक्रमण हो सकता है मति ज्ञानावरण पलटकर श्रुतज्ञानावरण रूप में परिणत हो सकता है और श्रुतज्ञानावरण मति ज्ञानावरण के रूप में संक्रान्त हो सकता है। श्रुतज्ञानावरण प्रकृति अवधि ज्ञानावरण के रूप में अवधि ज्ञानावरण मनःपर्यव ज्ञानावरण के रूप में और मनःपर्यव ज्ञानावरण केवल ज्ञानावरण के रूप में संक्रान्त हो सकती है। इसी प्रकार अन्यान्य कर्मों की उत्तर प्रकृतियां भी परस्पर बदल जाती हैं। इस नियम में दो अपवाद हैं। प्रथम यह की कर्म की प्रकृतियों में संक्रमण नहीं होता, जैसे देवायु प्रकृति मनुष्यायु के रूप में या मनुष्यायु बदलकर अन्य किसी आयु के रूप में नहीं बदलती। दूसरा अपवाद यह है कि दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय प्रकृतियों में भी परस्पर संक्रमण नहीं होता है। दर्शन मोहनीय चारित्र मोहनीय के रूप में और चारित्र मोहनीय दर्शन मोहनीय के रूप में नहीं पलटती।

વરણ શ્રુતજ્ઞાનાવરણ આદિ જ્ઞાનાવરણની પાંચ ઉત્તરપ્રકૃતિઓ છે તેમનામાં પરસ્પર સંક્રમણ થઈ શકે છે. મતિજ્ઞાનાવરણ બદલાઈને શ્રુતજ્ઞાનાવરણ રૂપમાં પરિણત થઈ શકે છે અને શ્રુતજ્ઞાનાવરણ મતિજ્ઞાનાવરણના રૂપમાં સંક્રાન્ત થઈ શકે છે. શ્રુતજ્ઞાનાવરણપ્રકૃતિ અવધિજ્ઞાનાવરણના રૂપમાં, અવધિજ્ઞાનાવરણ મનઃપર્યવ-જ્ઞાનાવરણના રૂપમાં અને મનઃપર્યવજ્ઞાનાવરણ કેવળજ્ઞાનાવરણના રૂપમાં સંક્રાંત થઈ શકે છે. એવીજ રીતે અન્યાન્ય કર્મોની ઉત્તર પ્રકૃતિઓ પણ પરસ્પર સજાતિય પ્રકૃતિ સાથે બદલાઈ જાય છે. આ નિયમમાં બે અપવાદ છે પ્રથમ એ છે કે આયુષ્ય કર્મની પ્રકૃતિઓમાં સંક્રમણ થતું નથી. જેમકે દેવાયુ-પ્રકૃતિ મનુષ્યાયુના રૂપમાં અથવા મનુષ્યાયુ બદલાઈને અન્ય કોઈ આયુષ્યના રૂપમાં પલટાતી નથી. બીજો અપવાદ એ છે કે દર્શન મોહનીય અને ચારિત્ર-

निह्नवादि, असद्वेदनीयादेर्दुःखशोकादि, ज्ञानावरणदर्शनावरणयोर्बन्धनिमित्तस्याऽभिन्नत्वेऽपि सदाशयविशेषाद् भिद्यते एव, विशेषग्राहि ज्ञानावरणं विशेषोपयोगमन्तर्धत्ते, दर्शनावरणन्तु—सामान्यमात्रग्राहित्वात् सामान्योपयोगमेवाऽन्तर्धत्ते, इत्येवं बन्धनिमित्तभेदात् विपाकनिमित्तभेदाच्च भिन्नासु ज्ञानावरणाद्यष्टविधमूलप्रकृतिषु परस्परं संक्रमो न भवति। एवमुत्तरप्रकृतिष्वपि सजातीययोरपि दर्शनचरित्रमोहनीययोः परस्परं संक्रमो न भवति, नहि—दर्शनमोहश्चारित्रमोहे संक्रमति नाऽपि—चारित्रमोहो दर्शनमोहे संक्रामति। एवं—सम्यक्त्वं सम्यग्मिथ्यात्वे न संक्रामति, किन्तु—पूर्व मसत्यपि बन्धे सम्यङ्मिथ्यात्वस्य सम्यक्त्वे संक्रमो भवत्येव। एवं—नारक, तिर्यङ्, मनुष्य, देव भेदस्याऽऽयुष्कस्य परस्परं संक्रमो भवति। एतेषा मपि प्रत्येक जात्यन्तराऽनुबन्धविपाकनिमित्तानां विभिन्नजातीयकत्वात् स खलु—कर्मफलविपाको गति नामाद्यनुसारेण

यह पहले ही कहा जा चुका है कि मूल प्रकृतियों में संक्रमण नहीं होता है। इसका कारण यह है कि उनके बन्ध के कारणों में मौलिक भेद होता है, जैसे ज्ञानावरण कर्म के बन्ध के कारण प्रदोष और निह्नव आदि हैं, जब कि आसाता वेदनीय के बन्ध के कारण दुःख-शोक आदि हैं

तात्पर्य यह है कि कर्म का फल भोग लेने के पश्चात् वह कर्म आत्मप्रदेशों से पृथक् हो जाता है, अकर्म के रूप में परिणत हो जाता है, उसे विपाकजा निर्जरा कहते हैं। इस प्रकार संसार रूपी महासमुद्र में बहते हुए आत्मा के जो शुभ-अशुभ कर्म विपाक को प्राप्त हो जाते हैं—उदयावलिका में प्रविष्ट होकर और अपना यथायोग्य

મોહનીય પ્રકૃતિઓમાં પણ પરસ્પર સંક્રમણ થતું નથી. દર્શનમોહનીય ચારિત્રમોહનીયના રૂપમાં અને ચારિત્રમોહનીય દર્શનમોહનીયના રૂપમાં બદલાતી નથી.

એ તો પહેલાજ કહેવામાં આવી ગયુ છે કે મૂળપ્રકૃતિઓમાં સંક્રમણ થતું નથી એનું કારણ એ છે કે તેમના બન્ધના કારણોમાં મૌલિક ભેદ હોય છે જેમકે જ્ઞાનાવરણ કર્મના બન્ધના કારણો પ્રદોષ અને નિહ્નવ આદિ છે, જ્યારે કે અસાતા વેદનીયના બંધના કારણ દુઃખ-શોક આદિ છે. તાત્પર્ય એ છે કે કર્મનું ફળ ભોગવી લીધા બાદ તે કર્મ આત્મપ્રદેશોથી પૃથક્ થઈ જાય છે. અકર્મના રૂપમાં પરિણત થઇ જાય છે, તેને વિપાકજા નિર્જરા કહે છે. આ રીતે સંસાર રૂપી મહા સમુદ્રમાં વહેતા આત્માના જે શુભ અશુભકર્મ વિપાકને પ્રાપ્ત થઈ જાય છે ઉદયાવલિકામાં પ્રવિષ્ટ થઇને અને પોતાનું યથાયોગ્ય ફળ

भवति यथा नामविपच्यते इति भावः तस्मात् खलु विपाकलक्षणा दनुभावाद् ज्ञानावरणादिकर्मणां या-निर्जरा निर्जरणम् आत्मप्रदेशेभ्यः परिशटनं क्षयः कर्मपरिणति विनाशोभवति सा विपाकजा निर्जरा व्यपदिश्यते। तथा च-संसारमहार्णवे परिप्लवमानस्याऽऽत्मनः शुभाशुभकर्मणो विपाककालमाप्तस्य यथायथमुदयावलिकाप्रविष्टस्य फलोपभोगादुपजातस्थितिक्षये सति या निवृत्तिर्भवति सा विपाकजा खलु निर्जरा-इति फलितम्। यत्पुनः कर्माऽप्राप्तकालविपाकमौपक्रमिक क्रियाविशेषसामर्थ्यादनुदीर्णं सपदि बलादुदीर्योदयावलिकामनुप्रवेश्याऽऽम्रपनसतिन्दुकादि फलपाकवद् वेद्यमानं सत् निर्जीर्णं भवति, स खलु -अविपाकजा निर्जरा उच्यते ॥२॥

मूलम्-तवो विवागोय निज्जराहेऊणो ॥३॥

छाया-'तपो विपाकश्च निर्जराहेतवः ॥३॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वं तावद् द्विविधा निर्जरा भवति, विपाकजाऽविपाकजा चेति प्ररूपितम्, सम्प्रति-तस्याः खलु कर्मक्षयलक्षणाया निर्जराया हेतु प्रति-

---

फल देकर स्थिति का क्षय होने पर आत्मा से अलग हो जाते हैं, वह विपाकजा निर्जरा है।

जो कर्म स्थिति पूर्ण होने से पूर्व ही, तपश्चरण आदि के द्वारा उदयावलिका में ले आया जाता है और आम्र, पनस तिन्दुक आदि फलों के शीघ्र पाक की तरह भोग लिया जाता है, उसकी निर्जरा को अविपाकजा निर्जरा कहते हैं ॥२॥

'तवो विवागोय' इत्यादि सू० ३

सूत्रार्थ--तप और विपाक निर्जरा के कारण हैं ॥३॥

तत्त्वार्थदीपिका-पहले कहा गया है कि विपाकजा और अविपाकजा

પ્રદાન કરીને સ્થિતિનો ક્ષય થવાથી આત્માંથી અલગ થઈ જાય છે, તે વિપાકજા નિર્જરા કહેવાય છે.

જે કર્મ સ્થિતિ પૂર્ણ થતાં અગાઉ જ તપશ્ચરણ આદિ દ્વારા ઉદયાવલિકામાં લાવવામાં આવે છે અને આમ્રફળ, ફણસ સીતાફળ વગેરે ફળોના શીઘ્ર પરિપક્વતાની જેમ, ભોગવી લેવામાં આવે છે, તેવી નિર્જરાને અવિપાકજા નિર્જરા કહે છે. ॥ ૨ ॥

'તવો વિવાગોય નિજ્જરાહેઊણો' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ— તપ અને વિપાક નિર્જરાના કારણ છે ॥ ૩ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા કહેવામાં આવ્યું કે વિપાકજા અને અવિપાકજા

पादयितुमाह-'तवो विवागोय निज्जराहेऊणो' इति । तपः शरीरेन्द्रिय तपन रूपं बाह्यमनशनादिकम्, आभ्यन्तरं प्रायश्चित्तादिकञ्च द्विविधं तपः । विपाकश्च-फलभोगरूपो निर्जराहेतुः कर्मक्षयलक्षणनिर्जरायाः वर्तते, तथा चाऽनशनादि षड्विधेन बाह्येन तपसा, प्रायश्चित्तादिना चाऽऽभ्यन्तरेण तपसा शरीरेन्द्रियादि सन्तापनात् कर्मनिर्दहनाच्च ज्ञानावरणादि कर्मक्षय लक्षणा निर्जरा भवति । एवं-विपाकेन च शुभाशुभकर्मफलसुखदुःखानुभव-लक्षणेन पूर्वोक्तस्वरूपेण कर्मक्षयलक्षणा निर्जरा भवति । अतएव-बाह्याभ्यन्तर तपः कृतकर्मणः सुखदुःखरूपफलभोगविपाकश्च देशतो निर्जराहेतुः इति ।३।

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावत्-कर्मक्षयलक्षणनिर्जरायाः स्वरूपं-भेदश्च प्ररूपितः, सम्प्रति-तस्याः कारणं प्रतिपादयितुमाह-'तवो' इत्यादि । तपः शरीरे-न्द्रियसन्तापनरूपं-कर्मनिर्दहनरूपञ्च बाह्यमाभ्यन्तरञ्चाऽनशनादिषड्विधं

के भेद से निर्जरा दो प्रकार की है, अब उसके कारणों का प्ररूपण करते हैं-

शरीर और इन्द्रियों को तपाना तप है । अनशनादि बाह्य और प्रायश्चित्त आदि आभ्यन्तर तप हैं । यों तप के दो भेद हैं । कर्मफल का भोग विपाक कहलाता है । ये दोनों निर्जरा के कारण हैं । इस प्रकार अनशन आदि बाह्य और प्रायश्चित्त आदि आभ्यन्तर तप से निर्जरा होती है । इसी प्रकार शुभाशुभ कर्मों का सुख-दुःख रूप फल के उपभोग रूप विपाक से भी निर्जरा होती है ॥३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-पहले कर्मक्षय रूप निर्जरा के स्वरूप का और भेदों का निरूपण किया गया है, अब इसके कारणों का प्ररूपण करते हैं--

---

ના ભેદથી નિર્જરા બે પ્રકારની છે, હવે તેના કારણોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ

શરીર અને ઇન્દ્રિઓને તપાવવા, એ તપ છે. અનશનાદિ બાહ્ય અને પ્રાયશ્ચિત્ત આદિ આભ્યન્તર તપ છે. તપના આમ બે ભેદ છે. કર્મફળનું ભોગવવું વિપાક કહેવાય છે. આ બંને નિર્જરાના કારણ છે. આવી રીતે અનશન આદિ બાહ્ય અને પ્રાયશ્ચિત્ત આદિ આભ્યન્તર તપથી નિર્જરા થાય છે એવી જ રીતે શુભાશુભ કર્મોની સુખ દુઃખ રૂપ ફળના ઉપભોગ રૂપ વિપાકથી પણ નિર્જરા થાય છે. ॥૩॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા કર્મક્ષય રૂપ નિર્જરાના સ્વરૂપનું અને ભેદોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે તેના કારણોનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ

શરીર અને ઇન્દ્રિઓને તપાવવા રૂપ તપ બે પ્રકારના છે અનશન આદિ

प्रायश्चित्तादिषड्विधश्च तपः विपाकश्च शुभाशुभकर्मफलभोगरूपो रसोऽनुभावात्मको निर्जराहेतुः देशतः कर्मक्षयलक्षणाया निर्जरायाः कारणं वर्तते। एवं-कृतकर्मफलभोगरूपविपाकेन चोपर्युक्तस्वरूपा निर्जरा भवति अनशन प्रायश्चित्तादितपः चिरसञ्चितकर्मक्षयरूपां निर्जरां करोति शुभाशुभकृतकर्मफलभोगरूपः सुखदुःखानुभवात्मको विपाकश्च तथाविध कर्मक्षयरूपां निर्जरां जनयति। अतएव-अनशनप्रायश्चित्तादिकं द्वादशविधं तपः कर्मफलभोगरूपो विपाकश्च कर्म क्षयलक्षणां निर्जरां प्रतिहेतु र्भवति। उक्तञ्चोत्तराध्ययने ३० अध्ययने ६ गाथायाम्-'एवं तु संजयस्सा विपावकम्मनिरासवे। भवकोडी संचियं कम्म तवसा निज्जरिज्जइ' ॥१॥ एवन्तु संयतस्यापि पापकर्मनिरास्रवे। भवकोटी सञ्चितं कर्म तपसा निर्जीर्यते ॥१॥ इति, उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ-

भेद होता है, जैसे ज्ञानावरण कर्म के बन्ध के कारण प्रदोष और निह्नव आदि हैं, जब की असाता वेदनीय के बंध के कारण दुःख-शोक आदि हैं

शरीर एवं इन्द्रियों को तपाना रूप तप दो प्रकार का है-अनशन आदि छह बाह्य तप है और प्रायश्चित्त आदि छह आभ्यन्तर तप हैं। शुभाशुभ कर्मों का फल भोगना विपाक कहलाता है। इन दोनों कारणों से निर्जरा होती है। इस प्रकार कृत कर्मों के फलभोग रूप विपाक से कर्मक्षय रूप निर्जरा होती है। अनशन एवं प्रायश्चित्त आदि बारह प्रकार के तप से भी चिरसंचित कर्मों की निर्जरा होती है

उत्तराध्ययनसूत्र के अध्ययन ३०, गाथा ६ में कहा है-

'इस प्रकार संयमशील पुरुष जब पाप कर्मों के आस्रव का निरोध कर देता है तो कोटी कोटी भवों में संचित कर्मों का तपस्या के द्वारा क्षय कर देता है ॥१॥

છ બાહ્યતપ છે અને પ્રાયશ્ચિત્ત આદિ છ આભ્યન્તર તપ છે. શુભાશુભ કર્મોનુ ફળ ભોગવવું વિપાક કહેવાય છે. આ બંને કારણોથી નિર્જરા થાય છે આવી રીતે કૃત કર્મોના ફળભોગ રૂપ વિપાકથીકર્મક્ષય રૂપ નિર્જરા થાય છે. અનશન અને પ્રાયશ્ચિત્ત આદિ બાર પ્રકારના તપથી પણ ચિર સંચિત કર્મોની નિર્જરા થાય છે.

ઉત્તરાધ્યાન સૂત્રના અધ્યયન ૩૦, ગાથા ૬ માં કહ્યું છે આ રીતે સંયમશીલ પુરૂષ જ્યારે પાપકર્મોના આસ્રવનો નિરોધ કરી દે છે તો કોટિ-કોટિ ભવો માં સંચિત કર્મોનો તપસ્યા દ્વારા ક્ષય કરી દે છે ॥ ૧ ॥

'कम्मा उदीरिया वेइया य निज्जिण्णा' इति कर्माणि-उदीरितानि, वेदितानि च निर्जीर्णानि भवन्ति इति ॥३॥

मूलम्-तवो दुविहो बाहिरब्भंतरभेया ॥४॥

छाया—तपो द्विविधम् बाह्याभ्यन्तरभेदात् ॥४॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं निर्जरायास्तपो-विपाकश्च कारणमिति प्रतिपादितम् सम्प्रतम् तपसो द्वैविध्यं प्रतिपादयितुमाह-'तवो दुविहो' इत्यादि। तपो द्विविधं भवति बाह्यमाभ्यन्तरंच, तत्र-बाह्यम् अनशनादिकम् आभ्यन्तरं प्रायश्चित्तादिक मिति द्विविधं तपः। तत्र बाह्यन्तपोऽनशनादि भेदात्पड्विधम्, एव-माभ्यन्तर तपोऽपि प्रायश्चित्तादिभेदात्पड्विधमिति द्वादशविधं तपो भवति। द्वादशविधस्याऽस्य तपसः सविस्तरं भेदप्रभेदप्रतिपादिका व्याख्या पूर्वं सप्तमाऽध्याये-गताऽतस्तत्राऽवलोकनीया ॥४॥

व्याख्या प्रज्ञप्ति में भी कहा है-उदय में आए कर्म जब भोग लिये जाते हैं तो उनकी निर्जरा हो जाती है ॥३॥

'तवो दुविहो बाहिरब्भंतरभेया'

सूत्रार्थ-तप दो प्रकार का है-बाह्य और आभ्यन्तर ॥४॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्व में कहा गया है कि तप और विपाक से निर्जरा होती है, अतएव यहां तप के दो भेदों का निरूपण करते हैं

बाह्य और आभ्यन्तर भेद से तप दो प्रकार का है। बाह्य तप अनशन आदि के भेद से छह प्रकार का है। आभ्यन्तर तप प्रायश्चित्त आदि है। उसके भी छ भेद हैं। इस प्रकार तप के बारह भेद होते हैं। बारहों प्रकार का तप का विस्तृत वर्णन भेद प्रभेद सहित सातवें अध्यायमें किया जा चुका है। वहां देख लेना चाहिए ॥४॥

વ્યાખ્યાનપ્રજ્ઞપ્તિમાં પણ કહ્યું છે-ઉદયમાં આવેલા કર્મ જ્યારે ભોગવી લેવામાં આવે છે ત્યારે તેમની નિર્જરા થઇ જાય છે ॥ ૩ ॥

'तवो दुविहो बाहिरब्भंतरभेया' ઇત્યાદિ।

સુત્રાર્થ—તપ બે પ્રકારના છે બાહ્ય અને આભ્યન્તર ॥ ૪ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-અગાઉ કહેવામાં આવ્યું છે કે તપ અને વિપાકથી નિર્જરા થાય છે, આથી અહીં તપના બે ભેદોનું નિરૂપણ કરીએ છીએ

બાહ્ય અને આભ્યન્તરના ભેદથી તપ બે પ્રકારના છે બાહ્યતપ અનશન આદિના ભેદથી છ પ્રકારના છે આભ્યન્તર તપ પ્રાયશ્ચિત આદિ છે તેના પણ છ ભેદ છે. આવી રીતે તપના બાર ભેદ થાય છે. બારે પ્રકારના તપનું સવિસ્તર વર્ણન ભેદ પ્રભેદસહિત સાતમાં અધ્યાયમાં કરવામાં આવ્યું છે ત્યાં જોઈ લેવા ભલામણ છે ॥૪॥

मूलम्—तत्थबाहिरए अणसणतवे दुविहे, इत्तरिए-जाव कहिए य ॥५॥

छाया—तत्र बाह्यम्—अनशनतपो द्विविधम्, ईत्वरिकं—यावत्कथिकञ्च ।५॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तपसो बाह्याभ्यन्तरभेदेन द्वादशविधस्यापि निर्जरा-हेतुत्वं प्रतिपादितम्, सम्प्रति—षड्विधबाह्यतपसः प्रथमोपात्तस्याऽनशनरूपस्य द्वैविध्यं प्रतिपादयितुमाह 'तत्थ बाहिरए' इत्यादि । तत्र—पूर्वोक्त षड्विध बाह्य तपसि बाह्यम्—बहिर्भवं खलु अनशनतपो द्विविधं भवति तद्यथा—इत्वरिकं, यावत्कथिकञ्च । तत्र अल्पकालिकम् इत्वरिकं नामाऽनशन तपः । यावज्जीव पर्यन्त मनशन तपस्तु—यावत्कथिक मुच्यते, तत्र—एति गच्छति तच्छीलम् इत्वरिकम् अल्पकालिक मनशन मुच्यते, गमनशीलत्वात् । यावत्कथिकन्तु—यावद् यदवधि-र्मनुष्योऽयम् इति मुख्य व्यवहाररूपा कथा प्रचलति, तत्र भवं यावत्कथिकं जीवन

'तत्थ बाहिरए अणसणतवे' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—बाह्यतप अनशन के भेद हैं—इत्वरिक और यावत्कथिक ।५।

तत्त्वार्थदीपिका—बारह प्रकार का तप निर्जरा के हेतु है, यह पहले कहा गया है, अब प्रथम बाह्य तप अनशन के दो भेदों का कथन करते हैं—

पूर्वोक्त छह प्रकार के बाह्य तपों में से अनशन के दो भेद हैं—इत्वरिक और यावत्कथिक। थोडे समय के लिए जो अनशन किया जाता है वह इत्वरिक अनशन कहलाता है और जो अनशन जीवन पर्यन्त तक के लिए किया जाता है, उसे यावत्कथिक कहते हैं। अल्प-कालिक अनशन इत्वरिक है और जब तक 'यह मनुष्य है' ऐसा व्यवहार होता रहे अर्थात् जो अनशन जीवन पर्यन्त रहे वह यावत्क-

'तत्थ बाहिरए अणसणतवे' ઇત્યાદિ ।

સૂત્રાર્થ— બાહ્ય તપ અનશનના ભેદ ઇત્વરિક અને યાવત્કથિક છે. ।।૫।।

તત્ત્વાર્થદીપિકા—બાર પ્રકારના તપ નિર્જરાના હેતુ છે, એ પહેલા કહેવામાં આવ્યું છે, હવે પ્રથમ બાહ્ય તપ અનશનના બે ભેદોનું કથન કરીએ છીએ પૂર્વોક્ત છ પ્રકારના બાહ્ય તપોમાંથી અનશનના બે ભેદ છે ઇત્વરિક અને યાવત્કથિક. થોડા વખત માટે જે અનશન કરવામાં આવે છે તે ઇત્વ-રિક અનશન કહેવાય છે અને જે અનશન જીવનપર્યન્ત માટે કરવામાં આવે છે, તેને યાવત્કથિક કહે છે. અલ્પકાલીન અનશન ઇત્વરિક છે અને જ્યાં સુધી 'આ મનુષ્ય છે' એવો વ્યવહાર થતો રહે અર્થાત્ જે અનશન

पर्यन्त मनशनं भवति। तथा च–अल्पकालिकत्वाद् इत्वरिकम्, जीवनपर्यन्त व्यापित्वाद् यावत्कथिक मुच्यते ।५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तपसो निर्जराहेतुत्वं प्रतिपादितम्, सम्प्रति–अनशनादिकस्य षड्विधस्य बाह्यतपसः प्रथमोपात्तस्याऽनशनतपसो द्वैविध्यं प्रतिपादयितु माह–'तत्थ बाहिरए अणसणतवे दुविहे, इत्तरिए–जावक्कहिए य' इति। तत्र–द्वादशविधेषु तपःसु बाह्यम् बहिर्भवम् अनशनरूपं प्रथमतपो द्विविधं भवति, इत्वरिकं–यावत्कथिकञ्च। तत्राऽल्प कालिक मनशनःतप इत्वरिकं व्यपदिश्यते, एति–गच्छिति तच्छीलन् इत्वरम् 'इण नश जिसःर्तिभ्यःक्वरप्' इति ताच्छील्ये क्वरप् प्रत्ययः इत्वरमेव इत्वरिकमितिव्युत्पत्तेः। तद्यथा–श्रीमहावीर स्वामिनोऽन्तिमतीर्थङ्करस्य तीर्थे नमस्कार सहित भक्तादि प्रत्याख्यानकालादारभ्य चतुर्थभक्तषष्ठभक्तादिक्रमेण षण्मास पर्यन्त मनशन तपो

थिक कहलाता है। इस प्रकार अल्पकालिक होने से इत्वरिक और जीवन व्यापी होने से यावत्कथिक अनशन कहलाता है ॥५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले बतलाया गया है कि तप निर्जरा का कारण है। अब अनशन आदि छह प्रकार के बाह्य तपों में प्रथम गिनाए अनशन तप के दो भेदों का कथन करते हैं–

बारह प्रकार के तपों में अनशन नामक प्रथम तप के दो भेद हैं–इत्वरिक और यावत्कथिक। जो अनशन मर्यादित काल के लिए किया जाता है वह इत्वरिक कहलाता है।

अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी के तीर्थ में नवकारसी के प्रत्याख्यान काल से आरंभ करके चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त आदि के क्रम से छह मास तक का अनशन तप होता है। आदि तीर्थंकर श्री

જીવનપર્યન્ત રહે તે યાવત્કથિક કહેવાય છે. આ રીતે અલ્પકાલિન હોવાથી ઈત્વરિક અને જીવન વ્યાપી હોવાથી યાવત્કથિક અનશન કહેવાય છે. । ૫ ।

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ–પહેલા બતાવવામાં આવ્યું છે કે તપ નિર્જરાનું કારણ છે. હવે અનશન આદિ છ પ્રકારના બાહ્યતપોમાં પ્રથમ ગણાવેલા અનશન તપના બે ભેદોનું કથન કરીએ છીએ–

બાર પ્રકારના તપોમાં અનશન નામક પ્રથમ તપના બે ભેદ છે––ઈત્વરિક અને યાવત્કથિક જે અનશન તપ મર્યાદિત કાળ સુધી કરવામાં આવે છે તે ઈત્વરિક કહેવાય છે. અન્તિમ તીર્થંકર શ્રી. મહાવીરસ્વામીના શાસન કાળમાં નવકારસીના પ્રત્યાખ્યાન કાળથી આરંભ કરીને ચતુર્થભક્ત ષષ્ઠભક્ત આદિના ક્રમથી છ માસ સુધીનું અનશન તપ થતું હતું. આદિતીર્થંકર

भवति। श्रीनाभेयतीर्थङ्करस्याऽऽदिनाथस्य तीर्थे च नमस्कारसहित भक्तादि प्रत्याख्यान कालादारभ्य चतुर्थ भक्तादि क्रमेण संवत्सरपर्यन्त मनशनतपो भवति, तदन्येषां द्वाविंशति तीर्थकराणां तीर्थेतु नमस्कारसहित भक्तादि प्रत्याख्याना-दारभ्य चतुर्थभक्तादि क्रमेणाऽष्टमासपर्यन्तम् अनशनतपो विहितमागमे यावत्कथि-कन्तु-यावद् यदवधिमनुष्योऽयम् इति मुख्य व्यवहाररूपा कथा प्रचलति तत्र भवं यावत्कथिकम् इति जीवनपर्यन्तमनशन तपो व्यपदिश्यते उक्तञ्चौपपातिकसूत्रे-'से किं तं अणसणे? अणसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-इत्तरिए य, आवकहिए य' इति। अथ किन्तत् अनशनम्? अनशनं द्विविधं प्रज्ञप्तम्; तद्यथा-इत्वरिकंच, यावत्कथिकञ्च, इति।५।

मूलम्-इत्तरिए अणेगविहे, चउत्थभत्त छट्ठभत्ताइ भेयओ ॥६॥

छाया-'इत्वरिकम्-अनेकविधम्, चतुर्थभक्त-षष्ठभक्तादि भेदतः

ऋषभदेव के शासन में नवकारसी प्रत्याख्यान काल से आरंभ करके चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त आदि के क्रम से एक वर्ष तक का अनशन तप होता था। मध्य के बाईस तीर्थंकरों के काल में नवकारसी के प्रत्याख्यान से लेकर चतुर्थभक्त आदि के क्रम से आठ मास तक के अनशन तप का विधान था। जीवन पर्यन्त के लिए जो अनशन किया जाता है, वह यावत्कथिक अनशन कहलाता है।

औपपातिक सूत्र में कहा है—अनशन तप कितने प्रकार का है?

(उत्तर)—अनशन तप दो प्रकार का कहा गया है, यथा-इत्वरिक और यावत्कथिक ॥५॥

શ્રીઋષભદેવના શાસનમાં નવકારસી વ્યાખ્યાન કાળથી આરંભ કરીને ચતુર્થભકત ષષ્ઠભકત વિગેરેના ક્રમથી એક વર્ષ સુધીનું અનશન તપ થાય છે. મધ્યના બાવીસ તીર્થંકરોના સમયમાં નવકારસીના પ્રત્યાખ્યાનથી લઈને ચતુર્થભક્ત આદિના ક્રમથી આઠમાસ સુધીના અનશન તપનો ઉલ્લેખ જોવા મળે છે. જીવનપર્યન્ત માટે જે અનશન કરવામાં આવે છે તે યાવત્કથિક અનશન કહેવાય છે.

ઔપપાતિકસૂત્રમાં કહ્યું છે—અનશન તપ કેટલા પ્રકારના છે? ઉત્તર-અનશન તપ બે પ્રકારના કહેવામાં આવ્યા છે-જેવાકે—ઇત્વરિક અને યાવત્કથિક. ॥૫॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं तावद्—बाह्यषड्विध तपःसु—अनशन नामक प्रथमतपसो द्वैविध्य मुक्तम्, तत्र—प्रथमोपात्तस्याऽनशनतपसश्चतुर्थभक्तादि भेदेनाऽनेक विधत्वं प्रतिपादयितुमाह—'इत्तरिए अणेगविहे' इत्वरिकं नामाऽल्पकालिकम् अनशनतपोऽनेकविधम् प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—चतुर्थभक्त षष्ठभक्तादि भेदतः, चतुर्थभक्तम् १ षष्ठभक्तम् २ आदिना—अष्टमभक्तम् ३ दशमभक्तम् ४ द्वादशभक्तम् ५ चतुर्दशभक्तम् ६ षोडश भक्तम् ७ अर्धमासिकभक्तम् ८ मासिकभक्तम् ९ द्वैमासिकभक्तम् १० त्रैमासिकभक्तम् ११ चातुर्मासिकभक्तम् १२ पञ्चमासिकभक्तम् १३ षाण्मासिकभक्तं १४ चेति । एव मष्टमासपर्यन्तं—वर्ष पर्यन्तश्चोन्नेयम् ।

'इत्तरिए अणेगविहे' इत्यादि

सूत्रार्थ—इत्वरिक तप उपवास बेला आदि के भेद से अनेक प्रकार का है ॥६॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले छह प्रकार के बाह्य तपश्चरणों में से अनशन नामक प्रथम तप के दो भेद कहे गए, अब प्रथम भेद इत्वरिक तप के चतुर्थभक्त आदि अनेक भेदों का निरूपण करते हैं—

इत्वरिक अर्थात् अल्पकालिक अनशन तप अनेक प्रकार का कहा गया है, जैसे—चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त, द्वादशभक्त, षोडशभक्त, अर्धमासिकभक्त, मासिकभक्त, द्वैमासिकभक्त, त्रैमासिकभक्त, चातुर्मासिकभक्त, पंचमासिकभक्त, षाण्मासिकभक्त, इसी प्रकार अष्टमासभक्त से लेकर वर्ष पर्यन्त का अनशन तप समझ लेना चाहिए। इनमें एक उपवास चतुर्थभक्त कहलाता है, लगातार

'इत्तरिए अणेगविहे' ઇત્યાદિ ।

સૂત્રાર્થ—ઈત્વરિક તપ ઉપવાસ છઠ આદિના ભેદથી અનેક પ્રકારનું છે. ૬

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલા છ પ્રકારના બાહ્ય તપશ્ચરણોમાંથી અનશન નામક પ્રથમ તપના બે ભેદ કહેવામાં આવ્યા હવે પ્રથમ ભેદ ઈત્વરિક તપના ચતુર્થભક્ત આદિ અનેક ભેદોનું નિરૂપણ કરીએ છીએ—

ઈત્વરિક અર્થાત્ અલ્પકાલિક અનશન તપ અનેક પ્રકારના કહેવામાં આવ્યા છે જેમકે—ચતુર્થભકત, ષષ્ઠભકત, અષ્ઠમભકત દશમભકત દ્વાદશભકત, ચતુર્દશભકત ષોડશભકત અર્ધ માસિકભકત મસિકભકત, દ્વિમાસિકભકત ત્રિમાસિકભકત ચાતુર્માસિકભકત, પંચમાસિકભકત, ષાણ્માસિકભકત એવી જ રીતે અષ્ટમાસિકભકતથી લઈને વર્ષ પર્યન્તનું અનશન તપ પણ સમજવું, આમાં એક ઉપવાસ ચતુર્થભકત કહેવાય છે, લગાતાર બે ઉપવાસને ષષ્ઠભકત કહે

तत्र—एकोपवासरूपं चतुर्थभक्तम् निरन्तरदिनद्वयोपवासरूपं षष्ठभक्तम्, निरन्तरदिन त्रयोपवासरूप मष्टमभक्तम् । एवमग्रेऽपि स्वय मूहनीयम् ॥६॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावत्-प्रथमोपात्तस्याऽनशनतपस इत्वरिक यावत्कथिक भेदेन द्वैविध्यमुक्तम्, सम्प्रति-तत्रोपात्तस्य-'इत्वरिक' नाम्नोऽनशन तपसोऽनेकविधत्वं प्रतिपादयितुमाह-'इत्तरिए अणेविहे, चउत्थभत्त-छट्ठ भत्ताइ भेयओ' इति। इत्वरिकं नामाऽल्पकालिक मनशन तपः खलु-अनेकविधं भवति। तद्यथा-चतुर्थभक्तादि भेदतः, चतुर्थभक्तम् १ षष्ठभक्तम् २ आदिना-अष्टमभक्तम्-३ दशमभक्तम्-४ द्वादशभक्तम् ५ चतुर्दशभक्तम्-६ षोडश-भक्तम्-७ अर्धमासिकभक्तम्-८ मासिकभक्तम्-९ द्वैमासिकभक्तम् १० त्रैमासिक भक्तम्-११ चातुर्मासिकभक्तम्-१२ पाञ्चमासिकभक्तम्-१३ षाण्मासिकभक्तम् १४-इत्यादिरीत्या संवत्सरपर्यन्त मुन्नेयम् । तत्र-चतुर्थभक्तम् एकोपवासरूपम्

दो उपवास को षष्ठ भक्त कहते हैं। तीन उपवास को अष्टमभक्त कहते हैं। आगे इसी प्रकार स्वयं समझ लेना चाहिए।६।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले अनशन तप के दो भेद कहे गए-इत्वरिक और यावत्कथिक। अब इत्वरिक तप के अनेक भेदोंका विधान करते हैं-

इत्वरिक अर्थात् अल्पकालिक तप अनेक प्रकार का है-चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त और आदि शब्द से अष्टमभक्त, दशमभक्त, द्वादशभक्त, चतुर्दशभक्त, षोडशभक्त, अर्धमासिकभक्त, मासिकभक्त, द्वैमासिक भक्त, त्रैमासिकभक्त, चातुर्मासिकभक्त, पांचमासिकभक्त, षाण्मासिकभक्त इस प्रकार एक वर्ष तक का इत्वरिक अनशन तप समझ लेना चाहिए।

चतुर्थभक्त एक उपवास कहलाता है। लगातार दो दिन का उप-

છે, ત્રણ ઉપવાસને અષ્ટમભકત કહે છે. આગળ પણ આ જ પ્રમાણે-સ્વયં સમજી લેવા જોઈએ. ॥૬॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુકિત—પહેલા અનશન તપના બે ભેદ કહેવામાં આવ્યા-ઈત્વરિક અને યાવત્કથિક હવે ઈત્વરિક તપના અનેક ભેદોનું વિધાન કરીએ છીએ—

ઈત્વરિક અર્થાત્ અલ્પકાલિક તપ અનેકપ્રકારના છે ચતુર્થભકત ષષ્ઠભકત અને આદિ શબ્દથી અષ્ટમભકત દશમભકત દ્વાદશભકત ચતુર્દશભકત, ષોડશ-ભકત અર્ધમાસિકભકત ,માસિકભકત, દ્વૈમાસિકભકત, ત્રિમાસિકભકત, ચતુર્મા-સિકભકત પાંચમાસિકભકત ષાણ્માસિકભકત—એવી રીતે એક વર્ષ સુધીના ઈત્વારેક અનશન તપ સમજી લેવા જોઈએ.

ચતુર્થભકત એક ઉપવાસ કહેવાય છે. લગાતાર બે દિવસના ઉપવાસ

षष्ठभक्तं निरन्तरदिन द्वयोपवासरूपम्, अष्टमभक्तं निरन्तर दिन त्रयोपवासरूपम् दशमभक्तं निरन्तरदिन चतुष्टयोपवासरूपम्, द्वादशभक्तं निरन्तरदिन पञ्चको-पवासरूपम्, चतुर्दशभक्त निरन्तरदिनषट्कोपवासरूपम्, षोडशभक्तं निरन्तर दिन सप्तकोपवासरूपम्, अर्धमासिकभक्तम् निरन्तर पञ्चदशदिवसोपवासरूपम्, मासिकभक्तम् निरन्तरं त्रिंशद्दिवसोपवासरूपम्, द्वैमासिकभक्तं निरन्तर षष्टिदिवसोपवासरूपम्, त्रैमासिकभक्तं निरन्तर नवतिदिवसोपवासरूपम्, चातुर्मा-सिकभक्तं निरन्तर विंशत्यधिक शतदिवसोपवासरूपम्, पाञ्चमासिकभक्तं निरन्तर पञ्चाशदधिक शतदिवसोपवासरूपम्, पाण्मासिकभक्तं निरन्तराऽशीत्यधिकशतदिव-सोपवासरूपमनशनतपोऽवगन्तव्यम्। एवं संवत्सरपर्यन्तं स्वय मागमादित ऊह-नीयम्। उक्तञ्चौपपातिकसूत्रे-३-सूत्रे-'से किं तं इत्तरिए-? इत्तरिए अणेग-

वास षष्ठभक्त, लगातार तीन दिन का उपवास अष्ठमभक्त, लगातार चार दिन का उपवास दशमभक्त, लगातार पांच दिन का उपवास द्वादशभक्त, लगातार छह दिन का उपवास चतुर्दशभक्त, लगातार सात दिन का उपवास षोडशभक्त, लगातार पन्द्रह दिनों का उपवास अर्धमासभक्त, और लगातार तीस दिनों का उपवास मासिकभक्त कहलाता है। निरन्तर साठ दिनों तक का उपवास द्वैमासिकभक्त, लगातार नब्वे दिनों का उपवास त्रैमासिकभक्त कहलाता है। लगातार एक सौ वीस दिनों का उपवास चातुर्मासिकभक्त कहलाता है, एक सौ पचास दिनों का उपवास पांचमासिकभक्त कहा जाता है और एकसौ अस्सी दिनों का उपवास षाण्मासिक भक्त कहलाता है। इसी प्रकार संवत्सर पर्यन्त का तप आगम आदि से स्वयं समझ लेना चाहिए।

ષષ્ઠભકત, લગાતાર ત્રણ દિવસના ઉપવાસ અષ્ટમભકત, ચાર દિવસના ઉપવાસ દશમભકત, લગાતાર પાંચ દિવસના ઉપવાસ દ્વાદશભકત લગાતાર છ દિવસના ઉપવાસ ચતુર્દશભકત લગાતાર સાત દિવસના ઉપવાસ ષોડશભકત લગાતાર પંદર દિવસના ઉપવાસ અર્ધમાસભકત અને લગાતાર ત્રીસ દિવસોના ઉપવાસ માસિકભકત કહેવાય છે. નિરંતર સાઈઠ દિવસો સુધિના ઉપવાસ દ્વૈમાસિકભકત, લગાતાર નેવું દિવસો સુધીના ઉપવાસ ત્રૈમાસિકભકત. કહેવાય છે લગાતાર, એકસોવીસ દિવસોના ઉપવાસ ચાતુર્માસિભકત કહેવાય છે, એક-સોપચાસ દિવસોના ઉપવાસ પાંચમાસિકભકત કહેવાય છે અને એકસો એંશી દિવસોના ઉપવાસ ષાણ્માસિકભકત કહેવાય છે, આવિ જ રીતે સંવત્સર પર્યન્તનું તપ આગમ આદિથી સ્વયં સમજી લેવું જોઈએ.

विहे पण्णत्ते तं जहा-चउत्थभत्ते छट्ठभत्ते अट्ठमभत्ते-बारसभत्ते चउद्दस-भत्ते सोलसभत्ते अद्धमासियभत्ते मासियभत्ते दोमासियभत्ते-तेमासि-यभत्ते चउमासियभत्ते पञ्चमासियभत्ते छम्मासियभत्ते इति । अथ किं तत् इत्वरिकम्-३ इत्वरिक मनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-चतुर्थभक्तम् १ षष्ठभक्तम्-२ अष्टमभक्तम्-३ दशमभक्तम्-४ द्वादशभक्तम् ५ चतुर्दशभक्तम् ६ षोडशभक्तम्-७ अर्द्धमासिकभक्तम् ८ मासिकभक्तम्-९ द्वैमासिकभक्तम्-१० त्रैमासिकभक्तम्-११ चातुर्मासिकभक्तम् १२ पाञ्चमासिकभक्तम् १३ षाण्मासिकभक्तम्-१४ इति ।६॥

मूलम्-जावकहिए दुविहे पाओवगमणे-भत्तपच्चक्खाणे य।७।

छाया-'यावत्कथिकं द्विविधम्, पादपोपगमनं भक्तप्रत्याख्यानञ्च ॥७॥

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वं तावत्-प्रथमस्य-'इत्वरिक' नामकस्याऽनशनतपसो ऽनेकविधत्वं चतुर्थभक्तादि भेदेन प्रतिपादितम्, सम्प्रति-द्वितीयस्य यावत्कथि-

---

औपपातिक सूत्र के तिसरे सूत्र में कहा है-

'इत्वरिक तप किसे कहते हैं ?'

'इत्वरिक तप अनेक प्रकार का है-जैसे-चतुर्थभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त, द्वादशभक्त, चतुर्दशभक्त, षोडशभक्त, अर्धमासिक भक्त, मासिकभक्त, द्वैमासिकभक्त, त्रैमासिकभक्त, चातुर्मासिक भक्त, पांचमासिक भक्त, षाण्मासिक भक्त, इत्यादि ॥६॥

'जावकहिए दुविहे' इत्यादि

सूत्रार्थ--यावत्कथित अनशन दो प्रकार का है-पादपोपगमन और भक्त प्रत्याख्यान ॥७॥

तत्त्वार्थदीपिका--पहले इत्वरिक नामक अनशन तप के चतुर्थ-

ઔપપાતિકસૂત્રના ત્રીજા સૂત્રમાં કહ્યું છે-

ઇત્વરિક તપ કોને કહે છે ?

ઇત્વરિક તપ અનેક પ્રકારના છે જેવા કે-ચતુર્થભકત અષ્ઠમભકત દશમભકત દ્વાદશભકત, ચતુર્દશભકત, ષોડશભકત, અર્ધમાસિકભકત, માસિકભકત, દ્વૈમાસિકભકત ત્રૈમાસિકભકત, ચાતુર્માસિકભકત પાંચમાસિક-ભકત ષાણ્માસિકભકત ઇત્યાદિ ॥૬॥

'जावकहिए दुविहे' ઇત્યાદિ ।

સૂત્રાર્થ-યાવત્કથિક અનશન બે પ્રકારના છે, પાદપોપગમન અને ભકતપ્રત્યાખ્યાન ॥૭॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-પહેલા ઇત્વરિક નામક અનશન તપના ચતુર્થભકત આદિ

कस्याऽनशनतपसो द्वैविध्यं प्रतिपादयितुमाह-'जाव कहिए' इत्यादि । यावत्कथिकं नाम जीवनपर्यन्तम् अनशनतपोद्विविधं भवति, पादपोपगमनम्-भक्त प्रत्याख्यानञ्च । तत्र-पादपस्य वृक्षस्येवो-पगमनम् निश्चलतया स्पन्दरहितत्वेनाऽवस्थानम् छिन्नतरुशाखावत् चतुर्विधाहारपरित्यागेन प्रतिक्रियापरिवर्जनेन वृक्षवत्-निश्चलावस्थानम् पादपोपगमनं नामाऽनशन तप उच्यते । भक्त प्रत्याख्यानं तावत्--भक्तस्य चतुर्विधस्याऽऽहारस्या-ऽशन-पान-खादिम-स्वादिमरूपस्य, त्रिविधस्य वा-पानकरहितस्य वाऽऽहारस्य प्रत्याख्यानं-वर्जनं भक्तप्रत्याख्यान मुच्यते । सूत्रे चकारेण 'इङ्गित' मरणमपि यावत्कथिकं तपः संगृह्यते, तथा च-

---

भक्त आदि अनेक भेदों का प्रतिपादन किया गया, अब दूसरे भेद यावत्कथिक अनशन तप के दो विकल्प बतलाते हैं--

जीवनपर्यन्त किया जाने वाला अनशन तप यावत्कथिक कहलाता है। उसके दो भेद हैं-पादपोपगमन और भक्तप्रत्याख्यान । पादप अर्थात् वृक्ष की भांति निश्चल होकर हलन-चलन को रोककर स्थित होना पादपोपगमन कहलाता है तात्पर्य यह है कि जैसे वृक्ष की कटी हुई शाखा निश्चल होकर पडी रहती है, उसी प्रकार सब तरह का आहार त्याग कर समस्त शारीरिक चेष्टाओं को त्यागकर, स्पन्दनहीन अवस्था में रहना पादोपगमन अनशन कहलाता है ।

अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप चार प्रकार के या पान को छोडकर तीन प्रकार के आहार का आजीवन त्याग करना भक्त प्रत्याख्यान अनशन कहलाता है ।

અનેક ભેદોનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું, હવે બીજા ભેદ યાવત્કથિક અનશન તપના બે વિકલ્પ બતાવીએ છીએ-

જીવનપર્યન્ત કરવામાં આવતું અનશન તપ યાવત્કથિક કહેવાય છે તેના બે ભેદ છે-પાદપોપગમન અને ભકતપ્રત્યાખ્યાન પાદપ અર્થાત્ વૃક્ષની જેમ નિશ્ચલ થઇને હલન-ચલનને રોકીને સ્થિર થવું પાદપોપગમન કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે જેમ વૃક્ષની કાપેલી ડાળી નિશ્ચલ થઈને પડી રહે છે, તેવી જ રીતે બધી જાતનો આહાર ત્યજી દઈને સઘળી શારીરિક ચેષ્ટાઓના ત્યાગ કરીને સ્પંદનહીન અવસ્થામાં રહેવું પાદપોપગમન અનશન કહેવાય છે.

અશન, પાન, ખાદ્ય અને સ્વાદ્ય રૂપ ચાર પ્રકારના અથવા પાનને બાદ કરીને ત્રણ પ્રકારના આહારનો આજીવન ત્યાગ કરવો ભકતપ્રત્યાખ્યાન અનશન કહેવાય છે.

यावत्कथिकं नामाऽनशनतपस्त्रिविधं भवति, पादपोपगमनम् १-इङ्गितमरणम् २ भक्तप्रत्याख्यानं-३ च। तत्र-'इङ्गितं नाम' श्रुतविहित क्रियाविशेष स्तद्विशिष्टं मरणम् इङ्गितमरण मुच्यते ॥७।

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावत्-अनशनं तपः इत्वरिक-यावत्कथिकभेदेन द्विविधं प्ररूपितम्, तत्राऽपि-प्रथमोपात्त मित्वरिकं नाम तपः प्रतिपादितम्। सम्प्रति-यावत्कथिकं नाम द्वितीयन्तपः प्रतिपादयितुमाह-'जावकहिए दुविहे पाओवगमाणे=भत्तपच्चक्खाणेय' इति। यावत्कथिकं नाम जीवनपर्यन्त मनशन तपो द्विविधम्भवति, तद्यथा—पादपोपगमनम् भक्तप्रत्याख्यानञ्च। तत्र-पादपस्य वृक्षस्येवोपगमनं स्पन्दरहितत्वेन निश्चलतयाऽवस्थानम् पादपोपगमनम्,

सूत्र में प्रयुक्त 'च' शब्द से इंगितमरण नामक यावत्कथिक अनशन का ग्रहण किया गया है। इस प्रकार यावत्कथिक अनशन तीन प्रकार का है-(१) पादोपगमन (२) इंगितमरण और (३) भक्तप्रत्याख्यान। यहां 'इंगित' का अर्थ है-शास्त्र में विहित एक विशेष प्रकार की क्रिया, उससे विशिष्ट मरण इंगितमरण कहलाता है ॥७॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले इत्वरिक और यावत्कथिक के भेद से अनशन तप दो प्रकार का कहा गया था, इनमें से प्रथम इत्वरिक तप का प्रतिपादन किया जा चुका। अब यावत्कथिक नामक दूसरे तप का प्रतिपादन करते हैं-

जीवनपर्यन्त के लिए किया जाने वाला अनशन तप दो प्रकार का है-पादपोपगमन और भक्तप्रत्याख्यान। पादप अर्थात् वृक्ष की भांति स्पन्दनहीन होकर निश्चल रूप में स्थित होना पादपोपगमन अन-

સૂત્રમાં પ્રયુક્ત-ચ શબ્દથી ઇંગિતમરણ નામક યાવત્કથિક અનશનનું પણ ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે, આ રીતે યાવત્કથિક અનશન ત્રણ પ્રકારના છે—(૧) પાદપોપગમન (૨) ઇંગિતમરણ અને (૩) ભક્તપ્રત્યાખ્યાન. અહીં ઇંગિતનો અર્થ થાય છે-શાસ્ત્રમાં વિહિત એક વિશેષ પ્રકારની ક્રિયા, તેનાથી વિશિષ્ટ મરણ ઇંગિતમરણ કહેવાય છે. ॥૭॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલા ઇત્વરિક અને યાવત્કથિકના ભેદથી અનશન તપ બે પ્રકારના કહેવામાં આવ્યા છે, આમાંથી પ્રથમ ઇત્વરિક તપનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યુ હવે યાવત્કથિક નામક બીજા તપનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ—

જીવનપર્યન્ત માટે કરવામાં આવતું અનશન તપ બે પ્રકારનું છે—પાદપોપગમન અને ભક્તપ્રત્યાખ્યાન પાદપ અર્થાત્ વૃક્ષની માફક સ્પન્દનહીન

चतुर्विधाऽऽहारपरित्यागेन स्वशरीरस्य सेवा शुश्रूषादि क्रियावर्जनेन च वृक्षवन्निश्चलतयाऽवस्थानरूपं पादपोपगमनं नाम प्रथमं यावत्कथिक मनशन तप उच्यते। भक्त प्रत्याख्यानञ्च=अशनपानखादिमस्वादिमरूपस्य चतुर्विधस्याऽऽहारस्य त्रिविधस्य वा पानवर्जितस्याऽऽहारस्य प्रत्याख्यानवर्जनरूपं भक्त प्रत्याख्यानं नाम द्वितीयं यावत्कथिकम् अनशनतपः उच्यते। तत्र-प्रथमं तावत् पादपोपगमनं नाम यावत्कथिकं तपः शरीरचलनादिक्रियारहितं भवति द्वितीयन्तु-भक्तप्रत्याख्यानं नाम यावत्कथिकं तपः शरीरचलनादि क्रिया सहितं भवतीति भावः, चकारेण-इङ्गितमरणमपि गम्यते। क्वचित्तु-यावत्कथिकं तपस्त्रिविधं भवतीत्युक्तम्, तत्र-'इङ्गितं नाम-श्रुतविहित क्रियाविशेषस्त

शन है। इस अनशनतप में चारों प्रकार का आहार त्याग कर और शरीर की सेवा-शुश्रूषा आदि क्रियाओं को वर्जित करके वृक्ष की भाँति निश्चल रूप से अवस्थित होकर रहा जाता है। इसी कारण इसे पादपोपगमन कहते हैं।

अशन, पान, खादिम और स्वादिम, इन चारों प्रकार के आहार का या पान के सिवाय तीन प्रकार के आहार का त्याग करना भक्तप्रत्याख्यान नामक दूसरा यावत्कथिक अनशन तप कहलाता है।

इनमें पादपोपगमन नामक प्रथम यावत्कथिक अनशन तप में शरीर को हीलाने-डुलाने का भी त्याग किया जाता है, किन्तु दूसरे भक्तप्रत्याख्यान तप में शरीर के हलन-चलन का त्याग नहीं होता।

सूत्र में प्रयुक्त 'च' शब्द से इंगितमरण का ग्रहण किया जाता

થઈને નિશ્ચલ રૂપમાં સ્થિત થવું પાદપોપગમન અનશન છે. આ અનશન તપમાં ચારે પ્રકારનો આહાર ત્યાગીને અને શરીરની સેવા-શુશ્રૂષા આદિ ક્રિયાઓનો પરિહાર કરીને વૃક્ષની માફક નિશ્ચલપણે અવસ્થિત થઈને રહે છે આથી જ આને પાદપોપગમન કહે છે.

અશન, પાન. ખાદ્ય અને સ્વાદ્ય એ ચારે પ્રકારના આહારોનો અથવા પાન સિવાય ત્રણ પ્રકારના આહારનો ત્યાગ કરવો ભકત પ્રત્યાખ્યાન નામક બીજું યાવત્કથિક અનશન તપ કહેવાય છે.

આમાં પાદપોપગમન નામક પ્રથમ યાવત્કથિક અનશન તપમાં શરીરના હલન-ચલનનો પણ ત્યાગ કરવામાં આવે છે પરંતુ બીજા ભકતપ્રત્યાખ્યાન તપમાં શરીરના હલન ચલનનો ત્યાગ થતો નથી.

સૂત્રમાં પ્રયુકત ' ચ ' શબ્દથી ઈંગિતમરણનું ગ્રહણ કરવામાં આવે છે, કારણ

द्विशिष्टं मरणम् इङ्गितमरण मुच्यते, अस्य नाम-इङ्गिनी' मरणमित्यप्युच्यते।
अन्यद् द्वयन्तु-पादपोपगमनं भक्तप्रत्याख्यानञ्च पूर्वोक्त समानमेवाऽवगन्तव्यम्,
आगमेतु-यावत्कथिकं नाम तपो द्विविधमेव दृश्यते। उक्तञ्चौपपातिके सूत्रे ३०
सूत्रे-'से किं तं जावकहिए ? जावकहिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-पाओव-
गमणेय-भत्तपच्चक्खाणेय' इति। अथ किं तत्-यावत्कथिकं यावत्कथिकं
द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-पादपोपगमनम् भक्तप्रत्याख्यानञ्च, इति ॥७॥

मूलम्-पाओवगमणे दुविहे वाघाइमे-णिव्वाघाइमे य नियमा
अप्पडिकम्मे ॥८॥

छाया-पादोपगमनं द्विविधम् व्याघातिमं-निर्व्याघातिमं च नियमतोऽ-
प्रतिकर्म ॥८॥

है क्योंकि कहीं-कहीं यावत्कथिक तप तीन प्रकार का भी कहा गया
है। शास्त्र में प्रतिपादित एक विशिष्ट प्रकार की क्रिया को 'इंगित'
कहते हैं, उससे युक्त मरण इंगितमरण कहलाता है। शेष दो पाद-
पोपगमन और भक्तप्रत्याख्यान पहले ही बतलाए जा चुके हैं। आगम
में यावत्कथिक नामक तप दो ही प्रकार का देखा जाता है। औपपातिक
सूत्र में कहा भी है--

'यावत्कथिक अनशन के कितने भेद हैं ?

'यावत्कथिक के दो भेद हैं-पादपोपगमन और भक्तप्रत्याख्यान ७

'पाओवगमणे दुविहे वाघाइमे' इत्यादि सू० ८

सूत्रार्थ-पादपोपगमन तप दो प्रकार का है-व्याघातिम और
निर्व्याघातिम। दोनों प्रकार का यह तप नियम से प्रतिकर्मरहित-
सेवाशुश्रूषा वर्जित होता है ॥८॥

કે કોઈ-કોઈ સ્થળે યાવત્કથિક તપ ત્રણ પ્રકારના પણ કહેવામાં આવ્યા છે.
શાસ્ત્રમાં પ્રતિપાદિત એક વિશિષ્ટ પ્રકારની ક્રિયાને 'ઈંગિત' કહે છે, તેનાથી
યુકત મરણ ઈંગિતમરણ કહેવાય છે. શેષ બે પાદપોપગમન અને ભકતપ્રત્યા-
ખ્યાન પહેલા જ બતાવવામાં આવી ગયા છે. આગમમાં યાવત્કથિક નામક
તપ બે પ્રકારના જોવામાં આવે છે. ઔપપાતિકસૂત્રમાં કહ્યું પણ છે—

યાવત્કથિક અનશનના કેટલા ભેદ છે ?

'યાવત્કથિકના બે ભેદ છે-પાદપોપગમન અને ભકતપ્રત્યાખ્યાન' ॥ ૭ ॥

'પાઓવગમણે દુવિહે' ઇત્યાદિ।

સૂત્રાર્થ-પાદપોપગમન તપ બે પ્રકારના છે-વ્યાઘાતિમ અને નિર્વ્યાઘાતિમ
બંને પ્રકારના આ તપ નિયમથી અપ્રતિકર્મ રહિત સેવાશુશ્રૂષાવર્જિત જ
હોય છે ॥ ૮ ॥

तत्त्वार्थदीपिका–पूर्वं तावद्–यावत्कथिकं द्विविधं, पादपोपगमनं–भक्तप्रत्याख्यानं चेति प्रोक्तम्, तत्र–प्रथमं पादपोपगमनस्य द्वैविध्यं प्रतिपादयितुमाह–'पाओवगमणे' इत्यादि। पादपोपगमनं तावत् पूर्वोक्तस्वरूपं तपो द्विविधं भवति, तद्यथा–व्याघातिमंच–निर्व्याघातिमं चेति। तत्र–व्याघातः सिंह–व्याघ्र दावानलादि कृतोपद्रवः, तेन–सहितं व्याघातिमम्, तथा च–सिंहादि कृतोपद्रव-सहितं पादपोपगमनं नाम यावत्कथिकं तपो व्याघातिम मुच्यते। एवं–सिंह व्याघ्र दावानलाद्युपद्रवरूप व्याघातरहितं पादपोपगमनं निर्व्याघातिम मुच्यते एतदुभयमपि पादपोपगमनं नियमात् नियमतः–अप्रतिकर्म शरीर चलनादिक्रिया रूप प्रतिकर्मवर्जितं भवति, एव मौषधोपचारादि रहितञ्च भवतीतिभावः॥८॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः–पूर्वं तावत्–यावत्कथिकं च पादपोगमन–भक्तप्रत्याख्यानं-

---

तत्त्वार्थदीपिका–पहले कहा गया था कि यावत्कथिक तप दो प्रकार का है–पादपोपगमन और भक्तप्रत्याख्यान। अब पादपोपगमन के भी दो भेदों का प्रतिपाद करते हैं–

पूर्वोक्त पादपोपगमन तप के दो भेद हैं–व्याघातिम और निर्व्याघातिम। जिस तप में सिंह, वाघ, दावानल आदि का उपद्रव हो वह व्याघातिम कहलाता है और सिंह, व्याघ्र, दावानल आदि के उपद्रव रूप व्याघात से रहित पादपोपगमन तप निर्व्याघातिम कहलाता है। यह दोनों ही प्रकार का पादपोपगमन तप नियम से अप्रतिकर्म ही होता है अर्थात् न इसमें हलच–चलन किया जाता है, न औषधोपचार आदि किसी प्रकार की शारीरिक सेवा–शुश्रूषा ही की जाती है ॥८॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति–यावत्कथिक अनशन के दो भेद–पादपोपगमन

તત્ત્વાર્થદીપિકા–પહેલા કહેવામાં આવ્યું કે યાવત્કથિક તપ બે પ્રકાર ના છે– પાદપોપાગમન અને ભકતપ્રત્યાખ્યાન હવે પાદપોપગમનના બે ભેદોનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ–

પૂર્વોક્ત પાદપોપગમન તપના બે ભેદ છે– વ્યાઘાતિમ અને નિર્વ્યાઘાતિમ જે તપમાં સિંહ, વાઘ, દાવાનલ આદિના ઉપદ્રવ હોય તે વ્યાઘાતિમ કહેવાય છે અને સિંહ, વાઘ, દાવાનલ આદિના ઉપદ્રવરૂપ વ્યાઘાતથી રહિત પાદપોપગમન તપ નિર્વ્યાઘાતિમ કહેવાય છે. આ બંને જ પ્રકારના પાદપોપગમન તપ નિયમથી અપ્રતિકર્મ જ હોય છે અર્થાત્ ન તો એમનામાં હલન ચલન કરવામાં આવે છે અથવા ન તો ઔષધોપચાર આદિ કોઇ પ્રકારની શારીરિક સેવા શુશ્રૂષા કરવામાં આવે છે ॥ ૮ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ–યાવત્કથિક અનશનના બે ભેદ–પાદપોપગમન અને

भेदेन द्विविध मित्युक्तम्, तत्र-सम्प्रति पादपोपगमनस्य द्वैविध्यं प्रतिपादयितुमाह 'पाओवगमणे दुविहे, वाघाइमे निव्वाघाइमेय, नियमा अप्पडिकम्मे' इति पादपोपगमनं नाम-पूर्वोक्त-स्वरूपं यावत्कथिकविशेषतपो द्विविधं भवति, तद्यथा-व्याघातिमं, निर्व्याघातिमं चेति। तत्र-व्याघातेन सिंहव्याघ्रभल्लूक दावानलाद्युपद्रवेण सहितं पादपोपगमनं व्याघातिम मुच्यते। एवं-सिंह व्याघ्र भल्लूक तरक्षुदावानलादिकृतोपद्रवरहितं पादपोपगमनं निर्व्याघातिम मुच्यते। एतदुभयमपि व्याघातिमं-निर्व्याघातिमं च पादपोपगमनं नियमात्-नियमतः अप्रतिकर्म शरीरचलनादिक्रियारूपप्रतिकर्मवर्जितं भवति, एव मौषधोपचार रहितश्च भवति। उक्तञ्चौपपातिकसूत्रे ३० सूत्रे-'से किं तं पाओवगमणे? पाओवगमणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-बाघाइमेय, निव्वाघाइमेय-नियमा अप्पडिकम्मे, से तं पाओवगमणे' इति। अथ किन्तत् पादपोपगमनम्?

और भक्तप्रत्याख्यान कहे गए हैं, अब पादपोपगमन के दो भेदों का प्रतिपादन करते हैं।

पूर्वोक्त पादपोपगमन नामक यावत्कथिक अनशन तप दो प्रकार का है-व्याघातिम और निर्व्याघातिम। व्याघात अर्थात् विघ्न से युक्त हो वह व्याघातिम और जो विघ्नरहित हो वह निर्व्याघातिम कहलाता है। उपद्रव सिंह, व्याघ्र, भालू तरक्ष तथा दावानल आदि द्वारा होते हैं, यह व्याघातिम और निर्व्याघातिम-दोनों प्रकार के पादपोपगमन नियम से अप्रतिकर्म ही होते हैं अर्थात् शारीरिक हलन-चलन आदि क्रिया से रहित ही होते हैं और इनमें औषधो, पचार भी नहीं किया जाता। औपपातिक सूत्र में कहा है-

प्रश्न-पादपोपगमन के कितने भेद हैं?

ભકતપ્રત્યાખ્યાન કહેવામાં આવ્યા છે હવે પાદપોપગમનના બે ભેદોનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ-

પૂર્વોક્ત પાદપોપગમન નામક યાવત્કથિક અનશન તપ બે પ્રકારના છે-વ્યાઘાતિમ અને નિર્વ્યાઘાતિમ, વ્યાઘાત અર્થાત્ વિઘ્નથી જે યુકત હોય તે વ્યાઘાતિમ અને જે વિઘ્ન રહિત હોય તે નિર્વ્યાઘાતિમ કહેવાય છે. ઉપદ્રવ સિંહ, વાઘ, રીંછ, તરક્ષ તથા દાવાનલ આદિ દ્વારા થાય છે. આ વ્યાઘાતિમ અને નિર્વ્યાઘાતિમ બંને પ્રકારના પાદપોપગમન નિયમથી અપ્રતિકર્મ જ હોય છે અર્થાત્ શારીરિક હલન ચલન આદિ ક્રિયાથી રહિત જ હોય છે. અને એમા ઔષધોપચાર પણ કરવામાં આવતો નથી. ઔપપાતિક સૂત્રમાં કહ્યું છે?

પ્રશ્ન-પાદપોપગમનના કેટલા ભેદ છે.

पादपोपगमनं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–व्याघातिमं च, निर्व्याघातिमं च, नियमाद् अप्रतिकर्म, तदेतत् पादपोपगमनम् इति ॥८॥

मूलम्–भत्तपच्चक्खाणे दुविहे, वाघाइमे–निव्वाघाइमेय, नियमा सप्पडिक्कम्मे ।९।

छाया–भक्तप्रत्याख्यान द्विविधम् व्याघातिमं–निर्व्याघातिमं च नियमात् सप्रतिकर्म' ।९॥

तत्त्वार्थदीपिका–पूर्वं तावत्–पादपोपगमनं व्याघातिम–निर्व्याघातिमभेदेन द्विविधमपि–प्रतिपादितम्–सम्प्रति द्वितीयं भक्तप्रत्याख्यानं नाम तपः प्रतिपादयितुमाह–'भत्त पच्चक्खाणे' इत्यादि । भक्तप्रत्याख्यानं नाम पूर्वोक्तस्वरूपं तपो द्विविधं–व्याघातिमं–निर्व्याघातिमं–चेति, तत्र व्याघातो विघ्न स्तेन सहितं व्याघातिमं विघ्नयुक्त मुच्यते । निर्व्याघातिमं विघ्नरहितश्च उच्यते, तथा च–विघ्नसहितं भक्तप्रत्याख्यानं व्याघातिमं व्यपदिश्यते विघ्नरहितश्च भक्तप्रत्या-

---

उत्तर–पादपोपगमन दो प्रकार का कहा गया है–व्याघातिम और निर्व्याघातिम । यह दोनों ही प्रकार के पादोपगमन नियम से प्रतिकर्मरहित ही होते हैं ॥८॥

'भत्तपच्चक्खाणे दुविहे' इत्या०

सूत्रार्थ–भक्तप्रत्याख्यान दो प्रकार का है–व्याघातिम और निर्व्याघातिम । यह दोनों नियमतः सप्रतिकर्म होते हैं ॥९॥

तत्त्वार्थदीपिका––इससे पहले व्याघातिम और अव्याघातिम के भेद से दो प्रकार के पादपोपगमन तप का निरूपण किया गया अब भक्तप्रत्याख्यान नामक दूसरे यावत्कथिक तप का निरूपण करते हैं

पूर्वोक्त भक्तप्रत्याख्यान तप दो प्रकार का है–व्याघातिम और

ઉત્તર–પાદપોપગમન બે પ્રકારના કહેવામાં આવ્યા છે—વ્યાઘાતિમ અને નિર્વ્યાઘાતિમ આ બંને જ પ્રકારના પાદપોપગમન નિયમથી પ્રતિકર્મરહિત જ હોય છે ॥ ૮ ॥

'भत्तपच्चक्खाणे दुविहे' ઇત્યાદિ ।

સૂત્રાર્થ––ભક્તપ્રત્યાખ્યાન બે પ્રકારના છે–વ્યાઘાતિમ અને નિર્વ્યાઘાતિમ. આ બંને નિયમતઃસપ્રતિકર્મ હોય છે ॥ ૯ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા––આની અગાઉ વ્યાઘાતિમ અને અવ્યાઘાતિમના ભેદથી બે પ્રકારના પાદપોપગમન તપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે ભક્તપ્રત્યાખ્યાન નામક બીજા યાવત્કથિક તપનું નિરૂપણ કરીએ છીએ

પૂર્વોક્ત ભક્તપ્રત્યાખ્યાન તપના બે પ્રકારના છે–વ્યાઘાતિમ અને નિર્વ્યાઘાતિમ. વ્યાઘાતનો અર્થ છે વિઘ્ન, જે એથી યુક્ત હોય તે વ્યાઘાતિમ અર્થાત્

ख्यानं निर्व्याघातिमं व्यपदिश्यते। किन्तु-एतदुभयमपि व्याघातिमं निर्व्याघातिमं च भक्तप्रत्याख्यानं नियमात्-नियमतः सप्रतिकर्म चलनादिक्रिया रूप प्रतिकर्म सहितं भवति, एवं-बाह्यौषधोपचारवैयावृत्यादि युक्तश्च भवति ।।९।।

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं तावत्-पादपोपगमनं व्याघातिम-निर्व्याघातिम भेदेन द्विविधं प्रतिपादितम्, सम्प्रति-भक्तप्रत्याख्यानमपि द्वैविध्येन प्रतिपादयितुमाह-भत्तपच्चक्खाणे' इत्यादि। भक्तप्रत्याख्यानं नाम पूर्वोक्तस्वरूपं तपो द्विविधं भवति, तद्यथा-व्याघातिमं, निर्व्याघातिमं च। तत्र-व्याघातो विघ्न स्तेन सहितं भक्तप्रत्याख्यानं व्याघातिम मुच्यते, किन्तु-व्याघातरूप विघ्नरहितं भक्तप्रत्याख्यानं तपो निर्व्याघातिम मुच्यते। तथा च-विघ्नयुक्तं भक्तप्रत्याख्यानं व्याघातिमं व्यपदिश्यते, विघ्नरहित भक्तप्रत्याख्यानं

निर्व्याघातिम। व्याघात का अर्थ है विघ्न जो उससे युक्त हो वह व्याघातिम अर्थात् विघ्नयुक्त। जिसमें किसी प्रकारका विघ्न न आए वह निर्व्याघातिम कहलाता है वह दोनों ही प्रकार का भक्तप्रत्याख्यान नियम से सप्रतिकर्म ही होता है अर्थात् इसमें चलना-फिरना आदि क्रिया वर्जित नहीं है। इसमें बाह्य औषध का उपचार भी किया जा सकता है और वैयावृत्य भी की-करवाई जा सकती है ।।९।।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पहले व्याघातिम और निर्व्याघातिम के भेद से पादपोपगमन के दो भेदों का प्रतिपादन किया गया, अब भक्तप्रत्याख्यान के भी दो भेदों का कथन करते हैं-

पूर्वोक्त भक्तप्रत्याख्यान तप भी दो प्रकार का है-व्याघातिम और निर्व्याघातिम। जो भक्तप्रत्याख्यान व्याघात अर्थात् विघ्न से

વિઘ્નયુકત જેમાં કોઈ પ્રકારનું વિઘ્ન ન આવે તે નિર્વ્યાઘાતિમ કહેવાય છે. આ બંને જ પ્રકારના ભકતપ્રત્યાખ્યાન નિયમથી સપ્રતિકર્મ જ હોય છે. અર્થાત્ આમાં ચાલવું ફરવું આદિ ક્રિયા વર્જિત નથી. આમાં બાહ્ય ઔષધનો ઉપચાર પણ કરી શકાય છે અને વૈયાવૃત્ય પણ કરી કરાવાઈ શકે છે ।। ૯ ।।

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ--પહેલા વ્યાઘાતિમ અને નિર્વ્યાઘાતિમના ભેદથી પાદપોપગમનના બે ભેદોનુ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું હવે ભકતપ્રત્યાખ્યાનના પણ બે ભેદોનું કથન કરીએ છીએ

પૂર્વોક્ત ભકતપ્રત્યાખ્યાન તપ પણ બે પ્રકારના છે વ્યાઘાતિમ અને નિર્વ્યાઘાતિમ. જે ભકતપ્રત્યાખ્યાન વ્યાઘાત અર્થાત્ વિઘ્નથી

निर्व्याघातिमं व्यपदिश्यते। उक्तञ्चौपपातिकसूत्रे-३० सूत्रे-'से किं तं भत्त-पच्चक्खाणे? भत्त पच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-वाघाइमेय, निव्वाघाइमे य णियमा सप्पडिकम्मे' इति। अथ किं तत्-भक्त प्रत्याख्यानम्? भक्तप्रत्याख्यानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-व्याघातिमं च, निर्व्याघातिमं च नियमतः सप्रतिकर्म इति ॥९॥

मूलम्-ओमोयरिया तवे दुविहे, दव्वोमोयरिया-भावोमोयरियाय ॥१०॥

छाया—'अवमोदरिकातपो द्विविधम्, द्रव्यावमोदरिका-भावावमोदरिका च ॥१०॥

तत्त्वार्थदीपिका——'पूर्वं तावत्-प्रथमोपात्तस्या-ऽनशनस्येत्वरिक-याव-

---

युक्त हो वह व्याघातिम और जिसमें किसी प्रकार का विघ्न न हो वह निर्व्याघातिम कहलाता है।

औपपातिकसूत्र के ३०वें सूत्र में कहा है-

'भक्तप्रत्यख्यान के कितने भेद हैं?

'भक्तप्रत्याख्यान के दो भेद हैं, यथा-व्याघातिम और निर्व्याघातिम। यह दोनों प्रकार का भक्तप्रत्याख्यान नियम से प्रतिकर्मयुक्त ही होता है ॥९॥

'ओमोयरिया तवे दुविहे' इत्यादि

सूत्रार्थ-अवमोदरिका नामक तप दो प्रकार का है-द्रव्य-अवमोदरिका एवं भाव-अवमोदरिका ॥१०॥

तत्त्वार्थदीपिका—इत्वरिक और यावत्कथिक-दोनों प्रकार के अन

युक्त होय ते व्याघातिम अने जेमां कोई प्रकारनुं विघ्न न होय ते निर्व्याघातिम कहेवाय छे.

ઔપપાતિક સૂત્રના ૩૦ માં સૂત્રમાં કહ્યું છે

ભકતપ્રત્યાખ્યાનના કેટલા ભેદ છે ?

ભકતપ્રત્યાખ્યાનના બે ભેદ છે યથા વ્યાઘાતિમ અને નિર્વ્યાઘાતિમ આ બંને પ્રકારના ભકતપ્રત્યાખ્યાન નિયમથી પ્રતિકર્મ યુકત જ હોય છે. ॥ ૯ ॥

સૂત્રાર્થ—અવમોદારિક નામનું તપ બે પ્રકારનું છે દ્રવ્ય, અવમોદારિકા અને ભાવ અવમોદરિકા ॥ ૧૦ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-ઈત્વરિક અને યાવત્કથિક બંને પ્રકારના અનશન તપનું

त्कथिकभेदेन द्विविधस्य प्ररूपणं कृतम्, सम्प्रति-द्वितीयस्यावमोदरिका नामक बाह्यतपसः स्वरूपं प्ररूपयितुमाह-'ओमोयरिया तवे दुविहे' इत्यादि। अवमोदरिका तपः-अवमम्-ऊनम् उदरं यस्मिन् भोजने तदवमोदरं तदस्त्यस्यां क्रियायाम् इति-अवमोरिका तपो विशेषरूपा क्रिया तद्रूपम्-अवमोदरिका नाम तपो द्विविधं भवति। द्रव्यावमोदरिकारूपं भावावमोदरिकारूपञ्च, तत्र-आहारोपध्यादि बाह्यवस्तुनोऽल्पीकरणं द्रव्यावमोदरिका, क्रोधादिकषाय रूपान्तरिकवस्तुनोऽल्पीकरणं भावावमोदरिकेति ॥१०॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं तावद्-प्रथमोपात्तस्या-ऽनशनस्य बाह्य तपस इत्वरिक-यावत्कथिकभेदेन द्विविधस्य सविस्तरं प्ररूपणं कृतम्, सम्प्रति- क्रमागतस्य द्वितीयबाह्यतपसो-ऽवमोदरिका रूपस्य स्वरूपं निरूपयितुमाह-'ओमोय-

---

शन तप का निरूपण किया जा चुका अब दूसरे बाह्य तप अवमोदरिका (अनोदर) स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं-

अवम अर्थात् ऊन (कम) उदर जिस भोजन में हो उसे अवमोदर कहते हैं। जिस क्रिया में अवमोदर हो वह अवमोदरिका। यह एक प्रकार की तपश्चर्या है। इसके दो भेद हैं-द्रव्य-अवमोदरिका और भाव-अवमोदरिका। आहार, उपधि आदि बाह्य वस्तुओं में कमी करना द्रव्य-अवमोदरिका है और क्रोधादि कषायों में कमी करना भाव-अवमोदरिका है ॥१०॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति-इससे पूर्व प्रथम बाह्यतप अनशन के यावत्कथिक और इत्वरिक भेदों का विस्तारपूर्वक निरूपण किया गया, अब क्रमप्राप्त द्वितीय बाह्य तप अवमोदरिका के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं-

---

નિરૂપણ કરવામાં આવી ગયું, હવે બીજા બાહ્ય તપ અવમોદરિકા (ઉનોદર) ના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ.

અવમ અર્થાત્ ઉન (ઓછું) ઉદર જે ભોજનમાં હોય તેને અવમોદર કહે છે. જે ક્રિયામાં અવમોદર હોય તે અવમોદરિકા આ એક પ્રકારની તપશ્ચર્યા છે. આના બે ભેદ છે દ્રવ્ય અવમોદરિકા અને ભાવ અવમોદરિકા આહાર' ઉપધિ આદિ બાહ્ય વસ્તુઓમાં ઘટાડો કરવો દ્રવ્ય અવમોદરિકા છે અને ક્રોધાદિ કષાયોમાં ઘટાડો કરવો ભાવ અમોદરિકા છે ॥ ૧૦ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુકિત-આની પહેલાં પ્રથમ બાહ્યતપ અનશનના યાવત્કથિક અને ઇત્વરિક ભેદોનું વિસ્તારપૂર્વક નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે, હવે ક્રમપ્રાપ્ત દ્વિતીય બાહ્યતપ અવમોદરિકાના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ

रिया तवे दुविहे, दव्वोमोरिया-भावोमोयरिया य' इति। अवमोदरिका तपः-अवमम् उनम् उदरं यस्मिन् भोजने तद्-अवमोदरंभोजनम्, तदस्त्यस्यां क्रियायामिति अवमोदरिका तपो विशेषरूपा क्रिया उच्यते तद्रूपं तपोऽवमोदरिका तप उच्यते तत्खलु-अवमोदरिका तपो द्विविधं भवति-द्रव्यावमोदरिकारूपं-भावावमोदरिकारूपश्चेति, । तत्र-बाह्य वस्तुनोल्पीकरणं द्रव्यावमोदरिका, आन्तरिक वस्तुनोऽल्पीकरणं भावावमोरिका व्यपदिश्यते । उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं ओमोयरिया ? ओमोयरिया दुविहा पण्णत्ता तं जहा-दव्वोमोयरिया-भावोमोयरिया य' इति, अथ का सा-अवमोदरिका-? अवमोदरिका द्विविधा प्रज्ञप्ता तद्यथा-द्रव्यावमोदरिका च-भावावमोदरिका च १०॥

मूलम्-दव्वोमोयरिया तवे दुविहे, उवगरणदव्वोमोयरिया, भत्तपाणदव्वोमोयरिया य ॥११॥

छाया-द्रव्यावमोदरिका तपो द्विविधम्, उपकरणद्रव्यावमोदरिका भक्तपानद्रव्यावमोदरिका च' ॥११॥

जिस भोजन में उदर उन (कम) हो वह भोजन अवमोदर कहलाता है, वह जिस क्रिया में हो वह अवमोदरिका । अवमोदरिका एक प्रकार की तपश्चर्या है । इसके दो भेद हैं-द्रव्य-अवमोदरिका और भाव अवमोदरिका बाह्य वस्तुओं की अल्पता करना द्रव्य-अवमोदरिका हैं और कषायादि विकारभाव को अल्प करना भाव-अवमोदरिका है । औपपातिकसूत्र के तीसवें सूत्र में कहा है-

प्रश्न-अवमोदरिका के कितने भेद हैं ।

उत्तर-अवमोदरिका दो प्रकार की है-द्रव्य-अवमोदरिका और भाव-अवमोदरिका ॥१०॥

'दव्वोमोयरिया तवे दुविहे' इत्यादि ॥११॥

જે ભોજનમાં ઉદર ઉનં (ઓછું) હોય તે ભોજન અવમોદર કહેવાય છે તે જે ક્રિયામાં હોય તે અવમોદરિકા. અવમોદરિકા એક પ્રકારની તપશ્ચર્યા છે એના બે ભેદ છે દ્રવ્ય અવમોદરિકા અને ભાવ અવમોદરિકા. બાહ્ય વસ્તુઓનુ ઓછાપણું કરવું દ્રવ્ય અવમોદરિકા છે જ્યારે કષાયાદિ વિકારભાવને ઓછો કરવો એ ભાવ અવમોદારિકા છે. ઔપપાતિક સૂત્રના ત્રીસમા સૂત્રમાં કહેલ છે

પ્રશ્ન—અવમોદરિકાના કેટલા ભેદ છે ?

ઉત્તર-અવમોદરિકા બે પ્રકારની છે દ્રવ્ય અવમોદરિકા અને ભાવ અવમોદરિકા ॥ ૧૦ ॥

'દવ્વોમોયરિયા તવે દુવિહે' ઈત્યાદિ'

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वं तावद् अवमोदरिका रूपं तपो द्रव्यभावभेदरूपपरद्वै-विध्येन प्ररूपितम्, सम्प्रति-द्रव्यावमोदरिका तपसो द्वैविध्यं प्ररूपयितुमाह-'दव्वोमोयरिया तवे' इत्यादि। द्रव्यावमोदरिका तपो द्विविधम् भवति। तद्यथा उपकरणद्रव्यावमोदरिका भक्तपानद्रव्यावमोदरिका च, तत्राऽल्पवस्त्रपात्र सदोरक मुखवस्त्रिकाद्युपकारणरूप द्रव्य विषयकाऽवमोदरिकारूप तपो विशेषक्रिया 'उपकरण द्रव्यावमोदिका' उच्यते। अल्पभक्तपानादि द्रव्यविषयकावमोद-रिकारूपतपश्चरणविशेषक्रिया 'भक्तपानद्रव्यावमोदरिका' व्यपदिश्यते ॥११॥

तत्त्वार्थ निर्युक्तिः-पूर्वं खलु-बाह्यं तपोऽवमोदरिकारूपं द्रव्य-भाव भेदमा-श्रित्य द्विविधतया प्रतिपादितम्, सम्प्रति-तत्र प्रथमोपात्तं द्रव्यावमोदरिका तपः

सूत्रार्थ—द्रव्य-अवमोदरिका तप दो प्रकार का है-उपकरणद्रव्य-अवमोदरिका और भक्तपान-द्रव्य-अवमोदरिका ॥११॥

तत्त्वार्थदीपिका-पहले अवमोदरिका तप के द्रव्य और भाव की अपेक्षा से दो भेद कहे गए, अब द्रव्य-अवमोदरिका तप के दो भेद की प्ररूपणा करते हैं—द्रव्य अवमोदरिका तप दो प्रकार का है-उप-करण द्रव्य-अवमोदरिकाऔर भक्तपान द्रव्यावमोदरिका। वस्त्र, पात्र, डोरा सहित मुखवस्त्रिका आदि उपकरणों का अल्पता को उपकरण द्रव्य-अवमोदरिका कहते हैं और भोजन-पान की अल्पता को भक्तपान-द्रव्यअवमोदरिका कहते हैं ॥११॥

तत्वार्थनिर्युक्ति--पहले अवमोदरिका बाह्य तप के द्रव्य और भाव की अपेक्षा से दो भेद बतलाए गए, अब द्रव्य-अवमोदरिका तप की प्ररूपणा करते हैं-

---

સૂત્રાર્થ—દ્રવ્ય અવમોદરિકા તપ બે પ્રકારનું છે—ઉપકરણદ્રવ્ય અવમો-દરિકા અને ભક્તપાન દ્રવ્ય અવમોદરિકા ॥ ૧૧ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-પહેલા અવમોદરિકા તપના દ્રવ્ય અને ભાવની અપેક્ષાથી બે ભેદ કહેવામાં આવ્યા. હવે દ્રવ્ય અવમોદરિકા તપના બે ભેદોની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ—

દ્રવ્ય અવમોદરિકા તપ બે પ્રકારના છે—ઉપકરણદ્રવ્ય અવમોદરિકા અને ભક્તપાનદ્રવ્યાવમોદરિકા વસ્ત્ર, પાત્ર દોરા સહિત મુહપત્તિ આદિ ઉપકરણોની અલ્પતાને ઉપકરણ દ્રવ્ય અવમોદરિકા કહે છે અને ભોજન પાનની અલ્પ-તાને ભક્તપાન દ્રવ્ય અવમોદરિકા કહે છે ॥ ૧૧ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલાં અવમોદરિકા બાહ્ય તપના દ્રવ્ય અને ભાવની અપેક્ષાથી બે ભેદ બતાવાયા, હવે દ્રવ્ય અવમોદરિકા તપની પ્રરૂપણા કરીએછીએ

प्ररूपयितुमाह–'दव्वोमोयरिया तवे दुविहे, उवगरणदव्वोमोयरिया–भत्त पाणदव्वोमोयरिया य' इति । द्रव्यावमोदरिका तपः द्विविधं भवति, उपकरणद्रव्यावमोदरिका भक्तपानद्रव्यावमोदरिकाचेति । तत्र–वस्त्रपात्राद्युपकरण-रूप द्रव्यविषयकावमोदरिका तपः–उपकरणद्रव्यावमोदरिका तप' उच्यते भक्तपानादिरूप द्रव्यविषयकावमोदरिका तपो विशेष क्रियारूपं भक्तपान-द्रव्यावमोदरिका तप उच्यते । उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे–से किं तं दव्वोमोयरिया २ दव्वोमोयरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–उवगरण दव्वोमोयरिया य–भत्तपाणदव्वोमोयरिया य–' इति अथ का सा द्रव्यावमोदरिका–? द्रव्यावमोदरिका द्विविधा प्रज्ञप्ता तद्यथा–उपकरणद्रव्यावमोदरिका च, भक्तपानद्रव्यावमोदरिका च इति ॥११॥

मूलम्–उवगरणदव्वोमोयरिया तिविहा, एगवत्थ–एगपाए–चियत्तोवगरण साइज्जणया भेदओ ॥१२॥

छाया–'उपकरण द्रव्यावमोदरिका त्रिविधा, एकवस्त्र–एकपात्र–त्यक्तोपकरण स्वादनता भेदतः ॥१२॥

द्रव्य–अवमोदरिका तप के दो भेद हैं–उपकरणद्रव्य–अवमोदरिका और भक्तपानद्रव्य–अवमोदरिका । वस्त्र–पात्र आदि उपकरणों संबंधी ऊनोदरी को उपकरणद्रव्य–अवमोदरिका तप कहते हैं और आहार–पानी संबंधी ऊनोदरी को भक्तपानद्रव्य–अवमोदरिका कहते हैं। औपपातिकसूत्र के ३० वें सूत्र में कहा है—

प्रश्न–द्रव्य–अवमोरिका के कितने भेद हैं ?

उत्तर–द्रव्य–अवमोदरिका के दो भेद हैं–उपकरण द्रव्य–अवमोदरिका और भक्तपानद्रव्य–अवमोदरिका ॥११॥

'उवगरण दव्वोमोयरिया' इत्यादि

દ્રવ્ય અવમોદરિકા તપના બે ભેદ છે ઉપકરણ દ્રવ્ય અવમોદરિકા અને ભક્તપાન દ્રવ્યાવમોદરિકા વસ્ત્ર, પાત્ર આદિ ઉપકરણો સંબંધી ઉનોદરીને ઉપકરણ દ્રવ્ય અવમોદરિકા તપ કહે છે અને આહાર પાણી સંબંધી ઉનોદરીને ભક્તપાનદ્રવ્ય અવમોદરિકા કહે છે ઔપપાતિક સૂત્રના ત્રીસમાં સૂત્રમાં કહ્યું છે

પ્રશ્ન––દ્રવ્ય–અવમોદરિકાના કેટલા ભેદ છે. ?

ઉત્તર––દ્રવ્ય અવમોદરિકાના બે ભેદ છે ઉપકરણદ્રવ્ય અવમોદરિકા અને ભક્તપાન દ્રવ્ય અવમોદરિકા ॥ ૧૧ ॥

'उवगरण दव्वोमोयरिया' ઇત્યાદિ

तत्त्वार्थदीपिका-पूर्वं तावद्-द्रव्यावमोदरिका द्विविधत्वेन प्ररूपिता, उपकरणद्रव्यावमोदरिका-भक्तपानद्रव्यावमोदरिका चेति। तत्र-प्रथमोपात्ताया उपकरणद्रव्यावमोदरिकाया स्त्रैविध्यं प्रतिपादयितुमाह-'उवगरण दव्वोमोयरिया' इत्यादि उपकरणद्रव्यावमोदरिका वस्त्रपात्राद्युपकरणरूप द्रव्यविषयकाऽवमोदरिका त्रिविधा भवति, तद्यथा-एकवस्त्र-एकपात्र-त्यक्तोपकरण स्वादनता भेदतः। एकं वस्त्रम् एकं चोलपट्टरूपं वस्त्रम्, न द्वितीयम् १ एकं पात्रम्२ त्यक्तोपकरण स्वादनता ३ च, त्यक्ता उपकरणस्य भाण्डोपकरणादेः स्वादनता आसक्तिर्यस्यामवमोदरिकायां तपो विशेषक्रियायां सा त्यक्तोपकरणस्वादनता भाण्डामत्रोपकरणादिषु मूर्च्छापरित्यागता, इत्येवं रीत्या त्रिविधा खलु उपकरण द्रव्यावमोदरिका भवति ॥१२॥

सूत्रार्थ--उपकरणद्रव्य-अवमोदरिका के तीन भेद हैं-एक वस्त्र, एक पात्र और त्यक्तोपकरण स्वादनता ॥१२॥

तत्त्वार्थदीपिका--द्रव्य, अवमोदरिका के दो भेदों का प्ररूपण किया गया-उपकरणद्रव्य-अवमोदरिका और भक्तपान द्रव्य-अवमोदरिका अब इनमें से पहले भेद उपकरण द्रव्य अवमोदरिका के तीन भेदों का प्रतिपादन करते हैं-

उपकरण द्रव्य-अवमोदरिका तीन प्रकार की है-एक वस्त्र एक पात्र त्यक्तोकरण स्वादनता। वस्त्र सिर्फ एक ही-चोलपट्ट और सदोरक मुख वस्त्रिका होना, दूसरा न होना एक वस्त्र-अवमोदरिका है। इसी प्रकार एक ही पात्र रखना एक पात्र अवमोदरिका है। भाण्ड, उपकरण आदि में मूर्छा का परित्याग करना त्यक्तोपकरण स्वादनता-अवमोदरिका कहलाती है ॥१२॥

સૂત્રાર્થ--ઉપકરણુદ્રવ્ય અવમોદરિકાના ત્રણ ભેદ છે એક વસ્ત્ર, એક પાત્ર અને ત્યક્તોપકરણુસ્વાદનતા ॥ ૧૨ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા--દ્રવ્ય અવમોદરિકાના બે ભેદોનું પ્રરૂપણુ કરવામાં આવ્યું ઉપકરણુદ્રવ્ય અવમોદરિકા અને ભક્તપાનદ્રવ્ય અવમોદરિકા હવે આ માંથી પહેલા ભેદ ઉપકરણુ દ્રવ્યઅવમોદરિકાના ત્રણુ ભેદોનું પ્રતિપાદન કરીએ છીએ

ઉપકરણુદ્રવ્ય અવમોદરિકા ત્રણુ પ્રકારની છે એક વસ્ત્ર, એકપાત્ર અને ત્યક્તોપકરણુસ્વાદનતા વસ્ત્ર પાત્ર એક જ ધોળી અને દોરા સહિતની મુખવસ્ત્રિકા બીજુ ન હોવું એક વસ્ત્ર અવમોદરિકા છે એવી જ રીતે એક જ પાત્ર રાખવું એક પાત્ર અવમોદરિકા છે. વાસણ, ઉપકરણુ આદિમાં મોહનો પરિત્યાગ કરવો ત્યક્તોપકરણુસ્વાદનતા અવમોદરિકા કહેવાય છે, ॥ ૧૨ ॥

तत्वार्थनिर्युक्तिः-पूर्वं खलु-द्रव्यावमोदरिकाया द्वैविध्यं प्रोक्तम्, साम्प्रतं -तत्र प्रथमोपात्तोपकरणद्रव्यावमोदरिकाया विध्यं प्रतिपादयितु माह-'उव गरणद्व्वोमोयरिया तिविहा, एगवत्थ एगपाए-चियत्तोवगरण साइ-ज्जणया भेयओ' इति। उपकरणद्रव्यावमोदरिका-वस्त्रस्य पात्रादेरूपकरण-द्रव्यस्य विषयेऽवमोदरिका तपः उपकरणद्रव्यावमोदरिकास्त्पमुच्यते, सा खलू-पकरणद्रव्यावमोदरिका त्रिविधा भवति। तद्यथा-एकं वस्त्रं सदोरकमुखवस्त्रिका सहितम् एकं चोलपट्टरूपं वस्त्रम्, न द्वितीयं भवति। एवम्-एकं पात्रम्, त्यक्तोपक-रणस्वादनता च, त्यक्ता-उपकरणस्य भाण्डामत्रोपकरणादेः स्वादनता मूर्च्छाऽऽ-सक्तिर्यस्यामवमोदरिकायां क्रियायां सा-त्यक्तोपकरणस्वादनता, भाण्डोपकरणा-दिषु मूर्च्छापरित्यागिता, इत्येवं त्रिविधा खलु-उपकरण द्रव्यावमोदरिका तपो विशेषक्रियाऽवगन्तव्या। उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं उवकरण-

तत्वार्थनिर्युक्ति--पहले द्रव्य-अवमोदरिका के दो भेदों का कथन किया गया अब उपकरणद्रव्य-अवमोदरिका के तीन भेदों का कथन करते हैं-

उपकरण द्रव्य-अवमोदरिका तीन प्रकार का है-वस्त्र-पात्र आदि उपकरण द्रव्यों के विषय में ऊनोदरी होना उपकरणद्रव्य-अवमोदरिका कहलाती है। उसके तीन भेद इस प्रकार हैं (१) एक वस्त्र-डोरा सहित मुखवस्त्रिका के साथ एक चोलपट्ट ही रखना, दूसरा कोई वस्त्र न रखना (२) एकपात्र-एक से अधिक पात्र न रखना और (३) त्यक्तो-पकरण स्वादनता भाण्ड, पात्र आदि उपकरणों पर मूर्छा-ममता न होना यह तीन प्रकार की उपकरण द्रव्य-अवमोदरिका समझनी चाहिए। औपपातिकसूत्र के तीसवें सूत्र में कहा है—

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલાં દ્રવ્ય અવમોદરિકાના બે ભેદોનું કથન કરવામાં આવ્યું હવે ઉપકરણદ્રવ્ય અવમોદરિકાના ત્રણ ભેદોનું કથન કરીએ છીએ

ઉપકરણદ્રવ્ય અવમોદરિકા ત્રણ પ્રકારની છે વસ્ત્ર, પાત્ર આદિ ઉપક-ણદ્રવ્યોના વિષયમાં ઉનોદરી હોવી ઉપકરણદ્રવ્ય અવમોદરિકા કહેવાય છે. તેના ત્રણ ભેદ આ પ્રમાણે છે (૧) એક વસ્ત્ર દોરા સહિત મુખવસ્ત્રિકાની સાથે એક ચોળપટ જ રાખવો બીજું કોઈ પણ વસ્ત્ર ન રાખવું (૨) પાત્ર એકથી અધિક પાત્ર ન રાખવા અને (૩) ત્યક્તોપકરણસ્વાદનતા વાસણ પાત્ર આદિ ઉપકણો પર મૂર્છા મમતા ન હોવી. આ ત્રણ પ્રકારની ઉપકરણદ્રવ્ય અવમોદરિકા સમજવી જોઈએ

ઔપપાતિકસૂત્રના ત્રીસમાં સૂત્રમા કહ્યું છે

द्व्वोमोयरिया ? उवगरणद्व्वोमोयरिया तिविहा पण्णता, तं जहा-एगे वत्थे एगे पाए चियत्तोवगरणसाइज्जणया, से तं उवगरणद्व्वोमोदरिया' इति, अथ का सा-उपकरणद्रव्यावमोदरिका ? उपकरणद्रव्यावमोदरिका त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-एकं वस्त्रम्, एकं पात्रम्, त्यक्तोपकरणस्वादनता, सा-एषा, उपकरणद्रव्यावमोदरिका, ॥इति॥१२॥

मूलम्-भत्तपाणद्व्वोमोयरिया तवे अणेगविहे, अट्ठ-कवलप्पमाणमेत्ताइ भेयओ ॥१३॥

छाया—भक्तपानद्रव्यावमोदरिका तपोऽनेकविधम्, अष्टकवल प्रमाण मात्रादि भेदतः' ॥१३॥

तत्वर्थादीपिका— पूर्वं तावत्-उपकरणद्रव्यावमोदरिका त्रैविध्येन प्रतिपादिता, सम्प्रति-भक्तपानद्रव्यावमोदरिकां प्ररूपयितु माह-'भत्तपाणद्व्वो मोदरिया तवे' इत्यादि । भक्तपानद्रव्यावमोदरिका तपोऽनेकविधं भवति, तत्र

प्रश्न-उपकरणद्रव्य-अवमोदरिका किसे कहते हैं ?

उत्तर-उपकरणद्रव्य-अवमोदरिका तीन प्रकार की कही है-एकवस्त्र, एकपात्र और त्यक्तोपकरण स्वादनता ॥१२॥

'भत्तपाण द्व्वोमोयरिया' इत्यादि

सूत्रार्थ—आठ कवल मात्र ही आहार करने आदि के भेद से भक्तपान द्रव्य-अवमोदरिका तप अनेक प्रकार का है ॥१३॥

तत्त्वार्थदीपिका—पहले उपकरणद्रव्य-अवमोदरिका के तीन भेद कहे गए हैं, अब भक्तपानद्रव्य-अवमोदरिका का निरूपण करते हैं-

भक्तपानद्रव्य-अवमोदरिका तप अनेक प्रकार का है। अशन, पान, खादिम और स्वादिम, यह चार प्रकार का आहार भक्त-पान

પ્રશ્ન-ઉપકરણદ્રવ્ય અવમોદરિકા કોને કહે છે ?

ઉત્તર-ઉપકરણદ્રવ્ય અવમોદરિકા ત્રણ પ્રકારની કહેલી છે એક વસ્ત્ર, એકપાત્ર અને ત્યક્તોપકરણસ્વાદનતા ॥ ૧૨ ॥

'भत्तपाण द्व्वोमोयरिया' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—આઠ કવલ માત્ર જ આહાર કરવા આદિના ભેદથી ભક્તપાન દ્રવ્ય અવમોદરિકા તપ અનેક પ્રકારના છે. ॥ ૧૩ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા—પહેલાં ઉપકરણદ્રવ્ય અવમોદરિકાના ત્રણ ભેદ કહેવામાં આવી ગયા છે હવે ભક્તપાનદ્રવ્ય અવમોદકરિકાનું નિરૂપણ કરીએ છીએ

ભક્તપાનદ્રવ્ય અવમોદરિકા તપ અનેક પ્રકારના છે. અશન, પાન, ખાદ્ય અને સ્વાદ્ય, આ ચાર પ્રકારના આહાર ભક્તપાનદ્રવ્ય કહેવાય છે. આનાથી

—भक्तपानद्रव्यम् अशनपानखादिम—स्वादिमरूपचतुर्विधाहारद्रव्यमुच्यते, तत्सम्बन्धि—अवमोदरिका तपः—अवमोदरिका नाम तपश्चरणक्रियाविशेषः तद्रूपं तपः भक्तपानद्रव्यावमोदरिका तप उच्यते, तच्चाऽनेकविधं भवति, 'अष्टकवलप्रमाणमात्रादि भेदात्। तत्रापि—प्राधान्येन त्रिविधम्—उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्यभेदात्। तत्रो—त्कृष्टम् एककवलादारभ्याऽष्टकवलाहारपर्यन्ताहाररूपम् १ मध्यमम्—नवमकवलादारभ्य षोडशकवलाहारपर्यन्ताहाररूपम् २ जघन्यम्—सप्तदशकवलादारभ्यैकत्रिंशत्कवलपर्यन्ताहाररूपम् ३ तत्रापि—एकादि कवलहानेस्तारतम्येनाऽस्याऽनेकविधत्व मपि भवति ॥इति॥१३॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—'पूर्वं तावद्—द्विविधं तपः, तत्रापि—उपकरणद्रव्यावमोदरिकातपस्त्रिविधं प्रतिपादितम् सम्प्रति—भक्तपानद्रव्यावमोदरिकातपः प्ररूपयितु माह—'भत्त पाणदव्वोमोयरिया तवे अणेगविहे अट्ठकवलप्पमाणमेत्ताइ भेयओ' इति। भक्तपानद्रव्यावमोदरिका तपः—अशनपानरूपा·

द्रव्य कहलाता है। इससे संबंध रखने वाली ऊनोदरी को भक्तपान द्रव्य अवमोदरिका तप कहते हैं। वह यद्यपि अनेक प्रकार की है, मगर स्थूल भेदों की अपेक्षा से तीन प्रकार की है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। एक कवल से लेकर आठ कवल तक खाना उत्कृष्ट, नौ कवल से लगा कर सोलह कवल तक खाना मध्यम और सतरह कवल से लगाकर इकतीस कवल तक खाना जघन्य भक्तपानद्रव्य–अवमोदरिका है। इसमें एक–दो कवलों की न्यूनाधिकता के कारण अनेक अवान्तर भेद निष्पन्न होते हैं, अतः अनेक प्रकार की है ॥१३।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—उपकरणद्रव्य–अवमोदरिका तप के तीन भेदों का निरूपण किया गया अब भक्तपानद्रव्य–अवमोदरिका तप की प्ररूपणा की जाती है—

સંબંધ રાખનારી ઉનોદરીને ભક્તપાનદ્રવ્ય અવમોદરિકા તપ કહે છે. તે જો કે અનેક પ્રકારની છે પણ સ્થૂળભેદોની અપેક્ષાથી ત્રણ પ્રકારની છે. ઉત્કૃષ્ટ, મધ્યમ અને જઘન્ય. એક કોળીયાથી લઈને આઠ કોળીયા સુધી ખાવું ઉત્કૃષ્ટ, નવ કોળીયાથી શરૂ કરીને સોળ કોળીયા સુધી ખાવું મધ્યમ અને સત્તર કોળીયાથી લઈને એકત્રીસ કોળીયા સુધી ખાવું જઘન્ય ભક્તપાનદ્રવ્ય અવમોદરિકા છે. આમાં એક બે કોળીયાની ન્યૂનાધિકતાને કારણે અનેક અવાન્તર ભેદ નિષ્પન્ન થાય છે આથી અનેક પ્રકારની છે ॥ ૧૩ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—ઉપકરણદ્રવ્ય અવમોદરિકા તપના ત્રણ ભેદોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે ભક્તપાનદ્રવ્ય અવમોદરિકા તપની પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે

हारद्रव्यसम्बन्धितपः भक्तपानद्रव्यावमोदरिका तप उच्यते । तच्चाऽनेकविधं भवति, अष्टकवलप्रमाणमात्रादि भेदतः, कवलपरिमाणं चाऽत्रकुक्कुटाण्डप्रमित्तं बोध्यम् । प्राधान्यतोऽवमोदरिकातपः-उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्यावमोदरिकाभेदात् त्रिविधं भवति तत्पूर्वं प्रदर्श्यते-द्वात्रिंशत्परिमितैः कवलैः पर्याप्तः पुरुषाहारो भवति । तत्रैककवलादारभ्याऽष्टकवलपरिमिताहारकरण मुत्कृष्टावमोदरिकातपः १ नव कवलादारभ्य षोडशकवलपरिमिताहारकरणं मध्यमाऽवमोदरिकातपः २ सप्तदशकवलादारभ्यैकत्रिंशत्कवलपरिमिताहारकरणं जघन्यावमोदरिकातप उच्यते ३ । इत्थं त्रिविधमप्यवमोदारिकातपः प्रत्येक मेकादिकवलहीनाहारभेदेनाऽनेकविधत्वं भजतीति सूत्रेऽस्य ऽनेकविधत्वमुक्तम् । तथाऽन्यप्रकारेणाऽपि-अत्र-

---

भक्तपानद्रव्य-अवमोदरिका तप अनेक प्रकार का है, यथा आठ कवल मात्र आहार करना आदि । यहां कवल का परिमाण मुर्गी के अंडे के बराबर समझना चाहिए । प्रधान रूप से यह अवमोदरिका तप तीन प्रकार का है-उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य । पुरुष का परिपूर्ण आहार बत्तीस कवल-प्रमाण माना जाता है, इसमें से एक कवल से लेकर आठ कवल तक आहार करना उत्कृष्ट-अवमोदरिका तप है । नौ कवल से लेकर सोलह कवल तक आहार करना मध्यम अवमौदर्य तप है और सतरह कवल से आरंभ करके इकतीस कवल तक खाना जघन्य अवमौदर्य है ।

इस प्रकार अवमोदरिका तप यद्यपि तीन प्रकार का है तथापि एक-दो कवल कम या ज्यादा खाने से उसके अवान्तर भेद होते हैं । इसी कारण सूत्र में उसे अनेक प्रकार का कहा है ।

ભક્તપાનદ્રવ્ય અવમોદરિકા તપ અનેક પ્રકારના છે' યથા આઠ કોળીયા માત્ર આહાર કરવો વગેરે અહીં કોળીયાંનું પરિમાણ મરઘીના ઈંડાની બરાબર સમજવું જોઈએ. પ્રધાન રૂપથી આ અવમોદરિકા તપ ત્રણ પ્રકારના છે ઉત્કૃષ્ટ, મધ્યમ અને જઘન્ય, પુરૂષનો પરિપૂર્ણ આહાર બત્રીસ કોળીયા પ્રમાણ માનવામાં આવે છે. આમાંથી એક કોળીયાથી લઈને આઠ કોળીયા સુધી આહાર કરવો ઉત્કૃષ્ટ અવમોદરિકા તપ છે. નવ કોળીયાથી લઈને સોળ કોળીયા સુધી આહાર કરવો મધ્યમ અવમૌદર્ય તપ છે અને સત્તર કોળીયાથી આરંભ કરીને એકત્રીસ કોળીયા સુધી ખાવું જઘન્ય અવમૌદર્ય છે.

આવી રીતે અવમોદરિકા તપ જો કે ત્રણ પ્રકારના છે તો પણ એક બે કોળીયા ઓછા કે વધારે ખાવાથી તેના અનેક અવાન્તર ભેદ થાય છે અને આથી જ સૂત્રમાં તેને અનેક પ્રકારની કહેવામાં આવેલ છે,

मोदरिकातपसः पञ्चविधत्वेन शास्त्रोक्तत्वादनेकविधत्वं भवति, तथाहि-अल्पाहारावमोदरिका १ अपार्द्धावमोदरिका २ द्विभागप्राप्तावमोदरिका ३ प्राप्तावमोदरिका ४ किञ्चिदूनावमोदरिका ५ चेति। तत्राऽष्टकवलप्रमाणमात्रकवलाहारोऽल्पाहाररूपमवमोदरिका तपो भवति १ द्वादशकुक्कुटाण्डप्रमाणमात्रकवलाहारोऽपार्द्धावमोदरिकातपो भवति-२ एवम्--षोडशकुक्कुटाण्डक प्रमाणमात्रकवलाहारो द्विभागप्राप्तावमोदरिकातपो भवति-३ एवं-चतुर्विंशति कुक्कुटाण्डकप्रमाणमात्रकवलाहारः प्राप्तावमोदरिकातपो भवति-४ एकत्रिंशत्कुक्कुटाण्डकप्रमाणमात्रकवलाहारः किञ्चिदूनावमोदरिका तपो भवति-५। तत्राऽष्टौ कुक्कुटाण्डकप्रमाणमात्रान् कवलान् य आहरति तस्य पुरुषस्याऽल्पाहारनामकाऽवमोदरिका तपो भवति। द्वादश कुक्कुटाण्डकप्रमाणमात्रान् कवलान् य आहरति तस्य स आहारो-ऽपार्द्धाऽवमोदरिकातपो भवति।

अन्य प्रकार से अवमोदरिका तप के शास्त्र में पांच भेद कहे गए हैं, इस कारण भी उसके अनेक भेद कहे जा सकते हैं। वे भेद इस प्रकार हैं-

(१) अल्पाहार अवमोदरिका (२) अपार्ध-अवमोदरिका (३) द्विभाग प्राप्त-अवमोदरिका (४) प्राप्त-अवमोदरिका और (५) किंचिदून-अवमोदरिका। आठ कवल मात्र आहार करना अल्पाहार-अवमोदरिका तप है, मुर्गी के अंडे के बराबर बारह कवल मात्र आहार करना अपार्ध-अवमोदरिका तप है, इसी प्रकार सोलह कवल मात्र आहार करना द्विभाग प्राप्त-अवमोदरिका तप है, चौबीस कवल आहार करना प्राप्त-अवमोदरिका है और इकतीस कवल मुर्गी के अंडे के बराबर आहार करना किंचिदून-अवमोदरिका तप कहलाता है।

અન્ય પ્રકારથી અવમોદરિકા તપના શાસ્ત્રમાં પાંચ ભેદ કહેવામાં આવ્યા છે એ કારણને લઈને પણ તેના અનેક ભેદ કહી શકાય છે. આ ભેદ આ પ્રમાણે છે (૧) અલ્પાહાર અવમોદરિકા (૨) અપાર્ધ અવમોદરિકા (૩) દ્વિભાગપ્રાપ્ત અવમોદરિકા (૪) પ્રાપ્ત અવમોદરિકા અને (૫) કિંચિત ઉન અવમોદરિકા આઠ કોળીયા માત્ર આહાર કરવો અલ્પાહાર અવમોદરિકા તપ છે મરઘીના ઈંડાની બરાબર બાર કોળીયા માત્ર આહાર કરવો અપાર્ધ અવમોદરિકા તપ છે, એજ પ્રકારે સોળ કોળીયા આહાર કરવો દ્વિભાગ પ્રાપ્ત અવમોદરિકા તપ છે, ચોવીસ કોળીયા આહાર કરવો પ્રાપ્ત અવમોદરિકા તપ છે અને એકત્રીસ કોળીયા, મરઘીના ઈંડાની બરાબર આહાર કરવો કિંચિદૂન અવમોદરિકા તપ કહેવાય છે.

षोडशकवला अर्द्धः पुरुषाहारः तस्मात् अर्थात् अपकृष्टा-न्यूना या-ऽवमोदरिका द्वादशकवलात्मकत्वात् सा-ऽपार्द्धावमोदरिकाऽवसेया। एवं-षोडश कुक्कुटाण्डकप्रमाणमात्रान् कवलान् य आहरति तस्य स आहारो द्विभागप्राप्तावमोदरिका तपो भवति। तथा च द्वात्रिंशत्कवलात्मक पर्याप्तपुरुषाहारस्य भागद्वये कृते सति प्राप्तान् षोडशकवलान् भुञ्जानस्य पुरुषस्य द्विभागप्राप्तावमोदरिका तपो भवतीति भावः। एवं-चतुर्विंशति कुक्कुटाण्डकप्रमाणमात्रान् कवलान् य आह-

इस प्रकार जो पुरुष मुर्गी के अण्डे जितने आठ कौर आहार करता है उसके अल्पाहार नामक ऊनोदरी तप होता है। जो मुर्गी के अंडे के बराबर बारह कवल प्रमाण आहार करता है वह अपार्ध-अवमोदरिका तप वाला कहलाता है। सोलह कवल आहार पुरुष का अर्धाहार गिना जाता है, उस आधे से भी कम अर्थात् बारह कवल का आहार करना अपार्ध-अवमोदरिका तप है। जो मुर्गी के अंडे के बराबर सोलह कवल आहार करता है, उसका आहार द्विभाग प्राप्त-अवमोदरिका है। उसे द्वितीय भाग (आधा) अवमोदरिका तप भी कहते हैं। तात्पर्य यह है कि बत्तीस कवल के पुरुष के पूर्ण आहार के बराबर-बराबर के दो भाग किये जाएँ तो सोलह-सोलह हो सकते हैं। इस कारण सोलह कवल का आहार द्विभाग प्राप्त-अवमोदरिका तप समझना चाहिए। जो पुरुष मुर्गी के अण्डे के बराबर सोलह कवल का आहार करता है वह द्विभाग प्राप्त अवमोदरिका तप वाला कहलाता है।

આ પ્રમાણે જે પુરૂષ મરઘીના ઈંડા જેટલા આઠ કોળીયાનો આહાર કરે છે, તેનું અલ્પાહાર નામક ઉનોદરી તપ હોય છે' જે મરઘીના ઈંડા બરાબર બાર કોળીયા પ્રમાણ આહાર કરે છે તે અપાર્ધ અવમોદરિકા તપવાળો કહેવાય છે. સોળ કોળીયાનો આહાર પુરૂષનો અડધો આહાર ગણાય છે. તે અડધાથી ઓછો અર્થાત્ બાર કોળીયા આહાર કરવો અપાર્ધ અવમોદરિકા તપ છે. જે મરઘીના ઈંડા જેટલા સોળ કોળીયાનો આહાર કરે છે તેનો આહાર દ્વિભાગપ્રાપ્ત અવમોદરિકા તપ સમજવો તેને દ્વિતીય ભાગ (અડધો) અવમોદરિકા તપ પણ કહે છે. તાત્પર્ય એ છે કે બત્રીસ કોળીયા પુરૂષના પૂર્ણ આહારના સરખા સરખા બે ભાગ કરવામાં આવે તો સોળ સોળ થાય છે આ કારણે સોળ કોળીયાનો આહાર દ્વિ ભાગ પ્રાપ્ત અવમોદરિકા તપ સમજવો જોઈએ જે પુરૂષ મરઘીના ઇંડાની બરાબર સોળ કોળીયાનો આહાર કરે છે તે દ્વિભાગ પ્રાપ્ત અવમોદરિકા તપવાળો કહેવાય છે. એવી જ રીતે

रति तस्य स आहारः प्राप्तावमोदरिका-पादोनमात्रन्यूनतया प्राप्तेवाऽव-मोदरिका प्राप्तावमोदरिका व्यपदिश्यते। एवम्-एकत्रिंशत्कुक्कुटाण्डकप्रमाण-मात्रान् कवलान् यः पुरुष आहरति तस्य आहारः किञ्चिदूनावमोदरिका कवलैक न्यूनाऽवमोदरिका तपस्या भवति, किन्तु-द्वात्रिंशत् कवलप्रमाणमात्रान् कवलान् य आहरति तस्य पुरुषस्य स आहारः प्रमाण प्राप्ताहारत्वात् अवमोदरिका तपो न भवति। अपितु-एकेनाऽपि कवलेन ऊनमाहारमाहरन् श्रमणो निर्ग्रन्थो न प्रका-मरसभोजी भवतीति वक्तुं पार्यते। तथा च-जघन्याऽवमोदारिकारूपां तपस्यां कुर्वन् श्रमणो निर्ग्रन्थः प्रकामभोजीति न वक्तुं शक्यते, इत्येवं रीत्या भक्तपान द्रव्यावमोदरिका तपोऽनेकविधं भवतीति बोध्यम्। उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-से किं तं भत्तपाणदव्वोमोयरिया-? भत्तपाण दव्वोमोयरिया-अणेग विहा पण्णत्ता, तं जहा-अट्ठकुक्कुडियंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहर-माणे अवड्ढोमोयरिया-२ सोलस कुक्कुडियंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहरमाणे दुभागपत्तोमोयरिया-३ चउवीसं कुक्कुडियंडगप्पमाण-मेत्ते कवले आहरमाणे पत्तोमोयरिया-४ एक्कत्तीसं कुक्कुडियंडग

इसी प्रकार चौबीस कवल का आहार करने वाले को प्राप्त अवमोदरिका तप होता है। जो पुरुष इकतीस कवल का आहार करता है, उसका तप किंचिदून (कुछकम) अनोदरी तप कहलाता है। किन्तु जो पुरुष बत्तीस कवल प्रमाण आहार करता है, उसका आहार प्रमाण प्राप्त (पूर्ण) होने से अवमोदरिका तप नहीं कहा जा सकता। जो श्रमण या श्रमणोपासक परिपूर्ण आहार से एक ही कवल कम खाता है उसी के विषय में ऐसा कहा जा सकता है कि वह प्रकामरस भोजी नहीं है। इस प्रकार भक्तपान द्रव्य-अवमोदरिका तप अनेक प्रकार का होता है। औपपातिक सूत्र में कहा है—

ચોવીસ કોળીયાનો આહાર કરનારને પ્રાપ્ત અવમોદરિકા તપ હોય છે જે પુરૂષ એકત્રીસ કોળીયાનો આહાર કરે છે તેનું તપ કિંચિદૂન (થોડું ઓછું) ઉનોદરી તપ કહેવાય છે, પરંતુ જે પુરૂષ બત્રીસ કોળીયા પ્રમાણ આહાર કરે છે તેનો આહાર પ્રમાણ પ્રાપ્ત (પૂર્ણ) હોવાથી અવમોદરિકા તપ કહી શકાય નહીં. જે શ્રમણ અથવા શ્રમણોપાસક પરિપૂર્ણ આહારથી એક કોળીયો પણ ઓછું ખાય છે તેના જ સંબંધમાં એમ કહી શકાય કે આ પ્રકામ રસ ભોજી નથી. આવી રીતે ભક્તપાનદ્રવ્ય અવમોદરિકા તપ અનેક પ્રકારના હોય છે. ઔપાપાતિક સૂત્રમાં કહ્યું છે

प्पमाणमेत्ते कवले आहारमाणे प्रमाणपत्ते, एत्तो एगेण वि घासेणं ऊणयं आहारमाहारे माणे समणे निग्गंथे णो पकामरसभोइ त्ति वत्तव्वं सिया, से तं भत्तपाणदव्वोमोयरिया, से तं दव्वोमोयरिया' इति अथ का सा भक्तपानद्रव्यावमोदरिका-? भक्तपानद्रव्यावमोदरिका-अनेकविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-अष्ट कुक्कुटाण्डकप्रमाणमात्रान् कवलान् आहरन्-अल्पाहारः-१ द्वादशकुक्कुटाण्डकप्रमाणमात्रान् कवलान् आहरन् अपार्द्धाऽवमोदरिका-२ षोडश कुक्कुटाण्डकप्रमाणमात्रान् आहरन् द्विभागप्राप्ताऽवमोदरिका-३ चतुर्विंशति कुक्कुटाण्डकप्रमाणमात्रान् कवलान् आहरन् प्राप्ताऽवमोदरिका-४, एकत्रिंशत् कुक्कुटाण्डकप्रमाणमात्रान् कवलान् आहरन् किञ्चिदूनाऽवमोदरिका-५, द्वात्रिंशत्कुक्कुटाण्डकप्रमाणमात्रान् कवलान् आहरन् प्रमाणप्राप्तः इत एकेनापि कवलेन ऊनकम् आहार माहरन् श्रमणो निग्रन्थो 'न प्रकामरस-

---

प्रश्न---भक्तपान द्रव्य-अवमोदरिका तप कितने प्रकार का है?

उत्तर---भक्तपान द्रव्य-अवमोदरिका तप अनेक प्रकार का है, यथा मुर्गी के अंडे के बराबर आठ कवल मात्र आहार करना अल्पाहार है। मुर्गी के अंडे के बराबर बारह कवल का आहार करना अपार्ध-अवमोदरिका तप है, इसी प्रकार सोलह कवल का आहार करना द्विभागप्रास-अवमोदरिका है। चौवीस कवल का जो आहार करता है उसका तप प्रास-अवमोदरिका कहलाता है। जो इकतीस कवल आहार करता है उसे किंचिदून अवमोदरिका तप होता है। जो पूरा मुर्गी के अंडे के बराबर बत्तीस कवल आहार करता है, उसका आहार प्रमाणप्रास कहलाता है। जो श्रमण निर्ग्रन्थ प्रमाणप्रास आहार (बत्तीस) कवल से एक भी कवल कम आहार करता है, उसके विषय में यह नहीं कहा

પ્રશ્ન--ભક્તપાનદ્રવ્ય અવમોદરિકા તપ કેટલા પ્રકારના છે?

ઉત્તર--ભક્તપાનદ્રવ્ય અવમોદરિકા તપ અનેક પ્રકારના છે જેમ કે મરઘીના ઇંડા જેટલો આઠ કોળીયા માત્ર આહાર કરવો અલ્પાહાર છે. મરઘીના ઇંડા બરાબર બાર કોળીયા આહાર કરવો અપાર્ધ અવમોદરિકા તપ છે, એવી જ રીતે સોળ કોળીયાનો આહાર કરવો દ્વિભાગપ્રાપ્ત અવમોદરિકા છે. ચોવીસ કોળીયાનો જે આહાર કરે છે તેનુ કિંચિદૂન અવમોદરિકા તપ હોય છે. જે મરઘીનાં ઇંડા જેટલા પૂરા બત્રીસ કોળીયાનો આહાર કરે છે તેનો આહાર પ્રમાણપ્રાપ્ત કહેવાય છે. જે શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ પ્રમાણ પ્રાપ્ત આહાર (બત્રીસ) કોળીયાથી એક પણ કોળીયો ઓછો આહાર કરે છે તેના વિષયમાં

भोजी' ति वक्तव्यं स्यात् सा-एषा भक्तपानद्रव्यावमोदरिका, सा-एषा द्रव्याव मोदरिका' इति ॥१३॥

मूलम्-भावोमोयरिया तवे अणेगविहे, अप्पकोहाइ भेयओ ॥१४॥

छाया--भावाऽवमोदरिका तपोऽनेकविधम्, अल्पक्रोधादि भेदतः ॥१४॥

तत्त्वार्थदीपिका--पूर्वं तावद्-द्रव्याऽवमोदरिका तपः प्ररूपितम्, सम्प्रति-भावाऽवमोदरिका तपः प्ररूपयितुमाह-'भावोमोयरियातवे'-इत्यादि । भावाऽवमोदरिका तपः-भावस्य क्रोधादि कषायरूपात्मपरिणामस्य प्रतनुकारकम् अवमोदरिका नाम क्रियाविशेषरूपतपो भावावमोदरिका तपः-भावस्य क्रोधादि कषायरूपात्मपरिणामस्य प्रतनुकारकम् अवमोदरिका नाम क्रियाविशेषरूपं तपो भावावमोदरिका तप उच्यते । तच्चाऽनेकविधं भवति, तद्यथा-अल्पक्रोधः अल्पमानः अल्पमाया अल्पलोभः अल्पशब्दः अल्पकलहः अल्पझञ्झश्च, इत्येव मनेक विधं भावावमोदरिकातपो भवति । तत्राऽल्पः प्रतनुः क्रोधः क्रोधमोहनीयोदय-

---

जा सकता कि वह प्रकाम रस भोजी है । यह भक्तपान द्रव्य-अवमोदरिका तप है । इस प्रकार द्रव्यावमोदरिका विवेचन पूर्ण हुआ ॥१३।

'भावोमोयरिया तवे' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—अल्पक्रोध आदि के भेद से भाव-अवमोदरिका तप भी अनेक प्रकार का है ॥१४॥

तत्त्वार्थदीपिका—द्रव्य-अवमोदरिका तप की व्याख्या की गई, अब भाव-अवमोदरिका तप की प्ररूपणा करते हैं-

आत्मा के क्रोधादि विभाव-परिणामों को कम करना भाव-अवमोदरिका तप कहलाता है । उसके अनेक प्रकार हैं, जैसे क्रोध को कम करना, मान को कम करना, माया को कम करना, लोभ को कम करना,

---

એવું ન કહી શકાય કે તે પ્રકામરસ ભોજી છે. આ ભક્તપાનદ્રવ્ય અવમોદરિકા તપ છે. આ રીતે દ્રવ્યાવમોદરિકાનું વિવેચન પૂર્ણ થયું. ॥૧૩॥

'भावोमोयरियतवे' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—અલ્પક્રોધ આદિના ભેદથી ભાવ અવમોદરિકા તપ અનેક પ્રકારના છે ॥ ૧૪ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા-દ્રવ્ય અવમોદરિકા તપની વ્યાખ્યા કરવામાં આવી, હવે ભાવ અવમોદરિકા તપની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ

આત્માના ક્રોધાદિ વિભાવ પરિણામોનો ઘટાડો કરવો ભાવ અવમોદરિકા તપ કહેવાય છે. તેના અનેક પ્રકાર છે. જેમકે ક્રોધ ઓછો કરવો, માન ઓછું કરવું, માયાને ઘટાડવી, લોભ ઓછો કરવો, વચનની ન્યૂનતા, કલહ

जन्योऽसहनरूपाऽक्षमा परिणति विशेषः–अल्पक्रोधः क्रोध कषायाल्पता–१ एवम् अल्पमानः जात्याद्यभिमानराहित्यम् मानाल्पता२ एवम् अल्पमाया मायाल्पता३ अल्पलोभो लोभाल्पता ४ अल्पशब्दः शब्दाल्पता, परिमितभाषणम्५ अल्पकलहः कलहाभावः ६ अल्पझञ्झः परस्परभेदोत्पादकवचनव्यापाररूप झञ्झस्याऽभावोऽवगन्तव्यः ॥७॥ ॥१४।

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं खलु=द्रव्यावमोदरिका तपः प्ररूपितम्, सम्प्रति–भावावमोदरिकातपः प्ररूपयितुमाह–'भावोमोयरिया तवे अणेगविहे, अप्प कोहाइ भेयओ'–इति। भावावमोदरिका तपः–भावस्य क्रोधादि कषायादेराभ्यन्तरस्य अक्षमादि परिणतरूपस्य प्रतनु विधायकम् अवमोदरिकानाम तपो भावाऽवमोदरिका तपः, तच्चाऽनेकविधं भवति। अल्पक्रोधादि भेदतः तद्यथा–अल्पक्रोधमानमाया लोभशब्दकलहझञ्झभेदतः। अत्राऽल्प शब्दस्य द्वन्द्वादौ

वचन की न्यूनता, कलह और झंझ की न्यूनता आदि। क्रोध मोहनीय के उदय से उत्पन्न होने वाले असहन रूप असाता परिणाम को क्रोध कहते हैं, उसकी अल्पता क्रोध की अल्पता है। जाति आदि के अभिमान की न्यूनता मानाल्पता है। माया की कमी को मायाल्पता कहते है। लोभ के पतलेपन को लोभाल्पता या अल्पलोभ कहते हैं। परिमित भाषण को शब्दाल्पता कहते हैं। कलह का अभाव अल्पकलह कहलाता है। परस्पर में भेद उत्पन्न करने वाले वचनों का प्रयोग न करना अल्पझंझ है ॥१४॥

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—द्रव्य-अवमोदरिका तप की व्याख्या की जा चुकी, अब भाव अवमोदरिका तप का निरूपण करते हैं–

अक्षमा-परिणतिरूप क्रोध आदि वैभाविक भावों की अल्पता को भाव–अवमोदरिका तप कहते हैं। उसके अनेक भेद है-अल्पक्रोध, अल्प-

અને કજીયાની ન્યૂનતા આદિ ક્રોધ મોહનીયના ઉદયથી ઉત્પન્ન થનારા અસહનરૂપ અક્ષમાપરિણામને ક્રોધ કહે છે. તેની અલ્પતા ક્રોધની અલ્પતા છે. જાતિ વગેરેના અભિમાનની ન્યૂનતા માન અલ્પતા છે માયાનું ઓછાપણું માયાલ્પતા કહેવાય છે. લોભને પાતળો પાડવો લોભ લ્પતા અથવા અલ્પલોભ કહે છે. પરિમિત ભાષણને શબ્દાલ્પતા કહે છે કલહનો અભાવ અલ્પકલહ કહેવાય છે. પરસ્પરમાં ભેદ ઉત્પન્ન કરનાર વચનોનો પ્રયોગ ન કરવો અલ્પ ઝંઝ છે ॥૧૪॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—દ્રવ્ય અવમોદરિકા તપની વ્યાખ્યા કરવામાં આવી હવે ભાવ અવમોદરિકા તપનું નિરૂપણ કરીએ છીએ

અક્ષમા પરિણતિ રૂપ ક્રોધ આદિ વૈભાવિક ભાવોની અલ્પતાને ભાવ અવમોદરિકા તપ કહે છે. તેના અનેક ભેદ છે અલ્પક્રોધ, અલ્પમાન, અલ્પમાયા,

सद्भावात् तस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धात्, अल्पक्रोधः-१ अल्पशब्दः स्तनु वाचकः तेनाऽल्पः स्वल्पः क्रोधः क्रोधमोहनीयकर्मोदयसम्पाद्यः असहनरूपाऽक्षमा परिणतिविशेषः क्रोधाल्पत्वमित्येवम् अल्पक्रोधोनाम भावावमोदरिका तपः १ एवम्-अल्पमानः जात्याद्यभिमानराहित्यम् मानाल्पता २ अल्पमाया-मायाल्पत्वम्-३ अल्पलोभः लोभाल्पता ४ अल्पशब्दः-परिमितभाषणम्, शब्दाल्पता-५ अल्पकलहः-कलहाभावः-६ अल्पझञ्झः-परस्पर भेदोत्पादकवचनव्यापाररूपझञ्झस्याऽभावः-७ इत्येवं रीत्या भावावमोदरिका तपोऽनेकविधं भवति। उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं भावोमोयरिया ? भावोमोयरिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा अप्पकोहे१ अप्पमाणे २ अप्पमाए३ अप्प-

---

मान अल्पमाया, अल्पलोभ, अल्पशब्द, अल्पकलह, अल्पझंझ आदि। 'अल्प' शब्द मन्दता या न्यूनता का वाचक है। अतः अल्पक्रोध का अर्थ है-क्रोध मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले असहनरूप अक्षमा परिणति की न्यूनता या मन्दता यह मन्दता अल्पक्रोध नामक भाव-अवमोदरिका तप है। इसी प्रकार जाति आदि के अभिमान की अल्पता को अल्पमान तप समझना चाहिए। माया की अल्पता अल्पमाया कहलाति है। लोभ की अल्पता अल्पलोभ है। परिमित भाषण को अल्पशब्द कहते हैं। कलह का अभाव अल्पकलह है। परस्पर में भेद उत्पन्न करने वाले का प्रयोग झंझ कहलाता है और उसका अभाव अल्पझंझ। इस प्रकार भावअवमोदरिका तप अनेक प्रकार का है। औपपातिक सूत्र में कहा है-भाव अवमोदरिका तप कितने प्रकार का है ?

અલ્પલોભ અલ્પશબ્દ, અલ્પકલહ, અલ્પ ઝંઝ—આદિ 'અલ્પ' શબ્દ મન્દતા અથવા ન્યૂનતાનું વાચક છે આથી અલ્પક્રોધનો અર્થ છે ક્રોધ મોહનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થનારા અસહનરૂપ અક્ષમાપરિણતિની ન્યૂનતા અથવા મન્દતા અલ્પ ક્રોધ નામક ભાવ અવમોદરિકા તપ છે એવી જ રીતે જાતિ આદિના અભિમાનની અલ્પતાને અલ્પમાન તપ સમજવું જોઈએ માયાની અલ્પતા અલ્પમાયા કહેવાય છે. લોભની અલ્પતા અલ્પલોભ છે. પરિમિત ભાષણને અલ્પશબ્દ કહે છે.

કલહનો અભાવ અલ્પકલહ છે. પરસ્પરમાં ભેદ ઉત્પન્ન કરનાર વચનોના પ્રયોગને ઝંઝ કહેવાય છે અને તેનો અભાવ અલ્પઝંઝ છે—આ રીતે ભાવ અવમોદરિકા તપ અનેક પ્રકારના છે.

लोहे४ अप्पसद्दे५ अप्पझंझे७ से त्तं भावोमोयरिया से त्तं ओमोयरिया' इति। अथ का सा भावावमोदरिका ? भावाऽवमोदरिकाऽनेकविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा -अल्पक्रोधः१ अल्पमानः२ अल्पमाया ३ अल्पलोभः ४ अल्पशब्दः५ अल्पकलहः६ अल्पझञ्झः७ सा-एषा भावाऽवमोदरिका, सा एषा अवमोदरिका इति ॥१४॥

मूलम्-भिक्खायरिया तवे अणेगविहे, दव्वाभिग्गहचराइ भेयओ ॥१५॥

छाया-भिक्षाचर्या तपोऽनेकविधम्, द्रव्याभिग्रहचरादि भेदतः ॥१५॥

तत्त्वार्थदीपिका—पूर्वं खलु-'अवमोदरिका' नाम द्वितीयं बाह्यं तपः सविस्तरं प्ररूपितम् सम्प्रति-तृतीयं भिक्षाचर्या तपः प्ररूपयितुमाह- 'भिक्खायरिया तवे अणेगविहे, दव्वाभिग्गहचराइ भेयओ' इति। भिक्षाचर्या तपः-'अमुकस्थाने अमुककाले अमुकवस्तु ग्रहीष्यामि' इत्येवं रीत्याऽभि-

---

उत्तर—भाव अवमोदरिका तप अनेक प्रकार का है-अल्पक्रोध, अल्प-मान, अल्पमाया, अल्पलोभ, अल्पशब्द, अल्पझंझ आदि। यह भाव-अवमोदरिका तप है ॥१४॥

'भिक्खायरिया तवे अणेगविहे' इत्यादि,

सूत्रार्थ—द्रव्याभिग्रहचर आदि के भेद से भिक्षाचर्या तप भी अनेक प्रकार का है ॥१५॥

तत्त्वार्थदीपिका—इससे पहले अवमोदरिका नामक बाह्य तप का विस्तार पूर्वक प्ररूपण किया गया, अब भिक्षाचर्या नामक तीसरे तप की प्ररूपणा करते हैं-

द्रव्याभिग्रहचर आदि के भेद से भिक्षाचर्या तप के अनेक भेद

ઔપપાતિકસૂત્રના ત્રીસમાં સૂત્રમાં કહ્યું છે ભાવ અવમોદરિકા તપ કેટલા પ્રકારના છે ? ઉત્તર-ભાવ અવમોદરિકા અનેક પ્રકારની છે. અલ્પક્રોધ અલ્પમાન, અલ્પમાયા, અલ્પલોભ, અલ્પશબ્દ. અલ્પકલહ, અપઝંઝ— આદિ આ ભાવ અવમોદરિકા તપ છે. ॥ ૧૪ ॥

'भिक्खायरिया तवे' ઈત્યાદિ

સૂત્રાર્થ--દ્રવ્યાભિગ્રહ ચર આદિના ભેદથી ભિક્ષાચર્યા તપ અનેક પ્રકારના છે ॥ ૧૫ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા--આની પહેલા અવમોદરિકા નામક દ્વિતીય બાહ્યતપનું વિસ્તારપૂર્વક પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે ભિક્ષાચર્યા નામક ત્રીજા તપની પ્રરૂપણા કરીએ છીએ-

દ્રવ્યાભિગ્રહચર આદિના ભેદથી ભિક્ષાચર્યા તપના અનેક ભેદ છે,

ग्रहपूर्वकं भिक्षाटनविषयकं तपो भिक्षाचर्या तप उच्यते । तच्चाऽनेकविधं भवति तद्यथा–द्रव्याभिग्रहचरः–अमुकमेवाऽशन पानं ग्रहीष्यामि' इत्येवं द्रव्याभिग्रहेण चरतीति द्रव्याभिग्रहचर, उच्यते१ आदिना क्षेत्राभिग्रहचरः 'अमुकस्थाने ग्रहीष्यामि' इत्येवं क्षेत्राभिग्रहेण चरतीति क्षेत्राभिग्रहचरः २ कालाभिग्रहचरः 'अमुककाले पूर्वाह्णादावेव ग्रहीष्यामि-न तु पराह्णे नापि रात्रौ' इत्येवं काल विशेषाभिग्रहेण चरतीति कालाभिग्रहचरः ३ एवम्–भावाभिग्रहचरः ४ उत्क्षिप्तचरः ५ निक्षिप्तचरः ६ उत्क्षिप्तनिक्षिप्तचरः७ निक्षिप्तोत्क्षिप्तचरः८ वर्त्यमानचरः९

है। 'अमुकस्थान में' अमुक काल में, अमुक वस्तु ग्रहण करूंगा' इस तरह अभिग्रह करके भिक्षाटन करना भिक्षाचर्यातप कहलाता है। उसके अनेक भेद हैं। वे इस प्रकार हैं–

(१) द्रव्याभिग्रहचर–अमुक अशन–पान ही ग्रहण करूंगा, इस प्रकार द्रव्य संबंधी अभिग्रह करके भिक्षाटन करने वाला।

(२) क्षेत्राभिग्रहचर–'अमुक स्थान पर ही ग्रहण करूंगा, इस तरह क्षेत्र संबन्धी अभिग्रह करके भिक्षाटन करने वाला।

(३) कालाभिग्रहचर–अमुक काल में–जैसे पूर्वाह्ण में, ही ग्रहण करूंगा, न अपराह्ण में, न मध्याह्न में, ऐसा अभिग्रह करके भिक्षा टन करने वाला।

इसी प्रकार (४) भावाभिग्रहचर (५) उत्क्षिप्तचर (३) निक्षिप्तचर (७) उत्क्षिप्तनिक्षिप्तचर (८) निक्षिप्तउत्क्षिप्तचर (९) वर्त्यमानचर (१०) संहृ-

---

અમુક સ્થાને. અમુક કાળમાં, અમુક વસ્તુ ગ્રહણ કરીશ આ રીતે અભિગ્રહ કરીને ભિક્ષાટન કરવું ભિક્ષાચર્યા તપ કહેવાય છે. તેના અનેક ભેદ છે–તે આ પ્રકારે છે

(૧) દ્રવ્યાભિગ્રહચર–અમુક અશન પાન જ ગ્રહણ કરીશ એ રીતે દ્રવ્ય સંબંધી અભિગ્રહ કરીને ભિક્ષાટન કરનાર

(૨) ક્ષેત્રાભિગ્રહચર–અમુક સ્થળે જ ગ્રહણ કરીશ, આ પ્રમાણે ક્ષેત્ર-સંબંધી અભિગ્રહ કરીને ભિક્ષાટન કરનાર.

(૩) કાલાભિગ્રહચર––અમુકકાળમાં જેમકે પૂર્વાહ્નમાં જ ગ્રહણ કરીશ અપરાહ્નમાં કે મધ્યાહ્નમાં નહીં એવો અભિગ્રહ ધારીને ભિક્ષાટન કરનાર

એવી જ રીતે (૪) ભાવાભિગ્રહચર (૫) ઉત્ક્ષિપ્તચર (૬) નિક્ષિપ્તચર (૭) ઉત્ક્ષિપ્તનિક્ષિપ્તચર (૮) નિક્ષિપ્તઉત્ક્ષિપ્તચર (૯) વર્ત્યમાનચર (૧૦) સંહિ-

संह्रियमाणचरः१० उपनीतचरः११ अपनीतचरः१२ उपनीतापनीतचरः=१३ अपनीतोपनीतचरः१४ संसृष्टचरः१५ असंसृष्टचरः१६ तज्जातसंसृष्टचरः१७ अज्ञातचरः१८ मौनचरः १९ दृष्टलाभिकः२० अदृष्टलाभिकः २१ पृष्टलाभिकः२२ अपृष्टलाभिकः२३ भिक्षालाभिकः२४ अभिक्षालाभिकः २५ अन्नग्लायकः२६ औपनिहितकः २७ परिमितपिण्डपातिकः २८ शुद्धैषणिकः २९ संख्यादत्तिकः इत्येवं रीत्याऽनेकविधं तावद् भिक्षाचर्यातपो भवतीति बोध्यम्। तत्र भावाभिग्रहचरस्तु–'अमुक प्रकारको दाता यदि दास्यति-तदा ग्रहीष्यामि' इत्येवंभावाभिग्रहेण चरतीति भावाभिग्रहचरोऽवगन्तव्यः४ एवम् उत्क्षिप्त चरादिकमपि स्वयं ज्ञेयम्।१५।

तत्त्वार्थनिर्युक्ति—पूर्वं तावद् द्वितीयं बाह्यरूपम् अवमोदरिका तपः

यमाणचर (११) उपनीतचर (१२) अपनीतचर (१३) उपनीतापनीतचर (१५) संसृष्टचर (१६) असंसृष्टचर (१७) तज्जातसंसृष्टचर (१८) अज्ञातचर (१९) मौनचर (२०) दृष्टलाभिक (२२) अदृष्टलाभिक (२३) पृष्टलाभिक (२३) अपृष्टलाभिक (२४) भिक्षालाभिक (२५) अभिक्षालाभिक (२६) अन्नग्लायक (२७) औपनिहतक (२८) परिमितपिण्डपातिक (२९) शुद्धैषणिक (३०) संख्यादत्तिक, इस प्रकार भिक्षाचर्या तप करने वाले अनेक प्रकार के हैं और इसी कारण इस तप के भी अनेक भेद होते हैं।

'अमुक प्रकार का दाता यदि देगा तो ग्रहण करूंगा इस प्रकार भाव संबन्धी अभिग्रह करके भिक्षाटन करने वाला भावाभिग्रहचर समझना चाहिए। इसी प्रकार उत्क्षिप्तचर आदि का अर्थ भी स्वयं ही समझ लेना चाहिए ॥१५॥

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पहले अवमोदरिका नामक द्वितीय बाह्य तप का

યમાણુચર (૧૧) ઉપનીતચર (૧૨) અપનીતચર (૧૩) ઉપનીતાપનીતચર (૧૪) અપનીતોપનીતચર (૧૫) સંસૃષ્ટચર (૧૬) અસંસૃષ્ટચર (૧૭) તજ્જાતસંસૃષ્ટચર (૧૮) આજ્ઞ તચર (૧૯) મૌનચર (૨૦) દ્રષ્ટિલાભિક (૨૧) અદ્રષ્ટિલાભિક (૨૨) પૃષ્ટલાભિક (૨૩) અપૃષ્ટલાભિક (૨૪) ભિક્ષાલાભિક (૨૫) અભિક્ષાલાભિક (૨૬) અન્નગ્લાયક (૨૭) ઔપનિહિતક (૨૮) પરિમિતપિણ્ડપાતિક (૨૯) શુદ્ધૈષણિક (૩૦) સંખ્યાદત્તિક, આ રીતે ભિક્ષાચર્યા તપ કરનારાઓ અનેક પ્રકારના છે અને આ કારણે જ આ તપના પણ અનેક ભેદ હોય છે.

અમુક પ્રકારનો દાતા જો આપશે તો જ ગ્રહણ કરીશ આ રીતે ભાવ સંબંધી અભિગ્રહ કરીને ભિક્ષાટન કરનાર ભાવાભિગ્રહચર સમજવો જોઈએ એવી જ રીતે ઉત્ક્ષિપ્તચર વગેરેનો અર્થ પણ સ્વયં સમજી લેવો ॥ ૧૫ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—પહેલાં અવમોદરિકા નામક દ્વિતીય બાહ્ય તપનું

सविस्तरं प्ररूपितम्, सम्प्रति–क्रमप्राप्तस्य तृतीयस्य भिक्षाचर्या नामक तपसः स्वरूपं सभेदं प्ररूपयितुमाह='भिक्खायरिया तवे अणेगविहे, दव्वाभिग्गह चराइ भेदओ' इति भिक्षाचर्या तपः वृत्तिपरिसंख्यानरूपम् 'अमुकस्थाने अमुककाले अमुक वस्तु ग्रहीष्यामि' इत्यादिरीत्याऽभिग्रहपूर्वकं भिक्षाटन-रूपं तपश्चरणम् अनेकविधं भवति। तद्यथा–द्रव्याभिग्रहचरादि भेदतः, द्रव्याभि-ग्रहचरः १ आदिना क्षेत्राभिग्रहचरः २ कालाभिग्रहचरः ३ भावाभिग्रहचरः ४ उत्क्षिप्तचरः ५ निक्षिप्तचरः ६ उत्क्षिप्तनिक्षिप्तचरः ७ निक्षिप्तोत्क्षिप्तचरः ८ वर्त्यमानचरः ९ संह्रियमानचरः १० उपनीचरः ११ अपनीतचरः १२ उपनीतापनीत-चरः १४ संसृष्टचरः १५ असंसृष्टचरः १६ तज्जातसंसृष्टचरः १७ अज्ञातचरः १८ मौनचरः १९ दृष्टलाभिकः २० अदृष्टलाभिकः २१ पृष्टलाभिकः २२ अपृष्ट-

---

सविस्तर प्ररूपण किया गया अब क्रमप्राप्त तीसरे भिक्षाचर्या नामक तप का भेदों सहित स्वरूप प्रदर्शित करते हैं—

भिक्षाचर्या तप का दूसरा नाम वृत्तिपरिसंख्यान है। 'अमुक स्थान में' अमुक वस्तु ही ग्रहण करूंगा 'इत्यादि रूप से अभिग्रह करके भिक्षा-टन करना भिक्षाचर्या तप कहलाता है। यह तप द्रव्याभिग्रहचर आदि के भेद से अनेक प्रकार का है, यथा· (१) द्रव्याभिग्रहचर (२) क्षेत्राभि-ग्रहचर (३) कालाभिग्रहचर (४) भावाभिग्रहचर (५) उत्क्षिप्तचर (६) निक्षिप्तचर (७) उत्क्षिप्तनिक्षिप्तचर (८) निक्षिप्तउत्क्षिप्तचर (९) वर्त्यमानचर (१०) संह्रियमाणचार (११) उपनीतचर (१२) अपनी-तचर (१३) उपनीतापनीतचर (१४) अपनीतोपनीतचर (१५) संसृष्टचर (१६) असंसृष्टचर (१७) तज्जातसंसृष्टचर (१८) अज्ञातचर (१९) मौनचर (२०) दृष्टलाभिक (२१) अदृष्टलाभिक (२२) पृष्टलाभिक

સવિસ્તર પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે ક્રમપ્રાપ્ત ત્રીજા ભિક્ષાચર્યા નામક તપનું ભેદો સહિત સ્વરૂપ પ્રદર્શિત કરીએ છીએ

ભિક્ષાચર્યા તપનું બીજુ નામ વૃત્તિપરિસંખ્યાત છે. અમુક સ્થાનમાં અમુક કાળમાં, અમુક વસ્તુ જ ગ્રહણ કરીશ ઇત્યાદિ રૂપથી અભિગ્રહ કરીને ભિક્ષાટન કરવું ભિક્ષાચર્યા તપ કહેવાય છે. આ તપ દ્રવ્યાભિગ્રહચર આદિના ભેદથી અનેક પ્રકારના છે જેમકે—(૧) દ્રવ્યાભિગ્રહચર (૨) ક્ષેત્રાભિગ્રહચર (૩) કાલાભિગ્રહચર (૪) ભાવાભિગ્રહચર (૫) ઉત્ક્ષિપ્તચર (૬) નિક્ષિપ્તચર (૭) ઉત્ક્ષિપ્તનિક્ષિપ્તચર (૮) નિક્ષિપ્ત ઉત્ક્ષિપ્તચર (૯) વર્ત્યમાનચર (૧૦) (૧૬) અસંસૃષ્ટચર (૧૭) તજ્જાતસંસૃષ્ટચર (૧૮) અજ્ઞાતચર (૧૯) મૌનચર (૨૦) દ્રષ્ટલાભિક (૨૧)અદ્રષ્ટલાભિક (૨૨) પૃષ્ટલાભિક (૨૩) અપૃષ્ટલાભિક

लाभिकः २३ भिक्षालाभिकः २४ अभिक्षालाभिकः २५ अन्नग्लायकः २६ औपनिहितकः २७ परिमितपिण्डपातिकः २८ शुद्धैषणिकः २९ संख्यादत्तिकः ३० इत्येवं रीत्याऽनेकविधं भिक्षाचर्या तपो भवति। तत्राश्रिताऽभिग्रहं वा य श्चरति-आसेवते, स द्रव्याभिग्रहचर उच्यते, भिक्षाचर्यायाः प्रस्तावेऽपि-धर्मधर्मिणोर भेदविवक्षया द्रव्याभिग्रहचर इत्युक्तम्। द्रव्याभिग्रहश्च लेपकृतादि द्रव्यविषयोऽवगन्तव्यः भक्तपानादि द्रव्यविषयकोऽभिग्रहो द्रव्याभिग्रहो बोध्यः१ 'अमुकस्थाने ग्रहीष्यामि' इत्येवं रीत्या क्षेत्रविशेषमभिगृह्य यश्चरति-भिक्षामटति स क्षेत्राभिग्रहचर उच्यते, क्षेत्रविषयकोऽभिग्रहः क्षेत्राभिग्रहः २ 'पूर्वाह्णे ग्रहीष्यामि-

(२३) अपृष्टलाभिक (२४) भिक्षालाभिक (२५) अभिक्षालाभिक (२६) अन्नग्लायक (२७) औपनिहितक (२८) परिमितपिण्डपातिक (२९) शुद्धैषणिक (३०) संख्यादत्तिक, इस प्रकार भिक्षाचर्या तप अनेक प्रकार का है। इनका स्वरूप इस प्रकार है—

(१) द्रव्याभिग्रहचर-द्रव्य संबंधी अभिग्रह करके जो भिक्षाटन करता है, वह द्रव्याभिग्रहचर कहलाता है। भिक्षा का प्रकरण होने पर भी धर्म और धर्मी के अभेद की विवक्षा करके द्रव्याभिग्रहचर ऐसा कहा गया है। द्रव्याभिग्रह यहां लेपकृत आदि द्रव्यसंबंधी समझना चाहिए। भोजन-पानी आदि द्रव्यों से संबंध रखने वाला अभिग्रह द्रव्याभिग्रह कहलाता है।

(२) क्षेत्राभिग्रहचर-'अमुक स्थानपरग्रहण करूंगा इस प्रकार क्षेत्र संबंधी अभिग्रह करके जो भिक्षार्थ भ्रमण करता है वह क्षेत्राभिग्रहचर कहलाता है। क्षेत्र संबंधी अभिग्रह क्षेत्राभिग्रह है।

(૨૪) ભિક્ષાલાભિક (૨૫) અભિક્ષાલાભિક (૨૬) અન્નગ્લાયક (૨૭) ઔપનિહિતક (૨૮) પરિમિતપિણ્ડપાતિક (૨૯) શુદ્ધૈષણિક (૩૦) સંખ્યાદત્તિક આ રીતે ભિક્ષાચર્યા તપ અનેક પ્રકારના છે. એમનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે (૧) દ્રવ્યાભિગ્રહચર-દ્રવ્યસંબંધી અભિગ્રહ ધારીને જે ભિક્ષાટન કરે છે, તે દ્રવ્યાભિગ્રહચર કહેવાય છે ભિક્ષાનું પ્રકરણ હોવા છતાં પણ ધર્મ અને ધર્મના અભેદની વિવક્ષા કરીને 'દ્રવ્યાભિગ્રહચર' એમ કહેવામાં આવ્યું છે. દ્રવ્યાભિગ્રહ અહીં લેપકૃત આદિ દ્રવ્યસંબંધી સમજવો જોઈએ ભોજન પાણી આદિ દ્રવ્યોથી સંબધ રાખનાર અભિગ્રહ દ્રવ્યાભિગ્રહ કહેવાય છે.

(૨) ક્ષેત્રાભિગ્રહચર—'અમુક સ્થાન પર ગ્રહણ કરીશ' આ રીતે ક્ષેત્ર સંબંધી અભિગ્રહ કરીને જે ભિક્ષા કાજે ભ્રમણ કરે છે તે ક્ષેત્રાભિગ્રહચર કહેવાય છે. ક્ષેત્ર સંબંધી અભિગ્રહ ક્ષેત્રાભિગ્રહ છે.

नापराह्णे-न रात्रौ वा' इत्येवं कालविशेषमभिगृह्य चरति-भिक्षामटति यः स कालाभिग्रहचर उच्यते, कालविशेषकोऽभिग्रहः कालाभिग्रहः ३ 'अमुक प्रकारको दाता शुद्धभावेन दास्यति-तदा ग्रहीष्यामि' इत्येवं दातृविशेषमभिगृह्य चरतीति भावाभिग्रहचरः । यद्वा-गान हासनादि प्रवृत्तपुरुषादि विषयकोऽभिग्रहो भावाभिग्रहोऽवसेयः ४ उत्क्षिप्तं गृहस्थेन स्वार्थं पाकभाजनादुद्धृतमभिगृह्य चरति 'स्वार्थं पाकपात्रात् उद्धृतं भोजनादिकं यदि दास्यति तदा ग्रहीष्यामि' इत्येवम्-उत्क्षिप्ताभिग्रहचर उच्यते, उत्क्षिप्तविषयकोऽभिग्रहः उत्क्षिप्ताभिग्रहः ५

(३) कालाभिग्रहचर-पूर्वाह्ण में ही ग्रहण करूंगा, अपराह्ण या मध्याह्न में नहीं, ऐसा अभिग्रह करने वाला कालाभिग्रहचर कहलाता है । कालविषयक अभिग्रह कालाभिग्रह है ।

(४) भावाभिग्रहचर-'अमुक प्रकार का दाता शुद्धभाव से देगा तो ग्रहण करूंगा इस तरह दाता संबंधी अभिग्रह करके भिक्षाटन करने वाला भावाभिग्रहचर कहलाता है अथवा गाने या हसने में प्रवृत्त पुरुष आदि के हाथ से ही आहार लूंगा, ऐसा अभिग्रह करना भावाभिग्रह समझना चाहिए ।

(५) उत्क्षिप्तचर—गृहस्थ ने अपने लिए पात्र में से निकाला हो वह उद्धृत कहलाता है । 'जो भोजनादिक अपने खुद के लिए हंडिया में से बाहर निकाला हो वही ग्रहण करूंगा ऐसा नियम ग्रहण करने वाला उत्क्षिप्तचर कहलाता है । उत्क्षिप्त (बाहर निकाले) आहार का नियम स्वीकार करना उत्क्षिप्ताभिग्रह समझना चाहिए ।

(૩) કાલાભિગ્રહચર-પૂર્વાહ્નમાં જ ગ્રહણ કરીશ, અપરાહ્ન અથવા મધ્યાહ્નમા નહીં એવો અભિગ્રહ રાખનાર કાલાભિગ્રહચર કહેવાય છે. કાલ વિષયક અભિગ્રહ કાલાભિગ્રહ છે.

(૪) ભાવાભિગ્રહચર-અમુક પ્રકારનો દાતા શુદ્ધ ભાવથી આપશે તો જ ગ્રહણ કરીશ એ રીતે દાતા સંબંધી અભિગ્રહ રાખીને ભિક્ષાટન કરનાર ભાવાભિગ્રહચર કહેવાય છે, અથવા ગાવા અગર હસવામાં પ્રવૃત્ત પુરૂષ આદિના હાથે જ આહાર લઈશ એવો અભિગ્રહ કરવો ભાવાભિગ્રહ સમજવો.

(૫) ઉત્ક્ષિપ્તચર-ગૃહસ્થે પોતાને માટે પાત્રમાંથી કાઢયું હોય તે ઉદ્ધૃત કહેવાય છે. જે ભોજનાદિક પોતાના જ માટે વાસણમાંથી બહાર કાઢયું હોય તે જ ગ્રહણ કરીશ એવો નિયમ ગ્રહણ કરનાર ઉત્ક્ષિપ્તચર કહેવાય છે. (બહાર કાઢેલ) આહારનો નિયમ સ્વીકાર કરવો ઉત્ક્ષિપ્ત અભિગ્રહ સમજવો જોઈએ.

निक्षिप्तं पाकादि भाजनात् उद्धृत्याऽन्यभाजने स्थापितमशनादिकमभिगृह्य चरति इति निक्षिप्तचर उच्यते, निक्षिप्तविषयकोऽभिग्रहो निक्षिप्ताऽभिग्रहः ६ उत्क्षिप्तनिक्षिप्तचरः–पाकभाजनादुत्क्षिप्तं तदेवाऽन्यत्र स्थाने यत् निक्षिप्तं तद्-उत्क्षिप्तनिक्षिप्तचर उच्यते ७ निक्षिप्तोत्क्षिप्तचरः–निक्षिप्तं पाकभाजनाद् उद्धृत्याऽन्यत्र स्थापितं, तदेव उत्क्षिप्तं पुनर्हस्ते गृहीतं तदभिग्रहेण चरतीति निक्षिप्तोत्क्षिप्तचर उच्यते ८ वर्त्यमानचरः वर्त्यमानं परिविष्यमाणमभिगृह्य चरतीति वर्त्यमानचर

---

(६) निक्षिप्तचर–पकाने के पात्र में से निकालकर जो भोजन अन्य पात्र में रख दिया गया हो वह निक्षिप्त कहलाता है। ऐसे आहार को ही ग्रहण करने का नियम लेने वाला निक्षिप्तचर है। निक्षिप्त विषयक अभिग्रह निक्षिप्ताभिग्रह समझना चाहिए।

(७) उत्क्षिप्त निक्षिप्तचर–पाक–पात्र में निकाल दिया गया हो और अन्य स्थान पर रखा हो वह आहार उत्क्षिप्तनिक्षिप्त कहलाता है। उसका अभिग्रह करके भिक्षाटन करने वाला उत्क्षिप्तनिक्षिप्तचर है।

(८) निक्षिप्तोत्क्षिप्तचर–पाकपात्र में से बाहर निकाला हो, अन्य स्थान पर रख दिया हो, उसीको फिर हाथ में लिया हो ऐसा आहार प्राप्त होगा तो ही ग्रहण करूंगा, ऐसा नियम अंगीकार करने वाला निक्षिप्तउत्क्षिप्तचर कहलाता है।

(९) वर्त्यमानचर—यदि परोसा जाता हुआ आहार मिलेगा तो ही लूंगा ऐसा अभिग्रह करने वाला वर्त्यमानचर कहलाता है।

---

(૬) નિક્ષિપ્તચર–રાંધવાના પાત્રમાંથી કાઢીને જે ભોજન અન્ય પાત્રમાં રાખી દેવામાં આવ્યું હોય તે નિક્ષિપ્ત કહેવાય છે. આવા આહારને જ ગ્રહણ કરવાનો નિયમ લેનાર નિક્ષિપ્તચર છે. નિક્ષિપ્તવિષયક અભિગ્રહ નિક્ષિપ્તાભિગ્રહ સમજવો જોઈએ.

(૭) ઉત્ક્ષિપ્તચર–પાક પાત્રમાંથી કાઢી નાખવામાં આવ્યું હોય અને અન્ય સ્થાન ઉપર રાખેલ હોય તે આહાર ઉત્ક્ષિનિક્ષિપ્ત કહેવાય છે. તેનો અભિગ્રહ રાખીને ભિક્ષાટન કરનાર ઉત્ક્ષિપ્તનિક્ષિપ્તચર છે.

(૮) નિક્ષિપ્તોત્ક્ષિપ્તચર—પાકપાત્રમાંથી બહાર કાઢેલ હોય, અન્ય સ્થાન પર રાખી દેવામાં આવ્યું હોય તેને જ ફરી હાથમાં લેવામાં આવ્યો હોય એવો આહાર મળશે તો જ ગ્રહણ કરીશ એવો નિયમ અંગીકાર કરનાર નિક્ષિપ્ત ઉત્ક્ષિપ્તચર કહેવાય છે

(૯) વર્ત્યમાનચર—જો પીરસવામાં આવી રહેલો આહાર મળશે તો જ લઈશ એવો અભિગ્રહ કરનાર વર્ત્યમાનચર કહેવાય છે.

उच्यते ९ एवं-संह्रियमाणचरः—अत्युष्णं व्यञ्जन सूपादिकं शीतलीकरणाय स्थाल्यादिषु प्रसारितं तद् पुनर्भाजने क्षिप्यमाणं संह्रियमाण मुच्यते तदभिग्रहेण चरतीति संह्रियमाणचरो बोध्यः १० उपनीतचरः—अन्येन केनचिद् गृहस्थाय प्रेषितं यत् तदुपनीत मुच्यते, तदभिग्रहेण चरतीति उपनीतचरः 'तदेवाहं ग्रहीष्यामि यदन्येन तदर्थं प्रेषितं भवेत्' इत्येवमभिग्रह अपनीताभिग्रह इत्यर्थः ११ अपनीतचरः—अपनीतं गृहस्थेन कस्मैचिदन्यस्मै दातुं निःसार्य यदन्यत्र स्थापितं तदभिग्रहेण चरतीति—अपनीचरः उच्यते, 'तदेवाऽहं ग्रहीष्यामि यदन्यस्मैदातुं निस्सार्य स्थापितं स्यात्' इत्येवमभिग्रहोऽपनीताभिग्रह इत्यर्थः १२ उपनीतापनीतचरः—'यदेवोपनीतम् अन्येन प्रेषितं, तदेव यदि अपनीतं स्थानान्तरे स्थापितं स्यात् तदेव ग्रहीष्यामि' इत्येवमभिग्रहेण चरतीति अपनीतापनीतचर उच्यते १३

(१०) संह्रियमाणचर—अत्यन्त उष्ण आहार ठंडा करने के लिए थाली आदि में फैलाया गया हो, उसे पुनः पात्र में डाला जा रहा हो वह आहार संह्रियमाण कहलाता है। ऐसा आहार ही लूंगा ऐसी प्रतिज्ञा करने वाला तपस्वी संह्रियमाणचर है।

(११) उपनीतचर—जो भोजन किसी दूसरे ने गृहस्थ के लिए भेजा हो वह उपनीत कहलाता है और उसका अभिग्रह करने वाला उपनीतचर। मैं वही भोजन ग्रहण करूंगा जो दूसरे ने गृहस्थ के लिए भेजा हो ऐसी आखडी करना उपनीताभिग्रह है।

(१२) अपनीतचर—गृहस्थने किसी को देने के लिए अन्यत्र रख दिया हो ऐसे आहार को ही ग्रहण करने का नियम स्वीकार करने वाला अपनीतचर कहलाता है। जो आहार दूसरे को देने के लिए

(૧૦) સંહ્રિયમાણચર—અત્યન્ત ઉષ્ણ આહાર ટાઢો કરવા માટે થાળી વગેરેમાં પાથરવામાં આવ્યો હોય, તેને પુનઃ પાત્રમાં નાખવમાં આવી રહ્યો હોય તે આહાર સંહ્રિયમાણ કહેવાય છે. આવો જ આહાર લઇશ, એવી પ્રતિજ્ઞા કરનાર તપસ્વી સંહ્રિયમાણચર છે.

(૧૧) ઉપનીતચર—જે ભોજનને કોઈ બીજાએ ગૃહસ્થને માટે મોકલ્યું હોય તે ઉપનીત કહેવાય છે અને તેનો અભિગ્રહ કરનાર ઉપનીતચર છે. હું તે જ ભોજન ગ્રહણ કરીશ જે બીજાએ ગૃહસ્થ માટે મોકલ્યું હોય એવી આખડી કરવી ઉપનીતાભિગ્રહ છે.

(૧૨) અપનીતચર—ગૃહસ્થે કોઈને આપવા માટે અન્યત્ર રાખવામાં આવેલ હોય એવા આહારને ગ્રહણ કરવાનો નિયમ સ્વીકાર કરવા વાળો અપનીતચર કહેવાય છે. જે આહાર બીજાને આપવા માટે કાઢીને અન્યત્ર

अपनीतोपनीतचरः-अपनीतं कस्मैचिदन्यस्मै दातुं निस्सार्याऽन्यत्र स्थापितं, तदेशो-पनीतं यस्य गृहस्थ समीपे प्रेषितं तस्य गृहस्थस्य गृहे प्रापितं तदपनीतो-पनीत मुच्यते, तदभिग्रहेण चरतीति अपनीतोपनीतचर उच्यते १४ संसृष्टचरः संसृष्टेन शाकादि पूरितेन हस्तादिना दीयमान मशनादिकं संसृष्ट मुच्यते, तदभि-ग्रहेण चरतीति संसृष्टचरः उच्यते १५ असंसृष्टचरः-असंसृष्टेन शाकादिना-

---

निकाल कर अन्यत्र रख दिया गया हो उस आहार सम्बन्धी अभिग्रह अपनीताभिग्रह समझना चाहिए।

(१३) उपनीतापनीतचर—जो आहार दूसरे ने भेजा हो वह यदि स्थानान्तर पर रख दिया गया हो तो ही उसे लूंगा ऐसा अभिग्रह करके अटन करने वाला तपस्वी उपनीतापनीतचर कहलाता है।

(१४) अपनीतोपनीतचर-किसी को देने के लिए पात्र में निका-लकर बाहर रख दिया हो और उस गृहस्थ के यहां भेज दिया गया हो वह अपनीतोपनीत कहलाता है। ऐसे आहारको ग्रहण करने का अभिग्रह करने वाला अपनीतोपनीतचर है।

(१५) संसृष्टचर-शाक-दाल आदि से भरे हुए (लिप्त) हाथ आदि से दिया जाने वाला आहार संसृष्ट कहा जाता है, उसका अभिग्रह धारण करके भिक्षार्थ अटन करने वाला संसृष्टचर कहलाता है।

રાખવામાં આવ્યો હોય, તે આહાર સંબંધી અભિગ્રહ અપનીતાભિગ્રહ સમજવો જોઇએ.

(૧૩) ઉપનીતાપનીતચર—જે આહાર બીજાને મોકલ્યો હોય તે જો સ્થાનાન્તર પર રાખવામાં આવ્યો હોય તો જ તેને લઇશ, એવો અભિગ્રહ કરીને અટન કરનાર તપસ્વી ઉપનીતાપનીતચર કહેવાય છે.

(૧૪) અપનીતોપનીતચાર—કોઇને આપવા માટે પાત્રમાંથી કાઢીને બહાર રાખવામાં આવ્યો હોય અને તે ગૃહસ્થને ત્યાં મોકલી દેવામાં આવ્યો હોય તે અપનીતોપનીત કહેવાય છે. એવા આહારને ગ્રહણુ કરવાનો અભિગ્રહ કરનાર અપનીતોપનીતચર છે.

(૧૫) સંસૃષ્ટચર-શાક દાળ આદિથી ભરેલા (ખરડાયેલા) હાથ આદિ થી આપવામાં આવતો આહાર સંસૃષ્ટ કહેવામાં આવે છે. તેનો અભિગ્રહ ધારણુ કરીને ભિક્ષાર્થે અટન કરનાર સંસૃષ્ટચર કહેવાય છે

रिक्तेन हस्तादिना दीयमानं वस्तु 'असंसृष्ट मुच्यते' तदभिग्रहेण चरतीति-असंसृष्टचरो बोध्यः १६ तज्जात संसृष्टचरः-तज्जातेन परिवेष्यमाणद्रव्येण यत्संसृष्टं हस्तादि तेन-दीयमान वस्तु ग्रहीतुं य श्चरति स तज्जातसंसृष्टचर उच्यते १७ अज्ञातचरः-अज्ञातम् अज्ञात श्रमणनियमम्-अपरिचितं गृहस्थकुलं यश्चरति सोऽज्ञातचरः-उच्यते १८ मौनचरः-मौनं वाक्संयमनं तदभिग्रहेण यश्चरति स मौनचर उच्यते १९ दृष्टलाभिकः-दृष्टस्यैव भक्तपानादेर्लाभो दृष्टलाभः अथवा-दृष्टात् प्रथम दृष्टादेव दातुर्गृहाद्वा लाभो दृष्टलाभः सोऽस्ति यस्य स दृष्टलाभिकः २०

(१६) असंसृष्टचर-जो हाथ, पात्र या चम्मच शाक आदि से भरा न हो वह असंसृष्ट कहलाता है। ऐसे हाथ आदि से ही लेने की प्रतिज्ञा करने वाले को असंसृष्टचर समझना चाहिए।

(१७) तज्जात संसृष्टचर-जिस द्रव्य से हाथ आदि संसृष्ट है, उसी से वही वस्तु लेने का जो अभिग्रह धारण करता है वह तज्जातसंसृष्टचर कहलाता है।

(१८) अज्ञातचर-अज्ञात अर्थात् अपरिचित गृहस्थ के घर से जो भिक्षा ले वह अज्ञातचर कहलाता है।

(१९) मौनचर- मौन धारण करके भिक्षाटन करने वाला।

(२०) दृष्टलाभिक-प्रत्यक्ष दीखने वाले आहार-पानी का लाभ होना दृष्टलाभ कहलाता है अथवा जो पहले पहल दिखाई दे ऐसे दाता या घर से आहारादि का लाभ होना दृष्टलाभ है। ऐसे आहार आदि को ही ग्रहण करने का नियम अंगीकार करने वाला दृष्टलाभिक है।

(૧૬) અસંસૃષ્ટચર-જે હાથ, પાત્ર અથવા ચમચો શાક આદિથી લદાયેલા ન હોય તે અસંસૃષ્ટ કહેવાય છે. આવા હાથ વગેરેથી જ આહાર લેવાની પ્રતિજ્ઞા કરનાર અસંસૃષ્ટચર સમજવો જોઇએ

(૧૭) તજ્જાતસંસૃષ્ટચર-જે દ્રવ્યથી હાથ વગેરે સંસૃષ્ટ છે તેનાથી તે વસ્તુ લેવાનો જે અભિગ્રહ ધારણ કરે છે તે તજ્જાતસંસૃષ્ટચર કહેવાય છે

(૧૮) અજ્ઞાતચર-અજ્ઞાત અર્થાત્ અપરિચિત ગૃહસ્થના ઘેરથી જે ભિક્ષા લે તે અજ્ઞાતચર કહેવાય છે.

(૧૯) મૌનચર-મૌન ધારણ કરીને ભિક્ષાટન કરનાર

(૨૦) દ્રષ્ટલાભિક-પ્રત્યક્ષ જોઇ શકાય તેવા આહાર પાણીનો લાભ થવો દ્રષ્ટલાભ કહેવાય છે અથવા જે સૌ પ્રથમ જોવામાં આવે એવા દાતા અથવા ઘરેથી આહાર આદિનો લાભ થવો દ્રષ્ટલાભ છે. આવા આહાર વગેરેને જ ગ્રહણ કરવાના નિયમનો અંગીકાર કરનાર દ્રષ્ટલાભિક કહેવાય છે.

अदृष्टलाभिकः-अदृष्टस्याऽऽवरणादिनाऽऽच्छादितस्य दात्रादिभिः कृतोपयोगस्य भक्तादेर्लाभः। यद्वाऽदृष्टात् पूर्वं कदापि न दृष्टात् दायकाद् लाभोऽदृष्टलाभः सोऽस्याऽस्तीति अदृष्टलाभिकः२१ पृष्टलाभिकः-भिक्षार्थं समुपस्थितं यं श्रमणं 'भो! श्रमण? त्वं किमिच्छसि' इत्येवं कश्चिद्‌गृहस्थः पृच्छति स पृष्ट इत्युच्युते, तस्य श्रमणस्य तस्माद् गृहस्थाद् यो लाभो भवति स पृष्टलाभ उच्यते सोऽस्याऽस्तीति पृष्टलाभिको बोध्यः २२ अपृष्टलाभिकः-केनचिद्‌गृहस्थेनाऽपृष्टस्यैव श्रमणस्य य स्तस्माद् गृहस्थाद् लाभः सोऽपृष्टलाभ उच्यते सोऽस्याऽस्तीति अपृष्टलाभिको बोध्यः २३ भिक्षालाभिकः-कस्यचित् क्षेत्राद् गृहस्था द्वा याचित्वा गृहस्थेन समानीत तुच्छ बल्लचणककोद्रवादिक निष्पादित आहारो भिक्षोच्यते, तस्याऽलाभो यस्याऽस्तीति स भिक्षालाभिक उच्यते २४

(२१) अदृष्टलाभिक-अदृष्ट अर्थात् किसी चीज से आच्छादित आहार-पानी को जिसका उपयोग दाता आदि ने कर लिया हो, लेने की प्रतिज्ञा करने वाला अदृष्टलाभिक कहलाता है। अथवा पहले कभी न देखे हुए दाता के हाथ से लेने का अभिग्रह करने वाला अदृष्टलाभिक कहलाता है।

(२२) पृष्टलाभिक-भिक्षा के लिए उपस्थित श्रमण से-'हे श्रमण आपको क्या चाहिए?' ऐसा पूछ कर दिये जाने वाले आहार को ही ग्रहण करने का नियम लेने वाला पृष्टलाभिक कहलाता है।

(२३) अपृष्टलाभिक-जो गृहस्थ विना पूछे आहार देगा, उसी को ग्रहण करूंगा-ऐसी प्रतिज्ञा करने वाला अपृष्टलाभिक कहलाता है।

(२४) भिक्षालाभिक-किसी जगह अथवा गृहस्थ से याचना करके कोई गृहस्थतुच्छ बल्ल, चना या कोद्रव आदि लाया हो और उससे जो

(२१) અદ્રષ્ટલાભિક-અદ્રષ્ટ અર્થાત્ કોઇ વસ્તુથી ઢાંકેલા આહાર પાણીને જેનો ઉપયોગ દાતા વગેરેએ કરી લીધો હોય તે લેવાની પ્રતિજ્ઞા કરનાર અદષ્ટલાભિક કહેવાય છે. અથવા પહેલા કદી પણ ન જોએલા દાતાના હાથથી લેવાનો અભિગ્રહ ધારણ કરનાર અદ્રષ્ટલાભિક કહેવાય છે,

(૨૨ પૃષ્ટલાભિક-ભિક્ષાને માટે ઉપસ્થિત શ્રમણને હે શ્રમણ આપને શું ખપે? એવું પૂછીને આપવામાં આવનાર આહારને જ ગ્રહણ કરવાનો નિયમ લેનાર પૃષ્ટલાભિક કહેવાય છે.

(૨૩) અપૃષ્ટલાભિક--જે ગૃહસ્થ વગર પૂછે આહાર આપશે તેનાથી જ ગ્રહણ કરીશ એવી પ્રતિજ્ઞા કરનાર અપૃષ્ટલાભિક કહેવાય છે

(૨૪) ભિક્ષાલાભિક-કોઇ જગ્યાએથી અથવા ગૃહસ્થથી યાચના કરીને કોઇ ગૃહસ્થ તુચ્છ બલ્લ, ચણા અથવા કોદરી આદિ લાવ્યો હોય અને

अभिक्षालाभिकः अयाचितलाभोऽभिक्षा तस्या अभिक्षया लाभोऽस्याऽस्तीति अभिक्षालाभिकः उच्यते २५ अन्नग्लायकः–अन्नेनाऽऽहारेण विना ग्लायकः, 'रात्रिनिष्पादित मन्नं गृहीष्यामि' इत्यभिग्रहं कृत्वा भिक्षाचरः पर्युषितान्न-भिक्षाचरः खलु अन्नग्लायक उच्यते २६ औपनिहितकः–औपनिहितं कथञ्चिद् गृहस्थेन स्वसमीपे समानीत मन्नादिकम्, तदभिग्रहेण चरतीति औपनिहितकचर उच्यते २७ परिमितपिण्डपातिकः–परिमितपिण्डस्य प्रमाणपरिच्छिन्नपिण्डस्य पातो लाभः परिमितपिण्डपातः सोऽस्याऽस्तीति परिमितपिण्डपातिकः आधा-कर्मादि दोषरहितं भक्तपानादिकं 'यदि–एकस्माद् गृहात् पर्याप्तं लभ्यते तदा–ग्रही-तव्यम् इत्येव मभिग्रहवान् परिमितपिण्डपातिकः उच्यते–२८ शुद्धैषणिकः–शुद्धैषणा

भोजन तैयार किया हो वह भिक्षा कहलाता है। ऐसे भोजन को लेने की प्रतिज्ञा करने वाला भिक्षालाभिक है।

(२५) अभिक्षालाभिक–याचना किये बिना ही लाभ होना अभिक्षा है। ऐसे आहारादि को ही लेने की प्रतिज्ञा करने वाला अभिक्षालाभिक है।

(२६) अन्नग्लायक–आहार के बिना ग्लानि पाने वाला अन्नग्लायक कहलाता है। जो बासी आहार को ही लेने का अभिग्रह करता है उसे अन्नग्लायक समझना चाहिए।

(२७) औपनिहितक–किसी निमित्त से कोई गृहस्थ मेरे पास आहार ले आएगा तो लूंगा ' ऐसी प्रतिज्ञा करने वाला तपस्वी औप निहितक कहलाता है।

(२७) परिमितपिण्डपातिक–परिमित आहार का लाभ होना परि-मितपिण्डपात है, उसका अभिग्रह करने वाला परिमितपिण्डपातिक कहलाता है।

તેનાથી જે ભોજન તૈયાર કર્યું હોય તે ભિક્ષા કહેવાય છે. આવા ભોજન ને લેવાની પ્રતિજ્ઞા કરનાર ભિક્ષાલાભિક છે.

(૨૫) અભિક્ષાલાભિક–યાચના કર્યા વગર જ લાભ થવો અભિક્ષા છે. આવા આહારાદિને જ લેવાની પ્રતિજ્ઞા કરનાર અભિક્ષાલાભિક છે.

(૨૬) અન્નગ્લાયક––આહાર વગર ગ્લાનિ પામનાર અન્નગ્લાયક કહેવાય છે. જે વાસી આહારને જ લેવાનો અભિગ્રહ ધારે છે તેને અન્નગ્લાયક સમજવો જોઇએ.

(૨૭) ઔપનિહિતક––કોઇ નિમિત્તથી કોઇ ગૃહસ્થ મારી પાસે આહાર લઇને આવશે તો જ લઈશ એવી પ્રતિજ્ઞા કરનાર તપસ્વી ઔપનિહિતક કહેવાય છે.

शङ्कादि दोषराहित्यम्, शुद्धस्य उद्गमादिदोषरहितस्य वा, एषणा साऽस्यास्तीति शुद्धैषणिकः सर्वथा-शुद्धमेव ग्रहीतव्यम् इत्यभिग्रहधारीति शुद्धैषणिक उच्यते २९ संख्यादत्तिकः-संख्या प्रधानदत्तिः संख्यादत्तिः तदभिग्रहेण चरतीति संख्या दत्तिकः, दर्वी-कटोरकादितोऽविच्छिन्नधारया या भिक्षा पतति सा दत्ति रुच्यते एक क्षेप रूपा च भिक्षा दत्तिरित्येवं रीत्याऽनेकविधा भिक्षाचर्या भवतीतिभावः। उक्तञ्चौ-पपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं भिक्खायरिया ? भिक्खायरिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा-दव्वाभिग्गहचरए१ खेत्ताभिग्गहचरए२ कालाभिग्गहचरए३ भावाभिग्गहचरए४ उक्खित्तचरए५ णिक्खित्तचरए ६ उक्खित्तणिक्खित्तचरए ७ णिक्खित्तउक्खित्तचरए ८ वट्टिज्जमाणचरए ९ साहरिज्जमाणचरए१० उवणीयचरए ११ अवणीयचरए १२ उवणीय अवणीयचरए १३ अवणीय उवणीयचरए १४ संसट्ठचरए १५ असंसट्ठचरए १६ तज्जायसंसट्ठचरए १७ अण्णायचरए १८ मोणचरए १९ दिट्ठलाभिए २० अदिट्ठलाभिए २१ पुट्ठलाभिए २२ अपुट्ठलाभिए २३

(२९) शुद्धैषणिक-शंका आदि दोषों से अथवा उद्गम आदि दोषों से रहित ही आहार आदि की गवेषणा करने वाला शुद्धैषणिक कहलाता है। अर्थात् जिसने ऐसा अभिग्रह धारण किया हो कि सर्वथा शुद्ध आहार ही ग्रहण करूंगा, उसे शुद्धैषणिक समझना चाहिए।

(३०) संख्यादत्तिक-दत्तियों की संख्या निश्चित करके आहार लेने वाला। विना धार टूटे एक बार में जितना आहार-पानी का लाभ हो वह एक दत्ती कहलाती है।

इस प्रकार भिक्षा चर्या के अनेक भेद हैं। औपपातिक सूत्र के तीसवें सूत्र में कहा है-

(૨૮) પરિમિતપિણ્ડપાતિક--પરિમિત આહારનો લાભ થવો પરિમિત પિણ્ડપાત છે. તેવો અભિગ્રહ કરનાર પરિમિતપિણ્ડપાતિક કહેવાય છે.

(૨૯) શુદ્ધૈષણિક--શંકા વગેરે દોષોથી અથવા ઉદ્ગમ આદિ દોષોથી રહિત જ આહાર આદિની ગવેષણા કરવાવાળો શુદ્ધૈષણિક કહેવાય છે અર્થાત્ જેણે આવો અભિગ્રહ ધારણ કર્યો હોય કે સર્વથા શુદ્ધ આહાર ગ્રહણ કરીશ, તેને શુદ્ધૈષણિક સમજવો જોઈએ.

(૩૦) સંખ્યાદત્તિક--દત્તિઓની સંખ્યા નિશ્ચિત કરીને આહાર ગ્રહણ કરનાર સાતત્ય જળવાઈ રહે તેવી રીતે એકવારમાં જેટલા આહાર પાણીનો લાભ થાય તે એક દત્તિ કહેવાય છે.

આ રીતે ભિક્ષાચર્યાના અનેક ભેદ છે. ઔપપાતિક સૂત્રના ત્રીસમાં સૂત્રમાં કહ્યું છે.

भिक्खालाभिए २४ अभिक्खालाभिए २५ अण्णलाभिए २६ ओवणिहिए २७ परिमियपिंडवाइए २८ सुद्धेसणिए २९ संखादत्तिए ३० से तं भिक्खायरिया' इति। अथ का सा भिक्षाचर्या ? भिक्षाचर्याऽनेकविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-द्रव्याभिग्रहचरकः १ क्षेत्राभिग्रहचरकः २ कालाभिग्रहचरकः ३ भावाभिग्रहचरकः ४ उत्क्षिप्तचरकः ५ निक्षिप्तचरकः ६ उत्क्षिप्तनिक्षिप्तचरकः ७ निक्षिप्तोत्क्षिप्तचरकः ८ वर्त्यमानचरकः ९ संह्रियमाणचरकः १० उपनीतचरकः ११ अपनीतचरकः १२ उपनीतापनीतचरकः १३ अपनीतोपनीतचरकः १४ संसृष्टचरकः १५ असंसृष्टचरकः १६ तज्जातसंसृष्टचरकः १७ अज्ञातचरकः १८ मौनचरकः १९ दृष्टलाभिकः २० अदृष्टलाभिकः २१ पृष्टलाभिकः २२ अपृष्टलाभिकः २३ भिक्षालाभिकः २४ अभिक्षालाभिकः २५ अन्नग्लायकः २६ औपनिहितकः २७ परिमितपिण्डपातिकः २८ शुद्धैषणिकः २९ सङ्ख्यादत्तिकः ३० सा-एषा भिक्षाचर्या, इति।१५।

प्रश्न-भिक्षाचर्या के कितने भेद हैं ?

उत्तर-भिक्षाचर्या अनेक प्रकार की है, यथा-(१) द्रव्याभिग्रहचर (२) क्षेत्राभिग्रहचर (३) कालाभिग्रहचर (४) भावाभिग्रहचर (५) उत्क्षिप्तचर (६) निक्षिप्तचर (७) उत्क्षिप्त निक्षिप्तचर (८) निक्षिप्त उत्क्षिप्तचर (९) वर्त्यमानचर (१०) संह्रियमाणचर (११) उपनीतचर (१२) अपनीतचर (१३) उपनीत-अपनीतचर (१४) अपनीत-उपनीतचर (१५) संसृष्टचर (१६) असंसृष्टचर (१७) तज्जातसंसृष्टचर (१८) अज्ञातचर (१९) मौनचर (२०) दृष्टलाभिक (२१) अदृष्टलाभिक (२२) पृष्टलाभिक (२३) अपृष्टलाभिक (२४) भिक्षालाभिक (२५) अभिक्षालाभिक (२६) अन्नग्लायक (२७) औपनिहितक (२८) परिमितपिण्डपातिक (२९) शुद्धैषणिक और (३०) संख्यादत्तिक, यह सब भिक्षाचर्या है ॥१५॥

પ્રશ્ન-ભિક્ષાચર્યાના કેટલા ભેદ છે.

ઉત્તર-ભિક્ષ ચર્યા અનેક પ્રકારની છે, જેવી કે (૧) દ્રવ્યાભિગ્રહચર (૨) ક્ષેત્રાભિગ્રહચર (૩) કાલાભિગ્રહચર (૪) ભાવાભિગ્રહચર (૫) ઉત્ક્ષિપ્તચર (૬) નિક્ષિપ્તચર (૭) ઉત્ક્ષિપ્તનિક્ષિપ્તચર (૮) નિક્ષિપ્ત ઉત્ક્ષિપ્તચર (૯) વર્ત્યમાનચર (૧૦) સંહ્રિયમાનચર (૧૧) ઉપનીતચર (૧૨) અપનીતચર (૧૩) ઉપનીત-અપનીતચર (૧૪) અપનીત ઉપનીતચર (૧૫) સંસૃષ્ટચર (૧૬) અસંસૃષ્ટચર (૧૭) તજ્જાતસંસૃષ્ટચર (૧૮) અજ્ઞાતચર (૧૯) મૌનચર (૨૦) દ્રષ્ટલાભિક (૨૧) અદ્રષ્ટલાભિક (૨૨) પૃષ્ટલાભિક (૨૩) અપૃષ્ટલાભિક (૨૪) ભિક્ષાલાભિક (૨૫) અભિક્ષાલાભિક (૨૬) અન્નગ્લાયક (૨૭) ઔપનિહિતક (૨૮) પરિમિત પિણ્ડપાતિક (૨૯) શુદ્ધૈષણિક અને (૩૦) સંખ્યાદત્તિક આ બધી ભિક્ષાચર્યા છે. ॥ ૧૫ ॥

मूलम्–रसपरिच्चागतवे अणेगविहे, निव्विइय पणीयरस-परिच्चायाइ भेयओ ॥१६।

छाया–'रसपरित्यागतपोऽनेकविधम् निर्विकृतिप्रणीतरसपरित्यागादि भेदतः॥१६॥

तत्त्वार्थदीपिका--पूर्वं तावत्-तृतीयं भिक्षाचर्या नाम बाह्यं तपोऽनेकविधं प्ररूपितम्, सम्प्रति-रसपरित्यागतपः प्ररूपयितुमाह-'रसपरिच्चागतवे' इत्यादि। रसपरित्यागः- घृतादिरसपरित्यागरूपं तपो निर्विकृतिकाहारादिग्रहण रूपम् अनेकविधं भवतीतिभावः। तद्यथा-निर्विकृतिकः १ प्रणीतरसपरित्यागः २ आचामाम्लम् ३ आयामसिक्थभोगी ४ अरसाहारः ५ विरसाहारः ६ अन्ताहारः७ प्रान्ताहारः ८ रूक्षाहारः ९ तुच्छाहारः १० इत्येवं रीत्या रसपरित्याग तपोऽनेक विधं भवतीतिभावः। तत्र-निर्विकृतिकाहार इतान्द्र निर्गता घृतादिरूपा विकृतिर्य-

---

'रसपरिच्चागतवे अणेगविहे' इत्यादि।

सूत्रार्थ—निर्विकृति-प्रणीतरसपरित्याग आदि के भेद से रस परित्याग तप अनेक प्रकार का है ॥१६॥

तत्वार्थदीपिका—इससे पूर्व भिक्षाचर्या नामक तीसरे बाह्य तप का निरूपण किया गया अब रस परित्याग का विवेचन करते हैं-

घृत आदि पौष्टिक रसों का त्याग रसपरित्याग तप कहलाता है। विगय रहित आहार ग्रहण करने आदि के भेद से उसके अनेक भेद हैं। वे इस प्रकार हैं-(१) निर्विकृतिक (२) प्रणीतरसपरित्याग (३) आयंबिल (४) आयाम सिक्थ भोगी (५) अरसाहार (६) विरसाहार (७) अन्ताहार (८) प्रान्ताहार (९) रूक्षाहार (१०) तुच्छाहार, इत्यादि भेदों से रसपरित्याग तप अनेक प्रकार का है। (१) घृत आदि विगयों

'રસપરિચ્ચાગતવે અણેગવિહે' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—નિર્વિકૃતિ–પ્રણીતરસપરિત્યાગ આદિના ભેદથી રસપરિત્યાગ તપ અનેક પ્રકારના છે. ॥ ૧૬ ॥

તત્ત્વાર્થદીપિકા--આની પૂર્વે ભિક્ષાચર્યા નામક ત્રીજા બાહ્ય તપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું હવે રસપરિત્યાગતપનું વિવેચન કરીએ છીએ

ઘી આદિ પૌષ્ટિક રસોનો ત્યાગ રસપરિત્યાગ તપ કહેવાય છે. વિગય રહિત આહાર ગ્રહણ કરવા આદિના ભેદથી તેના અનેક ભેદ છે તે આ પ્રમાણે છે (૧) નિર્વિકૃતિક (૨) પ્રણીત રસપરિત્યાગ (૩) આયંબિલ (૪) આયામ સિકથભોગી (૫) અરસાહાર (૬) વિરસાહાર (૭) અન્તાહાર (૮) પ્રાન્તાહાર (૯) રૂક્ષાહાર (૧૦) તુચ્છાહાર, ઇત્યાદિ ભેદોથી રસપરિત્યાગ તપ અનેક

स्मात् स निर्विकृतिकस्तथाविध आहारो निर्विकृतिकाहार उच्यते १ प्रणीतरसपरित्यागः–प्रणीतरसः प्रचुरत्वाद् द्रवीभूत घृतबिन्दु सन्दोहोऽपूपादिः तस्य परित्यागः प्रणीतरसपरित्याग उच्यते २ एवम्–आचाम्लम् विकृतिवर्जितानामोदनभर्जित चणकादीनां रूक्षान्नादीनामचित्ते–उदके प्रक्षेपपूर्वकमेकासनस्थेन सकृद्भोजन माचाम्लं नाम तपो भवतीतिभावः३ आयामसिक्थभोजी अवस्रावण गतसिक्थ भोजने सूत्रे–गुण-गुणिनोरभेदोपचाराद्' भोजीतिपदम् ४ एवम्–अरसाहारः–अरसः जीरकहिङ्ग्वादिभिर संस्कृतोय आहारः सोऽरसाहारो भवति ५ एवं–विरसाहारः विगतो रसो विरसः अति पुराणधान्यौदनादिकः एतद्रूप आहारो विरसाहारो भवति ६ अन्ताहारः अन्त–नीरसवस्तु. तस्याहारोऽन्ताहारः जघन्य धान्यकोद्रवादीना माहार उच्यते ७ प्रान्ताहारः प्रकर्षेणाऽन्तं प्रान्तं पाकपात्रादन्ने

(विकृतियों) से रहित आहार निर्विकृतिक कहलाता है। (२) जिस मालपुए आदि में से पिघला घी झर रहा हो, ऐसे पौष्टिक आहार का त्याग करना प्रणीतरसपरित्याग है। (३) विकृत हीन ओदन, भुने चने आदि रूखे अन्नों को अचित्त जल में भिगोकर, एक आसन पर बैठकर एक बार ही खाना आचाम्ल या आयंबिल है। (४) ओसामण में मिले हुए सीथ खाना आयामसिक्थ भोजी है। सूत्र में गुण और गुणी में अभेद का उपचार करके 'भोजी' शब्द का प्रयोग किया गया है। (५) जीरा हींग आदि से बिना छौंका आहार अरसाहार कहलाता है। (६) विरस अर्थात् अत्यन्त पुराने धान्य ओदन आदि का आहार विरसाहार कहलाता है। (७) अन्ताहार अर्थात् घटिया धान्य कोद्रव आदि का आहार (८) प्रान्ताहार अर्थात् अतीव नीरस और घटिया आहार, पकाने

પ્રકારના છે. (૧) ઘી આદિ વિગયો (વિકૃતીઓ) થી રહિત આહાર નિર્વિકૃતિક કહેવાય છે. (૨) જે માલપુડા આદિમાંથી પિઘળેલું ઘી ઝરી રહ્યું હોય એવા પૌષ્ટિક આહારનો ત્યાગ કરવો પ્રણીતરસ પરિત્યાગ છે. (૩) વિકૃતહીન ઓદન શેકેલા ચણા આદિ સુકા અનાજને અચેત પાણીમાં પલાળીને એક આસને બેસીને એક જ વાર ખાવું આચામ્લ અથવા આયંબિલ છે. (૪) ઓસામણમાં ભેગા થયેલા સીથ ખાવું આયામસિકથભોગી છે, સૂત્રમાં ગુણ અને ગુણીમાં અભેદનો ઉપચાર કરીને ' ભોજી ' શબ્દનો પ્રયોગ કરવામા આવ્યો છે. (૫) જીરૂ, હીંગ, વગેરેથી વઘાર્યા વગરનો આહાર અરસાહાર કહેવાય છે (૬) વિરસ અર્થાત્ અત્યન્ત જુના ચોખા વગેરેનો આહાર વિરસાહાર કહેવાય છે (૭) અન્તાહાર અર્થાત્ જાડું ધાન્ય કોદરી આદિનો આહાર (૮) પ્રાન્તાહાર અર્થાત્ અતીવ નીરસ અને ઘટિયો આહાર, રાંધવાના વાસણમાથી અન્ન કાઢી

निष्कासिते सति तत्पात्रसंश्लिष्टं दर्व्यादिना घर्षणेन निस्सारित मन्नं वल्लचणकादि निष्पादित मम्लतक्रमिश्रितं, पर्युषितं वाऽन्नं प्रान्तं तद्रूप आहारः प्रान्ताहार उच्यते ८ रूक्षाहारम्-रूक्षम् अस्निग्धमन्नं तद्रूप आहारो रूक्षाहारः ९ तुच्छाहारः-तुच्छोऽल्पोऽसारश्च श्यामाकादिनिष्पादितो य आहारः स तुच्छाहारः १० इत्येवं रस परित्यागो बोध्यः ।१६।

तत्त्वार्थनिर्युक्तिः—पूर्वं खलु षड्विधेषु-अनशनादि बाह्य तपःसु भिक्षाचर्या तपः सविस्तरं प्ररूपितम्, सम्प्रति-क्रमप्राप्तं चतुर्थं रसपरित्यागरूपं तपः प्ररूपयितुमाह-'रसपरिच्चागतवे अणेगविहे, निव्विइय पणीय रसपरिच्चायाइ भेदओ' इति । रसपरित्याग तपः-घृताऽपूपादि सरसाहारस्य परित्यागरूपं तपस्तावद् अनेकविधम्, तद्यथा-निर्विकृतिकः प्रणीतरसपरित्यागादि भेदतः ।

के पात्र में से अन्न निकाल लेने पर उसमें जो शेष चिपटा रहता है और जिसे चम्मच आदि से खरोंच कर निकाला जाता है वह प्रान्ताहार कहलाता है। अथवा चना आदि से बना हुआ अम्लतक्र मिश्रित ठंडा आहार प्रान्ताहार कहा जाता है। (९) रूखे अर्थात् चिकनाई से रहित आहार को रूक्षाहार कहते हैं। (१०) तुच्छ अर्थात् अल्प अथवा असार सावां आदि का बना आहार तुच्छाहार कहलाता है। इस प्रकार अनेक तरह का रसपरित्याग तप समझना चाहिए ॥१६॥

तत्वार्थनिर्युक्ति—छह प्रकार के अनशन आदि बाह्य तपों में से भिक्षाचर्या तप का विस्तार पूर्वक प्ररूपण किया गया, अब क्रमप्राप्त चौथे रसपरित्याग तप का प्ररूपण करते हैं—

निर्विकृतिक, प्रणीत रसपरित्याग आदि के भेद से रसपरित्याग तप के अनेक भेद हैं। वे इस प्रकार हैं (१) निर्विकृतिक (२) प्रणीतरसपरित्याग

લીધા બાદ તેમાં જે શેષ ચોટેલું રહે છે અને જેને ચમચા આદિથી ઉખાડીને કાઢવામાં આવે છે તે પ્રાન્તાહાર કહેવાય છે અથવા ચણા વગેરેથી બનેલો અમ્લતક્રમિશ્રિત ઠંડો આહાર પ્રાન્તાહાર કહેવાય છે. સુકા અર્થાત્ ચિકણા પણાથી રહિત આહારને રૂક્ષાહાર કહે છે. (૧૦) તુચ્છ અર્થાત્ અલ્પ અથવા અસાર સામા વગેરેનો બનેલો આહાર તુચ્છાહાર કહેવાય છે. આમ અનેક પ્રકારના રસપરિત્યાગ તપ સમજવા જોઈએ ॥ ૧૬ ॥

તત્ત્વાર્થનિર્યુક્તિ—છ પ્રકારના અનશન આદિ બાહ્ય તપોમાંથી ભિક્ષાચર્યા તપનું વિસ્તારપૂર્વક પ્રરૂપણ કરવામાં આવ્યું, હવે ક્રમપ્રાપ્ત ચોથા રસ પરિત્યાગ તપનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ

નિર્વિકૃતિક, પ્રણીતરસ પરિત્યાગ આદિના ભેદથી રસપરિત્યાગ તપના અનેક ભેદ છે. તે આ પ્રમાણે છે (૧) નિર્વિકૃતિક (૨) પ્રણીતરસપરિત્યાગ

निर्विकृतिकः १ प्रणीतरसपरित्यागः २ आदिना–आचामाम्लम् ३ आयामसिक्थ भोजी ४ अरसाहारः ५ विरसाहारः ६ अन्ता–(न्त्या) हारः ७ प्रान्ताहारः ८ रूक्षाहारः ९ तुच्छाहारः १० इत्येवं रीत्या रसपरित्यागतपोऽनेकविधं भवति। तत्र–निर्विकृतिक तावद् निर्गता घृतादिरूपा विकृतिर्यस्मात् स निर्विकृतिकः आहार उच्यते, तथा च घृतादि स्निग्ध पदार्थवर्जिताहारग्रहणं निर्विकृतिकं नाम रसपरित्यागतपो भवति २ प्रणीतरसपरित्यागः–प्रणीतरसः प्रचुरद्रवद्घृत-बिन्दु सन्दोहोऽपूपादि रतस्य परित्यागः प्रणीतरसपरित्यागः तद्रूपं तपः प्रणीत-रसपरित्याग तप उच्यते २ आचामाम्लम्–स्नेहादि विकाररहितानां मोदन-भर्जितचणकादीनां रूक्षान्नानाम् अचित्ते जले प्रक्षेपेण एकासनस्थतयोपविश्य सकृद्भोजनं खलु आचामाम्लं नाम तप उच्यते–तथाचोक्तम्––

---

(३) आचाम्ल (४) आयामसिक्थ भोजी (५) अरसाहार (६) विरसाहार (७) अन्ताहार (८) प्रान्ताहार (९) रूक्षाहार (१०) तुच्छाहार। इस प्रकार रसपरित्याग तप अनेक प्रकार का है। घृत आदि विकृतियों से रहित आहार निर्विकृतिक कहलाता है। अतएव घृत आदि स्निग्ध पदार्थों से रहित आहार ग्रहण करना निर्विकृतिक नामक रसपरित्याग तप है। बहुलता के कारण जिसमें से घी टपकता हो ऐसे मालपुआ आदि को प्राणीतरस कहते हैं, उसका त्याग करना प्राणीतरसत्याग नामक तप है। स्निग्धता एवं विगय रहित ओदन (भात) तथा भुने चने आदि रूखे अन्न को अचित्त जल में भिगो कर एक आसन पर बैठ कर एक वार ही भोजन करना आचाम्ल या आयंबिल तप कहलाता है। कहा भी है–

विकृतिरहित ओदन को तथा भुने हुए चने आदि रूखे अन्न को अचित्त जल में डालकर एक स्थान पर बैठकर एक बार खाना आयंबिल तप है।१।

---

(૩) આચામ્લ (૪) આપાત્રસિકથભોજી (૫) અરસાહાર (૬) વિરસાહાર (૭) અન્તાહાર (૮) પ્રાન્તાહાર (૯) રૂક્ષાહાર (૧૦) તુચ્છાહાર આમ રસપરિત્યાગ તપ અનેક પ્રકારના છે. ઘી વગેરે વિકૃતિઓથી રહિત આહાર ગ્રહણ કરવો નિર્વિકૃતિક નામક રસપરિત્યાગ તપ છે વધુ પ્રમાણમાં હોવાના કારણે જેમાંથી ઘી ટપકતું હોય એવા માલપુડાં આદિને પ્રણીતરસ કહે છે તેનો ત્યાગ કરવો પ્રણીત રસત્યાગ નામક તપ છે. સ્નિગ્ધતા અને વિગય ઓદન (ભાત) તથા શેકેલા ચણા આદિ સુકા અન્નને અચેત પાણીમાં પળાલીને એક આસને બેસીને એક જ વાર ભોજન કરવું આચામ્લ અથવા આયંબિલ તપ કહેવાય છે. કહ્યું પણ છે.

વિકૃતિરહિત ઓદનને તથા શેકેલા ચણા વગેરે સુકા અનાજને અચિત્ત પાણીમાં નાખીને એક સ્થાનકે બેસીને એકવાર ખાવું આયંબિલ તપ છે। ૧।

'विगइ रहियस्स ओयण, भज्जिय चणगाइलुक्खअन्नस्स ।
खित्ताजले अचित्ते, खाणं आयंबिलं जाण ॥१॥ इति
'विकृति रहितस्य ओदन भर्जितचणकादि रूक्षान्नस्य ।
क्षिप्त्वा जले अचित्ते भोजन माचामाम्लं जानीहि ॥१॥ इति

आयामसिक्थभोजीनाम तपस्तु-मण्डरूपावस्त्राणगतसिक्थरूपौदनकण भक्षणमुच्यते धर्म-धर्मिणोरभेदात् तद्भोक्ताऽपि तथाविधतपसा व्यपदिश्यते४ अरसाहारतपः-अरसो जीरक-हिंग्वादिभिरसंस्कृतआहारोऽरसाहार उच्यते, तथा-विधाऽरसाहारतपो भवति ५ विरसाहारतपः-विगतो रसो विरसः पुराणधान्यौदना-दिराहारो-विरसाहार उच्यते तथाविध विरसाहारतपो भवति ६ अन्त्याहारतपः-अन्ते-पर्यवसाने भवम् अन्त्यं जघन्य धान्यं कोद्रवादि तद्रूप आहारोऽन्त्याहार उच्यते तथाविधान्त्याहार तपो भवति ७ प्रान्ताहारतपः प्रकर्षेण अन्तं प्रान्तम् पाकपात्रादन्ने निःसारिते तत्पात्रश्लिष्टं दर्व्यादिना घर्षणेन निस्सारित मन्नं वल्लचणकादि निष्पादित मम्लतक्र मिश्रितं पर्युषितं वाऽन्नं प्रान्त मुच्यते तद्रूप आहारः प्रान्ताहारः तथाविध प्रान्ताहारतपो भवति ८ रूक्षाहारतपः-रूक्षाहारम् अस्निग्धमन्नं तद्रूप आहारो रूक्षाहार उच्यते तथाविध रूक्षाहारतपो भवति९ तुच्छा-

---

मांड या ओसामण में चावल आदि के जो दाने (सीथ) रह जाते हैं उन्हें धर्म और धर्मी के अभेद से आयामसिक्थ भोजी नामक तप कहते हैं।

जीरा हींग आदि से बिना छौंका आहार अरस आहार कहलाता है। पुराने धान्य आदि का आहार करना विरसाहार है। कोद्रव आदि घटिया धान्य अन्त कहलाता है, उसको खाना अन्ताहार या अन्त्याहार कहलाता है। पकाने के पात्र में से भोजन निकाल लेने पर उस पात्र में जो शेष लगा रहता है, उसे चम्मच आदि से खुरच कर निकाला जाता है वह प्रान्ताहार कहलाता है अथवा खट्टे छाछ से मिश्रित चना आदि या ठंडा भोजन प्रान्ताहार कहलाता है। उसे ही खाने का नियम

ઓસામણમાં ચોખા વગેરેના જે દાણા (સીથ) રહી જાય છે તેમને ધર્મ અને ધર્મીના અભેદથી આયામસિકથભોજી નામક તપ કહે છે. જીરા તથા હીંગ વગેરેથી વઘાર્યા વગરનો આહાર અરસ આહાર કહેવાય છે જુના ધાન્ય વગેરેનો આહાર કરવો વિરસાહાર છે. કોદરી વગેરે જાડું ધાન્ય અન્ત કહેવાય છે તેને ખાવું અન્ત્યાહાર કહેવાય છે. રાંધવાના વાસણમાંથી ભોજન કાઢી લીધા બાદ તે પાત્રમાં જે શેષ ચોંટી રહેલું હોય તેને ચમચા, તાવેથા આદિથી

हारतपः-तुच्छोऽल्पोऽसारश्च श्यामाकादिनिष्पादित आहार स्तुच्छाहार उच्यते तथाविधतुच्छाहारतपो भवतीति १० रीत्या रसपरित्यागतपोऽनेकविधं भवतीति बोध्यम् उक्तञ्चौपपातिके ३० सूत्रे-'से किं तं रसपरिच्चाए २ रसपरिच्चाए अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा-निव्विइए १ पणीयरसपरिच्चाए २ आयंबिलए ३ आयामसित्थभोई ४ अरसाहारे ५ विरसाहारे ६ अंताहारे ७ पंताहारे ८ लूहाहारे ९ तुच्छाहारे १० से त्तं रसपरिच्चाए' इति। अथ कोऽसौ रसपरित्यागः ? रसपरित्यागोऽनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-निर्विकृतिकः१ प्रणीतरसपरित्यागः २ आचामाम्लम्३ आयामसिक्थभोजी ४ अरसाहारः ५-६ विरसाहारः अन्त्याहारः ७ प्रान्ताहारः ८ रूक्षाहारः ९ तुच्छाहारः१० इति ॥१६।

मूलम्-कायकिलेसतवे अणेगविहे, ठाणट्ठिइयाइ भेयओ।१७।

छाया—'कायक्लेशतपोऽनेकविधम्, स्थानस्थितिकादि भेदतः ॥१७।

अंगीकार करना प्रान्ताहार तप है। रूखा-सूखा आहार रूक्षाहार कहलाता है'

जो आहार तुच्छ अर्थात् अल्प या असार हो-श्यामाक आदि का बना हो वह आहार तुच्छाहार कहलाता है। इत्यादि प्रकार से रसपरित्याग तप के अनेक भेद होते हैं। औपपातिकसूत्र के तीसवें सूत्र में कहा है-

प्रश्न-रसपरित्याग तप के कितने भेद हैं ?

उत्तर-रसपरित्याग तप अनेक प्रकार का है, यथा-(१) निर्विकृतिक (२) प्रणीतरसपरित्याग (३) आयंबिल (४) आयामसिक्थ भोजी (५) अरसाहार (६) विरसाहार (७) अन्ताहार (८) प्रान्ताहार (९)रूक्षाहार और (१०) तुच्छाहार ॥१६॥

ઉખાડીને કાઢી લેવામાં આવે છે તે આન્તાહાર કહેવાય છે અથવા ખાટી છાશ થી મિશ્રિત ચણા વગેરે અથવા ટાઢું ભોજન આન્તાહાર કહેવા[illegible] ખાવાનો નિયમ અંગીકાર કરવો પ્રાન્તાહાર તપ છે. રૂખો[illegible] રૂક્ષાહાર કહેવાય છે. જે આહાર તુચ્છ અર્થા[illegible] શ્યામાક વગેરેનો બનેલો હોય તે તુચ્છાહા[illegible] રસપરિત્યાગતપના અનેક ભેદ હોય છે. ઔપ[illegible]

પ્રશ્ન—રસપરિત્યાગ તપના કેટલા [illegible]

ઉત્તર—રસપરિત્યાગ તપ અનેક પ્ર[illegible] (૨) પ્રણીતરસપરિત્યાગ (૩) આયંબિલ ([illegible] હાર (૬) વિરસાહાર (૭) અન્તાહાર (૮) [illegible] તુચ્છાહાર ॥ ૧૬ ॥

तत्त्वार्थदीपिका--पूर्वं तावद् यथाक्रममशनादिरस परित्याग पर्यन्तं बाह्यं तपः सविस्तरं प्ररूपितम्, सम्प्रति-क्रमागतस्य कायक्लेशरूप पञ्चम बाह्य तपसः स्वरूपं भेदांश्च प्ररूपयितुमाह-'कायकिलेसतवे' इत्यादि। कायक्लेशतपः कायस्य क्लेशो यस्य-यस्मिन्वा स कायक्लेशः तद्रूपं तपः-कायक्लेश तप उच्यते धर्म-धर्मिणोरभेदोपचारात् तच्च-कायक्लेश तपोऽनेकविधं भवति। तद्यथा-स्थानस्थितिकादि भेदतः, स्थानस्थितिकः १ आदिना-उत्कुटुकासनिकः २ प्रतिमास्थायी ३ वीरासनिकः ४ नैषधिकः ५ दण्डायतिकः ६ लकुटशायी ७ आतापकः ८ अप्रावृतकः ९ अकण्डूयकः १० अनिष्ठीवकः ११ सर्वगात्रपरिकर्म-विभूषा विप्रमुक्तः १२ इत्येवंरीत्या कायक्लेशतपोऽनेकविधं भवति। तत्र-स्थान-

'कायकिलेसतवे अणेगविहे' इत्यादि।

सूत्रार्थ—स्थान स्थितिक आदि के भेद से कायक्लेश तप के अनेक भेद हैं ॥१७॥

तत्त्वार्थदीपिका--पहले अनशन से लगा कर रस परित्याग पर्यन्त बाह्य तप का सविस्तर व्याख्यान किया गया, अब क्रमागत कायक्लेश नामक पांचवें बाह्य तप के स्वरूप और भेदों का प्ररूपण करते हैं-

जिस तप से या जिस तप को करने पर काय के क्लेश होता है, वह काय क्लेश तप कहलाता है। यहां भी धर्म और धर्मी में अभेद का उपचार किया गया है। कायक्लेश तप अनेक प्रकार का है, जैसे (१) स्थान स्थितिक (२) उत्कुटुकासनिक (३) प्रतिमास्थायी (४) वीरासनिक (५) नैषधिक (६) दण्डायतिक (७) लकुटशायी (८) आतापक (९) अप्रावृतक (१०) अकण्डूयक (११) अनिष्ठीवक और (१२) सर्वगात्र

'कायकिलेसतवे अणेगविहे' ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ-સ્થાનસ્થિતિક આદિના ભેદથી કાયકલેશ તપના અનેક ભેદ છે ।૧૭।

તત્ત્વાર્થદીપિકા-પહેલાં અનશનથી માંડીને રસપરિત્યાગ પર્યન્ત બાહ્ય તપનું સવિસ્તર વર્ણન કરવામાં આવ્યું હવે ક્રમાગત કાયકલેશ નામક પાંચમાં બાહ્ય તપના સ્વરૂપ અને ભેદોનું પ્રરૂપણ કરીએ છીએ

જે તપથી અથવા જે તપ કરવાથી કાયાને કલેશ થાય છે તે કાયકલેશ તપ કહેવાય છે. અહીં પણ ધર્મ અને ધર્મીમાં અભેદનો ઉપચાર કરવામાં આવ્યો છે. કાયકલેશ તપ અનેક પ્રકારના છે (૧) સ્થાનસ્થિતિક (૨) ઉત્કુટ-કાસનિક (૩) પ્રતિમાસ્થાયી (૪) વીરાસનિક (૫) નૈષધિક (૬) દણ્ડાયતિક (૭) લકુટશાયી (૮) આતાપક (૯) અપ્રાવૃતક (૧૦) અકણ્ડૂયક (૧૧) અનિષ્ઠીવક